# राहुल

# वाङ्मय



# राहुल वाङ्मय

राहुल-वाङ्मय

**परामर्श**

डॉ. विद्यानिवास मिश्र

डॉ. नामवर सिंह

डॉ. निर्मला जैन

**सम्पादन**

कमला सांकृत्यायन

**सम्पादन सहयोग**

बसन्तकुमार कपूर

रामकुमार कृषक

**संयोजन**

जया पड़हाक

जेता सांकृत्यायन

राधाकृष्ण

# राहुल वाङ्मय



## जीवन-यात्रा

जिल्द 4

# राहुल-वाङ्मय

**परामर्श**

डॉ. विद्यानिवास मिश्र

डॉ. नामवर सिंह

डॉ. निर्मला जैन

**सम्पादन**

कमला सांकृत्यायन

**सम्पादन सहयोग**

बसन्तकुमार कपूर

रामकुमार कृषक

**संयोजन**

जया पड़हाक

जेता सांकृत्यायन

राधाकृष्ण

ISBN 81-7119-185-1

**राहुल-वाङ्मय**

खण्ड : एक—जीवन-यात्रा—जिल्द : 4



प्रथम संस्करण : 1994

पहली आवृत्ति : 1998

**मूल्य**

1500 रुपये

(जीवन-यात्रा : खण्ड एक—4 जिल्दें)

**प्रकाशक**

राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

2/38, अंसारी रोड, दरियागंज

नयी दिल्ली-110002

**साज-सज्जा : प्रशान्त**

**लेज़र कम्पोज़िंग**

कम्प्यूटेक सिस्टम

मानसरोवर पार्क, दिल्ली-110032

**मुद्रक**

हिन्दुस्तान ऑफ़सेट प्रिंटर्स

शाहदरा, दिल्ली-110032



---

RĀHUL VĀNGMAYA

Part-1 : Jeevan yātrā : 4 Volumes

Rs. 1500.00



महापंडित राहुल सांकृत्यायन (1948)

# प्रकाशकीय

मूर्धन्य और अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान, अप्रतिम विभूति महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जीवन और लेखन – उनके विराट व्यक्तित्व एवं बहुआयामी कृतित्व को जानने-पहचानने का बुनियादी साधन है उनकी आत्मकथा–उनकी लिखी 'मेरी जीवन-यात्रा'।

राहुल सांकृत्यायन साधु थे, बौद्ध भिक्षु थे, यायावर थे, इतिहासकार और पुरातत्ववेत्ता थे, नाटककार और कथाकार थे और थे जुझारू स्वतंत्रता-सेनानी, किसान-नेता, जन-जन के प्रिय नेता। उनके अनन्य मित्र भदंत आनंद कौसल्यायन के शब्दों में, "उन्होंने जब जो कुछ सोचा, जब जो कुछ माना, वही लिखा, निर्भय होकर लिखा। चिंतन के स्तर पर राहुल जी कभी भी न किसी साम्प्रदायिक विचार-सरणी से बँधे रहे और न संगठन-सरणी से। वह 'साधु न चले जमात' जाति के साधु पुरुष थे।"

इस साधु पुरुष, विलक्षण लेखक के वाङ्मय के इस प्रथम खण्ड की चतुर्थ जिल्द में है, 'मेरी जीवन यात्रा' का पांचवा भाग–1 जनवरी 1951 से 9 अप्रैल 1956 तक के जीवन का लेखा-जोखा। राहुल जी के रचना-लोक – दर्शन, इतिहास से लेकर राजनीतिक और समाज-विज्ञान, धर्म, कोश और शोध – का बेबाक ब्योरा। साथ ही, 10 अप्रैल 1956 से मृत्यु पर्यन्त तक उनकी अदम्य कर्म शक्ति का डायरी और पत्रों के आधार पर उनकी विदूषी पत्नी कमला सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत तथ्यपरक संस्मरणात्मक जीवन-वृत्तांत – जीवन-यात्रा का छठा भाग।

राहुलजी के प्रारंभिक जीवन के चित्र नहीं मिलते। 'राहुल संग्रहालय' में उपलब्ध चित्रों में से कुछ चुने हुए चित्र विभिन्न खण्डों की विभिन्न जिल्दों में दिये गये हैं।

प्रकाशन में जहाँ जो भी त्रुटियाँ रह गयी हैं, उनके लिए हम हृदय से क्षमाप्रार्थी हैं।

# विषयानुक्रम

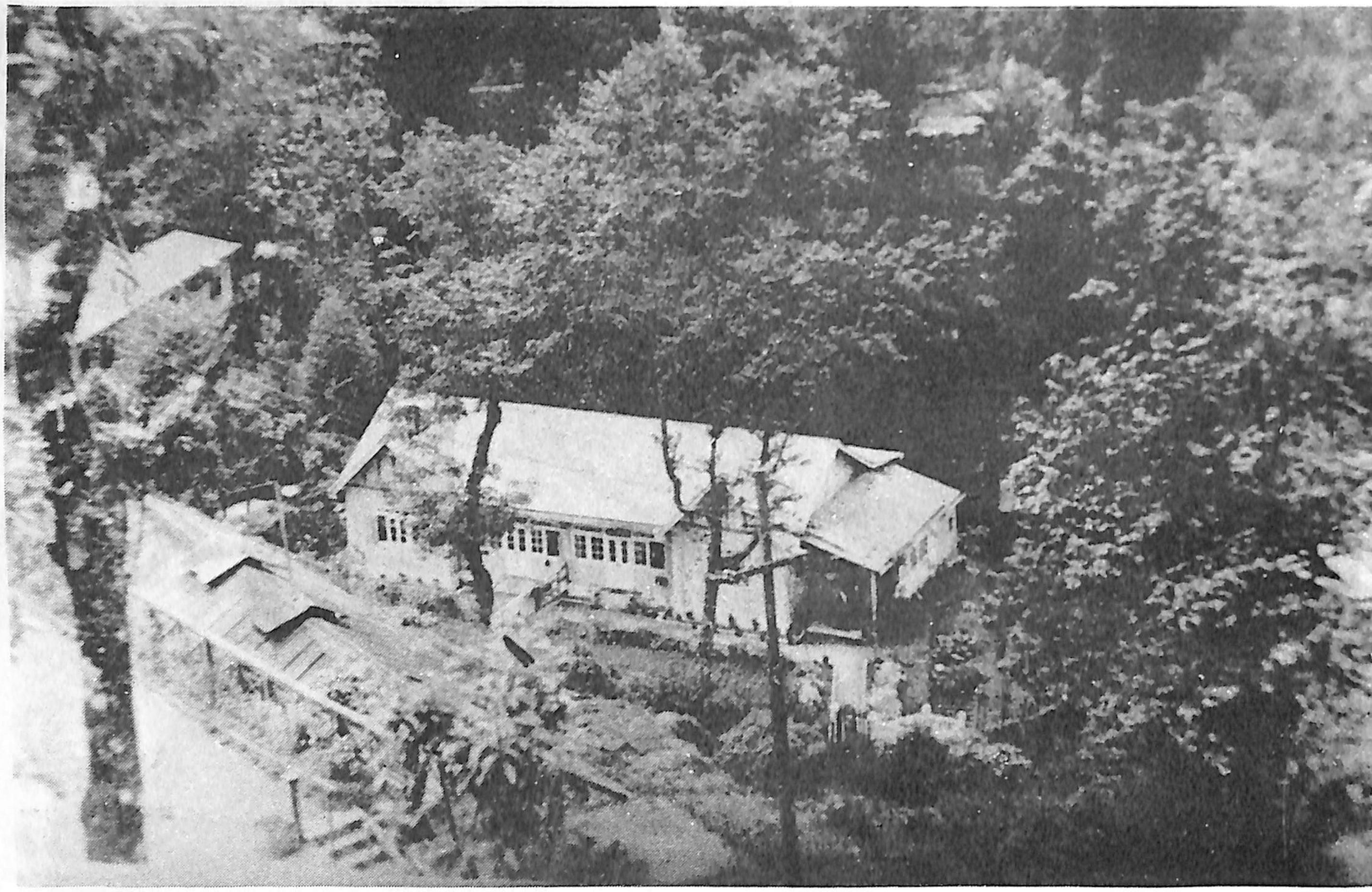
## मेरी जीवन-यात्रा : 5



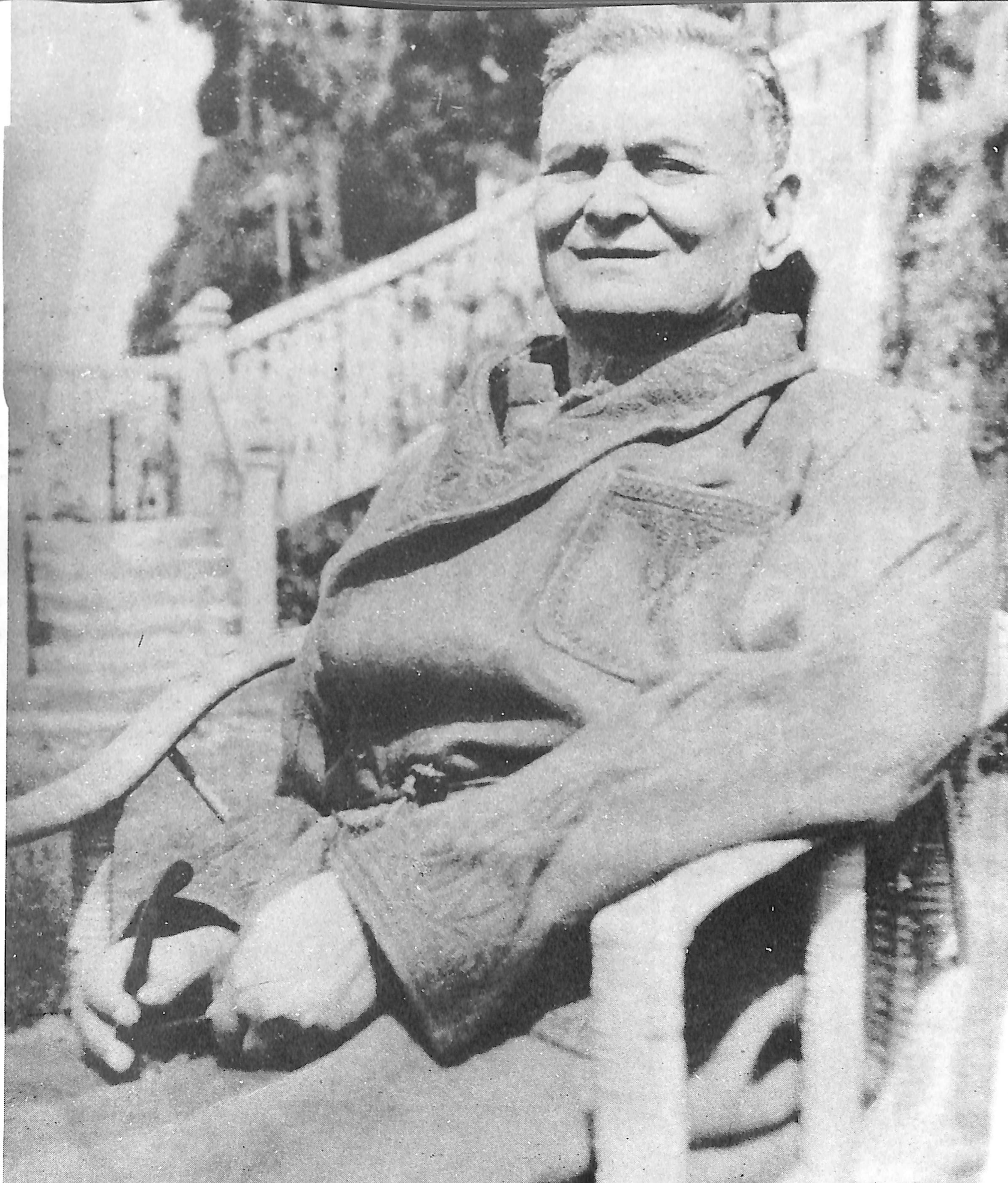
## जीवन-यात्रा : 6



'मध्य एशिया का इतिहास' के लिए जवाहरलाल नेहरू से साहित्य अकादमी पुरस्कार ग्रहण करते हुए   राहुल जी (1958)



'हर्न-क्लिफ'–मसूरी का घर



राहुल सांकृत्यायन (दार्जिलिंग के अपने घर में : मार्च 1963)



राहुल जी अपने परिवार–कमला सांकृत्यायन, जया आर जता क साथ (1961)

# मेरी जीवन-यात्रा
# 5

'बेड़े की तरह पार उतरने के लिए मैंने विचारों को स्वीकार किया, न कि सिर पर उठाये-उठाये फिरने के लिए।'

# दो शब्द

स्वर्गीय महापण्डित राहुलजी की बहुचर्चित 'मेरी जीवन-यात्रा' का यह शेष भाग है। 'मेरी जीवन-यात्रा' के पूर्व प्रकाशित भागों को पढ़नेवाले राहुलजी के पाठक शेष अंश के लिए भी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु लेखक की लेखनी से वर्षों पहले लिखे जाने के बाद भी ये भाग किन्हीं कारणों से अप्रकाशित रहे। लेखक ने अपने जीवन-काल में इसे प्रकाशित करवाने की ओर उतनी तत्परता भी नहीं दिखलाई, क्योंकि वे अपने जीवन-काल में इसे प्रकाशित देखने के बहुत इच्छुक नहीं थे।

राहुलजी के देहावसान के बाद हिन्दी प्रेमियों तथा राहुल-साहित्य के पाठकों ने जीवनी के शेष भागों के लिए बहुत उत्कण्ठा व्यक्त की। अब यह आपके हाथों में आ रहा है। पाठक इसकी नरम और गरम दोनों प्रकार की शैली का रसास्वादन करेंगे जो राहुलजी की चुस्त लेखनी की विशेषता रही है।

पाण्डुलिपि को आद्योपांत पढ़कर इसके प्रकाशन को सम्भव बनाने के लिए हम राहुलजी के अनन्य मित्र श्रद्धेय भदन्त आनंद कौसल्यायनजी के कृतज्ञ हैं।

**कमला सांकृत्यायन**

राहुल निवास
21, कचहरी रोड,
दार्जिलिंग

# 1
# नई साहित्य-योजना

यह वर्ष-गणना भी कैसी है ? एक जाड़े को दो सनों में, एक रात को दो तारीखों में रखा गया है। अब 1950 के अन्तिम भाग के जाड़े को पूरा करके 1951 के आदिम जाड़े में हम थे। नववर्ष की हमारे यहाँ कोई महिमा नहीं है। हमारा नववर्ष बल्कि अधिक वैज्ञानिक है, जो जाड़े को बिताकर वसंत से आरम्भ होता है। अमृतसर में जो खरोंच लगी थी, वह अभी अच्छे होने का नाम नहीं लेती थी। सिर्फ इन्सुलिन से काम नहीं चल रहा था, इसलिए आज (1 जनवरी) तीन-तीन घंटे के बाद चार बार पेनिसिलिन ली। यह तो चल ही रहा था, लेकिन उसके कारण क्या जीवन का काम रुक सकता था ? दक्षिणी कवियों पर लिखते-लिखते 'दाक्खिनी काव्यधारा' लिखी। 1951 में ही उसे खतम कर चुका था, लेकिन प्रकाशक प्रकाश में आने दें तब ना। दक्खिनी भाषा की कविताओं को पढ़ते-पढ़ते यह साफ होने लगा था कि दक्खिनी भाषा-साहित्य की रचना भारतीकरण के लिए नहीं, बल्कि इस्लामीकरण या अरबी ढाँचे में ढालने के लिए हुई। बीजापुर और गोलकुण्डा में पहिले फारसी साहित्यकारों का ही बोलबाला रहा, फारसी मातृ-भाषावाले कवि बाजी मार ले जाते थे। मुल्की लोग अपने जीवन के एक दर्जन से अधिक वर्ष लगाकर भी फारसी को पढ़ने के बाद उस पर अधिकार नहीं पाते थे। इस पर उन्होंने पराई भाषा छोड़ अपनी भाषा में लिखना शुरू किया। साहित्य ऐसे लोगों के लिए था, जो फारसी से परिचित थे। स्वयं बोलचाल की भाषा में भी पिछली दो-तीन शताब्दियों में कितने ही अरबी-फारसी के शब्द आ गये, जैसे हमारी भाषाओं में अंग्रेजों के समय अंग्रेजी के शब्द। इसे पहिले हिन्दी या हिन्दवी कहा जाता था। बोल-चाल की भाषा थी, इसका यह अर्थ नहीं, कि दक्खिन में यह बहुजनों की भाषा थी। गोलकुण्डा इलाके में तेलुगु बहुजन-भाषा थी, और बीजापुर में मराठी। दिल्ली की सल्तनत के छिन्न-भिन्न होने पर दक्षिण में पहिले बहमनी और उसके बाद उसकी उत्तराधिकारिणी गोलकुण्डा, बीजापुर, अहमदनगर आदि की रियासतें कायम हुईं। दिल्ली के अधीन रहने पर यहाँ दिल्ली से राज्यपाल जाते थे, बड़े-छोटे अफसर और पलटन भी उत्तरी भारत की ओर की थी। ये और इनकी सन्तानें हिन्दी बोलती थीं, जिनकी संख्या उस समय वहाँ की जनता में एक प्रतिशत भी नहीं रही होगी। पर हिन्दी बोलनेवाले ही वहाँ के सब कुछ थे। दरबारी भाषा फारसी रहने पर भी अधिक व्यवहार की भाषा हिन्दी ही थी। इसी को पीछे 'दक्खिनी' नाम दिया गया।

दक्षिणी कविता दरबारियों ने नहीं आरम्भ की, बल्कि धर्म-प्रचारक फकीर उसके आरम्भक थे। कुछ जनकवि भी रहे होंगे, लेकिन उनकी कृतियाँ सुरक्षित रखी गईं। भारत के मुसलमान शासक दिल्ली में पहुँचने से पहिले पंजाब में डेढ़ शताब्दियों तक राज कर चुके थे। वहाँ फारसी के साथ पंजाबी अलिखित शासन-भाषा रही। फिर दिल्ली में राजधानी आने पर दिल्ली की भाषा अर्थात् (कौरवी) पंजाबी से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखती थी। पंजाब से आनेवाले अपने साथ उसका असर लाए, जिसे उन्होंने कौरवी पर छोड़ा, और जो फिर दक्खिनी

के रूप में दक्षिण गई।

कमला देहरादून में परीक्षा देकर कलिम्पोंग गईं। महादेव भाई साथ गये। मसूरी में अब मैं और मातबरसिंह रह गये। 'दक्खिनी काव्यधारा' के काम में मैं लगा था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को बनाकर दी हुई योजना को अब कार्यरूप में परिणत करना था। महादेव भाई आ गये थे, लेकिन उनकी बाहुपीर ऐसी थी कि तुलसी बाबा के 'हनुमान बाहुक' के पाठ का भी कोई असर नहीं हो सकता था। नागार्जुनजी के पत्र से कभी मालूम होता था 'आयेंगे', कभी 'नहीं आयेंगे'। दूसरे परिचितों पर भी नजर दौड़ाई, लेकिन अभी किसी के आने का निश्चय नहीं था। वर्धा भी लिख दिया था कि जो मिलें, उन्हें भेजें।

'हर्न-क्लिफ' को लिये अभी छः महीने भी नहीं हुए थे कि मनसाराम कहने लगे, यह तो अपर्याप्त है। सचमुच ही तीन बड़े-बड़े हॉल, जिनमें से दो को ही शयनकक्ष बनाया जा सकता है, कैसे पर्याप्त हो सकते थे। आये-गये के लिए कोई जगह ही नहीं थी। कभी कोसता : धरती और आसमान का इतना अधिक अपव्यय किसी ने नहीं किया होगा। आसमान के अपव्यय से तो इसे ऐसा बना दिया गया है कि सर्दी हटाई ही नहीं जा सकती। इतनी ही जगह में आठ कमरे अच्छी तरह बन सकते थे, और इतनी ही छत और दीवार से दोमंजिला करके इसके सोलह कमरे हो सकते थे। किस बेवकूफ ने ऐसा बँगला बनवाया ? लेकिन बेवकूफ कहना गलत होगा, क्योंकि बनवानेवाले को यहाँ जाड़े नहीं बिताने थे। इसका मूल बँगला ऊपर का 'हैन हिल' था, जिसकी एक-एक अंगुल जमीन और आसमान को बहुत ठीक तौर से इस्तेमाल किया गया था। उसमें 8 नहान-कोष्टक, 8 ड्रेसिंग-रूम, उतने ही शयनकक्ष और दो बड़े-बड़े भोजन और बैठक के कमरे थे। सम्भव है, इसे मेहमानों के पान और नृत्य-घर के तौर पर इस्तेमाल किया जाता हो। कल्पना दौड़ती थी, यदि यह 30 हजार में बिक जाये, तो दस-पन्द्रह हजार और लगाकर 'हर्न हिल' को ले लें। उस समय 'हर्न हिल' के लिए 40-50 हजार की बात करना गुस्ताखी थी, लेकिन आज यदि उससे आधा भी कोई देने के लिए तैयार हो, तो मालिक खुशी-खुशी बेचने के लिए तैयार हो जाएँगे।

8 जनवरी को अभी भी कितनी ही जगहों पर बरफ थी। डेढ़-दो इंच बरफ पड़े तो छायादार जगहों में वह दस-पन्द्रह दिन तक गलने का नाम नहीं लेती। सर्दी जोर की जनवरी और आधी फरवरी तक ही यहाँ रहती है। लालबहादुर शास्त्री की कृपा से आज बन्दूक का लाइसेन्स आ गया। माचवेजी ने डा. केसरवानी की सलाह उद्धृत करते हुए लिखा कि मधुमेहवाले के लिए जाड़े में हिमालय अच्छा नहीं है, लेकिन मैंने तो हिमालय को बारहों महीने के लिए चुना था, और यदि कलम चलाना है, तो पुस्तकों का सुभीता यहाँ है, जिन्हें यहाँ से साथ नहीं ले जाया जा सकता।

9 जनवरी को सैर के लिए निकला। उस वक्त ऐसे निकलने का मतलब था, लण्ढौर किशनसिंह के घर तक जाना। यहाँ से चार्लविल होटल के फाटक तक बरफ मिलती गई। कहीं-कहीं गली हुई सवाई होटल के पास तक उसकी कटी-फटी सफेद चादर दिखाई पड़ी। पहिला हाल्ट डा. सत्यकेतु के यहाँ हुआ। आगे बढ़े, लकड़ी की सीमा के बाद फिर कहीं-कहीं थोड़ी बरफ मिली। एक जगह उस पर फिसलकर एक तरुण गिर पड़ा। जाड़े में बरफवाले शहरों के लिए यह आम बात है, इसीलिए देखनेवाले ज्यादा हँसते नहीं।

सभाओं और सम्मेलनों के लिए निमंत्रण देनेवाले क्या जानते हैं कि मसूरी छोड़ने में क्या-क्या मुसीबतें हैं ? गोरखपुर, देवरिया, आगरा, इलाहाबाद, रीवाँ से निमंत्रण आए हुए थे, न आने के लिए क्षमा-प्रार्थना भेजनी पड़ी। 12 जनवरी तक फ्लश काम करने लगा था, और सफाई के इस आधुनिकतम तरीके और हाथ-मुँह धोने की बेसिन से घर का मूल्य बढ़ा मालूम होता था। बादल अधिक थे, जिसके कारण सर्दी बढ़ी हुई थी। कमरे के भीतर अग्नि के स्थान पर आग जलाने से धुआँ चिमनी से बाहर न जा कमरे में फैल जाता था। बिजली की एक अँगीठी मँगाई, लेकिन एक तो उसकी आँच बिल्कुल एक फुट ही तक जाती थी, और दूसरे उस पर खर्च भी ज्यादा पड़ता था। 16 जनवरी को सबेरे बादल से घिरा आसमान था, दिन-भर वर्षा होती रही। वर्षा और हवा तापमान को गिराने का काम करते हैं। जब तापमान 33 डिग्री से नीचे चला जाता है, तो जलवर्षा हिमवर्षा में परिणत हो जाती है। रात को ऐसा ही हुआ। दिन-भर आग जलाकर हम घर के भीतर बैठे गोवासी

के 'सैफुलमूलक' और 'तूतीनामा' को पढ़ते, उनका संक्षेप करते रहे। गोवासी तुलसीदास का तरुण समसामयिक था, और शाहजहाँ के समय तक जीता रहा।

17 के सवेरे काफी बरफ दिखलाई पड़ रही थी, लेकिन जान पड़ता है रात में ही तापमान कुछ ऊपर उठ गया, इसलिए वह कहीं-कहीं कट-छँट गई थी। बरफ देखने का आनन्द तब होता है, जब सारी भूमि-वृक्षों की डालियाँ ही नहीं, उनके एक-एक पत्ते और घर के हाते की काँटेदार जालियों का एक-एक तार रुपहले बरफ से मढ़ जाएँ। आज वह आनन्द नहीं मिला। 19 की रात को बरफ ने कुछ मन से काम किया। सबेरे चारों ओर वही थी। इस जाड़े की यह चौथी और सबसे बड़ी हिमवर्षा थी—दो इंच मोटी रही होगी। सारे वृक्ष-वनस्पति बरफ की रूई से ढँके-से दीख पड़ते थे। शाखाओं में हिमतूल लिपटा था, जो सामने के हिमताल के पत्तों और देवदार की शाखाओं में बहुत मनोहर दीख रहा था। दिन में आकाश निर्मल था। सूर्य अपनी किरणों द्वारा हिमप्रहार करने लगा। बहुत-सी बरफ दिन-भर में गल गई, शाम को फिर वर्षा हो रही थी, लेकिन तापमान के अनुकूल न होने से वह हिम नहीं, बल्कि हिमशर्करा (बजरी) के रूप में गिर रही थी।

फ्लश आदि का 2530 रुपये का बिल आया। यदि पहिले मालूम होता कि डेढ़ हजार से अधिक आएगा, तो न करते। पर अब तो करा चुके थे। सब लेखा-जोखा करने पर 'हर्न-क्लिफ' पर 20 हजार लग चुके।

आज ही प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यापक ने कौशाम्बी की खुदाई के बारे में कुछ लिखा, और साथ में ब्राह्मी शिलालेख का फोटो भी भेजा, जो उस जगह मिला था, जहाँ पर घोषिताराम था। पालि-परम्परा हमारे इतिहास पर कितना सच्चा प्रकाश डालती है, इसका यह प्रमाण था। पालि त्रिपिटक पढ़ते, उस समय के इतिहास, भूगोल और सामाजिक तत्व की ओर मेरा ध्यान विशेष तौर से आकृष्ट हुआ था। मैंने पुस्तकों पर निशान बनाकर संकेत लगाये, और निशानों को कापियों में जमा भी किया। लेकिन देश-दुनिया की घुमक्कड़ी और दूसरे भी कितने ही काम कैसे समय दे सकते थे, कि मैं इन पर लिखता। 'बुद्धचर्या' में इनका कुछ उपयोग जरूर किया, कौशाम्बी तथा जेतवन के बारे में स्वतन्त्र लेख भी लिखे। सोचा "उत्पत्स्यते तु मम कोऽपि समानधर्मा" और उसके लिए बहुत इंतिजार करने की जरूरत नहीं पड़ी। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने यह काम किया।

तीन-चार दिन से प्रतीक्षा हो रही थी, आखिर 21 जनवरी के अँधेरा होते कमलाजी और महादेव भाई आए। कल लखनऊ में उन्हें गाड़ी नहीं मिली थी। महादेव भाई कलिम्पोंग नहीं गए, वह सिलीगुड़ी ही के आसपास रह गए। कम्युनिस्टों को पहाड़ की पुलिस देखना पसन्द नहीं करती। मालूम हुआ कलिम्पोंग में तिब्बत के लोग भर गए हैं, कोई बँगला खाली नहीं है। ल्हासा में कम्युनिस्ट पहुँच गए हैं, और सरकार उनकी है। पिछले 32-34 वर्षों से कम्युनिस्टों के खिलाफ तिब्बत में धुआँधार प्रचार हो रहा था, बतलाया जाता था : कम्युनिस्ट राक्षस हैं, वह धर्म और मानवता के शत्रु हैं। इसलिए घबराहट के मारे यदि तिब्बत के कुछ धनी लोग भागकर कलिम्पोंग आ जाएँ, तो क्या आश्चर्य ? पर, वहाँ के सबसे बड़े भूमिपति सुरखंग-परिवार के न आने पर यह निश्चय ही था कि यह भय और आतंक बहुत दिनों तक नहीं रहेगा।

अभी तक घर सूना-सूना मालूम होता था, अब वह भरा-भरा दीखने लगा। कमला ने घर का इन्तिजाम सँभाल लिया।

23 जनवरी को नेताजी का जन्मदिवस था। उनके भक्तों ने हालमेन होटल में एक छोटी-सी उत्सव-सभा बुलाई। सभापति मुझे बनना पड़ा। 8-10 वक्ताओं ने श्रद्धांजलि अर्पित की, लेकिन उनमें से कितनों ने इसके ही बहाने कांग्रेसी शासन पर अपने दिल का बुखार उतारा। वर्तमान अच्छा भी हो तो भी वह सन्तोष नहीं देता, और जब वह बहुत-सी चिन्ताओं का वाहक हो, तो असन्तोष अधिक बढ़ जाए, यह स्वाभाविक है।

महादेव भाई साहित्य-योजना में काम करने के लिए तैयार हो गए। 25 जनवरी को श्री हरिश्चन्द्र पुष्प भी सत्ययुग का रेमिंगटन का टाइप-राइटर लिये पहुँच गए। उसी से उन्हें काम करना था, और उस पर उनका हाथ भी बैठा हुआ था।

आदमी देखने के लिए बहुत वर्षों तक रहे, तो न विश्वास करने लायक बातें सामने आती हैं। मैंने अपने सामने नंगे खेलते बच्चों को सारे सिर से सफेद देखा। 20 साल पहिले मैंने महादेव भाई और उनके दो हमजोलियों बैजनाथसिंह विनोद और धावले को कलकत्ते में देखा था, उस समय बिल्कुल कच्चे तरुण थे। महादेव भाई अब शरीर और मन से भी बुढ़ापे की तरफ पैर बढ़ाते दीख पड़ रहे हैं। मानसिक बुढ़ापा तब होता है, जब आदमी तकिया-कलाम इस्तेमाल करने लगता है, बात करने में सिर्फ अपनी धुन का ख्याल करता हुआ श्रोता के मन की पर्वाह नहीं करता।

आदमी की मानसिक स्थिति अच्छी-बुरी या उभय भिन्न होती है, जिसमें बाहरी सम्पर्क मुख्य कारण है। यह सम्पर्क चाहे आँखों से हो, कानों से या लिखे हुए पत्रों से हो। समाज तो ऐसा बना हुआ है कि जिसमें कोई निश्चिन्त नहीं रह सकता। 31 जनवरी को बार्लोगंज से एक तरल तरुण आए। इंग्लैण्ड में 14-15 वर्ष तक रहे। पढ़कर वहीं के स्कूल में अध्यापक हो गए। अच्छी तरह गुजर रही थी। वहाँ का जीवन-स्तर (स्टेण्डर्ड) तो ऊँचा है ही, यदि काम मिले तो छः-सात सौ रुपये से क़म का क्या होगा ? देश को स्वतन्त्र हुआ सुनकर दौड़ पड़े। यहाँ आने पर नून-तेल-लकड़ी की भीषण समस्या सामने आई। पत्नी भी सुशिक्षिता थीं। सोचा अध्यापन का तजर्बा है, इसलिए दोनों व्यक्ति छोटे बच्चों के लिए आश्रम स्कूल खोल दें। बार्लोगंज में 15 सौ रुपये वार्षिक पर बहुत बड़ा बँगला मिल गया। बाजार से दूर जाने के लिए तैयार रहें, तो मसूरी में बँगले मिट्टी के भाव मिल रहे हैं। एक महल जैसे बँगले के बारे में उसके मालिक कह रहे थे : यदि कोई संस्था उसका इस्तेमाल करना चाहे, तो मैं बिना किराये उसे दे सकता हूँ।, खैर, बार्लोगंज में उनका स्कूल खुला। कुल 28 बच्चे थे। इतने से खर्च क्या निकलता ? घर की पूँजी भी उसी में चली गई। सर्दी थी, दरवाजा बन्द करके आग जलाकर उसके पास बैठे हम दोनों बात कर रहे थे। उनकी मैं क्या सहायता कर सकता था ? लेकिन, किसी के कष्ट को सहानुभूति के साथ सुनना भी एक बड़ी सहायता है।

31 जनवरी को श्री महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य भी आ गए। बेचारे राजस्थान के रहनेवाले थे। जाड़े काटे थे बम्बई या मैदान के दूसरे शहरों में। पं. सुखलालजी के साथ वर्षों रहे थे, और उसी समय से मेरे परिचित थे। अब यहाँ के जाड़ों में तब आए, जबकि बरफ पड़ रही थी। 1 फरवरी को भी वह पड़ती रही, 2 फरवरी को वह डेढ़-दो इंच धरती को ढाँके हुई थी। यह इस साल की पाँचवीं हिमवर्षा थी। जब तक अत्यधिक सर्दी या गर्मी का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया जाए, तब तक उसका कोई ज्ञान नहीं हो सकता। महेन्द्रजी और हरिश्चन्द्रजी को सबसे पहिले गरम कपड़ों के बनवाने की फिकर पड़ी। 7 फरवरी को कम्पनी बाग की ओर टहलने गए। कम्पनी बाग तक बरफ खतम नहीं हुई थी। वहाँ से डाँडा पार कर 'मानव-भारती' गए। यह भाग देहरादून की ओर पड़ता है, जहाँ बरफ ज्यादा समय तक नहीं टिकती। डा. दुर्गाप्रसाद पाण्डे ने लड़के-लड़कियों की इस संस्था को कई वर्ष पहिले देहरादून में स्थापित किया था। वहाँ ठहरकर बाहर कई सौ एकड़ ज़ंगल की जमीन भी एक पहाड़ी पर ले ली थी। जाने के लिए सड़क भी बनवाई। पर, मानव-भारती को 'विश्व-भारती' का रूप देने के लिए लाखों की इमारत की जरूरत थी, और प्रतिवर्ष लाखों का खर्च भी चाहिए था। सपना देखनेवाले इसी तरह देखते हैं, उनमें से किसी का स्वप्न चरितार्थ होता है, किसी का सपना ही भर रह जाता है। डा. पाण्डे पैदा हुए आरा जिले में, विदेश में शिक्षा प्राप्त कर वहाँ से प्रेरणा ली, और यहाँ पर काम आरम्भ किया। जब अंग्रेज भारत छोड़कर जाने लगे और सिर्फ उनके लिए बनी शिक्षण-संस्थाएँ उठने लगीं, तो उनकी खाली इमारतों का सस्ते किराये पर मिलना बिल्कुल मामूली बात थी। पादरियों के स्कूल की यह विशाल इमारत उन्हें सस्ते किराये में मिल गई, और पाण्डेजी ने अपनी संस्था को देहरादून से मसूरी में स्थानान्तरित कर दिया। इस समय उसमें 80-85 छात्र-छात्राएँ थीं, एफ. ए. तक की पढ़ाई थी। शिक्षा का तल ऊँचा रखने के लिए उसी परिमाण और गुणवाले अध्यापक-अध्यापिकाओं को रखा था। खर्च के मारे परेशान थे। अगले साल छात्रों की संख्या और कम हो गई, लेकिन पाण्डेजी धूनी रमा चुके थे, लगे रहे। अब कुछ अनुकूल परिस्थिति पैदा हुई है, लेकिन चिन्ता दूर हो यह बात नहीं। वस्तुतः ऐसी संस्थाएँ उच्च-मध्य-वर्ग के बल पर चलती हैं, जिनकी हमारे यहाँ कमी है, और जो हैं भी वह यूरोपियन स्कूलों में अपने लड़कों को भेजना चाहते हैं। उन्हें भारतीय

संस्कृति से अधिक यूरोपीय संस्कृति पसन्द है, और भारतीय भाषा से अधिक अंग्रेजी भाषा, क्योंकि वह केन्द्रीय सरकार की नौकरियों में अपने लड़कों को भेजना चाहते हैं।

मसूरी में आठ मील लम्बे और दो-ढाई मील चौड़े क्षेत्र में प्रति रात्रि दीपमाला जलती दीख पड़ती है। जंगलों में भी खम्भों पर बिजली के दीपक सारी रात जलते रहते हैं। यह किसलिए ? क्या इनमें बिजली खर्च नहीं होती ? उस बिजली का खर्च क्या नागरिकों को देना नहीं पड़ता ? आधी रात के बाद इन जंगलों में कौन जाता-आता है, जो वहाँ अखण्ड दीवाली जलती है। जाड़ों में जब यहाँ कोई आदमी का पूत नहीं रह जाता, उस समय किसके लिए यह दीपावली ? सोचता था 12 बजे रात के बाद यदि बिजली बन्द कर दी जाती, तो हजारों की बचत होती। जाड़ों में यदि कितनी ही लाइनों को बन्द कर दिया जाता, तो यह पैसा बचता। उस समय तो म्युनिसिपैलिटी का इन्तिजाम जन-निर्वाचित लोगों के हाथ में नहीं था, यह बहाना था। लेकिन, जन-निर्वाचित नगरपालिका के आने पर कितनी ही बार यह बात उनके सामने रखी गई, लेकिन किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। उन्हें खर्च बढ़ाना पसन्द है, कम करना नहीं!

मसूरी की स्थिति 1951 के आरम्भ में जो थी, आज फरवरी 1956 में वह और भी बुरी हो गई है। उस वक्त की स्थिति भी यहाँ के लोगों के लिए चिन्ताजनक थी। ग्रीष्म की इन विलासपुरियों की बुनियाद मध्यम वर्ग की समृद्धि और सम्पन्नता पर निर्भर है। उनकी आर्थिक स्थिति की यह थर्मामीटर है। जब इनकी हालत बुरी हो, तो समझना चाहिए, कि मध्यम वर्ग बुरी स्थिति में है, और जब इनमें चहल-पहल हो, तो समझना चाहिए, कि मध्यम वर्ग की स्थिति बेहतर है। वर्षों से आदमी का मुँह न देखे अच्छे-अच्छे बँगलों, उनके टिनों और फर्नीचर को टूटते देखकर ख्याल आता था, कि क्या कभी इनके दिन लौटेंगे। पीछे अक्सर मसूरीवाले सवाल करते थे, तो मुझे यही जवाब सूझता था, कि तभी जब भारत समाजवादी होगा।

हमारे बँगले से दो ही बँगलों को पार करने पर बिड़ला-निवास है। राजसी प्रासाद है। किसी अंग्रेज का 'हर्मिटेज' के नाम से विशाल विलास-भवन था, उसी का यह नया नामकरण है। बँगला मिट्टी के मोल भले ही मिला हो, लेकिन उसको फिर सँवारने और सुधारने में डेढ़ लाख रुपये लगे। ठेकेदार साहब का 47 हजार अभी बाकी है, जिसके लिए वह रो रहे थे। बड़ों का कर्जा देना या कर्जे पर काम करना भी कबाहट मोल लेना है।

हमारी साहित्य-योजना में काम करनेवाले सभी लोग नहीं आए थे। लेकिन, दिक्कतें सामने आने लगीं। कुछ लोग समझते थे कि हम वेतन के लिए काम कर रहे हैं, काम के लिए नहीं। हमारा यह ख्याल था कि वेतन तो चाहिए, पर काम का ख्याल होना चाहिए। अभी काम करते महीने भी नहीं हुए कि वेतन बढ़ाने का सवाल उठा। यह भी कि हम तो दो घंटे काम किया करते थे। सोचने लगा : क्या मुसीबत पाली ? भला पाँच घंटे भी दिन में काम नहीं हो, तो क्या बनेगा ? उनकी दृष्टि से देखें, तो कुछ और बातें भी सोचने की हैं। यदि शहर में रहते तो एक-दो ट्यूशन मिल जाते, उससे कुछ आमदनी बढ़ जाती, लेकिन यहाँ जंगल में उसकी क्या आशा हो सकती थी ? यहाँ मनोविनोद के भी साधन नहीं थे। जाड़ों में सनेमा बन्द रहते, और गर्मियों में भी दो-तीन मील उनके लिए जाना पड़ता। मिलने-जुलनेवाले अर्थात् बात करनेवाले भी मुश्किल ही से कभी आते, और जाड़ों में तो वह भी नहीं। कुछ समय बाद काम करने के लिए और बन्धु भी आए—विनोदजी, कुमठेकर और मेरे मित्र स्वामी सत्यस्वरूपजी। सबसे शिकायत नहीं हो सकती थी, लेकिन एक गाड़ी में जुते सभी घोड़े जब एक तरह ताकत लगाते हैं, तभी गाड़ी ठीक से चलती है। अगर उनमें एक भी हड़ताल करने के लिए तैयार हो, तो फिर काम आगे नहीं बढ़ता। हमारे एक सहकारी तो काम की बहुतायत का रोना डा. सत्यकेतु के पास भी रोते थे। कहते थे : "वर्धा में तो मैं सिर्फ दो घंटा काम करता और 22 घंटा आराम करता था। वर्धा में हमें छुट्टियाँ भी मिलती थीं, यहाँ तो छुट्टी भी नहीं है। हम तो भारी शोषक के हाथ में पड़ गए।" मुझे कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि यह उपनाम मुझे मिलेगा। नागार्जुनजी भी 15 मार्च तक चले आए। जिनका पहिले ही से हमारा सम्बन्ध था, वह तो उसी तरह काम करने को तैयार थे; पर सवाल था टोली के काम का।

अभी तक पहिले लिखकर टाइप करने के लिए मैं पुस्तकें या लेख देता था। 15 फरवरी को टाइपराइटर पर बोलकर लिखवाया। सोचने लगा : हाथ से लिखने की जहमत क्यों उठाई जाए, जबकि उस समय को बचाया जा सकता है, ऐसे तीन या चार कापियाँ भी कार्बन से निकाली जा सकती हैं। लेकिन, जरूरत उतनी नहीं पड़ी, दो कापियाँ काफी थीं। लिखकर टाइप किये या बोलकर टाइप किये दोनों को ही एक बार देखना जरूरी था, इसलिए गलती होने की फिक्र करने की जरूरत नहीं थी। कितने ही दिनों तक सोचता था, वायर-रेकार्डर में बोलकर रेकार्ड करवा लूँ। जब मालूम हुआ, कि उसको उतारते वक्त धीमी गति से नहीं चलाया जा सकता, तो शार्टहैन्ड (द्रुतलेखन) में लिखना और फिर टाइप करना बेकार का झगड़ा मालूम हुआ, और वह ख्याल छोड़ देना पड़ा। इस नये तजर्बे ने एक दिशा खोल दी, जिससे मेरे काम की गति ज्यादा बढ़ गई, इसमें सन्देह नहीं।

साहित्य-योजना में काम करने के लिए आनेवाले बन्धुओं का गुजारा इस बँगले में नहीं हो सकता था, इसलिए आसपास के किसी दूसरे बँगले को लेना जरूरी था। 'हर्न लॉज' की बातचीत की, तो बूढ़े लेडली पुराने युग के किराए से जरा भी कम करने के लिए तैयार नहीं थे। पुत्र जान लेडली चाहते थे, लेकिन बाप के विरुद्ध कैसे जाते ? अन्त में 'हर्न हिल' की तरफ ध्यान गया। वह कई सालों से बेमरम्मत था, और फर्नीचर भी पूरा होगा, इसमें सन्देह था। इन्हीं कारणों से वह उतने किराए में मिला, जितना देने के लिए हम तैयार थे। मोल-भाव करने के बाद 15 सौ रुपये वार्षिक पर 'हर्न हिल' मिला। सरकारी रेट के अनुसार इसका 35 सौ रुपया किराया था। मार्च के अन्त तक हमारे साथी 'हर्न-क्लिफ' में ही किसी तरह गुजारा करते रहे।

देहरादून दहरा और दून दो शब्दों से मिलकर बना है। दून दो पहाड़ों के बीच की द्रोणी, दोना-सी भूमि को कहते हैं। यह बहुत पुराना शब्द है, यह इसी से मालूम है कि रूसी में भी यही शब्द जरा-से उच्चारण-भेद से दोलिना (द्रोणा) कहा जाता है। हिमालय और सिवालिक के बीच जहाँ अन्तर है, वहाँ ऐसी दूनें कितनी ही मिलती हैं। इसी दून के पड़ोस में जमुना पार किया दून है, और आगे भी कई दून हैं। दून के नाम से यह भूमि बहुत पहिले से प्रसिद्ध थी। खास नाम क्या था, इसका पता नहीं। फिर औरंगजेब के शासनकाल में गुरु तेगबहादुर के चचा गुरु रामराय गद्दी से वंचित होकर औरंगजेब की सिफारिश के साथ गढ़वाल (श्रीनगर) के राजा की इस भूमि में आए। यहाँ देरा (डेरा) डाला और उस बस्ती का नाम देरा पड़ गया। आज भी पुराने लोग देहरादून नहीं, बल्कि नगर का नाम सिर्फ देरा कहते हैं। गुरु रामराय को गढ़वाल के राजा ने कुछ गाँव दिए, जिनका उस समय कोई अधिक मूल्य नहीं था। गुरु रामराय के देरे को दरबार कहते थे। आज भी उसका वह नाम प्रचलित है। गुरु नानक की परम्परा उनके पुत्र श्रीचन्द और उनके शिष्य के द्वारा दो धाराओं में चली। श्रीचन्द साधु और घुमक्कड़ थे। उनके शिष्य उदासी संत के नाम से आज प्रसिद्ध हैं। गुरु नानक के गृहस्थ शिष्य की परम्परा में आगे के नौ गुरु हुए, जो सिक्ख के नाम से मशहूर हैं। गुरु रामराय ने अपना उत्तराधिकारी एक उदासी साधु को बनाया, इसलिए देहरादून का गुरु रामराय का दरबार उदासी मठ बन गया। मार्च (चैत) के महीने में गुरु रामराय के दरबार में झण्डे का मेला होता है। 50-60 हाथ का एक विशाल लट्ठा झण्डे का दण्ड है। इस पर उस दिन एक नया झण्डा ही नहीं चढ़ाया जाता, बल्कि सारे लट्ठे को कीमती रेशमी कपड़ों से मँढ़ दिया जाता है। यह झण्डा हर साल नया लगाया जाता है, इसी समय बड़ा मेला लगता है। तीन-चार दिन तक खूब चहल-पहल रहती है। 27 मार्च को महादेव भाई और कमला उसे देखने गये। मुझे ऐसे मेलों और तमाशों के देखने का पहिले ही से शौक कम है, या उन्हीं को देखने का शौक रखता हूँ, जिनके बारे में कुछ लिखना होता है। मैं भी इस मौके पर एक बार वहाँ गया।

मसूरी में नौकर की भी बड़ी तकलीफ है। सीजन के वक्त सारे पहाड़ से लोग काम ढूँढ़ने के लिए चले आते हैं, लेकिन सीजन के बाद उनका मिलना मुश्किल है। परम्परा चली आई है, जिसके अनुसार देहरादून से यहाँ का वेतन दूना होता है। अंग्रेजों ने यह परम्परा कायम की, क्योंकि वेतन देते वक्त इंग्लैण्ड का ख्याल उनके दिमाग में रहता था। अब परम्परा बँध गई, तो वह टूटे कैसे ? हमने मातबरसिंह को भोजन और 35 रुपये पर नौकर रखा था, लेकिन वह उतने से संतुष्ट नहीं था। और 40 रुपये देने की स्थिति में हम नहीं

थे। कितनी ही बार ऐसी नौबत आ जाती थी, कि हमें नौकर छोड़कर अपने ही हाथों सारा काम करने के बारे में सोचना पड़ता था। वेतन न बढ़ाने पर मातबरसिंह से हाथ धोना पड़ा। सब मिलाकर उसका काम अधिक संतोषजनक था। उसके बाद तो कइयों के साथ तजर्बा करना पड़ा।

**भूत**–साग-सब्जी पैदा करने के लिए मैं बड़ा उत्सुक था, जिसमें सबसे बड़ी बाधा दोनों जाति के बन्दर थे। इस समय ख्याल आया कि यदि एक कुत्ता रख लें, तो वह बन्दरों को भगाया करेगा। किशनसिंह से कहा। एक बार वह एक भोटिया कुत्ते के बच्चे को दिलवाने लगे। लेने में डर तो लग रहा था, क्योंकि भोटिया कुत्ते अपने मालिक को छोड़कर कसी को काटे बिना नहीं छोड़ते। उनके स्वभाव में जंगलीपन ज्यादा होता है, शरीर पर रीछ की तरह बड़े-बड़े बाल होते हैं, जिनको साफ रखना भी आसान काम नहीं है। मैं एक बच्चे को लेने के लिए कुछ-कुछ तैयार भी हो गया, लेकिन निश्चय करने के पहिले वह हाथ से चला गया। फिर किशनसिंह ने अपने मित्र ईसाई-कसाई की अलसेसियन कुतिया के बच्चों को ठीक किया। 2 अप्रेल को मैं गया, तो उन्होंने दोनों बच्चों को सामने कर दिया। दोनों एक ही तरह हट्टे-कट्टे थे। मैंने एक को लेकर अपने थैले में डाल लिया। चार हफ्ते का बच्चा बड़ा ही कितना होता है। वह मार्च में किसी समय पैदा हुआ होगा। झोले में लिये डा. सत्यकेतु के यहाँ आया, वहाँ जब पिल्ले की बात हुई, तो उन्होंने पूछा, ले आए या नहीं ? वह इतना छोटा था, झोले में दिखाई नहीं पड़ता था। घर पर लाए तो कमला खाँव-खाँव करके दौड़ीं। क्यों लाये इसे, हम यहाँ नहीं रहने देंगे। अब मैं किस मुँह से उसे लौटाने जाता ? किशनसिंह के मित्र ने बिना पैसे के दिया था, और बड़े अच्छे माँ-बाप और नसल का बच्चा था, इसका लोभ भी था। मैंने कहा, "आओ हम सुलह कर लें। मैं इसे लाया हूँ। जो अपराध हुआ सो हुआ। अब तुम इसका नाम रख दो, यह तुम्हारा काम है।" यह मैं कह दूँ, कि कमला ने अलसेसियन कुत्ते के बारे में एक बार अपनी सम्मति प्रकट कर दी थी। गुस्से में ही उन्होंने कहा, 'भूत' नाम रहे। बस, उसका नाम भूत ही पड़ गया। कुछ महीनों में वह समझने लगा, कि मेरा यही नाम है। तब तक उसे कमला की दया-दृष्टि भी मिल गई। उन्होंने नाम बदलने की कोशिश भी की, लेकिन अब भूत किसी दूसरे नाम को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। किसी शिष्ट मित्र को जब मैं नाम पर आपत्ति करने की सम्भावना देखता, तो कह देता–"असली नाम तो भूतनाथ है, इसी का संक्षेप भूत है।" भूत पहिले तो बड़ा तंग करता था, क्योंकि जहाँ नहीं चाहता, वहीं पेशाब-पाखाना कर देता। उसके लिए लकड़ी का बक्स नहाने के कमरे में रख दिया। धीरे-धीरे वह रात को उसमें रहने लगा। फिर यह भी समझ गया कि पाखाना जहाँ-तहाँ नहीं करना चाहिए, और उसने बाथरूम को ही अपना भी पाखाना समझ लिया। 'किलडर' के पड़ोसी कुत्तों के प्रेमी थे। उन्होंने भी भूत को देखकर पसन्द किया और उसे सिखलाने-पढ़ाने के समय की बात भी बतलाई। उन्होंने कहा था, नौ महीने के पहिले सिखाई-पढ़ाई हो जानी चाहिए। मुझे सुनने में आया, नौ महीने बाद। इसलिए भूतनाथ अपनी शिक्षा के लिए प्रकृति पर ही निर्भर रह सके। अलसेसियन कुत्ते पचीसों तरह की बातें करना सीख जाते हैं, उसे यह सीख नहीं पाए। हमने पहिले कुछ समय तक दूध पर रक्खा। फिर उसके साथ रोटी भी खिलाने लगे, फिर रोटी-दाल देने लगे। खाँसी देखकर एक मित्र ने कहा, कि कुत्ते को नमक नहीं खिलाना चाहिए। फिर अलोनी दाल मिलने लगी। अलोनी दाल और रोटी अब भी भूत का प्रधान भोजन है। हफ्ते में दो बार गोश्त मिल जाता है। दूसरे अलसेसियन पालनेवाले अचरज करते हैं, वह रोज दोनों समय गोश्त देते हैं।

बन्दरों की समस्या भूत ने हल नहीं की। क्योंकि बन्दर आने पर वह एक जमात के पीछे भौंकने के लिए दूर चले जाते हैं, तब तक दूसरी जमात आकर काम बना लेती। रात के वक्त वह घर के बाहर से रखवाली नहीं कर सकते, क्योंकि बाहर रात के स्वामी बघेरे होते हैं। अलसेसियन, विशेषकर हमारा भूत भेड़िये के बराबर है। दो अलसेसियन मिलकर बघेरे को भगा सकें, इसी ख्याल से एक सरदार साहब ने अपनी जोड़ी को बँगले के बाहर रख रखा था। बघेरा आया। दोनों झपटे। बघेरे ने एक को बुरी तरह से घायल किया, और दूसरे को मुँह में दबा चम्पत हो गया। बघेरा आखिर पंचानन है, उसके चारों पंजों के नख भी जबर्दस्त हथियार हैं, दाँत की दाढ़ों के लिए तो कहना ही क्या ? कुत्तों के पास दाढ़ें ही भर हैं, सो भी बाघ या बघेरे जितने

मजबूत नहीं। अँधेरा होने से पहिले ही चिन्ता हो जाती है कि भूत को मकान के भीतर किया जाए। दिन में मकान के बाहर, रात को मकान के भीतर भूत के खिलाफ आने की किसी की हिम्मत नहीं हो सकती। भूत ने एक-दो आदमियों को ही काटा है, और सिर्फ ऐसों ही को जिन्होंने कि भागने की कोशिश की। एक आदमी भागकर पेड़ पर चढ़ने की कोशिश करने लगा, लेकिन चढ़ नहीं पाया। भूत ने उसके गरम पतलून को फाड़ दिया, 25 रुपये दण्ड देने पड़े। इधर 1955 के जाड़ों में इस मोहल्ले में चोरियाँ हुई थीं, और ऐसा मौका हुआ कि कमला और नौकर ही बच्चों के साथ घर में रह गये थे। उस समय भूत ही था, जिसके कारण किसी चोर की इधर झाँकने की हिम्मत नहीं हुई। यह निश्चय ही था कि यदि कोई अजनबी रात को इधर पैर बढ़ाना चाहता, तो भूत उसे फाड़े बिना नहीं छोड़ता।

1 अप्रेल से राष्ट्रभाषावाले साथी 'हर्न हिल' में चले गए। खाना अलग बनाने के प्रबन्ध ने रसोइये की चिन्ता पैदा की। उस समय अभी मसूरी की हालत इतनी बिगड़ी नहीं थी, इसलिए इस मोहल्ले में भी लोगों ने खाने का होटल खोलने की हिम्मत की थी। 30 रुपये मासिक पर खाना मिलने लगा, और 11 अप्रेल से नागार्जुन, हरिश्चन्द्र और महेन्द्रजी वहाँ भोजन करने लगे।

किशनसिंह से हमारी ज्यादा आत्मीयता थी। चोट लगने से वह लँगड़े हो गये थे। उनके लिए चलना मुश्किल था। फिर उनके घर से हमारा घर चार मील पड़ता था, इसलिए इच्छा रहते हुए भी वह कभी ही कभी आ पाते थे। 8 अप्रेल को रविवार का दिन था, अब एक दिन बाजार बन्द रहता था, इसलिए इतवार को छुट्टी रहती थी। उस दिन अपनी पत्नी और लड़के के साथ मेरे निमन्त्रण पर वह आए। गोश्त और तिब्बती चाय भी अपने साथ लाये थे, भाप में पका गोश्त का समोसा (मोमो) बना। हम सभी उसके बड़े प्रेमी थे। साथ में मक्खन डालकर तिब्बती चाय भी पी। साढ़े 4 बजे तक उनका परिवार यहीं रहा, बातचीत और हँसी-खुशी में वह दिन बीता। उनसे यह मालूम हुआ, कि मसूरी से जितने भोटिया लोग अब के दिल्ली गए, उनके पीछे पुलिस पड़ी, और कहा—तुम पर्मिट (अनुज्ञा-पत्र) ले लो। उन्हें जबर्दस्ती फोटो के साथ पर्मिट दे भी दिया गया। इसका अर्थ यह था, कि किशनसिंह और उनके दूसरे साथी अब भारत के नागरिक नहीं हैं, वह तिब्बत (चीन) के नागरिक हैं और भारत सरकार ने उन पर कृपा करके कुछ समय रहने के लिए अनुमति दी है। इससे उनके भीतर घबराहट पैदा होनी ही चाहिए। मुझसे कहा। मैंने इसके सम्बन्ध में डा. केसकर को चिट्ठी लिखी। उस समय वह विदेश-विभाग के उपमंत्री थे। मैंने बतलाया, यदि तिब्बती चेहरे-मोहरे को देखकर आप उन्हें भारतीय नागरिक मानने के लिए नहीं तैयार हैं, तो आसाम से लद्दाख तक लाख से अधिक लोग ऐसे होंगे, जिन्हें भारतीय नागरिकता से खारिज करना होगा। मसूरी के ये लोग तीन-तीन चार-चार पीढ़ी से यहीं के निवासी हैं। कभी इनके माँ-बाप तिब्बत से आए होंगे, पर इनका जन्म-कर्म तो मसूरी में हुआ। किशनसिंह जैसे आदमी का तो तिब्बत से कोई सम्बन्ध ही नहीं, वह तो कनौर के रहनेवाले हैं। इस चिट्ठी का असर हुआ, और पीछे यहाँवालों की कठिनाइयाँ दूर हो गईं।

13 अप्रेल को पिछले तजर्बे के आधार पर मालूम हुआ कि मटर छोड़कर सभी साग-सब्जियों में हम असफल रहे। आगे समय पर बोई राई, टमाटर और एक-दो और साग अच्छे हुए।

कलकत्ता में जाने पर एक बार साहित्याचार्य पं. भगवानदत्त शास्त्री राकेश ने 'कामायनी' के अपने संस्कृत पद्यानुवाद के तीन छपे परिच्छेदों की एक प्रति दी थी। उसे पढ़ने पर मुझे नकद लाभ यह हुआ, मैंने कवि प्रसाद का लोहा माना। उन्हें आधुनिक हिन्दी का ही सबसे बड़ा कवि नहीं बल्कि अपने देश की महान् कवियों की पाँती में सम्मान के साथ बैठनेवाला स्वीकार किया। मैंने राकेशजी को लिखा कि सारी 'कामायनी' का अनुवाद कर डालो। वह एक-एक परिच्छेद का अनुवाद करके मेरे पास भेजते गये, और धीरे-धीरे सारा अनुवाद तैयार हो गया—इतना अच्छा अनुवाद जो मूल से किसी बात में भी कम सुन्दर नहीं था। मैंने सोचा, यदि यह पुस्तक छप जाये, तो भारत की और भाषाओं के विद्वान् समझेंगे कि आधुनिक हिन्दी में कितने उच्चकोटि की कविता हो रही है। असमिया, बंगला, उड़िया, तेलुगु, तामिल, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती सभी भाषाओं के उच्चकोटि के साहित्यकार और पारखी संस्कृत के ज्ञाता होते हैं। इसको देखकर आधुनिक हिन्दी साहित्य का

वे मूल्यांकन करेंगे। ऐसी पुस्तक के छपाने में हमारी संस्थाएँ जरूर आगे आएँगी, यह मुझे विश्वास है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से बातचीत की, उन्होंने स्वीकृति दे दी। पर उसके एकाध पृष्ठ 'राष्ट्रभारती' में छपकर रह गये। आनन्दजी ने ढिलाई की, नहीं तो वह प्रकाशित हो चुकी होती। साहित्य सम्मेलन ने मँगाया, लेकिन तब उसका प्रबन्ध आदाता (रिसीवर) के हाथ में चला गया था, इसलिए वहाँ भी कुछ नहीं हो सका। राकेशजी से भी ज्यादा मुझे छटपटाहट है कि वह पुस्तक अच्छे रूप में प्रकाशित होकर विद्वानों के सामने आ जाये। कभी-कभी राकेशजी अपनी पुरोहिती के पैसे को लगाकर छाप डालना चाहते हैं, लेकिन मैं कहता हूँ, पुस्तक की छपाई-सफाई अच्छी होनी चाहिए। भेस का भी महातम होता है। भेस बनाना अधिक पैसा माँगता है। मालूम नहीं, संस्कृत 'कामायनी' कब प्रकाशित हो सकेगी।

बड़ी साध से तिब्बत से उतारकर लाया, 'प्रमाणवार्तिकभाष्यम्' 15-16 वर्षों से कई घरों को देखकर निराश ही पड़ा हुआ था। डर लगता था, इसे कीड़े न खा जाएँ। बिहार रिसर्च सोसायटी ने जरा-सी इच्छा प्रकट की, 14 अप्रेल को मैंने उसे उसके पास भेज दिया। पर वहाँ भी उसका उद्धार नहीं हुआ। यह पुण्य जायसवाल इन्स्टिट्यूट को लूटना था, जबकि उसके संचालक डा. अल्तेकर ने उसके प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया।

चार्लविल के फाटक के पास एक प्राइमरी स्कूल है, जिसके द्वितीय अध्यापक की स्थिति देखनेवाले को भी दुखी कर देती है। पत्नी लेकर पूरे एक दर्जन का परिवार है, और वेतन महँगाई-भत्ता लेकर 60-65 रुपया मासिक। आजकल के जमाने में वह कैसे परिवार की गाड़ी चलाते हैं, यह सोचने में भी सिर चकराता है। मास्टरजी ने फौज में भी नौकरी की थी। सोचा था, लौटने पर उनका दर्जा बढ़ जाएगा, लेकिन आकर सैकन्ड मास्टर ही रहे। उन्होंने हमा औट-हौस में रहने के लिए जगह माँगी। बालक-नन्हों का पास रहना चिन्ता की बात जरूर थी, लेकिन उनकी स्थिति का ख्याल आया। हमने उन्हें जगह दे दी। पीछे 'हर्न हिल' के ले लेने पर यहाँ से वहाँ और अधिक अच्छी जगह थी, इसलिए वहाँ प्रबन्ध कर दिया।

मैं मसूरी और उसके भिन्न-भिन्न प्रकार के निवासियों के शब्दचित्र कहानियों के रूप में लिखकर 'मधुपुरी' के नाम से छपानेवाला था, इसी बीच इसी नाम से किसी की कविता निकल गई, इसलिए वह 21 कहानियाँ 'बहुरंगी मधुपुरी' के नाम से प्रकाशित हुईं। उनमें कल्पना कम और वास्तविकता अधिक है। उनके पढ़ने से यदि कोई समझे, कि वह किसी एक व्यक्ति का जीवन-चरित्र है, तो बिल्कुल गलत होगा। कई व्यक्तियों के जीवन और समस्याओं को लेकर एक-एक कहानी तैयार की गई है। किसी को किसी व्यक्ति पर कहानी को घटाने का मौका न मिले, इसके लिए नामों और स्थानों को कल्पित नाम दिये गए हैं।

हमारे साहित्य-कर्मियों की समस्या सुलझती नहीं दीखती थी। सभी नहीं, लेकिन कुछ काम करने में कम समय देते थे, और कुछ तो उसे भी बात करने में खतम कर देना चाहते थे। इधर कुछ पुस्तकों के अनुवाद के साथ-साथ 30-35 हजार शब्दों का राष्ट्रभाषा-कोश तैयार किया गया। आशा रक्खी गई थी कि इन्हीं शब्दों को प्रादेशिक भाषाओं और तीन-चार विदेशी भाषाओं के पर्याय के साथ कई कोशों के रूप में छाप दिया जायेगा। वर्धा में छपाई में उसी तरह की ढिलाई देखने में आ रही थी जैसी परिभाषा-कोशों के सम्बन्धों-सम्मेलन में हुई थी। इस दिक्कत को दूर करने के लिए 23 अप्रेल को नागार्जुन वर्धा के लिए रवाना हो गए।

कमला को विशारद परीक्षा में खूब नम्बर मिले, अंग्रेजी में 77 में से 66 था। पालि के परीक्षक नये थे, उन्होंने समझा कि साहित्य सम्मेलन की परीक्षा देनेवाले छात्रों की भी शुद्ध संस्कृत या पालि के विद्यार्थियों जैसी योग्यता होनी चाहिए। उन्होंने कुछ नम्बरों से कमला को फेल कर दिया। डर तो लगने लगा था कि शायद उनका एक साल बरबाद गया। थोड़े-से नम्बरों से फेल करना उचित नहीं था, जबकि दूसरे विषयों में उन्हें बहुत अधिक नम्बर मिले थे। पास हो गईं, आगे का रास्ता खुल गया, इसकी हमें बहुत खुशी हुई।

24 अप्रेल को कुमठेकरजी आए। डा. सत्यकेतु से उनके बारे में काफी मालूम हो गया था। देश की आजादी में कोई अवसर ऐसा नहीं आया, जिसे उन्होंने जेल में गए बिना जाने दिया हो। जेल में भी उनका

अखण्ड सत्याग्रह रहता था। जेलवालों से अनबन रहती, जिसके लिए बड़ी यातना सहनी पड़ती। डाक्टर साहब नैनीताल की बात बतला रहे थे, न जाने किस बात पर कोई आदमी उन्हें पीटने लगा, और उन्होंने सच्चे सत्याग्रही की तरह उसे क्षमा कर दिया। उनकी मातृभाषा मराठी थी, हिन्दी का भी काफी ज्ञान था, और पैदा हुए थे कर्नाटक में, इसलिए कन्नड़ भी उनके लिए अपनी भाषा थी। हम कन्नड़ और मराठी से कुछ सर्वोत्कृष्ट उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद कराना चाहते थे। इस काम के लिए वह उपयुक्त व्यक्ति थे। उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर कन्नड़ उपन्यास का अनुवाद किया भी। काम में सुस्ती के लिए उनकी शिकायत नहीं की जा सकती थी।

# 2
# बदरी-केदार में

'गढ़वाल' को मैं बहुत कुछ लिख चुका था। हिमालय-परिचय-सम्बन्धी हरेक ग्रन्थ में अपनी यात्रा का भी एक अध्याय देना चाहता था। इससे जहाँ पुस्तक की मनोरंजकता बढ़ जाती, वहाँ नए आँकड़े और जानकारी भी शामिल करने का सुभीता होता। मालूम हुआ, यात्रा में आनेवाले को हैजे आदि का इन्जेक्शन लेकर प्रमाण-पत्र साथ रखना जरूरी है। नगरपालिका के डा. माथुर ने इन्जेक्शन दे, प्रमाण-पत्र भी दे दिया। 2 मई को मैं अकेला यहाँ से इस यात्रा के लिए रवाना हुआ। यहाँ या देहरादून से सामान ढोने और रसोई बनाने के लिए आदमी ले लिया होता, तो अच्छा रहता। पर सोचा, उधर यात्रा में आदमी मिलने में दिक्कत नहीं होगी। उस दिन 11 बजे शुक्लजी के घर पर पहुँचा। रिवाल्वर का भी लाइसेन्स मिल गया था, इसलिए एक सज्जन से छोटी-सी रिवाल्वर खरीदी। बन्दूक की तरह इसमें भी मैंने जल्दी की। जिस राइफल का सवा दो सौ रुपया दिया था, वह दो सौ से भी कम में मिल जाती। जिस रिवाल्वर को हमने 125 में खरीदा था, वह देहरादून दूकानों में 90 रुपये 7 आने में मिल रही थी। खैर, यह तो हमेशा की बला है, लेकिन मेरी फिलासफी यह कहती है कि जो पैसा खर्च हो चुका, उसका कोई मूल्य नहीं, और जो चीज खरीद ली, उसका दाम दूसरे दिन आधा हो जाता है।

**ऋषिकेश**–3 मई को ऋषिकेशवाली बस पकड़ी। मई का महीना था। दून काफी गरम जगह है। डोईवाला होते 1 बजे ऋषिकेश पहुँचा। पंजाब-सिन्ध क्षेत्र और काली-कमलीवाला क्षेत्र दोनों का नाम 1910 से ही जानता था। उस समय का ऋषिकेश जंगल के भीतर दस-बीस मामूली घरों की बस्ती थी, और अब वह एक अच्छा-खासा कस्बा बन गया था, जहाँ बाजार भी थे, बड़े-बड़े मकान भी खड़े थे, बिजली भी लग गई थी।

मैं पंजाब-सिन्ध क्षेत्र में गया। इसकी इमारतें बहुत दूर तक फैली थीं, जिनमें यात्रियों के अतिरिक्त गौओं के भी रहने का स्थान था। दूध लेने के लिए कुछ मकानों की गौशाला बनानी ही पड़ती। आफिस में नाम-धाम लिखाकर एक कोठरी में रहने के लिए भेज दिया गया। दूसरी बार आफिस में मुझे जाननेवाले एक सज्जन मिल गये, और जिनसे सुनकर मेरी कदर बढ़ गई और एक अच्छे कमरे में सामान रखवा दिया गया। ऋषिकेश मच्छरों की भूमि है। कमरे के भीतर गर्मी बहुत थी, इसलिए मैं छत पर सोया। बन्दरों से और नहीं होता तो जूता या जो भी चीज हाथ में लगे, वही ले भागते, इसलिए जूते को दरी के नीचे छिपाना पड़ा।

कुछ ठण्डा हो जाने पर उस दिन घूमने निकला। डेरा इस्माइल खाँ के एक भक्त मिल गये। उन्होंने भक्तराज जयदयाल गोयन्का के गीताभवन की महिमा गाई, लेकिन वह दूर और गंगापार था, इसलिए वहाँ तक नहीं जा सका। राजा लोगों की जब तपी थी तो राजसिंहासन तक ही अपने को सीमित न रखकर वह राजर्षि भी बनते थे। आजकल सेठों की तपी है इसलिए यदि वह सेठर्षि बनें, तो अचरज क्या ?

जहाँ प्राइवेट बसें चलती हैं, वहाँ यात्रियों की तकलीफ का ख्याल नहीं किया जाता, और ज्यादा-से-ज्यादा मुसाफिरों के घुसेड़ने की कोशिश की जाती है। बदरी-केदार की यात्रा शुरू हो गई थी, इसलिए भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों के लोग ऊपर की ओर जा रहे थे। शाम को मैंने ऊपरी दर्जे के टिकट के लिए नाम दर्ज करवाया था, लेकिन अगले दिन चढ़ते वक्त निचले दर्जे का टिकट मिला। जब तक स्थान मिल जाए, तब तक इसकी शिकायत करने में पाप लगता है। एक मद्रासी बुढ़िया मुझसे भी बुरी हालत में बैठी थी। मैंने अपना स्थान उसे दे दिया और उसकी जगह बैठ गया। बदरी-केदार के जाड़ों का ख्याल था, इसलिए ओढ़ना-विछौना काफी ले लिया था, हालाँकि वह बेकार का तरद्दुद ही साबित हुआ, क्योंकि एक कम्बल से अधिक सर्दी दोनों धामों ही में होती है, और वहाँ पण्डों की कृपा से जितना चाहें उतना ओढ़ना-बिछौना मिल सकता है।

यात्रियों में बंगाली पुरुषों और महिलाओं की संख्या काफी थी। हमारी बस बीच में कई जगह थोड़ी-थोड़ी देर के लिए ठहरती देवप्रयाग में भागीरथी के इस पार जाकर खड़ी हुई। यहाँ कुछ लोग उतरे, इसलिए अपने दर्जे में जगह मिल गई। डेढ़ घंटा और चलने के बाद कीर्तिनगर पहुँच गए। धूप और गर्मी के बारे में क्या कहना? यहाँ से अलकनन्दा के पुल पार तीन मील के करीब चलकर श्रीनगर में दूसरी बस मिलनेवाली थी। बहुत-सी हरिजन कन्याएँ सामान ढोने के लिए आईं। मैंने दो पर अपना सामान रखा। नदी पार होते ही मुँह सूखने लगा, प्यास के मारे बेचैन था, काफी दूर जाने पर पानी पीने को मिला। 'गढ़वाल' लिख चुका था, इसलिए बहुत-सी बातें मालूम थीं, जिनमें यह भी कि 19वीं सदी के अन्त के महाप्रलय से कमलेश्वर बच गया, बाकी सब पुराने मन्दिर और ध्वंसावशेष शेष रह गए। इसी ख्याल से कमलेश्वर में रास्ते से हटकर गया। यहाँ 11वीं-12वीं शताब्दी की सूर्य की मूर्ति मिली। श्रीनगर में घुसने से पहिले सड़क को घेरकर स्वास्थ्य-विभाग के आदमी खड़े थे। हैजे का टीका हमने मसूरी में लगवा लिया था, लेकिन इस वक्त बकस में ढूँढ़ने में प्रमाण-पत्र नहीं मिला। मजबूर हुआ, दूसरी बार इन्जेक्शन लगवाने और नया प्रमाण-पत्र लेने के लिए। श्रीनगर बाजार में पहुँचा। यह महाप्रलय के बाद का बसा नया बाजार था, यह कहने की आवश्यकता नहीं। मजदूरों ने श्री खड़गसिंह के होटल में पहुँचा दिया। रात-भर के लिए मैं वहीं ठहर गया। अगले दिन (5 मई) बस पौने दो बजे मिलनेवाली थी, इसलिए इतने समय में यहाँ की देखने की चीजें देख लेनी थीं। प्राचीन कोई चीज तो थी नहीं। सड़क के किनारे दोनों तरफ दूर तक बाजार चला गया था। श्री मुकन्दी लालजी से मालूम हुआ था, कि कलाकार भोलाराम (1740-1833) के वशंज यहाँ रहते हैं। भोलाराम के पुत्र ज्वालाराम भी चित्रकार थे, लेकिन उनके पुत्र तेजराम चित्रकार नहीं रहे। तेजराम के पुत्र आत्माराम चित्रकार थे, जो पीछे पागल हो गए। उनके इस पागलपन में महान् कलाकार की कुछ कृतियाँ भी नष्ट हो गईं। भोलाराम के प्रपौत्र और तेजराम के पुत्र बालकराम अभी जीवित थे। यह संवत् 1924 (1867 ई.) के कार्तिक महीने में पैदा हुए और अब 84 वर्ष के थे। अपने बड़े बेटे बैजनाथ को इन्होंने लखनऊ के आर्ट स्कूल में श्री असितकुमार हालदार के पास चित्रविद्या सीखने के लिए भेजा था। पाँच-चार साल वहाँ रहे, लेकिन कलाकार के घर में पैदा होने से कोई कलाकार नहीं होता। ठोक-पीटकर वैद्यराज बनाने का प्रयत्न करना बेकार है। बालकराम के बैजनाथ, रामनाथ, नारायणप्रसाद तीन पुत्र थे; और आत्माराम के पुत्र फतेराम (जन्म संवत् 1928, सन् 1871 ई.) जीवित थे। फतेराम के पुत्र मदनमोहन और उनके पुत्र ब्रजमोहन लाल और मनमोहन लाल थे। कुछ थोड़े-से चित्र अब भी घर में बच रहे थे, जिन्हें उन्होंने दिखाया।

बस पकड़ने से पहिले यहीं से सारी यात्रा के लिए आदमी लेना था। खड़गसिंह ने डेढ़ रुपया प्रतिदिन और खाने पर बलबहादुर नामक एक तरुण नेपाली को ठीक कर दिया। उसके दुबले-पतले शरीर को देखकर डर लगा, कि वह एक मन सामान लेकर चल भी सकेगा। पता लगा, कि उसकी हड्डियाँ लोहे की हैं। बचपन से ही मेहनत करते, बोझा ढोते-ढोते आदमी का शरीर क्या नहीं हो सकता।

रुद्रप्रयाग 5 बजे पहुँचा। छाता नहीं था, जिसकी धूप और वर्षा दोनों के लिए जरूरत थी। रास्ते में ठहरने की जगह पर कभी-कभी मोमबत्ती की भी जरूरत होती, इसलिए प्यारेलाल की दूकान से दोनों चीजें खरीद लीं। अलकनंदा पार भी दूकानें हैं, यहीं से मोटर की सड़क ऊपर की ओर जाती हैं। पार भी कितने

ही मकान, धर्मशालाएँ और दूकानें हैं। प्रज्ञाचक्षु स्वामी सच्चिदानंद के बारे में बहुत सुना था, इसलिए उनके दर्शन के लिए गया। दर्शन का प्रत्यक्ष फल टिकने के लिए स्थान मिलना था, इसे कहने की जरूरत नहीं। स्वामी सच्चिदानन्द ने यहाँ पर लड़कों के लिए हाईस्कूल और लड़कियों के लिए भी स्कूल बनवाया, इसके लिए उनका जीवन सार्वजनिक उपयोगिता का जीवन है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। इसे देख यदि मैंने उन्हें अपने प्रति रूखा पाया, तो इससे मुझे कोई खेद नहीं हो सकता था। रात-भर रहना था, सबेरे यहाँ से चल देना था। अगर आर्द्र होते, तो उनकी आप-बीती सुनता और उसे लेखनबद्ध करता।

6 मई (रविवार) सबेरे उठकर चला। किसी सवारी का सहारा तो था नहीं, इसलिए उठने-बैठने में स्वतन्त्र था। रास्ते में एक जगह केला और पपीता मिल रहा था। एक मन ने कहा, ले लो; दूसरे ने कहा, ये तो जगह-जगह मिलेंगे, इतने सवेरे लेने की जरूरत क्या ? दूसरे मन की बात गलत मालूम हुई। यहाँ लोगों को फल के लगाने का शौक नहीं है, और शायद उनके गाहक भी ज्यादा नहीं हैं। 7 बजे छः मील से ऊपर चलकर रामपुर चट्टी पहुँचे। उससे पहिले तिलवड़ा में खेतों में कत्यूरी-काल 9वीं-10वीं सदी के दो छोटे-छोटे मन्दिर देखे। मुख्य मन्दिर विलीन हो गया, यह उसके पार्श्व पर थे। किसी तरह की मूर्ति नहीं थी। रामपुर में भी एक छोटे-से नए मन्दिर में मयूर पर चढ़ी कार्तिकेय की मूर्ति और एक-दूसरी भी द्विभुज मूर्ति कत्यूरी-काल की थीं। बूढ़े लोग रुहेलों के आक्रमण और मन्दिरों-मूर्तियों के ध्वंस की बातें अब भी याद करते हैं। दलतंग में भी एक मन्दिर और कुछ मूर्तियों की बात बतलाई गई, कहा गया कि इसे तोड़ने में रुहेले कामयाब नहीं हुए, क्योंकि शिवजी ने उनके ऊपर भँवरे छोड़ दिए।

आज 11 मील चलकर अगस्त्य मुनि में रात को ठहरना था, लेकिन बलबहादुर वहाँ से आगे चल पड़ा था। मन्दिर में अष्टधातु की द्विभुज मूर्ति थी। सन्देह होता है, शायद सूर्य की मूर्ति हो, जिस पर पीछे धातु का भद्दा चेहरा लगा दिया गया। बाहर बागवाले छोटे मन्दिर के दाहिने गवाक्ष में हरगौरी की एक सुन्दर मूर्ति दीवार में चिपकाई हुई थी। यहाँ मन्दाकिनी के किनारे काफी बड़ा मैदान है। उसे खाली रखना आश्चर्य की बात मालूम होती थी, लेकिन देवताओं के कोप का भाजन कौन बनना चाहेगा ? दो मील पर नदी पार सिल्ला गाँव था, जहाँ मैं नहीं जा सका। लोगों से मालूम हुआ, वहाँ दो बड़े और कुछ छोटे-छोटे प्राचीन (कत्यूरी-काल के) मन्दिर हैं। टिड्डियों का प्रकोप इस साल पहाड़ों में भी हुआ था। यहाँ उनसे कोई नुकसान नहीं हुआ, इसलिए मनों घी और अनाज स्वाहा करवाया जा रहा था।

रात को एक छोटी-सी चट्टी सौड़ी में ठहर गए। 41 वर्ष पहिले मैंने इधर की यात्रा की थी। उस वक्त का स्मरण बहुत धूमिल-सा था। तो भी यह तो मालूम था, कि तब से चट्टियों की संख्या बहुत बढ़ गई है, और हरेक चट्टी में घर भी अधिक बन गए हैं। आसपास के गाँववालों ने जहाँ भी सड़क के किनारे अपने नजदीक और अनुकूल स्थान पाया, वहाँ एकमंजिला या दो-मंजिला मकान खड़ा कर दिया, कुछ अपने घर का आटा-चावल-घी और कुछ बाहर से लेकर दूकान खोल दी। इनके कारण यात्रियों को बहुत आराम है। यदि कोई अपने साथ एक कम्बल और झोले में थोड़ी-सी चीजें लेकर चल पड़े, तो उसे खाने-पीने, सोने-बैठने की कोई तकलीफ नहीं हो सकती, बस पास में पैसा होना चाहिए। लेकिन, आदमी जाने या अनजाने खुद अपने लिए परेशानी पैदा कर लेता। मुझे इतना सामान ले चलने की जरूरत नहीं थी। किसी दूसरे यात्री का साथ कर लेता, तो खाना बनाने की भी मुश्किल नहीं होती। आज दो पति-पत्नी पश्चिमी पंजाब के मिले। पत्नी के ऊपर दस सेर घी भरा टिन रखा था, पुरुष ने भी अपने साथ काफी सामान उठाया था। कह रहे थे, क्या मालूम यहाँ शुद्ध घी मिलेगा या नहीं, इसलिए अपने साथ लाया हूँ। शाम को सबेरे की यात्रा के लिए वह साग-परौठा भी बना लेते थे। उनकी यात्रा मानो घर की तरह हो रही थी। लेकिन, घी के बारे में इतना ध्यान देना और बेचारी दुबली-पतली स्त्री के ऊपर बोझा लाद देना कहाँ तक की अक्लमन्दी थी, जबकि आज के जमाने में आप घी के शुद्ध होने पर तभी विश्वास करते हैं, जबकि वह अपने घर की गाय-भैंस का हो।

7 मई को 5 बजे सबेरे चला। भिरी में ठहरना चाहता था, लेकिन कुण्ड से चढ़ाई की बात सुनकर सोचा, वहाँ आज पहुँच जाना चाहिए, ताकि सबेरे ही गुप्तकाशी की चढ़ाई की जा सके। भिरी मन्दाकिनी के बाएँ

तरफ है। यहाँ भीमसेन की मूर्ति बिल्कुल नई और भद्दी है, किन्तु पास में डेढ़ फुट ऊँची कत्यूरी-काल की विष्णु-मूर्ति भी है। केदारखण्ड ईसवी-सन् के आरम्भ से ही अपनी पवित्रता को स्थापित कर चुका था, इसलिए यहाँ जगह-जगह पुराने अवशेष मिले हैं। लोहे का झूला पार कर रास्ता मन्दाकिनी के दाहिने तट से चलने लगा। कुण्ड चट्टी 21 मील पर पड़ी। आजकल यहाँ कोई कुण्ड नहीं दिखाई देता, हो सकता है किसी समय कुण्ड रहा हो, जिसे मन्दाकिनी समेट ले गई हो। साढ़े 9 बजे ही चट्टी पर पहुँच गए। बलबहादुर ने खाना बनाया, मैंने स्नान किया। दो दिन के ही तजर्बे ने बतला दिया, कि सबेरे जल्दी चलो, चार-पाँच घंटों की मंजिल मार 9-10 बजे किसी चट्टी पर ठहर करके खाना खा, आराम करो। जब धूप अपनी तेजी कम कर दे, तो तीन-चार बजे के करीब फिर आगे दो-तीन घंटे चलो। कुण्ड में मक्खियाँ बहुत थीं। प्रायः हरेक चट्टी में मक्खियों की शिकायत थी। सचमुच चटाइयों और बिस्तरों को वह मक्खी का चादर बना डालती थीं।

सवा 3 बजे आगे बढ़े। फिर डेढ़ मील की चढ़ाई शुरू हुई। हर जगह की चढ़ाइयों में यहाँ घोड़े मिल जाते हैं। चढ़ाई समाप्त होने पर ऊपर से मन्दाकिनी पार ऊखीमठ की बस्ती नजर आ रही थी।

**गुप्तकाशी**–यह नाम पीछे का दिया हुआ है। इस तरह के नकली काशी और प्रयाग पिछले सौ-डेढ़ सौ सालों में इस भूमि में बहुत बने। आखिर उनके कारण कुछ पूजा-चढ़ावा चढ़ ही जाता है, इसलिए जाल बनाने में लोग क्यों पीछे रहें ? कई पण्डे भी हमारे पीछे पड़े। इसके लिए उन्हें दोष नहीं देना चाहिए। आधुनिक दुनिया में सभी जगह गाईड (पथ-प्रदर्शक) की आवश्यकता होती है, ये भी उसी तरह के हैं। उनको दिए पैसे गाइड का पारिश्रमिक समझ लेना चाहिए। बाजार के नाम पर तीस दूकानें सड़क की दोनों तरफ थीं, जिनकी ऊपरी मंजिल यात्रियों के ठहरने के काम में आती थी। यहाँ लालटेन और दूसरी भी चीजें बिक रही थीं, जिससे जान पड़ता था, इन दूकानों का उपयोग स्थानीय लोग भी करते हैं। प्रधान मन्दिर में गया। पानी की नली से दो धाराएँ कुण्ड में गिर रही थीं। प्रधान मन्दिर के साथ एक छोटा मन्दिर भी था। बगल के ओसारे में 'पाण्डवों' की मूर्तियाँ थीं, जिनमें एक सुन्दर मूर्ति का खण्डित भाग भी था। मुख्य मन्दिर की बगल में विष्णु और शिव की मूर्तियाँ 'गंगा-जमुना' बनी हुई थीं। शिव की मूर्ति चतुर्भुज है, अर्थात् प्राचीन पाशुपतों की।

पण्डों के पूछने पर मैंने कहा, कि उसी को पण्डा बना सकता हूँ, जो सबसे अधिक वृद्ध हो, और जो सबसे अधिक बातें जानता हो। 78 वर्ष के पण्डा काशीनाथजी (केदार-पुत्र) में यह गुण घटे। वह लुवानी गाँव के रहनेवाले थे। उन्हीं को मैंने अपना पण्डा बनाया। उनकी स्मृति को देखकर मैं दंग रह गया। आजमगढ़ जिले के कितने ही गाँवों के नाम वह बतला रहे थे, यह बड़ी बात नहीं थी। पर कनौर के जब एक दर्जन से अधिक गाँवों के नाम उन्होंने बतलाए, तो सोचने लगा : कि इस उमर ने क्यों याददाश्त पर असर नहीं डाला। उन्होंने बतलाया, रुहेले यहाँ से आगे मस्ता तक गए थे, जहाँ शंकर भगवान् ने उन पर पत्थर गिराना शुरू किया, और वह लौट आए। गुप्तकाशी में आयुर्वेदिक औषधालय, 30 दूकानें और 20 के क़रीब दूसरे घर हैं। यहाँ का मन्दिर केदारनाथ मन्दिर के अधीन था, और केदार-बदरी की सम्मिलित प्रबन्ध-समिति इसकी देखरेख करती थी।

गुप्तकाशी में कुछ और फोटो लेने थे, इसलिए दूसरे दिन साढ़े 10 बजे तक वहीं ठहरना पड़ा। केदारनाथ पाण्डे ब्राह्मण हैं, पर किसी ने क्षत्रियों (खशों) की लड़की ब्याहने के कारण उनके ब्राह्मण होने पर सन्देह प्रकट करते हुए लिख मारा। मुकद्दमा हुआ, जिसमें लेखक को जुरमाना हुआ। सच्चाई वादी और प्रतिवादी दोनों के विचारों के बीच में थी। केदारनाथ के पंडे ब्राह्मण न होते, तो सारे हिन्दुस्तान के लोगों ने भाँग नहीं खाई थी, जो उनका पैर पूजते। प्राचीनकाल में ब्राह्मण अब्राह्मणों की लड़कियों से ब्याह कर लेते थे, और उनकी सन्तानें शुद्ध ब्राह्मण कही जाती थीं। यह नियम यहाँ पर हाल तक माना जाता रहा, जबकि भारत के दूसरे भागों में इसे बहुत पहिले छोड़ दिया गया। कहा जा सकता है, केदारनाथ के पंडे अभी हाल तक प्राचीन धर्म के माननेवाले थे।

साढ़े 10 बजे हम वहाँ से निकले। अधिकतर मामूली उतराई उतरते एक मील पर नाला चट्टी पहुँचे। यहाँ भी प्राचीन मन्दिर है, जिसे रुहेलों की टुकड़ियों ने ध्वस्त किया था। पंडा कुमाई जोशी थे। पीछे की ओर

बाएँ कोने के छोटे मन्दिर के दरवाजे पर कत्यूरी लिपि में छोटा-सा लेख था। उसी काल की दूसरी लक्ष्मीनारायण और हरगौरी मूर्तियाँ भी मन्दिर में मौजूद थीं। द्वार पर उस व्यक्ति की मूर्ति थी, जिसके पैसे से मन्दिर बना था।

आगे मस्ता आया। गुप्तकाशी में सुन चुका था, कि रुहेलों पर यहीं पत्थर पड़े और वे यहाँ से जान लेकर नीचे की ओर भागे। पर मस्ता के गौड़ ब्राह्मण नारायण दत्त ने बतलाया कि मुसलमान (रुहेले) लूटते-पाटते केदारनाथ तक गये थे। इसका सबूत केदारनाथ की टूटी-फूटी मूर्तियाँ भी दे रही थीं। मस्ता से आगे चलकर भेत पहुँचे, जो साहित्यिक रुचि के पुरुष पं. विशालमणि का निवास है। इन्होंने ही पंडों के बारे में कुछ लिख दिया था, जिस पर मुकद्दमा चला था। जान पड़ता है, भेत मन्दाकिनी-उपत्यका का किसी समय बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। यहीं शायद उपत्यका का राजा रहता था। यहाँ बहुत-से पुराने मन्दिर थे, टूटी-फूटी मूर्तियाँ भी कितनी ही पड़ी थीं। विशालमणिजी ने कालीमठ की महिमा बतलाई। लौटते वक्त आकर सब जगहों को देखने की बात कहकर मैं आगे चला।

तीन मील चलने पर मैखण्डा आया। मैखण्डा (महषिखण्ड) इस इलाके का पुराना नाम, लेकिन बस्ती कोई विशेषता नहीं रखती। इस पट्टी का नाम अब भी मैखण्डा है। रास्ते में एक छोटे-से मन्दिर में खण्डित मूर्तियों का ढेर लगा हुआ था। बहुत-सी हलकी-फुलकी मूर्तियों को लोग जरूर उठा के ले गए होंगे। ढेर में हर और गौरी की खण्डित मूर्ति अलग-अलग और बड़ी सुन्दर थीं। जान पड़ता था, कलाकार की छिन्नी पत्थर पर नहीं, बल्कि मक्खन पर पड़ रही थी। मूर्ति नहीं, अजन्ता के चित्र-सी मालूम हो रही थी। यह किसी भी म्युजियम की शोभा बढ़ा सकती थी। यहाँ अरक्षित स्थान में रहने पर इसके उड़ जाने का डर था। काले पत्थर की गणेश, शिव और देवी की भी मूर्तियाँ थीं। पहिली मूर्ति शायद छठी-सातवीं सदी की हो।

फाटा चट्टी पर जाकर रात के लिए हम ठहर गए।

**तिरजुगीनारायण**–9 मई को सबेरे 5 बजे चले। पाँच मील पर रामपुर आया, यहीं प्रातराश किया। चाय, कुछ मिठाइयाँ, भुने चने यहाँ आसानी से मिल जाते थे। रामपुर से डेढ़ मील आगे जाने पर केदारनाथ का रास्ता छोड़ना पड़ा। यहीं तिरजुगी का रास्ता अलग होता है। कलकत्ता के किसी भक्त ने सात हजार रुपया लगाकर एक मील का रास्ता बनवा पत्थर लगवा दिया। चढ़ाई थी। तिरजुगी दो मील रह गया था, जब दो रुपये पर घोड़ा मिल गया। घोड़े का मालिक शिल्पकार था। गाँधीजी ने हरिजन नाम पीछे दिया। इससे पहिले ही पहाड़ में यह उत्पीड़ित वर्ग अपने को शिल्पकार कहने लगा था। घोड़ेवाले ने बड़ा हर्ष प्रकट करते हुए कहा–"हम लोगों ने जनेऊ ले लिया।" जनेऊ लेना आजकल के जमाने में बहुत मुश्किल नहीं था, लेकिन अकिंचन से किंचन बनना टेढ़ी खीर था। साढ़े नौ बजे तिरजुगी पहुँचे। स्थान की ऊँचाई 7,000 फुट तो अवश्य होगी। टिड्डियाँ फरवरी में यहाँ भी पहुँचीं। लोग बतला रहे थे, कि जंगलों में अब भी वह डेरा डाले शिशु-पालन कर रही हैं।

तिरजुगी में पहिले विष्णु की प्रधानता थी। मन्दिर के बाहर दीवार के पास रुहेलों द्वारा खण्डित डेढ़ हाथ लम्बी शेषशायी की मूर्ति और दो खड़े विष्णु हैं, जिनमें एक लक्ष्मी-सहित है। पुराने शेषशायी की और भी तीन मूर्तियाँ देखने में आईं। यह 11वीं-12वीं सदी से अधिक पुरानी नहीं मालूम होतीं। यहाँ के कुण्ड में साँप रहते हैं, जो चमत्कार माना जाता है। पर मुझे नागदेवता ने दर्शन नहीं दिया। गंगोत्री की यात्रा करनेवाले ऊपर-ऊपर के पहाड़ों से होकर यहीं आकर निकलते हैं। 1910 में मैंने इस रास्ते को पार किया था। बलबहादुर भोजन बनाने लगा, और मैं डेढ़ बजे तक घूमता या विश्राम करता रहा। दो मील से थोड़ा अधिक उसी रास्ते लौट कर दाहिने मुड़ हमने केदार की सड़क पकड़ी। नदी की धार तक उतराई, फिर झूला पार करके अधिकतर चढ़ाई रही। एक जगह 6000 फुट ऊँचाई लिखी हुई थी, गौरीकुण्ड 7,000 फुट के करीब ऊँचा होगा।

**गौरीकुण्ड**–साढ़े 4 बजे हम गौरीकुण्ड पहुँच गए, और तप्तकुण्ड के पास ही धर्मशाला में उतरे। सर्द मुल्कों में तप्तकुण्ड अगर मिल जाए, तो उसमें नहाये बिना कैसे रहा जा सकता है। लेकिन इस तप्तकुण्ड का पानी जरूरत से अधिक गरम था। ठण्डी धार लाकर डाल दी गई होती, तो गर्मी कुछ कम हो जाती। लेकिन, ऐसा

गरम नहीं है कि छाले पड़ें। शरीर के तापमान से ज्यादा गरम होने के कारण पहिले उसमें घुसने पर मालूम होता था कि शरीर जल जाएगा। लेकिन दूसरे आदमी को नहाते देखकर आदमी समझ सकता है कि ऐसी बात नहीं है। अब न जाने कितने दिनों बाद फिर अच्छी तरह स्नान करने का मौका मिले, इसलिए मैं गौरी के कुण्ड में स्नान करने से अपने को रोक नहीं सका। मन्दिर में कुछ मूर्तियाँ थीं। रास्ते में सिरकटे गणेश और लूली गौरी को देख चुका था। 18वीं सदी के मध्य से पहिले आने पर यहाँ कितने ही भव्य मन्दिर और मूर्तियाँ देखने में आती हैं।

**केदारनाथ** (11,760 फुट)–शाम को मैंने सात रुपये में केदारनाथ के लिए घोड़ा ठीक कर लिया था। लेकिन, सबेरे घोड़ेवाले को यह किराया कम मालूम हुआ, या अधिक ग्राहक आ गए, इसलिए उसने किराया बढ़ाना चाहा। मैं पैदल ही चल पड़ा। वैसे होता तो 5 बजे चला होता, लेकिन घोड़े की प्रतीक्षा ने एक घंटा देर कर दी। चढ़ाई का रास्ता था, लेकिन कड़ी चढ़ाई बहुत कम ही थी। चार मील के करीब जाने पर रामबाड़ा चट्टी मिली, जहाँ से केदारनाथ तीन मील रह जाता है। निश्चय हुआ, यहीं रोटी-पानी कर लिया जाए, फिर आगे चला जाए। साढ़े 9 बजे तक खाना-पीना समाप्त कर फिर बलबहादुर के साथ मैं आगे बढ़ा। चढ़ाई कठिन नहीं थी, लेकिन हम 10-11 हजार फुट से ऊपर चल रहे थे, जिसके कारण हवा क्षीण थी, और साँस अधिक फूलती थी। बलबहादुर को पहिले ही मैंने कहा था, एक डंडा ले लो, लेकिन वह इसे अपनी जवानी का अपमान समझता था। इस क्षीण हवा में डंडे का गुण उसे मालूम हुआ। खुकुरी नेपाली का अभिन्न अंग है, लेकिन बलबहादुर के पास वह नहीं थी। बड़े वृक्षों की भूमि हम पीछे छोड़ आये थे, लेकिन डंडे लायक झाड़ियाँ यहाँ मौजूद थीं। बलबहादुर ने हसरत-भरी निगाह से उनकी तरफ कुछ देर देखा। फिर उसके अवचेतन ने बतला दिया कि कभी हमारे लोगों के पास धातु का नाम नहीं था। फिर क्या था ? एक तीखा पत्थर उठाकर उससे झाड़ी से डण्डा काट लिया। दोनों तरफ काट फिर वह अपने कला-प्रेम का परिचय देते छिलका भी उतारने लगा। मैं तो डरने लगा, शायद अब यह सारे डंडे को छीलकर ही यहाँ से चलेगा, पर उसने एक बित्ता ही छीलकर रहने दिया। हमारे पूर्वज इससे अच्छे पत्थरों को इस्तेमाल करते थे। चकमक (फ्लिंट) कड़ाई में धातु के बाद दूसरा नम्बर रखता था, यहाँ बलबहादुर ने साधारण पत्थर का इस्तेमाल किया, जिसे आज से तीन लाख वर्ष पहिले जावा-मानव करता रहा होगा।

साढ़े 12 बजे केदारनाथ पहुँचे। आधा मील पहिले से बरफ पर चलना पड़ा था। पुरी में अब भी जहाँ-तहाँ काफी बरफ थी। हम पौने 12,000 फुट की ऊँचाई पर पहुँच गये थे। मई के शुरू हो जाने पर भी यहाँ अभी हिमकाल था। काशीनाथ शर्मा ने चिट्ठी दी थी। हमें उनके पुत्र ने डाकखाने के ऊपर अपने मकान के एक अच्छे कमरे में जगह दी। थकावट मालूम होती थी, जो एक घंटा सोने से दूर हो गई। आते वक्त आकाश निरभ्र था, पर अपराह्न में इधर अक्सर बादलों के छा जाने का डर रहता था। पुरी में घूमकर देखा। एक नवदुर्गा की गढ़ी में 'खंडस्फोट' कई मूर्तियाँ पड़ी थीं। केदारमन्दिर के पीछे दाहिने कोने में मन्दिर कमेटी के इन्चार्ज रहते थे, उनसे बात हुई। उत्तराखण्ड विद्यापीठ के शास्त्रीजी भी मिले। उन्हें मेरा नाम नहीं मालूम था, पर परिचय प्राप्त करने के लिए काफी बातें थीं। उन्हें जब मालूम हुआ, कि मैं ऐतिहासिक सामग्री का जिज्ञासु हूँ, तो बड़ी उत्सुकता से मेरी सहायता करने के लिए तैयार हो गए। बतलाया, कि तुंगनाथ में धातु और पत्थर की दो बुद्ध-मूर्तियाँ हैं। केदारनाथ के रावल (महन्त) कर्नाटक के जंगम (पाशुपत) साधु थे, इससे पहिले तमिल जंगम भी रहा करते थे। 1910 में मुझे यहाँ दो महीने के करीब रहना पड़ा। काली कमली के उस क्षेत्र को, और हो सके तो उस कोठरी को देखने की इच्छा हुई। पहिले यह पाँच-सात कोठरियों की दोमंजिला धर्मशाला थी, अब तो वह एक विशाल भव्य इमारत बन गई थी। यह भी मालूम हुआ, कि केदारनाथ से कुछ ऊपर वह स्थान भी 'खोज निकाला' गया है, जहाँ शंकराचार्य को तरुणाई में ही पाशुपतों के हाथ से विषपान करके मरना पड़ा था। वहाँ एक लिंग छोड़ और कोई इमारत नहीं है।

शाम ही को तै हो गया कि यात्रियों के आने के पहिले ही मैं मन्दिर में जा वहाँ की भीतरी चीजें देख लूँ। 7 बजे सुपरिण्टेण्डेन्ट साहब ने मेरे मन्दिर में ले जाने का प्रबन्ध कर दिया था। बाहर बड़ा जगमोहन,

उसके भीतर एक छोटी-सी मंडप और फिर गर्भ था। गर्भगृह में पत्थर के चार खम्भे थे। इन्हीं के बीच में जो भैंसे की पीठ की तरह की एक पुरानी चट्टान थी, जिसे देखकर लोगों ने कल्पना की कि जब पाण्डव शंकर के दर्शन करने के लिए यहाँ आये, तो कुलघाती पापियों को दर्शन देने की इच्छा न रखते शंकर भैंसों के झुण्ड में छिप गए। भैंसे शाम को घर की ओर लौटने लगीं, उस वक्त भीम ने दोनों पर्वतों पर अपना पैर रख दिया। शंकर पैर के नीचे से कैसे निकलते। बड़े धर्मसंकट में पड़े। इससे बचने के लिए वह धरती में डुबकी मारने लगे। मुँह-पैर सब धरती में डूब गया, सिर्फ पीठ रह गई। पाण्डवों ने पहचान लिया। वही पीठ यहाँ पत्थर के रूप में अब मौजूद है।

भीतर सर्दी बहुत थी, इतना कहना काफी नहीं होगा। मन्दिर होने के कारण जूता पहन के जा नहीं सकते थे, और पैरों को मानो बरफ काट रही थी। पुजारी ने कम्बल दे दिया, जिससे थोड़ी-सी मदद मिली। शास्त्रीजी पहिले ही कुछ खोज-खाज कर चुके थे, और बतला दिया, दीवारों पर यहाँ शिलालेख हैं। शिलालेख थे, लेकिन केदारनाथ के ऊपर घी मलते समय हाथ साफ करने के लिए दीवार पर पोंछ देते, जिसके कारण शताब्दियों की घी की मोटी तह ने अक्षरों को ढाँक दिया था। गरम पानी आया, लेकिन जब तक ब्रुश न हो, तब तक उसका साफ करना मुश्किल था। कुछ सफाई करने से 11वीं-12वीं शताब्दी की लिपि में 'रज देव··· के··· इति' लिखा मिला। कुमाऊँ के प्रथम कमिश्नर ट्रेल ने लिखा था, मन्दिर नया बना है। जान पड़ता है उसके समय (1820 ई. के आसपास) से कुछ ही पहिले भूकम्प से टूटे मन्दिर की मरम्मत हुई थी, जिससे उसने समझा कि मन्दिर अभी बना है। दीवारें पुरानी हैं, टूटा होगा तो ऊपर का कुछ भाग। दीवारों के ये शिलालेख बतला रहे थे कि मन्दिर 12वीं सदी से इधर का नहीं होगा। इस बात की गवाही बाहर के जगमोहन में रखी मूर्तियाँ भी दे रही थीं। गर्भ के बाहरी मंडप में भी चौकोर बड़े-बड़े चार खम्भे थे। यहाँ के गवाक्षों में आठ मूर्तियाँ रखी थीं, जिनमें पाँच करीब तीन हाथ की, सभी पुरानी थीं, और जिनके प्रत्यक्ष चिन्हों पर न विश्वास कर लोगों ने उन्हें द्रौपदी, युधिष्ठिर आदि का नाम दे रखा है। मन्दिर के बाहर अम्बादत्त तंगवाल के अधीन ईशान मन्दिर है। वहाँ एक पत्थर पर दो पंक्तियों का खंडित लेख देखा। कुमाऊँ गढ़वाल का यह सबसे पुराना लेख है, जो गुप्ता ब्राह्मी और तिब्बती (ऊमेद) लिपियों से ज्यादा मिलता-जुलता है। नवदुर्गा मन्दिर में वैष्णवी-सहित पाँच मातृकाएँ थीं, अर्थात् दो लुप्त थीं। यह भी 11वीं-12वीं सदी से इधर की नहीं हो सकतीं। जो कुछ देखा, उससे मालूम हुआ कि चौथी सदी में भी यहाँ कोई मन्दिर था, और उस समय भी पाशुपतों के लिए यह महत्वपूर्ण स्थान रहा। मन्दिर के भीतर केदारनाथ का जो दिव्य विग्रह है, जान पड़ता है, वह कोई प्राकृतिक शिला थी, जिसके एक किनारे से नीचे तक काफी पोल का पता पानी गिरने की आवाज से लगता है। गुप्तकाल में भव्य मन्दिर रहा होगा। फिर 11वीं-12वीं सदी में किसी ने नये विशाल मन्दिर को बनवाया, जिसको 19वीं सदी के आरम्भ में भूकम्प ने क्षति पहुँचाई और उसका जीर्णोद्धार किया गया। मन्दिर वैभव-सम्पन्न रहा होगा। हो सकता है, अकबर के समय में टुकड़ियाँ यहाँ तक पहुँची हों। 1741-42 ई. में रुहेले तो जरूर यहाँ पहुँचे। उन्होंने यहाँ की मूर्तियों को तोड़ा, धन को लूटा। यदि धातु की मूर्तियाँ रही होंगी, तो उन्हें उन्होंने गलाकर दरब के रूप में बेंच दिया।

साढ़े 9 बजे हम केदारनाथ से चले। उतराई थी और चलने का अभ्यास भी हो गया था, इसलिए पैर जल्दी-जल्दी बढ़ रहे थे। गौरीकुण्ड में डेढ़ घंटा रह खाने-पीने से निवृत्त हुए। यहाँ लक्ष्मीनारायण और हरगौरी की खण्डित पत्थर की मूर्तियाँ देखीं। मन्दिर में छोटी-बड़ी चार धातु-मूर्तियाँ भी हैं।

**कालीमठ**–उस दिन 5 बजे हम रामपुर पहुँच रात को वहीं ठहर गये। (12 मई) 5 बजे फिर चले। पाँच मील चलकर फाटा में चाय पी, और व्योंग में मध्यान्ह-भोजन करने की बात बलबहादुर को बतलाकर मैं आगे चल पड़ा। मैंने खण्डा में मूर्तियों का दर्शन करने के बाद सड़क के किनारे बैठकर जूता बनानेवाले शिल्पकारों से बातचीत की। सरकार ने श्रीनगर में चप्पल-जूता बनाना सिखाने का स्कूल खोला है, जिसमें सीखनेवालों को छात्रवृत्ति भी दी जाती है। उनसे मैंने उससे फायदा उठाने की बात कही, तो उनके जवाब को सुनकर मुझे अपनी ही भड़ामशाही पर अफसोस हुआ। वह कह रहे थे, चप्पल और बूट बनाना हम जानते हैं। उन्होंने

अपने बनाए जूते को दिखलाकर इसे प्रमाणित किया। हमारे लड़के अपने घर में यह सब सीख सकते हैं। असल में हमारी दिक्कत है अच्छे सिझे हुए चमड़े का सस्ते में पाना। हम कानपुर का चमड़ा मँगाते हैं। एक जूते में सात-आठ रुपया चमड़े ही का निकल जाता है, हमारी मजूरी नहीं पड़ती। चमड़ा सिझाने का ढंग सिखाया जाए, तो ठीक।

यात्रा में चीजों के भावों का कोई ठीक-ठिकाना नहीं था। आम तौर से यह समझना चाहिए, कि जितना ऊपर जाएँ, उतना ही दाम बढ़ता है। पर व्योंग चट्टी थोड़ी ही दूर पर दो खण्डों में विभक्त है। ऊपरी व्योंग में 11 आना सेर आलू मिल रहा था और निचले व्योंग में सवा रुपया सेर। हमें अफसोस हुआ कि हम ऊपरी चट्टी पर ही क्यों नहीं भोजन से निपट लिये। बलबहादुर ने भात और आलू की तरकारी बनाई। दाल में खामखा समय अधिक लगता, इसलिए दोपहर के लिए हम उसे बेकार समझते थे। आलू की तरकारी बिना प्याज-लहसुन की क्या अच्छी बन सकती है, पर यहाँ धर्मधुरन्धरों की चलती है, इसलिए कोई दूकानदार घर में चाहे खाता हो, लेकिन दूकान पर प्याज-लहसुन नहीं रखता।

जाते वक्त जुरानी में नारायणसिंह का फलों का बगीचा देखा था। वह पाँच ही फर्लांग नीचे था, वहाँ गए। अंगूर, मालटा, नारंगी, सेब कई तरह के फल लगे हुए थे। यदि पके फलों के बेंचने का भी इन्तिजाम होता, तो कितना अच्छा होता ? नारायणसिंह पेन्शनर ओवरसियर हैं। गाँव में कहीं दूसरी जगह रहते थे। बाग में माली था। पता लगा, कि इससे ऊपर सरकार ने फलों की एक नर्सरी कायम की है, और अक्कल के पूरे लोगों ने नर्सरी ऐसी जगह कायम की है; जहाँ पानी नहीं है। ये लोग चले हैं इस भूमि को फलों से मालामाल करने ? दफ्तरशाही से कोई आशा नहीं हो सकती।

साढ़े बारह बजे हम भेंत पहुँचे। चाहते थे, विशालमणिजी तुरन्त कालीमठ से चलें, जहाँ की अदभुत मूर्तियों का वर्णन करके उन्होंने मुझे बावला बना दिया था। लेकिन संस्कृत का पण्डित क्या, यदि तड़ाक-फड़ाक तैयार हो जाए। दो घंटे तो रानियों को सिंगार करने में लगता होगा। बेकरार था, लेकिन क्या करता ? भेंत की मूर्तियों को भी देखा। नीचे एक पत्थर की सुन्दर बावड़ी मिली, जिसको पत्थरों से पाट दिया गया था, नहीं तो अब भी उसमें पानी होता। यहाँ दूर तक बहुत कुछ समतल-सी भूमि है। पहाड़ में ऐसी जगह का राजधानी के लिए चुना जाना स्वाभाविक था, और उसी काल के अवशेष यह मन्दिर और बावड़ी है। बावड़ी की दीवार में 14वीं सदी की लिपि में 'भयहरनाथ जोगी सिध' लिखा हुआ था। और नीचे नवलिंग केदार का ध्वंस दिखलाया, जिसमें दीपधारिणी सवा बित्ते की एक धातु की मूर्ति थी। कुछ और भी भद्दी मूर्तियाँ थीं, भक्त स्त्री-पुरुष भी शामिल थे। धातु की मूर्ति को गाँववाले डर के मारे नहीं हटाते, लेकिन यह ज्यादा दिनों तक धूप और वर्षा बर्दाश्त करने के लिए यहाँ पड़ी रहेगी, इसकी कम आशा है। शायद उसके बचे रहने का कारण सुन्दर न होना भी है। उतराई उतरते मन्दाकिनी के पुल पर पहुँचे। उसे पार कर सवा मील के करीब चढ़ाई चढ़नी पड़ी, फिर कुछ उतराई उतरकर कालीगंगा के किनारे कालीमठ पहुँचे। किसी समय यह पाशुपतों का केन्द्र था। मुख्य मन्दिर के बाहर कत्यूरी लिपि में एक 18 पंक्तियों का 20 इंच लम्बा, 10 इंच चौड़ा शिलालेख था। यदि विशालमणिजी ने देर न की होती, तो हम अच्छे समय पर पहुँचते और फोटो ले सकते थे। लेकिन अब सूर्यास्त हो गया था। कुछ फोटो लिये। शिलालेख की कुछ पंक्तियाँ थीं –

"ऊँ।। संध्यासमाधि घटितांजलितः स्वपाणौ कृष्णे सकंपि सुम··क्षिणांसः शर्वस्य त··स्वकर संस्थित तोयराशेः (।) संचित्र (1) दयितयेव गृहीतकेशः।। दक्षोद्भवां तरुमपास्य शिरे प्रस्तुत शर्व्व··पतिमवाप्य··· (4)··गिरिपति गृहगोप्ता महारुद्राभिधार··(4) बालएवाभवत् स्वामी सर्व्वसंग्रामकंद्यतः रुद्रसून···11··कलिका 1 ला शैल···14··· संग्रामकीर्त्तिः प्राकृत कवयो 15 कर्त्तु कुद्व कैः पार्षाण···"

लिपि कत्यूरियों की थी। जिस राजा का यह शिलालेख था, वह रुद्र का पिता था, कत्यूरियों के प्राप्त अभिलेखों में इस नाम का कोई राजा नहीं मिलता है। हो सकता है, वह भेंत का ही राजा रहा हो।

गौरी मन्दिर में 40 इंच लम्बी, 24 इंच चौड़ी हर-गौरी की अत्यन्त सुन्दर पाषाण मूर्ति थी, जिसे देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। शिव चतुर्भुज थे, गौरी द्विभुज, नीचे गणेश और मयूरारूढ़ कार्तिकेय थे। दाता की

भी मूर्ति साथ में उत्कीर्ण थी। अखंडित इतनी सुन्दर हर-गौरी की मूर्ति शायद भारतवर्ष में कहीं न हो। भारत की यह अनमोल कलानिधि एक ऐसे कोने में पड़ी है, जहाँ केदारनाथ के जानेवाले हर साल के हजारों यात्रियों में कोई जाने के लिए तैयार नहीं होता। मुझे इस बात का बड़ा अफसोस था कि प्रकाश के अभाव के कारण मैं उसका फोटो नहीं ले सका।

हर-गौरी के अतिरिक्त सरस्वती और लक्ष्मी के भी यहाँ मन्दिर हैं। लक्ष्मी के मन्दिर में ही उक्त शिलालेख लगा हुआ था। बाहर खुले में कत्यूरी-काल की बहुत-सी खण्डित मूर्तियाँ थीं। मुखलिंग (एक मुँहवाला, तीन मुँहोंवाला, चार मुँहोंवाला) और शिश्न लिंग। इसे पाशुपतों का प्रमुख स्थान बतला रहे थे। गढ़वाल-कुमाऊँ क्या, पश्चिमी नेपाल तक के अधिकांश लोग खश हैं, जिनमें ब्राह्मण और क्षत्री दोनों शामिल हैं। वर्तमान शताब्दी में खश नाम अपमानजनक समझा जाने लगा, इसलिए लोगों ने अपने को खश कहने से इन्कार कर दिया, और अब सभी अपने को राजपूत बतलाते हैं। यहाँ खशों की प्रथाओं में अपनी लड़की को देवचेली बनाकर देवता को अर्पित करना भी था। इस शताब्दी में भी देवचेलियाँ बनती थीं, और अभी कुछ ही साल हुए, आखिरी देवचेली मरी। देवचेलियाँ जिस घर में रहती थीं, उस घर को भी विशालमणिजी ने दिखलाया। जातीय अपमान समझकर देवता के प्रकोप का भय रहते भी इस प्रथा को बन्द कर दिया गया। मद्रास की तरह यहाँ देवदासी-प्रथा निषेध का कोई कानून बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। विशालमणिजी दुभागी ब्राह्मण हैं। शायद गंगाड़ी और खश दोनों ब्राह्मणों के बीच में हाथ-पैर फैलाने के कारण यह नाम दिया गया। उसी शाम लौटकर भेत आते हुए मेरे दिल में ख्याल आ रहा था, यह अद्‌भुत मूर्ति बच गई ! शायद लोगों ने इसे कहीं छिपा दिया, और ऐसा करके उन्होंने महान् काम किया, इसमें सन्देह नहीं।

**ऊषीमठ**–13 मई को सवा 5 बजे हम दोनों चले। विशालमणिजी भी नाला तक पहुँचाने आए। जाते वक्त हमने ख्याल नहीं किया था, लेकिन अब देखा, नाला मन्दिर की दीवार पर सड़क के किनारे एक छोटा-सा शिलास्तूप है। बौद्ध-धर्म का इतना ज्वलन्त अवशेष और दूसरा कुमाऊँ-गढ़वाल में देखने को नहीं मिला। छोटे-मन्दिर के चार पंक्तियों के लेख को पढ़ने की कोशिश की, पर उसके लिए कुछ समय की आवश्यकता थी। लेख में शाके 1198 (सन् 1276 ई.) का उल्लेख था। 9 के अंक के बारे में निश्चित नहीं था। इसमें 'सरस्वती प्रसादेन घटिता प्रतिमा सुभा' लिखा था। सरस्वती प्रसाद क्या मूर्तिकार था ?

नाला से आगे बढ़े, तो उत्तराखण्ड विद्यापीठ आया। वहाँ के प्रिंसिपल एक मद्रासी सज्जन थे। विद्यालय में इस वक्त छुट्टी थी, लेकिन उन्होंने बतलाया, कि विद्यापीठ इस इलाके में शिक्षा के प्रचार में क्या कर रहा है। पुल पार कर चढ़ाई शुरू हुई। 8 बजे हम ऊषीमठ पहुँच गए। बदरीनाथ प्रबन्ध समिति के सहायक सचिव बहुगुनाजी और केदारनाथ के रावल यहीं पर थे, दोनों को इसका अफसोस रहा, कि वह इस समय केदारनाथ में नहीं थे। यहाँ की चीजें रावलजी ने दिखलाईं। एक ताम्र-पत्र संवत् 1868 (सन् 1811 ई.) का गीर्वाण युद्ध-विक्रम शाह के समय का था, जिसमें रामदास थापा की माँ के दान का उल्लेख था। "शाके 1719 (सन् 1797 ई) ताम्र-पत्र में माघ कृष्ण 14 सोम रणबहादुर साह··· कनिष्ठ पत्न्या श्रीकांतवती देव्या निजभर्तृविक्रमार्जित कूर्मचल" लिखते हुए किसी दान का उल्लेख किया गया था। ये दोनों लेख इस भूभाग पर गोरखा-शासन के अवशिष्ट चिह्न थे।

यहाँ की पुरानी बहियों और अभिलेखों से उस समय के आर्थिक और सामाजिक जीवन का काफी पता लग सकता है। उन्हें मैं चलते-चलते नहीं देख सकता था। वह तो अनुसन्धान का विषय है। उषा का सम्बन्ध क्यों इस मठ से जोड़ा गया ? पाण्डवों से सम्बन्ध होना गढ़वाल के लिए स्वाभाविक था। पाशुपतों का गढ़ होने से उसकी भी गुंजाइश है, लेकिन उषा तो न तीन में है न तेरह में। उषा-मन्दिर के बरांडे में कई मूर्तियाँ थीं, जिनमें नटराज भी थे। एक जगह दो पाषाण-सूर्य की मूर्तियाँ आमने-सामने थीं, भीतर शिवलिंग, ऊपर मुखलिंग था। मूर्तियों में दाढ़ीवाले एक राजा की मूर्ति थी, जिसके बीच में दाढ़ी-जटाधारी पाशुपताचार्य और पास में राजकुमार और राजकुमारी की मूर्तियाँ थीं। यह पिछले कत्यूरी-काल की हो सकती हैं। ऊषीमठ भी प्राचीन स्थान है।

भोजन करने के बाद 3 बजे हम वहाँ से चले। बलबहादुर अब बहुत धीरे-धीरे चल रहा था। श्रीनगर में उसे भोजन के साथ डेढ़ रुपया रोज काफी मालूम हुआ, लेकिन अब वह अपने भाइयों को उससे चौगुना-पँचगुना कमाते देख रहा था। एक जगह तो घंटों इंतिजार करना पड़ा, सन्देह होने लगा, उसे कहीं कुछ हो तो नहीं गया। किसी तरह ग्वालियाबगड़ पहुँचे और रात के लिए वहीं ठहर गए। रमणीय स्थान था। इससे पहिले की चट्टी पर पानी का बहुत ढाला था, और यहाँ एक स्वच्छ जल की नदी बह रही थी, जिसकी धारा हमारे ठहरने के स्थान के पीछे से पंचक्की चलाने के लिए जा रही थी।

**तुंगनाथ**–14 मई को 5 बजे घोड़े पर चले। चढ़ाई नदी पार करते ही शुरू हो जाती थी। ऐसे स्थान पर घोड़े का मिलना यात्री के लिए वरदान है, और जो नहीं लेता, वह कितनी ही बार पछताता भी है। वाणियाँ-कुण्डी तक पहुँचते-पहुँचते घोड़ा थक गया, और उसे वहीं छोड़ देना पड़ा। साढ़े 9 रुपये में तुंगनाथ के लिए साढ़े चार हजार से 12 हजार फुट की ऊँचाई पर पहुँचानेवाला दूसरा घोड़ा मिल गया। नदी के इस पार आते ही पहाड़ हरा-भरा था। वाणियाँ-कुण्डी तो बरफ पड़ने की जगह में थी। यहाँ खरशू और तून के वृक्ष अधिक थे। इस पहाड़ी में गाँव अधिक नहीं हैं, लेकिन जंगलों के कारण पशुपाल चराने के सुभीते से इधर झोंपड़ियाँ लगाकर बस जाते हैं। उन्हीं में से कुछ ने चट्टियों में अपनी दूकानें भी खोल ली हैं। चट्टियों के कितने ही घर उजाड़ थे। दूकानों से लोगों को मालामाल होते देख दूसरों को भी हिरस हुई और जरूरत से अधिक दूकानें बाँध लीं। फिर कुछ को निराश होकर अपने घर छोड़ने पड़े, जिनकी दीवारें अभी भी खड़ी थीं। वनस्पतियों में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा, और हम तुंगनाथ के पहिले ऐसे स्थान में पहुँचे, जहाँ झाड़ियाँ भी खतम होकर घास ही रह गई थी। 10 बजे हम तुंगनाथ पहुँचे। बरफ कहीं-कहीं थी। तुंगनाथ से अधिक ऊँची जगह पर कोई हिन्दू मन्दिर नहीं है। यहाँ की पुरानी खण्डित मूर्तियाँ बतला रही थीं, कि यह पुराना स्थान है। मन्दिर में शिवलिंग है, जिसके पीछे पद्मासनस्थ कुण्डलधारी भक्तमूर्ति है। उसके पास पाँच-छः इंच की धातु की भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्धमूर्ति है। तुंगनाथ हिमालय के गर्भ में है, उसके उत्तर की ओर हिम-शिखरों की पंक्तियाँ चली गई हैं, और नीचे हजारों पहाड़ मानो हिम-शिखरों की ओर ध्यान लगाए एकटक देख रहे हैं। यहाँ से बहुत दूर तक का दृश्य दिखाई पड़ता है। बदरीनाथ के सभी यात्री यहाँ नहीं आते, इसलिए बस्ती छोटी-सी है। लकड़ी दूर से लानी पड़ती है अतएव महँगी होती है, सर्दी भी अधिक है। रोटी बनाकर खाने से पूड़ी खाने में ही सुभीता है, जो तीन रुपये सेर मिल रही थी। भोजन करके 11 बजे हम उतरने लगे। उतराई-ही-उतराई उस चट्टी तक रही, जहाँ सीधा रास्ता आकर मिल जाता है। कुछ देर प्रतीक्षा करने पर बलबहादुर आए। पौने तीन मील चलने पर पाँगरबासा मिला। चेस्टनट को पहाड़ में पाँगर कहते हैं। यहाँ जंगलों में इसके पेड़ मिलते हैं, इसीलिए यह नाम दिया गया। पाँगर के अतिरिक्त खरशू और केले भी यहाँ बहुत हैं। हरियाली के कारण बहुत रमणीय स्थान है। रात के लिए हम यहीं ठहर गए।

अगले दिन (15 मई) फिर 5 बजे चले। गगनचुम्बी वृक्षों के घने जंगल के बीच से मण्डल चट्टी तक उतराई का रास्ता था। डाकबँगला कुछ ऊपर ही रह गया, और चट्टी नीचे मैदान-सी बहुत चौड़ी उपत्यका में थी। यहाँ भी टीका के देखने और लगाने के लिए डाक्टर का कैम्प था, लेकिन उसकी कोई चिन्ता नहीं थी। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने पर बलबहादुर आया और उसे टीका लगवाना पड़ा। इधर भी टिड्डियों ने आकर फसल को काफी नुकसान पहुँचाया था। चापी नदी पार करके उसके दूसरे किनारे से नीचे की ओर चले, और फिर एक बाँही पार करके पहाड़ के नीचे पहुँचे। जगह साढ़े चार मील के करीब होगी। घोड़ा मिला, और चाहते तो वह बदरीनाथ तक साथ चल सकता था, लेकिन उस वक्त यह ख्याल नहीं आया। चढ़ाई चढ़ के गोपेश्वर पहुँचे।

**गोपेश्वर**–यह मन्दिर केदारनाथ जैसा ही विशाल है। छठी और बारहवीं सदी के अभिलेख उसकी प्राचीनता और महिमा को बतलाते हैं। मन्दिर के सभामण्डप को पीछे बनवाया गया। खण्डित मूर्तियाँ एक चौतरे पर रखी थीं, और कितनी ही दूसरी जगहों में भी बिखरी थीं। चतुर्मुखलिंग और शिश्नलिंग बतला रहे थे कि यह पाशुपतों का स्थान रहा। पुराने ढंग की बूटधारी सूर्य की मूर्ति भी मन्दिर के भीतर मिली। विशाल त्रिशूल पर

अशोकचल्ल, क्राचल्ल के अतिरिक्त तीन पंक्तियों का ब्राह्मी का भी एक लेख था, जो दक्षिणी ब्राह्मी से ज्यादा मिलता है।

हमें खाना खाना था। बलबहादुर ने अब अपनी सुस्ती का रहस्य खोला—"मैं डेढ़ रुपया रोज में नहीं रहूँगा।" पहिले बतलाया होता, तो उस घोड़े को बदरीनाथ के लिए ले लिये होते। भोजनोपरान्त कुछ विश्राम करके 2 बजे चले। समतल-सा रास्ता था, डेढ़ घंटे में चमोली पहुँच गए। चमोली से बलबहादुर को छोड़ना था। धर्मशालाएँ भरी हुई थीं, कहीं जगह नहीं थी, इसलिए रात को वहाँ रहना भी मुश्किल था। सोचा, बेकार का सामान जो लादे फिर रहे हैं, उसकी जरूरत नहीं है। उसे यहीं किसी के पास पटक दें, और एक कम्बल तथा पोटफैल में कुछ चीजें भरकर चल दें। अस्पताल के कम्पौंडर श्री जीवानन्द सुन्दरियाल से यों ही भेंट हो गई। उन्होंने सामान अपने पास रखना स्वीकार कर लिया। बलबहादुर को 11 दिन के लिए मैंने पचीस रुपया दे दिया। सोचा, अगली चट्टी (मठ) में सिर रखने के लिए कोई जगह मिल ही जाएगी, इसलिए वहाँ से लम्बा डग बढ़ाते चल पड़ा। मठ में दूकानदार भलेमानुस मिला, उसने मेरे लिए सामान का दाम लेकर रोटी बनाकर देना स्वीकार कर लिया। यहीं वामा के उदयसिंह पाल मिल गए। शिक्षित तरुण, और नीती घाटा के रहनेवाले होने से तिब्बत के सौदागर भी थे। उन्होंने शायद मेरी कोई पुस्तक पढ़ी थी। उनके मित्र का घर आगे सड़क पर था। उन्होंने कहा—वह जरूर कोई घोड़ा ठीक कर देंगे। सबेरे साढ़े 4 बजे ही मैं उनके मित्र के पास पहुँचा, उन्हें पीठ फेरते ही कल की बात भूले हुए पाया। लेकिन, अब मेरे पैर खुल गए थे, सामान से भी पिण्ड छुड़ा लिया था, इसलिए ऊनी चादर कन्धे पर रखे, लाठी में पोटफैल और कन्धे पर कैमरा टाँगे चल पड़ा। हिम्मत हारने की क्या जरूरत, मैं बदरीनाथ तक चल सकता था। आगे सीयासाई की चट्टी मिली। दूकानदार के चूल्हे में चाय खौल रही थी। मैं पीने के लिए बैठ गया। यह आपके लिए अच्छी नहीं होगी, कहते उसने नई चाय बना के पिलाई। उसने बतलाया, कि आगे हाट गाँव का पुल आएगा, वहाँ केदारदत्त की दूकान है। उनके पास घोड़ा है। वह किराये पर मिल जाएगा। चमोली से कल मैं दो मील आया था और सीयासाई से पाँच मील और आने पर केदारदत्त मिले। घोड़ा भी 17 मील तक (जोशी मठ) के लिए ठीक कर लिया। यहाँ से अब रास्ता अलकनन्दा से बाएँ था। केदारदत्त के भाई वाचस्पति घोड़े के साथ चले।

वह मसूरी में रसोइया रह चुके थे। भला इतना सुभीता कहाँ मिल सकता था। मैंने सोचा, अब बदरीनाथ तक इनको साथ ले चलना होगा, और चमोली लौटकर ही छोड़ना है। मठ से 15 मील और घोड़ा लेने की जगह से 10 मील और चलकर पातालगंगा चट्टी में गए। यहाँ 1 बजे से 2 बजे तक ठहरकर भोजन किया। वाचस्पति वाणी के पति चाहे न हों, लेकिन चूल्ही के पति अवश्य थे। एक ही सामग्री किसी के हाथ में पड़कर गोबर हो जाती है और किसी के हाथ में अमृत। वाचस्पतिजी भोजन बनाने लगे, और मैं जरा-सा इधर-उधर घूमने गया। वहीं नागपुर के श्री हृषिकेश शर्मा की पत्नी मिल गईं। उनके साथ आठ-नौ नागपुर के शिक्षित और सुसंस्कृत पुरुष और महिलाएँ थीं। वाचस्पति ने स्वादिष्ट भोजन खिलाकर तृप्त कर दिया था, नहीं तो शर्माजी का आग्रह अपने दल के साथ चलने का था। पर, मैं एक-एक दिन में बीस-बीस तीस-तीस मील की मंजिल मार रहा था, और उस मण्डली के साथ चींटी की चाल चलना पड़ता। मसूरी से जितना समय नियत करके आया था, उससे अधिक देना नहीं चाहता था।

**जोशीमठ**—अधिकतर रास्ता चढ़ाई का था, पर पैदल चलना नहीं था, घोड़ा तथा वाचस्पति दोनों फुर्तीले थे। इन दोनों के साथ तो मन करता था, एक मर्तबे हिमालय की लम्बी दौड़ लगाई जाए। 6 बजे जोशीमठ पहुँचे। वाचस्पतिजी को खाना बनाने और घोड़े का इंतिजाम करने के लिए छोड़ दिया, और अपने यहाँ के प्राचीन मन्दिरों—नरसिंह, वासुदेव, नवदुर्गा—को देखने गया। जोशीमठ, ज्योतिर्मठ का बिगड़ा रूप बतलाया जाता है, लेकिन इन दोनों नामों से इतिहास की कुंजी नहीं खुलती। इतना मालूम है कि ज्योतिर्मठ में शंकराचार्य ने अपना एक प्रधान मठ स्थापित किया था, जहाँ गद्दी पर शंकराचार्य भी होते थे। वह परम्परा 18वीं सदी तक आई, और अन्तिम संन्यासी के न रहने पर मलाबार के ब्राह्मण रसोइए को ही रावल के नाम से महन्त बना दिया गया। यही रिवाज आज तक चला आता है। जोशीमठ प्रतापी कत्यूरियों की राजधानी थी, जो एक

समय संयुक्त गढ़वाल-कुमाऊँ के शासक थे। राजधानी और राजप्रासाद के कोई अवशेष नहीं मिलते, पर मन्दिर उस समय के इतिहास की गवाही देते हैं। रात हो जाने से मैं यहाँ कोई काम नहीं कर सका। यह भी मालूम हुआ कि अधिकारी लोग बदरीनाथ चले गए हैं।

**बदरीनाथ**—अगले दिन (17 मई) को साढ़े 4 बजे ही हम रवाना हुए। दो मील नीचे धौली और अलकनन्दा के संगम पर विष्णुप्रयाग है। वहाँ तक उतराई थी, जिसमें घोड़े पर चढ़ने की जरूरत नहीं पड़ी। दस मील और चलकर हम पाण्डुकेश्वर आ गए। पाण्डुकेश्वर के दो पाषाण मन्दिर कत्यूरी-काल के चिन्ह हैं। वे अपनी मूर्तियों और मन्दिर की शैली से विशेष महत्त्व रखते हैं। एक मन्दिर गुम्बद की तरह की छतवाला है, जो अधिक पुराना है। इसमें पत्थर की मूर्ति है, और दूसरे में धातु की विष्णुमूर्ति। पहाड़ में भी मैदान की तरह खण्डित मूर्तियों को गंगा में फेंक देने का रवाज है, इसलिए न जाने कितनी मूर्तियाँ अलकनन्दा में पड़ी भावी गवेषकों की प्रतीक्षा कर रही हैं। यहाँ एक गणेश की भी खण्डित मूर्ति देखी। कोई शैव-चिन्ह मालूम नहीं हुआ। लक्षण से मालूम होता है, पास के खेतों में भी पुरानी बस्ती के चिन्ह मिलेंगे। पाँण्डुकेश्वर में काफी दूकानें हैं। विष्णुप्रयाग से इधर ऐसी जगह में हम आ गए थे, जिसको आलू की भूमि कह सकते हैं। चाहे आज से सौ वर्ष ही पहिले शिकारी विल्सन ने इधर आलू का प्रचार किया, लेकिन आलू स्वयं कहता है, "यह पूर्वजन्म की मेरी मातृभूमि है।" इसीलिए वह बहुत और बड़ा-बड़ा होता है। और इसीलिए सस्ता भी बहुत है। दूकान पर मसालेदार खड़े पीले-पीले आलू सजे देखकर मुँह में पानी आने लगता। अधिक पैदा होने से आलू का अपमान करना मुझे अपराध मालूम होता लगता है। अभी सबेरा ही था, इसलिए भोजन यहाँ नहीं किया, लेकिन आलू हमने खाया। लामबगड़ होते बदरीनाथ पहुँचने की अन्तिम चट्टी हनुमान चट्टी मिली। वृक्षों के स्थान से ऊपर थी, और इसलिए लकड़ी बड़ी मँहगी थी। बेवकूफ ही यहाँ तीन रुपया सेर पूड़ी छोड़कर सवा दो रुपया सेरवाले आटे से कच्ची रसोई बनाने की कोशिश करेंगे। वाचस्पतिजी को भोजन नहीं बनाना था। भोजन करके कुछ देर विश्राम किया, और ढाई बजे अन्तिम पाँच मील की यात्रा के लिए हम चल पड़े। साँस फुलानेवाली चढ़ाई थी, लेकिन मैं मजबूत घोड़े की पीठ पर था। पंजाब-सिन्ध क्षेत्र के मैनेजर ने बहुत आग्रहपूर्वक अपने यहाँ की शाखा में ठहरने के लिए चिट्ठी लिख दी थी। बदरीनाथपुरी से पहिले ही और अलकनन्दा के बाईं तरफ सड़क पर क्षेत्र मिला। चिट्ठी पाते ही कर्मचारियों ने बड़ी आवभगत की, और एक अच्छे स्थान में आसन लगवाकर चाय और गरम कपड़े का इंतिजाम कर दिया। पंजाब-सिन्ध क्षेत्र पश्चिमी पंजाबी और सिन्धी भक्त धनिकों की सम्मिलित संस्था है, जिसकी स्थापना इस शताब्दी के आरम्भ होने से कुछ पहिले ही हो गई थी। समय बीतने के साथ इसके दाताओं की संख्या बढ़ी, और ऋषिकेश में एक छोटा-सा मुहल्ला ही इसके मकानों का बन गया। विभाजन के बाद वे दाता सूखे पत्ते की तरह अपनी जन्मभूमि से उड़कर बिखर गए। अब वह इस स्थिति में नहीं थे, कि क्षेत्र की पहिले की तरह उदारता से सहायता करते। लेकिन तो भी जो कुछ होता है, वे करते हैं। यहाँ के भक्तजी बड़े ही मधुर स्वभाव के मिले।

वाचस्पति को छोड़कर मैं मील-भर पर अवस्थित पुरी में गया। अभी दो-ढाई घंटा दिन था। चाहा कोई गाइड की नई पुस्तक ले लूँ। गोविन्दप्रसाद नौटियाल की किताबों और शिलाजीत की दूकान पर पहुँचा। नाम सुनते ही मालूम हुआ, हम वर्षों से बिछुड़े मिले। उन्होंने अपनी पथ-प्रदर्शिका के नए संस्करण की पुस्तक दी। वहाँ से मन्दिर के सेक्रेटरी श्री पुरुषोत्तम बगवाड़ी के पास गया। मेरे नाम को सुनते ही वह जल्दी-जल्दी कोठे पर से नीचे उतर आए, और कहा—आप मील-भर दूर नहीं ठहर सकते, यहाँ हमारे अतिथि-भवन में ठहरना होगा। मैंने कहा, घोड़े का लौटना है। उन्होंने कहा—उसको लौटा देंगे, हम दूसरा घोड़ा देंगे। बदरीनाथ से इतनी जल्दी जाने की मेरी भी इच्छा नहीं थी। अतिथि-भवन बड़ा साफ-सुथरा नया मकान था। उसके सबसे अच्छे कमरे में हमें ठहराया गया। अगले दिन (18 फरवरी) को रुपया देकर वाचस्पति को छुट्टी दे दी। भोजन बदरीनाथ की भोजनशाला से आता। गंगासिंह दुरियाल ने बदरीनाथ की जो कारस्तानी बतलाई थी, उसका प्रमाण मिल गया, जब बासमती चावल का भात सामने आया। बदरीनाथ का दर्शन करना जरूरी था, क्योंकि कितने ही लोग लिख चुके थे, मूर्ति बुद्ध की है। दर्शन के लिए सबसे उपयुक्त समय सबेरे का बतलाया गया, जब कि

मूर्ति को नग्न करके स्नान कराया जाता है।

वगवाड़ीजी ने गंगासिंह दुरियाल को हमारा पथ-प्रदर्शक बना दिया। दुरियाल लोग बदरीनाथ के चार मुख्य मुरब्बियों में से हैं। दूसरे तीन हैं–माणा के मारछा, जोशीमठ के जोशियाल और डिमरी पुजारी ब्राह्मण। सबसे ऊपर मलाबार का नम्बूदरी रावल होता है।

उस दिन दोपहर बाद गंगासिंह को लिये मैं बसुधारा की ओर चला। असली लक्ष्य माणा गाँव जाने का था, पर माणा के सामने का पुल झूले पर लकड़ी की पटरियों को बैठाकर दुरुस्त नहीं किया गया था। गंगासिंह, पूछने पर मारछा और दूसरे दुरियाल लोग उसी बात को दोहराते थे–बदरीनाथ भोट देश के थोलिंग मठ के देवता थे। भोटियों के भक्षाभक्ष्य खाने से असंतुष्ट होकर वह मन्दिर के दीवाल में छेद करके निकल भागे। भोटियों ने पीछा किया। मानाधुरा के पास उन्हें बहुत नजदीक आया देखकर बदरीनाथ ने अगिन-ज्वाला की दीवार खड़ी कर दी। लामा उससे भी पीछे नहीं हटे, उनकी दाढ़ी-मूँछ जल गई। तभी से तिब्बती लोगों के मुँह पर दाढ़ी-मूँछ का अभाव-सा होता है। हाथ में पड़ना निश्चित देखकर बदरीनाथ पास में चरती चँवरियों की पूँछ में छिप गए। इस कृपा के लिए उन्होंने वरदान दिया कि चौंरी की पूँछ आज से पवित्र समझी जाएगी। फिर वह इस स्थान में आए। यहाँ उस समय शिव-पार्वती रहते थे। बदरीनाथ को यह जगह पसन्द आई और दखल करने की सोचने लगे। शिव के त्रिशूल के सामने इनकी कैसे चलती, इसलिए बल की जगह छल का रास्ता स्वीकार किया। दुरियालों का गाँव बावणी पास ही में पड़ता है। वहाँ अब भी वह शिला मौजूद है, जिस पर सद्योजात शिशु का रूप लेकर बदरीनाथ क्या-क्या-हाँ करने लगे। शिव-पार्वती टहलने के लिए निकले। पार्वती को बच्चे को एकान्त में पड़ा देखकर दया आ गई, उसे उठाना चाहा। अन्तर्ज्ञानी शंकर ने मना किया, लेकिन पार्वती अपने वात्सल्य की पीड़ा बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं हुई, उठाकर ले आई। मन्दिर में रख दिया। दोनों प्राणी तप्तकुण्ड में स्नान करने गए। लौटकर आए तो दरवाजा बन्द था। कितना ही खटखटाएँ, लेकिन भीतर से कोई जवाब नहीं दे रहा था। पार्वती चिल्लाने और झुँझलाने लगीं। शंकर ने मुस्कुराकर कहा–"मैंने कहा न, दुनिया में बहुत छल-प्रपंच है।" पार्वती के कान लाल हो गए। शंकर ने शान्त करते हुए कहा–"शान्ति, शान्ति, दुनिया बहुत लम्बी-चौड़ी है। झगड़ा मत करो, चलो हम दूसरी जगह अपना घर बसाएँगे।" पार्वती ने कहा–"मैं इसका बदला बिना लिये नहीं जा सकती। तप्तकुण्ड के पानी को बर्फ से ठण्डा कर देती हूँ, जिसमें इस शैतान को यहाँ की सर्दी में गरम-गरम पानी नहाने को न मिले।" शंकर ने कहा–"इससे इसका बुरा नहीं होगा, बेचारे लोग नाहक कष्ट पाएँगे।" लेकिन, गौरी कुछ भी किए बिना जाने के लिए तैयार नहीं हुईं। उन्होंने शाप दिया–"अब से इस भूमि में चावल नहीं होगा।" दस हजार फुट के ऊपर चावल ? दोनों प्राणी नीचे उतरते जब कांचनगंगा नाम के सूखे नाले पर से गुजरे, तो देखा–लोग पीठ पर बोझा लादे हुए जा रहे हैं। पार्वती ने पूछा–"क्या ले जा रहे हो ?" लोगों ने कहा–"भगवान् के लिए बासमती चावल।" शंकर ने मुस्कुरा दिया। पार्वती के कलेजे में छुरी चुभ गई। उनका शाप भी व्यर्थ गया। यहाँ चावल नहीं, तो दूसरी जगह से बासमती चावल आ रहा है !

रास्ते में सड़क के आसपास दो-चार घर मिले। ये मारछा लोग थे। उन्होंने अपने खेतों में घर बना लिये थे। नवम्बर से अप्रेल तक छः महीने यह भूमि बर्फ से ढँकी रहती है। इस समय मारछा लोग अपने पशुओं और प्राणियों को लेकर शताब्दियों के परिचित स्थानों में नीचे चले जाते हैं। फिर आकर खेत तैयार करते, उसमें जौ की या आलू की फसल बोते हैं। माणा के सामने मातामूर्ति तक हम गए। मातामूर्ति की छोटी-सी मढ़ी हाल ही में किसी ने बनवाई थी, और उसमें एक दरिद्र-सी मूर्ति बैठा दी थी। यही बाबा बदरीनाथ की माता हैं। कलयुगी पुत्र माता का क्या सम्मान करे, जबकि उनके देवता भी अपनी माता को जंगल में भूखी तपस्या करने के लिए बैठाने से बाज नहीं आते। वहाँ से लौटकर शाम को पण्डा-पंचायत ने चाय-पार्टी के साथ राहुल सांकृत्यायन को मान-पत्र दिया। नास्तिक राहुल और आस्तिकता की रोटी खानेवाले बदरीनाथ के पण्डे, कैसा विरोधियों का समागाम ? पर, संस्कृति धर्म के ऊपर है, इसी का यह सबूत था। राशन और कण्ट्रोल का जमाना था, वहाँ चाय-पार्टी में जितने लोग जमा हो गए थे, वे कण्ट्रोल की संख्या से कहीं अधिक थे।

फिर यहाँ केवल चाय-पार्टी नहीं थी, बल्कि इतना अधिक पकाना था कि इसे भोज पार्टी कह सकते हैं। यह हमारे देश की सरहद के एक छोर के अन्तिम अस्थायी नगर में हो रही थी। इससे यह भी पता लगता था कि तरुण पण्डा-सन्तान कितनी आगे बढ़ी है।

19 मई को निर्वाण-दर्शन करना था। सबेरे 7 बजे के करीब मैं मंदिर में पहुँच गया। मन्दिर के तीन खण्ड हैं। सबसे पीछे गर्भगृह, उसके बाद छोटा-सा मण्डप, उसके बाद कुछ अधिक बड़ा मण्डप। गर्भगृह में नम्बूदरी रावल और उनके सहायक डिमरी पुजारी को छोड़ और कोई नहीं जा सकता, न कोई मूर्ति को हाथ लगा सकता। मध्य-मण्डप में द्वार से सटकर मैं खड़ा हुआ। मूर्ति वहाँ से तीन-चार फुट से अधिक दूर नहीं होगी। बगवाड़ीजी की हिदायत के अनुसार दिये की टेम भी खूब बढ़ा दी गई थी। मैं वहाँ से मूर्ति को अच्छी तरह देख सकता था। स्नान कराने के लिए मूर्ति नंगी कर दी गई थी। इसी को निर्वाण-दर्शन कहते हैं। मूर्ति काले पत्थर की थी। आँख, नाक, मुँह लिये एक बड़ा-सा पत्थर का खण्ड, मालूम होता है, किसी ने तराशकर निकाल दिया है। लेकिन इसे तराशा नहीं कहना चाहिए, शायद हथौड़े से जान-बूझकर तोड़ा गया या पत्थरों में फेंकते यह हिस्सा निकल गया। बाएँ हाथ की भी एक तह पत्थर की निकल गई थी। पद्मासनस्थ मूर्ति के इस हाथ की हथेली पैरों पर थी। दाहिने हाथ से अधिक पत्थर निकला था, जो भूमिस्पर्श मुद्रा में मालूम होता था। मूर्ति पद्मासनस्थ भूमिस्पर्श मुद्रायुक्त बुद्ध की है, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं। रावलजी ने पीछे बतलाया कि छाती पर जनेऊ की रेखा है। इससे जैन मूर्ति होने का भी सन्देह हट गया, क्योंकि वह प्रायः दिगम्बर होती हैं। एकांश-चीवर पहने बुद्धमूर्ति के चीवर का रूप जनेऊ-जैसा मालूम होता है, यह सभी जानते हैं। पास में और भी कई मूर्तियाँ थीं, जिसमें नारदजी की धातुमूर्ति भी बुद्धमूर्ति मालूम होती थी। रावल ने बतलाया कि पीठासन में कुछ रेखाएँ हैं, जो फूल, पत्ते या अक्षर हो सकते हैं। पुराने रावल ने और भी समर्थन किया। 21 मई को उन्होंने कहा—"इस मूर्ति के बुद्धमूर्ति होने में मुझे कोई सन्देह नहीं है। मैंने सारनाथ और दूसरी जगहों में ऐसी मूर्तियाँ देखी हैं।" उन्होंने यह भी कहा—1. नीचे अलकनन्दा के साथ सटे हुए नारद-कुण्ड में और भी मूर्त्तियाँ हैं। शरद के महीनों में धार के क्षीण हो जाने पर नारद-कुण्ड अलग, पर चट्टान से ढका रह जाता है, अतः अन्धकारावृत्त रहता है ! मुझे लोगों ने बतलाया था कि मुँह में तेल भरकर कुल्ला करने से वहाँ प्रकाश अधिक हो जाता है, और मूर्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं ! मैंने वैसा ही किया और पानी में पड़ी हुई कितनी ही मूर्तियाँ देखीं। 2. बदरीनाथ की मूर्ति बुद्ध की है, वह पद्मासनस्थ है, बाँहों और मुँह का कितना ही पत्थर निकल गया है। छाती पर जनेऊ की भाँति रेखा, सिर के पिछले बचे हुए भाग में केश मालूम होते हैं। 3. मैं समझता हूँ कि प्राचीन बदरीनाथमूर्ति के नष्ट होने पर पहिले से फेंकी बुद्ध-मूर्ति लाकर उसकी जगह रख दी गई। 4. मूर्तिकला की दृष्टि से अखण्ड रहते समय मूर्ति बहुत सुन्दर रही होगी।

कल्पना दौड़ लगाती कहने लगी : हिमालय पर से तिब्बत के शासन के उठने के समय जो खूनी संघर्ष हुआ था, उसमें तिब्बतवालों का विशेष पक्षपात होने से बौद्ध-विहार और मूर्तियाँ भी जौ के साथ घुन बन गईं। इस प्रकार 9वीं या 10वीं शताब्दी में यहाँ के विहार की यह बुद्ध-मूर्ति और दूसरी मूर्तियाँ खण्डित हो या यों ही अंग-भंग हो नारदकुण्ड में पहुँच गईं। नारदकुण्ड रूपकुण्ड की लाशों की तरह ऐसी मूर्तियों का संग्रहालय बन गया। बुद्ध-मूर्ति पर धातु या पत्थर की बदरीनाथ की मूर्ति स्थापित कर दी गई। 1741-42 ई. में रुहेले आए। उन्होंने मन्दिर के धन को लूटा, और मूर्तियों को गला या तोड़-फोड़कर पानी में फेंक दिया। पुराने मन्दिर का फिर जीर्णोद्धार करने की इच्छा हुई। स्थापना करने के लिए नारदकुण्ड से यह खण्डित बुद्ध-मूर्ति हाथ लग गई। उसे कुछ समय तक तप्तकुण्ड के ऊपर रखा गया। फिर गढ़वाल के राजा ने उसके लिए वर्तमान मन्दिर बनवा दिया, जहाँ वह स्थापित हुई।

चाय पीकर कलकत्ता के डाक्टर हिमांशु घोष और गंगासिंह दुरियाल के साथ मैं अलकनन्दा पार हो ऊपर की तरफ माणा गाँव को चला। अभी नीचे से बहुत कम ही लोग आए थे। कुछ स्त्रियाँ इसी समय पीठ पर सामान या बच्चे को लिये अपने घरों को लौट रही थीं। यह भारत का अन्तिम गाँव माणा काफी बड़ा है। ढाई साल से ऊपर हो गए भारत को स्वतंत्र हुए, लेकिन यहाँवालों को कोई चीज अगर नई दिखलाई देती

है, तो यही कि पहिले ही से घरों के टोटा रखनेवाले इस गाँव को अपने कुछ घर पुलिस चौकी रखने के लिए देने पड़े। दारोगा साहब भी मिले, जो असाधारण तौर से मोटे थे। भला पहाड़ी जगह के लिए यह शरीर उपयुक्त था ? माणा के बाद दूसरा गाँव तिब्बत अर्थात् चीन गणराज्य में पड़ता था, इसलिए यहाँ पर भारत सरकार सजग रहना चाहती है। सरदार पणिक्कर ने अपनी पुस्तक में लिखा है, कि चीन का समर्थन करने के सम्बन्ध में भारतीय सरकार दो दलों में बँट गई थी–सरदार पटेल, राजाजी तथा पुराने नौकरशाह समझौते के विरुद्ध थे, वह समझते थे, कि इससे अमेरिका नाराज हो जाएगा। पर, नेहरूजी पक्ष में थे। उत्तर-प्रदेश के मन्त्री अब मुख्यमन्त्री बाबू सम्पूर्णानन्द उत्तर के पड़ोसी से बहुत चिन्तित थे, इसलिए वह भी सीमा के मजबूत करने के पक्ष में थे। माणा गाँव के आगे अलकनन्दा पर एक स्वाभाविक पुल है, जिसे भीमसेन का पुल कहते हैं। कहते हैं, आगे एक और भी इसी तरह का पुल है। सभी माणावाले बदरीनाथ को तिब्बतवालों का देवता मानते हैं, जिससे यही सिद्ध होता है, कि वर्तमान बदरीनाथ में किसी समय एक अच्छा-खासा बौद्ध विहार था, जिसका सम्बन्ध तिब्बत के थोलिंग मठ से था। अब भी दोनों मन्दिरों का सम्बन्ध है, और दोनों एक-दूसरे के पास भेंट भेजते हैं। तिब्बत का यह पश्चिमी भाग शताब्दियों से डाकुओं का शिकारगाह रहा। लेकिन, माणा जैसे हमारे व्यापारी उसके कारण अपने व्यापार को नहीं छोड़ सकते थे। इसके लिए हथियारबन्द होकर जाना पड़ता था। कम्युनिस्ट अभी-अभी आए थे, इसलिए अभी डाकुओं को उच्छिन्न नहीं किया जा सका था। एकाध ही वर्षों बाद माणावालों को अपने साथ बन्दूक ले जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, ले जाने पर भी उसे सीमान्त पर चीनी फौज चौकी पर रख देना पड़ेगा, पर उस वक्त तो बन्दूकों की बड़ी आवश्यकता थी। माणावाले 15 बन्दूकें चाहते थे, लेकिन हमारी काठ की सरकारी मशीनरी अपने ढंग से ही चलती है, उसे किसी के जान-माल की क्या पर्वाह ? किसी तरह की उदारता दिखलाने पर एक बड़े सिद्धान्त की अवहेलना करनी पड़ती–भारत की जनता से यहाँ की सरकार को जैसा खतरा पहिले था, जान पड़ता है, उसे वर्तमान सरकार भी वैसा ही समझती है, इसलिए जनता को वह निहत्था करके रखना चाहती है, और अंग्रेजों के हथियार-कानून में जरा भी ढिलाई करने के लिए तैयार नहीं है।

माणा से लौटकर माध्याह्न-भोजन मैंने सिन्ध-पंजाब-क्षेत्र में भगतजी के यहाँ किया। उन्हें कष्ट होता, यदि उनके आतिथ्य को छोड़कर अतिथिशाला में आ जाता। यहाँ सभी चीजें महँगी थीं। आटा ढाई रुपये सेर से क्या कम होगा। दूसरी भी चीजें जो चमोली से मोटर से उतर या गरुड़ (अलमोड़ा) से खच्चरों पर होकर यहाँ आती थीं, भाड़े के मारे बहुत मँहगी हो जाती थीं। निश्चय ही सदावर्तों के लिए यह कठिन समय था। जितने रुपये में पहिले वह सौ को भोजन दे सकते थे, उतने में अब बीस को भी नहीं दे सकते। फिर सिन्ध-पंजाब-क्षेत्र तो ऐसे दाताओं का था, जिनके नीड़ उजड़ चुके हैं।

लौटकर बदरीनाथ के पुराने कागज-पत्र देखने की इच्छा प्रकट की। जान पड़ा, अधिकांश कागज-पत्र जोशीमठ में हैं। बगवाड़ीजी से कहने पर मालूम हुआ, कि वहाँ उसका ढेर है। यहाँ हमें 17वीं सदी की बहियाँ मिलीं। इनमें चीजों का भाव ही नहीं, बल्कि कभी-कभी किसी मुकदमे में रावल का दिया फैसला भी दर्ज था। उस समय दास-प्रथा थी। हो सकता है, दास-दासियों के क्रय-विक्रय का भी इसमें जिक्र हो। गोरखा-शासन के पहिले और उसके समय के भी कागज-पत्र मिलेंगे, जिनसे गढ़वाल के इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। हमारे विश्वविद्यालयों में हर साल डाक्टरों के निकालने की होड़ लगी हुई है, जिनमें अधिकांश "हलदी न जाने फिटकरी, रंग चोखा आए" के अनुसार झटपट पी-एच. डी. या डी. लिट्. बन जाना चाहते हैं। क्या उनमें से कुछ को जोशीमठ के अभिलेखों, केदारनाथ-बदरीनाथ के पण्डों की बहियों के अनुसन्धान में नहीं लगाया जा सकता ? मैंने बगवाड़ीजी को बहुत कहा, कि अक्तूबर में नारद-कुंड के भीतर की मूर्तियों की जाँच-पड़ताल होनी चाहिए, पर अभी तक उसके बारे में कुछ नहीं हुआ।

मन्दिर का घोड़ा और घोड़ों की तरह काम न होने से घास चरने के लिए बयाबान में छोड़ दिया गया था। यहाँ घोड़े कभी-कभी महीनों जंगली घोड़ों का जीवन बिताते हैं। शाम ही गंगासिंह को ताकीद कर दी गई थी, कि बड़े सबेरे ही घोड़े को ले आना।

20 मई के सबेरे गंगासिंह दुरियाल घोड़ा लेने गए। मैंने सोचा था 7 बजे चल पड़ेंगे, पर हमें बदरीनाथ से निकलने में बहुत देर लगी। बगवाड़ीजी हर तरह की सहायता देने को तैयार थे। दो ही दिन में यहाँ कितने ही मित्र बन गए थे, जिनके वियोग का मन पर असर होना ही था। सिन्ध-पंजाब-क्षेत्र में भोजन करके हम वहाँ से 11 बजे रवाना हुए। उतराई-ही-उतराई थी, जिसके लिए पैर तैयार थे। सूखी कांचनगंगा पार कर हनुमान चट्टी छोड़ जल्दी हरियाली देखने के लिए उतावले हो विनायक चट्टी पर पहुँचे। गंगासिंह पीछे रह गये थे, इसलिए भी थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यहीं माणावाले कुछ लोग मिल गए। वह कहने लगे, हजारों वर्षों से ढोरों और भेड़-बकरियों को लेकर हम गर्मियों में अपने गाँव में आते और जाड़ों में नीचे चमोली और आगे चले जाते हैं। पहिले कभी वहाँ जंगल रहे होंगे, जिससे हमारे पशुओं को चरने का आराम था। उस समय बोझा ढोने के लिए मोटरें नहीं आई थीं, अब तो सिवाय वहाँवाले लोगों की गाली सुनने के हमें कोई लाभ नहीं है। हमारे पशु किसी के खेत में चले जाएँ, तो सिरफुटौवल हो, और जंगल में जाएँ, तो झगड़ा। आखिर दुरियाल लोग भी तो नीचे नहीं जाते। वह विनायक, पाण्डुकेश्वर में ही अपना जाड़ा बिता देते हैं। उन्होंने विनायक के सामने के देवदार और दूसरे जंगलों को दिखलाकर कहा, कि सरकार यहीं हमें भूमि दे दे, और हम अपने लिए जाड़ों का गाँव बसा लें। यह बिल्कुल उचित माँग थी, और जनहित को हृदय में रखनेवाली सरकार के लिए यह करना अनिवार्य था। पर, हमारी सरकार की मशीनरी में किसी को समझने की शक्ति है, इस पर मैं विश्वास नहीं करता। पाँच वर्ष बाद भी आज माणावाले उसी चिन्ता में झूल रहे हैं।

पाण्डुकेश्वर में जरा ही ठहरकर कुछ फोटो लिये, जिसमें माणा की एक मारछा सुन्दरी कपड़ा बुनती भी थी। नीती और माणा दोनों ही मोन्-ख्मेर या किरात जाति के लोगों की बस्तियाँ हैं। यह लोग तोलछा और मारछा दो जातियों में विभक्त हैं। तोलछा एक तरह की गढ़वाली बोलते हैं, और मारछा दुभाषिया है। वह तोलछा की भी भाषा बोलते हैं और अपनी भाषा में। मारछा-भाषा किरात-भाषा है। पानी को वह 'ती' कहते हैं। माणा से आगे का एक निर्जन पड़ाव तीपानी के नाम से मशहूर है, अर्थात् एक ही अर्थ के दो भाषाओं के शब्द को जोड़ दिया गया है। पानी के लिए ती शब्द चम्बा के लाहुल से लेकर आसाम के नागा लोगों तक में मिलता है। किरात लोग मंगोलायित थे, यद्यपि उनकी भाषा का चीनी और तिब्बती भाषा से बहुत दूर का सम्बन्ध है, लेकिन इनके मुखों पर हल्की-सी मंगोलियत छाप देखकर लोग उन्हें तिब्बती समझने की गलती करते हैं, ये तिब्बती नहीं हैं, यह मारछा लोगों की भाषा बतलाती है। मारछानियाँ सजते वक्त पैरों तक लटकती एक ओढ़नी लगाती हैं, जिसका सिर के सामने का भाग कमखाब या दूसरी तरह से बहुत अलंकृत रहता है। जान पड़ता है, यह उनका बहुत पुराना भेस है। शायद कत्यूरी रानियाँ चादर से इस तरह का सिंगार करती थीं, अथवा तिब्बत की रानियाँ।

हम पौने 5 बजे घाट चट्टी पहुँच गए। आगे अच्छी चट्टी दूर मिलती, और जोशी मठ छः ही मील था, जहाँ ठहरना मुश्किल था, इसलिए रात को घाट ही में ठहर गए। आज घोड़े पर कहीं चढ़ने की जरूरत महसूस नहीं हुई। रात को उसको खिलाने के लिए दस-बारह रुपये की घास आई, जो भी आसानी से न मिलती, यदि गंगासिंह कहीं से उसका जुगाड़ न कर लाते। घाट चट्टी से थोड़ा ही ऊपर अलकनन्दा को पार करने के लिए एक पुल बना हुआ है, जिसको पार कर हेमकुण्ड और फ्लावर वेली (पुष्प उपत्यका) का रास्ता जाता है। फ्लावर वेली बरसात के दिनों में हजारों तरह के फूलों का उद्यान बन जाती है। इसकी ख्याति अब भारत से बाहर भी पहुँच चुकी है। हेमकुण्ड बड़े ही रमणीक स्थान में एक प्राकृतिक सरोवर है। किसी सिक्ख भक्त ने इसे देखकर ग्रन्थ साहब से वाणी निकालकर साबित कर दिया, कि दसमेश गुरु गोविन्दसिंह ने पिछले जन्म में यहाँ तपस्या की थी। चलो, सिक्खों का भी हिमालय में एक सुन्दर तीर्थ स्थापित हो गया, नहीं तो यह बड़ी कमी रह जाती। जैनों को भी कोई स्थान ढूँढना चाहिए। तीर्थयात्रा के बहाने लोगों का प्राकृतिक सौन्दर्य से स्नेह होता है, उनमें यात्रा के लिए साहस उत्पन्न होता है। हेमकुण्ड यहाँ से 12 मील बतलाया जाता था, अर्थात उतना ही जितना बदरीनाथ।

**जोशीमठ**—21 मई को सोमवार का दिन था। जोशीमठ में कुछ काम भी था, खासकर रावल वासुदेव से

मिलना था, और आज ही आगे बढ़ जाना था। हम 5 बजे ही चल पड़े। विष्णुप्रयाग तक पैदल चलकर धौलीगंगा पार जोशीमठ की चढ़ाई शुरू हुई। घोड़ा काम आया। धौलीगंगा नीतीघुरा से आती है, और अलकनन्दा माणाघुरा से। घुरा यहाँ डाँडा (जोत, पास, कोतल) को कहते हैं, अर्थात् जहाँ पर सबसे नीचा समझकर किसी पहाड़ के रीढ़ को पार किया जाता है। इन दोनों घुरों को पार कर तिब्बत में जाने का रास्ता है। दोनों नदियों के स्रोत की दूरी और दोनों की धाराओं के देखने पर यह कहना मुश्किल हो जाता है, कि इनमें से कौन गंगा की मुख्य धार है। आजकल तो अलकनन्दा ही को माना जाता है। अलक केश का नहीं, बल्कि कुबेर की अलका का संक्षिप्त रूप है। और नन्दा ननन्द अर्थात् ननद का। पार्वती, गौरी अपने नैहर में नन्दा के नाम से ही प्रसिद्ध थीं, इसलिए उन्हें नन्दादेवी कहा जाता है। इनके नाम से प्रसिद्ध गढ़वाल-कुमाऊँ की सीमा पर अवस्थित शिखर आजकल भारत का सर्वोच्च शिखर है। कैलाश के पास कहीं कुबेर की अलकापुरी थी। अलकनन्दा की उपत्यका में बदरीनाथ का मन्दिर है, जो पहिले बौद्ध विहार था। यहीं पाण्डुकेश्वर के प्राचीन मन्दिर भी हैं, जिन्हें बौद्ध नहीं कहा जा सकता। धौली की उपत्यका में जोशीमठ से कुछ ही मीलों ऊपर तपोवन है, जहाँ गरम पानी का कुण्ड और रुहेलों द्वारा ध्वस्त परित्यक्त कुछ पुराने समय के मन्दिर भी हैं। कत्यूरियों के अभिलेखों में तपोवन और बदरीनाथ का उल्लेख आया, जो इसके लिए भी हो सकता है। भविष्य बदरी की कल्पना शायद भूत बदरी के ख्याल से ही इसके साथ जोड़ी गई। यह बदरी धौली की उपत्यका में है, इसलिए प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री के विचार से धौली का महत्व कम नहीं है।

जोशीमठ में पहिले मैंने नरसिंह और दूसरी कत्यूरी-काल की मूर्तियों और मन्दिरों को देखा। 41 वर्ष पहिले की यात्रा से ख्याल आता था, यहाँ और अधिक मूर्तियाँ उस समय मैंने देखी थीं। रावल साहब ने भी इस बात का समर्थन किया। जान पड़ता है, पुरानी मूर्तियों के प्रेमी या सौदागर यहाँ पहुँचते और चुपके से अरक्षित मूर्तियों को खिसकाते गए। उन्होंने बतलाया कि मैंने यहाँ पहिले एक सूर्य की खण्डित मूर्ति देखी थी, पर वह अब नहीं मिलती। रुहेलों के आकर मूर्तियों की खण्डित करने की बात पर श्रद्धालु हृदय जल्दी विश्वास करना नहीं चाहता, क्योंकि इससे देवता की दिव्य शक्ति पर बट्टा लगता है। लेकिन, कहीं भी देवता की मूर्ति खण्डित होने पर वह बट्टा तो लगेगा ही। सोमनाथ की मूर्ति खण्डित हुई, विश्वनाथ की मूर्ति खण्डित हुई, उज्जैन के महाकाल की भी वही हालत हुई, फिर बट्टा लगने से कहाँ तक उन्हें बचा सकते हैं ? देवताओं की खुद की यही मर्जी होगी। रावलजी ने बतलाया कि तपोवन की मूर्तियाँ खण्डित हैं, किन्तु जोशीमठ की उपलब्ध मूर्तियाँ प्रायः खण्डित नहीं हैं। इसकी व्याख्या यही हो सकती है कि पुजारियों ने रुहेलों को काफी रुपया या मूर्तियों को छिपा दिया होगा। रावलजी ने यह भी बतलाया कि थोलिंग से प्रतिवर्ष चिट्ठी आती है, जिसमें बदरीनाथ को 'अपना देवता' लिखा रहता है।

जोशीमठ के इलाके में सरकार की ओर से फल उगाहने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। अपने ही लोगों ने सेब, नारंगी और दूसरे फल पैदा किये हैं। उनके स्वाद और आकार से मालूम होता है, कि यह फलों के लिए अनुकूल स्थान है। लेकिन, सवाल है ढुलाई का। जब तक जोशीमठ या उसके नीचे तक मोटर की सड़क नहीं आ जाती, तब तक इस विषय में कोई प्रगति नहीं हो सकती। रास्ते में मुझे एक सज्जन मिल गए। उन्होंने पिछले साल के कुछ सेब खाने को देते हुए कहा—हम अधिक दिनों तक इन्हें सुरक्षित रखने की विधि नहीं जानते। अगर भुँइघरे खोद करके उनमें जाड़ों की बरफ जमा कर दी जाए, तो फलों को सुरक्षित रखने की समस्या नहीं रह जाती। लेकिन, यह खर्चीली चीज है, जिसे साधारण गृहस्थ कैसे बर्दाश्त कर सकता है ? बेहतर यही होगा, कि मोटरें यहाँ आ जाएँ और उसी दिन यह फल कोटद्वार और अगले दिन दिल्ली पहुँच जाएँ।

जोशीमठ के शंकराचार्य की गद्दी दो-ढाई सौ वर्ष तक सूनी रही। बहुत पहिले कत्यूरियों के समय यहाँ शंकराचार्य नहीं, बल्कि पाशुपतों का पता लगता है। कत्यूरी राजा 'परममाहेश्वर' थे, इसलिए शंकराचार्य के समय यहाँ कोई उनका बड़ा मठ कायम हुआ होगा, यह संदिग्ध बात है। हाँ, कत्यूरियों के बाद पाशुपतों की प्रधानता को शंकराचार्य के मतानुयायियों ने छीन लिया। उसी समय तपोवन या बदरीनाथ का बदरी मन्दिर

इनके हाथ में आ गया। फिर, जैसा कि बतलाया, 18वीं सदी में गद्दीधर संन्यासी के मरने पर नम्बूदरी ब्राह्मण को गढ़वाल के राजा ने गद्दी पर बैठा दिया। इधर तीन दिशाओं में शंकराचार्य के तीन बड़े-बड़े मठों के रहते उत्तर को शून्य देखकर वेदान्तियों को यह बात खटकती थी। भारत धर्ममहामण्डल के स्वामी ज्ञानानन्द ने इसके उद्धार का उपक्रम किया, और अपने शिष्य स्वामी दयानन्द को शंकराचार्य बनाना चाहा। लेकिन, शंकराचार्य की शारदा, गोवर्धन, शृंगेरी मठों के गद्दीधर दण्डी संन्यासी होते हैं, और ज्ञानानन्द तथा उनके शिष्य शायद बाकायदा अदण्डी संन्यासी भी नहीं थे, इसलिए बाकि तीनों शंकराचार्यों का समर्थन उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता था। कुछ भी हो, सवाल उठानेवाले स्वामी ज्ञानानन्द ही थे। जब अन्तिम निर्णय का समय आया, तो उत्तर के ही एक दण्डी का पक्ष दृढ़ मालूम हुआ, और गोरखपुर के पंक्तिपावन सरजूपारी कुल के एक विद्वान् और अच्छे अर्थों में चलते-पुर्जे महापुरुष को यह गद्दी मिली। सूनी गद्दी थी, नये शंकराचार्य को सारा प्रबन्ध करना था और इसमें शक नहीं, उन्होंने सूनी गद्दी को अच्छी तरह आबाद कर दिया। जोशीमठ में पीठ बन गया, लेकिन यहाँ रहकर मठ का पोषण और संवर्धन नहीं हो सकता था, इसलिए ज्योतिष् पीठ के शंकराचार्य को अधिकतर बाहर रहना पड़ता।

जोशीमठ से चलकर हम खनोटी चट्टी में आए। यहाँ दूकानदार के घर के पास हरी-हरी प्याज देखी। मैंने कहा–तुम्हारे यहाँ सामान लेकर भोजन हम तभी करेंगे, जब प्याज में से हमें कुछ दो। देने में क्या उजुर हो सकता था ? आखिर सभी धर्मध्वजी नीचे के यात्री पास में प्याज के खेत के बारे में जानते ही होंगे, कि इसने अपने खाने के लिए इसे लगा रखा है। यात्रियों का रोब सचमुच ही उत्तराखण्ड पर इतना पड़ा है, कि कुछ महीनों के लिए लोग मांस-मछली तो क्या, प्याज-लहसुन से भी अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। हालाँकि ऋषियों ने दोनों हाथ उठा-उठाकर घोषणा की है–"उत्तरे मांस भोजनम्"। वह समय दूर नहीं है, जब प्याज-लहसुन ही नहीं सुलभ हो जाएँगे, बल्कि इन चट्टियों में अण्डे और आमलेट भी मिलने लगेंगे, पका-पकाया मांस और मछली तैयार मिलेगी। लेकिन, हमारी पीढ़ी को तो अभी उन दिनों को हसरत की निगाह से ही देखना है। दूकानदार ने बहुत बढ़िया चावल दिया था, और कितने ही दिनों बाद प्याज डालकर गंगासिंह ने आलू की जो तरकारी बनाई थी, वह तो स्वर्गीय व्यंजन-सी मालूम होती थी।

भोजन और विश्राम के बाद हम गरुड़ चट्टी पहुँचे। अभी दिन था, किन्तु यात्रियों की भीड़ थी। देर से पहुँचने पर रात की टिकान का मिलना मुश्किल होता, इसलिए यहीं ठहर गए। आज 21 मील चलकर आये थे। अब चमोली 13 मील रह गई थी।

22 को सबेरे साढ़े 4 बजे ही चल पड़े। घोड़े पर चढ़े ही हाट के पुल को पार किया। हाट इधर के पहाड़ों में राजधानी या बड़े नगर का पर्याय है। यहाँ का पुराना कत्यूरी-कालका मन्दिर उसका समर्थन कर रहा था। हाट कोई बड़ा गाँव नहीं है। मठ में पहुँचकर हमने चाय पी, और साढ़े 9 बजे चमोली में सीधे अस्पताल में गए। मुझसे मिलने के लिए सुन्दरियालजी से डा. विश्वास कम उत्सुक नहीं थे। उन्होंने कोशिश की कि तुरन्त छूटनेवाली बस मिल जाए, लेकिन उसमें कोई स्थान खाली नहीं था। मध्याह्न भोजन के लिए डा. विश्वास अपने बँगले में ले गये। मैं सर्वभक्षी और डा. विश्वास मछली के प्रेमी थे। वह अफसोस कर रहे थे यहाँ कोई खाने की अच्छी चीज नहीं मिलती, यद्यपि मोटर का अड्डा है। चमोली में मछली दुर्लभ थी, और यहाँ से कुछ ही मील पर गोहना के महासरोवर में लाखों रोहू खानेवालों की प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन, डा. विश्वास का भोजन कम स्वादिष्ट नहीं था, और जिस प्रेम के साथ वह सामने रखा गया था, उसने उसे और भी मीठा कर दिया था। अच्छे चावल का भात और आलू-प्याज की तरकारी थी। खाकर विश्राम किया। निश्चय था, कि 3 बजेवाली बस में जगह मिल जाएगी।

आजकल बदरीनाथ से लौटे यात्रियों की बड़ी भीड़ थी। हम बस में बैठ गये, किन्तु कितनों ही को उसमें जगह नहीं मिली। नन्दप्रयाग और कर्णप्रयाग होते रुद्रप्रयाग पहुँचे, जहाँ हमारी परिचित मोटर-सड़क मिल गई। रास्ते में एक जगह मोटर कुछ खराब हुई, तो भी साढ़े 9 बजे हम श्रीनगर पहुँच गए। खड्गसिंह अड्डे पर मौजूद थे, और उनके यहाँ गर्मागरम भोजन भी तैयार था, लेकिन जिनके साथ छः घंटे हम बस पर चढ़कर

आए थे, उनका भी हमारे ऊपर हक हो गया था। उन्होंने कहा, आज ही कीर्तिनगर चले चलें। उन्हीं की बात माननी पड़ी। सामान ढोने के लिए आदमी मिल गया, और सारे बस के यात्री चाँदनी रात में अलकनन्दा की ओर चले। पुल पार कर कीर्तिनगर में मोटर के अड्डे पर किसी पेड़ के नीचे हम सो गए।

23 को सवेरे 5 बजे ऋषिकेश का टिकट मिला। सूर्योदय से पहिले ही बस रवाना हुई। कीर्तिनगर से ऋषिकेश, और चमोली से कोठगढ़ की सड़कें प्राइवेट बसवालों के हाथ में हैं। उनके लिए मुसाफिर कोई कीमत नहीं रखते। इससे यात्रियों को बहुत कष्ट होता है। सारे भारतवर्ष के यात्री जिस रास्ते चलते हों, वहाँ सबसे पहिले सरकारी रोडवेज की बसें चलनी चाहिए, किन्तु बस के मालिक ऊपर प्रभाव डालते हैं, और यह काम होने नहीं पाता। दो बसों में होड़ लग गई थी। एक तेज चलती भी नहीं थी, और रास्ता भी नहीं छोड़ती थी। दूसरी उससे आगे बढ़ने के लिए फाँड़ बाँधे थी। दोनों की होड़ में हमें धूल फाँकनी पड़ रही थी। रास्ते में व्यासी चट्टी पर दोनों ओर की बसें ठहरीं। घंटा-भर विश्राम मिला। यहाँ रोटी-तरकारी, पूरी-तरकारी मिल जाती है। समय भी उसी का था, इसलिए सभी खाने में लग गए। हमारी बस में सभी तीर्थयात्री महिलाएँ धर्म कमाने के लिए चली थीं, लेकिन दो घड़ी के मेले में न जाने उनके किस स्वार्थ को ठेस लगी, कि वह सारे रास्ते वाग्युद्ध करती आईं।

साढ़े 11 बजे ऋषिकेश पहुँचा। देहरादून का टिकट भी मिल गया, और बस भी तैयार थी। दोपहर की धूप खोपड़ी की मज्जा को पिघला रही थी। जल्दी से जल्दी यहाँ से भागना चाहता था, लेकिन ड्राइवर को इसकी पर्वाह नहीं थी। वह साढ़े 12 बजे यहाँ से चला और दो घंटे में 27 मील चलकर मैं देहरादून पहुँचा। पं. गयाप्रसाद शुक्ल के घर पर पहुँचा। गर्मी के मारे बड़ा परेशान था, लेकिन साहित्य-संघ में भाषण देना स्वीकार कर लिया था, जिसके लिए दो दिन यहाँ रहना जरूरी था। अपनी बेवकूफी पर पछताता रहा। शुक्लजी से यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि कमला विशारद पास हो गई।

24 को दिन में कुछ वर्षा हो गई, इसलिए तापमान थोड़ा नीचे उतर गया। फिल्म धोने के लिए दिये, अधिकांश अच्छे आए।

24 मई को साथी महमूद को ढूँढने निकाला। उनके पिता का बँगला एक बार देख चुका था, लेकिन यह बहुत वर्षों पहिले की बात थी। खैर, किसी तरह 12 सरकुलर रोड में पहुँचा। महमूद को टाइफाइड हो गया था। बेचारी रशीदा सालों से कैंसर के रोग से पीड़ित थीं, पीछे उसी में उन्हें अपना प्राण खोना पड़ा। दोनों मिले। बतलाया—अब हम यहीं रहना चाहते हैं। पैतृक-गृह में महमूद की बहन नेत्र-चिकित्सा का अस्पताल खोलने जा रही थीं। उनकी कोठी में तो शरणार्थियों ने नहीं दखल किया, किन्तु बाहरी घर में वह बैठ गए, जिनका हटाना मुश्किल था। महमूद ने तो धन और तुरन्त यश कमाने का रास्ता उसी वक्त छोड़ दिया, जबकि वह कम्युनिस्ट बने। किसी समय वह जवाहरलाल के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। उस रास्ते से वह आज कहीं दूसरी जगह पहुँच गए होते। परन्तु, उन्हें गरीबों का दुःख दूर करने में शामिल होकर उसे हटाने का प्रयत्न करना था। डा. रशीद जहाँ भी अनुकूल पत्नी मिली थीं। दोनों की जोड़ी को जीवन-भर एक साथ रहना चाहिए था। भारत में कैंसर को अच्छा होते न देखकर महमूद रशीदा को मास्को ले गये, लेकिन वहाँ से अपनी आशाओं पर पानी फेरकर अकेले लौटना पड़ा। ऐसे तपस्वी से मिलने की किसको इच्छा नहीं होगी ?

25 मई को मध्याह्न-भोजन पं. हरिनारायण मिश्र के यहाँ हुआ। मिश्रजी का दर्शन पहिले-पहिल 1943 में हुआ था। तब वह यहाँ के डी. ए. वी. कालेज में अध्यापक थे। अब सेवाविरत और बूढ़े हो गए थे। उनका सारा जीवन अध्ययन, अध्यापन और शिकार का रहा है। अध्ययन अब भी जारी था। पुस्तकों का बहुत संग्रह था। दोनों ही कनौजिया हैं, जिनकी वंशावलि में निरालाजी के अनुसार मांस-भोजन विहित लिखा हुआ है। शुक्लजी हैं, जो वंशावलि की बात मानने से इन्कार करते हैं, मिश्रजी हैं, जिनके बल पर अब भी कान्यकुब्जों की ध्वजा फहरा रही है। हर बार देहरादून जाने पर मिश्रजी का आग्रह कान्यकुब्ज भोजन के लिए होता। लेकिन मैं शुक्लाइनजी के भोजन से कैसे इन्कार कर सकता था। निरामिष होने पर भी, सच कहता हूँ, स्वाद में वह कम नहीं होता। यदि मैं अधिक खाकर हर बार पेट पर हाथ सहलाते घर छोड़ता हूँ, तो इसमें शुक्लजी

या शुक्लाइनजी का दोष नहीं है। स्वाद ही ऐसा होता है, कि दो कौर कम करने की जगह दो कौर और पेट में चला जाता है। पर, मिश्रजी के आग्रह को भी ठुकरा नहीं सकता। और मांस तैयार कराने में वह कायस्थ या मुसलमान भाइयों का कान काटते हैं। कहते हैं—हमारे बाप-दादों ने भी तो सैकड़ों पीढ़ियों से यह भोजन किया है।

शाम को जुगमन्दर म्युनिसिपल हॉल में हिन्दी साहित्य समिति की बैठक का सभापतित्व करना पड़ा। नगर के 150 चुने हुए साहित्य-प्रेमी नर-नारी मौजूद थे। स्थानीय 23 साहित्यकारों को समिति ने 'सम्मान-पत्र' दिया। मैंने भी उन्हें बधाई दी। गोष्ठी को देखने से मालूम हुआ कि देहरादून में साहित्यिकों की संख्या कम नहीं है। यह जानकर दुःख हुआ कि उनकी मिलन-संस्था साहित्य संसद् मृतप्राय है। मिलनी के बाद जलपान का इन्तिजाम था।

**मसूरी**—25 को सवा 8 बजे स्टेशन से मसूरी की बस पकड़ी। सीजन का समय था, इसलिए बसें बहुत जा रही थीं, किन्तु मसूरीवालों को संतोष नहीं। कहते थे—"इस साल यात्रियों की संख्या कम है। लोग छोटे-बड़े होटलों में ठहरते हैं, बँगले खाली पड़े हैं। इनमें राजा या धनी लोग नहीं हैं। इसलिए हमारी चीजें ज्यादा बिकती नहीं।" उनकी शिकायत माकूल थी।

2 मई को हमने मसूरी छोड़ी थी, और 26 मई को वहाँ पहुँच रहे थे। पौने 10 बजे बस किंक्रेग पहुँची, और सामान भारवाहक की पीठ पर रखकर 11 बजे घर पहुँचा। कमला के विशारद पास करने का समाचार पहिले ही मिल गया था। इधर कई दिन से उनकी नकसीर फूट रही थी। भुक्तभोगियों ने इसका अच्छे से अच्छा उपचार बतलाया, लेकिन कमला उसे करने के लिए कभी तैयार नहीं हुईं। जब नाक से खून बहता, तब याद आती। कमला के चचेरे भाई मंगल 8 मई को ही यहाँ पहुँच गए। मालूम हुआ कि महादेव भाई का दुबारा आपरेशन हुआ है। 26 दिन की डाक पड़ी हुई थी, उससे भी भुगतना था।

# 3
# पहिला सैलानी मौसिम

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के साहित्य-योजना का काम चल रहा था। डा. सत्यकेतु 'फ्रेंच स्वयं शिक्षक' लिख चुके थे। शीलाजी ज़ीद के उपन्यास का 'सँकरा द्वार' के नाम से अनुवाद कर चुकी थीं। मारीशस के माधव वाजपेयी रोम्याँ रोलाँ के प्रसिद्ध उपन्यास 'जान क्रिस्तोफ' का अनुवाद करने के लिए तैयार थे। माधव मारीशस में पैदा हुए थे, जहाँ अंग्रेजी और फ्रेंच दोनों बोलचाल की भाषाएँ हैं। उनका हिन्दी पर भी पूरा अधिकार था। आशा बँध रही थी, कि हम दस साल में बीस अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी को दे सकेंगे। लेकिन, सभी बातें अनुकूल नहीं थीं। कुछ सहकारी गरियार बैल बने हुए थे, तो भी गाड़ी आगे निकल सकती थी, पर छापने की दिक्कत साहित्य-सम्मेलन की तरह ही यहाँ भी पेश हुई। इसी को देखकर शीलाजी ने अपने अनुवादित उपन्यास को स्वयं प्रकाशित करने का निश्चय किया।

इस साल कमला को दो परीक्षाओं की तैयारी करनी थी—साहित्यरत्न प्रथम वर्ष और एफ. ए.। मैंने अभी से पुस्तकों को देखने के लिए जोर देना शुरू किया।

जून का महीना शुरू ही होनेवाला था। मसूरी-देहरा में 26 जून को वर्षा का आरम्भ समझा जाता है। हमने अपनी क्यारियों में खीरा, सेम, फरासबीन आदि तरकारियों के बीज बो दिए। आलू से आशा की थी, लेकिन पिछले तजर्बे ने उसमें असफल सिद्ध किया। बैंक में उधार के छः सौ रुपयों को निकाल देने पर अब 16 सौ रह गए थे, यह चिन्ता की बात थी। उधार लेना मेरे जीवन के सिद्धांत के विरुद्ध है। अब मिलनेवाले लोग आने लगे। 29 को पं. हरिनारायण मिश्र आये। साहित्य की भिन्न-भिन्न शाखाओं में उनकी रुचि तो है ही, साथ ही वह उर्दू के शायर भी हैं और फारसी का उनका अध्ययन बहुत गम्भीर है।

31 मई की रात को खूब वर्षा हुई। सबेरे मालूम होता था, वर्षा शुरू हो गई। इस साल यद्यपि वर्षा पहले आरम्भ हुई, तो भी इसे मौसिम का आरम्भ नहीं कहा जा सकता। और कामों के साथ पत्र-पत्रिकाओं के आग्रहों को पूरा करने के लिए कुछ लेख लिख देना मेरे लिए आवश्यक था, इससे कुछ पैसे भी मिल जाते थे, जो खाली खीसे के लिए कम आकर्षण नहीं रखते थे। लेकिन, लेख अधिकतर मैं ऐसे ही लिखता हूँ, जो किसी पुस्तक के अंग बननेवाले हों। बदरीनाथ-केदारनाथ पर दो लेख लिखे।

2 जून को श्री मुकुन्दीलालजी (बैरिस्टर) आये। वह बराबर यहाँ नहीं रहते, लेकिन उनकी अंग्रेज-पत्नी अपनी चारपाई धरे पुत्र-पुत्रियों को लेकर सारी गर्मी-बरसात यहीं बिताने के लिए आ जाती थीं। उस समय वह बरेली से दो-तीन बार जरूर आते हैं, और हर यात्रा में वह मेरे ऊपर कृपा किये बिना नहीं रहते। पति-पत्नी को कुत्तों का बहुत शौक था। एक उनके पास ग्रेटडेन कुतिया बड़ी सुन्दर थी, दूसरे भी कई जात के कुत्ते थे, वह भी गर्मी बिताने के लिए यहाँ आते थे। पिछली बार कुत्ते का जिक्र आया था। वह कह रहे थे, हम

कुत्ते का बच्चा दे सकते हैं, लेकिन अब तो भूतनाथ इस घर में प्रतिष्ठित हो चुके थे और कमला का स्नेह भी उन्हें मिल चुका था। उनके आ जाने पर फिर घंटा-दो-घंटा साहित्य और कला के ऊपर बात चलते समय बीतते देर नहीं लगती।

3 जून को स्वामी सत्यस्वरूप जी आए। हमारी योजना में संस्कृत-हिन्दी और हिन्दी-हिन्दी कोश भी थे। कहने पर वह उसमें सहयोग देने के लिए तैयार हो गए। स्वामी सत्यस्वरूप जी पंजाब के शास्त्री और बी. ए. होकर अपनी विद्या से संतुष्ट न हो बनारस गए, और एक युग से वहाँ रहकर उन्होंने न्याय, वेदान्त और दूसरे दर्शनों का अध्ययन किया। ज्ञान की पिपासा के साथ-साथ उनमें विचारों की उदारता है, और विद्या लिये कुछ करना चाहते हैं। मैं भी इसके लिए उत्सुक हूँ, कि उनके ज्ञान का कुछ उपयोग होना चाहिए। वैसे अध्यापक के तौर पर वह उसको इस्तेमाल करते हैं, लेकिन विद्या लिखकर यदि कागज पर उतरे, तो और भी उपकारक हो सकती है।

पैसे के पानी को सूखते देखकर चिन्ता मुझे भी होती है, क्योंकि आत्मसम्मान को मैं अपना सबसे बड़ा धन समझता हूँ, बल्कि कहना चाहिए, उसे प्राणों से भी अधिक मूल्यवान मानता हूँ। मैं किसी तरह मन को समझाता हूँ। कमला ऐसी स्थिति में घबड़ाने लगती। उनका घबड़ाना उचित भी है, क्योंकि घर और अतिथियों का सत्कार उन्हें चलाना पड़ता है। मुझे यह देखने के लिए भी फुरसत नहीं, कि किस चीज की जरूरत है, और क्या खर्च हो रहा है। बहुत बार कोशिश की, कि खर्च पर नियंत्रण किया जाए, लेकिन महीने में पाँच सौ रुपये से कम होने की नौबत नहीं आती। सोचता था, जब पहिली बार तिब्बत गया था, तो बीस रुपये महीने में भी काम चला लेता था। पीछे सौ रुपया भी पर्याप्त मालूम होता था। लेकिन, आज का पाँच सौ भी तो द्वितीय विश्व-युद्ध के पहिले का सवा सौ रुपया ही है। लेकिन, ऐसा समझ लेने से क्या अभाव की पूर्ति हो सकती है ?

कुमठेकर जी अब काम कर रहे थे। काम करनेवाले तो आ गये थे, लेकिन जब देखा कि नागार्जुन जी के वर्धा जाने पर भी अभी तक सिर्फ एक फार्म छपा है, तो हिम्मत छूटने लगी। नागार्जुन जी ने लिखा था—एक कम्पोज़ीटर है और प्रूफ-रीडर है ही नहीं। यदि राष्ट्रभाषा का प्रेस नागपुर में होता, तो कोई दिक्कत नहीं होती। अधिक काम होने पर दूसरे प्रेस में दिया जा सकता था। प्रेस की कोई मशीन बिगड़ने पर वहाँ मिस्त्री मिल जाता। कम्पोज़ीटर और प्रूफ-रीडर बेकार फिर रहे थे, इसलिए उनके मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती। मैंने आनन्दजी को कहा भी—समिति के दूसरे विभाग हिन्दी नगर के लिए काफी हैं, प्रेस को उठाकर नागपुर ले जाइए। लेकिन, आदमी को सब चीजों को आँखों के सामने देखने का लालच होता है।

ऊपर की कोठी ('हर्न हिल') में बहुत कमरे खाली थे, यदि कुछ और साहित्य-प्रेमी मित्र भी आकर वहाँ रहें, तो क्या हर्ज था। बनारस के उदय प्रताप कालेज के अध्यापक श्री मोतीसिंह आए। फिर श्री कन्हैयालाल प्रभाकरजी भी आ गए। इस तरह धीरे-धीरे हमारा यह मोहल्ला साहित्यिकों का मोहल्ला-सा जान पड़ने लगा।

'कुमाऊँ' और 'गढ़वाल' को मैंने अधिकतर हाथ से लिखा था। कमला और मंगल उनको टाइप करने में लगे। कमला का आलिवेत्ती पर हाथ बैठा हुआ था, किन्तु कितने ही महीनों से अभ्यास छूट गया था। मंगल रेमिंगटन के इस हिन्दी टाइपराइटर से अभ्यस्त नहीं थे, तो भी 6 जून को उन्होंने पाँच पृष्ठ टाइप किया।

बैंक-हिसाब को देखकर जो चिन्ता हो रही थी, वह साल-भर के लिए दूर हुई, जब किताब महल ने मार्च 1951 तक की रायल्टी में 4362 का हिसाब भेजा।

हिन्दी का लेखक ठहरा, और उसी के लिए एक तरह से अपना सारा समय दे रहा था। राजगोपालाचारी ने मंत्री के तौर पर वक्तव्य दिया कि शासकीय सेवाओं में हिन्दी की परीक्षा अनिवार्य नहीं है। महादेव भाई इससे बहुत खुश थे। वह समझते थे, हिन्दी को ही यह स्थान क्यों दिया जाए ? पर हिन्दी के अनिवार्य न होने का मतलब था, अंग्रेजी का अपनी जगह से जरा भी टस से मस न होना। अंग्रेजी को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी तरह का समर्थन प्राप्त हो, मैं इसे देखने के लिए तैयार नहीं था। अंग्रेजी की इस अनिवार्यता के कारण नौकरियों पर कुछ लोगों का एकाधिपत्य होता जा रहा है, यह भी सहन करने की बात नहीं थी।

यह तो मैं पसन्द करता था कि किसी भी राज्य की विधान-सभा की स्वीकृति के बिना हिन्दी को उसके लिए मान्य नहीं करना चाहिए। प्रदेश के भीतर अपनी भाषा छोड़कर हिन्दी का प्रवेश बिल्कुल नहीं होना चाहिए। लेकिन, अन्तर्प्रान्तीय, केन्द्र और प्रान्तों तथा देश और विदेश के साथ के कारोबार में हिन्दी को क्यों न स्थान दिया जाए ? क्यों वहाँ अंग्रेजी जमी रहे ?

10 जून को श्रीमती सत्यवती मल्लिक अपने पुत्र और भाँजे के साथ आईं। मसूरी उनके लिए नई चीज नहीं थी, लेकिन 'हर्न-क्लिफ' जरूर था। सत्यवती जी कलाकार महिला हैं। हिन्दी की लेखिका, और सुषमामयी कश्मीर की नगरी श्रीनगर की कन्या हैं। दूसरे पुरुष-स्त्री भी 'हर्न-क्लिफ' के दरवाजे पर खड़े होकर जब सामने हिमालय की धवल शिखर-पंक्तियों और उनके नीचे तह पर तह चढ़ती पर्वतमालाओं को देखते तो कवि बनने की कोशिश करते, मेरे चुनाव की बड़ी प्रशंसा करते। हालाँकि चुनाव करते समय मैंने इसका ख्याल नहीं किया था।

खूबानियाँ फली हुई थीं। यहाँ वह जून में फलती हैं। और निचली जगहों में मई में। यहाँ तो साधारण-सी खूबानियाँ के ही वृक्ष हैं, जिनके फलों में एक तरह का कसैलापन आता है। विशेष खूबानियाँ बिल्कुल मीठी, बहुत बड़ी और देखने में कमनीय कलेवरवाली होती हैं। लेकिन, उन्हें भी आदमी साल में एक-दो दिन से अधिक नहीं खा सकता, मन ऊब जाता है। कहाँ आम, जिससे पेट भरे और जी न भरे, और कहाँ उससे उलटी खूबानी। भूत ने खूबानियाँ देखीं, तो खूब हप-हप करके पेट भरा। इसके बाद खूब कै करता रहा।

11 जून को किशनसिंह के यहाँ मोमो खाने और तिब्बती चाय पीने की दावत थी। चार मील जाना पड़ता था। लेकिन, वहाँ जाने में मेरा मन कभी नहीं हिचकता था। जाकर तिब्बती लोगों में उनकी भाषा में बातचीत करने का मौका मिलता, फिर उनसे तिब्बत के बारे में कितनी ही बातें मालूम होतीं। मोमो की शौकीन मेरी ही तरह कमला भी हैं। कलिम्पोंग में बहुत-से चीनी और तिब्बती रेस्तोराँ हैं, जिनमें यह कई तरह की बना करती। कमला ने बचपन से ही उन्हें खाया था। पर, मेरी यह धारणा गलत है कि सभी मांस पसन्द करनेवाले आदमी मोमो के जरूर दिलदादा होंगे। वहाँ एक सोगपो (मंगोल) गेशे (पंडित) भी मिले, जिन्होंने भी कुछ बातें बतलाईं।

विनोदजी को अब यहाँ रहना पसन्द नहीं आ रहा था। एक तो उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, दूसरे वह जन्मजात नेता थे, इस जंगल के कालापानी में रहना कैसे पसन्द आता ?

कानपुर के साथी संतोष कपूर आए। उन्होंने बतलाया—"पुरुषोत्तमजी अपने साधना प्रेस को बढ़ाना चाहते हैं। उसमें एक लाख रुपये पहिले ही लग चुके हैं। प्रकाशन को भी हाथ में लेना चाहते हैं, पर प्रेस का कोई प्रबन्धक नहीं मिलता।" मैंने कहा—"विमलाजी क्यों नहीं इस काम को हाथ में लेतीं। डबल एम.ए. की बुद्धि बेकार रहने से क्या लाभ ? काम काम को सिखलाता है, सँभाल लें।" दरअसल अखाड़े से बाहर रहकर पहलवानी पेंच बतलाना बहुत आसान है। शायद अपने मत्थे पड़तीं, तो मैं भी बगलें झाँकता।

13 जून को कमला की नकसीर फिर फूटी। खून के गिरने से चिन्तित थीं, और मुझे उन पर झुँझलाहट आती थी। कहता—"ऐसा व्यक्ति नहीं देखा। अपनी भलाई के लिए भी बुद्धि से सोचने को तैयार नहीं होतीं।" डाक्टर ने दवा दी है, उसे भी जैसे ही खून बन्द हुआ, छोड़ दिया। डाक्टर कहते हैं—केल्सियम और विटामिन की कमी है। पर, उन्हें लेने के लिए तैयार नहीं। आश्चर्य और दुःख होता है। जीवन-भर के लिए अपाहिज बनने का यह रास्ता है, लेकिन कौन समझावे ? वजन आठ पौंड घटकर सौ पौंड रह गया है। सिरदर्द की शिकायत बराबर रहती है।

कमला निटिंग, सिलाई, कढ़ाई अच्छा जानती हैं। घर में सिलाई की मशीन हो तो बहुत-से सुभीते रहते हैं। सिंगर की मशीन हल्की और अच्छी होती है, लेकिन दाम दूना, इसलिए हमने स्वदेशी 'उषा' 224 रुपये में मँगवा ली।

वैद्य रामरक्ष पाठक छपरा से मेरे परिचित थे। उस समय वह पतले-दुबले स्कूल छोड़कर असहयोग में

काम करनेवाले 16 -17 वर्ष के लड़के थे। कितने ही समय तक वह राजनीति में काम करते रहे, लेकिन लम्बी जिन्दगी के लिए कोई स्थायी सहारा भी ढूँढ़ने की आवश्यकता थी। फिर आयुर्वेद पढ़कर वैद्य हुए। अपने अध्ययन को जारी रखा, पुस्तकें लिखीं। इस समय वह बेगूसराय आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल थे। इतनी तरक्की देखकर मुझे खुशी होनी ही चाहिए थी।

कमला दो-दो परीक्षाओं के लिए तैयार नहीं हो रही थीं। कह रही थीं, इस साल साहित्यरत्न प्रथम खण्ड ही दूँगी। मैं सोचता था, साहित्यरत्न की परीक्षा हो जाने के बाद तीन महीने और मिलेंगे, जिसमें एफ. ए. की तैयारी हो सकती है। पढ़ाई को जल्दी-जल्दी समाप्त करना मैं जरूरी समझता था, क्योंकि भविष्य का क्या पता ?

फलों के देखने से मई का महीना भी बहुत प्यारा है। बिहार में उस समय लीचियाँ पकती हैं। पर, जून तो महीनों का राजा है, क्योंकि इसी समय फलों का राजा आम उत्तरी भारत में आने लगता है। भैया ने अमृतसर से 22 जून को आमों का टोकरा भेजा। मंसूरी में भी आम दुर्लभ नहीं होते। हर तरह के आम और फल यहाँ पहुँच जाते हैं, लेकिन दाम इतना बढ़-चढ़कर होता है कि मालूम होता है, हम आम नहीं रुपया खा रहे हैं। खरीदने में हाथ भी संकोच से उठता है। यदि टोकरा बाहर से आ जाता, तो आम का भोज होने लगता। अब कुछ महीनों तक आम्र-उपासना होगी, इसका उछाह मन में पैदा होने लगा।

मैंने कमला को लिखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने दो कहानियाँ लिखीं, और पत्रों में भेजा, लेकिन सम्पादकों ने लौटा दिया। बड़े प्रयत्न करने पर वह लिखने के लिए राजी हुई थीं, और "सर मुड़ाते ही ओले पड़े।" उनके उत्साह पर घड़ों पानी पड़ गया। मैंने बहुत समझाया कि हर लेखक को ऐसी स्थिति से गुजरना पड़ता है, लेकिन मेरे कहने से क्या होता है ? उन्हें तब तक विश्वास नहीं हुआ, जब तक कि उनकी एक कहानी 'नया समाज' में छप नहीं गई। अब (1956 ई.) तक उन्होंने आठ कहानियाँ लिखी हैं, और आठों अच्छे पत्रों में छपी हैं। इन कहानियों में मेरा बहुत हल्का-सा हाथ है, जो धीरे-धीरे कम होता गया है। उनमें कहानी लिखने की और निबन्ध लिखने की भी प्रतिभा है। लेकिन, सबसे बड़ा दोष है आलस्य। कलम पकड़ने में नानी मर जाती है।

श्री रामरक्ष पाठक छपरा के डा. शिवदास सूर के साथ मसूरी आए थे। एक से अधिक बार मिलने आए। रामरक्ष को मैंने बच्चा-सा देखा था, फिर जवान भी। डा. सूर की जवानी का चेहरा ही मुझे याद आता। वह छपरा में डाक्टरी प्रेक्टिस अब कम ही करते हैं। उनके पिता लक्खी बाबू की दवाइयों की छपरा की बड़ी प्रसिद्ध दूकान थी। बड़े भाई गुहा बाबू देश-सेवा के किसी काम में पीछे रहनेवाले नहीं थे। डा. सूर के चेहरे पर अब बुढ़ापे की छाप थी, और सबसे अधिक डायबेटीज़ का प्रभाव दिखाई पड़ा। वह इस समय मुझसे तीन वर्ष बड़े थे।

अब मेहमान रोज और अतवार को विशेष तौर से आने लगे। अधिकतर हमें चाय का प्रबन्ध करना पड़ता। स्वागत-सम्मान तथा चायपान और भोजन कराने में कितना आनन्द आता, किन्तु खाद्य-सामग्री दुर्लभ और महार्घ हो गई थी। इस समय यदि कोई मेहमान कहता, कि मैं चाय नहीं पीता, तो मैं बड़े संयत भाव से और दूसरे के भावों पर बिना ठेस पहुँचाए कहता—"आजकल के अतिथि का चाय न पीना महापाप है। इस युग में कोई भी गृहस्थ इसी के द्वारा आसानी से अतिथि-सेवा कर सकता है। अतिथि-सेवा हमारी पुरानी बपौती है, उससे वंचित करनेवाला आदमी पाप का भागी जरूर होगा। घर में चाय मत पीजिए, चाय का व्यसन भी लगाना ठीक नहीं, लेकिन बाहर जाने पर अगर कोई एक प्याला चाय दे, तो उसके पीने में उजुर मत कीजिए।" मालूम नहीं, इस व्याख्यान का कितनों के ऊपर असर पड़ा।

समिति के साहित्य का काम अब उत्साहजनक नहीं रह गया था। ज़ीद के उपन्यास 'ला पोत्वा' ('सँकरा द्वार') के बारे में किसी ने आनन्दजी को सम्मति दी, कि वह अश्लील है। हद्द हो गई। यदि इस लेखक को दुनिया की चोटी का उपन्यासकार मानने में उजुर नहीं हुआ, तो यह मीन-मेख निकाली गई। मैं सोचने लगा, क्यों खामखाह की यह बला मोल ली ? जितनी ही जल्दी वह टले, उतना ही अच्छा।

25 को जोधपुर के खैरवा की जागीरदारनी ठाकुरानी गुलाबकुमारी के यहाँ भोजन करने गए। वह 175 रुपया मासिक पर कमरे लेकर स्टे पलटन में रहती थीं। अपनी मोटर में आई थीं। साथ में मुसाहिब, तीन-चार नौकर-नौकरानियाँ भी थीं। भोजन सामिष और मारवाड़ के ठाकुरों-सा बहुत स्वादिष्ट था। मैं सोच रहा था, रियासतें गईं, जागीरें भी अब जा ही रही हैं। पुरानी आमदनी अब नहीं रहेगी। फिर यह खर्च उठाना क्या आफत मोल लेना नहीं ? लेकिन, आदमी एक स्थिति से दूसरी स्थिति में पहुँचकर तुरन्त ही अपने को उसके अनुसार नहीं बना सकता।

शुक्लजी ने बनारस से लँगड़े आमों का पारसल भेजा, जो 27 जून को मिला। बनारस के साथ अपना पक्षपात ठहरा ही और दुनिया भी लँगड़ों का लोहा मानती है, इसलिए शुक्लजी को रोम-रोम से धन्यवाद दिया।

हिन्दी की कहानी पत्रिका 'माया' ने कोई कृति देने के लिए लिखा था। मैंने कहा–मध्य-एसिया के ताजिक उपन्यासकार ऐनी के 'अदीना' को मैं देने के लिए तैयार हूँ। उन्होंने एक अंक में चित्र सहित उसे छापने का वचन दिया। वह जून के अंक में छप भी गया। कुछ चित्र तो मूल ताजिक पुस्तक के थे, लेकिन कुछ चित्रकार ने अपनी कल्पना से बनाए थे, जो अनुरूप नहीं थे। प्रेस का मुँह तो 'अदीना' ने देख लिया, लेकिन पुस्तकाकार प्रकाशित होने की नौबत अब (1956-57 में) आ रही है।

29 जून को विनोदजी गए। अब ऐसा मालूम हो रहा था, स्वामी सत्यस्वरूपजी, कुमठेकरजी और हरिश्चन्द्रजी ही यहाँ रह जाएँगे।

मसूरी की अवस्था दिन पर दिन गिरती जा रही थी। पिछले साल के कितने ही दूकानदार चले गए। कुछ दूकानें बन्द हो गईं, लेकिन अधिकांश में नए फँसनेवाले आ जाते थे। एक को असफल भागते देखकर दूसरा भाग्य-परीक्षा से कैसे बाज आ सकता था ? 2 जुलाई को टहलते हुए लण्ढौर तक गया। पुरुषोत्तमजी की दूकान बन्द देखी। उनकी तरफ से हरप्रसादजी काम कर रहे थे, जिनसे मालिक को संतोष नहीं था। वैसे पुरुषोत्तमजी बड़े अच्छे आदमी थे। कालेज में पढ़े हुए थे, इसे तो दोष नहीं कह सकते। पर उनके पास देहरादून और मसूरी में दो-दो जगह लोहे की दूकानें थीं। लड़ाई के समय और पीछे लोहेवालों ने दोनों हाथों नफा बटोरकर अपने को मालामाल कर दिया, लेकिन पुरुषोत्तमजी थे, कि उन्हें समुन्दर में घोंघे भी नहीं हाथ आए। इस समय दूकान बन्द रहना अच्छा नहीं था। पर, एक ही दो साल बाद उन्हें दूकान को बिल्कूल बन्द कर देना पड़ा। फिर व्यवसाय से भी हट गए, और कहीं नौकरी करनी पड़ी। दूसरे दूकानदार मुंशीरामजी कह रहे थे, कि हम तो अपनी पूँजी खा के जी रहे हैं। अपने मांस को गला-गलाकर आदमी कितने दिनों तक जीवन धारण करेगा ? कबाड़िया अपने लिए रो रहे थे। पहिले की तरह अब साहेब लोगों के बँगलों की चीजें बेचने को नहीं मिलतीं। जो मिलती हैं, उनके खरीदार नहीं। एक अच्छा कारीगर-बढ़ई फलों की टोकरी रख के बैठा हुआ था। कह रहा था–"क्या करें ? किसी तरह तो पेट तो भरना है। काम नहीं मिल रहा था, इसलिए फल बेच रहा हूँ।" मसूरी के ऊपर अन्धकार का एक गहरा पर्दा पड़ता दिखाई दे रहा था। लौटते वक्त पं. गोविन्द मालवीय से भी थोड़ी देर बातचीत हुई।

3 जुलाई को स्वामी सत्यस्वरूपजी संस्कृत-हिन्दी कोश का काम कर रहे थे। कुमठेकरजी कन्नड़ के एक उपन्यास का अनुवाद और हरिश्चन्द्रजी टाइप कर रहे थे।

किशोरी भाई जेल में थे। वहाँ से स्वास्थ्य खराब होकर पटना अस्पताल में पड़े थे। यहाँ कुछ भीड़ थी, तो भी आने के लिए लिख दिया। 5 जुलाई को वह आए। आशा थी, यहाँ उनके स्वास्थ्य में सुधार अवश्य होगा, लेकिन 13 दिन रहने पर भी वह वैसे ही रहे। उनके शरीर पर कभी चर्बी नहीं बढ़ी। जो आदमी दौड़ में चैम्पियन बनने लायक हो, कसरत और शारीरिक परिश्रम करने का आदी हो, उसके शरीर में चर्बी कैसे बढ़ सकती है ? उनके मन में जैसा ही साहस, उसी के अनुकूल उनका स्वस्थ शरीर था। देखने से ही मालूम होता था, कि उनका रोवाँ-रोवाँ नाच रहा है। जीवन के सभी अंगों में उन्होंने अपने साहस और निर्भीकता का परिचय दिया था। पढ़ाई छोड़कर कांग्रेस में शामिल हुए। मुजफ्फरपुर के सबसे कर्मठ कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में वह हमारे सामने आए। कांग्रेस को जब उन्होंने देखा, कि इससे बेड़ा पार नहीं होगा, तो मार्क्सवाद

का अध्ययन किया, कम्युनिस्ट बने, एक बड़े नेता से वह साधारण स्वयं-सेवक बनने के लिए तैयार हो गए। अपने खानदानवालों और घरवालों की कुछ भी पर्वाह न करके उन्होंने अपनी स्त्री को उस समय पर्दे से बाहर किया, जबकि बिहार में कोई आदमी उसका नाम भी नहीं ले सकता था। पर्दे से बाहर ही नहीं किया, बल्कि उसे काम करने लायक बनाया। अफसोस, तरुणाई में ही वह साथ छोड़ गई। किशोरी भाई तब से बराबर अपनी धुन में लगे हुए हैं। उनका शरीर इतना दुर्बल साबित होगा, इसकी मुझे कभी आशा नहीं थी। पर, अब शरीर भी और साथ-साथ मन भी अपने को निर्बल साबित कर रहे थे। अब की जेल में रहते उनके आदर्श उद्देश्य के ऊपर जो जबर्दस्त प्रहार हुए, उनकी प्रतिक्रिया के कारण उनका मन भी अस्वस्थ हो गया। पहाड़ के किनारे पर चलते उनको डर लगता था, मैं गिर पड़ूँगा। मन की स्थिति शरीर की व्याधि से भी ज्यादा बुरी होती है। व्याधि की औषधि का चमत्कारिक लाभ भी देखा जाता है, लेकिन आधि दुष्चिकित्स्य है। उनका मन लगा रहे, इसके लिए 'भागो नहीं बदलो' के नये संस्करण की कापी तैयार करते मैं उन्हें सुनाता। हफ्ता बीत गया, लेकिन कोई सुधार नहीं हुआ। 17 जुलाई को स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ वह टहलने गए, एक जगह बेहोश होने लगे। जल्दी-जल्दी रिक्शे पर बैठाकर उन्हें डाक्टर के पास पहुँचाया गया। उसके बाद किशोरी भाई ने कहा : बिहार ही जाना अच्छा है। वहाँ पार्टी के काम में शायद मन बहल जाए। 18 जुलाई को मंगल के साथ उन्हें पटना भेज दिया।

16 जुलाई को भैया (स्वामी हरिशरणानन्द), भाभी (जानकी देवी) अपनी छोटी बहिन के साथ पहुँच गईं। अब की उन्होंने 'लक्समौंट' में ही रहने का निश्चय किया था। वैसे वह पहिला सीजन बिताकर बरसात में आया करते थे। उस समय हमारे यहाँ भी भीड़ नहीं रहती, पर उनको कुल्हड़ी में ही रहने में आराम रहता। चीजें पास में मिल जातीं। यह भी कहते थे–"इससे आना-जाना भी होता रहेगा।" टहलने के वह शौकीन हैं। सचमुच 70 के पास पहुँचने पर भी उनके बाल-भर सफेद हैं, पर चलते हैं आँधी की तरह। किसी काम के करने में उन्हें आलस्य छू नहीं गया।

पिछले साल प्रेस को देहरादून लगाने की बात हुई थी। एकाध घर भी देखे गए थे। लेकिन, भैया की व्यावहारिक बुद्धि ने बतला दिया, कि उसके लिए उपयुक्त स्थान देहरादून नहीं, बल्कि दिल्ली है। यदि किसी कारण काम न भी चला और उसे बन्द करना पड़ा, तो पैसा लौटने में देर नहीं होगी। भाभीजी देहरादून को पसन्द करती थीं, मैं भी इस ख्याल से नजदीक चाहता था, कि अगर मेरी पुस्तकें छपेंगी, तो प्रूफ के देखने में दिक्कत नहीं होगी। वह तुले हुए थे–प्रेस को बढ़ाएँगे, मोनो टाइप लाएँगे, बड़ी मशीन भी आ जाएगी।

बुढ़ापे में आमतौर से दाँतों में दोष पैदा हो जाता है। मैं तो समझता हूँ, यदि उस समय दाँत न रहें, तो अच्छा। अक्सर उनमें दर्द हो जाता, उनके बीच में खाने की चीजें घुसकर कीटाणुओं को जन्म देती हैं, जो अन्त में पायरिया के कारण बनते हैं। पायरिया बड़ी बुरी चीज है। अपने लिए नहीं, बल्कि जिससे बात की जाए उसको भी उसकी दुर्गन्ध आती है। मुझे एक वृद्ध का अनुभव था। 70 वर्ष के बाद भी उनकी बत्तीसी बनी हुई थी। इसका वह अभिमान कर सकते थे, लेकिन मुँह से दो हाथ दूर भी इतनी गंध आती, कि बात करना असह्य हो जाता। शायद उनको न मालूम होती हो। मेरे मुँह से कुछ गंध आ रही थी। भैया ने कहा–पायरिया है। वृद्ध मित्र का ख्याल आने लगा। भैया ने कहा–कोई चिन्ता नहीं। फिनाइल के सत् लेसोल को सींक में रुई लपेटकर दाँतों के बीच हफ्ते में एक बार लगा देने से दो-तीन हफ्ते में ठीक हो जाएगा। भैया वैद्य हैं, लेकिन कूपमंडूक वैद्य नहीं। चिकित्साशास्त्र में जो भी नया आविष्कार होता है, उसके बारे में हिन्दी पत्रों या पुस्तकों में जो देखते हैं, उसे बड़े ध्यान से पढ़ते हैं। प्रयाग के 'विज्ञान' के वह जन्म से ही ग्राहक हैं, और शायद उसका कोई भी अंक ऐसा नहीं होगा, जिसे उन्होंने ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ा हो। उसकी नैया जब डगमगाने लगी, तो कितने ही वर्षों तक उसे भैया ने अपने खर्च से चलाया। वह इसके पक्षपाती हैं, कि चिकित्सा-सम्बन्धी आधुनिक आविष्कारों से वैद्यों को लाभ उठाना चाहिए, और आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति और औषधियों के निर्माण तथा विश्लेषण के बारे में साइन्स का उसी तरह उपयोग करना चाहिए, जैसे एलोपेथी के डाक्टर लोग करते हैं। सामाजिक और राजनीतिक विचारों में भी वह अति आधुनिक हैं। समाजवाद-साम्यवाद पर उनका

अटल विश्वास है। कभी-कभी कह देते थे—"चिन्ता की क्या जरूरत है, दस वर्ष में तो साम्यवाद आ ही जाएगा।" मैं भी घुमक्कड़ी के लिए जब पहिले-पहिल निकला, तो यह श्लोक हमेशा जीभ पर रहता था—"का चिंता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते।"

अब तिब्बत कम्युनिस्ट चीन का अंग बन गया था। शान्तिपूर्वक ही तिब्बत ने चीन से अपने सहस्राब्दियों के पुराने सम्बन्ध को फिर से स्थापित कर लिया था। दिल्ली के कम्युनिस्ट-विरोधियों को चीं-चपड़ करने की आवश्यकता नहीं हुई, क्योंकि यह सब काम शान्तिमय तरीके से हुआ। शान्तिमय तरीके से ही इसका होना मैं भी वांछनीय समझता था। क्योंकि तिब्बत में भारतीय, चीनी तथा अपने देश की हजारों सांस्कृतिक अनमोल निधियाँ सुरक्षित रखीं हैं। ल्हासा का महान और तिब्बत का सर्व प्राचीन बौद्ध-विहार 'जो-खंड' सातवीं सदी के मध्य में बना। आज भी वहाँ वह पुरानी शताब्दियाँ मालूम होती हैं, जो आज भी हमारे सामने बैठी हुई हैं। दो दर्जन के करीब वहाँ के विहार पुरानी सामग्रियों के अद्भुत संग्रहालय हैं। लड़ाई होती, तो उन्हें क्षति होती, जिनकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती थी। फिर हजारों घर उजड़ते, आदमियों के प्राण जाते, दोनों देशों में पारस्परिक घृणा का संचार होता, जो कितने ही समय तक चलता रहता। यह सब देखते हुए शान्तिपूर्ण चीन और तिब्बत के सम्बन्ध का स्थापित होना वांछनीय था। मैंने 'स्वागत नवीन चीन' नाम से एक लेख पहिले लिखा, और अब 'हमारा पड़ोसी चीन' लिखकर अपने भाइयों को बतलाना चाहा, कि चीन हमारा हमेशा के लिए पड़ोसी है, उससे भय खाने की जरूरत नहीं, बल्कि उसके सामने मित्रता का हाथ बढ़ाना चाहिए। सौभाग्य से कम्युनिस्ट चीन के विरोधियों का बल कम हो गया, और हमारे दोनों देशों में गहरा भाईचारा स्थापित हो गया।

महेन्द्र आचार्य यहाँ के साहित्य-विभाग के काम से हटने के बाद मद्रास पहुँच गए। वहाँ से उनका पत्र आया। भूल-चूक के लिए क्षमा माँगने का शिष्टाचार दिखाते हुए उन्होंने कुमठेकर को ढोंगी और क्या-क्या लिखा। कुमठेकर वस्तुतः एक बड़े साधु हृदय के पुरुष थे, और सहिष्णुता में तो पृथिवी को मात करते हैं, यह पहिले ही मैं लिख चुका हूँ। सबके लिए उनका हृदय और जेब खुले रहते हैं। ऐसे आदमी को पैसों की हमेशा दिक्कत रहेगी, और न पैसे रहने पर भी वह गुजारा कर लेगा, इसमें संदेह नहीं। उसे ढोंगी कैसे कह सकते हैं ? वस्तुतः महेन्द्रजी का स्वभाव पुराने संस्कृत पण्डितों की तरह का था, जिसमें कभी-कभी बच्चों का-सा भोलापन दिखाई पड़ता था। वह उदयपुर से अपने साथ शुद्ध घी कनस्तर भरकर लाए थे। मैं देखता था, उनके साथी उसे उड़ाने के लिए तैयार थे, और महेन्द्रजी उसे जोगा करके कलयुग के अन्त तक ले जाना चाहते थे। महेन्द्रजी की इसमें हार हुई। पैसे में भी वह सँभल-सँभलकर खर्च करते थे। सचमुच ही हम सबको आश्चर्य हुआ, जब मालूम हुआ कि उन्होंने कुमठेकर को सौ या अधिक रुपया उधार दे दिया है। यार लोग मजाक करते, इसलिए यह काम दोनों में चुपचाप हुआ था। कुमठेकर के मेहमान आ गए। आतिथ्य में उन्होंने साखर्ची दिखलाई। फिर पैसा कहाँ रहता ? महीने में पौने दो सौ की ही तो आमदनी थी। चलते वक्त महेन्द्रजी अपना पैसा न पा सके, और शायद दो-एक बार चिट्ठी लिखी, तो भी उनका पैसा लौट नहीं सका। इसीलिए बेचारे कुमठेकर ढोंगी हो गए थे। कुमठेकरजी पीछे भी कई महीनों यहाँ रहे। सागवाले का भी रुपया बाकी था, अखबार वाले का भी। चलते वक्त नहीं चुका पाए। ऐसे "आत्मद्रव्येषु लोष्ठवत्" माननेवाले मस्त-मौला यदि "परद्रव्येषु लोष्ठवत्" (दूसरे के धन को भी डला) समझें, तो उनको दोष नहीं देना चाहिए। हाँ, अखबारवाले के लिए हमें बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि बेचारा दूसरे एजेंट से अखबारों को लेकर मीलों का चक्कर लगाकर रोज कोठियों में उन्हें बाँटता था, उसे ये रुपये दंड भरने पड़े। कुमठेकर बड़े सीधे-सादे स्वभाव के थे, और मैस भी वैसा ही था। हमारे यहाँ काम करनेवालों में विनोद ही शेरवानी और जवाहरशाही पायजामे के पक्षपाती थे, नहीं तो बाकी लोग उसकी कोई पर्वाह नहीं करते थे। नीचे से अधिक सर्दी तो यहाँ थी ही। कुमठेकरजी को कपड़ा बनवाना पड़ा। वह भी गरम शेरवानी-पायजामा बनवा लाए। अब वह अधिक सभ्य और शिष्ट मालूम होते थे, इसमें सन्देह नहीं। जेलों की भूख-हड़तालों और पिटाइयों ने उनके शरीर को बहुत कमजोर कर दिया था, पेट की बड़ी शिकायत रहती थी, बहुधा पावरोटी और दूध पर गुजारा करते थे। दूध गरम करने के लिए चूल्हे

को जलाने की जगह बिजली की अँगीठी में आसानी थी। वह उसका ही इस्तेमाल करते थे। दूसरे साथी सिर्फ रोशनी के लिए बिजली जलाते थे; बिजली के बिल में समान पैसे के भागी होते थे, इसीलिए यह उन्हें पसन्द नहीं था। वह कह सकते थे, कुमठेकर क्यों चूल्हे की बिजली का अलग पैसा नहीं देते ? मैं बतला चुका हूँ, कि कुमठेकर न धोखा देने के लिए किसी का पैसा अपने ऊपर रखना चाहते थे, और न यही चाहते थे, कि मेरा खर्च दूसरे बर्दाश्त करें। लेकिन अपने हृदय की उदारता की दवा कहाँ से लाते ?

'हर्न-क्लिफ' मसूरी के एक छोर का सबसे अन्तिम बँगला था, यह मैं बतला चुका हूँ। यह छोर जमुना की ओर था। इधर मील-डेढ़ मील पर पहाड़ी गाँव आ जाते थे। इसलिए वहाँ की चीजें हमारे लिए सुलभ होती थीं। जिस वक्त गाँवों में साग-सब्जी तैयार रहती, उस वक्त हमें आधे दाम पर ताजी सब्जी मिल जाती। बनियें किसानों को चौथाई दाम भी देने के लिए तैयार नहीं थें। इसलिए मैं बहुत चाहता था, कि कलिम्पोंग, दार्जिलिंग, नैनीताल की तरह यहाँ भी हफ्ते में दो दिन हाट लगे, जिसमें गाँववालों की चीजें उपभोक्ता सीधे खरीद सकें। नई नगरपालिका के चुने जाने पर आशा हुई थी कि इस दिशा में कुछ होगा। लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं किया। जमुना की मछलियाँ भी अक्सर गाँववाले लाते थे, और दो रुपए सेर की जगह रुपए सेर में मिल जाती थीं। यद्यपि यहाँ की मशहूर मछली महासिर शायद ही कभी आती, पर दूसरी मछलियाँ अच्छी और काफी बड़ी होतीं। मछली मुझे मांस से कम स्वादिष्ट नहीं मालूम होती, पर जाने क्यों अपने यहाँ बनी मछली में वह स्वाद नहीं आता, जो कि बचपन में छोटी-छोटी मछलियों में मिलता था। जाड़े के दिनों में गाँववाले कभी-कभी जंगली मुर्गे भी मारकर लाते थे। शास्त्रों ने ग्राम्य-कुक्कुट को अभक्ष्य कहा और अरण्य-कुक्कुट को भक्ष्य। मैं ग्राम्य-कुक्कुट को ग्राम्य-शूकर-सा ही भक्ष्य मानता हूँ। पर, ऋषियों की बात से भी इन्कार नहीं करता, और अरण्य-कुक्कुट और शूकर को परम पवित्र भक्ष्य स्वीकार करता हूँ।

पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर भी अब की गर्मियों में यहीं 'हर्न हिल' में रहे। प्रभाकरजी के साथ मेरी देखादेखी 1938 की है। मैं रूस से लौटते सहारनपुर में यों ही उतर गया। शहर को देखना, और यहाँ की कौरवी भाषा के सुनने का आनन्द लेना चाहता था। अचानक मिश्रजी से भेंट हुई और एक-दो दिन उनका अतिथि भी रहा। उनकी कलम मुझे बड़ी प्रिय मालूम होती है। छोटे-छोटे वाक्यों और छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर वह इतना अच्छा लिखते हैं कि दिल खुश हो जाता है। शिकायत यही रहती है कि इतना कम क्यों लिखते हैं। 'नया जीवन' का वर्षों से वह सम्पादन कर रहे हैं। किस तरह उसके बोझे को बर्दाश्त करते हैं, यह वही बतला सकते हैं, क्योंकि 'नया जीवन' एक कस्बे से निकलता है, और उसका प्रचार बहुत सीमित है। प्रभाकरजी की भाषा सीखी हुई भाषा नहीं है। हिन्दी की मूल भाषा कौरवी है, और यही प्रभाकरजी की मातृभाषा है। उन्हें इतना ही करना पड़ता है कि लोकभाषा के उन उच्चारणों और शब्दों को हटा दें, जिन्हें साहित्यिक हिन्दी ने मंजूर नहीं किया। मैं समझता हूँ, साहित्यिक हिन्दी को इतना अधिकार कभी नहीं होना चाहिए कि वह हिन्दी का उसके मूल स्रोत से सम्बन्ध-विच्छेद करा दे। जिनकी मूल हिन्दी मातृभाषा है, उन्हें मनमाने नियमों को मानने से इन्कार कर देना चाहिए। मिश्रजी, विष्णु प्रभाकरजी और दूसरे कौरवी क्षेत्र के लेखकों से मैं बराबर यही कहता रहा कि आप अपनी कहानियों, उपन्यासों और लेखों में लोकभाषा की पुट दीजिए, ताकि हमारी भाषा में अधिक लोच आए। मिश्र के साथ विद्यावती कौसल भी आई थीं, जिनकी कविताएँ अक्सर 'नया जीवन' में निकला करती थीं। मेरा जीवन तो घड़ी की तरह चलता है। खुलकर समय व्यय करने मे यदि उदारता से काम लूँ, तो काम रुक जाए, तो भी शाम का एकाध घंटा और अतवार का सारा समय मैं अपना नहीं समझता। उसी समय अपने यहाँ आए हुए साहित्यिक मित्रों से बातचीत होती।

1950 में श्री परमानन्द पोद्दार ने मेरी कितनी ही पुस्तकों के एक संस्करण पर 25 हजार रुपया अग्रिम दिया। मुझे क्या मालूम था कि यह अग्रिम जी का जंजाल साबित होगा। इन्कम-टेक्स आफिसर ने इसको भी वास्तविक आय के साथ जोड़कर उसे 29 हजार बना दिया, और फिर डटकर पाँच हजार सुपर-टेक्स लगाया। मैंने समझाने की कोशिश की कि यह आमदनी ब्याज-रहित ऋण है, आमदनी नहीं है। लेकिन, इन्कम-टेक्स अफसर ने इसे नहीं माना। अन्त में यह मामला रेवेन्यू-बोर्ड के पास गया। एक-डेढ़ साल तो यही जान पड़ता

था कि इसे भुगतना ही पड़ेगा, पर रायल्टी के अग्रिम के ऐसे औरों के भी झगड़े थे। पीछे इसे ऋण मानकर मेरी छुट्टी हुई। अग्रिम के लिए मुझे पछताना ही पड़ा। सोचता था, यदि अग्रिम न दिया होता तो मकान भी नहीं ले सकता और मसूरी में जहाँ चाहता वहाँ सस्ता मकान मिलना मुश्किल नहीं था। जब चाहता तब मसूरी भी छोड़कर कहीं दूसरी जगह जा सकता था। मकान लेने से यह लाभ जरूर हुआ कि धीरे-धीरे चार हजार के करीब पुस्तकें जमा हो गईं, और उनसे मैं लाभ उठाता रहा। पर अब जब मसूरी छोड़ने का इरादा हो रहा है, तो मकान में लगे आधे दाम को लौटा पाने को भी मैं गनीमत समझता हूँ।

हमारे मकान के ऊपर दो ही हाथ पर अच्छी नासपातियों के दो-तीन वृक्ष हैं। अंग्रेजों ने अपने जंगलों के बनाते वक्त यहाँ फलों के उत्पादन की ओर भी ध्यान दिया था। 'हर्न हिल' में नासपाती, खूबानी, आड़ू आदि के बहुत-से वृक्ष लगे हुए थे, लेकिन प्रथम विश्व-युद्ध के बाद से ही मसूरी की ओर साढ़ेसाती सनीचर ने कदम बढ़ाना शुरू किया था। दूसरी विलासपुरियों से मसूरी की यह विशेषता थी कि यहाँ अंग्रेजों ने खुद अपने लिए बँगले बनवाये थे, नैनीताल में उनकी योजना के अनुसार भारतीयों ने बँगले बनाये थे। अपने लिए बनाए बंगलों में वह सब बात का पूरा ध्यान रखते थे, इसीलिए फल-फूल पैदा करने का अच्छा प्रबन्ध किया था। प्रथम विश्व-युद्ध के समाप्त होने के बाद ही बहुत-से और बँगलों की तरह 'हर्न हिल' भी अंग्रेजों के हाथ से भारतीयों के हाथ में चला गया। कुछ दिनों यह जिन्द के राजा के हाथ में रहा, फिर टेहरी ने ले लिया। किसी को यहाँ के बगीचों की ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी। उपेक्षित वृक्ष धीरे-धीरे सूखने लगे और मेरे यहाँ आने के समय अपने हाते में एक नासपाती और एक आड़ू का वृक्ष रह गया। नासपाती कठ-नासपाती थी, जिसका चटनी ही की तरह उपयोग किया जा सकता है, यदि हनुमानजी की सेना उन्हें बकस दे—सौ भूत के रहते भी वह बकसने के लिए तैयार नहीं थी। जरा-सा पलक मारते ही वह पचासों की संख्या में आती और चुटकी बजाते-बजाते फलों को साफ कर जाती। इसके लिए हमें कोई अफसोस नहीं होता, क्योंकि नासपाती हमारे काम की नहीं थी। लेकिन, दो ही हाथ हमारी सीमा से बाहर की नासपातियाँ अच्छी जाति की मीठी नाखें थीं। कोई उनकी खोज-खबर नहीं लेता, ना फाले बनाता, न खाद डालता। तब भी ये मेवेदार वृक्ष हर साल फलों से लदते। कोई फलों का रखनेवाला नहीं था। भूत के मारे कभी-कभी पकने के समय तक आधे रह जाते, और फिर आसपास के लड़कों के काम आते।

'मध्य-एसिया का इतिहास' लिखने का संकल्प पाँच-छः वर्षों से था। ग्रंथ बड़ा था, इसलिए भी उसके लिखने का काम आसानी से शुरू नहीं किया जा सकता था। 1 अगस्त को उसके लिखने में हाथ लगाया। 1952 तक सारी पुस्तक खत्म कर डाली। 1953 के शुरू में प्रेस में भी चली गई, लेकिन 1956 तक उसकी एक जिल्द ही निकल पाई।

बन्दूक इस ख्याल से भी ली थी, कि रात-बिरात कोई जंगली जानवर आए तो उस पर इस्तेमाल कर लें, और एकान्त देख चोरों को भी आने की हिम्मत न हो। लंगूर फौज बहुत तंग करती तो गोली दागता, लेकिन शिकार में सफलता कभी नहीं हुई।

मसूरी में आकर मैं जरूरत से अधिक एकान्तप्रेमी हो गया। चाहता था कि पहाड़ से नीचे उतरूँ ही नहीं। इसमें कारण डायबेटीज़ और उसके लिए इंजेक्शन का खटरोग था। जरा-से घाव को दो महीने से अधिक सेना पड़ा। इससे यह करना जरूरी था। इसीलिए केन्द्र के भिन्न-भिन्न मंत्रालयों ने परिभाषा के लिए ज़ो कमेटियाँ बनी थीं, उनकी सदस्यता से मैंने इस्तीफा दे दिया। संसद ने भी एक कमेटी बनाई, जिसका सदस्य मुझे भी बनाया गया था, जिसके लिए 7 अगस्त को मैंने अस्वीकृति दे दी। इससे इस्तीफा न देता, पर हमारी कमेटी में जो परिभाषाएँ बनाई जातीं, उनको अंतिम रूप देनेवाले विद्वान ऐसे आदमी थे, जिनको मैं, और कोई भी अधिकारी नहीं समझता था।

भूत अब पाँच महीने से ऊपर का हो गया था। मैंने मिस पोसंग की बात का उल्टा अर्थ लगाकर यही समझा था, कि नौ महीने का हो जाने पर उसके सिखाने-पढ़ाने की कोशिश करनी होगी। भूत अपने-आप ही सीख-पढ़ रहा था। वह पत्थरों को मुँह से उठा-उठाकर लाता और फेंकने के लिए आग्रह करता, ताकि वह

फिर उठाकर लाए। यदि न फेंके, तो बच्चों की तरह हठ करके चिल्लाता। 'पत्थर लाओ' कहने पर वह पत्थर भी लेनें जाता। अलसेसियन कुत्तों का यह स्वभाव है, वह पत्थर मुँह में दाबे फिरते हैं। भूत पीछे चार-चार सेर के पत्थर को लेकर इधर से उधर घूमता, और कभी-कभी एक लम्बे पत्थर को लेकर ऐसे चलता, कि मालूम होता, मुँह में सिगार दबाए जा रहा है।

बिहार सरकार ने पालि-प्रतिष्ठान कायम किया, जिसकी समिति में मेरा भी नाम था। यह नालन्दा की पुनःस्थापना का उपक्रम था। मकान के अभाव के कारण पहिले राजगिरि में उसे खोला गया, पीछे नालन्दा में लाया गया। नालन्दा के पुनरुत्थान का स्वप्न एक बार मैंने बड़े जोर से देखा था। मेरे मित्र भिक्षु जगदीश कश्यप इस प्रतिष्ठान के संचालक थे। स्वप्न को जाग्रत देखते मुझे प्रसन्नता जरूर हो रही थी, पर उतनी मात्रा में नहीं। कारण मैं अब समझने लगा था कि कोई भी अनुसन्धान या अध्ययन-अध्यापन की बड़ी संस्था जंगल में नहीं फल-फूल सकती। जंगल में उसे शहर के तल तक आने के लिए करोड़ों रुपए चाहिएँ, जिसमें कि उसके आसपास नगर बस जाए। तब भी इससे खाने-पीने और शिक्षित समाज को ही सुविधा मिलेगी, अनुसन्धान के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, वह वहाँ वर्षों जमा नहीं हो पाएँगे। नालन्दा को उस स्थिति में पहुँचाने की अभी कल्पना भी नहीं हो सकती। सौ-पचास विद्यार्थी और बीस-पचास हजार पुस्तकों से क्या काम बन सकता है ? यद्यपि पटना में संस्था के होने पर उसे प्राचीन स्थान का महत्व नहीं मिलता, लेकिन वहाँ अच्छा पुस्तकालय है, अच्छा म्युजियम है, बड़ी संख्या में कालेजों के विद्यार्थी और अध्यापक हैं, सबसे सहायता मिलती है। नालन्दा के लिए तभी आशा हो सकती है, जब कि वहाँ कृषि कालेज, वेटर्नरी कालेज जैसे दूसरे भी कई बड़े-बड़े विद्या-संस्थान बन जाएँ, और विद्यार्थियों और अध्यापकों की संख्या हजारों तक पहुँच जाए।

श्री सदानन्द मेहता भारतीय सर्वे विभाग में काम करते थे। उस समय विभाग का एक भाग मसूरी में रहता था। पीछे अक्कल के अन्धों ने उसे देहरादून में बदल दिया। मसूरीवालों को सौ-दो सौ आदमियों के रहने से जो थोड़ी-बहुत आमदनी होती थी, वह बन्द हो गई। मसूरी की समस्या है वर्षों से खाली और तेजी से उजड़ते बँगलों की रक्षा कैसे की जाए ? यहाँ के लोगों की जीविका का स्रोत कैसे सूखने न पाए ? इसके लिए जरूरी था, कि दिल्ली के कुछ बड़े-बड़े दफ्तरों को यहाँ भेज दिया जाता। प्रान्तीय मन्त्रियों ने भी जोर लगाया, केन्द्रीय मंत्रियों ने भी आश्वासन दिया; पर कोई विभाग वहाँ से हटने के लिए तैयार नहीं हुआ। मन्त्री हमारे पुराने नौकरशाहों के हाथ की कठपुतली-भर हैं। अधिकतर कठपुतली होने लायक ही हैं, उनमें ऐसी योग्यता नहीं, कि अपने विभाग के शासन-सूत्र को सँभाल सकें या उसकी बारीकियों को जान सकें। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से जिसका छत्तीस का सम्बन्ध है, उसके हाथ में सारे भारत की शिक्षा की बागडोर है। जिसे मालूम नहीं, चिकित्सा-विज्ञान किस चिड़िया का नाम है, उसे 40 करोड़ लोगों के स्वास्थ्य की बागडोर दे दी गई है। इसी तरह सभी जगह गूँगे-बावले भरे हुए हैं। फिर क्या वह खाक नौकरशाहों पर अंकुश रख सकेंगे। अन्धों की लाठी वही तो हैं। मन्त्री यदि किसी विभाग के कार्यालय को मसूरी या शिमला भेजना चाहते हैं, तो नीचे के खुर्राट नौकरशाह उसका विरोध करते हैं। विरोध क्यों न करें, जब कि वे जानते हैं, कि दिल्ली में रहने पर हम मंत्रियों के दरबार में सलामी दे सकेंगे, उन पर प्रभाव डाल सकेंगे, और उसके जरिए अपना लोक-परलोक बनाएँगे—अर्थात् अपनी भी जल्दी तरक्की करेंगे और अपनी अगली पौध के लिए अच्छी नौकरियाँ दिला सकेंगे।

सदानन्द मेहता इतिहास के एम. ए. थे। पत्रकारिता और रूसी भाषा में भी डिप्लोमा लिया था। मैं जानता था, सर्वे विभाग ने पिछली शताब्दी के मध्य से हमारे बहुत-से देशभाइयों को तिब्बत और मध्य-एसिया की ओर भेजकर वहाँ से भूगोल और दूसरी बातों की जानकारी प्राप्त की। जिन लोगों ने अपने प्राणों को जोखिम में डाल सब काम किया, उनकी कोई पूछ नहीं, और अंग्रेजों ने सबका श्रेय आप लेना चाहा। एवरेस्ट की खोज लगानेवाले थे अद्भुत मेधावी राधानाथ सरकार। यदि उस शिखर का नया नाम रखना भी था, तो राधानाथ शिखर होना चाहिए था, लेकिन वह एवरेस्ट के नाम से मशहूर हुआ, जो कि उससे पहिले ही सर्वे विभाग से पेन्शन लेकर विलायत चला गया था। किशनसिंह, नैनसिंह, किन थोब जैसे बहादुरों ने वह सारी सामग्री जमा की, जिससे तिब्बत और मध्य-एसिया का शुद्ध नक्शा बन सका। पर, अंग्रेज उनको भुला देना चाहते थे। घुमक्कड़

होने से ये मेरे सगे बन्धु थे, इसलिए मैं चाहता था, कि उनका काम दुनिया के सामने आए, और उन्होंने जो मूल डायरियाँ तथा दूसरी चीजें सर्वे विभाग को दी थीं, उन्हें कीड़ों का भक्ष्य बनने से पहिले ही प्रकाश में लाया जाए। इसीलिए मैंने चाहा कि मेहताजी इस काम को लें, और इस अनुसन्धान पर पी-एच. डी. करें। उन्होंने उस काम को स्वीकार किया। बहुत-सी दिक्कतें रास्ते में आईं। अन्त में आगरा विश्वविद्यालय ने मेरे अधीन उन्हें अनुसन्धान करने का काम सौंपा। पर सर्वे विभाग या किसी सरकारी विभाग के ऊपर के अफसर कब चाहते हैं, कि जो काम वे न कर सकें उसे कोई दूसरा करे। वे कदम-कदम पर बाधा डालते रहे। मुझे मालूम हुआ कि किशनसिंह-नैनसिंह आदि की डायरियाँ दफ्तर के किसी कोने में फेंकी पड़ी हैं। मैंने इसके बारे में राष्ट्रपति को लिखा। उन्होंने विभाग को लिखा। डा. शान्तिस्वरूप भटनागर को आग लग गई। चाहे उन्होंने कभी उन डायरियों के बारे में सुना भी न हो, पर वह और नीचे के नौकरशाह कैसे यह पसन्द करते कि एक ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा उनके कर्त्तव्य की ओर अँगुली उठाये। भटनागर के पत्र का मैंने मुँहतोड़ जवाब देने की जरूरत नहीं समझी, लेकिन यह जानकर मुझे खुशी हुई कि वे डायरियाँ देहरादून से मँगाकर दिल्ली के केन्द्रीय आलेख-भंडार (आर्काइव) में रख दी गईं।

13 अगस्त (1951) को माधवजी ने 'जान क्रिस्तोफ' के एक अध्याय का फ्रेंच से हिन्दी में अनुवाद करके भेजा। अनुवाद बहुत सुन्दर था, और माधव इस काम के लिए उपयुक्त तरुण थे। लेकिन, मेरे लिए हाथ मलने के सिवा और करने को क्या था ? राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की योजना का काम जिस ढिलाई से हो रहा था, उसके कारण मैं निराश हो चुका था। यदि समिति की सहायता और तत्परता मिली होती, तो रोम्याँ रोलाँ की यह अमर कृति ही नहीं, बल्कि और भी कितनी ही कृतियाँ हिन्दी में आ गई होतीं।

14 अगस्त को श्री मुकुन्दीलालजी आए। वह कला-समालोचक, इतिहासज्ञ और लेखक तो हैं ही, साथ ही वह सिद्धहस्त शिकारी भी हैं। उम्र 60 से ऊपर होने पर भी उनका हाथ कभी-कभी बन्दूक पकड़ने के लिए फड़क उठता है। शिकारी बनने की तीव्र आकांक्षा मुझे कभी नहीं हुई, लेकिन शिकार-यात्राओं को मैं हमेशा बड़े चाव से पढ़ता था। उस वक्त मन मचलने भी लगता, और नहीं तो किसी के साथ एक रात मचान पर बैठ लेना ही सही। ऐसे अवसर आए भी, पर मैं उनसे लाभ नहीं उठा सका। शिकार की पुस्तकों को पढ़ने में जो आनन्द लेता है, उसे यदि किसी शिकारी के मुँह से बातें सुनने का मौका मिले, तो वह भी रुचिकर होता है। मुकुन्दीलालजी गढ़वाल के अपने एक शिकार की बात सुना रहे थे। वह और उनके एक साथी बघेरे के पीछे गए। मुकुन्दीलालजी की गोली से बघेरा घायल होकर एक झाड़ी में चला गया। उनकी खाली बन्दूक लिये वे झाड़ी के पास पहुँचे। उन्हें आशा थी कि साथी की बन्दूक भरी हुई है। इसी बीच बुरी तरह से घायल बघेरे ने झपट्टा मार उनकी टाँग पकड़ ली। साथी प्राण लेकर भागा। घायल बघेरे और निहत्थे आदमी का युद्ध शुरू हुआ। ये बन्दूक के कुन्दों से उसे मारते, और उसने इनकी टाँग को चबाना शुरू किया। मनुष्य जीतता है या श्वापद ? कितने ही मिनटों तक संदिग्ध लड़ाई दोनों की होती रही। बघेरा बहुत अधिक घायल था, इसलिए कुन्दों की मार से उसका काम समाप्त हो गया। जब तक प्राण संकट में था, तब तक होश-हवास दुरुस्त थे। बघेरा मांस और हड्डियों को काट रहा था, लेकिन उसकी ओर उनका ख्याल नहीं था। वह सिर्फ इतना ही सोच रहे थे, प्राण सबसे अधिक मूल्यवान् है, उसे किसी तरह बचाना चाहिए। बघेरे के मरने के बाद वे बेहोश हो गए। पैर की कई हड्डियाँ टूट गई थीं। अस्पताल में कितने ही दिनों तक जीवन-मरण के बीच में पड़े रहे। अन्त में प्राण बच गया। पैरों में बघेरे के चबाने का निशान अब भी पूरी तौर से दिखाई देता है, पर लँगड़े बनने की नौबत नहीं आई।

15 अगस्त 1951 को अंग्रेजों को गए चार साल हो गये। उस दिन विशेष आयोजन किया गया था। गाँधी चौक में मुझे झंडा फहराना था। अगस्त वर्षा का समय है, इस समय किसी समारोह का अच्छी तरह होना मुश्किल है। इस साल उस दिन वर्षा नहीं हुई। लोग काफी संख्या में शामिल हुए। टौन हॉल में भी सभा हुई।

प्रकाशक के बारे में लेखकों की शिकायत निर्मूल नहीं होती, और शायद प्रकाशकों की शिकायत को भी

सदा निर्मूल नहीं कहा जा सकता। पर, लेखक भिक्षु न होने पर भी अपनी मजूरी पाने के लिए हाथ के नीचे हाथ रखने के लिए मजबूर है, और प्रकाशक हाथ के ऊपर हाथ। इसका वह बहुधा दुरुपयोग भी करता है।

देहरादून में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का परीक्षा-केन्द्र था। इस साल कमला साहित्यरत्न प्रथम खण्ड, हरिश्चन्द्र विशारद और मंगल प्रथमा का वहीं फार्म भरने के लिए गये। तीनों ने परीक्षा दी। हिन्दी में कमजोर होने के कारण मंगल उत्तीर्ण नहीं हो सके, बाकी सभी सफल रहे।

एक दिन यों ही मैं अपना पासपोर्ट ढूँढ़ने लगा। मैं अच्छी तरह जानता था, कि चमड़े की थैली में रखकर उसे सूटकेस में सँभाल रक्खा है। एक बक्स ढूँढ़ा, दूसरा बक्स ढूँढ़ा, लेकिन कहीं उसका पता नहीं लगा। फिर भी मुझे दूसरा ख्याल नहीं आया, और यही समझा कि कहीं पड़ा होगा। लेकिन पड़ा हो तब मिले न। फिर लड़ाई के दिनों में पासपोर्ट के गुम होने का ख्याल आया। अंग्रेजों ने अपने खुफियावालों को अधिकार दे रखा था कि चाहे जैसे हो, वह अपना काम बनाएँ। उनके हाथ में बिके लोग नीच से नीच काम कर सकते थे। विश्वासघात तो उनका पेशा था। एक तरुण, जो अभी स्थाई खुफिया का आदमी भी नहीं बन पाया था, अपने सम्बन्धी के घर में आने लगा, जहाँ मेरा पासपोर्ट और कुछ और चीजें वक्स में रहतीं। वह वहाँ से उसे निकाल ले गया। दूसरी चीजों के उसके निकालने का अगर पता न लगा होता, तो शायद मुझे मालूम ही न होता, कि यह उस आदमी की कारस्तानी थी। अब मुझे उसी बात का ख्याल आया। अंग्रेज चले गये, लेकिन उनके जानशीनों के लिए मैं पहिले ही जैसा खतरनाक था। कलिम्पोंग में भी खुफिया पीछे लगी थी, सारी चिट्ठियाँ सेंसर होतीं। हमारे रसोइये को खरीदकर उसे देखभाल के लिए नियुक्त किया गया था। जान पड़ता है, किसी समय वहीं पासपोर्ट गुम कर दिया गया। मसूरी में भी खुफिया की तंदेही उसी तरह थी। जब कृपलानी तक खुफिया की शिकायत करते हैं और सरकार की लाड़ली अपने महाप्रभुओं के इस विश्वासपात्र व्यक्ति को भी छोड़ने के लिए तैयार नहीं, तो मुझे शिकायत करने का क्या अधिकार ?

देहरादून फार्म भरने तीनों गये। बाकी दोनों के ऊपर गदहपचीसी ने जोर मारा और वह पैदल पर्वत-यात्रा करते, एक दिन पहिले ही मसूरी पहुँच गए। जानते, कि पहाड़ की मोटर की सवारी में कमला की हालत बुरी हो जाती है, खाली पेट रहने पर पित्त निकलने लगती है। लेकिन, अकेला छोड़कर वह चले आए। अगले दिन दोपहर को कमला परेशान-परेशान मोटर के अड्डे पर उतरी और 11 बजे वर्षा में भीगती हुई पहुँची।

24 अगस्त को वर्धा से बुरी खबरें आने लगीं। आनन्दजी कुछ साल पहिले ही समिति छोड़ने की बात कर रहे थे, उनके रोक रखने में मेरा बड़ा हाथ था। अब वहाँ दो दल बन गये। एक पक्ष उनके पीछे हाथ धोकर पड़ा। मुझे ख्याल आने लगा, क्यों मैंने उन्हें पहिले ही समिति से हटने नहीं दिया। मैं सोचता था—समिति को इतनी बड़ी बनाने में जिसका हाथ है, उसके द्वारा साहित्य-निर्माण में भी भारी काम हो सकता है, इसीलिए वैसा न करने दिया। अब पछता रहा था। दूसरे कामों में लगे हुए भी आनन्दजी ने अपनी लेखनी को ताक पर नहीं रखा, यह इसी से मालूम है, कि उन्होंने जातक जैसे महान् ग्रंथ का पालि से हिन्दी में सात जिल्दों में अनुवाद करके हिन्दी के भण्डार को भरा। वे और भी पुस्तकें समय-समय पर लिखते रहे। समिति में न रहने पर वे देश-विदेश घूमकर भी बड़ा कार्य कर सकते (जो समिति से हटने के बाद वह कर रहे हैं)। यह घाटे का सवाल नहीं था। दोनों पक्षों में मेरे मित्र थे। मैं किसी का पक्ष ले इस संघर्ष में एक तरफ कैसे हो सकता था ? मेरी इस तटस्थता को कुछ मित्र पसन्द नहीं करते थे। असल में यह संघर्ष इतना उग्र न होता, यदि समिति से कुछ आदमियों को निकालने का प्रयास आनन्दजी ने न किया होता। जो समिति को दस वर्ष से चला रहा हो और जिसे वहाँ जमी हुई भिन्न-भिन्न विचारोंवाली मण्डली से काम लेने का तजर्बा हो, उसके सामने मैं अपनी राय क्या दे सकता था ? मैं समझता था, दोष-गुण किसमें नहीं होते। पर, उसके लिए किसी को काम से निकालना अर्थात् रोजी से वंचित करना अच्छा नहीं है।

इधर सम्मेलन में भी संघर्ष उग्र हो गया था। जहाँ 40 -50 हजार विद्यार्थी परीक्षाओं में बैठते हों, वहाँ पाठ्य-पुस्तकों में अपनी पुस्तकों का लगना बड़े लाभ की चीज है, हजारों-लाखों का वारा-न्यारा है। सरकारी टेक्स्ट-बुक-कमेटियों में जो घूस का बाजार गरम दिखाई देता है, उसका कारण भी यही लाभ है। जहाँ गुड़

हां, वहाँ चीटियाँ जरूर आती हैं। इसीलिए सम्मेलन की परीक्षाओं के ऊपर प्रकाशक भनभनाने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने सम्मेलन पर अपना अधिकार जमा लिया, और अब वे नग्न नृत्य करना चाहते थे। दूसरे उसके विरोध पर उतारू हुए। सम्मेलन की नियमावली के संशोधन करने की इसलिए भी जरूरत थी कि उस पर व्यवसायियों का प्रभुत्व न जमने पाये, और विद्वान साहित्यकार ही उसके भाग्य-निर्णायक हों। लेकिन, टंडनजी की दीर्घसूत्रता को क्या कहा जाए ? जब समय था, तब उन्होंने ढिलाई की, अब मुकद्दमेबाजी शुरू हो गई। सम्मेलन को डूबने का डर नहीं, तो उसके काम के बिगड़ने का डर तो जरूर हो गया। पिछले पाँच वर्ष ऐसे थे, जब कि हिन्दी की परिभाषाओं के साथ-साथ साहित्य-निर्माण का बड़ा काम किया जा सकता था, लेकिन, मुकद्दमेबाजी ने उसे ठप्प कर दिया, और रिसीवर (आदाता) बैठकर राख के नीचे आग को बचाये रखने की कोशिश करता रहा।

25 अगस्त को मन कुछ आकाश की ओर उड़ने और कहने लगा– "हृदय-तरंग तो सदा ही उड़ता रहता है। कभी उसकी तरंगें ऊपर उठती हैं कभी नीचे। कभी गति तीव्र होती है, कभी धीमी। आज धीमी गति रही, न अधिक ऊपर, न अधिक नीचे उठी। ये तरंगें व्यक्तिगत कारणों से भी होती हैं और समष्टिगत कारणों से भी।"

26 अगस्त को एक मंगोल प्रौढ़ आए, जो आज से 30-35 वर्ष पहिले अपनी जन्मभूमि को छोड़कर तिब्बत चले आए थे। वहाँ वर्षों रहकर तिब्बती साहित्य पढ़ते रहे। उनके साथ उनकी एक छोटी लड़की भी थी। बाह्य मंगोलिया के एक छोटे-मोटे राजा के मंत्री-पुत्र थे। रूसी-क्रांति के बाद उसका असर मंगोलिया पर पड़ा। सुखे बातिर (सुखबहादुर) के नेतृत्व में मंगोल जनता ने अपने स्वेच्छाचारी सामन्तों के खिलाफ विद्रोह किया। इसी समय यह अपने स्वामि-पुत्र के साथ मंगोलिया से भागे। दोनों घोड़े पर चढ़कर बड़ी मुश्किल से सिक्यांग पहुँचे और फिर महीनों बाद ल्हासा आए। दोनों कुछ दिनों तक पढ़ते रहे। इन्होंने तांत्रिक शास्त्रों और विधियों का अध्ययन किया, फिर भारत चले आए। भारत में तिब्बती लामा तांत्रिकों की बड़ी प्रसिद्धि है। धीरे-धीरे यह पटियाला के राजा के पास पहुँचे और वहाँ तांत्रिक राजगुरु बन गए। राजा को जितना ही स्त्रियों और कुत्तों का शौक था, उतना ही तंत्र-मंत्र का भी। आय से अधिक खर्च का परिणाम चिन्ता होता ही है, और उस चिन्ता को दूर करने के लिए राजा ने मन्त्र-तन्त्र की शरण लेनी चाही। हमारे मित्र वहाँ राजगुरु बनकर कई वर्ष रहे। अच्छा बँगला मिला था, नौकर-चाकर भी थे और मासिक वेतन भी निश्चित था। जब महाराजा मरे, तो उनके उत्तराधिकारी ने पिता की सभी शौकीनी की चीजों को हटाया। मंगोल तांत्रिक लामा भी घर से बेघर और बेरोजगार हुए। 15-20 हजार रुपये उनके पास थे। मसूरी में लण्ढौर बाजार के तिब्बती लोगों को वह जानते थे। यहीं चले आए। सीधे-सादे लोग इनसे पूजा-पाठ भी करवाते थे। चाहिए था, उस रुपये से कोई स्थायी काम करते। पर, सो नहीं हुआ। एक तरुणी ने दिल चुरा लिया। "वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योपि गरीयसि", वह प्रेम में पागल थे, लेकिन तरुणी वृद्ध के प्रेम में पागल क्यों हो ? दूसरा नौजवान बीच में पड़ा और खाने-उड़ाने से जो लटा-पटा बच रहा था, उसे लेकर स्त्री भाग गई। लड़की भी छोड़ गई। नून-तेल-लकड़ी की जोगाड़ करने में बेहाल थे। दो-दो चार-चार आने की सूई, धागा, छुरी-कैंची जैसी चीजें लेकर सड़क पर बैठ जाते, और उससे जो आमदनी होती, उसी पर गुजारा करते थे। जाड़ों में दिल्ली में चले जाते, वहाँ भी वही बात। मैंने उनसे कहा : "तिब्बत चले जाइये। वहाँ गाँवों में नये स्कूल खुल रहे हैं, आपको पढ़ाने का काम मिल जाएगा।" लेकिन, दूध का जला छाछ को भी फूँककर पीता है। वह समझते थे, कम्युनिस्टों से जान बचाकर मैं मंगोलिया से भागा था, फिर तिब्बत के कम्युनिस्टों के पास जाऊँ, तो कहीं सूद-दर-सूद सहित बदला वे न लें। यहाँ रहते हिन्दी भी वह कामचलाऊ सीख गए, कुछ पढ़ भी लेते। पर, इतना ज्ञान नहीं था, कि उससे साहित्यिक सहायता का काम कर सकते। पटना, नालन्दा और दूसरी जगहों से मुझे मित्रों ने किसी तिब्बती अध्यापक के भेजने के लिए कहा था। मैंने चाहा कि वह वहाँ लग जाएँ। पर, उन्होंने आधे मन से ही कोशिश की।

31 अगस्त को कमला की पहिली कहानी 'नया समाज' में छपी देखी। लेखिका को अपार हर्ष हो, तो

इसमें आश्चर्य क्या, जबकि पहिले एक जगह से उनकी कहानी लौट आई थी। 'नया समाज' हिन्दी की सर्वोच्च पत्रिकाओं में है। मुझे यह प्रसन्न्ता हुई, कि अब कमला का हाथ खुलेगा, और लिखने के लिए तैयार होंगी। हाथ खुला। उन्होंने अब तक आठ-नौ कहानियाँ लिखकर छपवाई हैं। उनकी भाषा और लेखन-शैली में संशोधन करने की गुंजाइश कम-से-कम होती गई, पर दीर्घसूत्रता का कोई इलाज नहीं मिला। बरसात में हमारे बँगले के सामने की विस्तृत पर्वतश्रेणियाँ हरियाली से ढँक जातीं, जो जाड़ा शुरू होते ही नंगी होकर तिब्बती पहाड़ियों जैसी बन जातीं। दाहिनी ओर पर्वत पार्श्व-वृक्षों से ढँके होते हैं। पहाड़ों में जिस तरफ धूप अधिक समय तक ठहरती है, उधर नमी की कमी के कारण जंगल नहीं उग पाते, और दूसरी तरफ नमी के कारण छायादार जंगल रहते हैं। इस नियम को अधिक वर्षावाले पहाड़ों पर लागू नहीं किया जा सकता।

घड़ी-यंत्र की तरह जीवन चलता रहे, यह अच्छी बात तो नहीं मालूम होती। पर, यदि निश्चित किये हुए काम में समय इस तरह बीते, तो उससे सन्तोष होता है। मेरे घंटे अपने-आप काम के बीच से सरकते जाते। हफ्ते में सिर्फ रविवार का आना मालूम होता था, क्योंकि उस दिन काम को स्थगित रखकर मित्रों के साथ मिलना-जुलना होता। बाकी छः दिनों के जाने का पता ही नहीं लगता। दिन बीतते सप्ताह, सप्ताह बीतते महीने, महीने बीतते वर्ष इसी तरह समय चला जाता है। "कल जो हमारे लिए तरुण थे, आज वे वृद्ध भी नहीं दीख पड़ते, और उनकी स्मृति-मात्र बच रही है। पर, यह तो जीवन का नियम है।"

15 सितम्बर को साथी महमूद जफर और डा. रशीदा जहाँ आईं। मैं समझता था वे ठहरेंगे। रशीदा को मुझसे बड़ी शिकायत थी। कहती थीं–"मैं आकर झगडूँगी।" पर आध घंटा ही रह करके चले गए। झगड़ा यही करना था कि मुझे वह उर्दू का विरोधी समझती थीं। रशीदा स्वयं उर्दू की अच्छी लेखिका थीं। हिन्दी का विरोध करने पर मुझे जिस तरह क्षोभ होगा, वैसा ही क्षोभ करने का उन्हें भी अधिकार था, पर मैं अपने को उर्दू का विरोधी नहीं पाता। इतिहास ने हिन्दी को एक दूसरा रूप दिया, जिसमें देशी भाषाओं को निकालकर अरबी-फारसी के शब्दों को भरा गया। पर, अब तो वह इतिहास की बात है। भाषा बन चुकी, और उसमें ग़ालिब-जैसी प्रतिभाओं ने अनमोल रचनाएँ रचीं। यह निधि हमारी है। उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। मैं नहीं चाहता कि पुरानी, नई या आगे की उर्दू की कृतियों से हमें वंचित होना पड़े। उनकी रक्षा होनी चाहिए। उर्दू को वृद्धि और विकास करने का मौका मिलना चाहिए। हाँ, यह मैं जरूर चाहता हूँ कि उर्दू के निर्विवाद प्रचार के लिए, अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचने के लिए यह जरूरी है कि वह नागरी में भी छपे। राज्य भाषा, सो भी फारसी अक्षरों में, बनाने का आग्रह वहीं किया जाए, जिस इलाके या प्रदेश के अधिकांश लोग उसे चाहते हों, नहीं तो खामखा का वैमनस्य पैदा होगा, जो उर्दू के लिए भी अनिष्टकर होगा। रशीदा जहाँ की कितनी बातें याद आती हैं। जब समय से पहिले ही इस प्रतिभाशालिनी महिला के चल बसने का ख्याल आता है, तो बहुत दुःख होता है। वह झगड़ा करने के लिए फिर नहीं आईं। महमूद उनके प्राणों को बचाने के लिए मास्को ले गए, जहाँ से वह अकेले लौटे।

मसूरी में दो सीजन (सैलानियों के मौसिम) होते हैं। एक, मई-जून का वर्षा शुरू होने तक एक या डेढ़ महीने में, कभी उससे भी पहिले खतम हो जाता है; दूसरा, अक्तूबर में वर्षा के बाद प्रायः एक महीने का होता है। मसूरीवालों को अपने नगर की अवस्था दिन-पर-दिन बिगड़ते देखकर चिन्ता होनी स्वाभाविक है। वे हर तरफ हाथ-पैर मारते हैं। अक्तूबर के मौसिम को अधिक भीड़-भाड़ का करने के लिए महोत्सव (फेस्टिवल) करने का रवाज चल पड़ा है, जिसमें दस-बीस हजार स्वाहा कर देने के सिवाय और लाभ तो देखने में नहीं आता। अबकी साल फेस्टिवल के उद्‌घाटन के लिए उत्तर-प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री गोविंदवल्लभ पन्त आए। स्वागत के लिए चार-पाँच द्वार बनाये गए थे। भाषण हुए। इससे मसूरी की नैया भँवर से बाहर नहीं निकल सकती। उसके निकलने का एक ही रास्ता है, चार-पाँच-हजार कर्मचारियोंवाले दिल्ली के कुछ दफ्तर यहाँ लाये जाएँ। वहाँ ऐसे दफ्तर हैं, जिनको दिल्ली में रहने की कोई जरूरत नहीं। शाम को माल रोड पर किताब घर से कुल्ड़ी तक कुछ गुलजार जरूर मालूम होने लगता था। अधिकांश सैलानी पंजाबी थे। बीच-बीच में कुछ बिहारी, बंगाली भी दीख पड़ते थे।

30 सितम्बर को रविवार था। पहिले सीजन में तो कम ही, लेकिन दूसरे सीजन में कभी-कभी देहरादून वाले भी पिकनिक के लिए मसूरी पहुँच जाते हैं। आज पं. गयाप्रसाद शुक्ल के साथ डी. ए. वी. कालेज के 27 छात्र आए। कम्पनी बाग में सवा 9 बजे वन-गोष्ठी चली। कुछ लड़कों ने अपनी कविताएँ पढ़ीं, एक को छोड़कर बाकी को निरी तुकबन्दी भी नहीं कह सकते थे। तुकबन्दी के लिए भी तो कुछ छन्द और दूसरी बातें सीखने की जरूरत होती है, जिसकी हमारे तरुण जरूरत नहीं समझते। अगर साहित्य उनका विषय है, तब तो कुछ पढ़ने के लिए मिल जाता है, नहीं तो स्वयम्भू कवि अपनी धुन में चाहे जो भी गायें, उन्हें सफलता की आशा नहीं हो सकती। उसके बाद लड़कों के प्रश्नों का उत्तर मुझे देना पड़ा। दोपहर तक गोष्ठी बड़े आनन्द से चलती रही। फिर हम घर लौट आए। साथ में भैया, भाभीजी और शुक्लजी के साथ कुछ और तरुण भी थे। लोगों को अपनी ओर खीचने के लिए घुड़दौड़ करने का भी आरम्भ इस साल हुआ। म्युनिसिपैलिटी से बाहर और हमारी कोठी के नीचे आधे मील पर अंग्रेजों ने लम्बा-चौड़ा मैदान पोलो के लिए बनवाया था। वह खाली पड़ा था। उसी में घुड़दौड़ कराई गई। सोचा, क्या जाने इसी से मसूरी का भाग्य लौटे। उस साल पहिला इंतिजाम था, इसलिए अच्छे घोड़े नहीं मिल सके, और यहीं के किराये पर चलनेवाले लद्दू घोड़ों को दौड़ाया गया। घुड़दौड़ में पैसे लगानेवाले भी निकल आए। यद्यपि उनकी संख्या इतनी नहीं थी, कि वह घुड़दौड़ का आश्रय बन जाते। हमारे ऊपर खाली 'हर्न हिल' कोठी से पोलो मैदान दिखाई पड़ता था, इसलिए हम यहीं से उसे देख सकते थे, यद्यपि आवाज यहाँ तक नहीं पहुँच पाती थी। घुड़दौड़ होने जा रही है, जूआ होगा, इसके विरोध में आज सबेरे नगर में जुलूस भी निकाला गया। इसका यह लाभ तो था कि अनजाने लोगों को भी घुड़दौड़ का पता लग गया। पर, जुलूस में उत्साह नहीं दीख पड़ता था, न उसमें अधिक आदमी थे। मसूरी अंग्रेजों के शासन-काल में भी कुछ सालों से म्युनिसिपल कमेटी से वंचित थी, उसके रोज-बरोज के काम का प्रबन्ध सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी करता था। सर्वेसर्वा देहरादून के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे। अंग्रेजों के समय से ही नौकरशाही की ऐसी परम्परा है, कि वह जनता से कोई आत्मीयता नहीं स्थापित कर सकती। इस परम्परा को कांग्रेसी सरकार ने भी कायम रखा।

# 4
# दूसरा जाड़ा

अंग्रेजों के जाने के बाद होनेवाले पहिले चुनाव का समय आया। संविधान वनाने से पहिले ऐसी बातें कहीं गई थीं, जिससे मालूम होता था, कि हमारा शासन नीचे से ऊपर तक लोकतांत्रिक होगा। बीसियों वर्ष से कांग्रेस ने भी घोषणा दोहराई थी, कि हमारे प्रदेश भाषावार वनेंगे। लेकिन, शासन के अपने हाथ में आने पर और कांग्रेस के संगठन के आचूड़ भ्रष्टाचार में डूब जाने के बाद नेताओं को मालूम होने लगा, कि इतनी लोकतंत्रता हमारे हक में अच्छी नहीं होगी। पहिले प्रान्तों के राज्यपालों को लोक-निर्वाचित होने की बात कही गई थी, लेकिन संविधान वनाते वक्त इसको हटाकर राज्यपाल को केन्द्रीय सरकार का पुत्र बना दिया गया। अव संसद (पार्लियामेंट) के एक भवन (राज्य-सभा) को भी निर्वाचन से वंचित कर दिया गया, और उसकी जगह संसद के लोक-सभा के सदस्यों को उसे चुनने का अधिकार दिया गया। जनता की राय को तभी संसद या विधानसभा ठीक तरह से प्रकट करनेवाली कही जा सकती है, यदि पार्टियों को मिले वोटों के अनुसार उनके सदस्य माने जाएँ। ऐसा होने पर निश्चय ही कांग्रेस सर्वेसर्वा नहीं बन सकती। इसीलिए, आनुपातिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त नहीं माना गया।

मसूरी में भी चुनाव की धूम मचनेवाली थी। कुछ मित्रों ने मुझसे कहा कि हम लोग आपको पार्लियामेंट में भेजना चाहते हैं। मैंने कहा, मैं खड़ा होना नहीं चाहता। मैं तो वोटर भी नहीं हूँ। वोटर होने के लिए उस स्थान में छः महीने रहने की शर्त थी, और मैं मसूरी में अभी तीन महीने से आया था। 3 अक्तूबर को यह भी पता लगा, कि अब सोशलिस्ट पार्टी ने अपनी गाँधी टोपी को लाल रंग में रँग लिया है। कांग्रेस के भ्रष्टाचार और उसके प्रति लोगों में जो दुर्भाव पाया जाता था, उससे कितनी ही पार्टियाँ और दूसरे लोग समझने लगे, कि कांग्रेस की नैया तो अब डूबेगी ही, इसलिए हमें उसके साथ लगे रहने की जरूरत नहीं। सोशलिस्ट पार्टी चुनाव के मैदान में आई। कांग्रेसवाले अपने उम्मीदवार सब जगह खड़े कर रहे थे, सोशलिस्ट भी नहीं चाहते थे, कि उनके उम्मीदवार किसी चुनाव-क्षेत्र में न रहें। यदि सोशलिस्ट पार्टी ने कम्युनिस्ट पार्टी से समझौता किया होता, तो इसमें शक नहीं, कि पूर्वी उत्तर-प्रदेश के अधिकांश चुनाव-क्षेत्रों में कांग्रेस को सफलता नहीं मिली होती। पर, जाने या अनजाने सोशलिस्ट पार्टी ने मानो समाजवाद को भारत में न आने देने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

हार होने में कोई सन्देह नहीं रह गया, तो जर्मनी ने हथियार डाल दिया। जापान भी बिना शर्त वही करने के लिए तैयार था। उस समय अमेरिका ने जापान के दो नगरों पर परमाणु-बम फेंककर पूँजीवाद के आतताईपन का प्रमाण दिया। निरीह मनुष्यों को इस तरह मारने का प्रयोजन केवल यही था, कि रूस अमेरिका की थैलीशाही के एकाधिपत्य को दुनिया के ऊपर कायम होने में बाधा न डाले। अब तक वह उसी को लेकर

वढ़-वढ़कर गाल वजाता, सारे रूस की सीमा के ऊपर पहुँचकर लड़ाई के लिए ताल ठोक रहा था। यह सब होते भी 60 करोड़ आवादी का चीन देखते-देखते अमेरिका के हाथ से निकल गया। सोवियत के नेताओं ने इससे पहिले ही कह दिया था, कि परमाणु वम पर अब अमेरिका की इजारादारी नहीं है। पर, अमेरिका इसे मानने के लिए कैसे तैयार होता ? दुनिया की सारी जोंकें अमेरिका के परमाणु बम के ऊपर नजर गड़ाए हुई थीं। वह समझी थीं, कि इसी के कारण अमेरिका आज दुनिया का सबसे बड़ा शक्तिशाली देश है। अगर उन्हें मालूम हो जाए, कि रूस भी इस हथियार में पीछे नहीं है, तो उनकी हिम्मत टूट जाती। अमेरिका अब तक इन्कार करता रहा। लेकिन, अक्तूबर के पहिले सप्ताह में रूस ने नहीं, बल्कि अमेरिका ने घोषित किया, कि सोवियत रूस में दूसरे परमाणु बम का विस्फोट हुआ।

**हिन्दी**–7 अक्तूवर को खुरजा डिग्री कालेज के प्रिंसिपल श्री पी. डी. गुप्त आए। वे आगरा विश्वविद्यालय के प्रभावशाली स्तम्भों और योग्य प्रिंसिपलों में हैं। कोई हिन्दी भाषाभाषी जब अंग्रेजी में बोलने का आग्रह करता है, तो मुझे न जाने कैसा मालूम होता है। वह कह रहे थे, "विद्यार्थियों के अनुशासन-भंग करने में विद्यार्थी ही केवल दोषी नहीं हैं।" हरेक योग्य अध्यापक यही कहेगा। यदि वह अपने विद्यार्थियों को दुधमुँहा बच्चा नहीं मानता और विद्यार्थियों के भावों का भी आदर करना जानता है, तो उसे कभी विद्यार्थियों के अनुशासन-भंग को देखने का अवसर नहीं मिलेगा। वह कह रहे थे, विद्या की योग्यता विद्यार्थियों में कम होती जा रही है। साथ ही यह भी वतला रहे थे, कि अंग्रेजी की योग्यता की कमी जिस तरह तेजी से गिरती जा रही है, उसके कारण बड़ी हानि होगी। हिन्दी के उच्च शिक्षा का माध्यम होना गुप्ता साहेब अभी दूर की बात, या वांछनीय नहीं समझते थे। अध्यापक और विद्यार्थी हिन्दी पुस्तकों और हिन्दी भाषा का इस्तेमाल अधिकाधिक कर रहे थे। इसे हटाना अब सम्भव नहीं था। उनको अफसोस था कि अंग्रेजी के शिक्षा-माध्यम होने पर सारे भारत में जो उच्च-शिक्षा की एकता देखी जाती है, वह हिन्दी के कारण भंग हो जाएगी।

शायद फेस्टिवल के सम्वन्ध में ही मसूरी में कवि-सम्मेलन भी किया गया। लेकिन, जिनके पास पैसा था, वह ऐसे सम्मेलन के प्रेमी नहीं थे। दूसरों ने कह दिया : बुला लो। वहुत-से कवि यहाँ पहुँच गए। लेकिन, यहाँ सम्मेलन के स्थान का न कोई प्रबन्ध था, न खाने-पीने का। बेचारे कवियों को बैरंग लौटना पड़ा। श्री सत्येंन्द्रजी (बद्रीपुर) इस फजीहत के बारे में बतला रहे थे।

हिन्दी के बारे में नेहरूजी कहते हैं : वह कठिन नहीं होनी चाहिए। वास्तविक बात तो यह है कि वह चाहते हैं, बिना पढ़े-लिखे बोलचाल से जितना उनका ज्ञान है, उसी को हिन्दी भाषा मान लिया जाए। 7 अक्तूबर को रेडियो पर वह बोल रहे थे, जिसमें निम्न शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया था–वाकयात, दिमाग, वाकया, हादसा, यकीनन, सदमा, मौके, गायब, इन्सानियत, जज़्बा, कश्मकश, खतरनाक, ग़लत तरीके, ग़लत नतीजे, जलसे, इज़हार, खयालात आदि। हिन्दीवाले इन शब्दों को नहीं इस्तेमाल करते और ये शव्द यकीनन जनसाधारण की समझ के बाहर के हैं। हिन्दी पढ़े भी इन्हें समझने में असमर्थ हैं। इस पर नेहरूजी का फतवा है, हिन्दी गलत रास्ते पर जा रही है। पहिले उन्होंने भी मौलाना के साथ उर्दू का पक्ष लिया था, अब हिन्दी के मंजूर हो जाने पर चाहते हैं, कि हिन्दी उर्दू का रूप ले।

उसी दिन मालूम हुआ, पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री लियाकत अली को किसी ने गोली मार दी। मरते वक्त उनके मुँह से निकला था–"पाकिस्तान की खुदा हिफाज़त करेगा।" जिन्ना और लियाकत अली दोनों पाकिस्तान के सर्वेसर्वा थे, और दोनों ही विदेशी थे। पाकिस्तान की सरकार में शरणार्थी मुसलमान छा गए, पूर्वी पाकिस्तान में पंजाबियों को छूट मिली। इसके लिए लोगों के मन में ईर्ष्या हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। इस समय ख्वाजा नजीमुद्दीन पाकिस्तान के गवर्नर-जेनरल थे। अधिकार गवर्नर-जेनरल के हाथ में नहीं, बल्कि प्रधानमंत्री के हाथ में होता है, यह समझकर नज़ीमुद्दीन अपनी गद्दी से नीचे खिसक आए, और रातों-रात प्रधानमंत्री बन गए। पाकिस्तान में स्थिति बराबर डाँवाडोल रही, और ऊपर से अमेरिका का पंजा उस पर मजबूत होता गया। भारत में भी भ्रष्टाचार, और कमजोरियाँ हैं, लेकिन पाकिस्तान से मुक़ाबिला करने पर वे कुछ नहीं हैं।

12 अक्तूबर को किशनसिंह ने मोमो का भोज दिया। हम दोनों अपने मन का ख्याल करके यही समझते

थे, कि मांस खानेवाला हरेक आदमी इसे पसन्द करेगा। भैया को भी साथ ले गये। लेकिन उन्हें पसन्द नहीं आया। वहाँ से मलिंगार गए। मलिंगार मसूरी का सबसे पहिला पक्का मकान है, यद्यपि यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सवा सौ वर्ष पहिले जिन दीवारों को बनाया गया था, वही अब भी मौजूद हैं। इसमें कई दर्जन कमरे हैं, और स्थान ऐसी जगह है, जहाँ से दूर-दूर का दृश्य दिखाई पड़ता है। सर्वे विभाग का एक दफ्तर मसूरी में रहता था, जिसके कर्मी यहाँ पर भरे हुए थे। मेहताजी सपरिवार यहीं थे। उनके यहाँ हम चाय पीने गए थे। चाय पीने का समय नहीं था, तो भी उन्होंने तैयारी कर रखी थी। वहाँ से 5 बजे लौटकर भैया के यहाँ दुबारा चाय पी।

21 अक्तूबर (अतवार) मेहमानों के आने का दिन था। पहले एक तिब्बती गेशे (पंडित) आये। वह हिन्दी नाममात्र जानते थे। फिर भैया-भाभी और मेहताजी आये। पीछे मेरठवाली शकुन्तलाजी के साथ उनके सम्बन्धी मुरादाबाद के एक तरुण साहु आये। मैंने अपनी जीवनी में मुरादाबाद जाने और वहाँ पर एक साहुजी के यहाँ रहने का जिक्र करते लिखा था, कि उन्होंने दस दरियाई कमंडल रख रखे थे, और चाहते थे, कि नौ और साधु मिल जाएँ तो दसवाँ बनकर मैं घर से निकलूँ। यह संख्या दो से कभी अधिक नहीं हुई। कोई घुमक्कड़ दूसरों के आने की प्रतीक्षा में महीनों या वर्षों उनके पास क्यों रहता ? आखिर में मेढ़कों की तुलाई ही सिद्ध हुई होगी, जैसा कि मैंने कुछ सप्ताह रहकर वहाँ से खिसक कर किया। तरुण ने बतलाया, कि वह मेरे ही चचेरे परदादा थे। मुझे मालूम था, कि साहु की माँ और छोटे भाई ने मुझे खिसकने के लिए बहुत प्रेरित किया था। तरुण ने यह भी बतलाया, कि वह तो नहीं रहे, लेकिन मेरे परदादा अब भी जीवित हैं, वृन्दावन-वास करते हैं।

22 अक्तूबर को भैया और भाभीजी की विदाई की चाय थी। उस दिन हम 'लक्समौंट' गये। बरसात के महीने हमारे बहुत हँसी-खुशी से गुजरते थे, क्योंकि जून या जुलाई में आकर भैया और भाभीजी अक्तूबर में यहाँ से लौटते थे। अब फिर अगले साल उनसे मुलाकात होनेवाली थी।

28 अक्तूबरवाले रविवार को तरुण शिव शर्मा एक ब्रजवासी संगीतज्ञ तरुण को लेकर आये। संगीतज्ञ के सीधे-सादे रूप को देखकर मालूम होता था, कोई गँवार होगा। पर भेस से भूल नहीं करनी चाहिए, इसका मुझे काफी तजर्बा था। तरुण एफ. ए. तक पढ़ा हुआ था। संगीत उसकी खानदानी विद्या थी, इसलिए उसे मन लगाकर सीखा था। यहाँ ब्रजवासी डाक्टर भादुरी के साथ अब की गर्मियाँ बिताने चला आया था, और कुछ कथा-वार्त्ता करके खर्च चला लेता था। संगीत से मेरा द्वेष नहीं है, यद्यपि रूढ़िग्रस्त संगीत को मैं पसन्द नहीं करता। मैं यह भी चाहता हूँ, कि हमारे संगीत की स्वर-लिपि अन्तर्राष्ट्रीय होनी चाहिए। यूरोपीय नोटेशन (स्वर-लिपि) आज सारे विश्व में चल रही है। सारे यूरोप, सारे अमेरिका, एसिया के भी सभी देश और जापान उसको ही अपनाए हुए हैं। हमारे संगीत को बाहरवाले इस नोटेशन द्वारा आसानी से समझ सकते हैं। जिस तरह सारी दुनिया का एक संघ, एक नाप-तौल होने से सबको सुभीता है, और अपनी डेढ़ ईंट की अलग मस्जिद बनाना हानिकारक है; उसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय नोटेशन के बायकाट करने की सोचना हानिकर और बेकार है, क्योंकि आखिर उसे अपनाना ही पड़ेगा। यूरोपीय नोटेशन में यह भी लाभ है, कि वह ग्राफ या फोटो-जैसा है। देखने मात्र से किसी राग की कौन राग से कितनी समानता और कितनी असमानता है, यह मालूम हो जाता है। शिक्षित तरुण को देखकर मैंने कहा, कि संगीत का तुलनात्मक अध्ययन करो और लोकगीतों का भी संग्रह करके उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्वरलिपि में बद्ध करो। संगीत घुमक्कड़ के लिए स्वावलम्बी बनाने का बहुत भारी साधन है, इसका उदाहरण वह तरुण स्वयं था। वह भारत में कितनी ही जगहों में घूमा हुआ था, और संगीत-बल पर ही।

पैसा कम ही रह गया था। जो अग्रिम लिया था, उसमें 20 हजार मकान और फ्लश पर ही खर्च हो गये थे, बाकी भी उड़ चुका था। खर्च के घटाने के लिए सोचता—रसोइये को हटा दें, अपने हाथ से खाना बना लिया करें। पर, उनके साथ बरतन माँजने का भी प्रश्न उठ खड़ा होता था, जिसके लिए नीचे के शहर की तरह कुछ घंटे काम करनेवाले नौकर - नौकरानियाँ यहाँ नहीं मिल सकते थे।

30 अक्तूबर को दीवाली थी। मैंने तो मसूरी की कोई दीवाली नहीं देखी। एक आदमी की घर देखने की भी जरूरत पड़ती थी। कमला और लोगों के साथ जरूर चली जाया करतीं। आदमी को त्यौहारों की बड़ी आवश्यकता होती है। दुःखी जीवन में भी उनके कारण जरा देर के लिए सरसता आ जाती है। मसूरी के दूकानदार बेचारे अपना ही मांस खाकर जी रहे थे, तो भी उन्होंने भी अपनी दूकानें सजाई थीं। हमारे आसपास भी पाँच-छः दूकानदार हैं, जिन्होंने भी लक्ष्मी के आवाहन की कोशिश की।

श्री कृष्णप्रसाद दर इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस के वस्तुतः विधाता थे। उन्होंने ही एक छोटे-से प्रेस को बढ़ाकर उसे एक बहुत बड़े प्रेस का रूप दिया, और सबसे बड़ा काम जो किया, वह था, छपाई-सफाई में लॉ जर्नल प्रेसों का भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ प्रेसों में हो जाना। 1933 से ही मेरी पुस्तकें वहाँ छपने लगी थीं। छपाई-सफाई के साथ जिस मुस्तैदी से वह काम करते थे, उसके कारण मैं उनका बहुत प्रशसंक हूँ। कोई भी वर्धिष्णु व्यवसाय अधिकाधिक पूँजी की माँग करता है। व्यावसायिक उन्नति को ही एकमात्र देखनेवाला वह पुरुष दूसरे पहलू को नहीं देखता। लॉ जर्नल प्रेस में मशीनों और काम का बढ़ने का परिणाम यह हुआ, कि वह पैसेवालों के हाथ में चला गया, तो भी उन्होंने दर साहब की योग्यता को देखकर उन्हें मैनेजर के पद पर रखा। प्रेस ने अपना प्रकाशन भी आरम्भ करना चाहा। दर साहब ने मुझे पुस्तक देने के लिए लिखा, अग्रिम भी दिया और मैंने 'गढ़वाल', 'कुमाऊँ', 'दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा' तीन पुस्तकों को देना स्वीकार किया। 'गढ़वाल' को वह छाप सके, 'कुमाऊँ' मोनो में पंच हो चुका था। उसी वक्त मालिकों को दर साहब की जरूरत नहीं रह गई और उन्होंने उन्हें हटा दिया।

नवम्बर में भूत सात महीने का हो रहा था। दिन में सेर आटा और हफ्ते में दो दिन आधा-आधा सेर गोश्त उसे मिलता। अभी वह लम्बा छरहरा था। खूब इधर-उधर दौड़ता था। उसको क्या पता था, कि देश में अन्न का कितना कष्ट है ?

3 नवम्बर तक सर्दी आ गई, और केवल दोपहर को ही उसका पता नहीं लगता। नौकर चला गया था और कमला को भोजन ही नहीं वनाना पड़ता था, बल्कि बरतन भी मलना पड़ता था। कमला को अपनी परीक्षा की तैयारी भी करनी थी।

**श्रीमती मोहिनी जुत्शी**–मोहिनीजी बहुत ही सुसंस्कृत-साहित्यिक महिला हैं। कश्मीरी पण्डितों के परिवार में अमृतसर में पैदा हुई, और ब्याही गई लखनऊ के इंजीनियर मुनीश्वरनाथ जुत्शी के साथ। मोहिनीजी के दादा-परदादा अफगानिस्तान में बड़े ऊँचे पद पर थे। जब उनके अमीर का जमाना बिगड़ा तो वह भी आकर अमृतसर में रहने लगे। उनकी परदादी फ़ारसी बोलती थीं। भारतर्ष में अंग्रेजी का रवाज 19वीं सदी के चौथे पाद में हो चला था। जो राजसेवा को अपना पुश्तैनी पेशा मानते थे, वे पहिले ही से अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने लगे। यद्यपि लड़कियों के लिए उतनी अंग्रेजी की माँग नहीं थी, लेकिन 20वीं सदी के आरंभ में पैदा हुई मोहिनीजी को अंग्रेजी मैट्रिक पास करने का मौका मिला, और उसके बाद अध्ययन उनके लिए व्यसन बन गया। अंग्रेजी के साथ उर्दू से भी उनका शौक था, उर्दू कविता कहने लगीं। उनके कविगुरु पं. ब्रजमोहन दत्तात्रेय 'कैफ़ी' थे और उनकी कविता को मैं टौन हॉल की सभा में सभापति रहते सुन चुका था। वह 4 नवम्बर को और भी सुनने की मैंने इच्छा प्रकट की। जुत्शी साहब बहुत दिनों तक गोरखपुर में डिस्ट्रिक्ट-इंजीनियर रहे, अब अवसर प्राप्त थे। पति-पत्नी दोनों की रुचि एक तरह की नहीं थी, लेकिन दोनों में सौहार्द्र बहुत था। जुत्शी साहब हरेक बात में बड़े उदार विचार रखते हैं। दोनों के तीन पुत्रियाँ और तीन पुत्र हैं। इस दम्पती को व्यावहारिक ज्ञान कितना है, यह इसी से मालूम होगा, कि उन्होंने अपनी सन्तानों को उच्च शिक्षा दिलाते हुए कला की ओर नहीं, बल्कि साइंस की ओर बढ़ाया। एक लड़का डाक्टर होकर इंग्लैंड पढ़ने गया, और वहीं प्रेक्टिस करते विवाह करके बस गया। अंग्रेज बहू के लिए सास के दिल में वैसा ही स्नेह है, जैसा किसी कश्मीरी लड़की के लिए होता। एक लड़का बाप की तरह इंजीनियर और तीसरा रसायन की इंजीनियरिंग करके अमेरिका सात-आठ वर्षों तक रहा। पहिले तो जान पड़ता था, कि वह अमेरिका से नहीं लौटेगा। इसके लिए मोहिनीजी को बहुत चिन्ता रहती थी। तीनों लड़कियों को उन्होंने डाक्टर बनाया। दो ने कश्मीरियों से बाहर

अपना ब्याह किया, पिता-माता का उन्हें पूरी तौर से आशीर्वाद मिला। ऐसे सुसंस्कृत दम्पती से परिचय और सम्पर्क होना बड़ी प्रसन्नता की बात है, इसे कहने की जरूरत नहीं। एक साल सीजन में वे नहीं आए, तो हर रविवार को उनका अभाव खटकता था।

हर साल की तरह अब के साल भी 7 नवम्बर को रूसी-क्रान्ति का महोत्सव आया। रेडियो द्वारा मैं भी उस महोत्सव में शामिल हुआ। यह महोत्सव सिर्फ रूसियों और सोवियत की दूसरी जातियों के लिए नहीं, बल्कि सारी दुनिया के श्रमजीवियों का महान् पर्व है। साम्यवाद पहिले-पहिल साकार रूप में पृथ्वी पर रूस में ही अवतीर्ण हुआ। आज वह दुनिया में अकेला नहीं है। पूर्वी यूरोप मार्क्स के बतलाए पथ पर चलकर सुख और समृद्धि की ओर तेजी से बढ़ रहा है। युगों का पिछड़ा महान् चीन भी अब उनसे कदम से कदम मिलाकर चल रहा है। भारत को अंग्रेजों से शासन लिये चार वर्ष हो गये। यहाँ कांग्रेस ने नैया को भ्रष्टाचार के दलदल में फँसाकर लोगों को परेशान कर रखा है, जबकि दो ही वर्ष में चीन कहाँ से कहाँ चला गया।

कुल्लू-लाहुल के सीमान्त पर जांस्कर, जम्मू-कश्मीर का एक भाग है, जहाँ के लोग लद्दाख की तरह तिब्बती भाषा और बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। जोमा देकोरो ने हंगरी से आकर यहीं वर्षों रहते तिब्बती पढ़ी। तिब्बती भाषियों के साथ मेरी विशेष आत्मीयता है। लाहुल के ठाकुर मंगलचन्द और डा. भगवानसिंह ने अपने पत्र में लिखा, कि जांस्कर के लोग घास खा रहे हैं। पाकिस्तानी एक बार उनके भीतर घुस आए थे, जहाँ से वे भगा दिए गए, लेकिन जांस्करियों की कोई खोज-खबर लेनेवाला नहीं है। अपने पुराने सम्पर्क के कारण राष्ट्रपति हो जाने के बाद भी राजेन्द्र बाबू के पास ऐसी तकलीफों को चिट्ठी द्वारा पहुँचाने से मैं बाज नहीं आता था। मैंने उन्हें लिखा। जवाब से मालूम हुआ, कि सहायता भेज दी गई है। लेकिन सरकारी सहायता को बीच में उड़ा लेनेवालों की संख्या कम नहीं होती।

रूस से आए अब चार वर्ष हो गए थे। कई बार अपने मन में भी आया और मित्रों ने भी कहा, कि इस यात्रा को लिख डालें। अन्त में 12 नवम्बर को मैंने 'रूस में पच्चीस मास' को लिखना शुरू किया। यह 1944 के अन्त से 1947 के अन्त तक की यात्रा थी, और उसके लिख लेने के बाद मुझे इच्छा नहीं हुई, कि तृतीय जीवन-यात्रा में उस काल को भी शामिल करूँ।

कई दिनों अपने हाथ से भोजन बनानें और बरतन साफ करने के बाद कहने पर पड़ोसिन बरेठिन (धोबिन) ने भोजन बनाना स्वीकार किया। मातबरसिंह से वह अच्छा भोजन बनाती थी। इससे कमला को पढ़ने की फुरसत मिली।

नवम्बर के मध्य तक सफेदे की पत्तियाँ गिर गई थीं, और वे सूखे पेड़ से दिखाई देने लगे। चेस्टनट (पाँगर) और नासपाती की पत्तियाँ पीली पड़ गई थीं, कुछ दूसरे वृक्षों के पत्ते कलेजी रंग के हो गए थे। एक बिना गंध का सफेद फूल था, जिसे मैंने बेहया फूल नाम रख दिया था, क्योंकि कहीं डाल दिया जाए, तो वहाँ से हटने का नाम नहीं लेता। हमने एक जगह उसके लिए स्थान छोड़ दिया था, और केवड़े के तरह के पत्तोंवाला यह पौधा हर साल वहाँ झुरमुट बाँधकर खड़ा हो जाता। जाड़ों में सबसे पहिले यह सूखता और वसंत में सबसे पहिले हरा होने लगता। वैसे इसके सफेद छोड़कर और भी रंग के फूल सुगन्धी न होने पर भी गुलदस्ते की शोभा बढ़ाते हैं।

18 नवम्बर को श्री सत्यप्रकाश रतूड़ी आए। कई वर्षों से उन्होंने मसूरी से एक साप्ताहिक पत्र 'हिमाचल' निकाल रखा है। वैसे मसूरी से तीन अंग्रेजी पत्र न जाने कितने वर्षों से निकल रहे हैं। उनका कोई खरीदार है, इसका भी पता नहीं। पर मसूरी के स्टोर और अंग्रेजी ढंग के दूकानदारों को अपने अस्तित्व का पता हरेक बँगले तक पहुँचाना जरूरी है, यह काम ये अंग्रेजी पत्र करते हैं, जिसके कारण उन्हें विज्ञापन मिल जाते हैं। यहाँ के सैलानी अधिकतर काले चमड़ेवाले अंग्रेज होते हैं। अंग्रेजों के नौ वर्ष जाने के बाद आज भी मसूरी की सड़कों में जितनी अंग्रेजी बोली जाती है, शायद उतनी अंग्रेजों के समय में भी नहीं बोली जाती होगी। आज जितनी लिप्सटिक और पौडर का खर्च यहाँ है, उतना अंग्रेजों के समय में भी नहीं रहा होगा। ऊपर से ढेर का ढेर काजल भी हमारी सुन्दरियों को चाहिए। ऐसे सैलानियों को हिन्दी 'हिमाचल' की क्या

जरूरत ? मुझे यही समझ में नहीं आता था, कि रतूड़ीजी कैसे इसे चला रहे हैं। कभी वह किसी के यहाँ नौकरी करते, और पेट काटकर आठ पृष्ठ के 'हिमाचल' को निकाल देते। अध्यापक रहकर भी उन्होंने ऐसा किया। जब इस तरह आदमी जुटा हुआ हो, तो 'हिमाचल' क्यों नहीं निकलता। कभी-कभी कुछ हफ्तों या महीनों के लिए वह अस्त भी हो जाता, पर फिर प्रकट जरूर होता। उसमें मसूरी की ही खबरें नहीं रहतीं, बल्कि टेहरी-गढ़वाल की खबरें भी होतीं, इसलिए बाहर उसके कुछ ग्राहक थे। जब यहाँ उसका चलना मुश्किल हो गया, तो रतूड़ीजी उसे ऋषिकेश ले गए। वहाँ शायद अधिक अनुकूल परिस्थिति है, और अब भी वह निकल रहा है।

राजेन्द्र बाबू के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री चक्रधर शरण के पत्र से मालूम हुआ, कि राष्ट्रपति ने जांस्कर-सम्बन्धी मेरे पत्र को अपने पत्र के साथ प्रधानमंत्री के पास भेज दिया है। चक्रधर शरण तब से राजेन्द्र बाबू की छाया की तरह से रहे, जब वह बिहार में अर्धनग्न फकीर की तरह कांग्रेस के कामों में दिन-रात लगे रहते थे, यद्यपि सभी जानते थे, कि राजेन्द्र बाबू में असाधारण प्रतिभा और त्याग है, पर, वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति होंगे, इसका किसको पता था ? राजेन्द्र बाबू ने जिसको एक बार अपना लिया, वह सदा के लिए उनका हो गया। मुझे इस समय याद आते थे मथुरा बाबू, जो असहयोग में वकालत छोड़कर पीछे राजेन्द्र बाबू के साथ हो गए, और चक्रधर बाबू की तरह बराबर उनके साथ रहे। लेकिन मथुरा बाबू, न भारत को स्वतन्त्र देख सके, न अपने 'बाबू' को इस महान पद पर आसीन। उस दिन जब राजेन्द्र बाबू का प्रथम राष्ट्रपति होना निश्चित हो चुका था, उसी समय एक दिन पार्लियामेन्ट-भवन में एकाएक राजेन्द्र बाबू के साथ चक्रधर बाबू से मुलाकात हो गई। उन्होंने पहिले ही की तरह पैर छूकर मुझे प्रणाम किया। मैं इसे नहीं पसन्द करता, लेकिन, किसी का हाथ कैसे रोकता ! भावी राष्ट्रपति के प्राइवेट सेक्रेटरी होने के बाद भी उनकी सरलता और सौजन्यता इस बात से स्पष्ट थी। चक्रधर बाबू के बारे में इतना कहने की इसलिए भी आवश्यकता पड़ी, कि थोड़े ही समय तक वह राष्ट्रपति के सहायक रह सके। फिर उनका मस्तिष्क बिगड़ गया। आज वह कांके (राँची) के पागलखाने में हैं। वहाँ रखने के सिवा अच्छी तरह रहने का कोई दूसरा स्थान नहीं रहा था। मनुष्य का मस्तिष्क उसके जीवन के लिए कितनी मूल्यवान् निधि है।

'रूस में पच्चीस मास' के लिखाने के समय यह ख्याल आया, कि 1933 से 1936 तक की कितनी ही यात्राएँ जो बिना लिखी पड़ी हैं, उन्हें भी लिखवा देना चाहिए। 'मेरी जीवन-यात्रा' के तीन भागों में मैंने जन्म से 63 वर्ष पूरा करने तक की बातें लिखी हैं। घुमक्कड़ी करने के समय की यात्राओं को मैं छोड़ नहीं सकता था, उनमें से कितनों को मैं पहिले ही लिख चुका था। 'रूस में पच्चीस मास' को छोड़कर बाकी यात्राओं का संक्षेप मैं इस पुस्तक में दे रहा हूँ, जिसके कारण पुनरुक्ति भी हुई है।

22 नवम्बर की डायरी में मैंने लिखा "2050 रुपये बैंक में रह गए हैं, जिनमें से 500 उदयनारायण पाँडे को भेजने हैं, फिर 1550 ही रह जाते हैं।" अभी तक मैं दूसरों के मन से आर्थिक पीड़ाओं को देखता था, क्योंकि मैं अजगरी वृत्ति में रहता था, न अपना कोई घर था, न अपना परिवार। अतिथि बनाने के लिए देश और विदेश में सैकड़ों गृहपति तैयार थे, इसलिए मुझे नून-तेल-लकड़ी की फिकर नहीं हो सकती थी। यात्राओं और शोध-कार्य के लिए पैसों की जरूरत जरूर थी, लेकिन उनके अभाव में काम में अड़चन होती, तो उन्हें कुछ दिनों छोड़ देने में भी कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन, अब वह बात नहीं थी। मैं गृहपति था, गृहपति के हरेक कर्तव्य का पालन करना चाहता था। खासकर, अतिथि-सत्कार में तो मुझे बड़ा आनन्द और सन्तोष आता था। समझता था, मैंने जीवन-भर जो आतिथ्य पाया है, उसका थोड़ा-सा बदला इस रूप में दे रहा हूँ—अतिथिऋण से उऋण होने का यह मार्ग है। सबसे अधिक चिन्ता इसकी होती थी कि गर्मियों में कहीं ऐसी स्थिति न हो जाए कि 'तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी' सत्कार का मेरे पास साधन रह जाये।

25 नवम्बर को दिन-भर बादल रहा। कल रात और आज की वर्षा ने धरती को ऊपर-ऊपर से भिगो-भर दिया। नासपाती की पत्तियाँ अरुणवर्ण हो गईं, और दूसरे साग कितने ही सूख गए। गाँठ गोभी, राई, बन्दगोभी, पहाड़ी मटर पर जाड़े का कोई बस नहीं चलता। ये बरफ में ढँककर भी फिर हरे-हरे निकल आते हैं। मिर्च के पत्ते निम्न तापमान में सूख जाते, टमाटर उससे भी कमजोर है। इन दोनों की जड़ों को अगर

हिमीभूत न होने दिया जाये, तो अगले वसन्त में फिर इनमें हरे पत्ते निकल आते हैं।

'रूस में पच्चीस मास' 26 नवम्बर को समाप्त हो गया। बीकानेर के प्रकाशन के पास उसके कुछ भाग छपने के लिए भेज भी दिये। मेरी पुस्तकों से अधिक दाम होने की शिकायत अनेक पाठकों को है। लेकिन, बीकानेर के प्रकाशन ने दाम रखने में हद कर दी। पुस्तक का दाम पाँच रुपये से अधिक हर्गिज नहीं होना चाहिए था, लेकिन उन्होंने आठ रुपये रखा। बेबस लेखक बेचारा क्या करे। दाम सस्ता रखने के लिए स्वयं प्रकाशक बनना और भी आफत मोल लेना है, यह तीन पुस्तकों को स्वयं प्रकाशित करके मैंने देख लिया।

27 नवम्बर को मालूम हुआ, कि भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) ने 49 हज़ार में दिल्ली फ़ैज़ बाजार (दरियागंज) में जमीन खरीद ली, जिसका अर्थ है जमीन लेने में 55 हजार तक पहुँच गए होंगे। फिर ज़मीन लेने से ही तो काम नहीं होता, मकान बनाने के लिए उससे भी अधिक ही रुपया चाहिए। दिल्ली में और ऐसे मौके पर मकान बनाना कभी घाटे का सौदा नहीं हो सकता, भैया की इस दूरदर्शिता का मैं कायल था।

**पहाड़ी दीवाली**–पहाड़ में विशेषकर गढ़वाल और उसके पश्चिमवाले हिमालय में दीवाली उसी दिन नहीं होती, जिस दिन सारा भारत उसे मनाता है। हमारी दीवाली 30 अक्तूबर को हुई थी, जबकि पहाड़ी दीवाली 29 नवम्बर को हुई। हमसे सबसे नजदीक का गाँव कण्डी था, जो यहाँ से दो मील के करीब होगा। उस दिन भोजन करके हम कण्डी गाँव की ओर चले। सारा रास्ता उतराई का था। हरी का घर गाँव से काफी पहिले ही पड़ता था। वे हमारे यहाँ दूध और साग-सब्जी दिया करते थे। उनके घर पहुँचने पर देखा कि वह पीकर भूत बने हुए हैं। घरवाले दूसरे भी उतने मस्त नहीं थे। शायद सोचा–शाम के करीब आने पर पान का समय होता है। पर हरि ने सोचा–शुभस्य शीघ्रम्। तो भी उन्होंने अपनी लुटपुटाती जीभ और लटपटाते हाथों से हमारा स्वागत-सत्कार किया। यहाँ से और भी काफी नीचे उतरकर हम उस छोटी नदी के किनारे पहुँचे, जो कम्पनी बाग और चंडालगढ़ी के एक पार्श्व का पानी अपने साथ ले जाकर अन्त में केम्पटी फाल बनकर गिरती-पड़ती जमुना की शाखा में जा मिलती है। पानी पार कर थोड़ी-सी चढ़ाई में खेतों के बीच, लेकिन पहाड़ की बाँहों पर कंडी गाँव आया। 50-60 घर थे, जिनमें 20 के करीब ब्राह्मणों और उतने ही खशों और हरिजनों के थे। आज दीवाली के दिन कंडी गाँव का क्या पूछना ? "मधु वाता ऋतायते" की बात चरितार्थ हो रही थी। हवा में भी मद्य की सुगंध उड़ रही थी। गाँव में एक जगह लोग ढोल पर नाच रहे थे। हमारा धोबी नन्दू ढोल बजाने में अव्वल था, यह देखकर हमें भी गर्व हुआ। आज सब घरों के दरवाजे खुले हुए थे, जहाँ भी पहुँच जाइए, मधु (मद्य) का कटोरा सामने हाजिर था। मैं अपने को अभागा समझता था। नन्दू खूब पीकर ताल-सुर के साथ ढोल पीट रहा था। नाच के लिए वाद्य अत्यावश्यक है, और उसे हरेक आदमी नहीं बजा सकता, इसलिए उस दिन नन्दू की बड़ी कदर थी। पहाड़ में खश और मैदानी दो तरह की संस्कृति है। ऊँची नाकवाले अपने को बड़ा समझ मैदानी संस्कृति को अपनाते हैं। उनकी देखादेखी खश भी उसे मानने के लिए मजबूर हैं, लेकिन कंडी गाँव और मसूरी के इन पहाड़ों के दूसरे गाँव जौनपुर इलाके पड़ते हैं–जमुना के इस पार जौनपुर और उस पार जौनसार है। दोनों के ऊपर जमुना के दोनों किनारे खाई का इलाका है। खाई में एक बड़ी पर्वतमाला को पार करके कनौर (किन्नर देश) में जाया जा सकता है। किन्नर की सीमा तिब्बत से मिलती है। जौनपुर-जौनसार-खाई-कनौर-तिब्बत ये सभी पाण्डव-विवाहवाले देश हैं। जौनपुर और जौनसार इनमें मैदान से सबसे नजदीक पड़ते हैं। पाँचों पाण्डवों का अपनी एक पत्नी द्रौपदी से कैसे गुजर होता होगा, इसे यहाँ आँखों देखा जा सकता है। पाँचों पाण्डव द्रौपदी के अतिरिक्त और भी पत्नी रखने के लिए स्वतंत्र थे, जो यहाँ बहुत कम सम्भव है। जहाँ पाण्डव-विवाह चल रहा हो, वहाँ खशों का पुराना रीति-रवाज सबसे अधिक सुरक्षित होगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। गाँव से बाहर के खेतों में होली जली। लोगों को क्या पता कि नीचे होली और दीवाली में चार महीने का अन्तर होता है। इन्होंने होली-दीवाली दोनों एक ही साथ कर ली। हमारी दीवालीवाले समय पहाड़ में फसल काटने की भारी भीड़ रहती है, इसलिए वह समय निर्द्वन्द्व त्यौहार नहीं मना सकते। शायद इसीलिए यहाँवाले उस दिन दीवाली नहीं मनाते।

होली भी रात को नहीं, दिन-दोपहर को जली। उसके लिए लोगों ने घास और लकड़ी पहिले से ही जमा कर रखी थी। जलाकर लोग गाते-बजाते-नाचते गाँव की तरफ लौटे। गाँव के बीच में रखे घास के पूले से लोग रस्सा बटने में लगे हुए थे। आज और कल यहाँ रस्साकशी होगी, जिसमें एक तरफ स्त्रियाँ होंगी और दूसरी तरफ पुरुष। यह जरूरी नहीं है कि पुरुष ही हर साल जीतें। स्त्रियों की सहायता के लिए उनकी लड़कियाँ और शायद दामाद भी सहायता करते हैं। कह रहे थे, दो साल से पुरुष विजयी हो रहे हैं। रस्साकशी रात को होनेवाली थी, तब तक हम रह नहीं सकते थे, न अगले दिन ही आनेवाले थे। यहाँ के सभी लोग लम्बी-पतली नाकवाले और गोरे थे। शुद्ध खशमुद्रा यहाँ दीख पड़ती थी। कभी-कभी मूँछोंवाले आदमी भी देखने में आ जाते थे। सवा 3 बज गए। देखा, कटे हुए एक खेत में 10-12 तरुणियाँ और लड़कियाँ नाच रही हैं। नाच बहुत कुछ किन्नरों जैसा ही था। वह सूर्यास्त के समय जमता। हमारे रहते-रहते संख्या कुछ और बढ़ी, पर पूरे जोश के साथ अभी नाच-गाना शुरू नहीं हुआ। स्त्रियाँ पाँती से खड़ी होकर हाथ में हाथ मिलाये नाच रही थीं। चाहे किसी जात के खश स्त्री-पुरुष हों–ब्राह्मण भी – सभी मद्य पीकर नाचने-गाने का आनन्द लेते हैं। कंडी गाँव पर्वतीय द्रोणी के नीचे है, जिसके चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। दिन के बीतने के साथ सब जगह नीरवता छाती जा रही थी, और उसमें गानेवालों के कंठ से निकले गीत की प्रतिध्वनि चारों ओर छा रही थी। आज से ढाई हजार वर्ष पहिले मैदान में भी यही समाँ रहा होगा। साढ़े 3 हजार वर्ष पहिले सप्तसिन्धु के आर्य सोम (भाँग) पीकर इसी तरह अपना मनोविनोद करते होंगे। कितनी प्राचीन स्मृतियाँ इस नृत्य के साथ बँधी हैं।

1 दिसम्बर को साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 30 पुस्तकें आईं। कुछ तो महा रद्दी थीं। अनाड़ी लोगों को भारत के इतिहास और भूगोल को लिखने का शौक चर्राये, तो वह कूड़ा-कर्कट छोड़ और क्या लिख सकते हैं।

दिसम्बर के शुरू होते ही जाड़े ने काफी प्रगति कर ली थी। दिन में अधिकतम ताप 50 डिग्री पर था, अर्थात् हमारे शरीर के तापमान से 44-45 डिग्री नीचे। पर अभी बर्फ बनने के लिए 17 डिग्री और नीचे उतरने की जरूरत थी, जो रात को किसी समय भी हो जाता था। मिस पासंग अपने मकान 'किलडेर' के बेचने की चिन्ता में थीं, कोई गाहक नहीं मिलता था। किसी समय इस मकान के 60 हजार मिल रहे थे। उस वक्त उन्हें क्या पता था कि मसूरी को आज का दिन देखना पड़ेगा। बड़ी बहिन 70 के पास पहुँच रही थीं, शरीर से बहुत कमजोर और हृदय से और भी दुर्बल थीं, जिसके कारण बहुत चिन्ता थी।

चौधरी ने दो काफी बड़े खेतों में कई सालों से खेती करनी शुरू की थी। वह खाली पड़े हुए थे। हमारे पासवाला खेत 'अरान हौस' के साथ सम्बद्ध था, जिसकी मालकिन मिसेज किदवाई एक अंग्रेज महिला थीं। इसमें कुछ फलदार और कुछ शौकीनी के वृक्ष लगे हुए थे। चौधरी कई साल जोत चुके, तब मिसेज किदवाई ने उन्हें बेदखल करना चाहा। लेकिन अब चौधरी का उस पर कानूनी हक हो गया। वह अधिकतर मटर और बन्दगोभी उगाते। ये चीजें ऐसे समय पैदा होतीं, जब इनका नीचे अभाव होता, इसलिए अच्छे दाम पर बिक जातीं। आजकल वह बन्दगोभी बेच रहे थे।

हमारे हेपी वेली की पुलिस चौकी के दीवान (राइटर कान्स्टेबल) श्री कुंजजी साहित्यिक रुचि रखनेवाले तथा अपनी गढ़वाली भाषा के कवि थे। वह अक्सर हमारे यहाँ आकर पुस्तकें और अखबारों को पढ़ने के लिए ले जाते। उस दिन बतला रहे थे, "आजकल चुनावों की धूम है। टेहरी राजा का नामिनेशन पेपर रद्द हो गया, लेकिन माँ श्री कमलेन्दुमती का नहीं, इसलिए वही बेटे की जगह पर खड़ी हैं। छोटा लड़का और कितने ही पुराने दरबारी भी कांग्रेस के उम्मीदवारों के खिलाफ चुनाव के लिए खड़े हैं।" आखिर टेहरी जिले के चुनाव में कांग्रेस का एक भी आदमी नहीं चुना गया। राजकुमार, राजमाता और उनके दरबारी ही बाजी मार ले गये। यह क्यों ? जनता ने क्या भलाई कांग्रेसी शासन में देखी थी कि वह उसके उम्मीदवारों को वोट देती ? छपरा में एकमा के चुनाव क्षेत्र से श्री अखिलानन्द सिंह स्वतन्त्र खड़े हुए थे। कांग्रेस की ओर से मेरे पुराने सहकारी लक्ष्मी-नारायणसिंह लड़ रहे थे। अखिला ने समझा, चुनाव-क्षेत्र छोटा है, साइकिल से एक छोर

से दूसरे छोर का तीन चक्कर एक दिन में लग सकता है, कांग्रेस बदनाम है, इसलिए मैं चुन लिया जाऊँगा। पर, असफल रहे।

4 दिसम्बर को ल्हासा से श्री त्रिरत्नमान साहु का पत्र आया। यह पढ़कर मेरे हृदय को भारी धक्का लगा, कि एक मास पहिले गेशे गेन्दोन छोमूफेल (संघधर्मवर्धन) का देहान्त हो गया। एकाएक मुँह से निकला—"हसरत उन गुंचों पर है। जो बिन खिले मुरझा गए।" प्रथम श्रेणी के चित्रकार, प्रथम श्रेणी के तिब्बती भाषा के कवि, बौद्ध-दर्शन के अच्छे पण्डित धर्मबर्धन तभी हो चुके थे, जब 1934 में वह मेरे साथ पहिली बार तिब्बत से भारत आए। इसके बाद वह दस-बारह वर्ष तक भारत ही में भिन्न-भिन्न जगहों पर रहे। अंग्रेजी की योग्यता काफी हासिल कर ली, और सबसे बढ़कर बात यह कि दृष्टिकोण आधुनिक और वैज्ञानिक हो गया, इतिहास और सामाजिक-आर्थिक-समस्याओं के बारे में भी। मेरे घनिष्ठ सम्पर्क में आने के कारण वह मार्क्सवाद-समाजवाद की ओर झुके। उन्होंने अपनी कविताओं में इन विचारों को रखा। दो-तीन साल पहिले वह अपने देश लौटने के लिए तिब्बत गए। वह तिब्बत के सबसे उत्तरी भाग अम्दो के रहनेवाले थे। विद्या के प्रेम ने उनसे आराम और सम्मान का जीवन छुड़वाया। बचपन में ही वह अवतारी लामा मानकर एक मठ के महन्त बना दिये गए थे, लेकिन जब देखा कि उससे विद्यार्जन में रुकावट होती है, तो सब छोड़-छाड़कर ल्हासा में आ वहाँ के डेपुंग विहार के सबसे बड़े तथा तिब्बत के भी महानतम विद्वान् गेशे शेरब के विद्यार्थी हो गए। गेशे शेरब चांग-काई-शेक के दरबार में सम्मानित थे, लेकिन वह सबसे पहिले कम्युनिस्टों की ओर होनेवालों में थे। अब इस तरुण विद्यार्थी के काम का समय आया, जबकि चीन और तिब्बत लाल हो गए। अब गेशे की लेखनी और दिमाग अपनी करामात दिखाने के लिए उन्मुक्त थे। लेकिन, वह पहिले ही चल बसे।

मसूरी में एक तरफ तो यह पुकार थी, जिसके साथ मन्त्री लोग भी कम-से-कम जबानी सहानुभूति दिखलाना चाहते थे, केन्द्रीय सरकार के कुछ आफिस यहाँ पर स्थानान्तरित कर दिये जाएँ, पर काम उलटा हो रहा था। सर्वे विभाग के सौ-दो सौ आदमी जो अपने आफिस के साथ यहाँ रह रहे थे, अब उन्हें भी देहरादून भेजा जा रहा था। श्री सदानन्द मेहता ने अपनी पत्नी के साथ 6 दिसम्बर को आकर यह समाचार दिया। मसूरी का जाड़ा कुछ लड़कों के लिए भले अच्छा नहीं हो, लेकिन यदि पहाड़ का एलाउंस दिया जाता, तो वह भी यहाँ रहने के लिए तैयार हो जाते। वैसा करने की जगह आफिस देहरादून जाकर लण्ढौर बाजार के दूकानदारों के दुर्भाग्य का कारण बना।

बादल ही जल-वर्षा करते हैं। वही तापमान के अधिक नीचे होने पर हिम-वर्षा करने लगते हैं। देखते-देखते हमें बादलों की गतिविधि के विशेष परिणाम मालूम होने लगे थे। हमारे नीचे की ओर जमुना की शाखा अलग बहती थी, जिसके रास्ते होकर कभी-कभी बादल ऊपर को चढ़ते। जोधपुर की ठाकुरानी का नौकर दुर्गा तो इन बादलों को देखकर अचरज करता—"दुनिया में बादल ऊपर से आते हैं, और यहाँ नीचे से।" वह नहीं जानता था, कि मैं स्वयं साढ़े 6 हजार फुट की ऊँचाई पर हूँ। ऊपर कम्पनी बाग के साथ खड़ा चंडालगढ़ी का पहाड़ है, जिसके परले पार देहरादून की उपत्यका है। यदि नीचे नलगर से और ऊपर चंडालगढ़ी के आनेवाले बादल टकराते, तो वर्षा जरूरत होती। बादल अभी बहुत कम ही कभी-कभी दिखाई पड़ते थे। रात को सर्दी बहुत हो रही है, इसका पता सबेरे चौधरी के घर की छत को पाले से सफेद हुई देखकर लगता था।

दिसम्बर में मसूरी में सैलानियों का कहीं पता न था। यहाँ के बहुत-से दूकानदार भी अपनी दूकानें बन्द कर नीचे चले गए थे, इसलिए रविवार के दिन यहाँ स्थायी रहनेवाले मित्रों में से ही कोई आता। 9 दिसम्बर को डा. सत्यकेतु और शीलाजी आईं; प्रो. भारतभूषण भी अपने घनानंद कालेज के दूसरे अध्यापक जोशीजी के साथ आए। कमला ने स्वागत के लिए हलवा और विशेष तौर से फलाहारी कबाब बनाया। बिस्कुट तो सदा हाजिर रहता ही था। सैलानियों का मौसिम नहीं था, इसलिए धोबिन को कपड़े धोने की फिकर नहीं थी, और वह रसोंइदारिन बन गई थी। भारतभूषणजी कमला को अंग्रेजी पढ़ा दिया करते थे। उनको परीक्षाओं का तजर्बा था, इसलिए उनकी पढ़ाई मुझसे कहीं अच्छी होती, अंग्रेजी कविता तो मेरे लिए सूखी मालूम होती।

'यात्रा के पन्ने' के नाम से मेरी छूटी हुई यात्राएँ इस वक्त लिपिबद्ध हो रही थीं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

में काम करनेवाले साथी अभी यहीं थे। पता लगा, सम्मेलन के सभापति ने मुकदमा कर दिया है, और समिति बैंक से पैसा नहीं निकाल सकती। साथियों को चिन्ता हो रही थी, क्योंकि उनका वेतन नहीं आया था और आगे भी उन्हें पैसों की जरूरत थी। आपसी झगड़े के कारण होते हुए काम को ठप्प करना कभी उचित नहीं।

'गढ़वाल', 'कुमाऊँ' लिख लेने के बाद मुझे ख्याल आया, दार्जिलिंग और कुमाऊँ के बीच के नेपाल को भी लिख डालना चाहिए। उसमें हाथ लगाते हुए मैंने अपने कुछ नेपाली मित्रों को बतलाया, कि नई सामग्री के संग्रह के लिए मैं इसी जाड़े नेपाल आ रहा हूँ। श्री धर्मरत्न यमि के पिता महिला साहु ल्हासा में छुशिङ्शा प्रधान कर्मी थे। एक धनाढ्य पिता की सन्तान होते, पिता की उदारता के कारण निर्धनता के दिन उन्हें देखने पड़े, और यहाँ वह आकर मुनीम हो गए थे। उनके विचार बड़े ही उदार थे, और मेरे लिए तो वह हर तरह की सहायता देने के लिए हर वक्त तैयार रहते थे। एक बार आत्मसम्मान को ठेस लगी, और उन्होंने पिस्तौल से अपने जीवन को समाप्त कर दिया। उनके पुत्र धर्मरत्न को मैं उसी समय से जानता था, जबकि वह लड़के थे। किसी आदमी को सयाने होने पर भी 'धरै पाछिलो नाम' अनुचित है। धर्मरत्नजी को बचपन से संघर्ष करना पड़ा था, और पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं मिला था। जो कुछ पढ़े थे, उससे और अपने तजर्बे के बल पर नेपाल के स्वतन्त्रता-आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया, वर्षों जेल में रहे। इस समय उन्हें उच्च शिक्षा-प्राप्त साथी मिल गए, जिनके धर्मरत्नजी विद्यार्थी बन गए। अपने ज्ञान को उन्होंने बहुत बढ़ाया। इस समय वह नेपाल सरकार के उप-मन्त्री (धन-विभाग) थे। उन्होंने लिखा, कि नेपाल जरूर आवें, जो भी सहायता मुझसे हो सकेगी, मैं करूँगा।

19 दिसम्बर को जम्मू-कश्मीर युनिवर्सिटी ने व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किया। पहिला जमाना होता, तो खुशी से स्वीकार कर लेता, लेकिन अब तो मसूरी में मैंने क्षेत्रसंन्यास ले रखा था, और यहाँ से अनिवार्य होने पर ही मैं बाहर निकलता, इसलिए इन्कार करना पड़ा।

20 दिसम्बर को हमारे सामने एक नई परिस्थिति उपस्थित हुई। एक साथी भूख हड़ताल करने जा रहे थे। उन्होंने अपने एक मित्र को अपने चौके में महीनों भोजन कराया। भोजन की चीजों का दाम उन्हें मिलता था, और मित्र उनकी पढ़ाई में पूरी तौर से उनको सहायता दे रहे थे। किसी कारण दोनों में अनबन हो गई। एक ने कहा, रसोई बनाने का पन्द्रह रुपया मासिक, डेढ़ रुपया मासिक बरतन का किराया आदि मिलाकर 35 रुपया हमारा होता है। उनके मित्र पैसों के लिए मक्खीचूस नहीं थे। वह बड़े उदार थे, और अपने पैसे से एक विद्यार्थी को कालेज में पढ़ा रहे थे। लेकिन, जब मूँछों का सवाल हो जाए, तो दूसरी तरफ भी वह तन जाती हैं। भूख हड़ताल करनेवाले तरुण को बातें कहते-कहते आँसू भरते और गला रुँधते देखा, तो मुझे बहुत दुःख हुआ। दूसरे मित्र भी इसको कैसे बर्दाश्त करते ? खैर, बात रफा-दफा हो गई।

वेतन की अनिश्चितता थी लेकिन 20 दिसम्बर को ही दिसम्बर का वेतन आ गया, तो सबने सन्तोष की साँस ली। दिसम्बर के साथ अब साहित्य-निर्माण कार्यालय को यहाँ से बन्द करने का निश्चय हो गया। तजर्बा बहुत अच्छा नहीं रहा, उसमें कारण यही था, कि कुछ हाथ का काम करना नहीं, बात बनाना अधिक पसन्द करते थे। 28 दिसम्बर को अब 'हर्न हिल' (ऊपर की कोठी) खाली हो जानेवाली थी।

मालूम होता था, युगों बाद 21 दिसम्बर को भगवती भाई का पत्र आया। श्री भगवतीप्रसाद मुसाफिर विद्यालय आगरा के मेरे सहपाठी थे। हम लोग साथ सपने देखा करते और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते थे। मुसाफिर विद्यालय के बाद एक उपदेशक विद्यालय खोलने के लिए मुझे जालौन जिले में जाना पड़ा। उसके लिए भगवती भाई पहिले ही वहाँ पहुँचे थे। अब हम दोनों वर्षों से अलग थे। हमारे रास्तों में भी अन्तर आ गया था, पर स्नेह और पुरानी स्मृति पहिले ही जैसी मधुर थी। उन्हें अभी मालूम हुआ कि मैं मसूरी में रहता हूँ।

समय-समय पर मनुष्य की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं, यद्यपि उसके जिम्मेवार अधिकतर बाह्य कारण ही होते हैं। "मानसिक जगत् के भी झोंके होते हैं, जो कभी हर्ष बढ़ाते हैं, कभी अवसाद। जैसे (कोई) अत्यन्त प्रशान्त सागर दुर्लभ है, वैसे ही विचारवान् पुरुष हृदय-वीचि-रहित नहीं हो सकता। मानव अजब पशु है। पशु

होते भी उससे भिन्न है। भिन्न होने के कारण ही उसके अनुभव–हर्षात्मक या विषादात्मक–बहुत तीव्र होते हैं।"

24 दिसम्बर को आनन्दजी शाम को सूर्यास्त के समय जल्दी-जल्दी में आए। अगले ही दिन उन्हें चला जाना था। समिति के झगड़ों में समिति की कार्यकारिणी ने आनन्दजी का समर्थन किया था, पर अब वह निश्चय कर चुके थे, कि उसका मंत्रीपद छोड़ देंगे। अगले दिन वह 1 बजे चले भी गए।

उसी दिन जामिया मिलिया के प्रोफेसर फारुकी के साथ हमारे पिछले साल के तरुण मित्र चौहान आए, जिन्होंने विलायत से लौटकर यहाँ बच्चों के लिए स्कूल खोला था। आजकल वे जामिया में अंग्रेजी पढ़ा रहे थे। कह रहे थे : पिछले साल हमें कितने ही दिन खाने के भी लाले पड़ गए थे – एक शाम खाते, तो दूसरे शाम भूखा रहना पड़ा। इंग्लैण्ड में मजे से अध्यापकी कर रहे थे। स्वतन्त्र भारत में बड़ी-बड़ी उमंगें लेकर आए थे। खैर, अब उनको काम मिल गया था।

उनके तरुण मित्र मुसलमान होते भी जामिया और आधुनिक समय के ख्याल से मुझे नवीन विचारोंवाले मालूम हुए। उर्दू लिपि और उर्दू भाषा का पक्षपात होना मेरी दृष्टि में कोई बुरा नहीं है। कुछ भेंट करने का सवाल आया, तो मैंने अपनी 'वोल्गा से गंगा' के उर्दू अनुवाद की एक कापी दे दी। मुझे उसका न पहिले और न लिखते समय ही ख्याल आया था। अगले साल मालूम हुआ, कि उस तरुण अध्यापक ने अकबरकालीन कहानी 'सुरैया' जब पढ़ी, तो उन्हें बहुत गुस्सा आया–एक मुसलमान लड़की का हिन्दू के साथ ब्याह ? अक्षंतव्य अपराध। उन्होंने अपना गुस्सा पुस्तक को फाड़कर उतारा। सचमुच यह अविश्वसनीय बात थी। मैंने इस्लाम को नीचा दिखाने के लिए यह नहीं लिखा था। मुसलमान तो पहिले ही से लाखों की तादाद में हिन्दू लड़कियों से ब्याह करते आए थे, पर उससे हमारी सामाजिक समस्या नहीं सुलझी। वह तभी सुलझ सकती थी, जब हिन्दू-मुसलमान दोनों परस्पर ब्याह करते और अकबर की बेगमों की तरह स्त्री को अपने धर्म में रहने की पूरी स्वतन्त्रता रहती।

समाचार सुनने के लिए भारत और पाकिस्तान दोनों के रेडियो कई वर्षों से सुनता हूँ। दूसरे प्रोग्रामों के सुनने के लिए समय निकालना मुश्किल है, पर कभी-कभी वह मिल जाने पर लोक-गीतों या लोक-भाषा के प्रोग्राम को सुनना पसन्द करता हूँ। लोक-गीतों में गजब की लबड़ धौं-धौं देखने में आती है। मालूम नहीं रेडियो के प्रोग्राम बनानेवाले कौन-से लोग हैं ? न भाषा की शुद्धता का ख्याल किया जाता है, न लोक-गीतों के साथ जिस बाजे को लोग इस्तेमाल करते हैं, उसकी ओर ध्यान दिया जाता है। सितार, इसराज, सारंगी, तबला सभी बाजे उनके साथ बजते हुए श्रोता के सिर में पीड़ा पैदा करते हैं। ऐसा क्यों होता है ? दुनिया में कहीं भी ऐसा अन्याय नहीं किया जाता, और लोक-गीतों को लोक-वाद्यों के साथ ही गाया जाता है। रूस, चीन या किसी भी दूसरे देश में यही देखा जाता है। बाज वक्त तो कोई आधुनिक नौसिखिया कवि नकली लोक-गीत बनाकर दे देता है। एक बार 'स्टेट्समेन' में एक समालोचक ने लखनऊ के ऐसे प्रोग्राम की बड़ी तीव्र आलोचना की थी।

30 दिसम्बर को कमला मंगलजी के साथ परीक्षा देने देहरादून गईं। 'साहित्य-रत्न' के पास हो जाने की आशा थी, उन्हें एफ. ए. की परीक्षा की तैयारी करने के लिए तीन महीने थे।

31 दिसम्बर को समाप्त होनेवाले सन् 1951 के काम का लेखा जोखा निम्न-प्रकार रहा : (1) 'गढ़वाल' (2) 'कुमाऊँ' (3) 'अदीना' (4) 'रूस में पच्चीस मास' (5) 'यात्रा के पन्ने' (6) 'सूदखोर की मौत', (7) 'तिब्बत में तीसरी बार' को लिखकर समाप्त किया। सब मिलाकर 2500 पृष्ठ हुए। अगले साल के लिए भी उतने ही पृष्ठों के लिखने का संकल्प किया।

# 5

# 1952 का आरम्भ

1 जनवरी को धूप थी। दिन में सर्दी नहीं थी, पर, शाम को बहुत बढ़ गई। न जाने क्यों, मसूरी में शाम को सर्दी ज्यादा मालूम होती है और सबेरे को कम। हालाँकि नीचे इसे उल्टा देखा जाता है। उस दिन कमला के साथ मैं बाजार गया। कुल्हड़ी से भी काम चल सकता था, लेकिन लण्ढौर के मित्रों से मिलने का लोभ रोकना हमारे बस की बात नहीं थी। जाने पर मालूम हुआ, किशनसिंह बहुत बुरी तरह से बीमार हो गए थे। पेट में भारी दर्द था। दो ही तीन दिन पहिले यहाँ से दिल्ली गये। लण्ढौर की दूकानें उतनी बन्द नहीं थीं, लेकिन लाइब्रेरी और कुल्हड़ी की बहुत कम खुली थीं। गुड़ आठ आना सेर सुनकर विश्वास करने को मन नहीं करता था। कुछ ही पहिले हम 12-14 आने में ले गए थे। कॉफी के लिए गुड़ की चासनी मुझे अच्छी लगती है।

बाजार के लिए निकलने पर शायद ही कभी 7-8 बजे रात से पहिले घर लौटना पड़ता।

2 जनवरी को सबेरे उठकर देखा, तो सारी भूमि (बरफ की) बजरी से ढँकी हुई है। ये फुटकियाँ वज्र की तरह कड़ी नहीं, बल्कि मुलायम होती हैं। जब तापमान पर्याप्त नीचे नहीं गिरता, तो पानी बजरी बनकर धरती पर उतरता है। दिन-भर आकाश बादलों से घिरा था और हवा तेज रही। कई बार बजरी भी पड़ी। बरांडे में तापमान 40 डिग्री था, बाहर तो वह अवश्य हिमबिन्दु के पास रहा होगा। आज लिखने-पढ़ने से छुट्टी थी। मकान में लकड़ी जलाकर स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ बातें करते रहे। सुन्दर साज बज रहा हो और नाचनेवाला नाचे नहीं, तो यह साज का अपव्यय है। उसी तरह यदि लकड़ी की आग जल रही हो और उसमें आलू या सकरकन्द भूनकर खाया न जाए, तो जान पड़ता है आग अकारथ जा रही है। कभी अपने साधु-जीवन का ख्याल आता था। प्रशंसा करने का मन करता। साधु जीवन यदि घुमक्कड़ी का जीवन हो, तो वह बड़ा ही मधुर और आकर्षक होता है। लेकिन, अब उसके लिए परिस्थिति प्रतिकूल होती जा रही है। हमारे युग में साधु को कोई सरो-सामान की जरूरत नहीं थी, भारत में कहीं वह विचर सकता था। हमारा तजर्बा ताजा नहीं था, तो भी मालूम होता था, उसमें कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं। पर, मुझे विश्वास है, घुमक्कड़ हर परिस्थिति में अपने लिए रास्ता निकाल सकता है। मेरी नवतरुणाई में मिले वृद्ध घुमक्कड़ साधु अपने समय का जब वर्णन करते, तो मालूम होता, कि उस वक्त और भी स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता थी।

कमला को एफ. ए. की परीक्षा देनी थी, जिसके लिए तीन महीने भी नहीं रह गए थे। जब उनको परीक्षा की पुस्तकों से विमुख देखता, तो मुझे झुँझलाहट आती, और उनकी अव्यवस्थित-चित्तता के लिए कुढ़ने लगता। वह न अपनी अकल से काम करना जानतीं, न दूसरे की बात ही मानतीं। यह 'मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त' वाली बात थी। कमला को स्वयं इसकी चिन्ता होनी चाहिए थी। इस तरह के कुढ़ने को दबाने में मुझे काफी वर्षों

बाद सफलता मिली, जब कि देखा, वह किसी परीक्षा में फेल होने का नाम नहीं लेतीं। पर परीक्षा के दिन जब नजदीक आते तो वह अपने एक-एक मिनट का इस्तेमाल करती। कालेज के विद्यार्थी भी तो ऐसे ही करते हैं, और परीक्षा के अन्तिम घड़ियों में किताबों पर घोटा लगाते हैं।

जीवन की पहेली पर नजर दौड़ाते हुए सोच रहा था—"जीवन के हर एक क्षण के मधुर होने के लिए बहुत-सी बातों की आवश्यकता है, जिनमें सबका एकत्रित होना कठिन है। इसीलिए जीवन कड़वा-मीठा होता है। भौतिक सामग्रियाँ तो साधक-बाधक होती ही हैं, मानव के पारस्परिक सम्बन्ध भी इसमें भारी कारण होते हैं।"

मेरे पास एक राइफल और एक पिस्तौल का लाइसेंस था, साथ ही रेडियो का भी लाइसेन्स वर्ष के अन्त में बदलवाना पड़ता था। रेडियो के लाइसेन्स में कोई दिक्कत नहीं होती। डाकखाने में गए, पुराना लाइसेन्स दिखलाया, 15 रुपये दाखिल किए और नया लाइसेन्स ले आए। लेकिन हथियार का लाइसेन्स बदलवाना भारी सिरदर्द मोल लेना था। उसे सब-डिवीजनल-मजिस्ट्रेट ही बदल सकता था। आफिस में चलान लिखवाओ, फिर सरकारी बैंक में घंटों जाकर प्रतीक्षा करके पैसा दो, फिर इस रसीद को लेकर बाकायदा दरखास्त लिख क्यू में एस. डी. एम. साहब के सामने रखकर क्यू में प्रतीक्षा करो। और कहीं ऐसे एस. डी. एम. हुए, जो हफ्ते में एक दिन मसूरी के लिए देना भी बुरा मानते हैं और हर शनिवार को वहाँ पहुँचने पर इन्तिजार करने के बाद टेलीफोन पर खबर देते है, कि अब की बार साहेब नहीं आएँगे तो दिमाग की कैफियत के बारे में क्या कहना ? क्या इसके लिए भी उसी तरह की आसानी नहीं पैदा की जा सकती थी, जैसे रेडियो लाइसेन्स की ? माना, सरकार के लिए यह उससे कहीं अधिक खतरनाक चीज है, और इसीलिए सरकार की ओर से बड़ी सावधानी बरती जाती है। लेकिन, रुपया लेकर एस. डी. एम. साहब ही इसको आसानी से कर सकते थे, तीन जगह दौड़ाने की क्या जरूरत ? 4 फर्वरी को हमने स्वामी सत्यस्वरूपजी को हथियार देकर भेजा, तो मालूम हुआ, दूसरे के हाथ से हथियार भेजना कानून के खिलाफ है। खुद गये। दरखास्त पर स्टाम्प लगाना जरूरी था, लेकिन स्टाम्पफरोश के पास स्टाम्प ही नहीं था। खैर, उसे लगाने का जिम्मा क्लर्क ने ले लिया।

श्री भरतसिंह उपाध्याय द्वारा लिखित 'पालि साहित्य का इतिहास' (सम्मेलन से प्रकाशित) मेरे पास आया। अगली पीढ़ी अपने को अयोग्य नहीं साबित कर रही है, यह उसका उदाहरण था। हिन्दी भाषियों में पालि की ओर विशेष ध्यान देनेवाला मैं पहिला आदमी था। मुझे कितनी अड़चनों का सामना करना पड़ा था, इसे जीवन-यात्रा के दूसरे भाग के पढ़नेवाले अच्छी तरह से जान सकते हैं। मेरे आरम्भ करते समय पालि का विशाल वाङ्मय बिल्कुल अपरिचित-सा था। 'धम्मपद' को छोड़ और किसी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद नहीं हुआ था, और न इस विशाल साहित्य में क्या-क्या है, इसे जानने का हिन्दी में कोई साधन था। मैंने, फिर आनन्दजी ने और बाद में भिक्षु जगदीश काश्यप ने हिन्दी को पालि-साहित्य के अनुवादों से समृद्ध किया। लेकिन, अभी यह काम पूरा नहीं हुआ है। उपाध्याय भरतसिंहजी ने इस पुस्तक को लिखकर हिन्दीवालों के सामने रखा, कि पालि-साहित्य में क्या कुछ है, और क्यों हमें उसका अवगाहन करना चाहिए। भरतजी ने एक और भी महत्वपूर्ण ग्रंथ अपने पी. एच. डी. की थेसिस के रूप में लिखा, जिसमें उन्होंने पालि त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में आई भौगोलिक और सामाजिक सामग्री का पूर्ण तौर से विश्लेषण किया। हमारे इतिहास और प्राचीन भूगोल पर पालि वाङ्मय बहुत जगह मौलिक प्रकाश डालता है, जिसके जाने बिना विद्वान् भी गलती कर बैठते हैं।

जनवरी में मेरी दिनचर्या थी—सवा 7 बजे उठकर शौचादि से निवृत होना, थोड़ा-सा काम, फिर चाय पीना। फिर कमला को 11 बजे तक पढ़ाना-लिखाना, उसके बाद अपना स्वाध्याय या संशोधन। भोजन 1 से डेढ़ बजे तक, फिर डाक और पत्र-पत्रिकाओं का पढ़ना, साढ़े 4-5 बजे संध्या की चाय और फिर कुछ लिखी पुस्तकों को दोहराना, शाम को साढ़े 8 बजे भोजन, कुछ पढ़ना-पढ़ाना या लिखना। 9 बजें रेडियो से समाचार सुनना, फिर घंटा-दो घंटा पढ़कर 11 बजे के आसपास सो जाना।

जनवरी के दूसरे सप्ताह में पहुँचते-पहुँचते देश में हुए चुनावों के परिणाम निकलने लगे। अब तक के

निकले परिणामों से मालूम हुआ, कि कांग्रेस का सभी जगह बहुमत है। हैदराबाद, ट्रावनकोर और मद्रास जैसे कुछ प्रान्तों में वामपंथी, विशेषकर कम्युनिस्ट भी काफी संख्या में आये हैं। पहिले दक्षिण ही के निर्वाचन-परिणाम निकले। फरवरी में उत्तरी भारत के भी परिणाम निकले। उत्तर-प्रदेश और बिहार में कांग्रेस की भारी विजय हुई, और दोनों प्रान्तों से एक भी कम्युनिस्ट नहीं चुना गया। पूर्वी उत्तर-प्रदेश से तो शायद ही कोई कांग्रेसी चुना जाता, यदि कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट मिल जाते। पर सोशलिस्टों ने तो कसम खा ली है, कि चाहे कुछ भी हो जाये, हम कम्युनिस्टों के साथ मिलकर नहीं काम करेंगे। मेरे अपने जिले के एक चुनाव-क्षेत्र से मेरे घनिष्ट मित्र स्वामी सत्यानन्द कांग्रेस की ओर से विजयी हुए लेकिन उनकी जमानत जब्त हो गई। उम्मीदवारों में सबसे अधिक वोट उन्हें मिले थे, इसलिए वह चुने गये, लेकिन सारे दिये हुए वोटों में जितना प्रतिशत वोट उन्हें मिलना चाहिए था उतना नहीं मिला, इसलिए जमानत जब्त करानी पड़ी। आजमगढ़ से श्री झारखण्डे राय चुने गए, जो अब वहाँ के कम्युनिस्ट नेता हैं। दक्षिण में कम्युनिस्ट काफी प्रभाव रखते हैं, यह उनकी निर्वाचन की सफलताओं से मालूम होता है, पर उत्तर में उनका प्रभाव इतना कम क्यों है, यह उनके और देश के दूसरे हितैषियों के भी सोचने की बात है। यह निश्चय ही है, कि भारत का सुखी भविष्य कम्युनिज़्म पर निर्भर करता है, चीन का कम्युनिस्ट होना भी यही बतला रहा है। जब हम अपने देश की छोटी-से बड़ी हरेक समस्या को, सभी भ्रष्टाचार और कूड़ा-कर्कटों को देखते हैं, तब भी यही मानना पड़ता है, कि कम्युनिज़्म ही इसकी एकमात्र दवा है। शिक्षित और विचारशील जनता के मनोभाव को देखते हैं, तो सभी किसी न किसी समय कम्युनिज़्म की ओर टकटकी लगाए दीख पड़ते हैं। इसलिए कम्युनिस्टों के प्रभाव के बढ़ने में सभी की दिलचस्पी है। उत्तर में सिर्फ नगरों तक रहना और गाँवों में एकाध जिलों को छोड़कर कम्युनिस्टों की निष्क्रियता कैसे हटेंगी ? वस्तुतः उनमें एक तरह की पंथाई संकीर्णता दिखलाई पड़ती है। वे अपने विचारों और मित्र-मंडली की एक खोल बनाकर उसी के भीतर रहने में संतोष कर लेते हैं। उन्हें जनसाधारण और गाँवों में घुसना है, जिस तरह अंग्रेजों के विरुद्ध कांग्रेस का आन्दोलन घुसा। पंथाचार्य या पंथ-चेले बनने से यह सफलता नहीं मिल सकती। जिस तरह हड्डियाँ मांस के भीतर अपने को छिपाकर अभिन्न हो जाती हैं, उसी तरह उन्हें जनसाधारण से अभिन्न बनना है। हाँ, हड्डी की तरह ही, मांस बनकर वह जनगण के ढाँचे को सँभाल नहीं सकते। भाषा, साहित्य, संस्कृति के बारे में भी वे गहराई के साथ ठीक तौर से विचार नहीं करते, जैसा कि रूस या चीन में किया गया है। इसके लिए विरोधी उन्हें भाषा-साहित्य-संस्कृति का शत्रु कहकर लोगों में भ्रम और सन्देह पैदा करते हैं। दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा कम्युनिस्ट बहुत अधिक जनसाधारण के भीतर घुल-मिल गए। जनता की भाषा, उनकी लोक-कला, उनके दुःख-सुख सबमें अभिन्न होकर शामिल हो गए। उत्तर में अभी जनता की अपनी भाषाओं–मैथिली, भोजपुरी, मगही, छत्तीसगढ़ी, बुन्देलखण्डी, मालवी, राजस्थानी, ब्रज, कौरवी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, अवधी–के सहारे लोगों के हृदय के भीतर घुसने का प्रयत्न नहीं किया गया, उन्होंने इन लोक-भाषाओं में अपना साहित्य नहीं तैयार किया। जब तक इस तरह के साहित्य को लोगों में पाट नहीं दिया जाता, जब तक यहाँ की लोक-कला और लोक-गीतों को पूरी तौर से अपनाया नहीं जाता, तब तक लोगों की आकांक्षा रहते हुए भी कम्युनिस्ट उन पर अपना प्रभाव पूरी तौर से फैला नहीं सकते।

चुनाव में असल में वामपक्षियों के आपस के झगड़े और सोये वोटरों ने कांग्रेस को जिताया। शायद ही कहीं आधे वोटर वोट देने गये हों। अधिकांश ने 'कोउ-नृप होउ' का अनुसरण किया, और कांग्रेस सरकार से पलनेवाले सारे अपने अनुयायियों के साथ वोट देने पहुँच गए।

23 जनवरी को नेपाल में फिर एक क्रान्ति होने की खबर आई। राणाशाही को हटाकर एक दूसरी तानाशाही ने उसका स्थान लिया। जनसाधारण का हित न होते देखकर डा. के. आई. सिंह ने हथियार रखने से इन्कार कर दिया। समझौते के बहाने उन्हें पकड़कर काठमाण्डू की जेल में डाल दिया गया। जेलों के रक्षक तो मंत्री और अधिराज नहीं होते, साधारण गरीबों के लड़के ही बन्दूक लेकर पहरा देते हैं, जिन्हें प्रभावित करना मुश्किल नहीं। के. आई. सिंह ने उन्हें प्रभावित किया और रक्षियों ने स्वयं जेल से बाहर आने में उनकी मदद की। उन्होंने राणाओं को छोड़ सर्वदली सरकार कायम करने की माँग की। थोड़े-से आदमियों को लेकर वह चाहते,

तो काठमाण्डू पर अपने अधिकार को कुछ दिनों और कुछ महीनों तक कायम कर सकते थे, लेकिन व्यर्थ की खून-खराबी को पसन्द नहीं किया। वह अपने कुछ साथियों के साथ तिब्बत की ओर चले गये। अब नेपाली सरकार को खुलकर वामपक्षियों को दबाने का मौका मिला। कोइराला-मन्त्रिमंडल ने 25 जनवरी को नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी को गैरकानूनी घोषित कर दिया। नेपाली मन्त्रिमंडल नेहरू को अपना आदर्श मानता है, और छोटे कोईराला तो नेहरू की तरह अपनी शेरवानी में लाल गुलाब भी लगाते हैं।

रसोइये की दिक्कत हमारे सामने बनी ही रही। डा. सत्यकेतु के यहाँ टेहरी का मुसलमान लड़का इस्माईल खाना बनाता था। वह आने के लिए तैयार था, लेकिन कमला पसन्द नहीं करती थीं। कह रही थीं—भाभीजी (जानकी देवी) आएँगी, तो उनके लिए खाना कैसे बनेगा ? पीछे भी एक मर्तबे एक मुसलमान रसोइया कम तनखाह पर मिल रहा था, वह तैयार था, कि उसका नाम कोई सिंह रख दिया जाए। मेहमानों को इसका क्या पता होता। आखिर हमारे मेहमानों को अच्छी तरह मालूम है, कि हम सबके हाथ का खाते हैं। जो हमारे हाथ का पानी पीना चाहता है, वह यह जान करके पीता है, इससे हमारा धर्म भ्रष्ट नहीं होगा। फिर हमें ऐसे नौकर को रखने में क्यों एतराज होना चाहिए ?

जाड़ों में मसूरी आना भाभीजी के लिए असाधारण बात थी। उनकी चिट्ठी आ चुकी थी, और अभी मंगलजी मोटर-अड्डे पर जाने की तैयारी ही कर रहे थे, कि 31 जनवरी को भाभीजी आ पहुँचीं। रसोइया नहीं था, इसलिए मेहमान बनकर आई भाभीजी को कमला की रसोई में शामिल होना पड़ा। भाभीजी को इस यात्रा का यह फायदा हुआ, कि उन्होंने जीवन में पहिली बार 4 फरवरी को चारों ओर बरफ की सफेद चादर फैली देखी। पत्तों-पत्तों में बरफ मढ़ी हुई थी। बरफ बहुत मोटी नहीं थी, इसलिए दोपहर तक बहुत कुछ पिघल गई। खूब सर्दी थी। आग जलाकर उसके पास बैठे बातें करते समय काटना पड़ा। नौ दिन रहने के बाद 8 तारीख को भाभीजी यहाँ से गईं।

अब अपना वजन 164 पौंड देखकर कुछ प्रसन्नता हुई, क्योंकि मैं बहुत समय से साथ रखता था 160 पौंड पर पहुँचने की। वजन कम करने में डायबेटीज़ ने सहायता दी थी, इसमें शक नहीं, और इसलिए उससे उतनी प्रसन्नता भी नहीं हो सकती थी। पिछले साल के घाव से शिक्षा लेकर अब मैं इन्सुलिन का भक्त हो गया था। अपने इन्सुलिन लेने पर उसे जाँघ ही में लिया जा सकता, जहाँ गुठली भी बन जाती थी। इसके सिवा कोई चारा नहीं था, कि इन्सुलिन लेने का काम कमला स्वयं अपने हाथ में लें।

गाजियाबाद के श्री राधामोहन भटनागर एक विचित्र धुन के आदमी हैं। पति-पत्नी दोनों घर में हैं, आटे की कुछ बिजली की चक्कियाँ हैं, जिनसे खर्च के लिए काफी पैसा आ जाता है। पत्नी अपने राम भजन में रहती हैं और पति के शौक को पसन्द नहीं करतीं। पति को शौक है, दर्शन-सम्बन्धी संस्कृत के ग्रन्थों को ढूँढ़-ढूँढ़कर जमा करना। कहीं छपी किसी पुस्तक को बतलाइए, वह पैसा खर्च करके उसे मँगाने के लिए तैयार है। मुझसे भी उन्होंने पुस्तकों के नाम माँगे, मैंने कुछ नाम बतलाये भी। पिछले 15-20 वर्षों से वह इस काम में लगे हुए हैं। दर्शन-सम्बन्धी संस्कृत और उनके अनुवाद तथा स्वतन्त्र ग्रन्थों की उनके पास हजारों पुस्तकें जमा हो गई हैं। जिन पुस्तकों को जमा कर रहे हैं, उनमें क्या लिखा हुआ है, इसे जानने की उन्हें पर्वाह नहीं। वह यह भी चाहते हैं, कि दर्शन का अध्ययन किया जाए। उसके लिए लोग सुख-सुविधा के साथ कहीं रहें और पुस्तकों का उपयोग करें। उन्होंने देहरादून में जमीन ले ली, पीछे उस पर एक मकान भी बनवाया, जिसमें पुस्तकों के रखने के कमरे के अतिरिक्त कुछ रहने के भी कमरे हैं। अभी मकान नहीं बना था, तभी मैंने कहा था—"जमीन को बेच दीजिए। मसूरी में बना-बनाया सस्ता बहुत अच्छा बँगला आपको मिल जाएगा। उसमें पुस्तकालय खोलवाइये। दर्शन की पुस्तकों के पढ़नेवाले बहुत लोग आपको नहीं मिलेंगे। जो थोड़े-से लोग मिल सकते हैं, उनके लिए अच्छा रहने का प्रबन्ध हो जाने पर मसूरी भी अनुकूल होगी।" पर भटनागरजी को यह बात पसन्द नहीं आई। उनकी धुन का मैं प्रशंसक हूँ।

25 फरवरी को एक ज्योतिषाचार्य तरुण (हरिहर पांडे) का लम्बा पत्र मिला। वह मेरे सगोत्री और एक जिले के ही नहीं, बल्कि मेरी अपनी सगी बूआ की ननद के पुत्र थे। उनकी माँ को मैंने छोटी उमर में देखा

था। तरुण ने अपने जीवन की आकांक्षाओं के बारे में उस पत्र में लिखा था। उनके खानदान में पुरोहिती नहीं, गुरुआई होती आई है–लोग उनसे मंत्र-दीक्षा लेते थे। उनके चचा एक सफल जोतिसी थे, अर्थात् उनकी भविष्यवाणियों पर लोगों को विश्वास था। इसी कारण हरिहर पांडे भी बनारस संस्कृत कालेज से ज्योतिषाचार्य हुए। फलित भाखने के लिए आचार्य होने की जरूरत नहीं थी। बुद्धिवादी होने से उनका फलित ज्योतिष पर से विश्वास हट गया था। सम्भव है अपने सगोत्री और सम्बन्धी होने के कारण मेरी पुस्तकों को भी कुछ चाव से पढ़ा हो। अब वह गुरुआई और जोतिसाई बेमन से करते थे। 1914 में पैदा हुए, अर्थात् इस समय 38 वर्ष के हो चुके थे। उत्तरी भारत में काफी घूमे थे। लम्बी चिट्ठी बतला रही थी, कि उनमें लिखने की शक्ति और प्रतिभा है। मुझसे कुछ पथ-प्रदर्शन माँगा था। मैंने लिखा, भारतीय ज्योतिष-गणित शास्त्र का एक नवीनतम इतिहास लिख डालो। वे बंगला और मराठी में भी इस विषय के ग्रन्थों को पढ़ चुके थे, इसलिए वे इस काम के अधिकारी भी थे। लेकिन, ज्ञान और अधिकारिता पर्याप्त नहीं है। किसी को लाठी के हाथ किसी काम में जोड़ा नहीं जा सकता। जब अपने भीतर आग लगती है, तभी मनुष्य कठिन-से-कठिन काम करने का बीड़ा उठाता है। हरिहर पांडे के दो-तीन और पत्र आए, इसके बाद चुप हो गए। दर्शन के एक-दूसरे विद्वान् को–जो ब्राह्मण और बौद्ध दोनों दर्शनों के जानकार हैं–मैंने आग्रहपूर्वक तिब्बती भाषा पढ़कर उसमें अनुवादित बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन से अपने लिए नया कार्यक्षेत्र बनाने के लिए कहा, लेकिन उसका कोई फल नहीं हुआ।

पाकिस्तान के बनने के साथ ही मुस्लिम लीग के नेता पूर्वी पाकिस्तान में बंगला को दबाकर उर्दू को लादने के लिए तुले हुए थे। चार-साढ़े चार वर्षों तक आग भीतर-भीतर सुलगती रही। 1952 के फरवरी के चौथे सप्ताह में वह भभक उठी। मुसलमान अपनी बंगला भाषा को अपनी ही भूमि से उच्छिन्न देखने के लिए तैयार नहीं थे। आन्दोलन ने जोर पकड़ा। सरकार ने गोलियाँ बरसाकर उसे दबाना चाहा। 8 आदमी ढाका में अपनी मातृ-भाषा के लिए बलि चढ़े। मुस्लिमलीगी शासकों ने अपने पैरों में अपने हाथ से कुल्हाड़ा मारा। हाल में संविधान बनते समय किसी को यह पूछने की भी हिम्मत नहीं हुई। पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू के समकक्ष बंगला क्यों बनाई जा रही है ? उस दिन की कुर्बानियाँ बेकार नहीं गईं। आज शहीदों के दिन वहाँ सरकारी छुट्टी रहती है, लोग बड़े सम्मान से उन वीरों को याद करते हैं।

तजर्बा करते 5 मार्च को मालूम हो गया कि कमला इंजेक्शन देना पूरी तौर से सीख गईं। पहिले उनका हाथ काँपता था, हिम्मत नहीं होती थी। आजकल के जमाने में इंजेक्शन देना हरेक स्त्री-पुरुष को सीख लेना चाहिए। कितनी ही दवाइयाँ हैं, जो इंजेक्शन द्वारा तुरन्त असर करती हैं, और जिनका उपयोग घर-घर होने लगा है। हरेक इंजेक्शन के लिए डाक्टर पर निर्भर रहना खर्चीली और बेकार की बात है।

बम्बई से डा. जगदीशचन्द्र जैन का पत्र आया, कि मैं 23 मार्च को चीन के लिए रवाना हो रहा हूँ। मैंने साधुवाद और समर्थन करते कहा, कि वहाँ जाकर बड़ा संस्कृत-चीनी चीनी-संस्कृत कोश तैयार करें। दो साल रहकर डा. जैन भारत लौटे। बड़ी उमर में चीनी लोगों में रहकर भाषा तो सीखी जा सकती है, लेकिन हरेक शब्द के लिए नियत अक्षर हजारों की तादाद में सीखना अपने बूते की बात नहीं रह जाती। डा. जैन की पुत्री चक्रेश अपने पिता से अधिक भाषा और अक्षर सीखकर वहाँ से लौटीं। डा. जैन के चीन जाने के समाचार के सुनने के बाद ही 12 मार्च को डा. अल्तेकर का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था, कि "प्रमाणवार्तिकभाष्य के छपाने का प्रबन्ध हिन्दू युनिवर्सिटी प्रेस में हो गया।" मैं भाष्य के अपने जीवन में प्रकाशित होने से निराश हो गया था, इसलिए यह समाचार मेरी प्रसन्नता का भारी कारण था। बड़ी तत्परता से छपकर 'प्रमाणवार्तिकभाष्य' 1954 में निकल भी गया।

15 तारीख को एक बहुत पुराने मित्र के पत्र को पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। 1915 में मैं मिर्जापुर जिले के अहरौरा कस्बे में श्री रामखेलावनसिंह के घर में एक महीने बिल्कुल घर की तरह रहा था। उस समय रामखेलावनजी आर्यसमाज के कर्मठ सदस्य और अध्ययनशील तरुण थे। उनके घर में रहते समय मुझे 'चन्द्रकान्ता' और 'जासूस' के पढ़ने का मौका मिला था। रामखेलावनजी एक आदर्शवादी तरुण थे। उनके पिता ने अपने सभी निरवलम्ब सम्बन्धियों को अपने साथ रखा था। तम्बाकू और दूसरा रोजगार खूब चलता था, इसलिए

वह भार नहीं थे। पर, 1915 में अब रोजगार बहुत मन्दा हो गया था, सिर्फ बेर के खमीर के साथ बने तम्बाकू का व्यापार ही अवलम्ब रह गया था। इतना बोझ बर्दाश्त करना उनके सामर्थ्य से बाहर की बात थी, लेकिन रामखेलावनजी कह रहे थे–"जब तक दम है तब तक उन्हें निरवलम्ब नहीं करूँगा।" उनका बहुत-सा रुपया कर्ज में फँसा हुआ था, जिसे देने का लोग नाम नहीं लेते थे। आज 37 वर्षों बाद उन्हीं 'श्री रामखेलावनसिंह मौनसप्रहरी इन्द्रकवि' का पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अब वह वृद्ध थे। मैंने अपनी जीवन-यात्रा के प्रथम भाग में उनके बारे में जो अपने उद्‌गार प्रकट किए थे, वह उनकी आँखों के सामने से गुजरा। उस समय मैं केदारनाथ था, इसलिए उन्हें मुश्किल से ही समझ में आया होगा, कि उसी व्यक्ति का नाम अब राहुल है। लेकिन अहरोरा का नाम और काल स्पष्ट था। बहुत दिन हो जाने के कारण मैं उनका नाम भूल गया था।

16 मार्च को सबेरे से 2 बजे तक बजरी पड़ती रही। दोपहर तक डेढ़-दो इंच मोटी चादर बिछ गई। इसी समय बादल फट गया और सूर्य की तेज किरणें बजरी को पिघलाने लगीं। रात को भी कुछ बादल और बरफ पड़ती रही। 17 तारीख को हाते में बरफ पड़ी हुई थी। दक्षिण की तरफ से पहाड़ों पर वृक्षों के सफेद-सफेद पत्ते भी दिखाई पड़ रहे थे। लेकिन, शाम या अगले दिन तक बरफ के रहने के लिए बहुत मोटी तह की जरूरत थी, जो नहीं थी। मार्च में तो जाड़े का मौसम भी नहीं रह जाता, इसलिए इन जाड़ों का यह अन्तिम हिमपात था।

कमला की एफ. ए. की परीक्षा का केन्द्र यहीं घनानन्द इन्टर कालेज था। वहाँ सबेरे पहुँचने की जरूरत थी, घर से जाने में दो-ढाई मील पड़ता, इसलिए 18 को अगले तीन दिनों के लिए वह शीलाजी के यहाँ चली गई। मैं भी साथ गया, अब थोड़ी भी चढ़ाई चढ़ने पर थकावट मालूम होती थी। खासकर यदि बात करने में मन भूला न हो। मार्च के महीने में लोग अपने लिए बँगलों या कमरों को रिजर्व कराने लगते हैं। हेपी वेली क्लब के बारे में मिसेज मेकलौड कह रही थीं, कि अभी तक एक भी कमरे के लिए कोई माँग नहीं आई।

हाल के चुनाव के बारे में मैं निम्न निष्कर्षों पर पहुँचा था–

1. अधिक जनता सुप्त है, जिससे प्रतिगामियों को लाभ हुआ।

2. प्रगतिशील दलों ने आपस में लड़कर सचेतन जनता के वोटों को बाँट दिया।

3. हिन्दी-क्षेत्र में वामपक्षी दल केवल शिक्षितों और शहरियों में है।

4. उत्तर-प्रदेश, विशेषकर उसका पूर्वी भाग वामपक्षियों के अधिक अनुकूल था।

5. सोशलिस्ट अपने को प्रगतिशीलता और समाजवाद का इजारेदार मानते हैं। उनके कथन पर पूँजीपति कितना विश्वास करते हैं, यह इसी से मालूम है, कि स्वार्थ और विचार में प्रतिगामियों ने भी उनका पल्ला पकड़ा और वोटों को रुपये से खरीदने से भी बाज नहीं आए।

6. सोशलिस्टों की कम्युनिस्ट-विरोध की यही अन्धी नीति रही, तो वे समाजवाद के नहीं, बल्कि शोषकों के समर्थक रहेंगे।

7. नेहरू के वादे थोथे हैं। जहाँ तक देश के भीतर समाजवाद का सम्बन्ध है वह प्रतिगामियों के अगुवा छोड़कर और कुछ नहीं हैं।

8. आज के जमाने में चीन के साथ सहानुभूति प्रगतिशीलता की कसौटी है।

9. अमेरिकन साम्राज्यवाद विश्व की जनता का और उसकी प्रगति का सबसे बड़ा शत्रु है। यह उसने हिरोशिमा पर अणुबम, कोरिया और चीन पर कीटाणु-बम और ईरान की जनता की तूदे पार्टी को खूनी हाथों ध्वंस करके दिखला दिया है।

10. अपने पैरों पर चलना और सभी प्रगतिशीलों और वामपक्षियों का संयुक्त मोर्चा,यही एकमात्र रास्ता हमारे देश के लिए आगे बढ़ने का है।

21 मार्च को परीक्षा देकर कमला घर चली आईं। तीनों प्रश्नपत्र सन्तोषजनक हुए हैं। हमको अफसोस हो रहा था, कि विशारद की परीक्षा से लाभ उठाकर क्यों एक विषय को छोड़ दिया। वह सभी विषयों को

लेकर आसानी से पास हो जातीं। पर उस वक्त तो परीक्षा में बैठने की उनकी हिम्मत ही नहीं थी।

उसी दिन अदालत का समन मिला। साहित्य सम्मेलन पर पं. जयचन्दजी ने मुकदमा कर दिया था, और मैं भी उसकी स्थायी समिति का मेम्बर था, इसलिए यह समन था। मेरी दृष्टि में यह काम किसी भी सम्माननीय साहित्यकार के लिए बिल्कुल अयुक्त था। क्या उनको और कुछ काम नहीं रहा, कि सम्मेलन को मुकदमेबाजी का अखाड़ा बनाने में अपने अगुवा बने ?

शिवकुमार शर्मा एक साहसी तरुण हैं। पढ़ने में भी अच्छे रहे। यह 'साहित्यरत्न' की परीक्षा से मालूम था। लिखने की शक्ति भी विकसित कर सकते हैं। लेकिन अधिक जोश आदमी के सोचने की गहराई को कुछ कम कर देता है। अब वह यात्रा पर निकलनेवाले थे। चाहते थे, सभी हिन्दी के मुख्य-मुख्य पत्रों को यह सूचित कर दें, कि शिवकुमार शर्मा यात्रा पर निकल रहे हैं। मैंने समझाया, ऐसे पत्रों का स्थान सम्पादकों की रद्दी की टोकरी होगा। पत्रों की सिफारिश द्वारा परिचय नहीं प्राप्त करना चाहिए, और न वह हो सकता है। अपनी लेखनी से ही परिचय करने की इच्छा रखनी चाहिए। दो-चार लेख अगर दो-चार पत्रों की रद्दी की टोकरी में जाएँ, तो उसकी पर्वाह नहीं करनी चाहिए। लेख की एक कापी अपने पास रहे और दूसरी को पत्रों में भेजकर भाग्य-परीक्षा करनी चाहिए। अनेक पत्रों के यहाँ यदि उसकी वही गति हो, तो सम्पादकों को नहीं अपने को दोष देना चाहिए, और आगे अपने को सुधारने की कोशिश करनी चाहिए।

भैया और भाभीजी का लगातार तकाजा आ रहा था कि अमृतसर आ जाएँ। मेरे साथ जाने का मतलब था, काम की क्षति। सौभाग्य से भैया के अमृतसर के मित्र मास्टर ज्ञानीराम आ गए थे, और इन्हीं के साथ कमला देहरादून से 26 को अमृतसर गईं। मार्च का अन्त नीचे के लिए कोई सुखद मौसिम नहीं होता।

मित्र या किसी भी सन्निकट के सम्पर्क रखनेवाले को कर्ज देना मेरी नीति के खिलाफ है। अगर देना ही हो, तो पाने के लिए नहीं देना चाहिए। 31 मार्च को एक परिचित ने कुछ रुपये कर्ज माँगे। अव्वल तो तुरन्त ख्याल आया, कि इसका मतलब सम्बन्ध बिगाड़ना होगा। लेकिन, इस समय तो मालकिन ही घर में नहीं थीं, कि उनको देने के लिए सिफारिश करता।

3 अप्रेल को मुंगेर कालेज के इतिहास के प्रो. राधाकृष्ण चौधरी की चिट्ठी के साथ एक पुराने शिलालेख का फोटो आया। यह शंख-लिपि में था, जो उत्तरी भारत के अतिरिक्त जावा में भी मिली है। मैंने लिखा, अभी तक इसकी वर्णमाला पढ़ी नहीं गई है। इसका कारण एक यह भी रहा, कि अभिलेख कुछ ही अक्षरों के मिले थे, यह अभिलेख बड़ा है, इसलिए कोशिश करें, तो शायद आप पढ़ सकें। इस लिपि में द्वितीया के चन्द्र की तरह की शिरोरेखाएँ, बल्कि शंख की आकृति बनानेवाले अक्षर होते हैं। हमारे देश में पिछले सौ सालों से पुरातत्वीय अनुसन्धान का काम हो रहा है, और पिछली आधी शताब्दी तक तो वह ज्यादा तत्परता से हुआ। पर, अभी देश की पुरातात्विक सामग्री का शतांश भी आविष्कृत नहीं हुआ। जिस देश की संस्कृति और इतिहास जितना ही पुराना होता है, उसकी पुरातात्विक सामग्री भी उतनी ही मात्रा में अधिक, और जमीन के भीतर ज्यादा दूर तक छिपी होती है। पूर्वगामियों ने पुरातात्विक क्षेत्र का पथ-प्रदर्शन मात्र किया है। अभी बहुत-सी उपलब्धियाँ करने को बाकी हैं। हमारे तरुण विद्वानों में इसकी तरफ रुचि है, यह जानकर खुशी हुई। उन्हें साधनों की शिकायत करते हाथ पर हाथ रखकर बैठना नहीं चाहिए। एक-एक बूँद से तालाब भरता है, फिर तालाब अपने भक्तों को अपने आप ही ढूँढ़ लेता है।

8 अप्रेल को कमला के साथ बाजार गए। वे कल ही अमृतसर से लौटी थीं। लण्ढौर में किशनसिंह से मुलाकात हुई। बीमार होते दिल्ली गए थे, वहाँ बीमारी और बढ़ी। अभी भी दुबले थे। जाने पर "कहाँ उठावें कहाँ बैठावें" में वह पड़ जाते और चाय पीकर जाने का आग्रह तो कितनी ही बार मानना पड़ता। चार हाथ चौड़ी और दस-बारह हाथ लम्बी जगह थी, जिसको उन्होंने तीन कोठरियों में बाँट रखा था। बाहर की कोठरी (ओसारा) दूकान का काम देती थी, बीच की गोदाम का और पीछे की रसोई थी। पति-पत्नी और लड़का तीन प्राणी इसी में गुजर कर रहे थे। जीविका का साधन जुटाने में दोनों को रात-दिन एक करना पड़ता है। पत्नी तिब्बत और चीन के कुछ क्यूरियों के सामान लेकर बड़े होटलों में घूमतीं। किशनसिंह पैर से मजबूर थे, इसलिए

दूकान पर बैठे रहते। लड़के को पढ़ाने की बहुत कोशिश की, लेकिन उसमें न उसके लिए रुचि थी और न दिमाग था।

**60वें वर्ष की पूर्ति**–9 अप्रेल 1893 (वैशाख अष्टमी, रविवार, संवत् 1950) को मेरा जन्म हुआ था। आज (9 अप्रेल 1952 में) मेरा 60वाँ जन्मदिवस था। कितने ही जन्मदिवस उस वक्त हुए, जब मुझे होश नहीं था। होश आने और आत्मनिर्भर हो जाने के बाद मुझे कभी ख्याल नहीं आया कि जन्मदिवस का भी कोई महत्व है। न कभी किसी मित्र ने ही इसका ख्याल दिलाया। हमारे जैसे कुलों में, जिसके ऊपर लक्ष्मी और सरस्वती का वरदहस्त नहीं, उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं पड़ती। ये अमीरों के चोंचले हैं, इसे मैं मानता हूँ। कमला ने जब इसका जिक्र किया, तो मैंने कहा–जैसे 59 जन्मदिन बीते, वैसे ही 60वें को भी बीत जाने दो। लेकिन उन्होंने एक न मानी, और 9 अप्रेल (बुध) को उसे मनाने का निश्चय कर लिया। मैं रविवार को छुट्टी रखा करता हूँ, उस दिन काम के दिन भी छुट्टी मनाई। दोपहर बाद एक छोटी-सी पार्टी हुई, जिसमें श्री सदानन्द मेहता और श्री शिव शर्मा के अतिरिक्त शीलाजी, डा. सत्यकेतु और उनके दोनों छोटे बच्चे आये। पहिली बार जन्मदिन मनाना विचित्र-सा मालूम हुआ।

अप्रेल का महीना नीचे गर्मी का है, यहाँ उसे जाड़े का अन्त कहा जा सकता है। शिवकुमार यहीं से ही अपनी घुमक्कड़ी पर जानेवाले थे।

इधर इन्सुलिन अधिक नियमपूर्वक लेने लगा, जिसके कारण वजन का बढ़ना मुझे प्रिय नहीं था। लेकिन, प्यास और पेशाब का कम होना, तथा दिमागी खुमार का मिटना प्रसन्नता की बात थी।

कमला पढ़ने में अच्छा दिमाग रखती हैं, लिखने की भी उनमें शक्ति है। दोनों कामों में आलस्य है, ऐसी राय देना अच्छा नहीं होगा। यही कहना चाहिए, अभी भीतर में जबर्दस्त प्रेरणा या बेकरारी उन्हें नहीं होती। मैं भी पढ़ने-लिखने में बहुत अच्छा था लेकिन किसी के कहने पर चलकर मेहनत करने के लिए तैयार नहीं होता था। जब जिज्ञासा प्रबल हुई, तो स्वयं नींद हराम करने लगी, और कितनी ही बार किताब पकड़े या लिखते यह भी नहीं मालूम हुआ, कि अब भिनसार हो रहा है। पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त सुई-बुनाई-कढ़ाई के काम में भी उनका बहुत दूर तक प्रवेश है। बाज वक्त परीक्षा के लिए तैयारी का काम छोड़कर, वह उसमें लग जातीं। तीसरा गुण उनमें हैं संगीत के लिए बहुत सुन्दर कंठ और जल्दी से किसी भी गीत को अपने गले से उतारना। उनकी बड़ी इच्छा थी, कि मैं कोई साज सीखूँ। हमारा मकान यदि शहर के नजदीक होता, तो दस-पन्द्रह रुपया मासिक पर कोई उत्साही सिखाने के लिए मिल जाता। मसूरी जिस वर्ग के लोगों के लिए है, उसकी लड़कियों के लिए गायन, वादन और नृत्य आज अनिवार्य चीज समझी जाती है। योग्य या धनी वर मिलने में ये गुण सहायक होते हैं। कितनी ही शताब्दियों तक ये ललित कलाएँ उच्च और मध्य वर्ग में उपेक्षित रहीं। अब पश्चिम के सम्पर्क में आने के बाद लोगों का ध्यान उनकी ओर गया। पश्चिम के सम्पर्क में जो जितना ही पहिले आया, उसने उतना ही पहिले इन्हें अपनाया। हिन्दी क्षेत्रवाले इसमें सबसे पीछे रहे। हाँ, सामन्त वर्ग ने इसका पूरी तौर से बायकाट नहीं किया। मसूरी में इसीलिए कुछ संगीत के उस्ताद रहते हैं। और लोगों की तरह आज उन्हें भी बड़ी शिकायत थी, अब हमारे कदरदान नहीं रहे। कदरदान अधिकतर निम्न मध्यम-वर्ग के शिक्षित थे, जो आर्थिक संकट के शिकार हो रहे थे। हम रोज-रोज तो उस्ताद को तीन-चार मील दूर बुला नहीं सकते थे, इसलिए 40 रुपये मासिक पर मंगल, वृहस्पति और शनिवार को उन्होंने सिखाना शुरू किया। साज में वायलिन को पसन्द किया गया। देशी वाद्यों में सितार या वीणा जिस तरह अधिक सम्माननीय और कलात्मक माने जाते हैं, वही बात विदेशी वाद्यों में इस हल्के-से बाजे की है। साथ ही इसमें यह भी एक खूबी बतलाई जाती है, कि इसमें यूरोपीय और भारतीय दोनों के संगीत को उतारा जा सकता है। इस कला से मुझे आनन्द न आता हो, यह बात नहीं है। पर, संगीत के लिए मुझे कंठ नहीं मिला, शायद उसी कारण मुझे गाने की रुचि नहीं हुई। संगीत के राग-रागिनियों की पहचान के बारे में तो यही कहना चाहिए, कि भैंस के आगे बीन बजाना। लेकिन, जब घर में संगीत-सिखाई होने लगी, तो बर्बस उसे सुनना पड़ता। उस्ताद चाहते थे अपने ढंग से सिखाना, जिसका अर्थ था जंगल में भटकने के लिए छोड़ देना। हम जानते थे, कि ज्यादा

महीनों तक हम खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते, इसलिए सबसे आवश्यक चीजों की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए मुझे प्रयत्न करना पड़ा। बंगला और हिन्दी में छपी संगीत सीखने की कुछ पुस्तकें मँगाई जिनसे पता लगा, कि दस ठाटे मूल हैं, बाकी राग-रागिनियाँ उनके ही विस्तार हैं। दो-चार बैठकों के बाद मैंने कहा, पहिले इन दसों ठाटों को सिखाइये। उस्ताद ने बेमन से इसे स्वीकार किया। दो-चार दिनों के बाद उस्ताद ने कहा–गाने की इच्छा तो कोई भी कर सकता है, उनमें से कितनों को उसके अदा करने की शक्ति भी हो सकती है। पर, मधुर कंठ और हरेक ट्यून को जल्दी पकड़ लेना सबके बस की बात नहीं है। कमला को यह सर्टीफिकेट उस्ताद ने दिया, जो भी सुनते हैं, वह इसको मानने के लिए तैयार हैं। संगीत के गहन भेदों को वह वैज्ञानिक तौर से अच्छी तरह पहचान सकती हैं, लेकिन यहाँ भी उनके भीतर से दबाव होना चाहिए। वह दो महीना तक वायलिन और संगीत सीखती रहीं। 20-22 ठाट के अतिरिक्त 10-12 और राग-रागिनियों का ज्ञान किया। वायलिन पर भी हाथ बैठ गया। यदि चाहतीं, तो स्वयं इसको आगे बढ़ा सकती थीं, लेकिन वायलिन को तो एक तरह से उन्होंने बन्द करके रख दिया। गुनगुनाने का शौक पुराना है, इसलिए गाहे-बगाहे गा लेती हैं, वह भी अधिकतर सिनेमा के गानों को। अब भी उनकी इच्छा है, कि वाद्य और संगीत के लिए और समय लगाकर कुछ सीखें। इस जंगल का निवास सचमुच इस विषय में प्रतिकूल सिद्ध हुआ।

12 अप्रैल को हमारे मुहल्ले में एक पागल कुत्ता भागता आया। उसने दो-तीन आदमियों के साथ हमारे पड़ोसी लेडली साहब की भैंस को भी काट खाया। मुहल्ले का सबसे बड़ी जात का कुत्ता हमारा भूतनाथ है, पर मजबूती तथा शरीर दोनों में चौधरी का टाइगर बड़ा है। हेपी वेली का शेर रतिलाला का कुत्ता गब्बू है, जिसके सारे शरीर में ही नहीं, चेहरे पर भी बड़े बाल हैं। टाइगर हो या भूत, किसी से भी भिड़ने के लिए वह हर वक्त तैयार रहता है। प्रतिद्वंद्वी को देखते ही अपने पिछले पैरों से मिट्टी फेंकते ललकारता है–"हिम्मत है तो आ जाओ।" कभी उसे अखाड़े से भागते नहीं देखा गया। भूतनाथ भिड़ जाते हैं, लेकिन बड़े-बड़े पत्थरों को ढोते-ढोते उनकी दाढ़ें घिस गई हैं, जबकि गब्बू की सूई-जैसी तेज हैं। इसलिए लड़ने में वह किसी को भी लोहू-लोहान कर सकता है। पागल कुत्ते से भी वह लड़ने के लिए तैयार हो गुँथ गया। डर हो गया, कहीं गब्बू भी उसके पदचिह्न पर न चले। लेकिन, लम्बे बालों के कारण दाँत भीतर तक नहीं घुसे। उसको दवाई से धो दिया गया। हमारे पड़ोसी नन्दू धोबी के हाथ में भी पागल कुत्ते ने मुँह लगा दिया था, लेकिन दाँत नहीं गड़ा। उसे स्पिरिट लगा दी। सारे मुहल्ले में आतंक छा गया। किंवदंतियाँ सुनी जाने लगीं, कि उसने शहर के कई आदमियों को काटा है। 13 अप्रैल को साढ़े 7 बजे सबेरे वह हमारे फाटक के पास से होते ऊपर की ओर जाता दिखाई पड़ा। उसको इस तरह छोड़ना हितकर नहीं था। तरुण जान लेडली अपनी बन्दूक और मंगल को लिये पीछे पड़े। कुत्ता जंगल के रास्ते की ओर भागा जा रहा था। एक जगह जान ने बन्दूक चलाई, लेकिन कारतूस में आग नहीं लगी। कुत्ता एकाएक पीछे की ओर मुड़ा। पतली पगडंडी थी। कुत्ते ने लेडली के पैरों में दाँत गड़ाये, तीनों सँकरे रास्ते से नीचे दस-पन्द्रह कदम लुढ़ककर झाड़ी से जा रुके। कुत्ता फिर भागा और ये दोनों आदमी भी पीछे-पीछे गए। पागल कुत्ते का काटना भयंकर चीज है। जंगल से कहाँ-कहाँ घूमते फिर वह चार्लविल होटल के फाटक पर जब पहुँचा, तो लोगों ने उसे मार डाला। पता लगा, लण्ढौर की ओर भी किसी पागल कुत्ते ने बहुतों को काटा था, उसे भी आज ही मारा गया था।

डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने लेडली की भैंस की बचने की आशा नहीं प्रकट की, तो भी उसको कई इंजेक्शन दिए गए। जान को काटने का हमें बहुत अफसोस हुआ। वह बड़े ही मिलनसार और उदार तरुण हैं, साथ ही अपने बूढ़े पिता की एकमात्र संतान। इंजेक्शन दिए गए, महीने बाद जब घाव भर गया और कोई दूसरा लक्षण नहीं प्रकट हुआ, तो बरसात की थोड़ी-सी आशंका के होते भी सबको संतोष हुआ। पागल कुत्ते पागल गीदड़ के काटने से भी हो जाते हैं। हमें भी अपने भूत की चिन्ता होने लगी। आखिर उसे क्या पता है, कौन कुत्ता या सियार पागल है और कौन नहीं। यही खैरियत है कि बघेरे के डर के मारे हम सूर्यास्त के बाद भूत को बाहर रहने नहीं देते, और सियार अधिकतर रात को ही निकलते हैं।

श्री त्रिरत्नमान साहू (नेपाल) के पुत्र प्रत्येकमान ल्हासा में बहुत सालों से रहते थे। उनकी चिट्ठी जब-तब

आ जाया करती थी। पिता ने पढ़ाने की बहुत कोशिश की थी, वह उसके लिए खर्च कर सकते थे, लेकिन पढ़ने की भी कुल में परम्परा चाहिये, बल्कि कहना चाहिये कि परिवार का वातावरण विद्या का विरोधी नहीं होना चाहिए। नेपाल के नेवार व्यापारियों में विद्या को अनावश्यक माना जाता है। लिखना-पढ़ना और हिसाब कर लेना इतने ही भर की उनको आवश्यकता होती है। तिब्बत के व्यापारियों को तो सबसे आवश्यक जो चीज है, वह है तिब्बत से जीवित सम्पर्क स्थापित करके वहाँ की भाषा और रीति-रवाजों को समझना। इसीलिए वहाँ इनके लड़के अधिक दीख पड़ते हैं। जब पढ़ने का समय बीत जाता है, फिर पढ़ने में समय और श्रम लगाना सम्भव नहीं होता। 22 अप्रेल को ल्हासा से प्रत्येकमानजी का पत्र आया, जिससे मालूम हुआ कि वहाँ के पुराने निहित स्वार्थ कम्युनिस्टों के आगमन को हल्के दिल से ले रहे हैं, और कम्युनिस्टों के नरम बर्ताव को उनकी कमजोरी समझकर आशा रखते हैं, कि तंग होने पर वह तिब्बत छोड़ के चले जाएँगे। यह भी मालूम हो रहा था कि भूमि-सुधार के लिए वहाँ कुछ नहीं किया जा रहा है। बहुजन को अपनी तरफ जल्दी खींचने के लिए यह आवश्यक था कि अर्ध-दास किसानों की ओर सबसे पहिले ध्यान दिया जाता। ऊपर से देखने से यह शिथिलता या देरी अवांछनीय मालूम होती है, लेकिन कम्युनिस्ट अपने और अपनी शक्ति पर विश्वास करते हैं। वे जिस तरह शान्ति के साथ तिब्बत में प्रविष्ट हुए, उसी तरह वहाँ के लोगों को साथ लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं। उन्होंने सबसे पहिले ध्यान दो चीजों पर दिया। यातायात के लिए मोटर-सड़क के द्वारा तिब्बत को चीन से मिला देना और कृषि-फार्मों द्वारा किसानों को आँखों दिखलाना, कि नये ढंग से कृषि की उपज और भिन्न-भिन्न साग-सब्जियों और अनाज को कितना अधिक पैदा किया जा सकता है।

जाग्रत अवस्था में मनुष्य बाह्य जगत् से सम्पर्क रखता है। स्वप्न की अवस्था के लिए बाह्य जगत् का सम्पर्क आवश्यक नहीं है। उसके लिए मन के ऊपर जीवन-भर के जो अनुभवों के चित्र अंकित हैं, वही बाह्य जगत् का स्थान लेते हैं। स्वप्नों के द्वारा भविष्यवाणी की बात पर मुझे विश्वास नहीं और न दूसरे तौर से महत्व देना। स्वप्न में भी वे कभी-कभी मनोरंजन और मनस्तोष का काम देते हैं। बहुत साल पहिले तिब्बत में एक बार मैंने स्वप्न में देखा था, कि डिनाग और धर्मकीर्ति के नष्ट समझे जानेवाले मूल संस्कृत ग्रंथ मुझे सपने में मिल गये। उस समय मुझे उनका ही ख्याल बराबर बना रहता था। 27 अप्रेल की रात को स्वप्न में जायसवालजी को देखा। वह कुर्सी पर उसी मेज के सहारे बैठे थे, जहाँ वह लिखने-पढ़ने का काम करते थे। मेज कमरे के भीतर और कुछ खुली-सी जगह में थी। मेरे पहुँचते ही मुस्कुराकर मिले। लेकिन, बात नहीं हो पाई। मालूम होता था, वह इंग्लैण्ड में थे, बुलाने पर मैं उनके पास गया था। पुरानी मधुर स्मृतियाँ जिस रूप में भी आएँ, आनन्ददायक होती हैं। स्वप्न, शायद मनीषियों तक ही सीमित नहीं है, यह तो इसी से मालूम था, कि हम कभी-कभी भूत को सोते-सोते भूँकते देखते थे, अर्थात् वह भी स्वप्न देख रहा था।

28 अप्रेल कमला के लिए बड़ी प्रसन्नता का दिन था, क्योंकि 'नया समाज' में उनकी कहानी 'बेचारी सरस' छापने के लिए मंजूर कर ली गई। कहानी पहिले-पहिल छपकर आने पर उन्हें अपार प्रसन्नता हुई।

प्रकाशक सबसे चलती पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए लालायित रहते हैं, लेखक का भी उधर झुकाव होना स्वाभाविक है। पर, मैं कभी किसी की फर्माइश पर पुस्तक लिखने का आदी नहीं हूँ। मेरे एक प्रकाशक ने रसायन पर पुस्तक लिखने के लिए कहा। शायद वह टेक्स्ट बुक के तौर पर उसे लिखवाना चाहते थे। मेरे मन में पहिले ही प्रतिक्रिया हुई। रसायत तो मेरा विषय नहीं रहा। उन्होंने देखा था, मैंने अपनी 'विश्व की रूपरेखा' में रसायन की बातें कही हैं, इसलिए उस पर लिख भी सकता हूँ। मैंने उन्हें निराश किया। एक दूसरे प्रकाशक ने भारतीय संस्कृति के ऊपर उसी ख्याल से पुस्तक लिखने के लिए कहा, लेकिन अपना विषय होने पर भी पाठ्य-पुस्तक का ख्याल आते ही लेखनी ने चलने से इन्कार कर दिया।

श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री मेरे बहुत दिनों के परिचित थे। तब वह कलिम्पोंग के मिशन हाईस्कूल में पढ़ाते थे। किशोरी भाई के साढ़ू होने से भी उनके साथ घनिष्ठता थी। बम्बई में भी वह मिले थे, और अब बीकानेर में शार्दूल पब्लिक स्कूल में संस्कृत के अध्यापक थे। उन्होंने राजपूताना युनिवर्सिटी से पी-एच. डी. के लिए अनुसन्धान करने में मुझे सुपरवाइजर बनने के लिए कहा। मैंने स्वीकार कर लिया। वह कुछ समय उन्होंने

दिया, लेकिन इसके लिए जितनी तन्मयता चाहिए, उसके लिए वह तैयार नहीं थे। जिसके कारण काम पूरा नहीं कर सके। 6 मई को उसी के सम्बन्ध में वह मसूरी आये।

मई महीने में मित्रों के आने के बारे में चिट्ठियाँ मिलने लगीं। धूपनाथजी ने आने के बारे में लिखते हुए बतलाया था—अब गाँव अतरसन में राशन की दूकान खुल गई है। अनाज के बारे में छपरा बहुत दिनों से स्वावलम्बी नहीं है। उतनी घनी आबादी भारत में शायद ही किसी जिले की हो। छपरा के लाखों आदमी देश के दूसरे शहरों में जाकर रोजी कमाते हैं, हजारों ने बिहार के कम घनी आबादीवाले जिलों में जाकर खेती शुरू कर दी।

15 मई को ठाकुरानी गुलाबकुमारी आईं। पिछले साल वह पूरे राजसी ठाठ से आकर स्टेपल्टन होटल में उतरी थीं। अपनी मोटर थी, साथ में आधे दर्जन के करीब नौकर-चाकर और मुसाहिब थे। अब की केवल एक नौकर और एक लड़की के साथ आई थीं। नये भारत में रियासतों और वहाँ के जागीरदारों पर जो प्रभाव पड़ रहा था, उसका ही यह उदाहरण था। जो सामन्त "ते ते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर" इस वाक्य को जल्दी समझने में समर्थ होंगे, वे अधिक अच्छे रहेंगे।

निर्वाचन से पहिले पिछड़ी जातियों में कुछ सुगबुगाहट हुई थी, विशेषकर बिहार और उत्तर-प्रदेश में वे बड़ी जाति के शासन से ऊबकर विद्रोह करने की बात कर रहे थे। छूत-अछूत दोनों प्रकार की पिछड़ी जातियाँ मिलकर आवादी की 70-80 सैकड़े हैं। उनके सतर्क हो जाने पर यह निश्चय ही है, कि लोकतन्त्र में "ब्राह्मण-क्षत्री-लाला" के अगुवापन के लिए कोई सम्भावना नहीं रह जाती। पर, बड़ी जातियाँ या उनमें भी मुट्ठी-भर सामन्त अपने संख्या-बल पर हजारों वर्ष से देश के सारे वैभव के स्वामी होते, इन्हीं शोषितों और पीड़ितों को हथियार बनाकर अपना काम बनाते आये हैं। कांग्रेस के "ब्राह्मण-क्षत्री-लाले" पंचायतों के चुनाव के वक्त घबरा गये थे, उनके पैरों के नीचे से धरती खिसकती-सी मालूम हुई थी। उस समय वे शायद भूल गये थे, कि शत्रु की शक्ति को शत्रु की छूट से धता बताया जा सकता है। चुनाव के समय उन्होंने ऐसा ही किया। शोषित नेताओं में से जिनको अधिक प्रभावशाली देखा, उन्हें कांग्रेस का टिकट दे दिया। वे बैल की जोड़ी की जय मनाने लगे। चुनाव के बाद दो-चार को पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी बना देने-भर से उनका काम निकल गया।

तीसरे हफ्ते में श्री धूपनाथसिंह आ गये। अब हमारी कुटिया में बहार थी। धूपनाथजी का मेरे साथ सौहार्द्र तीस वर्ष से ऊपर का है, जिसका उल्लेख जीवन-यात्रा में जगह-जगह हुआ है। उनकी सच्चाई और सरलता सोने में सुगंध है।

मैं अपने से समझता था, कि हरेक समझदार आदमी बुद्धि के सामने सिर झुकाने के लिए मजबूर होगा, लेकिन तजर्बे ने बतलाया, कि दुर्योधन के नाम से मशहूर वाक्य ठीक है—"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।" बुद्धि के मूल्य को जानते हुए भी यदि उसकी सम्मति ठुकराने के लिए आदमी तैयार हो जाता है, तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है। बुद्धि जिस वक्त कान में कुछ धीमे-धीमे बात करना चाहती है, उसी वक्त दिमाग में झटका लगता है, और आदमी बुद्धि को निराश करके दूसरी ओर दौड़ पड़ता है। दुनिया में सभी आदमियों में केवल गुण ही गुण नहीं होते, कुछ दोष भी होते हैं। अगर उनके दोषों ही को देखा जाए, तो आदमी की जीवन-यात्रा कठिन हो जायेगी। अपने मित्रों की संख्या बढ़ाना जरूरी है। यदि जरा-जरा से दोषों के लिए "अयं न, अयं न" कहते हुए सबका प्रत्याख्यान किया जाये, तो आदमी अकेला रह जायेगा। लेकिन, किसी को हाथ पकड़कर रास्ते पर चलाया नहीं जा सकता। मनुष्य को समाज में पैदा होने पर भी बहुत बातों में अपने आप पर छोड़ दिया गया है। ठोकरें खाकर वह अपने आप ही सँभलता है।

रियासतों का विलयन हुआ। वहाँ के राजाओं और सामन्तों के शताब्दियों नहीं सहस्राब्दियों से चले आते जीवन की समाप्ति बहुत नजदीक है, और उसकी समाप्ति के साथ ऐतिहासिकों और समाजशास्त्रियों में ही नहीं, बल्कि दूसरे भी पाठकों के लिए सामन्ती युग के बारे में जानने के सारे साधन नष्ट हो जाएँगे। मेरा ख्याल कितने ही दिनों से हो रहा था, कि सामन्ती जीवन को लिपिबद्ध करना चाहिये। अपने मित्रों से इधर

कुछ वर्षों से कहता रहा। हाँ भरनेवाले तो मिले, लेकिन करनेवाले कोई नहीं दीख पड़े। मैंने सोचा, इसे अपने हाथ से ही करना चाहिए, और 26 मई को 'राजस्थानी रनिवास' के लिखने में हाथ लगाया, जो वस्तुतः अभी-अभी हमारे सामने खतम होते समाज का काल्पनिक नहीं, वास्तविक चित्र है।

30 मई को साहित्याचार्य श्री बलभद्र ठाकुर आये। चाय पीते समय दूकान पर अपना पोटफेल छोड़ आये थे, लौटकर जाने पर वह मिल गया। उन्हें पहाड़ की ईमानदारी पर जरूरत से अधिक विश्वास हो गया। किसी समय जरूर पहाड़ में ईमानदारी का राज्य था, पर जबसे जीवन-संघर्ष बढ़ा, उचित श्रम करने पर पेट भरने का ठिकाना नहीं रहा, तब से पहाड़ियों ने भी मैदानियों का रास्ता पकड़ा।

31 मई को परीक्षा-परिणाम निकल आया। कमला एफ. ए. पास हो गईं, एक विषय छोड़ने का अब अफसोस कर रही थीं।

अब सैलानी खूब दिखलाई पड़ रहे थे। हमारे देश में आधुनिकता अब असूर्यपश्याओं तक में फैल गई है, बल्कि कहना चाहिए, भोग के सारे साधन सुलभ होने के कारण उनमें आधुनिकता के तेजी से फैलने की सम्भावना और भी अधिक थी। राजस्थान की रानियाँ और राजकुमारियाँ अपनी राजधानी में भले ही असूर्यपश्या हों, भले ही वहाँ काले सीसे लगी बन्द मोटर में उन्हें बाहर जाना पड़ता हो, लेकिन मसूरी के माल पर उन्हें देखकर कोई कह नहीं सकता, कि ये पर्दे की रानियाँ हैं। एक तरुण रानी, जिसका केश कट चुका है, कभी सिर खोले पतलून पहने घूमती दिखाई पड़तीं तो कभी घाघरा-लुगड़ी पहने। उनको अपने राजस्थायी ननिहाल का और यूरोपियन साज-सज्जा का अभिमान है।

2 जून को पृथिवीराज और राजकपूर का नाम सुन करके हम 'आवारा' फिल्म देखने गए। अभी उसकी विदेशों में ख्याति नहीं हुई थी, तो भी मैंने लिखा था—"अब तक देखे भारतीय फिल्मों में अच्छा है, इसमें सन्देह नहीं। सब दृष्टि से अच्छा कहना पड़ेगा।" अधिकतर फिल्मों से मुझे निराश ही लौटना पड़ता है, इसलिए भी 'आवारा' को देखकर संतोष हुआ था। लौटते समय वर्षा और ओले पड़े। वर्षा के मारे तो हम भीग गए। स्टेण्डर्ड के पास रिक्शा लिया। गाँधी चौक तक आते-जाते रिक्शेवाले भी लथ-पथ हो गए और आगे चलना उनके लिए सम्भव नहीं हुआ। मित्तलजी के स्टोर में पहुँचे। चाय पिलाकर ही उन्होंने संतोष नहीं किया, बल्कि भोजन भी कराया। साढ़े 10 बजे वहाँ से पैदल रवाना हुए और 11 बजे के बाद घर पर पहुँचे।

जून में 'रूस में पच्चीस मास' का बीकानेर से प्रूफ आने लगा। पुस्तकों के लिखने में मुझे जितना आनंद आता है, उससे कहीं अधिक आनंद उनके प्रूफ देखने में आता है। पुस्तकों का लिखना मानो उनका गर्भ में आना है, और प्रकाशित होना जन्म लेना। आदमी इससे अपने परिश्रम को समझता है।

9 जून को स्वामी सत्यस्वरूपजी आए। हमारे लिए अब स्थान की समस्या थी। वस्तुतः एक ही तो लम्बा-सा कमरा है, जिसमें विभाजन करके हमने दो बना लिया है। और मेहमान को उसमें रहने के लिए कहने में संकोच मालूम होता है, लेकिन स्वामीजी और बलभद्रजी ने उसे पसन्द किया।

अतिथियों से भरे साधुओं के मठों को मैंने वर्षों देखा है। वह सहजीवन तथा साधु-सेवा मुझे हमेशा बहुत पसन्द आई। अतिथियों का समागम और उनकी सेवा मेरे लिए लालसा की चीज है। लेकिन, यहाँ देख रहा था, अपना मकान लेने पर भी उनको रखने के लिए स्थान देना सम्भव नहीं था। धूपनाथजी एक महीने के बाद 10 जून को गए। गर्मियों में उन्हें काम से छुट्टी रहती है, लेकिन वर्षा के आरम्भ होते ही खेती के काम को देखना पड़ता है। वह छपरा के अपने गाँव अतरसन में न रहकर भागलपुर में खेती-बारी करते हैं। काम में उनका मन भी लग जाता है, और साथ ही जीविका की चिन्ता भी नहीं रहती।

डा. किरणकुमारी गुप्ता अपने भतीजे प्रो. प्रताप के साथ आईं। उन्होंने और मैंने भी सोचा था, कि साहित्यिक कार्यों के बारे में कुछ काम होगा। खासकर उन्होंने 'अग्रवाल विवाह-प्रथा' लिखने का जो काम अपने हाथ में लिया था, विवाह-सम्बन्धी सैकड़ों गीत जमा कर लिये थे, उसके कारण मैं और भी सहयोग देने के लिए उत्सुक था, लेकिन आने के दिन ही प्रो. प्रताप को जोर का बुखार आ गया। यदि पहाड़ में आकर अपनी या अपने साथी को बीमारी का सामना करना पड़े, तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है। फिर नीचे लौटने की ही इच्छा

बलवती होती है, क्योंकि वहाँ चिकित्सा और शुश्रूषा का अधिक सुभीता रहता है।

11 जून को श्री गयाप्रसाद शुक्लजी, प्रिंसिपल कालीप्रसाद भटनागर की पत्नी के साथ आए। प्रिंसिपल भटनागर हमारे प्रदेश के जाने-माने शिक्षा-विशेषज्ञ तथा यहाँ से सबसे बड़े, कानपुर के डी. ए. वी. कालेज के प्रिंसिपल थे। (इन पंक्तियों के लिखने के समय अब वह आगरा युनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर हैं।) प्रिंसिपल भटनागर उदार विचारों के आर्यसमाजी हैं, जिसका मतलब है धर्म के बहुत भीतर घुसकर माथापच्ची करने से दिमाग को अलग रखना। लेकिन, उनकी इस कमी को उनकी पत्नी पूरा करती हैं। वह योग और आत्मवाद के पीछे मीरा हैं। सचमुच वह मीरा ही हैं, क्योंकि कीर्तन में वह बाज-वक्त तन्मय हो जाती हैं। गुरु में अपार श्रद्धा रखती हैं। सौभाग्य से उन्हें एक महिला सिद्धा मिल गई थीं, लेकिन जान पड़ता है "घर का जोगी जोगिना, आन गाँव का सिद्ध" की कथा चरितार्थ हुई। हाथ में आने से अधिक पाने की इच्छा रखती हैं। कानपुर में रहते बाल-शिक्षा के लिए कुछ समय देतीं। गर्मियों और बरसात में वर्षों से पहाड़ की आदी हो गईं, मसूरी आ जाया करती थीं। कालेज की छुट्टियों का अधिक समय प्रिंसिपल साहब भी यहीं बिताते थे। उन्हें एक दर्जन वर्ष से अधिक किराए के बँगलों में रहते हो गए। प्रिंसिपल साहब उससे संतुष्ट थे। श्रीमती भटनागर की इधर इच्छा होने लगी, कि अपना बँगला होना चाहिए, जिसे अपनी रुचि के फूलों से सजाया जाए, अपनी रुचि के अनुसार बनाया जाए। मैंने अपने पड़ोसी 'किल्डेर' बँगले को दिखलाया। उन्हें बहुत पसन्द आया। ऐसे बँगले के कानपुर में होने पर तो 25 हजार रुपये मुँह-दिखाई देनी पड़ती है। कितने ही समय तक यही मालूम होता था, कि 'किल्डेर' की स्वामिनी वही होंगी। झोंक में अच्छा या बुरा जो काम हो जाता है, वह हो जाता है, देर होने में चीज के गुण ही नहीं दोष भी मालूम होते हैं, फिर वह काम नहीं हो पाता। मैं सोचकर कहता हूँ, कि मकान को न लेकर श्रीमती भटनागर ने अच्छा ही किया।

श्री भारतभूषणजी का इस साल ब्याह हुआ। उस समय मास्टर विश्वम्भरदयालजी भी यहीं पर थे। ब्याह होकर नई-नई बहू आई थी। 12 जून को हम भी वहाँ पहुँचे। मसूरी में मौजूद बहुत-से इष्ट-मित्र चाय-पार्टी में जमा थे। बहू ग्रेजुएट थी, जो आजकल के जमाने के लिए कोई असाधारण बात नहीं थी। मास्टर विश्वम्भरदयाल भी खुश थे।

नए मिलनेवालों में 13 जून को प्रयाग के डा. कपिलदेव व्यास आए। वह मूसरी के लिए नए नहीं थे। मेरे आने से पहिले कई सालों तक तो वह हमारे ऊपरवाली कोठी की बगल में 'हर्न ली' में ठहरा करते थे। प्रयाग के मालवीय होने के कारण चाहे डाक्टर हों या वकील, अपने साहित्य और संस्कृति की ओर कुछ रुचि होती है। व्यासजी हर साल आते, 'हर्न ली' में नहीं ठहरते, जहाँ भी ठहरें, हमारे यहाँ दर्शन देने की कृपा जरूर करते हैं।

15 जून को स्वामी सत्यस्वरूपजी के साथ पेटलाद (गुजरात) के 70 वर्ष के एक सेठ आए। वह तीर्थ-व्रत और परोपकार में काफी धन खर्च करते हैं, और विद्या से भी शौक रखते हैं। बातचीत होने पर मैंने सलाह दी, कि दान-पुण्य के पात्रों में साधुओं के आश्रमों का ही नहीं, बल्कि साहित्यिकों के आश्रमों का भी ख्याल रखना चाहिए। मुझे मालूम होता था, 'किल्डेर' खरीदकर उसे साहित्यिकों का आश्रम बना दिया जाए। यह कहने में मेरा क्या बिगड़ता था, यद्यपि मैं जानता था, कि कान में बात डालने और उस पर हूँ-हूँ करने का यह अर्थ नहीं, कि वह काम हो ही जाएगा।

यहाँ से 10 अप्रैल को ही शिवकुमार घुमक्कड़ी के लिए निकले। ढाई महीने बाद 20 जून का वह जमुनोत्री, गंगोत्री, केदार-बदरी होकर लौटे। अपनी यात्रा का विवरण बड़े उत्साह से सुना रहे थे। यद्यपि वे घिसी पगडंडियाँ हैं, लेकिन घुमक्कड़ी जीवन के क-ख सीखने के लिए यह नीचे की रेल की यात्रा से कहीं अधिक उपयुक्त हैं। उनसे बात हो रही थी, तभी हमारे दार्शनिक श्री रामचन्द्रसिंह भी आ गए। वह भारतीय दर्शन और धर्म-निरपेक्ष दिव्य जीवन के प्रचार की धुन में हैं। सारी योजना, कह लीजिए संस्था भी, उनकी जेब में चलती है। चाहे वह व्यावहारिक न हों, किन्तु जैसे शुद्ध, सरल और भटकती अद्भुत प्रतिभा के हृदय से बातें निकल रही थीं, उन्हें कौन सुनना नहीं चाहेगा? शाम को अपनी पत्नी सहित सत्येन्द्रजी (बदरीपुर) भी आए। सत्येन्द्रजी और

उनकी पत्नी के प्रति हमारी विशेष आत्मीयता है। यह ऐसे दम्पती हैं, जिनके आदर और स्नेह पाने में हम दोनों एकमत हैं। इतने मित्रों के समागम से आज का शुक्रवार महोत्सव का दिन मालूम होता था। शिवकुमारजी अब मानसरोवर जाने का संकल्प और बलभद्रजी भी साथ देने की बात कर रहे थे।

डा. सत्यकेतु के ज्येष्ठ पुत्र श्री विश्वरंजन ने एम. ए. छोड़कर एल-एल. बी. ले लिया। अबके साल उन्होंने प्रथम श्रेणी में उसे पास किया। लेकिन वकालत की परीक्षा वस्तुतः युनिवर्सिटी में नहीं, बल्कि कचहरी में होती है, जहाँ सबसे अधिक प्रतियोगिता है, और मुश्किल से 10 प्रतिशत वकील निश्चिन्त जीवन बिताने में सफल होते हैं।

पंडित हरनारायण मिश्र देहरादून से आए। वृद्ध साहित्य-प्रेमी हैं। पढ़ा बहुत, और मौखिक तौर से उसका उपयोग भी बहुत किया, लेकिन उनकी लेखनी हमेशा संकोची रही है। उनके फारसी के ज्ञान को देखकर मैंने कहा, आप एक 'पारसी काव्यधारा' लिख डालें। पहिले हिचकिचाए, लेकिन जब मैंने बतलाया, कि मैं भी आपको सहयोग देने के लिए तैयार हूँ, तो उन्होंने उस काम को अपने हाथ में लिया। कुछ महीनों तक तो मालूम हुआ, कि हिन्दी की यह कमी पूरी हो जाएगी, और विश्व के एक उन्नत साहित्य की कृतियाँ हिन्दी में आ जाएँगी। मैंने उन्हें बतलाया था, मूल को भी नागरी अक्षरों में बाएँ पृष्ठ पर रखें और हिन्दी अनुवाद उसके सामने दाहिने पर। मिश्रजी डायबेटीज़ के पुराने मरीज थे। अब आँख भी जवाब देने लगी। आदमियों को देख सकते थे। किताब का पढ़ना उनके लिए मुश्किल हो गया, फिर 'पारसी काव्यधारा' का ख्याल छोड़ना पड़ा। कभी-कभी ख्याल आता है, क्या उसे भी मुझे करना होगा। मैंने 'संस्कृत काव्यधारा' लिखने के लिए दूसरे मित्रों को कहा था। जब कोई नहीं आया, तो स्वयं ही उसे करना पड़ा। 'पालि काव्यधारा' और 'प्राकृत काव्यधारा' के बारे में भी दूसरे मित्रों को वर्षों से कह रखा है, लेकिन अभी कोई सुगबुगा नहीं रहा है। पहिले वे दोनों हो जाएँ, तभी 'पारसी काव्यधारा' को हाथ में लिया जा सकता है। जीवन चाहिए, काम की कमी नहीं है।

जून के साथ अच्छे-अच्छे आम आने लगे। और मसूरी में महँगे भले ही हों, लेकिन वे बिल्कुल सुलभ हैं। 25 जून को श्री पुरुषोत्तम कपूर (कानपुर) का भिजवाया लखनऊ से दसहरी का पार्सल आया। अतिथियों के साथ आम का इस ऋतु में भोज हो जाना मामूली बात थी। अधिक प्रेम से आम्रसेवा करने के लिए 10 बजे दिन का समय हमें ज्यादा अनुकूल मालूम होता है।

26 जून को गुजरात की रानी बेरिया आईं। प्रौढ़ और वृद्ध अवस्था में सामन्त लोगों की धर्म की ओर विशेष भक्ति होती है। स्वामी सत्यस्वरूप और उनके गुरु स्वामी गंगेश्वरानन्द का उनसे परिचय था। धर्म की मेरी निरपेक्षता भी धर्माचार्यों और धार्मिकों की उपेक्षा का पात्र नहीं बनती। रानी साहिबा का कुछ परिचय मिला था। उनकी नतनी हमारे बिहार के डुमराँव के महाराज की पुत्री थी। वह बचपन से ही अपंग है, सब तरह की दवाइयाँ कीं, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ। अब महात्माओं की आशा है। वृद्धा शिक्षिता हैं। गुज़रात के राजवंशों का राजस्थान के राजवंशों से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, दोनों की भाषाएँ भी बहुत नजदीक हैं, इसलिए गुजरात के अन्तःपुरों में हिन्दी का प्रवेश कोई असाधारण बात नहीं है। उन्होंने चाय छोड़ रखी थी, संयोग से हमारे यहाँ कॉफी मौजूद थी।

ठाकुरानी गुलाबकुमारी भी अभी हमारे बँगले में ही ठहरी थीं। लेडली के 'अर्टेन' के बारे में बातचीत हुई। बूढ़े लेडली युग के भाड़े से एक पैसा कम करने के लिए तैयार नहीं होते थे, लेकिन किराये पर न लगने के कारण उन्होंने आधे 'अर्टेन' को साढ़े तीन सौ रुपया साल पर दे दिया। मसूरी के मकान साल-भर के किराये पर ही उठते हैं, आप चाहे बारहों महीने रहें या दो महीने।

30 जून को महीने का अन्त था। इसी दिन हमारे दो घुमक्कड़ शिवशर्मा और बलभद्रजी पाण्डवों के रास्ते पर पैर बढ़ाने के लिए आगे बढ़े। पाण्डव बल्कि हिमश्रेणियों के पार नहीं पहुँचे थे, जबकि हमारे दोनों तरुण घुमक्कड़ उसके पार कैलाश-मानसरोवर का धावा बोलने जा रहे थे। बूढ़ा पहलवान जिस तरह अखाड़े के किनारे बैठकर दाव-पेच सिखलाता है, वैसी ही मुझसे भी आशा रखी जाती है। मैं इसके बारे में 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिख चुका हूँ। मेरे कहने के अनुसार दोनों घुमक्कड़ों ने किसी कुली का सहारा न लेकर अपने शरीर

के बल पर यात्रा करने का निश्चय किया। आवश्यक चीजें उन्होंने झोलों में भरकर अपनी पीठ पर रखीं। शिवकुमार की पीठ पर 30 सेर से क्या कम बोझा होगा। ठाकुर महाशय के लिए उसका दो-तिहाई ही काफी था। यात्रा की प्रगति के लिए आगे की प्रतीक्षा न करने के वास्ते यहीं लिख देता हूँ। दोनों यहाँ से पहाड़-ही-पहाड़ पैदल धरासू गए, जहाँ वे ऋषिकेश होकर मोटर से भी जा सकते थे। उत्तर काशी, हर्सिल होते भारत के अन्तिम गाँव नेलंग पहुँचे। कभी नेलंग तिब्बत का अन्तिम गाँव माना जाता था, यही नहीं, बल्कि उससे 20-25 मील और इधर के जंगलों पर तिब्बतवालों का दावा था। जैसे शान्तिपूर्ण रीति से कम्युनिस्ट तिब्बत में चले आए, तो हमारी भी सीमा शान्तिपूर्ण रीति से नेलंग और उसके आगे के डाँडे तक पहुँच गई। कम्युनिज़्म के कीटाणु उधर से भारत की ओर न बढ़ें, इसके लिए सरकार ने वहाँ पुलिस बैठा दी। दोनों घुमक्कड़ों को वहाँ रोक लिया गया, और बेतार से बातचीत होने लगी, यह ख्याल करके, कि यदि अधिकारियों की अनुकूल सम्मति आ गई, तो आगे जाने की इजाजत दे दी जाएगी। शायद एक हफ्ते तक वे वहीं रुके रहें, कोई जवाब नहीं आया। दोनों ही चाहते, तो किसी मिनिस्टर का प्रमाणपत्र ले सकते थे, किन्तु अभी तक ऐसा होता देखा नहीं गया था। निराश होकर शिवकुमार ने निश्चय किया : हमें ये हथकड़ी-बेड़ी लगा बन्दी बनाकर तो रखे नहीं हैं, रात को हम निकल भागें। यह मैदानी या हमारे पहाड़ों का इलाका नहीं था, जहाँ पगडंडियों को पकड़कर कुछ मील पर दूसरा गाँव मिल सकता था। बीसियों मील तक वहाँ न कोई गाँव मिला, न पहाड़ों पर वृक्ष-वनस्पति थी। भटककर आदमी कहाँ जाता, इसका भी पता नहीं। सौभाग्य से मानसरोवर हो आया एक तरुण साधु उन्हें मिल गया, जो भी पुलिस के कारण गतिरुद्ध था। वह ठीक से पथ-प्रदर्शन करेगा, इसकी तो सम्भावना नहीं थी, क्योंकि एक बार हो आया आदमी ज्यादा-से-ज्यादा पड़ाववाले थोलिंग या किसी दूसरे पड़ाववाले गाँव को जान सकता था, वहाँ पहुँचने से पहिले बयाबान में दूसरी पगडंडियाँ मिल सकती थीं, जो गाँवों की तरफ नहीं, बल्कि किसी चरागाह की ओर ले जातीं। रास्ते में आदमी के मिलने की सम्भावना कम थी, और मिलने पर भी तिब्बती भाषा दोनों में से किसी को नहीं मालूम थी। तो भी दोनों ने साहस से काम लिया। आधी रात के बाद एक दिन वे भाग निकले। यह मालूम ही था, कि कान्सटेबल उनका पीछा करने के लिए नहीं आ सकते और यदि आना भी चाहते तो तब तक वे 15-16 मील दूर चले गए होते। वैसे ही हुआ। शिवकुमार थोलिंग गए, कैलाश देखा, मानसरोवर की भी परिक्रमा की। पुरङ् (तकलाखर) पहुँचे, तभी उन्हें कम्युनिस्ट सैनिक मिले। कह रहे थे वहाँ कोई पूछ-ताछ करनेवाला नहीं था। कम्युनिस्ट सैनिकों ने उन्हें बड़ी खातिर से चाय पिलाई, और वे काफी प्रभावित होकर वहाँ से लौटे।

दो साल रहते अब 'हर्न-क्लिफ' के दोष भी मालूम होने लगे। सोचने लगा, नाहक हमने 20 हजार से ऊपर इस बँगले पर खर्च किए। 'अर्टेन' की तरह का कोई बँगला चार-पाँच सौ रुपये साल में मिल जाता। मन कहने लगा, यदि यह बिक जाए, तो वही करें। मकान के खूँटे से बँधने के प्रति पहिले-पहिले दुर्भाव पैदा हुआ।

2 जुलाई को दिल्ली की जामिया मिलिया के कुछ छोटे लड़के अपने दो अध्यापकों के साथ आए। कुछ लड़के ल्हासा के मुसलमान थे, और वहाँ के पेरे परिचितों को जानते थे। तिब्बती भाषा बोलने से उन्होंने अधिक आत्मीयता महसूस की। ल्हासा के मुसलमान सभी जगह पुराने विचारोंवाले मुसलमानों की तरह धर्म के मामले में बड़े कट्टर होते हैं। बौद्धों की लड़की ब्याहने के लिए हमेशा उत्सुक रहते हैं, लेकिन मजाल क्या कि कोई बौद्ध उनकी लड़की ले जाए। उनके लिए बौद्ध धर्म और विहार तथा उनका साहित्य काफिरों की चीज है, लेकिन वहाँ उनकी संख्या दाल में नमक के बराबर है। चाहते हैं, कि हमारे लड़के पक्के मुसलमान हों, इसके वास्ते उपयुक्त संस्था देवबन्द हो सकती थी, जहाँ अरबी भाषा और इस्लामी दर्शन का अध्ययन-अध्यापन होता है। लेकिन, ल्हासा के मुसलमान व्यापारी हैं, उन्हें भारत में आना-जाना पड़ता है। अंग्रेजी के महत्व को समझते हैं, इसीलिए वे अपने लड़कों को जामिया मिलिया में भेजे हुए थे। लड़कों में से कुछ अब समझने की भी शक्ति रखते थे। एक लड़का बड़े गौर से सामने टँगी माओ-त्से-तुंग की तस्वीर को देख रहा था। मार्क्स और लेनिन से उसका परिचय नहीं था। पर यह जानता था, कि अब ल्हासा की सड़कों पर अध्यक्ष माओ की जय बोली

जा रही है। मैंने कहा, अरबी पढ़ना तुम्हारे लिए धार्मिक उपयोग की चीज है, किन्तु नये तिब्बत में उर्दू और अंग्रेजी की उतनी उपयोगिता नहीं है, जितनी कि तिब्बती भाषा की। वहाँ का सारा काम तिब्बती में हो रहा है, यह उसे मालूम था। लेकिन, अभी उसके पिता पुराने युग के थे।

'राजस्थानी रनिवास' पर हमारी कलम नियमपूर्वक चल रही थी, और उसके लिखे हुए को दोहराते भी जा रहे थे।

मकान को लेते वक्त मैंने गलती की थी, जो उसे अपने नाम लिया था, यद्यपि मैं जानता था, कि कमला उसकी मालकिन हैं। अब उस गलती को सुधारने की जरूरत थी। 31 जुलाई को मुझे बड़ा सन्तोष हुआ, जब श्री विश्वरंजनजी की सहायता से दानपत्र-रजिस्टरी कमला के नाम हो गई। दो-तीन सौ के बरबाद होने का सवाल रहा, बँगले पर तो कई हजार बरबाद कर चुके थे।

रजिस्टरी के बाद हम बाजार से लौट रहे थे, तभी रास्ते में कमला देहरादून से लौटती मिलीं। कह रखी थीं, गर्मी के मारे जान निकल रही थी। बड़ी मुश्किल से मोटर के अड्डे तक अपने को रोककर लाई, जहाँ कै हो गई। 'नेपाल' लिखने की कल्पना मन में चुलबुला रही थी। वह अपने साथ पर्सिवल लेंडन के 'नेपाल' की दो जिल्दों को ले आई थीं। मैनें सोच लिया, कि अब 'नेपाल' में हाथ लगाना ही होगा और साथ ही जनवरी 1953 में नेपाल-यात्रा भी करनी होगी।

5 जुलाई को 'प्रमाणवार्तिकभाष्य' का पहिला प्रूफ आया। मुँह से निकला–"कुफ्र टूटा खुदा-खुदा करके।" 16-17 वर्ष बाद इस ग्रन्थ का और मेरा सौभाग्य खुला।

उसी दिन शायद उसी डाक से बनारस से एक करुणाजनक चिट्ठी एक तरुण कहानीकार की मिली। उनकी पचासों कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी थीं, पाठक उन्हें पसन्द करते थे। उनको अपने और अपने सम्बन्धियों के छोटे-से परिवार का चलाना मुश्किल था। आज यदि आधा पेट खा लेते, तो कल की चिन्ता दिल को सुखाने लगती, भद्र वर्ग के होने के कारण उसके साथ ही "सम्भावितस्य चाकीर्तिर् मरणादतिरिच्यते"। वह अपमान की जिन्दगी को जीना कैसे पसन्द कर सकते थे ? कहानियों के लिए कोई प्रकाशक पैसा देने के लिए तैयार नहीं था। प्रकाशक भी तभी किसी पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए तैयार होता है, जब उसे विश्वास होता है, कि यह पुस्तक बिकेगी। नये लेखक पर वह कैसे विश्वास कर सकता है ? मेरी सिफारिश को प्रकाशक रद्दी की टोकरी में डाल देगा, यह मुझे विश्वास ही था, लेकिन अपने तरुण सधर्मा को निराशापूर्ण पत्र लिखना उचित नहीं था।

9 जुलाई को पटना से आमों का पार्सल श्री वीरेन्द्रजी ने भेजा। चार-पाँच ही खराब हुए, किन्तु वे उतने मीठे नहीं थे। उस दिन उत्तरकाशी से लिखा बलभद्रजी का भी 4 जुलाई का पत्र मिला, जिससे मालूम हुआ, कि वे गंगोत्री की ओर रवाना होनेवाले हैं। शिवकुमारजी का उसमें उल्लेख न होने से मैंने यही समझ लिया, कि शायद दोनों का मन नहीं मिला। अगले दिन शिवकुमारजी की चिट्ठी आई, उन्होंने एक दिन पहिले लिखा था। मालूम हुआ, धरासू पहुँचने में उन्हें चार दिन लगे। सचमुच ये ज्यादा थे। मैं एक दिन और दो घंटे में उत्तरकाशी से मसूरी पहुँचा था। शिवकुमार बोझा भी अधिक उठा सकते थे, चलने में उनके पैर फुर्तीले थे। मैथिल पण्डित ने कभी पीठ पर बोझा नहीं उठाया था। शिवकुमार भी अभ्यस्त नहीं थे। दोनों की काठी में अन्तर था। एक जुए में एक तेज और एक गरियार बैल बाँध दिये जाएँ, तो तेज बैल की जो हालत होती है, वही शिवकुमार की थी। वह कुढ़ते होंगे : ठाकुर महाशय भी हमारे पैरों से पैर मिलाकर क्यों नहीं चलते ?

पिछले साल से बरसात के दिनों में पैरों में नीचे लाल-लाल दाग-से निकल आते थे। मेरा खेत में काम करने का रोज का नियम चलता था। बरसात के दिनों में छोटे-छोटे कीड़े बहुत हो जाते थे, जिनके काटने से ये लाल चित्ते निकलते थे। यदि खुजलाता, तो पक जाते, मैं उससे बचता था। डर लगता था, कहीं ये ज्यादा बढ़ न जाएँ। खुजली भी जोर की होती थी। 31 जुलाई को इसके लिए पेनिसिलिन का इंजेक्शन लिया।

स्वामी सत्यस्वरूपजी भी दो तरुण घुमक्कड़ों की बात में पड़कर एक बार ख्याल करने लगे, कि मैं भी

चलूँ, लेकिन उनके मनोरथ ज्यादा बलवान् नहीं हुए। पहिले ही बतला चुका हूँ, कि वह भारतीय दर्शन, विशेषकर न्यायशास्त्र के अच्छे विद्वान् हैं, साथ ही ग्रेजुएट होने से आधुनिक बातों का भी काफी परिज्ञान रखते हैं। किसी भी विद्या अर्जित किए पुरुष को अपने ज्ञान का फल अगली पीढ़ी को देना मैं अनिवार्य समझता हूँ, इसी को पुराने जमाने में ऋषि-ऋण से उऋण होना कहा जाता था। मैं इधर स्वामीजी को बराबर जोर देता रहा : आप 'गंगेश उपाध्याय' की 'तत्वचिन्तामणि' को हिन्दी में करें। टीका नहीं, बल्कि ऐसा अनुवाद, जिसमें वह स्वतंत्र ग्रन्थ मालूम हो। 'तत्वचिन्तामणि' न्याय का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। गंगेश उपाध्याय नव्य-न्याय के विधाता हैं। उनकी लकीरों पर ही आज के विद्वान् चलने के लिए बाध्य हैं। 'तत्वचिन्तामणि' दो-ढाई सौ पृष्ठ का ग्रन्थ है, लेकिन उसकी एक-एक पंक्ति में एक-एक पृष्ठ नहीं, बल्कि एक-एक पुस्तिकाएँ सन्निविष्ट हैं। सारी पुस्तक के एक-दो दर्जन पन्नों को पढ़कर आज लोग महान् नैयायिक बन जाते हैं। उन पन्नों को छोड़कर बहुतों ने सारे ग्रन्थ को कभी आँखों से देखा भी नहीं। इस ग्रन्थ में उक्त महान् दार्शनिक ने 12वीं सदी तक के भारतीय दर्शन को अपनी देनों के साथ रख दिया है। हमारे दर्शन के विकास को इसे जाने बिना समझा नहीं जा सकता। मैंने भी इसके कुछ ही पृष्ठ पढ़े हैं। ग्रन्थ कठिन है, यह मैं मानता हूँ। लेकिन, साधन-सम्पन्न पुरुष यदि उसमें पड़ जाए, तो यह कार्य असाध्य नहीं है। स्वामी सत्यस्वरूप साधन-सम्पन्न हैं, कुछ वर्ष लगेंगे, और इसके साथ ही देश के न्याय के बड़े-बड़े विद्वानों का भी घूम-घूमकर सहयोग लेना पड़ेगा। स्वामीजी के लिए भारत में चारों खूँट घूम आना मामूली बात है। मैंने कहा, पहिले प्रकरण, उपप्रकरण आदि के साथ मूल की एक शुद्ध कापी तैयार कीजिए। बेहतर होगा, यदि यह मूल छप जाए। 'तत्वचिन्तामणि' को छपे और पुस्तक के खतम हुए बहुत वर्ष हो गए हैं। फिर इसका एक साधारण तौर से अनुवाद कीजिए, जहाँ समझने की दिक्कत है, वहाँ मूल ही को रख दीजिए। दुबारा फिर सारे को दोहराइए, और जितना साफ हो सके, उतना साफ कीजिए। फिर पण्डितों से भी सहायता लीजिए। स्वामीजी ने प्रयत्न करके देखा, तो 'तत्वचिन्तामणि' की अनेक टीकाएँ, अनुटीकाएँ मुद्रित या अमुद्रित मिलीं, जिनमें कुछ मूलानुसारिणी हैं। यदि इन सबकी सहायता ली जाए, और पाँच-छः वर्ष खर्च किये जाएँ, तो 'तत्वचिन्तामणि' का अनुवाद क्यों नहीं हो सकता ? हाँ, इसके लिए अपने पर और साथ ही हिन्दी पर भी विश्वास होना चाहिए। अगर किसी को यह ख्याल है, कि दर्शन के उच्च ग्रन्थ को लोग हमेशा संस्कृत ही में पढ़ते रहेंगे, तो वह इस काम को नहीं कर सकता। पर, जरा-सा सोचने पर ही यह बात साफ मालूम होने लगेगी, कि जब साइन्स की उच्च शिक्षा, पश्चिमी हेगल और कांट के उच्च दर्शन हिन्दी द्वारा हमारे विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाएँगे, तो 'तत्वचिन्तामणि' को क्यों नहीं लोग हिन्दी में पढ़ना चाहेंगे। किसी-न-किसी को इस महान् ग्रन्थ का अनुवाद करना होगा, फिर आप ही क्यों न हाथ लगाएँ ?

# 6
# मजदूर-संघ में

लोग बेकार झूठ क्यों बोलते हैं ? एक दिन एक व्यक्ति शराब पीकर आए। मुँह से शराब की गंध आ रही थी, बोलने-चालने पर भी उसका असर था। मैंने शराब कभी नहीं पी, और इस रेकार्ड को कायम रखना चाहता हूँ, इसलिए मैंने उसमें हाथ कभी नहीं लगाया। लेकिन, मैं शराब पीने को पाप नहीं समझता, न पीनेवाले को दुराचारी मानता हूँ। आखिर मैंने भाँग तो कभी पी ही थी। उसका भी नशा होता है। आदमी अधिक पीने पर सुध-बुध भी खो बैठता है। मेरी दृष्टि में शराब और भाँग में कोई अन्तर नहीं। अगर मात्रा की बात है, तो दोनों के लिए एक-सी है। अगर कोई संयमी नहीं है, तो उसे दया का पात्र समझना चाहिए, घृणा का नहीं। लेकिन, उस दिन उस व्यक्ति ने कसम खाकर कहना शुरू किया, मैंने शराब नहीं पी, तो मुझे जरूर बुरा लगा। आखिर गंध तो साफ भेद खोल रही थी।

भदन्त बोधानन्द महास्थविर पहिले पुरुष थे, जिन्होंने कुछ बातें बतलाते बौद्ध-ग्रन्थों के प्राप्ति-स्थान का पता दिया। तब से हमारा सम्पर्क घनिष्ठ होता गया। उस समय (प्रथम विश्व-युद्ध के मध्य में) एक 'धम्मपद' छोड़कर और किसी बौद्ध-ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद नहीं था, और न स्वतन्त्र तौर से ही ऐसे ग्रन्थ लिखे गए थे जिनसे बौद्धधर्म से परिचय प्राप्त करने में सुविधा हो। बंगभाषी और बौद्ध होने से उन्हें कुछ सुभीता था। उन्होंने एक बंगला बौद्ध मासिक पत्रिका का भी मुझे पता दिया था। मैं कह सकता हूँ, कि बौद्ध साहित्य-भंडार के दरवाजे पर पहुँचानेवाले वही थे। इनका देहान्त होने पर मैंने 'नया समाज' में उनकी जीवनी पर एक छोटा-सा लेख लिखा। लखनऊ में उनके बनवाए बौद्ध-विहार (रिसालदार बाग) और उनकी संग्रहीत हजारों पुस्तकों को मैं जब भी लखनऊ जाता हूँ, देखता हूँ। और उनकी स्नेहिल मूर्ति सामने आती है। उनके शिष्य भिक्षु प्रज्ञानन्द ने अपने गुरु के विहार की रखवाली का ही भार अपने ऊपर नहीं लिया है, बल्कि वह वहाँ से बौद्ध-ग्रन्थों के प्रकाशन का भी काम कर रहे हैं।

**किदवाई-पिल्लै**–मिस्टर किदवाई आई. सी. एस. हमारे प्रदेश के जिला-जज थे। उन्होंने 'हर्न-क्लिफ' के पास ही एक बड़े बँगले (आराम हौस) को खरीदा, जो यहाँ के असाधारण बँगलों में है। बँगला और उसके कमरे ही बहुत विशाल नहीं हैं, बल्कि उसमें बगीचे के अलावा आगे-पीछे काफी लम्बी-चौड़ी समतल भूमि है। इसे देखकर मुझे ख्याल आता, कि जिस समय हमारे यहाँ कम्युनिस्ट देशों की तरह बच्चों की पर्वरिश का ख्याल किया जाने लगेगा, तो यह उनके लिए बहुत उपयुक्त स्थान होगा। यहाँ उनके फुटबाल, हाकी, कबड्डी खेलने के लिए बहुत जमीन है, और बँगले के आस-पास इतना बगीचा है, जो फलों और फूलों की बहुत बड़ी बारी हो सकता है। खैर, यह तो भावी भारत की बात है। किदवाई पेन्शन पाए या शायद बिना पाए ही मर गए। उन्होंने एक अंग्रेज महिला से विवाह किया था, जो गर्मी और बरसात में बराबर यहाँ आकर रहा करती

थीं। बँगले की मरम्मत करना उनकी शक्ति से बाहर की बात थी, उनके दामादों ने भी बँगले के ऊपर दावा कर रखा था। मुकदमा चला। इसलिए भी पैसा खर्च करने में संकोच करती थीं। शायद किदवाई कोई बड़ी सम्पत्ति छोड़कर नहीं मरे थे। किदवाई की एक लड़की पाकिस्तान में और एक लड़का आसाम में सरकारी नौकर था। केरल के श्री पिल्लै अच्छे इंजीनियर थे। उन्होंने भी एक अंग्रेज महिला से शादी की। उनकी एक लड़की किदवाई के लड़के से ब्याही थीं। दोनों सन्तानें इन्दो-आंग्लियन थे, इसलिए वे एक-दूसरे को समझ सकते थे। दोनों समधिनें एक ही बार इसी साल यहाँ आकर रही थीं। उससे एक या दो साल बाद बेचारी मिसेज किदवाई जाड़ों में समधी के पास प्रयाग गईं, और वहीं उनका देहान्त हो गया। लड़के को आसाम से खर्च करके मसूरी आने की फुरसत नहीं। मिस्टर पिल्लै इंजीनियर मलाबार के नायर अर्थात् ब्रह्मक्षत्र थे, जिनके यहाँ संस्कृत पढ़ना मामूली बात है। वहाँ के नम्बूदरी ब्राह्मण शत-प्रतिशत शिक्षित और प्रायः सभी संस्कृतज्ञ होते हैं। कितने ही नायर, नम्बूदरियों की सन्तान होते हैं, इसलिए पिता के खून के साथ उन्हें संस्कृत की घुट्टी मिलती है, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। पेन्शन के बाद पिल्लै साहब इतिहास में लगे हुए थे। उनका सिद्धान्त था, कि भारत के कोलों और द्रविड़ों के मिश्रण से आर्य पैदा हुए। यहीं से वे पश्चिमी यूरोप की ओर गए। मोहनजोदड़ो की मूक लिपि को पढ़ने का दावा कई महापुरुष कर रहे हैं, उन्होंने इस पर लिखा भी है, पर पिल्लै साहब अभी लिखने का विचार ही कर रहे हैं। वे भी लिपि के कुंजी पाने की बात कह रहे थे, और यह भी कि मोहनजोदड़ो से आज तक इतिहास की अखण्ड परम्परा विच्छिन्न नहीं हुई, उन्होंने तीन जिल्दों में पुस्तक के लिखने का संकल्प किया है, जिनमें से एक जिल्द अमेरिका में किसी प्रकाशक के पास चली भी गई है।

इस खब्त के लिए कुछ कहना मेरे लिए बेकार था। मैंने कहा : आप इंजीनियर हैं। पाश्चात्य वास्तुकला के पण्डित होते हमारी वास्तुकला पर क्यों नहीं कोई पुस्तक लिखते ? उन्होंने अपनी लिखी एक छपी पुस्तक मुझे दी। लेकिन ओस चाटने से प्यास कैसे बुझती ?

शिव शर्मा की चिट्ठी नेलंग से आई, जिसमें लिखा था, कि पुलिस ने हमें रोक रखा है। यहैं भी मालूम हुआ, कि वहाँ उन्होंने कहा : हम राहुलजी की बीवी को देखने तिब्बत जा रहे हैं। यह झूठ ही नहीं था, बल्कि अगर पुलिस को पता लग गया, कि मुझसे हजरत का सम्बन्ध है, तो वह कभी सीमान्त लाँघने नहीं पाएँगे। बलभद्रजी की चिट्ठी अगले दिन आई। वे नेलंग से बागौरी लौट आए थे, और सोच रहे थे, कि यदि कैलाश नहीं जा सके, तो बदरी-केदार होकर लौट आएँ। मसूरी में वर्षा 80 इंच से ज्यादा हमारी तरफ और देहरादून की ओर के एक स्थान में 120 इंच तक होती है, जो मामूली वर्षा नहीं है। ऐसी वर्षा के साथ बिजली का कड़कना मामूली बात है। 22 जुलाई की रात को सूपाधार वर्षा हो रही थी। इसी समय बड़े जोर की बिजली कड़की। मालूम हुआ, कि हमारी छत जमीन में दब जाएगी, उसके साथ ही घर की बिजली बुझ गई। अगले दिन पता लगा, चार्लविल के पास के एक देवदार पर बिजली गिरी है। हमारे बँगले से भी वह देवदार दिखाई पड़ता था। जान पड़ता था, पाण्डुवर्ण का कोई दैत्य खड़ा है, जिसकी मुंडहीन लम्बी गर्दन है, सामने फैले दो हाथ हिटलरी सलाम कर रहे हैं। 24 जुलाई को भैया आए। वे उसे देख आए थे। कहने लगे, उसके टुकड़े दूर-दूर तक फैले हुए हैं। 29 को मैं भी जिज्ञासा-पूर्ति के लिए वहाँ पहुँचा। चार्लविल के पीछे के एक बँगले के पास देवदार था। उसका सिर उसी तरह छिन्न हो गया था, जैसा कभी इन्द्र ने वृत्र का किया होगा। तीन दिशाओं में वह फटा था, आग कहीं नहीं लगी थी, लेकिन बिजली उसके एक तने की छाल को छीलते जमीन में घुस गई थी। देवदार बहुत ऊँचा वृक्ष होता है, और बिजली पृथिवी के सबसे ऊँचे स्थान पर भू-विद्युत से मिलन करना चाहती है। पहाड़ में यह प्रसिद्धि है, बिजली अक्सर देवदारों पर गिरती है।

13 जुलाई को भाभीजी को दिल का दौरा आ गया। दो बरसातों में वे बराबर हँसती-हँसाती रहीं। बात-बात में व्यंग करके मुरझाये दिल को खुश कर देने की उनके पास कला थी। उनकी तरुणाई और भी नवतरुणाई में परिणत हो जाती थी, जब वे चुहुल करतीं। दिल का दौरा उनकी सारी प्रसन्नता को अपने साथ ले गया, और अगले दो गर्मियों में तो मालूम ही नहीं होता था, कि यह वही जानकीदेवी हैं। चेहरे पर हमेशा हवाइयाँ उड़ती रहतीं, किसी चीज में मन नहीं लगता। जहाँ सिनेमा देखना उनके बड़ी चाह की बात थी, वहाँ वे उसके

नाम से भी डरती थीं। किसी के मरने की खबर सुनाने का मतलब है उनके दिल में दौरा पैदा करना। मनुष्य का शरीर-यंत्र कितना भंगुर और कोमल है !

डा. सत्यकेतु के कनिष्ठ पुत्र अमिताभ–जिसे हम बाबा कहते हैं–का 31 जुलाई को जन्मदिन था। हम प्रायः इस बाबा और उसकी बहिन उषा के जन्मदिन की पार्टी में उपस्थित होते थे। बच्चों को जब एक बार अपने जन्मदिन की आदत हो जाती है, तो उसका अभाव उन्हें खटकता है, बड़ी लालसा से वे उस दिन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। उस वक्त वे अपने बाल-मित्रों को भी बुलाते हैं। बाबा की पार्टी से हम डा. के. एन. गैरोला के यहाँ गए। 1942 के आन्दोलन में डा. गैरोला ने हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का नेतृत्व किया था, उस संघर्ष के वे प्रधान नेताओं में थे। संघर्ष के समय ही मुझे उनके बारे में मालूम हुआ था। यहाँ आकर मुलाकात हुई। बाबा की पार्टी से मैं उनसे मिलने गया। वे मसूरी के मजूरों के संगठन के एक नेता थे। मैं यहाँ रहने लगा था, वे यहाँ गर्मियों में कुछ समय के लिए आते थे। उन्होंने जोर दिया, कि आप मजूर सभा के सभापति बनें। मैं अब लेखनी के काम को छोड़कर किसी दूसरे काम में हाथ नहीं लगाना चाहता था, खासकर मजूरों और किसानों के संगठन में हल्के दिल से शामिल होना मैं पसन्द नहीं करता था। लेकिन, उन्होंने बाध्य किया। 3 अगस्त को यहाँ की मजूर सभा का मैं सभापति भी चुन लिया गया, जिसकी सूचना देने उसी दिन मन्त्री और उप-मन्त्री मेरे पास आए। सभा में बोझा ढोनेवाले और रिक्शा के मजूर शामिल थे। दोनों ही यहाँ बारहों महीना रहनेवाले नहीं थे। बोझा ढोनेवाले अधिकतर नेपाली थे, और रिक्शावाले गढ़वाली। गढ़वाली भारवाहक एक मन से अधिक बोझा -उठाने में अपने को असमर्थ पाता है, जबकि नेपाली के लिए दो मन बोझा उठा लेना मामूली बात है। कितने ही तीन मन से भी ऊपर उठाकर ले चलते हैं। नेपाली मजूरी कम लेने को भी तैयार थे, जबकि गढ़वाली अपने कम बोझे को कम मजूरी में ले नहीं जा सकते थे। वर्षों की प्रतियोगिता के बाद बोझा ढोने का काम नेपालियों के हाथ में चला गया और काम का बटवारा हो गया। बोझा केवल सैलानियों के सामान के रूप ही में नहीं होता, बल्कि खाने-पीने और व्यापार की दूसरी चीजें भी उसमें शामिल थीं। नेपालियों में से बहुत-से जाड़ों में भी यहीं रह जाते हैं। मजूरों के असली नेता इनमें संगठन करने के लिए कभी पहुँचे ही नहीं। मजूरों का संगठन एक शक्ति है, जिसे हथियाने से दूसरे बाज कैसे आ सकते थे ? मुझसे पहिले उनकी सभा के सभापति यहाँ के एक लखपति होटलपति थे, और मन्त्री कई लाखों के स्वामी, यहाँ के सबसे धनी व्यापारी। खैर, एक साल देखने का मैंने निश्चय कर लिया।

श्री टीकाराम कुंज हेपीवेली चौकी में पुलिस के राइटर कान्सटेबिल थे। वे साहित्य-प्रेमी थे, यह मैं पहिले बतला चुका हूँ, साथ ही बड़े सरल और सज्जन पुरुष थे। रविवार को वे पुस्तकों और पत्रिकाओं को लेने-लौटाने जरूर आया करते थे। दूसरे दिन भी उनका स्वागत था। 17 अगस्त को मालूम हुआ, कि उनकी बदली यहाँ से देहरादून हो गई। नौकरी-पेशा आदमी एक जगह कैसे रह सकता है, लेकिन स्नेही पुरुष का वियोग तो बुरा लगता ही है। एक बार चले जाने पर फिर नदी-नाव-संयोग की तरह कहाँ मिलना ? ऋषिकेश के एक बार 'कुंजजी' यहाँ मिलने आए।

श्री कृष्णप्रसाद दर के कारण लॉ-जर्नल प्रेस 'गढ़वाल' को प्रकाशित करने लगा था। 'कुमाऊँ' भी उसके पास चला गया था। मैं समझता था, अब हिमालय-सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन की चिन्ता नहीं रही, और वे अच्छी सफाई के साथ छपेंगी। सितम्बर के पहिले सप्ताह में मालूम हुआ, कि दर साहब लॉ-जर्नल प्रेस से हट गए। हमारे यहाँ का पूँजीवाद यूरोप से पीछे आरम्भ हुआ, इसलिए इसमें बहुत अपरिपक्वता है। जो साधारण व्यावसायिक ईमानदारी और उदारता यूरोपवालों में देखी जाती है, उसका भी यहाँ अभाव है। लॉ-जर्नल को एक छोटे प्रेस से बहुत बड़े और कलापूर्ण छपाई करनेवाले प्रेस के रूप में परिणत करने का श्रेय कृष्णप्रसादजी को है। जब उसमें आमदनी नहीं, घाटे का सवाल था, और बड़ी साधना के साथ ही आगे बढ़ा जा सकता था, उस समय यह सारा काम कृष्णप्रसादजी ने किया। प्रेस को बहुत बड़ा देखने के स्वप्न ने उन्हें यह समझने की फुर्सत नहीं दी, करोड़पति घड़ियालों के हाथ में एक बार जाने के बाद फिर खैरियत नहीं। दर साहब को अब सेठों ने रखने में लाभ नहीं समझा, हालाँकि यह बात पीछे गलत साबित हुई। क्योंकि दर साहब के हटने

के कुछ ही समय बाद प्रेस अपनी पुरानी अर्जित कीर्ति को खो बैठा। यह एक ही उदाहरण नहीं है। पटना के अंग्रेजी दैनिक 'सर्चलाइट' को खून-पसीना एक करके मुरली बाबू ने रोपा और बढ़ाया था। पीछे पूँजीपति मालिकों ने उनकी भी वही हालत की। मेरे लिए तो यह और भी चिन्तनीय बात थी। 'कुमाऊँ' को मोनो पर पंच करके नये प्रबन्धकों ने लौटा दिया, और पत्र-व्यवहार में इतनी अभद्रता का परिचय कभी मुझे किसी प्रकाशक से नहीं हुआ था। दर साहब अगर रहते, तो दार्जिलिंग से जम्मू-कश्मीर की सीमा तक के हिमालय-सम्बन्धी मेरी लिखी हुई पुस्तकें अब से पहिले ही प्रकाशित हो गई होतीं। उस समय बिल्कुल सम्भव था, कि मैं जम्मू-कश्मीर और भूटान-आसाम के हिमालय पर पुस्तकें लिखकर सारे हिमालय का परिचय हिन्दी पाठकों के सामने रख सकता।

पुस्तकों के प्रकाशन की अड़चन देखकर अब दिमाग में ख्याल आया, कि क्यों न स्वयं प्रकाशक बना जाए। कम-से-कम तजर्बा करने में क्या हर्ज है।

12 सितम्बर को शिवकुमार आ पहुँचे। उन्होंने नेलंग के रास्ते थोलिंग, कैलाश-मानसरोवर होते गरब्यांग और अल्मोड़ा के रास्ते दिल्ली जाने की अपनी सारी यात्रा की बातें बतलाईं। कुछ गम्भीरता की कमी तो जरूर है, लेकिन इस तरुण के साहस की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। उन्होंने और किसी यात्रा के बारे में सलाह माँगी, मैंने कहा, अल्मोड़ा जिले की सीमा से घुसकर सारे नेपाल में होते दार्जिलिंग निकल जाओ।

सितम्बर के अन्त में दूसरा सैलानी-सीजन आरम्भ हो जाता है। 30 सितम्बर को स्वामी सत्यदेवजी और श्री मुकुन्दीलालजी से मुलाकात हुई। स्वामीजी को देखकर हमेशा मुझे उनका बनारसवाला रूप और 'सरस्वती' में प्रकाशित होनेवाले उनके स्फूर्तिदायक यात्रा-सम्बन्धी लेख याद आते हैं। बिना जाने उनके यात्रा-सम्बन्धी लेखों ने मुझे प्रेरणा दी, यह कहूँ, तो अनुचित नहीं होगा। इस प्रकार मैं अपने को उनका ऋणी मानता हूँ। जब कभी भी भेंट होती है, तो मुझे उनकी बातें सुनने में बड़ा आनन्द आता है। वर्षों से वे आँखों से वंचित हैं, किन्तु आवाज में अब भी वही कड़क है।

किसी कृति का आरम्भ यद्यपि क्रमशः होता है, किन्तु होता है अभाव से ही। इसका उदाहरण मेरा ऐतिहासिक उपन्यास 'विस्मृत यात्री' है, जो कि इसी साल (1956) प्रकाशित हुआ। 1951 में नरेन्द्र यश ने अपनी ओर मुझे आकृष्ट किया। फिर ख्याल में आने लगा कि ऐसे महान् घुमक्कड़ को लेकर कोई उपन्यास लिखना चाहिए। उपन्यास लिखने से पहिले 30 सितम्बर को मैंने घुमक्कड़ नरेन्द्र पर एक लेख लिखा। दो वर्ष और लगे, उसे उपन्यास के रूप में कागज पर उतरने में। 'राजस्थानी निवास' का भी आरम्भ इसी तरह अभाव से हुआ। मसूरी आने से पहिले यदि कोई कहता कि आप इस विषय पर कभी पुस्तक लिखेंगे, तो मैं मानने के लिए तैयार न होता। अब वह ग्रंथ तैयार हो गया था, और दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक ने धारावाहिक रूप से उसे निकालने के लिए लिखा था।

मजूर सभा के सभापति हुए, तो उसके लिए कुछ करना भी जरूरी था। मजूरों की सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि उन्हें बरसात में बाहर भीगना पड़ता है, और रिक्शों के रखने के लिए कोई जगह नहीं है। कुछ स्थानों पर टिन के घरों के बनाने की आवश्यकता थी। हम दो-तीन आदमियों के साथ उस समय की नगरपालिका के मुख्याधिकारी तिवारीजी से मिलने गये। अभी सरकार ने म्युनिसिपल कमेटी को बर्खास्त करके प्रबन्ध अपने हाथ में ले रखा था और प्रबन्ध एक योग्य डिप्टी-कलक्टर के हाथ में दे दिया था। वैसे सर्वेसर्वा देहरादून के डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेट थे, मजूरों की शिकायतें हमने रखीं, यह भी बतलाया कि इन-इन स्थानों पर रिक्शाशेड बनने चाहिएँ। हमारे मन्त्री और उप-मन्त्री भी बीच में बातों को बतला रहे थे। मेरी तो वह इज्जत करने के लिए तैयार थे, क्योंकि मैं प्रसिद्ध व्यक्ति था, पर जब हमारे मन्त्री और उप-मन्त्री को उन्होंने मूर्ख कह डाला तो मुझे बहुत बुरा लगा। मुझे डर लगा, मेरे साथी भी कुछ जवाब न दे बैठें। लेकिन उन्होंने बड़े जब्त से काम लिया। नौकरशाही में यह बहुत बुराई है कि वहाँ दास और स्वामी दो ही वर्ग हैं। अपने से ऊपर के अफसर या मन्त्री स्वामी हैं। उनकी चरण-धूलि सिर पर रखना नौकरशाह अपना धर्म समझता है। जब से अंग्रेज गये हैं तब से तो सचमुच ही चरण-धूलि ली जाने लगी है। जो स्वामी नहीं और समान वर्ग के नहीं हैं, वे सभी

दास हैं। उनके साथ उसी तरह का बर्ताव होना चाहिये। भला ये लोग जनता के साथ आत्मीयता कैसे स्थापित कर सकते हैं ! जान पड़ता है, इस सारे सड़े ढाँचे को उखाड़ फेंकने के सिवा और कोई रास्ता नहीं।

वैसे भैयाजी अक्तूबर के अन्त तक रहा करते थे, लेकिन अब के साल भाभीजी की मानसिक दशा के कारण रहने की इच्छा नहीं हुई, और वह 23 सितम्बर को ही यहाँ से अमृतसर चले गये। उस दिन हम भी विदाई देने के लिए गये थे। शंकराचार्य का जलूस निकल रहा था। जोशीमठ के शंकराचार्य अब की वर्षावास में यहीं रहे। शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ ज्ञान ही का नहीं, अज्ञान का भी विस्तार होता है; प्रकाश का नहीं, मूढ़ता का भी प्रसार होता है। शिक्षा का स्तर ऊँचा होने के साथ यह आवश्यक हो जाता है। मुझे मालूम है, जब मैं पहिली बार घुमक्कड़ी के लिए निकलकर मुरादाबाद पहुँचा था, तो वहाँ पाठकजी के सुपुत्र ने मेरे साथी देहाती अनपढ़ साधु को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखा था, और उसे डरा-धमकाकर भगा दिया था। किन्तु वही किसी आधुनिक शिक्षित साधु के सामने साष्टांग पड़ने के लिए तैयार थे। शंकराचार्य अंग्रेजी के विद्वान् नहीं थे, लेकिन संस्कृत के अच्छे पण्डित थे, और बोलने-चालने का ढंग भी उन्हें मालूम था। उनके पास दिल्ली से अपनी कार पर लोग सत्संग के लिए आते थे। आई. सी. एस. पुरुष के बारे में तो नहीं, लेकिन आई. सी. एस. स्त्री के आने के बारे में जानता हूँ। ऐसे ब्रह्मलीन पुरुष विलासपुरी में क्यों आते हैं, उनके लिए तो तपोभूमियाँ और तपःपूत पुरियाँ उपयुक्त होतीं। पर भक्त ही भगवान् को नहीं ढूँढ़ते, बल्कि भगवान् भी भक्तों को ढूँढ़ा करते हैं। वे पहिले हेपी वेली के ही एक बड़े बँगले में रहते थे। किरायेदार आ जाने पर मालिक ने उन्हें बाहर के घर में रख दिया। यह अपमानजनक बात थी, लेकिन पैसे का सवाल था। फिर वह कुल्हड़ी में एक राजा साहब के बँगले में चले गए। उनके साथ 12-14 आदमियों को मण्डली रहती थी। व्याख्यान के लिए लौड-स्पीकर लगाया जाता था। कुछ चढ़ावा चढ़ाने पर इन्कार होने से लोग समझते थे कि वह किसी से कुछ नहीं लेते, लेकिन इसका मतलब यही था कि वह दस-बीस रुपयों को लेना आवश्यक नहीं समझते थे। यहाँ से जाने के बाद सहारनपुर में 70-80 हजार की उनके यहाँ चोरी हो गई। दाई से पेट थोड़े ही छिपता है। 24 घंटे साथ रहनेवाले भक्तों ने सोचा होगा, इतना रुपया उनके पास रहने की जरूरत नहीं, इसलिए वह हल्का करके चले गए। पुलिस ने किसी को पकड़ा या नहीं, यह नहीं मालूम। हाँ, यह पता लगा कि दिल्ली में जाने पर किसी भक्त ने मैसूर से चन्दन का सिंहासन बनवाकर उन्हें अर्पित किया था। जगद्गुरु का चौमासा खतम हो रहा था, और उसी विदाई के लिए यह जलूस निकाला गया था। जगह-जगह तोरण-बंदनवार लगे। लोगों ने आरती उतारी।

सीजन-भर हमारे यहाँ बच्चू काम करता रहा। पहिली जगह जिन लोगों के यहाँ काम किया, उनकी सिफारिशी चिट्ठियाँ उसके पास थीं, और हमारे 'किलेडर'वाले पड़ोसी ने भी उसकी तारीफ करते हुए यह बतलाया था कि वह हमारे नौकर का सम्बन्धी है। यदि रसोइया हरिजन हो, तो एक विशेष मानसिक आनन्द मिलता है। मैंने उसे रख लिया। खाना अच्छा बनाता था, मुस्तैद भी था। कमला ने भण्डार भी उसी को सुपुर्द कर दिया था। 24 सितम्बर को मालूम हुआ, वह भाग गया। देखा जाने लगा, तो मालूम हुआ कि टिन के दूध और खाने की दूसरी चीजें सब गायब हैं। कुछ बरतन भी लापता हैं। दो अच्छी-अच्छी कटोरियाँ एक बार गायब हो गई थीं, तो उसने लण्ढौर से आये एक तिब्बती मित्र की लड़की पर लांछन लगाया था। क्या-क्या चीजें उसने गायब कीं, इसका पता उसी दिन नहीं मालूम हो सका। पास-पड़ोस में पूछने पर मालूम हुआ कि वह यहाँ से आटा-चावल-आलू बराबर ले जाकर बेचा करता था। रजाई-दरी हमारे यहाँ से गायब थीं। चौकीदार कल्याणसिंह से मालूम हुआ कि उनसे कुछ रुपया उधार ले गया और रतिलाला ने भी रुपये उधार देने की बात की। भिक्खू लाला से मालूम हुआ कि वह रात को 10 बजे यहाँ आया था। अन्त में यह भी पता लगा कि वह 'होलीवुड' के चौकीदारी की बीवी को भी भगा ले गया। चौकीदार ने बहुत दौड़-धूप की, लेकिन बच्चू कहाँ से हाथ आता ?

डा. किरणकुमारी गुप्ता के पति श्री बाबूलाल गुप्त एम. ए. ही रह गये थे। सचमुच ही पति के लिए विद्या में अपनी पत्नी से एक सीढ़ी नीचे रहना अपमान की बात थी, और गुप्तजी पत्नी से बुद्धि में कमजोर

नहीं थे। उन्होंने अपने पी-एच. डी. का विषय 'लंका में भारतीय' लिया। वह हल्के दिल से अपने निबन्ध में नहीं जुटे, जैसा कि आजकल अक्सर देखा जाता है। अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए वह लंका भी गये। मैंने उनको कुछ परामर्श दिया था। अब उन्हें अपनी थीसिस पेश करनी थी, उससे पहिले मुझे भी दिखलाकर सुधार करना चाहते थे। मैं भी एक परीक्षक था। 30 सितम्बर को वह आये, और उनके निबन्ध को देखकर कुछ सुझाव दिये।

अब की छोटे सीजन के मिलनेवालों में डा. हेमचन्द्र जोशी और छपरा के वकील बाबू शिवप्रतापजी थे। बाबू शिवप्रसाद असहयोग के जमाने में तरुण थे, और उन्होंने आन्दोलन में कार्य किया था। देशभक्त मज़रुल हक़ के गाँव के पास रहनेवाले होने से वह उनके घनिष्ठ सम्बन्ध में आये थे, और हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक सम्बन्ध में बहुत उदार दृष्टि रखते थे। उर्दू पढ़ना बिहार में बहुत कम देखा जाता है, और शिवप्रताप बाबू को उसका भी परिचय था। उनसे बिहार के बारे में बातें मालूम हुईं। वह तरुण चेहरा मुझे याद आता था, जो बुढ़ापे में परिवर्तित हो गया था।

'किल्डेर' बेचने के लिए पूसंग बहिनें बहुत चिन्तित थीं। जाड़ा सिर पर आ रहा था। जाड़े से बड़ी बहन के लिए बड़ा डर था। श्रीमती मोहिनी जुत्शी 5 अक्तूबर को आईं, तो उनसे भी मैंने बात की। मैं 'किल्डेर' का आनरेरी एजेन्ट बन गया था। उसमें स्वार्थ यही था कि कोई अच्छा पड़ोसी आकर बस जाये। 25 हजार में वह मिल सकता था। जुत्शी दम्पती ने उसे देखा, उन्हें भी पसन्द आया। मैंने कहा, ऊपर-नीचे चार परिवारों के लिए अलग-अलग सूट हैं, अगर साढ़े छः हजार रुपया लगाने के लिए चार व्यक्ति तैयार हो जायें, तो इसे मुफ्त ही समझिए। लेकिन साझे में रहना अभी हमारे यहाँ पसन्द नहीं किया जाता। साझे में रहने के लिए एक-दूसरे के साथ जिस सहिष्णुता का बर्ताव करना चाहिए, उसे हमने सीखा नहीं। 9 अक्तूबर को श्रीमती भटनागर ने बातचीत करके 24 हजार पर 'किल्डेर' को लेना तै कर लिया। हमने समझा, श्रीमती भटनागर और प्रिंसिपल कालिकाप्रसाद अब हमारे पड़ोसी बन जाएँगे, लेकिन निश्चित करके भी बात पूरी नहीं हो सकी। उस सीजन में प्रायः पूरे समय जुत्शी परिवार यहीं रहा, और रविवार को उनके दर्शन जरूर हुआ करते थे। मोहिनीजी शायरा ही नहीं हैं, बल्कि कहानियाँ भी उन्होंने लिखी हैं। उन्होंने अपनी कई कहानियाँ सुनाईं। विचार आधुनिक और बड़े उदार थे। कहानियाँ सभी स्त्रियों की समस्याओं को लेकर थीं, और उनकी हमेशा कोशिश रही कि अपनी हीरोइन के ऊपर पाठक की कृपा को आकृष्ट न किया जाए, बल्कि आत्मगौरव और आत्मावलम्बन के लिए किये गए प्रयत्न की पाठक दाद दें। जुत्शीजी इन्जीनियर हैं। कह रहे थे कि मुझे थोड़ी-सी जमीन मिल जाये तो मैं पाँच-छः हजार में उसी पर एक छोटा-सा साफ-सुथरा बँगला खड़ा कर दूँगा। देवदार की लकड़ियों की अधिकता के साथ बने बँगले का मैं बड़ा प्रशंसक हूँ। कलाकार रोयरिक के नगर-आश्रम में एक ऐसे ही बँगले में रहा था, जहाँ देवदार की भीनी-भीनी सुगन्ध उसके दरो-दीवार से आकर चित्त को प्रसन्न रखती थी।

15 अक्तूबर को प्रभा बहिन आ गईं। सरदार पृथिवीसिंह का हाल-चाल बतलाया। अन्धेरी (बम्बई) में एक बालिका विद्यालय में वे अध्यापिका थीं। वहाँ से बहुत-सी लड़कियों को सैर कराने के लिए लाई थीं। उनसे मालूम हुआ, कि सरदार चीन गये हुए हैं। उन्हें उसी दिन मसूरी देखकर लौट जाना था। मैं भी उनके साथ लण्ढौर के आखिरी मकान मलिंगार तक गया, फिर वल्लभ होटल तक पहुँचाकर लौट आया।

17 अक्तूबर को माचवेजी, मधु, शरद, बाबा और टूना के साथ आए। बाबा (असंग) कभी अपने नाम को अचिंगा कहता था, अब वह शुद्ध बोलने लगा था। मराठी और हिन्दी दोनों पर अधिकार था। अचिंगा कहने को वह आत्मगौरव पर प्रहार मानता था। उसका स्थान लेने के लिए बहिन टूना तैयार थी। मधु—माचवेजी के भतीजे—इलाहाबाद युनिवर्सिटी में साइन्स के अच्छे विद्यार्थी थे, अब वे दिल्ली की अनुसन्धानशाला में काम कर रहे थे। वे कुछ ही दिनों के लिए मसूरी आये थे। हमारे घर में बच्चों से चहल-पहल होने लगी।

प्रकाशन खोलने का आरम्भ हमने 'राजस्थानी रनिवास' से करने का निश्चय किया। श्री विश्वरंजन अपने प्रकाशन के काम से लखनऊ जा रहे थे, उन्हें आठ सौ रुपये का ड्राफ्ट नेशनल हेरल्ड प्रेस के लिए दे दिया। दो हजार से अधिक इस पुस्तक पर लगे। उसक बाद 'वोल्गा से गंगा' के अंग्रेजी अनुवाद को भी हमने छपवाया,

अन्त में तीसरी पुस्तक, 'बहुरंगी मधुपुरी' प्रकाशित हुई। प्रकाशन में मैं सफल नहीं हो सकता था, क्योंकि उसके लिए पूरा समय नहीं दे सकता था। प्रकाशन करने से भी बढ़कर विक्रय का प्रबन्ध करना था। जब तक एक दर्जन पुस्तकें न हों, तब तक अपना सफरी एजेंट रखना मुश्किल है। सफरी एजेंट हमने रखा, उन्हें कुछ अग्रिम दिया, और अफसोस यह कि डा. सत्यकेतु से भी अपने विश्वास पर अग्रिम दिलवाया। वह खा-पीकर बैठ गए।

19 अक्तूबर के रविवार को मोहिनीजी के साथ उनकी सहपाठिनी सत्या गुप्ता आईं। उन्होंने तीन-चार साल पहिले एम. ए. किया था, स्वास्थ्य खराब था। कहने लगीं, मुझे कोई काम बतलाइये। वह सहारनपुर के तीतरो गाँव की थीं। परिवार दादा के समय से आर्यसमाजी था, जो लोककला के लिए हानिकारक बात थी। तो भी मैंने कहा, आप कौरवी लोक-गीतों और लोक-कथाओं को जमा करें। यदि हजार जमा करके ला सकें, तो मैं कुछ और बतलाऊँगा। मैंने इस तरह का परामर्श कितनों को दिया होगा, इसलिए मुझे कैसे विश्वास हो सकता था, सत्याजी उस बात को सीरियसली लेंगी।

20 अक्तूबर को पेकिंग से डा. जगदीशचन्द्र जैन का पत्र आया। वे वहाँ युनिवर्सिटी में हिन्दी पढ़ाने गए थे। अभी चीन का सारा ध्यान आर्थिक समस्याओं को हल करने में लगा था। इस समय सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक अनुसन्धान-सम्बन्धी कामों में पूरा ध्यान देने के लिए उसके पास फुर्सत कहाँ थी। उन्होंने लिया था, यहाँ अभी अनुसन्धान का वातावरण नहीं है। वह इस विचार से गए थे, कि यदि अनुकूल हो, तो अपने सारे परिवार को वहाँ बुला लेंगे, साथ में अपनी बड़ी लड़की को ही ले गए थे।

17 नवम्बर तक अब सर्दी बढ़ गई थी। ऋतु-परिवर्तन का असर पड़ा, और नाक जुकाम के साथ पकी-सी मालूम होती थी। जरा भी घाव या फोड़े का सन्देह हो, तो तुरन्त उसकी तरफ ध्यान देना चाहिए, यह मैं सीख गया था। पेनिसिलिन ली, नाक छूने में भी दर्द होता था, और ठुड्डी में भी एक जगह घाव था। पेनिसिलिन और इन्सुलिन लेते चारपाई पर पड़े रहना आवश्यक था। 20 तारीख से ही कुछ आराम मालूम होने लगा।

मसूरी में श्री भटनागर नायब-तहसीलदार थे। बड़े भले आदमी थे। नायब-तहसीलदार भर्ती हुए और अब एकाध साल में नायब-तहसीलदार के पद से ही पेन्शन लेनेवाले थे। उनकी लड़की शकुन्तला एक स्कूल में पढ़ाती थीं। भटनागरजी बाद के लिए कोई काम ढूँढ़ रहे थे। बुढ़ापे के साथ जीवन की निश्चिन्तता हमारे देश में, बल्कि किसी भी पूँजीवादी देश में असम्भव है। पेन्शन के बाद वह कभी किसी एजेंट के यहाँ नौकरी करते रहे, और कभी किसी के प्राइवेट सेक्रेटरी बने। चिन्ता के भारी भार को एकाध ही साल बाद मृत्यु ने उतार दिया, उनकी पत्नी और पुत्री निरालम्ब हो गईं।

एक धनाढ्य तरुण विधवा के बारे में मालूम हुआ कि वह अपने सजातीय एक डाक्टर से ब्याह करना चाहती हैं, जिसके बच्चे और दूसरी पत्नी मौजूद हैं। इतना बड़ा कदम तीन-चार महीने के परिचय से ही उन्होंने उठाने का निश्चय किया था। मुझे इसके लिए बहुत खेद हुआ। लाखों की सम्पत्ति की आज वह मालकिन हैं। नवीन सम्बन्ध स्थापित होते ही उनके दायादों को मौका मिल जाएगा, जो उन्हें फूटी आँखों देखना नहीं चाहते। उनकी घनिष्ठ परिचिता ने भी इसे अनुभव किया, और मैंने भी जोर देकर उनसे कहा कि उन्हें समझावें, कम-से-कम छः महीने के लिए रुक जाएँ। एक और उदाहरण हम लोगों के सामने था, जबकि एक डाक्टर महिला ने दूसरे ऐसे ही डाक्टर से ब्याह किया। आज जिन्दगी-भर उसे पछताना पड़ रहा है। आज के समाज में तो स्त्रियाँ हाथ-पैर बाँधकर पुरुषों के सामने पटक दी गई हैं। बड़ी खुशी हुई, जब मालूम हुआ कि उक्त तरुणी ने अपने ख्याल को बदल दिया। अब अपने समाज की सेवा में लगी हुई हैं।

चार्लविल होटल हमारे बँगले से डेढ़-दो फर्लांग पर ही है। सवाय और चार्लविल दोनों यहाँ के बहुत बड़े होटल हैं, जिनमें सौ-सौ कमरे हैं। चार्लविल को यह भी अभिमान है, कि पंचम जार्ज के दिल्ली में गद्दी पर बैठने के समय उनकी रानी यहाँ कुछ दिनों रही थीं। अंग्रेजों के शासनकाल में उस कमरे को खाली रखा जाता था, और वहाँ राजा-रानी की तस्वीर विराजती थी। ऐसे होटल में डाकखाने का रहना जरूरी था। पहिले चार्लविल का डाकखाना बारहों महीने रहता, लेकिन अब कितने ही वर्षों से उसे 1 अप्रेल को खोलकर 30 अक्तूबर को बन्द कर दिया जाता था। मैंने डाकखाने के अधिकारियों से लिखा-पढ़ी की, तो ऊपर से जवाब आया, घाटे

को यदि आम पूरा करने के लिए तैयार हों, तो हम खोल सकते हैं। इसका अर्थ यही था, कि हम खोलना नहीं चाहते। पुस्तकों के प्रूफ बराबर आते थे। 'प्रमाणवार्तिकभाष्य' के कई फार्मों का प्रूफ आया, जिसे मैंने अपने रसोइया खुशहाल के हाथों डालने के लिए भेज दिया। वह चार्लविल के डाकखाने के लेटर-बक्स में डाल आया। प्रेसवाले कितने ही दिनों तक इन्तिजार करते रहे, फिर लिखा। खुशहाल से पूछने पर मालूम हुआ, कि वह यहाँ के लेटर-बक्स में डाल आया, जो 1 अप्रेल 1953 को ही खुलेगा। बड़े पोस्टमास्टर के पास कहा, उन्होंने आदमी भेजकर उसे निकलवाया।

3 दिसम्बर को मालूम हुआ, कि पं. रामदिहिन मिश्र अब नहीं रहे, 1 दिसम्बर को उनका देहान्त हो गया। 68 वर्ष के आयु की मृत्यु अकाल मृत्यु नहीं होती, किन्तु वह अब भी कार्यविरत नहीं हुए थे। संस्कृत के विद्वान् और हाईस्कूल के अध्यापक से यह आशा नहीं की जा सकती थी, कि वह व्यवसाय की बड़ी कल्पना करेंगे। उन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध के समय ही पुस्तक लिखने और फिर प्रकाशन का काम हाथ में ले लिया। आज वह पटना के सबसे बड़े प्रकाशक हो गए। उन्होंने अपने संस्कृत-साहित्य के गम्भीर ज्ञान का लाभ हिन्दी वालों को देने के लिए कई पुस्तकें लिखीं, जो हमेशा याद रहेंगी। मेरी भी दो पुस्तकों के एक संस्करण को उन्होंने प्रकाशित किया था। उनसे और उनके सुपुत्र देवकुमार मिश्र से सदा मेरी आत्मीयता रही। एक-एक करके पके आमों को टपकना ही होता है, किन्तु छूछी डालियाँ कुछ समय तक जरूर खटकती हैं।

8 दिसम्बर की फीजी के ज्ञानीदास की चिट्ठी आई। वह 1 दिसम्बर को डाली हुई थी। उपनिवेशों में बसे भारतीयों के घनिष्ठ सम्पर्क में आने की मेरी हमेशा आकांक्षा रही, जिसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकी, और अब तो शायद उसकी तमादी भी लग गई है। तो भी जब कभी कोई ऐसा अवसर मिलता है, तो मैं सम्पर्क स्थापित करने से बाज नहीं आता। उनके पास मैंने कुछ अपनी किताबें भेजीं, और उन्होंने भी वहाँ के कुछ प्रकाशन भेजे। उनसे मालूम होता था, कि फीजी में हमारे लोगों ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। वहाँ आधे के करीब संख्या उनकी है। कुली बनकर गए हमारे भोजपुरी और अवधी क्षेत्र के भाई अपनी तीसरी पीढ़ी में सभ्य और सुसंस्कृत बने दीख रहे हैं। उनके साथ अधिक जीवित सम्बन्ध स्थापित करने की जरूरत है। वैसे भारत के स्वतन्त्र होने के बाद हमारी सरकार के प्रतिनिधि इस दिशा में कुछ काम कर रहे हैं। अंग्रेज उपनिवेशकों ने अपने आरम्भिक जीवन पर बहुत सुन्दर उपन्यास और कहानियाँ लिखीं, हमारे लोग भी वैसा क्यों नहीं करते ? डा. बाबूलाल गुप्ता ने लंका में भारतीयों के बारे में अपना महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। मैंने उन्हें सुझाव दिया था, कि आप डी. लिट्. के लिए 'उपनिवेशों में भारतीय' लें, और इस पर एक बड़ा ग्रन्थ लिखें। वैसे हमारे लोगों का ध्यान इस तरफ जाएगा जरूर, लेकिन उसे जल्दी जाना चाहिए, ताकि बहुत-सी अभी भी उपलब्ध सामग्री नष्ट न हो जाए।

12 दिसम्बर को सीवान के बाबू बैजनाथप्रसाद किसी विवाह के सम्बन्ध में देहरादून आकर हमारे पास भी आए। 70 वर्ष के हो गए थे, लेकिन मुझे तो वह वैसे ही मालूम होते थे, जैसा बीस वर्ष पहिले देखा था। आर्यसमाज के बिहार में वह अग्रदूत थे, और सीवान (छपरा) में उन्होंने डी. ए. वी. हाईस्कूल खोलकर उसे डिग्री कालेज तक पहुँचा दिया। उनका जीवन तपोमय है। सभी उनका सम्मान करते हैं। पंजाब से प्रौढ़ आर्यसमाजियों को दाढ़ी रखने की बीमारी लगी, वह बिहार में बैजनाथ बाबू तक पहुँच गई। दाढ़ी पूरी सफेद है। दुबले वह हमेशा ही रहे, लेकिन स्वास्थ्य की शिकायत कभी नहीं हुई। देर तक छपरा और सीवान के बारे में बात होती रही। मालूम हुआ, दो साल से छपरा जिले में यह दूसरा डिग्री कालेज चल रहा है। तीन सौ से ऊपर लड़के हैं, अभी भी दो हजार रुपया मासिक का घाटा लग रहा है। बतला रहे थे कि आर्थिक कठिनाइयाँ भयंकर रूप से लोगों को पीड़ित कर रही हैं, खून और डकैती आम हो गई है, जिसके कारण सम्पन्न लोग गाँवों को छोड़कर शहरों में आ रहे हैं।

लोक-भाषाओं और लोक-साहित्य की ओर विशेष रुचि के कारण कहीं भी इस विषय में यदि कोई काम होता हो, तो मैं उससे प्रसन्न ही नहीं होता बल्कि भरसक प्रोत्साहन और सहायता देना भी चाहता हूँ। हिन्दी-क्षेत्र की सभी लोक-भाषाओं के प्रेमी इसे जानते हैं, और वह बराबर अपनी कृतियों और कठिनाइयों को मेरे पास

भेजते हैं। श्री रामनारायण, उपाध्याय ने नीमाड़ी लोक-गीतों का एक संग्रह 17 दिसम्बर को मेरे पास भेजा। अभी अच्छे प्रकाशक ऐसी कृतियों को छापने के लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए अच्छी छपाई न होने की शिकायत नहीं करनी चाहिए। उपाध्यायजी के संगृहीत गीत बहुत सुन्दर थे। मैं उन्हें पढ़ गया। देखा मारू (पति, प्रियतम) बन्ना-बन्नी (दुल्हा-दुल्हन) आदि कितने ही उसके शब्द कौरवी-हरियानी और मारवाड़ी से मिलते हैं। जिस तरह पंचाली या मध्यदेशीय भाषा नैनीताल की तराई से लेकर मध्यदेश में मराठी और छत्तीसगढ़ी की सीमा तक फैल गई, वैसे ही उसकी पश्चिमी पड़ौसी कौरवी स्थानीय परिवर्तनों के साथ राजस्थानी-मालवी होते नीमाड़ी तक चली गई। वस्तुतः नीमाड़ी और मालवी एक ही भाषा है। इसका सबूत इस संग्रह के निम्न वाक्यों से मालूम होता है :

"बनी म्हारो देस मालवो, मुलुक नेमाड गावड़ा को छे रिनवास।" कौरवी है, हरियानी में से मारवाड़ी-मालवी-निमाड़ी में छे हो गया है।

18 दिसम्बर को नागरी प्रचारिणी सभा के मन्त्री ने सूचित किया कि सभा ने मुझे 'वाचस्पत्यसदस्य' निर्वाचित किया। लिखा : "शिरोधार्य है।"

कमला ने इस साल साहित्यरत्न की परीक्षा का फार्म भरा था। परीक्षा देने के लिए 25 दिसम्बर को वह देहरादून गई और वहाँ से 31 दिसम्बर को लौटी। वह हमेशा ही परीक्षा देने के बाद निराशा प्रकट करती थीं, पर लिखने और समझने की शक्ति उनमें है। परीक्षक अपने दूसरे हजारों परीक्षार्थियों के स्तर को देखकर पास-फेल करता है, इसलिए मुझे पास होने में सन्देह नहीं था।

26 दिसम्बर को छाती में हल्का-हल्का दर्द जब-तब मालूम होने लगा। सर्दी के कारण होगा। सोचने लगा, यदि लोमड़ी की छाल का गर्म जाकेट इस्तेमाल करें, तो शायद दर्द कम हो। दो-तीन-दिन तक दर्द रहा, इसके बाद बन्द हो गया। आदमी को सिर पर रहते समय ही रोग याद आता है।

राजस्थान में राजपूत जंगली सुअर के मांस को बहुत पसन्द करते हैं। हमारे पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार में तो इसे वैसे ही अभक्ष्य समझते हैं, जैसे गाँव के सूअर को। राजस्थान में राजा और ठाकुर जंगली सूअरों का शिकार दूसरे को करने नहीं देते थे। इसलिए उनके लिए वह बहुत सुलभ थे। ठाकुरानी गुलाबकुमारी ने 29 दिसम्बर को आठ-दस सेर सूअर के साटे भेजे। उनके कहने से मालूम होता था कि वह कनस्तर का कनस्तर भेजा जा सकता है, लेकिन उन्होंने यह ख्याल नहीं किया था कि रियासतों और जागीरों के उठने के बाद लोग जंगली सूअरों के शिकार से बाज नहीं आएँगे। खेतों के चर जाने पर भी पहिले डण्डे के भय से हाथ नहीं उठाते थे। सचमुच ही एक-दो साल बाद सूअरों का उच्छेद-सा हो गया और 'शूकर मार्दव' मिलना मुश्किल हो गया।

साल का अन्तिम दिन 31 दिसम्बर था। कमला देहरादून से भीगती हुई आई। आज साल का लेखा-जोखा किया। 'यात्रा के पन्ने' और 'रूस में पच्चीस मास' छपकर निकल गये। 'राजस्थानी रनिवास' छप चुकी है, प्रेस से बाहर आने की देर है। इस साल के ग्रंथ लिखे हैं–(1) मध्य-एसिया का इतिहास-2, (2) गढ़वाल, (3) नेपाल। डेढ़ हजार पृष्ठ लिखना असंतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

'नेपाल' में प्राप्य सामग्री को इस्तेमाल कर चुका था, और चाहता था, नेपाल जाने से पहिले उसे पुस्तकाकार बना लें। इसमें भी सफलता हुई थी।

इस साल आर्थिक कठिनाइयों के सामना करने की सम्भावना थी, लेकिन सब मिलाकर नौ हजार से कुछ ऊपर आमदनी हुई। जमा करना तो मैंने सीखा नहीं है। प्रकाशन हाथ में लेने से खर्च बढ़ गया।

दाम्पत्य जीवन के बारे में आचार्य गोवर्धन (1100 ई.) ने कितना सुन्दर लिखा है–

"निष्कारणापराधं निष्कारणकलहरोषपरितोषम्।
सामान्यमरणजीवनसुखदुःखम् जयति दाम्पत्यम्।"

[जिसमें अकारण अपराध, अकारण कलह-रोष-परितोष हैं। एक साथ मरण, जीवन, सुख-दुःखवाला दाम्पत्य (जीवन) जिंदाबाद।]

कमला और मेरे स्वभाव में अन्तर है, बल्कि विरोध भी है। जहाँ बुद्धि के पीछे आँख मूँदकर जाने के लिए तैयार हैं, वहाँ कमला उसको धता बताती हैं। इस पर मुझे आश्चर्य होता है। उन्हें मुझ पर आश्चर्य होता है कि मैं क्यों नहीं समझ पाता। लेकिन, आचार्य के कहने के अनुसार रोष के परितोष में बदलने में देर नहीं होती।

आचार्य ने एक और भी बात बतलाई है, जो उनके समय में उचित मानी जाती थी, जबकि स्त्री को समानता का कोई विशेष न बोध था, न समाज में उसका स्थान था–

"गृहिणीगुणेषु गणिता विनयः सेवा विधेयतेति गुणाः।
मानः प्रभुता वाम्यं विभूषणं वामनयनानाम्।"

[गृहिणी के गुणों में नम्रता, सेवा और आज्ञाकारिता–ये गुण गिने गए हैं। सुनयनाओं के मान, प्रभुता और सौंदर्य को भूषण कहा गया है।]

# 7
# नेपाल में

1953 का पहिला दिन आया। सबेरे देखा आकाश घने बादलों से ढका हुआ है। दोपहर तक वर्षा होती रही और तापमान नीचे गिरता गया। फिर बजरी पड़ी और अंत में हिम ने गिरकर सारे भूभाग को ढाँक दिया। सर्दी कल से ही बहुत थी, और कमरे को आग जलाकर गरम किया गया था। अगले दिन और भी अधिक बरफ दिखाई पड़ी। पिछले दो सालों में इतनी बरफ नहीं पड़ी थी। दो-तीन इन्च से कम मोटी क्या होगी ? सबेरे बरफ का बड़ा सुन्दर दृश्य था। पत्ते-पत्ते और बाड़ की लौहजालियाँ रुपहली हो गई थीं। जब तक यह दृश्य मसूरी से बाहर से कोई देखने के लिए आए, तब तक गायब हो जाता है। क्योंकि पतली बरफ 7-8 बजे के बाद पत्तों को नहीं मढ़े रह सकती। दूर से वृक्ष देखने में सामान्यतः सटे मालूम होते हैं, लेकिन ऐसे समय बरफ पीछे आकर हरेक वृक्ष को अलग-अलग कर देती है। मसूरी में रहने का हिमदर्शन एक आनंद है।

4 जनवरी को हमने सबेरे मसूरी से देहरादून जा, शुक्लजी के यहाँ भोजन किया। यहाँ सर्दी कम थी। फोटो के लिए कुछ फिल्म खरीदे और एकाध और चीजें। रात को 7 बजे लखनऊ की रेल पकड़ी। डब्बे में अकेले सवारी करनेवाले के खून होने की खबर अखबारों में निकली थी। कमला ने आग्रह किया कि पहिले दर्जे में न चलें। दूसरे दर्जे में रात को सोना मिले या न मिले, यह भी भय था। खैर, हमें सोने के लिए जगह मिल गई। अगले दिन सबेरे पौने 9 बजे गाड़ी लखनऊ स्टेशन पहुँची। उतरकर श्रीमती प्रकाशवतीजी के यहाँ जा, चाय पीकर बुद्ध-विहार गए। अकस्मात स्मृति सान्याल से मुलाकात हो गई। आजकल वह नैनीताल में पढ़ रही थीं, और अभी घर आई थीं। भोजन के बाद नेशनल हेरल्ड प्रेस में 'वोल्गा टु गंगा' की दो हजार प्रतियाँ छापने के लिए कागज का दाम दे दिया। श्री श्यामसुन्दर श्रीवास्तव ने प्रेस दिखलाया। छपाई की इतनी अपटू-डेट मशीनें शायद ही किसी प्रेस में होगी। आश्चर्य होता था, फिर यह प्रेस क्यों लस्टम-पस्टम चल रहा है।

**पटना**–रात को ही हमने गाड़ी पकड़ी और 6 जनवरी के 7 बजे पटना पहुँच गए। वीरेन्द्रजी, अद्भुतजी स्टेशन ही पर मिल गए। ठहरने का प्रबन्ध वीरेन्द्रजी के यहाँ हुआ था। पत्रों में निकल जाने के कारण कितने ही इष्ट-मित्र आए, लेकिन व्याख्यान देने का नेपाल से लौटने के बाद ही निश्चय किया था। नेपाल विमान से जाना था, जो रोज-रोज नहीं जाता था, हमें वह गुरुवार को ही मिलनेवाला था।

7 तारीख का भोजन अद्भुत शिवचन्दजी के यहाँ हुआ। शिवचन्दजी को बचपन ही से मैं जानता हूँ। उनके पिता आचार्य कपिलदेव शर्मा का असहयोग के समय से ही मेरा घनिष्ट परिचय रहा है। उनके घर में स्त्रियाँ तक ही नहीं, बल्कि काम करनेवाली नौकरानी भी संस्कृत बोलतीं। घर में संस्कृत बोलने का प्रण था। एक तरफ वह 'लौट चलो गुहा मानव की ओर' मनोवृत्ति का परिचय देते, दूसरी ओर ब्राह्मण-ब्राह्मणी अपने

हाथ से अपने घर के पाखाने को साफ करते। शिवचन्दजी ने सरजूपारियों से बाहर बंगाली लड़की से ब्याह किया, लेकिन इसको कपिलदेवजी ने बुरा नहीं माना। शिवचन्दजी घासखोर हैं, यद्यपि उनके यहाँ सैकड़ों पीढ़ियों से मांस खाया जाता रहा। लेकिन पत्नी मांसखोर कुल में पैदा हुई। उस दिन मछली के कई प्रकार के व्यंजन तैयार किये गये थे। नलिनजी और दूसरे साहित्यिक भी शामिल हो गए थे। वह छोटा-मोटा भोज बन गया था।

भोजन के बाद म्युजियम गया। क्यूरेटर शेर साहब मिला। अपने लाए संग्रह को देखा और नई चीजें जो इधर संगृहीत हुईं, उन्हें भी। फिर नीचे जायसवाल प्रतिष्ठान में डा. अल्तेकर के पास गया। डा. अल्तेकर विद्वान् भी और बड़े चुस्त भी हैं। सचमुच ही जो आदमी केवल वेतन के लिए काम करता है, उसमें चुस्ती कहाँ से आ सकती है ? डा. अल्तेकर बराबर अनुसन्धान में लगे रहते हैं। भारतीय सिक्कों के बारे में उनसे बड़ा मर्मज्ञ आज कोई नहीं है। तिब्बत से तालपत्रों के फोटो 16-17 वर्षों से यहाँ आकर पड़े हुए थे, अब वह उनके प्रकाशित कराने के प्रयत्न में हैं। मेरे द्वारा सम्पादित 'प्रमाणवार्तिकभाष्य' का तो बहुत-सा भाग छप भी चुका है। चाय पीने के लिए वह अपने घर पर ले गए। अल्तेकर साहब को इस बात का अफसोस था, कि बिहार में संस्कृत की ओर युनिवर्सिटी के विद्यार्थी ध्यान नहीं दे रहे हैं। बिहार के पण्डितों की महिमा सारे भारत में मशहूर है—प्राचीन काल में ही नहीं, अर्वाचीन काल में भी। पिछले पचास वर्षों में यहाँ के हर जिले में सैकड़ों संस्कृत के विद्यालय खोले गए। मिथिला में तो शायद ही कोई ब्राह्मण-ग्राम होगा, जिसमें संस्कृत पाठशाला न हो। अब हिन्दी द्वारा उच्च शिक्षा का द्वार खुल जाने और कितने ही सुभीतों के कारण एक-एक जिले में दो-दो, तीन-तीन डिग्री कालेजों के होने से कालेजों की पढ़ाई की ओर उन विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों का ध्यान गया है, जो संस्कृत विद्यालयों तक ही अपनी शिक्षा को सीमित रखते थे। इसके कारण संस्कृत के परीक्षार्थियों की कमी हुई है। सचमुच ही यह बड़ी समस्या हमारे सामने है, कि पुरानी परिपाटी के संस्कृत के गम्भीर विद्वानों की परम्परा को कैसे उच्छिन्न होने से बचाया जाए।

8 जनवरी को चाय पीकर हवाई अड्डे पर पहुँचे। काठमाण्डू से खबर आई, कि अभी वहाँ के अड्डे पर कुहरा है। जब तक वहाँ से कुहरा हट न जाए, तब तक विमान कैसे उड़ता ? कुछ देर इंतिजार करना पड़ा। फिर विमान उड़ा। गंगा को पार करते सभय ही हिमालय के शिखर दिखाई देने लगे। फिर छपरा के भीतर से होते गंडक पार हम चम्पारन के ऊपर पहुँचे। चौरस भूमि को पार करके नीचे तराई के जंगल और फिर चुरिया (सिवालिक पर्वत श्रेणी) आ गई। जंगल पिछले सौ सालों में बहुत कट गया है, लेकिन अब भी उसके अवशिष्ट भाग को देखने पर कजली वन की कहावत याद आती। विमान नीचे के स्थानों को देखकर ही आगे बढ़ता है। नेपाल उपत्यका का पानी बागमती बहा ले जाती है, थोड़ी देर में विमान उसके ऊपर से उड़ने लगा। मेरी नजर हिमशिखरों पर थी। दाहिनी ओर निरभ्र आकाश में उनकी निर्मल छटा आँखों के सामने थी, बाईं ओर कुछ धुंध थी। उत्तर की ओर पूर्व-पश्चिम तक हिमश्रेणियाँ चली गई थीं, इनके ही परले पार तिब्बत है। दक्षिण जाकर एक हिमश्रेणी दक्षिण की ओर मुड़ जाती है, जिसमें ही धौलागिरि का उच्च शिखर है।

**नेपाल**—गिरि-मेखला को लाँघकर अब विमान उपत्यका के ऊपर उड़ रहा था। यहाँ दृश्य अपना खास आकर्षण रखता था। भादगाउँ, पाटन, काठमाण्डू के नगर, अनेक गाँव और बीच-बीच में बागमती तथा उसकी सहायक नदियों की धाराएँ दीख पड़ रही थीं। अड्डे पर पहुँचने में देर नहीं लगी। पटना से चलकर 55 मिनट बाद हम नेपाल की धरती पर उतर गए। अड्डे पर ही श्री जनकलाल शर्मा, श्री धर्मरत्न यमि, उनके चचा श्री मानदास और दूसरे मित्र मिले। नेपाल में प्रवेश करना पहिले बहुत मुश्किल बात थी। सिर्फ शिवरात्रि के दिन एक हफ्ते के लिए छूट मिलती, नहीं तो राणाशाही ने ऐसी कड़ाई कर रखी थी, कि कोई भारतीय घुस नहीं सकता था। हाँ, अंग्रेजों के लिए कोई उतनी रुकावट नहीं थी, सिर्फ खबर दे देना काफी समझा जाता था। राणाशाही के उठने का एक लाभ तो यही है, कि आप अपने जिले के किसी मजिस्ट्रेट की दस्तखत मुहर के साथ अपना फोटो बनवा लें, और बेखटके साल के किसी समय नेपाल चले जाएँ। हमारे सामान को कस्टम (जकात) वालों ने देखा, और छुट्टी मिल गई। कार पर पहिले जनकलालजी के घर पर गये। वहीं भोजन का

इन्तिजाम था। ठहरने के लिए श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला ने पुतली सड़क पर अवस्थित अपने बँगले को दे दिया था। बँगला साफ़-सुथरा था, किन्तु हम तो यहाँ नेपाल सम्बन्धी सामग्री जमा करने के लिए आए थे, जिसके लिए लोगों से अधिक मिलने-जुलने की आवश्यकता थी। यह बँगला मुख्य शहर से दूर था।

शाम को टहलने के लिए निकले। मानदासजी के यहाँ गये, फिर भाजूरत्न साहु के यहाँ। उसी दिन जगतरत्न साहु से भी मिल आए।

9 जनवरी को शुक्रवार था। आकाश बादलों से ढँका हुआ था। आधी रात से सर्दी बढ़ती और सबेरे अधिक हो जाती थी। मसूरी में इससे उलटा है, शाम को बढ़कर आधी रात के बाद वह कम हो जाती है। मसूरी में हमारा घर साढ़े छः हजार फुट पर था, और यह नगर चार हजार फुट पर है। तो भी बादल-वर्षा के कारण सर्दी मसूरी जितनी मालूम होती थी।

प्रूफ साथ ले आए थे। उस भी लौटाना था। इसके लिए भारतीय दूतावास के डाकखाने में गए, जो ठहरने के स्थान से काफी दूर था। राणाशाही के जमाने में नेपाल-उपत्यका की दुर्लभ समतल भूमि का एक बड़ा भाग राणाओं के महल और बाग-बगीचे के रूप में परिणत हो गया। रनिवास के लिए जेल की तरह ऊँची चहारदीवारी का घिरावा आवश्यक था, इसलिए उनके महलों से नगर के सौंदर्य को बट्टा ही लगा। नारायणहिट्टी महल एक शताब्दी तक श्रीहीन पड़ा था। इस बीच पृथ्वीनारायण की सन्तान केवल गुड़िया राजा बने रहे। अब शक्ति राजा त्रिभुवन के हाथ में थी, इसलिए वहाँ बहुत चहल-पहल दिखलाई देती थी। नेपाल में मोटर छोड़ और कोई सवारी नहीं है। सड़कें भी इतनी खराब हैं, कि घोड़े के ताँगे या साइकल-रिक्शे का चलना मुश्किल है। फिर राणाशाही के समय की परम्परा है, कि सामान्य जन शासक जाति के सामने सवारी पर न निकलें। जनकलालजी हमारे पथ-प्रदर्शक थे। घूमते-घामते माहिला गुरु श्री हेमराज शर्मा के यहाँ पहुँचे। मैं कम्युनिस्ट विचार रखता हूँ, यह उनको मालूम था और मुझे भी मालूम था, कि वह परम निरंकुश सामन्तवाद के समर्थक हैं। तो भी संस्कृत, भारतीय संस्कृति, तत्सम्बन्धी अनुसंधान ऐसी चीजें थीं, जिनके कारण हम में 19 वर्ष से घनिष्टता स्थापित हो गई। सबसे पिछली बार जब मिले थे, तो माहिला गुरु शासन के एक सबल स्तम्भ और प्रभावशाली राजगुरु थे। अब राणा चले गए, इसलिए वह पानी के बाहर मछली जैसे थे। आयु का उनके ऊपर पूरा प्रभाव था। पहिले ही की तरह खुले दिल से बड़े प्रेम से मिले। दो-तीन घंटा साहित्य और अनुसंधान की चर्चा चलती रही।

धर्मरत्नजी आकर अपने घर ले गए, जो शहर के भीतर था। यहाँ हमें मिलने-जुलने में अधिक अनुकूलता थी, इसलिए अगले दिन से हम यहीं चले आए। उनके पैतृक घर को सरकार ने राजनीतिक अपराध के कारण जब्त कर लिया था, जो अभी तक नहीं लौटा था। उन्होंने किसी का अर्धपरित्यक्त-सा तिमंजिला बहुत बड़ा घर खरीद लिया था, जिससे वह सन्तुष्ट नहीं थे और उसी हाते में अपने लिए बँगला बनवा रहे थे। उसी दिन साहु धर्ममान के सहकारी 83 वर्ष के बूढ़े मिले। आँखों से कम सूझता था। सड़क पर चलते वक्त मालूम होता था कि कंकाल चल रहा है। पुराने युग के अवशेष थे। उनसे कितनी ही बातें मालूम हो सकती थीं, लेकिन इस उमर में स्मृति भी तो धोखा देती है। उस दिन नाटककार श्री बालकृष्ण सम और दूसरे कितने ही भद्रजन मिलने आए।

10 जनवरी को मैं और कमला, जनकलालजी और दूसरों के साथ देवपाटन गए। यह उस मुहल्ले का नाम है, जिसमें भारतविख्यात पशुपति का मन्दिर है। यद्यपि बस्ती सटी चली गई है, लेकिन किसी समय यह काठमाण्डू से अलग नगर था। यही प्राचीनकाल में नेपाल की राजधानी रहा। 14वीं सदी के मध्य में बंगाल के मुसलमान शाह ने तिरहुत की राजधानी सिमरौनगढ़ को ध्वस्त करके नेपाल पर चढ़ाई की थी, जिसे छिपाने की बराबर कोशिश की जाती रही, यह हम बतला आए हैं। पशुपति मुखलिंग के रूप में हैं, अर्थात् वह उस काल से पूज्य रहते आए हैं, जबकि पाशुपत धर्म उत्तरी भारत में सर्वत्र फैला हुआ था। मुस्लिम आक्रमण के समय पशुपति मन्दिर को लूटा गया, मूर्ति को खण्डित किया गया। यह खंडित मूर्ति अब भी सड़क पर एक जगह पड़ी हुई थी। पहिले यह पास के कैलास 'ध्वंसावशेष' पर थी, जिसे पशुपति के पुजारी ने उठवाकर यहाँ

सड़क के किनारे रखवा दिया। मुखलिंग, शिश्नलिंग यहाँ काफी हैं। सारा देवपाटन मुहल्ला अपने धरातल और अन्तस्तल में पिछले दो हजार वर्षों की ऐतिहासिक सामग्री छुपाये हुए है। किसी समय इसका भी भाग्य खुलेगा।

आज महाकवि देवकोटा के दर्शन हुए। वह बहुत बातों में निराला से मिलते-जुलते हैं, यद्यपि इतने नहीं कि उन्हें अप्रकृतिस्थ कहा जा सके। निरालाजी आजकल कितने ही दिनों से अब अंग्रेजी में बात करते हैं। देवकोटाजी अपना एक बड़ा नाटक अंग्रेजी पद्य में लिख रहे थे, जिसके कितने ही अंशों को उन्होंने सुनाया। उनका अंग्रेजी पर अधिकार है। पर अपनी भाषा छोड़कर अंग्रेजी में कविता करने से क्या मतलब, जब कि यह निश्चित है, कि अंग्रेज अमेरिकन नहीं हैं, उनकी कृतियों की पूछ इंग्लैण्ड-अमेरिका में होनी मुश्किल है। लेकिन धुन है। हाँ, उन्होंने नेपाली भाषा के उपयोग न करने की कसम नहीं खाई है, और वह उसमें बराबर लिखते रहते हैं। गद्य-पद्य, नाटक, निबन्ध, खण्डकाव्य, महाकाव्य सबमें उनकी लेखनी निरबाध साधिकार चलती है। मस्तमौला हैं। कागजों पर कविता उतार रहे हैं, फिर कोई लड़का खेलने आया, तो कागज को उसे दे दिया या स्वयं ही फाड़कर फेंक दिया। फिर दुबारा लिखते हैं। उनकी कितनी ही कविताएँ नष्ट हो चुकी हैं। मैंने तरुण मित्रों से कहा—इनकी रक्षा की कोशिश आप लोगों को करनी चाहिए।

फिर बालचन्द्र शर्मा से मिलते और कुछ जगहों में गए। भोजन वहीं नेपाल की एक महिला नेता श्रीमती प्रभादेवी के यहाँ हुआ। नेपाली भोजन में मुझे एक विचित्र रस मिलता है। एक बार किसी भोजन के साथ आदमी का जब पक्षपात हो जाता है, तो वह कम होने का नाम नहीं लेता, निरामिष भोजन भी मधुर मालूम होता है। दाल, भात और कितनी ही तरह की सब्जियाँ सभी नेपाली महिला के हाथ में पहुँचकर अमृतरस में डूब जाती हैं। राणाशाही के खिलाफ संघर्ष करनेवालों में नेपाल-उपत्यका की महिलाएँ भी शामिल हुईं, उन्होंने तरह-तरह से अपमान और कष्ट सहे। प्रभादेवी उनमें से एक थीं।

सरकार ने किसानों की अवस्था बेहतर बनाने के लिए भूमि-सुधार कमीशन बनाया। मेरे स्वागत में उसकी तरफ से हिमालय होटल में चाय-पार्टी का प्रबन्ध था। 3 बजे हम वहाँ पहुँचे। नगरी के 25-30 गणमान्य पुरुष मौजूद थे। वह भूमि-सुधार के बारे में मेरे विचारों को जानना चाहते थे, जिसे मैंने बतलाया। वहाँ से उठते-उठते अँधेरा हो गया। हमारा सामान पहिले यमि जी के घर पर चला गया था, इसलिए हम वहाँ चले गए। रात के 10 बजे तक गोष्ठी चलती रही। नेपाल में मेरी पुस्तकें पढ़ी जाती हैं। मैं खतरनाक आदमी था, तब भी छिप कर यहाँ के जो तरुण मेरे पास पहुँचते थे, अब वह प्रौढ़ हो चुके थे।

नेपाल राणाशाही के जुए से मुक्त तो हुआ, लेकिन इस वक्त एक विचित्र परिस्थिति में था। राणाओं और उनके जैसे स्वार्थवालों की रक्षा के लिए गोरखा दल कायम हुआ, जिसके पास अब भी बहुत पैसा और पुराने लग्गू-भग्गू हैं। राणा और धिराज के आपस में ब्याह-सम्बन्ध होते रहे हैं, जिनके कारण धिराज कभी पसन्द नहीं कर सकते, कि राणा कौड़ी के तीन हो जाएँ। बाकी कई दल हैं, जो सभी राजशक्ति केवल अपने हाथ में रखना चाहते हैं। विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला एक समय सबसे शक्तिशाली मन्त्री रहे। धिराज से खटपट हो गई। उन्हें हटाकर उनके बड़े भाई मातृकाप्रसाद कोइराला को आगे बढ़ाया। दोनों भाइयों का वैमनस्य इतना गहरा है, कि वह कभी मिल सकेंगे, इसमें सन्देह है। प्रजा-परिषद्, राष्ट्रीय कांग्रेस आदि कुछ और पार्टियाँ भी इसी तरह अलग-अलग ढपली अलग-अलग राग वाली हैं। कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी घोषित है, किन्तु लोगों का उसकी ओर अधिक झुकाव है। यह तो इसी से मालूम होगा, कि कुछ दिनों बाद उपत्यका की नगरपालिका के चुनाव में उन्हीं को अधिक वोट मिले। नेपाल की उत्तरी सीमा पर तिब्बत में कम्युनिस्ट जो नवराष्ट्र की रचना कर रहे हैं, उसका प्रभाव नेपाल पर पड़ेगा, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। यह भी ठीक है, कि भारतीय सरकार चाहे कम्युनिस्ट चीन के साथ कितना भी सद्भाव रखती हो, नहीं चाहेगी, कि लोग उससे प्रेरणा लें। राजा त्रिभुवन चार पीढ़ी से नजरबन्द बन्दी रहे। उन्होंने आज की दुनिया देखी नहीं, इसलिए भविष्य का पथ उनके लिए साफ नहीं है। बँधे हुए हाथों को खुला देखकर उन्हें चारों तरफ मारना, यही काम है।

**भादगाउँ में**—12 जनवरी को जीप से बनेपा तक हमें जाना था, लेकिन साढ़े 9 बजे तक जब वह नहीं

आईं, तो टुंडीखेल के अड्डे से आने-जाने के 14 रुपये में एक टेक्सी ली। कमला, मेरे सिवा पाँच और मित्र साथ थे। रास्ते में ठेमी गाँव मिला, जो अपने मेहनती किसानों के लिए प्रसिद्ध है। आजकल का कृषि-विज्ञान इन्हें क्या सिखला सकता है ? यह अंगुल-अंगुल जमीन को बेकार नहीं रहने देते। काठमाण्डू साग-सब्जी बेचने जाते हैं। वहाँ कहीं कूड़ा-कर्कट या पाखाना पड़ा देखते हैं, तो उसे उठा ले जाते हैं। नेवार किसान को खेती करते समय पाखाने से बिल्कुल परहेज नहीं। इस बात में वह चीनी और जापानी किसान जैसे हैं।

साढ़े 10 बजे हम भादगाउँ पहुँचे। बाहर के पक्के पोखरे पर मोटर खड़ी कर दी। पोखरे का तल आसपास से ऊँचा है, उसमें काफी पानी है, लेकिन साफ रखने की कोशिश नहीं की गई है। उसके किनारे बीसियों तिब्बती स्त्री-पुरुष डेरा डाले बैठे हुए थे। जाड़े के दिनों में वह चीजों के क्रय-विक्रय के लिए नेपाल आया करते हैं। वह इतना ही जानते थे, कि ल्हासा में मर्पो (लाल) आ गये हैं। दो वर्ष हो गए, अब भी उन्होंने कम्युनिस्टों के किसी काम को अपनी आँखों नहीं देखा।

भादगाउँ उपत्यका तीन महानगरों में सबसे छोटा है, लेकिन पिछले काल में यही प्रधान राजधानी रहा। नान्यदेव की सन्तानें जब मैदानी राज्य और राजधानी सेमरौनगढ़ की मुसलमानों के हाथ में चले जाने पर भागने के लिए मजबूर हुईं, तो वह पहिले यहीं आईं। फिर राजा ने अपने तीन लड़कों में राज्य को बाँट दिया, जिसके कारण कान्तिपुर (काठमांडू), पाटन और भादगाउँ–तीन राजधानियाँ हो गईं। तीनों ही नगरों के निवासी नेवार आपणजीवी हैं। आजकल यातायात की सुविधा के कारण अधिकतर लोग काठमाण्डू से चीजें खरीदना चाहते हैं, इसलिए व्यापार-व्यवसाय में उसी की प्रधानता है। राजधानी के पुराने अवशेषों को देखने हम शहर में गए। पहिले ही से लोगों को पता था। एक जगह भोजन का प्रबन्ध हुआ। भादगाउँ अपने जुजुधौ (राजदही) के लिए मशहूर है। छिछले चौड़े बरतन में दही जमाई जाती है, जो थक्का बन जाती है। कुछ मीठा भी मिला देते हैं। काठमाण्डूवाले भी जुजुधौ बनाने की कोशिश करते हैं, लेकिन उसमें भादगाउँ जैसा स्वाद नहीं होता। नेपाल उपत्यका का प्रधान भोजन भात है। हमारे लिए भात-दही के साथ भैंस का मांस भी था। भैंस का मांस दो-तीन जातियों को छोड़ यहाँ के सभी लोग खाते हैं, और वह बाजार में उसी तरह खुला बिकता है, जैसे बकरे का मांस। शायद अधिक अच्छी तरह से गलाकर बनाया गया होता, तो अच्छा लगता। वह चिमड़ा बहुत था। पर, जुजुधौ के सामने उसकी क्या पूछ होती ? जुजुधौ जितना चाहें उतना खा सकते।

भोजनोपरान्त यहाँ का राजमहल देखने गए। सुवर्णद्वार यहाँ की अद्भुत कृति है। पिछले भूकम्प ने पुराने निशानियों को नहीं मिटाया। अब भी राजप्रासाद, तलेजु मन्दिर आदि यथापूर्व थे। कितनों की दीवारों में चित्र थे।

लोगों के सामने व्याख्यान नहीं दिया, पर खाने के समय गोष्ठी हो गई। सब देखने के बाद 4 बजे हम मोटर के अड्डे पर चले आए। टेक्सी इस बीच में एक से अधिक बार काठमाण्डू हो आई थी। सवा 4 बजे हम उस पर बैठकर 5 बजे अपने दरवाजे पर उतर गए।

श्री बालचन्द्र शर्मा ने नेपाली में नेपाल का सबसे अच्छा इतिहास लिखा है, जिससे मैंने भी काफी लाभ उठाया था। उनसे पूर्वाह्न में भी बातचीत हुई। अगले दिन और शाम को तो 5 बजे से 9 बजे तक उनसे ही सत्संग होता रहा। मैंने अपने लिखे इतिहास के कुछ ही भागों को सुनाया।

धिराज ने कांग्रेसी मंत्रिमंडल को तोड़कर सलाहकारों का शासन स्थापित किया था। जिनमें ले-लेकर एक ही केसरशमशेर को योग्य और कार्यतत्पर कहा जा सकता था। एक मंत्री को शराब पीकर मस्त रहना और 2 बजे दिन से पहिले सोकर उठने से फुर्सत नहीं थी। इनकी अयोग्यता और दुःशासन के फल इनके अधिष्ठाता को भोगना पड़ेगा, इसमें क्या सन्देह है ?

14 जनवरी की शाम को हमारे रहने के स्थान से थोड़ी दूर पर साहित्यकारों की गोष्ठी हुई, जिसमें श्री बाबूराम आचार्य, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, बालकृष्ण सम, बालचन्द्र शर्मा, भीमनिधि तिवारी, सिद्धिचरण, केदारनाथ व्यथित, महानन्द सापकोटा, चित्रधर उपासक आदि सभी महान् साहित्यकार उपस्थित थे। गोष्ठी तीन घंटे तक रही। कवियों ने कविताएँ सुनाईं, समजी ने अपने नाटक का कुछ भाग बड़े नाटकीय ढंग से दोहराया। मैंने

भी अन्त में कुछ कहा। गोष्ठी में मुझे मालूम ही नहीं हो रहा था, कि मैं किसी पराई भाषा के साहित्यिकों में बैठा हूँ। सचमुच ही भाषा और साहित्य के तौर पर नेपाली हमारे हिन्दी-क्षेत्र की अनेक भाषाओं में एक है। चम्बा तक फैली हिमालय की भाषाओं से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस एक गोष्ठी से नेपाली साहित्य की प्रगति का पता लग गया। उस दिन दोपहर का भोजन कम्पौंडर चन्द्रभानजी के यहाँ हुआ, जिसमें सूअर का स्वादिष्ट भोजन भी सम्मिलित था। चन्द्रभानजी को राष्ट्रीय आन्दोलन के समय बहुत कष्ट उठाना पड़ा था।

अबकी मैं ऐसे समय नेपाल में आया था, जब आसमान बार-बार बादलों से घिरा रहता, बूँदाबाँदी भी होती रहती थी। यमि जी के हाते में जितनी खाली जमीन थी, सब खेत बनी हुई थी। ऐसी उगाऊ भूमि को कैसे छोड़ा जा सकता था, जबकि कोई किसान उसे अच्छी मालगुजारी पर लेने के लिए तैयार था। नेपाल में खाद डालने की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है, साथ ही किसान हर वक्त हाथ में कुदाल लिये खड़ा रहता है। बीज भी शताब्दियों से उन्होंने अच्छे पैदा किये हैं, और पानी की भी दिक्कत नहीं है। हमारे हाते में दो-दो तीन-तीन सेर के गोभी के फूल लगे थे, जिन्हें यहाँ बड़ा नहीं माना जाता। मूली तो यहाँ दस-दस सेर की काट कर बिक रही थी।

15 तारीख का मध्याह्न भोजन श्री कलानाथ अधिकारी के यहाँ हुआ। कलानाथ मैकमिलन कम्पनी में अच्छे वेतन पर नेपाली प्रकाशन के अधिकारी थे। स्वतंत्र नेपाल की सेवा करनी चाहिए, यह ख्याल करके नौकरी छोड़कर चले आये। वामपक्षी विचारों को रखते हैं, और मौके-बे-मौके हर जगह बहस में भिड़ जाने के लिए तैयार रहते हैं। संगीत का घर-भर को प्रेम है। लोक-गीत बड़े सुन्दर ढंग से गाते हैं, और रचते भी हैं। यदि वह लोक-गीतों के संग्रह में लगते, तो बड़ा काम करते; पर इसके महत्व को समझ नहीं पाते। आधे दर्जन बच्चे और दोनों प्राणियों का खर्च ऐसी बेकारी में भारी संकट का कारण था। भोजन के बाद भी 3 बजे तक हम वहीं रहे। बच्चों ने गीत सुनाये। उनकी बहिन किशोरीजी बड़ी सुकण्ठी हैं, और नेपाल रेडियो पर गाया करती हैं। उन्होंने भी अपने गीत सुनाये। मधुर संगीत का आनन्द लेते हुए भी बीच-बीच में मेरे हृदय में टीस उठती थी, जब ख्याल करता, कि इतने बड़े परिवार की कुछ भी पर्वाह न करे यह तरुण अपने निश्चिन्त जीवन को छोड़कर यहाँ चला आया।

आज शाम को सांस्कृतिक संघ में जाकर भाषण देना पड़ा। मेरे पुराने मित्र डा. दिल्लीरमण रेगमी अध्यक्ष थे। पहिले माहिला गुरुजी भी कुछ बोले।

दूसरे कामों के साथ-साथ मेरा ध्यान बराबर अपनी पुस्तक के लिए नये आँकड़े और नई सामग्री लेने की ओर था, यमि जी का मकान अब अखंड गोष्ठी-स्थल बन गया था। लिखने-पढ़ने का मौका नहीं मिलता था, इसके लिए मुझे अफसोस नहीं था।

16 जनवरी को संस्कृत छात्रों की सभा में बोलना था। राणाओं के संघर्ष के समय यहाँ के संस्कृत छात्रों ने बड़ी हिम्मत का परिचय दिया था। मैं उनकी सभा में जाना चाहता था, लेकिन वह दो घंटा देर से आए, और उधर कन्या-मन्दिर का प्रोग्राम सिर पर आ गया था। संस्कृत छात्रों में जाने से इन्कार करना पड़ा, जिसका उन्हें दुःख होना ही चाहिए था, पर मेरा क्या कसूर ? हाँ, उस समय इस इन्कार का अधिक अफसोस हुआ, जबकि मालूम हुआ, कि कन्या-मन्दिर में सभा नहीं होनेवाली है।

17 जनवरी का मध्याह्न-भोजन श्री माधवजी के यहाँ हुआ। माधवजी मारिशस में पैदा हुए। फिर भारत में आकर उन्होंने युनिवर्सिटी की शिक्षा समाप्त की। 'आज' के सम्पादकीय विभाग में बड़ी योग्यता से काम कर रहे थे। मारिशस को उनकी जरूरत थी, लेकिन वह भारत से नेपाल चले आए। फ्रेंच, अंग्रेजी और हिन्दी तीनों पर उनका अधिकार था। यहाँ कोई स्थायी नौकरी नहीं थी, सिर्फ ट्यूशन का भरोसा था। ब्याह कर लिया था, और एक शिशु पुत्री भी आ गई थी। मैं तो उनसे कहता था; छोड़ो मारिशस में जाकर काम करो।

18 जनवरी को म्युजियम देखने गए। श्री चन्द्रभान मास्के कलाकार हैं, और राणाशाही की जेलों में वर्षों रह चुके हैं। वही इसके क्यूरेटर थे। पिछली बार इसे देखा था, तब से अब सामग्री बहुत अधिक है। उसे

अच्छी तरह व्यवस्थित करके रखा भी गया है। लेकिन, नेपाल के लिए ये अनुरूप नहीं है, जहाँ कि प्राचीन वस्तुओं का भंडार भरा पड़ा है। किसी अंग्रेज ने लिखा था, यहाँ मकानों से अधिक मन्दिर हैं और लोगों से अधिक मूर्तियाँ। इन मूर्तियों में बहुत-सी खंडित जगह-जगह चौरस्तों, गलियों और खेतों में पड़ी हुई हैं। इनमें कुछ डेढ़-डेढ़ हजार वर्ष पुरानी भी हैं। उन्हें म्युजियम में संगृहीत होना चाहिए। शिलालेखों का इतना कम संग्रह कर जगह-जगह बरबाद होने के लिए उन्हें छोड़ देना खटकता था। चित्रपटों का संग्रह अच्छा ही कहना चाहिए, लेकिन सबसे अधिक संग्रह पुराने हथियारों का था, जिनमें द्रव्यशाह और पृथ्वीनारायण के अपने हाथ के शस्त्र भी थे।

म्युजियम से फिर किन्दु विहार गए। तिब्बत की पहिली यात्रा में यहाँ मैंने अज्ञातवास किया था। बगीचे के उस एकान्त मकान को ढूँढ़ा, जिसमें रात के वक्त आध घंटे के लिए बाहर निकलने के सिवा मैं इस ख्याल से बराबर बन्द रहता, कि राणाशाही को पता न लगे, और मेरे तिब्बत जाने में बाधा न हो। पर उसे न देख पाया। किन्दु में पहिले एक विहार था, अब वहाँ तीन बन गए थे। पिछले बत्तीस वर्षों में बौद्ध-धर्म की ओर लोगों की रुचि ज्यादा बढ़ी। तीन विहारों में एक का नाम कुशीनारा है। एक विहार में एक तिब्बती सम्माननीया भिक्षुणी ठहरी हुई थीं।

म्युजियम से इधर आने में परेड का बहुत बड़ा मैदान मिला, जिसके एक तरफ सिपाहियों की बैरकें हैं। भारतीय सेना के अफसर नेपाली सेना को सिखाने-पढ़ाने का काम कर रहे हैं। लोग शिकायत कर रहे थे—"पहिले के सिपाही मेहनती थे। फसल के समय जाकर घरों में काम करते थे। अब विशेषज्ञों ने उन्हें सिखलाया है कि तुम्हारा काम सिर्फ बन्दूक चलाना और राइट-लेफ्ट करना है। इसलिए वह सुकुमार हो गये।" हमारे कामचोर अफसर और दूसरा क्या सिखलाएँगे ? वह सिर्फ अंग्रेजी सैनिकों के बारे में जानते हैं और उन्हीं को अपना आदर्श मानते हैं। उन्हें मालूम नहीं, कि चीन और रूस के पास भी भारी पलटन है, जो भयंकर लड़ाइयों में तपकर विजयी होकर निकली है। वहाँ सेना को सिर्फ कवायद-परेड तक अपने काम की इतिश्री समझने नहीं दिया जाता। तिब्बत में नहरों और सड़कों का जाल बिछाने में सैनिक बड़ी तत्परता से काम कर रहे हैं।

किन्दु से स्वयंभू गए। यह यहाँ का सबसे पवित्र और पुराना बौद्ध-स्तूप है। लेकिन गन्दगी देखकर तबीयत बिगड़ जाती है। बन्दरों ने और सत्यानाश कर रखा है। वहाँ से कुछ नीचे उतरकर आनन्द विहार में गए। यहाँ गुरुकुल की तरह का एक विद्यालय खोला गया है, जिसमें तीन श्रेणियों में विद्यार्थी पढ़ते हैं। भाजूरत्न साहु के उत्साह और भक्ति का यह प्रमाण है।

लौटकर घर आए। श्री बालकृष्ण शमशेर के यहाँ से मोटर आई और चाय पीने के लिए उनके घर गये। बालकृष्ण राणा वंश के हैं। बहुत सम्भव है, यह वंश मूलतः मगर नहीं, तो खश जरूर रहा, और मगरों के साथ उसका सम्बन्ध भी रहा। पालपा के राजा मगर थे, जिनका ब्याह-सम्बन्ध नीचे के राजपूत घरानों में होता था। पुराने राणाओं के चेहरे पर मंगोलायित मुख-मुद्रा बतलाती है, कि उनमें मगर-गुरुंग जैसे किरातवंशी जातियों का रक्त है। पर, प्रभुत्व प्राप्त करने के बाद राणा अपने को सूर्यवंशी सीसोदियों के साथ सम्बन्ध जोड़े बिना कैसे रह सकते थे ? उन्होंने उदयपुर के राणा तक दौड़ मारी—हमें अपने वंश का स्वीकार कर लें। स्वीकार कर लेते, तो कोई हर्ज नहीं था। आखिर आज राजस्थान के सूर्यवंशी-चन्द्रवंशी, जाट और मराठे राजाओं से विवाह-सम्बन्ध करते ही हैं। राणाओं ने यद्यपि ब्याहता या रखेल रखने के लिए दरवाजा खोल दिया था, पर अपने को श्रेष्ठ साबित करने के लिए असली उन्हीं सन्तानों को मानते थे, जो राजपूत स्त्रियों से होती थीं। समजी के पिता भी राजपूत माता की सन्तान नहीं थे, इसलिए वह तीन-सरकार के अधिकारियों की सूची में नहीं आ सकते थे। चाहे तीन-सरकार बनने का अधिकार न हो, पर पिता की उदारता का लाभ तो पुत्र को मिलता ही है। समजी के पिता भी मौजूद थे, और समजी भी अब दादा की उमर के थे। राणा-वंश में इधर विद्या का कुछ प्रचार हुआ, पर कला और साहित्य की ओर विशेष प्रगति किसी ने नहीं की। समजी इसके अपवाद हैं। उनका सारा घर कला और साहित्य का प्रेमी है। वह स्वयं श्रेष्ठ नाटककार हैं। उनका पुरानी मूर्तियों का संग्रह बहुत सुन्दर और बड़ा है, जिससे मालूम होता है, कि वर्षों से उन्होंने इस तरफ ध्यान दिया

था। चित्रकला का भी उन्हें शौक है। चाय पीते परिवार से बातचीत करने में हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।

19 को रात का भोजन श्री शिवप्रसाद रौनियार के यहाँ इन्द्र चौक में हुआ। रौनियार लोग भोजपुरी इलाके के निवासी व्यापारी हैं। पुराने समय में भी इनके साथ (कारवाँ) चला करते थे, जिसे सुनकर मुझे 'शोभनायका' का पँवाड़ा याद आता। शिवप्रसादजी के पूर्वज नेपाल के साथ कपड़े का व्यापार बहुत पुराने काल से किया करते थे। बैलों पर कपड़ा लादकर वह यहाँ पहुँचते और उसे बेचकर चले जाते थे। एक बार उनका कपड़ा बिका नहीं। कपड़ा लौटाकर ले जाने की जगह वह यहीं रुक गए। फिर तो ऐसा हुआ, कि वह यहीं बस गए। आज उनकी चौथी या पाँचवीं पीढ़ी चल रही है। अब देश से उनका इतना ही सम्बन्ध है–कि ब्याह-शादी करने-भर को हैं। शिवप्रसादजी से नहीं मालूम हुआ, लेकिन पुस्तक भंडार, लहेरियासराय के स्वामी श्री रामलोचनशरण विहारी से पीछे पता लगा, कि शेरशाह के योग्य मंत्री और पीछे हेमचन्द्र विक्रमादित्य के नाम से कुछ दिनों के लिए दिल्ली के सिंहासन पर बैठनेवाले वीर का जन्म रौनियार कुल में ही हुआ। पश्चिम के और पूर्व के बनियों में खासकर भोजपुरी-क्षेत्र के बनियों में एक अन्तर यह है, कि जहाँ पश्चिमवाले अग्रवाल आदि घासाहारी होते हैं, वहाँ पूर्ववाले मांसाहारी। शिवप्रसादजी की माँ सिवान (छपरा) की थीं। उन्होंने छपरा के ढंग का सामिष भोजन तैयार किया था।

21 जनवरी को माहिला गुरु हमारे यहाँ चले आए। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। उनका स्नेह ऐसा ही मेरे ऊपर था। पर, उनका स्वास्थ्य अव बहुत खराब था, और चेहरे पर बुढ़ापे का बहुत असर भी था, इसलिए मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैं उनके पास स्वयं जानेवाला था। वह कहने लगे–कोई बात नहीं, बहुत दूर नहीं था, मैं धीरे-धीरे चला आया। फिर तीन घंटे तक उनसे नेपाल के इतिहास पर बातचीत होती रही। वह नेपाल के विश्वकोश थे, इसलिए उनसे बात करने में बड़ा आनन्द आता था। मैंने अपने हिमालय-सम्बन्धी ग्रंथों में वहाँ की जातियों के बारे में भी एक अध्याय रखा है। नेपाल के ढाई-तीन सौ भिन्न-भिन्न ब्राह्मणों की सूची भी दी है। नेपाली ब्राह्मण कुमाईं और पूर्विया–दो भागों में विभक्त हैं। मैं यही सुनता आया था, कि कुमाईं ब्राह्मण लोग कुमाऊँ से आए हैं। माहिला गुरु का परिवार भी कुमाईं ब्राह्मण कहा जाता था। जब प्राप्य सामग्री का विश्लेषण किया, तो मुझे मालूम होने लगा, कि कुमाईं का मतलब आजकल के कुमाऊँ से नहीं है, बल्कि पुराने कुमाऊँ से है, जिसकी सीमाएँ कर्नाली और उसकी शाखाओं तक फैली थीं। हो सकता है, कत्यूरियों के वक्त सप्तगंडी के क्षेत्र में भी कुमाऊँ का शासन रहा हो। यह लोग अपने पुराने सम्बन्ध के कारण कुमाईं कहे जाते रहे होंगे, जिसे आजकल के भूगोल के साथ जोड़कर लोग यह ख्याल करने लगे, कि यह लोग कुमाऊँ से आए हैं।

मैंने अपना विचार माहिला गुरु से कहा। उन्होंने समर्थन करते हुए कहा–यह बिल्कुल सम्भव हो सकता है।

उस दिन हनुमान ढोका आदि काठमाण्डू के पुराने राजप्रासाद देखने गए। नेपाली बाजार में लोगों में बड़ा असंतोष फैला हुआ था, क्योंकि नेपाली रुपये का भाव गिरता जा रहा था। जो कभी भारतीय रुपये के बराबर थी, वह अब भारतीय रुपये का 151 रुपये पर पहुँच गई थी–मेरे सामने ही 160 तक चली गई। नेपाल भारत से भारी परिमाण में चीजें मँगाता है, जिनमें से कितनी ही शौकीनी की होती हैं। जितनी मात्रा में चीजें मँगाता है, उतनी ही मात्रा में उतनी ही अपनी चीजें नेपाल बाहर भेज सकता, इसके ही कारण नेपाली रुपये का दाम गिरता गया। उस समय व्यापार में किसी व्यवस्था का पता ही नहीं लगता था। कस्टम से आँख बचाकर चीजों को मँगाना, बड़े-बड़े लोगों का चोरबाजार में शामिल होना, ऐसी चीजें थीं, जिनके कारण हालत दिन पर दिन बदतर होती जा रही थी। 21 जनवरी को युद्धसड़क के एक भोजनालय में हम भोजन करने गए। दो आदमी के भोजन पर चार रुपया खर्च करना पड़ा, और उस भोजन को बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता था।

नेपाल-उपत्यका गोरखा-शासन से पहिले शुद्ध नेवार भाषा का देश था। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में गोरखा-शासन-राजधानी के स्थापित होने के बाद यहाँ पश्चिमी नेपाल के लोग भी आकर बसने लगे। तो भी

यहाँ के बहुसंख्यक लोग नेवार भाषा बोलते हैं। जिसको हम लोग नेपाली भाषा कहते हैं, उसे वह गोरखाली भाषा कहते हैं। नेवारी भाषा का अपने को नेपाल भाषा कहना बिल्कुल उचित है, पर दोनों भाषाओं को अलग करने के लिए एक को नेपाल और दूसरे को नेवार भाषा कहना ठीक होगा। पर, नेवारभाषी लोग अपने अधिकार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। नेवार भाषा किरात भाषा-वंश से सम्बन्ध रखती है, यद्यपि उसमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द बहुत भारी संख्या में मिलते हैं। इसका लिखित साहित्य भी बहुत पुराना और समृद्ध है। अब तो उसमें पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती हैं, साहित्य-सृजन भी हो रहा है। नेवाल महिलाओं में अब भी कितनी ही ऐसी मिलेंगी, जो गोरखाली भाषा नहीं समझतीं। 22 जनवरी को नेपाल भाषा साहित्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन उसी हनुमान ढोका के विशाल आँगन में हुआ, जिसमें आज से पौने दो सौ वर्ष पहिले वह राजभाषा के तौर पर विराजमान थी। नेवार सरस्वती आज उस आँगन में मुखरित हो रही थीं। बाहर के आँगन के एक तरफ के फाटक से हम भीतर के एक छोटे आँगन में गए, जहाँ कोत-पर्व हुआ था—कान्छा महारानी के हुकुम से जंगबहादुर और उसके भाइयों ने निहत्थे आदमियों के साथ खून की होली यहीं खेली थी, उनका निर्मम बध किया था। वह झरोखा भी मौजूद था, जहाँ से उस निष्ठुर रानी ने हुकुम देकर इस वीभत्स दृश्य देखने का आनन्द प्राप्त किया था।

नेवार भाषा का यह पहिला अधिवेशन था, लेकिन उसके देखने से साफ पता लगता था, कि नेवारभाषियों में सांस्कृतिक परिपक्वता है।

पटना के श्री कीर्तिराज ढाक्वा मेरे बहुत पुराने कृपालु मित्र हैं। प्रथम तिब्बत-यात्रा में मैं छिपकर नेपाल से वहाँ गया था, और महीने-भर से अधिक की यात्रा करने के बाद शिगर्चे में उनके घर पर ठहरा। इन्हीं से मैंने अपना रहस्य बतलाया। कीर्तिराज उस वक्त तरुण थे, लेकिन अब वृद्ध, 30-32 वर्ष बीत भी तो चुके थे। ढाक्वा तिब्बत से व्यापार करनेवाले नेपालियों में बहुत धनी और सम्मानित माने जाते थे। कीर्तिराजजी ने मेरी बड़ी सहायता की थी, और यदि मैं टशील्हुन्पो में रहना चाहता, तो उनका घर मेरा स्वागत करने के लिए हाजिर था। उन्होंने अपने घर में भोजन करने को बुलाया। 23 जनवरी को हम उनके साथ मोटर पर चले। रास्ते में वह वृक्ष देखा, जिस पर लटकाकर शहीद शुक्रराज शास्त्री को गोली मारी गई थी। वृक्ष को काटना राणाशाही भूल गई, लोगों ने उसे सिन्दूर से टीक रखा था।

बादल खुलने का नाम नहीं लेता था, सर्दी की शिकायत ज्यादा मैं नहीं कर सकता था, क्योंकि मसूरी की सर्दी का अभ्यासी था। जिस तरह नेवार किसान अपनी भूमि के एक-एक अंगुल का मूल्य वसूल करना चाहता है, वैसे ही नेपाली गृहस्थ अपने घर के एक-एक अंगुल अवकाश को बेकार नहीं जाने देना चाहते। जितनी ऊँचाई में हमारे दो-मंजिला मकान होते हैं, उतने में वहाँ चौमंजिला बन जाते हैं। हमारे 'हर्न-क्लिफ' के बँगले की ऊँचाई में तो यह चौमंजिला घर बनाते, और उस समय विशेषकर जाड़ों में यह अधिक आरामदेह होता, क्योंकि थोड़ी-सी भी आग जलाने से उसके भीतर की हवा गरम हो जाती। हाँ, यह शिकायत जरूर होती, कि मेरे जैसे आदमी को हर दरवाजे में सिर बचाने की कोशिश करनी पड़ती। बाहर से मकानों को देखने से चाहे वह कितने ही साधारण-से मालूम होते, गलियाँ और आँगन गन्दे दिखाई पड़ते, किन्तु भीतर वह अच्छे साफ और सुन्दर सजे हुए होते। पाटन के कितने ही व्यापारियों का सम्बन्ध तिब्बत से है। उनके कमरों के सजाने में तिब्बत की चीजों का उपयोग किया जाता है। पाटन अपने पुराने मन्दिरों के लिए काठमाण्डू से कम प्रसिद्ध नहीं है, बल्कि धातु के बर्तनों और मूर्तियों के बारे में वह आगे है। काठमाण्डू और पाटन के बीच में सिर्फ बागमती का अन्तर है, जिसे कहीं भी आप पार कर सकते हैं। मोटर के लिए लोहे के पुल से ही गुजरना पड़ेगा, जो थापाथली में पड़ता है। पाटन भी नेपाल के तीन राजाओं में एक की राजधानी रहा। वहाँ का मछेन्द्र विहार बहुत सम्मानीय देवालय है। इसका सम्बन्ध सिद्ध मछेन्द्र से नाहक जोड़ा गया है। वस्तुतः यह बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का विहार है। पाटन के राजाओं को मन्दिरों और महलों के बनाने का बड़ा शौक था। कृष्ण मन्दिर को तो नीचे देश के नमूने पर पत्थर का शिखरदार बनाया गया है। वैसे नेपाल के मन्दिरों की अपनी विशेष शैली है, जो यहाँ से तिब्बत-चीन होते जापान तक चली गई है। उनमें लकड़ी का इस्तेमाल

ज्यादा होता है, जिसके कारण भूकम्प को भी वह अधिक सहन कर सकते हैं। कमला ने कुछ बर्तन खरीदे। चाय पीने के लिए फिर हम कीर्तिराजजी के घर पर गए। नीचे उपत्यका में वर्षा हुई, लेकिन नेपाल-उपत्यका को घेरनेवाले पहाड़ छः-सात हजार फुट से भी ऊँचे हैं। उन पर बरफ पड़ गई थी। उपत्यका में शायद ही कभी बरफ पड़ती हो। घर लौटने पर मालूम हुआ, श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला आए थे।

24 जनवरी को सराफों ने हड़ताल कर दी। नेपाली रुपये का भाव इतना अनिश्चित हो गया था, यह इसी से मालूम होगा, कि एक दिन में तीन-चार रुपये का अन्तर पड़ गया था। भला ऐसी स्थिति में कौन सिक्कों के विनिमय का काम करने की हिम्मत करता।

उस दिन 4 बजे श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला अपनी मोटर लेकर आए। उनके साथ कवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा के घर पर गए। विश्वेश्वरप्रसाद नेपाली सिद्धहस्त लेखक हैं, यद्यपि राजनीति इस तरफ बढ़ने के लिए उन्हें समय नहीं देती। देवकोटा को देखकर तो मुझे बार-बार निरालाजी याद आते थे—वैसा ही अकृत्रिम सौहार्द्र और वैसी ही काव्य-प्रतिभा। अभी उनकी आयु 44 वर्ष की थी। उनका तरुण पुत्र हाल ही में मरा था, जिसका भारी रंज हृदय पर पड़ा था। यह उसे मुँह पर आने देना नहीं चाहते थे। कितने ही दिनों तक वह 'नेपाली भाषा प्रकाशिनी समिति' में सौ रुपये मासिक पर नौकरी करते रहे। वकालत के साथ पटना युनिवर्सिटी के वह ग्रेजुएट् थे, तो भी वह ऐसी स्थिति में थे। खुद भी वह अपनी कृतियों की सुरक्षा की परवाह नहीं करते। लिखते-फाड़ते-भूलते उन्हें देर नहीं लगती। उनकी 26 पुस्तकें समिति की उपेक्षा से नष्ट हो गईं। प्रमेथियेस को उन्होंने नेपाली भाषा में भी लिखा है। एक बार 12-13 सर्ग लिख चुके थे, जो नष्ट हो गए। अब फिर उसे दुबारा लिख रहे थे। खेतों के बीच में एक मकान में वह सपरिवार रह रहे थे। अब की नेपाल-यात्रा में सबसे अधिक जिस व्यक्ति ने आकृष्ट किया, वह महाकवि देवकोटा थे।

25 जनवरी को भोजनोपरान्त जनकलालजी के साथ मैं बौद्धा चला। काठमाण्डू और देवपाटन से अलग स्थान में नेपाल का यह सबसे बड़ा बौद्ध स्तूप है, जो आयु में भी बहुत पुराना है। इसकी महिमा तिब्बत और मंगोलिया तक फैली हुई है। नजदीक ही समझा था, लेकिन चलते-चलते मालूम हुआ, कि चार मील से कम न होगा। इस विशाल स्तूप की परिक्रमा के चारों ओर दुमंजिले-तिमंजिले घर हैं, जिनके निचले भाग में दूकानदार और उपरले भाग में तीर्थयात्री ठहरते हैं। जाड़ा होने से आजकल बहुत-से तिब्बती लोग आए हुए थे। चिनिया लामा के पास गए। प्रथम तिब्बत-यात्रा में इनके पिता से भेंट हुई थी, और इनके ही एक घर में डुक्पालामा के साथ तिब्बत जाने की लालसा से स्वेच्छापूर्वक मैंने नजरबन्दी स्वीकार की थी। उस समय यह तरुण थे। इनके पिता चीनी थे, लेकिन यहाँ आकर उन्होंने तिब्बती स्त्री से ब्याह किया। कितने ही वर्षों बाद मिले थे, इसलिए लामा को पहचानने में कुछ देर हुई। बूढ़े हो गए थे—विलासी जीवन और शराब की छूट जो थी। लोग कह रहे थे—खूब धन कमाया है। कुछ देर बैठे बेमन-से बात करते रहे। उनसे पता लगा, कि साक्या के फुनछोक् महल के मेरे कृपालु लामा अब नहीं रहे। उनके बाद डोलमा प्रासाद के लामा गद्दी पर बैठे। तिब्बत के तीर्थयात्रियों से मालूम हुआ, कि उन्हें अपने साथ पैसा लाने में कोई रुकावट नहीं है, पिछले साल से भी इस साल अधिक यात्री आए हैं। लाल सैनिक अभी सभी सीमान्ती डाँड़ों पर नहीं पहुँचे हैं। जागीरदारी पर अभी हाथ नहीं लगाया है, किन्तु पाठशालाएँ जगह-जगह गाँवों में खोली जा रही हैं।

बौद्धा की परिक्रमा करके वहाँ से साढ़े 4 बजे घर लौट आए। उस दिन डा. रेगमी के यहाँ चाय पीनी थी, लेकिन भूल गए।

26 जनवरी को सिंह दरबार गए। चन्द्रशमशेर ने कई करोड़ लगाकर इस विशाल महल को बनवाया था। पहिले यहाँ जनसाधारण की पहुँच कहाँ हो सकती थी ? अब सचिवालय है, जिसके दफ्तर उसके कमरों में हैं। सचिवालय से कुछ सूचनाएँ लेना चाहता था। पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी अब भी वही नर शमशेर थे, जो अपनी क्रूरता के लिए राणा-शासन में कुख्यात थे। इसी से मालूम हो रहा था, कि शासन में कितना कम परिवर्तन हुआ है। सलाहकारों में जेनरल केसर शमशेर सबसे अधिक प्रभावशाली, कार्य-दक्ष और मेरे पूर्व परिचित भी थे। उनसे मिलने के लिए गया, तो वहाँ इतनी भीड़ थी, कि आशा नहीं थी, बातचीत हो सकेगी।

देर होते देख मैं वहाँ से लौट पड़ा। किसी आदमी ने सूचना दी। उन्होंने आदमी दौड़ाया, और इसके बाद स्वयं दौड़े-दौड़े आए। मुझसे दो-चार साल बड़े ही होंगे। मुझे अफसोस हुआ। खड़े-खड़े बातचीत की और 31 तारीख को दस बजे उनके घर पर आने का वचन दिया। इन्सपेक्टर साहब तो नहीं आए, किन्तु डिप्टी इन्सपेक्टर जेनरल जनरल आफिस में मिले। बिना यहाँ से अनुज्ञा-पत्र (राहदानी) के लिए विमान का टिकट नहीं मिलेगा, इसीलिए हम वहाँ जाने को मजबूर थे।

सिंह दरबार का इससे अच्छा उपयोग क्या हो सकता है। कितने ही बड़े-बड़े हॉल देख, गैलरी देखने गए। विशाल हॉल है, जिसमें तरह-तरह के चित्र लगे हुए हैं–शिकार के चित्रों की बहुतायत है। सभी आधुनिक ढंग के हैं। इसी शाला में राणा तानाशाह अपने अंग्रेज अतिथियों और प्रभुओं का स्वागत किया करते थे। नेपाल पत्थरों का देश है, लेकिन इस विशाल महल के बनाने में ईंटों को ज्यादा इस्तेमाल किया गया। वास्तुकला की दृष्टि से यह यूरोपीय इमारतों की अन्धी नकल है, जिसमें नेपालीयता का पूरी तौर से बायकाट किया गया है। वहाँ से रेडियो स्टेशन गए। रेडियो की मशीन नेपाली कांग्रेस ने अपने संघर्ष के दिनों में कहीं से प्राप्त की, वही काम कर रही थी।

बाहर निकलकर हम जंगबहादुर के घर को देखने चले। यह मुहल्ला थापाथली कहा जाता है। पुराने महल को ढूँढ़ निकालने में काफी देर हुई। अब वह सूना है, और गिरने की तैयारी कर रहा है। इसी के हाते में शरणार्थी अवध की बेगम और नाना की रानी की हवेलियाँ थीं, जो अब गिर चुकी हैं। वहाँ से बाहर निकलने पर एक और पुराना महल मिला, उतना पुराना नहीं जितना जंगबहादुर का। हम उसके बारे में जानना चाहते थे, उसी समय एक प्रौढ़ पुरुष निकले। वही उस समय इस महल में रहते थे। नाम मसूरी शमशेर मालूम हुआ। देव शमशेर बड़े ही भले प्रधानमन्त्री थे, लेकिन भलमनसाहत के कारण ही उन्हें जल्दी पद छोड़कर नेपाल से भागना पड़ा, और उनका स्थान उनके चलते-पुर्जे अनुज चन्द्र शमशेर ने लिया। देव शमशेर ने मसूरी में अपने लिए महल बनवाया था। वहीं पैदा होने के कारण पुत्र का नाम मसूरी शमशेर रखा गया। कान्वेन्ट और यूरोपियन स्कूल के पढ़े हुए थे। वह साहित्य और संस्कृति को अंग्रेजी में ही जानते थे। न उन्हें नेपाली साहित्य से कोई मतलब था न हिन्दी साहित्य से। हाँ, यह सुनकर उन्हें कौतूहल हुआ, कि मैं भी मसूरी में रहता हूँ। लेखक जानकर उन्होंने पूछा–आप तो राणाओं के खिलाफ लिखेंगे। मैंने कहा–हाँ, किन्तु देव शमशेर के खिलाफ नहीं।

वहाँ से टूँडी खेल, धरहरा होते कल की भूल-चूक को माफ कराने के लिए डा. दिल्लीरमण रेगमी के घर पर पहुँचा। सौभाग्य से वह मिल गये। देर तक उनसे नेपाल की राजनीति पर बात होती रही। उन्होंने अपनी लिखी पुस्तकें भी दीं। लौटते वक्त सड़क पर शंखासुर की यात्रा निकल रही थी। सभी जगह जनता तमाशे की प्रेमी होती है, नेपाल के नागरिक उसमें विशेष रुचि रखते हैं, यह जरूर है।

27 जनवरी को धूप-छाँह रही। 10 बजे तक हम अपने स्थान ही पर थे। अधिकतर भोजन बाहर ही करना पड़ता था, लेकिन सवेरे का जलपान यमि जी के यहाँ होता था। स्वयम्भू के पीछे स्वामी ईश्वानन्दजी का आश्रम सरस्वती अखाड़ा था। ईश्वानन्दजी शिक्षित, सुसंस्कृत और जनसेवी पुरुष हैं। स्वयम्भू पर्वत के पीछे की ओर ही यह सरस्वती अखाड़ा पुराने समय से चला आया था। यहीं भोजन हुआ, देर तक बातचीत होती रही। यहाँ से वह पहाड़ी अंश दिखाई पड़ता था, जहाँ होकर भारत से नेपाल मोटर-सड़क आनेवाली है। दूर तक खेत ही खेत थे। वस्तुतः नेपाल-उपत्यका कृषि के लिए बहुत ही उपयुक्त भूमि है। वर्षा बहुत होती है, इसलिए सिंचाई के लिए पानी की जलनिधियाँ पहाड़ों में बनानी मुश्किल नहीं हैं। लोग हमेशा से मेहनती रहे हैं, लेकिन उस मेहनत का पारिश्रमिक उनको नहीं मिलता रहा। नेपाली शिल्पी अपने काम में बड़े दक्ष थे। उन्होंने उस ख्याति को गँवाया नहीं है, जो कि किसी समय चीन तक पहुँची हुई थी। एक बड़े राहु से नेपाल मुक्त हुआ, लेकिन अभी उसे कहाँ जाना है, इसका पता भी नहीं है। बतला रहे थे, यहाँ से पाँच दिन में चितौन पहुँच सकते हैं। नेपाल का पुराना रास्ता इधर ही से भिखनाठोरी होकर जाता था। भिखनाठोरी के पास अब भी रमपुरवा में दो अशोक-स्तम्भ मौजूद हैं, जो शायद उसी की साक्षी दे रहे हैं। वहाँ से लौटते वक्त आनन्दकुटी विद्यापीठ में फिर गये। 30-35 लड़कों ने स्वगात किया, यहीं चायपान हुआ।

शाम को 5 बजे माहिला गुरु की अध्यक्षता में 'नेपाली शिक्षा परिषद्' की सभा में मैंने शिक्षा पर भाषण दिया। मेरे भाषा-सम्बन्धी विचारों के लिए गलतफहमी होने की गुंजाइश न रहे, इसलिए भाषा-नीति के बारे में मैंने विशेष तौर से कहते हुए बतलाया, कि सारे नेपाल में नेपाली (गोरखानी) भाषा का वही स्थान है और रहेगा, जो कि भारत में हिन्दी का। पर, नेपाल बहुभाषिक देश है। यहाँ के लोगों को यदि जल्दी से जल्दी साक्षर और शिक्षित करना है, तो प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम उनकी भाषाओं को रखना होगा। नेवार भाषा का अपना पुराना लिखित साहित्य है। उसमें बच्चों के लिए पाठावली तैयार करना मुश्किल नहीं है। पर, गुरुंग, मगर आदि उन भाषाओं को भी नागरी लिपि में शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए, जो अभी तक लिखी नहीं गई है। कुछ लोगों का ख्याल था, कि मैं नेपाली भाषा का पक्ष कमजोर करूँगा, लेकिन मैंने कमजोर करने की बात तो दूर, इसे और सबल करते हुए कहा, कि जिस राष्ट्र में बहुत-सी भाषाएँ हैं, वहाँ एक सम्मिलित भाषा की अत्यन्त आवश्यकता है, और सौभाग्य से नेपाल में वह भाषा पहिले ही से मौजूद है। इसलिए उसे हमें छोड़ना नहीं है। नेपाल अपना विश्वविद्यालय कायम करे, जिसमें उच्च शिक्षा का माध्यम नेपाली हो। माहिला गुरु ने भी अन्त में अपने भाषण में मेरे विचारों से सहमति प्रकट की। 'नया नेपाल' ने भाषा के सम्बन्ध में कुछ गलत-सलत बातें लिख डाली थीं, जिसके कारण उस दिन मुझे अपने विचारों को और स्पष्ट करने की जरूरत पड़ी।

28 जनवरी का मध्यान्ह-भोजन श्री गणेशमानजी के यहाँ हुआ। स्वतन्त्रता-आन्दोलन में राणाशाही के खिलाफ गणेशमानजी ने बड़ी हिम्मत के साथ लोहा लिया, उन्हें कष्ट भी बहुत झेलना पड़ा था। कांग्रेस मंत्रिमण्डल में वह एक मन्त्री थे। मुझे उन लोगों की बात सच्ची नहीं मालूम हुई, जो उन्हें मस्तिष्कहीन तोता बतलाना चाहते थे। बोलने और समझनेवाले आदमी थे। कह रहे थे—"राणा-नेहरू-त्रिभुवन के तिकड़म में पड़कर कांग्रेस मंत्रिमण्डल अपने कार्य में सफल नहीं हुआ। नेहरू और उनके प्रतिनिधि चन्द्रेश्वरसिंह यहाँ किसी भी प्रगतिशील कदम उठाने का विरोध करते थे।" राणा नजरबन्दी से निकलते ही धिराज को बाहर की हवा लगी और वह गुलछर्रे उड़ाने लगे। राणा साल में 88 हजार खर्च के लिए देते थे। प्रथम अन्तरिम सरकार ने उसे छः लाख कर दिया। मातृका मन्त्रिमण्डल ने दस लाख दिया। अब नेहरूशाही सलाहकारों की कृपा से बीस लाख से ऊपर सालाना उन्हें मिल रहा है। मोहन शमशेर 80 लाख से ऊपर की सोने-चाँदी की सम्पत्ति नेपाल से बाहर ले जा रहे थे। हमने उसे रोका। नेहरू ने दबाव डाला, और हमें छोड़ देना पड़ा। सरकार के खर्च से बने सिनेमा को, जिसे राणाशाही ने भी वैसे ही रखा था, और जिसका दाम छः लाख देने के लिए लोग तैयार थे—धिराज ने अपने कृपापात्र को पहिले डेढ़ लाख पर बेचने की बात कही और पीछे एक तरह मुफ्त ही दे दिया। जहाँ के विधाता स्वयं शराब-सिगरेट और दूसरी चीजों को कस्टम न देकर देश के भीतर लाकर चोरबाजार में देने के लिए तैयार हैं, वहाँ क्या आशा हो सकती है ? सचमुच नेपाल के शासन की भीतरी स्थिति की जो बातें उस दिन मालूम हुईं, उससे नेपाल के किसी हितैषी को खेद हुए बिना नहीं रह सकता।

गणेशमान का परिवार नेपाल राज्य के बड़े-बड़े पदों पर रहा, सामन्तशाही जीवन में उनका बचपन बीता। नेपाल में शराब पीना आम चीज है। ब्राह्मणों में भी कितने ही उसे पीते हैं। देवी और शक्ति के उपासक होने से उनको इसका बहाना भी मिल जाता है। पुराने जमाने की शराब की सुराहियाँ और छोटे-छोटे चषक उन्होंने दिखाये। मेरे साथियों में उसके आनन्द लेनेवाले भी कुछ थे। चाँदी-सोने की सुराहियों में सुन्दर हंडल और पतली लम्बी टोंटी लगी थी। चषक साधारण लोगों के काँसे के और उच्च वर्ग के चाँदी-सोने के होते थे। बहुत ऊपर से पतली धार प्याले में छोड़ी जाती, जिसके कारण उसमें फेन उछल आता। इसी फेनिल मदिरा को लोग पीते हैं।

29 जनवरी को दोपहर बाद मैं अपने पुराने सहायक धर्ममान साहु के घर गया। यहाँ और ल्हासा में धर्ममान साहु के घर में जब-जब मैं गया, घर की तरह वहाँ स्वागत हुआ। साहु अब नहीं थे। उनके योग्य मझले पुत्र ज्ञानमान साहु भी जवानी में ही चल बसे। बड़े पुत्र त्रिरत्नमान और छोटे पुत्र पूर्णमान आजकल ल्हासा में थे। उनकी दूसरी पीढ़ी के कुछ तरुण घर में थे। उनकी बहुएँ तो मुझे अच्छी तरह जानती थीं, क्योंकि

नेपाल में कभी-कभी महीनों मैं उनका अतिथि रहा, और खिलाने-पिलाने का भार उन्हीं के ऊपर था। ज्ञानमान साहु की बहू ने बड़ी खिन्न होकर शिकायत की, आप हमेशा हमारे यहाँ उतरते थे, अबकी बार क्यों नहीं आये। मैंने अपना दोष स्वीकार किया। लेकिन, मैं जानता था, त्रिरत्नमान दोनों भाई यहाँ नहीं हैं, इसलिए नहीं आया। पहिले मिठाई के साथ तिब्बती चाय और स्वादिष्ट ग्यथुक (चीनी सूप) आया। उसी से पेट भर गया। यदि मालूम होता, कि मोमो भी खानी पड़ेगी, तो उन्हें कम लिया होता। मोमो को 2 बजे पर टाल दिया। सबसे ऊपरी मंजिल पर छोटी-सी छत को दिखलाया गया, जहाँ धर्ममान साहु बैठकर ध्यान-पूजा किया करते थे। यह छठी मंजिल से ऊपर है, और आसपास के घरों की छतें नीची मालूम होती थीं। यहाँ से सड़क-शहर का दूर-दूर का नजारा देखने में आता।

धर्ममान साहु ने अपने परिश्रम से अपने को तिब्बत के नेपाली व्यापारियों में सर्वश्रेष्ठ बना दिया। उदारता तथा दान-पुण्य में तो उनका कोई मुकाबिला नहीं कर सकता था। तिब्बत के बड़े-बड़े लामा या अफसर यहीं उनके घर में ठहरा करते थे। उनकी उदारता और दानशीलता ने ही आगे उनकी कोठी को आज छठे नम्बर पर ही नहीं रहने दिया। मूल पूँजी से लाख रुपये उन्होंने विहारों की मरम्मत और दूसरे धार्मिक कामों में लगा दिये। कुछ कर्मचारियों ने भी धोखा दिया, जिससे कोठी को सँभालना मुश्किल हो गया। परिवार में आधे दर्जन से अधिक लड़के हैं, जिनमें से चार काम करने लायक हैं। प्रत्येकमान तिब्बत में ही रहते हैं, एक मेट्रिक पास भी है। बहू ने बड़े दुःख से कहा, "अब बँटवारा करने जा रहे हैं, आप समझाइए।" उनके घर में मेरी बात चलती थी, इसी विश्वास पर उन्होंने यह कहा। लेकिन, संयुक्त परिवार में यह दिन आता ही है। अभी हमारे व्यवसायियों ने यह नहीं समझा है, कि चूल्हे का बँटवारा करना चाहिए, व्यवसाय और पूँजी का नहीं। वस्तुतः जिसमें किसी के दिल में सन्देह न पैदा हो, उस तरह व्यवसाय चलाने का गुर भी नहीं मालूम है, जिसके कारण झगड़े पैदा होने लगते हैं। कितनी ही जगह बँटवारे का कारण स्त्रियों का कलह ही होता है, लेकिन यहाँ स्त्री बँटवारे के विरुद्ध थीं। बड़ों के विलास और आलस्य ने भी कारबार को धक्का लगाया।

मैंने यहाँ की भाषाओं को देख करके अपने नेवार मित्रों के सामने भी कहा–नेवार भाषा भी उसी किरात भाषा की शाखा है, जिसकी शाखाएँ गुरुंग, मगर, सुनवार, तमंग, याखा लिम्बू, राई ही नहीं, बल्कि नेपाल से बाहर पश्चिम में चम्बा-कुल्लू की लाहुली, कुल्लू की मलाणी, कनौर, गढ़वाल की मारछा, कुमाऊँ के राजकिरात और पूर्व में सिकिम के लेप्चा और आगे आसाम के नागा होते दूर तक कम्बोज तक फैले लोगों की भाषा है। यह बात एक शिक्षित भद्रपुरुष को पसन्द न आई। किरात शब्द वस्तुतः संस्कृत में बहुत पिछड़े लोगों के लिए इस्तेमाल होता है, जो पूर्वी नेपाल में रहते हैं। पर कोई जाति सैकड़ों वर्षों से यदि पिछड़ी चली आई है, तो भविष्य में भी वह ऐसी ही रहेगी, यह मानना गलत है। एक देश की रहनेवाली सभी जातियों को आज के युग में एक-से सांस्कृतिक और आर्थिक स्तल पर आना अनिवार्य है। मैंने कहा, किरात शब्द को छोड़िये, आजकल के नृतत्त्ववेत्ता जिसे मोन्-स्मेर जाति कहते हैं, उसी की यह शाखा है, जिसमें कम्बोज और थाई (स्यामी) जैसे जातियाँ भी हैं। इसका यह मतलब नहीं कि जो लोग आज किरात भाषा बोलते हैं, वह सबके सब मूलतः किरात थे। कितनी ही बार दूसरी जगहों से आई जातियाँ नये स्थान में बहुसंख्यकों में रहकर उन्हीं की भाषा अपना लेती हैं। इसलिए यहाँ के नेवार ब्राह्मणों, क्षत्रियों के हजारों परिवार मधेस से आये, इसे मानने में किसी को आपत्ति नहीं है, और ऐतिहासिक काल में आज से तीन ही चार सौ वर्ष पहिले ऐसे बहुत-से लोग आए, इसका प्रमाण मौजूद है। आज सभी नेवार लोगों की आँखों पर जो थोड़ी-बहुत मंगोलायित छाप है, वह उसी रक्त-सम्मिश्रण के कारण है।

31 जनवरी नेपाल-प्रवास का अन्तिम दिन था। उस दिन हम जेनरल केसर शमशेर से 10 बजे उनके महल में मिलने गए। पहिले भी मैं इस महल में आ चुका था, और जेनरल ने बड़े स्नेह और सम्मान के साथ अपने पुस्तकालय को दिखलाया था। वह राजनीति और सैनिक विद्या में विशेष रुचि रखते हैं। इन विषयों पर सैकड़ों अंग्रेजी पुस्तकों का इस पुस्तकालय में बहुत अच्छा संग्रह है। दूसरी रुचि उनकी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह की है। उनके पास सैकड़ों तालपोथियाँ हैं। यद्यपि उनका महल आधुनिक ढंग पर ईंट और

सीमेन्ट का बना है, जिसमें कम-से-कम लकड़ी लगाई गई है, तो भी आग लगने के डर से इन अनर्घ प्राचीन पुस्तकों को अग्निरक्षित लोहे की आलमारियों में रखा है। जेनरल केसर राजा त्रिभुवन के बहनोई हैं। पहिली पत्नी का देहान्त हो चुका है, जिससे उनका एक पुत्र है। दूसरी रानी तरुणी थीं, जिनके दो बच्चे और एक बच्ची थी। उन्होंने अपने परिवार से भेंट कराया। मैंने दम्पती और बच्चों का फोटो लेना चाहा, उन्होंने उसे भी खुशी से लेने दिया। यद्यपि केसर शमशेर चन्द्र शमशेर के सुदीर्घकालव्यापी तानाशाही में पले, और उसी में बूढ़े हुए। अपने पिता के महान् वैभव में करोड़ों के स्वामी बने, पर इतना अध्ययनशील व्यक्ति नये जमाने की गति से अपरिचित नहीं रह सकता था। शायद इनकी चली होती, तो राणा-वंश का उस तरह से अन्त नहीं हुआ होता, जैसा कि हुआ। उनसे बड़े दो भाई–मोहन शमशेर और बबर शमशेर–थे, जिनमें बबर यथा नाम तथा गुण थे। वे दुर्योधन की तरह कहते थे–"सूच्यगं, न दातव्यं बिना युद्धेन केशव" (हे कृष्ण, युद्ध के बिना सूई की नोक-भर भी जमीन मैं नहीं दूँगा)। राणाशाही शासन के जाने के बाद भी केसर शमशेर का प्रभाव नहीं घटा, यह उनके सुधरे विचारों के कारण ही है। सलाहकार सरकार में वही एक तरह सर्वेसर्वा हैं। त्रिभुवन में न शासन की योग्यता है, न अच्छी-बुरी सलाह में विवेक करने की बुद्धि। केसर शमशेर उस समय भी मेरे साथ सौहार्द्र प्रकट करने में पीछे नहीं रहे, जबकि मैं नेपाल में बड़ी सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। 62 वर्ष के हो चुके हैं, इसलिए फिर मुलाकात होने की क्या आशा हो सकती है ?

वहाँ से लौटकर माहिला गुरु से विदाई लेने गया। वे तो और पके फल हैं, स्वास्थ्य भी जवाब दे चुका है। विदाई के समय वे बात से भी प्रकट करते थे, कि अब फिर मुलाकात नहीं हो सकेगी। नेपाल में संस्कृत विद्या और सांस्कृतिक ज्ञान के ये अद्भुत भंडार थे। राजनीतिक विचारों में अपने स्वामी (राणाशाही) के विरुद्ध वह जाकर वहाँ कैसे रह सकते थे ? किन्तु और बातों में वे बड़े उदार थे। मैं परम नास्तिक और वह परम आस्तिक थे। मैं कम्युनिस्ट और वह सामन्तवादी, तब भी मिलने पर कोई कह नहीं सकता था, कि किसी तरह का मतभेद रखते हैं। बड़ा लड़का जिसे पिछली बार मैंने 10-12 वर्ष की उमर में देखा था और फोटो लिया था, अब वह छः फुट का जवान संस्कृत में साहित्याचार्य करके बी. ए. की परीक्षा देनेवाला था। छोटा लड़का बी. ए. करके बम्बई में रहते पिता से विलायत जाने की आज्ञा माँग रहा था। यह उसका शिष्टाचार था, नहीं तो जहाज पर बैठकर उसे इंग्लैण्ड या अमेरिका जाने में क्या रुकावट हो सकती थी ? पिता के लिए आज्ञा देना मुश्किल था, क्योंकि यह राजगुरु का वंश ठहरा, राणा और धिराज दोनों वंश को कई पीढ़ियों से ये मन्त्र देते आए थे। नेपाल में छूआछूत और जात-पाँत का ठेकेदार यही वंश रहा है। विलायत जाने पर क्या वह इन बातों का विचार कर सकेगा ? और सबसे मुश्किल तो यह थी, कि अभी वह अविवाहित था। वहाँ जाकर यदि मेम ब्याह लाया, तो पिण्डदान से महरूम होना पड़ता। चिन्तित थे, लेकिन जानते थे, कि आजकल के जमाने में पंख उग आए पंछी की तरह सयाने बेटे को उड़ने से नहीं रोका जा सकता।

भोजनोपरान्त देवपाटन की ओर जयबागेश्वरी में गए, जहाँ नेपाल (गोरखाली) साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा था। यहीं पास में वह बाग है, जिसमें धिराज रणबहादुर आकर अक्सर रहा करते थे। रणवहादुर ने एक तिरहुती विवाहिता ब्राह्मण तरुणी कान्तिमती पर मुग्ध होकर उस पर सर्वस्व निछावर किया। उसे पटरानी ही नहीं बनाया, बल्कि उसी की सन्तान आज के धिराज हैं। यह प्रतिलोम विवाह था, जिसके कारण सन्तान को हिन्दू धर्मशास्त्र के अनुसार ब्राह्मण-क्षत्री से निचले वर्ग में जाना चाहिए था, लेकिन 'समरथ' का कौन ऐसा कर सकता था। वैसे कौन-सा राजवंश दूध का धुला है ? आजकल मौजूद भारत के महाराजाओं में एक के पिता सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ थे, उन्होंने इस काम के लिए एक स्वस्थ मुसलमान तरुण को अपने यहाँ रखा। जिस सीसोदिया वंश से धिराज-वंश अपना सम्बन्ध जोड़ता है, उसमें स्वयं पहिले एक अन्य जातीय विधवा पटरानी हुई थी। पुराने गोत्रोच्चार से कोई फायदा नहीं। जहाँ तक आज का सम्बन्ध है, इन पुराने सम्बन्ध के कारण किसी का हुक्का-पानी बन्द नहीं किया जा सकता। चाहे कलियुग कहिये या आधुनिक युग, अब तो सारा भारत एक वर्ण होने जा रहा है–सबकी रोटी-बेटी एक होनी शुरू हो गई है। शायद इस शताब्दी के बाद यह भेद रूढ़िवादियों के बेहूदापन का सबूत मात्र रह जाएगा।

सम्मेलन खुली जगह में हो रहा था, जो मैदान-सा नहीं, बल्कि एक स्वाभाविक सूखे तालाब जैसा मालूम होता था। नर-नारी काफी संख्या में वहाँ मौजूद थे। निबन्ध, कविता-पाठ, कथा-कहानी-पाठ, संगीत और नृत्य सभी प्रोग्राम में थे। नेपाल में कुछ बातों में सदा मुक्त वातावरण रहा। पर्दा तो वहाँ के लोग जानते ही नहीं थे, और हाल में हुए नारी-नवजागरण के कारण भी स्त्रियाँ काफी आगे बढ़ी थीं। कमला की कुछ कहानियाँ हिन्दी पत्रों में छप चुकी थीं, इसलिए वह अपने अधिकार से वहाँ उपस्थित थीं। श्री बालकृष्ण शर्मा और दूसरे मित्रों ने आवाज दी, महापण्डितानी भी कुछ सुनाएँ। लेकिन, महापण्डितानीजी की हिम्मत नहीं हुई।

सम्मेलन से हम अन्तिम बार पशुपति के दर्शन को गए। हमारे दर्शन का मतलब है ऐतिहासिक वस्तुओं का श्रद्धा-भक्ति से अवलोकन, उनका फोटो और उनके बारे में कुछ नोट लेना। पशुपति मन्दिर का सामने से फोटो फाटक के भीतर घुसकर ही लिया जा सकता है, और यह मना था। ऐसी जगह पर कैसे काम लेना चाहिए, इसका मुझे तजर्बा था, इसलिए वहाँ के रक्षक के नहीं करने से पहिले ही मैंने रोलेफ्लैक्स को टिक कर दिया, फिर भलेमानुस की तरह मैंने अजान होने का बहाना करके छुट्टी ले ली। नेपाल-उपत्यका की, और विशेषकर देवपाटन की खण्डित मूर्तियों में यद्यपि दसवीं शताब्दी के बाद की ज्यादा हैं, पर कुछ उनमें गुप्तकाल और उसके तुरन्त बाद की भी हैं! बागमती के घाट पर प्रायः पुरुष प्रमाण बुद्ध की एक खण्डित प्रतिमा बहुत पुरानी है। जनकलालजी ने बतलाया, कि परले पार एक लेख सहित पुरानी मूर्ति खेतों में पड़ी है। हम पुल से पार हो नदी के किनारे-किनारे उधर गए। किनारे से ऊपर खेत में चलते समय बड़ी बदबू आने लगी। इधर-उधर देख रहे थे, कहाँ से गंध आ रही है। देखा, जिस खेत की मेंड़ से होकर हम चल रहे हैं, उसमें ही कृषक-दम्पती बालटी में भरे पाखाने को हाथ से बड़े इत्मीनान से थोड़ी-थोड़ी जगह पर रख रहे हैं। किसान को ऐसा ही होना चाहिए। मैंने जापानी किसानों को ऐसा ही देखा। यदि ऐसे किसान हमारे भारत के गाँवों में होते, तो गाँव इतने गन्दे न होते, कि भीतर घुसते वक्त नाक पर रूमाल रखनी पड़ती। मूर्ति के पास गए। वह त्रिविक्रम की, तथा लिच्छवि-शासनकाल की (छठी-सावतीं शताब्दी) की थीं। इसका उल्लेख किसी विद्वान् ने नहीं किया था। नेपाल में ऐसी अनुल्लिखित बहुत-सी मूर्तियाँ और ऐतिहासिक चीजें हो सकती हैं, नेपाल-उपत्यका के बाहर सप्तगण की और करनाली की उपत्यका भी सांस्कृतिक केन्द्र रही है, वहाँ का अनुसन्धान तो एक तरह अभी हुआ ही नहीं है। एक बार श्री जनकलाल शर्मा कुछ दिनों के लिए वहाँ जाकर कुछ बातें और अभिलेख जमा करके लाए थे। जनकलाल शर्मा जन्म-जात इतिहास और पुरातत्व के अन्वेषक हैं। 'व्याकरणतीर्थ' होने से संस्कृत पर उनका अधिकार है, और 'साहित्यरत्न' होने से हिन्दी के साहित्य पर भी। उन्होंने पुरानी लिपियों को स्वयं परिश्रमपूर्वक सीखा है। पुरानी चीजों के लिए उनके हृदय में तीव्र जिज्ञासा है। उसी का यह परिणाम था, कि हम दूर खेतों में पड़ी इस त्रिविक्रम की मूर्ति को देखने गए। यदि उन्हें अवसर मिला, तो नेपाली के पुरातत्व के वे कनिंघम हो सकेंगे।

उस दिन रात्रि-भोजन श्री शिवप्रसाद रौनियार के यहाँ हुआ। पहिले दिन निरामिष था और आज सामिष।

# 8
# मसूरी में

1 फरवरी को हमने यमि-परिवार से विदाई ली। मैंने उन्हें लड़का धर्मरत्न के तौर पर देखा था। अब वह आयु और ज्ञान दोनों में प्रौढ़ थे। उनकी पत्नी हम दोनों के आतिथ्य में और भी लगी रहती थीं। घर का सारा काम उन्हें करना पड़ता था। कई बच्चों को सँभालना था। लेकिन वह साधारण चूल्हा-चक्कीवाली महिला नहीं थीं। जब उनके पति ने जेल को अपना घर बना लिया और कोई सहारा नहीं रह गया, तो वह अपनी शिक्षा को बढ़ाकर अध्यापिका बन गईं। जब मौका आया, तो वह स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी कूदने से बाज नहीं आईं। इसमें सन्देह नहीं, उनकी वीरता पुरुषों की वीरता से कहीं बढ़-चढ़कर थी, क्योंकि नेपाल में क्रूर सामन्तवादी पुरुषों का शासन था।

साढ़े आठ बजे चलकर 9 बजे हवाई अड्डे पर पहुँच गए। दो-चार बरतन, चिउरा और कुछ नेपाल की सौगात हमारे साथ थी। कस्टम के लायक कोई चीज नहीं थी। चार हफ्ता रहने से उपत्यका के शिक्षितों ने नाम सुन लिया था। जनकलालजी, मानदासजी, यमिजी और दूसरे बहुत-से मित्र अड्डे पर बिदाई देने आए। नेपाल से पटना, सेमरा, वीरगंज और पोखरा–तीन जगहों को विमान जाया करते थे। विमान चलानेवाली कम्पनी भारतीय थी। अभी विमान-चालन का काम भारत सरकार ने अपने हाथ में नहीं लिया था, इसलिए प्रबन्ध में गड़बड़ी भी थी। पहिले सेमरावाला विमान आया। उसके उड़ जाने पर पटनावाला आध घंटा लेट रहकर आया। इसी से श्री खड्गमानसिंह उतरे। राणाशाही के खिलाफ आन्दोलन में भाग लेनेवालों में वह एक प्रमुख व्यक्ति थे। आजकल सरकार के सलाहकारों में थे। हम कुछ ही मिनट तक बातचीत कर सके। फिर श्री बालचन्द्र शर्मा, कवि केदारनाथ व्यथित, श्री धर्मरत्न यमि, मानदासजी, श्री कलानाथ अधिकारी और उनके परिवार से नमस्ते की।

नेपाल से नये और पुराने परिचित सहृदय पुरुषों और महिलाओं की मधुर स्मृति लेकर 11 बजकर 35 मिनट पर हम पटना के लिए उड़े। आसमान साफ था। उपत्यका अपने मोहक रूप में नीचे पड़ी हुई थी। गिरि परकोटे को लाँघकर बिहार की ओर बढ़े। बादल नहीं था, लेकिन धुन्ध बहुत थी। तराई के जंगलों को पार कर उस भूमि में पहुँचे, जहाँ कभी लिच्छवियों का प्रतापी गण था। वैभवशाली गण के उच्छिन्न होने पर मगध की परतन्त्रता स्वीकार करने की जगह लिच्छवियों ने पहाड़ में शरण लेना पसन्द किया। इस वक्त हम आधा घंटे में उनकी पुण्य नगरी के ऊपर पहुँच गए। लेकिन, उन्हें अपने परिवार और कुछ स्थावर-जंगम सम्पत्ति लेकर नेपाल पहुँचने में महीनों लगे होंगे। वहाँ पहिले उन्होंने अपना शासन गण-व्यवस्था के अनुसार ही स्थापित किया होगा। पीछे वहीं लिच्छवि राजवंश हो गया जो कि नेपाल के प्रथम ऐतिहासिक शासक थे, और जिनके पुरातात्विक अवशेष उपत्यका में मौजूद हैं। प्राचीन लिच्छवि भूमि पहिले गण्डक के पार भी कुछ रही होगी,

क्योंकि यह सदानीरा (गण्डक) मुक्त बहा करती, उसकी धारें बदला करती थीं। भरसक-मरौड़ा थानों के ऊपर से होंते हुए हम गंगा की विशाल बालुका की ओर बढ़े, और उसे पार हो सवा 12 बजे पटना की धरती पर उतरे। श्री योगेन्द्र तिवारी, वीरेन्द्र बाबू, अद्भुतजी आदि वहाँ मौजूद थे। सामान लेकर योगेन्द्रजी के बँगले पर छज्जू बाग में पहुँचे। उनके ज्येष्ठ भाई और मेरे अभिन्न मित्र पं. गोरखनाथ त्रिवेदी छपरा से आकर इंतिजार कर रहे थे। उनकी पत्नी यहीं बीमार पड़ी थीं।

**पटना**–2 फरवरी को मित्रों से मिलने निकले। पुराने साथी भाई चन्द्रमासिंह रास्ते में मिल गए। चन्द्रमासिंह के देखते ही तरुणों के भव्य इतिहास नजर के सामने आ जाते हैं। लाहौर षड्यंत्र में मुखबिर बनकर क्रांतिकारियों को फाँसी दिलानेवाले देशद्रोही को बेतिया में मारकर उसके पाप का बदला चन्द्रमा भाई ने ही लिया था। उस समय क्रांतिकारी अपने काम के लिए पैसा जमा करने के वास्ते डाके डालते थे, लेकिन ज्यादातर सरकारी खजाने पर ही। चन्द्रमा भाई ने रेल के खजाने पर हाथ साफ किया। चाहते थे स्टेशन मास्टर हट जाए, लेकिन उसने पकड़ना चाहा, इस पर गोली दागनी पड़ी। संयोग ही समझिए जो फाँसी न मिलकर उन्हें आजन्म कालापानी की सजा मिली। बहुत वर्षों तक जेल में रहकर उन्हें छुट्टी मिली। वह विचारों में और आगे बढ़े। उन्हें मालूम हुआ कि कम्युनिज़्म (साम्यवाद) छोड़ कोई दूसरा रास्ता नहीं। वह कम्युनिस्ट बने तब से और बराबर मजूरों की सेवा में लगे हुए हैं। 40-42 के ढाई वर्ष के जेल-जीवन में हम एक साथ रहे। उस समय चन्द्रमा भाई से कितना मजाक होता था, कितनी आत्मीयता स्थापित हुई थी ? आज भी उनके प्रति वही स्नेह और सम्मान मेरे हृदय में था। वह पटना में नहीं रहा करते थे। यह संयोग था, जो मुलाकात हो गई। पार्टी के दूसरे साथियों से भी भेंट की। फिर अपने जिले के श्री गोरख पाण्डे का गूँगा स्कूल को देखने गये। वकील बनकर उन्होंने वकालत नहीं की, कुछ दिनों तक अंग्रेजी समाचार-पत्र में काम किया, फिर उनका ध्यान गया असहाय गूँगे बहरे बालकों की ओर। अपने ही उनके बारे में अध्ययन किया, और अपने ही एक किराए के मकान में पटना में आकर स्कूल खोल दिया। बेसरो-सामानी थी, लेकिन लगन उनके पास थी। उनकी पत्नी भी सहायक हुईं। अब यह देखकर बड़ी प्रसन्नता थी, कि उन्होंने अपना पक्का घर बना लिया है। सरकार भी स्कूल में सहायता देती है। 1942 में अभी वह तरुणाई की सीमा से पार नहीं हुए थे, और अब उनकी तीसरी पीढ़ी सामने आ गई है, दादा-दादी के स्थान लेनेवाले आ मौजूद हुए हैं। उन्होंने स्कूल दिखलाया।

वहाँ से लौटकर योगेन्द्रजी के यहाँ भोजन किया। छपरा के राजनीतिक जीवन के मित्र ब्रह्मचारी मंगलदेव (बेनिनापुरी) ने अपने सांस्कृतिक विद्यापीठ के देखने का आग्रह किया। हम उनके साथ गंगा के किनारे टेकारीकी कोठी में गए। 30 के ऊपर विद्यार्थी थे। उस समय संस्कृत बोलने का नियम था, और छः-सात महीने में विद्यार्थी उसमें अच्छी प्रगति कर लेते थे। वह संस्कृत के प्रचार तक ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहते थे, बल्कि चाहते थे, कि सात-आठ साल पढ़कर विद्यार्थी मैट्रिक की परीक्षा दे दे। मैंने कहा–इसमें आप यूरोपियन स्कूलों की कुछ अच्छी बातें ले लें। वहाँ अंग्रेजी का माध्यम रखते हैं, जिसका हमारी भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। संस्कृत हिन्दी का जीवन-स्रोत है। आप इसको जारी रखें। पीछे न जाने क्यों विद्यापीठ की इस विशेषता को छोड़ दिया गया।

उस दिन शाम को चाय श्री मोहनलाल विश्नोई के यहाँ पी। उन्होंने आग्रहपूर्वक 'नेपाल' को प्रकाशित करने के लिए माँगा। हमने उसके कुछ भाग को उसी समय दे भी दिया। यह 2 फरवरी 1953 की बात है, आज 1956 का अन्त है, तीन वर्ष हो गए, 'नेपाल' उनके पास पड़ा है। 304 पृष्ठ छापकर न आगे बढ़ने का नाम लेते हैं न पीछे। लेखक क्या करे ? इतनी मेहनत करके नए आँकड़ों के साथ जिस पुस्तक को तैयार करके दिया वह खटाई में पड़ी हुई है। उन्हें टेक्स्ट बुक और दूसरी छपाइयों से फुरसत नहीं है। कोफ्त होती है, ख्याल आता है कब ऐसी स्थिति से छुटकारा मिलेगा।

3 फरवरी को सम्मेलन-भवन में शिवपूजन बाबू से मिलने गये। कमला को कै आने लगी। गाड़ी अभी पूरी तरह से ठहरी नहीं थी, मैंने जल्दी बाहर जाकर उन्हें मुँह निकालने का मौका देना चाहा। गाड़ी चल नहीं रही थी, पर झोंक उसके साथ था। गिर गया, दाहिने घुटने में दो जगह खूब खून निकलने लगा। बन्दर की

खाज और डायबेटीज़वाले के घाव, दोनों ही खतरनाक होते हैं। खैर, शिवपूजन बाबू के कमरे में गया। उनसे थोड़ी देर बातचीत हुई। डायबेटीज़ उन्हें भी है। वह तो कभी चर्बीधारी नहीं हुए। डायबेटीज़ मुझे भी थी, लेकिन मैं उसे चिन्ता की बात नहीं समझता था, यद्यपि आज घाव के कारण वह चिन्ता की चीज हो गई थी। मैंने उनसे कहा, कि इन्सुलिन लीजिए और बिना परहेज के सब चीजें खाइये। आप शंकर के भक्त हैं, लेकिन क्या पता है, फिर दुनिया में आने का मौका मिले या न मिले, इसलिए मीठे-मीठे रसगुल्लों और नुक्ती के लड्डुओं से क्यों अपने को वंचित करें।

डेरे पर आकर पेनिसिलिन ले ली। अब तो यही ख्याल हुआ कि सीधे मसूरी चलें, क्योंकि इन्सुलिन, पेनिसिलिन, सिबाज़ोल पौडर तथा आइन्टमेन्ट की अब एकान्त आराधना कर ली थी। रास्ते में बनारस, लखनऊ तथा इलाहाबाद में भी आने के लिए चिट्ठियाँ लिख दी थीं, लेकिन वे सब प्रोग्राम छोड़ने पड़े। पर पटना के प्रोग्राम को तो छोड़ा नहीं जा सकता। उस दिन शाम के सवा 4 बजे वी. एन. कालेज के विद्यार्थियों के सामने भाषण देना पड़ा। अगले दिन (4 फरवरी) श्री शकुन्तलाजी मगध महिला कालेज़ में लड़कियों के सामने भाषण देने के लिए ले गईं। पैर मोड़ना मुश्किल था, कार पर जाने पर भी कुछ दूर चलना पड़ा। चाय साथी चन्द्रशेखर सिंह और उनकी पत्नी शकुन्तलाजी के यहाँ थी। चन्द्रशेखर पार्टी के मेम्बर होने से हमारे साथ घनिष्ठता रखते थे। युद्ध के दिनों में नजरबंद होकर हम एक साथ रहे थे। शकुन्तलाजी हमारे छपरा के पुराने सहकर्मी और मित्र नारायण बाबू की पुत्री थीं, जिन्हें मैं बचपन से ही जानता था। आज नारायण बाबू की पत्नी भी यहाँ उपस्थित थीं, और चन्द्रशेखर की माँ भी। पटना से छुट्टी ली। सबेरे 5 बजे की गाड़ी पकड़नी थी। योगेन्द्र बाबू ने हमें स्टेशन पहुँचाया। पंजाब मेल में जिस दर्जे का टिकट था, उसमें जगह नहीं थी, इसलिए निचले दर्जे में बैठे। अँधेरा ही था, जब कि ट्रेन चली। पटना और आरा के जिलों के भीतर से दौड़ती वह 8 बजे मुगलसराय पहुँची। 10 बजे देहरादून एक्सप्रेस आया। पंजाब मेल से चलते, तो आधी रात को लुकसर में पहुँचकर गाड़ी बदलनी पड़ती, और अब पैर में चोट लेकर जा रहा था, इसलिए गाड़ी को यहीं बदलना पसन्द किया। दोपहर बनारस पहुँचे। 'आज' में खबर छपी देखी, कि राहुल जी 2 बजे आ रहे हैं। और हम बनारस से आगे बढ़े। ट्रेन अयोध्या-फैजाबाद के रास्ते चक्कर काटकर चली। साथ बैठे सज्जन रात में यात्रियों के खून और लुटने की बात कर रहे थे। कमला घबराई। मैंने कहा-"दसियों हजार यात्रियों में एक दो की ऐसी नौबत आती है। हम क्यों वैसे अभागों में नाम लिखाएँ ?" फैजाबाद में कन्या विद्यालयों की कोई अफसर महिला अपने बच्चे के साथ चढ़ीं। उनके पतिदेव गाड़ी पर चढ़ाकर जब विदाई लेने लगे और ट्रेन चलने को हुई तो पत्नी ने पतिदेव की चरण-धूलि माथे पर लगाई। मैंने कमला से कहा-'देखो।' वह कितने ही बातों में प्राचीन पंथिनी हैं, लेकिन उन्हें भी यह पसन्द नहीं आया।

लखनऊ पहुँचते अँधेरा हो गया था। जगह मिल चुकी थी, इसलिए भीड़ होने पर भी हमें कोई पर्वाह नहीं थी। 6 फरवरी को हरद्वार में सबेरा हुआ। आगे इन्जनों की गड़बड़ी के कारण ट्रेन लेट होकर साढ़े 9 बजे देहरादून पहुँची। मेहताजी सहायता के लिए स्टेशन पर मौजूद थे। शुक्लजी के यहाँ ठहरने का ख्याल था, लेकिन पैर की चोट लेकर अब एक दिन भी और रुकना पसन्द नहीं आया, और 12 रुपये में टेक्सी पर बाजार से कुछ चीजें खरीद हम सीधे मसूरी पहुँचे। चढ़ाई में मोटर की सवारी करने पर कमला को अवश्य कै होती थी, लेकिन आज नहीं हुई। शायद जुकाम के कारण घ्राणशक्ति का बेकार होना कारण था।

**मसूरी**-किताबघर से रिक्शा लेकर चले। एक मोड़ पार करने पर बरफ मिलने लगी। आज दो हफ्ता पहिले-16-17 जनवरी को-बरफ पड़ी थी, जिसके अवशेष अब भी कई जगहों पर मिले, जो बतला रहे थे कि यहाँ फुट-डेढ़ फुट बरफ पड़ी होगी। घर पर पहुँचे, भूतनाथ स्वागत के लिए तैयार थे। यद्यपि मोटे नहीं हुए थे, पर एक महीने की गैरहाजिरी में काफी ऊँचे-लम्बे दिखलाई दे रहे थे।

कमला पिछले साल कलिम्पोंग हो आई थीं, अब फिर जाने के लिए उत्सुक थीं। मैंने आग्रह देखकर कहा, अच्छा जाओ।

अब घाव की अच्छी तरह देखभाल करनी थी : बाएँ घुटने में कोई बात नहीं थी, लेकिन दाहिना घुटना

मुड़ नहीं रहा था। इन्सुलिन और पेनिसिलिन के इन्जेक्शन रोज चलने लगे। कमला इन्जेक्शन लगाने में निपुण हो गई थीं। लेकिन, उनके जाने पर इन्जेक्शन की भी समस्या थी। इसी समय उनकी मझली बहिन के बीमार होने की चिट्ठी आई। उनका जाना निश्चित था। खुशहाल भी अब काम छोड़ना चाहता था, यह दूसरी समस्या थी, पर अब अपने घर में थे, इसलिए काम किसी न किसी तरह चल ही जाता।

15 रविवार को कमला कलिम्पोंग के लिए रवाना हुईं। अकेले इतनी लम्बी यात्रा नहीं की थी, और ट्रेन में खून और डकैती की बात सुनकर डरती भी थीं, लेकिन महिलाओं को पीहर बहुत प्रिय होता है। देहरादून में मेहताजी ने कलकत्तावाले मेल में बैठा दिया, और वहाँ से आने-जाने में महादेव भाई तथा सेंगरजी सहायता करने के लिए तैयार थे। लेकिन, जब तक कलिम्पोंग पहुँचकर उन्होंने चिट्ठी नहीं लिखी, तब तक चिन्ता बनी रही।

17 को ममगाईजी ने अपने लड़के की बात बतलाई। वह कांग्रेस के लिए कई बार जेल गये थे। म्युनिसिपैलिटी के मामूली कर्मचारी थे। बड़ी कठिनाई से अपने इकलौते बेटे को उन्होंने यहाँ के यूरोपियन स्कूल और पीछे देहरादून डी. ए. वी. कालेज में पढ़ाया। लड़का तेज, स्वस्थ था और सेना में जाना चाहता था। परीक्षा में उसका 24वाँ नम्बर आया, उसे प्रवेश मिलने का हक था, लेकिन 24 का 34 बना दिया गया, और उसके पास सूचना भी नहीं दी। दब्बू होता, तो बात उतने ही में खतम हो जाती, लेकिन लड़का दिल्ली पहुँचा। आफिसवाले पकड़े गए। "गलती हो गई" कहकर उसे स्थान दिया गया। अब भरती कराने में हजार रुपये से ऊपर खर्च की जरूरत थी। इस तरह के संकट उपस्थित कर क्या हमारी वर्तमान व्यवस्था लोगों को जबर्दस्ती बेईमान बनाने के लिए मजबूर नहीं कर रही है।

उसी दिन महादेव भाई के तार से मालूम हुआ कि दोपहर के 3 बजे कमला कलिम्पोंग के लिए रवाना हो गईं।

20 तारीख को 'पुरानी और नई पीढ़ी' पर एक लेख लिखा। मैं पुरानी पीढ़ी को बहुत बातों में अयोग्य समझता हूँ, कि समस्या का हल निकालना नई पीढ़ी के ही बस की बात है। पुरानी पीढ़ी शरीर से ही निर्बल और बूढ़ी नहीं है, बल्कि मानसिक तौर से भी वह अक्षम ही है। पहिले से गद्दी जमा लेने के कारण फैसला पुरानी पीढ़ी के हाथ में होता है। वह नई पीढ़ी को किसी तरह का सुभीता देना नहीं चाहती है, न उसकी योग्यता को स्वीकार करती है। पुरानी पीढ़ी यह नहीं समझती कि भाग्य का फैसला करना उनके हाथ में नहीं है–नई पीढ़ी के ऊपर उनका फैसला लागू नहीं होगा, बल्कि नई पीढ़ी का फैसला पुरानी पीढ़ी पर लगेगा। हाँ, अधिक संचित ज्ञान पुरानों के लिए कुछ सुभीता प्रदान करता है। उनके अध्ययन और तजर्बे की गहराई नई पीढ़ी को सहल सहायता पहुँचा सकती है। तो भी फोसीलों के पास बहुत सीमित अधिकार होना चाहिए। नई पीढ़ी को भी हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि हमें भी पुरानी पीढ़ी बन जाना है, तब हम भी वही गलती न करें।

23 फरवरी को अब घाव सूखता मालूम हुआ, जिससे कुछ सन्तोष हुआ। 13 मार्च को कमला भी कलिम्पोंग से लौट आईं। चिन्ता और उत्सुकता दूर हुई। अब तक घाव भी बहुत कुछ अच्छा हो गया था। फरवरी के अन्त में मसूरी नगरपालिका के चुनाव की धूम थी। कई सालों तक बोर्ड को हटाकर सरकार ने अपने हाथ में सारा काम ले रखा था। चुनाव में होटल के मालिक कप्तान कृपाराम अध्यक्ष-पद के लिए खड़े हुए थे। वही मसूरी कांग्रेस के प्रधान थे, इसलिए और साथ ही सबसे बड़े होटल के मालिक होने से उनकी पहुँच भी ऊपर तक थी, कांग्रेस का टिकट उन्हीं को मिला, हालाँकि उनसे भी पुराने कांग्रेस कार्यकर्ता वकील कुकरेती साहब मौजूद थे। उनके मुकाबिले में समाजवादी श्री रामकृष्ण वर्मा वकील। यदि कुकरेतीजी खड़े होते, तो निश्चय ही उनको हराना मुश्किल हो जाता। खड़े नहीं हुए।

3 मार्च से साथी स्तालिन बेहोश थे। उनका सारा जीवन एक महान काम के लिए अर्पित था। प्रथम महायुद्ध में लेनिन के दाहिने हाथ होकर उन्होंने काम सँभाला, और दूसरे में विजय प्राप्त करने का बोझ उनके ऊपर था। उन्होंने अपने जीवन के एक-एक क्षण का मोल चुका लिया था। 5 मार्च की रात के 9 बजकर

50 मिनट पर मास्को में उनका देहान्त हो गया। "ज्ञातस्य हि ध्रुवो मृत्यु..."–73 वर्ष की आयु पाकर वह विदा हुए। उनका यशः शरीर ही नहीं, कार्य भी सदा अमर रहेगा। मार्क्स ने जिस साम्यवाद का दर्शन दिया था और उसे पृथ्वी पर लाने का रास्ता बतलाया था, उसे पृथ्वी पर लाने में लेनिन सफल हुए। साम्यवादी क्रान्ति के लिए साधन जुटाना और उनको सफलतापूर्वक इस्तेमाल करना लेनिन का महान् काम था। लेकिन, साम्यवादी शक्ति को आर्थिक तौर से मजबूत कर उसे फासिस्तवाद के घातक संकट से पार कराने का महान् काम स्तालिन का था। मैं उनके समय दो वर्ष रूस में रह चुका था, वहाँ की प्रगति को मैंने आँखों के सामने देखा था। मुझे वहाँ की एक-एक बात प्रेरणादायक मालूम होती है। पर, स्तालिन की व्यक्ति-पूजा खटकती थी। लेकिन उसे ज्यादा दिन तक चलाया नहीं जा सकता था, क्योंकि व्यक्तिपूजा साम्यवाद के विरुद्ध थी। कितने ही बड़े इस एक दोष से स्तालिन के महान काम को नगण्य नहीं कहा जा सकता। इसी समय ख्याल आया कि स्तालिन पर कुछ लिखूँ। पहिले लेख लिखा। उससे संतोष नहीं हुआ–खास करके यह ख्याल करके हिन्दी में स्तालिन की कोई अच्छी जीवनी नहीं है, 'स्तालिन' को लिख डालने पर सोचा। लेनिन के बिना पूरी तौर से रूसी साम्यवाद को समझा नहीं जा सकता। 'लेनिन' भी लिखा। फिर महान द्रष्टा मार्क्स कैसे छोड़े जा सकते थे। 'मार्क्स' भी लिखा। एसिया के 60 करोड़ आदमियों को साम्यवाद के रास्ते पर आरूढ़ करने का जिसने महान काम किया, और जिसके पथ-प्रदर्शन में चीन आज इस तरह आगे बढ़ रहा है, उस माओ-त्से-तुंग की जीवनी को कैसे छोड़ा जा सकता था ? मैंने इस साल ये चारों जीवनियाँ लिख डालीं। अगले दो सालों में 'स्तालिन', 'लेनिन' छपकर निकल गईं, इस साल 'मार्क्स' भी प्रकाशित हो गया, और 'माओ' अगले साल जरूरत निकल आएगा।

मुमूर्ष पूँजीवाद और उसके समर्थक आततायी अमेरिकन थैलीशाह आशा लगाए बैठे थे कि स्तालिन ने सभी सूत्रों को अपने हाथ में रखा है, उनके मरते ही रूस का सारा शीराजा बिखर जाएगा। लेकिन, उन्हें उसमें पूरी तौर से निराश होना पड़ा।

11 मार्च को श्री शिवकुमार ढिंढा अपनी पत्नी मालतीजी के साथ आए। मालतीजी की कितनी ही कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में देखी थीं, पर यह नहीं मालूम था, कि वह बनारस के श्रद्धेय पं. रामनारायण मिश्र की नतिनी हैं। नाना ने दोनों के बारे में पत्र लिखकर मुझे परिचित कराया था। इस सुसंस्कृत दम्पती से अनेक बार मिलने का मौका मिला। ढिंढाजी अपने कार्य में बड़े दक्ष और निरालस थे। वह स्वयं भी उर्दू के कवि थे। निर्वाचन के बाद नगरपालिका में जो दलबन्दी और संघर्ष पैदा हुआ, उसका कुफल उन्हें भी भोगना पड़ा। कितने ही महीनों तक अध्यक्ष ने उन्हें निलम्बित कर दिया। फिर बहाली हुई। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब उन्हें खंडला (कच्छ) के नये नगर के सँभालने का काम मिला है। आजकल की व्यवस्था में योग्यता की कदर बहुत कम होती है।

15 मार्च को यहाँ के तार-टेलीफोन के अफसर गौतमजी आए। आदमी में बुद्धि है। लेकिन जब खप्त हो जाए, तो बुद्धि पूरी तौर से अपना काम नहीं कर सकती। हस्तरेखा और जोतिस पर उनका विश्वास है, उनके बारे में वे अपने को सर्वज्ञ समझते हैं, यह बुरी बात नहीं है। पर, वे यह नहीं देखना चाहते, कि कोई क्यों इन 'महान विद्याओं' को मानने से इन्कार करता है। इसी तरह ईश्वर को भी वे लाठी के हाथ से मनवाना चाहते हैं। उन्हें कविता का भी खप्त है। ऐसे कवियों को कोई कैसे समझा सकता है, कि तुकबन्दी कविता नहीं है। आप उर्दू में भी कविता करते हैं और हिन्दी में भी और कितने ही छन्दों पर अधिकार रखते हैं। मेरे पास उन्होंने लम्बी-लम्बी कविताएँ लिखकर कई बार भेजते हुए सीधी गाली छोड़कर पूरी तौर से आक्षेप किये। मैंने एक का भी जवाब नहीं दिया। उन्हें इसे अपनी विजय समझ लेनी चाहिए थी, लेकिन उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, और तुकबन्दियों में बराबर पत्र भेजते रहे। खैरियत यही है, कि मैं उनके यहाँ से ढाई-तीन मील दूर रहता हूँ, नहीं तो हर दूसरे-तीसरे आ धमकते।

आजकल चाहे कैसे ही भीषण जंगल में एकान्त में, आप चले जाएँ, लेकिन यदि रेडियो हो, तो दुनिया की गतिविधि को समझने में दिक्कत नहीं होती। 'हर्न-क्लिफ' में आते ही हमने रेडियो ले लिया था। वह अच्छी तरह काम करता रहा। 17 मार्च को एकाएक बिगड़ गया। अभी रेडियोवाली दूकानें आई नहीं थीं। मैंने स्वयं

उसे ठीक करने का विचार किया। आजकल के जमाने में बिजली-पानी के मामूली तौर से बिगड़ जाने पर यदि कोई उसे सुधार नहीं सकता, तो मैं समझता हूँ, वह आधुनिक काल का नागरिक नहीं है। इसी तरह रेडियो के बारे में भी मैं विचार रखता हूँ। लेनिनग्राद में रेडियो एक-दो बार बिगड़ा था, उसे ठीक करते अपने पड़ोसी मेजर को मैंने देखा था। इसलिए हिम्मत हुई। खोला। बल्ब खराब नहीं मालूम होते थे, फिर कहाँ दोष है ? जॉन को भी बुला लिया था, लेकिन आखिर में मेरे ही दिमाग ने बतलाया, कि भीतर डायल घुमानेवाला तार टूट गया है। तार खास तरह का लगता है। लेकिन, मैंने सोचा, कोई भी मजबूत धागा होना चाहिए। एक ऐसा धागा लेकर उसमें लगा दिया, और रेडियो काम करने लगा। हाँ, उसकी सूई अंकों पर ठीक तरह से नहीं लगती, उसके लिए और भी परिश्रम करने की जरूरत थी। हम अन्दाज से काम लेने लगे। उस दिन का मरम्मत किया हमारा रेडियो आज 16 दिसम्बर, 1956 को भी काम कर रहा है।

भूतनाथ बड़े हो मनमानी करना चाहते थे। अलसेसियन जैसे बड़े कुत्ते को पीट-पाटकर ठीक करना भी सम्भव नहीं है। मैं कई कहानियाँ इनके बारे में सुन चुका था। डाँटने पर मेरे ऊपर भी उसने झपट्टा मारा था, और कमला के ऊपर भी दो बार। मैं सोचने लगा, इससे पिण्ड छुड़ाना चाहिए। लेकिन, कमला मानने के लिए तैयार नहीं थीं।

यद्यपि घुटने का घाव अच्छा हो गया था, लेकिन जब तक पपड़ी सही-सलामत उखड़ न जाए, तब तक उसका क्या भरोसा ? सोते वक्त किसी समय असावधानी से कुछ हरी पपड़ी उखड़ आई। फिर चिन्ता होने लगी, लेकिन मैंने सावधान रहने का निश्चय कर लिया था। बीच-बीच में कुछ उदासी मन में उठ खड़ी होती थी, जिसका कुछ कारण कमला की जिद्द भी होती थी। उनसे बराबर शिकायत रहती थी, कि वे बुद्धि से क्यों काम नहीं लेतीं ? मैं चाहता था, उनकी पढ़ाई अविच्छिन्न रूप से चलती रहे। जब उन्हें सारे समय मोजा-स्वेटर बुनते और रेडियो सुनते देखता, तो बोलना ही पड़ता। 60 वर्ष की अवस्था में घुसने पर जान पड़ता है, जीवन का एक नया मोड़ आता है, और आदमी समझने लगता है, कि अब हमारा समय बीत चुका। मृत्यु किसी समय आ जाए, इसकी मुझे पर्वाह नहीं थी। मैं समझता था, इतने सालों में जो करणीय था, वह कर डाला। अब न मेरी जरूरत दुनिया को है, न मुझे उसकी। कभी ख्याल आता, "क्या ही अच्छा होता, यदि यहीं सोते मृत्यु आ जाती और 61वें साल के भीतर। अल्ला-अल्ला खैर सल्ला। न ऊधौ का लेना न माधो का देना।"

31 मार्च को पता लगा, कमला साहित्यरत्न की परीक्षा में पास हो गईं, एक बड़ी मंजिल पूरी हो गई।

6 अप्रेल की चिट्ठी में शान्ति भिक्षु ने लिखा, मैं गृहस्थ हो गया। स्वच्छन्द जीवन से बन्धन में आना मैं किसी का पसन्द नहीं करता। गृहस्थ बनने पर आदमी की काम करने की शक्ति आधी रह जाती है। शान्ति भिक्षु ने अब तक का सारा समय विद्या में लगाया था। लिखने-पढ़ने दोनों की उनमें प्रतिभा है, बौद्ध साहित्य और दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया है, और उसी के लिए उन्होंने तिब्बती और चीनी पढ़ी।

9 अप्रेल मेरे 60वें वर्ष की पूर्ति थी। पिछले साल कमला ने उसे पहिली बार मनाया था। अब की बार उसी दिन सबसे पहिले अमृत का बधाई का तार मिला। पिता गोवर्धन पांडे शायद 40वें वर्ष को भी नहीं देख सके। वही अवस्था पितामह जानकी पांडे की भी हुई। मैं उनसे ड्यौढ़ा जी चुका, इसलिए और का लोभ करना उचित नहीं। 11 को प्रयाग 'परिमल' ने भी तार से बधाई दी-"जीवहु लाख बरीस।" बधाइयाँ बुढ़ापे को याद दिला रही थीं। मुझे भी अन्तरावलोकन करने के लिए मजबूर होना पड़ा। सावधान होने लगा कि बुढ़ापे की प्रवृत्तियाँ तो मेरे भीतर नहीं आ रही हैं ?

**मेहर बाबा**-अब की अप्रेल में एक महीने के लिए हमारे ऊपर की कोठी 'हर्न हिल' में भारत के महान् सिद्ध अपनी शिष्य मण्डली के साथ आकर ठहरे। मेहर बाबा का नाम जब-तब मैंने सुना था। लेकिन, सिद्धों-महात्माओं के ऊपर न मेरी आस्था रह गई थी, और न उनकी ओर आकर्षण था, इसलिए मेरी कोई जिज्ञासा भी नहीं थी। लेकिन, जब वे रोज टहलने के लिए हमारे फाटक के सामने से गुजरते, तो उधर नजर न जाए, यह कैसे हो सकता था ? मैं अच्छी तरह जानता था, कि मेहर बाबा, अरविन्द और रमण महर्षि से किसी तरह भी कम नहीं हैं। यदि वे दोनों उनसे बाजी मार ले गए, तो उसका कारण यही था, कि वे हिन्दू

थे और हमारे देश में हिन्दू ही अधिक बसते हैं। भक्ति में भी यह संकीर्ण साम्प्रदायिकता है। नन्दू मेहर बाबा के पास काम करता था। वह बतलाता था–'हर्न हिल' कोठी की तरफ किसी को जाने की आज्ञा नहीं है। अपनी हरेक चीज को रहस्यमय बनाना भारतीय साधुओं की टेकनीक है। मेहर बाबा बाहर आते थे, सड़क पर भी चलते थे। लोगों से मिलने में उन्हें उतना एतराज नहीं था। हाँ, बीस वर्ष से उन्होंने बोलना छोड़ दिया था। शिष्यमण्डली में उच्च या मध्यमवर्ग के बीस-बाईस स्त्री-पुरुष थे। अधिकांश पारसी थे, कुछ हिन्दू, अमेरिकन और यूरोपियन भी थे। बिना विज्ञापन के ही मसूरी में ख्याति हो गई थी। जब-तब लोग दर्शन करने के लिए पहुँच भी जाते, लेकिन उन्हें निराश होना पड़ता। कुछ निराश हुए मुझसे शिकायत करते थे। मैं उन्हें कह देता, शाम-सवेरे वह टहलने निकलते हैं, उस समय दर्शन कर लीजिये। 'किलडेर' की पूसंग सहोदराएँ मेहर बाबा की पड़ोसी थीं। वे फाटक की सामने से रोज उन्हें जाते देखती थीं। उन्होंने यह भी देखा था, कि मेहर बाबा की भक्तिनों में अमेरिकन और यूरोपियन महिलाएँ भी हैं। क्यों कोई ईसाई किसी हिन्दुस्तानी सिद्ध के पीछे-पीछे फिरे, यह उनके लिए आश्चर्य ही नहीं अप्रसन्नता की भी बात थी। रसोई-दारिन एक एंग्लो-इंडियन भक्तिन थी। उनकी आलोचना सुनकर मैंने कहा–संतों और सिद्धों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। वे यह भी कहती थीं, कि क्यों स्त्रियाँ ही उन्हें घेरे रहती हैं। जब बाहर घूमने निकलते थे, तो मैं भी देखता, छत्रधारिणी और दूसरी अनुचराएँ स्त्रियाँ ही होतीं। उनके अपने निवास-स्थान में पुरुष-प्रवेश निषिद्ध था। इस पर भी नुकताचीनी होती थी। उन्हें मालूम नहीं था, कि हमारे देश के परम सिद्ध अरविन्द एक युग से लोगों को साल में एक ही दो बार दर्शन देते थे। हमेशा बन्द रहने के कारण डायबेटीज़ हो जाना स्वाभाविक था। उनके यहाँ चौबीस घंटे की ड्यूटी करने का सौभाग्य एक महिला को ही मिला था। सिद्धों में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं रह जाता। ब्रह्मलीन लोग परम अद्वैतवादी होते हैं। यदि मेहर बाबा के पास की महिलाओं के साथ पुरुषों का सम्पर्क कम रखने दिया जाता था, तो इसके कारण ढूँढ़ने की जरूरत नहीं थी। मैं मेहर बाबा का पक्ष ले रहा था और पूसंग बहनें उनकी नुकताचीनी करने पर तुली हुई थीं। कह रही थीं–मौन और एकान्तवास के इतने प्रेमी हैं, तो बँगले में टेलीफोन क्यों लगवा रखा है, क्यों रेडियो सुनते हैं और क्यों अखबारों को पढ़ते हैं?

मेहर बाबा के साथ एक ईरानी भी थे। उनसे फारसी में कितनी ही बार बातें होतीं। जब मैंने जिज्ञासा नहीं प्रकट की और न दर्शन की मेरी इच्छा ही देखी, तो उनके भक्तों ने इंग्लैण्ड और अमेरिका में छपी बीस के करीब मेहर बाबा-सम्बन्धी पुस्तकों का ढेर मेरी मेज पर लगा दिया। उनसे मालूम हुआ, कि देश और विदेश में मेहर बाबा के कितने भक्त हैं। एक पुस्तक को मैंने ध्यान से पढ़ा, जिसमें भारतवर्ष के कोने-कोने के पागलों का विवरण दिया गया था, कुछ के फोटो भी थे। मेहर बाबा ने उन सबको सिद्ध बतलाया था। यदि इन पागलों के आस-पास के रहनेवाले लोगों से पूछा जाता, तो वे भी कसम खाकर यही बात कहते। पागल एब-नार्मल होते हैं। यदि वे अहिंसक हों, तो लोगों की आस्था उनके ऊपर और भी बढ़ जाती है। उनमें कोई-कोई प्रतिभा के भी धनी होते हैं, जिसकी झलक कभी-कभी बोलचाल में मिल जाती है। कुछ धर्म के उन्मादी भी होते हैं। मेहर बाबा ने इस सूची को तैयार करके एक बड़ा काम किया था, लेकिन विवरण अपूर्ण था।

कमला अब अन्तर्वत्नी थीं। एक और बड़ी जिम्मेवारी हमारे ऊपर आने जा रही थी। मैं नहीं चाहता था, वह और हाट करने जाएँ। एक बार वह गिर चुकी थीं, समझाने पर मानने के लिए तैयार नहीं थीं। मई के प्रथम सप्ताह में सीजन का प्रभाव देखा जाने लगा। हमारे पड़ोसी बँगले को मेहर बाबा खाली करके जाने लगे थे। उन्होंने हमारे फाटक के पास आकर विशेष तौर से दर्शन देने के लिए बुलाया था, मैंने भी उससे लाभ उठाया। हमारे घर में अब मेहमान आने लगे थे। 17 मई को सत्या गुप्ता आई। कौरवी लोक-गीतों और लोक-कहानियों को जमा करने की बात कहते हुए मुझे यह आशा नहीं थी, कि वह इसमें लग जाएँगी। बड़ी प्रसन्नता हुई, जब उन्होंने 1300 गीतों और दो सौ से ऊपर इकट्ठी की हुई कहानियों को दिखलाया। उनमें कितनी ही कला की दृष्टि से भी उत्कृष्ट थीं। हाँ, उच्चारण को ठीक से लिखने की ओर जितना ध्यान देना चाहिए था, उतना उन्होंने नहीं दिया था। उनका उत्साह भी बढ़ा था। स्त्रियों के ही पास यह निधि अधिकतर रहती है, और उनका संग्रह जितना आसानी से शिक्षित स्त्रियाँ कर सकती हैं, उतना पुरुष नहीं। काम को और

आगे बढ़ाने के लिए मैंने उन्हें सलाह देते कहा—तुम पी-एच. डी. के लिए इसी पर तैयारी करो। पीछे वह इलाहाबाद युनिवर्सिटी में डी. फ़िल्. में भरती भी हो गई। 18 मई को मेरे बिहार के एक परिचित जमींदार किसी हेप्नोटिस्ट का पल्ला पकड़कर यहाँ पहुँचे। उनके सिद्ध गुरु असाध्य बीमारियों को अपनी दिव्य शक्ति से दूर कर दिया करते थे। मैंने उन्हें बतलाया, हमारे पड़ोस में भी एक दिव्य पुरुष आए हुए हैं, उनका भी दर्शन कीजिये।

19 मई को जामिया के अंग्रेजी के प्रोफेसर मेरे मित्र चौहान आए। उन्होंने बतलाया, पिछले साल जिस इतिहास-अध्यापक को मैंने 'वोल्गा से गंगा' (उर्दू) दी थी, उसमें मुसलमान लड़की से हिन्दू के ब्याह करने की बात देखकर उन्होंने उसे फाड़ डाला। आजकल के युग में तरुण और शिक्षित ऐसे ख्याल अपने दिमाग में रख सकते हैं, यह आश्चर्य की बात थी।

22 मई को वीरेन्द्र का पटना से भेजा लीचियों का पार्सल आया। लीची और आम के फलों का मौसिम आ गया। मई के अन्त तक मसूरी अब जम गई। शाम के वक्त माल रोड पर भीड़ होने लगी। व्यवसायी लोग अब भी संतुष्ट नहीं थे। कह रहे थे, लोग तो हैं, लेकिन पैसा नहीं खर्च कर सकते।

श्री भूदेव विद्यालंकार—बलदेवजी के बड़े भाई—से कानपुर में पीछे भी भेंट हुई, लेकिन मुझे उनका 1917 के आसपास का ही चेहरा याद आता है; जब मैं महोबा आर्यसमाज में ठहरा था, और वह गुरुकुल से अभी-अभी स्नातक होकर आये थे। दोनों भाई एक ही जगह पहाड़ पर नहीं जाते, इसलिए अबकी बार बलदेवजी नहीं आये।

27 मई को वैशाख पूर्णिमा थी। दफ्तरों में छुट्टी देखकर अनुमान हुआ, कि शायद भारत सरकार ने बुद्ध जयन्ती को राष्ट्रीय छुट्टियों में गिन लिया है।

'प्रमाणवार्तिकभाष्य' छप चुका था, अब उसकी भूमिका लिखनी थी। डा. अल्तेकर ने तिब्बत से लाये बौद्ध संस्कृत ग्रंथ 'भिक्षुप्रकीर्णक' को सम्पादित करने के लिए लिखा था। मैंने स्वीकृति दे दी।

श्री कन्हैयालाल सहल पिलानी से यहाँ आये। वह अपने साथ राजस्थानी लोक-गीत के गायक—पिलानी के एक अध्यापक तथा लोक-गीतों के गायक—को लाये। मालूम हुआ कि वहाँ पर लोक-गीतों के संग्रह का काम हो रहा है। स्वामी ने कुछ गीतों के नमूने सुनाये, जो बड़े ही करुण थे। मालूम हुआ, राजस्थान में भी 'निहाल्दे' गाई जाती है, और इतनी विशाल है कि सारी वर्षा गाते हैं। यह जानकर और प्रसन्नता हुई कि वहाँ की 'निहाल्दे' को उस्तादों ने नहीं छेड़ा है, जैसा कि कौरवी में देखा जाता है। कौरवी के उस्तादों ने 'निहाल्दे और सुल्तान' को नया रूप दिया, जिसके कारण परम्परा से कंठस्थ आये गीत की विशेषता बहुत कुछ लुप्त हो गई। लोक-गीतों के सम्बन्ध में राजस्थान बहुत समृद्ध है। कारण यही है, कि सामन्तवाद वहाँ रियासतों के विलयन के समय तक बहुत कुछ अक्षुण्ण चला आया। लोक-गीतों के पेशेवर गायक वहाँ मौजूद थे, जिनका पोषण और संवर्धन राजस्थानी राजा और ठाकुर करते आये थे। अब वह हाथ उठ गया है, इसलिए लोक-गीतों की समृद्ध परम्परा के नष्ट होने का डर है। यद्यपि लोक-गीतों के संग्रह की ओर अब ध्यान गया है, लेकिन उतनी निधि को जमा करके संरक्षित करने के लिए जितने धन और परिश्रम की आवश्यकता है, वह सरकार के इधर ध्यान देने से ही हो सकता है।

डा. राम हमारे मुहल्ले के हैं। मैं 1950 में यहाँ आकर रहने लगा था, और उन्होंने 1946 में ही बँगला खरीद लिया। उनकी पत्नी केरलीया हैं। 31 मई को उनके पास गया। बेचारे चिररोगी हैं। गर्मियों के तीन-चार मास यहीं बिताते हैं। फरुखाबाद घर है, और प्रेक्टिस भी अच्छी है। पास में लाला कुन्दनलाल की बीवी को भी देखने गया। बुढ़िया के दोनों पैरों के घाव वर्षों चलते रहे। साथ में डायबेटीज़ भी थी, और सूई लेना छोड़कर सेठानी दूसरी दवाइयाँ करती रहीं। घाव बन्द हो गया। फिर पिंडलिय्रों में आग लग गई। दर्द के मारे बुढ़िया कराहती। पैर तो बिल्कुल ही सूखकर काँटा हो गये थे, अब चारपाई पकड़े थीं। कह रही थीं, अब तो भगवान् बुला लें।

1 जून को 'लेनिन' लिखना शुरू किया। आज सत्येन्द्रजी आये। दोपहर को वैद्य रामरक्ष पाठक उपाध्याय, आचार्य यादवजी त्रीकमजी के साथ आये। चिकित्सा-चूड़ामणि यादवजी का नाम उनके शिष्यों से मैं बिहार में

सुन चुका था। आधुनिक काल में आयुर्वेद के ग्रंथों के उद्धार और हमारी प्राचीन-चिकित्सा-पद्धति के प्रसार के लिए जितना काम यादवजी ने किया उतना किसी ने नहीं किया। प्राचीन परम्परा के मर्मज्ञ और अनुगामी होते हुए भी वह आधुनिक प्रवृत्तियों के अन्धे विरोधी नहीं थे। वस्तुतः आयुर्वेद की बहुत-सी मौलिक देने हैं, जिन्हें हमें छोड़ना नहीं है, और जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है। आधुनिक चीन का रुख इसमें अच्छा है। वह वैद्यों को पुरानी परिपाटी से शिक्षा देकर फिर आधुनिक पद्धति के समझने का भी प्रबन्ध करता है। औषधियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने में वैद्य और डाक्टरों के सहयोग से आधुनिक ढंग से औषधियों का परीक्षण-मूल्यांकन होता है। रोगों के निदान में भी डाक्टरों को वैद्यों की विधि से परिचित होने की प्रेरणा दी जाती थी। हमारे चार हजार वर्ष के सांस्कृतिक इतिहास में वैद्यों ने अपने परीक्षण द्वारा बहुत-से तत्व और औषधियाँ प्राप्त की हैं, जिनमें से कुछ के गुणों को डाक्टरों ने भी स्वीकार किया है। एक बार तो हमारी सारी औषधियों का विश्लेषण होना चाहिए।

4 जून को घुमक्कड़ शिव शर्मा के पिता वैद्य श्री देवराज शर्मा आए। लड़के के पीछे बावले थे। कह रहे थे, उसकी माँ बहुत रोती है, शिव कभी पटियाला आता भी है, तो घर नहीं आता। मैंने कहा–आप उससे जितना अधिक चिपकना चाहेंगे, उतना ही वह दूर भागता रहेगा। ऐसा न करने पर, वह अपने-आप ठीक रास्ते पर आ जायेगा। सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है, कि आप उसकी शादी का प्रयत्न न करें। आजकल के युग में शादी के बारे में लड़के माँ-बाप के वचन देने का ख्याल नहीं करा करते। पीछे मैंने भी शिव शर्मा से कहा : बन्धन में मत पड़ो, लेकिन पिता-माता को शत्रु समझना बहुत बुरा है।

सत्या गुप्ता के पिता श्री वेदमित्र जी बहुत वर्षों से एकाकी जीवन व्यतीत करते थे। अभी वह प्रौढ़ नहीं हो पाये थे, कि उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। गायत्री और सत्या दो पुत्रियाँ थीं। खानदान पुराना आर्यसमाजी था। उन्होंने धार्मिक स्वाध्याय और सत्संग में अपना समय बिताना शुरू किया, लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाई। गायत्री डाक्टर हो गईं और सत्या एम. ए.। गायत्री ने एक विवाहित डाक्टर से अपनी मर्जी से ब्याह किया। पिता को यह नहीं पसन्द हुआ। पुत्री को जिन्दगी-भर के लिए दुःख भोगना पड़ा। वह चाहते थे, सत्या का ब्याह हो जाये, पर सत्या तैयार नहीं थीं। गर्मियों में वह चार-पाँच महीनों के लिए मसूरी आ जाते थे। तीतरों (सहारनपुर) में अपना घर था, लेकिन वहाँ गये वर्षों हो गये। जाड़े हरद्वार या ऋषिकेश में बिता देते। इधर उनको हृदय का रोग हो गया था। उस दिन मैं उन्हें देखने गया। पुत्रियों की चिन्ता उनके लिए बुरी है। अपनों की हार्दिक सान्त्वना ही उसे हटाने में सहायक होती है। वेदमित्र जी आर्यसमाजी हैं। आर्यसमाज में ऐसे सन्त नहीं हैं, जो उन्हें आध्यात्मिक संतोष दे सकें, इसलिए जिस किसी संत के पीछे फिरते रहते हैं। मुझसे भी इसके बारे में पूछा। मैंने कहा–"अनीश्वरवादी नास्तिक का नुस्खा अब इस उमर में आपके लिए कारगर नहीं होगा। मनुष्य के मन की अलग-अलग भूमिकाएँ हैं, इस भूमिका में पहुँचने के लिए आपको फिर से स्वाध्याय और मनन करना होगा। और आपकी उमर 55 साल हो गई। वजन घटाने की कोशिश कीजिए।" निरामिषाहारियों के लिए यह और भी मुश्किल है, क्योंकि उनके प्रिय भोजनों में चीनी और घी की बहुतायत होती है, जो वजन के बढ़ाने में परम सहायक होते हैं। वेदमित्रजी बहुत वर्षों से कम्पनियों में लगे अपने रुपये के काम पर ही गुजारा करते हैं, और वह उनके लिए काफी है।

इलाहाबाद के प्रो. महेशनारायण सक्सेना प्रायः हर साल मसूरी आकर यहाँ गर्मियों की छुट्टियाँ बिताते हैं। प्रयाग से ही उनसे परिचय था। 7 जून को देर तक बात होती रही। संगीत की तरफ उनकी स्वाभाविक रुचि थी। एम. एस-सी. प्रथम वर्ष पास किया था, लेकिन उधर जाना नहीं था, इसलिए एम. ए. पास किया। फिर उन्होंने अपना सारा ध्यान संगीत की ओर लगाया। कितने ही दिनों तक इलाहाबाद में एक संगीत विद्यालय में अध्यापक रहे। अब युनिवर्सिटी में हैं। ऐसा व्यक्ति प्राच्य और पाश्चात्य संगीत के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयुक्त था, और साथ ही वह हमारे लोक-गीतों का भी गम्भीर अध्ययन कर सकता था। उन्होंने बतलाया, मैंने अपनी डी. फिल्. के लिए 'संत कवि और संगीत' को लिया है। यह महत्वपूर्ण विषय था। विद्यापति से लेकर हमारे संत कवि ही गीतों के पद नहीं बनाते थे, बल्कि यह परम्परा आठवीं सदी के पूर्वार्ध के आदि

सिद्ध सरह तक जाती है। वस्तुतः हमारा बहुत-सा संगीत जिन पदों के रूप में सुरक्षित है, वह सिद्धों और सन्तों के ही हैं। उन्होंने अपने हरके पद के साथ रागों का उल्लेख किया है। नोटेशन (स्वर-लिपि) उस समय नहीं थी। इन पदों के द्वारा उन रागों का आकार निश्चित करना एक महत्वपूर्ण बात है। वस्तुतः शिष्ट संगीत और लोक-संगीत के ऐतिहासिक अनुसन्धान का काम हमारे यहाँ नहीं के बराबर हुआ। मैंने उन्हें यह भी कहा, कि अन्तर्राष्ट्रीय स्वर-लिपि के प्रचार की ओर भी ध्यान देना चाहिए, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय संगीत-समाज में इसी के द्वारा हम आसानी से अपनी चीजों को पहुँचा सकते हैं।

उसी दिन शाम को स्वामी गंगेश्वरानन्द जी आये। नेत्रविहीन हैं। नेत्रविहीन सभी प्रतिभाशाली हों, यह आवश्यक नहीं, लेकिन जो प्रतिभाशाली होते हैं, वह असाधारण होते हैं। पं. मुखलालजी भी इसके उदाहरण हैं। स्वामी गंगेश्वरानन्द जी ने संस्कृत शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया है। मेरा परिचय उनसे यद्यपि पीछे हुआ, पर नाम मैं पहिले ही सुन चुका था। उन्होंने 1922 में गया कांग्रेस में मेरा भाषण सुना था, और उसी समय से परिचित थे। संस्कृत की गम्भीर विद्वत्ता के साथ-साथ उनमें कूप-मंडूकता और संकीर्ण-साम्प्रदायिकता नहीं है। संस्कृत विद्या के प्रसार का भी उनको ध्यान है, इसका प्रमाण बनारस का उदासी संस्कृत विद्यालय है। अहमदाबाद में चार-पाँच लाख लगवाकर उन्होंने वेदमन्दिर बनवाया। मैंने उनसे कहा, संस्कृत के बहुत-से ग्रंथ अप्रकाशित हैं, कितने ही प्रकाशित होकर अब दुर्लभ हो गये हैं। इन्हें चिरस्थायी हाथ के कागज पर निकालना चाहिए। दस-बीस ग्रंथों तक तो आशा नहीं रखनी चाहिए, कि यह प्रकाशन स्वावलम्बी हो जायेगा, पर आगे स्वावलम्बी होने की भी सम्भावना है। साथ ही वेदान्त के मूल ग्रंथों का हिन्दी में ऐसा अनुवाद होना चाहिए, जिसमें मूल का आनन्द आये, टीका न मालूम हो। स्वामी सत्यस्वरूपजी उनके शिष्यों में हैं, जिनसे साल में एक-दो बार मुलाकात हो जाया करती थी। अब भी मैं इन बातों की ओर उनका ध्यान दिलाता रहता हूँ।

राकेश जी कृत 'कामायनी' का संस्कृत अनुवाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में छपने के लिए गया था। मुझे आशा थी कि अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में हिन्दी के प्रभाव को मनवानेवाले इस ग्रंथ का प्रकाशन अब हो जायेगा, पर वहाँ से लौट आया। फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन से आशा हुई। महीनों पाण्डुलिपि वहाँ रही। अब चिट्ठी आई, कि आदाता ने उसे प्रकाशित करने की स्वीकृति नहीं दी। आदाता वकील हैं, उन्हें साहित्य से विशेष रुचि नहीं है। फिर आदमी को सहज ही ख्याल हो सकता है, कि हिन्दी की संस्था को संस्कृत के ग्रंथ के प्रकाशित करने से क्या मतलब ? वह यह कैसे समझ सकते हैं, कि हिन्दी के ग्रंथरत्न का संस्कृत में अनुवाद अहिन्दी भाषाओं के धुरंधर साहित्यिकों के पास पहुँचकर अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। हमारे कितने ही महान् ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवादों ने एक विस्तृत क्षेत्र में उनकी महिमा पहुँचाई है, यह हम देखते ही हैं।

10 जून को 'हर्मिटेज' सरकार की ओर से नीलाम हुआ। यह 'हर्मिटेज' बँगले का काटेज या कुटीर था। 'हर्मिटेज' को बिड़लों ने लेकर लाखों रुपया लगा उसे बिड़ला निवास बना दिया। उस समय काटेज एक मुसलमान सज्जन की सम्पत्ति थी जो 25-30 हजार से नीचे उतरने के लिए तैयार नहीं थे। विभाजन के समय वह पाकिस्तान भाग गये। बँगले का सारा फर्नीचर और सामान लोग उठा ले गये, छत-दीवार और दरवाजे रह गये। दरवाजों को भी लोग निकालने लगे थे। चौकीदार नहीं तो कौन उनकी रक्षा करे ? नीलाम में बोली बोलने के लिए कितने ही लोग आये थे। श्री मोहिनी जुत्शी भी पाँच हजार तक जाने के लिए तैयार थीं। डा. राम के आदमी ने साढ़े सात हजार तक बोली बोली। बिड़ला की ओर से जब आठ हजार दिया गया, तो फिर किसी की हिम्मत नहीं हुई। उस दिन तो बात तै नहीं हुई, पीछे नीलाम के अफसर ने कह दिया, कि दस हजार से कम में हमें बेचने का अख्तियार नहीं है। अगले नीलाम में दस हजार में मकान बिक गया। उस समय अब भी मकानों की कीमत थी। पिछले दो वर्षों में वह और गिरी। बिड़ला-निवास से लगा होने के कारण वह दस हजार रुपये में बिक सकता। जुत्शी जी हमारे पड़ोस में रहने के ख्याल से ही उसे ले रहे थे।

एक दिन बादल रहकर 14 फरवरी की रात से ही वर्षा होने लगी। सबेरे भी कुछ रही, फिर दिन-भर खुला रहा। हवा और वर्षा मसूरी के तापमान पर जल्दी प्रभाव डालते हैं। उस दिन तापमान इतना उठ गया,

कि एक-दो घड़ी के लिए गरम कपड़ा और कंटोप पहनना पड़ा। अब बादल और वर्षा की सम्भावना थी।
यद्यपि यह नियम नहीं है, कि 15 जून से वर्षा आरम्भ ही हो जाये। सर्ववाले अपने तजर्बे से 26 जून को
वर्षारम्भ मानते हैं।

16 जून को 'लेनिन' समाप्त हो गया। जब-तब वर्षा हो जाने से सैलानियों को घर याद आने लगे।
वह धड़ाधड़ मसूरी छोड़ने लगे।

'स्तालिन', 'लेनिन' और 'मार्क्स' की जीवनियों को समाप्त करने के बाद 22 जून से चौथी पुस्तक 'माओ'
में मैंने हाथ लगाया। उसी दिन उन्नाव के एक मुसलमान वकील साहब आए। अंग्रेजों के शासनकाल में देश
में फूट पैदा करने के लिए जो मुसलमानों को शह देते रहे, उन्हें यह समझना मुश्किल है कि नये युग में पुराने
बिलगाव के ख्याल को सहायता नहीं दी जा सकती। उनके लिए केवल वही रास्ता है, जिसे अकबर ने चार
शताब्दियों पहले दिखलाया था। अंग्रेजों के चले जाने के बाद और पुरानी मनोवृत्ति के कारण देश के विभक्त
हो जाने पर शिक्षित मुसलमानों को किंकर्तव्यविमूढ़ता-सी आ गई है। उनमें से कितने ही निराश होकर पाकिस्तान
भाग गए। पर, सब क्या अधिकांश भी वहाँ भागकर नहीं जा सकते। जिनके भाईबन्द पाकिस्तान चले गए
हैं, वह वहाँ की कठिनाइयों को जानकर अब समझने लगे हैं कि हमारे लिए पाकिस्तान नहीं, हिन्दुस्तान ही
अच्छा था। यह अवस्था उन्हें सह्य नहीं होती कि उन्हें 'कोई नहीं' समझा जाए। वकील साहब यह सब दिक्कतें
बतला रहे थे। मैंने कहा : इस्लाम को खतरे में कहना गलत नारा है। हमारे देश में सभी धर्म स्वतन्त्रतापूर्वक
रह सकते हैं, हमारी पुरानी परम्परा भी इसके अनुकूल है। पर, बिलगाव की मनोवृत्ति को हटाना पड़ेगा, और
मुसलमानों को अपनी विशेषता उतनी ही माननी होगी, जितनी ईसाई, बौद्ध, जैन या हिन्दू मानते हैं।

आजकल योग्यता नहीं, बल्कि जाति और सम्बन्ध की नौकरियों में पूछ है। पं. गयाप्रसाद शुक्ल के सुपुत्र
श्री विश्वनाथ शुक्ल ने एम. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। देहरादून डी. ए. वी. कालेज में पढ़े
और वहीं उनका घर है। यहाँ अध्यापकी मिलती, तो घर में रहने के कारण बहुत-से सुभीते थे। लेकिन, डी.
ए. वी. कालेज में कायस्थों का प्रभुत्व है। कायस्थ तीसरे दर्जे का एम. ए. भी विभागाध्यक्ष हो सकता है।
अध्यापकों की जरूरत थी। विज्ञापन दिया जाए और कोई योग्यतम साबित हो, तो अपने आदमी का रास्ता
रुक जाएगा। सबसे अच्छा तरीका यह समझा गया कि उस समय यह कहकर बात टरका दी जाए कि अभी
आदमी की जरूरत नहीं है। योग्य व्यक्ति अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते, वह किसी घाट लग
जाएँगे और फिर अपने आदमी को चुपके से बैठा दिया जाएगा। विश्वनाथजी अपने विषय के बहुत योग्य
थे, इसलिए उन्हें बरेली कालेज में काम मिल गया और एक ही दो वर्ष बाद वह अहमदाबाद में हिन्दी-विभाग
के अध्यक्ष होकर चले गए। उनके पिता प्रो. गयाप्रसाद शुक्ल, देहरादून में अपना मकान बना यहीं रहते हैं।
घर छोड़कर अहमदाबाद जाना विश्वनाथ को रुचिकर थोड़े ही हो सकता था ? देहरादून के डी. ए. वी. कालेज
की शिकायत क्यों की जाए, सभी जगह यही बात है। सम्बन्ध या खुशामद काम करती है। खुशामद में जो
योग्य साबित हो, वह योग्यतमों को भी धक्का दे आगे बढ़ जाता है। हमारे प्रान्त के एक टुटपुँजिया अर्थशास्त्री
हैं, जो मन्त्री के कृपापात्र होने के कारण युनिवर्सिटी के विभागाध्यक्ष बन गए। ऐसे आदमियों को सम्माननीय
गद्दियों पर बैठता देखकर सचमुच दिल जबर्दस्त बगावत करने लगता है। एक दूसरे तरुण को जानता हूँ।
आई. ए. एस. में वह हरेक विषय में सबसे अधिक नम्बर पानेवाले तीन-चार उम्मीदवारों में था। उसे पास
होना चाहिए था। लेकिन नेहरूशाही ने पर्सनल्टी (व्यक्तित्व) सबसे आवश्यक चीज मानी है, जिसके लिए शायद
300 मार्क हैं। पर्सनल्टी की परीक्षा कुर्सी पर बैठे लोग जबानी करते हैं, और उनका ही फैसला आखिरी है।
कोई भी आदमी देखकर उस तरुण को कह सकता है कि व्यक्तित्त्व में वह तरुण किसी से कम नहीं है, लेकिन
उसको व्यक्तित्त्व में 10 नम्बर दिया गया। अन्धेर नगरी चौपट राजा, न्याय की पूछ कहाँ हो सकती है ?
विशेषकर जबकि नेहरूजी इस संदिग्ध व्यक्तित्त्व-परीक्षा के भारी समर्थक हैं। उसी तरुण ने एक विषय पर
पी-एच. डी. की थीसिस लिखी। बहुत अच्छी थी, यह इसी से सिद्ध है कि एक प्रकाशक ने इस ग्रन्थ को अंग्रेजी
में प्रकाशित किया। एक युनिवर्सिटी में भोंदू विभागाध्यक्ष बन गए। तरुण ने दूसरा निबन्ध लिखकर, दो साल

हुए, उनके पास दिया। खुशामदी दरबारी को इतनी फुरसत कहाँ ? अभी उनको शायद वाइस-चांसलर बनने की आशा है। इसलिए उन देवताओं को रिझाना आवश्यक है, जिनकी कृपादृष्टि से वह इस गद्दी पर पहुँच सकते हैं। दो वर्ष से उन्हें फुरसत नहीं हुई कि थीसिस को परीक्षकों के पास भेजें। एक तरफ एक तरुण के जीवन का सवाल है, और दूसरी तरफ इस आदमी का यह कमीनापन। "धिक् व्यापकं तमः।"

24 जून को साथी यज्ञदत्त शर्मा अपनी पत्नी सरलाजी के साथ आए। नौ-दस वर्ष के भीतर इतना परिवर्तन हो सकता है, यह मुझे विश्वास नहीं था। दस साल पहिले उन्हें दिल्ली में देखा था। साथी यज्ञदत्त एक कालेज में प्रोफेसर थे। कम्युनिज़्म ने लाखों की तरह उन्हें फकीर बनाया। अपनी योग्यता और कर्मठता को उन्होंने गरीबों के उद्धार में लगाया। वह दिल्ली के कम्युनिस्ट नेता हैं। उनकी पत्नी सरला गुप्ता अपने विद्यार्थी-जीवन से ही विद्यार्थियों, फिर स्त्रियों और कमेरों के संगठन में काम करने लगी थीं। अब दोनों पति-पत्नी हैं। यज्ञदत्तजी पहले छरहरे जवान थे, अव कुछ मोटापा आ गया है, और काले बालों में कितने ही सफेद भी दीख रहे थे।

गर्भ परिपक्व हो रहा था। कमला को मेटर्निटी अस्पताल में ले जाने की जरूरत थी। मिश्नरियों का सेंट मेरी अस्पताल मसूरी के अच्छे अस्पतालों में है, जो हमारे से नजदीक भी है। लेडी डॉक्टर ने परीक्षा की। बतलाया, खून का दबाव कुछ कम है। विटामिन 'बी' का इन्जेक्शन देने और केल्सियम खाने के लिए कहा।

उस दिन डा. धीरेन्द्र वर्मा, डा. विश्वेश्वरप्रसाद और प्रिंसिपल सद्गुरुशरण अवस्थी सं बातचीत हुई। अगले दिन पं. नरदेव शास्त्री आए। शास्त्रीजी चार मील दूर लण्ढौर में हर साल मसूरी में ठहरते हैं, सीजन में जरूर दर्शन देते हैं।

30 जून को जामिया मिलिया के अध्यापक डा. सलामतुल्ला अपनी पुत्री सईदा के साथ आए। तीन घंटे तक भाषा और दूसरी बातों के सम्बन्ध में बातें होती रहीं। मेरे हिन्दी-प्रेम को कितने ही लोग उर्दू-द्वेष समझना चाहते हैं। सुनी-सुनाई बातों से लोगों को विश्वास भी हो जाता है। मैं उर्दू को हिन्दी समझकर उसी की तरह उसके साथ प्रेम रखता हूँ, और चाहता हूँ, कि उर्दू की अनमोल निधियाँ नागरी में मुद्रित होकर व्यापक रूप से पढ़ी जाएँ। मैं उर्दू लिपि का त्याग करने की भी बात नहीं करता। डा. सलामतुल्ला साहित्य-प्रेमी तथा उदार विचार रखते थे, इसलिए हम एक-दूसरे के भावों को समझ सकते थे।

1 जुलाई को अमृतसर से भैया की चिट्ठी आई कि भाभीजी की छोटी बहिन का 29 जून को देहान्त हो गया। परिपूर्ण-गर्भा को वड़े सावधान रहने की आवश्यकता होती है। बेचारी गिर पड़ीं। गर्भस्राव के साथ भीषण रक्तस्राव होने लगा। अस्पताल ले गए। चौदह घंटे के भीतर मर गई। पिछली साल अपनी बहन के साथ वह मसूरी आई थीं। उमर ही क्या थी, किन्तु मृत्यु उमर पूछकर थोड़े ही आती है ? नन्हा बच्चा और एक लड़की छोड़ गईं।

मसूरी में रहते तीन वर्ष हो गए। यहाँ के सब तरह के जीवन को देखते हुए मन में ख्याल आया कि इसकी झाँकी दूसरों को भी देनी चाहिए, इसलिए मैंने कहानियाँ लिखने का निश्चय किया। पहिली कहानी 'महाप्रभु' थी, जिसे 12 जुलाई को लिखा। मेरी कहानियाँ प्रायः एक फार्म (16 पृष्ठ) की होती हैं। अधिकतर मैं एक बैठक में एक कहानी समाप्त करता हूँ। 'महाप्रभु' आधुनिक काल के एक धर्म के दूकानदार-शिरोमणि की कथा है। मसूरी-सम्बन्धी कहानियों को पहिले मैं 'मधुपुरी' नाम से रखना चाहता था, इसी बीच 'मधुपुरी' के नाम से किसी का काव्य निकल आया, इसलिए मुझे पुस्तक का नाम 'बहुरंगी मधुपुरी' रखना पड़ा। 21 कहानियों में यद्यपि एक व्यक्ति के जीवन की छाप अधिक हो सकती है, पर उसके बनाने में अनेक व्यक्तियों की जीवनियों को लिया गया है।

16 को बाजार गए। कुल्हड़ी में पता लगा, एक वृक्ष पर एक महात्मा तपस्या कर रहे हैं। बाजार से यह पेड़ नजदीक ही था। सचमुच ही बंज के वृक्ष पर गेरुआ कपड़ा दिखलाई दे रहा था। मचान-सा बाँधकर मुँह ढाँके कोई साधु वहाँ बैठा था। मसूरी तपोभूमि नहीं, विलासभूमि है। तपस्या करने के लिए वहाँ का सबसे बड़ा बाजार ही क्यों अनुकूल साबित हुआ ? कुछ लोग समझने लगे कि यह निरा भोंदू है, जो इस जगह आकर अपने पाखण्ड से लोगों को प्रभावित करना चाहता है। लेकिन, पेड़वावा–इसी नाम से उन्हें पुकारा जाने लगा–भोंदू

कहनेवालों को भोंदू समझते थे। बरसात का दिन था, जिसके कारण सर्दी भी बढ़ गई थी। उस समय चौबीसों घंटे पेड़ के ऊपर रहना जन-मन को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए काफी था। वह मील-दो मील दूर भी तपस्या करने जा सकते थे, पर यदि कहीं रीछ से भेंट हो जाती, जो मसूरी के आस-पास के जंगलों में रहते हैं, तो बेचारे की तपस्या भंग हुए बिना नहीं रहती, और फिर भक्त और भक्तिनें उनके पास कैसे पहुँच सकते थे ? पेड़बाबा 15 जुलाई को एकाएक यहाँ बैठे दिखाई पड़े। अभी तीन ही दिन हुए, कि लोगों के दिलों में भक्ति अंकुरित हुई और दर्शकों की भीड़ होने लगी। लोग कह रहे थे, महात्मा न कुछ खाते हैं न पीते हैं, और हर वक्त ध्यान में लीन रहते हैं। पीने के लिए उनके भीगते कपड़ों से काफी पानी मिल सकता था, और खाना देखने के लिए कौन वहाँ चौबीस घंटा पहरा देता था ? पेड़बाबा अकेले नहीं आए होंगे। उनके सिद्ध साधक मसूरी में अपना प्रोपेगंडा कर रहे होंगे, यह निश्चित ही था। हफ्ता बीतते-बीतते पेड़बाबा बहुत-से ढिलमिलयकीनों को अपनी ओर खींचने में सफल हुए। आर्यसमाजी और दूसरे नुकताचीनी करते रहे, लेकिन भक्ति की बाढ़ में उनकी आवाज डूब गई। पूरे महीना-भर तपस्या कर लेने पर मसूरी में अब किसी को इस महान् तपस्वी के खिलाफ बोलने की हिम्मत नहीं रह गई। वह वहाँ से उतरे। एक अच्छे मकान में ले जाकर ठहराये गए। अब उन्होंने कहा कि भागवत की कथा होनी चाहिए, और एक बड़ा यज्ञ भी। भक्तों ने हजार रुपये जमा कर दिए। भागवत की कथा होने लगी। पेड़बाबा एक पैर पर खड़े होकर उसे सुनाने लगे। कथा के बाद बिदाई हुई। पेड़बाबा का जलूस निकला, और मसूरी-दिग्विजय करके उसके विलासियों के हृदय में भक्ति की गंगा बहाकर वह यहाँ से बिदा हुए। कितने ही आधुनिक ढंग के शिक्षित ग्रेजुएट और वकील का भी उनके कारण नास्तिकता के दलदल से उद्धार हुआ। यह 20वीं सदी का उत्तरार्ध है, क्या भारत में यह सिद्ध हो पाया ?

23 जुलाई को जोरहाट (आसाम) के राजहौली गाँव के निवासी घुमक्कड़ मेघनाथ भट्टाचार्य आये। भारत के बहुत-से भागों में घूम चुके थे, काश्मीर ही नहीं पश्चिमी पाकिस्तान की सीमा पर भी पहुँचे। उनकी दुर्गम पहाड़ी यात्राओं को सुनकर विश्वास हो गया, कि वह आदमी प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ होने लायक है। शिक्षित होते भी शारीरिक परिश्रम से उनको कोई दुराव नहीं था, यह सोने में सुगंधी थी।

26 जुलाई को पता लगा, कोरिया में युद्ध-विराम-सन्धि हो गई। अमेरिका ने दक्षिण कोरिया से संतुष्ट न होकर उत्तरी कोरिया को भी चुटकी बजाते-बजाते लेना चाहा। पर उसके पिट्ठू सिंगमन री की ऐसी दुर्गति हुई, कि एक समय जान पड़ा उसे भी चांग-काई-शेक की तरह समुद्र में ढकेल दिया जाएगा। फिर अमेरिका खुद युद्ध में कूदा। जब उसकी सेनाएँ पुरानी सीमा से उत्तर की ओर बढ़ने लगीं, तो भारत ने कहा कि ऐसा नहीं करना चाहिए, नहीं तो चीन चुप नहीं रहेगा। चीन अपनी सीमा के ऊपर अमेरिकनों को कैसे देख सकता था ? चीनी स्वयंसेवक मैदान में आये और अमेरिका को भागना पड़ा। उसने उसे कई देशों का सम्मिलित युद्ध बनाया था, लेकिन युद्ध में मारे जा रहे थे अमेरिकन तरुण। यह डालर का व्यय नहीं था, बल्कि आदमी के प्राणों की आहुति थी। अमेरिकन थैलीशाह नेता समझते थे, कि हमारा काम डालर बरसाना होगा, और प्राणों की कुर्बानी दूसरे देंगे। अमेरिकन जनता ने देखा, उलटा विरोध हुआ, और अन्त में अमेरिका को विराम-सन्धि करनी पड़ी।

बन्दूक और रिवाल्वर का लाइसेन्स मेरे नाम था। मेरे अनुपस्थित रहने पर कमला को उनकी जरूरत पड़ सकती थी, इसलिए लाइसेन्स में उन्हें भी साझीदार बनाने के लिए मैंने जिला मजिस्ट्रेट को लिखा। उन्होंने 29 जुलाई को दोनों के लाइसेन्स भेज दिये। साथ ही बन्दरों से साग-सब्जी की रक्षा के लिए टोपीवाली बन्दूक देना भी मंजूर किया।

अब की कुछ देर से भैया और भाभी मसूरी आ गये। पिछले साल से भाभीजी को मानसिक रोग का सामना करना पड़ रहा था। छोटी बहिन के मरने के कारण उनकी स्थिति और भी बुरी थी। जान पड़ा, दो साल पहिले की भाभी फिर नहीं लौटेंगी। यहाँ रहते पिछले सालों की तरह फिर हमारा एक प्राणी-दो घर का जीवन था। हर सप्ताह कम से कम एक दिन मुझे उनके यहाँ जाना पड़ता। 4 अगस्त को मैं लण्ढौर तक

गया। किशनसिंह बहुत दुर्बल हो गये थे, चलना-फिरना भी मुश्किल था। हृदयशूल की बीमारी थी, जीवन से निराश थे। लण्ढौर में कुछ दूकानवाले भाग चुके थे, लेकिन दो-तीन सुनारों की दूकानें बढ़ गई थीं। पुरुषोत्तमजी की दूकान महीनों से बन्द पड़ी थी। मसूरी में कुछ का दिवाला निकलना और उनकी जगह कुछ का फिर भाग्य-परीक्षा के लिए आ जाना अब मामूली बात थी।

6 अगस्त को कम्पनी बाग में वनभोज हुआ। मंगल और ठकुरानीजी के साथ हम यहाँ से कम्पनी बाग गये। कुल्हड़ी से भैया और भाभीजी उषा और बाबा को लेकर आये। 12 बजे वहाँ पहुँचते ही मूसलाधार वर्षा होने लगी, इसलिए खुले बाग में नहीं, बल्कि उसके एक मकान में शरण लेनी पड़ी। तरह-तरह के पकवान बनकर आये थे। हमारा भोज चलता रहा। वर्षा 3 बजे खतम हुई। फिर हम वहाँ से घर लौटे।

वृद्ध सर सीताराम गर्मियों में बराबर मसूरी आते हैं। 70 से कम उमर नहीं है, लेकिन अब भी सड़कों पर टहलते मिलते। आँखें जरूर ज्यादा कमजोर थीं। अंग्रेजों के कृपा-पात्र होते भी वह देश के प्रति उदासीन नहीं थे। अध्ययन का उन्हें व्यसन है। 15 अगस्त को टौनहाल की मीटिंग से लौटते वक्त उनसे देश की परिस्थिति पर बातचीत होने लगी। सभी जगह भ्रष्टाचार, सभी जगह बेकारी, यह चिन्ता की बात थी। कह रहे थे, इसका क्या हल है ? मैंने कहा—कम्युनिस्टों के लिए यह कोई समस्या नहीं है। उन्हें मौका दिया जाये, तो चुटकी बजाते-बजाते वे उन समस्याओं को हल कर सकते हैं। चीन में ऐसा ही हुआ। पुरानी पीढ़ी ऐसी बातों को समझ नहीं सकती थी। लेकिन, पुराने नेताओं के घरों में नये ढंग की नई पीढ़ी आ गई है, जो तस्वीर के दूसरे रुख को देखने के लिए मजबूर करती है। सर सीताराम के पुत्र मार्क्सवादी हैं, जिन्होंने उनके मन से कम-से-कम कम्युनिस्टों के प्रति द्वेष को हटा दिया है।

अगस्त में 'जौनसार-देहरादून' के लिखने में भी मैंने हाथ लगा दिया। मन करने लगा, कि दार्जिलिंग से उठाये हिमालय-सम्बन्धी ग्रंथों को जम्मू-कश्मीर की सीमा तक पहुँचा देना चाहिए।

शहर से दूर रहने का अब एक बुरा फल यह देखने में आया, कि यहाँ अस्पताल दूर है। कमला को न जाने किस वक्त आवश्यकता पड़े। भैयाजी ने कहा, उन्हें हमारे पास रख दें। वह 19 अगस्त को वहाँ चली गईं। अभाव के समय ही आदमी को आदमी का मूल्य मालूम होता है। यहाँ रहते अपने पोथी-पतरे को छोड़ और किसी चीज की फिकर करने की मुझे जरूरत नहीं थी।

सोवियत रूस के पास परमाणु-बम है, उसने उसका विस्फोट किया है, इसकी सूचना अमेरिका ने दुनिया को दी। अगस्त के तीसरे सप्ताह में वहाँ हाइड्रोजन बम फूटा, इसकी भी सूचना अमेरिका ने ही दी। अमेरिका के लिए यह संकट की बात थी, क्योंकि वह अपने इन्हीं अस्त्रों के भरोसे से दुनिया में गाल बजा रहा था। यह यदि अमेरिका के लिए बुरी खबर थी, तो ईरान से उसे खुशखबरी भी मिली। प्रगतिशील शक्तियों को साथ लेकर मुसद्दिक ने वहाँ के सड़े सामन्तवाद पर भयंकर प्रहार किया। दुनिया के सभी प्रतिगामी सड़े-गले हितों को जीवित रखने का ठेका अमेरिका ने ले रखा है। वह ईरान में कैसे बर्दाश्त कर सकता था। जब ईरान का शाह राजधानी छोड़कर भाग गया, तब तो अमेरिकन थैलीशाहों के घरों में कुहराम मच गया। मुसद्दिक दल ने अपनी स्थिति से जल्दी फायदा उठाने की कोशिश नहीं की। लेनिन क्रान्ति के एक-एक मिनट को बहुमूल्य समझते थे, और उन्हीं जैसे दूरदर्शी पुरुष का यह काम था, कि रूस में मार्क्सवाद की विजय हुई। बूढ़े मुसद्दिक मिनटों और सेकंडों के मूल्य को क्या समझते ? जनता के मनोभाव ऐसी स्थिति में एक-एक क्षण में बदलते रहते हैं। वह अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं हो सकती। बदले भाव से प्रतिगामियों ने लाभ उठाया और शाह फिर जाकर ईरानी जनता की छाती पर कोदो दलने के लिए मौजूद हुआ।

जब मैं मसूरी के एंग्लो-इंडियन परिवारों को देखता हूँ, तो मुझे वह समय याद आता है, जब कि भारत से यूनानियों का प्रभुत्व उठ रहा था। लाखों की तादाद में यूनानी यहाँ मौजूद थे। जन्मभूमि से पीढ़ियों से उनका सम्बन्ध नहीं था, और अपने जाति भाइयों के शासन के कारण ही वे यूनानी होने का गर्व करते थे। प्रभुत्व हटने से पहिले ही भारतीय संस्कृति से वे प्रभावित हुए। उनके मिनान्दर जैसा राजा तक बौद्ध हो गये। इस प्रकार वे सांस्कृतिक तौर से भारत के दूसरे लोगों से उतना भेद नहीं रखते थे, जितना कि ये एंग्लो-इंडियन।

अंग्रेजों ने इस वर्ग को जन्म दिया। अपनी सन्तान होने से शिक्षा और आर्थिक तौर से उनकी सहायता की, लेकिन हमेशा उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हुए अपने समाज में अपमानित किया। अपमान सहते हुए भी एंग्लो-इंडियन यह देखकर खुश थे, कि हम काले आदमियों पर वैसे ही धौंस जमा सकते हैं जैसे अंग्रेज, और नौकरी तथा वेतन में भी हमें विशेष सुविधाएँ मिली हैं। अंग्रेजों के शासन के ये जबर्दस्त समर्थक थे। इन्हें क्या पता था कि अंग्रेजों को एक दिन भागना पड़ेगा, फिर हमारे अलग-थलग जीवन का इस देश में स्थान नहीं रहेगा। अंग्रेजों के जाते ही एंग्लो-इंडियनों में भगदड़ मच गई। दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, आदि अंग्रेजी उपनिवेशों ने उनके लिए दरवाजा खोल दिया। पर, शर्त यह रखी कि रंग-रूप में वह अंग्रेज जैसे हों। एंग्लो-इंडियनों में साँवले से लेकर यूरोपियनों की तरह गोरे भभूके रंग के नर-नारी मिलते हैं। लेकिन, इन रंगों में सीमा-रेखा एक के परिवार में भी मिलनी मुश्किल है। जिन्हें ज्यादा गोरा रंग मिला था, वह अपनी जायदाद बेंच-बाँचकर उपनिवेशों में चले गये। जिनका रंग खपनेवाला नहीं था, उनमें से भी रिश्वत देकर कुछ आस्ट्रेलिया और दूसरे देशों में चले गये। इस गड़बड़ी को देखकर जब वहाँ विरोध प्रकट किया गया, तो कितने ही रिश्वत में रुपया बरबाद कर तथा अपनी जायदाद को बेंच करके भी यहीं रह जाने के लिए मजबूर हुए।

लेकिन, उनकी आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त सांस्कृतिक समस्या भी कम नहीं है। अभी तक अंग्रेजी उनकी मातृभाषा थी, जिसकी अंग्रेजी राज में सबसे अधिक कदर थी, और हमारे अन्धे शासकों के कारण अब भी वह अक्षुण्ण है। एंग्लो-इंडियनों के अपने विशेष स्कूल हैं, जिनमें केम्ब्रिज की परीक्षाएँ होती हैं, जिन पर खर्च भी बहुत आता है। उसका बहुत बड़ा भाग सरकार बर्दाश्त करती है, जिसे अब एक वर्ग विशेष के साथ पक्षपात होने के कारण बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। एंग्लो-इंडियनों के फ्रेंक एंथनी जैसे नेता यह समझने में भी असमर्थ हैं, कि अंग्रेजों के जाने पर अंग्रेजी की प्रभुता नहीं रह सकती। अंग्रेजी कुछ भारतीयों की मातृभाषा रहे, वह अपना धर्म भी ईसाई रखें, इसमें कोई हर्ज नहीं है। हमारे देश की विविधता, बहुरंगिता शोभा की चीज है, पर, भारतीय भाषा और संस्कृति का बायकाट करके यह होना असम्भव है। दो हजार वर्ष पहिले यूनानियों ने भी अपने भाषा और वर्ण को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न जरूर किया होगा, परन्तु काल और देश की सम्मिलित शक्ति का वे कैसे मुकाबिला कर सकते। सौ-पचास वर्ष बाद अर्थात् आज से चार-पाँच पीढ़ी आगे आनेवाली एंग्लो-इंडियन सन्तान इस प्रकार के बिलगाव को कभी पसन्द नहीं करेंगे। तब क्या एंग्लो-इंडियनों की भी वही हालत होगी, जो पुराने भारतीय ग्रीकों की ? इतिहास में क्या वे बालू के पदचिन्ह की तरह मिट जाएँगे ? नदियाँ अपने अस्तित्व को मिटाकर समुद्र में अभिन्न हो जाती हैं, इसे कोई रोक नहीं सकता। पर, इतिहास के विद्यार्थी होने के कारण मुझे ख्याल होता है, एंग्लो-इंडियनों की ऐतिहासिक सामग्री को सुरक्षित करना चाहिए। मैंने यहाँ के हर्सी और विल्सन जैसे पुराने परिवारों के साथ सम्पर्क स्थापित करके कुछ सामग्री जमा करने की भी कोशिश की है। और भी करना चाहता था, लेकिन समय की शिकायत ठहरी। 80 वर्ष से ऊपर की बुढ़िया से कुछ बातों का पता लगाना चाहता था। मैं आज कल करता रहा, और बुढ़िया चल बसी। इसी तरह एक और 80 वर्ष से अधिक उमर के बूढ़े का पता लगा। उसके पास में भी जाने में असमर्थ रहा। मेरे पड़ोसी पूसंग का एंग्लो-इंडियन परिवार मूलतः मसूरी का नहीं है, और वही बात लेडली की भी है। बूढ़े लेडली से भी कितनी ही बातें मालूम हो सकती थीं। वह 20वीं सदी के प्रथम दशक ही में यहाँ आ गये थे, और कम से कम पचास वर्ष का मसूरी का इतिहास उन्हें मालूम था। लेकिन, उनसे भी मैं सामग्री जमा नहीं कर पाया। लेडली और उनके पुत्र जान शकल-सूरत में अंग्रेजों से कोई भेद नहीं रखते। जान को जब संवर्ष करते देखता हूँ, तो सोचता हूँ, इनके लिए आस्ट्रेलिया में जा बसना मुश्किल नहीं है।

बूढ़े लेडली से बात करने में बड़ा आनन्द आता था। वह बड़े रोचक ढंग से पुराने जगत की बातें बतलाते थे। कर्मठ तो इतने थे, कि 70 वर्ष से ऊपर के हो जाने पर भी समझते थे, उनका शरीर अब भी पहले ही जैसा है। अपनी फुलवारी में लगे रहते, टहलने का भी उन्हें शौक था। कभी-कभी 8-9 बजे रात को मैं उन्हें टहल के लौटते देखता था। पूछने पर कहते—"केमल्स बेक की तरफ से घूमकर आ रहा हूँ।" जाड़ा अधिक बढ़ने पर यहाँ बूढ़ों को तकलीफ हो जाती है। सर्द मुल्कों में क्या होता है, उसके बारे में वहीं के बूढ़े जानें।

लेडली को जान और बारबारा जाड़ों में सर्दी बढ़ने पर देहरादून भेज दिया करते थे। 1942 में कहने पर बूढ़े लेडली ने कहा–क्रिसमस करके जाएँगे। इस महान् पर्व को अपने परिवार में बिताने की किसकी इच्छा नहीं होगी ? लेकिन उन्होंने गलती की। लकवा मार गया और दो-तीन दिन बेहोश रहकर चल बसे। मैं भी शव के साथ केमल्स बेक की सेमेट्री में गया, जहाँ उनकी पत्नी अनन्त निद्राविलीन थीं। वहीं पेटी में बन्द बूढ़े लेडली को भी सुला दिया गया। पादरी ने कुछ धार्मिक वचन कहे। जानेवालों में मिसेज कोमरी भी थीं। उनके पति आई. सी. एस. अफसर थे। जो पैसा उन्हें यहाँ मिल रहा था, वह इंग्लैंड में भी मिलता। उनके बच्चे भी इंग्लैंड में थे, लेकिन वह इंग्लैंड जाने के लिए तैयार नहीं थीं। पीछे आकर्षण हुआ, यहाँ का लटा-पटा बेचकर वह इंग्लैंड गईं। यहाँ का जीवन कितना ही खर्चीला होने पर इंग्लैंड की अपेक्षा बहुत सस्ता है। 30-40 रुपया, और खाने पर अच्छा बैरा था, जो खाना बनाता था, और फूलबाग को भी देख लेता था। अभी भी कितने ही इंगलिशभाषी परिवार यहाँ मौजूद हैं, इसलिए मिलने-जुलने, बातचीत करने का भी सुभीता था। इंग्लैंड गईं, वहाँ के खर्चे को देखकर आँखें खुलीं। कोई नौकर नहीं रख सकती थीं, पैसा पूरा नहीं पड़ता। उमर भी अपने हाथ से काम करने की नहीं थी। वह तरुण ब्याहता होकर भारत में आईं, तबसे हमेशा नौकर उनका काम करता था। सबसे बढ़कर उनके लिए इंग्लैंड में कठिनाई यह थी, कि चीजें बहुत महँगी थीं। सात-आठ महीने बाद वह फिर मसूरी लौट आईं। अपने फर्नीचर को मिट्टी के मोल बेचने का उन्हें अफसोस था, तो भी अब वह नौकर रखकर अपने वृद्धापन को इंग्लैंड की अपेक्षा यहाँ अच्छी तरह काट सकती थीं, इसका उन्हें संतोष था। उस दिन मिसेज कोमरी ने कहा, मेरी माँ की भी यहीं कब्र है। वर्षों से वह यहाँ नहीं आई थीं। पहिले चौकीदार रजिस्टर देखकर बतला सकता था, लेकिन अब उसका भी कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं था। हम दोनों ने ढूँढ़ने की कोशिश की, और अन्त में वह कब्र मिल गई। वर्षों से किसी ने सुध नहीं ली थी। कहने लगीं–"इसकी मैं मरम्मत करवाऊँगी।" वह मरम्मत करवा सकती हैं, क्योंकि उनके माँ या बाप यहाँ सो रहे हैं। पर, उनके बाद कौन इस कब्र की देखभाल करेगा ? क्या इससे मुर्दा जलाने की प्रथा अच्छी नहीं है ?

15 अगस्त की लिखी लोला की चिट्ठी 3 सितम्बर को मिली। वर्षों बाद यह चिट्ठी मिली थी। तब से जीवन का प्रवाह किस तरफ मुड़ गया। ईगर अच्छी तरह पढ़ रहा है, यह सुनकर प्रसन्नता हुई। पर, मेरा जीवन तो अब कमला और आनेवाली उसकी संतानों से बँध गया था। 5 सितम्बर को ईगर का जन्मदिन था, इसलिए 4 को मैंने बधाई का तार भेज दिया। कमला को इस पत्र के आने की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। बराबर उन्हें शंका बनी रहती है। मैंने कहा–"मेरी आवश्यकता यहाँ है। ईगर ऐसे देश में पैदा हुआ है, जहाँ उसकी पढ़ाई-लिखाई में कोई दिक्कत नहीं हो सकती। समय बीतता जाएगा। अपनी विद्या समाप्त करके वह अपने योग्य काम पा लेगा। अब वह 15 साल का भी हो गया है। मैं यह कभी नहीं कर सकता, अपने दोनों बच्चों (जया उसी सितम्बर में 20 तारीख को पैदा हुई, और जेता 31 जनवरी 1955 को) को छोड़ना मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है।"

**जया**–19 को भैया के फोन से मालूम हुआ, कि अभी कोई बात नहीं है, लेकिन अगले दिन 20 को अस्पताल टेलीफोन किया, तो पता लगा, आज 2 बजकर 25 मिनट पर जया का जन्म हो गया। जया जब गर्भ में थी तभी मैंने कह दिया था, कि लड़की होगी और उसका नाम जया रखा जाएगा। कमला इसे मानने के लिए तैयार नहीं थीं। जेता के बारे में भी मैंने इसी तरह दृढ़तापूर्वक भविष्यवाणी की। वस्तुतः इस भविष्यवाणी का इससे अधिक कोई मूल्य नहीं था, कि मेरे लिए पुत्री भी उतनी ही अधिक प्यारी थी, जितना पुत्र। शाम को सेंट मेरी अस्पताल में गए। मालूम हुआ, कि पूर्वाह्न में ही पीड़ा होने लगी थी, अपराह्न में पीड़ा बढ़ चली। रात को नींद लाने के लिए मार्फिया का इंजेक्शन दे दिया गया। आज सबेरे पीड़ा अधिक बढ़ने लगी। मध्याह्न तक वह चरम सीमा में पहुँची। जया का वजन आठ पौंड से अधिक था, इसलिए प्रसव में कुछ आप्रेशन करना पड़ा। मैंने देखा, बच्ची का सिर और चेहरा गोल, बाल काले हैं। शिशु कुछ महीनों तक अपने चेहरे को इतनी तेजी से बदलता रहता है, कि उसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। कमला पुत्र के लिए लालायित थीं। पर, जया के संसार में आने पर उन्हें कम संतोष नहीं हुआ। मुझे तो इसका विशेष आनन्द हुआ। कमला बहुत

कमजोर थीं, बोलने में कठिनाई हो रही थी। अभी दस-बारह दिन उन्हें यहीं रहना था। उस दिन जया की आँखें बन्द थीं। 22 को भी वह उन्हें अच्छी तरह नहीं खोल रही। पाँचवें दिन से वह आँखें खोलने लगी। प्रायः सभी माताओं को बच्चे की आँख खोलने पर यह ख्याल होने लगता है कि वह देख रहा है। पर वस्तुतः दो महीने तक आँखें खुली रहने पर भी बच्चा देखता नहीं। नेत्र और प्रकाश, बाह्य लक्ष्य के दोनों साधन मौजूद होने पर भी जब तक नेत्र का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ ठीक से स्थापित नहीं हो जाता, तब तक बच्चा नहीं देखता।

23 सितम्बर को अस्पताल से घर लौटने पर केदारनाथ के पण्डा आए, मिले। कहने लगे, 'गढ़वाल' में केदारनाथ के पण्डों के बारे में जो आपने लिखा है, उस पर हम लोगों को आपत्ति है। मैंने उस स्थल को देखा। वहाँ विशालमणि के आक्षेप का जिक्र जरूर था, लेकिन मैंने साफ लिखा था, कि वह कथन ठीक नहीं है। प्राचीनकाल से इतने प्रतिष्ठित केदारनाथधाम के तीर्थपुरोहित ब्राह्मण छोड़ दूसरे नहीं हो सकते। और क्या चाहिए था ? किसी के मत को खण्डन करने के लिए भी उद्धृत न किया जाए, यह अयुक्त बात थी। तो भी मैं नहीं चाहता था, कि किसी को दुःख पहुँचे। इसलिए मैंने कहा, प्रकाशक यदि उस अंश को निकालने के लिए तैयार हों, तो मैं बदलने के लिए प्रस्तुत हूँ। पण्डाजी ने यह भी कहा, कि इसके लिए जो खर्चा लगेगा, हम देंगे। वह प्रकाशक के पास इलाहाबाद गये भी। मैंने परिवर्तन के लिए चिट्ठी भी लिख दी, लेकिन वह उत्साह बहुत दिनों नहीं रहा और बात यों ही रह गई। 27 सितम्बर को केदारनाथ के दो और पण्डा आये। उनसे भी मैंने वही बातें बतलाईं।

2 अक्तूबर को कमला को अस्पताल से लाने के लिए पौने 9 बजे हम वहाँ पहुँचे। अस्पताल का प्रबन्ध बहुत ही सुन्दर था। लेडी डाक्टर और नर्स सभी दक्षता के साथ सहृदयता भी रखती थीं। खर्च के 212 रुपये बहुत नहीं थे। जया अब आँख खोल सकती थी। जन्म के समय यद्यपि जया का वज़न 8 पौंड 4 औंस था, लेकिन फिर वह 8 औंस कम हो गया। फिर बढ़ने लगा। अभी भैयाजी का यहाँ रहने का आग्रह था, इसलिए वहाँ ले गए, और 4 अक्तूबर को ही वह घर आ सकीं। पत्नी और माता की स्थिति में बहुत अन्तर होता है, यह धीरे-धीरे मुझे मालूम हुआ। जब पति-पत्नी केवल हो रहते हैं, तो अक्सर मतभेद क्षणिक कड़वाहट का रूप लेता है, पर सन्तान इस कड़ुवाहट को पहिले तो उठने नहीं देती, और उठने पर जल्दी ही दूर कर देती है। सन्तान दाम्पत्य-सम्बन्ध का जबर्दस्त सीमेंट है।

मिस पूसंग ने जया के लिए पहिले ही से कपड़े और खिलौने तैयार कर रखे थे। कलेजे की बीमारी के कारण वह अपने हाते से भी बाहर नहीं निकल सकती थीं, लेकिन जया की सौगात को उन्होंने बड़े प्रेम से भेजा। जया चौबीस घंटे साथ रहनेवाली थी। किसी बच्चे को आरम्भ से और इतना अधिक देखने का मुझे मौका नहीं मिला था, इसलिए उसकी हर चीज को मैं ध्यान से देखता था। रोती बड़े ज़ोर से थी। कमला बतला रही थीं, कि अस्पताल में भी वह सारे घर को गुँजा देती थी। अँगुलियाँ लम्बी और पतली-पतली थीं। मिस पूसंग ने कहा, कलाकारिणी होगी। अनामिका और मध्यमा का आकार बिल्कुल समान था। शिशु को कष्ट हो रहा है, इसे जानने के बहुत ही कम साधन हैं। रोवे तो तकलीफ है, लेकिन इसे पहचानना मुश्किल है। हँसने पर सुख का भान जरूर होता है।

माँ का दूध पर्याप्त न होने पर पौडर-दूध का इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता। पर्याप्त होने पर भी बोतल से दूध पिलाने में फायदा है, क्योंकि उसके द्वारा शिशु के भोजन पर नियंत्रण किया जा सकता है। यदि पेट में गड़बड़ी है, तो दूध में पानी ज्यादा मिला दें, यह माँ के दूध के साथ नहीं हो सकता। हो सकता है, पौडर के दूध में कुछ विटामिनों की कमी है, पर उसे ऊपर से दूध में मिलाकर पूरा किया जा सकता है। 13 अक्तूबर को भैयाजी ने अमृतसर से जया के लिए झूला मँगवा दिया, और उसे बराण्डे और कमरे में टाँगने का इंतिजाम भी कर दिया, लेकिन झूले पर हमेशा नजर रखने की जरूरत थी। एक बार रस्सी कटी, झूला नीचे आ पड़ा, गद्दी बहुत थी, इसलिए चोट नहीं आई। दो-दो महीने तक मनुष्य के बच्चे की आँखों का काम न देना बतलाता है, कि वह कितना असहाय पैदा होता है। हिरन का बच्चा पैदा होते ही दौड़ सकता है, भैंस-गाय

का भी अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। निष्पक्ष कुक्कुट-शावक भी स्वयं अण्डा तोड़कर बाहर आ अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं। मनुष्य का शिशु माता-पिता के ऊपर निर्भर रहता, हाथ-पैरों पर भी काबू नहीं रखता, और न आँख पर ही।

14 अक्तूबर को जया के जन्म के उपलक्ष्य में हितु-मित्रों का एक छोटा-सा भोज हुआ। 20 अक्तूबर को जया एक महीने की हो गई। उस वक्त 22 इंच और वजन साढ़े 10 पौंड था। नेत्र छोड़ बाकी सारी इन्द्रियाँ काम कर रही थीं, विशेषकर स्पर्श-इन्द्रिय अधिक तीक्ष्ण थी। शायद मस्तिष्क उतना सक्रिय नहीं था। ललाट पर बहुत-से रोमों को देखकर कमला सोचने लगीं, कि इन्हें रगड़कर निकालना चाहिए, नहीं तो जिन्दगी-भर ऐसे ही रह जाएँगे। सातवें-आठवें महीने का मानव-शिशु वानर की तरह अपने सारे शरीर पर बाल रखता है। प्रकृति अपने ही आप उन्हें खतम कर देती है। इस पर कमला को विश्वास नहीं था। पड़ोसिन चौकीदारिन ने भी बतलाया, कि मैं तो राख से मलकर अपने बच्चों के रोमों को निकाल देती हूँ। पाँच बच्चों की माँ को काफी तजर्बा होना ही था। खैर, कमला इतनी जबर्दस्ती रोम निकालने के पक्ष में नहीं हुई, और वह अपने-आप निकल भी गये। दूसरे महीने को समाप्त करते समय जया लम्बाई में आध इंच बढ़ी और वजन जैसा का तैसा रहा। तीसरे महीने की समाप्ति पर अब वह 25 इंच की थी। पैदा होते सारी चर्बी चेहरे पर एकत्रित हो जाती है, फिर वह वहाँ से कम होकर सारे शरीर में बढ़ने लगती है। दूसरे महीने की समाप्ति पर अब वह हँसने और मुनमुनाने भी लगी, चीजों को गौर से देखने लगी। अभी उसका सारा ध्यान दूध की ओर रहता। आहार मनुष्य की पहिली आवश्यकता है, इसलिए शुश का उसके साथ विशेष पक्षपात हो, यह स्वाभाविक है। जया बहुत समय लेती, तो भी कमला ने आगरा युनिवर्सिटी के बी. ए. का फार्म भरवा दिया। जो भी समय मिलता, उसमें पढ़ती रहीं।

1953 के छोटे सीजन (अक्तूबर) में नगरपालिका की ओर से विशेष उत्सव का प्रबन्ध हुआ। वायसराय यद्यपि गर्मियों को बिताने के लिए शिमला जाते थे, लेकिन उनके घोड़े देहरादून आया करते थे। वायसराय के खर्च को गणराज्य बनने पर कम नहीं किया गया, बल्कि उसे कई गुणा बढ़ा दिया गया। नेहरूशाही में खर्च का घटाना प्रताप और सम्मान का घटाना है। चाहे वह रुपया लोगों के मुँह के आहार और आँखों के आँसुओं से बनता हो। राष्ट्रपति के प्रथम श्रेणी के 40 घोड़े घुड़दौड़ के लिए आए थे। इनसे अच्छा प्रचार किया जा सकता था, किन्तु काठ की मशीन में लचक कहाँ? वे रखे गए थे हैपीवैली क्लब में, जहाँ बहुत कम सैलानी आते। यदि एक बार इन 40 घोड़ों को लण्ढौर तक घुमा दिया जाए, तो इसमें शक नहीं, उनकी दौड़ देखने के लिए सारी मसूरी टूट पड़ती। सुना गया, सिनेमा-तारिकाओं को भी बुलाया गया है। हजारों रुपयों को इस प्रकार खर्च करने से देश के लोग मसूरी की ओर टूट पड़ेंगे, इसकी सम्भावना कम ही थी। लेकिन, सरकारी मशीन रुपये को खर्च कर लेने में ही अपने काम की इतिश्री समझती है।

मसूरी नगरपालिका के चुनाव की धूम थी। एक ओर छोटे कांग्रेसी उम्मीदवार थे। दूसरी ओर बाकी लोगों ने मिलकर जनता पार्टी बना ली थी। जनता पार्टी से श्री शम्भूनाथ वैद्य शुरू ही में निकल गए और उन्होंने डा. प्रकाश को म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष-पद के लिए खड़ा कर दिया। इससे अध्यक्ष-पद के लिए कप्तान कृपाराम का पक्ष मजबूत हुआ, यद्यपि हाल की भेड़ियाधसान में मसूरी-कांग्रेस के सर्वेसर्वा होने के कारण वह उतने जनप्रिय नहीं थे, किन्तु, प्रतिद्वंद्वी एक नहीं दो थे, जिनमें वोट बटनेवाला था। डा. प्रकाश को वस्तुतः यों ही खड़ा कर दिया गया था, क्योंकि सिवाय कुछ दाँत के मरीजों के उनको जाननेवाले वोटर बहुत कम थे। लेकिन, जब खड़े हो गए, तो कितना ही हाथ संकोच करें, खीसे के कुछ हजार तो जरूर ही हवा हो जाएँगे। श्रीमती मोहिनी जुत्शी कांग्रेसी थीं, वह भी कांग्रेसी की ओर से प्रचार में शामिल थीं। मेम्बरी के उम्मीदवारों में शीलाजी भी खड़ी थीं। जैसे-जैसे चुनाव का समय नजदीक आता गया, वैसे-वैसे प्रचार का वेग बढ़ता गया। हमारे मोहल्ले में अधिकांश लोगों का नाम वोटर-लिस्ट में नहीं था—लेडली-परिवार भी नहीं, कुंदनलाला भी नहीं, पूसंग भी नहीं। लोग बतला रहे थे, यह जान-बूझकर किया गया है। जिसको समझा गया कि वह कांग्रेस उम्मीदवार को वोट नहीं देगा, उसका नाम ही सूची पर आने नहीं दिया गया। हमारे पास भी उम्मीदवार लोग पहुँचे—मैं

और कमला दोनों वोटर थे। 26 अक्तूबर को रविवार के दिन वोट-दान था। हमारे मोहल्ले का वोस्ट-स्थान चार्लविल के प्राइमरी स्कूल में था। हमने जाकर अपने-अपने वोट वहाँ दिए। कमला जिसको वोट देना चाहती थीं, उसका बक्सा ही जल्दी-जल्दी में नहीं जान पाईं और दूसरे को दे आईं।

वोट देकर हम भैया के यहाँ चले। कचहरी में कुल्हड़ीवालों का वोट हो रहा था। मालूम होता था, उत्सव का दिन है। लोग अपना काम-काज छोड़ वोट का तमाशा देख रहे थे। मोहिनीजी शिकायत कर रही थीं–प्रचार में बहुत गंदगी थी, कम-से-कम वर्माजी से हम ऐसी आशा नहीं रखते थे। लेकिन, किसी भी नई चीज में आदमी प्रकृतिस्थ काफी अभ्यास के बाद होता है। अगले दिन (29 अक्तूबर) को चुनाव का परिणाम निकला। वर्माजी अध्यक्ष चुन लिए गये, यह तो वोट के दिन ही मालूम हो गया था। कप्तान कृपाराम कई हजार के मत्थे पड़े। डा. प्रकाश तो हारने-लूटने के लिए ही खड़े किये गए थे। अगले दिन सभी चुनावों के परिणाम निकल आए। शीलाजी भी नगरमाता बनीं, वर्माजी के सहायक वकील जगन्नाथ शर्मा भी आ गए, जो पालिका के उपाध्यक्ष बननेवाले थे। जनता सभा के छः उम्मीदवार चुने गए, कांग्रेस के चार और स्वतन्त्र दो। कांग्रेस सरकार ने अपने हाथ में तीन मेम्बरों के नामजद करने का भी अधिकार रखा था। वह निश्चय ही वैसे आदमी लिये जाते, जो कांग्रेस के थे। इस प्रकार सात कांग्रेस के और जनता के छः मेम्बर थे। भाग्य का फैसला दो स्वतन्त्र उम्मीदवारों के हाथ में था, जिन्हें जनतावाले अपनी ओर करने में समर्थ थे। लोगों ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधीं किन्तु यह तो राजा भोज का सिंहासन था, या काजल की कोठरी है। कैसा हू सयाना आदमी जाए, वहाँ से बचकर निकलना मुश्किल है। पहिले की तरह पालिका में अनाप-शनाप खर्च किया गया, उनके काल के पूरा होने पर यह आशा नहीं की जा सकती थी, कि कांग्रेस-विरोधी दल के कर्णधार फिर जनता के विश्वासपात्र होंगे।

अब के पोलो मैदान में 10 अक्तूबर का पोलो भी खेला गया, और घुड़दौड़ भी हुई।

11 अक्तूबर को पता लगा कि ब्रिटिश गायना के भारी बहुमतवाली जगन सरकार को कम्युनिस्ट कहकर चर्चिल ने तोड़ दिया। चर्चिल और इंग्लैंड की सरकार अब अमेरिका के धर्मपुत्र थे। अमेरिका दुनिया में कहीं भी प्रगतिशील सरकार को सहन नहीं कर सकता। फिर वह जगन को अमेरिका की भूमि में क्यों ऐसा करने देता ? तीनों गायनों में भारतीय कुलियों ने जाकर देश को सरसब्ज किया, उन्हीं की सन्तानें भारी संख्या में वहाँ बसती हैं, इसलिए जगन सरकार का तोड़ा जाना भारतीयों के लिए विशेष बात थी। जहाँ क्रान्ति के रास्ते कम्युनिस्ट या प्रगतिशील शक्ति अधिकारारूढ़ हो, वहाँ थैलीशाह जनतन्त्र के खिलाफ जाने की दुहाई देते हैं। और जहाँ तीन-चौथाई लोग वोट देकर अपने मन के मुताबिक सरकार संगठित कराएँ, वहाँ कम्युनिज़्म का लाँछन लगा उन्हें हटाया जाता। पूँजीवाद दानव निष्ठुर और निर्लज्ज है, वह किसी तरह भी अपना मतलब बनाना चाहता है।

14 अक्तूबर को जया के जन्मोपलक्ष्य में भैया और भाभीजी ने अपने यहाँ चाय-पार्टी दी। पिता-माता को जाना ही था। डा. सत्यकेतु, शीलाजी और पति-सहित श्री मोहिनी जुत्शी भी आईं।

आजमगढ़ से श्री ज्योतिस्वरूपसिंह ने 'कर्मयोगी' नाम से एक साप्ताहिक निकालने का निश्चय किया और मुझसे भी लेख चाहे। मैं चाहता था, अपने जिले से जिले की आवाज को प्रकट करनेवाला कोई अखबार निकले। मैंने स्वीकार कर लिया और बचपन के संस्मरणों के सम्बन्ध में तीन दर्जन के करीब छोटे-छोटे लेख लिखे। मेरे 1915 से घनिष्ठ मित्र तथा अपने जन्म के जिले के निवासी स्वामी सत्यानन्द (पहिले बलदेव चौबे) अब संसार में नहीं रहे। एक-एक करके मित्रों का इस तरह चला जाना खटकता है। उनके प्रति श्रद्धा दिखलाने से मेरी लेखनी कैसे रुक सकती थी ? मैंने उनके ऊपर 'नया समाज' में एक लेख लिखा।

27 अक्तूबर को भाभीजी और भैया अमृतसर चले गए। हर साल की तरह अब के भी कुछ सप्ताहों के लिए उनका अभाव खटकने लगा।

हिमालय-सम्बन्धी पुस्तकों के बारे में मैं यह समझकर निश्चिन्त था, कि वे लॉ-जर्नल प्रेस से निकल जाएँगे। 'गढ़वाल' निकल चुका था, और 'कुमाऊँ' को भी मोनो पर पंच कर लिया गया था। लेकिन, जैसा कि बतलाया,

अब दर साहब वहाँ से हटा दिये गए थे, और सेठों के अपने ढंग के लोग वहाँ भर दिये गए थे, जो सिर्फ यही जानते थे, कि हरेक आदमी लक्ष्मी-पात्र के सामने नाक रगड़ने के लिए बना है। मैंने दर साहब के अग्रिम न देने की असमर्थता प्रकट करने पर पटना के प्रकाशक को 'नेपाल' दे दिया था। लॉ-जर्नल की नौकरशाही ने उसको बहाना बनाकर लिखा : आपने इस ग्रन्थमाला की एक पुस्तक को दूसरी जगह देकर हमारी करार की खिलाफवर्जी की, इसलिए हम 'कुमाऊँ' को छापने के लिए तैयार नहीं हैं। इधर-उधर सब जगह पत्र खड़खड़ाया गया, लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। पंच किये हुए ग्रन्थ को लौटा दिया गया। मैंने भी आये हुए अग्रिम के एक हजार रुपये भेज दिए। मैं उन्हें रोक सकता था, लेकिन कौन झगड़ा मोल लेवे ? बड़े सेठ के साथ व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित करने का यह पहिला तजर्बा था। अभी तक दूसरों से सुनकर ही मैं कहता था-"थैलीशाही तेरा बेड़ा गर्क हो।" और खुद थैलीशाही की करामात देखी। और ऐसी करामात, जिससे हिमालय-सम्बन्धी सभी पुस्तकों का प्रकाशन खटाई में पड़ गया। यदि इस प्रेस को 'गढ़वाल' न दिया होता, तो जहाँ उसका प्रबन्ध होता, शायद वहाँ से और पुस्तकें भी निकल जातीं।

3 नवम्बर को हमारा पड़ोसी लाइनमेन कल्याणसिंह सपरिवार मसूरी से बदलकर देहरादून भेज दिया गया। दो लड़के, तीन लड़कियाँ और दो प्राणी खुद-सात जनों का परिवार और उन्हें मिल रहा था महँगाई-भत्ता मिला करके 59 रुपया मासिक। वर्षों से बेचारा हमारे फाटक के बाहर की कोठरी में रहता। अपने आसपास की जमीन के पत्थरों को चुनकर वहाँ उसने थोड़े-से खेत बना लिये थे, जिसमें अपने खाने-भर से अधिक साग-सब्जी उगा लेता था। इस मोहल्ले में जंगल अधिक हैं, इसलिए बकरियाँ और गाय रखे हुए थे, अब हरेक चीज को उसे मिट्टी के मोल बेचना था। 14-14 रुपये में तीन बकरियाँ बेचीं, जिनका इससे दूना तो अवश्य मिलता, ओसर गैया को सिर्फ 15 रुपये में दे डाला। सभी जानते थे, गरजू है। कितनी क्रूरता थी, इस परिवार के साथ। यहाँ उसे लकड़ी खरीदनी नहीं थी, साग-सब्जी खरीदनी नहीं थी। देहरादून शहर में रहते उसे अब हरेक चीज को खरीदना पड़ेगा। यहाँ गाय-बकरी से भी कुछ आमदनी हो जाती थी, वह भी हीला गया। महीनों तक वह सूनी कुटिया मेरा दिल दुखाने के लिए मौजूद थी।

10 नवम्बर को एक हृदयद्रावक खबर सुनी। प्रतिभाशाली तरुण इंजीनियर वासुदेव पाण्डे 26 वर्ष की उमर में जीप की दुर्घटना से चल बसा। पिता गणेश पाण्डे ही ने उससे बहुत आशाएँ नहीं बाँधी थीं, बल्कि मैं भी बहुत आशा रखता था। मिर्जापुर की तरफ नहर के काम में नियुक्त हो उसने मुझे काम करने की अड़चनें लिखी थीं। आजकल नौकरशाही में योग्यता की कहाँ पूछ है ? वहाँ तो खुशामद से सब कुछ होता है। परन्तु, मुझे विश्वास था, वासुदेव अपनी योग्यता का सिक्का मनवाकर रहेगा। इंजीनियरिंग विद्या के सम्बन्ध में हिन्दी में बहुत कुछ करने की उसकी इच्छा थी। सभी उमंगें लेकर एक तरुण जीवन का अन्त हो गया।

अध्यक्ष के चुनाव में कृपाराम हार गये। पुरुष हार को कैसे खुशी-खुशी मान लेते। पता लगा श्री रामकृष्ण वर्मा ने अपने किसी मुवक्किल का रुपया अदालत से बरामद करके अपने पास कुछ समय रखा। मुवक्किल को फोड़ा गया, मुकदमा दायर हुआ और तड़ाक-फड़ाक फैसला होकर वर्माजी मुअत्तल कर दिये गए। शहर में इसके विरुद्ध हड़ताल की गई।

13 नवम्बर को लेनिनग्राद से चिट्ठी और फोटो आया। उसे देखकर कमला बहुत उद्विग्न हुईं। बहुत रोईं। मैंने अपने भावों को प्रकट करते हुए कहा-"मैं कह चुका हूँ, कि जया को और तुम को मेरी आवश्यकता है। मैं रूस जाने की इच्छा नहीं रखता।" लेकिन, उनकी इच्छा थी, मैं पत्र-व्यवहार करना भी त्याग दूँ। क्या इससे आत्महत्या आसान नहीं है। जो पिता ईगर का प्रत्याख्यान कर सकता है, उस पर क्या विश्वास किया जा सकता है ? जिस समय कमला से सम्बन्ध स्थापित हुआ, उस समय क्या आशा थी कि रूस से फिर सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा ? अब यदि यह हुआ, तो ईगर के साथ नाता तोड़ना मानवता के खिलाफ है। यदि कमला यही चाहती हैं, तो भी कोई भयंकर कदम उठाने से पहिले दोनों माँ-बेटी का प्रबन्ध तो कर डालना ही होगा।

इसी सम्बन्ध में 14 नवम्बर को मैंने अपनी डायरी में लिखा-कल से मैं अपनी नजर में गिर गया, सारे जीवन के लिए। कमला का समझना बिल्कुल ठीक है। मैंने उसकी असहाय अवस्था का फायदा उठाया। हाँ,

परोपकार, दया दिखाने और क्या-क्या बहाना करके। वह क्यों मुझ पर विश्वास करने लगीं ?

हमारे मोहल्ले में मसूरी का एक सबसे बड़ा होटल चार्लविल है, जिसमें सौ से ऊपर परिवारों के रहने का स्थान है। तरुण कालिदास उसी होटल में धोबी का काम बाप के समय से करते रहे हैं। बड़ा भाई ग्रेजुएट होकर पाँच साल पहिले मर गया। कालिदास पिछले साल बी. ए. में फेल हो गए, इस साल फिर तैयारी कर रहे थे। उनके पिता रुहेलखण्ड के ब्राह्मण थे, जिनका प्रेम धोबिन तरुणी से हो गया! धोबिन को वह ब्राह्मण नहीं बना सके, तो स्वयं धोबी बन गये। अपने कार्य में दक्ष थे। कितने ही दिनों टेकारी के राजा के मुख्य धोबी रहकर मसूरी से बाहर भी घूमते रहे। पीछे होटल में काम करने लगे। कालिदास जन्म से ही मसूरी से परिचित हैं। सीधे-सादे किन्तु सबके गाढ़े समय में काम आनेवाले आदमी। ऐसे आदमी के मित्र भी होते हैं और शत्रु भी। वह 1947 के हिन्दू-मुस्लिम तूफान के बारे में बतला रहे थे : 1946 में लीगियों का यहाँ बहुत जोर था। लण्ढौर में उन्होंने कहा था—हम सड़क पर गाय काटेंगे। बनियों को कहाँ हिम्मत थी ? उनमें से कुछ भाग गये। 15 अगस्त 1947 से पहिले ही पश्चिमी पंजाब के, विशेषकर लाहौर के हजारों हिन्दू भागकर चले आए। नीचे नगरों में मकान मिलना मुश्किल था और यहाँ मकान खाली पड़े हुए थे। वह भी मुस्लिम लीग के खिलाफ अपने भावों को दिखाने के लिए तैयार थे। उनके कारण मुसलमान दब गये। फोन और रेडियो पर उनका बराबर कान लगा रहता था। सोचते थे, लाहौर के भारत में रहने की खबर आयेगी और हम अपने घरों में लौट चलेंगे। लाहौर पाकिस्तान में गया। उसके बाद खबर आई, पश्चिमी पंजाब में हिन्दुओं का कत्ले-आम हो रहा है। यहाँ के मुसलमानों को वह कैसे क्षमा करते ? यहाँ भी 17-18 मौत के घाट उतारे गये। राजपुर में सौ-डेढ़ सौ और देहरादून में उससे भी अधिक मुसलमानों की जान गई। एक ड्राइवर ने कोतवाली के सामने बस को खड्डे में गिरा दिया, जिससे ज्यादा आदमी मरे। खच्चरखाने में चार-पाँच मरे। सबसे दयनीय मृत्यु यहाँ के एक्जेक्यूटिव अफसर किदवाई की थी। उनका सारा परिवार राष्ट्रवादी था। उनको विश्वास था कि मेरे जैसे लीगियों के दुश्मन के ऊपर कौन हाथ उठायेगा ? लेकिन, उस वक्त तो कितनों के ऊपर पागलपन सवार था। किदवाई रास्ते चलते मार दिये गए। अवसर प्राप्त आई. सी. एस. वृद्ध हामिद अली उस तूफान में भी सड़क पर टहलने से बाज नहीं आये। मसूरीवालों को डर हुआ कि उन पर भी कोई हाथ छोड़ देगा। वह अपने साथ रक्षक के तौर पर किसी को रखने के लिए भी तैयार नहीं थे, इसलिए उनसे 50 गज पीछे आदमी लगा दिये गए। बूढ़ा सारे तूफान में बेखौफ घूमता रहा। मुसलमानों ने प्राणों से ही हाथ नहीं धोया, बल्कि धनी मुसलमानों का सर्वस्व लुट गया। लाखों का माल मुसलमानों के खिलाफ जहाद बोलनेवाले नेताओं के घरों में चला गया। अभी भी तीन आदमियों का नाम लोग लेते हैं, जो उससे पहले बिल्कुल मामूली हैसियत रखते थे; लेकिन तूफान के बाद लखपति बन गये। मुसलमानों को नवाब-रामपुर के बँगलों और दूसरी जगह सुरक्षित जगहों में रख दिया गया। पीछे वे सशस्त्र सैनिकों की देख-रेख में बसों पर बैठाकर नीचे भेजे गये। उस समय सभी बड़ी-बड़ी कोठियों में बलती मुसलमान चौकीदार थे, सड़क बनाने का काम भी बलती मजदूर करते थे। सभी संकट में फँस गये, और फिर मसूरी को खाली करके चले गए।

नवम्बर में 'बहुरंगी मधुपुरी' की कहानियाँ लिखते रहे। नरेन्द्र यश के ऊपर एक उपन्यास लिखने का विचार कितने ही महीनों से दिमाग में चक्कर काट रहा था, जिसका आरम्भ 21 नवम्बर से किया। 'राजस्थानी रनिवास' को नेशनल हेरल्ड में छपने का भी अब प्रबन्ध हो गया।

31 दिसम्बर को साल खतम होने लगा। लेखा-जोखा करने पर मालूम हुआ, कि इस साल 3000 पृष्ठ से अधिक पुस्तकें लिखीं। साल बुरा नहीं था। हाँ, आर्थिक चिन्ता रही, जहाँ तक भविष्य का सम्बन्ध था।

# 9
# वृद्ध लेडली

1954 के नव वर्ष के दिन वृद्ध लेडली बेहोश पड़े थे। पिछले पाँच-छः दिन से उनकी तबीयत अस्वस्थ थी। 1 जनवरी को लकवा मार गया। उनका 78 वाँ वर्ष चल रहा था, पके फल तो थे ही, जरा-सी हवा के झोंके की जरूरत थी। जाड़ा अधिक होने पर देहरादून चले गए होते, तो शायद अभी और कुछ दिन जी पाते। लकवे के बाद फिर उनको होश नहीं हुआ। 6 जनवरी को देहान्त हो गया और 7 को उनकी शव-यात्रा हुई।

31 जनवरी को बरफ पड़ी। कल रात को भी और 1 तारीख को तो सारे दिन पड़ती रही। भूमि पर ही नहीं, बल्कि वृक्षों पर भी हिमखण्ड दिखाई पड़ते थे। हिमालय का एक-एक अंगुल बरफ से ढँक गया था। दिन-भर आग जलाकर घर के भीतर बैठे रहे। अगले दिन से आसमान साफ हो गया, धूप निकलने लगी और बरफ खुली जगहों में गलने लगी। 3 जनवरी की शाम को महादेव भाई आये। साल में इतना अन्तर तो नहीं हो सकता, लेकिन बाल ज्यादा पके दिखाई पड़ रहे थे। शरीर का बढ़ा वजन बतला रहा था कि अब प्रौढ़ा अवस्था में पैर काफी दूर तक पहुँच गया है।

यद्यपि हिमालय-सम्बन्धी लिखी हुई पुस्तकें अभी प्रकाशित होने को बाकी थीं, किन्तु हमने जम्मू-कश्मीर की सीमा तक के हिमालय को लिखने का निश्चय कर लिया था, इसलिए अब अन्तिम पुस्तक 'हिमाचल प्रदेश' (जालंधर-खण्ड) के लिखने में हाथ लगा दिया। इस साल कम्युनिस्ट-दृष्टि से जनसाधारण की भाषा में एक-एक फार्म के साढ़े तीन दर्जन पम्फ्लेटों के लिखने का निश्चय किया था। 6-7 जनवरी को पहिला पम्फ्लेट "कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं" लिख भी डाला। 7 तारीख से ही 'हिमाचल प्रदेश' में भी हाथ लगाया। जाड़ों में खुला आसमान और धूप अच्छी लगती है। हिमवर्षा भी बुरी नहीं लगती, लेकिन यदि कई दिनों तक बादल घिरे और बूँदा-बाँदी रहे, तो अच्छा नहीं लगता। यहाँ का क्या ? हवा-बादल चले, सर्दी बढ़ जाए, धूप निकल आये, तो अमन-चैन की वंशी बजे। महादेव भाई सर्दी के फेर में पड़े। दो दिन के लिए हरिश्चन्द्रजी अपनी पत्नी और पुत्र के साथ आकर ठिठुरते रहे। बेकार की इस सर्दी को बर्दाश्त करने के लिए वह क्यों तैयार होते ?

17 जनवरी को फिर जलवर्षा और हिमवर्षा का दौर शुरू हुआ। उस दिन दोपहर बाद बरफ गिरने लगी, लेकिन जमीन ढँकने नहीं पाई। सर्दी तेज हो गई। अगले दिन मध्याह्न से हिमवृष्टि होने लगी, और सारी जमीन ढँक गई। 19 जनवरी को बीच-बीच में बरफ या बजरी पड़ती रही, हवा भी तेज थी। 3 बजे बराण्डे में तापमान 32 डिग्री, अर्थात् हिमबिन्दु से एक डिग्री नीचे।

हिम देखने के लिए कितने ही लोग नीचे से आए। हमारे दोनों कमरों में आग जली रहती। जया ने दुनिया में पहिला जाड़ा देखा। डर लग रहा था, सर्दी प्रतिकूल न साबित हो, लेकिन लड़के काफी बर्दाश्त कर लेते हैं। कमला की बहिन गंगा और भाई हरिमंगल साथ के दूसरे कमरे में आग के सामने बैठते रहते। आग

तापते सर्दी दूर करना दिन में बुरा नहीं होता, यदि बात करते और बीच-बीच में गरम पेय पीते रहे। गरम-गरम मांस-सूप बहुत प्रिय लगता है, पर शहर से दूर रहने का एक फल यह भी मिल रहा था, कि मांस अपनी इच्छा से सुलभ नहीं था।

**अमृतसर**–भैया-भाभी के यहाँ जाड़ों में जाने की पहिले सलाह हो चुकी थी। सर्दी से बचने का यह अच्छा उपाय था। चाय पीकर हम 22 जनवरी के 9 बजे घर से निकले। रास्ते में बरफ खूब पड़ी हुई थी, पेड़ों पर भी लदी थी, जो अब पिघलकर गिर रही थी। जान पड़ता था, हम चीनी के मोटे दानों के ऊपर चल रहे हैं। टोल के पास आध फुट से अधिक मोटी बरफ थी। रिवेरा के आगे तक अधिकांश सड़क बरफ से ढँकी मिली। किताब-घर के अड्डे पर कोई टेक्सी नहीं थी। किंक्रेग में दो सीटें मिलीं। 11 बजे चले। 3500 फुट तक जहाँ-तहाँ सड़क पर बरफ मिली। बतला रहे थे, कल राजपुर में भी बजरी गिरी थी, यदि दो घंटे और तापमान उसी तरह चला जाता, तो देहरादून में भी हिमवृष्टि हो जाती।

12 बजे शुक्लजी के यहाँ पहुँचे। भोजन तैयार था। जया और उसकी माता वहाँ शुक्लाइनजी से बातचीत करने लगीं और मैं डेढ़ घंटे के लिए मिश्रजी के साथ सत्संग करने चला गया। अबके दिन-दिन में ही अमृतसर चलने का निश्चय किया। साढ़े 3 बजे हमें अमृतसर की ट्रेन मिली। पहिले दर्जे में सीट रिजर्व थी। नीचे की सीटें मिल गई थीं। हरद्वार पहुँचते-पहुँचते सूर्यास्त हो गया। लुकसर में पहुँचकर भोजन किया। मध्य रात्रि को भी देख रहे थे, वृष्टि जारी है, और सर्दी तो मसूरी से पीछा कर रही थी।

ठीक 7 बजे गाड़ी अमृतसर स्टेशन पर पहुँची। भैयाजी मौजूद थे। ताँगे पर बैठकर 8 बजे हम उनके घर पर पहुँचे। उस दिन शाम को 3 बजे टहलने के लिए कम्पनी बाग गये। कितनी ही दूर तक रिक्शे पर चले। अमृतसर की गलियाँ भी बनारस-जैसी ही हैं, और भीड़ भी बहुत रहती है। मसूरी की सर्दी अप्रिय लग रही थी, और यहाँ की बड़ी सुहावनी। भैया का कहना था–"चार महीने जाड़ों के यहीं बिताओ।" पर जाड़ा बिताना ही तो जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। लिखे-पढ़े बिना दिन कैसे कटता, और उसकी सुविधा मसूरी में ही थी। वहाँ पुस्तकें थीं और वहाँ मिलने-जुलनेवाले भी बहुत कम आते थे।

24 जनवरी को 3 बजे रिक्शे पर छावनी गये। फिर वहाँ से पैदल कम्पनी बाग। कम्पनी बाग का अर्थ ही है, कि इसकी स्थापना 1857 से पहिले हुई थी। चलने में अब थकावट मालूम होती थी। अमृतसर शहर का कुछ भाग जल गया है। यहीं हिन्दू-मुसलमानों का डटकर संघर्ष हुआ था। मुसलमानों की संख्या कम थी, इसलिए उनको ज्यादा जन-धन की हानि उठानी पड़ी। अन्त में एक-एक को पाकिस्तान चला जाना पड़ा। वही बात उल्टी दिशा में लाहौर में हुई। जहाँ मुसलमानों की बड़ी-बड़ी दूकानें थीं, वहाँ अब शरणार्थियों की छोटी-छोटी दूकानें खड़ी थीं, बड़े मकान तो जलकर ख़ाक हो गए थे। हिन्दुओं ने इन्हें जलाकर अपना ही नुकसान किया, किन्तु उस वक्त किसकी अक्ल ठिकाने थी ? अतवार को दूकानें बन्द रहती हैं, लेकिन शरणार्थियों की दूकानें उस दिन भी खुली थीं। दूसरी दूकानों से यहाँ चीजें सस्ती मिलती थीं। इसलिए गाहक अधिक आवें, यह स्वाभाविक था।

3 फरवरी तक हमारी एक ही तरह की दिनचर्या थी। छत पर एक जगह सबसे पहिले धूप आती। वहीं दरी-तलिया लग जाता, जिस पर कमला, जया, मैं, भाभीजी डट जाते। भाई साहब बीच-बीच में कोई और भी काम कर आते, लेकिन हम वहीं तब तक बैठे रहते, जब तक कि दोपहर को धूप वहाँ से हट नहीं जाती। गम्भीर नाश्ता और चाय के बाद 10 बजे मालटा-मुसम्बियों का दौर आरम्भ होता। एक पूरी टोकरी सामने रख दी जाती और हम तब तक काट-काटकर चूसते रहते, जब तक टोकरी साफ नहीं हो जाती। भाभी साहिबा परोसने में बड़ी जबर्दस्त हैं। माजल नहीं कि कोई मेहमान गले तक पेट भरे और अजीर्ण लिये बिना वहाँ से हट जाए। भाई साहब ने मकान को अपने मन से बनवाया था, और आम भारतीय मकानों की तरह यहाँ भी पाखाने का स्वच्छ प्रबन्ध नहीं था। वह स्वच्छ प्रबन्ध तब तक नहीं हो सकता, जब तक फ्लश का इन्तिजाम न हो। हम कुछ दिन और रहते, लेकिन कमला ने बी. ए. का फार्म भरा था, और यहाँ पढ़ना नहीं हो रहा था। उधर 'बहुरंगी मधुपुरी' के प्रूफ भी आने लगे थे। कमला के प्रकाशन की यह तीसरी और

अन्तिम पुस्तक थी।

28 जनवरी को 4 बजे अब पुराने मित्रों से मिलने के लिए निकले। देशभगत परिवार में बाबा केसरसिंह मिले। यह उन वीरों में थे, जिन्होंने अमेरिका के सुखी जीवन को लात मारकर विश्व-युद्ध के समय देश के मुक्तियज्ञ में अपने सर्वस्व की आहुति दी थी। अंग्रेज सबको फाँसी पर लटकाने के लिए तैयार नहीं थे, इसीलिए बाबा केसरसिंह और उनके कितने ही साथियों को आजन्म कालापानी की सजा हुई। 79 वर्ष के हो गए थे। पूरा छः फुट का शरीर, लेकिन अभी भी कमर नहीं झुकी थी। चल भी लेते। उनसे मिलकर दोनों को बड़ी प्रसन्नता हुई। क्या पता, यह अन्तिम मुलाकात है। उनसे मालूम हुआ, कि तीन-चार वर्ष पहिले बाबा करमसिंह धूत का देहान्त हो गया। वह भी अमेरिका से देश की स्वतन्त्रता के लिए आए थे। रूस में कितने ही समय रहकर साम्यवाद की शिक्षा प्राप्त कर, वर्षों देश के जेलों में रहे। तरुणों का कितना मनोरंजन करते थे ? बाबा सोहनसिंह भाखना–अमेरिका में भारतीय गदर पार्टी के संस्थापक–अब भी जीवित थे। कमर उनकी पहिले ही टेढ़ी हो गई थी, अब चलना-फिरना भी उनके लिए मुश्किल था, और अधिकतर अपने गाँव में रहते थे। 31 जनवरी को उनके गाँव जाने का निश्चय था, किन्तु कुछ बुखार आ गया, इसलिए यात्रा स्थगित करनी पड़ी। बाबा बिसाखासिंह अब भी थे, किन्तु बहुत दुर्बल। वह तो वर्षों से टी. बी. के मरीज थे। देवली केम्पवाले और भी साथियों से मुलाकात होती, लेकिन आजकल पेप्सू में पुनर्निर्वाचन हो रहा था, सारे साथी उसी में लगे हुए थे।

31 जनवरी को लोक-लिखारी सभा की ओर से रिपब्लिक हॉल में मुझे भाषण देना पड़ा। साहित्य, भाषा और कला पर बोला। पंजाबी भाषा और पंजाबी सूबे की बात भी आई। सिर्फ लिखारी ही नहीं, नगर के दूसरे भी शिक्षित सम्भ्रान्त वर्ग के लोग मौजूद थे। अमृतसर में इसी एक भाषण से लोगों को मेरे आने का पता लगा था। मैंने यह भी कहा कि चंडीगढ़ में पंजाब की राजधानी बसाने जैसी बेवकूफी नहीं हो सकती। उसके भाग्य में उजाड़ बदा है। मृत-प्रसव इसी को कहते हैं। अमृतसर यदि सीमान्त के पास था, तो जलन्धर राजधानी के लिए सबसे अनुकूल नगर था। ऐतिहासिक तौर से भी वह पंजाब का सबसे पुराना नगर है, और केन्द्र में भी है। कुछ ही मील पर कपूरथला से एक होकर वहाँ न जमीन की दिक्कत थी, और न सरकारी आफिसों या लोगों के रहने के लिए मकानों की। एक धनी पुरुष ने कहा : यही सोचकर जमीन लेकर भी मैंने वहाँ मकान नहीं बनाया। पंजाब के अध्यवसायी व्यापारी भली प्रकार जानते हैं, कि उनके फलने-फूलने का स्थान कौन-सा हो सकता है ? अगर इन्हें अपने शहर को छोड़ना है, तो वह इसके लिए दिल्ली को ज्यादा पसन्द करेंगे। अमृतसर की जनसंख्या पहिले से बढ़ी है, किन्तु घर उतने नहीं बढ़े। कोई भी स्थायी सम्पत्ति या उसका साधन यहाँ कायम करना लोग पसन्द नहीं करते थे। जब ज्योतिषियों की भविष्यवाणी सुनकर हजारों की तादाद में लोग शहर छोड़कर भाग जाते हैं, पाकिस्तान-हिन्दुस्तान के सम्बन्ध के जरा-से खराब होने से हड़कम्प मच जाती है, तो वहाँ कौन नये कारखाने खोलेगा। पहिले अमृतसर उभय-पंजाब और कश्मीर तक के कपड़े और कितनी ही और चीजों का मुख्य बाजार था, अब नहीं रह गया है। इसका बुरा प्रभाव अमृतसर के बाजार के ऊपर पड़ा है।

**मसूरी**–अमृतसर में बारह दिन रहकर 4 फरवरी को रात की गाड़ी से हम मसूरी के लिए रवाना हुए। जया की बाँह में चेचक का टीका लगवाया था। पहिली बार का लगाया उभड़ा नहीं, फिर दूसरी बार लगवाया। अब वह फूल आया था, बुखार भी था। बेचारी का मुँह मुरझा गया था। बच्चों का हँसता चेहरा ही अच्छा लगता है। बुखार और चेचक की अवस्था में मसूरी ले जाने की सलाह तो नहीं मिल रही थी, लेकिन मजबूरी थी। 5 फरवरी का सबेरा सहारनपुर में हुआ। रात-भर वर्षा हुई, और वह मसूरी तक ऐसी ही थी। नदियों की धारा बढ़ गई थी, खेतों में पानी भरा हुआ था। 9 बजे गाड़ी लुकसर पहुँची। गाड़ी ने छकड़े का रूप ले लिया था, और सवा बजे ही देहरादून पहुँची। बहुत-से मध्य-हिमालय के पहाड़ भी हिमालय-श्रेणी बन गए थे। मसूरी का देहरादून की तरफ वाला भाग बहुत कम बरफ से ढँका देखा जाता था, लेकिन आज वह भी ढँका था। नीचे रात को जो वृष्टि हुई थी, वह यहाँ हिमवृष्टि के रूप में परिणत हो गई थी।

डेढ़ बजे शुक्लजी के घर पर पहुँच गए। अब की इलाहाबाद में कुम्भ लगा था। भारत के सभी देव-महादेव कुम्भ का मेला देखने और अपना दर्शन कराने वहाँ पहुँचे थे। प्रबन्ध करनेवाली पुलिस देवताओं के दरबार में उपस्थित हो गई, और उधर आदमियों का ऐसा रेला आया कि हजारों आदमी कुचलकर मर गए। इसकी खबर मिलने पर भी देवताओं की दावतें चलती रहीं। कैसा क्रूर परिहास ? कुम्भ मेले में शुक्लाइनजी भी गई हुई थीं। कहा–"जिन्दगी का क्या ठिकाना। अब तो यह कुम्भ बारह वर्ष बाद ही आएगा।" शुक्लजी क्यों रोककर पाप के भागी होते ? तार पर तार खटखटा रहे थे, पर प्रयाग से कोई जवाब नहीं मिल रहा था। तार खटखटानेवाले वह अकेले ही थोड़े थे ? हजारों तारों को ठीक जगह पर पहुँचाना तारघरवालों के बस की बात नहीं थी। प्रयाग की हृदयद्रावक खबरें अखबारों में निकल रही थीं, जिसे पढ़कर चिन्ता और बढ़ गई थी। आज तार आया, लेकिन उसमें सकुशल वहाँ पहुँचने की बात थी।

उस दिन घूमते-घामते कल्याणसिंह की कोठरी में भी पहुँचे। बेचारे की अवस्था बड़ी दयनीय थी। सात आदमी, शहर का जीवन और रुपये दिन के दो भी नहीं।

6 फरवरी को श्री हरिनारायण मिश्र के यहाँ कितने ही विद्यार्थियों और अध्यापकों की गोष्ठी रही। भोजनोपरान्त कन्या गुरुकुल में भाषण दिया। धीरे-धीरे इस संस्था ने बड़ा रूप धारण कर लिया है। सौ एकड़ के करीब जमीन है, दो लाख से अधिक की इमारत है। बहुत समय पहले समाज के लिए आवश्यक इस संस्था का निर्माण हुआ था। पर, स्त्री-शिक्षा के बढ़ते हुए वेग से जितना लाभ उठाना चाहिए था, उतना इसने नहीं उठाया। यद्यपि शिक्षा की आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति यहाँ की गई है, लेकिन आधे मन से ही। यही कारण है, जो कन्या-गुरुकुल उतना उन्नति नहीं कर सका। डा. सत्यकेतु की पुत्री उषा इस वक्त यहाँ पढ़ रही थी। पढ़ाई का लाभ उन्हें साफ दिखाई पड़ा। भाषा में उसने बड़ी तरक्की की, और पढ़ने में भी। वजन काफी बढ़ गया था। लेकिन, माँ-बाप को ख्याल आया, कि आधुनिक तरुणी को जैसा होना चाहिए, वैसी वह नहीं हो सकेगी, इसलिए कुछ समय बाद उसे हटा लिया, यद्यपि वहाँ खर्च भी कम पड़ रहा था।

7 को सबेरे शुक्लाइनजी आईं। लोग बड़े खुश हुए। डर होने लगा था कि वह देहरादून की जगह बैकुण्ठ पहुँच गई होंगी। हमने पौने 11 बजे मोटर पकड़ी और साढ़े 12 बजे मसूरी अपने घर पर पहुँच गए। 4 तारीख की बरफ अब भी रास्ते पर पड़ी थी, लेकिन 21 जनवरी जितनी नहीं थी।

जया को टीके के कारण ज्वर था। बच्चों का करुण रुदन सुनना असह्य होता है। घर पर आकर सबसे अधिक आराम बाथरूम का था। इतना आधुनिकपन तो अब हमारे में आ ही गया था, कि बाथरूम कमरे की बगल में हो, और फ्लश का हो। डायबेटीज़ ने इसे आवश्यक भी बना दिया। 9 को जया का बुखार जब बिल्कुल हट गया, और वह हँसने लगी, तो बड़ी प्रसन्नता हुई। पानी में मिलाकर गाय का दूध भी पिलाया जा रहा था। वह उसे हजम भी करने लगी। उसकी सभी इन्द्रियाँ अब काम कर रही थीं, और तकिये के सहारे कुछ बैठ भी सकती थी। उठक-बैठक का तो ताँता लगा देती थी।

2 मार्च को जाड़े की समाप्ति का पता लगने लगा, जब नंगे वृक्षों पर पत्तियों को कुडमलित देखा। इसमें हमारी नासपाती सदा पहिले रहा करती है। 5 मार्च को उसमें लाल-लाल पत्तियाँ दीखने लगीं। 8 मार्च को जया बैठने लगी। 'हिमाचल प्रदेश' को डिक्टेट करके टाइप कराते बहुत दूर तक हम लिख चुके थे। हिमालय के किसी भाग के परिचय-ग्रन्थ को हम पूरा नहीं समझ सकते, जब तक कि उसकी यात्रा भी उसमें सम्मिलित न हो जाए। इसीलिए अबके हिमाचल प्रदेश की यात्रा करनी थी। साथ में किसी के रखने की आवश्यकता थी। मैंने धूपनाथजी और जनकालालजी दोनों के पास को पत्र लिखा; दोनों इसके लिए तैयार थे।

शुक्लजी की पुत्री मुक्ता (कमल) का 11 मार्च को ब्याह था। 10 को मैं भी वहाँ पहुँचा। उसी दिन शाम को बरात आई। इकलौती लड़की का ब्याह माँ-बाप ने पूरे उत्साह के साथ करना चाहा, यद्यपि लड़के वाले इसे उतना पसन्द नहीं करते थे। विद्वान् के घर में विवाह हो, तो सबसे अधिक पण्डितों का आना स्वाभाविक था। वर कृष्णकान्त मिश्र पढ़ने में हमेशा प्रथम आते रहे, और यदि तिकड़म न लगाया गया होता, तो वह आई. ए. एस. में आ गए होते। वह एक डिग्री कालेज में अध्यापक थे। आशा है, ऐसे प्रतिभाशाली तरुण

का रास्ता सदा रुका नहीं रह सकता। श्री किशोरीदास वाजपेयी बरातियों की ओर से थे। कन्या के दादा-दादी भी ब्याह में शामिल हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रियों तक को देख लिया। दादी की माँ ने तो एक और भी पीढ़ी देखी थी। ब्याह दिन में हुआ। यद्यपि पोशाक में प्राचीनता रखने की कोशिश की गई थी, लेकिन वर में कोई संकोच नहीं था, और कन्या भी उतनी छुई-मुई-सी नहीं हुई थी। विवाह करानेवाले पण्डितजी ने 'शर्मणस्य' जब कहा, तो हँसी आ गई। पुरोहित के लिए संस्कृत के ज्ञान की आवश्यकता नहीं। ब्याह के सम्बन्ध से आए थे, तब भी दो व्याख्यान देने ही पड़े। कमला भी हमारे साथ ब्याह में शामिल हुई थीं। उन्हें उत्तरप्रदेश का प्रथम ब्याह देखने का मौका मिला।

13 मार्च को हम टेक्सी करके दोपहर तक मसूरी पहुँच गए। लेडली के घर तक पहुँचने में कुछ घबराहट मालूम हुई। दोपहर और रात को भी कुछ नहीं खाया। रात को बुखार मालूम हुआ। इस वक्त गौतमजी की लम्बी-लम्बी तुकबन्दियों में फटकारें आ रही थीं, जिनमें बौद्ध धर्म, साम्यवाद को गालियाँ रहती थीं। ऐसे आदमी से कुछ कहा भी तो नहीं जा सकता। कुछ भी अस्वस्थता होने पर चारपाई पर पड़कर पूरा विश्राम करना, यही मेरा नियम है। बुखार या पेट की गड़बड़ी होने पर मैं खाना भी छोड़ देता हूँ, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पढ़ना भी छोड़ दूँ, या आवश्यक प्रूफ आने पर उसे रख छोड़ूँ। अब की चारपाई पर पड़े-पड़े मैंने प्रेमचन्द के 'गोदान' को पढ़ना शुरू किया। वर्षों पहिले उसे पढ़ा था, जिसका मन पर संस्कार भी अब नहीं था। समाप्त करने पर डायरी में लिखा—"अद्भुत लेखनी है। कितने गुण हैं ? भाषा ही को ले लें, तो देखो कितना कमाल किया। जनता के मुँह से निकलनेवाले शब्दों को धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं। अनावश्यक क्लिष्ट शब्दों को हटाकर देहाती शब्दों का भी प्रयोग किया है। हो सकता है, उनमें कुछ ऐसे भी हों, जो हिन्दी के पश्चिमी क्षेत्रों में नहीं बोले जाते। पर, उसके लिए क्या चित्रण की एक उत्कृष्ट सामग्री को छोड़ अधूरा चित्र अंकित किया जाए ? या अनावश्यक तथा अप्रयुक्त तत्सम या उर्दू के शब्दों को लिया जाए ? किसान के दुःखमय जीवन का इतना स्पष्ट, विस्तृत और गम्भीर चित्रण किसने किया है ? भारत में तो कोई ऐसा नहीं हुआ ? कोई अनावश्यक पात्र नहीं है—मालती और खन्ना भी नहीं। इतने नाम उपन्यास में आ जाएँ, उन्हें अन्त से पहिले विस्मृत या मृत न बनाया जाए, यह कोई उचित माँग नहीं है। 'गोदान' के पात्रों में सबका अपना-अपना अलग-अलग व्यक्तित्व है।"

17 मार्च से बैठकर काम करना शुरू किया। 19 को कल्याणसिंह आए। 'कमलसिंह' के नाम से अधिकतर उनकी ही जीवनी को लेकर जो मैंने कहानी लिखी थी, वह 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में छप चुकी थी। देहरादून में किसी ने पढ़ा और भाँप लिया। उसने कल्याणसिंह को भी सुनाया। कल्याणसिंह कह रहे थे—"आपने सब बातें कैसे जान लीं ?" हाँ, कुछ बातें मैंने उसमें कल्पना से लिखी थीं लेकिन उसकी स्थिति के आदमी के लिए वे बिल्कुल सम्भव थीं, इसलिए तुक बैठ गई। अब नई नगर-पालिका आ गई थी। मैंने उसके प्रभावशाली व्यक्तियों से सिफारिश की, और कल्याणसिंह से मसूरी में बदल देने के लिए दर्खास्त लिखवाई।

हमारे यहाँ करीब-करीब सभी त्यौहार दो दिन होते हैं। त्यौहार दो दिन तक रहे, लोग दो दिन उत्सव मनाएँ, यह बुरा नहीं है। लेकिन, तिथि का निश्चित होना जरूर बुरा है। इस मोहल्ले के लोग 19 को ही होली मना रहे थे, अर्थात् 18 को ही उन्होंने होली जला दी। हमने अपने यहाँ 20 को होली मनाई। पकवान बने। कमला ने पड़ोसिनों में भी कुछ बाँटा। जया आज छः मास की हो गई थी। कुछ बातों की नकल करने लगी थी। यद्यपि मोटी नहीं थी, पर दुबली भी नहीं कह सकते थे।

21 मार्च को पूर्वी पाकिस्तान के साधारण निर्वाचन की खबर आई। जिस मुस्लिम लीग को अजेय समझा जाता था, वह पाकिस्तान के अधिक जनतावाले सबसे बड़े साढ़े तीन सौ में से दस भी स्थान नहीं पा सकी। मुख्यमन्त्री और दूसरे मन्त्री सभी चुनाव में पराजित हुए। धर्म की दोहाई देकर उन्होंने लोगों की भाषा बंगला को दबाना चाहा, विरोध प्रकट करने पर गोलियाँ चलवाईं। सेना और सभी बड़ी-बड़ी नौकरियों में पंजाबियों को शासन करने के लिए वहाँ भेज दिया गया। सात वर्षों से वहाँ की जनता में जो दुर्भाव जमा होता रहा, उसका ही यह परिणाम था।

23 मार्च को 'आर्यान पेशवा' के चार गण हमारे यहाँ भी आए। राजा महेन्द्र प्रताप आर्यान पेशवा के नाम को अधिक पसन्द करते हैं। इसके यौगिक अर्थ में धर्म के पैगम्बर होने की गंध आती है, और रूढ़ि अर्थ में भारत के एक शक्तिशाली वंश की। आज राजा महेन्द्र प्रताप यद्यपि बुढ़ापे के असर में पूरी तौर से आ गए हैं, और उनकी बातों से सहमत होना मुश्किल है, लेकिन, देश की आजादी के लिए जो कुर्बानी उन्होंने की, उसको भुलाया नहीं जा सकता। प्रथम विश्वयुद्ध में घर और राजसी भोग छोड़कर बाहर निकले, तो भारत के स्वतन्त्र होने पर ही देश लौटे। वह बराबर ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करते रहे, आज भी ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के वह उसी तरह विरोधी हैं। तपे हुए देशभक्त के अतिरिक्त वह बहुत बड़े घुमक्कड़ हैं। अनेक बार उन्होंने पृथ्वी-परिक्रमाएँ कीं, ओर धन के वल पर नहीं। ऐसे पुरुष के सामने मेरे जैसे आदमी का सिर नत हो जाए, यह स्वाभाविक है। पेशवा 10 मई को दिल्ली 'पकड़ने' जा रहे थे। मुसोलिनी ने रोम पकड़ा था, शायद वही ख्याल आर्यान पेशवा के दिमाग में भी घूम रहा था। वह गए भी, लेकिन उनके साथ हजार की भी पलटन तो नहीं थी। वह अपने हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू पत्रों में खूब खरी-खरी बातें लिखते हैं, जो कानून का उल्लंघन करती हैं। पर, सरकार उस पर चुप साधे हुए रहती है, इसका भी उन्हें दुःख है। जेल भेजती, तो शायद कुछ काम आगे बढ़ता।

कमला के भाई हरि और बहिन गंगा को यहाँ इसलिए बुलाया गया था, कि उन्हें पढ़ने का सुभीता होगा। गंगा का नाम स्कूल में लिखवा दिया, वह पढ़ने भी जाया करती। हरि का नाम भी रमादेवी हाईस्कूल में लिखने के लिए प्रिंसिपल मलहोत्रा को चिट्ठी लिख दी। यह स्कूल अपने परीक्षा-परिणामों की दृष्टि से मसूरी का सबसे अच्छा स्कूल है। हरि को यहाँ का जीवन पसन्द नहीं था। घर में अवश्य उसकी दो बहनें और मंगल नेपाली भाषा बोलनेवाले थे; लेकिन, बाहर वह कलिम्पोंग का वातावरण नहीं पाता था। स्कूल में जाने पर अपरिचित और दूसरे भाषावाले लड़के के सीधेपन से दूसरे लड़के लाभ उठा सकते हैं, किन्तु यह कोई ऐसी बात नहीं थी, कुछ दिनों में सब ठीक हो जाता। हरि अपने मनोभावों को किसी से कहता भी नहीं था। हम समझते थे, वह पढ़ने जा रहा है।

अपनी बी. ए. परीक्षा के लिए 28 मार्च को कमला जय हरि के साथ देहरादून गई। प्रवेश-पत्र यहीं भूल गई थीं, इसलिए कमला को रवाना कर हरि लौट आया, और दूसरी बस से गया। जया की किलकारी बिना हमारा कमरा सूना-सूना मालूम होता था। साथ ही यह भी ख्याल आता था कि मार्च के अन्त में अब देहरादून में गर्मी आ गई है, न जाने उसके ऊपर कैसी गुजरती होगी? 30 को कमला की चिट्ठी भी आई। उसमें गर्मी और मक्खियों—दोनों की शिकायत थी। 1 अप्रेल को 10 बजे कमला लौटकर आयीं, तब चिन्ता दूर हुई। जया को मच्छरों ने काट खाया था। परीक्षा के बारे में निराशा नहीं थीं, हाँ, इसका अफसोस जरूर था कि एफ. ए. में सभी विषयों को लेकर दिया होता, तो इस साल भी सभी विषयों में परीक्षा देतीं और पास होने की पूरी डिग्री मिलती।

'विस्मृत यात्री' पिछले ही साल पूरा हो गया था। दिल्ली के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने उसे धारावाहिक रूप से अपने यहाँ प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। 'हिन्दुस्तान' की ग्राहक संख्या को देखते हुए हमें पसन्द था कि वह पुस्तकाकार छपने से पहिले यदि किसी पत्र में निकल जाए तो अच्छा है। लेकिन, ऐसे ग्रन्थों के साथ जिस तरह की मनमानी की जाती है, वह लेखक को पसन्द नहीं आ सकती।

2 अप्रेल का बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की ओर से डा. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी का पत्र आया कि परिषद ने 'मध्य-एसिया का इतिहास' प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया है। कितने ही वर्षों से यह बड़ी साध और मेहनत से लिखा हुआ ग्रंथ अधर में लटका हुआ था। प्रकाशक बहुत चुस्त मिले, लेकिन प्रेस के भूतों ने उसे ऐसा दबोचा कि 1957 में भी दूसरे खंड के निकलने में सन्देह है।

हिमाचल की यात्रा के लिए धूपनाथजी और जनकलालजी दोनों तैयार थे। 5 अप्रेल को धूपनाथजी आ गए, और उससे अगले दिन जनकलालजी भी। जनकलालजी जवान और पहाड़ी थे, साथ ही वैद्यक भी जानते थे, इसलिए उन्हीं को साथ ले जाना अच्छा जान पड़ा।

10 अप्रेल को हमने यहाँ से हिमाचल-यात्रा के लिए प्रस्थान करने का निश्चय किया था। तब तक 'हिमाचल प्रदेश' की आवृत्ति करके उसे ठीक लगाने में लगे रहे। 7 तारीख को लण्ढौर गए, और बड़ी लालसा से कि किशनसिंह से मुलाकात होगी। देखा, उनकी दूकान पर ताला लगा हुआ था। माथा ठनका। वह अब तक दिल्ली में गर्मी बर्दाश्त करने के लिए नहीं रह सकते थे। फिर रामसिंह की बुढ़िया माँ मिली। उसने बतलाया कि 1 अप्रेल ही किशनसिंह दिल्ली में चल बसे। कनौर में पैदा हुए, पहाड़ों का चक्कर काटते रहे, फिर मसूरी में बस गए। वह कितने सरल और मधुर थे। मसूरी में उनका अभाव अब हमेशा हमें खटकेगा। बीवी को दो बच्चों को पालना है, बड़ा बहुत कम अकल रखता है, और छोटा अबोध है। किशनसिंह का ख्याल करके इष्टमित्र कभी-कभी सहानुभूति प्रकट करेंगे, लेकिन सारी विपदा तो बेचारी इस स्त्री को ही भोगना है। वह भारत के करोड़ों आदमियों में एक थे, उनके अभाव को कौन याद करेगा ? पर, मैंने तो किशनसिंह को नजदीक से देखा था। मैं कैसे उनको अपने जीवन-भर भुला सकता हूँ ?

# 10
# हिमाचल प्रदेश में

**नाहन**–10 अप्रेल को जनकलालजी और मैं साथ-साथ डेढ़ बजे देहरादून के लिए रवाना हुए। उसी दिन रास्ते के लिए कैमरे के कुछ फिल्म और दूसरी चीजें खरीदीं, और अगले दिन के लिए साढ़े 7 रुपये में नाहन तक के बस के टिकट भी खरीद लिये। ठण्डी जगह रहनेवाले आदमी के लिए गर्मी बर्दाश्त करना बहुत है। 11 की दोपहर को बस निकलनेवाली थी। गर्मी के मारे माथा भिन्ना रहा था। हिमाचल सरकार ने जो अपनी बस सर्विसें जारी की हैं, उनमें से एक हरद्वार तक आती है। लौटते हुए उसी ने हमें लिया। उसे जमुना के किनारे जाकर छोड़ना था, लेकिन चूहड़पुर बाजार में भी सवारी लेना था। चूहड़पुर अब बहुत बढ़ गया था, जिसमें शरणार्थियों का भी काफी हाथ था। सहसपुर के करीब के जल-विभाजक से दून-उपत्यका गंगा और जमुना के दो क्षेत्रों में बँट गई है। सहसपुर चूहड़पुर से काफी इधर ही पड़ता है। चूहड़पुर से लौटकर बस जमुना किनारे गई। ठीक दुपहरिया का समय और अप्रेल का मध्य। वृक्ष जमुना के तट से दूर थे। घाट पर गर्मी का क्या पूछना ? भलेमानुसों से इतना भी नहीं हुआ था कि ऐसे समय नाव को पहिले ही किनारे पर लगवाते। उसी धूप में मुसाफिरों को घंटे-भर से ऊपर पड़ा रहना पड़ा। मेरे कपड़े-लत्ते में कोई विशेषता नहीं थी, पर उसी बस से आए ठाकुर बडोत्रा ने जनकलालजी से मेरे बारे में पूछा। मेरे लेख नजरों के सामने से गुजरे थे, इसलिए नाम जानते थे। वह नाहन में को-आपरेटिव इन्सपेक्टर थे। उन्होंने अपने यहाँ रहने का निमंत्रण दिया।

जमुना की धार यहाँ बड़ी तेज थी, पर चौड़ी नहीं थी। नाव को आरपार खींचने के लिए रस्सा बँधा हुआ था, जिसमें प्रवाह नाव को बहा न ले जाय। पार हुए, रास्ते में कुछ पानी में चलना पड़ा। मोजा-पायजामा वालों के लिए दिक्कत थी। जनकलालजी के लिए और भी मुश्किल थी, क्योंकि उनके पैरों में जवाहरशाही पायजामा था, जिसे पिंडली से ऊपर उठाना मुश्किल था। ठाकुरसाहब ने 5 मील पर अवस्थित गुरु गोविन्द साहब के रहने से पवित्र पाँवटा साहब के डाकबँगले में थोड़ा विश्राम करने के लिए कहा। तब तक बस को भी सवारियाँ लेनी थीं। ठाकुर साहब साथ नहीं जा रहे थे, किन्तु उन्होंने अपने एक आदमी को कर दिया। पाँवटा साहब में शरणार्थी, विशेषकर सिक्ख अधिक आ गए हैं, इसलिए दूकानों ने उसे कस्बे का रूप दे दिया है। देहरादून से नाहन 58 मील है। बसें जमुना के दोनों तटों तक पहुँचती हैं। पाँवटा साहब से कुछ जाने पर फिर चढ़ाई आई, जो पाँच मील से अधिक नहीं थी। जाकर ठाकुर साहब के मकान में ठहरे। थोड़ी देर में श्री युगलकिशोर सेवल भी सहायता के लिए आ गए। शाम को बाजार में टहलने गए। नाहन राजा की राजधानी और इस छोर का अच्छा नगर है। यहाँ भी बाजार में शरणार्थियों की दूकानें काफी दीख रही थीं। रात को मुझे तो भोजन नहीं करना था, लेकिन जब 4 आने में जनकलालजी को मांस-भात मिला, तो मुझे सतयुग याद आने लगा। मच्छरों-मक्खियों का इस मकान में पूरा इंतिजाम था। खिड़कियों-दरवाजों में बारीक

जालियाँ लगी हुई थीं। गर्मी की भी शिकायत नहीं थी।

12 अप्रेल को सबेरे नगर-परिदर्शन के लिए निकले। जगन्नाथ मन्दिर यहाँ का सबसे पुराना मन्दिर है। यहीं के बाबा बनवारीदास ने राजा को यहाँ राजधानी बनाने का उपदेश सवा 300 वर्ष पहिले दिया था। यह राजमान्य मन्दिर था। महन्तजी संस्कृत के पण्डित हैं। बनवारीदास इनसे दस पीढ़ी पहिले हुए। पुराने कागज-पत्रों में नेपाली राजा गीर्वाण युद्धविक्रम शाह का एक दानपत्र मिला। राजा जगतप्रकाश के दिये हुए भी कुछ दानपत्र थे। कितने ही पुराने कागज-पत्र अदालत में पेश थे, नहीं तो और भी कुछ मिलते। पता लगा, तरुण-मृता राजकुमारी के नाम पर महिला पुस्तकालय स्थापित है, जिसमें काफी पुस्तकें हैं। नगरपालिका और जिला स्कूल इन्सपेक्टर ने भी सहायता देने में बहुत सौजन्य प्रकाशित किया। राजमहल के दरवाजे पर बन्दूक लिये सिपाही पहरा दे रहा था, लेकिन राजा अब अधिकतर देहरादून में रहते हैं। चाभी भी उन्हीं के पास थी, इसलिए राजकीय संग्रह को नहीं देख सके। राजपुरोहित से भी सहायता लेनी चाही। वह 11 बजे अभी पूजा में थे, और कहने पर 4 बजे बात करने के लिए बुलाया। आज का मध्याह्न भोजन मैंने भी कल के परिचित भोजनालय में किया। बेचारा बाबू लोगों को चटाई में बैठाने में संकोच कर रहा था। मैंने कह दिया, हम तुम्हारे स्वादिष्ट भोजन को खाने आए हैं, चटाई से कोई मतलब नहीं। श्री युगलकिशोर सेवल सबेरे से हम लोगों के साथ-साथ रहे, जिससे परिचय पाने में आसानी हुई।

एक पक्के तालाब (जोहड़) की मिट्टी निकाली दिखाई पड़ी। बहुत दिनों से इसकी देखभाल नहीं हुई थी, इसलिए मिट्टी भर गई थी। अब पानी से भरकर यह तालाब नगर की शोभा बढ़ाएगा। नगरपालिका की आमदनी डेढ़ लाख है, जिसमें एक लाख से ऊपर चुंगी होती है। इसी से नगर के व्यापार-प्रधान होने का पता लगता है। भोजनालय का झीबर शिकायत कर रहा था, अब पहिले जैसे लोग नहीं आते, किसी तरह रोटी चल जाती है। मैंने कहा—आजकल के जमाने में इसे भी गनीमत समझना चाहिए।

ठाकुर बडोत्रा दोपहर से पहिले ही आ गए। वह यह पसन्द नहीं करते थे कि हम उनके यहाँ ठहरें और भोजन भोजनालय में करें। मैंने कहा—हमें शहर में घूमकर काम क़रना है, यदि खाने का निर्बन्ध रहेगा, तो बीच में समय देना पड़ेगा। नाहन से 25 मील पर ददाहु एक तहसील का मुख्य स्थान है। हमने उसे देखने का निश्चय कर लिया था। यहाँ से वहाँ तक बस जाती थी, इसलिए जाने में कोई दिक्कत नहीं थी। 3 बजे मोटर चली। सड़क पहाड़ की रीढ़ पर और कभी उतराई पर चली जा रही थी। कुछ मील तक शिमला की सड़क पर ही गए। सूर्यास्त हो रहा था, जब हम ददाहू पहुँचे। आजकल कोई मेला था, जिससे लोग लौट रहे थे, लेकिन अब भी नाटक देखने के लिए दो हजार के करीब लोग मौजूद थे। कुश्ती भी हुई। पहाड़ में इसका अच्छा शौक है। ददाहु में हाईस्कूल भी है। बडोत्रा जी ने एक आदमी दिया था, जिसके कारण हमें ठहरने की दिक्कत नहीं हुई।

**रेणका जी**—परशुराम की माता रेणका यहाँ से मील-डेढ़ मील पर हैं, और वहाँ का तालाब अत्यंत दर्शनीय सरोवर है। 5 बजे झुटपुटे ही में हम चल पड़े। गिरी नदी रास्ते में पड़ी। आरपार करने के लिए पुल नहीं। लोहे के तार पर खटोला था, जिस पर आदमी बैठ जाता, और रस्सी के सहारे इस पार से उस पार कर दिया जाता। इतने सबेरे खटोलेवाला आदमी नहीं था और खटोला भी उस पार बँधा हुआ था। एक आदमी ने पार होकर उसे खोल दिया। झूला इधर खींचकर हम लोग बारी-बारी से पार हुए। रेणका एक मील से कम ही था। पहिले परशुराम ताल मिला, जो छोटा और जल से भी अच्छा नहीं था। इसी के किनारे बाईं ओर लाल टिन का गिर्जे की तरह की छतवाला परशुराम का मन्दिर है। हमने इसे लौटकर देखा। मन्दिर भी नया और मूरत भी नई। आगे बढ़े। बड़े तालाब के पहिले ही कुछ पुराने मन्दिर मिले, और सरोवर के पास मन्दिर और पक्का घाट भी था। तालाब तीन मील के घेरे में है। आसपास घेरनेवाले पहाड़ नीचे से ऊपर तक हरियाली से ढँके हैं, जिससे रमणीयता और बढ़ जाती है। विश्वास किया जाता है, कि पिता की आज्ञा पर परशुराम ने अपनी माँ रेणका को यहीं मार दिया था और यहीं वह इस तालाब के रूप में प्रकट हुई। ऋग्वेद के ऋषि यामदग्न्य के बारे में ऐसी कोई परम्परा वैदिक काल में नहीं मिलती। पर, उससे क्या ? कथा पीछे गढ़ी गई

और उसके साथ सरोवर को चिपका दिया गया। यहाँ हर साल बहुत बड़ा मेला लगता है। सैकड़ों दूकानें लग जाती हैं, और पहाड़ के नर-नारी भर जाते हैं। सरोवर के छोर पर पानी में उगनेवाले वनस्पति उसकी शोभा को बिगाड़ रहे थे, और उसके कारण मुक्त स्नान करने में भी बाधा थी। यह सैलानियों का तीर्थ बन सकता है, लेकिन, उनके लिए यहाँ ठहरने और खाने-पीने का अच्छा इन्तिजाम होना चाहिए। सरोवर के किनारे लगी वनस्पति को साफ करके कितनी ही नावें रखी जानी चाहिएँ। यह सब तभी हो सकता है, जब कि हमारे प्रति नर-नारी की मासिक आय सौ रुपया हो, और साथ ही कोई निरक्षर न हो। पुरानी मूर्ति या दूसरी कोई चीज नहीं मिली, लेकिन नवीं-दसवीं शताब्दी तक की चीजें जरूर मिलनी चाहिएँ, यदि पूरी तौर से खोज की जाए।

बस ददाहु से 8 बजे खुलनेवाली थी, इसलिए हमें जल्दी पड़ रही थी। हम पौने 8 बजे ही पहुँच गये। चायवाले ने चाय और अण्डा दिया। ददाहु अच्छा बाजार है, और चाय की दूकानें भी हैं, इसलिए यात्री के लिए कोई तकलीफ नहीं हो सकती। हाईस्कूल, अस्पताल, तहसील होने से भी यह महत्वपूर्ण स्थान है। बस चली। एक चौड़ी किन्तु कम पानीवाली नदी को बिना पुल के पार किया। फिर चढ़ाई शुरू हुई। शिमला वाली सड़क पर पहुँचे। फिर हाल ही में जलकर खाक हुई टरपैंटीन की फैक्ट्री के पास से होते तीन घंटे में नाहन पहुँच गए। आज नाहन में बाकी काम करके कल यहाँ से शिमला जाना था।

14 को सबेरे ही सेवलजी और दूसरे नये बने मित्रों के साथ घूमने निकले। महिमा लाइब्रेरी के वृद्ध पुस्तकालयाध्यक्ष बालकृष्ण शर्मा सन्त ने असाधारण सौजन्य दिखलाया, और बिना चाय-मिठाई के वहाँ से हटने की इजाजत नहीं दी। पुस्तकालय में मेरी दो दर्जन के करीब पुस्तकें थीं। इसी से महिला पुस्तकालय की विशेषता मालूम हुई। इन पंक्तियों के लिखने के समय तक नाहन में डिग्री कालेज भी खुल गया, इसलिए पुस्तकालय की और वृद्धि होगी, ऐसी आशा करनी चाहिए। दोपहर का भोजन बडोत्राजी के यहाँ किया। उनकी वजह से नाहन में किसी तरह का कष्ट नहीं होने पाया।

**शिमला**–16 रुपये में शिमला की बस के दो टिकट लिये। पौन बजे दोपहर को हमने प्रस्थान किया। साढ़े सात मील तक तो वही रास्ता था, जिससे हम रेणका गए थे। फिर चढ़ाई चढ़ते बस 6000 फुट तक पहुँची। 26 मील जाने पर सराहाँ मिला। अंग्रेजी में लिखने में यह और विसाहर रियासत का सराहन एक हो जाता है, और शायद मूल शब्द एक ही रहा हो। यहाँ तहसील, थाना, डाकबँगला और एक दर्जन से ऊपर दूकानें भी हैं। हिमालय बस सर्विस का बाबू भी रहता है, जो मुसाफिरों और सामान के लिए टिकट देता है। बस थोड़ी देर ठहरी। किसी-किसी ने चाय पी। आगे ववागधार मिला। धार का मतलब पर्वतश्रेणी है। यहाँ आलू का सरकारी फार्म था। नैणाटिकरी में भी दो-एक दूकानें थीं। सारे रास्ते में चील और बान (ओक) के वृक्ष ही ज्यादा दिखाई पड़े। कुम्हारहिट्टी में कालका से शिमला जानेवाली सड़क मिल गई। सोलन अच्छा-खासा शहर है। यहाँ चाय पीकर चले, कंडाघाट में अँधेरा हो गया। 88 मील की यात्रा साढ़े सात घंटे में पूरी हुई। रात को किसी परिचित का घर ढूँढ़ना पसन्द नहीं आया। रायल होटल नजदीक ही था। 6 रुपया दिन पर एक कमरा लेकर ठहर गए। फोन किया, तो मालूम हुआ, कि मन्त्री गौरीप्रसादजी मंडी गये हुए हैं, परसों लौटेंगे। दूसरे मंत्री पद्मदेवजी घर पर नहीं थे। उस रात को सो गये। सर्दी मसूरी से अधिक नहीं थी।

15 को सबेरे चाय पीकर मौंट प्लेजेंट में कोआपरेटिव के डिप्टी-रजिस्ट्रार पण्डित विद्यासागर शर्मा के यहाँ पहुँच गए। मोटर के अड्डे से उनका स्थान काफी दूर था। हिमाचल विधानसभा का भवन रास्ते में पड़ा। विद्यासागरजी अपने बड़े भाई को अस्पताल में देखने गये थे, लेकिन बड़े भाई (हिमाचल विधानसभा के अध्यक्ष) पं. जयवन्त के पुत्र शिवकुमारजी वकील घर पर ही थे। शिक्षित संस्कृत परिवार है, हर तरह से सहायता देने के लिए तैयार मिले। पं. विद्यासागरजी ने कितनी ही सूचनाएँ और आँकड़े दिए। वे इतनी थीं, कि और न भी मिलें, तो भी काम चल सकता था।

15 अप्रेल हिमाचल प्रदेश के निर्माण का दिवस था, जिसे बड़े उत्साह के साथ मनाया जानेवाला था। हम अस्पताल में पं. जयवन्तजी से भी मिले। पहिले चन्ना स्कूल के अध्यापक और वहाँ के संग्रहालय के वर्षों

अध्यक्ष रहे। हृदय की बीमारी से अस्पताल में पड़े थे। डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम लेने की सख्त आज्ञा दे रखी थी, इसलिए उनकी तरफ से कुछ न कहने पर भी हम काफी समय लेना नहीं चाहते थे। शिवकुमारजी ने आग्रह किया, कि होटल से हमारे घर चलें। सूचनाओं को जमा करने के लिए यहाँ रहने में सुभीता था, इसलिए लटा-पटा लेकर 3 बजे होटल से मौंट प्लेजेंट में चले आए। जिस वक्त हम एक रेस्तोराँ में दोपहर का भोजन कर रहे थे, उसी समय मसूरी में मिले मंगोल भिक्षु मंगल मिल गए। बतला रहे थे, सारे जाड़ों लखनऊ में रहे।

साढ़े 4 बजे बाद महोत्सव देखने गए। सचिवालय के बाहर थोड़ी-सी समतल जगह थी। यहीं लोग जमा हुए थे। लोक-गीत और लोक-नृत्य के परिदर्शन का प्रबन्ध था। लेकिन लोक-गीतों के नाम पर जब मिरासी और मिरासिनें उसे पक्के संगीत और ग़ज़ल का रूप देने लगीं, तो असह्य हो उठा। लोक-कला की वहाँ कोई चीज नहीं थी, वाद्य भी आधुनिक थे। उसमें जो कोई अच्छी चीज थी, वह थी चम्बा के चुराही नर-नारियों का लोक-नृत्य, जिन्हें इस साल दिल्ली में गणराज्य-महोत्सव के समय भारत का प्रथम पारितोषिक मिला था। स्त्री-पुरुषों की वेष-भूषा भी स्वाभाविक थी और वाद्य भी। गीत भी मोहक थे। 7-8 बजे तक हिमाचल धाम सचिवालय के प्रांगण में उत्सव देखते रहे। अभी दस लाख का हिमाचल अधूरा बना है। काँगड़ा जिले को इससे अलग करके पंजाब में रखना अनुचित है। उसके मिलने पर इसकी संख्या दूनी हो जाएगी, और वह भी दूनी हो जाए, यदि गढ़वाल-कुमाऊँ को इसमें शामिल कर दिया जाए। फिर नई योजनाएँ यहाँ धड़ल्ले से चल सकेंगी।

16 अप्रेल को चाय पीकर 9 बजे बाद निकले। छोटा शिमला तक गए। अभी सैलानी नहीं आए हैं। आसपास की सारी भूमि हिमाचल के महासू जिले में है, और आठ वर्गमील का शिमला शहर पंजाब में रखा गया है। शिमला के नीचे का कुछ पहाड़ी भाग पेप्सू का है। अजब गोरखधन्धा, आज गुड-फ्राइडे था, बहुत से आफिस बन्द थे, इसलिए सिर्फ नगर-परिदर्शन का ही काम हो सका।

17 अप्रेल को आकाश खुला था। चाय के बाद सबेरे निकल गए। कभी कबाड़ियों के यहाँ अच्छी-अच्छी पुस्तकें मिल जाती थीं, लेकिन अब मसूरी की तरह यहाँ भी अंग्रेजों के चले जाने का प्रभाव दिखाई पड़ता है। दो-एक काम की पुस्तकें मिलीं, और शिमला तथा चम्बा जिले का स्कूलों में पढ़ाये जानेवाला हिन्दी भूगोल भी मिल गया। पं. विद्यासागरजी बड़ी तत्परता से पुस्तक-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर रहे थे। पं. जयवन्तजी ने बीमार रहते भी बहुत-सी बातें बतलाईं, और कई पत्र जिलों के हाकिमों को लिख दिए। उनसे भी मालूम हुआ कि चम्बा के जिला-मजिस्ट्रेट मेरे परिचित नेगी ठाकुरसेन हैं।

शिवकुमार और उनके भाई रामकुमार दोनों नई पीढ़ी के उत्साही शिक्षित तरुण हैं। उनसे पता लगा कि हिमाचल के लोग पंजाबी व्यवसायियों और ठेकेदारों से कितने तंग हैं।

उसी दिन रात को 8 बजे मंत्री गौरीप्रसादजी से मिलने गए। उन्होंने अपने विभाग की सामग्री देने से सहायता का वचन दिया, और पूरा भी किया। मैंने हिमाचल के मंत्रियों के पास 'गढ़वाल' की एक-एक प्रति भेजी थी, ताकि हिमाचल के बारे में कैसी पुस्तक लिखने जा रहा हूँ, इसका पता लगे। गौरीप्रसादजी ने प्राप्ति की सूचना दी, लेकिन मुख्यमन्त्री और शिक्षामंत्री को उसकी फुरसत ही नहीं मिली। इसीलिए उनसे मिलना भी मैंने बेकार समझा।

हम 18 अप्रेल को सबेरे की बस पकड़नेवाले थे। पता लगा, बस साढ़े 6 बजे चल पड़ती है, और हमें यहीं साढ़े 6 बज गए थे। शिवकुमारजी और रामकुमारजी ने बहुत कहा, लेकिन हमें भरोसा नहीं था। वस्तुतः हमें अड्डे पर जाने की जरूरत नहीं थी, मौंट प्लेजेंट से एक ही डेढ़ फर्लांग पर 103 नम्बर की सुरंग पर उसे पकड़ना था। बसवाले को टेलीफोन भी चला गया था, इसलिए 7 बजे हमें वहाँ बस मिल गई। हमारा अगला लक्ष्य बिलासपुर था, जो यहाँ से 53 मील पर अवस्थित था।

**बिलासपुर**–रास्ता बहुत सँकरा था। बहुत कुशल ड्राइवर ही इस पर मोटर चला सकता था। लेकिन बड़ी सड़क बनाने के लिए रुपयों की बड़ी राशि की आवश्यकता होती। 35 मील पर घाट मिला। शिव मन्दिर देखकर बस के रुकते ही हम उधर दौड़े। मन्दिर के आकार से प्राचीनता टपक रही थी। पुराने बेल-बूटेवाले पत्थर

थे, पर कोई खंडित मूर्ति नहीं मिली। खंडित मूर्तियों को नदियों में बहाने का रिवाज सारे भारत में है। खंडित हो जाने पर उसके दर्शन से भी पाप लग जाता है, इसलिए लोग जल्दी से जल्दी उन्हें विलोप करना चाहते हैं, जिसके साथ कितनी ही इतिहास की सामग्री सदा के लिए लुप्त हो जाती है।

प्राडी में दो-तीन दूकानें थीं। रोटी-दाल भी मिल रही थी। हमने भोजन किया। बिलासपुर 18 मील और रह गया था। आगे वह पहाड़ ढालुआँ होने लगा, जिसमें विस्तृत खेत सब जगह फैले हुए थे। हम शिमला के साढ़े 6 हजार फुट से बिलासपुर की एक हजार फुट की ऊँचाई पर पहुँच रहे थे। 12 बजकर 20 मिनट पर जब अड्डे पर उतरे, तो गर्मी परेशान कर रही थी। ठहरने का स्थान पूछने पर बाजार में एक होटल बतलाया गया, जिसका न फर्श ठीक था न दरवाजा। मूँज की चारपाई जरूर थी। हम दोनों को यहाँ घूमकर अपना काम करना था। ऐसे अरक्षित स्थान पर सामान रखकर कैसे जाते ? लेकिन, भोजन के बारे में कोई शिकायत नहीं हो सकती थी। पास की सतलुज में मछलियाँ भरी हुई थीं, और कस्बा इतना काफी बड़ा था कि जहाँ खानेवाले मिल जाते थे, इसलिए झीवर ने मछली बना रखी थी। जनकलालजी तो भात के प्रेमी ही ठहरे, और मांस-मछली न होने पर मैं भी भातप्रेमी बन जाता हूँ। गर्मी के मारे दिमाग परेशान था, ठंडे पानी की माँग थी। चीजें स्वादिष्ट थीं। अच्छी तरह भोजन किया। फिर उसी धूप में छत्ता लगाए निकले। अड्डे के पास एक शिखरदार मन्दिर मिला, जिसमें बहुत पुरानी कोई चीज नहीं थी। पास में साधु की कुटिया देखकर अपना पुराना जीवन याद आने लगा। बूढ़े बाबा अपनी आयु को नहीं बतला सकते थे, लेकिन 70 से ऊपर के तो जरूर रहे होंगे। सारे भारत में घूमे हुए थे। सामने धूनी थी, गाँजा-कंकड़ की चिलमें तथा एक-दो भक्त भी मौजूद थे। कुछ देर बैठे, परिचय बढ़ाया। हमारे होटल से यह जगह अधिक सुरक्षित थी, यद्यपि यहाँ भी ताला-कुंडी वाली कोठरी नहीं थी, पर बाबा बराबर रहते थे।

हम और भी कुछ पुराने मन्दिरों को देख लेना चाहते थे, इसलिए नीचे की सड़क पकड़े शहर से बाहर चले गए। सड़क के किनारे ही मन्दिरोंवाला एक स्वच्छ जलकुंड मिला। नीचे सतलुज के किनारे कई और पुराने मन्दिर मिले। मन्दिरों से मालूम होता था कि ये पुराने हैं, लेकिन प्राचीन खंडित मूर्तियों को तो जान-बूझकर सतलुज में डाल दिया गया था, इसलिए वे कहाँ से मिलतीं ? सतलुज यहाँ काफी चौड़ी है। भाखड़ा के बाँध के पूरा हो जाने पर यह समुद्र का रूप ले लेगी, और दोनों तरफ कई मील तक अपार जलराशि दिखाई पड़ेगी। उस वक्त ये सारे मन्दिर पानी के भीतर चले जाएँगे। लौटते वक्त हम ऊपर की सड़क से पुराने बाजार की ओर गये। रंगनाथ मन्दिर का नाम सुनकर तुरन्त ख्याल आया, यह दक्षिण के रंगनाथ के नाम पर आचारी वैष्णव का बनाया कोई नया मन्दिर होगा, पर यह विष्णु नहीं शिव का और यहाँ का बहुत पुराना मन्दिर है। इसे वर्तमान राजवंश के पहिले के किसी राजा ऐलदेव ने बनवाया था। यह 11वीं-12वीं शताब्दी से इधर का नहीं हो सकता। अधिकांश मूर्तियाँ यहाँ की भी सतलुज-लाभ कर चुकी हैं, लेकिन कुछेक अब भी मौजूद हैं, जो अपने समय और उन्नत कला को बतला रही थीं।

पूछने पर लोगों ने यह भी बतलाया था, कि महाराजा साहब आनन्दचन्द आजकल यहाँ नहीं हैं। तो भी पुराने और नये महल को देखना था, इसलिए मैदान पार कर हम वहाँ पहुँचे। नये महल पर हथियारबन्द सिपाही मौजूद थे। उन्होंने भी नहीं होने की बात कही। हम देखने की उत्सुकता से महल के फाटक के भीतर चले गए। आदमी ने बतलाया–राजा साहब हैं। नाम भेजते ही वह चले आए, और स्वागत करते हुए कहने लगे–मैं आपके आने की प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने मसूरी से चलने से पहिले ही बहुत जगहों पर चिट्ठियाँ भेज दी थीं। राजा आनन्दचन्द असाधारण तौर से सुपठित और सुसंस्कृत प्रौढ़ पुरुष हैं। अजमेर के राजकुमार कालेज में पढ़ते समय वह हमेशा अपने क्लास में अव्वल होते रहे। राज्य की बागडोर सँभालने पर उन्होंने प्रजा की भलाई के लिए बहुत-सी चीजें कीं, शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। पर, सात-आठ सौ वर्ष पुराने वंश के स्वार्थ को अपनी स्वेच्छा से कैसे छोड़ने के लिए तैयार हो जाते ? पटेल के डंडे ने विलयन पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया, लेकिन तब भी उनकी जिद रही, कि उसे हिमाचल प्रदेश में न मिलाया जाए। लियाकत में उनके पासंग भी नहीं, अनेक राजा सरकार के कृपापात्र होकर मौज कर रहे हैं। यदि आनन्दचन्द

जरा-सा दरबारी मनोवृत्ति को स्वीकार करते तो वह भी अगली पंक्ति में आ जाते। लेकिन, उनको अपनी योग्यता का अभिमान है।

हमें कुटिया में नहीं, राजमहल में रात बिताने के लिए मजबूर होना पड़ा। राजा साहब ने इस महल को अपनी रुचि से बनवाया था। बनाने में स्वच्छता और आराम का पूरा ख्याल किया गया था। कला में भी उतनी दूर तक ध्यान दिया गया था, जितनी दूर तक कि वह बहुत महँगी नहीं पड़ती। कमरे बड़े-बड़े और हवादार थे। संगमरमर का भी खुलकर इस्तेमाल किया गया था। सारा महल भाखड़ा सागर के गर्भ में चला जाएगा। लेकिन, राजा साहब को महल का पैसा जरूर मिलेगा। पहिले हमें स्नान करने की इच्छा हुई, जब देखा कि विलासपूर्ण स्नानागार में गरम-ठंडे पानी का भी इंतिजाम है। स्नान के बाद फिर घंटों राजा साहब से बात होती रही। उन्होंने अपने राज्य-सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री और दूसरी सूचनाएँ दीं।

19 अप्रेल को सबेरे चाय पी, फिर राजा साहब की किताबों की आलमारियों को देखते रहे। 22 आलमारियों को देखने से मालूम हुआ कि यह पुरुष कितना विद्याव्यसनी है। आजकल के जमाने में शोभा के लिए भी पुस्तकें जमा कर ली जाती हैं, खासकर आधुनिक सेठों के यहाँ तो अपनी शिक्षा और संस्कृति का रोब दिखलाने के लिए ऐसा किया जाना लाजिमी समझा जाता है। आज भी कितने ही समय तक राजा साहब से बातचीत होती रही। हिन्दी की तरफ उनकी कोई रुचि नहीं थी, क्योंकि बचपन से ही अंग्रेजी की घुट्टी मिली थी, तीव्र बद्धि रखते भी भविष्य को वह दूर तक समझ नहीं सकते थे। तब भी उनकी पोशाक और रहन-सहन से मालूम होता था, वह अंग्रेजियत के रोब में नहीं आए।

11 बजे बिलासपुर के डिप्टी-कमिश्नर श्री महावीरसिंहजी के यहाँ गए। उन्होंने बड़े उत्साह के साथ आँकड़ों के जमा करने में मेरी मदद की, और एक अफसर को बुलाकर सब विभागों से आवश्यक चीजों को दिलवाने के लिए कहा। दोपहर की धूप में एक आफिस से दूसरे आफिस में जाना प्रिय नहीं मालूम हुआ, पर "अर्थी दोषं न पश्यति"। डिप्टी-कमिश्नर साहब कह रहे थे, अलग राज्य होने से सभी विभाग अलग-अलग कायम हैं। उनकी फाइलों पर दस्तखत करने में ही मेरा तो बहुत-सा समय लग जाता।

2 बजे भोजन किया। राजा साहब के कृपापात्र शास्त्रीजी ने मण्डी के लिए दो टिकट भी ला दिये। 3 बजे से कुछ पहिले ही राजा साहब से बिदाई लेते उनकी सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट की, और आशा की कि आप अपने ज्ञान को हिन्दी द्वारा लोगों के सामने रखेंगे। राजसी कार में अड्डे पर पहुँचे। 3 बजे हमारी मोटर चल पड़ी। बिलासपुर के आस-पास काफी समतल जमीन है। रंगनाथजी का मन्दिर शहर के सबसे ऊँचे स्थानों में है, पर वह भी शिखर तक भाखड़ा सागर में डूब जाएगा। भाखड़ा बाँध के बनाने में जितनी मुस्तैदी देखी जा रही है, उसका शतांश भी बिलासपुर नगर के बारे में ख्याल नहीं। डिप्टी-कमिश्नर कह रहे थे, यदि हमें बिजली और रोपवे पहिले से मिल जाए, तो हम समय से पहिले यहाँ की सभी चीजों को उस स्थान पर पहुँचा सकते हैं, जहाँ भावी बिलासपुर बसनेवाला है। पर, ऊपर के लोग बड़ी-बड़ी चीजों का ख्याल करते हैं। दिल्ली के महादेव की यह बात उनके सामने हर समय रहती है—"छोटी-छोटी बातों पर क्यों ख्याल करते हो ?"

बस पहाड़ के ऊपर की ओर बढ़ने लगी। गर्मी से मुँह सूख रहा था। इसी वक्त खरीदी हुई नारंगी याद आई। मालूम हुआ, जनकलालजी ने झोले के साथ उसे कुटिया में ही छोड़ दिया। अगर वह नारंगी बाबा के काम आई हो, तो हमारे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात थी। हम बिलासपुर के 16 हजार आदमी के उजड़े आशियानों का ख्याल करते चारों ओर देख रहे थे। बस कई पहाड़ी बाहियों को पार करती रेहरा के पुल पर पहुँची। यहाँ चट्टानों ने सतलुज की धार को सँकरी कर दिया है, उसी पर लोहे का पुल है, जो बस के लिए नहीं बनाया गया था। यह कुछ सालों बाद भाखड़ा सागर में डूब जाएगा। उस समय पुल और ऊपर बनाया जाएगा। कुछ आगे बढ़ने पर दूकानें मिलीं, साथ ही कोई पुराना किला भी, जो अब ध्वस्त हो रहा था। कुछ आगे बस को बहुत चढ़ाई-उतराई नहीं पार करनी पड़ी और 7 बजे के करीब हम पुरानी सुकेत रियासत की राजधानी सुन्दर नगर में पहुँच गए। रियासती लोगों की गाढ़ी कमाई राजाओं के शौक में लगती थी, इसलिए महल भी थे,

बँगले भी, जिन्हें यदि किसी दूसरे काम में नहीं लगाया जाएगा, तो कुछ दिनों बाद गिर जाएँगे। बाजार काफी बड़ा है, जिसके भीतर से चलकर एक जगह बस को पानी में से चलना पड़ा, और सवा 8 बजे रात को हम मण्डी के मोटर-अड्डे पर पहुँच गए। मण्डी मैं कई बार आ चुका था, लेकिन विभाजन के बाद शरणार्थियों का जो रेला आया, उसमें उसने बाजार को दूसरा ही रूप दे दिया है। कृष्णा होटल में जाकर ठहरे।

**मण्डी**–तरुण श्री सुन्दरलालजी से पहिले ही पत्र द्वारा परिचय था। वह मिले। 20 अप्रेल को सबेरे पहिले डिप्टी-कमिश्नर श्री अन्तानीजी के बँगले पर गए, जो शहर से बाहर बहुत रमणीय स्थान में था। अंग्रेज दीवान ने अपने लिए इसे बनवाया था, इसलिए फुलवारी, बाग, सड़क, अच्छे कमरे थे। अन्तानीजी ने हर तरह की सहायता देने के लिए कहा, और निश्चय हुआ कि साढ़े 10 बजे मैं नीचे ऑफिस में मिलूँ। वहाँ जाने पर उन्होंने अपने अधिकारियों से मण्डी जिले के बारे में आँकड़ों को देने के लिए कह दिया। भारत में खनिज नमक की एकमात्र खान यहीं है। हमने चाहा, उस दफ्तर से भी नमक की उपज आदि के बारे में बातें मालूम करें, लेकिन नमक-विभाग केन्द्रीय सरकार के हाथ में था और अन्तानी साहब के हाथ से बाहर की बात थी। वहाँ से असिस्टेंट ने गुप्त रहस्य कह कुछ भी बतलाने से इन्कार कर दिया, कहा–इसके लिए केन्द्रीय सरकार को लिखें।

दोपहर का खाना खाकर कुछ देर सुन्दरलालजी और दूसरे मित्रों से बातचीत करके फिर निकले। आज सबेरे के परिदर्शन में शहर के भीतर भूतनाथ के मन्दिर में हरगौरी की खण्डित पुरानी मूर्ति देख चुके थे। अब पुल से व्यास पार गए, जहाँ पुरानी राजधानी थी, और अब उसकी जगह एक गाँव तथा बहुत-से पुराने परित्यक्त मन्दिर हैं। त्रिलोकनाथ के मन्दिर में संवत् या शक 1335 का शिलालेख लगा हुआ है। लेख बड़ा है। इसमें शक नहीं कि मण्डी का यह भाग हिन्दू-काल का है। मुस्लिम-काल में पहिले इसको लूटा और ध्वस्त किया गया होगा। फिर सतलुज के बाएँ किनारे राजधानी बसाई गई। बाईं तरफ भी नदी के किनारे यमराज के मन्दिर के हाते में शिव की कुछ पुरानी मूर्तियाँ हैं, जिससे इधर भी नगर का एक भाग पुराने काल में रहा होगा।

शाम को 6 बजे साहित्य सदन में साहित्यकारों की एक छोटी-सी मण्डली में भाषण दिया, और 9 बजे चौरस्ते पर सार्वजनिक सभा में शान्ति पर बोलना पड़ा। अब तक मण्डी के शिक्षितों को मेरे आने का पता लग चुका था।

**कुल्लू**–21 अप्रेल को चाय की जगह लस्सी पीकर हिमालय सरकार की जनता-बस पर बैठ गए। इसमें सीट रिजर्व का कायदा नहीं था। जो पहिले आ गया, अपनी रुचि के अनुसार बैठ जाता। मुझे ड्राइवर के पास जगह मिल गई थी। 7 बजे गाड़ी चली। 44 मील पर कुल्लू था। गाड़ी के चलते-चलते लाहुल के ठाकुर निर्मलचन्द अपनी पत्नी के साथ चलते मिले। मैंने 1933 में उन्हें देखा था, यद्यपि 1937 में भी लाहुल गया था, पर उस वक्त शायद मुलाकात नहीं थी। परिचय हुआ, और उन्होंने अपने यहाँ ठहरने का आग्रह किया। कुल्लू में भी अब एक अफसर की सहायता मिलने का निश्चय हो जाने पर यात्रा सुफल होने की सम्भावना बढ़ गई। 26 मील पर ओट आया। यहीं कुल्लू और मण्डी की सीमा मिलती थी। कुल्लू के हरेक यात्री को ओट के मीठे बठूरे भूल नहीं सकते। यहाँ कुछ दूकानें हैं। दोनों ओर की लारियों को यहाँ रुकना पड़ता है, क्योंकि सड़क कम चौड़ी होने से लारियाँ एक समय एक ही दिशा में चल सकती हैं। ओट से जरा-सा आगे शिमला से अनी होकर आनेवाली सड़क मिल गई। यहाँ से 11-12 मील पर बंजार है, जहाँ मोटर जाती है। मैं गलत समझता था मण्डी से मोटर की सड़क बंजार होकर जाएगी, और वहाँ डा. भगवानसिंह से मिलने का मौका मिल जाएगा।

15-20 मिनट ठहरने के बाद हमारी बस चली। बजौरा 9 मील पर मिला। यहाँ विश्वेश्वर का ऐतिहासिक प्राचीन मन्दिर है, लेकिन उसका देखना मैंने अगले दिन के लिए छोड़ रखा। कुल्लू के ढालपुर, सुलतानपुर, अखाड़ा आदि कई मुहल्ले हैं, जो एक-दूसरे से हटकर बसे हैं। ढालपुर पहिले पड़ता है। यहीं स्कूल, अस्पताल, कचहरियाँ और डाकबँगले हैं। ठाकुर निर्मलचन्द का स्थान भी यहीं था। कुल्लू-उपत्यका हिमालय की बहुत सुन्दर उपत्यकाओं में है। हिमालय के बहुत भीतर होने के कारण चार हजार फुट ऊँची इस जगह पर भी बरफ पड़ती है। यह व्यास की उपत्यका सिर्फ प्राकृतिक सौन्दर्य ही के लिए अपनी विशेषता नहीं रखती, बल्कि अब तो यह सेबों के बाग के रूप में परिणत हो गई है। पहिले सारे हिमालय का अध्ययन नहीं किया था,

और लाहुल के बारे में इतना ही जानते थे कि वहाँ ऊपर के लोग तिब्बती बोलते हैं, और नीचे के लोग पहाड़ी भाषा। और अब मालूम था कि तिब्बतियों और आर्य भाषा बोलनेवाले लोगों से भी पहिले यहाँ किरात लोग रहते थे, जिनकी भाषा के अवशेष अब भी जहाँ-तहाँ मिलते हैं। चन्द्रा और भागा लाहुल में जहाँ मिलकर चन्द्रभागा बन जाती हैं, उससे काफी नीचे तक लाहुल लोग किरात भाषा बोलते हैं। ठाकुर निर्मलचन्द भोट-भाषी थे, लेकिन वहाँ कुछ किरातभाषी लाहुली भी मिल गए, जिनसे कुछ भाषा के नमूने लिये। कुल्लू के सबसे बड़े अफसर असिस्टेंट-कमिश्नर से मिले। उनसे अपनी पुस्तक और आँकड़ों के बारे में बातचीत की। उन्होंने भी सहायता दी। टूरिस्ट ब्यूरो के इन्चार्ज ने और भी मदद की और बहुत-से आँकड़े तथा छपी सामग्री उसी दिन मिल गई। कुछ के कल मिलने का वचन मिला। टहलते हुए नदी (गौरी) पार सुलतानपुर गए। कुल्लू राजा के महल यहीं थे। शताब्दियों तक हिमालय का यह राजवंश स्वतन्त्रतापूर्वक यहाँ का शासक रहा। सिक्खों से लड़ पड़ा, इसलिए उन्होंने राज्य को खतम कर दिया। अंग्रेजों ने जब सिक्खों के राज्य को अपने हाथ में लिया, तो उन्हें क्या पड़ी थी, कि राजा को फिर उसकी गद्दी पर बैठाते। उन्होंने उसे एक जागीर दे दी। लेकिन कुलूत लोग अपने राजा को राजा ही मानते रहे। अंग्रेज उन्हें राय भगवनसिंह भले ही कहें, लेकिन लोग उन्हें राजा भगवनसिंह कहते, और उनके कुँवर को टीका (युवराज) कह करके पुकारते हैं। टीका साहब का ब्याह नेपाल के जेनरल केसर शमशेर के अनुज कृष्ण शमशेर की लड़की से हुआ। राजा साहब ने अपने वंश के सम्बन्ध में उर्दू में लिखी एक ऐतिहासिक पुस्तक दिखलाई। वहाँ से कुल्लू के तीसरे और सबसे बड़े बाजार में अखाड़ा बाजार गए। पहिले यह इतना जमा हुआ नहीं था, अब तो वहाँ बहुत दूकानें हो गई थीं।

**मनाली**–22 अप्रेल को मौसम अच्छा था। हम 7 बजे चाय पीकर टेक्सी–बस से रवाना हुए। 12 मील पर कटराई मिली, जहाँ से व्यास पार करके हम कभी नगर में रोयरिक-निवास में गए थे। अब वह खाली पड़ा था, नहीं तो उसके साथ नगर के प्राचीन स्थान को भी देख लेते। पहिले कटराई में दोनों तरफ की मोटरें एक-दूसरे को पार करती थीं, अब कोई वैसा नियम नहीं है। ड्राइवर अपने ही समय देखकर चल देते हैं। 12 मील और आगे जा 11 बजे मनाली पहुँचे। वही बस 12 बजे लौटनेवाली थी। डेढ़ मील आगे वसिष्ठ कुंड का गरम पानी का चश्मा था, और उसकी प्राचीनता के बारे में लोगों ने बहुत बातें बतलाई थीं। ड्राइवर ने कहा, आप वहाँ से होकर आ सकते हैं। हम वहाँ से चल पड़े। जगह डेढ़ मील रही होगी, और आध घंटे से कम ही में हम वहाँ पहुँच गए। कुछ दूर तक तो लाहुल जानेवाली समतल सड़क पर गए, फिर दाहिनी ओर चढ़कर खेतों में होते वसिष्ठ कुण्ड पर पहुँचे। अच्छा-खासा गाँव है, और 7000 फुट से ऊपर होने के कारण बर्फानी जगह में है। यहाँ पास में देवदार के जंगल भी हैं। जौ-गेहूँ के हरे-हरे खेत लहलहा रहे थे, जिनमें जगह-जगह स्थलकुमुदिनी फूली हुई थी। कुण्ड का जल बहुत गरम नहीं है। उसी की बगल में वसिष्ठ की भद्दी पत्थर की मूर्ति है। उससे कुछ हटकर राम का अच्छा शिखरदार मन्दिर है। यहाँ के लोग स्त्री-पुरुष दोनों अधिक गोरे थे। खशों का शुद्ध नमूना इनमें मिलता था। पोशाक यहाँ वही ऊनी डोरू था, जो चम्बा से टोमो (चुम्बी) उपत्यका तक देखा जाता है। सिर पर रूमाल बाँधना भी पहाड़ी स्त्रियों की अपनी विशेषता है। दूकान में मिश्री और गरी मिल गई। हम लोग खाते हुए वहाँ से लौट पड़े। मनाली में मोटर-अड्डे पर पहुँचने पर अब भी समय था, और हम मांस-भात खाकर साढ़े 12 बजे गाड़ी से लौटे। मनाली कुल्लू का सबसे रमणीय स्थान है, और यहाँ चारों ओर सेबों के बाग तथा पहाड़ों में देवदार के वन हैं। कटराई में पहुँचने पर एक बार तो ख्याल आया, नगर चले चलें। फिर ख्याल छोड़ देना पड़ा।

अखाड़ा बाजार में ही गाड़ी से उतर गए। अकस्मात् पुण्यसागर मिल गए। इधर वह स्पिती में स्कूल में अध्यापक थे। जाड़ों में वहाँ से चले आए थे। अब फिर अपने काम पर जाना चाहते थे। अभी जोत पर बरफ बहुत थी, रास्ता खुला नहीं था, इसलिए स्पिती के आदमियों के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुल्लू अपने जनाने शालों के लिए प्रसिद्ध है। शुद्ध पशमीने का साल 50 रुपये से कम में नहीं मिलता। हमने सौगात के लिए 24 रुपये का एक ऊनी शाल ले लिया। आज ही हमें बिजौरा हो आना था। ड्राइवर ने बैठा लिया, लेकिन ढालपुर पहुँचकर पुर्जा टूट जाने का बहाना करके उतार दिया। प्राइवेट बसों में मुसाफिरों की गत बन

जाती है। हिमाचल प्रदेश सरकार ने अपने यहाँ सरकारी बसें चला दी हैं, और कुल्लू पंजाब सरकार का है, इसलिए यहाँ प्राइवेट बसों का राज्य है। पहाड़ी लोग पंजाबियों से क्यों न नाराज हों, जब वह देखते हैं, कि सारे अर्थागम के साधनों को वह अपने हथियाए हुए हैं। सड़कों की बड़ी-बड़ी ठेकेदारियाँ पंजाबी करते हैं, बड़े-बड़े अफसर पंजाबी हैं, दुकानें और व्यवसाय भी उन्हीं के हाथ में हैं, मोटरें भी वही चलाते हैं। फिर तो पहाड़ी केवल कुलीगिरी के लिए बनाये गए हैं।

दो घंटे का समय बरबाद हुआ। फिर एक दूसरी बस बिजौरा के लिए मिल गई। हम साढ़े 3 बजे चलकर सवा 4 बजे वहाँ पहुँच गए। सड़क से विश्वेश्वर का मन्दिर दिखाई पड़ता है। मुस्लिम-काल में उसकी मूर्तियों को तोड़ा गया, लेकिन गाँववालों और पुरातत्व-विभाग को भी धन्यवाद देना चाहिए कि काफी मूर्तियाँ अब भी वहाँ मौजूद हैं। पास में हाट गाँव है, वस्तुतः मन्दिर भी उसी से सम्बन्ध रखता है। कुमाऊँ-गढ़वाल के उदाहरण से मैं जानता था कि पहाड़ में हाट का मतलब राजधानी है। मालूम हुआ, पहिले यहाँ कोई राजा रहता था, उसी ने मन्दिर को बनवाया था। सिक्खों ने मन्दिर को नष्ट किया, यह आम धारणा है। पर, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि सिक्ख तो अभी अकाली नहीं बने थे, और उनकी धर्मशालाओं में मूर्तियों के लिए भी स्थान था। फिर सांस्कृतिक तौर से सिक्ख और हिन्दू एक हैं, इसलिए वह मूर्ति पर कैसे हाथ डाल सकते। मन्दिर के तीन तरफ अलग-अलग गणेश, विष्णु और दुर्गा की मूर्तियाँ हैं। कई लकुलीश लिंग बतला रहे थे कि यहाँ पाशुपतों का किसी समय जोर था। मन्दिर के बाहर भी कुछ मूर्तियाँ रखी हुई थीं। हिमाचल प्रदेश के भिन्न-भिन्न स्थानों के विशेष विवरण 'हिमाचल प्रदेश' में मिलेंगे, इसलिए यहाँ उनके बारे में बहुत लिखने की जरूरत नहीं है।

जाने के लिए तो बिजौरा चले गए, लेकिन अब लौटने की समस्या थी। मण्डी से बसें खास समय पर ही आती थीं, और पता नहीं उनमें कोई जगह मिले या नहीं। क्या जाने रात यहीं बितानी पड़े, लेकिन साढ़े 5 बजे की बस में जगह मिल गई। उसी में पंगी इलाके के सियार गुम्बा सिद्ध लामा अपने परिवार और शिष्यों के सहित मिले। मुझे तिब्बती में बोलते हुए देखकर लामा के पुत्र ने स्वयं पूछ दिया, आप राहुलजी तो नहीं हैं ? हम अगले ही गाँव तक साथ चलनेवाले थे, इसलिए जल्दी-जल्दी में कुछ बातें हुईं। यह खालसर तीर्थ करके आ रहे थे। सिद्ध अम्दो के रहनेवाले थे और घूमते-घामते पंगी के भोटियाभाषी इलाके में आ गए। सिद्ध होने से महामुद्रा का रहना आवश्यक है, फिर पुत्र और बहू भी आ उपस्थित हुए। सारा परिवार सुसंस्कृत था। यही अफसोस रहा कि हम देर तक साथ न रह सके। उन्होंने पंगी आने का निमंत्रण दिया। चम्बा हमें जाना भी था, लेकिन पंगी जाने की सम्भावना नहीं थी।

**मण्डी**–23 अप्रेल को पुण्यसागर और ठाकुर मंगलचन्दजी मोटर के अड्डे तक पहुँचाने आए। जनता में जगह पाने के लिए दो आदमी अखाड़ा बाजार ही से बैठ करके आए थे। अब की हमें पीछे की सीट मिली थी, जिसके कारण बाहर देखने का सुभीता नहीं था। 9 बजे ओट पहुँचे। डा. भगवानसिंह को मेरे आने का पता था। मुझसे मिलने ही वह कुल्लू जा रहे थे। मैं लिख चुका था, मैं बंजार आऊँगा। लेकिन अब बंजार को दूर से ही सलाम करके निकल जाना चाहता था। यह संयोग ही था, जो इसी समय डाक्टर साहब भी आ गए। उनसे भी ज्यादा मुझे बंजार न जाने का अफसोस था। उनकी लड़की प्रेमलता बेचारी वहाँ बड़ी आशा लगाए बैठी थी। डा. भगवानसिंह ने बंजार से आगे शिमले के रास्ते पर अनी में घर और खेत बना लिया है। वह नौकरी से इसी साल दिसम्बर में अवसर प्राप्त करनेवाले थे। कहने लगे, अनी में रहना हमारे लिए मुश्किल है, क्योंकि लड़के-लड़की की पढ़ाई का भी ख्याल रखना है, जिसका सुभीता कुल्लू में ज्यादा है। वहाँ रहते वह प्रेक्टिस भी करते, और साथ ही बौद्ध धर्म के प्रति अनुराग रहने के कारण कुल्लू में एक बौद्ध विहार की स्थापना के लिए भी कुछ काम कर सकते थे। कुछ ही मिनट बातचीत कर सके, इसका अफसोस रहा, लेकिन मिल जाने से बहुत सन्तोष हुआ।

सवा 9 बजे बस चली। वह व्यास के साथ-साथ चल रही थी। यहाँ एक जगह व्यास को विशाल पहाड़ के काटने में लाखों वर्ष लगे होंगे। वहाँ नदी सँकरी हो गई थी और सड़क को भी मुश्किल से बनाया गया

था। एक जगह स्लेटी पत्थरों की खान थी, जहाँ से उन्हें निकालकर लारियों पर लादकर ले जाया जाता था।
मण्डी से जाते ही हम कह गए थे कि दोपहर की बस से आएँगे। 11 बजे जब अड्डे पर पहुँचे, तो श्री हुताशन
शास्त्री, सुन्दरलाल और दूसरे मित्र वहाँ मिले। पिछली बार उन्होंने होटल से घर ले जाने के लिए बहुत कहा
था, लेकिन हमने लौटते समय के लिए कहकर छुट्टी ले ली थी। अब मास्टर जयवर्धन के मकान पर गए।
यहीं खाना खाने का भी आग्रह था, जिसे हमने नहीं माना, क्योंकि उसके बनने में देर होती, और इस समय
हम होटल में बने-बनाये खाने को खाकर अपने काम में लग सकते थे। अन्तानी साहब के पास सारी सामग्री
तैयार मिली। नमकवाले इंजीनियर ने भी सहायता की। डाक में कमला की दो चिट्ठियाँ मिलीं। जया के दस्त
नहीं बन्द हो रहे हैं, वह दुबली हो गई है, यह पढ़कर तुरन्त लौट जाने का मन हो रहा था, किन्तु चम्बा तक
तो जाना जरूरी था। कमला ने बी. ए. के प्रश्नपत्र अच्छे किए हैं, यह भी चिट्ठी से मालूम हुआ।

**काँगड़ा**–24 को सबेरे भोजन हुताशन शर्मा शास्त्री की ससुराल में था। नाम शायद शास्त्रीजी ने अपने
हाथ से रखा था। हुताशन क्या, अग्नि भी नाम आजकल सुनाई नहीं पड़ता। उन्होंने जल्दी-जल्दी में मण्डी
का भोजन तैयार कराया था। साढ़े 7 बजे ही हमें अड्डे पर पहुँचना था, इसलिए इत्मीनान से कोई काम नहीं
हो सकता था। अड्डे पर मित्र लोग पहुँचाने आए। ड्राइवर से परिचय कराया। वह 25 वर्ष का सुन्दर तरुण
तबला बजाने में अद्वितीय है। रियासत रहती, तो इसे मोटर का चक्का नहीं पकड़ना पड़ता। बारीक अँगुलियाँ
जो कला में अपनी प्रवीणता दिखलातीं, वह चक्का चलाने में लगी थीं। तरुण का सुन्दर चेहरा बहुत सौम्य
था। हमारे साथ खनिज-इंजीनियर साहब भी चल रहे थे, नमक की खानें रास्ते में थीं। पिछले साल डेढ़ लाख
का नमक निकला था। यहाँ खाने के नमक के अतिरिक्त काला नमक भी मिलता है। नमक का तो पहाड़ खड़ा
है। अभी उसमें थोड़ा ही काम हो रहा है।

12 बजे हम बैजनाथ में उतर गए। स्थान हजार फुट से कुछ ही अधिक ऊँचा होगा, फिर दोपहर की
गर्मी क्यों न परेशान करती ? बैजनाथ किसी समय किरग्राम के नाम से एक अच्छा-खासा व्यापारिक नगर
था। बीच में वह उजड़-सा गया था। मोटरों ने फिर उसे आबाद कर दिया है। कितनी ही दूकानें हैं। एक
भोजनालय में सामान रखकर खाना खाया, फिर वहाँ का ऐतिहासिक मन्दिर देखने गए। शिखरदार मन्दिर पहाड़
में कम होते हैं, और यह हिमालय के प्राचीन तथा अति सुन्दर मन्दिरों में है। मन्दिर के जगमोहन में 11वीं
शताब्दी के दो शिलालेख लगे हुए हैं, जिनसे पता लगता है कि यहाँ वैद्यनाथ शंकर का मन्दिर था। कितनी
ही खण्डित मूर्तियाँ हैं। कितने ही सालों तक भ्रष्ट होने के बाद मन्दिर सूना पड़ा रहा। फिर एक साधु ने यहाँ
डेरा जमाया। फिर से पूजा शुरू की, और भूकम्प के कारण ध्वस्त होते मन्दिर की मरम्मत भी कराई। मूर्तियों
में एक तीर्थंकर की भी मूर्ति थी, जिससे जान पड़ा कि यहाँ जैन भी थे। एक बूटधारी सूर्य और संदिग्ध बुद्ध-मूर्ति
भी देखी। यहाँ सर्वधर्म-समागम था। किरग्राम के लोप होने के साथ नाम भी नष्ट हो गया, और लोग शंकर
के नाम पर ही इस स्थान को वैद्यनाथ कहने लगे। नीचे बिन्नू नदी बह रही थी। उस दोपहर की तपती धूप
में भी स्थान रमणीय मालूम होता था। सुबह-शाम और बरसात में तो यह स्थली सौन्दर्य की खान मालूम होती
होगी।

दो बजे हम मलाँ (मलानी शहर) के लिए बस पर रवाना हुए। नाम शहर, लेकिन दूकानें तीन-चार ही
थीं। हमें पठियार में हिमालय का सबसे पुराना शिलालेख देखने जाना था। सामान को दूकानदार के पास रख
दिया, और जनकलालजी के साथ चल पड़े। यह उपत्यका बहुत चौड़ी है, कहीं-कहीं तो देश का भ्रम हो जाता
है। पठियार बहुत बड़ा गाँव है। सात सौ घर और कई टोले हैं। सौ राठी, चार सौ धिर्थ चौधरी, बीस ब्राह्मण,
सौ हरिजन परिवार रहते हैं। लोगों ने पठियार की सड़क तो पकड़ा दी, लेकिन ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी का
ब्राह्मी शिलालेख कहाँ है, इसका किसी को पता नहीं था। हम ढाई मील तक उसी कच्ची सड़क पर चले गए।
कुछ दूकानें मिलीं। लोगों ने बतलाया, यहाँ से आधा मील पर खेतों में वह चट्टान है। भूलते-भटकते खेतों और
घरों को पार करते उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ कभी राठी बाकुल की पुष्करिणी थी। पुष्करिणी का अब नाम-निशान
नहीं है। इस भूमि में जगह-जगह शिलाएँ जमीन से ऊपर निकली मिलती हैं, उन्हीं में से एक पर ब्राह्मी और

खरोष्ठी में लिखा था–'वाकुलस पुकरिणि'। अभिलेख का रट्ठी शब्द अब भी यहाँ के सौ राठी परिवारों के नाम से जुड़ा हुआ है। उस समय राष्ट्रिक कोई सरकारी पद था। सामन्त बाकुल ने यहाँ अच्छी विशाल पुष्करिणी बनाई होगी।

वहाँ से लौटे और साढ़े 5 बजे मलाँ में पहुँच गए। मोटरें काँगड़ा को जा रही थीं, लेकिन जान पड़ने लगा, हमें जगह नहीं मिलेगी। निराश हो चुके थे, उसी वक्त एक बस आई, जिसने हमें चढ़ाकर 7 बजे पुराने काँगड़ा में पहुँचा दिया। अड्डे के पास ही एक रुपये में एक होटल में कमरा ले लिया। पुराना काँगड़ा पहिले नगरकोट या भवान के नाम से मशहूर था। यहाँ की भवानी भारत की प्रतापी देवियों में थीं। महमूद गज़नवी यहाँ से लूटकर अपार सम्पत्ति ले गया था। 1904 के भूकम्प ने काँगड़ा में ऐसी ध्वंसलीला दिखलाई कि ईंट के ऊपर ईंट नहीं रह गई। बज्रेश्वरी भवानी का मन्दिर धराशायी हो गया था। लेकिन भक्तों ने मन्दिर को फिर से तैयार कर दिया। हमारे लिए प्राचीन मन्दिर और टूटी-फूटी मूर्त्तियाँ अधिक महत्व रखती थीं, लेकिन उनका कहीं पता नहीं था। अभी कुछ समय था, इसलिए हम जाकर मन्दिर देख आए। शहर श्रीहीन-सा मालूम होता था। बाजार काफी लम्बा-चौड़ा है। लौटकर अपनी कोठरी में आए। नागदेवता ने दर्शन दिया। जनकलालजी डरने लगे। मैंने कहा, नागदेवता दर्शन ही के लिए थे, अब वह अपना काम कर चुके, इसलिए डरने की जरूरत नहीं। तो भी दरवाजे पर जहाँ वह लोप हुए थे, उससे हटकर हमने अपनी चारपाइयाँ रखीं और रात को बेखटके सोये।

पुराना काँगड़ा यद्यपि कभी महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा, लेकिन जिस किले के नाम से काँगड़ा मशहूर है, वह यहाँ से एक मील हटकर दुर्गम पहाड़ पर बना है। आज यद्यपि बीच में आबादी नहीं है, लेकिन राजा संसारचन्द के समय (1780 ई.) नगर भवान से किले तक फैला हुआ था। हम ऊपरी सड़क को पकड़कर किले की ओर चले। रास्ते में आमों के बाग मिले; हाँ, नफीस किसिम के आम ये नहीं होंगे। किले के दरवाजे की चाभी देकर चौकीदार आया। हम फाटक के भीतर घुसे। भूकम्प ने इस किले की भी बड़ी दुर्गति बनाई थी, तो भी बची-खुची चीजों को सुरक्षित रखने की पुरातत्व विभाग ने कोशिश की है। यह अच्छा हुआ, जो भूकम्प से पहिले ही पुरातत्व विभाग ने इसके सम्बन्ध में काफी फोटो और लिखित सामग्री प्रकाशित कर दी थी। मुस्लिम-काल के पहिले की यहाँ एकाध ही चीजें हैं। किले से बाहर स्नानागार है, जो शायद मुगल-काल की देन है। यहाँ मुगल राज्यपाल और उसकी बेगमों के स्नान करने के लिए गरमाबा (हबाय) बनाया गया था। किले में मस्जिद भी है, और एक जैन तीर्थंकर की मूर्ति पर 18वीं सदी का लेख भी। जान पड़ता है सेठ मुगल गवर्नर का खजांची था। किला काँगड़े ने मुसलमानों और गोरखों को ही लोहे का चना नहीं चबवाया, बल्कि इसका इतिहास बहुत पुराने समय तक जाता है। ईसापूर्व 12वीं सदी में इन पहाड़ों में किर (किरात) लोग रहते थे, जिनके नाम पर बैजनाथ किरग्राम के नाम से 11वीं शताब्दी में भी मशहूर था। किर लोग आर्यों के लिए दस्यु और दुश्मन थे। ईसा-पूर्व 15वीं सदी में मैदान की प्रागूद्रविड़ जाति पर विजय प्राप्त करके आर्य सप्तसिन्धु (पंजाब) में जम गए। तीन सौ वर्षों में उनका फैलाव जमुना के किनारे तक हो गया। अर्ध-पशुपाल-अर्ध-कृषक आर्यों की प्यास उतने से नहीं तृप्त हुई, और वह पहाड़ की चरागाहों की ओर बढ़े। उस वक्त (ईसा-पूर्व 12वीं शताब्दी में) उनका संघर्ष पहाड़ी किरों से हुआ। पहाड़ियों का प्रतापी नेता शम्बर अपनी एक अंगुल धरती भी श्वेतांगों को देने के लिए तैयार नहीं था। उसके पास सौ अश्म्नमयी पुरियाँ (किले) थीं। 40 वर्ष तक शम्बर के नेतृत्व में किरों ने आर्यों के दाँत खट्टे किए। दिवोदास और उसके पुरोहित (प्रधान मंत्री) भरद्वाज की अकल गुम हो गई। तब जाकर वह शम्बर को मारने और काँगड़ा-उपत्यका पर अधिकार पाने में सफल हुए। यह किला शम्बर के समय उसके सौ दुर्गों में एक अजेय दुर्ग था। काल बीतता गया, शम्बर अमानुस बना दिया गया। लोग उसका नाम भी भूल गए, और शम्बर को जलन्धर के नाम से पुकारने लगे। जलन्धर को मारनेवाली भवान की देवी बतलाई गई, अर्थात् शम्बर के साथ दिवोदास का भी नाम भुला दिया गया। दिवोदास के पुरोहित ने इस विजय का श्रेय अपने महान् देवता इन्द्र को दिया था।

अंग्रेजों ने सिक्ख राज्य के साथ इस पहाड़ी भूमि को भी अपने हाथ में कर लिया। पहिले उन्होंने जिले

का मुख्य काँगड़ा में ही रखा, लेकिन फिर धर्मशाला जैसा ठण्डा स्थान मिला, इसलिए वह वहाँ जाकर रहने लगे। पाकिस्तान बनने से पहिले काँगड़ा के इस भाग में पचास से ऊपर मुसलमान परिवार रहते थे। यहाँ भी खूनखराबी हुई, और बचे लोग पाकिस्तान चले गये। शायद काँगड़ा का यह भाग खाली होकर बरबाद हो जाता, लेकिन शरणार्थियों ने आकर घरों को आबाद कर दिया। पर इसमें सन्देह है कि वह यहाँ अपनी जीविका कमा सकेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो घर आदमी को कैसे बाँध सकता है ?

हम ऐसे समय बज्रेश्वरी के मन्दिर में गए, जब सूर्य डूब चुका था। आज वहाँ जाकर फोटो लिये। आज ही ज्वालामुखी चलने का निश्चय हुआ।

**ज्वालामुखी**–भोजन करके साढ़े 11 बजे मोटर से चल दिये। ज्वालामुखी यहाँ से 24 मील है। ज्वालामुखी रोड के पास तक सड़क अच्छी थी। फिर पहाड़ी कच्ची सड़क मिली। 1 बजे हम ज्वालामुखी पहुँच गए। अप्रेल के अन्तिम दिनों का मध्याह्न था, उसके साथ ज्वालामुखी नाम भी मिल गया। वहाँ की धूप असह्य मालूम होती थी। सामान हम अपने साथ नहीं ले गए थे, क्योंकि लौटकर काँगड़ा चला आना था। अड्डे से माई के स्थान की ओर चले। टेढ़ी-मेढ़ी गली और उसके दोनों तरफ दूकानें पड़ीं। अन्तिम सिरे पर चढ़ावे की दूकानें ज्यादा थीं। जान पड़ता है, यहाँ भूकम्प ने अपना जोर नहीं दिखाया। आखिर आपरूप देवी जो यहाँ मौजूद थी। फाटक के भीतर गए। फिर ज्वालामाई के मन्दिर में घुसे। पुजारी ने बतलाया, सोने का छत्र महाराज रणजीतसिंह ने चढ़ाया, और उनकी बेटी ने चाँदी का द्वार बनवाया। भीतर दीवार में तीन, और कुण्ड में दो टेमें जल रही थीं। इतनी क्षीण थीं कि फूँक देने पर बुझ जातीं, फिर गैस की गन्ध निकलती। मन्दिर के भीतर इतनी धूपबत्तियाँ जलाई जाती हैं कि उसमें प्राकृतिक गैस की गन्ध छिप जाती है। इससे कहीं विशाल ज्वालाएँ निकलती बाकू में मैंने देखी थीं। यद्यपि वहाँ की बड़ी ज्वालामाई की जोत पहिली बार 1935 में मेरे वहाँ पहुँचने से दस-बारह वर्ष पहिले ही बुझा दी गई थी। पर, इसमें शक नहीं, कि वह जोत इससे कहीं बड़ी रही होगी। मैंने अपनी रूस की दूसरी यात्रा में रेल से कई प्रचण्ड ज्वालाएँ निकलती देखी थीं, जिनके सामने इन ज्वालाओं की कोई गिनती नहीं हो सकती थी। खैर, अब बाकू की ज्वालामाई निर्वाण प्राप्त कर चुकी हैं। हमारे लिए तो यही ज्वालामाई रह गई हैं। किसी समय ज्वालामुखी संन्यासी अखाड़ों का बहुत बड़ा केन्द्र था। यह भारत के जबर्दस्त व्यापारी थे। देश में ही नहीं, बल्कि नेपाल, मध्य-एसिया, तिब्बत और चीन तक व्यापार करते थे। अब उनकी इमारतें ध्वस्त, त्यक्त और उदास थीं।

लौटकर अड्डे पर पहुँचे। कुछ ही मिनट पहिले अगर आये होते, तो काँगड़ा की मोटर हमें तैयार मिलती। पास में एक अच्छी धर्मशाला बनी हुई थी। वहीं दो घंटे से ऊपर निराशा के साथ प्रतीक्षा करनी पड़ी। फिर एक बस ज्वालामुखी रोड स्टेशन तक पहुँचाने के लिए तैयार हुई। वहाँ जाने पर दूसरी बस पठानकोट से धर्मशाला जानेवाली मिली। काँगड़ा में अड्डे के पास ही हमारा सामान था, इसलिए उसे लेकर हम उसी दिन सवा 7 बजे धर्मशाला पहुँच गये। यह शिमला और मसूरी जैसा ठण्डा है, बल्कि यहाँ उनसे भी ज्यादा बरफ पड़ती है। मसूरी और शिमला की तरफ जहाँ एक ही हिमाल श्रेणी है, वहाँ इधर तीन-तीन श्रेणियाँ हैं, जिनमें सबसे दक्षिणवाली धर्मशाला के पास पड़ती है। हम उस दिन जाकर हिन्दू होटल में ठहर गए।

**धर्मशाला**–26 अप्रेल का दिन धर्मशाला के लिए था। काँगड़ा जिला के सरकारी दफ्तर यहीं हैं। यद्यपि काँगड़ा जिला पंजाब में है, लेकिन है वस्तुतः हिमाचल प्रदेश का ही अंग। कुल्लू को लिये यह एक ही जिला जनसंख्या में सारे हिमाचल प्रदेश के बराबर है। उस दिन चाय पीकर जनकलालजी के साथ बाहर निकले। समझा, डिप्टी-कमिश्नर से मिलना ऑफिस से बेहतर बँगले पर होगा। 8 बजे पहुँचे। कार्ड भिजवाया। साहब बहादुर ने हुकुम दिया, दस बजे आओ। कार्ड के पहिले भी हम चिट्ठी लिख चुके थे, जिसमें आने का उद्देश्य भी बतलाया था। हमने कहा, चलो इन दो घंटों में धर्मशाला के ऊपरी छोर तक देख आएँ। साढ़े 6 आना देकर हम ऊपरवाली बस पर बैठ गए, जो मेकलौडगंज तक जाती थी। यहीं धर्मशाला की फौजी छावनी है, जिसमें गोरखा सेना रखी जाती है। सर्द जगहों में अंग्रेजों ने गोरों और गोरखों के लिए छावनियाँ बनाई थीं। वहाँ से हम मील-भर पर अवस्थित भाकसूकुण्ड गए। यह धर्मशाला का तीर्थ है, और वस्तुतः भाकसूनाथ के

दर्शनार्थियों के लिए ही किसी ने धर्मशाला बनवा दी थी, जिसके नाम पर इस नगरी का यह नाम पड़ गया। भाकसूनाथ के महन्त रामदयाल गिरि वैद्यभूषण हैं। शिक्षित होने से दुनिया-जहान की खबर रखते हैं। यह कहना मुश्किल है कि उन्होंने राहुल की कोई पुस्तक पढ़ी थी, लेकिन, व्यवहार उनका परिचित-जैसा ही हुआ। यहाँ कुण्ड में पहाड़ के भीतर से आकर एक बड़ी धारा गिरती है। इसी पानी को नल के द्वारा धर्मशाला में सब जगह पहुँचाया गया है। भाकसूनाथ बड़े परोपकारी हैं, यह तो हम प्रत्यक्ष उनके जल-वितरण से देख रहे थे। गिरि जी ने उनकी जो जीवनी सुनाई, उससे हम और भी प्रभावित हुए। भाकसू और पहाड़सिंह दो भाई बीकानेर-जोधपुर की ओर के रहनेवाले थे। बड़ा भाई पहाड़सिंह राजा था, और छोटा कुँवर। अपने यहाँ जल का कष्ट देखकर उनको बहुत दुःख हुआ, और लोगों के उद्धार करने का बीड़ा उठाया। मालूम हुआ उत्तराखंड में एक पहाड़ का नाम ही जलन्धर है, जहाँ बहुत सारा जल है। दोनों भाई वहाँ से चले। यहाँ होते आगे डेढ़ मील के रास्ते पर नागडल महासरोवर का पता लगा। किसी ने बतलाया, पानी तो बतेरा है, लेकिन हजारो नाग उसकी रक्षा करते हैं। बड़ा भाई खतरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं था। उसने बहाना किया–"पास के पहाड़ पर तपस्या करने की बड़ी अच्छी जगह है। मैं तो यहाँ भजन करूँगा।" छोटे भाई ने अकेले ही वहाँ पहुँचने का निश्चय कर लिया। किसी ने कोई युक्ति बता दी, और वह नागों को सुलाने में सफल हो डल का आधा पानी चुराकर भागा। कुण्ड के स्थान पर पहुँचते-पहुँचते डल का राजा नाग भी पीछा करता आया। उसने भाकसू को डस लिया। भाकसू ने अन्त में शिवजी महाराज का नाम लिया। नाम लेते ही गौरा-पार्वती सहित पहुँच गए। शिवजी महाराज भाकसू के साहस से बहुत प्रसन्न हुए और कहा, दो वर में से एक वर माँग लो–पानी या प्राण। उस महासत्व ने कहा–"मुझे प्राण नहीं चाहिए। लोगों को पानी मिले, मैं यही चाहता हूँ।" शंकरजी ने एवमस्तु कहा, और साथ ही उसे अपना रूप बनाकर वहीं बैठा दिया। भाकसू शंकर पास के मन्दिर में बिराज रहे हैं। इस स्थान के साथ दूसरी कथा भी जुड़ी हुई है। बाबा उमेदगिरि यहाँ आकर तपस्या कर रहे थे। राजा धर्मचन्द शिकार करने के लिए यहाँ आये। विनती की–"बाबा, क्या सेवा करूँ ?" बाबा ने कहा–"बच्चा, धुनी का लक्कड़ दे दे।" राजा राजधानी में लौटकर ऐश-जेश में भूल गया। बाबा ने जंगल को जलाकर उसी को धुनी बना दिया। राजा को होश आया, तो आकर यह चमत्कार देखा। क्षमा माँगी और सेवक बन गया। बाबा उमेदगिरि ने जीते ही यहाँ समाधि ले ली। उनके और उनके उत्तराधिकारी महन्तों की समाधियाँ यहाँ बनी हुई हैं। मन्दिर में कोई जागीर-वागीर नहीं है। कोई ताज्जुब नहीं, यदि गिरियों का अखाड़ा यहाँ अंग्रेजों के आने से पहिले रहा हो। महन्तजी ने चाय पिलाए बिना वहाँ से आने नहीं दिया।

बस के अड्डे पर आने से पहिले वह चली गई थी। उतराई थी, इसलिए पैदल ही चल पड़े। डिप्टी-कमिश्नर के बँगले पर पहुँचे तो मालूम हुआ के. एल. कपूर साहब देहात घूमने चले गए। हमें अफसोस करने की कोई जरूरत नहीं थी। आखिर हम उनके पीछे बहुत हैरान भी नहीं हुए थे। साहेब आई. सी. एस. हैं और किसी मंत्री के रिश्तेदार भी–करेला और नीम पर चढ़ा। कचहरी में जाकर मुकद्दमा करना चाहिए, लेकिन कितनी ही बार टेलीफोन खटक जाता है–साहब बँगले पर ही इजलास करेंगे। बँगला शहर के एक छोर पर है, और कचहरी दूसरे छोर पर। ऐसे आदमी से यही आशा हो सकती थी।

हम नीचे धर्मशाला में गए, जहाँ बहुत-से सरकारी ऑफिस है। सोचा पब्लिसिटी आफिसर (सूचना-आधिकारी) से कुछ काम चलेगा, इसलिए श्री मंगतराम खन्ना के पास पहुँचे। उन्होंने कुछ सूचनाएँ दीं, और बाकी के भेज देने का जिम्मा लिया। ईसा-पूर्व दूसरी-तीसरी शताब्दी के एक शिलालेख को हम पठियार में देख आए थे। दूसरा शिलालेख खजिया में था। अब हम उधर चले। श्री खन्नाजी ने रास्ता बतलाने के लिए दो फर्लांग तक अपने आदमी को भेज दिया। हमारा रास्ता अधिकतर उतराई का था, चढ़ाई नाम की थी, और जाना था पगडंडी से। सड़क से जाने पर बहुत चक्कर लगाना पड़ता। गोरखों का एक गाँव मिला, जहाँ पेन्शनर नेपाली बस गए थे। फिर एक-दो और गाँवड़ों में होते धर्मशाला से खजियार जानेवाली मोटर-सड़क पकड़ी। एक आदमी ने नीचे उतरती पगडण्डी को दिखला दिया और बतलाया कि नजदीक ही खेत में वे चट्टानें हैं। बहुत भटकना नहीं पड़ा। हम खेतों के बीच से उभरी उस चट्टान के पास पहुँच गए, जिस पर अभिलेख है। यहीं कृष्णयश

ने आराम (भिक्षु विहार) बनवाया था। वस्तुतः चट्टान दाढ़ी में है, लेकिन मशहूर है खजियार के नाम से, क्योंकि वह बड़ी बस्ती है। किसी समय यहाँ भिक्षुओं का आवास था। पठियार में पुष्करिणी थी, और लेख से पता नहीं लगता कि उसके साथ कोई विहार था या कोई और धार्मिक आश्रम। पर यहाँ तो आराम साफ लिखा हुआ था। यद्यपि इसका अर्थ उद्यान भी होता है, लेकिन उस काल में बौद्ध विहारों को आमतौर से आराम कहा जाता था, तभी इतने महत्वपूर्ण लेख के लिखवाने की जरूरत थी। हम दोनों वहाँ से लौटकर फिर उसी जगह सड़क पर पहुँचे, और उसके साथ ऊपर की ओर बढ़ते सूर्यास्त के बाद धर्मशाला पहुँच गए। जनकलालजी को एक नेपाली साहित्यकार का पता मालूम था, इसलिए वह उसी रात उनसे मिलने श्यामनगर में चले गए। वह वहाँ से सवा 10 बजे रात को लौटे। इसी बीच 'तालिब' साहब किसी से सुनकर अपने एक मित्र के साथ आ गए थे, जिनसे देर तक बातचीत होती रही। और भी कितने ही सज्जन आए। मालूम हुआ, हमारे आज के कथानायक को ब्रिज से फुरसत नहीं रहती, और एक मन्त्री साहब की लड़की इनके बेटे से ब्याही जानेवाली है। "सैयाँ भये कोतवाल, अब डर काहे का।"

**डलहौसी**–तड़के पठानकोट जानेवाली बस 5 बजे मिलती थी। 56 मील का रास्ता था। हमने जाकर उसी को पकड़ा। रास्ते में नूरपुर मिला। यहाँ के राजा ने बादशाह नूरुद्दीन जहाँगीर के प्रति भक्ति दिखाने के लिए इसे धमेरी से बदलकर नूरपुर कर दिया था। तो भी धमेरी (धर्मगिरि) बहुत दिनों तक लोगों के मुँह से छूटा नहीं। 18वीं सदी के अंग्रेज यात्रियों ने भी इसी नाम को स्मरण किया है। कहते हैं, पहिले राजधानी पठानकोट में थी। मैदान में होने से वह शत्रुओं से उतनी सुरक्षित नहीं थी, इसलिए उसे यहाँ लाया गया, और एक चट्टान पर किला बनाकर वहीं राजधानी बस गई। धर्मगिरि का सम्बन्ध बौद्ध-धर्म से हो, यह कोई निश्चय नहीं है, लेकिन, हो भी सकता है, क्योंकि दूसरे लोग अपने देवताओं के नाम पर नगरों को रखना ज्यादा पसन्द करते, जबकि बौद्ध-धर्म के दास होना चाहते हैं। पठानकोठ से पठानों या अफगानों का अर्थ नहीं समझना चाहिए। मुस्लिम इतिहासकारों ने भी इसका नाम पैठन बतलाया है, जो प्रतिष्ठान का अपभ्रंश है। कोट तो किले के कारण उसके साथ जोड़ दिया गया। यह सबसे उत्तर का प्रतिष्ठानपुर था। दूसरा प्रयाग के सामने गंगा पार झूसी भी प्रतिष्ठान था, और तीसरा महाराष्ट्र में औरंगाबाद से दक्षिण गोदावरी के किनारे आज भी पैठन के नाम से मशहूर है, जो आन्ध्र राजाओं की राजधानी रहा। आर्य-असुर या दिवोदास-शम्बर के युद्ध के समय इस नैसर्गिक पहाड़ी किले पर जरूर शम्बर के सौ दुर्गों में से यह एक रहा होगा। विशेषकर यहीं से पहाड़ों में घुसने का रास्ता होने से इस स्थान का महत्व ज्यादा था। हमने चाहा, फोटो ले लें, लेकिन सभी ड्राइवर एक तरह के नहीं होते। एक मिनट के लिए भी फुरसत नहीं थी, सीधे जाकर अड्डे पर जरा देर के लिए ठहरे, सवा 8 बजे पठानकोट पहुँच गए।

विभाजन के बाद पठानकोट बहुत बढ़ गया है। पहिले इसका महत्व चम्बा और काँगड़ा-मंडी जानेवाली सड़कों के कारण था। अब वह पाकिस्तान की सीमा के नजदीक होने से भारी सैनिक छावनी है, और पश्चिमी पाकिस्तान से आए लोग भर गए हैं। कश्मीर जाने का रास्ता भी यहीं से जाता है, इसलिए व्यापारिक सुभीता ज्यादा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। अप्रेल के अन्त में पहाड़ से बिल्कुल नीचे मैदान में बसी इस बस्ती की गर्मी का क्या पूछना ? पर हमें आध घण्टे से ज्यादा ठहरने की जरूरत नहीं पड़ी, और कुछ नाश्ता करके हम पौने 9 बजे डलहौसी की बस से चल पड़े। मैदान पार कर पहाड़ में घुसे, फिर चक्कर काटते, ऊपर से ऊपर चढ़ते 45 मील जाकर बनीखेत में पहुँचे। अच्छा-खासा बाजार है। यहाँ से एक रास्ता चम्बा को जाता है, और दूसरा पाँच मील पर डलहौसी को। हम उसी गाड़ी से डलहौसी चले गए। एक झाँकी करनी थी। मुझे हिमालय की पुरियों में डलहौसी सबसे अधिक सुन्दर मालूम हुई। इसका कोई कोना हरियाली से खाली नहीं। विशालकाय देवदार जगह-जगह खड़े थे। दोपहर का समय था, लेकिन गर्मी का कहीं भी पता नहीं था। डलहौसी को यह लाभ है, कि यहाँ फौजी छावनी है। सीमांत के पास होने के कारण यह आबाद रहेगी, इसकी भी पूरी आशा है। आजकल जर्नेल साहब आनेवाले थे, इसलिए सैनिकों ने तोरण-वंदनवार लगा रखे थे। अड्डे पर जाकर हमने सामान एक भोजनालय के पास रखा, और सोचा, बस के लौटने में तीन घंटे की देर है। तब तक डलहौसी

को देख लें। 1 बजे हम पहुँचे थे। 'शतं विहाय भोक्तव्यं'–पहिले पेट-पूजा की, फिर चले नगरी को देखने। चौरस्ते पर पहुँचे। अंग्रेजों ने लंदन के अपने प्रिय चौरस्ते का नाम इसे देकर चेरिंग क्रास बना दिया था। कुछ नीचे उतरकर मुख्य बाजार में पहुँचे। दरो-दीवार से हसरत बरस बरस रही थी। 30 अप्रेल गर्मी का दिन था। विभाजन से पहिले होता तो अब तक यहाँ हजारों सैलानी आ गए होते। आधी दूकानों में ताला बन्द था। लोगों ने बतलाया, 1947 से इनका ताला कभी नहीं खुला। एक प्रौढ़ पुरुष कह रहे थे–"यहाँ हिन्दू थे, मुसलमान थे। सब आते थे। डलहौसी गुलजार थी। अब तो बाजार की बहुत-सी दूकानें सालों से बन्द हैं।" हमने भी देखा, छतों की स्लेटें हट गई थीं, कोई ठीक करनेवाला नहीं था, बरसात का पानी घर के भीतर जाता होगा। मसूरी की दुरवस्था पर ही हम झँखते थे, लेकिन वहाँ बाजार में तो हमने ऐसी हालत नहीं देखी। कभी यहाँ धर्म के नाम पर सिर-फुटौवल होती थी, मस्जिद के सामने बाजा नहीं बजना चाहिए। आज आर्य, अनार्य, सनार्य सभी मन्दिर सूने पड़े अपने भाग्य के लिए रो रहे थे।

कितनी ही दूर और चक्कर लगाकर फिर हम मुख्य पर्वत की परिक्रमा में निकले। जमादार झाड़ू लिये सड़क साफ कर रहा था। इसे आदतवश ही कहना चाहिए, क्योंकि सड़कों पर तो अब आदमी कम ही चलते थे। कह रहा था–"क्या पूछते हैं ? डलहौसी की शोभा तो साहब लोगों के साथ चली गई।" साहब लोगों के जाने के लिए अफसोस करनेवाले लोग बिलासपुरियों में काफी मिलेंगे। एक और आदमी मिला। वह कुछ आशावान् था। कह रहा था–अगले महीने (मई) के अन्त में बहुत लोग आएँगे। बहुत क्या खाक आएँगे ? परिक्रमा करते घूमे, फिर अड्डे पर पहुँच गए। 4 बजे के करीब बस मिल गई। लौटते वक्त मालूम हुआ, भारत के महासेनापति राजेन्द्रसिंहजी आ रहे हैं, उन्हीं की स्वागत की तैयारियाँ हो रही हैं। बनीखेत में आकर चम्बा की मोटर पकड़ी। अभी बसें सिरदर्द की चीज थीं, चाहे वह सरकारी बसें ही क्यों न हों। समय की कोई पाबन्दी नहीं। ड्राइवर बहुत कुशल था। वस्तुतः यहाँ से चम्बावाली सड़क मोटर के लिए उपयुक्त नहीं थी। बहुत सँकरी और उतराई भी तेज थी। सबसे असल बात यह थी कि ड्राइवर के दो मित्र उसकी बगल में बैठ गए और निर्द्वन्द्व बात करने लगे। यह आरोहियों के प्राण के साथ खेल करना था। फिर क्लीनर ने मोबिल आइल का खुला डब्बा हम लोगों के बीच में लाकर रख दिया। कपड़े खराब हों, उसकी बला से। सवारियों के अतिरिक्त नौ मन साग-सब्जी के बक्से भी भरे थे। रास्ते में जब चम्बा 14 मील रह गया, तो एकतरफा होने के कारण गाड़ियों को रुकना पड़ा। मुझे मोबिल आइल और ड्राइवर से बात करना बहुत बुरा लगा। मैंने शिकायत की किताब माँगी। ड्राइवर ने कहा–"हमारे पास नहीं है।" खून का घूँट पीना पड़ा, लेकिन आगे वह बहुत नरम पड़ गया। अपने आदमी को डाँटकर मोबिल आइल का डब्बा वहाँ से हटवा दिया। ऐसे बुरे रास्ते से चलकर साढ़े 8 बजे रात चम्बा पहुँचाने में जिस कौशल का उसने परिचय दिया, उससे सारा गुस्सा हट गया। चम्बा में नेगी ठाकुरसेन डिप्टी-कमिश्नर थे। 1948 का उनसे काफी परिचय था। पीछे भी चिट्ठी-पत्री होती रहती थी। लेकिन, डिप्टी-कमिश्नर का बँगला अर्थात् पुराने अंग्रेज सर्वेसर्वा का महल न जाने कहाँ होता, और रात में जाकर तकलीफ देना पड़ता, इसलिए हम वहाँ नहीं गए, और पं. जयवन्तराम का मकान पूछते उनके घर पर पहुँचे। घर पर उनके भांजे श्रीनिवासजी मौजूद थे। उन्होंने एक साफ-सुथरे कमरे में ले जाकर ठहराया। मकान बहुत अच्छा था, लेकिन भारतीयों के स्वभाव के अनुसार पाखाने को पूरी तौर से गन्दा रखना, और दूर भी होना जरूरी था। डायबेटीज़ के मरीज को पेशाबखाने का दूर होना शामत की बात है।

**चम्बा**–28 अप्रेल का सबेरा आया। आसमान साफ देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। फोटो लेने के लिए और लोगों से मिलने के वास्ते भी अच्छे मौसम की आवश्यकता होती है। डाकखाने में कमला की तीन चिट्ठियाँ मिलीं। मैं रास्ते से आधा दर्जन चिट्ठियाँ लिख चुका था, लेकिन उन्हें सिर्फ एक मिली। यह जानकर चिन्ता दूर हुई, कि जया अब अच्छी तरह है। पहिले हम डिप्टी-कमिश्नर नेगी ठाकुरसेन से मिलने गए। उन्होंने कहा–"हमारे यहाँ आइए।" यद्यपि चम्बा के बारे में अधिक सहायता उन्हीं से लेनी थी, जिसमें यहाँ आने पर सुभीता होता, लेकिन हमने यह कहकर क्षमाप्रार्थना की, कि अभी तो वहीं रहने दें, भरमौर से लौटकर आपके यहाँ ठहरेंगे। जिले के भिन्न-भिन्न विषयों सम्बन्धी आँकड़ों को जमा करने का जिम्मा उन्होंने ले लिया। नेगी ठाकुरसेन दूसरी

ही तरह के अफसर हैं, जो आजकल के नौकरशाहों में दुर्लभ हैं। वह चाहते हैं, जनता की हालत बेहतर हो। जहाँ सारी मशीन बिगड़ी हुई है, वहाँ एक आदमी क्या कर सकता है ? लेकिन, पुरुषार्थी हाथ-पैर ढीले करके बैठा तो नहीं रह सकता। उन्होंने कनौर के दुर्गम पहाड़ी इलाके में जन्म लिया। कृषि में बी. एस-सी. किया और ये दोनों गुण जन-सेवा के लिए बहुत उपयोगी हैं। ब्याह नहीं किया, कि उससे हमारे काम में बाधा होगी। लड़ाई के दिनों में नौसेना में कुछ साल रहे, इसलिए फौजी अफसरों का अनुशासन भी है। पहाड़ में पैदा होने का यह मतलब नहीं, कि हरेक आदमी पक्षियों की तरह उड़ते हिमालय के दुर्गम पथों को पार करेगा। चम्बा से भरमौर होकर सीधे लाहुल जाने की एक जीत की कठिनाई के बारे में मैं पढ़ चुका था। नेगी साहब ने कहा, कृषि कालेज में पढ़ते समय मैं इस रास्ते गया था।

चम्बा बहुत पुराना नगर है। समुद्रतल से 4000 फुट से नीचे ही है, लेकिन मैदान से बहुत दूर तथा अक्षांश में भी अधिक उत्तर होने से यह मसूरी और शिमला के पहाड़ों की ऊँचाई के स्थानों जैसा सर्द है और यहाँ हर साल बरफ पड़ जाया करती है। यहाँ पुराने मन्दिरों की एक पाँती है, जिसमें लक्ष्मीनारायण, लालपा, हरिराय, चम्पेश्वरी के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। न जाने कितनी बार मूर्तिभंजक यहाँ आए, नगर को लूटा और मूर्तियाँ तोड़ीं। पुरानी खण्डित मूर्तियाँ अधिकतर रावी-लाभ कर चुकी हैं। तो भी कुछ देखने में आईं। मन्दिर शिखरदार अपने पुराने युग के कौशल के प्रतीक हैं। 12 बजे तक घूमते, फोटो लेते, लोगों से बात करते नगरी में घूमे। नगर से बाहर एक टेकरी पर चामुंडा का मेला था। देखा, स्त्रियाँ झुंड की झुंड जा रही हैं। यह स्त्रियों का ही मेला है। चम्बा की स्त्रियाँ अधिक सुन्दर और अपने पशवाज (पेशवाज़) में बड़ी खिलती थीं। यह पशवाज मुगल संस्कृति का प्रतीक है। पुराने समय में यहाँ भी दोड़ू (ऊनी चादर) पहनी जाती थी। फिर रानियों ने मुगलानियों की तरह पेशवाज पहनकर दूसरों को रास्ता दिखलाया। राजस्थान में भी भद्र महिलाएँ घावरा-लुगड़ी नहीं, पेशवाज पहना करती थीं। लौटकर भोजन किया। फिर निकले। डाकखाने के सामने बहुत बड़ा मैदान है। डाकखाने के पास भी एक पुराना मन्दिर है, और डाकखाने से करीब-करीब सटा ही पं. जयवन्तजी का निवास। चम्पेश्वरी का मन्दिर देखने गए। राजकन्या चम्पा के नाम पर नगर का नाम चम्पेश्वरी पड़ा। चम्पा किसी सिद्ध के सत्संग में जाया करती थी। राजा को अपनी पुत्री पर सन्देह हो गया और उसका अत्यहित कर बैठा। पीछे सच्ची बात मालूम हुई, तो उसने पुत्री के नाम पर बसाई इस नगरी में अपनी राजधानी कायम की।

चम्बा भारत के उन स्थानों में है, जहाँ सबसे अधिक पुरातात्विक सामग्री प्राप्त हुई है, और जिसके राजवंश से पुराना भारत में कोई राजवंश नहीं। यहाँ का शासन अधिकतर अंग्रेजों ने किया; हाँ, राजा का दीवान होकर। उन्होंने जंगलात का अच्छा प्रबन्ध किया। मोटर की तो नहीं, लेकिन दूसरी सड़कें बनवाईं, डाकबँगले तैयार किए, स्कूल और अस्पताल खोले। इन्हीं में यहाँ का भूरीसिंह म्युजियम भी है, जिसमें बहुत-सी मूर्तियाँ और उनसे भी महत्वपूर्ण ताम्रपत्र सुरक्षित हैं। पुस्तकें भी काफी जमा की गई थीं, लेकिन उनमें से बहुत-सी उड़ गई हैं। मुझे बतलाया गया कि पिछले साल ही एक प्रभावशाली नेता वहाँ पहुँचे और पुरातात्विक महत्व की एक पुस्तक देखने के लिए ले गए, आज तक वह लौट रही है।

29 अप्रेल को फिर म्युजियम में गए। वहाँ चित्रों और कितने ही अभिलेखों के फोटो लिये। कुछ दुर्लभ पुस्तकों से भी फोटो उतारे। शाम के वक्त फिर म्युजियम में गए। वस्तुतः यहाँ इतनी चीजें देखने और पढ़ने की थीं, जिनके लिए दो हफ्ते भी पर्याप्त नहीं होते। शिक्षित तरुण मण्डली को हमने अपने आने का पता नहीं दिया था। लेकिन, हिमाचल में उर्दू की अपेक्षा हिन्दी ज्यादा प्रचलित रही है, इसलिए शायद ही ऐसा कोई शिक्षित तरुण हो, जिसने मेरी एकाध पुस्तक न पढ़ी हो। उस दिन रात के 12 बजे तक हमारे यहाँ तरुण आते रहे।

**भरमौर**–कम-से-कम चम्बा की पुरानी राजधानी भरमौर को देख लेना हमने अत्यावश्यक समझा। वैसे जब तक चन्द्रभागा के तीर के पंगीलाहुल इलाके को आदमी न देख ले, तब तक यहाँ की प्राकृतिक सुषमा का अन्दाजा नहीं लगा सकता ! पर वह हफ्तों का काम था, जिसके लिए हम तैयार नहीं थे। नेगी साहब ने दो

घोड़ों का प्रबन्ध कर दिया, और वह शाम को ही मोटर के अन्तिम अड्डे राख के लिए रवाना हो गए थे।
किसी ने कहा अँधेरा रहते मोटर जाती है, इसलिए हम साढ़े 5 बजे ही अड्डे पर पहुँच गए। बस सवा 6 बजे
रवाना हुई। रास्ते के बारे में क्या पूछना ? कामचलाऊ सड़क थी, जिस पर भी मोटरों को रामभरोसे चलाया
जाता। शहर से कोई पाँच मील गए होंगे। गाड़ी साधारण गति से जा रही थी। मैं ड्राइवर के पास बैठा था।
देखा, गाड़ी दाहिनी ओर जा रही है। ड्राइवर बतेरी कोशिश कर रहा था। लेकिन, इस बात के कहने के लिए
मैं जितना समय लूँगा, उतना समय नहीं लगा। क्यों ऐसा हो रहा है, अभी यह सोचने के लिए दिमाग तैयार
ही हो रहा था कि बस करवट बैठ गई। ड्राइवर चक्के में फँसा था, लोग एक-दूसरे के ऊपर थे। ड्राइवर का
तो होश ही ठिकाने नहीं था। मैंने कहा—"निकलो भी तो।" बाएँवाली खिड़कियाँ आसमान देख रही थीं। कुछ
उससे बाहर आए। लोगों को भी पकड़-पकड़कर निकाला। आज क्या किसी के बचने की उम्मीद हो सकती
थी ? पहाड़ में सड़क छोड़कर बस गिरे और एक भी आदमी क्षत शरीर न हो ? मैं अपने को अक्षत शरीर
समझता था, लेकिन पीछे देखा, पैर में एक जगह कुछ छिल गया है, जिससे जरा-सा खून भी निकला है। सब
लोग अपने-अपने देवताओं को मनाने लगे। जब सब उतर आए, तो हमने समझा, यहाँ इंतिजार करने की जरूरत
नहीं है, क्योंकि चम्बा से जल्दी किसी के आने की उम्मीद नहीं है, और हमारे लिए 6 साढ़े 6 मील आगे
राख में घोड़े इंतिजार कर रहे हैं।

श्री विद्याधर एम. एल. ए. भी हमारे सहयात्री थे। वह भी साथ चलने के लिए तैयार हो गए। भगवान्
को धन्यवाद देते थक नहीं रहे थे। सचमुच प्राण बाल-बाल बचे थे। उस समय ही राम-नाम सत् हो जाता,
तो मेरी कितनी ही पुस्तकें लिखने को रह जातीं। जीवन और मरण की चिन्ता में मरे जाना मेरे लिए घृणा
की बात थी। मैं किस भगवान् को धन्यवाद देता, जब जानता हूँ कि वह कभी न था और न है। विद्याधरजी
के साथ बात करते हमें राख पहुँचते पता नहीं लगा। वहाँ साईस घोड़े लिये हुए तैयार थे। सोचा, यहाँ से
कुछ नाश्ता-पानी कर चलें। जरा सुस्ताते ही दूसरी बस में पुलिस और मोटर-सर्विस का एक अफसर आ पहुँचे।
इधर लाला बक्खूचन्द बिना भोजन कराये जाने देने के लिए तैयार नहीं थे। हमने एक दूसरे झीवर से भोजन
बनाने के लिए कह दिया था, उसे मना करना पड़ा। पुलिस ने बस-दुर्घटना के लिए लोगों के बयान लिये।
मैंने बतलाया—कैसे पहिये की बात न मानकर दाहिनी ओर चले और ड्राइवर सब करके हार गया। वस्तुतः
ड्राइवर का कसूर नहीं था। इन पहाड़ों में स्टियरिंग और ब्रेक का दुरुस्त रहना हर बस के लिए अनिवार्य होना
चाहिए, लेकिन इसकी तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। इस साल (1956 ई. में) इसी तरह एक बस हिमाचल
प्रदेश में गिरी, जिसके सभी आदमी मर गए। हमारी बस यदि दस ही कदम ऊपर जाकर बाएँ जाती, तो शायद
हममें से एक भी घटना को बतलाने के लिए नहीं रह जाता। एम. एल. ए. साहब ने भी अपना वक्तव्य लिखा।
वह मकान बनवा रहे थे, जिसकी छत के लिए अच्छे किसिम की स्लेटें इधर ही मिलनेवाली थीं, उसी का इंतिजाम
करने के लिए जा रहे थे। मकान बनना बदा था, इसीलिए विद्याधरजी बच गए, किसी भगवान् ने उन्हीं नहीं
बचाया।

लाला बक्खूचन्द राख के बड़े दूकानदार हैं। अब हम कहते हैं कि बनिये खून चूसनेवाले हैं, लेकिन सनातन
से वह न अपने को ऐसा समझते थे और न दूसरे। शास्त्र कहता था—"लक्ष्मी वसति व्यापारे।" इनमें
खूनचूस-मक्खीचूस भी थे, और सरल-श्रद्धालु-दयालु लोग भी। लाला बक्खूचन्द ऐसे ही सरल-श्रद्धालु पुरुष थे।
हमें ही नहीं, उन्होंने और भी कितनों को चाय-पानी या भोजन से तृप्त किया होगा। हम भोजन करके घोड़े
पर चढ़े। कुछ मील जाने पर रावी के बाएँ किनारे से दाहिने किनारे आना पड़ा। यहाँ के सोफियाना (हल्के-फुल्के)
झूलों को देखकर प्रसन्नता होती थी—इतने कम खर्च में पुल के बन जाने पर कहीं पर भी उसका बनना आसान
है। मोटे लोहे के तार थे, उसके नीचे पट्टियाँ लटक रही थीं। लेकिन, बीच में पहुँचने पर जब "बाले रे चिनगिया"
होने लगता अर्थात् पैर दाहिने-बाएँ नाचने के लिए तैयार होते, तो इस पर विश्वास करना मुश्किल होता कि
हम उछलकर रावी में पहुँच नहीं जाएँगे। ऐसे समय 'जो भी हो' कहकर आगे चलना ही अच्छा होता है। आगे
की बस्ती में श्री विद्याधरजी लाला के यहाँ बात कर रहे थे। वहाँ थोड़ी देर ठहरना पड़ा। हम फिर रवाना

हुए। राख से 16 मील चलकर दुरगडी में पहुँचे। डाकबँगला यहाँ पर था, इसलिए खटमल-पिस्सू से बचने की उम्मीद थी, नहीं तो यहाँ न कोई दूकान थी, न और आराम। सरकारी घोड़े थे, दाना पास में था, और घास चौकीदार ने मुहैया कर दी। साईसों ने खाना भी बनाया। जनकलालजी को उपवास करने की जरूरत नहीं पड़ी।

भरमौर अब 11 मील रह गया। पहिले दिन हम अधिकतर पैदल ही आए, इसलिए आत्मविश्वास बढ़ गया था। 1 मई को साढ़े 5 बजे हम घोड़ेवालों को जल्दी जाने के लिए कहकर आगे बढ़े। रास्ते में एक अच्छी दूकान और टिकान देखकर ख्याल आने लगा, कल यहीं आ गए होते, तो अच्छा था। और आगे हमें रावी को पार कर उसके दाहिने तट पर आना पड़ा। रावी अब छूट रही थी। वेदों की यह परुष्णी बहुत दूर ऊपर से आ रही थी, और भरमौर की नदी यहाँ से नीचे ही रावी में आ मिली थी। भरमौर की नदी छोड़कर यहाँ पहाड़ को पार करने का यही मतलब था कि नदी ने पत्थरों से ऐसे काटा था कि जहाँ रास्ता नहीं बनाया जा सकता। लेकिन आज के डाइनामाइट के जमाने में पहाड़ बेचारे क्या कर सकते हैं ? सवाल है रुपयों का। हिमाचल सरकार ने भरमौर तक मोटर-रास्ता बनाने की सब नाप-जोख कर ली है। पुल पार करते ही चढ़ाई आई। अनेक कैंचियों को पार करती दो मील की सख्त चढ़ाई है। हम ठहर गए। देखा, घोड़े भी आ रहे हैं। सोचा, चढ़ाई-भर तो उनका इस्तेमाल कर लेना चाहिए। घोड़े आए, फिर हम उन पर चढ़कर चले। चढ़ाई पार कर लेने पर गेहर का एक छोटा-सा गाँव मिला। मटमैले पानी के कुण्ड से हम कोई लाभ नहीं उठा सकते थे। उसके एक ओर लड़कों का स्कूल था, और दूसरी तरफ एक शरणार्थी भाई ने छोटी-सी दूकान खोल रखी थी। हमने यहीं कुछ चाय-पानी किया। मालूम नहीं था कि भरमौर में चीजों के मिलने की बड़ी दिक्कत है, नहीं तो यहीं से कुछ साथ ले चले होते। घोड़े पर चढ़कर रवाना हुए। डेढ़ मील रह जाने पर भरमौर गाँव दिखलाई पड़ा। भरमौर को बरमौर भी कहते हैं, पर वस्तुतः ब्रह्मपुर का बिगड़ा हुआ रूप है। इस भूभाग का वह राजधानी रहा। राजधानी बनने के बाद आज से हजार-ग्यारह सौ वर्ष पहिले इस राज्य का नाम चम्बा पड़ा। पहिले क्या नाम था ? शायद ब्रह्मपुर ही कहा जाता होगा। इसके पूर्वी पड़ोसी कुल्लू का नाम कुलूत तो प्राचीन काल से मशहूर है। आजकल भरमौर में नापी हो रही थी। शायद बाकायदा नापी पहिली बार की जा रही थी। रास्ते में एक-दो गाँव मिले, घरों के दरवाजे अधिकतर बन्द थे। बरमौर के लोग गद्दी कहे जाते हैं और इलाका गदियान। गद्दी किसी एक जात का नाम नहीं है। इनमें ब्राह्मण-अ-ब्राह्मण सभी शामिल हैं। भेड़-बकरियाँ पालना जीविका का एक प्रधान साधन है। भरमौर के खेत उन्हें अपने काम-भर के लिए अनाज और जरूरत से ज्यादा आलू दे देते हैं। 7-8 हजार फुट की ऊँचाई पर यहाँ के गाँव हैं। जाड़ों में यहाँ चारों ओर कई फुट मोटी बरफ पड़ जाती है। उस समय लोग यहाँ रहना पसन्द नहीं करते। पशुओं के लिए चारे की तकलीफ होती है और प्राणियों को काम नहीं रहता। इसीलिए पशु-प्राणी भारी संख्या में नीचे जाते हैं। गरीब स्त्रियाँ भटियात (निम्न रावी-उपत्यका) के गृहस्थों के घरों में चावल कूटती, मेहनत-मजूरी करती हैं। पुरुष भी कुछ काम करते हैं। अधिक पशुवाले उन्हें जंगलों में ले जाकर चराते हैं।

मई महीना आने पर, भरमौर-उपत्यका का अधिकांश बरफ से मुक्त हो जाता है। उस वक्त गद्दी परिवार अपने गाँवों की तरफ लौटते हैं। स्त्रियाँ पीठ पर सामान लादे, पुरुष भी मन-डेढ़ मन का भार उठाए अपनी गाय या किसी दूसरे पशु को हाँकते ऊपर चलते हैं। हमें वह रास्ते में मिल रहे थे, लेकिन यह सबसे पहिले का काफिला था। गद्दी बहुत सर्द जगह में रहते हैं, इसलिए स्त्री-पुरुषों का सारा कपड़ा ऊनी होता है। उनकी कमर में 40-50 हाथ की काली रस्सी लिपटी रहती है। नजदीक से देखने पर उसकी कला का पता लगता है। मालूम होता है, नरम काले ऊन को जमा दिया गया है, जो देखने में मखमल-जैसा मालूम होता है। गद्दी बच्चा भी चोगा पहनते ही रस्सी बिना नहीं रह सकता। एक गद्दी मित्र ने बतलाया, शिवजी महाराज ने वरदान दिया कि जब तक कमर में यह रस्सी बँधी रहेगी, तब तक तुम्हारी भेड़ें काबू में रहेंगी। मैंने भी कहा–"हजार-हजार भेड़ों को एक चरवाहा कैसे सँभाल सकता है ?" उसने कहा–"हाँ, इसीलिए हम लोग रस्सी कमर में बाँध करके रखते हैं, नहीं तो हजार भेड़ें हजार ओर चली जाएँ और हम कहीं के न रहें।" गद्दी अपने जाड़ों की कमाई

को बरतन-भांडे या किसी और रूप में बदल लेते हैं। बीते युगों में उनके लिए काम का सुभीता अधिक रहा होगा, पर अब भटियात में खुद भुक्खड़ कमकर मौजूद हैं। लोग अपने घरों में लौटे नहीं थे, इसीलिए बहुतों में ताले लगे हुए थे। रास्ते में हमने वन-विभाग की तत्परता भी देखी। एक जगह चार-चार पाँच-पाँच हाथवाले देवदार के हजारों अमोलों का जंगल था। जैसे मनुष्यों और पशुओं के बच्चे प्यारे लगते हैं, वैसे ही ये अमोले भी लग रहे थे।

साढ़े 11 बजे हम गधेरन (गदियान) की राजधानी में पहुँच गए। यहाँ डाकबँगला, अस्पताल, डाकघर, मिडल स्कूल, पुलिस चौकी, नायब तहसीलदारी है। तहसीलदारी पुरानी कोठी में है। आफिस इतने हैं, लेकिन खाने-पीने की चीजों की लोगों को बड़ी तकलीफ है। मुमकिन है हम पहिले आए थे। मई के अन्त तक, जब सभी घरों में लोग आ जाएँगे, तो हालत बेहतर होगी। नागा बाबा ने यहाँ अपनी सेवाओं से अच्छा नाम कमाया है। लेकिन वह पिछले प्रयाग के कुम्भ में गए, तो अभी तक नहीं लौटे थे। हमारे पास सामान तो बस इतना ही था कि ओढ़ने के लिए एक-दो कम्बल थे। मौसिम का कोई ठिकाना नहीं था, इसलिए पहिले मन्दिरों के दर्शन और फोटो लेने का काम खतम कर लेना चाहते थे। भरमौर-जैसे भारत में बहुत कम स्थान हैं, जहाँ कि इतनी पुरानी धातु की मूर्तियाँ सुरक्षित हों। इससे यही पता लगता है कि रास्ते की कठिनाइयों को जानकर मूर्तिभंजक यहाँ कभी नहीं पहुँचे। बीच में हरिहर का शिखरदार विशाल मन्दिर है, जो वस्तुतः शिवजी का मन्दिर है। उसके सामने नरसिंह का मन्दिर उससे कुछ छोटा है। दोनों के बीच में शंकरजी की ओर मुँह किये पीतल का (करीब-करीब पहाड़ी साँड़ के कद के बराबर का) साँड़ खड़ा है, जिसके ऊपर गुप्ताक्षर में लेख है। अभिलेख से मालूम होता है कि मेरुवर्मा ने बनवाया था—

"ओं। प्रासादमेरुसदृशं हिमवन्तमूर्धनि कृत्वा स्वयं प्रवरकर्म्मशुमैरनेकैः
तच्चन्द्रशालरचितं नवनाभ नाम प्राग्ग्रीवकैर्विविधमण्डपनैकचित्रैः।
तस्याग्रतो वृषभपीनकपोलकायः संश्लिष्टवक्षककुन्दनोन्नतदेवयानः,
श्रीमेरुवर्म्मचतुरोदधिकीर्तिरिषा मातापितुः सततमात्मफलानुबृद्धैः।।"

मेरुवर्मा सातवीं शताब्दी में मौजूद थे। लक्षणादेवी के मन्दिर में देवी की लेखयुक्त पीतल की मूर्ति है। गणेश की पीतल की मूर्ति भी बड़ी भावपूर्ण है। पाशुपत लकुलीशों का किसी समय यहाँ गढ़ था, यह उनके शिवलिंग बतला रहे थे। तहसीलदार साहब ने हमारे भोजन का प्रबन्ध किया, जो इस जगह की बेसरो-सामानी को देखकर तकलीफ देना ही था। अगर हम ऐसा जानते, तो चम्बा या राख से अपने साथ कुछ सामान ले आते। भरमौर गाँव बहुत बड़ा नहीं है। सभी गद्दी लोग हैं, जिनमें ब्राह्मण, क्षत्री और लोहार तीनों शामिल हैं। ब्राह्मण भारद्वाज गोत्रवाले हैं। जान पड़ता है सगोत्र ब्याह इनके यहाँ पहिले से चला आया है। शुद्ध खश चेहरा-मोहरा दिखलाई पड़ता है। खशों का स्वच्छन्द जीवन भी यहाँ देखने में आता है। क्यों न हो, जबकि अब भी यह लोग मेषपाल होने के कारण अर्ध-घुमन्तू जीवन व्यतीत करते हैं। गद्दी अपने भेड़ों को लेकर बुकयालों (1200 फुट से ऊपर वाले पर्वतपृष्ठों) को ढूँढ़ते जम्मू से कुमाऊँ तक का चक्कर लगाते हैं, और आज से नहीं, बल्कि सैकड़ों वर्ष से। गर्मी-बरसात के दिनों में जब उनके घर आबाद होते हैं, तब भी घर के आधे लोग भेड़ों के साथ रहते हैं। भेड़ों के ऊन को बेचना उनकी जीविका का प्रधान साधन रहा है। जब से बकरियों का दाम बढ़ गया है, तब से उन्होंने उनकी ओर ज्यादा ध्यान दिया। डर लगता है, कहीं बकरियाँ भेड़ों को खा न जाएँ। लाखों भेड़ों को पालनेवाले यह गद्दी उनकी नस्ल सुधारने में बड़े साधक हो सकते हैं। उनकी तरफ यदि ध्यान नहीं दिया गया, तो आर्थिक लाभ और संघर्ष उन्हें मेषपाल से अजपाल बना देगा।

भरमौर-उपत्यका इस वक्त अपने सौन्दर्य को पूरा प्रकट नहीं कर रही थी, क्योंकि अभी हिमकाल का अन्त था, और वसंत नहीं आया था। जाड़ों के पहिले के बोये गेहूँ के खेत मुरझा रहे थे। लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। इस समय कुछ बरस जाना चाहिए। सौभाग्य से उसी रात वहाँ कुछ वर्षा हो गई, जिससे किसानों की जान में जान आई। हमें यहाँ जो कुछ करना था वह 1 मई को खतम हो गया। 2 मई को आसमान में बादल घिरे हुए थे, इसलिए फोटो लेने का कोई काम नहीं हो सकता था। गाँव तो कल ही घूम आए थे

और वहाँ के वृद्धों से कुछ बातें भी जमा कर ली थीं। गद्दी लोगों का विश्वास है कि शंकर हमारे हैं, और हमारी तरह वह भी गद्दी हैं। एक ओर वह हिमाच्छादित शिखर भी दिखलाई पड़ता है, जिसे मणिमहेश कहते हैं और जहाँ अपनी गदियानी के साथ शंकर बराबर रहते हैं। लोग सावन के महीने में वहाँ मेले के लिए जाते हैं। यहाँ के शंकर बकरे की बलि लेते हैं, जबकि मैदानी शंकर जबर्दस्ती घासाहारी बना दिए गए हैं। शंकर-पार्वती के बहुत-से गीत गद्दी लोगों के पास हैं। सभ्यता और शिक्षा से दूर रहने के कारण मानवतत्त्वीय अनुसन्धान के लिए उनके पास बहुत सामग्री है। नाच-गाने का उन्हें बहुत शौक है। पुराने युग की तरह कन्या-शुल्क बड़ी कड़ाई से वसूल किया जाता है। जो अपने भावी ससुर को पैसा नहीं दे सकते, वह बचपन ही से कई वर्षों के लिए ससुर के चाकर बन जाते हैं। निश्चित समय पर लड़की से ब्याह कर वह अपने घर जाते हैं।

**पुनः चम्बा**–2 मई को रविवार का दिन था। अपने कृपालु मेजबानों को अनेक धन्यवाद देते हम 5 बजे ही वहाँ से चल पड़े। गेहर में पहुँचकर शरणार्थी भाई के यहाँ साथ लाए भोजन को खाने के लिए ठहर गए। यहाँ तक घोड़े पर आए थे, उतराई में उनकी कोई जरूरत नहीं थी। हम पौन बजे चले और सवा 4 बजे राख पहुँच गए। डर था चम्बा जानेवाली बस चली न जाये और हमें रात को वहीं न रुक जाना पड़े। बस हमारे आने के बाद आई। इस भूभाग में पशुपालन जीवन-प्रधान दो जातियाँ हैं–गद्दी मेषपाल हैं, और शिवजी के अनन्य भक्त, और गूजर भैंसपाल, और सभी मुसलमान हैं। हाल में गूजर अब कुछ-कुछ बसने लगे हैं, नहीं तो गर्मी-बरसात में ऊपर के पहाड़ी चरागाहों में वह अपनी भैंसें ले जाते और जाड़ों में नीचे के जंगलों में रहते। गढ़वाल, कुल्लू सभी जगह ये फैले हुए हैं। हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में इन्हें भी कुछ नुकसान पहुँचा, लेकिन ये पाकिस्तान भागने के लिए तैयार नहीं हुए। इनके पास अच्छी भैंसें होती हैं। बहुत विशाल भैंसें शायद रख भी न सकते, क्योंकि उन्हें दुर्गम पहाड़ों में जाना पड़ता है।

6 बजे चलकर 7 बजे हम चम्बा पहुँच गए। अब की नेगी ठाकुरसेन साहब के बँगले पर ठहरे। रात को एक बँगले के दरवाजे से गुजर रहे थे, तो पहरेदार ने कहा–इधर से रास्ता बन्द है। ज्यूडिशियल कमिश्नर साहब के लिए लोग सड़क से न जाने पाएँ, यह विचित्र लोकतन्त्री राज्य है।

अब तक चम्बा के साहित्य प्रेमियों को मेरे आने का पूरी तौर से पता लग गया था, इसलिए घंटों उनकी गोष्ठी में बीते। शाम के वक्त सनातन धर्म लाइब्रेरी में बोलना पड़ा। इसकी स्थापना 1936 ई. में हुई थी। अल्पारम्भ से भी समय पाकर काम बड़ा हो जाता है, यदि कार्यकर्ताओं में लगन हो। इसका उदाहरण यह पुस्तकालय था। इसमें तीन हजार से ऊपर पुस्तकें हैं। 15वीं-16वीं सदी के कुछ हस्तलिखित ग्रंथ हैं, जिनमें 'तत्वचिन्तामणि' के 'व्युत्पत्तिवाद' से मालूम होता है कि इस पहाड़ में भी उच्च-शिक्षा का लोगों को शौक रहा। एक घर से छन्दशास्त्र पर एक तालपोथी आई। तालपोथी का मतलब है, मुस्लिम-काल के पहिले की पुस्तक। चम्बा में और भी पोथियाँ मिल सकती हैं। सुमनजी कवि हैं। लोक-कविताएँ भी करते हैं और पुरानी पुस्तकों के संग्रह करने का शौक रखते हैं। आज की चम्बियाली भाषा देखकर भ्रम हो सकता था कि वह अब खश भाषावंश से अलग है, परन्तु उर्दू अक्षरों में चम्बियाली पुस्तक के आधी शताब्दी पहिले छपी हचीसन पादरी की चम्बियाली पुस्तक को देखने से मालूम हुआ कि यहाँ पहिले, **का**, के लिए, **रा**, और **गा** के लिए **ला**, इस्तेमाल होता था। जैसा कि चम्बा से नेपाल तक अब भी होता है। पंजाबी में **का** के लिए **दा** और **गा** के लिए **गा** रहता है। वह हिन्दी की सहोदरा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। चम्बा के नीचे भटियात इलाके में भी **दा-गा** का प्रयोग है और काँगड़ा में भी।

नेगीजी किसानों में घुल-मिल जाना जानते हैं। उनको कैसे उठाया जाये, बराबर इस पर ध्यान रखते हैं। इसीलिए वह खूब जनप्रिय हैं। घूमने-घामने में उन्हें आलस नहीं है, इसलिए मुश्किल रास्तोंवाले गाँवों में पहुँच जाते हैं। उनसे मुझे अपने काम में पूरी सहायता मिली, और श्रीनिवासजी तो हर तरह से मदद देने के लिए तैयार ही थे।

**अमृतसर**–4 मई को 5 बजे ही अड्डे पर पहुँचे। बस 6 बजे रवाना हुई। साढ़े 8 बजे बनीखेत आया। यहाँ से पठानकोट की बस पकड़नी थी। वैसे दिक्कत होती, लेकिन नेगी साहब ने टेलीफोन कर दिया था,

और उसके मिलने में दिक्कत नहीं हुई। बनीखेत से पहिले बाथड़ी का अच्छा-खासा बाजार मिला था। बस में एक दुल्हन भी विदा होकर जा रही थी। बनिये की लड़की थी, हाथ-पैर बहुत सँभालकर बैठना था। लेकिन, बेचारी कै करती-करती बेसुध हो गई। बनीखेत से आगे एक जगह हमें थोड़ी देर ठहरना पड़ा। वहाँ दोनों ओर से मोटरें आकर रुकती हैं, क्योंकि एक समय एक ही ओर का रास्ता खुलता है। पौन बज रहा था, जब हम पठानकोट के स्टेशन पर पहुँचे। "मई का आन पहुँचा है महीना। बहा चोटी से एड़ी तक पसीना", इसे कहने की आवश्यकता नहीं। जैसे ही पता लगा कि अमृतसर जानेवाली जनता ट्रेन तैयार है, हम तुरन्त कूद पड़े। ट्रेन में पैर रखते-रखते गाड़ी चल पड़ी। हरेक कम्पार्टमेन्ट में दो-दो पंखे थे, जिनके कारण जान बची। रेल में कुछ तो सुधार हुआ है। रास्ते में गुरदासपुर मिला और बटाला भी। गर्मी में खाने का मन नहीं करता था। यदि इच्छा होती थी, तो ठण्डे पानी की। अमृतसर 67 मील ही था, इसलिए 4 बजे हम वहाँ पहुँच गये। रास्ते में पंजाब के गाँव दिखाई पड़े–वे गाँव जहाँ हजार वर्ष से हिन्दू-मुसलमान एक साथ रहते आये थे। पहिले भी कभी-कभी दोनों झगड़ जाते थे। लेकिन, अंग्रेजों ने उन्हें एक-दूसरे के खून का प्यासा बना दिया। मस्जिदें खड़ी थीं। कितने ही के मीनार टूट रहे थे। पंजाब भैंसों और गायों की अच्छी नस्ल के लिए प्रसिद्ध है। अब भी वहाँ सबसे अधिक दूध-घी खाया जाता है। इस वक्त गर्मी में सारी हरियाली झुलस गई थी। बड़े-बड़े वृक्षों को छोड़कर हरे पत्ते दिखाई नहीं पड़ते थे। तो भी दुपहरिया की धूप में जहाँ-तहाँ खेतों में ढोर चर रहे थे, अपना बचपन याद आ रहा था, उस समय ऐसी ही धूप में नंगे पैर मैं रानी की सराय के स्कूल में पढ़ने जाया करता था। आज क्या वैसा कर सकता था ?

अमृतसर स्टेशन पर कुछ बुरकावाली स्त्रियों को देखकर सचमुच आश्चर्य हुआ। पंजाब में अब मुसलमान को देखना सपना हो गया है। वही बात पश्चिमी पंजाब में हिन्दुओं के बारे में भी है। दो रिक्शों पर सामान रखकर हम दोनों पहिले पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी गये, क्योंकि कुत्योंवाली गली में भैया के घर का पता लगाने में मुश्किल होती। भैया दिल्ली गये हुए थे, लेकिन भाभीजी घर पर ही थीं। चिट्ठी मैं पहिले ही आने के लिए लिख चुका था। अब सारा समय पंखे के नीचे गुजारना था। सूर्यास्त के बाद छत को पानी से धोया गया। थोड़ी देर कुछ गर्मी रही, फिर हवा चली। रात बड़ी सुहावनी थी। मुझे बाहर जाने की हिम्मत नहीं थी, लेकिन उस दिन भी जनकलालजी अमृतसर का चक्कर लगा आये।

5 मई को 10 बजे कुछ बूँदा-बाँदी हुई। दिन-भर जमीन और आसमान आग उगलते रहे। आज भी हमने कहीं बाहर जाने का नाम नहीं लिया। दुपहरी तो सबसे निचली कोठरी में पंखे के सहारे बितायी। जनकलालजी शहर देखते फिरे। चाय पीने का भी मन नहीं करता था। साढ़े 10 बजे भैया भी दिल्ली से आ गए, और उनके साथ भाभीजी की बहन कमला भी। एफ. एस-सी. की परीक्षा पिछले साल दी थी। पास हो गई होती तो डाक्टर बनने का रास्ता खुल जाता। मिलने-मिलाने के लिए ही हम यहाँ आये थे, नहीं तो ठंडी जगहों के वासी का इस भट्ठी में आना कब पसन्द हो सकता था। 6 तारीख को भी किसी तरह बिताया। भैया और भाभीजी से कुछ बात करते रहे, कुछ जनकलालजी से। तहखाने में दिन-भर पंखा चलता रहा। आज जल्दी करते-करते 6 बजकर 25 मिनट पर निकल पाये। मैं रेल की ट्रेन के लिए बहुत चौकस रहता हूँ, और एक घंटा पहले चलना पसन्द करता हूँ। यहाँ रास्ते में सचमुच इतनी भीड़ लग गई थी कि रिक्शा का आगे जाना मुश्किल हो गया। रेलवे पुल पर पहुँचे तो पता लगा, दोनों कैमरे छोड़ आये। यदि जनकलालजी लेने जाते, तो फिर ट्रेन नहीं मिल सकती। सोचा, इस वक्त उनका कोई विशेष काम भी नहीं है। भाई साहब अपने साथ लेते आएँगे। हवड़ा मेल में देहरादून का डब्बा लगा था, उसी के तीसरे दर्जे में बैठ गये। अम्बाला तक सोने की छूट रही, फिर हरद्वार तक भेड़ियाधसान। अमृतसर में एक लम्बे तिलकधारी आचारी डब्बे में चढ़े, और 'श्रीमन्नारायण नारायण' का इतना जोर का घोष किया कि सारा स्टेशन गूँज उठा। मालूम होता है बूढ़े होकर साधु हुए थे, इसलिए तौर-तरीका मालूम नहीं था।

7 मई को सबेरे 7 बजे अब भी बूँदा-बाँदी हो रही थी। रात को भी कहीं-कहीं वर्षा हुई थी। हरद्वार पहुँचने पर अँधेरा हट चुका था। सवा 7 बजे हम देहरादून पहुँच गये। शुक्लजी के घर पर शुक्लाइनजी मलेरिया

में पड़ी हुई थीं। कृष्णकान्त और कमल आजकल यहीं थे। यद्यपि गर्मी यहाँ भी थी, लेकिन जिस भट्ठी से अभी-अभी हम निकलकर आये थे, उससे इसकी क्या तुलना ? 1 बजे हम खलंगा देखने गये। वही खलंगा, जहाँ नेपाली वीर बलभद्र ने अपनी वीरता द्वारा अपने शत्रु अंग्रेजों को चकित कर दिया था। शुक्लजी के घर से यह स्थाल बहुत दूर नहीं है। प्रायः सदा सूखी रहनेवाली रिस्पना के बाएँ किनारे पर कुछ ऊँची-सी जगह है, जिसे टीला नहीं कहा जा सकता। यहीं कुछ मोर्चाबन्दी-सी करके बलभद्र के नेतृत्व में नेपाली सैनिक तैयार थे। जेनरल गिलेस्पी को प्राण देना पड़ा, और अंग्रेज सेना पीछे हटाई गई। अन्त में खलंगा पर अंग्रेज अधिकार कर पाये, लेकिन लोहे के चने चबाकर। यहाँ पर उन्होंने एक स्मारक खड़ा किया, जिसमें गिलेस्पी की विरुदावली थी, और बलभद्र की भी। गिलेस्पी की विरुदावली को किसी ने गायब कर दिया है।

धोने पर यात्रा के फिल्म अधिकतर अच्छे आये। श्री सत्येन्द्र जी अपने साथ बद्रीपुर ले गये। उनके 83-84 वर्ष के बूढ़े ताऊ अब भी स्वस्थ हैं, और अपने हाथ से बाग में कुछ काम भी कर लेते हैं। दो पके पपीते दिये। बद्रीपुर अपने बासमती के लिए पहिले ही से प्रसिद्ध है। देहरादून शहर में कोई बासमती नहीं होती। सबसे अच्छा बासमती पैदा करनेवाले गाँवों में बद्रीपुर भी है। आजकल ऊख भी यहाँ की प्रधान आजीविका हो गई है। 11 वर्ष बाद हम बद्रीपुर आए थे। कुछ घर बढ़े मालूम हो रहे थे।

8 मई को पौने 10 बजे की बस पकड़ी। किंकेग में उतरकर 1 बजे हम दोनों 'हर्न-क्लिफ' पहुँच गए।

# 11
# सैलानियों का मौसिम

मई का प्रथम सप्ताह आ गया, मसूरी के लिए सैलानियों का मौसिम शुरू हो गया था। घर पर डा. वाचस्पति और श्री इन्दुप्रभा भी मौजूद थे। मेरे कनिष्ठ भाई श्रीनाथ पाण्डे भी आये हुए थे, और धूपनाथ बाबू को तो मैं छोड़ ही गया था। एक महीने की डाक से पहिले भुगतना था। उससे भुगतना मुश्किल नहीं था, लेकिन आर्थिक कठिनाइयाँ परेशानी पैदा कर रही थीं। वह तो तभी से शुरू हो गई थीं, जब से मैं मसूरी आया था। वैसे जिस तरह समय गुजर रहा था, उससे परेशानी करने की जरूरत नहीं थी। लेकिन, जब तक बैंक में छः महीने की खर्ची न हो, मन कैसे शान्त रह सकता है ? अनिश्चिन्तता सबसे ज्यादा चुभती है। श्रीनाथ 10 तारीख को गये। बहुत संकोची हैं। दिल्ली में वर्षों से रह रहे हैं, काम है वही मिठाई बनाकर बँगले-बँगले पहुँचाना। मैंने एक बार 2100 रुपये दिए भी, पर यदि ऐसे व्यवहारकुशल होते, तो इतने सालों से दिल्ली में रहकर अपना कोई स्थायी प्रबन्ध न कर लिये होते ? अब मैं उनकी मदद करने की स्थति में भी नहीं था।

यदि मई के मध्य तक दूकानदारों की, विशेषकर शौकीनी की चीजें बेचनेवालों की, बिक्री अच्छी न हो, तो यही समझना होता है, कि उनके लिए सीजन खराब है। बनारस हौसवाले इसके लिए थर्मामीटर थे। अच्छी से अच्छी साड़ियाँ और दूसरे कीमती कपड़ों के वह दूकानदार थे। कह रहे थे, चीजें बिक नहीं रही हैं। बहुत दिनों बाद तड़क-भड़क की वर्दी पहने रक्शा खींचनेवालों के साथ इन्दौर के पुराने महाराजा-महारानी को घूमते देख कितने ही लोग यह सोचकर संतोष कर रहे थे कि अब मसूरी का भाग्य जागेगा, राजा-रानी ने फिर कृपादृष्टि की है।

मसूरी में भी कभी-कभी तेज तूफान आता है, और उसके साथ वर्षा भी। 11 मई को ऐसी आँधी आई कि मालूम होता था, छत उड़ जायेगी। टिन की छतों का उड़ जाना कोई असम्भव बात नहीं है। वाचस्पति जी बड़े कर्मठ तरुण हैं। इन्दु यद्यपि बचपन की तरह दुबली-पतली नहीं हैं, किन्तु उनका स्वास्थ्य बहुत खराब रहता है। डा. वाचस्पति परमाणु गर्भफिजिक्स के पण्डित हैं। शरीर और दिमाग दोनों ही उनका चलता रहता है। ऐसे आदमी यदि अवसर पाएँ तो वह भारत का मुख उज्ज्वल कर सकते हैं। इस समय (मार्च 1956 में) वह कनाडा में अनुसन्धान करने गये हैं।

13 मई को श्री जनकलाल जी गये। उनकी वजह से हमारी हिमाचल-यात्रा बड़ी अच्छी हुई थी। उनमें जरूरत से ज्यादा भोलापन है, कुछ अव्यावहारिक भी हैं, लेकिन स्वभाव बहुत मीठा है। ऐतिहासिक और पुरातात्विक वस्तुओं के ज्ञान के साथ-साथ भारी जिज्ञासा भी रखते हैं। पश्चिमी नेपाल में वह इसके सम्बन्ध में अपनी यात्रा कर चुके हैं। वहाँ के बारे में बहुत कम अनुसन्धान हुआ है। ऐसे मित्र से बार-बार मिलने की इच्छा होती है।

हरि को आए पाँचवाँ महीना हो रहा था। स्कूल में उसका मन नहीं लगता था। रोज यहाँ से जाता। हम समझते थे, पढ़ने जा रहा है। लेकिन, वह स्कूल न जाकर और जगह अपना समय बिताकर लौट आता। शिकायत करता था : लड़के चिढ़ाते ही हैं, एक मास्टर भी नेपाली दाई कहकर व्यंग्य करते हैं, कि तुम तीन वर्ष में भी मैट्रिक पास नहीं हो सकते। यदि ऐसी बात थी, तो वह स्कूल के लिए भी बुरी बात थी। लेकिन, बात यह नहीं थी। उसका मन ही यहाँ नहीं लगता था। एक दिन चलते रास्ते प्रिंसिपल मलहोत्रा मिल गए। पूछने पर मालूम हुआ, हरि तो दो महीने से स्कूल नहीं आया। अंग्रेजी क्लास को मैं बराबर पढ़ाता हूँ, मैंने उसे नहीं देखा। 20 मई को आखिर कलई खुल गई, जबकि वह प्रिंसिपल के नाम से स्वयं चिट्ठी लिखकर ले आया। उसने अपना इतना समय खराब किया। यदि पहिले ही कहा होता, तो उसे कलिम्पोंग भेज देते। शर्मीला लड़का था, यहाँ उसका मन नहीं लगता था। जब कलई खुल गई, तो वह डर के मारे यहाँ से अन्तर्धान हो गया। कमला को तरह-तरह की चिन्ता होने लगी, लेकिन शाम को किदवाई के बँगले के नौकरों की कोठरी से आ गया। पीछे पता लगा, उनका स्कूल इसी कोठरी में कई महीनों से लग रहा था।

जया 20 मई को नौ महीने की हो गई थी। चलने में दोनों हाथों को इस्तेमाल कर रही थी, कुछ शब्दानुकरण भी करती थी। हम समझते थे कि दाँतों के निकलने में कठिनाई होगी, लेकिन देखा वह अपने-आप निकल आए हैं। स्वास्थ्य भी अब उसका ठीक था।

खर्च की दिक्कत से अब हाथ संकोच करने की आवश्यकता थी। सबसे अफसोस की बात हुई कि हरि और धूपनाथजी के साथ मंगल भी यहाँ से चले गए। हमने यहाँ और देहरादून में कोशिश की कि टाइप करने का काम मिल जाए। टाइप में वह बहुत दक्ष थे, और गति भी तेज थी। हमारी बहुत-सी पुस्तकों को डिक्टेशन पर उन्होंने टाइप किया था। ढाई-तीन घंटे में एक फार्म टाइप कर सकते थे। लेकिन, सभी जगह मैट्रिक पास की आवश्यकता थी। भला हिन्दी टाइपिस्ट के लिए इस योग्यता की क्या आवश्यकता ? जिस योग्यता की आवश्यकता है, उसे अपने सामने देखा जा सकता है। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा दी थी, जिसका परिणाम पीछे निकला। सभी विषयों में पास हो गए थे, सिर्फ गणित में नौ अंकों की कमी थी, फेल हो गए। परीक्षा लोगों की जिन्दगी खराब करने के लिए है, आगे बढ़ाने का साधन नहीं है, यह इससे साफ है।

सैलानियों के मौसिम में कितने ही पुराने मित्रों से मुलाकात होती है, और कितने ही नए मित्र बनते हैं। श्री रुद्रनारायण शुक्ल 23 मई को आए। वह अंग्रेज प्रकाशक मेकमिलन कम्पनी के उत्तर प्रदेश के कारबार के एजेंट हैं। यह तो मुझे मालूम था कि सर्वरियों की तरह कनौजियों में भी सांकृत्य गोत्रवाले हैं। यह भी मालूम था कि कनौजिया परम्परा के अनुसार वह सर्वरियों से ही आए हैं। लेकिन, सर्वरिया सांकृत्य पांडे होते हैं, और कनौजिए शुक्ल। खैर, सगोत्र बंधुत्व तो हमारा था ही। उसी दिन मंडलेश्वर स्वामी सर्वदानन्दजी भी आए और महात्माओं के साथ आए। उनके साथ साधुओं के भविष्य और संस्कृत के संवर्धन के बारे में बातें होती रहीं। मैंने अपने विचारों को रखते हुए कहा, साधुओं की संख्या कम होगी, यह तो निश्चय है, पर उनका उच्छेद नहीं हो सकता। संस्कृत का भाग्य भी अब उनके भाग्य से बँधा हुआ है। आजीवन संस्कृत के विद्यार्थी रहनेवाले अब उन्हीं में से मिलेंगे।

अगले दिन स्वामी सत्यस्वरूपजी आए। 'तत्वचिन्तामणि' की नैया कहाँ तक गई, इसकी जिज्ञासा होनी ही थी। इसमें लगे हुए थे, और अब उतने निराश नहीं मालूम होते थे। उसी दिन बेनीपुरी भी आँधी-पानी की तरह आए। मसूरी में चार घंटों के लिए आए थे, जिसमें एक घंटा यहाँ भी दिया। यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'बेनीपुरी ग्रन्थमाला' का स्वागत हुआ है। साहित्यिक यदि अपनी आयु के अन्तिम दिनों में आर्थिक तौर से निश्चिन्त हो, तो हमारे देश के लिए यह एक बड़ी बात है। बेनीपुरी अब साढ़ेसाती सनीचर के फेर से बाहर आ चुके थे। आगे के संकल्पों के बारे में बतला रहे थे। गाँव में महल बनवा लिया है, यह मुझे अच्छा नहीं लगा, क्योंकि गाँव में पक्का मकान जरूरत पड़ने पर एक पैसा भी नहीं देता। यह निश्चित ही है कि बेनीपुर से जितना स्नेह रामवृक्ष को है, उतना उनके लड़के को नहीं होगा। पोता तो शायद मुश्किल ही से कभी वहाँ झाँकने जाएगा। निजी तौर से प्रयत्न करके कोई गाँवों को संस्कृति और शिक्षा का केन्द्र नहीं

बना सकता। वह तो देश के उद्योगीकरण और कृषि के यंत्रीकरण पर निर्भर है, जो भारत के लिए अभी दूर की बात मालूम होती है।

मौसम के समय मध्य-वित्त सैलानी मसूरी में काफी इकट्ठा होते हैं, इसलिए सभा-सम्मेलन भी हो जाया करता है। अब की श्री मानवेन्द्र राय के अनुयायियों–रेडिकल ह्यूमनिस्टों–का ग्रीष्म विद्यालय चला, जो यहाँ से नजदीक ही देवदार कोठी में था। वहाँ आए कुछ साथी हमारे पास भी आए। सबसे बड़ा सम्मेलन 5-7 जून को देहरादून में हुआ। केन्द्रीय साहित्य-सम्मेलन की गाड़ी तो स्वार्थों की टक्कर के कारण दलदल में पड़ी हुई थी। प्रान्तीय सम्मेलन को जगाए रखना इस वक्त आवश्यक समझा गया था। उद्घाटन-भाषण के लिए मंत्री डा. उदयनारायण तिवारी ने हमें लिखा। उधर स्वागतकारिणी ने डा. काटजू से उद्घाटन कराना चाहा। स्वागतकारिणी को स्वागत के लिए पैसों की जरूरत थी, जिसमें डा. काटजू के आने में सुभीता था। थैलीशाह ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे के लिए अपनी थैली थोड़े ही खोल सकता है। मुझे यदि पता लग गया होता, तो उद्घाटन करने के फंदे से बच जाता। मुझे उसकी कोई इच्छा नहीं थी। पर, जान पड़ा दोनों ही उद्घाटक वहाँ पहुँचेंगे। ऐन मौके पर डा. काटजू नहीं आए, और मुझे वह काम करना पड़ा। उनके लिए जो अभिनन्दन-पत्र तैयार किया गया था, उस पर चिप्पी लगाकर मुझे दे दिया गया। सरकार की हिन्दी-सम्बन्धी बेरुखी की मैं कड़ी आलोचना करता, इसलिए हमारे हिन्दी-प्रेमी मित्र चाहते थे कि मैं ही उद्घाटन करूँ।

पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल) में मुस्लिम लीग की घोर पराजय हुई थी। हक़ ने मंत्रिमण्डल बनाया, लेकिन वहाँ तो गवर्नर-जनरल की तानाशाही थी। जब नीचे से सहायता नहीं मिली, तो ऊपर से हुकुम निकला, और मंत्रिमण्डल को तोड़ दिया गया। लेकिन, बंगाली मुसलमानों को–जो कि पाकिस्तान में भी बहुमत रखते हैं–डंडे के जोर पर थोड़े ही दबाया जा सकता है ? अपने थूक को फिर पाकिस्तान सरकार को चाटना पड़ा, लेकिन काफी बाद, जबकि नवाबजादा मुहम्मद अली को प्रधानमंत्री-पद से हटाया गया। पाकिस्तान के संविधान में हक़ का सहयोग मुस्लिम लीग के लिए नहीं, बल्कि उनके लिए महँगा पड़ा। लेकिन, इसका दोष हक़ को ही नहीं दिया जा सकता। उनके प्रतिद्वन्द्वी सुहरावर्दी ने पहिले मुस्लिम-लीग से सहयोग करना शुरू किया, जिसमें हक़ और उनका दल जंगल में भटकता फिरे। बुड्ढे ने भी ऐसी धोबिया पाट मारा कि सुहरावर्दी न तीन के रहे न तेरह के। इसका फल मुस्लिम लीग, विशेषकर पश्चिमी पाकिस्तान के प्रभुओं को बहुत अच्छा हुआ। हक़ का दल अपने निर्वाचन में जिन बातों का वादा कर चुका था उससे मुकर गया। पाकिस्तान के संविधान में न संयुक्त निर्वाचन को माना गया, और न गणराज्य के साथ इस्लामिक विशेषण को ही हटाया गया। अपने भविष्य को अनिश्चित तथा वहाँ की कठिनाइयों को अधिक देखकर भारी संख्या में पूर्वी बंगाल से हिन्दू भारत चले आ रहे हैं। यदि सारे हिन्दू वहाँ से निकल आएँ, तो फिर पूर्वी पाकिस्तान का बहुमत नहीं रह जाएगा।

31 मई को घूमते समय रास्ते में सर सीताराम मिले। हर साल ही उनके दर्शन होते हैं। इस साल पिछले सालों के बहुत कम परिचित चेहरे दिखाई पड़ रहे थे। उनका अभाव खटकता था। नगरपालिकावाले बतला रहे थे कि इस साल लोग बहुत आए हैं। पर दूकानदार शिकायत कर रहे थे कि बिक्री नहीं होती।

2 जून को चिनी (कनौर) के हेडमास्टर श्री सेमुवालजी आए। कनौर हिमालय के उन कोनों में है, जिसके साथ मेरा विशेष स्नेह है। मिडल स्कूल अब हाईस्कूल हो गया, यह सुनकर प्रसन्नता हुई। सेमुवालजी जैसा कर्मठ और योग्य तरुण वहाँ गया, यह जानकर भी खुशी हुई, पर वह वहाँ से अपनी बदली करवाना चाहते थे। गढ़वाल के होने से पहाड़ उनके लिए अरुचिकर नहीं हो सकता था, पर कह रहे थे कि खाने-पीने की चीजों की बड़ी दिक्कत रहती है। यदि डाक की व्यवस्था होती, तो कलकत्ता-बम्बई से चीनी का जितना महसूल है उतना ही रामपुर से लगता है, इस प्रकार डाक के द्वारा खाने की भी बहुत-सी चीजें मँगाई जा सकतीं। लेकिन, जान पड़ता है, उसकी भी अव्यवस्था थी। अबके साल प्रेमनाथ और वीणाराय दो सिनेमा तारक मसूरी को सौभाग्यशाली बनाने आए। जिधर निकलते, उधर लोगों की आँखें बिछ जातीं। मैं एक दिन जा रहा था, किसी ने उनके बारे में बतलाया। साल में एकाध ही बार मैं कभी कोई फिल्म देखता हूँ, इसलिए सिनेमा जगत के नक्षत्रों से परिचित न होना मेरे लिए स्वाभाविक था।

**देहरादून**–5 जून को सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए देहरादून गया। देखा, बहुत-से सैलानी नीचे भागे जा रहे हैं। कल रात वर्षा जो हो गई थी। उन्होंने समझा, अब अपने यहाँ भी वर्षा हो गई होगी, इसलिए गर्मी का डर नहीं है। वर्षा यद्यपि धोखे की थी, और अब के साल असली वर्षा प्रायः सारे जून-भर नहीं हुई, और 4 जुलाई को ही उसका मौसिम आरम्भ हुआ। पर इस वक्त तो लोगों को भड़काकर इन छीटों ने मसूरी को बरबाद कर दिया।

शुक्लजी के यहाँ मध्याह्न भोजन के समय पहुँच गए। 5 बजे सम्मेलन के समय वहाँ गए। अब भी धूप थी, और बाग के वृक्षों की छाया काफी नहीं थी तो भी रात की वर्षा से तापमान कुछ नीचे जरूर रहा। सम्मेलन का उद्घाटन-भाषण मैंने किया। सभापति हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा थे। उनका भाषण हुआ, टंडनजी भी बोले। लोगों की उपस्थिति काफी थी, यद्यपि शहर की जनसंख्या के अनुरूप नहीं थी। ऐसा होने का कारण भी है–शिक्षित मध्यवित्त लोगों में काफी संख्या शरणार्थियों की है, जो हिन्दी से परिचित नहीं हैं। उनकी अगली पीढ़ी हिन्दी पढ़ रही है, लेकिन उसको समाज में स्थान पाने में अभी दस-पन्द्रह साल की देर होगी। शिक्षित होने पर भी सांस्कृतिक तल ऊँचा नहीं है, इसलिए वह उत्साह से ऐसे समारोहों में भाग नहीं ले सकते। उद्घाटन न भी करना होता, तो भी मैं यहाँ आता जरूर, क्योंकि यहाँ सारे प्रान्त से आए हुए कितने ही साहित्यकारों से मुलाकात होती। डा. उदयनारायण, वाचस्पति पाठक, शान्तिप्रिय द्विवेदी, गुरुभक्तसिंह 'भक्त', कमलेश, श्री कमलादेवी चौधरी आदि-आदि के दर्शन हुए। सम्मेलनवालों ने कला और साहित्य-प्रदर्शनी का भी आयोजन किया था। कोशिश की थी कि देहरादून जिले के सभी साहित्यकारों की अधिक से अधिक कृतियाँ उसमें रखी जाएँ। मेरी भी उपलब्ध पुस्तकें वहाँ मौजूद थीं। देहरादून के चित्रकार श्री सक्सेना ने चित्रों की प्रदर्शनी का बहुत अच्छा प्रवन्ध किया था।

6 जून को टाउन हॉल में श्री विश्वम्भरनाथ प्रेमी की अध्यक्षता में कौरवी भाषा सम्मेलन हुआ। हिन्दी की मूल बोली के इस नाम का प्रचार मैंने किया था। कोई आविष्कार करने के ख्याल से नहीं, बल्कि मूल भाषा को कोई एक नाम देना जरूरी था। मैंने भी उसके लिए कई प्रयोग किये। कभी 'आदि हिन्दी' कहा, कभी 'मेरठी' और कभी कुछ। अन्त में उसका सबसे उपयुक्त नाम 'कौरवी' ही मालूम हुआ, क्योंकि यह भाषा कुरु और कुरुजांगल (हरियाना) में बोली जाती है। हमारे सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास में कुरु का स्थान बहुत ऊँचा है। मैं पिछले पच्चीस वर्षों से बहुत व्यग्र था कि कौरवी लोक-साहित्य का बड़ा संग्रह किया जाए। कितने ही सालों तक यह अरण्य-रोदन रहा, लेकिन अब तरुण कुरुपुत्र उधर काफी ध्यान दे रहे हैं, यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

7 जून को साहित्य-गोष्ठी हुई। साहित्य-गोष्ठी की तरफ सम्मेलनों में अधिक ध्यान देने की जरूरत है। वृहत् अधिवेशन द्वारा जनसाधारण के पास तक हिन्दी का सन्देश जरूर पहुँचता है, और यह उपेक्षा की चीज नहीं है। सम्मेलन द्वारा सरकार को भी बतलाया जा सकता है कि तुम अधिक दिनों तक हिन्दी की उपेक्षा नहीं कर सकते। लेकिन, हिन्दी साहित्य निर्माता तो साहित्यकार हैं, वही उसके माथे को ऊँचा कर सकते हैं। जब किसी सम्मेलन के कारण उन्हें इकट्ठा होने का मौका मिलता है, तो उनके समागम से वह परस्पर बहुत लाभ उठा सकते हैं। गोष्ठी में डा. देवराज, शान्तिप्रियजी और कमलेशजी भी बोले। कुछ तरुणों ने अपनी कहानी, कविता और एकांकी सुनाए। मध्याह्न का भोजन कांग्रेस नेता श्री लक्ष्मणदेव के यहाँ हुआ, जिसमें टंडनजी, तिवारीजी और मैं भी शामिल हुए। इसके पहिले दिन का मध्याह्न भोजन स्वागतकारिणी ने बड़े भव्य रूप में किया था। देहरादून की महिलाओं ने सारा काम अपने हाथ में लिया था। जान पड़ता है, दूसरों की अपेक्षा कुरु-पुत्रियाँ ज्यादा दक्ष हैं। वहीं देहरादून के बड़े भूमिपति सेठ रामकिशोर की पत्नी भी उस लड़की के साथ आई थीं, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने अपने पूर्वजन्म की माता को पहचान लिया था, और सेठजी के घर पर जाकर बहुत-सी चीजों को भी बतलाया था। जिस पुत्री का अवतार उसे माना जाने लगा था, उसको मैंने भी 1943 में देखा था। हिन्दू युनिवर्सिटी में शायद एम. ए. में पढ़ रही थी। क्या-क्या आकांक्षाएँ और उमंगें उसकी थीं। देहरादून को उसके रूप में महिलाओं की अच्छ सेविका मिलती, पर बेचारी तरुणाई में ही

मर गई। उसका दुःख माता-पिता को होना ही चाहिए था। फिर यदि अवतार की कहानी मिल जाए, तो यह डूबते को तिनके का सहारा क्यों न हो ? भारतवर्ष में ऐसे प्रत्यक्ष पुनर्जन्म की कथाएँ अखबारों में बहुत निकलती रहती हैं। इनमें कितनों ही में तो केवल धोखा-धड़ी होती है, और यदि किसी में कुछ सत्यता का लेश है, तो यही कहा जा सकता है कि विचारों का दानादान कभी-कभी बिना भाषा के भी हो जाता है। बड़ों के विचार छोटी आयु के बच्चों के मन में चले जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं।

7 जून ही को डा. तिवारी, श्री वाचस्पति पाठक, श्री देवनारायण द्विवेदी तथा बन्धुद्वय श्री जयगोपाल-शिवगोपाल मिश्र भी मसूरी आए। दो दिनों के लिए 'हर्न-क्लिफ' ने अपने लिए अहोभाग्य समझा। हमने भी शिष्टागमन अनध्याय रखा, और मसूरी दिखलाने में समय बिताया। वाचस्पतिजी पाठक बड़े विनोदी जीव हैं। न जाने कितने चुटकुले उन्हें याद हैं। कलम कमजोर नहीं है, लेकिन दूसरे कामों के कारण अब उन्होंने उसे विश्राम दे रखा है। एक कला-प्रेमी की बात कह रहे थे। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास कुछ पुराने सुन्दर चित्र थे। जब उन्हें पता लगा, तो वह देखने के लिए आठ अपने साथ ले गए। देखकर बड़े विश्वास के साथ चतुर्वेदीजी के पास लौटाने गए। गिनती तो पूरी थी, लेकिन चतुर्वेदीजी ने देखा कि एक बदल लिया गया है। कला-प्रेमी ने भूल स्वीकार की और लौटा देने के लिए वहाँ से जो निकले, तो प्रयाग में भी किसी स्टेशन पर नहीं बैठे, गंगा-पार झूसी में जा गाड़ी पकड़ी।

मित्र-समागम का यह आनन्द 8 जून ही तक रहा। 9 जून को सब लोग चले गए। हमारे देहरादून में अनुपस्थित रहने के समय शास्त्री वैद्य वाचस्पति श्री ईश्वरदत्त वर्मा आए थे। पंजाब के हैं, लेकिन उनकी इच्छा सबसे पिछड़े पहाड़ी लोगों की सेवा करने की थी, इसलिए अपनी पत्नी के साथ जौनसार चले गए। वैद्य भी हैं, और कहानी-लेखक भी। वहाँ दूकान ओर बाजार से दूर एक गाँव में उनकी नियुक्ति हुई। एक-दो वर्ष तक उनके आदर्शवाद ने सहायता दी। लोगों में घुल-मिल गए। लेकिन, सुशिक्षित सुसंस्कृत आदमी कितने दिनों तक वनवास-सेवन कर सकता है, फिर उन्होंने अपनी बदली मैदान में करवा ली।

मौसिम के समय डा. सत्यकेतु के यहाँ भी सम्बन्धी और मेहमान आते रहते हैं। अबकी वहाँ उनकी कनखल वाली बहन अपने लड़के और लड़की के साथ आई। वह साठ पीढ़ी की अग्रवालिन घासाहारी, और यहाँ भाई का घर-भर मांस में आनन्द लेनेवाला। उनके आगमन के कारण घर में गोश्त बनाना मुश्किल था। बुआ की यह हालत और भांजी उषा हड्डी चिचोड़ रही थी। अगली पीढ़ियाँ कैसे पुरानी पीढ़ी के आचार-विचार पर पुचारा फेरती हैं, यह उसका उदाहरण था। ऐसी बहिन के सामने घर में गोश्त कैसे बनता, लेकिन तरुण कम्युनिस्ट बरेली के श्रीवास्तवजी ठहरे हुए थे, उन्होंने आज विशेष तौर से मांसपाक का कौशल दिखलाया था। श्री शान्तिप्रसाद, वेदकुमारी, सत्यकेतु-परिवार और हम भी श्रीवास्तवजी के भोज में शामिल हुए। वेदकुमारी गणित की एम. ए. हैं, बीकानेर में लड़कियों के स्कूल में पढ़ाती हैं। उनको लोक-गीतों का भी शौक है। उन्होंने पंजाबी और राजस्थानी के कुछ लोक-गीत सुनाए। गला अच्छा और गाने के ढंग में भी स्वाभाविकता थी।

नवें महीने में पहुँचकर अब जया ने ताली बजाना भी शुरू कर दिया। "छाम नानी छाम-छाम" कहने पर मजे से ताली बजाती, खाँसने का भी अनुकरण करने लगी। खाते वक्त बहुत दिनों तक उसकी आदत रही कि दाहिने कान पर हाथ रखकर खाए। बिस्कुट कहाँ रहता है, यह भी जानती थी। मनुष्य का बच्चा दुनिया में आकर किस तरह धीरे-धीरे अपने भीतर की शक्तियों का प्रयोग करने लगता है, इसे बच्चों को देखने से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

13 जून को अतवार का दिन था। आज कई मेहमान आए। आन्ध्र के चित्रकार तरुण कुमारिल स्वामी अपने कई मित्रों के साथ आए। हमारे पड़ोसी डा. राम भी परिवार-सहित उपस्थित हुए। उनका छोटा लड़का बिज्जू पिछले साल बहुत अस्वस्थ था, अब अच्छा हो गया था। मध्याह्न-भोजन के पहिले ही भैयाजी और भाभीजी आ गए। सुखरामा भाभीजी को हीरा नौकर मिला था, जो उनकी लात-मार सबको चुपचाप बर्दाश्त करने के लिए तैयार था, और मशीन की तरह काम करता था। अब कल से उसको सरोकार नहीं था, जो गुसैल मालकिन के लिए अच्छा ही था। बड़े तड़के उठकर रात के 12 बजे तक वह काम में लगा ही रहता। जिस काम का

अभ्यस्त था, उसे अपने मन से करता, नये काम को बतलाना पड़ता। उस दिन सुखरामा ने बड़ी मदद की, नहीं तो एक नौकर के मान की बात नहीं थी। मसूरी में खूब चहल-पहल है, इसे देखने का तो हमें कम ही मौका मिलता था, लेकिन जब उसके छोर पर अवस्थित हमारे घर में भी मेहमान आ जाते, तो हमें मालूम होता कि मसूरी इस वक्त फूली नहीं समा रही है। आज इटावा के जिला कांग्रेस के भूतपूर्व सभापति ठाकुर साहेब भी आए। जमुना के किनारे औरैया के पास कुछ ही पीढ़ी पहिले इनका एक राज्य था। सन् 57 में अंग्रेजों के खिलाफ तलवार उठाई और राज्य छिन गया। इन्हीं के वंश में जगम्मनपुर आदि के पाँच राजा हुए। राजधानी पहिले चम्बल और जमुना के संगम पर अवस्थित थी। उनके लड़के यहीं यूरोपियन स्कूल में पढ़ते हैं, इसलिए पत्नी बराबर यहीं रहती हैं, और जाड़ा-बरसात में ठाकुर साहब भी आ जाते हैं।

15 जून को आगरा से डा. गुप्ता का तार आया, जिससे मालूम हुआ, कमला बी. ए. की परीक्षा में पास हो गई। धीरे-धीरे वह अब अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच रही हैं। इसका अफसोस तो जरूर था कि पूरा विषय नहीं लिया, पर अब एम. ए. का रास्ता खुला हुआ था।

मसूरी का यह सीजन परिवारों और सम्बन्धियों के मिलन का भी है आनेवालों को इसका भी आकर्षण होता है। लेकिन, खर्चीला जीवन तो है ही, इसलिए वही यहाँ आ सकते हैं, जिनके पास पैसा है। एक मारवाड़ी ओसवाल सेठ बतला रहे थे कि नई पीढ़ी में शिक्षा तो बढ़ी है, लेकिन वह विलासी होती जा रही है। नई पीढ़ी से इस तरह की शिकायत बजा है। लेकिन, नई पीढ़ी को अब परलोक के सुख पर भरोसा नहीं है, इसलिए स्वर्ग के प्रलोभनों के ऊपर वह इस जीवन के भोग को कैसे छोड़ सकती है ?

18 जून को कुमाऊँ के श्री चन्द्रशेखर शास्त्री आए। वैसे बनारस में साइन्स पढ़ाते हैं, लेकिन इधर कई सालों से नेपाल और तिब्बत पर एक ऐतिहासिक उपन्यास लिख रहे थे, जिसके बारे में श्री बालकृष्ण शर्मा ने मुझे बतलाया था। नेपाल के राजा अंशुवर्मा की कन्या 'भृकुटि' तिब्बत के प्रतापी सम्राट् स्रोंगचन गम्बो को ब्याही गई थी। इस ब्याह ने तिब्बत और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध को स्थापित करने में बड़ा काम किया था। 'भृकुटि' उनके उपन्यास की नायिका थी। उन्होंने उपन्यास के कई स्थलों को सुनाया। वैसे उपन्यास का यों भी कठिन रास्ता है, पर ऐतिहासिक उपन्यास में तो बड़े धैर्य और अनुसन्धान की आवश्यकता है। वर्तमान समाज हमारे सामने है, उसके अंग-प्रत्यंग को हम जानते हैं, इसलिए आजकल के सम्बन्ध में उपन्यास लिखने में हमें बहुत सुभीते प्राप्त हैं। बीते समाज का उल्लेख हमें बहुत कम मिलता है, उसकी उपयुक्त सामग्री भी दुर्लभ होती है। इन सबको कन-कन करके जमा करना होता है। बड़ी सावधानी से कलम उठानी पड़ती है, कि कहीं कोई ऐसी बात न लिख जाएँ, जो उस समय के देश-काल-पात्र के प्रतिकूल हो।

19 जून को श्री जगदीशचन्द्र माथुर अपनी पत्नी के साथ आए। माथुरजी हिन्दी के नाटककारों में अपना विशेष स्थान रखते हैं, साथ ही हिन्दी-साहित्य और लोक-कला से उनका असाधारण प्रेम है। बिहार के शिक्षा-सचिव रहकर उन्होंने लोक-रंगमंच के लिए बहुत काम किया, और हिन्दी सृजन के लिए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् जैसी एक साधन-सम्पन्न संस्था खड़ी कर दी। भोजपुरी के जननाटककार भिखारी को हमारे साहित्यकार गँवार समझकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। मैं पहिले ही से भिखारी ठाकुर का लोहा मानता था। माथुर साहब से यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि उन्होंने भिखारी के सभी नाटकों को जमा कर लिया है, और नाटककार ने अपनी पद्यबद्ध जीवनी भी लिखकर दे दी है। जन्मभूमि खुरजा के नजदीक होने से उनके लिए दिल्ली अनुकूल थी, पर बिहार वाले उन्हें छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। पर अन्त में दिल्ली ने उन्हें खींच ही लिया, और वह वहाँ रेडियो के महासंचालक होकर आ गए। रेडियो को भारी लाभ हुआ, लेकिन बिहार को भारी घाटा।

20 जून को हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार श्री विष्णु प्रभाकर कुमारिल स्वामी के साथ आए। मैंने विष्णुजी से शिकायत की–आप कुरुपुत्र होकर कौरवी भाषा से अपनी कहानियों में क्यों नहीं सहायता लेते ? उपन्यास और कहानी ऐसे माध्यम हैं, जिनके जरिये हम हिन्दी की मूल-भाषा कौरवी से पाठकों का परिचय करा सकते हैं। प्रेमचन्दजी ने सैकड़ों भोजपुरी शब्दों को बड़े सुन्दर ढंग से अपनी कथाओं में डाल दिया है। विष्णु प्रभाकरजी जैसे कथाकार अपने क्षेत्र के जीवन को चित्रित करते वक्त बड़ी आसानी से कौरवी मुहावरों और शब्दों को

ला सकते हैं। इससे हिन्दी का अपने मूलस्रोत से जीवित सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा, जो उसके लिए बहुत कल्याणकारी होगा।

श्रीनगर गढ़वाल से 21 को डा. उदयनारायण तिवारी की चिट्ठी आई। मसूरी आने पर, मालूम होता है, हिमालय ने उनके दिल में आकर्षण पैदा किया। पत्नी से कहा होगा। उन्होंने उलाहना दिया। मैंने भी बतला दिया था कि केदार-बदरी जाना अब बहुत आसान है, बहत दूर तक तो मोटर चली गई है। दोनों उसी यात्रा पर निकले थे।

23 जून को श्री मुकुन्दीलालजी बैरिस्टर भी आए। दो घंटे तक पिछली मुलाकात से बीच के समय और दूसरे विषयों पर बातचीत होती रही। यह खुशी की बात थी, कि ऐसे विद्याव्यसनी पुरुष से साल में दो-तीन बार मुलाकात हो जाती।

अगले दिन एक अमेरिकन मिश्नरी के साथ एक तरुण आए। मिश्नरी जौनपुर इलाके में धर्म प्रचार करते थे। छः साल से भारत में थे। हिन्दी बोल लेते थे। पहिले अल्मोड़ा जिले के जोहार इलाके में रहते थे। तिब्बत की सीमा के पास रहना अमेरिकन मिश्नरियों की रहस्यपूर्ण बात नहीं है। अमेरिका से किसी उदार विचारों के व्यक्ति को भारत में आकर काम करने की कभी इजाजत नहीं मिल सकती। वहाँ से ऐसे ही आदमी भेजे जाते हैं, जो अमेरिकन थैलीशाही के समर्थक हों। भारत ने तिब्बती सीमा के 50 मील तक विदेशी मिश्नरियों के जाने से रोक दिया। विदेशी मिश्नरी प्रायः सभी अमेरिकन हैं, इसे कहने की जरूरत नहीं। वह उलाहना दे रहे थे कि जोहार में हमें रहने नहीं दिया गया।

हमारे रसोई घर में पहिले सात-आठ खानोंवाला एक ऊँचा चूल्हा बना हुआ था। न जाने बनानेवाले ने कैसे बनाया, कि धूएँ की चिमनी रहते हुए भी घर से धूआँ नहीं निकलता था। हमने एक अधिक बार तोड़कर धूआँ निकलने के रास्तेवाले चूल्हे को बनाया, लेकिन सफल नहीं हुए। 60 रुपये लगाकर इस साल भी बनवाया, पर धूआँ जैसा का तैसा रहा।

आर्थिक चिन्ता के दूर होने का एक ही रास्ता था कि आप निश्चिंत हों। एक प्रकाशक से बातचीत हुई। वह अग्रिम देने के लिए तैयार हुए, और कुछ दिया भी। और जान पड़ा, कि अब बात ठीक हो जाएगी, लेकिन अन्त में सब टाँय-आँय फिस हो गई। और भी प्रकाशकों से इसी तरह हुआ। हिन्दी साहित्यकारों की कठिनाइयों को मैं भली प्रकार जान सकता था। मेरी पुस्तकों का अच्छा स्वागत होता है, तब भी जब यह हालत है, तो नये साहित्यकारों के बारे में क्या कहना ? तीन पुस्तकों को अपने यहाँ से हम प्रकाशित कर चुके थे। छपवाने के साथ ही दो-दो ढाई-ढाई हजार एक-एक पुस्तक के देने पड़े। लेकिन, बिक्री का कोई प्रबन्ध नहीं कर सके। एक सज्जन को एजेन्ट होने के लिए 50-60 रुपया हमने दिया। सबसे बुरी बात यह हुई कि डा. सत्यकेतु से भी पचासेक रुपये दिलवा दिये। हमारे विश्वास पर उन्होंने दिया था, और उक्त सज्जन खा-पीकर बैठ गए।

आजकल भारत में चीन के प्रधानमन्त्री चाउ-एन-लाइ आये हुए थे। भारतीय जनता हर जगह दिल खोलकर उनका स्वागत कर रही थी। चीन के सम्बन्ध में भारतीय सरकार भी अपने सद्भाव को दिखलाने के लिए किसी से पीछे नहीं रही। वह जहाँ गए, लोगों ने उन्हें सिर-आँखों पर बैठाया। भारत और चीन का दो हजार वर्ष का सम्बन्ध दोनों देशों के लिए अविस्मरणीय है, इसलिए चीन के महामन्त्री का ऐसा स्वागत होना ही चाहिए। 29 जून को वह भारत की यात्रा समाप्त करके बर्मा के लिए रवाना हो गए।

एसिया के बहुत बड़े भाग में सुख और समृद्धि, ज्ञान-विज्ञान की किरणें फैल रही हैं। उधर दुनिया का राहू अमेरिका अपनी चालों से बाज आने के लिए तैयार नहीं। गतामाला में जरा-सी उदार सरकार आ गई, जो अमेरिकन डंडे को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थी। फिर क्या था, डालरों की वर्षा करके सरकार के खिलाफ अपने पिट्ठू भेजे, हथियार दिये। इन सारे काम को अमेरिका निर्लज्जतापूर्वक करने का गर्व कर रहा था। आखिरकार अमेरिकन पिट्ठुओं ने वहाँ सरकार की बागडोर सँभाली। अगले साल यही बात अर्जन्तीना में अमेरिका ने की और सबसे जबर्दस्त प्रतिगामी थैलीशाही-पोषक लोगों को शासन की बागडोर सँभालने में

मदद की। जितने दिनों तक अमेरिकन थैलीशाही दुनिया में उत्पात मचाती रहेगी, मानवता का अभिशाप बनी रहेगी।

2 जुलाई को लखनऊ के चित्रकार श्री रामचन्द्र साथी कुमारिलजी के साथ आए। साथी उदीयमान चित्रकार हैं। उस्तादी के नाम पर जिस तरह मैं संगीत की दुर्गति को बर्दाश्त नहीं कर सकता, वैसे ही नाना पाखण्डों के नाम पर प्रकृति से कोई सम्बन्ध न रखनेवाली, उससे बिल्कुल उलटी चित्रकला को भी पसन्द नहीं करता, और अपने इन विचारों को प्रकट करने से बाज नहीं आता। नये-पुराने कई ऐसे उस्ताद हमारे देश में हैं, और जब से विदेशों में ऐसों को लम्बी नाकवालों ने सिर पर उठाना शुरू किया, तब से हमारे यहाँ वालों की भी हिम्मत बढ़ गई। साथी के चित्रों को देखकर यह प्रसन्नता हुई कि उनके पैर ठोस पृथिवी पर हैं। ठोस पृथिवी पर पैर रखे भी आदमी कल्पना की उड़ान में सातवें आसमान पर पहुँच सकता है, यह हमें अजन्ता की चित्रकला से मालूम है। साथी के कुछ कल्पनामय चित्र इसी तरह के थे।

3 जुलाई को किताब महल की रायल्टी का हिसाब आया। मालूम हुआ, पिछले साल 1700 रुपये की आमदनी हुई, अर्थात् उसके बल पर हम मासिक डेढ़ सौ रुपया भी खर्च नहीं कर सकते। कभी-कभी सोचता था, समय ऐसा भी देखा, जबकि पचास रुपये में भी मेरा काम चल जाता, पर उस समय मैं घुमक्कड़ था, निर्द्वन्द्व था, अपनी चादर के अनुसार पैर फैला सकता था। अब तो वह बात नहीं। जया सामने थी। वह प-प, अँ-अँ कहने लगी थी। नमस्ते, ताता और भू (भूत) भी कह रही थी। दूसरों की मुखमुद्रा को देखकर वह उसके भावों को भी समझ जाती। आम तौर से रोती नहीं, हँसती और हँसाती रहती। जया को इस लोक में लाने की जिम्मेवारी हमारे ऊपर थी, यह ख्याल कर मन और भी भारी हो जाता। उसे कुछ जुकाम हो गया था। अगले दिन कुछ बुखार भी रहा। भैया ने पेनिसिलिन का इंजेक्शन देना चाहा, लेकिन सूई चुभ नहीं पाई। बेचारी को मुफ्त की तकलीफ हुई।

जरा भी गुस्सा आने पर सुखरामा के ऊपर हाथ छोड़ देना भाभीजी के लिए मामूली बात थी। वह समझती थीं, यह निरा बुद्धू है, इसमें अक्कल छू नहीं गई है। वह मारना बर्दाश्त करता आया था, इससे भी यही धारणा पक्की हुई थी। 5 तारीख को वह भाग गया। अब आटे-दाल का भाव मालूम हुआ। कड़े मिजाज की मालकिन के लिए ऐसा नौकर आसानी से नहीं मिल सकता। भैया भी नहीं पसन्द करते थे कि उसे निरा पशु माना जाए।

आज की खबरों से मालूम हुआ कि पूर्वी पाकिस्तान की तानाशाही ने वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। कम्युनिज़्म कहाँ कानून की छाया में पला ? इन्दो-चीन में वियतनामियों से फ्रान्स बुरी तरह पिट रहा था। अमेरिका की सहायता कोई काम नहीं आ रही थी।

6 जुलाई को मेरे अनुज श्यामलाल के द्वितीय पुत्र रामविलास की चिट्ठी आई, जो 5 को उन्होंने लिखी थी, जिसके कुछ अंश थे–"पिताजी की इस समय वही हालत है, जो मरने से कुछ समय पूर्व बाबा की हुई थी। वह केवल नरकंकाल के रूप में वर्तमान हैं। जिस जमीन और इज्जत को उन्होंने अपने खून से बनाया था, वह उनके सामने जलकर राख हो रही है। ऐसी परिस्थिति में उनका बाबा की तरह पागल हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है। घर प्रायः भूमिसात् हो चला है। इस वर्षा में शायद नहीं ही बचेगा। बैलों की तादाद दो है, वह भी स्वस्थ नहीं।... वर्तमान हालत में इस साल धान इत्यादि की खेती करना सम्भव नहीं दीखता है। इस प्रकार हो सकता है, उस सारी जमीन से हाथ धोना पड़े। ऐसी हालत में कनैला से नाता पूर्णतया समाप्त हो जाएगा।" चाहे परिस्थिति में अतिशयोक्ति से काम लिया गया हो, लेकिन वह दुःखद थी, इसमें क्या शक ? पर, उपाय क्या ? हमारी आर्थिक स्थिति किसी प्रकार से सहायता देने लायक नहीं थी। देश की भीषण स्थिति हमारे सामने साकार थी। भारत में ऐसे लाखों घर उजड़ रहे हैं। कल का अच्छा खाता-पीता परिवार आज असहाय हो रहा है। ध्वंस चारों ओर होता दीखता है, पर सृजन कहीं नहीं।

अपराह्न में श्रीमती रजनी पणिक्कर अपने पति कप्तान पणिक्कर के साथ आईं। पंजाबी नैयर लोगों ने अपने को नायर बनाकर मलाबारियों का भ्रम पैदा किया। हिन्दी की कथा-लेखिका रजनीजी ने मलाबारी से

ब्याह करके अपने को सचमुच मलयाली सिद्ध कर दिया। छः वर्ष पहिले जब शिमला में देखा था, तब वह पतली छरहरी थीं। अब जरूरत से ज्यादा मोटी हो गई थीं। इधर उन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं। मालूम हुआ श्री प्रभाकर माचवे रेडियो छोड़कर अब साहित्य अकादमी में आ गए। उनके लिए यह अधिक उपयुक्त स्थान था। अगले दिन शाम को घूमने गए, तो 22 वर्ष बाद मदाम मोरॉं का दर्शन हुआ। 1932 में पेरिस में उनसे मुलाकात हुई थी। अब दिल्ली में ही रहती हैं, और वहाँ आल इंडिया रेडियो में काम करती हैं। चलते-चलते कुछ देर तक बात हुई। 4 जुलाई की रात से ही वर्षा शुरू हो गई थी। 8 की रात से शुरू हुई, तो अगले दिन दोपहर तक बराबर जारी रही। फिर तो कभी जोर की और कभी बूँदा-बाँदी रहती। आसमान कभी ही निरभ्र होता था। वर्षा अब अपनी कसर निकालना चाहती थी। साधारण सैलानी जा चुके थे, और उनकी जगह अब पंजाब के सैलानी ले रहे थे।

मसूरी के हितमित्रों में वैद्य शम्भूनाथजी भी हैं। वह डी. ए. वी फार्मेसी के संचालक हैं। गर्मी-बरसात में यहाँ रहते हैं, जाड़ों में देहरादून और दिल्ली में अपना काम देखते, प्रेक्टिस करते हैं। उनकी दो लड़कियाँ हैं। 9 तारीख को मालूम हुआ, उन्होंने एक लड़का गोद लिया। आजकल के जमाने में लड़कियों के रहते कोई शिक्षित लड़के को गोद ले, यह सोचने की भी बात नहीं। नाम के लिए ? नाम तो अपने परदादा का भी बिरले ही जानते हैं। 11 जुलाई अतवार को श्रीमती सुधा अपने पति श्री प्रतापसिंह के साथ आई। डा. मंगलदेव की पुत्री को मैं उसके सभी भाइयों और बहनों के साथ बचपन से ही जानता था। बराबर देखता रहे, तो आदमी को आश्चर्य नहीं होता, लेकिन दस-बारह वर्ष की लड़की को जब बारह वर्ष बाद देखने का मौका मिले, तो आश्चर्य क्यों न हो ? मालूम हुआ, उनके एक भाई डाक्टर हैं और आजकल आसाम में हैं। डा. मंगलदेवजी अब भारमुक्त थे। लड़कों ने काम पकड़ लिया है, और लड़कियाँ विवाहित होकर अपने पतिकुलों में चली गईं।

14 तारीख को किसी पत्रिका में डा. रामविलास शर्मा के लेख पर नजर गई। मतभेद होना कोई बुरी बात नहीं और उसकी नुक्ताचीनी की जाए, इसका भी मैं स्वागत करता हूँ। उन्होंने मर्यादा तोड़कर यह काम किया था, मुझे उकसाया भी था, लेकिन मैंने उसका जवाब देना पसन्द नहीं किया, दूसरों ने ही जवाब दिया। अब देखा, उन्होंने लिखा था–सरकार राहुलजी और डा. रघुवीर को लाखों रुपये देकर परिभाषाएँ बनवा रही है। इस सफेद झूठ का भी कोई अन्त है ? ऐसा आदमी कैसे क्रान्ति का भक्त भी हो सकता है ? मुझे एक प्रतिभाशाली आदमी के इस पतन पर बहुत अफसोस हुआ। परिभाषा के काम को अगर सरकार मन से करवाती, तो मैं उसमें सहयोग देने के लिए तैयार था। संविधान की परिभाषाओं के निर्माण में मैंने वैसा किया भी। पर, जब देखा कि शिक्षा-मंत्रालय उसमें रोड़ा अटकाना चाहता है, तो मैं उससे अलग हो गया। डा. रघुवीर और हमारी परिभाषा-निर्माण-सम्बन्धी नीति में जमीन-आसमान का अन्तर है। उनके साथ मेरे नाम को जोड़ना यही बतलाता है कि शर्माजी बहुत निचले तल पर उतर आए हैं।

15 जलाई को कपड़ा रखने के रेक को पकड़कर जया खड़ी हुई, रेक उसके ऊपर गिर गया। चोट लगी, बहुत बुरी तरह से रोने लगी। बच्चों को कितना ही सँभालकर रखा जाए, किन्तु कोई-न-कोई ऐसी घटना हो ही जाती है, खासकर जब वह अपने हाथ-पैर को इस्तेमाल करने का बहुत आग्रह करने लगते हैं। दस महीने की होकर जया जमीन पर अच्छी तरह हाथ-पैर के बल से चलती थी। हर समय चारपाई से नीचे गिरने का डर रहता था। चार दाँत निकल आए थे। कुछ शब्दों का अनुकरण भी करती थी।

यद्यपि भाषा-मर्मज्ञों ने स्वीकार किया है कि हिन्दी की मूल भाषा कौरवी है, अर्थात् वह भाषा जो कि गंगा-जमुना के बीच के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ के पूरे, बुलन्दशहर के आधे जिले, गंगा के पूर्व बिजनौर जिले और जमुना के पश्चिम पंजाबी-मारवाड़ी-ब्रज की सीमाओं तक के फैले प्रदेश में बोली जाती है, श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपने एक लेख में इस धारणा को बिल्कुल गलत बतलाया। "कौरवी ही हिन्दी की मूल बोली है", इस पर मैंने एक बड़ा लेख 'सम्मेलन-पत्रिका' के लिए लिख डाला।

इन्दो-चीन में फ्रांस अमेरिका की शह पर लड़ रहा था, और चाहता था कि अब भी वहाँ पुराना उपनिवेश बर्करार रहे। लेकिन, द्वितीय युद्ध के बाद एसिया के लोग यूरोप के जुए को उठाने के लिए तैयार नहीं थे।

कोरिया में सिंगमनरी की चौकड़ी को अमेरिका ने शह दिया और अपने लग्गू-भग्गुओं से भी मदद पाने की इच्छा की, लेकिन परिणाम यह हुआ कि अमेरिकन नौजवानों को ले जाकर भारी संख्या में कटवाना पड़ा। इन्दो-चीन में कोरिया की तरह वह सीधे आना नहीं चाहता था, दूध का जला था। फ्रांस कहाँ तक अपने जवानों के खून से होली खेलता ? अमेरिका जोर देता ही रहा, लेकिन फ्रांस ने स्थायी सन्धि कर ली। सारी दुनिया में उस दिन हर्ष प्रकट किया जा रहा था, और अमेरिकन थैलीशाहों के घर में मौत की उदासी छाई हुई थी।

कुछ चीनी व्यंजनों में मैं और कमला एक-सी रुचि रखते हैं। कलिम्पोंग में कमला के पड़ोस में चीनी भोजनालय था, जहाँ की कितनी ही चीजें वह बचपन से ही खाकर परिचित हैं। मुझे मोमो से परिचय तिब्बत में हुआ, और अण्डेवाली सेवैयाँ तथा कीमा मिला ग्य-थुक् (चीनी सूप) भी बहुत पसन्द आता। मसूरी में कुल्हड़ी में 'क्वालिटी' का भोजनालय सभी तरह के भोजनों के लिए विशेष प्रसिद्धि रखता है। 22 जुलाई को भैया के यहाँ जाते वक्त हम वहाँ चले गए। भाभीजी ने खाना बनाकर तैयार रखा होगा लेकिन 'क्वालिटी' ने हमें अपने भीतर खींच लिया! चीजें महँगी थीं। चाउचाउ मुझे पसन्द नहीं आया, लेकिन ग्य-थुक् बहुत स्वादिष्ट लगा। भाभीजी के यहाँ भी कुछ खाना जरूरी था, नहीं तो उनका बनाया पकवान बेकार जाता।

श्री सदानन्द मेंहता मेरे सुझाव पर पी-एच. डी. के लिए भारतीय भौगोलिक अनुसन्धान-कर्ताओं के ऊपर थिसिस लिखने के लिए राजी हुए थे! पहिले मैंने चाहा, देहरादून डी. ए. वी. कालेज के किसी प्रोफेसर के निरीक्षण में काम करें, क्योंकि मेंहताजी अब वहीं सर्वे विभाग में काम करते थे। दो-तीन के साथ लिखा-पढ़ी हुई, कभी कोई अड़चन उठी, कभी कोई। 24 जुलाई की शाम को मेंहताजी के आने पर मालूम हुआ, आगरा विश्वविद्यालय ने मुझे सुपर्वाइजर बनाया है।

भतीजे के पत्र से चिन्ता बहुत हुई थी, यद्यपि वैसा करके मैं कोई सहायता नहीं पहुँचा सकता था। 26 जुलाई को श्यामलाल का पत्र आया। वह घर का रोना कभी मेरे सामने नहीं रोता। घर की जमींदारी में कुछेक काश्तकार अब भूमिधर बन गए थे। उसके मुआवजे मेरे नाम 82 रुपये आए थे, जिसके लेने के लिए लिखने के वास्ते उन्होंने कोई कागज भेजा था। अब भी 35-40 एकड़ खेत उनके पास थे। पुराने जमाने की तरह दूसरों के भरोसे अब काम नहीं हो सकता था। बड़ा लड़का एम. ए. करके अब बाहर स्कूल-मास्टरी कर रहा था। दूसरा लड़का दिल्ली में क्लर्की में जुटा हुआ था। घर में दो और लड़के रह गए थे, जो डीहा हाईस्कूल में मैट्रिक में पढ़ रहे थे। मेरे बचपन में यहाँ प्राइमरी स्कूल था, और हमारे गाँव के पढ़नेवाले लड़के थोड़े ही थे, जो तीन मील चलकर वहाँ पहुँचा करते। श्रीनाथ के दो लड़के दिल्ली में उनके साथ थे। अगली पीढ़ी में कोई खेती सँभालने के लिए तैयार नहीं क्योंकि सभी पढ़-लिख गए हैं, और खेती अपने भुजबल पर ही होनेवाली है।

27 तारीख को भाई पृथिवीसिंहजी आए। सरदार पृथिवीसिंह से मेरी बहुत घनिष्ठता रही है, यह जीवन-यात्रा के दूसरे भाग से मालूम होगा। अब उनके स्वास्थ्य पर आयु का असर दीख रहा था। स्वास्थ्य के लिए ही वह कश्मीर जाते हुए यहाँ आए थे। उनकी जीवनी के दूसरे संस्करण में कुछ और बातें भी मैं जोड़ना चाहता था, क्योंकि उसे लिखे दस-ग्यारह वर्ष हो गए थे। पाँच-छः दिन अच्छे कटे, और जीवनी के लिए कितनी ही सामग्री भी मिल गई। यह दूसरा संस्करण वाराणसी के ज्ञानमण्डल ने प्रकाशित किया। सरदार पृथिवीसिंह का सारा जीवन देश की स्वतन्त्रता के संघर्षों में गुजरा। बीस वर्ष के ही थे, जब अमेरिका के सुखमय जीवन को लात मारकर क्रान्ति करने भारत आए। उनकी कम आयु को देखकर ही फाँसी की सजा की जगह आजन्म कालापानी मिला, नहीं तो उन्हें तरुण करतारसिंह की तरह फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़ा होता।

भैया (स्वामी हरिशरणानंद) का हर सप्ताह दो-तीन बार समागम होता रहा। हमारी आर्थिक कठिनाइयों का उन्हें किसी तरह पता लगा, और जब यह भी सुना कि मैं शायद देश से बाहर जाने की इच्छा रखता हूँ, तो एक दिन (3 अगस्त) गम्भीर किन्तु सहज भाव से कहा : "बाहर जाने की जरूरत नहीं है। हमारे पास काफी है।" उनकी सहृदयता और उदारता को मैं स्वीकार करता था और यह भी जानता था कि हमारा सम्पर्क बहुत घनिष्ठ हो गया है। पर, मैं तो अपने बल पर ही खड़ा होना चाहता हूँ, इसे छोड़कर दूसरा रास्ता पकड़ना

मेरे लिए प्रिय नहीं।

आजकल पोर्तुगीज़ और फ्रेंच अधिकार में पड़े भारतीय क्षेत्रों की स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा था। फ्रेंच भवितव्यता के बारे में कुछ सोच सकते थे। मासे भर का पोर्तुगीज़ तानाशाह अमेरिका और इंग्लैण्ड के बल पर कूद रहा था। लेकिन, फ्रेंच बस्तियों को भी बिना कुर्बानी के खाली नहीं कराया जा सकता, यह निश्चित था।

अब की कबाड़ियों के यहाँ से जो पुस्तकें खरीदकर लाए थे, उनमें से एक में एक जगह दार्जिलिंग के एक मारवाड़ी सेठ के दक्ष कारपर्दाज पं. नगनारायण तिवारी के बारे में पढ़ा। पुरानी स्मृति जाग उठी। नगनारायण तिवारी योग्य थे। कमाकर घर की हालत बेहतर बनाना शुरू ही किया था कि उनकी दोनों आँखें जाती रहीं। कुछ अंग्रेजी पढ़े हुए थे। अंग्रेजी शासन के खिलाफ थे। असहयोग-आन्दोलन छिड़ते ही वह उसमें कूद पड़े। और फिर जब तक जीए, तब तक राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते रहे। हर बार जेल जाते रहे। 1921 में मैंने एकमा (छपरा) में कांग्रेस का काम शुरू किया, उसी दिन वह मेरे साथी हुए। हम बराबर गाँव-गाँव घूमते थे। तिवारीजी अपनी बोली (भोजपुरी) में अच्छा व्याख्यान देते, और गीत बनाकर गाते थे। शायद 'मैला आंचल' के लेखक रेणुजी के जिले पूर्णिया में भी वह स्वराज्य के प्रचार में घूमे थे, क्योंकि उनके इस श्रेष्ठ उपन्यास में एक जगह तिवारीजी के नाम से उनके पद की एक पाँती उद्धृत थी। नाम याद आते ही मन ने कहा कि जो आदमी आँखों से मजबूर होने पर भी स्वराज्य की रट लगाए उसके लिए दुःख झेलते चल बसा, उसकी स्मृति फिर एक बार नई पीढ़ी को दिलानी चाहिए, और मैंने एक लेख लिख दिया।

सभी जगह की तरह लक्ष्मीपात्र अंग्रेजों के समय देश की आजादी की नहीं, बल्कि राजभक्ति की पर्वाह किया करते थे। अब तो कांग्रेस में आना खतरे की बात नहीं, और अपने पक्ष के ज्यादा मेम्बर बनवाना भी बाएँ हाथ का खेल है। मसूरी कांग्रेस सभापति और मंत्री ऐसे ही थे। पुराने समय से कांग्रेस की सेवा करनेवाले उनसे जलते थे। एक दिन सुना, बहुत से हस्ताक्षर कराके लोग प्रान्तीय कांग्रेस के सभापति के पास आवेदन-पत्र भेज रहे हैं कि उन्हें हटा दिया जाए। कितने भोले हैं ये लोग ? इनकी अकल पर तरस आता। नहीं समझते, कांग्रेस में गुणात्मक परिवर्तन आ गया है, उसकी कायापलट हो गई है। उसके बड़े-बड़े नेता अब भुक्खड़ों की जमात के नहीं हैं, न उनका स्वार्थ उनके साथ सम्बद्ध है। अब तो उच्च वर्ग के धनी-मानी उनके हितमित्र हैं, जवानी का शिष्टाचार के नाते ही नहीं, बल्कि विवाह-सम्बन्ध भी अब उनके लखपतियों-करोड़पतियों से नीचे के साथ नहीं होते। वह मसूरी के कांग्रेसियों के चिल्लपों को क्यों सुनने लगे ?

नेहरू ने नारा दिया "काम, काम, काम" और फिर 'आराम हराम है।" निहित स्वार्थवालों और उनके पक्षपातियों के नारे खोखले होते हैं। उनका काम जनता के ध्यान को बँटाना है। दो पैसे-भर अक्कलवाला आदमी भी जान सकता है कि भारत में शिक्षित हो या अशिक्षित, गाँव के हों या शहर के, सभी "काम चाहिए, काम चाहिए" चिल्ला रहे हैं। भोर से उठते हैं और आधी रात तक उनकी यही रटन रहती है। पढ़े-लिखे लोग दफ्तरों में घूमते हैं, अफसरों और सेठों की खुशामद करते हैं कि हाड़-चाम इकट्ठा करने के लिए कोई काम मिल जाए। भूखे रहते-रहते गाँव के करीब तंग आ जाते हैं, तो घर छोड़ चार-चार पाँच-पाँच सौ भोल दूर काम की खोज में जाते हैं। कितने ही खोज करते-करते वहीं मर जाते हैं, कितने ही धक्का खाते फिर अपने घरों की ओर लौटते हैं। भला इन लोगों के सामने "आराम हराम है" कहना निरी वंचना नहीं है ? उनको आज की व्यवस्था में काम कैसे दिया जा सकता है ? जब पूँजीवाद के शिरोमणि देश अमेरिका में भी लाखों आदमी हर वक्त बेकार रहते हैं, तो हिन्दुस्तान उस समस्या को हल कैसे कर सकता है ? बेकारी का उच्छेद केवल समाजवादी देशों में हुआ। चीन में चुटकी बजाते-बजाते यह काम किया गया। ऐसा क्यों हुआ ? उन देशों में आदमी के बौद्धिक और शारीरिक श्रम को बहुत मूल्यवान पूँजी माना जाता है, उसको बेकार न रखकर काम में लगाना राष्ट्र अपना कर्तव्य समझता है। इसीलिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाकर लोगों को काम पर भिड़ा दिया गया। कहीं जलनिधियाँ बन रही हैं, नहरें खुद रही हैं, गाँव-गाँव स्कूल स्थापित हो रहे हैं, नये-नये कारखाने बन रहे हैं। इस तरह सबको काम मिल रहा है। भारत में मुँह से चाहे कुछ भी करें, लेकिन काम से थैलीशाहों को

खुश रखना, उनके स्वार्थ पर कम-से-कम आँच आने देना सरकार का कर्तव्य है। आँखों के सामने भ्रष्टाचार हो रहा है। 99 प्रतिशत मन्त्री स्वयं गले तक उस कीचड़ में दबे हुए हैं। वही दूसरों को भ्रष्टाचार से अलग रहने का उपदेश देते हैं, उसके उन्मूलन के लिए कमेटियाँ और अफसर नियुक्त करते हैं। अगर सचमुच ही दुनिया में कोई भगवान होता, तो ऐसे वंचकों की जीभ निकाल लेता, उन्हें जलाकर खाक कर देता। अंग्रेज जब थे, उस वक्त भी लोगों की हालत बुरी थी, उस वक्त भी रिश्वत और भ्रष्टाचार था, लेकिन उतना नहीं था, जितना आज सात वर्ष बाद दिखाई दे रहा है। एक दिन डा. सत्यकेतु से चर्चा चल रही थी। उन्होंने कहा, 50 फीसदी लोग रोटी के लिए त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। मैं उनसे सहमत नहीं था। हो सकता है फसल कटते वक्त त्राहि-त्राहि करनेवालों की संख्या आधी हो, पर साल के अधिक दिनों में उनकी संख्या तीन-चौथाई से कम नहीं। अब इनमें वे लोग भी शामिल हो गए हैं, जो सात ही आठ वर्ष पहिले खुशहाल समझे जाते थे।

सरकार के कर्णधारों के ढोंग और वंचना क्या एक-दो हैं कि उसे गिनाया जाए ? हमारे देश के एक बहुत अमेरिकापरस्त साहेब ने वन-महोत्सव आरम्भ किया। अब हर साल बरसात के शुरू में सेठों के अखबारों में वन-महोत्सव के बारे में प्रचार किया जाता है, करोड़ों वृक्षों के लगाए जाने के आँकड़े दिए जाते हैं, लाखों रुपये इसमें बरबाद किए जाते हैं। लेकिन यह महोत्सव कैसा सफल हो रहा है, इसका उदाहरण मसूरी में ही मिला। अखबारों में छपा कि मसूरी में 10 हजार वृक्ष लगाये गए। मैं समझता हूँ, संख्या में बहुत अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया गया, किन्तु क्या वे वृक्ष हैं ? एक-दो अंगुल चौड़ी, ज्यादा से ज्यादा एक हाथ लम्बी एक वनस्पति यहाँ पहाड़ में होती है। ऐसी बेहया है कि यदि कहीं भूल से भी पड़ जाए, तो वहाँ से हटने का नाम नहीं लेती। उसमें फूल भी होते हैं, लेकिन सुन्दर नहीं। बस उसी को सड़क के किनारे दो-दो हाथ पर लगवा दिया गया। दूसरी जगहों से यहाँ के वन-महोत्सव मनानेवाले ईमानदार कहे जाएँगे, क्योंकि और जगह लगाने-भर के लोग जिम्मेवार होते हैं। उनके वहाँ से खिसकते ही हफ्ते-भर में किसी पौधे का नामोनिशान नहीं रहता। लेकिन इस बेहया वनस्पति में से बहुत-सी दो साल बाद आज भी आपको दिखाई पड़ेंगी।

14 अगस्त को अग्रवालों की विवाह-पद्धति पर डा. किरणकुमारी गुप्ता की पुस्तक छपी मिली। मैंने आधी दर्जन महिलाओं को इसके लिए प्रेरित किया था और उन्होंने स्वीकार भी किया था। लेकिन उसे किरणजी ही पूरा करने में सफल हुईं। पुस्तक बहुत अच्छी तरह लिखी गई। उन्होंने सारे अग्रवालों को नहीं, बल्कि कदीमी अग्रवालों तक ही अपने को सीमित रखा, और उनमें भी उन्हीं को लिया, जिनकी मातृभाषा ब्रजभाषा है। इस पुस्तक के द्वारा वृद्धाओं के कण्ठ और स्मृति में ही सुरक्षित सारे विवाह के रीति-रिवाज और दो सौ के करीब गीत जमा हो गए। हरेक भाषा-क्षेत्र की दो-दो तीन-तीन जातियों के बारे में इसी तरह की विस्तृत अनसुंधानपूर्ण पुस्तकें यदि तैयार हो जाएँ, तो नृतत्वीय तुलनात्मक अध्ययन का काम कितना आगे बढ़ सकता है ? हमारी शिक्षिता तरुणियों का इधर ध्यान नहीं है। जब ध्यान जाएगा, तब वृद्धाएँ अपने साथ बहुत-सी विधि-विधानों और गीतों को लिये मर चुकी रहेंगी।

1937 में रूस जाते समय ईरान की राजधानी तेहरान में कुछ समय ठहरा था। उसी समय सरदार रामसिंह से मुलाकत हुई थी। वह किसी सैनिक ठेकेदार के कारपर्दाज थे। क्वेटा से रेल में जाते हमारा परिचय हो गया था। महीने-डेढ़ महीने से ज्यादा हम दोनों एक-दूसरे के सम्पर्क में नहीं रहे होंगे, पर सम्पर्क ऐसा जरूर था, कि हम एक-दूसरे को भूल नहीं सकते थे। एक सैनिक अफसर मित्र से उन्हें मेरे बारे में पता लगा। चिट्ठी भी भेज चुके थे। उस दिन 16 अगस्त को एकाएक आ गए। घर पश्चिमी पाकिस्तान में था, लेकिन शरणार्थी होने से पहिले ही वह कारबार के सिलसिले में यहाँ आ, झाँसी में रहते थे। 17 वर्ष में काली दाढ़ी सफेद हो गई थी। दाढ़ी-चोटी से उनको कोई काम नहीं था, लेकिन बाप-दादे सिक्ख होने से दाढ़ी रखते चले आये थे, इसलिए वह उसे ढोने के लिए तैयार थे। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि पंजाब में दाढ़ी-चोटियों ने कैसा बदतमीजी का तूफान खड़ा कर रखा है ? पहिले ऋषि-मुनि ही नहीं, सभी लोग जन्म से ही अपने बालों की खेती को मृत्यु तक बचाकर ले जाते थे। फिर वृद्धों को यह काम सौंपा गया, और जवानों ने दाढ़ी से छुट्टी ले ली। केश आज से सात-आठ सौ वर्ष तक अक्षुण्ण चले आये थे। लम्बे केशों को सजाकर रखना पुरुष भी आवश्यक

समझते थे। जयचन्द्र के दरबारी कवि "द्विफालबद्धाः चिकुराः" (दासे फाँक करके बाँधे केशों) की प्रशंसा करते नहीं थकते थे। फिर मनचले तरुण निकले, जिन्होंने तीन-चौथाई सिर को लम्बे केशों से खाली कर दिया। पूजा के समय बिखरे बालों में गाँठ लगा ली जाती थी, जो सैकड़ों वर्ष बाद धार्मिक अनुष्ठान बन गया। यदि सारे केश को साफ कर दिया जाता, तो पूजा के समय गाँठ कैसे बँधती ? इसलिए बीच में काफी बाल चुटिया के लिए छोड़ दिये जाते। नियम बनाया गया कि चुटिया गौ के खुर के बराबर हो। मालूम नहीं, गुजराती गाय के खुर के बराबर या एक दिन की बछिया के बराबर ? मद्रास के ब्राह्मणों ने अभी हाल तक इस वचन को पालने की कोशिश की। पीछे से देखने पर किसी-किसी की चुटिया तो महिलाओं के केश की तरह मालूम होती। चुटिया से छुट्टी लेनेवाले सबसे पहिले बँगाली रहे। धीरे-धीरे यह रोग सारे हिन्दुस्तान में फैल गया। अब नवशिक्षित हिन्दू-तरुणों में चुटिया सपना हो गई। केशों का हमारे यहाँ यह इतिहास है। सिक्खों में केश-दाढ़ी को धर्म का अंग माना जाता है, लेकिन नई रोशनी से वंचित जवान भी दाढ़ी मुड़ा लेना मामूली बात समझते। अब तो छुरे से नहीं, कैंची से बड़ी चतुराई के साथ दाढ़ी छोटी की जाती है। कितने ही लोग केशों को भी बीच-बीच से निकाल लेते हैं। बहुत-से शिक्षित नौजवान तो अब उससे बिल्कुल मुक्त हो गये हैं। इस्लाम में भी दाढ़ी पर बहुत जोर था। तेहरान में मैंने एक ईरानी को हमारे भाइयों को देखकर कहते सुना–

"हमाँ मर्दुमाँ आदम शवन्द, ई रीशियाँ ताहनोज आदम न मीशवन्द।" (सभी मर्द आदमी हो गये, ये दाढ़ीवाले अभी भी आदमी नहीं हुए।) दुनिया में केशों के ऊपर सभी जगह आफत आई है।

अब की 15 अगस्त के समारोह में मैं शामिल नहीं हुआ था। गाँधी चौक पर समारोह देखने कमला गई थीं, और वहाँ बेहोश होकर खड़ी-खड़ी गिर पड़ीं। संयोग से पास में परिचित लोग भी थे, उन्होंने मदद की। टाउन हॉल में सभा हुई, तो वहाँ कांग्रेसियों और गैर-कांग्रेसियों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। कांग्रेसवालों में भी जहाँ नेतृत्व के लिए झगड़ा नहीं है, वहाँ धनियों के नये नेतृत्व के प्रति घृणा तो है ही, इसलिए वह भी गैर-कांग्रेसियों के साथ सहानुभूति रखते हैं। कहते थे, डेढ़ घंटा तक सभा में हल्ला-गुल्ला रहा, बहुत-से लोग उठके चले आए। इस दिवस को तो हमें राष्ट्रीय पर्व के तौर पर मनाना चाहिये, क्योंकि इस दिन दो सौ वर्ष से स्थापित विदेशी स्वेच्छाचार का अन्त हुआ था। दिल के गुबार को निकालने के लिए और अवसर मिल सकते हैं, पर यह समझे कौन ?

मसूरी और देहरादून पर लिखने का ख्याल आते यहाँ के पुराने एंग्लो-इंडियन परिवारों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। हमारे पास के बड़े होटल चार्लविल के बारे में किसी ने यों ही कहा, विल्सन नाम के अंग्रेज ने अपने पुत्र चार्लविल के नाम से इसे स्थापित किया था। यह भी बतलाया गया कि यह वही विल्सन था, जिसने गंगा में पहिले-पहिल लकड़ियाँ बहाईं और जो टेहरी रियासत का बड़ा ठेकेदार था, तो मुझे 11 साल पहिले देखा हर्सिल का बँगला याद आने लगा। मैं उसके पीछे पड़ा। सूचनाएँ इकट्ठा नहीं मिलीं। जरा-जरा-सा जमा करने पर पता लगा कि उसका नाम फ्रेडरिक विल्सन था। 1840 ई. में वह स्थायी तौर से भारत चला आया था और वर्षों शिकार ही उसकी जीविका का साधन रहा। गंगोत्री के आसपास की भूमि को उसने अपना निवास-स्थान बनाया। वहीं मुखवा की एक लड़की से ब्याह किया। फिर हर्सिल में वह बँगला बनवाया, जो सौ साल बाद भी अभी सुदृढ़ खड़ा है। उसके दो लड़के थे। चार्ली बड़ा था। विल्सन पीछे जंगल का ठेका लेकर लाखों का स्वामी हो गया। उसके जगह-जगह मकान बन गये। उसके पास छः-छः, सात-सात हाथी रहते, अंग्रेज और देशी कितने ही अफसर थे। पिछली शताब्दी के चतुर्थ पाद के आरम्भ में ही उसका देहान्त हो गया। चार्ली ने जायदाद को खूब बरबाद किया। उसकी 70 साल से ऊपर की बीवी अब भी देहरादून में रहती हैं। उनसे भी मैंने पूछ-ताछ की। विल्सन ने एकान्त शिकारी जीवन का आनन्द लिया, और जब तक पैरों में बल रहा, पश्चिमी तथा मध्य-हिमालय में घूमता रहा। वह एक आदर्श घुमक्कड़ था, इसलिए शिकारी विल्सन की तरफ मेरा ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था। मैंने उसकी एक छोटी-सी जीवनी लिखी।

दूर से देखने पर पालतू जानवरों को रखना केवल खुशी-खुशी की बात मालूम होती है, लेकिन वह वैसी बात नहीं है। कुत्ते चूँकि कमरे में साथ सोते-बैठते हैं। वह बाहर से बीमारियों को ला सकते हैं। उन्हें बराबर

धो-धाकर रखने की जरूरत पड़ती है। भूत अलसेसियन है, इसलिए उसके बाल घने हैं। बालों के जंगल में कितने ही जन्तु पलते हैं। पिस्सुओं से पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता था। हफ्ते-दो-हफ्ते में दवाई से धोने पर भी पिस्सुओं का कुछ नहीं बिगड़ता था। डी. डी. टी. सूखे पौडर को भूत डालने नहीं देता था। इधर न जाने कहाँ से किलनियाँ बटोर लाया था। आसपास दूसरे कुत्ते हैं ही, उनसे या मौसिम के वक्त जगह-जगह बँगलों के बाहर भैंसे और गायें रहती हैं, उनसे लाया होगा। कुछ किलनियाँ घर में भी रेंगतीं, और कुछ खून पीकर गोलमटोल मटर जैसी हो कानों के पास लटकती हैं, जिन्हें निकालने देना भूत अपनी शोभा की हानि समझता।

लखनऊ के कप्तान शुक्ला मनमौजी जीव हैं। घूमने का शौक है, चौथेपन में पैर रख चुके हैं, और शरीर हल्का नहीं है, तो भी समझते हैं, कि हमें दुर्गम पर्वतों पर चढ़ना चाहिए। हर साल गर्मियों में यहाँ आ जाते और हमें भी दर्शन दे जाते हैं। लेकिन, अक्सर बरसात के आखिरी महीनों में आते हैं। इससे पहिले हिमालय में कहीं सैर कर चुके रहते हैं। 23 अगस्त को आए। अबकी दो-तीन महीने हर्सिल में रहे थे। विल्सन के बँगले ने उन्हें भी आकृष्ट किया था। उन्होंने भी विल्सन के बारे में जानने की कोशिश की थी। बतला रहे थे, लोग कहते हैं—विल्सन ने पहिले मुखवा के एक ब्राह्मण लड़की से ब्याह करना चाहा। वह वहाँ के लोगों में घुल-मिल गया था। लोग उसकी उदारता से बहुत खुश थे। लेकिन, जब लड़की देने का सवाल आया, तो पण्डा लोग बिगड़ उठे। फिर उसने घरौली की एक क्षत्री की लड़की को ब्याहना चाहा। उसमें भी सफल न होकर मुखवा के ढोली (हरिजन) की परम सुन्दर लड़की से ब्याह किया और, और माँ-बाप को निहाल कर दिया। पीछे जंगल का ठेका लेकर लखपति हुआ। श्री मुकुन्दीलाल बेरिस्टर कई वर्षों तक टेहरी के चीफ-जज रह चुके थे, उनसे भी कितनी ही बातें मालूम हुईं। विल्सन ने अपने लड़कों को अच्छी शिक्षा देनी चाही, लेकिन वह बिगड़ गये। जब तक शिकारी विल्सन जिन्दा रहा, तब तक सब लोग उसका लिहाज करते थे। फिर चार्ली और हेनरी ने अपने स्वेच्छाचार से ऊधम मचाया। कोई खून भी हो गया। राजा ने इसकी शिकायत अंग्रेज रेजीडेंट से की। वह इन अधगोरे जवानों को क्यों बढ़ावा देने लगा ? उन्हें टेहरी से बाहर निकाल दिया गया। कप्तान शुक्ल कह रहे थे, विल्सन के बँगले को अब सरकार ने ले लिया है।

हमारे हैपीवेली मुहल्ले के सबसे वृद्ध हैं शादीलाल, जिनकी उमर 70 के करीब होगी। दस-बारह वर्ष के थे तभी वह देश से मसूरी चले अए। कई बेटे हैं। बेटों से अलग ही रहते हैं। पुरानी मसूरी, खासकर हैपीवेली की बहुत-सी पुरानी बातें उन्हें याद हैं। उन्होंने बतलाया कि चार्लविल का पहिला नाम हाग्सन था। हाग्सन चार्ली और विली दो लड़के थे, जिनके नाम पर उसने इस बँगले का नाम रखा, और बेंचते वक्त यह शर्त की कि इसका नाम बदला न जाए। हेर्सी-परिवार भी मसूरी का सौ वर्ष पुराना एंग्लो-इंडियन परिवार है। उस परिवार की पुत्री वृद्धा मिसेस वाइट ने बतलाया कि शिकारी विल्सन या उसके लड़के चार्ली विल्सन से चार्लविल होटल का कोई सम्बन्ध नहीं है। लाला शादीलाल 1892 ई. में अपने चचा की दूकान में टेकारी-कोठी के नीचे काम करते थे। बतला रहे थे, टेकारी-कोठी की जगह पहले भैंसवाड़ा था। सवा सौ वर्ष से पहिले आस-पास के गाँववाले गर्मी-बरसात में मसूरी के जंगलों को अपने पशुओं की गोचरभूमि के तौर पर इस्तेमाल करते थे। जहाँ-तहाँ भैंसवाड़े या गायों के झोंपड़े होते थे।

हेर्सी-परिवार के लोग बार्लोगंज में रहते हैं, यह जानकर 24 अगस्त को हम वहाँ पहुँचे। लाइब्रेरी में 'हेर्सी' पर एक पुस्तक देख चुके थे, जिससे मालूम हुआ कि अंग्रेज हेर्सी टीपू सुल्तान से लड़नेवाले अंग्रेज अफसरों में एक था। उसने टीपू के हरम की किसी बेगम को उड़ाया। उसी परिवार का एक हेर्सी टेहरी के राजा का परिचित हो गया, और उसे राजा ने काफी जागीर देकर यहाँ रखा। उसने ही बार्लोगंज में इस बँगले को वाज़िदअली शाह की लड़की के रहने के लिए बनवाया। शाहजादी और तरुण हेर्सी की आँखें लड़ गईं, और वह उसे निकाल भागने में सफल हुआ। मिसेस वाइट बड़े गर्व से कह रही थीं—"मेरी रगों में शाही खून है।" उनका भाई हेर्सी अब भी वहीं एक झोंपड़ा बनाकर रहता था। अकेला दम था, कुछ जमीन थी, उसी पर गुजारा करता था। मिसेस वाइट के पास बहुत जमीन थी। सौ वर्ष पहिले बना बँगला अब गिरने ही वाला था, लेकिन अभी भी

बुढ़िया को शरण देने के लिए तैयार था। बुढ़िया के लड़के-लड़कियों में से कुछ इंग्लैण्ड चले गए, और सबसे छोटा यहाँ था, जो देखने में शत-प्रतिशत अंग्रेज मालूम होता था, इसलिए आस्ट्रेलिया या न्यूजीलैण्ड में आसानी से उसकी खपत हो सकती थी। लखीमपुर में हेर्सी-परिवार तालुकदार के रूप में अभी तक रह गया था। अब जमींदारी उठ जाने से उसकी क्या हालत हुई होगी, नहीं कहा जा सकता। हेर्सी और विल्सन-परिवार के इतिहास पर नजर दौड़ाने पर एक पुराना युग आँखों के सामने नाचने लगता है। अंग्रेज हिन्दुस्तान में बनिये के रूप में आए। उस वक्त उन्हें ख्याल भी नहीं था कि हम दिव्य जाति के हैं। वह हिन्दुस्तानियों के साथ वैसे ही मिलते-जुलते थे, जैसे हिन्दुस्तानी आपस में। कोई सिपाही बनकर हिन्दुस्तान के राजाओं और नवाबों की पलटन में काम करता, कोई मुसाहिब बनता। कोई शिकारी बनकर ही किसी जगह रह जाता। हिन्दुस्तानी खाना उसके लिए प्रिय होता, पोशाक भी आधी तीतर आधी बटेर रहती। लेकिन, जब राज हाथ में आया, तो उन्होंने धीरे-धीरे अपना रूप पहचाना। पर पूरी तौर से दिव्य पुरुष बनने में उन्हें शताब्दियों की देर हुई।

भैया ने दिल्ली (फ़ैज़ बाजार) में अपने मकान की दो मंजिलें तैयार कर ली थीं, तीसरी बनने को रह गई थी। कह रहे थे, उसे अगले साल बनवाएँगे। जितना चाहते थे उतना पैसा कमा लिया था। आर्थिक तौर से निश्चिन्त थे। वह पैसा के दास कभी नहीं हुए, यद्यपि पैसे के मूल्य को समझते थे। अब दिमाग में कल्पना उठ रही थी कि आयुर्वेद के अनुसन्धान और प्रचार के लिए इसी मकान में आयुर्वेदिक संगम स्थापित किया जाए। एक प्रसिद्ध वैद्यराज को भी लिखा-पढ़ी करके ठीक कर लिया था। वह वृद्धावस्था में इस पुण्य के काम में समय देने के लिए तैयार थे। प्रेस भी अमृतसर से वहीं लाकर चलाना चाहते थे। दो सौ रुपये मासिक पर किसी तजर्बेकार मैनेजर की तलाश में थे। मैंने कहा, प्रेस और मैनेजर की कोई बात नहीं, लेकिन कृपया संगम के बारे में जल्दी न कीजियें। मेरी समझ में यह "आ बैल मुझे मार" की बात होगी। संगम हजार-दो हजार महीने का खर्च माँगेगा। एक बार फँस गये, तो फिर निकलना मुश्किल होगा। कोई अपने सुनहले स्वप्न को कह रहा हो और दूसरा विना किसी भूमिका के उस सोने के महल पर निष्ठुर प्रहार करने लगे, तो कैसा लगेगा ? मैंने वैसे ही किया था, लेकिन भैया ने बुरा नहीं माना। पीछे धीरे-धीरे वह ख्याल अपने आप हट गया।

अगस्त के अन्त में जया के साल पूरे होने में तीन ही हफ्ते की देर थी। अब वह काफी चेतन हो गई थी। अपनी तस्वीर को पहचानती थी। मुँह खोलना कहने पर मुँह खोलती, दाँत दिखलाती। अभी वह पा, बा, माँ तीन ही अक्षर बोल सकती थी। एक वर्ष की होने पर अपने बल पर वह खड़ी हो सकती थी, पर चल नहीं सकती थी। नमस्ते-सलाम-टाटा हाथ से करती। भूत के भूँकने की भी नकल करती। न दिये खाने को भी आँख बचाकर मुँह में डालना चाहती। नाचती भी थी। उसके जन्मदिन के लिए कमला ने छोटी-सी पार्टी की, जिसमें शीलाजी, सत्यकेतुजी, बच्चे, मेहताजी और कुछ और मित्र शामिल हुए।

3 सितम्बर की रात को किसी काम से बाथरूम के बाहरवाले दरवाजे को खोलना पड़ा। भूत निकल गया। पास ही में हमारा कठ-नासपाती का पेड़ है। वह वहाँ जाकर भूँकने लगा, फिर चुप हो गया। भीतर चले आए। मालूम तो होता था कि नासपाती पर खर्-खर् हो रही है। बन्दूक लेकर जाने की इच्छा हुई, पर शिकारी बैरिस्टर साहब ने कह रखा था, आपकी राइफल की गोली मार नहीं, घायल कर सकती है और जानवर फिर वार कर सकता है। इसलिए बाहर नहीं गये। सोचा, कोई रीछ आया होगा, नासपातियों को खा रहा होगा। बीच में कभी-कभी फलों के गिरने की धम-धमाहट भी उसी बात का समर्थन कर रही थी। सबेरे उठकर देखा, तो नासपाती के ऊपर एक भी फल नहीं है। एक छोटी डाल टूटी हुई है। मन ने लालबुझक्कड़ होकर कहा, जरूर भालू आया। लेकिन, फिर सोचा, यदि भालू आया था, तो भूत क्यों दो-एक बार भूँककर चुप हो रहा। यह समझने में देर लगी, और इसमें जान लेडली की राय ने भी सहायता दी कि नासपाती तोड़नेवाला भालू नहीं, बल्कि मुहल्ले का ही कोई आदमी था, जिसे भूत पहचानता है। भला, रात को चोरी करने की क्या जरूरत थी ? नासपातियाँ हमारे काम नहीं आती थीं। खट्टी-खट्टी बेस्वाद थीं। माँगने पर हम ऐसे ही देकर पिण्ड छुड़ाते। कहीं जो उस रात राइफल दागी होती, यह सोचकर रोंगटा खड़ हो जाता था।

शिकारी विल्सन के पीछे मैं पड़ा हुआ था। अब मालूम हुआ, विल्सन का पहिला पुत्र चार्ली 1846 ई.

में पैदा हुआ और 1932 में मरा। शिकारी का स्वयं देहान्त 1886 में हुआ।

6 सितम्बर को कम्पनी बाग में वन-भोज था। हम लोग इधर से, भैया और भाभीजी कुल्हड़ी से और साथ ही आचार्य यादवजी त्रीकमजी भी अपनी पत्नी तथा तीन पुत्रियों के साथ आए। हम लोगों को यहीं भोजन करना था, लेकिन यादवजी भोजन करके आए थे। थोड़ा-सा पकवान-भर उन्होंने लिया। महिलाएँ सब वल्लभ कुल की शिष्याएँ थीं, इसलिए वह पकवान भी नहीं खा सकती थीं। पिछले साल की तरह इस साल भी वन-भोज में वर्षा ने विघ्न करना चाहा, और हम चाय के रेस्तोराँ के लिए बनी कोठरी में पड़े रहे। आचार्य त्रीकमजी एक सफल वैद्य हैं। चाहते तो धनकुबेर बन जाते, पर वह लक्ष्मी की मर्यादित पूजा करना ही जानते थे। चिकित्सा करने के अतिरिक्त आयुर्वेद के ग्रन्थों का उद्धार करना भी वह अपना कर्तव्य समझते थे। वर्षा बन्द होने पर हम चाय पीकर 5 बजे घर लौटे।

7 सितम्बर को कमला के एम. ए. (प्रथम) का फार्म भरवाने के लिए रमादेवी उच्चतर विद्यालय के प्रिंसिपल मलहोत्राजी के पास गये। मलहोत्राजी इधर नगरपालिका की राजनीति में भी भाग लेने लगे थे, जिसे मैं पसन्द नहीं करता था। लेकिन, अपनी-अपनी रुचि है। वह यहाँ के सबसे योग्य प्रिंसिपल हैं। उनके स्कूल की परीक्षा का परिणाम हमेशा सबसे अच्छा निकलता है। लोगों का भी उनके ऊपर विश्वास है। घनानन्द इंटर कालेज से असन्तुष्ट होकर इस स्कूल की स्थापना की गई थी, जिसे मलहोत्राजी जैसा प्रिंसिपल मिल गया। लड़कों की संख्या बराबर बढ़ती गई, और उसी के अनुसार मकानों की भी। उन्होंने स्कूल की इमारतें दिखलाईं। नई इमारत में साइन्स की प्रयोगशाला भी बनी है। लड़कों के शारीरिक व्यायाम के लिए भी एक छोटे-से मैदान की आवश्यकता महसूस कर रहे थे, जिसे उन्होंने आखिर में बनवाया। पहाड़ में समतल भूमि मिलना मुश्किल है, इसलिए स्कूल को विस्तृत करना आसान नहीं। इसी साल कमला की बहिन गंगा भी मेट्रिक की परीक्षा दे रही थी। कन्या स्कूल तीन मील पर पड़ता था, इसलिए गंगा को वहाँ से हटा लिया गया। उसे घर पर ही कमला पढ़ाती थीं। मसूरी कन्या विद्यालय की प्रिंसिपल महोदया ने फार्म भरने में सहायता की। दफ्तरशाही दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। फार्म भरने के लिए क्या दो पृष्ठ काफी नहीं थे ? पर अब उसमें एक दर्जन पृष्ठ होते हैं। उत्तर प्रदेश में बोर्ड की परीक्षाओं में पौने दो लाख परीक्षार्थी बैठते हैं। कागज का कितना अपव्यय है ? जिस तरफ देखो, उस तरफ दफ्तरशाही का बोलबाला है। कागजों को काला करने के लिए ही बेकार के लाखों आदमी लगा दिये गए हैं। मन्त्री लोग या दिल्ली के महादेव लाल फीताशाही पर बरसकर केवल विडम्बना मात्र करते हैं। 9 सितम्बर को भैया और भाभीजी में कुछ खटपट हो गई थी। भाभीजी को तो महिलाओं के विद्रोही दल का नेता बनना चाहिए। वह मर्दों के खिलाफ जहर उगल रही थीं। मैं दार्शनिक बन गया था। सोचने लगा—1. वृद्ध को तरुणी से ब्याह नहीं करना चाहिए, 2. जिसने गृहस्थी की जिम्मेवारियों को पचास साल की उमर तक नहीं जाना; उसे तो "नैव च नैव च।" 3. इतने समय तक गृहस्थी के बन्धन में न बँधने का मतलब है, उसके सामने कोई आदर्श था। ऐसे पुरुष को तो और भी यह फंदा गले में नहीं डालना चाहिए, 4. जिसने घुमक्कड़ी में दीर्घ जीवन बिताया, उसे तो विवाह के बिल्कुल पास नहीं फटकना चाहिए, 5. यदि साथ ही विद्या का व्यसन है, तो तोबा-तोबा।

13 सितम्बर को श्री मुकुन्दलालजी आए। अब की वह पटना भी गए थे। वहाँ उन्होंने मेरे चित्रों के संग्रह को देखा था। कह रहे थे, तिब्बत के बाहर इतने सुन्दर चित्रपटों का संग्रह कहीं नहीं है। पटना म्युजियम में अब भी मेरे सभी चित्रों को प्रदर्शित नहीं किया गया है। मैं भी तिब्बत से लाते समय उनके महत्व को नहीं समझता था। उस समय शायद कुछ इधर-उधर भी हो जाते; लेकिन 1932-33 में लन्दन और पेरिस में प्रदर्शनी होने पर उनका जब मूल्य मालूम हुआ, तो मैंने उन्हें सुरक्षित रखने का निश्चय कर लिया, और यह समझने में देर नहीं लगी कि इनकी रक्षा किसी सरकारी म्युजियम में ही हो सकती है। डा. जायसवाल से अभी वैयक्तिक परिचय नहीं था, वहीं से मैंने चित्रों को संग्रहालय को देने के लिए चिट्ठी भेजी। वह यूरोप से सीधे पटना आ गए।

14 सितम्बर का मध्याह्न भोजन औरैया के ठाकुर साहब के यहाँ हुआ। अंग्रेजों से विद्रोह करने के कारण

उनके दादा-परदादा ने राज्य को खोया, पर जनता उन्हें 'राजा साहब' ही कहती। कमला और हम गए। कप्तान शुक्ल और डा. गैरोला भी थे। मेहमान भी समय पर नहीं पहुँचे। और भोजन में इतनी देर होती देख पेट में चूहे चुलबुलाने लगे। रानी साहिबा ने स्वयं पकवान बनाने की जिम्मेवारी ली थी। कमला उनसे बहुत प्रभावित हुई। मांस भी राजपूत के घर का था। भोजन तो स्वादिष्ट था ही, साथ ही हम लोगों को बात के लिए भी बहुत अवसर मिला। कप्तान शुक्ला पर बुढ़ापे का कुछ असर है, कुछ रहस्यवाद और नये आविष्कार की धुन भी सिर पर सवार रहती है। वह गंगोत्री के पास कहीं सुमेरु शिखर को देख आए थे, और उस पर जोर देकर कह रहे थे। मैं भी अपनी भूल स्वीकार करता हूँ, क्योंकि हिमालय के परिचयात्मक ग्रंथों को लिखने में न लगा होता और उसके द्वारा हिमालय के हरेक भाग से घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने का मौका न मिला होता, तो मेरे लिए भी उसकी बहुत-सी चोटियाँ और स्थान रहस्यमय मालूम होते; हाँ, देवताओं के निवास नहीं, दूर के अद्‌भुत भूखण्ड।

15 सितम्बर को श्री बलभद्र ठाकुर की चिट्ठी मिली। शिव शर्मा और ठाकुर एक बार मानसरोवर जाने के लिए निकले थे। शिव शर्मा जान पर खेलकर निकल गए, ठाकुर उसके लिए तैयार नहीं हुए। पर, इसका यह अर्थ नहीं कि वह घुमक्कड़ी की योग्यता में पीछे रहे। शिव शर्मा का स्वभाव उबल पड़ने का है; और ठाकुर मोशाय गम्भीर हैं। वह घुमक्कड़ भी हैं, संस्कृत के अच्छे पंडित हैं, और साथ ही कलम के धनी भी। अब की वह मानसरोवर भी हो आए, और मनीपुर भी। मानसरोवर के न जाने का सन्तोष तो मैं अपनी ल्हासा की ओर की यात्रओं से कर सकता था, लेकिन पूर्वोत्तर भारत और मनीपुर के पहाड़ों की यात्रा की लालसा तो मन की मन में ही रह गई। ठाकुर मोशाय ने लिखा था, मैंने तीन उपन्यास लिखे हैं।

# 12
# सरहपा के चरणों में

1934 में दूसरी बार मैं तिब्बत गया था। तालपोथियों को ढूँढ़ते अपने प्रिय मित्र गेशे धर्मवर्द्धन के साथ सा-क्या पहुँचा। सा-क्या के महन्त राज के सबसे प्रभावशाली अफसर चांगोवा दोनी छेनूबो के घर पर ठहरा। महन्तराज से लेकर उनके अफसर तक सभी हमारी सहायता के लिए तैयार थे। बहुत-सी तालपोथियों का पता तो तीसरी यात्रा में लगा। उस समय भी कुछ अमूल्य पुस्तकें देखने में आईं। इसके बारे में मैं 'यात्रा' की दूसरी पोथी में लिख चुका था। पुजारी के यहाँ तालपोथियों के पत्तों के बंडल काट-काटकर भक्तों में प्रसाद बाँटने के लिए रखे हुए थे, उन्हीं में आदिसिद्ध सरहपा के दोहाकोश के पत्ते भी थे। दोहाकोश पहिले महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री और फिर उससे अच्छा डा. प्रबोधचन्द्र बागची द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका था। सा-क्या से लाये हुए ये पत्ते बीस वर्ष से मेरे पास पड़े थे। पहिला पत्रा लुप्त था। पर उससे एक ही पृष्ठ की क्षति हुई थी, क्योंकि आदिम पत्र के पहिले पृष्ठ को खाली रखा जाता है। दूसरे पत्र के पहिले पृष्ठ के अक्षर घिसकर बहुत-से अपाठ्य हो गए थे। एक दिन इन पत्रों को यों ही देखा। ख्याल आया, इन्हें मिलाना चाहिए। हरप्रसाद शास्त्री की प्रति मेरे पास थी। पता लगा कि उसमें 50 से अधिक दोहे नहीं हैं, जबकि इस तालपोथी में 160 से अधिक हैं। डा. बागची की प्रति को मिलाने पर मालूम हुआ, कि हमारी प्रति विशेष महत्व रखती है। बागची के दोहाकोश में 112, तिब्बती अनुवाद में 134 और इसमें 163 'दोहे' हैं। मैंने तालपत्र से उतारना शुरू किया और महसूस किया कि इसे सम्पादित करना चाहिए। उस वक्त तो यही ख्याल आया था कि एक संक्षिप्त भूमिका के साथ इसे प्रकाशित कर दिया जाए। लेकिन, जब उसमें लगा, तो काम अपने ही दूर तक खींच ले गया। अपभ्रंश भाषा, सरह की कविता तथा दार्शनिक विचारों पर छोटी भूमिका नहीं लिखी जा सकती। वह काफी बढ़ गई। फिर ख्याल आया कि सरह के 14-15 अपभ्रंश ग्रंथ तिब्बती में अनुवादित हैं। क्यों न सरह की सभी अपभ्रंश कविताओं को हिन्दी में कर दिया जाए। फिर उसको भी हाथ में ले लिया। प्रकाशन के लिए विश्वभारती, जायसवाल इन्स्टीट्यूट, और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद–तीनों जगहों से माँग आई। इन्स्टीट्यूट और परिषद में प्रतिद्वंद्विता लग गई। मैंने श्री जगदीशचन्द्र माथुर के ऊपर छोड़ दिया, और अन्त में परिषद की ओर से ही प्रकाशित होने का निश्चय हुआ। इन पंक्तियों के लिखते समय से पहिले ही उसे छप जाना चाहिए था, किन्तु वह ऐसे प्रेस के दलदल में फँसा, जिसमें 'नेपाल' कई सालों से पड़कर उबर नहीं रहा है।

सितम्बर के अन्त में 'नया समाज' में कमला की कहानी 'डायन' छपकर आई। कमला की कहानियों में कुछ विशेष गुण हैं। उनको शब्दों की परख और घटनाओं को ठीक से चुनने की बात मालूम है। लेकिन, सबसे बड़ा दोष है, कलम चलाने में उन्हें बहुत आलस आता है। आरम्भिक कहानियों में भी मुझे भाषा में थोड़ा ही सुधार करने की आवश्यकता पड़ी थी, और अब तो उसकी और भी कम पड़ रही है। मैं कितनी

ही बार कहता कि 16 कहानियाँ लिख डालो, तो पुस्तकाकार निकल जाएँगी। लेकिन, वह अभी नौ पर रुकी हुई हैं। जया अब मजे से अपने पैरों पर घूम सकती थी। ऊपर के कितने ही दाँत निकल आये थे। बहुत चंचल थी, गिरने-पड़ने और चोट खाने की पर्वाह नहीं करती थी।

8 अक्तूबर को बिहार के साथी कार्यानन्द शर्मा आए। शर्माजी से मेरा परिचय 1921 के असहयोग के जमाने से है। 'नये भारत के नये नेता' में मैं उनकी एक छोटी जीवनी लिख चुका हूँ। जवानी से कंटकाकीर्ण मार्ग पर उन्होंने पैर रखा और आज भी उसी पर अविचल चले आ रहे हैं। बहुजन का हित उनके लिए हमेशा आदर्श रहा। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह साम्यवाद ही से हो सकता है, तो 1938 में बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के साथ ही उसके मेम्बर बन गये। किसानों की बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ीं। यदि उन्होंने कंटकाकीर्ण रास्ता छोड़कर सुख का रास्ता पकड़ा होता, तो आज बिहार के दूसरे कांग्रेसी नेताओं से कहीं आराम में रहते। घर-बार छोड़कर अकेला जीवन बिताना उतना तपस्या का नहीं है, जितना कि शर्माजी जैसे लोगों का, जिन्होंने सब-कुछ को, अपने और अपने परिवारवालों को भी सुख से वंचित कर दिया। उनका स्वास्थ्य इधर खराब रहता था। दिल्ली आये थे, वहीं से कुछ समय के लिए चले आए थे।

अक्तूबर में मसूरी का शरद सीजन था। मंत्रियों को बुलाकर और दूसरे तरीके से मसूरी के भाग्य का सुधार करने की कोशिश की जा रही थी। राष्ट्रपति के घोड़ों ने पोलो मैदान में अपने कर्तव्य दिखलाए। केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों में किदवाई, जैन, महावीर त्यागी और केसकर आए। प्रदेश के मुख्यमंत्री पन्तजी भी पहुँचे। मंत्रियों का पधारना सिर-आँखों पर लेकिन मसूरी का उससे क्या बनता है ? उसको तो पाँच-सात हजार क्लर्कों वाले एक-दो आफिसों की जरूरत है। दिल्ली में उनके लिए घर बनाने में करोड़ों रुपया खर्च होगा, मकान मिलना मुश्किल है। यहाँ अच्छे-अच्छे मकान रहनेवालों के बिना गिर रहे हैं। मंत्री नौकरशाहों के कठपुतली हैं–"सबै नचावें रामगुसाईं।" आफिस भेजने की बात कह करके जाते हैं। खुर्राट नौकरशाह उसका विरोध करते हैं। सभी टाँय-टाँय फिस हो जाती हैं। दिल्ली दरबार में रहने से नौकरशाहों का हरलोक-परलोक बनता है, इसलिए वह वहाँ से क्यों हटेंगे ?–परलोक से मतलब उनके बेटे-पोते हैं, बल्कि बेटियाँ और बहुएँ भी कह सकते हैं, क्योंकि कानून को ताक पर रखकर भी बेटियों-बहुओं को बड़ी-बड़ी तनखाहों पर रखा गया है।

14 अक्तूबर को लण्ढौर गये। अब के साल मानसरोवर-कैलाश में तिब्बतवालों का कुम्भ लगा था, जिसमें हमारे कुछ खम्बा मित्र भी गए थे। कह रहे थे, लूट-पाट अब नहीं है, चाहे जहाँ फिरते रहो, लेकिन चीजें बहुत महँगी हैं। दो रुपये में एक शाम भी पेट नहीं भरता। सचमुच यहाँ का रुपया वहाँ की दौड़ में पीछे था। तिब्बत में अब मजूर जितना एक रोज में कमाता है, उसका हमारे रुपयों में मूल्य नौ-दस है। इसलिए वहाँ के मजूर के लिए जो चीज महँगी नहीं मालूम होगी, वह हमारे आदमी को जरूर मालूम होगी, क्योंकि यहाँ पाँच रुपया कमाने में 6 घंटा नहीं, बल्कि तीन-चार दिन लगाने होंगे, और उसके साथ काम का अनिश्चित होना भी शामिल है।

**प्रयाग**–एकान्त निवास रहने में एक यह भी घाटा था कि कहीं जाना-आना मुश्किल था। शर्माजी आ गए थे, मैंने सोचा दो हफ्ते कहीं चक्कर लगा आऊँ। पुस्तकों के प्रकाशन का भी कुछ काम था और मित्रों से मिलना भी। 16 अक्तूबर को देहरादून पहुँचा। चार्ली विल्सन की बीवी से मिला। बुढ़िया के पास पुरानी सामग्री नहीं थी। बाप के बिक गये मकान में चिररोगिणी बहिन के साथ अपने अन्तिम दिन बिता रही थी। पति ने बहुत पहिले अपने बाप के बारे में 'स्टेट्समैन' में एक लेख लिखा था, जिसकी कटिंग उन्होंने दी। उसी दिन रात को इलाहाबाद तक जानेवाले डब्बे में बैठ गया। सबेरा होते समय हमारी ट्रेन मुरादाबाद में पहुँची। हमारे डब्बे में ही पूर्णिया जिले के मनिहारी के महन्तजी थे। महन्तजी हाथरसवाले तुलसी साहब के सम्प्रदाय के थे। साधुओं का पंथ कितना जल्दी दूर-दूर तक फैल जाता है ? कहाँ हाथरस और कहाँ मनिहारी। तुलसी साहब के भक्त बहुत जगहों पर हैं, और मनिहारी के महन्त उनके सम्मानित गुरु हैं। हाथरस जाकर वह मुरादाबाद के भक्तों के पास आए। उन्हें बहुत-से भक्त रेल पर पहुँचाने आए थे। आदमी डब्बे में कुछ ज्यादा थे, लेकिन बैठने में उनको कोई दिक्कत नहीं थी। तो भी एक भक्त कह रहे थे–बहुत बड़े महात्मा हैं, अहोभाग्य समझिये

इनके साथ चलने को। सचमुच ही मैंने अपने को अहोभाग्य समझा, क्योंकि तुलसी साहब के बचनों को तो कुछ पढ़ा था, पर उनके किसी अनुयायी या महन्त से परिचय नहीं हुआ था। महन्तजी शिक्षित और मेरी कुछ पुस्तकों को पढ़े हुए थे, इसलिए हम दोनों ही ने अहोभाग्य समझा। 'मध्य-एसिया का इतिहास' का बहुत-सा प्रूफ मेरे पास था, जिसे देखकर लखनऊ के स्टेशन में डालना था, इसलिए अपने सारे समय को सत्संग में नहीं लगा सकता था। लखनऊ में वह दूसरे डब्बे में चले गए, और मेरा डब्बा प्रयागवाली ट्रेन में कटकर लग गया, जहाँ 7 बजे रात को पहुँचा।

मैंने श्रीनिवासजी को चिट्ठी लिखी थी, लेकिन बहुत देर से। मैं सनीचर का पहुँचा। अगले दिन रविवार को चिट्ठी नहीं मिल सकती, सोमवार को मिली, तो मित्रों को सूचना नहीं हो सकी। आजकल दशहरे की छुट्टियाँ भी थीं। पत्रों में अगर खबर निकली होती, तो दरस-परस का सुभीता होता। सोमवार को मैं प्रयाग में ही रहा और खुद ही घूम-घूमकर मित्रों से मिल लिया। सम्मेलन के कर्णधार लखनऊ गये हुए थे। डा. उदयनारायण पत्नी के आग्रह के कारण अलोपी बाग के अपनी पुरानी कोठरियों को छोड़कर एक बँगले में रह रहे थे। पर, कोठरियाँ उन्हें इतनी जल्दी छोड़नेवाली नहीं थीं। अन्त में उन्हीं को सुधारकर वहाँ रहना पड़ा। सोमवार को श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय से बात होती रही। मैंने इधर अपने अगले ऐतिहासिक उपन्यास के लिए ऋग्वेद का दाशराज्ञ-युद्ध चुना था। उसके बारे में कुछ अध्ययन भी किया था। चट्टोपाध्यायजी का तो सारा जीवन ही एक तरह वेद के अध्ययन में लगा था। वह अपने धार्मिक विचारों से तो परम रूढ़िवादी हैं, किन्तु अनुसन्धान में परम नास्तिक। उनके शिष्य डा. रामनारायण राय ने ऋग्वेदिक ऋषियों पर अपने डी. लिट्. का निबन्ध लिखा था, उसे भी चट्टोपाध्यायजी ने दिखलाया। मैंने निश्चय किया कि इस काल के समाज के बारे में लिखने पर रूढ़िवादी आपत्ति उठाएँगे, इसलिए पहिले ऋग्वेदिक समाज के भिन्न-भिन्न अंगों पर अलग-अलग सप्रमाण लेख लिखूँ। मैंने चाहा था, उन्हें चट्टोपाध्यायजी देखकर कुछ सुझाव देते। लेकिन, लिखकर सुझाव देने में वह एक नम्बर के दीर्घसूत्री हैं, बैठकर चाहे घंटों आप उनसे सुनिये, जान पड़ता है, ज्ञान का अपार समुद्र आपके समाने लहरें मार रहा है। इस ज्ञान के समुद्र का शतांश भी कागज पर न उतरे, खासकर ऐसे विषयों पर, जिस पर अभी बहुत कम लिखा गया है तो चट्टोपाध्यायजी को अगले जन्म में ब्रह्मराक्षस जरूर बनना पड़ेगा, क्योंकि वह ऋषि-ऋण से पूरी तौर से उऋण नहीं हुए।

अगले दिन निरालाजी के दर्शन के लिए दारागंज गया। असम्बद्ध बातें करने का तो उनका स्वभाव है। कोई आदमी असम्बद्ध बात करने लगेगा, यदि उसके जागृत और स्वप्न की मेंड़ें टूट गई हों। आज उनके मुँह से पहिले-पहिल एकाध अश्लील शब्द सुने, लेकिन यह तकिया कलामवाले थे, जिसे कुछ गुस्सा आने पर कितने ही प्रकृतस्थ लोग भी मुँह से निकाल देते हैं। वह अंग्रेजी बोलते, कभी उर्दू में भी—मैं निराला नहीं हूँ, मैं डा. मुहम्मद हुसेन हूँ। निराला को देखकर सरहपा याद आ गये। जिनका अभी-अभी भी मैं अध्ययन कर रहा था। सरहपा अब से 1200 वर्ष पहिले पैदा हुए थे। वह भी महान् कवि थे, वह भी असम्बद्ध-प्रलापी थे, साथ ही जब सम्बद्ध बातें करते, तो उनके मुँह से मोती झरते। निराला ने सिद्धों का पंथ नहीं पकड़ा, यद्यपि सिद्धों के सभी गुण उनमें थे। यदि पकड़ा होता, तो कौन कह सकता है, कि वह पांडीचरी और तिरुवन्नामल के सिद्धों से आगे न बढ़ जाते। पुरानों ने ऐसे निरंकुश परन्तु महान् पुरुषों को अधिक संयत बनाने के लिए एक उपाय निकाला था। बल्कि कहना चाहिये, सिद्धों ने अपने-आप उपाय निकाल लिया था। सरह नालन्दा में पढ़कर महापण्डित हुए, वहीं सालों अध्यापक भिक्षु रहे। जब अपने समय के पाखण्ड झूठे मालूम हुए, तो एक क्षण के लिए भी नहीं रुके। भिक्षुओं का भेस और आडम्बर तोड़ फेंका। पंडिताई के सम्मान को सलाम किया। लोग उनके प्रति अधिकाधिक घृणा करें, इसके लिए कटिबद्ध हो गए। शराब पीने लगे। फिर एक वाण का फल बनानेवाली (सिकलीगढ़ की) तरुण कन्या को साथ में ले लिया। खुद भी वाण का फल तैयार करने लगे। शर बनाने के कारण लोगों ने उनका नाम सरहा रख दिया था। वह अपनी तरुण संगिनी—जिसे सिद्धों की भाषा में महामुद्रा कहते हैं—को लिये एक जगह से दूसरी जगह घूमने लगे। सयानों ने कहा, कोई असम्बद्ध-प्रलापी पागल है। कोई कहता—दुराचारी, शराबी, लुगाई लिये फिर रहा है। चारों ओर से पहिले थू-थू के शब्द सुनाई

देने लगे। सरह यही चाहते थे। वह खुश होते थे। लेकिन, बहुत दिनों तक दुनिया उनकी उपेक्षा नहीं कर सकी। साधारण जन उन्हें महात्मा कहने लगे। सरह अपनी पंडिताई का कोई उपयोग नहीं कर रहे थे। संस्कृत को छोड़ चुके थे। कभी-कभी लोगों की भाषा में बोल पड़ते, जो दोहों का रूप लेते। उनकी भाषा इतनी सरल थी कि उस समय का साधारण आदमी भी समझ सकता था, लेकिन उसका अर्थ इतना गम्भीर भी होता कि जिसमें पंडित भी गोता खाने लगते। बहुत वर्ष नहीं बीते कि सरह को सब लोगों ने सिर-माथों पर चढ़ाया। बड़े-बड़े पण्डित उनकी चरणधूलि लेने के लिए दौड़ते। बड़े-बड़े मुकुटधारी उनके पैरों में अपना मुकुट रखते। सरह को वैभव की जरूरत नहीं थी, सम्मान की जरूरत नहीं थी। वह अपनी अपभ्रंश की कविताओं द्वारा अमर होने की इच्छा भी नहीं रखते थे। भारत में कई शताब्दियों के लिए वह मर भी गए। तिब्बत ने उनकी रक्षा की, और वहाँ अब भी जीवित और परम सम्मानित बने रहे। अन्त में हमारा देश भी उनके भुलाने के लिए पश्चात्ताप करने लगा।

सरह समाज के ढोंग और पाखण्ड से तग थे। चाहते थे कि लोग उहें छोड़कर सहज जीवन बिताएँ। धर्म के नाम पर जितनी अलाय-बलाय घुस आई थी, उसके ऊपर उन्होंने जबर्दस्त प्रहार किया। गोरख, कबीर और दूसरे फक्कड़ सन्त उन्हीं के रास्ते पर चलकर पाखण्ड-खण्डन करते रहे। निराला ने कवितादेवी की आराधना की। कभी-कभी मैं ख्याल करता हूँ, यदि वह सिद्धों के मार्ग को अपनाकर महामुद्रायुक्त हुए होते, तो अधिक उपकारक होते। महामुद्रा जैसी-तैसी तरुणी नहीं हो सकती। सिद्धों के सम्प्रदाय में उसके नखसिख का जो वर्णन है, उस पर उतरनेवाली कुछ पद्मिनियाँ ही हो सकती हैं। यदि किसी पद्मिनी ने निरालाजी के लिए आत्मोत्सर्ग किया होता, तो वह भी धन्य-धन्य होती।

सम्मेलन की ओर से अंग्रेजी-हिन्दी कोश बन रहा था। उसके दफ्तर में इकट्ठा ही डा. बाबूराम सक्सेना, डा. वीरेन्द्र वर्मा, डा. बाहरी, श्री रामचन्द्र टंडन आदि से मुलाकात हो गई। वहीं पं. रामनरेश त्रिपाठी भी मिले। अगले दिन श्रद्धेय टंडनजी के दर्शन किए। उनका आग्रह हुआ, कि मैं प्रयाग में रहूँ। पर, प्रयाग की गर्मियों-बरसातों को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता था और काम के लिए दो स्थान बना नहीं सकता था। उस दिन अमृत पत्रिका के दफ्तर में एक छोटी-सी चाय-पार्टी हुई, जिसमें सरहपा के दोहाकोश के ऊपर मैं बोला। पत्रिका ने तालपत्र को फोटो के साथ मेरी कई बातें भी छापीं। अब की एक युग के मित्र से मुलाकात हुई। 1915-16 में मैं आगरा में अरबी पढ़ता था। उस समय वहाँ के बपतिस्त हाईस्कूल के प्रिंसिपल श्री सेमुअल आइजक से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला था, और उनके सौहार्द्र से मैं इतना प्रभावित हुआ था कि मैंने जीवन-यात्रा के पहिले खण्ड में उसका उल्लेख किया था। उनके पुत्र श्री जगदीशकुमार संस्कृत और हिन्दी के पण्डित हो, प्रयाग के क्रिश्चियन कालेज में दोनों भाषाओं के विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने मेरी पुस्तकें पढ़ते-पढ़ते उन पंक्तियों को भी देखा, जिनमें मैंने उनके पिता का स्मरण किया था। जगदीशकुमारजी ने मेरे पास चिट्ठी लिखी और अपना परिचय दिया था। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह पुराने मित्र के योग्य पुत्र थे। इसका तो हर्ष होना ही था। साथ ही यह जानकर कि जगदीशकुमार ने वह आदर्श उपस्थित किया, जो कि नये भारत के ईसाई तरुणों का होना चाहिए। धर्म में बाइबल, ईसा मसीह के मानने में कोई हर्ज नहीं, पर, संस्कृति में सभी भारतीय एक हैं, चाहे आस्तिक हों या नास्तिक, चाहे हिन्दू हों, ईसाई या मुसलमान। ईसाई तरुणों को जगदीशकुमार ने रास्ता दिखला दिया। जब उन्होंने बतलाया कि पिताजी भी यहीं आये हुए हैं, तो मैं उनके मिलने के लिए लालायित हो गया। शाम को वहाँ कुछ मित्रों की चाय-पार्टी हुई। सेमुअल–श्यामलाल से बदला हुआ नाम–साहब की बड़ी-बड़ी मूछें सफेद थीं, देशी शुभ्र वेष में थे। शायद धोती पहने हुए थे। छाती लगाकर मिले। उसी दिन मेरी पहिली उड़ान के कलकत्ता के साथी श्री महादेव प्रसाद मिले। वह 47 वर्ष पहिले की बात है। लेकिन, महादेव प्रसादजी से इलाहाबाद में जब-तब मुलाकात हो जाती थी। वृद्ध मालूम ही होना चाहिए। हमारी उमर के वह भी थे।

प्रयाग से अब श्री जयगोपाल मिश्र के साथ बनारस जाना था। यद्यपि मसूरी से यही निश्चय हुआ था, श्री कृष्ण बेरी के यहाँ हम ठहरेंगे; पर, प्रयाग में श्री देवनारायण द्विवेदी का पत्र आ गया था, जिसमें बाबू

शिवप्रसाद गुप्त और मेरे सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए जोर देकर लिखा था कि सेवा-उपवन में श्री सत्येन्द्रजी के यहाँ ही ठहरें। सचमुच ही बाबू शिवप्रसादजी के स्नेह और सम्मान को भूलना मेरे लिए सम्भव नहीं है। जब मैं सारनाथ में ठहरता तो वह वहाँ मिलने आते थे। भारतीय स्वतन्त्रता और संस्कृति के वह अनन्य आराधक थे। चूँकि मैं वृहत्तर भारत के पुराने सम्बन्धों को जागृत करने में लगा हुआ था इसलिए उनका मेरे प्रति विशेष पक्षपात था। ऐसे कामों में वह हमेशा सहायता देने के लिए तैयार रहते थे। छावनी में स्टेशन से उतरे तो द्विवेदीजी और बेरीजी दोनों मौजूद थे। इतनी जल्दी में पत्र मिला था कि हम बेरीजी को सूचित भी नहीं कर सके। बड़े दुविधा में पड़े। बेरीजी को समझाया, और सेवा-उपवन चले गये। इसके लिए बेरीजी को नाराजगी हुई हो, यह स्वाभाविक था। लेकिन, करता क्या ? दोपहर का स्नान-भोजन करने से पहिले स्टेशन से आते हुए रास्ते में अपने विद्यार्थी जीवन से घनिष्टतया सम्बद्ध मोतीराम के बगीचे को देखने गया। बनारस आने पर इसको देखना मैं नहीं भूलता। बगीचा खतम है। जहाँ कोयरी खेती करता था, वहाँ गोयनका संस्कृत छात्रावास है। भीतर अभी जमीन खाली पड़ी हुई थी। ब्रह्मचारी चक्रपाणि की कुटिया अब भी खड़ी थी। पुराने निवासियों में से अब कोई रह नहीं गया था।

सेवा-उपवन में जाकर स्नान-भोजन और थोड़ा विश्राम किया। इसके बाद फिर मित्रों से मिलने के लिए निकला। हिन्दू विश्वविद्यालय में पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी घर पर ही मिले। बच्चों ने उलाहना दिया, यहाँ क्यों नहीं ठहरे। वासुदेवशरणजी के घर पर गये। वह इस वक्त कलकत्ता गये हुए थे। लौटकर उपवन में थोड़ा ठहरा। पं. रामचन्द्र शुक्ल के पोते ने पहिले ही वचन ले लिया था कि हमारे घर पर शुक्लजी के फोटो का उद्घाटन करें। जिन खेतों में शुक्लजी ने अपना घर बनाया था, वह मेरे परिचित थे, और परिचित थे रानी बड़हर के मकान और मन्दिर। वहाँ जाकर चित्र उद्घाटन किया। यदि देशी समय के मुताबिक काम होता, तो कहीं न कहीं प्रोग्राम टूटता, इसलिए आग्रह को न मानकर समय पर ही उद्घाटन और भाषण किया। शुक्लजी ने अपने क्षेत्र में हिन्दी के लिए कितना बड़ा काम किया, यह इसी से मालूम हुआ कि अब भी उनके हिन्दी के इतिहास को परास्त करनेवाला कोई पैदा नहीं हुआ। वहाँ से 5 बजे भदैनी में तुलसी पुस्तकालय में स्वागत होनेवाला था। असी संगम, गूदरदास का अखाड़ा, मोतीराम का बगीचा काशी के ये वह स्थान थे, जहाँ मैंने संस्कृत ही नहीं पढ़ी, बल्कि जहाँ नागरिक और साहित्यिक जीवन से परिचय प्राप्त करने का मौका पाया। तुलसी घाट यहीं है। लेकिन, मेरे समय में अभी तुलसी के नाम से कोई पुस्तकालय नहीं बना था। पण्डितों में अब मेरे परिचितों में से कोई नहीं रह गये थे। बहुत कम ही पण्डित बुढ़ापे तक काशीवास के लिए रह जाते। विशेषकर यदि उनका घर बनारस में नहीं हो। वहाँ कृतज्ञता प्रकट करते थोड़ी देर 'आज' कार्यालय में ही बेरीजी के हिन्दी प्रचार पुस्तकालय में और उनके विद्या मन्दिर प्रेस में गये, जो मान मन्दिर के पास था। समय के साथ हमारे प्रेस आगे बढ़ रहे हैं, और छपाई के आधुनिक साधनों से सम्पन्न हो रहे हैं, यह बेरीजी के इस प्रेस से मालूम हुआ। यहीं श्री परमेश्वरीलाल गुप्त, त्रिभुवननाथ, श्री ठाकुरप्रसाद सिंह और दूसरे इष्ट-मित्र भी आ मिले। वहाँ से कचौरीगली होते आदि विश्वेश्वर के पास पं. शिवगोपाल मालवीय के यहाँ थोड़ी देर के लिए ठहरे। इतने बन्धुओं से मिलकर बड़ा आत्म-संतोष मिला, और 9 बजे हम उपवन लौटे।

22 के साढ़े सात बजे ही जयगोपालजी और श्री द्विवेदीजी को साथ लिये सारनाथ पहुँचा। काशी-यात्रा में यहाँ आना अनिवार्य होता है। महाबोधि स्कूल की इमारत काफी बढ़ गई थी। लद्दाख का एक वैद्य कई तरुण साधुओं को लिये ल्हासा जा रहा था। उसने अपने यहाँ की हालचाल बताई। मन्दिर और पुराने ध्वंसावशेषों को देखते बर्मी धर्मशाला में महास्थविर कित्तिमा से मिले। चौथेपन में यदि शरीर सूखता है, तो वह फिर कैसे हरा हो सकता है। कित्तिमाजी ने अपना सारा जीवन भारत में, और वह भी भारत और बर्मा के सांस्कृतिक सम्बन्ध को पुनरुज्जीवित करने में लगाया। मेरे भतीजे उदयनारायण पाण्डे अब यहीं महाबोधि स्कूल में अध्यापक थे, और रहते थे कित्तिमाजी के पास। उनके दो लड़के और दो लड़कियाँ थीं। गृहपत्नी भी यहीं रहती हैं। शिक्षित और संस्कृत जीवन के लिए आज के गाँवों में कहाँ स्थान है ? पहिले के जो जीविका के साधन थे, वह भी अब खतम हो रहे हैं, इसलिए इस वर्ग को तो आज या कल तो गाँवों से भागना होगा, या दूसरे

लोगों के तल पर रहना होगा।

उदयप्रताप कालेज में बोलने का आग्रह था, लेकिन उधर 12 बजे काशी विद्यापीठ में भी समय दे दिया था, इसलिए कालेज में सात मिनट से अधिक बोल नहीं सका। विद्यापीठ में भाषण देने के बाद डा. मंगलदेवजी के यहाँ गया। सभी जगह जल्दी-जल्दी थी। मध्याह्न-भोजन बेरीजी के यहाँ करना था। कितनी ही जल्दी करें, लेकिन समय से डेढ़ घंटा बाद पहुँचे। उनका घर बनारस की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में था, जहाँ स्वयं पथ-प्रदर्शक वनना पड़ा था।

वहाँ से फिर साथी रुस्तम सेटिन और मनोरमाजी के यहाँ चाय पीने गये। फिर 4 बजे नागरी प्रचारिणी सभा में स्वागत के लिए उपस्थित हुए। यहाँ बहुत-से परिचित बन्धुओं के दर्शन हुए। पं. चन्द्रबली पांडे भी थे, पं. हजारीप्रसादजी भी। फिर कार से दौड़े विश्वविद्यालय की साहित्य सहकार समिति में। स्वागत गोष्ठी के लिए उपस्थित होना पड़ा। गोष्ठी पं. मन्नन द्विवेदी के अनुज अवध द्विवेदी के निवास पर थी। श्री मन्नन द्विवेदी का नाम सुनकर हृदय में टीस पैदा होती है। यह हिन्दी का प्रतिभाशाली लेखक और कवि जवानी में ही अपनी सारी क्षमताओं से हिन्दी माता को वंचित कर चल बसा। उनकी भोजपुरी की वसन्तकाल-सम्बन्धी कविता की पाँतियाँ अब भी मेरे कानों में गुनगुनाती हैं। सरकारी नौकरी होने से छद्म नाम से उनके लेख 'प्रताप' में निकलते थे, और हमारे जैसे तरुण उसके एक-एक अक्षर को घोलकर पीते थे। ऐसे पुरुषों को इतना जल्दी क्यों चला जाना चाहिए ? उनको बहुत दीर्घजीवी होना चाहिए था। उनके अनुज भी साहित्य के एक बहुत मर्मज्ञ हैं। अंग्रेजी के अध्यापक हैं, पर हिन्दी का स्नेह अपने अग्रज से पाया है। कहना चाहिये, रोटी अंग्रेजी की खाते हैं और काम हिन्दी का करते हैं। कई वर्षों से आँखों की ज्योति जाती रही, लेकिन उन्हें सदा प्रसन्न देखा जाता है। विश्वविद्यालय से अब फिर अन्तिम प्रोग्राम पूरा करने के लिए गोदौलिया में सरस्वती प्रेस में पहुँचे। यद्यपि श्रीपतिजी और अमृतजी ने अब अपना स्थान प्रयाग में बदल दिया है, लेकिन इस मकान को अभी भी अपने पास रखा है। यहाँ मार्क्सीय क्लब में बोलना पड़ा, और साढ़े 9 बजे रात को लौटकर अपने निवासस्थान पर पहुँचे।

बनारस के पत्रों में आने और रहने के स्थान की सूचना निकल गई थी, इसलिए मित्रों को पता हो गया था। 23 के आधे दिन तक हमें यहाँ रहना था। सबेरे 7 बजे ही इष्ट मित्रों ने दर्शन देना शुरू किया। अधिकतर ऐसे ही विद्वान आए, जिनसे मिलकर कई काम की बातें करनी थीं। प्रिंसिपल राजबली पांडे, डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री परमेश्वरी लाल गुप्त, श्री महेन्द्र शास्त्री न्यायाचार्य, श्री दलसुखभाई मालवणिया, स्वामी सत्यस्वरूपजी और स्वामी योगीन्दरानन्द से 9 बजे के बाद तक बातें होती रहीं। सभी अपने-अपने कामों में तन्मय हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

इस यात्रा का एक निजी प्रयोजन भी था, वह था अपनी पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबंध करना। एक प्रकाशक ने पहिले चिट्ठी द्वारा आशा दिलाई थी कि हम बहुत-सी पुस्तकें छाप देंगे और कुछ अग्रिम भी देंगे। उन्होंने यदि आने के दिन ही कह दिया होता तो हमें पुस्तकों के प्रकाशन के प्रबंध करने में सुभीता होता। जब प्रस्थान करने में दो-तीन घंटे रहे, तब असमर्थता प्रकट की। कुछ पुस्तकें श्री सत्येन्द्रजी ने प्रकाशित करनी चाहीं, यह जानकर हमें संतोष हुआ।

10 बजे भारत कला भवन गये। इसका आरम्भ रायकृष्णदास ने नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में किया था। अब वह अपने समुचित स्थान पर विश्वविद्यालय में आ गया था। श्री परमेश्वरीलालजी उसके क्यूरेटर थे। मुझे संग्रहालय की मूर्तियों, चित्रों और मुद्राओं के देखने की उत्सुकता थी। म्युजियम का अपना मकान बन रहा था, अभी वह अस्थाई तौर से एक बँगले में था। परमेश्वरीलालजी स्कूल से पढ़ाई छोड़कर स्वतन्त्रता-आन्दोलन में लग गये। एक बार पढ़ाई छूट जाने पर फिर मुश्किल से ही आदमी ढर्रे पर लगता है। लेकिन जिसमें लगन हो, वह फिर अपने रास्ते को पकड़ लेता है। परमेश्वरीलालजी का ध्यान पहिले पत्रकारिता की तरफ गया। फिर पुरातत्व और प्राचीन मुद्राओं ने अपनी ओर इतना अधिक खींचा कि वह उसी के हो गये। आजमगढ़ में रहते उनके एक मन के करीब कुषाण और पुराने सिक्कों को मैं देख चुका था। उच्च

शिक्षण-संस्थाएँ उनको दुत्कारती थीं, क्योंकि उनके पास उनमें प्रवेश करने के प्रमाण-पत्र नहीं थे। लेकिन, क्षमता रखनेवाले आदमी को कब तक दूर रखा ज़ा सकता है ? उन्होंने अपने लेखों द्वारा अपनी विद्या का परिचय दिया। वह सीधे एम. ए. में भरती होकर सम्मान-सहित उत्तीर्ण हुए। आजकल के जमाने में जब डाक्टर की उपाधि टके सेर बना दी गई है, तो उसका आकर्षण भी नहीं हो सकता। लेकिन, परमेश्वरीलालजी के लिए वह कोई दुर्लभ चीज नहीं है। काशी से वह फिर बम्बई के म्युजियम में बुला लिए गये, जहाँ डा. मोतीचन्द के साथ अब काम करते हैं।

काशी का अबका निवास कितना व्यस्त रहा, यह ऊपर के वर्णन से मालूम होगा। लौटकर भोजन किया। श्री सत्येन्द्रजी के साथ छावनी स्टेशन पहुँचे। बाबू शिवप्रसादजी अपने दोनों नातियों को शेर और भालू कहते थे, जो उनके शरीर को देखकर उलटा हो गया। सत्येन्द्रजी अपने नाना से अधिक मिलते हैं, और उनके अनुज बहुत दुबले-पतले हैं।

**पटना**–गाड़ी चलनेवाली थी जब कि हम डब्बे में पहुँचे। 1 बजनेवाला था। हमने मसूरी में समझा था कि अक्तूबर के अन्त में अब नीचे गर्मी का डर नहीं रहेगा, लेकिन अधिकतर हम पंखे की मदद से ही रहे। ट्रेन सीधे पटना जाती थी। बक्सर में कुछ तरुण मिलने आये, उन्हें पत्रों से मालूम हो गया था कि हम इसी ट्रेन से जा रहे हैं। आरा में भी कुछ पूछताछ हुई थी। 6 बजकर 25 मिनट पर हम पटना जंकशन पहुँच गये। जयगोपालजी बनारस से ही लौट गये, और हम अकेले थे। स्टेशन पर श्री देवेन्द्रजी, कुसुम, वीरेन्द्रजी और अद्भुतजी आए, जिनके साथ हम देवेन्द्रजी के निवासस्थान पर पहुँचे। देवेन्द्रजी इधर रूसी पढ़ने के लिए दो साल लन्दन गये हुए थे। संस्कृत के साहित्याचार्य और मेधावी पुरुष हैं। रूसी भाषा पढ़ने में उनका मन भी लगा और सात-आठ महीने और रहने दिया गया होता तो वहाँ से वे बी. ए. की जगह डाक्टर बनकर आते। उन्होंने चाहा, एक साल बिना वेतन की छुट्टी मिले, लेकिन आजकल नौकरियों में तिकड़म बहुत चलती है। लन्दन का डाक्टर दूसरों से आगे बढ़ जाता, इसका भी ख्याल था। उन्होंने कुसुम, अपने लड़के दीपक और लड़की दीप्ति को भी बुला लिया था। कुसुम अपने दोनों बच्चों को लेकर अकेली लन्दन चली गईं, यह कम साहस की बात नहीं थी। पिता (पं. गोरखनाथ त्रिवेदी) अपने समय के साइन्स के बहुत मेधावी छात्र थे। वह यदि साइन्स की उच्च शिक्षा के लिए जर्मनी गये होते, तो एक पीढ़ी पहिले ही यह ख्याल उठ गया होता कि समुद्र पार जाने से धर्म नष्ट हो जाता है। लेकिन, वह प्रथम विश्व-युद्ध का समय था। तब से अब जमीन-आसमान का अन्तर हो गया है। अब तो ब्राह्मण हो या कोई भी जाति, विलायत से लौट आये का सम्मान बढ़ता था, जात से निकालने का किसको साहस हो सकता था ? देवेन्द्रजी के पिता संस्कृत के दिग्गज विद्वान् यदि आज जीवित होते, तो न जाने अपनी बहू के इस काम को कैसे लेते ? दस महीने रहकर बच्चों में सबसे ज्यादा परिवर्तन देखने में आता था। वह जहाँ शुद्ध अंग्रेजी बोल रहे थे, वहाँ साथ ही अंग्रेज बच्चों की सफाई और व्यवस्था को भी स्वाभाविक ढंग से सीख आये थे।

24 अक्तूबर को अतवार था। शिवपूजन बाबू सम्मेलन भवन में ही रहते हैं, यह सुनकर उनके पास मिलने गये। ऐसा सरल और मधुर स्वभाव साहित्यकार मुश्किल से मिलेगा। वह टी. बी. सेनिटोरियम में गये, तो सभी हिन्दी प्रेमियों को बहुत दुःख हुआ। अब वहाँ से तो चले आये, लेकिन शरीर बहुत कमजोर था। उन्होंने जीवन-भर साहित्य-आराधना को गले पड़ी चीज नहीं समझा। जब गिन-गिनकर पैसे मिलते थे, तब भी वह उसी तन्मयता के साथ सेवा करते थे। इस समय वह स्वास्थ्य के ख्याल से भी मेहनत करने से बाज कैसे आ सकते थे ? सभी लोग कहते थे–कम मेहनत किया करें, दूसरों से काम लें। लेकिन शिवजी महाराज़ जो ठहरे। जीवन के एक-एक क्षण का मोल चुका लेना चाहते हैं। बहुत लोगों ने उन्हें लेक्चर दिया होगा। मैंने भी दिया, तो क्या बुरा किया ? अगले दिन पता लगा, बेहोश हो गये थे।

भोजनोपरान्त नागार्जुनजी के साथ म्युजियम गए। जायसवाल प्रतिष्ठान से तन्जूर के उन भागों को लेना था, जिनमें सरह की कविताओं के अनुवाद थे। वहीं फ्रेजर रोड पर पार्टी का आफिस था। यद्यपि मैं इस पार्टी का मेम्बर नहीं था, लेकिन मैं पार्टी का था। उसके कर्मियों के साथ असाधारण घनिष्ठता होनी भी स्वाभाविक

थी। पुराने साथियों से मुलाकात हुई—इन्द्रदीप, चन्द्रशेखर, योगेन्द्र, रामावतार। कुछ देर तक उनसे बातचीत हुई। पर लौटने पर देखा, शिवजी वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रसन्नता और चिन्ता दोनों ही होनी थी। उन्होंने चिन्ता प्रकट करने पर कहा—"नहीं, मैं रिक्शे पर आ गया था।" सरह ग्रन्थावलि और 'मध्य-एसिया के इतिहास' के बारे में कुछ बातचीत करनी थी। उस दिन शाम को धूपनाथजी भी आ गए। बिहार में प्रगतिशील शक्तियाँ विभक्त थीं, यह दुःख की बात थी। सोशलिस्टों-कम्युनिस्टों की परछाईं भी लाँघना नहीं चाहते थे, और जब तक यह मनोवृत्ति दूर नहीं होती, तब तक जल्दी किसी बड़े काम की आशा नहीं हो सकती।

25 अक्तूबर को जायसवालजी के परिवार से मिलने गया। उनकी पुत्री धर्मशीला ने अपना बँगला बना लिया था। जायसवालजी की सन्तानों में ज्येष्ठ पुत्र चेतसिंह हीरा निकले। मुझे पहिले ही से उनसे यह आशा थी। कितना उदार वह पुरुष था। बैरिस्टरी पास करते समय वहाँ से अंग्रेज तरुणी को पत्नी बना के लाया। पिता पहिले ही पुत्र का ब्याह कर चुके थे, इसलिए यह उन्हें पसन्द नहीं आया। नया बैरिस्टर अपने पैरों पर इतना जल्दी खड़ा कैसे हो सकता था ? चेतसिंह उलटे पैरों लौट अपनी प्रेमिका को लन्दन ले गए, और वहाँ अपनी विवशता को दिखलाते उससे छुट्टी ली। कुछ वर्षों भारत में रहने के बाद चेतसिंह मलाया में बैरिस्टरी करने चले गए। 1935 में जापान जाते समय उनसे आखिरी बार मुलाकात हुई थी। तभी उनकी बैरिस्टरी जम गई थी। महायुद्ध के जमाने में पता न लगने से तरह-तरह की आशंका हो रही थी। अब चेतसिंह जायसवाल मलाया के निवासी हो गए हैं। वहीं परिवार है, घरबार है। ऐसी अवस्था में उन्हें क्या जरूरत थी कि बीस हजार रुपया देकर भाइयों का उद्धार करते। जायसवालजी के बँगले के लिए भाइयों और बहिनों में मुकद्दमा चल रहा था। भाई कहते थे, यह हमारी सम्पत्ति है। बहिन कहती थी, हमारा भी हिस्सा होता है। जायसवालजी ने कोई विल किया था, पर मुझे उसका पता नहीं था। यद्यपि मैं उनके घर का एक व्यक्ति-सा था, पर घरू बातों में न मुझे रुचि थी, और न वह उसके बारे में बतलाते थे। हमारे पास दूसरे विषय बात करने के लिए बहुत थे। जायसवालजी के दूसरे लड़के बिट्टू कृषि-विभाग में अच्छे पद पर थे। नारायण भी डाक्टर थे, लेकिन चतुर्भुज और दीप उसी बँगले में पिलानी होटल खोलकर अपनी जीविका चलाते थे। बँगला स्टेशन से नजदीक है, यह अनुकूलता थी। पिछली मर्तबे मिलने पर यही चिन्ता हो रही थी कि कहीं बहिनें जीत गईं और उन्होंने बँगले को बाँटना चाहा, तो जीविका छिन जाएगी। अब वह अपने बड़े भाई को रोम-रोम से दुआ दे रहे थे। नई पीढ़ी किस तरह समाज के पुराने बन्धनों को तोड़कर आगे बढ़ती है, यह यहाँ दिखाई दे रहा था। बैरिस्टर धर्मशीला का अब उनके पति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सबसे छोटी बहिन ज्ञानशीला का ब्याह एक प्रोफेसर से हुआ। सोच-समझकर शादी की थी, पर पुरानी कहावत को चरितार्थ किया—"मन मिले का मेला, नहीं तो भला अकेला।" वह यहाँ से डाक्टर होकर लन्दन ऊँची डिग्री लेने के लिए गई थीं। बहिन बतला रही थी, वहाँ उनका मन नहीं लग रहा है।

शाम को 6 बजे सम्मेलन भवन में गोष्ठी हुई। सौ के करीब साहित्यकार आए थे। सभा से साहित्यकारों की गोष्ठी अच्छी होती है, क्योंकि इसमें हिल-मिलकर लोग बैठते, अपने विचारों को प्रकट करते हैं। लेकिन, गोष्ठी की संख्या सीमित होनी भी जरूरी है। मैं भाषा और लिपि पर बोला। सारे देश की सम्मिलित भाषा होने और हमारे साहित्य और संस्कृति के वाहन बनने के कारण हिन्दी हमारी प्रेमास्पद है। लेकिन, मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि हमारी मातृभाषाएँ—भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि—उपेक्षित कर दी जाएँ। वहाँ उपस्थित साहित्यकार बन्धुओं में किसी की भी मातृभाषा हिन्दी नहीं थी, और कुछ तो ठेठ भोजपुरिया थे, जिनका प्रायः सारा कथा-संलाप अपनी मातृभाषा में होता है। कुछ बन्धुओं ने बड़े जोरदार शब्दों में मेरे मत का खण्डन किया। कुछ के कहने का यह भाव था कि गड़े मुर्दे को क्यों उखाड़ते हैं ? मैं कैसे मान लूँ कि भोजपुरी गड़ा मुर्दा है। मेरी अपनी मातृभाषा के लिए यह शब्द मैं सहन नहीं कर सकता था। मैंने अपने ऊपर बहुत संयम किया, लेकिन प्रतिवाद में अपनी टोन को कोमल नहीं रख सका, इसका मुझे तुरन्त खेद हुआ। हमारे जो भी विचार हों, उसे तर्क और युक्ति-सहित दूसरों के सामने रखो। दूसरे चाहे जिस तरह से भी उसका उत्तर दें, उसे ठंडे दिल से सुनना चाहिए। यही मेरी सामन्य नीति है। इसका यदि स्वयं उल्लंघन करूँ, तो क्यों न दुःख हो।

**नालन्दा**–26 अक्तूबर को दीवाली का दिन था। और यही दिन मेरे पास बच रहा था। उस दिन दोपहर को श्री जगदीशचन्द्र माथुर के यहाँ भोजन का निमन्त्रण स्वीकार कर अच्छा नहीं किया था। क्योंकि तब तक हमें नालन्दा से लौट आना था। सबेरे साढ़े 5 बजे ही देवेन्द्रजी, दीपक, दीप्ति, योगेन्द्रजी के पुत्र मुन्ना के साथ योगेन्द्रजी की मोटर पर चले। उस वक्त अँधेरा था। आकाश में बादल घिरे हुए थे। कभी-कभी बूँदा-बाँदी भी हो जाती थी। फतुहा, बख्तियारपुर, बिहारशरीफ होते डेढ़ घंटे में नालन्दा पहुँचे। प्रायः 40 मील प्रतिघंटा की चाल रही। नालन्दा के पुनरुज्जीवन के साकार प्रयत्न को देखने मैं पहिली बार कई साल बाद आया था। बड़े पोखरे के सामने पालि-प्रतिष्ठान की एकमंजिला इमारत करीब-करीब बनकर तैयारी हो गई थी। काश्यपजी ने सभी चीजें दिखलाईं। गाँव के एक पक्के दोमंजिले मकान को किराए पर लेकर उसे पुस्तकालय का रूप दिया गया था। नालन्दा को कभी विस्मृत किया जा सकता ? क्या पुरानी इमारतों के ढेरों को खुदवाकर तख्ती लगा देने-भर से संतोष किया जा सकता है ? इसने धर्मकीर्ति जैसे दिमागों को पैदा किया। आजकल सैकड़ों वर्षों तक भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध को दूसरे देशों से दृढ़ करने का महान काम किया। यहाँ कितने ही देशों के भिक्षु और विद्यार्थी मौजूद थे। नालन्दा सरकार को मकान बनवाने और दूसरे साधनों को जुटाने के लिए बाध्य कर रहा है। बिजली के नलकूप की तैयारी हो रही है। परिदर्शन करके भिक्षु जगदीश काश्यपजी की कुटिया में मध्याह्न-भोजन किया। काश्यपजी इन्स्टीट्यूट के आनरेरी डायरेक्टर हैं। कह रहे थे, मैं डायरेक्टर पद से इस्तीफा देना चाहता हूँ, ताकि काम करने में मुझे ज्यादा आजादी रहे। मैंने कहा, जल्दी करने की आवश्यकता नहीं। नालन्दा से राजगृह जाने के लिए अब समय नहीं रह गया था, इसलिए सिलाव जाकर वहाँ के प्रसिद्ध चूरा और खाजा को खरीदा। फिर गाड़ी पीछे मुड़कर दौड़ी। 1 बजे देवेन्द्रजी के यहाँ लोगों को छोड़कर मैं सीधे माथुर साहब के बँगले पर गया। भोजन के साथ बातचीत हुई। फिर चाय पीने के लिए अल्तेकर साहब के यहाँ।

रात को सारे शहर में दीपमाला हुई। मसूरी में भी दीपमाला होती है, लेकिन मैं उसे देखने कभी नहीं गया। रात को ही डा. बाँकेबिहारी मिश्र मिले। हमारे देश में गाँधीजी ने "लौटो गुहा-मानव की ओर" का नारा लगाया। उन्होंने इसे सदिच्छा से लगाया था, लेकिन अब हमारे भाग्यविधाता उसके द्वारा जनता की आँखों में धूल झोंकने का काम करते हैं। देहाती विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं, जनता कालेज बनाए जा रहे हैं। कालेज और विश्वविद्यालय से अभिप्राय है–उच्च शिक्षण संस्थाएँ। उच्च शिक्षण संस्थाएँ गाँवों में कैसे फल-फूल सकती हैं ? वहाँ एक नए नगर बसाने के लिए पैसा खर्च करने की सामर्थ्य कहाँ है। बिना नगर के छात्रों और अध्यापकों को सांस्कृतिक जीवन का सुभीता नहीं रहेगा, जिसके बिना वह वहाँ टिक नहीं सकेंगे। फिर इन संस्थाओं के लिए बड़े पुस्तकालय, संग्रहालय तथा छात्रों की भारी संख्या की आवश्यकता है। मैं तो नालन्दा के पालि इन्स्टीट्यूट को भी आजकल अनुपयुक्त स्थान में पाता हूँ, लेकिन नालन्दा का अपना एक इतिहास है, जिसे विस्मृति के गर्भ में स्वेच्छा से जाने नहीं दिया जा सकता। वह धीरे-धीरे बड़ी संस्था होगी, वहाँ नगर का वातावरण भी हो जाएगा।

बिहार सरकार ने देहाती विश्वविद्यालय के संगठन के काम में डा. बाँकेबिहारी मिश्र को नियुक्त किया था। मैंने कहा, यदि देहात में रखना ही है, तो ऐसे विश्वविद्यालय को नालन्दा में रखें। वहाँ एक इन्स्टीट्यूट है ही, यह भी हो जाए और साथ में एक कृषि कालेज रहे, तो कई संस्थाएँ मिलकर अपने दूसरे अभावों की पूर्ति कर लेंगी। लेकिन, अन्त में उसे मुजफ्फरपुर जिले के गाँव तुरकी में बैठाया गया। 1956 की यात्रा में डा. मिश्र मिले, तो वह बहुत संतुष्ट नहीं थे। वह बहुत विद्याव्यसनी जीव हैं। जो आदमी एक अच्छे हाईस्कूल की हैड़मास्टरी छोड़कर किसान-सत्याग्रह में मेरी जगह जाने के लिए तैयार हो जाए, उसके साहस के बारे में क्या कहूँ ? लेकिन डा. मिश्र भारत में अंग्रेजी राज्य के इतिहास के गम्भीर विद्वान् हैं। उसकी रग-रग को जानते हैं। लन्दन में रहकर उन्होंने इसी पर पी-एच. डी. और डी. लिट. ही नहीं किया, बल्कि ब्रिटिश म्युजियम की उस विशाल सामग्री का भी अवगाहन किया, जहाँ अंग्रेजी शासन के इतिहास के मूल रेकार्ड भारी परिमाण में जमा हैं। उसके लिए भारत के ऐतिहासिक रेकार्डों की देख-रेख का काम होना चाहिए था।

रात को ही दिनकरजी, नागार्जुनजी, श्री रामखेलावन पांडे और दूसरे साहित्यकार मित्र आए, जिनसे साहित्य के सम्बन्ध में बातें होती रहीं। दिनकर के भावों में अब भी परिवर्तन नहीं हुआ था। वह एक तरफ देश की परतन्त्रता के खिलाफ अग्निवीणा बजा रहे थे, और दूसरी तरफ अंग्रेजों की नौकरी कर रहे थे। अब नए प्रभुओं से मेल रखने के उनके प्रयत्न के बारे में लोग-बुरा भला कहते हैं। मैं तो दिनकर की कविता को देखता हूँ। उस कविता में निर्भीकता है। वह अब भी दहकते अंगारों-जैसे शब्दों में लिखी जाती है। मैं दिनकर का प्रशंसक हूँ।

**लखनऊ**–पटना से पश्चिम आते वक्त कुसमय की ही गाड़ी पकड़नी पड़ती थी। भला रात के तीन बजे कोई उठने का समय है ? अपने उठने का मतलब घर-भर को उठाना है। 4 बजे धूपनाथ और वीरेन्द्रजी स्टेशन पहुँचाने के लिए आए। पंजाब मेल पकड़ा, क्योंकि वही सीधे लखनऊ पहुँचा सकता था। कम्पार्टमेंट में मूसरी जानेवाले दो तरुण-तरुणियाँ भी थीं। आजकल मसूरी में वही जाते हैं, जो वहाँ पढ़ते हों। ये वहाँ के छात्र-छात्राएँ थीं। रास्ते में और पटना में भी बूँदा-बाँदी थी, लेकिन बनारस की ओर इसका कोई पता नहीं। रेल के सफर में इन्सुलिन लेने का नियम स्थगित रहता है, उसके बिना ही भोजन किया। ढाई बजे गाड़ी लखनऊ पहुँची। साथी शिव वर्मा और यशपालजी की पुत्री मंटा अपने भाई के साथ मिले। भिक्षु प्रज्ञानन्द भी आए थे। उनको बहुत संतोष होता, यदि मैं रिसालदार बाग बोद्ध विहार में ठहरता। लेकिन, मित्रों को मिलने-जुलने में सुभीता यशपालजी के यहाँ रहता है, इसलिए उनके और प्रकाशवतीजी के अनुपस्थित रहने पर भी उनके ही घर पर ठहरे। श्रीमती मोहिनी जुत्शी और जुत्शी साहब भी आए। दूसरे बौद्ध विहार में मंचू भिक्षु मंगलहृदय भी मिले। दुर्गा भाभी के घर जाने पर उनके पुत्र सतीश को पहिली बार देखा। सतीश कई साल बाद अमेरिका से पढ़कर लौटे थे और अब किसी सर्विस में लगे हुए थे।

यद्यपि पिता-माता नहीं थे, लेकिन मंटा और नन्दू ने आतिथ्य-सत्कार में किसी तरह की कमी नहीं होने दी। दोनों ने नाटक भी दिखलाए। अगले दिन नेशनल हेरल्ड प्रेस गए। 'मध्य-एसिया का इतिहास' की दूसरी जिल्द यहाँ खटाई में पड़ी हुई थी, लेकिन अब प्रबन्धक होकर श्री सीताराम गुंठे आनेवाले थे, इसलिए उनकी तन्देही पर पूरा विश्वास था। हम पहिली जिल्द को भी वहीं पर दे आए। नेशनल हेरल्ड देश का एक बहुत बड़ा प्रेस है, लेकिन उसकी व्यवस्था औद्योगिक युग के अनुरूप नहीं, सामन्ती युग-सी मालूम होती है। वह अपना खर्च भी नहीं निकाल सकता और कर्ज के बोझ से दबता जा रहा है। उसका संस्थापक रफी अहमद किदवई जैसा कर्मठ आदमी है, जो नहीं चाहता कि हाथ का लगा बिरवा मुरझा जाए, किसी पूँजीपति के हाथ में चला जाए। बहुत-से कामों के कारण रफी साहब को समय भी निकालना मुश्किल है, लेकिन जब गज की पुकार हुई, तो भगवान् नंगे पैर दौड़ने के लिए तैयार हो गए। प्रेस को ठीक-ठाक करने के लिए वह गुंठेजी को लाए। लेकिन, गुंठेजी के आने की सब बात तय होने से एक हफ्ता भी नहीं बीता कि रफी साहब लाखों को रुलाकर चल बसे। गुंठेजी से तब भी कुछ होने की आशा थी, लेकिन जहाँ सारा मानव-यंत्र टी. बी. का मरीज हो, वहाँ एक आदमी क्या करता ? मैंने उसी समय गुंठेजी को कह दिया था कि सम्मेलन प्रेस को न छोड़ना। सम्मेलनवाले भी उन्हें छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। गुंठेजी को क्या, जब यहाँ कुछ होते नहीं देखा, तो प्रयाग लौट गए। वहाँ काम भी था और अपना घर भी।

शाम को 4 बजे बौद्ध विहार में बुद्ध के जीवन और कार्य पर कुछ बोला। 6 बजे साथी प्रेस (निवास-स्थान) में साहित्यकारों की गोष्ठी हुई। यहाँ पर भी हिन्दी-अंग्रेजी तथा हिन्दी-क्षेत्र की मातृभाषाओं की समस्या पर बोलते हुए मातृभाषाओं का मैंने बड़े जोर के साथ समर्थन किया। लेकिन, लखनऊ के दोस्तों ने पटनावालों के कितने ही मित्रों की तरह कोई असंतोष नहीं प्रकट किया। कोई यदि सन्देह प्रकट करता, तो मैं पटना की तरह अपने शब्दों में गर्मी लाने के लिए तैयार नहीं था। श्रीमती रजिया बेगम भी आईं। साथी सज्जाद जहीर की पत्नी होने के कारण उनका विशेष सद्भाव होना स्वाभाविक था। मुझे उनका वह रूप भी याद है, जब नई-नई ब्याहकर आई थीं और सुन-सुनाकर समझ लिया था कि मैं उर्दू-विरोधी हूँ, इसलिए बड़े गुस्से से मेरे सामने अपने भावों को प्रकट कर रही थीं। लेकिन मैं उर्दू का विरोधी तो कभी नहीं था। उर्दू-साहित्य हिन्दी

अक्षरों में भी छपे, इसे विरोध नहीं कहा जा सकता। अबकी उन्होंने जब कहा कि अपने भतीजे-भतीजियों को भी देखने के लिए तशरीफ लाएँ। कोशिश करने पर भी जब मैं उसके लिए समय नहीं निकाल सका, तो इसका अफसोस बहुत समय तक रहा। वहाँ आधा घंटा भी निकालने की फुरसत नहीं थी, और मसूरी आने पर जान पड़ता था, मैं समय निकाल सकता था, और मुझे जरूर जाना चाहिए था। साथी सज्जाद जहीर वर्षों से पाकिस्तान की जेलों में बन्द हैं, और यह वीर महिला अपने बूते पर अपने बच्चों को सँभाले हुए यहाँ है। रजिया कहानी लिखती हैं। हिन्दी में भी लिखने लगी हैं। असल में मन की भटक है, नहीं तो हिन्दीवाले को उर्दू में और उर्दूवालों को हिन्दी में लिखने के लिए भारी तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। यदि दोनों शैलियों की पुस्तकें नागरी में छपने लगें, तब तो और भी सुभीता हो सकता है।

29 अक्तूबर को साथी शिव शर्मा के साथ 'जनयुग' कार्यालय में गए। साथी रमेश और दूसरे भी मिले। बेसरो-सामानी के साथ देश और जनता की सेवा करनेवाली संस्थाओं और व्यक्तियों को कैसा कष्ट उठाना पड़ता है और कितनी प्रतिकूल समस्याओं का सामना करना पड़ता है, इसे उस समय से जानता हूँ, जबकि मैं छपरा जिले में कांग्रेस का काम करता था, काम की सबसे बड़ी जिम्मेवारी मेरे ऊपर थी। आन्दोलन कभी गरम होता, तो सभी साधन जल्दी जुट जाते। जब ठंडा पड़ जाता, लोगों में निराशा फैल जाती, तो चिट्ठियों के लिए टिकट का जुटाना भी मुश्किल हो जाता। महीनों मकान का किराया नहीं चुकाया जा सकता था। लेकिन, जिस काम की आवश्यकता होती है, यदि उसके करनेवाले हों, तो वह रुक नहीं सकता। 'जनयुग' की आवश्यकता थी, उसमें काम करनेवाले साथी भी मौजूद थे। अपना प्रेस नहीं था। सस्ता छापने के लिए कम्पोज-भर अपने यहाँ करा लेते थे, फिर दूसरे प्रेस में छपवा लेते थे।

मध्याह्न-भोजन श्रीमती मोहिनी जुत्शी के यहाँ हुआ। अपना मकान किरायेदार से छूट नहीं रहा था, इसलिए उन्हें होटल में रहना पड़ता था।

**मसूरी**–29 की रात को कानपुर से आनेवाले देहरादून के डब्बे पर बैठा और अगले दिन साढ़े 8 बजे सबेरे देहरादून पहुँच गया। स्टेशन से सीधे मसूरी आने में सुभीता रहता है, क्योंकि वहीं बस या टेक्सी मिल जाती है। लेकिन, यहाँ भाषण देना स्वीकार कर लिया था, इसलिए शुक्लजी के यहाँ पहुँचा। उसी दिन 11 बजे साथी कार्यानन्द और मेहताजी भी मसूरी से आ गए। हालचाल मालूम हुआ। 4 बजे दयानन्द कालेज के हिन्दी विभाग और साढ़े 5 बजे इतिहास समिति की ओर से भाषण दिये। यहाँ के अध्यापकों में प्रो. मुकर्जी अपनी खास विशेषता रखते हैं। प्रतिभा के साथ अपने विषय–इतिहास–में उनकी असाधारण रुचि है। उन्होंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 'गदर' पर डाक्ट्रेट के लिए अनुसंधान मेरी देख-रेख में करना चाहा। मैंने स्वीकृति दे दी, और यह भी बतलाया कि ब्रिटिश म्युजियम में इस सम्बन्ध में जो सामग्री है, उसकी प्राप्ति का उपाय डा. बाँकेबिहारी मिश्र बतला सकते हैं। चिट्ठी लिखने पर डा. मिश्र ने बतलाया भी। सभी संस्थाओं में अब योग्यता का नहीं, बल्कि जात-पाँत और सम्बन्ध को देखा जाता है। यहाँ के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष थर्ड डिवीजन के एम. ए. थे। यदि उनकी देख-रेख में एक-दो डाक्टर हो जाएँ, तो महिमा बढ़ जाती, इसलिए पीछे प्रो. मुकर्जी को इसके लिए बाध्य किया गया। उन्हें बहुत संकोच हुआ, मेरे पास आने में भी। जब मुझे यह मालूम हुआ तो मैंने कहा–मुझको इसके लिए जरा भी अफसोस का ख्याल नहीं हो सकता, क्योंकि मैंने तो आपके ख्याल से स्वीकृति दी थी। मुझसे जो सहायता हो सकती है उसे निस्संकोच आप मुझसे लीजिए। प्रो. मुकर्जी के विद्यार्थी उनकी हमेशा प्रशंसा करते नहीं थकते। कालेज के पालिटिक्स से उनको कोई मतलब नहीं, अपने काम से काम है। यही डर लगता है कि ऐसे योग्य आदमी की सेवा से कहीं कालेज वंचित न हो जाये। कालेज के धनी-धोरियों को इसके लिए क्या अफसोस होगा ? वह अपने दूसरे किसी आदमी को ला बैठाएँगे। शिक्षण-संस्थाओं में इस तिकड़म को देखकर सचमुच ही दम घुटता है। लेकिन, इस देश में किस जगह दम नहीं घुटता ? सभी कूड़ा-करकट, सभी दमघोटू स्थितियों के हटाने का एक ही मार्ग है, वह है लाल भवानी, साम्यवादी क्रान्ति।

31 अक्तूबर का मध्याह्न भोजन प्रो. मुकर्जी के यहाँ हुआ। बंगला भोजन था। मछली कई तरह की बनी थी। 1 बजे टेक्सी नहीं मिली, फिर बस भी चली गई और 3 बजे की बस पकड़कर हम किंक्रेग पहुँचे

और पौने 6 बजे घर पर थे। जाते वक्त अभी भी मूसरी की सड़कों पर बहुत-से आदमी दिखलाई देते थे, लेकिन अब वह सूनी थी। जया तो बिल्कुल भूल गई थी, लेकिन जल्दी-जल्दी स्मृति फिर से जागृत हो गई। दो ही हफ्ता बाहर रहे, लेकिन इसी में बड़ी और मोटी मालूम होती थी। इसका कारण मनोवैज्ञानिक था। कलिम्पोंग का एक और तरुण आ गया था, जिससे नेपाल में हमारी मुलाकात हुई थी। भारत सरकार के शिक्षा विभाग का निमंत्रण मिला, यहाँ से बर्मा की संगीति में तीन-चार बौद्ध विशेषज्ञ भेजे जानेवाले हैं, उसमें मैं भी जाऊँ। मैंने स्वीकृति दे दी। इस तरह पासपोर्ट भी आसानी से मिल जाता, यह भी ख्याल था। लेकिन, पीछे प्रतिनिधि मण्डल के जाने की जरूरत नहीं पड़ी।

इधर हैपीवेली में एक दुर्घटना की खबर मिली। 19 अक्तूबर को एक गुण्डा शराबी इधर गुजरा। मसूरी के बाहर के पहाड़ी गाँवों में शराब बनाने की छूट है, वह सस्ती मिलती है। पियक्कड़ वहाँ जाकर पी आते हैं। गुण्डा पीकर आया। पहिले उसने कल्याणसिंह के बच्चे को धमकाया। चिल्लाने पर चौधरी ने ललकारा, यहाँ से भागा। फिर रतिलाला के यहाँ उलझ पड़ा। वहाँ से चार्लविल फाटक से आगे प्लेजान्स के सामने पहुँचा, तो शर्मा स्यालकोटी और डा. रघुनन्दनलाल मिल गये। उसने छुरा दिखलाया। शर्माजी के पास एक रुपया और कुछ पैसे थे। उसे छीनकर वहाँ से रफूचक्कर हुआ। शर्माजी प्रभावशाली व्यक्ति हैं। स्यालकोट के अपने लाखों के कारबार को छोड़कर यहाँ आये और अब भी उनका बड़ा कारबार है। डा. रघुनन्दन लाल मेडिकल कालेज के बड़े पद से पेन्शन पाकर अधिकतर यहीं रहते हैं। उनके साथ यह घटना हुई, और पुलिस कुछ नहीं कर सकी। हालाँकि यह पता लग गया था कि वह यहाँ के एक हिन्दू खटिक का सम्बन्धी है। आखिर पुलिस किस मर्ज की दवा है, और क्यों पहिले से तिगुना-चौगुना उस पर खर्च किया जाता है ? जान तो पड़ता है कि अब वह केवल शासक दल की आत्मरक्षा का सशस्त्र साधन मात्र है, नागरिक स्वतन्त्रता की एक-एक बात को कुचलना उसका काम है।

इधर डा. सत्यकेतु एक महीने के लिए चीन गए थे। 10 नवम्बर को उनके स्वागत के लिए चाय-पार्टी दी गई। सभापति का आसन मुझे स्वीकार करना था। 50 से ऊपर मसूरी के सभी गण्यमान्य लोग वहाँ मौजूद थे। डा. सत्यकेतु चीन की प्रगति से बहुत प्रभावित हुए। अभी कुल पाँच ही साल तो कम्युनिस्टों को वहाँ शासन सँभाले हुए थे। चीन में बेकारी नही है, वहाँ भ्रष्टाचार बिल्कुल नहीं है। ये दो चीजें भारत से गये हुए किसी भी समझदार को सबसे ज्यादा अपनी ओर आकृष्ट कर सकती हैं। बतला रहे थे, उच्च शिक्षा निःशुल्क है। जिस कालेज में छात्रों की संख्या कुछ सौ थी, वहाँ अब उनकी संख्या हजारों हो गई है। चिकित्सा भी निःशुल्क है। अनशन का लोह कारखाना 1949 में पाँच लाख टन लोहा पैदा करता था, अब वह बीस लाख टन कर रहा है। डा. सत्यकेतु राजनीति और अर्थशास्त्र के विद्वान् हैं, इसलिए वह हरेक चीज के आँकड़े अपने साथ लाये थे। उन्होंने पत्रों में अपनी यात्रा पर कई लेख लिखे। श्रोताओं में जिनको आर्थिक कठिनाई भी नहीं है, उनके मुँह में भी डा. सत्यकेतु की बातों को सुनते पानी आ रहा था।

हम सरहपा की कविताओं के ऊपर भिड़े, जिनका मूल नष्ट हो गया है, उन्हें तिब्बती से हिन्दी में कर रहे थे। काफी परिश्रम का काम था। इस समय याद आता था कि यदि हम मसूरी की जगह कलिम्पोंग में रहते, तो बहुत अच्छा होता। वहाँ कोई न कोई तिब्बती विद्वान् सहायता देने के लिए मिल जाता।

14 नवम्बर को श्री डा. लक्ष्मीधर शास्त्री आए। 17-18 साल लन्दन में रहे। संस्कृत के विद्वान् थे, वहाँ जाकर डाक्टर हुए। कभी-कभी आर्थिक कठिनाइयों में भी पड़ना पड़ा। तो भी यहाँ से बहुत अच्छी हालत में रहे। निश्चिन्त जीवन बिता रहे थे। कानून के अनुवाद के लिए स्पेशल अफसर की नौकरी के लिए भारत सरकार ने विज्ञापन दिया। वह कानून के भी विद्यार्थी थे, संस्कृत के पंडित थे। अंग्रेजी में बने कानूनों को हिन्दी में अनुवाद करने की उनमें पूरी क्षमता थी। लेकिन विज्ञापन मात्र से नौकरी थोड़े ही मिल सकती है। वहाँ से लिखकर साफ करा लेना चाहा, लेकिन सन्देह ही में रखा गया। खतरा नहीं लेना चाहिये था, लेकिन अपने स्वतन्त्र देश का आकर्षण बहुत था। हवाई जहाज का कई हजार का खर्च उठाकर यहाँ आए। पब्लिक सर्विस कमीशन में गये। कह रहे थे–यहाँ तो पहिले ही से सब ठीक-ठाक था, इण्टरव्यू के लिए यों ही बुलाया

गया था। "कश्ती खुदा पर छोड़ के, लंगर को तोड़ के" आये थे, अब पछता रहे थे। लौटकर जाने के लिए खर्चा नहीं था, वहाँ जो नौकरी थी, उससे इस्तीफा देकर आये थे और यहाँ दिल्ली में कोई पूछनेवाला नहीं था। डा. पांडे के साथ मानव-भारती में ठहरे हुए थे। विपद अकेली नहीं आती। बेचारे गिर गये, बड़ी चोट आई, और महीने से ऊपर चारपाई पर पड़े रहे।

20 नवम्बर को हमारे मुहल्ले में रतिलाला की लड़की रुक्मणी की शादी हुई। बारात गाजियाबाद से आई। वर ग्रेजुएट और हट्टा-कट्टा था। मुहल्लेवाले देखकर बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। लाला कह रहे थे, पाँच हजार गिनवा तो लिया, लेकिन वर को देखकर हम सन्तुष्ट हैं। कन्या भी स्वस्थ और अच्छी मैट्रिक पास थी। हमारे यहाँ शादी के साथ किस तरह बरबादी होती है, इसका एक उदाहरण हमारे सामने था। जितने रुपये वहाँ दिए, उससे कम की चीज यहाँ नहीं दी होगी। ऊपर से सौ के करीब घराती-बराती मेहमानों का तीनों दिन का भोज रहा। आजकल मसूरी के सभी बनिये अपने भाग्य के लिए रो रहे हैं। रतिलाल बूढ़े लाला शादीलाल के पुत्र का एक दर्जन से ऊपर का परिवार है। उस बोझ के साथ-साथ इतना खर्च। बिदाई के दिन भोज में हम भी शामिल हुए। तरह-तरह के पकवान थे। अभी सब भाइयों को मिलाकर आधे दर्जन लड़कियाँ ब्याहने को हैं। यह सबसे बड़ी लड़की थी। हरेक के ब्याह के लिए दस-दस हजार रुपये कहाँ से आएँगे ?

**दिल्ली**–दिल्ली में सोवियत-भारत मैत्री संघ का सम्मेलन हो रहा था। मैं उसमें शामिल होने के लिए 24 नवम्बर को मसूरी से चला। मेरे मित्र श्रीहरनारायण मिश्र के पुत्र प्रो. रूपनारायण मिश्र आगरा यूनिवर्सिटी में पी-एच. डी. के लिए मेरे निर्देशन में अनुसन्धान करना चाहते थे। मैंने स्वीकृति दे दी। मैंने सोचा, दिल्ली से देहरादून की यात्रा रेल से तो बहुत कर चुका हूँ, जरा मोटर से कुरुभूमि की सैर करता चलूँ। कुछ हफ्ते अगर कुरुभूमि में विचरता, तो बहुत सन्तोष होता, यदि वह सम्भव नहीं है, तो यही सही। 25 तारीख को देहरादून से सीधे दिल्ली जानेवाली बस पकड़ी। वह सवा 10 बजे रवाना हुई। बस से एक बार पहिले भी सिवालिक को पार कर चुका था। यह दूसरी बार जा रहा था। यहाँ रास्ते पर पड़नेवाला सिवालिक सूखा नहीं है। रुड़की, मुजफ्फरनगर और मेरठ में बस थोड़ी-थोड़ी देर के लिए रुकी। कुरु की हरी-भरी भूमि बड़ी प्यारी मालूम होती थी। जान पड़ता है लोगों ने एक-एक अंगुल जमीन जोत डाली है। सौ वर्ष हुए गंगा की नहर निकले। उसने कुरुभूमि को हरा-भरा करने में और भी ज्यादा सहायता की। हमारी बस साढ़े 4 बजे दिल्ली के अजमेरी दरवाजे पर पहुँची। हमारे सहयात्रियों में एक सिक्ख दम्पती अपने 6-7 वर्ष के दो बच्चों के साथ जा रहे थे। उन्होंने अंग्रेजी में बोलने की कसम खा ली थी। यदि कोयले जैसे काले रंग को न देखते, तो मालूम होता कि कोई अंग्रेज-दम्पती बोल रहे हैं। शायद बच्चे मसूरी के किसी कान्वेन्ट में पढ़ते थे। वहाँ की सीखी अंग्रेजी कहीं भूल न जाये, इसलिए माता-पिता को फिकर पड़ी थी। उन्हीं के पास अपने तीन बच्चों के साथ एक और पंजाबी दम्पती थे। पिता का रंग बिल्कुल इतालियन जैसा था। वेष-भूषा सबसे सम्भ्रान्त और शिक्षित मालूम होते थे, लेकिन उन्होंने अपने बच्चों से अंग्रेजी में बोलने की एक बार भी कोशिश नहीं की। क्या इसके लिए सिक्ख दम्पती को दोष दिया जाए ? यह हमारी राष्ट्रीयता का भारी अपमान था, इसमें शक नहीं। लेकिन उसके अपराधी वह हैं, जो इस अपमान को करवा रहे हैं। इन्हें मालूम है कि उच्च नौकरियाँ अंग्रेजी की योग्यता के बिना नहीं पाई जा सकतीं, नेहरू अंग्रेजी की घुट्टी पीकर महान् हुए। उनके अचकन और पायजामे से भूलने की जरूरत नहीं, उनका रोम-रोम अंग्रेजियत से भीगा हुआ है। इसीलिए स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी और भी पनप रही है जब तक उनका वरदहस्त मौजूद है, तब तक ऊँची नौकरियों का दरवाजा उसी के लिए खुलेगा, जो अंग्रेजों की पूरी तौर से नकल कर सकें।

सिवालिक पार छुटमनपुर का काफी बड़ा बाजार मिला। नाम से मालूम हो रहा था, हम किसी पूर्वी जिले में हैं। रुड़की में छावनी के पास बस खड़ी हुई। मंगलौर भी अच्छा बाजार है। यह नाम हमारे पूर्वजों को कितना प्यारा था ? पश्चिमी पाकिस्तान के स्वात इलाके में मंगलौर है, यहाँ कुरुदेश में मंगलौर है, और दक्षिणी कर्नाटक में भी। मंगलपुरों की उस वक्त बड़ी माँग थी। खतौली एक अच्छा-खासा कस्बा है। मुजफ्फरनगर पहिले से बहुत बढ़ गया है। मेरठ के बारे में तो कहना ही क्या ? कुरुभूमि में ऊख की खेती बहुत हो रही

है, और चीनी की मिलें भी काफी हैं। नहर ने इसके लिए सुभीता पैदा कर दिया। बस के अड्डे पर ताँगा नहीं मिला। कुछ आगे जाकर कुली से सामान उठवाया और फिर भैयाजी के घर पर, 22, फ़ैज़ बाजार पहुँच गया।

28 को 10 बजे सबेरे नई दिल्ली में कान्स्टिट्यूशन क्लब में पहुँचे। आज यहाँ सेम्पोजिया था। हमारी भाषा में जबर्दस्ती कुछ शब्दों को लादा जा रहा है। सेमिनार, सेम्पोजिया, रिपोर्ताज ऐसे ही शब्द हैं। अभी तो लादना ही मालूम हो रहा है। लेना न लेना यह अगली पीढ़ी का काम है। सेम्पोजिया का अर्थ है लिखित गोष्ठी, जिसमें लोग अपने-अपने लेख पढ़ें और उन पर दूसरे अपने विचार प्रकट करें। मुझे ही उसका अध्यक्ष बनना पड़ा। हिन्दी और पंजाबी साहित्य के सम्बन्ध में कुछ लेख पढ़े गये। वरान्निकोफ के 'रामचरितमानस' के रूसी अनुवाद पर डा. रामविलास शर्मा ने अपना निबन्ध पढ़ा। विज्ञान के सम्बन्ध में दो अधिकारी प्रोफेसरों ने जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में रूसी साइन्सवेत्ताओं के काम पर प्रकाश डाला। मैं भी वरान्निकोफ के अनुवाद के सम्बन्ध में कुछ बोला। 1 बजे तक गोष्ठी रही।

दिल्ली शहर लम्बाई में बीस मील और चौड़ाई में भी बीस मील तक चला गया है। यदि आधुनिक यातायात के सुभीते न होते, तो सचमुच ही जाने-आने में बहुत मुश्किल होता। घोड़े के ताँगे बहुत महँगे हैं, बहुतों को मोटर के ताँगें–जिन्हें लोग फटफटिया कहते हैं–खा गये हैं। साइकल-रिक्शा कुछ ही जगहों पर चल सकते हैं। कनाट सर्कस में चार आने में हम मोटर-रिक्शा पर बैठे और आकर घर पर उतर गए। यदि घोड़े का ताँगा होता, तो दो-तीन रुपये से कम क्यों लेता ? मध्याह्न-भोजन आज भैयाजी के साथ मोतीमहल में हुआ। पेशावर के भाइयों ने बड़ी बेसरो-सामानी में यहाँ अपना भोजनालय खोला था। शुरू से ही पठानों का पुष्ट और स्वादिष्ट भोजन उचित दाम पर उन्होंने देने का व्रत लिया था। अब तो मोतीमहल सारी दिल्ली में मशहूर हो गया है। सैकड़ों आदमी मासिक हिसाब पर यहाँ से भोजन मँगवाकर खाते हैं, और उनसे कहीं अधिक यहाँ बैठकर खाते हैं। भोजनालय के दो भाग हैं। एक में घासाहारी और दूसरे में मांसाहारी बैठते हैं। तन्दूर की रोटियाँ तो गरमागरम स्वादिष्ट होती ही हैं, लेकिन खास चीज यहाँ का तन्दूर में भुना मुर्गमुसल्लम है। हमने डटकर भोजन किया। लौटे तो घर पर श्री प्रभाकर माचवे शरदजी के साथ मिले। उनसे बातें होती रहीं। शाम को भी अधिवेशन था, लेकिन हम उसमें नहीं गए। आज सारा परिवार सर्कस देखने गया। भाभीजी कितने ही सालों से सिनेमा नहीं देखती थीं, लेकिन सर्कस में डर नहीं था। हम सात आदमी थे। तमाशा शुरू होने से दो घंटे पहिले 6 बजे पहुँचे, लेकिन टिकटघर पर दूर तक कई पाँतियों का क्यू था। टिकट पाना आसान नहीं था। डेढ़ घंटे में किसी तरह टिकट आया। सवा तीन घंटा सर्कस देखते रहे। जानवरों के कई खेल थे। शेर कटघरों के छड़ों के भीतर आकर अपना तमाशा दिखला रहे थे।

29 नवम्बर को कुछ और कबीरपंथी महात्माओं के साथ बाबा नरसिंह दास आये। 'महात्मा कबीर' फिल्म बना था। फिल्मवाले भला सौन्दर्य और शृंगार को पूरी मात्रा में लाये बिना सफल कैसे हो सकते थे ? कबीरपंथी साधुओं में इससे बहुत असंतोष था, और वह चाहते थे कि इस फिल्म को बन्द किया जाये, अथवा इसमें से उन बातों को निकाल दिया जाए जिससे कबीर के अनुयायियों के भावों को ठेस लगती है। बाबा नरसिंहदास से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। असहयोग के जमाने के जेल के साथी थे। वह सरकार को एक आवेदन-पत्र देना चाहते थे। जिस समय हमारी महात्माओं से बात हो रही थी, उसी समय सूचना-विभाग के सेक्रेटरी श्री लाड आ गये। फिल्म की शिकायत इन्हीं के पास जानेवाली थी, इसलिए हमें सिफारिश करने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं थी। महात्माओं के सामने लाड साहब से भी बातचीत हुई। वह कह रहे थे कि यदि चरित्र पर कहीं आक्षेप होता, तो उस चीज को निकालने के लिए हम कह सकते हैं। कबीर साहब की जीवनियों के बारे में जहाँ दो मत हैं, वहाँ एक मत को निकालने का आग्रह नहीं माना जा सकता।

**मसूरी**–29 नवम्बर को ही हम गाड़ी में यद्यपि दूसरे दर्जे में बैठे थे, लेकिन स्थान पाने या सोने में कोई दिक्कत नहीं हुई। देहरादून के पास पहुँचते वक्त मसूरी में बादल दिखाई पड़ रहे थे। स्टेशन पर मेहताजी मिले। स्टेशन वैगन में दो रुपये में सीट मिल गई। ड्राइवर परिचित और भलामानुस था। पौने 9 बजे चलकर आध घंटे में हम किताब घर पहुँच गये, और पौने 11 बजे 'हर्न-क्लिफ'। ज्वर चार दिन पहिले भी आ सकता था,

और उस वक्त यात्रा में विघ्न होता। उसने बड़ी मेहरबानी की जो मसूरी पहुँच जाने के बाद 2 दिसम्बर को फेरा दिया। मैं दो दिन के लिए चारपाई पर आराम करने लगा, और निश्चय कर लिया कि जब तक पूरी तरह से भूख न लगे, तब तक खाना नहीं खाऊँगा। 3 तारीख को पानी भी नहीं पिया। ऐसे समय हल्की पुस्तकों के पढ़ने का अच्छा मौका रहता है। चाणक्य पर एक उपन्यास सम्मत्यर्थ आया था। सम्मति यही दी–उपन्यास दिलचस्प है। लेखक ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ अनौचित्य बरतनेवाला अकेला नहीं है। पग-पग पर ऐतिहासिकता और भौगोलिक स्थिति से विरोध है। पटना के पास पहाड़ बैठा दिया गया है। चाणक्य का एकाध नाटकों में जो कुछ वर्णन आया है, उसी को लेकर अपनी कल्पना और स्याही-कलम के भरोसे यह पोथी लिख डाली गई। कहीं-कहीं तो बहुत असह्य ढिठाई दिखाई गई है।

कल्याणसिंह का बच्चा बीमार पड़ा। दवाई-दर्पन भी करा लेते हैं, लेकिन अभी उनके जैसे लोगों का विश्वास सयानों पर ज्यादा है। सयाना बुलाया गया, वह भी अपना मन्तर-तन्तर कर रहा था और सत्यानारायण की कथा की भी व्यवस्था थी।

8 तारीख को एक बड़ी खुशखबरी मिली, 'किलडेंर' 22 हजार में बिक गया। यद्यपि मिस पूसंग और उनकी बहिन का मसूरी से जाना हमें पसन्द नहीं था। बहुत अच्छे सहृदय पड़ोसी थे। लेकिन बुढ़िया के लिए मसूरी का जाड़ा बहुत खतरनाक था। उनके लिए यह बहुत अच्छा हुआ। पाँच-सात वर्ष पहिले उन्हें इसके 60 हजार मिल जाते, लेकिन अब तिहाई पर भी बहुत खुश थे। कितना ही सामान साथ ले जाना था, जिसके लिए रेल का डब्बा ठीक किया गया था। उस वक्त अभी हमें ख्याल नहीं था कि हमें भी एक दिन इसी तरह मसूरी से बोरिया-बिस्तर बाँधकर जाना होगा।

अब मैं 62वें वर्ष के अन्त में था। तीन साल पहिले भी शरीर में जितनी शक्ति का अनुभव करता था, अब उतनी नहीं थी। जरा भी चलने-फिरने में थकावट मालूम होती, छाती भीतर से दुखने लगती।

12 दिसम्बर को श्री सेमुवालजी आये। अभी भी वह चिनी हाईस्कूल में हेडमास्टर थे। बदली कराने में सफल नहीं हुए। कहते थे, अब खाने की चीजों की उतनी दिक्कत नहीं है। डाक का प्रबन्ध पहिले से अच्छा है, और रोजाना डाक जाने का प्रबन्ध हो रहा है। तिब्बत की सीमा का ख्याल करके यहाँ सौ सशस्त्र पुलिस रखने का निश्चय किया गया है। चिनी को इसके लिए अनुकूल स्थान न समझकर अब स्कूल और दूसरे सभी दफ्तर कोठी में ले जा रहे हैं। कोठी किसी समय पहिले भी राजधानी रही है। यह वहाँ की सुन्दर पत्थर की मूर्तियाँ बतला रही थीं। 7000 फुट पर होने से वह शिमला जैसी है। यह भी बतला रहे थे कि रोगी के नीचे से होकर कोठी तक मोटर की सड़क बनने जा रही है। मोटर सड़क पर जगह-जगह काम भी लगा हुआ है। चिनी में अब कई दूकानें हो गई हैं, चाय और भोजन का होटल भी है। 1948 की यात्रा के बाद अब कितना परिवर्तन हो गया।

भूत हमारे घर की रखवाली करने में बड़ा सहायक था, लेकिन सैरसपट्टे से बाज नहीं आता था। हाँ, चौधरी के टाइगर की तरह वह लण्ढौर तक की दौड़ नहीं मारता, यहीं पास-पड़ोस और कुछ जंगलों के भीतर तक जाता। शाम के वक्त बघेरे का जेवाला बनने से बचाने के लिए उसका घर के भीतर रखना आवश्यक है। 15 दिसम्बर को अँधेरा हो रहा था, उसे बुलाकर ले आये। फाटक के भीतर आया, तो न जाने क्या चीज देखी, वह दूसरी ओर धोबिन के घर की तरफ दौड़ा और जरा देर में गायब हो गया। कमला ने भूत के लाने के दिन बहुत क्रोध प्रकट किया था। कहा था–"क्यों लाये।" और अब जब कुछ देर तक उसका पता नहीं लगा, तो वह अधीर हो गईं और पागल की तरह इधर-उधर ढूँढ़ने लगीं। अँधेरे में जिस तरह वह गायब हुआ था, उससे अनिष्ट का भारी डर था। कमला तो निराश हो गई थीं, समझा उसे बघेरा जरूर ले गया। फिर फूट-फूट कर रोने लगीं। हमें भी भूत का अफसोस था, लेकिन इतनी अधीरता नहीं दिखलाते। खैर, कुछ और देर तक जगह-जगह "भूत, भूत" कहकर बुलाया गया और वह सही-सलामत घर में लौट आया।

22 दिसम्बर की रात को कलेजे में दर्द होने लगा। गरम पानी की बोतल रखी, लेकिन उससे बहुत कम लाभ हुआ। मन कहने लगा, अगले साल से दिसम्बर से मार्च तक के महीनों के लिए मसूरी को छोड़ना पड़ेगा।

सोचने लगा, बँगले को न लिया होता, तो अच्छा था। अब किसी तरह बिक जाये, तो आठ महीने के लिए यहाँ किराये पर मकान लेकर रहेंगे और चार महीना देहरादून में। अगले दिन शहर गये। डा. ज्वालाप्रसाद ने खून का दबाव देखा। वह 185 था, होना चाहिए था 162। तो भी बहुत ज्यादा नहीं था।

एक दाँत को भरवाना था। कुल्हड़ी में एक दाँत के डाक्टर को देखा। शीलाजी ने अपने परिचय की बात कही, तो समझा अच्छा है, भरवा चलें। पहिले दाम-काम भी नहीं किया। उसने भरकर कहा, 15 रुपये। यह सरासर अनुचित था, लेकिन अब तो गलती कर बैठे थे, और झगड़ने की आदत नहीं थी। खैर, उसका भी कोई अफसोस नहीं होता, लेकिन वह तो पूरा ठग था। उसने ऐसी दवा दाँत में भर दी कि वह हमेशा के लिए काला हो गया। अब कोई देखता है, तो पूछता है—आपका एक दाँत टूट गया ? उस समय अपनी बेवकूफी और उस ठग की सूरत याद आती है।

बम्बई से एक भाषण का निमंत्रण आया था। वहाँ बड़े-बड़े हृदय-रोग के विशेषज्ञ रहते हैं, यह मालूम था, इसलिए एक पंथ दो काज था। हमने मंजूर कर लिया। पहिले दिल्ली गये, और वहाँ से 31 दिसम्बर को बम्बई के लिए रवाना हुए।

# 13
# जेता का जन्म

**बम्बई-यात्रा**–हमारी ट्रेन 1 जनवरी को साढ़े 6 बजे बम्बई सेंट्रल स्टेशन पर पहुँची। अभी अँधेरा ही था। स्टेशन पर राष्ट्रभाषा के श्री जोशीजी, व्याख्यान के प्रबन्ध करनेवाले श्री अरविंद देशपाण्डे और श्री पोद्दारजी के ज्येष्ठ पुत्र उपस्थित थे। वहाँ से सीधे पोद्दारजी के घर पर मलाबार हिल पहुँचे। अभी भी अँधेरा ही था। मसूरी में गर्मियों में कभी हफ्ते में दो मर्तबे मैं स्नान करता हूँ, नहीं तो हफ्ते में एक मर्तबे साबुन से शरीर धोना पर्याप्त समझता हूँ। लेकिन, बम्बई में तो सर्दी कभी होती ही नहीं। यहाँ दिसम्बर-जनवरी में भी पंखे की जरूरत पड़ती है, इसलिए दिन में दो बार स्नान करने की इच्छा हो, तो कोई अचरज नहीं। स्नान और चायपान के बाद साढ़े 10 बजे कार से निकला। बड़े शहरों में कार की उपयोगिता आराम और समय की बचत, दोनों के ख्याल से बहुत है। लेकिन, मैं तो चोट-फेट के डर से इसकी बड़ी आवश्यकता समझता था। फोर्ट में जाकर डायरी खरीदी। मालूम हुआ देशी कम्पनी ने विल्सन नाम की एक फौंटेनपेन बनाई है, जिसका प्रायः सारा भाग देशी है। लालच हो आई। स्वदेशी का प्रेम तो है ही। सवा आठ रुपये में उसे खरीद लिया। वह दिल्ली का लड्डू साबित हुई–खाये सो भी पछताये, न खाये सो भी पछताये। यदि न खरीदे होता, तो मन कोसता, स्वदेशी चीज को तुमने लिया नहीं और कितनी सस्ती थी ? अब खरीदा तो मालूम हुआ, वह लिखने के लिए नहीं बनाई गई है, सिर्फ भक्ति-प्रदर्शन के लिए है। कभी लिखने के लिए जब मजबूर होना पड़ता है, तो निब को उलटकर लिखता हूँ, और फिर बड़ी सावधानी करने पर भी वह स्याही का एक बड़ा बुंदा कागज पर गिरा ही देती है। फिर याद आता है, "सस्ता रोवे बार-बार, महँगा रोवे एक बार।" खैर, यह सब तजर्बा उस दिन नहीं हुआ। म्युजियम गए, तो आज नव वर्ष की छुट्टी थी। आदमी से पता लगा, माटुंगा में डा. मोतीचन्द्रजी के पास पहुँचे। हम तो एक ही के दर्शन से अपने को कृतार्थ समझते, लेकिन वहीं डा. वासुदेवशरण और रायकृष्णदास भी मिल गये। डा. वासुदेवशरण तो कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः हैं। सारा समय अध्ययन में लगाते हैं, और हमारे लिए नई-नई खोज करते रहते हैं। डेढ़-दो घंटा वहीं सत्संग में बीता। आजकल बम्बई प्रदेश की सरकार ने हिन्दी के सम्बन्ध में एक नया गुल खिलाया है। पहिले हिन्दुस्तानी के नाम से हिन्दी के मुकाबिले में उर्दू को खड़ा किया जाता था। उसमें सफलता नहीं हुई, तो अब हिन्दुस्तानी को दरवाजे से नहीं तो खिड़की से लाना चाहते हैं। यहाँ के कुछ लोगों की खोपड़ी में समाया था कि संघ की भाषा के तौर पर जो हिन्दी स्वीकृत की गई है, वह वह हिन्दी नहीं है, जिसका व्यवहार हिन्दी प्रान्तवाले करते हैं। अर्थात् इस प्रकार नई हिन्दी गढ़ने का मौका मिल जाये, और हिन्दुस्तानी को लाकर सिंहासन पर बैठा दिया जाए। हिन्दी का रास्ता अब भी साफ नहीं है, यह तो इन लोगों की चालों से मालूम ही हो रहा है, लेकिन दुनिया में कहीं भी फरमाइश पर भाषा नहीं गढ़ी गई, बल्कि जो सिद्ध समामनाय (प्रयोग में आता व्यवहार) है, उसी को लोग मानते हैं।

2 जनवरी को अँधेरी गये। सरदार भावनगर में थे। प्रभावती बहिन, अजित और प्रज्ञा मिलीं। वहाँ से फिर डा. जगदीशचन्द्र जैन के पास पहुँचे। वह दो-एक दिन में आनेवाले थे। उनकी पत्नी, पुत्री चक्रेश मिले। फिर अपनी पुस्तकों के मराठी अनुवादक और प्रकाशक मोडक साहेब के पास पहुँचे। प्रकाशन से काम नहीं चलता था, इसलिए अब वह निर्णय सागर प्रेस में काम करते हैं। भोजनोपरान्त सवा 4 बजे प्रार्थना समाज में विजय-मण्डल द्वारा संचालित हिन्दीविद्यालय में गये। श्री एस. के. पाटिल ने प्रमाण वितरण किया, मुझे भी बोलना पड़ा। पाटिल बम्बई के कांग्रेसी बाघ हैं। सभी निहित स्वार्थों के समर्थक होने से उन्हें सेठों का विश्वास प्राप्त है। यद्यपि बाज वक्त वह काटजू की तरह दाढ़ निकालने में भी जरा नहीं हिचकते, पर वह कूटनीतिक भाषा पर भी अधिकार रखते हैं। बम्बई में हिन्दी का प्रचार पहिले ही से रहा है, क्योंकि भारत में जहाँ पर भी कई भाषाएँ इकट्ठी होती रहीं, वहाँ किसी एक को सम्मिलित भाषा अपनाने की जरूरत पड़ती, और शताब्दियों के तजर्बे ने बतला दिया था कि वह मध्यदेश की भाषा ही हो सकती है। कलकत्ता में भी यही हुआ, और वही बात बम्बई में भी हुई। मद्रास में बहुत कम हुई, क्योंकि वहाँ उत्तरी भाषाओं से सम्बन्ध रखनेवाली भाषाओं के बोलनेवाले काफी नहीं गये।

जिस भाषण के लिए मैं विशेष तौर से निमंत्रित हुआ था, वह राष्ट्रभाषा समिति में ज्ञानसत्र की ओर से होनेवाला था। सरहपा पर मुझे दो दिन भाषण देना था, जो सरह के दोहाकोशों की भूमिका के रूप में पीछे प्रकाशित होनेवाला था। यहाँ पर बहुत-से हिन्दी साहित्यिक मित्र भी आये, और महाराष्ट्र महिलाओं और पुरुषों की तो यह सभा ही थी। उस दिन डेढ़ घंटा भाषण दिया और साढ़े 9 बजे बाद निवासस्थान पर लौटा।

3 जनवरी को मध्यान्ह भोजन के बाद पहिले श्री नाथूराम प्रेमीजी से मिलने गया। अब उन्होंने गृह-संन्यास ले रखा है। चौमंजिले पर रहते हैं। वहाँ से चढ़ना-उतरना हृदय के रोगी के लिए खतरनाक है। भानुचन्द्रजी से मिलकर उनके घर पर गये। भानुचन्द्रजी ने प्रकाशन का काम जोर-शोर से निकाला था, पोद्दारजी के ज्येष्ठ पुत्र कह रहे थे, बहुत-सा रुपया फँसा दिया, और किताबें बिक नहीं रही हैं। भानुचन्द्रजी कुछ समय तक बम्बई से अनुपस्थित रहकर अब फिर उन्होंने अपनी बुकसेलरी की दूकान सँभाल ली है। प्रेमीजी के यहाँ पहुँचने पर यहाँ इकट्ठा ही कई महोत्सव प्राप्त हुए। अपभ्रंश के दिग्गज विद्वान् डा. हीरालाल जैन और प्रो. उपाध्ये (कोल्हापुर) भी वहीं उपस्थित थे। त्रिमूर्ति से दरस-परस और बात करने का मौका मिला। डा. जैन अब नागपुर विश्वविद्यालय से अवसर प्राप्त कर चुके हैं। जैनधर्म के अद्भुत ग्रंथ 'जय धवला' के प्रकाशन में लगे हुए थे। प्रेमीजी का स्वास्थ्य पहिले से कुछ गिरा था, पर बाकी बातों में अभी जरा पर विजय प्राप्त किये हुए थे। सीढ़ियों पर कुछ उतरे, तो जैनेन्द्रजी मिल गये। फिर लौटे, और थोड़ी देर बातचीत होती रही।

गिरीशजी पोद्दारजी के यहाँ अध्यापन और दूसरा काम करते हैं। उन्हें लेकर कुछ खरीदने का काम किया। कुछ साड़ियाँ लेनी थीं और कुछ अम्लान लौह (स्टेनलेस स्टील) के बरतन। हृदय की परीक्षा के बारे में पोद्दारजी से सलाह हो चुकी थी। बम्बई अस्पताल में पोद्दारजी के परिवार का काफी दान है। मारवाड़ी सेठों ने इस विशाल अस्पताल को खोला है, जिसके मैनेजर श्री जयदेव सिंहानिया थे। उनको भी लेकर पोद्दारजी के साथ बम्बई के प्रसिद्ध हार्ट स्पेशलिस्ट डा. दाते के पास पहुँचे। उन्होंने एक्सरे किया, कार्डियोग्राम लिया। रक्त का दबाव 105-210 बतलाया, यह बहुत अधिक था। फिर उन्होंने कहा, रक्त-मूत्रादि की भी परीक्षा होनी चाहिए। श्री सिंहानियाजी ने अगले दिन 9 बजे उसका इंतिजाम कर दिया।

4 जनवरी को उपवास रखा, बिना चाय भी पीये 9 बजे अस्पताल पहुँचे। आध-आध घण्टे पर पाँच बार चीनी का शरबत पिला नस के खून और पेशाब की जाँच की गई। परीक्षा की रिपोर्ट अगले दिन मिलने वाली थी। भारतीय विद्या भवन में डा. भ्याणी से मुलाकात नहीं हो सकी। शाम को 6 बजे हिन्दी विद्यार्थी मण्डल के तत्वावधान में एक छोटी-सी बैठक चर्च गेट में हुई। यहीं सुदर्शनजी और प्रदीपजी भी मिले—फिल्म जगत् में हिन्दी के यही दो लेखक और कवि रह पाए हैं। दूसरे हिन्दी लेखनी के धनी क्यों नहीं जमे, इसके बारे में प्रदीपजी की राय से मैं सहमत हूँ। वह पन्त और प्रसाद की भाषा फिल्म में ले आना चाहते थे, जिसके समझनेवाले इने-गिने मिलते। उन्हें पुरानी कहावत याद नहीं आई, "जो नहिं चाहे देन विदाई। पूछै केसव की

कविताई।" केशवदास चुन-चुनकर कठिन शब्दों को अपनी कविता में भरते थे। बहुतों के सामने उसका पढ़ना भैंस के सामने बीन बजाना था। इसलिए कविता में रस न आने पर किसी के खीसे पर हाथ कैसे रखा जा सकता ? यहाँ फिल्म में भी एक के नहीं, बल्कि लाखों के खीसों पर हाथ रखना है। गीत की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे समझने में लोगों को अधिक कठिनाई न हो। मैं पन्त-प्रसाद की भाषा और उनकी कविता का प्रशंसक हूँ, खासकर प्रसादजी को तो भारत के सर्वोच्च कवियों में मानता हूँ। पर, जनसाधारण के लिए बच्चन की ही भाषा सबसे अच्छी है, और वही इस विषय में सबसे बड़े कवि माने जा सकते हैं। बच्चन सिनेमा में नहीं गये, तो बुरा नहीं किया। उर्दू कविताओं में भी बहुत-से शब्द सुननेवालों के पल्ले नहीं पड़ते, पर चलती भाषा, चलते उर्दू के छन्द और उसके साथ सिनेमा के धनी-धोरियों की धींगामुश्ती, सब मिलाकर काम बन जाता है।

रेल से गुजरात पहुँचने पर 31 दिसम्बर से कलेजे का दर्द बन्द हो गया था। मैंने समझा, सर्दी ही उसका कारण हो सकती है। डा. दाते ने बतलाया, न इसका कारण सर्दी है और न छः-सात हजार फुट की ऊँचाई ही कलेजे पर कोई बुरा असर करती है। यह बात 5 को सत्य मालूम हुई, जब दर्द फिर शुरू हो गया। मुझे कलाकार स्वेतस्लाव रोयरिक की बात प्रामाणिक मालूम हुई। उन्होंने कहा था, हृदय में कभी-कभी ऐसा हो ही जाता है, फिर वह अपने-आप प्रकृतिस्थ भी बन ज़ाता है। 1955-56 के जाड़ों के काफी समय को मैंने मसूरी में बिताया। समझ रहा था, कलेजे का दर्द फिर लौट आएगा, लेकिन वह नहीं लौटा। वही बात 1956-57 में भी हुई।

5 जनवरी को सबेरे 9 बजे बिहारी एसोसियेशन में गया। वैसे भोजपुरियों की संख्या बम्बई में लाखों में होगी, लेकिन वह अधिकतर मजूर हैं। उन्हें सभा-एसोसियेशन से कोई मतलब नहीं। ऐसे ही होली-दीवाली को मिल-मिला लेते हैं, लेकिन उनमें कुछ बुद्धिजीवी तथा नामामत्र के व्यापारी भी हैं। उन्होंने अपना एसोसियेशन कायम किया है। बिहारी एसोसियेशन राजनीतिक सीमा के अनुसार केवल बिहार-भर का नहीं हो सकता, क्योंकि आरा-छपरा और गाजीपुर-बलिया-गोरखपुर के भीतर भाषा और संस्कृति सम्बन्धी सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती। मुझे अपने भाइयों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई, और उन्हें भी।

मध्याह्न में सरदार पृथिवीसिंह आये। उनका स्वास्थ्य वैसा ही था, जैसा कि पिछली बार देखा था। भावनगर में काफी जमीन लेकर एक कृषि फार्म खोला था। लेकिन आज के जमाने में जब तक खुद आदमी किसान न बने, तब तक खेती चल नहीं सकती। ऊपर से इधर दो-तीन साल से सौराष्ट्र में वर्षा ठीक से नहीं हुई, जिसका भी असर पड़ा। सोच रहे थे, कैसे इससे पिण्ड छुड़ाया जाये ? आखिर सरदार को अपने राजनीतिक जीवन से अवकाश लेने का तो अवसर नहीं मिल सकता, और वह उनसे सारा समय माँगता है। पार्टी आफिस में गये। सैन्डहर्स्ट रोड के उसी राजभवन में, जहाँ पहिले भारत की केन्द्रीय पार्टी का कार्यालय था, अब महाराष्ट्र पार्टी है। केन्द्रीय पार्टी दिल्ली में चली गई है। दिल्ली राजधानी होने से वहाँ सदस्यों के आने-जाने का सुभीता है, और कितने ही बड़े-बड़े नेता पार्लियामेन्ट के सदस्य भी हैं, इसलिए दिल्ली छोड़कर एक कोने में पार्टी केन्द्र का रखना सम्भव नहीं था। साथी अयोध्याप्रसाद झाँसी के बहुत पुराने क्रांतिकारी और पार्टी मेम्बर हैं। अब वह यहीं मजूरों में काम करते हैं। वह बेलगाँव ले गये, जहाँ शिक्षा के माध्यम पर बोलते हुए मैंने कहा, प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषाओं को ही होना चाहिए। वहाँ से मारवाड़ी पुस्तकालय में भाषण दिया। यही बम्बई में हिन्दी का सबसे बड़ा पुस्तकालय है।

हमारे मेजबान श्री घनश्यामदास पोद्दार के सरल और मृदु स्वभाव के बारे में पहिले भी कह चुका हूँ। उनकी पीढ़ी बहुत बातों में मारवाड़ी न रह भारतीय हो गई है। सेठानी भी हिन्दी पुस्तकों के पढ़ने में रुचि रखती हैं। और बड़ा लड़का तो पिता से आगे है। अपने मद्रास की ओर के सैर-सपट्टे की बात बड़े रोचक ढंग से बतला रहे थे। किसी अपने मिल के कर्मचारी नौजवान को साथ ले गये थे। वह इनकी क्या सहायता करता, होटल में ठहरता और शराब पीकर अंटेचित हो जाता। शराब और गोश्त अब आजकल की पीढ़ी के लिए घृणा की चीज नहीं है। लेकिन, पीढ़ियों से मांस के प्रति जो घृणा दिमाग में बैठाई गई है वह अब भी

बहुत-से सेठ-पुत्रों में देखी जाती है। अधिकतर उनमें अंडे तक ही जा पाते हैं। जाने को तो तरुण पोद्दार कई शहरों में गये, लेकिन उन्हें मजा नहीं आया। हाँ, साथी कदम-कदम पर खिझाता और साथ हँसता रहा। घनश्यामदासजी वैसे देखने में अस्वस्थ नहीं मालूम होते थे, लेकिन डाक्टर तो करोड़पति सेठों के ऊपर ही पलते हैं। यदि देखने-सुनने में आदमी का स्वास्थ्य अच्छा मालूम होता है तो कह देते हैं–हार्ट की बीमारी, खून का दबाव है। जँचाई की काफी फीस मिल जाती है। हमारे भारत-सोवियत-संस्कृति संघ के प्रधान डा. बालिगा की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। वे इस वक्त बम्बई के सबसे बड़े सर्जन हैं। दिल्ली में अबकी उनसे परिचय हो गया था, लेकिन वह हृदय के विशेषज्ञ नहीं थे, इसलिए मैं उनके पास नहीं गया। पोद्दारजी का तो उन्होंने बहुत सफल आपरेशन किया था। कह रहे थे, महीनों मैं फीस देने के लिए व्यग्र था, और वह बिल नहीं भेज रहे थे। पोद्दारजी का एक मकान दिल्ली में भी है, जिसका बहुत-सा भाग उन्होंने किराए पर दे रखा है, लेकिन दो-तीन अच्छे कमरे अपने लिए रखे हैं। उनसे कहा कि दिल्ली में आएँ तो वहाँ ठहरें। उन्होंने अपने आदमी को चिट्ठी भी लिख दी। उनके ज्येष्ठ पुत्र ने चिट्ठी में यह भी लिख दिया कि अगर राहुलजी को रुपए की जरूरत हो, तो दे देना। पर, उधार रुपया लेना मेरी आदत के विरुद्ध है।

6 जनवरी की रात को तरुण पोद्दार और गिरीशजी स्टेशन पर पहुँचाने आए। सीट ऊपर की मिली थी, जो कुछ कष्टप्रद तो जरूर हुई, पर सोने में कोई दिक्कत नहीं थी। 7 के सबेरे हमारी ट्रेन रतलाम में थी। श्री माचवेजी भी इसी ट्रेन से जा रहे थे। हमारे नीचेवाली सीट पर जो सज्जन थे, वह रतलाम में ही उतर गए। एक तरुण दसूजा सैनिक अफसर दिल्ली तक के लिए साथी रहा। कोटा से आगे कम्पार्टमेंट में हम ही दोनों रह गये। फ्रान्टियर मेल था, इसलिए दूर-दूर के स्टेशनों पर खड़ा होता था। साढ़े सात बजे शाम को दिल्ली पहुँचे, और रिक्शा ले भैयाजी के घर पहुँचे।

8 तारीख को दिन-भर दिल्ली में रहे। पार्टी के साथियों से मुलाकात हुई। साथी घाटे बीसियों वर्ष से हृदय के मरीज हैं। कहते थे, इससे छुटकारा नहीं होता, और न इससे डरना चाहिए। न डरना चाहिए, इसके सबूत वह स्वयं सामने मौजूद थे। देवली में हम एक साल साथ रहे। उस साल भी वह हड्डी-चमड़े के धनी मुट्ठी भर के शरीर में हृदय के रोग को पाले हुए थे, और अब भी वह बिल्कुल वैसे ही थे, न घटे न बढ़े। उन्होंने बतलाया, "खाने-पीने में थोड़ा संयम चाहिए, दो-चार दवाइयाँ करनी चाहिए और प्रसिद्ध डाक्टरों के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। सभी नये व्यक्ति पर तजर्बा करते हैं।" मुझे भी भुक्तभोगी की चिकित्सा अधिक पसन्द है, डायबेटीज़ के तजर्बे ने यही सिखलाया है। भैया ने सर्पगन्धा की गोलियाँ दीं, और द्राक्षासव पीने के लिए कहा। मैं बहुत दिनों तक वही करता रहा।

शाम को 10 बजे देहरादून की गाड़ी पकड़ी, और 9 को सबेरे देहरादून पहुँच गया। जरा-सी सावधानी न करने से टेक्सी नहीं मिली, और बस भी चली गई, इसलिए अब दोपहर की बस पकड़नी थी। शुक्लजी के यहाँ गए। पति-पत्नी किसी उत्सव में गए थे। भोजन पं. हरनारायण मिश्र के यहाँ हुआ। फिर आकर 1 बजेवाली बस पकड़ी, 2 बजे किंक्रेग पहुँचे। कोई रिक्शा नहीं मिला, इसलिए लाइब्रेरी तक पैदल चलना पड़ा। चढ़ाई भी थी, बहुत धीरे-धीरे चले, तो भी बहुत बुरा हाल था। मन में यही बात काम कर रही थी, कि हृदय की बीमारीवाले को चढ़ाई चढ़ना बुरा है। लाइब्रेरी से रिक्शा लेकर घर के पास तक चले आए। पूसंग बहिनें दिसम्बर में ही यहाँ से चली गईं। कितनी सहृदय थीं। जया के दर्शन सबसे पहिले हुए। अब की वह पहचान गई। लाल सलाम, नमस्ते, प्रणाम, आदाब-अर्ज़ चार-चार तरह से नमस्कार करना जानती है।

ईगर की चिट्ठी आई थी, जिसे मैं दिखाने ही के लिए ले आया था। कमला ने पहिले ही देख लिया। फिर वही आग्रह। ईगर को कभी पत्र न लिखें। यद्यपि मैं समझता था, कमला के भावों का सबसे ज्यादा ख्याल करना होगा। सिर्फ उनके लिए ही नहीं, बल्कि बच्चों के लिए भी। पर यह समझ में नहीं आता था, कि ईगर की चिट्ठियों से उसमें क्या बाधा पड़ सकती है ? मैं जानता हूँ कि जया और उसके आनेवाले अनुज को ही मुझे अपना बाकी जीवन देना है, क्योंकि वह ऐसे देश में पैदा हुए हैं, जहाँ बच्चे राष्ट्र के अवलम्ब की कोई आशा नहीं रख सकते। माता-पिता ही उनके सर्वस्व हैं। पर, ईगर भी मेरा प्रिय पुत्र है, पिता से सलाह-मशौरे-

की तो आशा रखता है। वह साम्यवादी देश में पैदा हुआ है, वहाँ समय बीतने की जरूरत है, वह अपने-आप अपनी क्षमता के अनुसार निरबाध पढ़-लिख लेगा और काम भी पकड़ लेगा। यदि मैं पत्रों का भी जवाब न दूँ, तो यह मेरे ऊपर भारी लांछन होगा। क्या करूँ। "आग्रह हो या दुराग्रह, कमला की ही बात माननी पड़ेगी", यही दिखाई पड़ता था।

10 जनवरी को पूर्वाह्न में दो बार कलेजे में पीड़ा हुई। डा. दाते की बतलाई दवाई नियमपूर्वक खाने लगा और द्राक्षासव भी। ऐसा मालूम हो रहा था, अब जाड़ों में मसूरी से हटना ही पड़ेगा। कुछ दिनों तो यही ख्याल दिमाग में चक्कर काटता रहा, कि मसूरी का मकान यदि बिक जाए, तो दूसरा आठ-दस हजार में देहरादून में ले लूँ। देहरादून से 25-26 हजार शरणार्थी जब से चले गये, तब से वहाँ मकानों का दाम गिर गया था। लेकिन मैं निश्चय कर चुका था, आगे मकान लेने-देने का जो भी काम होगा, वह कमला के ऊपर छोड़ना है।

11 जनवरी को राजेन्द्र बाबू की चिट्ठी आई, जिसमें हमारे 'प्रत्यक्ष-शरीर कोश' के शब्दों को उद्धृत करके डा. सुन्दरलाल ने जो आक्षेप किये थे, उसे भी भेजा था। मैंने जवाब में लिख दिया, और बातों में चाहे जैसे शब्द इस्तेमाल करें, लेकिन जहाँ तक परिभाषाओं का सम्बन्ध है, उसमें भारत की सभी भाषाएँ–असमिया, बंगला, उड़िया, तेलुगु, तामिल, मलयालम, कन्नड़, मराठी, नेपाली, गुजराती आदि–बराबर के हिस्सेदार हैं। पिछले दो हजार वर्षों में भारत और वृहत्तर भारत में एक ही तरह की परिभाषाएँ इस्तेमाल होती आई हैं। जब तक इस परम्परा को तोड़ने के लिए तैयार न हों, तब तक परिभाषाएँ सरल तत्सम शब्दों में बनें, यह छोड़ दूसरा कोई रास्ता नहीं है। यदि सुन्दरलालजी के अनुसार खोली (मंत्रिमंडल) और बिचबिन्दी (केन्द्र) की तरह के शब्दों को बनाया जाने लगा, तो वह हिन्दी-क्षेत्र से बाहर बिल्कुल स्वीकार नहीं किये जाएँगे। दो ही रास्ता है। या तो उर्दू की परम्परा को अपनाकर अरबी से शब्दों को लो, या बाकी भारतीय भाषाओं की परम्परा को लेकर तत्सम शब्दों को।

हमने 'वोल्गा' (अंग्रेजी) 'राजस्थानी-रनिवास' और 'बहुरंगी मधुपुरी' तीन पुस्तकें छपवाकर प्रकाशन का तजर्बा कर लिया। यद्यपि उनमें लगे रुपयों के निकल आने की आशा थी, इसलिए इस तजर्बे को बहुत कड़वा नहीं कह सकते, तो भी असफल रहा, यह तो निश्चित है। प्रकाशन वही कर सकता है, जिसके पास काफी पूँजी है, और सारा समय उसके लिए दे सकता है। हमारे पास दोनों नहीं थे। कई लेखकों ने अपने प्रकाशन खोले हैं, और उनमें यशपाल और अश्कजी जैसे असफल भी नहीं रहे हैं। पर, लेखकों के लिए अच्छा यही होगा कि यदि वह कलम रखने के लिए तैयार नहीं हैं, तो प्रकाशन में हाथ न लगाएँ।

**दिल्ली**–कमला अन्तर्वत्नी थीं। सैलानी सीजन का समय होता, तो मसूरी में सेंट मेरी अस्पताल प्रसव के लिए सबसे अच्छा था। वैसा प्रबन्ध तो दिल्ली में भी नहीं था। पर, इस वक्त जाड़ों में वह बन्द था, इसलिए दिल्ली जाना ही अच्छा समझा गया। 15 जनवरी को जया और कमला को लिये हम टेक्सी में सीधे स्टेशन पहुँचे। शाम का भोजन कमला ने वहीं किया। एक रुपये में मांस और देहरादून की वासमती का बढ़िया भात देखकर मालूम हुआ, सतयुग लौटना चाहता है। कमला का आग्रह था कि मैं शुक्लजी के यहाँ तक चला जाऊँ, किन्तु परिपूर्ण गर्भा को इस तरह छोड़ना मैंने पसन्द नहीं किया। सीट पहिले से रिजर्व नहीं की गई थी, पर रिजर्व करनेवाला तरुण मेरे नाम से परिचित था। उन्होंने एक बहुत अच्छे कम्पार्टमेंट में नीचे की सीटें रिजर्व कर दीं। जया ने पहिले-पहिल रेल और रेल का प्लेटफार्म देखा था। वह तो प्लेटफार्म पर कितनी देर तक टहलती रही। बहुत-से लोग आसपास चल रहे थे, लेकिन उनकी उसे पर्वाह नहीं थी। हरेक चीज को गौर से देखती, और कुत्ते को देखकर "भूत-भूत" कहने लगती। चलने से पिहले मेहताजी और उनकी पत्नी भी आ गये।

16 जनवरी को पौने 6 बजे हम दिल्ली पहुँचे। वर्षा थोड़ी हो गई थी। भैया स्टेशन पर आए थे। ताँगा लेकर हम उनके घर पर पहुँचे। जाड़ों की रात बड़ी होती है, इसलिए अभी भी अँधेरा था। ऊपर रहने की जगह पर गए। जया ने जल्दी इसे अपना घर बना लिया, और भाभीजी, उनकी माताजी तथा भैया सबसे हिल-मिल गई। मुन्ना (भाभीजी की बहिन का पुत्र) से मिलना तो चाहती थी, लेकिन उसने एकाध बार धक्का देकर

गिरा दिया, फिर दूर-दूर रहने लगी। "हित अनहित पसु पंछिउ जाना" बाबा ने ठीक ही कहा है। बम्बई से डाक्टर की रिपोर्ट भी पोद्दारजी ने भेज दी थी, जिसमें दवाइयों का नाम था। विशेष तो वही सर्पगन्धा थी, जिसे बहुत महँगा अंग्रेजी नाम देकर बेचा जाता था। भाई साहब ने अपनी फार्मेसी में उसकी गोलियाँ बना रखी थीं।

कमला के लिए कौन-सा अच्छा अस्पताल होगा, इसकी खोज करनी थी। हाज़रा बेगम से मिले। वह महिलाओं में काम करती थीं। उन्होंने डा. सुशीला दुग्गल का नाम लिया, जिनका अपना निजी अस्पताल था। अगले दिन (18 जनवरी को) डा. सुशीला के यहाँ खान मार्केट (नई दिल्ली) में गए। उन्होंने कहा—प्रसव-समय 25 के आसपास है, और यह भी कि लड़की होगी। मैंने कहा—मेरी भविष्यवाणी तो अभी तक झूठी नहीं हुई है। मैंने पिछली सन्तान के लिए कमला से शर्त लगाई थी और पहिले ही से नाम जया रख दिया था। वही बात हुई और अबकी मैंने लड़के का नाम जेता पहिले ही से रख छोड़ा है। खैर, यह मालूम हुआ कि इस महीने के अन्त तक प्रसव हो जायेगा। वहाँ से पास में ही श्रीनाथ के पुराने रहने के स्थान में गए, पर वह वहाँ से चले गए थे। शिव शर्मा जी सबेरे ही आ गए थे। वह नेपाल आर-पार करना चाहते थे, लेकिन एक-तिहाई रास्ता नापने पर मलेरिया ने आ घेरा और उन्हें लौट आना पड़ा। अपूर्ण यात्रा को पूर्ण करने का अब भी ख्याल रखते थे।

डाक्टर ने बहुत-सी चीजों की लिस्ट बनाकर दी थी, जिनमें से अधिकांश को चाँदनी चौक से खरीद लाये। जामा मस्जिद के पास कुछ पुरानी उर्दू की पुस्तकें मिलीं। उर्दू के खरीदार अब कम ही हैं। बहुतों को तो 50 फीसदी कमीशन पर भी देने के लिए तैयार थे। बुकसेलर अपना रोना रो रहे थे।

एक दिन मोटर-रिक्शे पर कहीं जा रहे थे। साथ बैठे दो सज्जन कह रहे थे—"देखो, सन् 1957 आ रहा है। भयंकर घटना घटनेवाली है।" हमारा देश आधुनिक युग में तब तक नहीं आ सकता, जब तक ज्योतिषियों और इस तरह की बातों पर विश्वास है। 1857 में गदर हुआ, 1757 में पलासी के युद्ध में अंग्रेजों ने विजय प्राप्त की, इसलिए इन औंधी खोपड़ियों को सभी 57 कोई न कोई भयंकर घटना लानेवाले हैं। 1657, 1557, 1457, 1357—सभी दुर्घटना लानेवाले थे, क्या ? जिन स्वार्थों को अभी हानि उठानी पड़ी है और जो अपने गुरुघंटालों की तानाशाही कायम करने का स्वप्न देख रहे हैं, वस्तुतः वह सन् 57 की घटनाओं के जबर्दस्त प्रचारक हैं।

20 की शाम को श्रीनाथ आये। कनैला का समाचार पूरी तौर से बतलाया, जिससे मालूम हुआ कि घर की हालत उतनी बुरी नहीं है जितनी रामविलास ने अपनी चिट्ठी में लिखी थी। हाँ, चोरियाँ होती हैं। पुराने मजूर अब अपने बाप-दादों जैसे नहीं रहे। सहस्राब्दियों तक आदमी को कैसे गुलाम रखा जा सकता है ? जिनका उनकी गुलामी में ही हित में था, उन्हें अब सबक सीखना होगा।

21 जनवरी को भैया-भाभी और हम डा. सत्यकेतु और शीलाजी के यहाँ गए। वह भी जाड़ों के कारण मसूरी से यहाँ चले आए थे। जब तक पार्लियामेंट की बैठकें शुरू नहीं होतीं, तब तक के लिए संसद् सदस्यों के मकान खाली ही पड़े रहते हैं। ऐसे ही एक मकान में वह रह रहे थे। पार्लियामेंट के सदस्यों की संख्या बहुत बढ़ गई, तो उनके रहने के स्थानों को बढ़ाना पड़ा। यह भवन वैसा ही था। उसमें आराम का और स्थान के पूरी तौर से उपयोग का ख्याल रखा गया था। डा. सत्यकेतु के 'आचार्य चाणक्य' ऐतिहासिक उपन्यास पर कलकत्ता की एक संस्था ने हजार रुपये का पारितोषिक दिया था, उसके लिए वह कलकत्ता जानेवाले थे। ऐतिहासिक उपन्यास के साथ न्याय वही कर सकता है, जो उस समय के इतिहास की सारी उपलब्ध सामग्री के संग्रह और आलोड़न के लिए तैयार हो, और अपनी जिम्मेदारी को भी समझता हो। डा. सत्यकेतु इसके योग्य थे, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

22 जनवरी को कुछ हिन्दी पुस्तकें और स्याही-पेंसिल के लिए हम फ़ैज़ बाजार की किताब की दूकानों में गए। एक सज्जन ने कहा—"वी डोंट कीप स्टेशनरी" (हमारे पास कलम-कागज नहीं हैं)। फिर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के बारे में पूछने पर कहा—"वी डोंट हैव हिन्दी पेपर" (हमारे पास हिन्दी पत्र नहीं हैं)। वह केवल

अंग्रेजी बोलने की कसम का खा चुके थे। उनको यदि इसका कुछ भी पता नहीं था कि हमारे देश में अंग्रेज का राज्य नहीं है, इसलिए अंग्रेजी का राज्य नहीं रह सकता, तो इसमें उनका क्या कसूर ? वह तो देख रहे थे कि अभी भी हमारे महाप्रभुओं के कारण दिल्ली में अंग्रेजी का ही बोलबाला है।

23 जनवरी को श्रीनाथ और उनके परिवार से मिलने 10 नम्बर किंग्सवे में गए। 10 नम्बर की कोठी तो केन्द्रीय मन्त्री की है। वहाँ भला श्रीनाथ के लिए क्या स्थान हो सकता था ? उसके पीछे नौकरों के क्वार्टर थे। कोठीवालों के पास उतने नौकर नहीं थे। बहुत-सी कोठरियाँ खाली पड़ी थीं। शरणार्थियों के हल्ले के समय उनमें बहुत-से आकर रहने लगे। राम-हल्ले में श्रीनाथ जैसे अशरणार्थियों ने भी लाभ उठाया। छोटी-छोटी कोठरियों में नर-नारी कच्चे-बच्चे भरे हुए थे। उन्हीं में से एक में श्रीनाथ, उनकी बीवी और दो बच्चे रहते थे। बड़ा लड़का 14 वर्ष का, कहीं स्कूल में पढ़ रहा था। छोटा (जयप्रकाश) 6 वर्ष का था। मैं जाकर चारपाई पर बैठ गया। अपने बड़े भाई का अभिमान तो होना ही चाहिए था, उन कोठरियों में रहनेवाले कुछ और भी जानते थे, इसलिए वह भी नमस्ते करने के लिए आये। आजकल कोठी में श्री के. सी. नियोगी रहते थे। श्रीमती नियोगी को मालूम हुआ, तो उन्होंने श्रीनाथजी से मिलाने का आग्रह किया था। पर, मैं समय नहीं निकाल सका। श्रीनाथ की जीविका का साधन मिठाइयाँ बना फेरी करके बेचना है। खर्च बहुत कम कर लिया होगा, लेकिन दिल्ली में चार प्राणियों का जीवन-निर्वाह तो करना ही था। उस परिवार को देखकर मैं जान सकता था कि हमारे देश की भारी संख्या किस अवस्था में रहती है।

26 जनवरी को स्वतन्त्रता और गणराज्य दिवस था। दिल्ली में उसकी बड़ी तैयारी थी, लेकिन वह अधिकतर सरकार की ओर से ही थी। फ़ैज़ बाजार की सड़क बहुत बड़ी सड़क है, यह बाजार भी अब विशेष महत्व रखने लगा है। जितनी बसें इस रास्ते जाती हैं, उतनी दिल्ली की किसी सड़क से नहीं जाती होंगी। उस दिन 9 बजे से ही यातायात बन्द कर दिया गया। राष्ट्रपति को सलामी देकर सारा सैनिक जलूस यहाँ से लालकिले की आरे जानेवाला था। हमारे घर के बराण्डे के नीचे, पर परली ओर से उसे गुजरना था। साढ़े 11 बजे जलूस आया और डेढ़ घंटे में यहाँ से पार हुआ। सेना, कला, हस्त-शिल्प, उद्योग-धन्धे आदि का प्रदर्शन था। पर, हमारे देश की असह्य दरिद्रता को छिपा रखा गया था। उसके लिए जबानी जमाखर्च करना-भर कांग्रेस के नेताओं का काम थां। कभी गाँधीजी के नाम पर लोगों की आँखों में धूल झोंकते, अब के आवड़ी-कांग्रेस में समाजवाद का नाम लिया गया, और मौके-बेमौके उसकी दुहाई दी जाती है।

उस दिन शाम को माचवेजी और शरदजी आये। उनके साथ हम उनके घर गए। डा. सुशीला के यहाँ जाने पर उन्होंने बतलाया कि चार ही पाँच दिन और हैं। दर्द शुरू होते ही आ जाएँ। लौटते वक्त बड़ी मुसीबत में फँसे। तमाशा देखनेवाले लोग अपना घर-बार छोड़कर मुख्य-मुख्य सड़कों पर आ गए थे। टेक्सी एक जगह जाकर रुक गई। फिर टेक्सीवाला जाने से इन्कार करने लगा। क्या करते। साढ़े चार की जगह नौ रुपया देना स्वीकार किया, और बहुत चक्कर लगाकर 9 बजे वह हमारे घर पर पहुँचा गई। ट्राफिक का प्रबन्ध क्या हमारी पुलिस कभी नहीं कर सकेगी ? जहाँ रोकना चाहिए था, वहाँ रोकने के लिए कोई तैयार नहीं, और जहाँ चारों ओर से सवारियाँ पहुँच जाएँ, वहाँ रोकने के कारण सवारियों की लम्बी पाँतियाँ खड़ी हो जाएँ।

श्री ऋषिजी से पहिले ही से पत्र-व्यवहार था। वह रूसी-हिन्दी कोश में लगे हुए थे। रूस में दो साल भारतीय दूतावास में रह चुके थे, इसलिए भाषा का अभ्यास किया था। हिन्दी उनकी बहुत मजबूत नहीं थी, और संस्कृत का परिचय भी नहीं था, लेकिन अभी नौजवान थे, अध्यापन से अपनी योग्यता बढ़ा सकते थे। बहुत परिश्रमी थे, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने महाकवि पुश्किन की प्रसिद्ध कविता 'सिगान' (रोमनी) का रूसी से हिन्दी में अनुवाद किया, और उसमें काफी सफल रहे। पूछने पर मैंने कहा था–रूसी से हिन्दी करने के काम को लो और उसके अंशों को प्रकाशित करते जाओ। पत्रवाले छापेंगे या नहीं, इसमें हिचकिचाहट कर रहे थे। लेकिन, हिन्दी के पत्रों ने जब छापना शुरू किया तो उनकी हिम्मत खुल गई। कोश बहुत बड़ा काम था। चाहते थे, यह अच्छे से अच्छे रूप में छपें। मुझसे भी सहायता लेना चाहते थे। मैंने कहा–यही समय

है, शाम को आ जाया करो।

28 जनवरी को उर्दू बाजार में बुकसेलरों की दूकानों की खाक छानता रहा। एक जगह 'तारीख तिबरी' (फारसी) देखी। मैंने तुरन्त उस पर हाथ मारा। बतला रहे थे, यहाँ तो इसे कोई पूछता नहीं, हम पाकिस्तान भेजने ही वाले थे। यह बहुत पुराने इतिहास-ग्रन्थों में है, जिसमें ईरान और मध्य-एसिया पर अरबों के विजय के बारे में बहुत लिखा हुआ है।

आज नेशनल स्टेडियम (राष्ट्रीय अखाड़े) में लोक-नृत्य होनेवाले थे। हम भी वहाँ गए, और सवा 6 बजे से 9 बजे तक रहे। अखाड़े में जितने आदमी बैठ सकते थे, उसके चौथाई ही मुश्किल से थे। पांगी (हिमाचल चम्बा), कश्मीर, पंजाब, पेप्सू, बुन्देलखण्ड, भरतपुर, मारवाड़, सौराष्ट्र, बम्बई, गोवा, मद्रास, पांडीचेरी, उड़ीसा, मध्य भारत, मध्य प्रदेश, सिकिम, नागा, मनीपुर आदि के जन-नृत्य दिखलाए गए। कुछ नृत्य नकली कलाकारों और कलाकारिनियों ने दिखलाए, यह खटकनेवाली बात थी। दर्शकों की आँख में धूल झोंकना अच्छा नहीं है। सबसे अच्छा नृत्य मनीपुर, पांगी, नागा, व्रज और राजस्थान के थे। बम्बई का सिंह-नृत्य भी अच्छा रहा। राष्ट्रपति भी आये थे।

साथी यज्ञदत्त शर्मा ने आग्रह किया कि मैं किसी प्रतिनिधि-मण्डल में विदेश जाऊँ। मैंने कहा, मैं चीन ही जा सकता हूँ, और उसमें भी तिब्बत जाने का मुझे लालच है।

अब की अपनी किताबों के बदले में बुकसेलरों से डेढ़-दो सौ पुस्तकें लीं। प्रकाशन का यह तो लाभ होना ही चाहिए। समय मिलने पर उनमें से कुछ पढ़ता भी रहा। नागार्जुन के 'बलचनमा' को समाप्त किया। ग्रामीण जीवन का बड़ा ही सजीव चित्र है। शिकायत यही है कि पाठक प्यासा ही रह जाता है।

**जेता का जन्म**–रात को डेढ़ बजे ही से कमला को दर्द होने लगा था। पहिले 15-20 मिनट के अन्तर से, फिर जल्दी-जल्दी। 31 जनवरी को साढ़े 4 बजे तक किसी तरह बिताया। उस समय टेक्सी मिलने में भी दिक्कत थी, और डाक्टर की भी परेशानी थी। जाना बहुत दूर था। फिर भैया और हम कमला को लेकर डा. सुशीला के पास गए। उन्होंने तुरन्त सँभाल लिया। पौने 6 बजे कहा, अभी पीड़ा का आरम्भ ही है। शाम तक शायद प्रसव होगा।

सवा 10 बजे फोन किया, तो डा. गिल ने बतलाया कि 10 बजने में 10 मिनट था, जब पुत्र पैदा हुआ। रमन माई ने अपनी कहानी में कहा, कई बहनों के बाद मेरी पीठ पर जब भैया पैदा हुआ, तो मेरी पीठ पर भेली फोड़कर प्रसाद बाँटा गया था। भाभीजी और अम्मा ने भी अनुमोदन करते हुए तुरन्त भेली मँगवाई और जया की पीठ पर फोड़ी। सब लोग ढोलक लेकर, भाभीजी, उनकी माँ, भांजा-भांजी, हम और जया सभी डा. सुशीला के अस्पताल में पहुँचे। अब की बहुत कष्ट उठाना नहीं पड़ा। कमला लेडी डाक्टर की तारीफ कर रही थीं। यहाँ सेंट मेरी जैसे सब साधन मौजूद नहीं थे, तो भी नर्स बहुत अच्छी थीं। अगले दिन जाने पर देखा, जेता ने आँखें खोल दी हैं। पैदा होते वक्त जया से भी अधिक वजन जेता का था, अर्थात् साढ़े 8 पौंड। डाक्टर की फीस 150 रुपये, आठ दिन रहने का खर्च 64 रुपये और नौकर-चाकरों के लिए कुछ, सब मिलाकर 250 रुपये देना था। 7 फरवरी को कमला अस्पताल से चली जाएँगी, यह डाक्टर ने बतला दिया।

उस दिन 'आजकल' कार्यालय में गया। चन्द्रगुप्तजी, सत्यार्थीजी, मन्मथजी और दूसरे साहित्यकार मिले। डायरेक्टर सिन्हा सारे विभाग के अध्यक्ष हैं। वह अंग्रेजी में ही बोल सकते हैं, और उसी के कारण तो इस पद पर हैं। उन्होंने बुद्ध शताब्दी के सम्बन्ध में प्रकाशित होनेवाली पुस्तक के लिए एक लेख माँगा था। मैंने 'दीपंकर श्रीज्ञान' पर एक लेख लिखकर भेज दिया, उसे 'आजकल' ने छाप दिया। अब दूसरा माँग रहे थे। कह दिया 'शान्ति रक्षित' पर भेजेंगे। वहाँ से कुमारिलजी के साथ हरिजन-निवास गये। वियोगी हरिजी वहाँ नहीं थे। कुछ देर वहाँ घूमकर चले आये।

अम्मा को छोड़े तीन दिन हो गये, और इतने ही में जया भूल गई। अच्छा ही था, नहीं तो रो-रोकर तंग करती। बच्चों का प्रेम बँटा रहे, तो अच्छा है। 3 फरवरी को जया को साथ ले गये। उसने जेता को बड़े गौर से देखा। नमस्ते, सलाम, चुम्बन और प्यार भी किया। जेता दिन में अधिकतर सोता रहता। अभी

जन्म के बाद की डायरिया नहीं हुई थी। पेट साफ करने के लिए प्रकृति ने इसका नियम बना रखा है। इसी दिन राजेन्द्र बाबू की चिट्ठी मसूरी से लौटकर आई। उन्होंने लिखा था, मेरी चिट्ठी को सुन्दरलालजी के पास भेज दिया है। पं. सुन्दरलाल का मेरा भाषा के सम्बन्ध में मतभेद बहुत पुराना है। लेकिन, उसके कारण हमारे सम्बन्ध पर कभी कोई असर नहीं पड़ा। अगले दिन दोपहर बाद जैनेन्द्रजी भी आए। फ़ैज़ बाजार इसी पाँती में 8 नम्बर के घर में रहते हैं। मैं भी वहाँ गया, देर तक बात होती रही।

5 फरवरी को पार्टी आफिस में साथी अजय से बातचीत हुई। मैंने फिर से पार्टी-मेम्बर होने की बात कही, तो उन्होंने कहा—बहुत अच्छा, स्वागत है। इसी समय मैंने आवदेन-पत्र दे दिया। यह तो सभी जानते थे कि मेम्बर न रहने के समय भी मैं पार्टी का ही था, और अपनी लेखनी से उसका काम भी करता था। अब भी लेखनी द्वारा ही काम कर सकता हूँ, यह मैंने कह दिया। स्वास्थ्य की इस अवस्था में चलने-फिरने का काम हो नहीं सकता। मुझे उस दिन बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं डरता था, पार्टी-मेम्बर न रहते कहीं महाप्रयाण न करना पड़े। चिरकाल से पोषित मेरे आदर्शों का प्रतीक है पार्टी। अपने पुराने साथियों से मैं बराबर दिल खोलकर मिलता था, लेकिन एक तरह का बिलगाव देखकर तबीयत असन्तुष्ट होती थी। मैंने कहा, अब जीवन-भर के लिए पार्टी का मेम्बर हुआ।

श्री लाड कोंकड़ ब्राह्मण हैं, जो मराठे ब्राह्मणों में शिक्षा और सामाजिक सुधार में बहुत आगे बढ़े होते हैं। श्री धर्मानन्द कोशाम्बी से उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया था। संस्कृत के बहुत प्रेमी ही नहीं हैं, बल्कि उसके अध्ययन में उनकी बड़ी रुचि है। अब भी प्रौढ़ावस्था में पहुँचकर भी दर्शन-ग्रंथों के अध्ययन के लिए गुरु के पास जाते हैं। साथ ही वह मराठी के कवि हैं। धम्मपद और भर्तृहरि-शतक का उन्होंने मराठी में पद्यबद्ध अनुवाद किया है। संत तुकाराम की कृतियों पर एक अनुसंधानपूर्ण ग्रंथ लिखा है। इससे मालूम होगा कि वह केवल पुराने ढर्रे के आई. सी. एस. नहीं हैं। केसकर के मंत्रालय के दक्ष सचिव हैं। ऐसे आदमी से साहित्य के बारे में बातचीत करने में आनन्द आता है। उन्हें बौद्ध दर्शन के अध्ययन की रुचि है। माचवेजी ने उनकी तरफ से कहा—दिल्ली में उनके यहाँ ठहरा करें। लेकिन जब भैयाजी का मकान बन गया, तो उनका घर छोड़कर दूसरी जगह ठहरना मुझे पसन्द नहीं। लाड साहब में एक झख भी है—सारी भाषाओं के छोटे-छोटे घरौंदों को मिटाकर हिन्दी ही एकमात्र भारत-भाषा होनी चाहिए। यह अव्यावहारिक है, यह तो इसी से मालूम होगा, कि उन्होंने मराठी साहित्य की सेवा की है और अब भी कर रहे हैं। उन्होंने अपने इन विचारों को अपने ड्राइंग रूम में किसी से नहीं कहा, बल्कि मराठी साहित्यकारों के सामने भी इस पर बोले थे। उन्हें यह कितना अरुचिकर मालूम हुआ होगा, इसे कहने की जरूरत नहीं। इसकी जरूरत क्या कि मराठी-गुजराती या भारतवर्ष की और भाषाएँ नामशेष हो जायें, और उनकी चिताओं पर हिन्दी फले-फूले।

7 फरवरी को श्री भरत मिश्र राष्ट्रपति के निजी सचिव श्री बाल्मीकि चौधरी के साथ आए। भरत मिश्र को छपरा में लोग सोहं स्वामी कहने लगे हैं। पं. रामावतार शर्मा के शिष्य और अनुयायी, अर्थात् नास्तिक, लेकिन हिन्दू नास्तिकता-आस्तिकता का समन्वय करना जानता है, विशेषकर ब्राह्मण। बाल्मीकि बाबू से पत्र द्वारा परिचय था, क्योंकि चक्रधर बाबू के विकृत-मस्तिष्क होने के बाद अब वही राष्ट्रपति के निजी पत्र-व्यवहार और दूसरे कामों का जिम्मा लिये हुए थे। मैंने पिछले पत्र में राजेन्द्र बाबू को लिखा था—मैं दिल्ली में आऊँगा लेकिन आपका समय बेकार लेना नहीं चाहता। राजेन्द्र बाबू से मिलने-जुलने में मुझे कभी संकोच नहीं हो सकता था। पर, राष्ट्रपति होने के बाद उनके दर्शनार्थियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है, इसलिए मैं उसमें एक की संख्या और बढ़ाना नहीं चाहता था। जब बाल्मीकि बाबू ने कहा, 11 फरवरी को साढ़े 5 बजे आप मिलने आवें, तो मुझे अपने पत्र के लिए पछतावा होने लगा। मैंने यह क्यों लिख दिया कि आपका समय नहीं लेना चाहता। अब तो जाना ही पड़ेगा।

इसी समय फ़ैज़ बाजार के डाकखाने में एक घटना घटी। आजकल अक्सर नोट दने पर चीज लेकर बाकी पैसे लेना मैं भूल जाता हूँ। उस दिन टिकट लिये और 1 रुपया 10 आना वहीं टिकटवाले क्लर्क श्री चेतराम के पास भूल आया। अगले दिन गया, तो उन्होंने पैसे वापस कर दिये। अभी भी, और दिल्ली शहर

में, ईमानदार लोग हैं, इसका यह उदाहरण था।

सरहपा के दोहाकोश की जो (10वीं–11वीं शताब्दी की) तालपोथी मुझे तिब्बत में मिली थी, और जिसे मैं अब सम्पादित कर रहा था, प्रकाशकों की इच्छा हुई, कि उस सारी तालपोथी का ब्लाक पुस्तक में दे दिया जाए। दिल्ली में ब्लाक-मेकर ढेरों पड़े हैं। कई जगह देख-दाखकर मैंने चावड़ी बाजार के एक्सप्रेस ब्लाकवालों को पसन्द किया। दस साल पहिले एक तरुण ने इस कारबार को शुरू किया, और यह कोशिश की कि काम में कोई कसर न हो, गाहक खुश रहें। इतने दिनों में उसका काम जम गया था। मेरी पोथी के कई ब्लाक लेने थे। मैं भी चाहता था, और मुझसे भी अधिक तरुण मालिक को इस बात की फिकर थी कि कोई प्लेट अस्पष्ट न रह पाए। किसी-किसी के दो-दो तीन-तीन प्लेट उसने रद्दी में डाल दिए, जितना अच्छा हो सकता था, उतना अच्छा ब्लाक बनाया। काम उसका काफी बढ़ चुका है, और, और भी बढ़ाने की बात कर रहा था। मुझे श्री कृष्णप्रसाद दर की बात याद आती थी। अगर काम बढ़ाने के पीछे इतने पागल न होते, तो अपने रोपे बिरवे–लॉ-जर्नल-प्रेस–से दूध की मक्खी की तरह न निकाले जाते। मैंने सावधान किया, काम बढ़ाने के ख्याल से सेठों के पास मत जाना।

राजकमल के यहाँ जाने पर देवराजजी ने एक किताब उठाकर कहा, यह एक नए लेखक का बहुत अच्छा उपन्यास है। मेरे पास समय भी था, और मैं सैकड़ों पुस्तकें इस वक्त जमा कर रहा था। मैंने 'मैला आँचल' भी ले लिया। उसे लिये जैनेन्द्रजी के यहाँ जाना पड़ा। जैनेन्द्रजी दार्शनिक न बनते, तो अच्छा होता, लेकिन किसी के दिल को कैसे रोका जा सकता है ? उन्होंने 'मैला आँचल' को देखकर कहा–मैं इसे दि बेस्ट (श्रेष्ठ) तो नहीं कहता, पर दि गुड (अच्छा) कह सकता हूँ। जैनेन्द्रजी का इतना सर्टीफिकेट भी नये लेखक के लिए काफी था। दार्शनिक अपने हरेक शब्द को तोलकर बोलना तो जानते हैं। मैं उस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ गया। सचमुच ही उसके पढ़ने में प्रेमचन्द की कोई महान् कृति याद आती थी। मैं फणीश्वरनाथ रेणु की लेखनी का कायल हो गया। मैं तो समझता हूँ, बड़े उपन्यासों में प्रेमचन्द के बाद ऐसा सुन्दर उपन्यास कोई नहीं लिखा गया। मैंने उसके बारे में नोट भी किया था–"अच्छा लिखा है। वैविध्य सौंदर्यपूर्ण यथार्थ चित्रण है।" लेखनी में बड़ी सम्भावना है।

11 फरवरी को सबेरे शिव शर्मा के साथ उनके कला भवन में लाजपत नगर गया। कला भवन का मतलब है हिन्दी साहित्य विद्यालय। वह दिल्ली के एक छोर पर है। वहाँ तरुण-तरुणियाँ पढ़कर पंजाब युनिवर्सिटी के प्रभाकर, रत्न और मैट्रिक की परीक्षाएँ देती थीं। पंजाब में इस तरह के निजी विद्यालयों की स्थापना का बहुत रवाज है। कुछ लोग इन पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं और कहते हैं, ये शिक्षण-संस्थाएँ नहीं, शिक्षण-दूकानें हैं। मैं नहीं समझता कहीं भी शिक्षण-संस्थाओं के लोग हवा पीकर रहते हैं, सभी तनखाहें लेते हैं। यहाँ भी यदि शुल्क लेकर पढ़ाते हैं, तो क्या बुरा ? यदि यहाँ पढ़े हुए लड़के-लड़कियाँ परीक्षाओं में पास नहीं होते, तो पढ़ने क्यों आते ? और जब बाकायदा स्थापित कालेजों और स्कूलों के लड़कों के साथ बैठकर वह परीक्षा में पास हो जाते हैं, तो इनकी शिकायत क्यों ? शिव शर्मा का जोश कभी-कभी उन्हें बहुत जोर से उड़ा ले जाता। उस समय उनकी व्यावहारिकता पर सन्देह होने लगता है। लेकिन, यहाँ दिल्ली में वही इस भवन के संस्थापक और प्रधानाचार्य थे। वह साहित्यरत्न अच्छी तरह पास हुए थे, हिन्दी साहित्य की उनकी योग्यता बहुत अच्छी है। थोड़ी संस्कृत भी पढ़ी थी। अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा होती, पर "न च मे प्रवृत्तिः" (उधर मन चलता ही नहीं था)। उनके सहायक अध्यापकों में अंग्रेजी के ग्रेजुएट भी थे। इस संस्था को चलाकर उन्होंने अपनी व्यावहारिकता का प्रमाण दे दिया था। इन सबके होते भी वे हैं घुमक्कड़, इसलिए बीच-बीच में महीनों के लिए खिसक जाते हैं। उनके माता-पिता भी साथ थे। वे समझते थे, मेरी ही प्रेरणा से उनके पुत्र ने अपने माता-पिता का स्वागत किया।

दो दिन पहिले मैं पं. भगवद्दत्तजी को कह चुका था कि 11 तारीख को मैं आपके यहाँ आऊँगा। मैं समझता था, पटलेनगर और लाजपतनगर पास-ही-पास हैं। अब मालूम हुआ, दोनों में 20 मील का अन्तर है, दोनों दिल्ली के दो छोरों पर हैं, इसलिए जाने का विचार छोड़ देना पड़ा। लाजपतनगर में शरणार्थियों के लिए

सरकार ने मकान बनवाये थे। पहिले 6 हजार में जो मकान बिका था, अब नीलाम में सरकार ने उसके दस-पन्द्रह हजार पाए थे। सरकार यदि इस तरह से मकानों को देने लगी, तो सभी मकान बड़े-बड़े धनिकों के हाथ में पहुँच जाएँगे और साधारण वित्तवाले बेघर के ही रह जाएँगे। यह अन्धेर है, लेकिन समझाए कौन ?

आज ही पार्टी के मुखपत्र 'न्यू एज' में निकला कि मैं फिर कम्युनिस्ट पार्टी में सम्मिलित हो गया। जब पार्टी से अलग था, तब भी खुफिया पुलिस परछाईं की तरह पीछे पड़ी रहती थी, इसलिए उसके काम में कोई अन्तर नहीं था। संयोग देखिये, उसी दिन साढ़े 5 बजे राष्ट्रपति भवन में राजेन्द्र बाबू से मिलने जाना था। टेक्सी ने वहाँ तक पहुँचा दिया। दिल्ली के अकबर जैसे दूसरे बादशाह भी इतने बड़े राज्य के प्रमुख नहीं थे। शायद इतिहास में भारत में ऐसा कोई राज्य-अधिष्ठाता नहीं हुआ। इसलिए यदि वहाँ के नौकरों की तड़क-भड़क देखकर आँख चौंधिया जाये, तो कोई अचरज नहीं। फिर, राष्ट्रपति भवन वही मकान था, जिसे पहिले वायसराय भवन कहा जाता था, और जिसके बनाने में अंग्रेजों ने बेदर्दी से प्रजा की गाढ़ी कमाई को स्वाहा किया था। मैं समय पर पहुँचा था, इसलिए जरा ही देर में राष्ट्रपति के पास पहुँचाया गया। राजेन्द्र बाबू वैसे ही सीधे-सादे बैठे हुए थे। मैं भी बैठ गया। स्वास्थ्य, साहित्य और तिब्बत के बारे में बातचीत हुई। सरहपा की तालपोथी को उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से देखा। पूछा—कोई सहायता की जरूरत है ? मैंने कहा—यद्यपि मेरा स्वास्थ्य पहिले जैसा नहीं है, पर आजकल तिब्बत में पुराने मठों और पुस्तकालयों के खोल देने की जो खबरें मिल रही हैं, उनके कारण मैं तिब्बत जाना चाहता हूँ। उसके लिए पासपोर्ट के बारे में आपको सहायता करनी पड़ेगी। उस वक्त मुझे मालूम नहीं था कि उत्तर प्रदेश सरकार ने पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया है। राजेन्द्र बाबू ने पासपोर्ट के लिए कोशिश की। आखिर उन्हीं के नाम पर तो पासपोर्ट मिलते हैं, इसलिए केन्द्र सरकार क्यों इन्कार करने लगी।

राजेन्द्र बाबू हमेशा से संकोची रहे। इसका यह मतलब नहीं कि वह प्रतिभा में पीछे रहे। आदमी-आदमी का स्वभाव होता है। इतना संकोच उन्होंने कहाँ से सीखा ? बड़े भाई महेन्द्र बाबू का अपने अनुज के ऊपर ऐसा घनिष्ठ प्रेम था, जैसा बहुत कम देखा जाता है। राजेन्द्र बाबू उनके सामने हमेशा अपने को छोटा-सा बालक समझते थे, वैसे ही सम्मान और स्नेह रखते थे। शायद संकोच का आरम्भ वहीं हुआ हो। कुछ भी हो, बाज-वक्त अपने भावों को प्रकट करने में उनका संकोच करना अच्छा नहीं होता। वह भारत के प्रथम राष्ट्रपति हैं। शताब्दियों बाद भारत में पहिले-पहिल गणराज्य स्थापित हुआ, और इसके गणपति बनने का उन्हें मौका मिला। वह जो रास्ता दिखलाएँगे, उसका अनुसरण बहुत पीछे तक किया जाएगा। नेहरू लिफाफिया परिवार में पैदा हुए, जिन्दगी-भर लिफाफिया रहे। न उन्हें अपने पैसों को खर्च करने में कभी दर्द हुआ, और न भूखी-नंगी जनता से जमा किये हुए पैसे में आग लगाने में कोई संकोच। इसका उदाहरण उनका वैदेशिक विभाग है। उनके राजदूत इस तरह की हृदयहीनता के लिए मशहूर हैं। विजयलक्ष्मी पण्डित तो शाहजादी हैं। मास्को के दूतावास के सजाने के फीर्नचर को खरीदने वह यदि हवाई जहाज से स्वीडन गईं, तो कोई अचरज की बात नहीं थी। उनका दम बर्करार रहना चाहिए, जिस दूतावास में भी पधारेंगी, उसे मुगल दीवानेखास बनाके छोड़ेंगी। मास्को में ऐसा ही किया, वाशिंगटन में ऐसा ही किया, लन्दन में ऐसा ही कर रही हैं। जब तक बड़े भैया हैं, तब तक वह राजदूता बनकर इसी तरह अपने गरीब देश की असली अवस्था पर पर्दा डालकर दूतावासों का शौक बढ़ायेंगी। मेनन साहब से आशा थी, वह संकोच करेंगे। लेकिन वह भी लन्दन में राजदूत होते ही रोल्सराइस जैसी अत्यन्त खर्चीली मोटर खरीदने के लोभ को रोक न सके। इन लोगों के बारे में क्या शिकायत हो सकती है ? लेकिन, राजेन्द्र बाबू को तो उनकी बात में नहीं पड़ना चाहिए था।

यह ठीक है, वह बहुत नहीं बढ़े। अब भी उन्हें खादी के उसी पुराने धोती-कुर्ते में देखा जा सकता है, अधिकतर वह अपनी इसी पोशाक में रहते हैं। पर, नेहरू ने सिखला दिया है कि मर्यादा रखने के लिए अचकन और चूड़ीदार पायजामे की बड़ी जरूरत है, इसलिए राष्ट्रपति उस पोशाक में भी देखे जा सकते हैं। इस बात में उन्हें डा. राधाकृष्णन् का अनुकरण करना चाहिए, जिन्होंने कभी अपनी धोती नहीं छोड़ी। पर, जैसा मैंने कहा, उनका संकोच बाज-वक्त बुरा होता है। नेहरू भोजपुरी कहावत के अनुसार—'वांड-वांड गइल बित्ता-भर

पगहो ले गइल', सीधे-सादे राजेन्द्र बाबू को भी कितनी ही जगहों में पथभ्रष्ट करने में समर्थ हुए। राजेन्द्र बाबू हमेशा जनता के आदमी थे। जनता में घुल-मिल जाने में ही वह सन्तुष्ट होते थे, और दिखावे के लिए नहीं, बल्कि उनका कुछ ऐसे ही स्वभाव बन गया था। अब वह बिना शरीर-रक्षकों की पलटन के कहीं जा नहीं सकते। यह ठीक है कि उनके समय में हिस्सेदार हजारों आदमी और हजारों काम हैं, लेकिन उसमें भी कभी-कभी घंटा-दो-घंटा निकाल सकते हैं। उस समय यदि वह मोटर को दूर ही छोड़ अकेले अपनी पुरानी पोशाक में दिल्ली की गलियों में घूमते तो क्या बुरा हो जाता ? वह तो गणपति हैं, पुराने राजाओं में भी कितनों ने ऐसा किया था। इसका क्या लाभ होगा ? उनके लिए तो नकद होगा, और गरीब जनता को भी संतोष होगा। वह अपने दिल की बातें कहने का कभी-कभी मौका पाएगी। सबसे बड़ी बात होगी कि आगे के राष्ट्रपतियों के लिए रास्ता निकल आएगा, और नेहरू का रौब जाता रहेगा।

मुझे घड़ी की ओर देखते हुए राजेन्द्र बाबू ने कहा—उसकी पर्वाह न कीजिए। लेकिन, काम की बातें तो कर चुका था। कुछ मिनट ही और बैठा। आध घंटे बाद वहाँ से चला आया।

12 फरवरी को डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा. राजबली पाण्डे आए। कहने लगे, नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी विश्वकोश प्रकाशित करने की एक योजना केन्द्रीय शिक्षा-विभाग के पास दी है। छः लाख रुपये के खर्च से पाँच साल में इस काम को पूरा करना है। भारत सरकार ने इसे मंजूर किया और पाँच हजार मासिक और भी देना निश्चित किया है। प्रधान सम्पादक और चार सहायक-सम्पादक होंगे। हमारे काम की बड़ी अड़चन दूर हो जाएगी, यदि आप प्रधान-सम्पादक होना स्वीकार करें। मैं सरकारी नौकरी करने के लिए कैसे तैयार हो जाता ? उस वक्त तो कुछ नहीं कह सका, लेकिन पीछे अपने विचारों को लिख भेजा। उन्होंने फिर अपनी कठिनाइयाँ रक्खीं और कहा, दूसरे को प्रधान-सम्पादक बनाने में कई उम्मीदवार हो जाएँगे और विवाद होने का डर है। फिर शिक्षा-मंत्रालय उसे मानने में गड़बड़ी करेगा। मित्रों ने भी ऊँचा-नीचा सुझाया, यह भी बतलाया कि यह काम तो सभा कर रही है, सरकार तो केवल अनुदान देती है। कई महीने पीछे अन्त में मैंने अपनी स्वीकृति भेज दी।

13 फरवरी को जेता के जन्म पर चाय-पार्टी हुई। इसी बहाने दिल्ली के साहित्यकारों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, मेरी भी उसमें सहमति थी। डा. सत्यकेतु, चन्द्रगुप्तजी, मन्मथनाथजी, सत्यार्थीजी, वाचस्पति पाठकजी, देवनारायण द्विवेदीजी, भगवतीप्रसाद वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, जैनेन्द्रजी, माचवेजी, नवलपुरी, सच्चिदानन्द आदि घर-बाहर के 36 पुरुष और महिलाएँ उपस्थित थीं। ऊपरी बराण्डे की जगह काफी साबित हुई। चायपान के साथ साहित्य-चर्चा भी हुई। अतवार का दिन था, इसलिए प्रायः सभी कार्य से विरत थे। शीलाजी, भाभीजी, कमला आदि ने प्रबन्ध अपने हाथ में लिया था। श्रीनाथ और उनके परिवार ने भी भतीजे के उत्सव में भाग लिया था।

14 फरवरी को मैं चावड़ी बाजार में ब्लाकों की कापी लेने गया था। चाँदनी चौक और चावड़ी बाजार में भीड़ अक्सर रहती है। एक जगह भीड़ हुई। मालूम हुआ एक आदमी जान-बूझकर रास्ता रोके हुए है। मैं उस पर गुस्सा होने जा रहा था, लेकिन उस समय दूसरी ओर ख्याल नहीं गया। आगे जाकर कोई चीज खरीदकर जब पैसा देने लगा, तो देखा चमड़े का गोल मनी-बेग गायब है। संयोग से मैंने सभी अण्डे एक टोकरी में नहीं रक्खे थे, दस रुपये का नोट अलग भी था। इसलिए दूकानदार को पैसा दे दिया। बटुए में चार-पाँच रुपये तो जरूर होंगे। उससे भी ज्यादा बटुए का मोह था। 1949 में शान्तिनिकेतन में इसे लिया था। वह वहाँ के निवास का चिह्न था। पुराने विचारवालों के शब्दों में कहता तो वह बड़ा भगमाना था। कभी ऐसा नहीं हुआ, वह पैसे से खाली हो। मैं हैरान हो रहा था, कितनी सफाई से पाकेटमार जाकेट के ऊपरी जेब में उसे उड़ा ले गया। लेकिन, यहाँ सफाई की भी कोई ऐसी बात नहीं थी। जेब उड़ानेवाले कई मिलकर यह काम करते हैं। जिसने भीड़ के बहाने रास्ता रोका था, वह उन्हीं में से थे। दूसरा बगल में थैला निकालने की ताक में रहा। 11-12 वर्ष पहिले बंगलौर में ऐसा ही हुआ था। कई ने मिलकर योजना बनाई थी। एक ने मेरी सैफर फोन्टेनपैन उड़ाई। उसने किसी और के हाथ में थमाई, उनका एक साथी जोर से भागने लगा। मेरा

भोलापन कहिए, मैं उसके पीछे दौड़ा, और आगे जाकर पकड़ भी लिया। वह कसम खाने और नंगाझोरी देने लगा—"मैंने कलम नहीं चुराई। मैं तो अपने काम से भागा जा रहा था।" सचमुच ही वह कलम लिये होता, तो पकड़ाने के लिए ऐसे क्यों दौड़ता ? दिल्ली के पाकेटमार उससे भी ज्यादा होशियार थे। खैर, जिन्दगी में दो-चार बार ऐसे अनुभव बुरे नहीं हैं, हालाँकि इसमें सन्देह है कि आदमी उससे कोई लाभ उठा सकता है।

उसी दिन 3 बजे श्री रामलाल पुरी ने मेरे उपलक्ष्य में साहित्यकारों के लिए एक चाय-पार्टी दो, जिसमें डा. नगेन्द्र, श्री बाँकेबिहारी भटनागर, माचवेजी आदि तीस के करीब साहित्यकार मित्र आए।

उसी (14 फरवरी) रात को हमें देहरादून की ट्रेन पकड़नी थी। शाम को भैया-भाभीजी, शिवकुमारजी, श्रीनाथ आदि स्टेशन पहुँचाने आए। ट्रेन 10 बजे चली और अगले दिन 8 बजे के करीब देहरादून पहुँच गई।

# 14
# मसूरी से मन भर गया

15 फरवरी को हम देहरादून में रह गए। शुक्लाइनजी नये बालगोपाल को देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। हमें अब कमला की परीक्षा की चिन्ता थी। वह अब के साल बहुत कम पढ़ सकी थी, मुश्किल से एक महीना मिला था। जो भी समय था, उसे पढ़ने में लगाना था।

अगले दिन (16 फरवरी) को हमने टेक्सी की, और अपने फाटक के सौ गज तक उसे लाए। बीस रुपया किराया और पाँच रुपया नगरपालिका के आज्ञा-पत्र का देना पड़ा। साढ़े 9 बजे हम अपने घर पर थे। ठण्डी जगहों पर अब भी बरफ मौजूद थी। अब के साल बरफ अच्छी पड़ी थी, लेकिन हमें उसे देखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। पहले कलेजे के दर्द से भागते फिरे, इधर महीने-भर के लिए दिल्ली चले गए। आजकल सवाय होटल में विश्व कार्टोग्राफी (भूचित्र-निर्माण) सम्मेलन हो रहा था। उसमें भारतीय प्रतिनिधियों ने चीन गणराज्य को सदस्य बनाने का प्रस्ताव किया, पर अमेरिका और उसके पिट्ठू उसे क्यों पसन्द करने लगे ? सभी जगह उसी का बहुमत भी है। तुर्की का कोई प्रतिनिधि न होने पर भी उसको उपाध्यक्ष चुन लिया गया। भारतीय प्रतिनिधि अपने प्रस्ताव में सफल तो नहीं हुए, लेकिन उन्होंने खूब खरी-खोटी सुनाई। अमेरिका समय-समय पर अपने को नंगा करके दिखला देता है। उसे दुनिया की जनमत की कोई पर्वाह नहीं है। वह अपने डालरों और आततायीपन पर फूला नहीं समाता, लेकिन एक दिन यह नशा उतरेगा जरूर।

18 फरवरी को विंध्य सरकार की ओर से देव-पुरस्कार के लिए आई पुस्तकों को देखकर अपनी राय दी। यद्यपि पहिले सूचना मिली थी कि यदि कोई दूसरी पुस्तक भी नजर में आए, तो उसके लिए हमें लिखें। उस समय तक 'मैला आँचल' को मैंने देखा नहीं था, नहीं तो इसमें शक नहीं, मैं उसी को पहिला नम्बर देता।

कमला को परीक्षा की तैयारी में अब सारा समय देना चाहिए था। मैंने कहा, कम-से-कम देहरादून जाने तक दो हफ्ते के लिए कोई नौकरानी रख दी जाए, लेकिन उन्हें यह पसन्द नहीं था—खर्च बढ़ेगा। हाँ, खर्च तो बढ़ेगा दस-पन्द्रह रुपया, किन्तु वह बच्चे का कपड़ा धोयेगी, उसे खिलाएगी। मेरी एक न मानी।

जया फरवरी के अन्त में डेढ़ वर्ष की होने जा रही थी। अब वह क, च, त, प, ब अक्षरों को बोल सकती थी। टवर्ग और महाप्राण अक्षरों को बोलने में असमर्थ थी। इन्हें बच्चे बहुत दिनों बाद सीखते हैं। मैं अपने उपन्यास 'सप्तसिन्धु' के लिए सामग्री जमा करने में लगा। पढ़ने के बाद कितने ही स्थानों से अन्धकार हटता गया। ऋग्वेद में बिखरी सामग्री भारत में आने के तीन शताब्दियों बाद सप्तसिन्धु के आर्यों की कितनी ही बातों को साफ करती जा रही थी। उपन्यास के अभी जल्दी लिखने की सम्भावना नहीं था। पर लेख लिख डालना चाहता था।

**देहरादून**—परीक्षा देने से एक हफ्ता पहिले ही जया-जेता को लिये कमला और हम 9 मार्च को देहरादून

गये। पहिले आना चाहते थे, लेकिन होली के हुड़दंग का डर था, इसलिए उसे मसूरी में ही भुगताकर आए। अब हमें जया की देखभाल करनी थी, और कमला को पाठ्य-पुस्तकें पढ़नी। बीच-बीच में प्रो. वृहस्पति शास्त्री, पं. हरनारायण मिश्र से सत्संग होता। 16 को पं. किशोरीदास वाजपेयी भी आ गए। आजकल हिन्दी व्याकरण के लिखने में लगे हुए थे, जिसे नागरी प्रचारिणी सभा अपनी ओर से लिखवा रही थी। उसका बहुत-सा भाग वाजपेयीजी ने लिख भी लिया था, जिसकी टाइप कापियाँ विशेषज्ञों के पास भेजी गई थीं। मैं भी देखकर सुझाव दे रहा था।

18 मार्च तक मौसिम गर्मी का मालूम होने लगा। सबसे तरद्दुद था मक्खियों से। गर्मी बढ़ते ही वह आ धमकतीं। मक्खियों और मच्छरों का सर्वनाश तभी हो सकता है, जब सारे शहर में गन्दगी न हो। और यह थैलीशाही राज्य में होने की बात नहीं।

ठीक डेढ़ वर्ष के होने पर जया ने कितनी ही चीजों के नाम रख लिए थे, जैसे गाय-बा, खाना, जबा, बकरी-माँ, बिल्ली-माँ, मोटर-पोपो। अक्षरों में का, चा, जा, ता, ना, पा, बा, मा बोल सकती थी। उसे घूमने का बहुत शौक था। झट से हमारी अँगुली पकड़ सड़क पर चलने के लिए तैयार हो जाती थी।

**मसूरी**–21 मार्च को कमला की परीक्षा (एम. ए. प्रीवियस) समाप्त हुई, और अगले दिन हम मसूरी लौट आए। इस समय महादेव भाई क़लकत्ता से आ गए थे। उन्होंने गंगा की पढ़ाई में भी सहायता दी।

**दिल्ली**–23 मार्च को फिर दिल्ली के लिए रवाना होना पड़ा, जहाँ अगले दिन सबेरे पहुँचा। सैनिक-विभाग के विदेशी भाषा स्कूल में तिब्बती की परीक्षा लेनी थी। सूचना से कुछ ऐसा मालूम हुआ, शायद कलिम्पोंग से डा. जार्ज रोयरिक भी आनेवाले हैं। इसी लोभ में वहाँ गया था। 25 मार्च को धौलपुर हौस में पब्लिक सर्विस कमीशन के आफिस में गया। डा. जार्ज रोयरिक तो नहीं, पर उनके अनुज स्वेतस्लाव रोयरिक आये। वह, शिवायेफ, मैं तथा विदेशी भाषा स्कूल के संचालक मुकर्जी साहब वहाँ थे। सैनिक विदेशी भाषा स्कूल के लिए रूसी अध्यापकी के उम्मीदवारों को देखना था। तातियाना बोस ही सबसे योग्य साबित हुईं। उनकी मातृभाषा ही रूसी नहीं थी, बल्कि रूसी की कवि और लेखिका भी थीं। दूसरी तरुणी बोलने-चालने में बहुत अच्छी थी, पर उसका भाषा का ज्ञान उतना गम्भीर नहीं था। सबने तातियाना ही को स्वीकार किया।

26 मार्च को हम फिर लौटकर मसूरी आ गए। महादेवजी उसी दिन गए। आनन्दजी अपने दो साथियों के साथ कल आए थे। संयोग था, जो मैं आज आ गया, क्योंकि अगले दिन वह लौटनेवाले थे। सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'जातक' का हिन्दी अनुवाद भी समाप्त हो गया और आखिरी जिल्द छप रही है। अब 50 के हो गए हैं। मैंने पहिले-पहिल 1926 में मेरठ में उन्हें देखा था। तब से 29 वर्ष हुए। बुढ़ापे का असर दिखलाई पड़ रहा था। पूछ रहे थे–दूसरे किस काम में हाथ लगाऊँ ? मैंने एक-दो सुझाव दिये। उसी दिन मंचू भिक्षु टशी-ञ्डि-पो (मंगलहृदय) भी मिले। उनसे मसूरी और शिमला में मुलाकात हो चुकी थी। वह वस्तुतः मंचू थे, लेकिन आजकल शुद्ध मंचू बहुत कम रह गए हैं। उनमें से अधिकांश भाषा, भेस में चीनी बन गए हैं। वैसे जातितः और भाषातः मंचू मंगोलों के बहुत नजदीक हैं, और उन्हीं की तरह कितने ही तिब्बत में आकर पढ़ते हैं। मंगलहृदय हमारे पास आना चाहते थे। रसोईघर के ऊपर का ही कमरा रह गया था। हमने कहा, वह हाजिर है। कितने ही दिनों तक वह वहाँ रहे। फिर उन्हें 'आर्टन' में अनुकूल स्थान मिल गया, इसलिए वह वहाँ चले गए। उन्होंने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की। हमने कहा, अच्छी बात है। लेकिन, जान पड़ता है, एक उमर के बाद कम-से-कम भाषाओं का पढ़ना आदमी के लिए मुश्किल हो जाता, मन उसमें नहीं लगता, और मेहनत नहीं होती।

आनन्दजी जब से अपने जनमस्थान से निकले, तब से फिर नहीं गये थे। गाँव तो उनका अम्बाला जिले के खरड तहसील में था; पर, उनके पिता अम्बाला के स्कूल में अध्यापक थे, और आनन्दजी (पूर्व नाम हरिदास) का अधिक समय वहीं बीता। वहीं मैट्रिक पास किया, और कालेज में जाने की जगह वह असहयोग में चले गये। फिर कुछ समय बाद अपनी पढ़ाई लाहौर के कौमी विद्यालय में पूरी की। वह पं. बलदेव चौबे–बाद में स्वामी सत्यानन्द–के सहपाठी थे। सहपाठी के निवास पर ही मेरठ में मेरी उनसे पहिले-पहिल मुलाकात हुई।

उस समय क्या मालूम था, हमारी इतनी घनिष्टता हो जायगी। अब वह अपनी जन्मभूमि देखना चाहते थे। मैंने अनुमोदन किया। एक ही छोटा भाई था, जो पटियाला में कहीं पटवारीगिरी करता था। कुछ कमाया, तो साबुन बनाने का कारबार शुरू किया, पूँजी गँवा बैठे, और अब फिर पटवारी के पटवारी।

मंगलहृदय से मैंने सरहपा के दोहाकोशों के अपने हिन्दी अनुवाद करने में सहायता लेनी चाही। लेकिन, तिब्बती अनुवाद में भी सिद्धों की भाषा अपनी विशेषता रखती है। मंगलहृदय उससे परिचित नहीं थे, इसलिए बहुत सहायता नहीं कर सके। 5 अप्रेल को अपराह्न में चंडीगढ़ के सरकारी कालेज के तीन प्रोफेसर आए। वहाँ की बातें बतला रहे थे। मालूम हुआ, चण्डीगढ़ स्टेशन हिन्दी भाषा-क्षेत्र में है। एक छोटा-सा सूखा नाला है, वही पंजाबी और हिन्दी भाषा की सीमा है। हमारे प्रभुओं को भाषा से लेना-देना क्या है ? उनकी चले, तो बंगाल की राजधानी आसाम में बनाई जा सकती है। एक इतिहास और संस्कृत के पण्डित थे। उनसे मालूम हुआ, रोपड में हाल में जो खुदाई हुई है, उसमें मटमैले रंग के बरतन मिले हैं, जिनको वैदिक-कालीन कहा जाता है। पर, इस तरह के बरतन को हस्तिनापुर में भी निकले हैं जो ऋग्वेद के काल के हर्गिज नहीं हैं। मैं उत्सुक था ऋग्वेदकालीन बरतनों और दूसरी चीजों को देखने के लिए। जो चीजें उस समय से लेकर पीछे तक चली आती थीं, उनसे सप्तसिन्धु के आर्यों के ऊपर पूरा प्रकाश नहीं पड़ सकता।

कमला ने मेरे जन्मदिन को याद दिलाने का निश्चय कर लिया था। 9 अप्रेल 1955 को मेरा 63वाँ जन्मदिन था। उस दिन कर्नल हरिचन्द, लेडली दम्पती, मेहताजी आए। शीलाजी और डा. सत्यकेतु गुरुकुल काँगड़ी चले गए थे, इसलिए वह अब के नहीं आए। चार-पाँच दिनों के लिए साथी खाडिलकर भी आ गए थे, आज चाय के बाद वह चले गये। चाय-पान हुआ। डा. हरिचन्द पेन्शन-प्राप्त सिविल सर्जन हैं, उन्होंने ही मिस पूसंग से 'किल्डेर' खरीदा है। मकान के बारे में क्या शिकायत हो सकती थी ? लेकिन, यहाँ का एकान्त जीवन उन्हें पसन्द नहीं आ रहा था। सीजन से पहिले आ गए थे, इसलिए एकान्त और भी अधिक था। कहने लगे, कोई खरीदार हो तो ढूँढ़ लीजिये। उस समय जान पड़ता था, 22 हजार की चीज को कुछ घाटा सहकर भी बेच देंगे। लेकिन, जब साल-भर बिता चुके, तो घाटा सहकर बेचने का ख्याल छोड़ दिया। अकेले आदमी हैं, अंग्रेज पत्नी मर चुकी है। एक पुत्र है, जो भारतीय फौज में तोपखाने का मेजर है। एक लड़की अंग्रेज से ब्याह कर विलायत में रहती है। इतने बड़े बँगले में अकेले कैसे मन लगे ? 70 वर्ष के ऊपर के हैं, लेकिन अभी भी स्वस्थ हैं, घूम-फिर लेते हैं। हमें तो ऐसे पड़ोसी से विशेष लाभ है। कभी अपने ही टहलते हुए पूछने के लिए आ जाते हैं, और कोई भी बात होती है, तो हम उनके यहाँ पहुँच जाते हैं।

13 अप्रेल को नेपाल से श्री कलानाथ अधिकारी अपने एक दूसरे जनगायक जोशी के साथ आए। कलानाथ अच्छी नौकरी को लात मारकर स्वतन्त्र नेपाल में लौट गए थे। एक दर्जन के करीब का परिवार कैसी आर्थिक कठिनाई में पड़ा हुआ था, देखकर भी दुःख होता था। अधिकारीजी लोक-गीतों के अच्छे गायक हैं। संगीत में उनके सारे परिवार की रुचि है। लेकिन, शुद्ध जनगीतों की जगह वह अपने बनाये लोक-गीतों को गाना ज्यादा पसन्द करते हैं, शुद्ध लोक-धुनों की जगह उसमें अपना भी प्रवेश कराना चाहते हैं, और इसको यह दोष नहीं समझते। वस्तुतः यदि यह दोष नहीं होता, तो उनका गला बहुत ही मीठा है। वह बहुत सुन्दर गा सकते हैं। तरुण हैं, घूमने-फिरने में आलस नहीं है, यदि वह दो-चार हजार नेपाली लोक-गीतों को जमा कर डालते तो अमर कार्य होता। पर, उसके महत्व को जब खुद समझें, तब न। बतला रहे थे, नेपाल की स्थिति पहिले से भी बदतर होती जा रही है। यहाँ कुछ दिनों रहकर मसूरी देख दोनों तरुण चले गए।

यहाँ रहते मेरी भारतीय भाषाओं में पुस्तकों के कई अनुवाद हुए। मद्रासीजी ने चार-पाँच पुस्तकें—अधिकतर उपन्यास और कहानियाँ—गुजराती में अनुवादित और प्रकाशित कीं। केरल छोटा प्रदेश है, लेकिन वहाँ सबसे अधिक साक्षरता है, इसलिए पुस्तकें भी अधिक निकलती हैं। वहाँ तो कई विद्वानों ने अनुवाद करने की होड़ लगा रखी है। 'वोल्गा से गंगा' का अनुवाद करने की ओर रुचि स्वाभाविक है। अब तो वह भारत की कोई साहित्यिक भाषा नहीं है, जिसमें उसका अनुवाद न हुआ हो। असमिया और कन्नड़ में पुस्तकाकार नहीं छपी, लेकिन बहुत-से पत्रों में उसकी कहानियाँ निकली हैं। मलयालमवालों ने 'विश्व की रूपरेखा' को सारे चित्रों के

साथ छापने की हिम्मत की, इससे मुझे मालूम हो गया कि उसमें पुस्तकों की खपत ज्यादा है। इधर तो दो विद्वानों ने 'दर्शन-दिग्दर्शन' का अनुवाद करके छापना शुरू कर दिया। मेरा इसमें दोष नहीं था। मैंने कहा था, तीन महीने के भीतर उसके कुछ फार्मों को छपा मेरे पास भेज दें। जब एक ने ऐसा नहीं किया और दूसरे ने अनुमति माँगी, तो मैंने उसे अनुमति दे दी। उसके बरस-सवा-बरस बाद कितने फर्मों को छापकर शिकायत करते हैं, कि ऐसा क्यों ?

28 अप्रेल को भी रह-रहकर फेफड़े में सुइयाँ-सी चुभ रही थीं। अगले दिन कर्नल चाँद ने देखा। उन्होंने कहा, यह भीतर का दर्द नहीं है, ऊपर मसल्स का दर्द है, जो मालिश करने से ठीक हो जाएगा।

1 मई को हरद्वार से सरदार जसवन्तसिंह आए। वह शरणार्थी साहित्यकार हैं। एक छोटा-सा प्रेस चलाते हैं। पर्याय-कोश बनाने की ओर उनका ख्याल गया। पहिले शायद पंजाबी में बनाना चाहते थे, फिर ख्याल आया, हिन्दी में इसके लिए ज्यादा क्षेत्र है। ऐसे कोश के बनाने के लिए हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि संस्कृत का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए। यह कमी जरूर है, लेकिन उसकी पूर्ति सरदार अपनी धुन और संग्रह के परिश्रम से कर लेते हैं। आखिर ऋषिजी में भी रूसी-हिन्दी कोश बनाने के लिए यह कमी थी। पर मैं समझता हूँ, उनका कोश अच्छा होगा। वह अपनी कमियों को दूसरे की सहायता से पूरा कर रहे हैं। सरदार के इस काम में भी मेरी दिलचस्पी थी, और जब कभी भी वह मेरी सहायता चाहते, मैं उसे देने के लिए तैयार रहता।

'हर्न-क्लिफ' बेचने का हमने निश्चय कर लिया था, और मई के महीने में 'स्टेट्स मैन' में एक विज्ञापन भी निकाल दिया। 8-10 ग्राहकों के पत्र आये, लेकिन मकान बिकने की नौबत नहीं आई। आधे दाम पर भी फेंकने के लिए तैयार थे, देखें कौन आगे बढ़ता है ? उस समय मेरा ख्याल यही था कि मसूरी में आठ महीना किराये पर रहेंगे और चार महीने के लिए देहरादून चले जाएँगे। पीछे कमला की सलाह हुई, अच्छा होगा कलिम्पोंग जाना। वहाँ 4000 फुट की ऊँचाई होने से जाड़े-गर्मी में अलग जगह ढूँढ़ने की जरूरत नहीं होगी। कमला के पीहर का ही प्रेम इसमें कारण नहीं है, बल्कि वहाँ वह काम कर सकती हैं। फिर लम्बे अर्से तक तो उन्हें ही बच्चों को सँभालना है।

9 मई को डा. सत्यनारायणसिंह का सामान ऊपर 'हर्न हिल' में जाते देखा। न उन्हें पता था, मैं पास के बँगले में रहता हूँ, और न मुझे मालूम था कि वह ऊपर के बँगले में अपनी पत्नी और पुत्री के साथ आ रहे हैं। उनके विवाह की बात भी मुझे मालूम नहीं थी। डा. सत्यनारायण से मेरा परिचय बहुत पुराना है, बल्कि थोड़ी-सी अतिशयोक्ति करते कहा जा सकता है, कि उस समय से जबकि उनके दूध के दाँत टूटे नहीं थे। उनके अग्रज बाबू रानविनोद सिंह तो असहयोग के जमाने में छपरा में हमारे सहकारी थे। पहिले-पहिल मैंने तभी देखा था, जबकि बारीक सूत कातने में उन्होंने किसी होड़ में विजय प्राप्त की थी। उस समय किसको मालूम था, यह बालक भारी घुमक्कड़ बनेगा, एक के बाद एक भाषाओं को फड़फड़ सीखता जाएगा। मैंने भी भाषाएँ सीखी हैं, पर मैं अपने को भाषा सीखने में बहुत चतुर नहीं मानता। मैं भाषा भाषा के लिए नहीं सीखता, बल्कि उससे काम लेने के लिए। फिर वह काम-भर की ही रह जाती है। सत्यनारायणजी यूरोप की कई भाषाएँ–जिनमें रूसी भी है–फर-फर बोलते हैं। जब उनको मुक्त होकर विचरण करने का मौका मिलता है, तो वह अपने रूप में दिखाई पड़ते हैं। 'आवारा' ने यह क्या किया ? यह पत्नी और परिवार कैसा ? पर, अब समय से ही सही, उनके बाल बहुत सफेद थे। यद्यपि इसका मतलब यह नहीं कि वह बुढ़ापे में दाखिल हो गये थे। इधर उन्होंने पार्लियामेंट में कम्युनिस्टों के ऊपर जबर्दस्त प्रहार किये। मैं उसकी याद भी दिलाना नहीं चाहता था, लेकिन वह स्वयं समझते थे, और कुछ व्याख्या भी करना चाहते थे। लेकिन, उससे क्या होता है। किसी विषय में हमारे मतभेद घोर हो सकते हैं, लेकिन उसके कारण हम अपने पुराने सम्बन्धों को थोड़े ही छोड़ सकते हैं। जब उन्हें सोवियत जाने का उसी साल वीसा मिल गया, तो बड़ी खुशी से कह रहे थे–"बाबा, मुझे सोवियत सरकार ने वीसा दे दिया। मैं वहाँ कहीं जाकर घूम सकता हूँ, और उसके बारे में लिख सकता हूँ।" वह गए और हाल ही में उनके कई लेख पत्रों में निकले, जो अच्छे थे।

मसूरी में नौकरों की हमेशा दिक्कत रही। कुछ तो अच्छे नहीं मिले, इसलिए हटाना पड़ा। दो ने चोरी की। कुछ अच्छे मिले तो हमारी गलती से रह न सके। 10 मई को हमने महेश को नौकर रखा। शायद यह आखिर तक मसूरी में हमारे साथ रहे। कुछ दोष हैं, प्याले-गिलास बहुत तोड़ता है, काम करते ऊँघता रहता है। रसोइया भी उतना अच्छा नहीं है। पर अब हम जानते हैं कि सर्वतोभद्र नौकर नहीं मिल सकता, इसलिए अपने ऊपर अंकुश रखने की जरूरत है।

जेता भी आँखें खुली होने पर भी दो महीने तक किसी चीज को देख नहीं सकता था, फिर वह देखने लगा। चौथे महीने में पहुँचने पर वह अपने आस-पास की चीजों को बहुत ध्यान से देखता। जया से 19 दिन बड़ी सत्यनारायणजी की पुत्री मंजू थी। दोनों आपस में अक्सर मिला करती थीं। पत्नी लखनऊ में पैदा हुई बंगाली तरुणी थीं। बर्लिन में भारतीय दूतावास में काम कर रही थीं, वहीं 'आवारे' से भेंट हुई, और दोनों बन्धन में बँध गये। सत्यनारायणजी बराबर आते-जाते रहते थे। उनकी पत्नी सिर्फ एक बार आईं। मंजू रोज आती। कुछ बातों में जया उससे आगे बढ़ी थी और कुछ बातों में मंजू। मंजू के सिर पर बड़े-बड़े बाल थे, जिन्हें माँ ने बाँटकर रखा था। जया के छोटे-छोटे बाल थे। जेता के पैदा होते बाल का नाम नहीं था, और 14 महीने बाद भी अभी जरा-ही-जरा दिखाई पड़ता था।

मई में सैलानियों का सीजन शुरू हो गया था। बहुत-से मित्र और परिचित आने लगे थे। 15 मई को डा. भगवतशरण उपाध्याय अपने कनिष्ठ पुत्र के साथ आये। देर तक बातें होती रहीं। जिस आयु में मैं उनके पुत्र को देख रहा था, किसी समय में उस आयु में पिता को देखा था। भगवतशरण का ऐतिहासिक अध्ययन बहुत गम्भीर है, सबसे बड़ी बात यह है कि वह अपने किसी बात को लिखते वक्त शब्दों का मूल्य जानते हुए इस्तेमाल करते हैं। उनके लिखने की शैली बड़ी रोचक होती है। आम इतिहासकारों की तरह उसमें रूखापन नहीं होता। आखिर वह कथाकार और सफल निबन्धकार भी तो हैं।

अब रविवार के दिन घर मेहमानों से भर जाता। अपराह्न की चाय में तो जरूर दस-बारह मित्र आये रहते। अच्छी चहल-पहल हो जाती।

पहिली यात्रा (1923-37) में जब मैं सिंहल में था, तो वहाँ के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए मैंने पाँच संस्कृत पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें चार भाषा और पाँचवीं छन्द-अलंकार सिखलाने के लिए थी। वे वहीं सिंहली भाषा के साथ सिंहली अक्षरों में छपी थीं। ख्याल आया कि उन्हें हिन्दी के साथ नई तरह से लिखकर प्रकाशित किया जाये, तो अच्छा हो। इधर जब कभी कोई मुझसे संस्कृत पढ़ने की कोशिश करता, तब और भी इस ओर ख्याल जाता। मंगलहृदयजी को पढ़ाते वक्त यह ख्याल आया, और मैंने निश्चय किया कि उसे संशोधित-संवर्धित करते 'संस्कृत पाठमाला' के रूप में तैयार करूँगा। 29 मई को मैंने स्वयं उसे टाइपराइटर पर लिखना शुरू किया। पाँचों पुस्तकें कई हफ्तों बाद तैयार हुईं। इसमें पाठों को सरल रीति से देने का उपक्रम था। जिसमें भाषा की कठिनाइयाँ धीरे-धीरे सामने आईं, इसकी ओर ध्यान रखा। साथ ही पाठों के रूप में संस्कृत साहित्य के कितने ही ग्रंथों से उद्धरण भी दिये। इसी दौरान में ख्याल आया, "संस्कृत काव्यधारा को किसी ने हाथ में नहीं लिया, क्यों न मैं ही" उसे लिख डालूँ। फिर उसमें भी हाथ लगाकर पूरा किया। 1955 के आरम्भ में भी मुझे ख्याल नहीं आया था कि मैं संस्कृत के सम्बन्ध में इन पुस्तकों को लिखूँगा।

28 मई को मेरे चाचा बंसी पांडे के पुत्र चन्दर आए। बरस-डेढ़ बरस की उमर में मैंने उन्हें कितनी ही बार खिलाया था। अब उनके बाल सफेद हो गए थे। मेरे दादा जानकी पांडे घर के सरदार थे। उन्होंने अपने तीनों चचेरे भाइयों को अपने साथ मिलाकर रखा, और उनके मरने के बाद, बल्कि मेरे जन्म के भी बाद ही अलगा-बिलगी हुई। बंसी काका उन्हीं तीन घरों में से एक के सरदार थे। उनके छोटे भाई किन्ना (कृष्ण) मेरे लँगोटिया यार थे। चन्दर से मालूम हुआ कि किन्ना का पता नहीं, कहाँ चले गए। बंसी काका मर चुके हैं। चन्दर घर की हालत बतला रहे थे। कनैला में जोती हुई जमीन से भी अधिक परती जमीन थी, जिसे आबाद करके अब गाँव के ब्राह्मण लोग अच्छी हालत में हो गए थे। समझ रहे थे, इसी तरह कम से कम दो-तीन पीढ़ी तक तो निर्द्वन्द्व होकर चैन की वंशी बजती रहेगी। लेकिन, जमाना उनके इन मन्सूबों पर

हँस रहा है, इसका उन्हें क्या पता था ? कनैला में बड़ी जाति से छोटी जाति की संख्या कुछ अधिक है। पहिले जमाने में छोटी जाति में छूत-अछूत का भेद बहुत बाधक होता था। लेकिन, छोटी जातिवालों ने देखा, गरीबी और अधिकार-वंचित होने में हम सभी एक साथ हैं। गाँव के मालिक ब्राह्मण हैं, खेत उनके हाथ में हैं। हम उनके हरवाहे-चरवाहे होकर ही अब तक जीते आए हैं। अब समय हमारे पक्ष में है। उनमें से कितनों को थोड़ी-बहुत जमीन भी मिल गई, वह भूमिदार बन गए हैं, लेकिन अधिकांश अब भी बेखेत के मजूर हैं। छोटी जाति में अहीर, भर, चमार, दर्जी, चूड़ीहार, मेडिहार तथा कहार हैं। पंचायत के चुनाव में सरपंच एक भर तरुण चुना गया। मेरे बचपन में उनमें कभी कोई पढ़े-लिखेगा, इसकी सम्भावना भी नहीं थी, पर अब कई पढ़ रहे हैं। चन्दर का अपना खेत लेखपाल ने किसी छोटी जात के आदमी के नाम लिख दिया था। हो सकता है, चन्दर ने उसे जोतने को दे रखा हो, लेकिन नहीं चाहते थे कि खेत पर उसका हक हो। मुकद्दमे में सफल नहीं हुए। कह रहे थे, आप सिफारिश कर दें कि लेखपाल वहाँ से बदल दिया जाए। मैं भला कैसे सिफारिश कर सकता था ? उन्होंने हलवाहे को अपने अच्छे खेत में से चार-पाँच बिसवा दे रखा था। ब्राह्मण ठहरे, अभी हल जोतने से परहेज करते थे, इसलिए हलवाहे बिना खेती नहीं हो सकती थी। इस साल अपने खेत में ऊख बो रहे थे। हलवाहे के टुकड़े को भी साथ में पानी से सींच दिया। बोने के लिए ऊख को भी काटकर रात को पानी में डाल दिया। सबेरे ऊख बोने के समय हलवाहे ने आने से इन्कार कर दिया। गाँव-भर के जितने भी हल जोतनेवाली जातियाँ थीं, सबके हाथ-पैर पड़े, चिरौरी-विनती की, लेकिन कोई अपने वर्ग के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नहीं हुआ। यदि आज खेत नहीं बोया जाता, तो उसमें दिया पानी बेकार हो जाता, और बोने के लिए भिगोई ऊख भी खराब हो जाती है। गाँव-भर के ब्राह्मणों ने समझा, आज तो यह बला चन्दर के माथे है, कल हमारे मत्थे भी आएगी। अपने तात्कालिक बैर और मनमुटाव को भूलकर सब लोग चन्दर के खेत पर पहुँचे। सबने हल चलाने की कोशिश की। लेकिन, एक दिन में हल चलाना थोड़े ही आता है। सभी असफल हुए, पर एक नौजवान ने किसी तरह हल चलाने में सफलता पाई। खेत बोया गया। चन्दर हमसे पूछ रहे थे—"क्या करना चाहिए ?" मैंने कहा—"संसार का चक्का उल्टा नहीं घुमाया जा सकता। पुराने दिनों को भूल जाओ। क्या सब पुरानी बातें तुम्हारे यहाँ चल रही हैं ?" उन्होंने कहा—"हल जोतने के लिए नियम को तो हमारे सारे गाँव ने तोड़ दिया। पुराना समय होता, तो इसी पर सारा गाँव रोटी-बेटी नहीं कर सकता था। लेकिन अब सबके घर में बेसन्तर देवता आए हैं, इसलिए कोई किसी के ऊपर अँगुली नहीं उठा सकता।"

पीछे उसी इलाके के एम. एल. ए. बाबू कालिकाप्रसाद सिंह भी कह रहे थे कि हमारे पूर्वी जिलों में बड़ी-छोटी जातियों में जबर्दस्त अघोषित युद्ध—शीत-युद्ध कह लीजिए—छिड़ा हुआ है, मालूम नहीं कब वह घोषित युद्ध में परिणत हो जाए। दूसरा समय होता, तो बड़ी जातवाले डण्डे का हाथ दिखलाते, लेकिन अब तो प्रतिद्वन्द्वियों के पास अधिक डण्डे और अधिक हिम्मत है। इस युद्ध का कहाँ अन्त होगा ? अन्त वहीं होगा, जबकि अधिकारवंचित भी अपने अधिकारों को पा जाएँगे। भारत में यह भेद नहीं रह सकता। चन्दर ने यह भी बतलाया कि अब जाति की दूसरी मर्यादाएँ भी टूट रही हैं। उनके एक चचा ने विधवा-विवाह कर लिया है। उनके पुत्र अच्छे कमा-खा रहे हैं। एक दूर के चचा की बात बतला रहे थे, उसने चमार की लड़की अपने घर में डाल ली है। ऐसी और भी बातें यही बतला रही हैं कि सब एक वर्ण होते जा रहा है। बस एक-दो पीढ़ियों की देर है।

—तो क्या किया जाए ?—चन्दर ने पूछा।

—सारे गाँव के सुख से ही अब एक घर को भी सुख मिल सकता है। उस दिन ऊख बोने के वक्त तुमने देख ही लिया कि सबका सहयोग न होता, तो काम बरबाद हो जाता। सारा गाँव सहयोगी खेती करे, तभी सिरदर्द हट सकता है।

—यह तो सम्भव नहीं मालूम होता। किसी के पास ज्यादा खेत है, किसी के पास कम। पुराने जमाने से यही प्रथा चली आई है कि एक घर का दो और दो का चार घर बने।

–पहिले एक खेत का दो और दो का चार हुआ करता था। अब उसे उलटे तौर से करना होगा।

–शायद हम अपने चारों घरों नहीं तो तीन घर को इकट्ठा करने में सफल हों।

मैंने कहा–चार घर को इकट्ठा करके तुम अपने सिरदर्द को तत्काल के लिए कम कर सकते हो। और मुसीबत देखेंगे, तो तुम्हारी पट्टी के सभी घर इकट्ठे हो जाएँगे। यह भी हो सकता है, गाँव के तीनों पट्टीवाले इस शर्त पर इकट्ठा खेती करने के लिए राजी हो जाएँगे कि अपने खेत के रकबे पर भी उन्हें दो-तीन मन प्रति बीघा अनाज अलग से दिया जाये। पर, यदि गाँव के सभी ब्राह्मण ऐसा करने में सफल हुए, तो इसका फल अब्राह्मणों के ऊपर क्या होगा ? क्या वह काम और भूमि से वंचित होकर चुप रहेंगे ? पेट आदमी से क्या-क्या नहीं करवाता ? अभी जो युद्ध की आग भीतर ही भीतर सुलग रही है, वह भभक उठेगी। तुम्हारे लिए एक ही रास्ता है कि देर या सबेर, सारे गाँव के खेतों को इकट्ठा कर दो। छोटी-बड़ी बात सबको उसमें शामिल करो। हाँ, जिसका जितना खेत है, उस पर भी थोड़ा-सा अनाज दे दो, बाकी को हरेक परिवार के काम के अनुसार बाँट दो। मैं जानता था, यह अभी दूर की बात है। पर, आदमी को समय स्वयं दूर की जगह पहुँचा देता है। उस समय वह असम्भव नहीं रह जाता।

1 जून को चन्दर गए। चन्दर ने थोड़ी संस्कृत पढ़ी है। बहुत वर्षों पहिले बनारस में मिले थे। मैंने उनके लिए एक पाठशाला में सिफारिश कर दी थी। ज्योतिष काम लायक पढ़े हैं, लेकिन हमारे गाँव के ब्राह्मणों को जजमानी का कोई काम नहीं है।

आचार्य गोबर्धन की बात सोलह आना पाव रत्ती सच है। दाम्पत्य जीवन में अकारण खटपट हो ही जाती है। हमारे घर में कभी-कभी हो जाती, और दोनों ओर दिमाग का पारा बहुत ऊँचा चढ़ जाता। इस समय अपत्य का मूल्य मालूम होता। सचमुच ही यदि सन्तान न हो, तो दाम्पत्य सम्बन्ध हिमबिन्दु ही नहीं, कभी-कभी उबाल बिन्दु पर पहुँचकर महान् विस्फोट पैदा कर दे।

हमें घर के भीतर ही देखना नहीं था। बन्धु-मित्र आते रहते थे। कुछ दिनों के लिए गायत्री देवी अपने पति के साथ आईं। पति सिंहल भिक्षु से अब गृहस्थ बने थे। अगले दिन पं. जगन्नाथ उपाध्याय श्री श्यामनारायण पांडे के साथ आए। उपाध्यायजी बनारस संस्कृत कालेज के दर्शन के अध्यापक हैं, और श्यामनारायणजी कनैला के पास गाजीपुर जिले में भुडकुडा के इण्टर कालेज में अध्यापक। वह भी शास्त्री तक संस्कृत पढ़े थे। दोनों एक महीने यहाँ रहे। रसोईघर के ऊपर का कमरा ही बाकी था, और उसमें वे बहुत आराम से रहे। उपाध्यायजी तरुण हैं, बौद्ध दर्शन उनके आचार्य परीक्षा का विषय रहा, और अब भी अध्ययन में तत्पर रहते हैं। अभी उनका समय था, यदि तिब्बती भाषा पढ़ लेते, तो बहुत काम कर सकते थे। अन्त में जब उनकी इच्छा हुई, तो मैंने एक-दो हफ्ते इतना पढ़ा दिया कि जिससे वे आगे बढ़ सकते थे। मेरी यह हर्गिज इच्छा नहीं थी कि जबर्दस्ती किसी को धकेला जाए। हाँ, इतना जरूर ख्याल था कि कान में डाल देना चाहिए, शायद कोई आगे बढ़ चले।

कौरवी लोक-गीतों के संग्रह के लिए मैंने दर्जनों तरुणों से कहा। कोई कुछ नहीं कर सका। सत्या गुप्ता को भी यों ही कह दिया था, आशा नहीं रखता था कि यह दूसरी साबित होंगी। पर, कुछ महीने बाद आकर उन्होंने अपने काम को दिखलाया, तो बहुत प्रसन्नता हुई।

11 जून को डा. सत्यकेतु के यहाँ एक अच्छी-खासी साहित्य गोष्ठी हुई, जिसमें हमारे यहाँ से मैं, पं. जगन्नाथ उपाध्याय, श्री श्यामनारायण पांडे गए। मसूरी में उपस्थित उस समय के और भी कितने ही साहित्यकार–श्री जगदीशचन्द्र माथुर, श्री मोहनसिंह सेंगर, पं. किशोरीदास वाजपेयी तथा दूसरे पुरुष और महिलाएँ उपस्थित थीं। श्री भगवतशरणजी, वाजपेयी, माथुर साहब और सेंगरजी ने गोष्ठी में भाग लिया। ऐसे अवसर से लाभ उठाना बहुत अच्छा है। अबकी हमारे मेहमानों में कलकत्ता के साथी धरणी गोस्वामी भी कितने ही दिनों रहे। वह मेरठ कम्युनिस्ट षड्यंत्र केस में पकड़े गए थे, और भारत के प्रथम पीढ़ी के कम्युनिस्टों में थे। एक बार कम्युनिस्ट होने पर फिर आदमी कम्युनिस्ट ही रहता है, यदि स्वार्थ या प्रलोभन भ्रष्ट करने में सफल न हो।

15 जून को जया पौने दो वर्ष में तीन-चार दिन कम थी। उसने साहस-यात्रा का परिचय देने में पिता को मात कर दिया। पिता के पहिले-पहिल 12-13 वर्ष की उमर में पंख निकले थे। मौसी गंगा बाजार गई। उसको भी जाने का आग्रह था, पर रोक लिया गया। सब लोग समझ रहे थे, रसोईघर में जाकर महेश के साथ खेल रही होगी, लेकिन कुछ देर बाद धोबन सँभाले ले आई। धोबन ने पूछने पर कहा—'पाचा', अर्थात् बाजार जा रही थी। गोदी चढ़े रास्ते देख ही लिया था। यहाँ से किल्डेर के फाटक की ओर गई, फिर नगरपालिका की सड़क पकड़ एक मोड़ पर मुड़ी, दूसरे मोड़ को भी छोड़ टोल के सामने पहुँची, फिर रतिलाल की दूकान के बाहर-बाहर सड़क से ऊपर जा रही थी। लोगों ने देखा, लेकिन ख्याल किया, कोई आगे-आगे जा रहा होगा। बिड़ला निवास के पास पहुँचनेवाली थी। उसी समय सामने से धोबिन आते मिली। धोबिन से जया का परिचय था। पूछने पर उससे बतलाया—पाचा। उसे उठाकर लाई। अगर धोबिन न मिली होती, तो मालूम नहीं यह साहस-यात्रा कहाँ खतम होती ?

18 जून को अलीगढ़ युनिवर्सिटी के अरबी के अध्यापक यूरोपियन जैसे गोरे अलमामून साहब आए। 65 वर्ष के वृद्ध हैं। सीरिया जन्मस्थान है। 31 वर्ष से वह भारत में हैं, और अब भारत के नागरिक हो गये हैं। रूसी, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, तुर्की और अरबी जानते हैं। अरबी तो खैर उनकी मातृभाषा ही है। उदार विचार के और सूफी मत के माननेवाले हैं। कितनी देर तक उनसे बातचीत हुई। उसके बाद एक दिन वह आये।

19 जून को श्री जयगोपाल और श्री शिवगोपाल मिश्र आये। जयगोपालजी निरालाजी के पट्ट-शिष्य और कवि हैं। कवि होने के लिए आवश्यक योग्यताओं की उनमें कमी नहीं है। उनके अनुज रसायन-शास्त्र के एक अच्छे छात्र हैं। डी. फिल्. किया है, उनसे बहुत आशा है। पर, वह भी अपने अंग्रज की तरह साहित्य में जरूरत से अधिक समय दे रहे हैं, ये अच्छे लक्षण नहीं हैं।

जून में नेहरू तीन हफ्ते के लिए रूस-यात्रा पर गये। वहाँ उनका हर जगह भव्य स्वागत हुआ, जिसकी खबरें हमारे पत्रों और मास्को रेडियो से मालूम हो रही थीं। इस यात्रा से हमारे दोनों देश एक-दूसरे के बहुत नजदीक आएँगे, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

28 जून के आनेवालों में आजमगढ़ के वकील श्री पद्मनाथ सिंह एम. एल. ए. भी थे। कनैला उनके निर्वाचन-क्षेत्र में पड़ता है, अर्थात् उनके वोटरों में हमारे घरवाले भी शामिल हैं। वह भी चन्दर की बात का समर्थन कर रहे थे और कह रहे थे, कि हमारे जिलों में बड़ी-छोटी जातियों का संघर्ष बहुत उग्र है।

1 जुलाई को श्री मुकुन्दलालजी आए। हर सीजन में उनके दर्शन की उत्कण्ठा रहती है। मैंने पेशावर काण्ड के वीर चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी लिखने का निश्चय किया था। मुकुन्दलालजी ने उस मुकद्दमे में गढ़वालीजी की पैरवी की थी। मैंने उनके पास लिखा था। वे मुकद्दमे की फाइल मुझे दे गये, जिससे मुझे काफी सहायता मिली।

गंगा पहिले तो मैट्रिक में फेल मालूम हुई। एकाएक नेपाली की जगह हिन्दी-माध्यम लेकर परीक्षा दी थी और सो भी निजी तौर से पढ़कर। 2 जुलाई को पास होनेवाले छात्रों की जो सूची मिली, उससे मालूम हुआ कि पास हो गई। घर-भर को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी मसूरी-यात्रा सफल रही। उसके लिए हम दोनों चाहते थे कि दिल्ली में नर्सिंग कालेज में दाखिल हो जाए। दाखिले का समय बीत गया था, लेकिन बीच में कोई लड़की चली गई थी और मित्रों के प्रभाव के कारण वह स्थान मिल गया था। पर, गंगा को नर्स नहीं, अध्यापिका बनना पसन्द था, इसलिए हमने वह ख्याल छोड़ दिया, और अन्त में वह ट्रेनिंग पाने के लिए कलिम्पोंग चली गई।

सीजन में ठाकुरानी गुलाबकुमारी 'आर्टेन' में आकर रहने लगी थीं। उनकी नौकरानी लड़की कान्ति अक्सर जया को अपने साथ खेलने के लिए ले जाया करती थी। बच्चों को खेलना पसन्द है, और वह उनके लिए लाभदायक भी है। हमारे यहाँ उसकी उतनी सुविधा नहीं थी। बेचारी जब खेलना चाहती है, तो झिड़की खानी पड़ती है, और कभी-कभी अम्मा हल्का-सा हाथ भी लगा देती, जिससे वह कान्ति के साथ जाने के लिए तैयार रहती। एक वर्ष दस महीने की भी अभी नहीं हुई थी। एक दिन आते वक्त उसने कान्ति से कहा—"कल आना"।

अब वह कल का अर्थ भी समझने लग गई थी, और असली मनसा तो यह थी ही कि हम आकर तुम्हारे साथ खेलेंगे।

अबके साल जुलाई के पहिले हफ्ते में एक बार वर्षा हुई, फिर रुक गई। लोगों के मन में तरह-तरह की आशंका होने लगी। इस वर्षा से चारों ओर हरियाली दिखाई पड़ती थी।

डा. बद्रीनाथप्रसाद के पुत्र श्री प्रकाशचन्द्र के ब्याह का निमन्त्रण आया। लखनऊ में ब्याह होने जा रहा था। कन्या पंजाबी और उसमें भी सिक्ख थीं। तरुण पुरानी मेड़ों को तोड़ेंगे, जिसकी देश को बड़ी आवश्यकता है। डा. प्रसाद की बड़ी लड़की का ही ब्याह अपनी जातियों में हुआ। लड़के ने पंजाबी लड़की से ब्याह किया, तो उसकी छोटी बहिन ने पंजाबी लड़के से ब्याह करके कर्ज चुका दिया।

कनैला बहुत पिछड़ा हुआ, शहर तथा रेलवे से बहुत दूर बसा गाँव था। लेकिन, आज ऐसी देखी जाती भूमि हमेशा ऐसी रही हो, यह बात नहीं। हमारे काशी-कौशल जनपद में मनुष्य का इतिहास बहुत पुराना है। मैंने सुन रखा था, हमारे गाँव की बड़ी पोखरी में बड़ी-बड़ी ईंटें निकलती हैं। उस दिन चन्दर ने बतलाया, आज की जमीन से कुछ हाथ नीचे दूर तक इन्हीं ईंटों से उस पोखरी का घाट बँधा है। इधर लोग गाड़ियों में खोदकर ले जाया करते थे। श्यामलाल को लिखने पर तो उन्होंने बतलाया कि ईंटों की लम्बाई 19.8 इंच, चौड़ाई 8.2 इंच, मोटाई 2.2 इंच है। यह मौर्य-शुंग-काल की ईंटें हैं, इसमें सन्देह नहीं। श्री पद्मनाथजी ने भी अपनी ओर के गाँवों में पुरानी जगहों का पता बताया था। बड़ी पोखरी की इन बड़ी ईंटों ने दिमाग में खलबली मचाई, और मैंने मौर्य-काल के सामन्त की 'बड़ी रानी' के नाम से एक कहानी लिख डाली। यह भी प्रकट किया कि पुराने समय में मँगई नदी व्यापार-मार्ग का काम देती थी। उसके किनारे मीलों तक फैला सिसवा का ध्वंसावशेष एक सामन्त की राजधानी थी। मँगई के दोनों तरफ राजधानी और उसके उपनगर फैले हुए थे। कनैला उसी के भीतर था। और शायद उसका कर्नहट उपनाम पुराना है। श्यामनारायणजी ने सिसवा से चार कोस पूर्व मँगई के किनारे अवस्थित ध्वंसावशेषों से पचीसों पंचमार्क सिक्कों की छाप भेजे, जिसने सिद्ध कर दिया कि मँगई-उपत्यका मौर्य-काल में एक समृद्ध उपत्यका थी।

15 अगस्त को पोर्तुगालियों के दासता में पड़े गोआ के मुक्ति-आन्दोलन ने सत्याग्रह का रूप लिया। फासिस्त पोर्तुगाल से और आशा क्या की जा सकती थी ? 31 सत्याग्रहियों को पोर्तुगालियों ने भून दिया, और कितने ही घायल किये। सत्याग्रह का असर उस पर पड़ सकता है, जहाँ कुछ शिष्टता, संस्कृत और जनमत का अदर हो। पोर्तुगाल में सालाजार की निरंकुशता बीसियों वर्ष से चल रही है, जिसने अपने ही आदमियों के खून से हाथ रँगने में आनाकानी की, वह भारतीयों को कैसे क्षमा कर सकता था ? फिर उसकी पीठ पर अमेरिका और इंग्लैण्ड के तानाशाह हैं। यद्यपि अमेरिकन थैलीशाहों ने खुलकर बहुत पीछे कहा, गोआ पोर्तुगाल का प्रदेश है, पर उस वक्त भी यह बात किसी से छिपी नहीं थी कि अमेरिका का क्या रुख है। पोर्तुगाल और स्पेन की तानाशाही से अमेरिका को क्यों इतना प्रेम है, यह आकस्मिक बात नहीं है। अमेरिका में खुद जबर्दस्त थैलीशाहों की तानाशाही है। इसलिए उसे कम्युनिज़्म से भय लगता है, और दुनिया-भर में दूसरों को भी डराता फिरता है—"कम्युनिज़्म से होशियार रहो।" लेकिन, उसे इस पर पूरा विश्वास नहीं है कि गाढ़े में लोग उसके काम आएँगे। यह कोरिया में देखा गया, वियतनाम में देखा गया। जहाँ की जनता को फ्रेंकों और सालाजार जैसे तानाशाहों ने कुचल दिया है, उस देश को अमेरिका अपना गाढ़ा मित्र मानता है। भारत के थैलीशाह तो अमेरिका की जय मनाते ही रहते हैं, यहाँ के प्रभुओं में भी एक प्रभावशाली दल है, जो अमेरिका के हाथ में देश को बेचने के लिए तैयार है। उनका सबसे बड़ा स्तम्भ उठ गया और नेहरू उनके साथ नहीं, इसलिए हमारे थैलीशाह दिल मसोसकर रह जाते हैं। आज यदि गोआ परतन्त्र है, तो पोर्तुगाल के कारण नहीं, बल्कि अमेरिका के कारण। इसमें कोई सन्देह नहीं। आज पाकिस्तानी हर साल पचासों जगह हमारी सीमाओं के भीतर घुसकर गोलियाँ चलाते हैं, उसका कारण भी अमेरिका है। अमेरिका कम्युनिज़्म के खिलाफ पाकिस्तान को हथियारबन्द करने की बात कहता है। आज का कम्युनिज़्म 38 वर्ष पहिले का कम्युनिज़्म नहीं है कि निर्बल की जोरू सारे गाँव की भाभी हो। यदि कम्युनिज़्म ने हमला किया, तो पाकिस्तान के तीसमार खाँ एक फूँक

में उड़ जाएँगे। पाकिस्तान को अमेरिका जो नये-नये हथियार दे रहा है, वह हमारे खिलाफ अभी भी इस्तेमाल हो रहे हैं और आगे भी होंगे, यह किसी से छिपी बात नहीं है। डलेस या आइजनहावर छिपकर शिकार नहीं कर सकते। भारत जानता है, मुँह में राम बगल में छुरी रखकर कोई भगत नहीं बन सकता।

हमारे पड़ोसी जान लेडली ने डेरी खोलकर उसे जमा लिया है। सीजन के वक्त सारी मसूरी में उनका दूध जाता था। अपनी भी दस-बारह गायें और दो-तीन भैंसे हैं, लेकिन इतने दूध से क्या बनता ? गाँववालों से जाँचकर दूध लेते उसे कोठियों में भेजते हैं। जाड़ों में कोई काम नहीं रहता, इसीलिए बाहर के दूध को लेकर मशीन से क्रीम बनाते, क्रीम तोलकर ही दाम देते हैं। इसमें पानी डालने से कोई फायदा नहीं होता। क्रीम से बनाया घी शुद्ध होता है, लोग उसे चाव से लेते। पिछले जाड़ों में उन्होंने 40-50 टिन घी बना डाला। अबकी सीजन में उसकी बिक्री बहुत कम हुई, इसलिए कइ टिन बच रहे। दिखाने पर बनिया ने कहा—"इसका तो स्वाद बिगड़ गया है।" मैंने तो स्वाद बिगड़ा नहीं देखा। अब वह सेर पीछे चार आना आठ आना, घाटा सहकर बेच रहे थे, चाहते थे कि किसी तरह जल्दी निकल जाए। इधर जब लोगों ने देखा कि 'हर्न लॉज' डेरी जम गई है, तो प्रतियोगिता करनेवाले भी खड़े हो गये। क्रीम बनानेवाली मशीन खरीदकर एक-दो ने गाँवों में जाकर दूध लेना शुरू किया। किन्हीं ने सीजन के वक्त डेरी खोली, लेकिन उससे लेडली को ज्यादा नुकसान नहीं हो सकता था, क्योंकि 'हर्न लॉज' के शुद्ध दूध की धाक जम चुकी थी।

शिमला-यात्रा से कबाड़ियों से एक पुरानी पुस्तक लाए थे, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य के वीरों की जीवनियाँ आँकड़ों के साथ बड़े दिलचस्प ढंग से दी गई थीं। इसमें 1757 से 1857 ई. तक अंग्रेजों ने किस तरह अपने प्रभुत्व का विस्तार किया, और हमारी कमजोरियों से लाभ उठाया, इसका वर्णन था। मैंने 22 अगस्त से उसका अनुवाद करना शुरू करके कुछ दिनों बाद खतम कर दिया।

भैया और भाभीजी अबकी बहुत पीछे अगस्त में आए। आशा थी डेढ़-दो महीना तो जरूर रहेंगे, लेकिन तार आया, अमृतसर के मकान की छत गिर गई, इसलिए वह 23 अगस्त को यहाँ से चल दिए। कुछ ही दिन में भाभीजी भी चली गईं। छत की कड़ियाँ चीड़ की थीं। बीस-पच्चीस वर्ष हो गए थे, चीड़ की इससे अधिक क्या आयु हो सकती थी ? ऊपरी बैठक के कमरे की छत गिरी और नीचे की छत को भी लिये-दिये नीचे चली गई, फर्नीचर, शीशे, तस्वीरें जो कुछ भी कमरे में थे, सब चूर-चूर हो गए।

हमारा पितृग्राम कनैला अपने गर्भ के मौर्य-शुंगकालीन अवशेषों को ही छिपायें हुए नहीं है, बल्कि आदिम मुस्लिम-काल के भी चिह्न वहाँ मौजूद हैं। सैयद बाबा की कोट और उसके अत्याचारों की कितनी ही कथाएँ मैंने भी वृद्धों के मुँह से सुनी थीं। हमारे गाँव के सारे चुड़ीहारे और दर्जी मुसलमान शायद उसी समय के परिचायक हैं। 4 सितम्बर को मैंने 'सैयद बाबा' कहानी लिख डाली। ऐसा दिखाई पड़ने लगा, कनैला पर और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी जा सकती हैं। 'कनैला की कथा' का बीज मन में पड़ गया।

'वोल्गा से गंगा' का बंगला अनुवाद हाल में प्रकाशित हुआ था। आज भारत की सभी भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद है, लेकिन जैसा कला आवरण-पृष्ठ बंगला का है, वैसा किसी का नहीं। एक पत्रिका 'होमशिखा' में किसी ने उसकी आलोचना करते गुण-दोष तो दिखाया ही, लेकिन साथ ही यह भी कह डाला कि यह भारतीय संस्कृति पर जबर्दस्त प्रहार है, इसलिए सरकार को चाहिए कि इसका प्रचार बन्द कर दे। हिन्दी में जब पहिले-पहिल पुस्तक निकली थी, तो बहुतों ने बावेला मचाया था, लेकिन शायद किसी ने इतनी दूर तक जाने की जरूरत नहीं समझी थी जितना कि यह बंगला के समालोचक। भिन्न-भिन्न काल में हमारे खान-पान, वेष-भूषा और रीति-रवाज में जबर्दस्त परिवर्तन हुए, जिनकी गवाही हमारी पुरानी पुस्तकें और पुरातात्विक सामग्री देती हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति किसी से कम मेरे हृदय में प्रेम नहीं है। सच पूछिए तो औरों का प्रेम दिखावे का है। उनके लिए ईश्वर, धर्म, वेदान्त, योग, टोटके-टोने आदि अनेक आदर-सम्मान की चीजें हैं, जिनके सामने भारतीय संस्कृति गौण पड़ जाती है। मेरे लिए तो वही सब कुछ है। उसका बदलता रहना दोष नहीं, गुण है। वह अब भी बदल रही है, और आगे भी उसके रास्ते को कोई रोक नहीं सकता। उस लेखक को पढ़कर मैंने सोचा कि 'सप्तसिन्धु' उपन्यास लिखने से पहिले उसकी मूल सामग्री के आधार पर लेख लिखने का निश्चय

ठीक है। समालोचक पहिले उस पर आक्षेप करें, तब उन्हें उपन्यास कर कलम दौड़ाने का हक होगा।

इस काल के कामों में बड़े भाई चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी लिखना भी शामिल था। मैंने 7 सितम्बर से उसमें हाथ लगा दिया। बड़े भाई ने अपनी जीवनी पहिले स्वयं लिखी थी, जिसे सुधारकर किसी ने 1935 तक पहुँचाया था। मैंने बड़े भाई को लिख दिया था कि इसके लिए आपको यहाँ आना पड़ेगा।

**दिल्ली**–विदेशी भाषा स्कूल में तिब्बती की परीक्षा लेने के लिए बुलावा था। और भी कामों को देखकर मैंने जाना स्वीकार कर लिया, और 24 सितम्बर के दोपहर को देहरादून पहुँच गया। प्रो. रूपनारायण मिश्र के पैर में भारी चोट आ गई थी। पिता की तरह इन्हें भी शिकार का शौक था, दर्जनों बड़े-बड़े बाघ खुद मारे और उनसे भी अधिक उन राजा साहब से मरवाये, जिनके सेक्रेटरी थे। यह अच्छा ही किया कि जमींदारी उठने से पहिले नौकरी छोड़कर अध्यापन शुरू कर दिया। शिकार का शौक था, जब भी छुट्टी मिलती सिवालिक के जंगलों में जाते। और छुट्टियों में तो दूर-दूर की दौड़ मारते। पिछले साल की गर्मियों में वह महाराज के डुमराँव के साथ कुल्लू में लाल भालू के शिकार के लिए गए थे। इस साल गंगोत्री की तरफ जाने की इच्छा थी। दुरारोह पहाड़ियों में नहीं धोखा हुआ, और यहाँ देहरादून शहर में जीप से जाते वक्त एक मोड़ पर लुढ़क गए, पैर टूट गया। कितने ही हफ्तों तक प्लास्टर बाँधे चारपाई पर लेटे रहे। अब वह चल सकते थे, लेकिन अभी पूरे इत्मीनान के साथ पैर के प्रयोग में देर थी।

साथी महमूद जफर यहीं थे। उनसे मिलने गए। उन पर हृदयरोग का जबर्दस्त प्रहार उसी समय हुआ, जब मैं भारत-सोवियत-मैत्री संघ के सम्मेलन में गया था। वह संघ के सेक्रेटरी थे। इस वक्त अच्छे थे, लेकिन हृदय के रोग में अच्छे-बुरे का कोई निश्चय नहीं है। महमूद कलम के धनी हैं, लेकिन शैशव से ही अंग्रेजी में पले, इसलिए उसी पर अधिकार रखते हैं। मैंने कहा–"अब इधर-उधर घूमने का ख्याल छोड़ दें, और लिखना शुरू करें। अंग्रेजी में लिखें, हिन्दी अनुवाद को सुन लें।" जिसे हीरा आदमी कहते हैं, वैसे ही हैं यह महमूद। इन्होंने कभी धन-सम्पत्ति की जिन्दगी का ख्वाब नहीं देखा, साम्प्रदायिक संकीर्णता उनके पास छू तक न गई। अपनी प्रिय पत्नी रशीदा को गँवाने का प्रभाव उनके दिल पर बहुत बुरा पड़ा, इसमें सन्देह नहीं। यद्यपि उनकी सहज मुस्कुराहट को देखकर उसके बारे में कोई ख्याल भी नहीं कर सकता।

शुक्लजी को हाल ही में नतिनी हुई थी। पैदा होते वक्त चार पौंड की थी, अर्थात् जया और जेता की वजन से आधे से भी कम। बहुत दुबली-पतली थी, लेकिन उसकी कसर घने काले-काले बालों ने निकाल दी थी। चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं थी। हमारे आज के समाज में चाहे लड़कियों का मूल्य कम हो और उनकी बहुत उपेक्षा की जाती हो, लेकिन प्रकृति उन्हें बहुत मजबूत कलेवर देती है, जिससे वह सभी आफतों को झेलकर आगे बढ़ जाती हैं।

रात की दिल्ली जानेवाली गाड़ी पकड़ी। पहिले से रिजर्व न करने पर भी फर्स्ट क्लास के अच्छे कम्पार्टमेन्ट में नीचे की सीट मिली थी। दूसरी सीट पर एक और सज्जन थे, और नीचे ही तीसरी सीट खाली थी। श्रीमती बर्कतुल्ला किसी दूसरे कम्पार्टमेन्ट में अकेली थीं। आजकल रेलों में खून होने की खबरें छपती रहती थीं, इसलिए वह भी इसी में चली आईं। वह ईसाई महिला थीं। उनके पति बर्कतुल्ला पंजाब के अपने सम्प्रदाय के सबसे बड़े पादरी थे। यह भी धर्म-प्रचार का बड़ा धुन रखती थीं। मैं श्रोता था ही, उन्होंने कुछ लेक्चर दिया, इसके बाद ईसा के पहाड़ी उपदेश की एक पुस्तिका देकर पूछा, तो मैंने कहा–तीसियों वर्ष पहिले इसे पढ़ा था। अच्छा, फिर पढ़ लूँगा। उस वक्त कोई काम था नहीं, सोचा बुढ़िया का लेक्चर सुनने से अच्छा है, इस पुस्तिका ही को खतम कर दें। खतम करने के बाद फिर लेक्चर शुरू होते देख मैंने कहा–मुझे ईसा के भक्तों और भगवान् के भक्तों के साथ सहानुभूति है, लेकिन मैं पूरी तौर से समझता हूँ कि दुनिया में भगवान् नाम की कोई चीज नहीं है। मैंने कुछ नरमी से और घुमा-फिराकर कहा था, जिसमें कि बुढ़िया के दिल को काफी धक्का न लगे।

15 सितम्बर को 6 बजे से कुछ पहिले अँधेरा रहते ही दिल्ली पहुँच गया। रिक्शा लेकर चला, तो साथी फारुकी मेरे लिए स्टेशन जाते रास्ते में मिले। पहिले साथी यज्ञदत्त और सरलाजी के निवासस्थान पर गया। ठहरना तो मुझे भाभीजी के यहाँ ही था, लेकिन बहुत-से काम थे, सोचा यहाँ मिलते ही जाएँ। चाय पी। सरलाजी

दिल्ली नगरपालिका की सदस्या हैं। उनसे गंगा के नर्सिंग स्कूल में भरती करने की बात कही थी। उन्होंने प्रिंसिपल से बातचीत करके ठीक भी कर लिया, लेकिन जैसा कि मैंने पहिले लिखा, गंगा ने उस पसन्द नहीं किया। भाभीजी ने चाय-नाश्ता कराया। वहाँ से पार्टी-आफिस गया। अब 'हर्न-क्लिफ' को बेचना निश्चय हो गया। पता लगा था, साथी डाँगे ट्रेड यूनियन के लिए मसूरी में कोई मकान लेना चाहते हैं। मैंने सोचा, यदि घाटे पर बेचना ही है, तो ट्रेड यूनियन को ही क्यों न दे दिया जाए ? साथी डाँगे ने दाम पूछा। मैंने कहा, दस हजार। उन्होंने कहा—एवमस्तु। अक्तूबर में आकर लिखा-पढ़ी करने की बात भी तै हो गई। मुझे बहुत संतोष हुआ। चलो एक बड़ी चिन्ता दूर हुई, लेकिन अभी प्याले और ओंठ में काफी दूरी थी।

आज का मध्याह्न-भोजन साथी फारुकी और उनकी पत्नी विमलाजी के यहाँ हुआ। फारुकी के पूर्वज मुगल बादशाहों के गुरु होते थे। सन् 57 के गदर में जब चेलों पर आफत आई, तो गुरु कैसे बचते ? इसलिए वह भागकर मुजफ्फरनगर जिले के किसी गाँव में चले गए। उसी गुरु-घराने में "डूबा बंस कबीर का उपजे पूत कमाल" के अनुसार कम्युनिस्ट फारुकी पैदा हुए, और ब्याह किया एक काफिर कम्युनिस्ट लड़की से। कुछ व्यंजन दिल्ली के भी थे। सरलाजी कई पीढ़ियों की निरामिषाहारिणी थीं, लेकिन वही बात उनके पति यज्ञदत्त शर्मा की भी थी। सरलाजी गुप्ता से शर्मा हो दो सीढ़ी ऊपर हो गईं। लेकिन आजकल तो सब धान बाईस पसेरी है। शाकाहार का रोब तो दोनों के दिल से उठ चुका है, पर सरला बेचारी डाक्टरों के परामर्श के कारण गोश्त नहीं खातीं।

सितम्बर का मध्य था। गर्मी के मारे तबीयत परेशान थी, तो भी रिक्शा ले करके इधर-उधर जाना पड़ा। 16 सितम्बर को मित्रों से मिलने निकला। पहिले माचवेजी के यहाँ गया। वहीं मराठी के महान नाटककार मामा वरेरकर से मुलाकात हो गई। मध्याह्न-भोजन यहीं करना था। साहित्य अकादमी के सेक्रेटरी कृपलानीजी से भी मिला। सभी माचवे-दम्पती के यहाँ मध्याह्न-भोजन के लिए निमंत्रित थे। कमला की फरमाइश थी, खादी की एक रेशमी साड़ी लाने की। सुना, कनाट प्लेस में एक बहुत बड़ी खादी की दूकान खुली है, जिसमें हाथ की बहुत-सी चीजें बिकती हैं। मैं वहाँ गया। सचमुच ही यह दूकान दिल्ली के देवताओं और देवियों के अनुकूल थी। आधुनिक ढंग से, पर कलापूर्ण और सुरुचि के साथ सभी वस्तुएँ सजाई गई थीं। बेचनेवाली कितनी ही लड़कियाँ थीं, जो फर-फर अंग्रेजी बोल रही थीं। मुझे आशा नहीं थी, यहाँ भी मेरा कोई परिचित मिल जायेगा। नैनीताल के श्री बाँकेलाल कौंसल के छोटे भाई यहीं काम करते थे। एक और बिहारी मित्र मिल गए। दूकान का काम शुरू करने में कुछ देर थी। कौंसलजी ने कहा, जरा हमारे मैनेजर से मिल लें। मैनेजर का आफिस ऊपर का ओबरक में था। बड़ा स्वागत किया। लेकिन मैं ऐसे मौके पर पहुँचा था, जबकि साढ़े 10 बजे दूकान खुलने से पहिले भगवान् की प्रार्थना जरूरी थी। मैनेजर साहब ने सहज भाव से कहा—"आप भी चलें।" मैंने भी सहज भाव ही से जवाब दिया—"मेरा भगवान् पर विश्वास नहीं है।" कर्मचारियों के रखते समय भगवान् पर विश्वास होना जरूरी तो नहीं समझा जाता ? लाठी के हाथ से भगवान् कब तक लोगों के दिलों पर शासन करेंगे। मैं वहाँ बैठा रहा। दूकान खुली, एक साड़ी ली। 11 बजे मुझे परीक्षा लेने के लिए प्रतिरक्षा विभाग के विदेशी भाषा स्कूल में जाना था। अब उसमें दस ही पन्द्रह मिनट रह गए थे। जगह देखी हुई नहीं थी। टेक्सी ली, घूम-घुमौवे रास्ते से उसने वहाँ पहुँचा दिया। संचालक साहब ने बतलाया, आपकी स्वीकृति की सूचना नहीं मिली, पर मैं तो जवाबी तार दे चुका था। यदि सरकारी तारों के साथ ऐसी उपेक्षा हो सकती है, तो साधारण लोगों की बात क्या ? खैर, जिन तीन विद्यार्थियों की परीक्षा लेनी थी, वह सब यहीं के सैनिक अफसर थे। आध घंटा-पौन घंटा देर हुई। टेलीफोन करके सबको बुला लिया गया। मैंने उनकी परीक्षा ले ली। उनके अध्यापक सिक्किम के मेरे पुराने परिचित निकले। बहुत आग्रह किया कि आएँ तो हमारे यहाँ ठहरें।

यहाँ से छुट्टी लेकर माचवेजी के यहाँ भोजन पर गए। वरेरकरजी साहित्यकार थे। कृपलानीजी तो विश्व-भारती में सालों रहे, वहाँ के वातावरण से प्रभावित थे। चाय पीने के लिए यहीं नई दिल्ली में चन्द्रगुप्तजी के यहाँ जाना था, इसलिए और मेहमानों के विदा हो जाने पर भी मैं वहीं आराम करता रहा। असंग अब अचिंगा नहीं था, और उनकी बहिन टूना भी खूब बोल रही थी। उन्हीं से मनबहलाव होता रहा। 'संस्कृत पाठशाला'

तैयार हो गई थी, और 'संस्कृत काव्यधारा' के भी कुछ अंश तैयार कर लिये थे। श्री चन्द्रगुप्तजी के यहाँ चाय पी। उन्होंने अपने एक प्रकाशक मित्र के बारे में लिखा था कि वह उन पुस्तकों को छाप देंगे। इसलिए उनको उन्हीं के पास रख दिया। श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडन आजकल यहीं थे। चन्द्रगुप्तजी के साथ वहाँ चले। रास्ते में डा. सत्यनारायण मिल गये। मिलते ही बोले—"बाबा, मैं रूस जा रहा हूँ। सोवियत दूतावास ने सारा प्रबन्ध कर दिया है।" मैंने मुबारकबाद दी। टंडनजी से थोड़ी देर बात हुई। अँधेरा होने पर फ़ैज़ बाजार लौटा। सोचा, मोतीमहल का मुर्गमुसल्लम अकेले खाना ऋषियों के वचन के विरुद्ध है—"केवलाघो भवति केवलादी" (अकेले खानेवाला केवल पाप खाता है)। यह विश्वास था कि गर्मी होने पर भी तन्दूर का भुना मुर्गमुसल्लम मसूरी तक सही-सलामत पहुँच जाएगा। और वह सही-सलामत पहुँचा। अफसोस यही होने लगा कि दो क्यों नहीं लाए। रात को देहरादून को गाड़ी पकड़ी।

अगले दिन 7 बजकर 50 मिनट पर देहरादून पहुँचा। ढाई रुपये में तुरत टेक्सी मिली। नौ बजे किंक्रेग पर रुकना पड़ा। आध घंटे बाद जब गेट खुला, तो लाइब्रेरी पहुँचे। वहाँ से रिक्शा ले 10 बजे के करीब घर पहुँच गए।

आजकल आबकारी अफसरों की यहीं पर कान्फ्रेंस हो रही थी। श्री जमुनाप्रसाद वैष्णव अशोक भी उसमें आए हुए थे। मिलने आये। अशोकजी ने हिन्दी कथाकारों में सम्मानित स्थान प्राप्त कर लिया है। हिमालय ने कई ऊँचे दर्जे के साहित्यकार पैदा किये, लेकिन उनमें बहुत कम ही ऐसे हैं, जो अपनी कृतियों में अपनी जन्मभूमि की छाप आने देते हों। अशोकजी अपनी कथाओं में गढ़वाल को नहीं भूलते, यह उनकी विशेषता है।

अब मसूरी का दूसरा सीजन था, इसलिए कितने ही परिचितों के मिलने की सम्भावना थी। अगले दिन रविवार को श्री मोहिनीजी जुत्शीजी के साथ आईं। इस साल वह यहाँ आ अल्मोड़ा चली गई थीं। गूँगे-बहरे स्कूलों के अध्यापकों का सम्मेलन हो रहा था, पटना से श्री गोरखनाथ पांडे अपनी पत्नी के साथ आये। आजमगढ़ की बात बतला रहे थे, लेकिन अब मेरी तरह ही उनका भी सम्बन्ध आजमगढ़ से टूट-सा चुका है।

20 सितम्बर को जया का जन्मदिन था। आज वह दो साल की हो गई थी। शब्दों ही नहीं, वाक्यों को भी बोल लेती थी। एक दिन गिना तो उसके शब्दकोश में करीब सौ शब्द मालूम हुए। चायपार्टी में उषा-बाबा, डा. सत्यकेतु, शीलाजी, ठाकुरानी गुलाबकुमारी, श्री मुकुन्दीलाल, कलाकार नौटियाल और दूसरे मित्र आए। जया अभी अपने जन्मदिन को क्या समझती ? हाँ, यह देख रही थी कि कितने ही परिचित और अपरिचित चेहरे साथ बैठकर खा रहे थे।

24 सितम्बर तक पास की सामग्री के आधार पर बड़े भाई की जीवनी लिख डाली थी। उनके आने की प्रतीक्षा थी, और वह 26 सितम्बर को आ भी गए। बुढ़ापे का पूरा असर था, यद्यपि उत्साह अब भी उनमें तरुणों जैसा था। अब अपराह्न में उनसे पूछकर नोट लेने और अगले दिन पूर्वाह्न में जीवनी टाइप पर डिक्टेट करने का काम शुरू हुआ। बड़े भाई के स्वभाव से कमला भी बहुत खुश थीं। निर्भीकता और निर्लोभन की वह साक्षात् मूर्ति हैं। अपने विचारों पर इतने दृढ़ कि सारे आर्थिक कष्टों की पर्वाह नहीं करते।

27 सितम्बर को जुत्शीजी, और उनके कनिष्ट पुत्र योगीनाथ भी आए। योगीजी अल्मोड़ा में इंजीनियर थे। अभी 30 के भी नहीं हुए कि पत्नी मर गई। दो जुड़वाँ लड़कियों के अतिरिक्त एक लड़का और एक लड़की—चार बच्चे हैं। उनको सँभालने में दादी बहुत हाथ बँटा रही थी। उसी तरद्दुद के कारण वह अबके साल पहिले सजीन में यहाँ नहीं आई थीं। योगीजी ने लड़के-लड़की को नैनीताल के कान्वेन्ट में रख दिया था। उनका विचार ठीक था। वह कह रहे थे, बच्चों को सँभालना अम्मा के लिए तरद्दुद का काम होगा। सबसे छोटा बच्चा भी जरा दाखिल करने लायक हो, तो इसे भी वहीं दाखिल कर दूँगा। मोहिनीजी का कहना था—"वहाँ खर्च भी बहुत पड़ेगा और साथ ही पारिवारिक स्नेह नहीं मिलेगा।" तो भी पुत्र की राय के वजन को स्वीकार करती थीं। माता-पिता अपने तरुण पुत्र को पत्नीविहीन नहीं देखना चाहते थे—मोहिनीजी विशेषकर। हमारे यहाँ के कश्मीरी ब्राह्मणों के कुछ ही हजार परिवार हैं, जो एक दूसरे से सुपरिचित हैं। लड़कियों के ब्याहने की

उनके यहाँ भी समस्या उठ खड़ी हुई है। किसी लड़कीवाले ने माता-पिता पर जोर दिया होगा, इसलिए वह भी अपने पुत्र पर जोर दे रही थीं। पुत्र कह रहा था–"अभी मैं ब्याह करने की स्थिति में नहीं हूँ। बच्चों पर बहुत खर्च करना पड़ता है। परिवार के लिए पैसे कहाँ से आएँगे ?" माता यह विश्वास तो नहीं कर सकती थी कि सौतेली माँ आकर बच्चों को सँभाल लेगी।

भैया 2 अक्तूबर को अमृतसर से आ गए। अभी भी छत बनाने का काम पूरा नहीं हुआ। उन्होंने गलती की, जो दूसरी कमजोर छतों को भी उजाड़ डाला। सोचा, एक ही साथ लोहा-सीमेन्ट लगाकर पक्की छत बनवा दें। पर, इसी साल पंजाब में जबर्दस्त बाढ़ आई, हजारों घर बरबाद हो गए। सीमेंट मिलना मुश्किल हो गया। भाभीजी पहिले ही चली गई थीं, भैया को काम नहीं रह गया था, इसलिए सोचा दो-चार दिन के लए मसूरी हो आएँ। मकान बेच देने के पक्ष में वह पहिले ही से थे। कह रहे थे, कुल्हडी या लाइब्रेरी के आसपास कोई बँगला ले लें, हम भी वहीं आकर रह लिया करेंगे। कमला बाजार के उतना नजदीक नहीं रहना चाहती थीं, मैं भी इससे सहमत था। अगर किराये के बँगले में जाना पड़े, तो थोड़ा हटकर ही रहना चाहिए। अगले दिन भैया ने प्रायः सारा दिन यहीं बिताया। बड़े भाई से भी उनका परिचय हुआ। पेशावर-काण्ड के वीर गढ़वालियों का नाम किसने नहीं सुना ? भैया कह रहे थे– अब जिन्दगी-भर हाय-हाय पट्-पट् करना अच्छा नहीं है। जानकी को दिल्ली में बैठा दिया। उनके लिए मकान के किराये से पाँच-छः सौ रुपये आ जाएँगे। फार्मेसी से पाँच-छः सौ रुपये मासिक हमें मिल जाया करेंगे। और क्या करना है ? चार मास मसूरी और चार-चार मास इधर-उधर बिता देंगे। वह मुझसे दो-तीन वर्ष बड़े थे, बाल बिल्कुल सफेद, लेकिन अब भी उनके शरीर में निर्बलता नहीं थी। चलने में हवा से बातें करते थे।

अब की छोटे सीजन का उद्घाटन मुख्यमंत्री श्री सम्पूर्णानन्दजी ने किया।

6 अक्तूबर की चिट्टियों में अहरौरा (मिर्जापुर) के पुराने मित्र श्री रामखेलावनजी प्रहरी 'वृद्ध कवि' की भी थी। बुढ़ापे में अपने साथी-समाजी बहुत कम रह जाते हैं। उस वक्त पुराने मित्रों से साक्षात् या पत्र द्वारा मिलने में बड़ा आनन्द आता है। श्री रामखेलावनजी ने 1927 से ही कांग्रेस के आनदोलन में भाग लिया था। लड़का मैट्रिक फेल हो गया है। घर की आर्थिक स्थिति तो 40 वर्ष पहिले भी अच्छी नहीं थी। चाहते थे, लड़के को कहीं नौकरी मिल जाए, लेकिन आजकल नौकंरी मिलना आसान नहीं। कोरे शब्दों द्वारा सान्त्वना देने के सिवा और मैं क्या कर सकता था।

7 अक्तूबर को बड़े भाई गये। बड़े जीवटवाले पुरुष हैं, कर्मठ और स्वच्छ हृदय भी। ज्ञानसंचय में बहुत उत्साह नहीं रहा, नहीं तो और भी सीख सकते थे, लेकिन तब भी उन्होंने काफी सीखा है। विवाह ने भी बाधा पहुँचाई। आर्थिक कठिनाइयों से लोहा लेना पड़ रहा है। उन्हें अपनी नहीं लेकिन अपने बच्चों की चिन्ता बहुत रहती है–"मेरे बाद उनकी कौन देखभाल करेगा, यही सोचते रहते हैं।" बीवी ने बहुत कष्ट सहा। आर्थिक संघर्ष में पड़ने से मिजाज चिड़चिड़ा हो जाए तो आश्चर्य क्या ?

8 अक्तूबर को राजा महेन्द्रप्रताप आए। स्वतंत्रता-संघर्ष के जीवित शहीदों की वह ज्वलन्त मूर्ति हैं। मैं समझता था, 70 से ऊपर के होंगे, लेकिन अभी उम्र 68 की ही थी। स्वास्थ्य इस अवस्था में जैसा होता है, उसे देखते बुरा नहीं था। 'संसार-संघ' की धुन उन्हें बहुत वर्षों पहिले ही से है। जानते हैं, बात सुननेवाले भले ही मिले, लेकिन माननेवाले नहीं मिलते। तो भी उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी तीनों में अपने 'संसार-संघ' को निकालते ही जा रहे हैं। मैंने अपने मकान के बेचने का विज्ञापन दिया था। उसके ही बारे में बातचीत करने आये थे। लेकिन, उनके जैसे स्वास्थ्यवाले आदमी का इतनी दूर मकान लेना कैसे ठीक हो सकता था ? मकान की बातचीत बीच में ही पड़ी रह गई और दूसरी बातें चल पड़ीं। वह प्रथम श्रेणी के घुमक्कड़ हैं। राज-रियासत छोड़कर बेसरो-सामानी से देश से निकल गये। अंग्रेजों के कुत्ते उनके पीछे पड़े रहते। सगे-सम्बन्धी उनकी गन्ध से भी डरते। पर, आजीवन वह अपने विचारों पर डटे रहे। अंग्रेजों के प्रति उनकी अपार घृणा कभी नहीं घटी। कई बार उन्होंने पृथ्वी-परिक्रमा की। सिर्फ होटलों, रेलों और जहाजोंवाले रास्तों पर ही नहीं गये, बल्कि तिब्बत के दुरारोह पर्वतों को भी पार किया। ऐसे पुरुष की जीवनी कितनी रोचक और प्रेरणा-दायक होगी, यह सोच

कर मेरा मन होता, उसे लिख डालूँ। उन्होंने अपनी छपी अंग्रेजी जीवनी भेजी, जो मेरे लिए पर्याप्त नहीं हो सकती थी। एक तो वह सारे जीवन की नहीं थी, और दूसरे वह नोट के रूप में थी। ठीक जीवनी तभी लिखी जा सकती थी जब मैं उनके पास बैठकर पूछ-पूछकर नोट कर लूँ। मैंने पीछे लिखा, पर वह लगातार तो-चार हफ्ते दे नहीं सकते थे। उनके पैरों में अब भी चक्का बँधा हुआ है, इसलिए राजपुर में दो-चार दिन रहने के बाद फिर वह किसी तरह चल पड़ते हैं : जीवनी लिखने का संकल्प मन-का-मन ही में रह जाता मालूम होता है।

12 अक्तूबर को जेता को बुखार आया। उसने दूध नहीं पिया। उधर दस्त भी बन्द हो गया। चौथे दिन रेंडी का तेल देकर जुलाब कराया। बेचारा सुस्त हो गया। बुखार धीरे-धीरे हटा। हमने समझा, यों ही मामूली बुखार आ गया है। कई दिनों बाद पता लगा कि उसका दाहिना हाथ उठ नहीं रहा है। 'पोलियो'' का नाम सुनकर दिल डर गया। कल्याणसिंह की लड़की के दोनों पैरों और दोनों हाथें पर पोलियो हुआ था। डाक्टरों ने निराश कर दिया था, लेकिन भैया ने कहा-"मालिश करो। धीरे-धीरे ठीक हो जाएगा।" जेता के बारे में लिखने पर उन्होंने एक दवाई भेजी और कहा-"डरने की जरूरत नहीं। देर लगेगी, हाथ अच्छा हो जायेगा।" कई महीनों तक हमें बहुत चिन्ता रही। फिर थोड़ा-थोड़ा हाथ उठने लगा। आज 5 महीने बाद हाथ पर तो उसका पूरा काबू है, और मुट्ठी बाँधने में तो कभी भी उसको दिक्कत नहीं हुई। लेकिन, अभी भी बाएँ हाथ के बराबर दाहिने हाथ में बल नहीं है।

सरकारी दफ्तरों से जब सम्पर्क करना पड़ता है तो हमारे जैसों को भी अनकुस लगने लगता है, दूसरों की तो और भी बुरी गत होती होगी। हर साल इन्कम-टैक्स के लिए दफ्तर की कदमबोसी करनी पड़ती है, जिसका कोई महीना निश्चित नहीं है। कभी मई-जून में, कभी उसके बाद और अब के तो अक्तूबर 19 तारीख, सो भी देहरादून में बुलाया गया। तो भी एक छोड़कर जितने भी अफसर मुझे मिले, सभी सज्जन थे। अब के साल आमदनी 6700 थी। इसमें कुछ अग्रिम थे, और कुछ सरकारी सफर-खर्च आदि के भी। पर, उनको अलग करके बहस करने की जगह मैं यही बेहतर समझता हूँ कि उस पर भी कुछ टैक्स लग जाये। देहरादून गया। काम होने में कुछ ही मिनट लगे। चाय शुक्लजी के यहाँ पी, और स्टेशन से टेक्सी लेकर उसी शाम मसूरी लौट आया।

22 अक्तूबर को डा. जयनारायणगिरि अपनी पत्नी गुंजन के साथ आए। हमारे घर में मुझे छोड़कर सभी नेपाली और अर्ध-नेपाली हैं, इसलिए नेपाली मेहमान से प्रसन्नता होनी ही चाहिए, और गिरिजी तथा उनकी पत्नी का स्वभाव कुछ इतना मधुर था कि वह आते ही घर जैसे मालूम होने लगे। डाक्टरी पास करके आजकल वह लखनऊ में विशेष शिक्षा ले रहे थे। पत्नी को इसी शर्त पर ब्याहा था कि वह पढ़ेंगी। बाप ने बिल्कुल अनपढ़ लड़की के लिए और रास्ता नहीं देखा, और मास्टर रखकर पढ़ाया। गुंजन ने मैट्रिक पास किया, अब पटना में एफ. ए. में पढ़ रही थीं। मैंने कहा-इन्हें जीव विज्ञान में एफ. एस-सी. करके डाक्टरी में डाल दीजिए। पति-पत्नी दोनों डाक्टर रहेंगे, बहुत अच्छा रहेगा। पर, गिरि-परिवार धनाढ्य है। अभी भी उनके दिमाग में पुराने विचार चक्कर काटते हैं-हमारे पास खाने-पीने के लिए बहुतेरा है, तरद्दुद करने की क्या जरूरत ? एक बड़ा भाई डाक्टर होकर अधिक शिक्षा के लिए विलायत जानेवाला था। पैसे लेकर आया, फिर विलायत कौन जाये ? पटना में होटल खोलकर बैठ गया। सबसे बड़ा भाई नेपाल के स्वतंत्रता-आन्दोलन में एक नेता थे। कोइराला-मंत्रिमंडल के समय मोरंग का राज्यपाल बना, और कोइराला के बहनोई बनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। जात-पाँत भारत में ही नहीं टूट रही है, नेपाल पर भी इसका छींटा पड़ रहा है। पुराने आचार-विचार के ठेकेदार स्वयं माहिला गुरु के छोटे साहबजादे ने एक राणाकुमारी से ब्याह किया। गिरि ने ब्राह्मणकुमारी से ब्याह किया। नेपाल के गिरि पुरी का समाज में वही स्थान है, जो हमारे यहाँ के गृहस्थ गिरि लोगों का। यह निश्चय है कलियुग सिर्फ भारत में ही आकर नहीं रह जायेगा।

27 अक्तूबर को श्री मुकुन्दीलालजी आये। इस साल का उनका यह अन्तिम फेरा था। परिवार को नीचे ले जाने के लिए आए थे। गढ़वाल में रूपकुण्ड की हिमानी में सैकड़ों लाशें मिली थीं, जिनके बारे में तरह-तरह

की कल्पनाएँ हो रही थीं। मुकुन्दीलालजी का कहना था—"जम्मू के जेनरल जोरावरसिंह के साथियों की ये लाशें नहीं हो सकतीं। हमारे यहाँ पहाड़ में वीच-बीच में नन्दादेवी का कुम्भ लगता है, जिसमें हजारों नर-नारी दर्शन करने के लिए जाते हैं। वही बरफ के तूफान में किसी समय दबकर मर गये।" यह भी बतलाया कि वहाँ गणेश की मूर्ति पर 'यशोधर' उत्कीर्ण मिला है। जब चर्म-मांस सहित आदमियों की वहाँ अनेक लाशें हैं, उनके पैरों के चप्पल और दूसरे सामान भी हैं, तो पता लगाने में क्या मुश्किल हो सकती है ? लेकिन 15-16 हजार फुट के ऊंपर विशेषज्ञों का जाना भी. तो मुश्किल है। जोरावरसिंह के आदमियों के होने में एक बड़ी आपत्ति यह है कि वहाँ स्त्रियों की भी लाशें मिली हैं। आज से सौ वर्ष पहिले, कश्मीर के हाथ में आने से भी पहिले, जम्मू के जेनरल जोरावरसिंह ने लदाख पर हाथ साफ करते पश्चिमी तिब्बत को लेना चाहा। जाड़ों में वह सदल-बल मारे गये। उनके कुछ आदमी भागकर अल्मोड़ा होते लौटे थे। 16-17 हजार फुट के ऊपर की हिमालय की भूमियों में और भी कितने ही रहस्य निकल सकते हैं, क्योंकि सदा हिमित भूमि पुरानी चीजों को अपने भीतर शताब्दियों तक सुरक्षित रख सकती है। त्यानशान और साइबेरिया में हजारों वर्ष पुराने मनुष्यों और जन्तुओं की लाशें मिली हैं। अभी हमारे यहाँ लोग यती या नर-बानर को ही ढूँढ़ निकालने के लिए परेशान हैं। लेकिन, जो महत्वपूर्ण अवशेष वहाँ मिलेगा, वह ऊपर चलता-फिरता नहीं, बल्कि नीचे दबा मिलेगा।

# 15
# जाड़े की यात्रा

जाड़ा आ रहा था। पिछले साल तापमान के 40 डिग्री के नीचे पहुँचने पर कालेज में तकलीफ हो गई थी, इसलिए इस साल भी आशंका थी। निश्चय कर लिया, कि सर्दी बढ़ने पर नीचे चले चलेंगे। जेता का दाहिना हाथ हथेली से पहुँचे तक ठीक से काम कर रहा था, किन्तु कन्धे के पास अभी कसर थी। उसकी मालिश हो रही थी।

सरह के दोहाकोश के आठ फार्मों के प्रूफ मैंने डा. शहीदुल्ला के पास ढाका भेज थे। उन्हें वह राजशाही में मिले। ढाका युनिवर्सिटी से अवसर प्राप्त कर अब वह राजशाही में अध्यापन कर रहे थे। डा. शहीदुल्ला संस्कृत और अपभ्रंश के पण्डित हैं। सरहपा और कण्हपा के अपभ्रंश दोहों पर उन्होंने अपने डाक्टरेट की थिसिस लिखी थी। मैंने चाहा था, मर्मज्ञों के पास प्रूफ के रूप में कोश को भेज दूँ, ताकि उनके सुझाव प्राप्त हो सकें। डा. शहीदुल्ला का उत्तर शुद्ध हिन्दी में आया था। बंगलाभाषियों के लिए शुद्ध हिन्दी उर्दू से आसान है। बल्कि यह कहना चाहिए कि यदि वह उर्दू के शब्द और क्रिया-रूपों को जानते हैं, तो जहाँ उर्दू के लिए हजारों फारसी-अरबी के शब्दों को ढूँढ़ना पड़ेगा, वहाँ अपने बंगला शब्दों को इस्तेमाल करके वह उच्च श्रेणी की हिन्दी में लिख सकते हैं। बंगाल के मुसलमानों ने अपनी मातृभाषा के लिए प्राणों तक को दिया, और अन्त में पाकिस्तान संविधान सभा को बिना चूँ-चिरा के उर्दू के साथ-साथ बंगला को भी राज्यभाषा स्वीकार करना पड़ा। डा. शहीदुल्ला अपनी बंगला के जबर्दस्त प्रेमी और सेवक हैं। यद्यपि संविधान ने बंगला को मंजूर कर लिया है, लेकिन 23 मार्च 1956 के गणराज्य के उद्घाटन के समय जो भाषण कराची में हुए, उनसे मालूम होता था कि पाकिस्तान के धनी-धोरियों ने "पंचों का न्याव सिर-माथे पर, लेकिन पनाला वहीं रहेगा" वाली कहावत को स्वीकार किया है। रेडियो पर नेताओं के सारे भाषण कुछ अंग्रेजी छोड़कर उर्दू में हुए, बंगला के राष्ट्रभाषा होने का वहाँ कहीं पता नहीं था। निश्चय ही धींगा-मुश्ती बहुत दिनों तक नहीं चलेगी। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान वाले एक और तरह से पाकिस्तानी बंगालियों की जड़ खोदने के लिए तैयार हैं। पाकिस्तानी बंगाली धौंस दिखलाते थे कि हमारी संख्या पाकिस्तान में सबसे अधिक है। उनके समर्थक मुल्ला पूर्वी बंगाल में ऐसा आतंक फैला रहे हैं कि वहाँ के हिंदू भागकर भारत चले आएँ और इस प्रकार पाकिस्तान में बंगालियों का बहुमत खतम हो जाए।

आदमी अकेले रहते वक्त, विशेषकर घुमक्कड़, आर्थिक चिन्ताओं में नहीं पड़ सकता। कम से कम मेरा तजर्बा यही था। लेकिन, घर-बार, बाल-बच्चे होने पर वैसी बेपर्वाही नहीं रह सकती। उसे कल की चिन्ता होती है, और उस वक्त की और जबकि वह नहीं रहेगा। मेरे दिमाग में यही विचार चक्कर काट रहे थे। यद्यपि किताब महलवालों ने रायल्टी को 20 सैकड़ा से 15 सैकड़ा कर लेने पर 500 रुपया मासिक नियमित रूप से देने के लिए वचन दे दिया था। चीन या चैकोस्लोवाकिया में चलने की बात कहने पर कमला टस

से मस नहीं होतीं और कहतीं—"औरों के भी तो बच्चे हैं ?" हाँ, ठीक है औरों के भी वच्चे हैं, लेकिन उनमें से बेयारों-मददगारों की हालात कैसी होती है, यह भी हम देखते हैं:"कम से कम दो-तीन वर्ष के लिए चलो।" पर उन्हें तो "हमें हैं प्यारी हमारी गलियाँ" याद आता है। वह समझती हैं कि एम. ए. करने में एक ही साल है। कलिम्पोंग में पढ़ाने का काम पकड़ लूँगी। पर, पढ़ाई में सौ-डेढ़ सौ रुपए मासिक से अधिक नहीं मिलेगा, जिससे आधा तो मकान के किराए में ही चला जाएगा।

नवम्बर के चौथे सप्ताह में मेरी दिनचर्या थी : 7 बजे सबेरे उठना, साढ़े सात बजे चाय-नाश्ता करना, फिर बैठकर टाइप राइटर पर साढ़े 11-12 बजे तक पुस्तक लिखवाना। साढ़े 12 बजे भोजन, समाचारपत्र, डाक पढ़ना। संशोधन करते 3-साढ़े 3 बज जाता। कभी एकाध घंटे के लिए सो जाना, 5 बजे चाय पीना। फिर लिखाये हुए कागजों या प्रूफों को रात के सवा 8 बजे तक देखना, आध घंटा रेडियो पर खबर सुनना, फिर काम करते साढ़े 10 बजे के करीब सो जाना। इसी बीच में जया और जेता के साथ खेलना भी शामिल था। जया अब बहुत बातें करने लगी थी।

24 नवम्बर को रीवाँ जिले के तरुण घुमक्कड़ शम्भूदयाल त्रिपाठी आए। 20 वर्ष की उमर होगी। बड़ी मुश्किल से मैट्रिक प्रथम श्रेणी में पास हुए। साइन्स पढ़ने की उत्कट इच्छा थी, पर आगे पढ़ने का कोई रास्ता नहीं। कुछ सालों तक स्कूल में मास्टरी की। 60-70 रुपये मिल जाते थे। आगे की पढ़ने और घुमक्कड़ी की आकांक्षा ने चैन से रहने नहीं दिया। मेरी कुछ पुस्तकें पढ़ चुके थे। सोचा, पश्चिम में भारत की सीमा पार करते ही पाकिस्तान आ जाएगा, जिससे लगा ही अफगानिस्तान है, फिर तो दो कदम पर सोवियत रूस है। यदि वहाँ चले चलें, तो साइन्स के पढ़ने का रास्ता खुल जाएगा। किसी तरह सीमा पार करके पाकिस्तानी पंजाब में पहुँचे। पकड़ लिये गए। "क्यों आए ?" —पूछने पर, कुत्ते-बिल्ली की कहानियाँ कहने लगे : "पाकिस्तान में नौजवानों के पढ़ने का बहुत अच्छा प्रबन्ध है, यही सोचकर मैं चला आया।" जवाब मिला—"आए तो भला किया, कानून तोड़ा, इसलिए एक मास गोलघर में चलो।" सजा काट लेने पर फिर सीमा के पास लाकर कहा गया—"अब यहाँ से तुम चले जाओ।" बेचारे अमृतसर आए। पास में पैसा-कौड़ी नहीं, लेकिन घुमक्कड़ को ईमानदारी के साथ किसी भी काम करने से आनाकानी नहीं करनी चाहिए, यह शिक्षा उन्हें मालूम थी। होटल में जाकर कुछ हफ्तों तक बरतन धोते रहे, फिर वहाँ से चलकर चण्डीगढ़ आए। कहीं पढ़ने का रास्ता नहीं मिला। अन्त में घूमते-घामते मसूरी में पहुँचे। मैं क्या सहायता कर सकता था ? तरुण को देखकर बहुत तरस आता था। भिखमंगे की मैली और फटी पोशाक थी। पैर नंगा, ओढ़ने के लिए टाट ले रखा था। न जाने कितना भूखा था ? भोजन कराया, कई परिचय-पत्र दिए। एकाध जगहों का नाम बतलाया, जहाँ टेक्नीकल शिक्षा मिल सकती है। यह भी कहा कि यदि तुम साइन्स छोड़कर संस्कृत पढ़ना चाहते हो, तो साधु बनकर यह काम आसानी से कर सकते हो। पर, न वह साधु बनने के लिए तैयार थे, न संस्कृत पढ़ने की इच्छा रखते थे। "शिवास्ते सन्तु पंथानः" (तुम्हारा कल्याण हो), यही कामना हम कर सकते थे।

अब के जोधपुर की ठाकुरानी गुलाबकुमारी 28 नवम्बर को मसूरी से गईं। यह केवल उन्हीं की बात नहीं थी, पुराने राजाओं, जागीरदारों और जमींदारों के वर्ग की यही हालत है। वह अपनी राजधानियों में नहीं रहना चाहते। जहाँ पर पीढ़ियों से उनका निरंकुश शासन था, वहाँ वह जनसाधारण की तरह कैसे रहते ? रहने पर भी चापलूस, लग्गू-भग्गू मुसाहिब आ घेरते। किसी के घर ब्याह है, किसी के लड़के की पढ़ाई नहीं चल रही, किसी के घर में खर्ची नहीं, आदि-आदि सच्ची-झूठी बातें कहकर वह कुछ पाने की आशा रखते। न देने पर उनके कोप और निन्दा का भाजन होना पड़ता। संकोच करते-करते भी कुछ देना ही पड़ता। आमदनी थोड़ी और नपी-तुली। इन सबसे बचने के लिए जिनका मसूरी जैसी किसी पहाड़ी जगह में रहने का इन्तिजाम है, वह यहाँ सबसे पहिले आते, और जाड़ों में ही लौटते। तालुकदारों ने अपने महल-जैसे मकानों को अच्छे किराए पर सरकारी दफ्तरों के लिए दे दिया। किराए पर छोटी-मोटी बँगलिया ले रखी हैं, जिनमें मन मारकर वह जाड़ों के दो-चार महीने गुजार देते हैं। सबसे ऊँचे वर्ग की आज यह स्थिति है। उनको अपने पैरों पर खड़े होने के लिए पैसे यदि मिले भी, तो उसका ठीक से इस्तेमाल करना उन्होंने कभी सीखा ही नहीं। कुछ तो

दिवंगत महाराणा उदयपुर की तरह समझते हैं—अपनी जिन्दगी-भर पुरानी ही तरह रह लो, आगे की बात आगे वाले देखेंगे।

दिसम्बर के पहिले सप्ताह तक 'संस्कृत काव्यधारा' (50 कवियों का काव्य-संग्रह) समाप्त हो गई। मैंने हरेक कवि का इतना उदाहरण देना चाहा कि जिससे कवि की विशेषता पाठक समझ सके। पुस्तक में बाईं ओर मूल संस्कृत और दाहिनी ओर प्रतिपंक्ति हिन्दी अनुवाद रखा है। कवियों को उनके कालक्रम से रखकर परिच्छेदों को तत्कालीन बोलचाल की भाषा के अनुरूप काल-विभाजन द्वारा उपस्थित किया है। छन्दस् या संस्कृत काल के लिए ऋग्वेद के कितने ही कवि (ऋषि) दिए, पालि काल के लिए महाभारत और रामायण से उद्धरण लिये। प्राकृत-काल में अश्वघोष से कालिदास—शूद्रक तक की कविताएँ दीं। अपभ्रंश-काल में दण्डी से हीर-पुत्र श्रीहर्ष के नमूने दिए। तीन कवि और कवयित्रियाँ मुगलकाल की भी आ गईं। कालक्रम से इन कविताओं को पढ़ने से संस्कृत काव्य-साहित्य की भाषा और भावों के विकास का अच्छी तरह पता लगता है। सारी पुस्तक पर एक विस्तृत भूमिका अभी लिखनी है। हरेक काल के लिए एक छोटी भूमिका और हरेक कवि का दस-पाँच पंक्तियों में परिचय दे दिया है। संक्षेप करने का ख्याल रहते हुए भी 50 फार्म का ग्रन्थ हो गया।

7 दिसम्बर को 'मध्य-एसिया का इतिहास (1)' की कुछ गेलियों का पहिला प्रूफ आया। दूसरा खंड लनखऊ के नेशनल हेरल्ड प्रेस में सड़ रहा है। पहिला भाग सम्मेलन-मुद्रणालय में छप रहा था। देखें, यहाँ कैसे तजर्बा होता है ? प्रेसों का तजर्बा बहुत बुरा रहा। 8 दिसम्बर को राष्ट्रपति का पत्र आया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि चीन के पासपोर्ट के लिए मैंने पन्तजी को लिख दिया है और मिलने पर भी उनसे कह दूँगा। आखिर पासपोर्ट जिसके नाम से मिलनेवाला है, यदि वही तैयार हो, तो पासपोर्ट मिलने में क्या दिक्कत हो सकती है ? लेकिन, जब तक वह हाथ में न आ जाए, तब तक इत्मीनान नहीं किया जा सकता।

11 दिसम्बर को 22 वर्ष बाद लाहुल के ठाकुर पृथ्वीचन्द अपनी पत्नी के साथ मिलने आए। 1933 में लदाख से लौटते लाहुल में वह मिले थे, और कई दिनों तक भिन्न-भिन्न जगहों को देखते वक्त मेरे साथ रहे। मातृभाषा तिब्बती होने के कारण कालेज की पढ़ाई में उन्हें दिक्कत होने लगी, इसलिए उस वक्त उसे छोड़कर घर पर बैठे हुए थे। पीछे टैरिटोरियल फौज में भरती हो गए। लड़ाई के दिनों में उन्हें और उनके चचेरे भाई (ठाकुर मंगलचन्द के पुत्र) खुशहालचन्द को कमीशन मिल गया। अब दोनों भारतीय सेना के लेफ्टनंट-कर्नल थे। उस समय का कहाँ वह नवतरुण शरीर और कहाँ अब 45 वर्ष के प्रौढ़ ? पत्नी धर्मशाला की नेपालिन हैं, जिनसे 15 साल पहिले उन्होंने ब्याह किया था। सन्तान कोई नहीं, लेकिन भाई और पत्नी के परिवार के बच्चों को पालने में सन्तुष्ट हैं। देहरादून में एक साल से अधिक उन्हें रहते हो गया था और अकस्मात् किसी ने मेरा मसूरी का पता दिया। इन्दो-चीन में जो भारतीय सैनिक अफसर गए थे, उनमें ठाकुर पृथ्वीचन्द भी थे, और वेतनामवाले कमीशन के वही अध्यक्ष थे। मैं लदाख के बारे में उनसे विशेष सुनना चाहता था। मैंने सुन लिया था, वह लदाख की प्रतिरक्षा के लिए गए थे।

बतला रहे थे—जब पाकिस्तानियों ने लदाख और जांस्कर पर हमला किया था, तो हमारा दिल घबरा उठा। आखिर हमारे लाहुल की सीमा उससे लगती थी। हम दोनों ने सरकार को अपनी सेवाएँ अर्पित करते हुए कहा—"हम लदाख में जाना चाहते हैं।" सरकार का सारा ध्यान कश्मीर-उपत्यका के ऊपर था। वह लदाख के महत्व को नहीं समझती थी। हमें 25 सैनिक, दो सौ के करीब बन्दूकें तथा गोलियाँ मिलीं। उसी को लेकर हम लदाख पहुँचे। पाकिस्तानी लेह के पास पहुँच गये थे। लदाखी अपना बोरिया-बँधना बाँधकर तिब्बत भागने के लिए तैयार थे। हमारा तिब्बती-भाषी और बौद्ध होना उस समय बड़े काम आया। हम उन्हें रोकने में समर्थ हुए। कुछ जवानों को तुरन्त गोली चलाना सिखाया। दो-चार दिन भी तो सिखाने के लिए नहीं थे, इसलिए कारतूस भरना और घोड़ा दबाना-भर सिखलाकर अपने एक-दो सीखे सिपाहियों के साथ उन्हें ले पाकिस्तानियों के पीछे पड़ें। जब एक-दो मील हम उन्हें भगाने में सफल हुए तो लदाखियों की हिम्मत बढ़ी। वह खुशी से स्वयंसेवक बनने लगे। लेकिन, हमारे पास उतने हथियार नहीं थे। तीन महीने के करीब तब भी हम पाकिस्तानियों को पीछे ढकेलते गए। कुमक पहुँची, और उधर जोजीला से हमारे टैंक भी करगिल की ओर आये। पाकिस्तानी

भाग खड़े हुए। हम सिन्धु-उपत्यका से उन्हें भगा सकते थे, लेकिन इसी समय अस्थायी सन्धि हो गई, और हमें रुक जाना पड़ा। पृथ्वीचन्द और कर्नल खुशहालचन्द दोनों को इस वीरता के उपलक्ष में 'महावीर चक्र' मिला। मित्रों का यह काम मेरे लिए भी अभिमान की बात थी।

ठाकुर पृथ्वीचन्द उत्तरी वियतनाम की स्थिति देखकर बड़े प्रभावित हुए। कह रहे थे, चीटियों की तरह वहाँ का हरेक आदमी काम में लगा हुआ है। युद्ध के कारण देश का सत्यानाश हुआ, कितनी ही चीजों का वहाँ भारी अभाव है, तो भी सभी लोग खुशी-खुशी अपने देश के नव-निर्माण में लगे हुए हैं। अपने यहाँ, विशेषकर सैनिक अफसरों की स्थिति से सन्तुष्ट नहीं थे। कह रहे थे, यहाँ पर तरक्की होने में तिकड़म और मौका मिलने पर घूस-रिश्वत बहुत चलती है, जिसके कारण ईमानदार सैनिक अफसर विरक्त हो गये हैं। कहते हैं–"हम अपने लड़कों को अब सेना में नहीं भेजेंगे।" मैंने पूछा–"और यदि देश पर संकट आ जाए तो ?" ठाकुर साहब ने कहा–"तब तो हमें अपने सर्वस्व की बाजी लगानी होगी। हम अपनी स्वतंत्रता दूसरी बार खोने के लिए तैयार नहीं हैं।"

कमला ने अपनी गुरुआनी कलिम्पोंग के हाईस्कूल की प्रिंसिपल को लिखते समय आशा प्रकट की थी कि एम. ए. करके मैं शायद कलिम्पोंग चली आऊँगी। उन्होंने बहुत खुशी प्रकट करते हुए लिखा–"तुम्हें अपने स्कूल में आकर पढ़ाना चाहिए।" एक खूँटा और गड़ गया। अब वह कलिम्पोंग का ही स्वप्न देखने लगीं।

**देहरादून**–पिछले साल 18 दिसम्बर को कलेजे में दर्द हुआ था। इसलिए 14 दिसम्बर को यहाँ से चल पड़ा। आकाश में बादल थे, मसूरी में सर्दी काफी थी। डेढ़ बजे घर से निकला। जया रोने लगी। गोपालू सामान लिए पीछे रह गये, इसलिए बस नहीं मिल सकी। टेक्सी पकड़कर शाम श्री गयाप्रसाद शुक्लजी के घर पर पहुँचे, जब कि अँधेरा होने लगा था।

सोवियत नेता क्रुश्चेव और बुलगानिन तीन हफ्ते के दौरे पर भारत आए थे। उनका आशातीत स्वागत हुआ। भारत के अधिकांश लोग गरीब या अनिश्चित जीवनवाले हैं। वह पिछली डेढ़ पीढ़ियों से रूस के निश्चित जीवन के बारे में सुनते आये थे, और सभी कामना करते थे कि हमारा देश भी कब उस तरह का होगा। देशी और विदेशी थैलीशाहों ने सारे समय हजारों झूठी-झूठी बातें कहकर सोवियत के खिलाफ धुँआधार प्रचार किया पर उसका हमारे जनसाधारण पर कोई असर नहीं पड़ा। आज अपने हृदय के भावों को प्रकट करने का अवसर मिला था, फिर वह क्यों न हर जगह के प्रदर्शनों और सभाओं में पुराने रिकार्डों को तोड़ते ? आज ही रूसी नेता दिल्ली से काबुल गये। मुझसे लोग पूछते रहे थे–"इसका क्या असर होगा ?" मैंने कहा–"थैलीशाह और उनके हाथ में बिकों के ऊपर कोई असर नहीं होगा, उनकी छाती पर साँप लोटेगा। जो पहिले से ही सोवियत के हितैषी थे, उनका उत्साह दूना होगा। बीच के ढिलमिलयकीनों में से बहुतों को सच्ची बात का पता लगेगा, और वह अमेरिकन प्रोपगंडा के जाल से बाहर आएँगे।" यद्यपि हिमालय की दो पुस्तकों को छोड़ सभी खटाई में थीं, लेकिन मुझे अपना काम पूरा करना था। 'हिमाचल प्रदेश' और 'जौनसार-देहरादून' को भी मैंने लिख लिया था। देहरादून जिले के बारे में कुछ और बातें भी जोड़ना चाहता था। खासकर हाल में देहरादून में जो खुदाई हुई थी, उसके स्थान को देख लेना चाहता था। 15 दिसम्बर को कुछ घंटों के लिए एक मोटर मिली और उस पर शुक्लजी और मेहताजी के साथ मैं चला। चूहड़पुर बाजार होते जमुना पुल पार करने से पहिले ही दाहिनी ओर कुछ दूर जाकर, पक्की सड़क से प्रायः डेढ़ मील पर उस जगह पहुँचे, जहाँ खुदाई में ईसवी दूसरी शताब्दी के राजा शीलवर्मा ने यज्ञ किया था। सहारनपुर के लाला जगतप्रसाद ने जंगलात से कई सौ एकड़ जमीन लेकर यहाँ अपना फार्म बनाया था। बुलडोजर जंगल साफ करने में लगे तो उनके फाल में कुछ ईंटें फँस गईं। खोदने पर कई ईंटों को देखकर लालाजी ने भारतीय पुरातत्व-विभाग को सूचना दी। पिछले दो सालों में उसने खुदाई की। मालूम हुआ, शीलवर्मा ने यहाँ कम-से-कम चार अश्वमेध यज्ञ किए। कई खंडित ईंटों पर कुषाण-ब्राह्मणी अक्षरों में लेख था। पूर्ण लेख दिल्ली ले गए थे, जो यह था :

नृपतेर्वार्षगण्यस्य पौणाषष्ठस्य धीमतः
चतुर्थस्याश्वमेघस्य चित्यायं शीलवर्मणः।

सिद्धं। ओं युगेश्वरस्याश्वमेधे युगशैलमहीपतेः।
इष्टका वार्षगण्यस्य नृपतेः शीलवर्मणः।

शीलवर्मा के चौथे अश्वमेध की यह चिति (वेदी) थी। खोदने पर पास में ही दो और चितियाँ मिलीं, लेकिन चौथी का पता नहीं। अश्वमेध चुप-चुप नहीं किया जा सकता। उसमें घोड़ा छोड़कर पड़ोसी राजाओं को युद्ध के लिए चेलैन्ज दिया जाता, जिसमें कितने ही राजा मिलकर मुकाबिला कर सकते थे। इसलिए शीलवर्मा शक्तिशाली राजा हुआ होगा, इसमें सन्देह नहीं। उस समय पास के पहाड़ों का नाम युगशैल था, जिसका वह महीपति था। ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी का उत्तरी भारत का इतिहास अन्धकाराच्छन्न है। इतना ही मालूम है कि कुषाण-प्रभुता अब छिन्न-भिन्न हो रही थी, और प्रतापी गुप्तों के आने में शताब्दी नहीं तो कई दशाब्दियों की देर थी। इसी समय कुरु और उत्तर-पंचाल को लेते सारे पहाड़ पर शीलवर्मा का शासन रहा होगा। उससे चार-पाँच सौ वर्ष पहिले यहाँ से जमुना पार थोड़ी दूर आगे आधुनिक-काल की एक प्रसिद्ध नगरी थी, जिसके महत्व को जानकर अशोक ने शिला पर अपने धर्मलेख खुदवाए। हम अश्वमेध यज्ञ की बाज (श्येन) के आकार की चिता को देख रहे थे। उसी समय लालाजी के कारिन्दे आ गये। चौकीदार वतला रहा था–इसमें घोड़े की हड्डियाँ भी मिली थीं। कारपर्दाज साहब आर्यसमाजी थे, वह भला कैसे मानते कि पुराने धर्मयुग में, जबकि वेद-भगवान की तूती चारों तरफ बोल रही थी, कोई घोड़ा मारकर यज्ञ कर सकता था। घोड़ा मारते ही नहीं बल्कि यज्ञ शेष के रूप में उसके प्रसाद को भी पुरोहित और यजमान गले के नीचे उतारते थे, इसे वे भला कैसे मानते ? उन्होंने कहा, कुछ विद्वानों ने हड्डी को घोड़े की बतलाया है, लेकिन इसमें सन्देह है। सन्देह की बात वह अपने जैसों की ओर से कह रहे थे। मैंने कहा–"सन्देह है ? वह बड़े जानवर की हड्डियाँ घोड़े की नहीं, तो ऐसे की होंगी, जिसका मारना आपके ख्याल से और बुरा होगा।" लेकिन, यह गोमेध नहीं था, क्योंकि शीलवर्मा ने स्वयं इसे अश्वमेध लिखा है। वस्तुतः ऐसे लोगों के साथ माथा-पच्ची करना ही बुरा है।

वहाँ से फार्म बहुत वड़ा है। पूँजीवाले आदमी फार्मों से पैसा कमाना चाहते हैं, और उसे ऐसी जगह लगाना चाहते हैं, जहाँ कम से कम खतरा हो। पहिले जमींदारी इसके लिए उपयुक्त समझी जाती थी, अब उसकी भी जड़ खुद गई। खेत भी एक मात्रा में ही रख सकते हैं, लेकिन आधुनिक ढंग के फलों या दूसरी चीजों को फार्मों में एकड़ की सीमा नहीं है, यह जानकर अब वह इस तरह के फार्मों में पैसा लगाने लगे हैं। वहाँ बुलडोजर और ट्रैक्टर थे, बाकायदा आफिस था। खेत अभी-अभी बोये गये थे। जहाँ हजारों वर्षों तक जंगल के वृक्षों की पत्तियाँ सड़ती रही हैं और जमीन मटियाली है, वहाँ फसल खूब होगी ही। हम लौटकर दाईं सड़क पर आए। बाईं और सामने की ओर एक वैसी ही सड़क अशोक आश्रम की तरफ जाती दीख पड़ी। श्री धर्मदेव शास्त्रीजी से आने के लिए कई बार कह चुका था, यह अच्छा मौका था। कुछ खेतों में फिर जंगल से होकर आधा मील जाना पड़ा। शास्त्रीजी आश्रम में ही थे। पिछली मतर्वे जब 1943 में कालसी आया था, तो वह जेल में थे, और एक टूटे-फूटे-से मकान में अशोक आश्रम था। उसे और बढ़ाने के लिए इस जंगल में लाया गया। आश्रम में काफी जगह है, जिसमें खेती और साग-सब्जी भी होती है। आश्रम का काम काफी बढ़ गया है। वह हिमालय की हरिजन और पिछड़ी जातियों में सेवा का काम कर रहा है। कनौर के सबसे पिछड़े हंगरंग इलाके, चम्बा के पांगी और ऐसे ही दूर-दूर की जगहों पर उसने पाठशालाएँ, हस्तशिल्प और चिकित्सा-स्थान स्थापित किए हैं। इस वक्त कितने ही कार्यकर्त्ता शिक्षण-शिविर के लिए आए हुए थे। अगले ही दिन पिछड़ी जातियों के बड़े अफसर आनेवाले थे। हमें गाड़ी को साढ़े चार बजे ही मालिक को लौटा देना था, इसलिए एक-एक मिनट को फूँक-फूँककर खर्च करना पड़ रहा था। पर, शास्त्रीजी के विद्यार्थियों के सामने थोड़ा बोलना और कुछ जलपान करना अनिवार्य था। शुक्लाइनजी बेचारी सिवाय कुम्भ और अर्धकुम्भ के मुश्किल ही से कहीं देहरादून से बाहर जाती थीं। इस वक्त उन्हें भी ले आये थे, साथ में उनकी दोनों नतिनियाँ मधु और सुधा भी थीं। अशोक आश्रम के काम से हमारी पूरी सहानुभूति थी, यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं कि वह मर्ज की अचूक दवा है।

मोटर से लौटकर फिर पक्की सड़क पर आ जमुना का पुल पार किया। कालसी जाने की निचली सड़क

छोड़कर ऊपर चले गये, लेकिन उधर से भी एक सड़क बाजार को जा रही थी। बाजार में पहुँचे। यद्यपि अब भी कालसी बारह वर्ष पहिले की तरह ही सिसक रही थी, लेकिन अब की चार-छः दूकानें देखीं। जाड़ों में चकरौता तहसील यहाँ उठ आती है, शायद उसके कारण हो। खाने में देर हो रही थी और सुधा-मधु भूखी थीं। बाजार में एक मन्दिर के आगे पक्का चबूतरा मिला। वहीं खाने का डौल लगाने लगे। पास के दूकानवाले बड़े सज्जन निकले। लाकर दरी बिछा दी, लोटा और बालटी दे दी। पास ही निर्मल जल की नहर बह रही थी, जो शायद अशोक के समय भी इसी तरह चलती होगी। वहीं बैठकर भोजन किया। शुक्लाइनजी तरह-तरह के पकवान बनाकर लाई थीं। घर का जमा दही भी लाना चाहती थीं, लेकिन हमने कहा—दचके में सारा दही गिर जाएगा। खैर, पूड़ी भी थी, मीठी चीजें भी थीं, नमकीन भी, और इतनी अधिक कि ड्राइवर सहित हम लोग खाकर खतम नहीं कर सकते थे। कपिलजी अब चकरौता तहसील से पेन्शन प्राप्त कर ग्राम-सुधार के काम में अपना समय दे रहे थे, वह यहीं पर थे। वह हमारी प्रतीक्षा निचली सड़क पर कर रहे थे, और हम दूसरी सड़क से चले आए। लौटते वक्त उनसे मिले। खाना-पीना कर चुके थे, और उधर समय की भी कोताही थी, इसलिए कुछ बातचीत हुई। उनसे मालूम हुआ, यहाँ कालसी के खेतों में भी कहीं-कहीं पुरानी बस्ती के अवशेष मिलते हैं।

लौटते समय सरकारी डेरी को भी देखना चाहते थे, लेकिन समय नहीं रह गया, पर अशोक के अभिलेख को देखना तो जरूरी था। पक्की सड़क पर मोटर छोड़ हम जमुना के किनारे उस शिला के पास गए, जिस पर अशोक के अभिलेख हैं, और जिसकी रक्षा के लिए मकान बनाकर ढाँक दिया गया है। दरवाजे में ताला लगा था, चौकीदार नहीं था, इसलिए हमने बाहर ही से देखकर संतोष किया। लौटते वक्त दस कदम पर एक मकान और एक गोरे-चिट्टे प्रौढ़ आदमी को देखा। उन्होंने बतलाया, मैं कश्मीर का दरद हूँ, यहीं कारबार के सिलसिले में आया और घर बना इन खेतों को आबाद किए हूँ। हम साढ़े 4 बजे देहरा पहुँच कार को लौटा देने में सफल हुए।

16 दिसम्बर को यहाँ के एक होनहार तरुण वकील अपनी पत्नी के साथ आए। वह एम. ए., एल्-एल्. बी. हैं, और फारसी की उच्च शिक्षा भी प्राप्त की है, पत्नी एम. ए. हैं। चाहते थे, पत्नी के पी-एच्. डी. का मैं निर्देशक बनूँ। घर में जिन स्त्रियों को बहुत काम नहीं रहता, वह यदि अपने समय का उपयोग कुछ और पढ़ने में किया करें, तो अच्छा ही है। पर हमारे यहाँ की अधिकांश स्त्रियों के तो युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ अब जेवर का काम करती हैं। जैसे उनके शरीर पर कुछ हजार के सुनहले और जड़ाऊ आभूषण चाहिएँ, वैसे ही एम. ए., पी-एच्. डी. भी शोभा की चीज है। मैंने उन्हें कहा कि रहीम के ऊपर आप अनुसंधान करें। रहीम-सम्बन्धी कितनी ही सामग्री फारसी में मिलती है, जिसमें आपके पति सहायता दे सकेंगे।

**दिल्ली**—उसी दिन शाम को गाड़ी पकड़ी, और 17 को साढ़े 5 बजे दिल्ली पहुँच गया। रिक्शा ले भैया के घर पर गया। वहाँ ताला बन्द था। तब तक बैठा इंतिजार करना पड़ा, जब तक कि अँधेरा दूर नहीं हो गया। दिल्ली आना प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के लिए हुआ, जो आज ही शुरू हुआ था। पं. गोविन्द वल्लभ पन्त ने उद्घाटन-भाषण किया। फिर सभापति श्री अनन्तशयनम् अय्यंगर ने अपना अध्यक्षीय भाषण दिया। दिल्ली के देवताओं में से दो ने हिन्दी के पक्ष का समर्थन किया, लेकिन जब तक ढेरी पर साँप बैठा है, तब तक हिन्दी का रास्ता कैसे साफ हो सकता था ? प्रधानमंत्री जबानी जमा-खर्च कभी-कभी दे दिया करते हैं, सो भी एक ओर से हिन्दी का यदि कुछ समर्थन करते हैं, तो दूसरी ओर उसके विरोध के लिए दूना मसाला दे देते हैं। शिक्षा-मंत्रालय तो इसीलिए बना है कि हिन्दी के रास्ते में पग-पग पर रोड़ा अटकाए। मैंने इन बातों को अपने अगले दिन के भाषण में कहा। वहाँ आचार्य चतुरसेन शास्त्री से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह हमारी पीढ़ी के हैं, और मेरी ही तरह से संस्कृत से हिन्दी के कथासाहित्य-क्षेत्र में उतरे। 18 दिसम्बर को साथी अजय से मिलने गया। यह तो मैंने सुना था कि उनकी पत्नी डा. गोपीचन्द भागर्व की बेटी हैं, परन्तु मैं यह नहीं समझता था कि वह मेरी पूर्वपरिचिता भी हैं। फिर चन्द्रगुप्तजी के यहाँ गया। दिल्ली क्या, हमारे सभी जगहों के नौकरशाह जनता के प्राण-धन की कोई पर्वाह नहीं करते। बरसात में बाढ़ आई, मोरियों का पानी पीने के पानी से मिल गया। स्वास्थ्य विभाग ने पर्वाह नहीं की, और अब लोगों को उसी के कारण खतरनाक

पीलिया रोग हो रहा था। चन्द्रगुप्तजी भी पीलिया में पड़े हुए थे। बुखार भीषण हो उठा था। उन्होंने समझा, अनाड़ी डाक्टर ने अनुचित इंजेक्शन देकर पीलिया पैदा किया। पर, अब तो मालूम ही है कि पीलिया का कारण इंजेक्शन नहीं था।

ढाई बजे सम्मेलन की साहित्य परिषद् का अधिवेशन शुरू हुआ। सभापति-पद का भाषण मैंने दिया, और दिल्ली के देवताओं की बेरुखी पर खूब कड़वी-मीठी कही। यह बातें देवताओं के कानों तक पहुँच नहीं सकतीं, उसके लिए तो अंग्रेजी में कहा जाना चाहिए। लेकिन, मैं देवताओं पर विश्वास नहीं रखता, मेरे लिए जनता सब-कुछ है। हिन्दी को यदि संविधान में संघ की भाषा स्वीकार किया गया, तो देवताओं के कारण नहीं, बल्कि जनता के कारण। देवता जानते थे, कि वोट माँगने के लिए हमें लोगों के पास ही जाना पड़ेगा, हिन्दी का विरोध करके हम बहुत-सा वोट खो देंगे, इसीलिए देवों-महादेवों सबको हिन्दी के लिए हाथ उठाना पड़ा। और भी कितने ही हिन्दी साहित्यिकों ने भाषण दिये। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का भाषण बहुत अच्छा और विनोदपूर्ण था। जैनेन्द्रजी ने दर्शन बघारा। नरेन्द्र शर्मा भी अच्छा बोले। सभा समाप्त होने से पहिले ही निकले कि लाल किले में श्रीमती सुन-यात-सेन के स्वागत में शामिल हों। साथी फारुकी ने आध-घंटा प्रतीक्षा भी की, लेकिन देर से आया, समय पर सवारी नहीं मिल सकी, और जा नहीं सका। दिल्ली में रहते छापने के लिए पड़ी आधे दर्जन से अधिक पुस्तकों के लिए प्रकाशक ठीक करना था। लेकिन, एक ही पुस्तक 'शादी' (उपन्यास) दे सका, जो भी लौट आई। सबसे ज्यादा उत्सुक था 'हिमाचल प्रदेश' और 'संस्कृत काव्यधारा' के लिए। 'संस्कृत काव्य-धारा' के लिए माचवेजी ने लाड साहब से मिलने के लिए आग्रह किया। उनके यहाँ 7 बजे के करीब पहुँचा। घंटे-भर प्रतीक्षा करने पर वह आफिस से आए। पुस्तक को दिखलाया। लेकिन, इस तरह के संस्कृत काव्य-संग्रह को अकादमी दूसरे विद्वानों से तैयार करा रही थी, इसलिए वह इसे लेने में असमर्थ थी। कितनी ही देर तक बातें होती रहीं। फिर वहाँ से निकले। उनका बँगला औरंगजेब रोड पर, बस स्टेंड से बहुत दूर था। उस रात को कोई सवारी नहीं मिल रही थी, बड़ी परेशानी हुई। पछता रहा था, क्यों इस रात को आना स्वीकार किया ? खैर, मेरे साथ शिव शर्मा भी थे, इसलिए हम लोगों ने जाकर बस पकड़ी, और रात को 10 बजे के करीब घर लौटे।

20 दिसम्बर को सबेरे निकला। यद्यपि हमें अब्दुर्रहीम खानखाना की समाधि देखनी थी, लेकिन पास ही में निजामुद्दीन की दरगाह भी है, जिसके भीतर अमीर खुसरो भी सो रहे हैं। आशा थी, शायद वहाँ खुसरो की कोई, कुछ किताबें मिल जाएँ। किताब नहीं मिली। पता लगा पास ही में ग़ालिब का मकबरा है। वहाँ गए। कब्रस्तान में बाकी कब्रों की तरह गालिब की कब्र भी रही होगी, लेकिन अब उसके ऊपर संगमर्मर की मढ़ी बना दी गई है। हमारे एक महाकवि का यह सम्मान हुआ, यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ से निकले। मथुरावाली सड़क पर आए। कुछ दूर जाने पर रहीम का विशाल मकबरा मिला। आकार वैसा ही है, जैसा हुमायूँ के मक़बरे का। बीच में कई मंजिला गुम्बद और चारों तरफ के चौकोर चबूतरों के नीचे सैकड़ों कोठरियाँ हैं। मकबरे के चारों ओर नौ-दस एकड़ ख़ाली जमीन है। एक-दो साल से हिन्दीवालों ने रहीम की ओर ध्यान दिया है। अब बेमन से ही सही, शिक्षा-मंत्रालय का भी ध्यान इधर कुछ आकृष्ट हुआ है। बेमन से इसलिए कहता हूँ, कि टूटते गुम्बद की मरम्मत का काम जिस तरह से शुरू हुआ है, उससे इस शताब्दी के अन्त तक भी मरम्मत नहीं हो सकेगी। खैर, भूमि के चारों ओर तार लगाने का इन्तिजाम हो रहा है। शिक्षा-मंत्रालय भली प्रकार समझता है, कि इससे हिन्दी का पक्ष मजबूत होगा। हिन्दीवाले रहीम के मकबरे को लेकर यहाँ अपना काबा खड़ा करेंगे। लेकिन, काबा हिन्दीवालों ने नहीं खड़ा किया, वह तो पहिले ही से वहाँ मौजूद है। रहीम दिल्ली में मरे, वहीं दफनाये गए, यह हिन्दीवालों का काम नहीं है। रहीम का जन्म लाहौर में 17 दिसम्बर 1556 ई. में और मृत्यु जनवरी या फरवरी 1627 ई. में हुई।

रहीम ने अच्छे दिन भी देखे और बुरे दिन भी। अकबर ने उन्हें जहाँगीर का अतालीक (गुरु) बनाया था। उसी जहाँगीर ने उनके लड़के का सिर काटकर खरबूजे की सौगात के रूप में थाल में रखकर उनके पास भेजा था। रहीम की उपेक्षा अब नहीं हो सकती, यह निश्चय है। मकबरे में जड़े संगमर्मर के बहुत-से भाग

को अपने नाम से बनी इमारत के लिए 18 वीं सदी के मध्य में सफदरजंग उखड़वा ले गया। अब भी कुछ संगमर्मर की पट्टियाँ मौजूद हैं। इमारत को देखने लायक बनाने के लिए कई लाख रुपयों की आवश्यकता होगी। संगमर्मर की पट्टियाँ फिर सभी जगह लगा उन पर रहीम के अनमोल दोहे लिखे जाने चाहिएँ। यहाँ पुस्तकालय, रंगमंच बने। इसी रौजे में रहीम की मूर्ति स्थापित हो। आस-पास की जमीन में फूलों का बगीचा लगाया जाए। लोग यहाँ आकर साहित्यिक गोष्ठियाँ और समारोह करें। आज से सौ साल बाद दिल्ली रहीम के ऊपर फूली नहीं समायेगी।

इरादा हुआ जामिया मिलिया भी चले चलें। शिव शर्मा और मैंने एक बस पकड़ी। भलेमानुस ड्राइवर जामिया के पास तक छोड़ आया। हम ठीक समय पर नहीं आए थे। जामिया की छुट्टी हो रही थी। हमारे परिचित अध्यापक डा. सलामतुल्ला और दूसरे छुट्टियाँ मनाने बाहर चले गए थे। स्कूल को देखा। फिर ट्रेनिंग कालेज की तरफ गए। मक्तब के संचालक श्री हामिद अली खाँ मिले। उन्होंने अपने कामों को दिखलाया। यहाँ से अभी-अभी वयस्कों के लिए हिन्दी में निकले विश्वकोश 'ज्ञानसरोवर' की दस जिल्दों में से पहिली जिल्द निकली थी। पुस्तक बड़ी उपयोगी थी, कोई हिन्दी का पक्षपाती उसमें कोई दोष नहीं निकाल सकता। हामिद अली साहब कह रहे थे–हमने आगे इसका निकालना बन्द कर दिया, क्योंकि सम्प्रदायवादी हिन्दू सरकार के जामिया मिलिया को रुपया देकर इस काम के करने की बुरी तरह से नुक्ताचीनी करते हैं। मैंने जोर देकर कहा–कम-से-कम इसकी बाकी नौ जिल्दों को निकालने तक तो अपने हाथ को पीछे न हटाइये। हिन्दी हिन्दुओं की बपौती नहीं है। कुतबन, मंझन, जायसी, रहीम ऐसे दावे को झूठ साबित करते हैं। बीच की शताब्दियों में मुसलमान उदासीन रहे, लेकिन वह समय बहुत जल्दी आ रहा है, जब मुसलमान हिन्दी के अच्छे-अच्छे कहानीकार, निबन्धकार और कवि होंगे। सारे हिन्दी-क्षेत्र में मुसलमान तरुण-तरुणियाँ हिन्दी पढ़ रहे हैं। उन्हें अपना उचित स्थान पाने से कौन वंचित कर सकता है ? क्या मुसलमान होने से हिन्दी साहित्यकार भेदभाव बरतेंगे ? यदि कुछ संकीर्ण हृदय ऐसा करना भी चाहें, तो वैसा करने में वे सफल नहीं होगे, यह मुझे पूरा विश्वास है।

यह ठीक है, कि जामिया मिलिया में अब भी हिन्दी की उपेक्षा है और उर्दू को सर्वेसर्वा रखा जा रहा है। यहाँ के विद्यार्थियों में ऐसे भाव पैदा किए जाते हैं, जिसके कारण यहाँ से निकले तरुण-तरुणियाँ अपने को विशाल भारतीय जाति का अभिन्न अंग न मान पुराने पृथक्त्व को कायम रखें। एक नौजवान इतिहास के प्रोफेसर ने मेरी उर्दू 'वोल्गा से गंगा' की भेंट की हुई कापी को इसलिए फाड़कर फेंक दिया कि उसमें अकबर के एक मुसलमान अमीर की लड़की का ब्याह हिन्दू अमीर के लड़के से कराया गया था। इससे सन्देह और बढ़ जाता है। लेकिन, समय ऐसे प्रतिगामी लोगों का सहायक नहीं हो सकता। हिन्दी जाति एक हो के रहेगी, धर्म चाहे जो माने या न माने। मैं समझता हूँ, जामिया के सभी लोग ऐसे अदूरदर्शी नहीं हैं। मुझे रहीम-सम्बन्धी पुस्तकों के बारे में कुछ जानना था। हामिद अली साहब ने पुस्तकाध्यक्ष नबी साहब और वायस-चांस्लर मुजीब साहब से मिलने के लिए कहा। नबी साहब ने कुछ पुस्तकों का नाम बतलाया। मुजीब साहब बड़े प्रेम से मिले। उन्होंने दो-तीन पुस्तकों का नाम बतलाया, और साथ ही मेरा पता लिख लिया। पीछे उन्होंने कई पुस्तकों के नाम लिख भेजे।

शाम को राष्ट्रपति भवन में म्युजियम को देखने गया। पता लगा, कालसी की खुदाई की ईंटें यहीं पर रखी हैं। यहीं श्री वृन्दावन बनर्जी से भेंट हो गई। यह तो मालूम हुआ, सारनाथ से उनकी बदली हो गई है, पर यह नहीं जानता था कि वह यहाँ चले आए हैं। आज से 27 वर्ष पहिले उनके पिता राखाल बाबू को मैंने जिस उमर में हिन्दू युनिवर्सिटी में देखा था, उससे भी इनकी उमर अधिक मालूम होती थी। उस समय काम के बारे में कहने पर राखाल बाबू ने कहा था–"अब तुम लोगों को काम करना हैं, हम तो बूढ़े हो गए हैं।" राखाल बाबू हमारे देश के प्रथम श्रेणी के इतिहासकार और पुरातत्वज्ञ थे। उनकी दूसरी पीढ़ी भी उसी मार्ग पर आरूढ़ है। वृन्दावन बाबू ने कितनी ही बातें बतलाईं।

उस दिन मेरे सभापति के भाषण में जोधपुर के एक तरुण से मुलाकात हुई। वह हिन्दी की गद्यकाव्य

की लेखिका श्रीमती दिनेशनन्दिनी चोरड़्या के यहाँ ठहरे हुए थे। दिनेशनन्दिनी अब चोरड़्या नहीं, डालमिया हैं। अब भी साहित्य के साथ स्नेह रखती हैं, और लिखती भी हैं। तरुण ने जब आकर कहा कि वह आप से बातचीत करना चाहती हैं, तो मैंने स्वीकार कर लिया। और 20 दिसम्बर की शाम को डालमिया भवन गया। दिनेशनन्दिनीजी से साहित्य पर बात होती-होती राजनीति पर चली गई। मैं उसके लिए उतावला नहीं था। इसी बीच में श्री रामकृष्ण डालमिया भी आ गए। मुझे कैसे भूल सकते थे ? एक मर्तबे डालमियानगर में रूस पर बोलने का उन्होंने विरोध किया था, लेकिन साथ ही दूसरी बातों को सुनने के लिए वह आखिर तक सभा में बैठे रहे। श्रीमतीजी कह रही थीं–धनी लोग सुख में डूबे रहते हैं, यह धारणा गलत है। मैंने कहा–"पैसे का मूल्य धनी लोग उतना नहीं समझ सकते, जितना कि दो-दो दिन पर आधा पेट खाना पानेवाला गरीब। श्मशान-वैराग्य तो सभी को आ जाया करता है, लेकिन वह दो मिनट का होता है। धनी भी जब विपरीत परिस्थिति में पड़ते हैं, तो उनको ऐसा वैराग्य हो जाता है।" हाल में ही डालमियाजी पर जो संकट आया था, उसके कारण उनके परिवार में इस तरह का श्मशान-वैराग्य आना जरूरी था। अपने पुत्र को चक्रवर्ती और अपने को अगले जन्म में कहीं का राजा होने की भविष्यवाणी ज्योतिषियों ने की थी। डालमियाजी उसी धुन में चले जा रहे थे। अन्त में जबकि उनकी पत्नियों और सन्तानों की संख्या एक दर्जन के करीब पहुँच गई, तो पासा उलटा पड़ गया। सट्टेबाजी से उन्होंने करोड़ों कमाया, और उसी सट्टेबाजी ने आज ऐसी हालत कर दी, कि उनका सब-कुछ दामाद के हाथ में चला गया। फिर परिवार क्यों न चिन्तित होता ? आज की सामाजिक व्यवस्था कितनी निष्ठुर है।

21 को फुटपाथ पर जा रहे थे। किसी ने केला खाकर छिलका फेंक दिया था। देखा नहीं, पैर पड़ा और फिसलकर गिर गए। बायाँ घुटना छिल गया, खून नहीं निकला, पर लाल हो गया। डायबेटीज़वाले को तो इसी से बहुत बचना होता है, लेकिन चौबीस घंटे तीसियों दिन कितना बचे, कभी आदमी चूक ही जाता है। तुरन्त पेनिसिलिन का मलहम लगाया। अगले दिन कानपुर पहुँचना था।

**कानपुर**–पिछली रात को ही रेल पर बैठे, 22 को 7 बजे स्टेशन पहुँचा। सैकेंड क्लास में जगह मिल गई। सब के पास अधिक से अधिक सामान था, जिससे रास्ता रुक गया था। गाजियाबाद में श्रीमती कमला चौधरी आईं। डब्बे में अगर एक आदमी परिचित निकल आए, तो जगह मिल ही जाती है। उनके साथ छोटी लड़की भी थी, जिसे मैंने डेढ़-दो वर्ष का देखा था। अब वह कान्वेन्ट में पढ़ रही थी। पिता मर गए थे, उसी सिलसिले में कमलाजी मिर्जापुर जा रही थीं। अब आयु का प्रभाव पड़ने लगा था। इधर उन्हें भी डायबेटीज़ की शिकायत है। रास्ते-भर साहित्य और राजनीति की चर्चा रही। साढ़े 4 बजे गाड़ी कानपुर पहुँची। स्वागत के लिए मित्र किसी दूसरी ही तरफ ढूँढ़ रहे थे। डब्बे में से बाहर निकलने में काफी मुश्किल पड़ी। समझा, समय बहुत बीत गया है, इसी कारण कोई मित्र यहाँ नहीं पहुँच सका। प्रतीक्षा किए बिना ही कुली से सामान उठवाकर पुल पार ताँगे पर बैठ सीधे मनीराम की बगिया में श्री पुरुषोत्तम कपूर के घर पर पहुँचा। मालूम हुआ, लोग फूलमाला लिये प्लेटफार्म देख रहे हैं।

कानपुर में जब-जब आया हूँ, तब-तब प्रोग्रामों की बड़ी भीड़ रहती है। चाहे उसके कारण थोड़ा-सा तरद्दुद हो, पर इतने मित्रों से मिलकर मुझे प्रसन्नता ही रही। कानपुर की कई साहित्यिक संस्थाओं की ओर से शाम को स्वागत हुआ। प्रिंसिपल सद्गुरुशरण अवस्थी सभापति थे। मैंने भी स्वागत का उत्तर दिया। लौटकर आने पर घर पर ही प्रगतिशील, तरुण लेखकों की गोष्ठी थी, जिसमें एक-दो घंटे बीते।

23 दिसम्बर को जुहारीदेवी और म्युनिसिपल कन्या इन्टर कालेजों में भाषण देना पड़ा। इसमें से जोहारी देवी में श्री पुरुषोत्तमजी की पत्नी श्री विमला कपूर पढ़ाती हैं। डबल एम. ए. करने का कुछ उपयोग होना, करना चाहिए, यह सोचकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। पर, पुरुषोत्तमजी इधर बुरी तौर से फँस गए थे। साझे में लाखों का कारबार था। एक साझीदार के ऊपर इतना छोड़ दिया, कि कई वर्षों तक लेखा-जोखा नहीं किया। फिर मालूम हुआ कि उन्होंने कई लाख के गुलछर्रे उड़ाये। एकाएक पहाड़ सिर पर पड़ा। बहुत-सी जायदाद बेचकर देने का भुगतान किया। अब भी बतला रहे थे, 50 हजार रुपया बाकी हैं। रहने का घर भी रेहन

है। जितना वक्त भार उतारने के लिए तरद्दुद कर रहे थे, यदि उतना पहिले किया होता, तो यह दिन देखना ही क्यों होता ? पर, हमारी संयुक्त-परिवार-योजना के लिए अभी ऐसे कड़े नियम नहीं बने हैं, कि उसकी नैया को मँझदार में जाने से पहिले ही खतरे का पता लग जाए। पुरुषोत्तमजी बहुत सहृदय और उदार पुरुष हैं। उनकी इस अवस्था को देखकर हमें भी दुःख हुआ। उनके घर में साथी संतोषी जैसा कम्युनिस्ट पैदा हो गया है, जिनके कारण घर के स्त्री-पुरुष भी कम्युनिज़्म से भड़कते नहीं। पुरुषोत्तमजी और उनकी पत्नी रूस को अपनी आँखों देख आए हैं। वह जानते हैं कि वहाँ का जीवन सबके लिए कितना निश्चिन्त और सुख का है। हमारे प्रोग्रामों को पालन करने में पुरुषोत्तमजी हमेशा अपनी कार लिये साथ-साथ रहे।

शाम को 9 बजे श्रीचन्द्र कौशल के यहाँ भोजन का निमंत्रण था। सालों से मैंने रात के भोजन को छोड़ दिया है। इधर डाक्टरों के कहने पर कि एक ही समय पेट को पूरा भरना ठीक नहीं है, उसे रात पर भी बाँटना चाहा, लेकिन अभी अनुकूल नहीं साबित हुआ। फिर रात के वक्त सौ-पचास किलोरी के भीतर रहते साग-सब्जी खाना स्वीकार किया। अच्छा भी था, क्योंकि इसके द्वारा किसी मित्र को निराश करने से बच जाता था। कौशलजी के यहाँ साग-सब्जी तैयार थी। पिछली एक यात्रा में कमला के साथ हम उनके घर पर ठहरे थे। उस वक्त दोनों भाइयों और देवरानी-जेठानी ने बड़ा स्वागत-सत्कार किया था। कौशलजी की बीवी बार-बार पूछती थीं—"कमलाजी को क्यों नहीं लाये ?" मैंने कहा—एम. ए. का अन्तिम वर्ष है, पढ़ाई में विघ्न होता, इसीलिए नहीं लाया। कौशलजी ने टेक्नालोजी में बी. एस-सी. किया था। हमारे परिभाषा के काम में उन्होंने बड़ी सहायता की थी। लेकिन, टेक्नालोजी की जगह वह टोले-मुहल्लेवालों को इन्कम-टैक्स के मामलों में परामर्श देने लगे। धीरे-धीरे इसी ने व्यवसाय का रूप लिया, और अब तो वह एल. एल. बी. होकर पूरे वकील बन, अपने व्यवसाय में काफी ख्याति रखते थे।

उसी दिन शाम को बंगाली भद्रजनों की मिलनी में हिन्दी भाषा और राष्ट्रभाषा की समस्या पर मैंने भाषण दिया। छोटी-सी सभा थी, लेकिन सभी सुशिक्षित और सुसंस्कृत थे। उसी रात एक और साहित्य-गोष्ठी में जाना पड़ा, जहाँ कानपुर के साहित्य-राजनीति पितामह श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा और कुछ कानपुर के करोड़पति भी मौजूद थे। देर तक साहित्य-चर्चा रही।

24 दिसम्बर को सबेरे 9 बजे से रात के 10 बजे तक पाँच जगह व्याख्यान देने जाना था, जिनमें एक डी. ए. वी. कालेज के पोस्ट-ग्रेजुएट छात्रों के सामने था। एक स्तरवाले श्रोताओं के सामने बोलने में मुझे बहुत सुभीता होता है, और अनेक स्तरवालों के सामने दिक्कत। इसका कारण यही है, कि मैं श्रोताओं को देखकर बोलता हूँ। व्याख्यान को जैसे-तैसे श्रोताओं के सामने झाड़ना नहीं चाहता। उस दिन दोपहर का भोजन श्री खेतानजी के यहाँ हुआ। खेतानजी मारवाड़ी हैं। उन्होंने प्रगतिशील साहित्य के प्रचार और प्रकाशन का काम अपने करंट बुक डिपो द्वारा किया है। पुस्तक-विक्रय और प्रकाशन के व्यवसाय को मारवाड़ी व्यवसायी पसन्द नहीं करते। इसमें सिमटकर बूँदें जमा होती हैं, और उन्हें चाहिए तुरन्त बड़े-बड़े नफे, जिसमें दो-चार वर्ष में दो-चार करोड़ बनाये जा सकें। उनके सामने ऐसे उदाहरण भी काफी हैं। फिर खेतानजी तो साधारण प्रकाशक नहीं, बल्कि प्रगतिशील साहित्य के प्रकाशक हैं, जिसमें और भी कम लाभ होने की गुंजाइश है। अपनी प्रगतिशीलता को उन्होंने व्यवसाय के तौर पर ही नहीं दिखलाया, बल्कि अपनी जाति को भी चेलेन्ज दिया। उनकी पत्नी मुस्लिम माता और हिन्दू पिता की सन्तान हैं। मारवाड़ियों के लिए यह कितना कड़वा घूँट है। तरुण की हिम्मत कितनी प्रशंसनीय है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। उस दिन रात का साग-भोजन श्री ललितकुमार अवस्थी के यहाँ हुआ। पहिले ललितजी सम्पादक थे। वह अनिश्चित काम था, इसलिए अब वह कालेज में प्रोफेसर हैं। यह कार्य साहित्य-साधना में सहायक है। उनकी वृद्धा माता अब भी जीवित हैं। उन्होंने दीवार पर ठापा बना रक्खा था। पूछने पर मालूम हुआ, कनौजियों में भी अहोई की पूजा होती है। भोजपुरियों में न देखकर मैंने समझ लिया था, कि यह सिर्फ पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान की चीज है।

25 दिसम्बर के बड़े दिन को भी सबेरे 9 बजे से रात तक सभाओं का ताँता रहा। एक जगह राष्ट्रीय सेवा संघ के कांग्रेसी तरुणों के सामने संसार-उत्पत्ति पर और अन्तिम गोष्ठी में तिब्बत की खोजों पर बोला।

यहाँ संयोग से श्री देवीप्रसाद शुक्ल (प्रयाग विश्वविद्यालय) भी मिले। 80 वर्ष के करीब पहुँचकर भी अभी वह काफी तन्दुरुस्त हैं।

उस दिन दोपहर का भोजन श्री जगदम्बाप्रसाद हितैषी के यहाँ हुआ। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का भोजन था, जिसमें मांस की प्रधानता थी। शाम को श्री कैलाश कपूर के यहाँ साग-भोजन हुआ। पिछली बार कैलाशजी अरविन्द के अनन्य भक्त मालूम हुए थे, पर अब रमण महर्षि के थे। दोनों ही महापुरुष अब संसार छोड़ गये हैं। 'भारत में ब्रिटिश राज्य के संस्थापक' पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए श्री खेतानजी ले गये। एक भार तो कम हुआ। उसके कुछ भागों को दोहराकर यहीं दे दिया।

**प्रयाग**–26 दिसम्बर को पौने 5 बजे सबेरे ही पुरुषोत्तमजी हमें स्टेशन ले गये। सवा 5 बजे ट्रेन आई। पहले दर्जे का एक छोटा-सा कम्पार्टमेन्ट मिला। अँधेरे-अँधेरे ट्रेन रवाना हो गई। इलाहाबाद जिले में घुस गए थे, जब कि मनौरी के पास कहीं पर मिट्टी की छतों का स्थान खपड़ैलों ने लिया। मेरे लिए यह भेद काफी महत्व रखता है, क्योंकि मिट्टी की छतों का आरम्भ रूस में उराल पर्वतमाला से शुरू होते मैंने देखा था।

स्टेशन पर श्रीनिवासजी, डा. उदयनारायण तिवारी, श्री वाचस्पति पाठक, श्री जयगोपाल मिश्र और दूसरे मित्र मिले। वहाँ से हम श्रीनिवासजी के घर पर पहुँचे। भोजनोपरान्त पहिले सम्मेलन-मुद्रणालय में छपाई की गतिविधि देखने गए। आजकल प्रेस सम्मेलन-परीक्षा-सम्बन्धी कागज छापने में अस्त-व्यस्त था। जो गेली प्रूफ हमने देखकर लौटाया था, उसका संशोधन भी नहीं हो सका था। यह जानकर संतोष हुआ, कि पुस्तक आगे पंच की जा रही है। श्रीनिवासजी के यहाँ देखा, कि 'कार्ल-मार्क्स' के 18 फार्म छप चुके हैं। 'संस्कृत काव्य-धारा' के छापने में वह हिचकिचा रहे थे, लेकिन पीछे स्वीकार कर उन्होंने सम्मेलन-मुद्रणालय में छपाना मंजूर किया।

कमला की चिट्ठी पाकर चिन्ता हुई। हैपी वेली में रतिलाला के यहाँ चोरी हो गई, और चोर बराबर आ रहे हैं। मंगल परीक्षा देने देहरादून चले आए थे। उस वक्त भरोसा केवल भूत का था। कमला रिवाल्वर को हाथ नहीं लगाना चाहती थीं। अब लिखा था–"मुझे उसका अफसोस हो रहा है। बन्दूक और रिवाल्वर दोनों को अलमारी से निकालकर चारपाई के पास टाँग रखा है।" मैंने लिख दिया–"कल्याणसिंह के जिम्मे बँगले को लगाकर तुम देहरादून या अमृतसर चली जाओ।"

अगले दिन सम्मेलन-मुद्रणालय में गुंठेजी से मुलाकात हुई। उन्होंने 'मध्य-एसिया का इतिहास' को जनवरी तक निकाल देने के लिए कहा। मुझे सन्तोष क्यों होने लगा, जब कि मैं जानता था, कि प्रेसवाले जितना ही जल्दी निकालने के लिए कहेंगे, वह उतना ही देर करेंगे। उसी दिन निरालाजी से मिले। स्वास्थ्य बुरा नहीं मालूम हुआ, वैसे आयु का प्रभाव तो था ही। आजकल वह सिर्फ अंग्रेजी में बात करते थे। कुछ देर बात करके मैं वहाँ से उठा, तो वह भी बाहर निकल आए। फोटो लिये और नमस्कार करके विदा हुआ। भोजन डा. तिवारी के यहाँ था। पुराने जमाने की कुटिया को कुछ हजार लगाकर उन्होंने नया रूप दे दिया है। अब वह प्रोफेसर के रहने लायक है। पीछे थोड़ी-सी साग-सब्जी की जगह भी निकाल ली। लेकिन, यह जानकर चिन्ता हुई, कि मालिकों से कोई कागज-पत्र उन्होंने नहीं लिखवाया।

28 को सबेरे म्युनिसिपिल म्युजियम देखने गया। श्री सतीशचन्द्र काला ने सभी चीजें दिखलाईं। म्युजियम का अब अपना भव्य मकान बन गया है। मैं पहिली बार आया था। अभी स्थान अपर्याप्त है, और पास में कुछ और इमारतें बन भी रही हैं। पुराने खंडित कलापूर्ण देवता जुट जाने चाहिए, वह अपना मकान अपने बनवा लेते हैं–इस बात की यथार्थता मैंने यहाँ देखी। यह सुनकर अफसोस हुआ कि इसी जिले में अवस्थित कौशाम्बी की सामग्री यहाँ नहीं जमा की जा रही है। उसमें से कुछ लखनऊ भी जाये, इसमें हरज नहीं; लेकिन उस सामग्री को देखे बिना जो लोग कौशाम्बी देखेंगे, उनको घाटा होगा।

उसी दिन फतेहपुर जिले के एकडला के श्री ओमप्रकाश राउतजी ने अपने पूर्वजों के संगृहीत चित्रों को दिखाया। इनमें से कुछ चित्र बहुत ही सुन्दर हैं। राजा मानसिंह कछवाहा का चित्र उनमें से एक है। राग-रागनियों के दो सेट हैं, जिनमें से एक बहुत ही सुन्दर है। एकडला जैसे और भी गुमनाम स्थान हमारे देश में और घर

हो सकते हैं, जहाँ पुरानी बहुमूल्य सामग्री सुरक्षित है। कुतबन की 'मृगावती' और मंझन की 'मधु-मालती' भी इनके संग्रह में मिली हैं। वहाँ कितनी ही संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकें भी हैं। मैंने सलाह दी कि इन चित्रों को दिल्ली के राष्ट्रीय चित्रालय में भेजना चाहिए, तभी ये सुरक्षित रह सकते हैं। ये राउत लोग एक विशेष जाति के हैं। इनके रीति-रवाज राजपूतों की तरह हैं, लेकिन उनके साथ ब्याह-शादी नहीं होती। सबके गोत्र काश्यप हैं। एक गोत्र ही में ब्याह करना पड़ता है, सिर्फ एक मूलस्थान का परहेज करते हैं।

कुछ देर के लिए श्रीकृष्णदासजी के घर पर गये। उनकी बीवी ने मैट्रिक पास कर लिया है, और एफ. ए. में बैठ रही हैं। मैं इसका श्रेय श्रीकृष्णजी को देना चाहता था, लेकिन मालूम हुआ, कि पति से पढ़ने में कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। सचमुच ही पत्नी ने हिम्मत का काम किया था। मध्याह्न-भोजन के लिए श्रीगणेश पाण्डे के यहाँ आए। मांस और मछली दोनों बलियाटिक ढंग से बने थे। फिर वहीं के राधारमण कालेज, फिर अग्रवाल इन्टर कालेज में व्याख्यान दिये। लौटते वक्त डा. बद्रीनाथ प्रसाद के यहाँ गये। बड़ी लड़की और लड़के का ब्याह हो चुका था, छोटी लड़की अरुणा का ब्याह 23 जनवरी को होने जा रहा था। डाक्टर साहब का आग्रह था, और मैं भी बहुत चाहता था, लेकिन आगे के प्रोग्रामों के कारण फिर लौटकर आने में असमर्थ रहा। यह ब्याह और डा. बद्रीनाथ प्रसाद का परिवार नये भारत के निर्माण का महत्वपूर्ण काम कर रहा था। सिर्फ बड़ी लड़की का ब्याह अपनी जात में हुआ था, पुत्र और छोटी पुत्री ने जात-पाँत और प्रान्त-प्रदेश की सीमाएँ तोड़ डालीं।

उस दिन शाम को पार्टी-आफिस में गोष्ठी हुई। नागार्जुन ने अपनी कविता सुनाई। तरुण पण्डा ने बुन्देली के बहुत सुन्दर गीत गाये।

29 दिसम्बर को सबेरे पहिले डा. भगवतशरण उपाध्याय के पास गया। उनके पिता का शरीर सूख गया है, पेट में केन्सर है। चल-फिर रहे हैं और परिवार की गाड़ी खींचे जा रहे हैं। भगवतशरणजी यहीं कुछ काम कर रहे हैं। यदि हिन्दी विश्वकोश का प्रधान-सम्पादक मुझे बनना पड़ा, तो उनकी जरूरत मैं सबसे अधिक समझता। लेकिन, अभी तो वह केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के कारण खटाई में पड़ा हुआ था। उस दिन मध्याह्न-भोजन डा. बद्रीनाथ प्रसाद के यहाँ हुआ। भोजन करते वक्त बार-बार लक्ष्मीजी याद आती थीं। इस घर में महीनों नहीं, तो हफ्तों और न जाने कितनी बार मैं घर की तरह रहता, लक्ष्मीजी भोजन कराया करतीं। अब सदा के लिए वह इसे सूना करके चली गयीं।

शाम को निराला-परिषद की ओर से गोष्ठी हुई। पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र, गिरीशजी और दूसरे मित्रों के साथ संयोग से श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी भी पहुँच गये थे। मिश्रजी ने अपने गाँव के प्राचीन अवशेषों के बारे में बतलाया, जिससे मालूम हुआ कि आजमगढ़ में न जाने कितने महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थान अनुसन्धानकर्ताओं की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सम्मेलन में झगड़े के कारण गतिरोध हो गया था। इससे हिन्दीभाषी क्षेत्र के साहित्यकारों का सम्मेलन के अवसर पर मिलकर विचार करना रुक गया था। अब की उसी तरह का एक सम्मेलन वर्धा में होने जा रहा था। वहाँ पर बहुत-से मित्रों से भेंट होगी, यह ख्याल कर मैंने भी चलना स्वीकार कर लिया।

**वर्धा**–उस दिन साढ़े 7 बजे रात को काशी एक्सप्रेस पकड़ा। यद्यपि भीड़ थी पर, ऊपर बिस्तरा बिछ गया था, इसलिए सोने का आराम था। इसी ट्रेन से प्रयाग के कुछ और मित्र भी जा रहे थे, लेकिन उस वक्त पता नहीं लगा। 30 दिसम्बर के 7 बजे सबेरे हमारी ट्रेन इटारसी पहुँची। यहाँ से ग्रांड ट्रंक पकड़नी थी। श्री ओमप्रकाश (राजकमल), श्री ज्योतिप्रसाद निर्मल और तीन-चार और साथी वर्धा के लिए मिल गये। गाड़ी में बड़ी मुश्किल से जगह मिली। मैं और ओमप्रकाशजी अपने सामान को सैनिकों से भरे एक कम्पार्टमेंट में रखकर दूसरे डब्बे में चले गये। डाइनिंग कार में मध्याह्न-भोजन करते कुछ समय बिताया। सामिष भोजन सवा रुपये में बुरा नहीं था। अब अपने सामानवाले डब्बे में आये। सैनिक सभी शिक्षित और मद्रासी थे। कश्मीर से छुट्टी पर जा रहे थे। सभी अंग्रेजी जानते थे, और उत्तर में रहते हिन्दी भी बोलते थे। सैनिकों में अवश्य भारी अन्तर आ गया था। उनमें बहुत भद्रता देखने में आई। मुमकिन है शिक्षित होने के कारण हो।

अमला के पास टोकरियों में भरकर नारंगियाँ बिक रही थीं। दो रुपये में 85 का टोकरा हमने भी खरीद

लिया। आध घंटा लेट रहकर ट्रेन वर्धा पहुँची। स्वयंसेवक वहाँ तैयार मिले। पहिले तो डर लग रहा था, इस भीड़ से सामान कैसे निकालेंगे, दरवाजा खुलने का रास्ता ही नहीं था। लेकिन निकालना तो जरूर था, किसी तरह बाहर निकले।

हिन्दी नगर पहुँचे। डा. उदयनारायण तिवारी, डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा. रामकुमार वर्मा, डा. नगेन्द्र, डा. दशरथ ओझा, श्री बलदेव नारायण मिश्र आदि बहुत-से साहित्यकार आये हुए थे। मेरठ से प्रेमजी भी अपनी पत्नी के साथ पहुँचे। हम एक ही कमरे में ठहरे। अब की भी समिति के मकानों में वृद्धि हुई थी। खासकर वे कमरे नये थे, जिनमें प्रतिनिधि ठहराये गये थे। तम्बू भी पड़े थे। वहीं कनैला के पास उमरपुर के तिवारीजी चांडूक के एक वृद्ध सेठजी के पास आये। दोनों साहित्य से अनुराग रखते हैं। सेठजी आर्यसमाज के भक्त हैं। उसके लिए वहाँ काफी खर्च करके संस्था कायम की है। तिवारीजी अपने गाँव की बातें बतलाते हुए बोले—अब तो जीविका का साधन यहीं हो गया है, इसलिए कभी दो-चार साल में घर चला जाता हूँ।

31 दिसम्बर को सम्मेलन की विषय-निर्धारिणी की बैठक हुई। एक प्रस्ताव इस विषय का भी स्वीकार किया गया कि सम्मेलन के सम्बन्ध में सरकार एक विशेष कानून बनाये। वहीं बम्बई प्रवासी श्री माधवाचार्य से मुलाकात हो गई। मुझे क्या, किसी भी आदमी को बात सुनने से शुरू-शुरू में यही मालूम होगा, कि यह आदमी बहुत हल्का है। इस बात की आशंका माधवाचार्य अपने ही बहुत-सी झूठी-सच्ची बातें करके बढ़ा देते हैं। लेकिन कुछ समय की बातचीत से मुझे मालूम हो गया कि इस पुरुष ने संस्कृत के दर्शन का गम्भीर अध्ययन किया है। ऐसे पण्डितों में से हैं, जिनकी संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है। ब्रज में जन्मे थे, फिर काँची के प्रतिवादी भयंकर गुरु के पण्डितों में रहे। अगले दिन फिर मैंने दिल खोलकर बात करने का निश्चय किया था, पर मालूम हुआ, वह सबेरे ही चले गये थे। मुझे बहुत अफसोस हुआ। उनकी विद्या का जैसा उपयोग चाहिए, वैसा नहीं हो रहा था। बम्बई के किसी कालेज में संस्कृत पढ़ा रहे थे।

अपराह्न अधिवेशन में प्रस्ताव पास हुए। यह आशा रखी गई थी कि प्रयाग सम्मेलन के विरोधी दल के लोग यहाँ आएँगे, और उनसे मिलकर कोई रास्ता निकाला जायेगा, लेकिन उनमें से कोई नहीं आया। सभापति श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र थे। अधिवेशन बहुत सफल रहा। उसके अन्त के साथ यह सन् भी खतम हो रहा था।

इस साल मेरे कार्यों में 'लेनिन', 'बचपन की स्मृतियाँ' और 'सरदार पृथ्वीसिंह' (द्वितीय संस्करण) प्रकाशित हुए। 'विस्मृत यात्री' और 'मार्क्स' करीब-करीब छप चुके हैं। 'संस्कृत पाठमाला' और 'संस्कृत काव्यधारा' लिखकर तैयार है। 'शादी' और 'भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक' प्रेस में हैं। समय का उपयोग किया, यह जानकर संतोष हुआ।

# 16
# छोटी-सी यात्रा

1 और 2 जनवरी को वर्धा ही में रहना पड़ा। वर्धा में आकर सेवाग्राम की यात्रा करनी आवश्यक हो जाती है। 1 तारीख को सबेरे 7 बजे श्री हरिहर शर्मा (मद्रास) के साथ मोटर से 9 बजे हम सेवाग्राम पहुँचे। बापू की कुटिया सूनी थी, पर वहाँ जहाँ-तहाँ साइनबोर्ड लगा दिये गए थे। अगर चेलों के भरोसे होता, तो सारा आश्रम ही सूना रहता, पर भला हो तालीमी संघ का। उसने कई शिक्षण-संस्थाएँ कायम करके घरों को भर दिया है। श्रीमती आशादेवी आर्यनायमे, उनके पति तथा और कितने ही आश्रमवासियों से भेंट हुई। श्रीमती आशादेवी गाँधीवादिनी हैं, पर ऐसी नहीं कि वाद की सीमा के भीतर सती होने के लिए तैयार हों। पति द्रविड़ और स्वयं बंगाली हैं। बंगालियों की चौमुखी सांस्कृतिक प्रगति का उन जैसी शिक्षिता महिला पर असर न हो, यह हो नहीं सकता था। उनका बहुत आग्रह हुआ कि यहाँ के शिक्षार्थी तरुण-तरुणियों के सामने मैं कुछ बोलूँ। एक बड़े हॉल जैसे कमरे में थोड़ी देर में डेढ़ सौ श्रोता जमा हो गए। मैंने अधिकतर तिब्बत की यात्रा और वहाँ की सांस्कृतिक निधियों पर भाषण दिया।

वहाँ से लौटकर महिला आश्रम पहुँचा। वहाँ अगले दिन साढ़े 8 बजे बोलने का आग्रह हुआ। इसी समय छुट्टी मिल गई होती, तो अच्छा होता। उस दिन शाम को सवा 8 बजे टौन हॉल में सामयिक समस्याओं पर बोला, और दूसरे स्थान पर बैठकर गोष्ठी 11 बजे तक चलती रही। अगले दिन साढ़े 8 बजे महिला आश्रम की छात्राओं में बोलना पड़ा। पिछली यात्रा में छात्राओं की संख्या कम थी, लेकिन अब 50 ट्रेनिंग पानेवाली तरुणियों के भी हो जाने से उनकी संख्या 112 हो गई थी। ट्रेनिंग पानेवालों को 25 रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिलती है। गाँधीजी की प्रेरणा से भारतीय सांस्कृतिक वातावरण में लड़कियों को शिक्षा देने के लिए यह संस्था कायम हुई थी। बजाजजी और उनके परिवार का इसकी स्थापना और सहायता में बड़ा हाथ रहा। मैंने भारतीय संस्कृति पर ही बोलना आवश्यक समझा, और बतलाया—हमारी संस्कृति कभी एकांगी, आस्तिक नहीं रही। यदि उसमें परमभक्त पैदा होते रहे, तो परमनास्तिक भी होते आए हैं। संस्कृति कोई पत्थर की लकीर नहीं है, बल्कि नदी का प्रवाह है, जो सदा प्रति क्षण बदलता रहता है।

चलते समय एक सीढ़ी बाकी थी का ख्याल नहीं किया, और अँगूठे में चोट लगवाकर खून निकलवा लिया। डायबेटीज़ में यह बुरा है, और बुरी चीज सबसे पहिले आ उपस्थित होती है।

कमला का ध्यान कलिम्पोंग जाकर रहने का हो रहा था। उनको ही लम्बे काल को पार करना है, इसलिए रहने के बारे में उनकी राय का ख़्याल करना सबसे जरूरी है। आनन्दजी अब अधिकांश कलिम्पोंग में ही रहते हैं। वे बतला रहे थे, यहाँ साग-सब्जी दार्जिलिंग से भी ज्यादा महँगी मिलती है। लोगों में भारी बेकारी है, सम्पत्ति का मूल्य गिर गया है। सम्पत्ति का मूल्य तो और भी गिरेगा, बेकारी और भी बढ़ेगी, क्योंकि ल्हासा

और तिब्बत के व्यापार ने कलिम्पोंग को बसाया था। अब ल्हासा से जो मोटर-सड़क टोमो (चुम्बी) उपत्यका के छोर तक बनकर आई है, वहाँ गन्तोक से करीब पड़ता है। अभी भी दोनों तरफ की सड़कों के छोरों के बीच में दो ही तीन दिन पैदल का रास्ता है, जिसे और कम किया जा सकता है। माल के लिए डाँडे पर रोपवे लगा दी जाए, तो कोई अचरज नहीं। न भी लगे, तब भी अब आयात-निर्यात का द्वार कलिम्पोंग नहीं, बल्कि गन्तोक होगा। पीछे मणिहर्षजी से मालूम हुआ, कि अभी ही, भारी किन्तु अपेक्षाकृत कम दामवाले माल को गन्तोक से ल्हासा भेजा जा रहा है। कीमती माल के आयात-निर्यात करनेवालों को अपने कलिम्पोंग के घरों को भी देखना है, और लारी पर जाने पर दाम में एक-दो पैसे का अन्तर पड़ता है, जिसकी वे पर्वाह नहीं करते। तो भी आधुनिक यातायात का जितना सुभीता गन्तोक को प्राप्त है, उसके कारण खरीदने-बेचने वाले भी दोनों तरफ से वहाँ ज्यादा पहुँचेंगे। यह सुनकर आश्चर्य नहीं होगा कि कुछ ही सालों बाद कलिम्पोंग की भाग्यलक्ष्मी भागकर गन्तोक चली गई।

उसी दिन 3 बजे मेरी अध्यक्षता में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की बैठक हुई। वस्तुतः इसी के लिए मैं एक दिन ठहर गया था, नहीं तो कल ही और मित्रों के साथ चला गया होता। श्री मोहनलाल भट्ट दुबारा मन्त्री चुने गए। बजट छोड़ दूसरे सब निश्चय कर लिये गए।

मऊ छावनी (मालवी) के श्री बैजनाथजी वहाँ के योगिराज महेश की हकीकत बतला रहे थे। पहले योगिराज के पास आसमान से छप्पर फाड़कर सम्पत्ति आती थी। वह कई सालों से लाखों का मन्दिर बनवा रहे थे, जिनमें इतालियन संगमर्मर लगता था। हरेक बात तो रहस्मय रखी जाती थी। पर बहुत दिनों तक रहस्यमयता रखना मुश्किल है, और योगिराज अरविन्द या रमण महर्षि की तरह साधन और साधक सम्पन्न भी उतने नहीं, इसलिए थोक दूकान से काम न होते देख उन्होंने खुदरा सौदे का भी काम शुरू कर दिया है। धर्मों ने हर देश की संस्कृति की बड़ी सेवा की, लेकिन सबसे बड़ा पाप उसका यही दूकानें और इनके सेठ हैं, जो आँखों में धूल झोंककर दुनिया को भेड़ बनाना चाहते हैं।

**प्रयाग**–3 जनवरी को साढ़े 7 बजे सबेरे ही हम स्टेशन पहुँच गए। गाड़ी लेट थी। दिन-भर चलने में कोई दिक्कत नहीं थी, पर इटारसी से प्रयाग रात को चलना था। पिछली बार जिस मुसीबत का सामना करना पड़ा था, उसके कारण यही समझा कि टिकट प्रथम श्रेणी का ले लिया जाए। ग्राण्ड ट्रंक दूर से आनेवाली ट्रेन थी, जो यहाँ से सीधे इटारसी ले जाती। जगह अच्छी थी। नागपुर के कितने ही हरिजन कार्यकर्ता बड़ी आशा रखते थे कि मैं वहाँ एक दिन के लिए उतर जाऊँगा। पर, समय की कमी थी। ट्रेन में डा. अम्बेडकर के अनुयायी अनेक तरुण आए, जो अगली वैशाख पूर्णिमा के समय अपने नेता के साथ लाखों की संख्या में बौद्ध बननेवाले थे। उनके आग्रह को ठुकराना बहुत मुश्किल था, लेकिन मजबूरी थी। उन्होंने एक टोकरा नागपुर का सन्तरा लाकर रख दिया। इस वक्त सन्तरों का मौसम था।

शाम को 6 बजे इटारसी पहुँचा। यहाँ से काशी एक्सप्रेस पकड़ना था, और तीन घंटे प्रतीक्षा करनी थी। ट्रेन के क्लर्क ने बतलाया, प्रथम श्रेणी में भी जगह मुश्किल से ही मिलेगी। गुनाह बेलज्जत तो नहीं होगा। पर, अब तो पहिले दर्जे का टिकट ले चुका था। प्रतीक्षालय में लोग भरे हुए थे। एक जेन्टलमैन और उनकी लेडी अपने बक्से के पास की कुर्सी पर बैठे थे, जिनकी लड़की जया की उमर की ही थी। उसकी तोतली हिन्दी बिल्कुल वैसे ही निकल रही थी। वह बराबर जया की याद दिला रही थी। अपरिचित व्यक्ति से लजाना बच्चों का स्वभाव है। जान पड़ता है, बच्चे एक ही तरह से सीढ़ियों को प्यार करते हैं, यदि उनकी आनुवंशिक मानस-सम्पत्ति एक जैसी हो।

8 बजे काशी एक्सप्रेस आया। चार सीट का एक कम्पार्टमेंट खाली था, और चढ़नेवाले तीन ही थे। एक सीट आगे भरी। मानिकपुर पहुँचते-पहुँचते 6 बजे सबेरा हो गया। रात को सोने का काम खतम हो गया था, इसलिए यदि डब्बे में सोने की गुंजाइश न हो, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। साढ़े सात बजे गाड़ी स्टेशन पर पहुँची, और रिक्शा ले मैं श्रीनिवासजी के मकान में पहुँच गया। कमला की तीन चिट्ठियाँ मिलीं। यह शिकायत स्वाभाविक ही थी कि उनके पास लिखी गई मेरी चिट्ठियाँ बड़ी होनी चाहिएँ, उनमें ज्यादा बातें

रहनी चाहिएँ। यह कठिन भी नहीं था, क्योंकि अपनी यात्रा में से ही कितनी चीजें मैं लिख सकता था, लेकिन हर वक्त तो सभाओं, गोष्ठियों और मित्रों का ताँता रहता था। कार्ड नापसन्द होने से मैंने छः पैसे का पत्र लिखना शुरू किया था, लेकिन उसमें भी रुचि की बातें अधिक नहीं लिख सकता था।

श्रीनिवासजी से तै हुआ था कि मैं रायल्टी 20 सैकड़ा से कम करके 15 सैकड़ा लूँगा, और वह 500 रुपया मासिक रायल्टी में से अग्रिम देते रहेंगे। जब तक रायल्टी छः हजार सालाना नहीं हो जाती, तब तक उन्हें अवश्य अधिक देना पड़ेगा, जिसे वह आगे काट लेंगे। उन्हें आशा थी, दो-एक वर्ष में रायल्टी उतनी मिलने लगेगी। मसूरी में पाँच सौ रुपये मासिक औसतन खर्च जरूर आ जाता है। एक यह भी कारण था, जिससे कमला का कलिम्पोंग जाना मुझे पसन्द था। वहाँ शायद तीन सौ रुपये में काम चल जाता। दुनिया की आज की व्यवस्था, विशेषकर साम्यवादी देशों के बाहर, ऐसी है, जिसमें निश्चित जीवन बिताना मुश्किल है। आर्थिक चिन्ता स्वाभिमानी और अनेक मित्रोंवाले आदमी के लिए सबके मुश्किल है।

उस दिन रात को श्री अशोक (जमुनाप्रसाद वैष्णव) के यहाँ शाम को भोजन के लिए गया। भोजन तो स्टार्च-रहित साग-पात ही थोड़ा-सा मैं शाम को करता हूँ, लेकिन वहाँ अनेक पर्वतीय साहित्यिक मित्रों से मुलाकात हुई।

5 जनवरी को नागार्जुनजी आए। वह एक उपन्यास के लिखने में लगे थे। प्रकाशक ने पिंजरे में बन्द कर रखा था, ताकि समय पर वह पुस्तक को समाप्त कर सकें। मैंने सोचा था, 'संस्कृत काव्यधारा' वही लिखेंगे। कई सालों की प्रतीक्षा के बाद जब उसे नहीं होता देखा, तो स्वयं ही हाथ लगाना पड़ा। 'पालि काव्यधारा' के बारे में भी किसी दाता को ढूँढ़ रहा हूँ, देखूँ वह मिलता है या उसे भी अपने ही करना पड़ेगा।

उस दिन सबेरे श्री रामनाथ त्रिवेदी आए। पंचायती चुनाव हुआ था, जिसकी बातें बतला रहे थे। कह रहे थे—बड़ी जातवालों ने बड़े छल-बल से अपने प्रभुत्व को कायम रखना चाहा। लेकिन, बार-बार बहुजन को धोखा कैसे दिया जा सकता है ? उसी दिन महादेवीजी के महिला विद्यालय में भी गये। डेढ़ घंटे तक वहीं साहित्य और राजनीति पर बातें होती रहीं। अपनी परेशानियों को बतला रही थीं। पं. सुन्दरदास की तरह महादेवीजी भी 'काजी जी दुबले शहर के अंदेशे' के फेर में पड़कर साहित्यकारों को सहायता पहुँचाना चाहती हैं। सभी अपनी-अपनी इच्छाओं को लेकर आते हैं। महादेवी जी के पास अक्षय भण्डार तो नहीं है। यदि किसी की इच्छा पूर्ण नहीं होती, तो वह विरोधी बन बैठता है। ऐसे भी हैं, जो उनको ढाल बनाकर अपना काम सिद्ध करना चाहते हैं, जिसकी बदनामी भी उनके ऊपर पहुँचती है। लेकिन वह अपनी आदत से मजबूर हैं। अब उमर भी ऐसी आ गई है, जबकि ठोकरें खाकर सीखना मुश्किल है। आदमी कछुवा तो नहीं है, जिस वक्त चाहे सिर-हाथ बाहर फैला दे, और जिस वक्त चाहे भीतर खींच ले। बढ़ा हुआ व्यक्तित्व अनेक खूँटियों में बँध जाता है, जो आदमी के मान से बाहर की होती हैं। उस दिन शाम को 6 बजे श्रीपतिरायजी के घर पर चाय और गोष्ठी हुई। श्रीपतिराय बड़े व्यावहारिक हैं; हाँ, बुरे अर्थों में नहीं। इसकी पहचान तो उनकी सवारी ही बतला रही थी। उन्होंने एक ऐसी छोटी ट्रक ले रखी थी, जिसमें ड्राइवर की सीट पर दो आदमियों को और बैठा सकते थे, और पीछे सात-आठ मन सामान आसानी से रख सकते थे। बतला रहे थे, मैं परिवार को लेकर पहाड़ पर भी इससे हो आया हूँ। हाँ, व्यवसायी को ऐसी ही सवारी चाहिए। वह दो मोटरों का काम एक से ले रहे थे। गोष्ठी में कवि श्री सी. बी. राव, डा. भगवतशरण उपाध्याय और दूसरे कितने ही नवयुवक साहित्यकार आये थे। साहित्य पर ही हमारी बातचीत होती रही।

**बनारस**—बनारस प्रयाग से छोटी-बड़ी दोनों लाइनें जाती हैं, पर मैं बराबर ही छोटी लाइन से आया-जाया करता हूँ। शायद इसका कारण ट्रेनों के समय की अनुकूलता हो। लेकिन, आजकल तो अनुकूल नहीं थी। ट्रेन 5 बजे अँधेरा रहते रवाना होनेवाली थी, इसलिए साढ़े 4 बजे ही स्टेशन (रामबाग) जाना जरूरी था। जब 5 बजने में आधा घंटा रह गया, तो श्रीनिवासजी के ड्राइवर की आशा छोड़नी पड़ी। उसकी जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि मेरी शंका निर्मूल साबित हुई, और आनन्द-भवन के सामने कई रिक्शे उस समय भी खड़े थे। स्टेशन पर पहुँचा। 5 बजकर 10 मिनट पर गाड़ी रवाना हुई। 'संस्कृत काव्यधारा' के प्रकाशित करने की मुझे सबसे

ज्यादा चिन्ता थी। श्रीनिवासजी ने उसे ले लिया, और गुण्ठेजी ने सम्मेलन-मुद्रणालय में छापना भी स्वीकार कर लिया था, लेकिन छपाई के मोल-भाव के ठीक होने में काफी समय लगा। तो भी मैं उसके सौ पृष्ठ दे चला था। ट्रेन के बाहर देख रहा था—सरसों, मटर फूली हुई हैं, आलू की फसल भी तैयार होने लगी है। देहात में भी बिजली के खम्भे खड़े देखकर आश्चर्य करने की जरूरत नहीं थी। हमारे उत्तर प्रदेश और बिहार के बहुत भाग की समस्या सिंचाई है। जब तक जमीन के नीचे बहती गंगा को ऊपर नहीं लाया जाता, तब तक हर दूसरे-तीसरे साल फसल की भारी क्षति को रोका नहीं जा सकता। ट्यूबवेल जारी करने के लिए बिजली की बड़ी जरूरत है। यह बिजली सिर्फ उसी में खर्च होगी, क्योंकि जैसी गरीबी हमारे गाँवों में है, उसके कारण गाँवों में शायद एक-दो घर ही बिजली लगाना पसन्द करें।

स्टेशन पर श्री सत्येन्द्रजी के पिता और प. देवनारायण द्विवेदी मौजूद थे। सत्येन्द्रजी के पिता की फ्रेंच-कट दाढ़ी बतला रही थी, वह प्रचीनपंथी नहीं हैं। और पीछे तो उनके साहित्यिक विचार भी बहुत उदार मालूम हुए। सीधे सेवा-उपवन पहुँचे। सत्येन्द्रजी को अपने प्रेस के काम के लिए उसी दिन कलकत्ता जाना था, लेकिन उनके अनुज और घर की शिक्षित महिलाएँ मौजूद थीं। जाकर पहिले स्नान-भोजन किया। सत्येन्द्रजी के दोनों बहनोंई सैनिक अफसर हैं, लेफ्टिनेंट-कर्नल और दूसरे कप्तान। कप्तान साहब अपनी पत्नी के साथ इस वक्त ससुराल में आए थे। बनिए फौजी अफसर हों, यह आश्चर्य की बात होगी। पर, भारत को ऐसे अलग-थलग रहनेवाले न वनियों की आवश्यकता है, न क्षत्रियों की, और न किसी की। वह पुराना कटघरा पहिले भी कायम नहीं रह सका, और अब तो काल से लड़कर वह बच ही नहीं सकता। आखिर अग्रवाले तो आज से डेढ़ ही हजार वर्ष पहिले दुर्धर्ष जयमंत्रशाली यौधेय क्षत्रिय थे। उनके गणराज्य का नाश हुआ। उसके पुनरुज्जीवित करने की कोई सम्भावना नहीं रह गई, फिर आग्रेयों और उनके दूसरे बन्धुओं ने तलवार की जगह तराजू पकड़ लिया। अब यदि वह तराजू को फिर तलवार से बदलें, तो इसमें कहने की क्या बात है ? कोई भी पेशा किसी की बपौती नहीं है। जिसकी भी उसके विषय में रुचि और क्षमता हो, उसे करना चाहिए।

बनारस में सत्येन्द्रजी के आतिथ्य में कई सुभीते भी हैं। घर में आत्मीयता मालूम होती है। यद्यपि सत्येन्द्रजी की पत्नी और उनकी देवरानी सुसंस्कृत-सुशिक्षित महिला होने से कुछ सुनना चाहती हैं, और यह मेरे लिए उनके आतिथ्य से उऋण होने का भी अच्छा अवसर है, लेकिन, बराबर कोई न कोई मित्र आये रहते हैं, या मुझे ही दर्शन करने के लिए उनके स्थानों में जाना पड़ता। इसलिए मैं अपने ऋण को अदा नहीं कर पाता। उस दिन 3 बजे मोटर से निकला, तो पहले अस्सीघाट पर जगन्नाथ मन्दिर में गया। बचपन की एक उड़ान के दो-तीन दिन के साथी पुजारी दशरथजी मिले। उनके सारे बाल सफेद और बुढ़ापे की पूरी पकड़ में आ गए थे। उनके बड़े भाई अब इस दुनिया में नहीं थे। थोड़ी देर उनसे दुःख-सुख की बातें चलती रहीं। फिर मोतीराम के बगीचे में गया। मोतीराम का बगीचा अब नहीं कहना चाहिए, यह गोयनका पाठशाला है। पर मोतीराम के बगीचे का नाम मेरे लिए जितना प्रिय है, उतना यह नाम नहीं। विशेषकर जब कि मैं देखता हूँ कि अपने समय के निष्कपट सन्त महाविद्वान वास्तविक सन्त मँगनी ब्रह्मचारी का नाम मिटाकर यह विद्यालय खोला गया। मुझे काल से यही विश्वास है कि दूसरे के नाम को मिटाकर बनी इस संस्था का भी नाम मिट जाएगा। सेठों ने कोई धर्मपूर्वक धन नहीं कमाया है कि उन्हें मनमानी करने के लिए छोड़ दिया जाए।

फिर हिन्दू यूनिवर्सिटी के संग्रहालय (म्युजियम) गए। दस लाख की इमारत बन रही है। अभी उसके नीचे के ही कुछ कमरे तैयार हो पाए हैं। सामग्री यहाँ आ गई है। राय कृष्णदासजी ने इस संस्था की नींव डालते चित्र, मूर्तियाँ और दूसरी चीजें बड़ी लगन से नागरी प्रचारिणी सभा में एकत्रित करनी शुरू की थीं। अब वह एक बड़े संग्रहालय की बुनियाद बनने जा रही हैं। यहाँ के चित्रों के संग्रह में कवि रहीम की तस्वीर भी है। वहीं कूटस्थ अचल विद्वान जिज्ञासुजी भी मिल गये। मारकण्डेय की तरह उनके ऊपर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कह रहे थे—आप ऋग्वेद के इतिहास के सम्बन्ध में लिख रहे हैं, तो पुस्तक निकल जाने दीजिए, हम उसके जवाब में साबित करेंगे कि ऋग्वेद दो अरब वर्ष पहिले की सृष्टि के आदि में भगवान् का दिया हुआ ज्ञान है। विचारों में भेद रहते हुए भी जिज्ञासुजी की लगन और स्वाध्याय की मैं सदा कदर करता

हूँ। आखिर आर्यसमाज से मैंने भी कुछ बातें सीखीं, जिस उपकार को मैं भुलाना नहीं चाहता। यहीं डा. राजबली पाण्डे भी मिल गये। वहाँ से डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के यहाँ थोड़ी देर बैठे। निवास पर आने पर आचार्य जगन्नाथ उपाध्याय तथा कितने ही दूसरे तरुण मिले।

पत्रों में आने खबर छप चुकी थी। पत्र आधुनिक दुनिया की महान् देन है। और अखबार से यह भी सुभीता है कि बनारस में मुझे अपने मित्रों को आने की सूचना देने के लिए अलग-अलग पत्रों के लिखने की जरूरत नहीं पड़ती। 7 जनवरी को सबेरे साढ़े 7 बजे ही से मिलने-जुलनेवाले आने लगे, तो 12 बजे तक उसका ताँता बराबर जारी रहा। भोजनोपरान्त श्री अत्रिदेव विद्यालंकार के यहाँ गया। गुरुकुल के स्नातक प्राचीन साहित्य और विधाओं के बारे में इतने साधन-सम्पन्न होते हैं कि यदि वह चाहें, तो बहुत काम कर सकते हैं। अत्रिदेवजी ने आयुर्वेद को अपना विषय बनाया, और उस पर उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। उनके पास ही अंग्रेजी के अध्यापक डा. ओझा मिल गये। मैं सोच रहा था, यह चेहरा कहीं देखा हुआ है, पर याद नहीं आ रहा था कि 1948 में प्रयाग में कितनी ही बार हम दोनों घंटों टहला करते थे। इस बीच में वह कई साल अमेरिका रहकर आये थे, और वहाँ की प्रगति से बड़े प्रभावित थे। सोचते थे, भारत भी उसी रास्ते प्रगति कर सकता है।

वहाँ से भारतीय महाविद्यालय (कालेज ऑफ इण्डोलोजी) में डा. राजबली पाण्डे प्रिंसिपल की अध्यक्षता में तिब्बत के बारे में भाषण दिया। हिन्दू युनिवर्सिटी में मैंने तो समझा था, यही एक भाषण होगा, और शायद विद्यार्थियों ने भी ऐसा ही समझा था। इसलिए वह लेक्चर हॉल में भी कैसे समा सकते थे ? उसके लिए तो हॉल की जरूरत थी। वहाँ से साहित्यकारों की गोष्ठी में गया। वहीं शान्तिप्रिय द्विवेदी मिल गए। गोष्टी के बाद हम साथ ही रिक्शे पर चले। शान्तिप्रिय द्विवेदी का व्यक्तित्व बड़ा सीधा-सादा, करुण है, और साथ ही मोहक भी है। उनको देखकर मुनि अष्टावक्र की आकृति सामने आ जाती है। यह बिल्कुल सवनिर्मित पुरुष, और भाषा के तो महान् शिल्पकार हैं। एक-एक शब्द को तोलकर और सँवारकर लिखते हैं। भोले-भोले भी कितने ? पर, उसका अर्थ यह नहीं कि प्रतिभा में कमी है। वस्तुतः आदत बुद्धि से भी ऊपर होती है। शान्तिप्रियजी को सबसे दिक्कत रोटियों की मालूम होती है। उस मासे-भर शरीर के लिए रोटियाँ चाहिएँ ही कितनी ? पर, ठिकाने से या उनकी रुचि के अनुसार उसका प्रबन्ध नहीं हो पाया। आजकल वह किसी वृद्धा के यहाँ रोटी खा रहे थे। शान्तिप्रियजी को 4 बजे शाम या 12 बजे रात को रोटी चाहिए, वह इतनी देर से कैसे मिल सकती थी ? मैंने कहा—"ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?" ब्याह की बात पूछते मुझे वाचस्पति पाठक की बात याद आ रही थी। दोनों ही एक ही शहर के रहनेवाले ठहरे, इसलिए बहुत पहिले से एक-दूसरे से परिचित थे। तुलसीदास ने सच ही कहा है, "तुलसी वहाँ न जाइये, जहाँ जनम को ठाँव। भावभक्ति को मरम न जाने, धरै पाछिलो नाँव।" शान्तिप्रियजी का लड़कपन में मुच्छन नाँव पड़ गया था। उनके कभी भी बड़ी-बड़ी मूँछें रही हों, यह सम्भव नहीं मालूम होता, इसलिए यह नाम बिल्कुल अयुक्त था। पर पुराने यार लोग अब भी मुच्छन कहकर पुकारने के लिए तैयार हैं। बड़ी कमाई करके इतना सुन्दर शान्तिप्रिय नाम मिला था, अब वह फिर लौटकर 'पुनः मूषकः' कैसे बन सकते थे ? अपने पुराने मित्रों पर विश्वास करना आदमी का स्वभाव है। पाठकजी पर भी उन्होंने विश्वास किया, जब उन्होंने कहा कि मैंने तुम्हारे लिए एक बहू ढूँढी है। बहू भी उन्होंने पचास वर्ष की ठीक कर ली थी—ठीक क्या कर ली थी, उसको अभिनय करने के लिए तैयार कर लिया था। शान्तिप्रियजी का भोजन वहीं निश्चित किया गया। भावी पत्नी महान् साहित्यकार के चरणों में पलकों के पाँवड़े बिछाने के लिए थी। महिला किसी स्कूल में अध्यापिका थीं, बहुत सुसंस्कृत और शिक्षित थीं, इसलिए उनके एक-एक शब्द यदि मधु से पागे हों, तो आश्चर्य क्या ? पाठकजी ने संकेत करने की कोशिश की, यही आपकी भावी पत्नी हैं, पर शान्तिजी का मन नहीं मान रहा था। आखिर वह कैसे विश्वास कर लेते कि उनका बालमित्र उनके साथ मजाक कर रहा है। मजाक नहीं, धोखा ही वह समझ सकते थे। वह बूढ़ी रमणी को देखकर यह विश्वास कैसे कर लेते कि इन्हीं के साथ मुझे अपना सारा जीवन खेना है। लेकिन, नाटक तो ऐसा ही किया गया था। शान्तिजी को यह मालूम हुआ या नहीं कि ब्याह की बात मजाक की नहीं थी। ऐसा न होने पर

भी वह बुढ़िया से ब्याह करने के लिए कैसे तैयार होते ? आखिर उन्होंने कविहृदय पाया था, उन्हें अपने शरीर और चेहरे के अनुरूप नहीं, बल्कि कला और विद्या के अनुरूप पत्नी मिलनी चाहिए। सचमुच ही इसे बड़े अफसोस की बात माननी पड़ेगी कि इतने सुन्दर साहित्यकार की गुणग्राहिका एक भी तरुणी सारे जम्बूद्वीप में न मिले। मैंने भी पाठकजी की घटना से अनभिज्ञता प्रकट करते हुए यही सलाह दी कि बस अपनी उमर की अथवा चालीस वर्ष से ऊपर की महिला से ब्याह कर लो, रोटी का दुःख तुम्हारा हमेशा के लिए दूर हो जायेगा। लेकिन उनके दिमाग में यह बात समानेवाली नहीं है। शान्तिप्रियजी के प्रति जैसा मेरा स्वाभाविक स्नेह है, वैसा बहुत कम ही के बारे में मैं कह सकता हूँ। मैं स्वप्न में भी इसका ख्याल नहीं कर सकता कि उनको अपनी किसी हरकत से दुःख दूँ।

शाम को साढ़े 6 बजे कार से गोदौलिया के चौरस्ते के पास बनारस-लॉज में पत्रकारों के सामने भाषण देना था। बनारस की सड़कें आजकल के जमाने के लिए नहीं बनाई गई थीं, खासकर चौक से विश्वविद्यालय और चौक से स्टेशनों को जानेवाली सड़कें। इतनी भीड़ होती है कि वहाँ रास्ता पाना मुश्किल हो जाता है। हर समय डर लगता है कि कोई दुर्घटना न हो जाए। चौक तो पहिले ही जमा हुआ था, अब गोदौलिया से दशाश्वमेध तक की भी सड़क बड़ी-बड़ी दूकानों से भर गई है। इसी पर बनारस-लॉज का यह भव्य होटल था, जो अभी पूरी तौर से बनकर तैयार नहीं हुआ था। पत्रकार-पितामह श्री लक्ष्मीनारायण गर्दे अध्यक्ष थे। पत्रकारों की काफी संख्या वहाँ जमा हुई, जिसे जब मैं अपने विद्यार्थी जीवन के बनारस से मुकाबिला करता, तो मालूम होता, काशी भी काल के प्रवाह में बहने से नहीं बच पाई। ये पत्रकारों की जमात और यह भव्य होटल इसके साक्षी थे।

**सारनाथ**–8 जनवरी को सारनाथ का प्रोग्राम था। पं. देवनारायणजी साथ में थे। मोटर में सारनाथ इस रास्ते शायद अब अन्तिम बार जाना हो रहा था, क्योंकि चौक से सीधे सारनाथ जानेवाली सड़क के लिए वरुणा में पुल बन रहा था, जो कि अब की ही मई में बुद्ध की 25वीं शताब्दी के महोत्सव के समय तैयार हो जाने वाला था। हम 9 बजे सारनाथ पहुँचे। पिछले साल से वैसे भी कुछ परिवर्तन होता, लेकिन 25वीं शताब्दी के कारण तो यहाँ निर्माण में बड़ी तन्देही देखी जा रही थी। पचीसों लाख रुपये हमारी सरकार खर्च कर रही थी। स्टेशन पुरानी जगह से खिसककर जब मूलगंध-कुटी विहार के पासवाले नरोखर पोखरे के पूर्वी भीटे पर जानेवाला था, और नरोखर के बीच से सड़क बनाकर सीधे विहार में लाई जा रही थी। पुराने स्टेशन से आनेवाली सड़क से निकलकर जो कच्ची सड़क विहार की ओर जा रही थी, वह भी पक्की बनाई जा रही थी। महाबोधि इंटर कालेज के पीछे की ओर ईंट की कई पक्की इमारतें मेहमानों के लिए तैयार की जा रही थीं। हजारों आदमी चींटी की तरह नव-निर्माण में लगे हुए थे। चीना मन्दिर ने अपने आस-पास की बहुत-सी जमीन खरीद ली है, लेकिन उसके अल्पशिक्षित भिक्षु सरकार से कोई सहायता लेने के लिए तैयार नहीं। डरते हैं, सरकार का अधिकार हो जायेगा। वह अपने हाथ-पैरों पर ज्यादा विश्वास रखते हैं। दो या तीन हैं, पर अपनी जमीन को आबाद करके वह खाने-पीने में स्वावलम्बी बने हुए हैं। कुछ पैसे कलकत्ता के चीनी बौद्ध भक्त दे दिया करते हैं। नवीन चीन यदि कोई अपना बौद्ध-विहार या दूसरी संस्था कायम करना चाहेगा, तो उसके लिए सबसे उपयुक्त यही भूमि है। महाबोधि चिकित्सालय के पास तीन बीघा जमीन लेकर एक तिब्बती लामा ने भी अपना मन्दिर खड़ा करना शुरू किया है। दो कमरे बन चुके हैं। अब अधिकांश तिब्बती यात्री वहीं ठहरते हैं। देशानुसार धार्मिक संस्थाओं के बनाने का यह दोष है। फिर सभी देशों के लोग ऐसे स्थानों में एक परिवार की तरह कैसे रह सकेंगे ? यह तो मालूम हो रहा है कि विहार के आस-पास के बहुत-से उपजाऊ खेत अब खेती के लिए नहीं रह जाएँगे। वैसे भी घर पीछे इतना खेत लोगों के पास नहीं रह गया था कि एक व्यक्ति भी साल-भर उसकी उपज से जीविका चला सके। विहार, ध्वंसावशेषों, चीनी मन्दिर और तिब्बती लामा से भेंट-मुलाकात करते बर्मी धर्मशाला में गए। कित्तिमा बाबा आजकल बर्मा गये हुए थे। मेरे भतीजे उदयनारायण पाण्डे और उनका परिवार मिला। अभी ही वह शरीर से अधिक भारी और चन्दले हो गए थे। इतनी जल्दी वयविकार हो जाता है। पर, वस्तुतः इसमें विकार कारण नहीं, बल्कि काल की गति को न परखना कारण

होता है। अपने लिए बीते हुए बीस साल कल जैसे मालूम होते हैं, लेकिन वह इतने छोटे तो नहीं होते। उनके छोटे भाई रामविलास भी यहीं ठहरे थे। टी.बी. का सन्देह है। घर के दो और भाई मेट्रिक पास कर घर में ही खेती में लगे हुए हैं, पर उनके पिता का ख्याल है कि वह भी किसी नौकरी में लग जाएँ। मेट्रिक पास को 50 रुपये महीने मिलेंगे, और मसूरी में खा-पीकर 30 रुपये महीना मामूली रसोइये को देना पड़ता है। बुद्धिजीवी से शरीरजीवी का मूल्य ही महँगा है। उनके घर में 30-40 एकड़ बहुत अच्छी उपजाऊ जमीन है। यदि खेती करें, तो कहीं अच्छी तरह से रह सकते हैं। पर, पुरानी खोपड़ी कुछ सोच नहीं सकती। वह बीते युग की चतुराई से पार होना चाहती है, जो इस समय के लिए कोई काम नहीं देती। उदयनारायण ने बतलाया, पास के गाँव में हमारी बहुत अच्छी जमीन थी, जिसका तीन हजार आसानी से मिल जाता था। हमने कहा–बेच दें, क्योंकि हम उसे आबाद नहीं कर सकते। पिताजी को पसन्द नहीं आया। वह पुराने जमाने की बात सोच रहे थे। समझ रहे थे, जब हमारे नाम जमीन है, तो उसको कौन ले सकता है ? लेकिन आजकल के जमाने में जमीन को वही अपने हाथ में रख सकता है, जो उसकी सेवा-पूजा कर सकता है, उसको जोत सकता है। किसी ने दावा कर दिया, पटवारी को सौ-पचास रुपये दिए, और उसने कागज पर उसका नाम लिख दिया तो वह जमीन योंही चली गई।

श्यामलाल भाग्य को और दुनिया को दोष दे सकते हैं। शायद यह समझकर सन्तोष कर सकते हैं कि इस लोक में नहीं तो परलोक में न्याय जरूर होगा। पर, न्याय का रास्ता बड़ा गहन है। क्या उनके पूर्वजों ने न्याय करके कनैला गाँव की सारी भूमि को अपने हाथ में लिया था ? आखिर वहाँ के बड़ी जातवालों के भाग जाने पर जो लोग अब भी चिराग जलाते चले आये थे, वे वहीं पर रहते थे, और अपनी संख्या और सामर्थ्य के अनुसार कुछ खेतों को आबाद भी किये हुए थे। पर, राज्य हिन्दू का हो, या मुसलमान या अंग्रेज का, सभी चाहते हैं; भूमि की लगान नियमपूर्वक मिला करे, ऐसे मोटे आसामी को पकड़ें, जो किस्त-बकिस्त रुपया अदा करे। छोटी जातवालों पर विश्वास नहीं कर सकते थे, इसलिए जब 18वीं सदी के शुरू में बड़ी जातवाले इच्छा पाण्डे अपने चक्रपानपुर गाँव से कनैला आने के लिए तैयार हुए, तो पुराने निवासियों का कोई भी ख्याल न करके गाँव उनके नाम लिख दिया गया। यह क्या कोई न्याय था ? और यदि वह न्याय था, तो आज का न्याय है–जो जोते, उसकी भूमि।

लौटते समय शंकुधारा में रामानन्द विद्यालय का आग्रह भी मानना पड़ा। इस विद्यालय को मेरे मित्र स्वामी भागवताचार्य ने स्थापित किया था। संस्था एक बार स्थापित हो जाये, और अगर उसकी आवश्यकता है, तो कितनी कठिनाइयों में पड़ने पर भी वह मरती नहीं। इसका उदाहरण यह विद्यालय था। यहाँ कई विषयों की आचार्य तक की पढ़ाई होती है। विद्यार्थियों में रामानन्दी (वैरागी) वैष्णव ही अधिक हैं। हमारे समय में कहीं मुश्किल से एक-दो आचार्य वैरागी मिलते थे। अब विद्या में अधिक प्रगति हुई है। विद्या और काल ने मिलकर लोगों को अधिक उदार भी बना दिया है। मैं किसी समय वैरागी था, आर्यसमाजी हुआ, बौद्ध-भिक्षु बना, और फिर बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा रखते हुए मार्क्स का शिष्य बन गया। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात थी कि जिन घाटों से मैं गुजरा, वे सभी मेरे प्रति आत्मीयता रखते है। यहाँ वैसी ही आत्मीयता देखी। बोलने के लिए कहने पर कहा--"घुमक्कड़ी और संस्कृत तथा सांस्कृतिक निधियों की रक्षा का दायित्व जब तक वैरागी अपने पास रखेंगे, तब तक उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।" शंकुधारा से लगा ही हुआ खुजवा मुहल्ला है। आज से तीस ही वर्ष पहिले यह शहर का मुहल्ला नहीं, बल्कि गाँव-सा मालूम होता था। लेकिन, अब आबादी बढ़ गई है, दूकानें भी बहुत हैं। कुछ नौजवानों ने तीस वर्ष पहिले खिलवाड़ के तौर पर एक पुस्तकालय खोल दिया। उन्होंने कुछ जमीन भी ले ली। धीरे-धीरे दुमंजिला घर बन गया। अब वह एक अच्छे पुस्तकालय का रूप ले चुका है। उनके बड़े-बूढ़ों में अब भी कुछ मौजूद हैं, जो लड़कों के इस खेल का उपहास करते थे। पर, आज वह देख रहे हैं कि नई पीढ़ी इस पुस्तकालय से बहुत लाभ उठा रही है। वहाँ से विद्यापीठ में बोले। फिर गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के हॉल में। अँधेरा होने पर लौटे। यहाँ पर भी लोग आते रहे। सबेरे से आधी रात तक व्यस्त रहना मैं बुरा नहीं मानता। एकान्त रहने के लिए तो आखिर मसूरी है ही। यहाँ

तो मित्रों और परिचितों से दिल खोलकर मिल लिया जाये।

9 जनवरी को 12 बजे तक घर पर ही गोष्ठी चलती रही। भोजनोपरान्त शहर गये। श्रीमती शिवरानीदेवी प्रेमचन्द से मिले। अब बहुत दुबली हो गई हैं, हड्डी और चमड़ा-भर रह गया है। बेटे दोनों प्रयाग पकड़ चुके हैं, क्योंकि पुस्तक-व्यवसाय के लिए उन्हें प्रयाग उस स्थान से अधिक उपयुक्त साबित हुआ। श्रीपति तो अपना अच्छा बँगला बनवा चुके हैं, और अमृत कम्युनिज़्म के पीछे फकीर बने हुए हैं। शिवरानीदेवी की लड़की इस समय यहीं थीं। बुढ़ापे में किसी को साथ रहना चाहिए। अब भी वह कभी-कभी लमही में प्रेमचन्द की बाल्य-स्मृतियों को देख आती हैं। पका आम है। पुरानी पीढ़ी को नई के लिए स्थान छोड़ना ही पड़ता है, लेकिन समवयस्कों को इसके लिए जरूर अफसोस होता है।

लौटकर भोजन किया।

हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों ने भाषण करने के लिए निमंत्रण दिया था। मैंने समझा, वह विद्यार्थियों की एक साधारण सभा होगी, पर वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय छात्र-संघ का वार्षिक उद्घाटन मुझे करना है। बाहर शामियाना लगा हुआ था। भारी संख्या में छात्र-छात्राएँ मौजूद थीं। विश्वविद्यालय के कुलपति सभी जगह वृद्ध होते हैं, जो अपनी पुरानी कमाई पर जीते हैं और समय को नहीं पहचान सकते। वह एक तरफ तो ढिंढोरा पीटना चाहते हैं कि छात्रों को हम स्वतन्त्रतापूर्वक अपने संगठन और विचार प्रकट करने का अवसर देते हैं, और दूसरी तरफ चाहते हैं कि वह हमारी मुट्ठी में रहें। उद्घाटन करने के लिए जिसे वह पसन्द करते, उसे नया खून पसन्द नहीं करता। इसी वजह से किससे उद्घाटन कराया जाय, इसे निश्चय नहीं किया जा सकता था। मेरे आने पर छात्र एक ओर से सहमत हो गये कि मैं ही उद्घाटन करूँ। मुझे ऐसे अवसर पर कहने के लिए कई बातें थीं, लेकिन उद्घाटन का पता तो तब लगा, जब शामियाने में पहुँचा। कुलपति इससे सहमत नहीं हुए, और उन्होंने अपना रोष प्रकट करते हुए एक पत्र लिखा था। संघ के मन्त्री ने उसे दिखलाते हुए कहा--देखिये इसमें लिखा है कि उनके इस विरोधात्मक पत्रों को छात्रों के सामने पढ़ दिया जाये। सचमुच ही उसके पढ़ देने का मतलब आग में घी डालना होता, विद्यार्थी भड़क उठते, और वह कहीं शीशे-खिड़कियाँ तोड़ने लगते, तो उन्हें अनुशासनहीन और उच्छृंखल बतलाकर बदनाम किया जाता। मन्त्री और अध्यक्ष ने उस पत्र को नहीं पढ़ा। पुरानी पीढ़ी अधिक विचारशील है या नई पीढ़ी, इसे यहाँ परखा जा सकता है। खूसट दिमाग ज्यादा खुराफाती है, चाहे वह क्षमता में शून्य हो। वह कुछ दे नहीं सकता, और बिगाड़ बहुत सकता है। मेरी चले, तो कहूँ कि 50 वर्ष की ऊपर की आयु का कोई व्यक्ति ऐसे जवाबदेही के पदों पर नियुक्त न होने पाये। मैंने संक्षिप्त ही भाषण किया। चाय-पार्टी में शामिल हुआ। बाबू राधारमण की मोटर आई हुई थी, इसलिए उस पर मँडुआडीह में उनकी कोठी पर पहुँचा।

राजा मोतीचन्द के अजमतगढ़ प्रासाद को मैं उसी समय देख चुका था, जब अभी-अभी वह बना था। वह बनारस की नये ढंग की स्पृहणीय इमारत थी। उसी के पास एक दूसरा भी प्रासाद तैयार हो गया है, यह मुझे मालूम नहीं था। श्री राधारमण बनारस के बड़े रईसों में हैं। नाबालिग रहते समय इनके अभिभावक राजा मोतीचन्द रहे, जिनके उत्तराधिकारी और भतीजे श्री चन्द्रभूषणजी, और भी पाँच-सात गण्यमान्य पुरुष वहाँ मौजूद थे। श्री किशोरीरमणजी भक्त वैष्णव हैं। मैं केवल मान्यता रखनेवाला नास्तिक नहीं था, बल्कि अपनी जबान से भक्तों के भगवान पर जबर्दस्त चोट पच्चीस वर्ष से करता आ रहा हूँ। भक्त-शिरोमणि ब्रह्मचारी प्रभुदत्त की चले, तो गरम संडासी से ऐसी जीभ मुँह से निकाल लें। पर आज के भगत भी मालूम देता है, कलियुगी बन गये हैं। वह भगवान और शैतान दोनों को संतुष्ट रखना चाहते हैं। डेढ़ घंटे तक वहाँ गोष्ठी रही। बहुत नफीस चाय के साथ पकवान भी था। पर पकवान अब मैं खा नहीं सकता था। बनारस का पान सारे ब्रह्माण्ड में मशहूर है, और वहाँ के सबसे उत्तम बीड़ों को बड़े नफीस ढंग से पेश किया गया था। मन अफसोस कर रहा था, इसके खिलाफ अजन्ता में प्रतिज्ञा क्यों कर डाली ? लेकिन, जब एक मर्तबे प्रतिज्ञा कर ली तो उसे तोड़ने का साहस नहीं कर सकता। अधिकतर हमारी बात सांस्कृतिक और साहित्यिक विषयों पर रही।

5 बजे नागरी प्रचारिणी सभा में पहुँचा। साल में एक बार बनारस आना होता है, और साहित्यिक मित्र

उस समय स्वागत करना आवश्यक समझते हैं। मुझे उस बहाने बहुत-से मित्रों से इकट्ठा मिलने का मौका मिल जाता है। सभा में पौन घंटे बोला, विशेषकर पण्डितराज जगन्नाथ के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। पण्डितराज अपने समय से सैकड़ों वर्ष पहिले पैदा हुए थे, जिस तरह कि अकबर। संस्कृत के अपने काल के छोड़ने के बाद सरस कविता के पाने का अवसर हमें पण्डितराज की कविता में ही मिलता है। अभी-अभी अपनी 'संस्कृत काव्यधारा' के लिए कविताओं के छाँटते वक्त मुझे उनकी कृतियों में से गुजरना पड़ा था। साहित्य ही नहीं, दर्शन का भी यह अद्वितीय विद्वान काशी में पैदा होकर कितना उदार था, जो कि मुसलमान तरुणी को खुल्लमखुल्ला अपनी धर्मपत्नी बना, विपक्षियों के हजार प्रयत्न करने पर भी अपने धर्म और संस्कृति पर अटल रहा। तानसेन अकबर के समय में भी ऐसी हिम्मत नहीं कर सके। सभा से निकलते ही श्री सत्येन्द्रजी की पत्नी अपनी कार लिये मौजूद थीं। उनसे रास्ते में बात करने का मौका मिला। उनका मैं अतिथि था, पर समय कहाँ कि बात करने का मौका निकाल सकता। वह दिल्लीवाली हैं। यह जानकर आश्चर्ययुक्त हर्ष हुआ कि उन्हें अपनी लोकगीतों के साथ बहुत प्रेम है, और जो याद है उन्हें गा भी सकती हैं। हम लोग किताब से पढ़कर हिन्दी सीखते हैं, और उनकी हिन्दी मातृभाषा थी। दिल्ली के पुराने हिन्दू परिवारों की भाषा करीब-करीब पूरी तौर से साहित्यिक हिन्दी हो गई है, लेकिन उस पर कौरवी का प्रभाव खतम नहीं हुआ है। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस प्रभाव को गुण न समझकर दोष समझा जाता है, और उन्हें शुद्ध करने की कोशिश की जाती है। उर्दूवालों की मतरूक (त्याज्य) की परम्परा को हिन्दी ने भी मान लिया। आजकल वह अचार और मुरब्बे की नई विधियों के सीखने में लगी हुई थीं। लखनऊ से कोई सिखानेवाली महिला भेजी गई थी। दो दर्जन से अधिक ललनाएँ उनसे अचार और मुरब्बे बनाना सीख रही थीं। निवास स्थान पर आकर फिर 10 बजे रात तक मित्रों के साथ गोष्ठी चलती रही।

10 जनवरी को कहीं बाहर नहीं गया, और 12 बजे तक यहीं गोष्ठी होती रही। चलने से थोड़े ही पहिले चौखम्बा संस्कृत सिरीज़ के स्वामी श्री जयकृष्णदासजी आ गए। उन्होंने कुछ पुस्तकें छापने के लिए माँगीं। मैंने 'संस्कृत पाठमाला' ही दी और वह सहर्ष उसे ले गये। वह 'संस्कृत काव्यधारा' को भी चाहते थे, पर उसे तो प्रयाग में दे आया था।

12 बजे चला। चौक से द्विवेदीजी भी साथ हो लिये। श्री श्यामनाराण पाण्डे बनारस में करीब-करीब बराबर रहे। वह भुरकुड़ा के उच्चतर महामाध्यमिक विद्यालय में अध्यापकी करते अपने और आदर्शों का भी प्रचार करना चाहते हैं, विशेषकर संस्था की गन्दगी को दूर करने के लिए बहुत तत्पर दिखाई देते थे। ऐसा काम शुरू करनेवाले को विरोध का भी बहुत सामना करना पड़ता है, जो उनके सामने भी आया। लेकिन उनका संकल्प था—"न्यायत् पथः प्रविचलन्ति न पदं न धीरा" (न्याय के पथ से धीर एक पग भी विचलित नहीं होते)। उनका स्वास्थ्य बहुत ही खराब था, शरीर में चमड़ा और हड्डी ही दिखाई पड़ती थी। जमानिया तक वह इसी ट्रेन से गए। हमारे कम्पार्टमेन्ट में कोई दूसरा आदमी नहीं था। द्विवेदीजी ने अपना उपन्यास 'कर्तव्याघात' दे दिया था। उसे पढ़ते रहे। पिछली पीढ़ी के हाथ का लिखा हुआ यह उपन्यास है। सरल भी है और रोचक भी। अब भी उसको लोग पसन्द करते हैं, इसका प्रमाण यह नया संस्करण था। आरा में पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो गया। बिहटा में और अँधेरा हुआ, गाड़ी में चिराग जल गया था। साढ़े 6 बजे पटना जंकशन पहुँचे। डा. बद्रीनारायण स्टेशन पर मौजूद थे। उनकी कार पर चढ़कर उनके घर में पहुँच गए।

**पटना**—इधर दो-तीन दिन से दाँत में दर्द होने लगा था, और मैं पटना मेडिकल कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल का अतिथि था। उनके लड़के भी डाक्टर थे, लेकिन, दोनों ही दाँत के विशेषज्ञ नहीं थे। डा. देवेष एक मित्र दन्त-डाक्टर के पास ले गए। उन्होंने दाँत को जला दिया। इससे यह फायदा तो हुआ कि पानी पीने में पहिले जो दर्द होता था, वह खतम हो गया। लेकिन, अभी उसमें छेद था, जिसे भरने की भी जरूरत थी। आज दाँत का एक्सरे भी करवा लिया। कमला की चिट्ठी मिली। लिखा था—"जया बार-बार पापा के बारे में पूछती है। वह बैठकर इंतिजार करती है।" बच्चे कितने सरल होते हैं। प्रिय-वियोग का दुख उनको भी होता ही है। उस दिन (11 जनवरी को) मित्रों से मिलने गया। वीरेन्द्र घर गये हुए थे। देवेन्द्र कालेज में थे। कुसुम मिलीं।

चार महीने का एक और पुत्र भी गोद में है। दीपक और दीप्ति कान्वेन्ट में पढ़ रहे हैं, इसलिए लन्दन में रहकर सीखी इंगलिश भूल नहीं सकते। सम्मेलन-भवन में शिवपूजन बाबू मिले। डायबेटीज़ को भगाने के लिए जौ की रोटी खाते हैं, और इन्सुलिन पर भी भक्ति रखते हैं। मैंने कहा–"खैर, आपके लिए तो यह बुरा नहीं है, क्योंकि रसगुल्ले और दूसरी मिष्टान्नों से इस लोक में वंचित रहकर आप परलोक में पा सकते हैं। पर, यदि जरा भी सन्देह हो, तो जौ की रोटी की तपस्या नहीं करनी चाहिए। जौ की रोटी में चीनी बनानेवाले तत्व मौजूद हैं, जिनको भी पचाने का काम इन्सुलिन ही को करना पड़ेगा। मेरी राय मानिये, और रोज इन्सुलिन लीजिए, और मिठाई आदि जिस चीज को खाने की इच्छा हो, उसे खाइए। शाम को भोजन छोड़ रखें, तो अच्छी बात, जिसमें पेट हलका रहे।" म्युजियम गया, शेर साहब मिले। अल्टेर साहब रोज नहीं आते।

आजमगढ़ से श्री मुखरामसिंह की चिट्ठी आई। मैंने वहाँ वालों के आग्रह के बारे में लिखा था–"मैं पाँच-छः दिन के लिए वहाँ आ सकता हूँ। पुरातात्विक स्थानों के देखने के लिए सारा प्रवन्ध हो जाना चाहिए।" आजमगढ़ के नए गजेटियर की समिति में मेरा भी नाम था। मैं चाहता था, उसके लिए कुछ नई सामग्री जमा करके दूँ। मुखराम बाबू ने लिखा–यात्रा का सारा प्रबन्ध हमने कर लिया है। पटना में दस दिन मैंने इसीलिए दिए थे, कि यहाँ रहकर 'सरह के दोहाकोश' को देखकर प्रिंट-आर्डर दूँ, लेकिन प्रेसवाले देवताओं से भुगतना था। लेखक उनसे बच नहीं सकता था, लेकिन कामना कर सकता है, कि खुदा इनसे बचावे। दस दिन पटना में रहना बेकार था, इसलिए सोचा, कि बीच में तीन दिन के लिए छपरा चला जाऊँ।

पत्रों में निकल चुका था, इसलिए यहाँ पर भी मित्रों और बन्धुओं का आना-जाना शुरू हुआ। पटना कालेज और बी.ए. कालेज में भाषण देना स्वीकार किया। यदि पहिले से पता लगा होता, तो छपरा में सूचना दे दी होती, और समय का पूरा इस्तेमाल हो सकता। 12 तारीख को म्युजियम में जाकर क्यूरेटर शेर साहब से मिला। दो-तीन पत्थर की मूर्तियाँ ले आकर हमने डा. बद्रीनाथ प्रसाद के यहाँ प्रयाग में रख दी थीं। वह अबकी मिलीं। वहीं म्युजियम को देना चाहा, पर नहीं दे सके, इसलिए उन्हें पटना म्युजियम को दे दिया। इन मूर्तियों में एक प्रेमचन्द की जन्मभूमि लमही में मिली थी, जो 12वीं शताब्दी की मालूम होती थी। तिब्बत से लाए ताल-पत्रों का उपयोग हमने 'दोहा-कोश' में कर लिया था, इसलिए उसे अब सुरक्षित रखना था, और म्युजियम को ही दे दिया।

13 जनवरी को बीच-बीच में समय निकालकर 'भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक' तथा 'संस्कृत पाठमाला' की दो पोथियों की कापी टीक करके प्रकाशकों के पास भेज दी। श्री वैदेहीशरणजी का नाम बहुत सालों से सुन रहा था। उनके नाती-नातिनियों से मसूरी में भेंट हुआ करती थी। वह अपने पुस्तक-भण्डार में ले गये। वैदेहीशरणजी सन्त प्रकृति के पुरुष हैं, तो भी व्यवहार-बुद्धि इतनी कि उन्होंने पुस्तक-भंडार जैसी विशाल प्रकाशन-संस्था खड़ी कर दी। अपने भक्तिभाव में रहने लगे, काम नौकर-चाकरों पर छोड़ दिया, जिसके कारण वह डूबने लगा। लेकिन अगली पीढ़ी उस गलती को दूर करने के लिए तैयार हो गई है। पहिले भंडार लहेरिया सराय (दरभंगा) में स्थापित हुआ था, लेकिन उनके लिए पटना अधिक अनुकूल स्थान है, इसलिए अब वहीं कारबार हो रहा था। भंडार की बहुत-सी पुस्तकें भेंट कीं। बिहारीजी (वैदेहीशरण) से पता लगा, कि हेमचन्द्र–जिन्हें मुसलमान लेखक घृणा प्रकट करते हुए हेमू बक्काल कहते हैं–वस्तुतः सहसराम के रौनियार बनिया थे। इतिहासकार उन्हें दूसर बनिया कहकर पश्चिम का बतलाते हैं। दूसर बनिया अब भार्गव ब्राह्मण बन गए हैं, यह ईर्ष्या की बात नहीं है। ब्राह्मणों को अपनी संख्या बढ़ने का अधिक अभिमान होना चाहिए। पर, हेमचन्द्र दूसर नहीं, रौनियार थे। शेरशाह अपने को सहसराम का समझते थे। दिल्ली के बादशाह हो करके भी उन्होंने कालिंजर में बारूद में झुलसे शरीर को सहसराम में ही दफनाना पसन्द किया। शेरशाह पठान थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में फैले भोजपुरी भी हिन्दू पठान ही हैं, इसलिए शेरशाह का भोजपुरियों पर बहुत अधिक विश्वास था। हेमचन्द्र यदि शेरशाह के बहुत विश्वासपात्र हो गये, और अपनी योग्यता से कोश-मंत्री ही नहीं, बल्कि बड़े सेनापति बन गये हों, तो अचरज नहीं। बिहारीजी ने बतलाया, कि हमारी महिलाएँ विशेष समय पर हेमू और उनके पिता के गीत गाती हैं।

मोहन प्रेस 'सरह के दोहाकोश' छाप रहा था, और वही 'नेपाल' का भी अचार बना रहा था। तीन वर्ष से 'नेपाल' मोहन प्रेस में पड़ा हुआ है। चार सौ पृष्ठ के करीब छपे हैं। मैंने कहा–दो सौ और छापकर इसका पहिला भाग निकाल दो, तो तुम्हारा रुपया भी लौटने लगेगा। कहा–"हाँ, हाँ।" बिलैया दण्डवत् करने में मोहन प्रेस के मोहन बाबू बड़े सिद्धहस्त हैं। मुझे विश्वास नहीं, 'नेपाल' दलदल से कभी निकलकर बाहर होगा।

शाम की चाय देवेन्द्र बाबू के यहाँ पीकर पटना कालेज के साहित्यकार-परिषद् के विद्यार्थियों के सामने राष्ट्रभाषा की समस्या पर भाषण दिया।

लौटकर आए, तो प्रो. काश्यप मौजूद मिले। यह भोजपुरी के बड़े ही सिद्धहस्त नाटककार हैं। विद्यार्थी अवस्था से ही बाबू लोहासिंह के नाम से बड़े ही चुभते भोजपुरी एकांकी रेडियो के लिए लिखने लगे। नाटक में वह स्वयं लोहासिंह बनकर बोलते हैं। रेडियो पर अनेक बार मैं उसका आनन्द ले चुका था। कल मिलने पर मैंने स्वयं लोहासिंह के मुँह से कुछ सुनने की इच्छा प्रकट की। वैसे उनके कई नाटकों का संग्रह मैं हाल ही में पढ़ चुका था। साहित्य की भाषा बनने से वंचित हमारी भाषाएँ कितनी गुणवती हैं, इसे शिक्षित लोग मानने से इन्कार करते हैं। पर, लोहासिंह या जगडू (हरियानी) जैसी कृति जब सामने आ जाती है, तो उनका लोहा मानना पड़ता है। हमारी अलिखित भाषाएँ मुहावरों और चुटकलों में बहुत धनी हैं, उनके सामने साहित्यिक हिन्दी अत्यन्त दरिद्र है। इसीलिए साहित्यिक हिन्दी का, उसकी अपनी कौरवी बोली से पुनः घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है। प्रो. काश्यप ने अपने नाटक के कुछ अंश सुनाए। वहाँ और भी श्रोता जमा हो गये थे।

श्री देवकुमारजी अपने पुत्र की समस्या बतला रहे थे। उसे देहरादून के एक विशेष स्कूल में इस ख्याल से भर्ती किया था, कि वह मिलिटरी में जाएगा। पर, अब उसकी सम्भावना नहीं समझ रहे थे। फेल हो जाता था, और शरीर का स्वास्थ्य भी भोजपुरी के अनुरूप नहीं था। मैंने उनसे नाटककार पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र के लड़के के बारे में बतलाया। देवकुमारजी अपने लड़के पर दो-चार सौ रुपया महीना आसानी से खर्च कर सकते थे, लेकिन पं. लक्ष्मीनारायण ऐसी स्थिति में नहीं थे। उनका लड़का और बातों में बहुत तेज, शरीर भी भोजपुरियों के अनुरूप, पर पढ़ना वही विषय चाहता है, जिसमें उसकी रुचि हो। हमारी पाठ्य-व्यवस्था में ऐसे लड़कों के लिए कोई स्थान नहीं है। जेनरल नालेज (साधारणज्ञान) में जो क्लास में सबको परास्त करता हो, वह भी तब तक आगे नहीं बढ़ सकता, जब तक कि सभी पाठ्य-विषयों में पर्याप्त नम्बर न पाए। पं. लक्ष्मीनारायणजी कह रहे थे–"अब क्या करें ? यह पास होकर अफसर तो नहीं बन सकता, और हमने अभी तक इसके बारे में सारा ख्याल सैनिक अफसर बनने के तौर पर ही किया था। साधारण युनिवर्सिटी ग्रेजुएट हो जाता, तो कोई दूसरी नौकरी भी मिल जाती, लेकिन उसे भी फिर से शुरू करना होगा। वह जिद करता है, मैं जाऊँगा सेना में ही।" मिश्रजी यह भी कह रहे थे–"वह तो सिपाहियों में भर्ती होने के लिए तैयार है।" मैंने कहा–"मिश्र महाराज, वह बिल्कुल ठीक कह रहा है। आप जरा भी रुकावट न डालें। वह होनहार लड़का है। जरूर हमारे यहाँ अन्धेरगर्दी है, और सेना में भी तरक्की उसी योग्यता को देखकर की जाती है, जिस तरह दूसरी सरकारी नौकरियों में। पर, आपको ख्याल रखना चाहिए, कि 20वीं सदी का ही एक प्रसिद्ध जेनरल लार्ड राबर्ट सिपाही होकर भर्ती हुआ था। आपका पुत्र सैनिक-ज्ञान में पीछे नहीं है, न और योग्यताओं में। वह जल्दी आगे बढ़ जाएगा।"

लेखों की इतनी माँगें आती हैं, जिन्हें मैं सारा समय देकर भी पूरा नहीं कर सकता। यात्रा में मिलने वाले सम्पादक मित्रों को तो यह कहकर छुट्टी ले ली थी, कि वहीं आऊँगा और लिखवा दूँगा। इसी के अनुसार 14 जनवरी को एक लेख श्री शिवचन्द्रजी 'दृष्टिकोण' के लिए लिख ले गए और दूसरा 'किशोर' के सम्पादक।

अब पत्रों द्वारा छपरा में भी मेरे आने का पता लग गया था। नयागाँव हाईस्कूल के हैड मास्टर श्री शत्रुघ्न तिवारी का फोन अपने यहाँ आने के लिए आया। मैं तो वहाँ जा ही रहा था। उनके द्वारा सोनपुर भी खबर पहुँचाने का अच्छा मौका मिल गया, और फोन से ही प्रोग्राम का निश्चय हो गया, कि 16 तारीख को सोनपुर, नयागाँव और छपरा तीनों स्थानों में पहुँचूँगा। उसी रात वीरेन्द्रजी भी आ गए। उन्होंने अगले

ही दिन छपरा, एकमा और अतरसन आदमी दौड़ाए। उस दिन साढ़े 5 बजे शाम को पटना कालेज की राजनीति परिषद् में तिब्बत और भारत के सम्बन्ध पर व्याख्यान देना पड़ा। सभापति श्री विश्वनाथप्रसाद वर्मा थे—हिन्दी, संस्कृत वाले नहीं, बल्कि इतिहास और राजनीतिवाले। उनका भाषण आदि से अन्त तक अंग्रेजी में हुआ, इसमें शक नहीं कि अंग्रेजी अच्छी थी, पर हिन्दीभाषी विद्यार्थियों के सामने वह अस्वाभाविक-सी मालूम होती थी, इसमें भी सन्देह नहीं।

**नालन्दा**—15 जनवरी को साढ़े 5 बजे तड़के ही देवकुमारजी की मोटर आ गई। हम उससे नालन्दा के लिए रवाना हो गए। 8 बजे नालन्दा में थे। अब की राजगृह छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिए काश्यपजी को खबर देकर आगे चला जाना चाहते थे। काश्यपजी रास्ते ही में टहलते मिल गए, और उनसे कहकर हम सिलाव हो राजगृह पहुँचे। सीधे गिरि-मेखला के भीतर अवस्थित पुराने राजगृह के ध्वंसावशेष पर पहुँचे। इधर जंगलों में और भी कुछ जगहें खुदाइयाँ हुई हैं। चहारदीवारी से घिरा एक स्थान उघाड़ा किया गया है, जिसे बिम्बसार का कारागृह बतलाया जाता है। अब मोटर-सड़क पहाड़ के आर-पार होकर गया की ओर चली जाती है। गृध्रकूटा का रास्ता भी कुछ बेहतर बना दिया गया है, लेकिन वहाँ तक जाने के लिए हम समय नहीं दे सकते थे। सोनभण्डार के पास तक मोटर जाने में कोई दिक्कत नहीं हुई। उसके पास की जमीन को वन-विभाग ने ले लिया है। वहाँ उसका बँगला है, और प्रसार के लिए पौदें भी लगी हुई हैं। राजगृह के जंगलों की रक्षा होगी, यह अन्दाज लग रहा था। सोनभंडार की बगल में एक और भी चट्टान काटकर बनी हुई गुफा निकल आई है। राजगृह के आसपास बहुत-से पुरातात्विक स्थान हैं। पर, पुरातत्व-विभाग उतना साधन-सम्पन्न नहीं है। बर्मी धर्मशाला में 14 वर्ष से वहाँ के स्थानिक भिक्षु रह रहे हैं, पर हमने एक-दूसरे को देखा नहीं था। जब पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष बाद फेरा लगे, तो परिवर्तन अधिक मालूम ही होगा, पर राजगृह का इतिहास नहीं, एक से अधिक तप्त-कुण्ड इस बात की माँग कर रहे हैं, कि स्वास्थ्य के लिए उनका अधिक उपयोग किया जाए। इसी तरह पुराने राजगृह के कोने में कई मीलों के घेरे में किसी समय मगध की गौरव 'सुमागधा' पुष्करिणी थी, जो इस पार्वत्य भूमि के सौन्दर्य की वृद्धि तथा जल की समस्या को ही हल नहीं करती थी, बल्कि आज भी उसके अस्तित्व में आने पर हजारों एकड़ जमीन सींची जा सकती है, पर अभी उसकी ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया है। आज मकर संक्रान्ति का मेला था, इसलिए सुनसान राजगृह का एक भाग सहस्रों नर-नारियों से मनसायन हो रहा था।

लौटकर सिलाव से चिउरा और खाजा ले हम 10 बजे नालन्दा पहुँचे। छोटा पूची के पुत्र अब गृही हो गए हैं। पत्नी और पुत्र उस तिब्बती विहार में मौजूद थे। छोटा पूची इस समय वहाँ नहीं थे। नालन्दा पालि इन्स्टीट्यूट का नाम बदलकर 'नव नालन्दा विहार' रख दिया गया है, जो अधिक उपयुक्त है। अध्यापकों के चार-पाँच बँगले बन चुके हैं, और भी बनते जा रहे हैं। नई बनी इमारत में अब लोग रहने लगे हैं। विद्यार्थियों में एसिया के सभी बौद्ध देशों के भिक्षु या विद्यार्थी मौजूद थे। पुस्तकालय के लिए तीन लाख रुपए की अलग इमारत बनने जा रही थी। भारत सरकार की आर्थिक सहायता से नागरी अक्षरों से पालि त्रिपिटक सम्पादित होकर छपने लगा है, लेकिन ऐसी गति से छप रहा है, कि शायद बीसवीं शताब्दी के अन्त में भी वह पूरा न हो सके। आजकल के जमाने में मोनोटाइप से अच्छी छपाई करनेवाले बहुत-से प्रेस हैं, लेकिन यह काम बम्बई के एक पुराने प्रेस को दे दिया गया है, जो चींटी की चाल चलने के लिए बहुत मशहूर है। महायान बौद्ध धर्म के ग्रंथों के सम्पादन का काम दरभंगा के मिथिला इंस्टीट्यूट को दिया गया है। न जाने इसमें क्या बुद्धिमानी समझी गई। चाहता तो यह था, कि बौद्ध ग्रंथों के लिए—चाहे वह किसी भाषा में हों—नालन्दा में प्रबन्ध किया जाता। ब्राह्मण ग्रंथों को मिथिला इंस्टीट्यूट में और जैन ग्रंथों को वैशाली इंस्टीट्यूट में। लेकिन उन्हें भाषानुसार बाँटा गया, अर्थात् तीनों प्रतिष्ठान क्रमशः पालि, संस्कृत और प्राकृत के लिए रखे गए हैं, जो बिल्कुल अयुक्त हैं। तिब्बती और चीनी ग्रन्थों के अनुवाद या सम्पादन के लिए किसको पसन्द किया जाएगा ? नालन्दा को ही न ?

एक और भी असन्तोषकर बात देखने में आई। सिंहल, बर्मा, थाईभूमि, कम्बोज आदि के छात्र भारत

# 17
# छपरा

**सोनपुर**–5 बजे अँधेरा रहते ही परतन्त्र सवारी पकड़ना बड़ी कबाहत की बात है। इसी समय हमें महेन्द्रू घाट में गंगा पार ले जानेवाले स्टीमर को पकड़ना था। वीरेन्द्रजी अपने साथ रिक्शा लेते आये थे, नहीं तो वह भी समस्या थी। घाट पर प्रायः एक घंटा इन्तिजार करने पर जहाज आया। बड़ी भीड़ थी। 6 बजे के बाद हम पलेजा घाट पहुँचे। सोनपुर में खबर मिल चुकी है, यह रवीन्द्र विश्वकर्मा के स्वागत से मालूम हुआ। रवीन्द्र तीसरी पीढ़ी में हैं। उनके दादा बड़े अच्छे मिस्त्री और सोनपुर स्वराज्य आश्रम के पड़ोसी थे। आश्रथ में रहने वाले अदलते-बदलते रहते थे, पर मिस्त्री अचल थे। वह आश्रम की देखभाल ही नहीं करते, बल्कि समय-समय पर आये-गयों का आतिथ्य भी करते थे। न जाने कितनी बार रवीन्द्र के दादा के यहाँ मैंने भोजन किया होगा। दादा अब नहीं रहे, पिता भी बूढ़े हो चुके, और पोता जवान था। दादा निरक्षर-से थे। पिता ने कुछ पढ़ा था, और लड़का अब शिक्षित और संस्कृत रूप में हमारे सामने था। पीढ़ियों में कितना परिवर्तन होता है। ट्रेन पर बैठकर सोनपुर स्टेशन पहुँचे। सोनपुर कभी मेरे लिए घर-द्वार था। महीनों नहीं तो दिनों यहाँ रहना, आसपास के गाँवों में घूमना मेरे लिए असाधारण बात नहीं थी, पर अब मैं कुछ घंटे ही दे सकता था। सोनपुर गाँव में जाने का समय नहीं निकाल सकता था। स्टेशन पर पुराने सहकर्मी नेताजी बाबू जमुनासिंह और मास्टर भागवत सिंह के अतिरिक्त साथी शिववचनसिंह और दूसरे पुरुष स्वागत करने के लिए आए। बाबू जमुनासिंह को उस समय से दसियों साल पहिले लोगों ने नेताजी कहना शुरू किया था, जबकि श्री सुभाषचन्द्र को अभी यह नाम नहीं मिला था। वह और मास्टर भागवत सिंह अब पूरे बूढ़े हो गए थे। स्टेशन ही पर चाय पिलाई गई, फिर वहाँ से 'आभा' कार्यालय में थोड़ी देर बैठना पड़ा। यहाँ के शिक्षितों, विशेषकर विद्यार्थियों और अध्यापकों ने इस पत्रिका को वर्षों से निकालना शुरू किया है। पहिले हस्तलिखित होती थी, अब उसके कुछ अंक छपे भी हैं। फिर स्वराज्य आश्रम में गए। 1921 से मैं इस स्थान से परिचित हूँ। लेकिन, भूमि के अतिरिक्त और बातों में परिवर्तन हुआ है। ओसारे के साथ कुछ कोठरियाँ और आगे काफी बड़ा चबूतरा है, जिसमें डेढ़ सौ आदमी बैठ सकते हैं। नीचे एक तरफ 1942 के शहीदों का स्मारक है। सभा में तीन सौ के करीब आदमी आए। पुराने परिचितों और नई पीढ़ी ने अपने पुराने सुराजी-कर्मी का अकृत्रिम रूप से स्वागत किया। मैंने भी अपने को धन्य-धन्य माना। नेताजी ने भोजन कराया। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि वह और मास्टर भागवतसिंह अब बुढ़ापे से निश्चिन्त हैं। यहीं पर नयागाँव हाईस्कूल के हेडमास्टर श्री शत्रुघ्ननाथ तिवारी भी मिल गए। तिवारी का वह चेहरा भी मुझे याद है, जबकि वह 16-18 वर्ष के जवान थे। मैट्रिक पास किया था, आगे बढ़ने की इच्छा थी, और साथ ही देश के लिए काम करने की। ऐसे तरुण मुझे छपरा में और अन्यत्र भी मिलते थे। मैं उन्हें हमेशा प्रोत्साहित करता था, कि वह अपने सामने बड़ा लक्ष्य रखें। लेकिन, सभी बड़ा लक्ष्य

तो नहीं रख सकते। जब उस दिन फोन पर तिवारी से बातचीत हुई और मुझे मालुम हुआ, कि वही तरुण अब एक हाईस्कूल का बहुत योग्य हेडमास्टर है, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। भोजनोपरान्त नयागाँव का प्रोग्राम था।

**नयागाँव**–जहाँ सड़क हो, वहाँ मोटर-बस न चलती हो, यह सम्भव नहीं। यदि रेल का सुभीता हो, तब भी मोटर के लिए गुंजाइश नहीं रह जाती, यह भी बात नहीं। रेलवे अधिकारियों की रिपोर्ट से मालूम होता है, कि भारत की जनता का एक प्रतिशत रेलों पर जरूर चलता है। मैं समझता हूँ, इस एक प्रतिशत में वे मुसाफिर नहीं शामिल हैं, जो मोटर-बसों पर चलते हैं। जहाँ सरकारी रोडवेज की बसें चलती हैं, वहाँ प्राइवेट बसें नहीं चलतीं। सोनपुर से छपरा रेल जाती है, पर प्राइवेट बसें भी यहाँ से बराबर जाती रहती हैं। आजमगढ़ के बारे में तो सुनने में आया कि जहाँ रोडवेज ने सड़क को ले लिया है, वहाँ पर प्राइवेट मोटरवाले माल ढोने की लारियाँ चलाने लगे हैं। बैलगाड़ी किराया करने की जगह लोगों को लारी किराया करने में सस्तापन मालूम होता है। लारी में तिवारीजी और वीरेन्द्रजी के साथ हम चले। नयागाँव के ही प्राइमरी स्कूल में भिखारी अध्यापक हैं। भिखारी शोषित जाति के हैं, मुश्किल से मैट्रिक पास किया। कालेज पढ़ने की बड़ी इच्छा थी। एक तरफ आर्थिक कठिनाई और दूसरी तरफ देश से शोषण दूर करने की उमंग, दोनों के कारण उनकी पढ़ाई आगे नहीं बढ़ सकी। अब यहीं एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ाते अपने विचारों को फैलाने में भी लगे रहते हैं। मैं तो इनके जैसे लोगों को असली तपस्वी मानता हूँ।

हाईस्कूल के कितने ही कमरे बन चुके हैं। लड़कों की संख्या बढ़ रही है, उसी के अनुसार मकान भी नये बढ़ते चले जा रहे हैं। नयागाँव ने कई शिक्षित और प्रसिद्ध पुरुष पैदा किये हैं। बटोहिया के बाबू रघुवंश नारायण यहीं के थे। पटना विश्वविद्यालय के कुलपति वासुदेव नारायण यहीं के हैं। छपरा में मिडिल तक की हिन्दी शिक्षा को निःशुल्क करके चलाने का तजर्बा जिस जिला स्कूल-निरीक्षक के तत्वावधान में हुआ था, वह यहीं के थे। आसपास की टूटी-फूटी मूर्तियों और ध्वंसावशेषों से यह भी मालूम होता है कि इस भूमि में कितनी ही ऐतिहासिक निधियाँ छिपी हुई हैं। विद्यार्थियों और अध्यापकों ने स्वागत किया और मैंने भाषण दिया।

यहाँ से साढ़े 3 बजे जनता ट्रेन पकड़नी थी, जिसके लिए स्टेशन पर चले गये। लड़कों की काफी संख्या स्टेशन पहुँची। उसमें से कुछ रेल पर जानेवाले थे, और कुछ आज के वक्ता का तमाशा देखना चाहते थे। 15-16 वर्ष से नीचेवाले लड़के भला मेरे बारे में क्या जानते होंगे ? दादा होते तो कुछ बातें बतलाते, पर अब संसार में नहीं रहे। सुराजी कर्मी के तौर पर मुझे जाननेवालों की संख्या अब छपरा में बहुत कम रह गई थी। हाँ, पढ़ने-लिखने का शौक रखनेवाले लेखक के तौर पर राहुलजी का नाम जरूर जानते हैं। ये लड़के जो कितनी ही देर तक खड़े-खड़े स्टेशन पर मेरी ओर देख रहे थे, वे यदि सुन भी रहे होंगे, तो उसे बड़ी दूर की किसी आवाज की तरह। हाईस्कूल के विद्यार्थी थे। लेकिन सौ में से दस के पैरों में भी जूता नहीं था। कपड़े यदि फटे नहीं थे, तो मैले जरूर थे। दोनों का कारण गरीबी है। हमारे नेता गरीबी का मुँह काला करने की लम्बी-लम्बी बातें करते हैं। लेकिन, उनके प्रयत्न से लक्ष्मी गरीबों के घर में नही, बल्कि सेठों के घर में दिन दूनी-रात चौगुनी बढ़ रही है। वे अपने जीवन तक तो कभी गाँवों से दरिद्रता के भगाने की आशा नहीं रखते, और न उनके लिए प्रयत्न करते हैं।

**छपरा**–हमारी ट्रेन साढ़े 5 बजे छपरा के करीब पहुँची। बहुत-से पुराने मित्र और तरुण स्टेशन पर मिले। छपरा में हमेशा से पं. गोरखनाथ त्रिवेदी का घर ही मेरा घर रहता आया है, इसलिए सीधे वहाँ गया। उसी दिन शाम को टौनहॉल में भाषण का भी प्रबन्ध किया गया था, इसलिए थोड़ी देर ठहरकर वहाँ पहुँचा। टौनहॉल में सभी आदमी कैसे आ सकते थे, पर हॉल में दर्जनों परिचित चेहरों को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। छपरा में चाहे शहर में हो या देहात में, मैं बराबर भोजपुरी में ही भाषण देता रहा हूँ, लेकिन आज न जाने क्यों वह बात टूट गई। दूसरों को हिन्दी में बोलते देख मैं भी उसी में बोल पड़ा। त्रिवेदीजी के डेरे पर आने पर और कितने ही मित्र मिलने के लिए आए। एक दिन अभी और छपरा में आकर रहना था।

**परसा**–कोशिश तो की गई, कि मोटर बड़े तड़के ही मिल जाए, और हम आज ही एकमा, परसा, अतरन और हो सके तो सिवान भी होकर रात को छपरा लौट आएँ। पर, मोटरें बहुत कम लोगों के पास रह गई हैं। सरकारी अफसर और कुछ सेठ ही उसे रखने की हिम्मत कर सकते हैं। पहिले हर दो-चार गाँव पर कोई एक बड़ा बाबू जमींदार होता, जिसके पास पहिले हाथी, घोड़ा, बग्गी होते। मोटरों का जमाना आया, तो उसने इन चीजों को मोटर से बदल दिया। अब जमींदार के उठने पर वे बाबू नहीं रहे, इसलिए मोटरों की सुविधा नहीं। खैर, बस-ट्रक मिश्रित एक मोटर सवा 10 बजे आई, और हम छपरा छोड़ने में सफल हुए। साथ में वीरेन्द्रकुमार और श्री रामानन्द सिंह थे। दोनों धूपनाथजी के भतीजे हैं। रामानन्द ने बी. ए. करके अपना समय राजनीति में लगाया, कांग्रेस के नेताओं में से हैं। हमारे सामने ही तो होश सँभाला था, और अभी बुढ़ापे की छाप उनके चेहरे पर देख रहे थे। एकमा 45 मिनट में पहुँचे। पचासों मुर्रा भैंसें और अच्छी जाति की गाएँ–जिनमें कुछ के साथ बछड़े भी थे–सड़क से जा रही थीं। पता लगा, कलकत्ता से आ रही हैं। दूध देते समय मालिकों ने उन्हें कलकत्ता में रखा, जब बिसुक गईं, तो उन्हें अपने घर पर ला रहे हैं। फिर ब्याने पर उन्हें पटना तक पैदल और फिर रेल पर चढ़ाकर कलकत्ता ले जाएँगे। मेरा रोम-रोम छपरा के इन गोपालकों को आशीर्वाद देने लगा। कलकत्ता में दूध के लिए भारत की श्रेष्ठ जाति की भैंसें और गाएँ आती हैं, जो दिन में 15-20 सेर तक दूध देती हैं। बिसुक जाने पर उनको दो रुपया रोज कोन खिलाएगा। बहुत-से तो बिसुकी गायों और भैंसों को कसाइयों को दे देते हैं। अधिकांश दूध देनेवाले पशु और इतनी उच्च जाति के एक बियान दूध देकर मार दिये जाते हैं। कितनी भयंकर और मूर्खतापूर्ण रीति से पशुधन का संहार होता है।

जिस गोवंश और महिषवंश की रक्षा और वृद्धि करना हमारा परम कर्तव्य है, उसका इस तरह ध्वंस हो रहा है। कम-से-कम इन गायों और भैंसों की रक्षा के लिए तो कानून जरूर बनना चाहिए। पर, उससे क्या पैसे की मार की चोट कम हो जायेगी ? बिसुकी गायों और भैंसों को बिठाकर तीन-चार रुपया रोज कौन खिलायेगा ? सभी गोपालक छपरा या आसपास के बिहारी जिलों के नहीं हैं कि वह कलकत्ता से अपने माल को यहाँ ले आएँगे। इसका तो एक ही उपाय है कि कलकत्ता और इस तरह के दूसरे शहरों से सौ-पचास मील पर 400-500 एकड़ अच्छी गोचर भूमि सरकार सुरक्षित कर दे, जहाँ बिसुके गायों-भैसों को पाँच-दस रुपया प्रवेश-फी लेकर रख लिया जाए। मालिक ब्याने पर उन्हें फिर ले जाने का हक रखे। इससे दूसरा तरीका यह हो सकता है कि बड़े शहरों में डेरी का काम सरकार अपने हाथों में ले, लेकिन इसके कारण हजारों आदमी बेकार हो जाएँगे, इसका भी ध्यान देना होगा। यही बातें सोचते मैं जा रहा था कि पास के बछड़े ने चिल्लाकर बाँ किया। दो-तीन बछड़े एक रस्सी में बँधे चल रहे थे। मोटर उनके पास से धक्का देती निकली। मेरा स्वप्न भंग हुआ, और कलेजा कितनी देर तक काँपता रहा। एक तो इस ख्याल से कि कहीं मोटर उसके पैर पर चली जाती, और दूसरा यह कि इस तरह के हजारों बछड़े और उनकी माँएँ कलकत्ता में पैर रखने का ठौर न पा कसाइयों की छुरी के नीचे जबह हो चुकी होंगी।

एकमा में लक्ष्मी बाबू से कह दिया कि हम सीधे परसा जा रहे हैं, वहाँ से लौटकर यहाँ आएँगे। परसा अब के मैं तीस वर्ष बाद जा रहा था। 1926 के बाद कभी इस भूमि पर पैर नहीं रखा। उस समय कांग्रेसी उम्मीदवार के खिलाफ यहाँ के बहुत जबर्दस्त जमींदार शिव जी जिला बोर्ड के लिए खड़े हुए थे। मैं कांग्रेस की ओर से प्रचार के लिए यहाँ आया था। जमींदार को खुश करने के लिए कुछ ऐसे लोग गाली-गलोज पर उतर आए, जिनके बारे में मैं जानता था, वे मेरे विरोधी नहीं हो सकते। इसी समय मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जमींदारी प्रथा नहीं उठेगी, तब तक परसा नहीं आऊँगा। अब आने का समय हो गया था, इसलिए मैं परसावासियों से भी अधिक लालसा के साथ यहाँ आया था। पहिले ही मठिया मिली। वही मठिया, जहाँ का भावी महन्त बनाने के लिए महन्त लक्ष्मणदासजी मुझे बनारस से लाए थे। यदि मैं मठिया में टिक नहीं सका और महन्त नहीं बन सका, तो उसमें किसी और का दोष नहीं, बल्कि मेरी अपनी घुमककड़ी और विद्या की तीव्र जिज्ञासा का था। सचमुच ही मैं उस छोटे-से खोल के भीतर रहकर कैसे देश-देशान्तर विचर सकता था, कैसे कण-कण करके ज्ञान अर्जित कर पाता। आज मठिया का रूप बदला हुआ था। दो मन्दिर और समाधि

तथा एकाध और घरों को छोड़कर सभी नये मकान थे। खपड़ैल और कच्ची दीवारों को हटाकर उनकी जगह पक्की इमारतें बन गई थीं। मेरे गुरु महन्त लक्ष्मणदास को पक्के मकानों के बनाने की सनक थी। वह आमदनी की कुछ पर्वाह नहीं करते थे, और कर्ज ले-लेकर उसे ईंट-चूने पर लगा रहे थे। वह सारे मठ को ईंट-चूने का बनाने में सफल हुए। जिस वक्त मैं पंक्तियों को लिख रहा हूँ, उस समय तीस वर्ष बाद मठ को जाकर देखे तीन ही महीने हुए हैं। पर, मेरे मानस-पटल पर तीस वर्ष पहिले का ही मठ अंकित है। शायद बुढ़ापे के मन पर प्रतिबिम्ब अधिक गाढ़ा नहीं होता, और जल्दी मिट भी जाता है। तब ईंटे-चूने का नहीं, और मिट्टी और खपड़ैल का यह मठ था, उस समय सौ-सौ मूर्ति साधु यहाँ रहा करते थे। हर जगह चहल-पहल चलती थी। मेरे रहते समय (1913 ई.) में भी भोजन के वक्त दो दर्जन से अधिक साधु पाँती में बैठते थे। अब तो जमाना ही बदल गया।

मेरे बार-बार भाग जाने पर निराश होकर महन्तजी ने अपने भतीजे श्री सत्यनारायण दास को चेला बनाकर महन्त बनाया। उनसे पहिले श्री वीर राघवदास शिष्य बने थे। वर्तमान जी बहुत सीधे-सादे हैं। वीर राघवदासजी अधिक होशियार हैं, और मठ के प्रबन्ध का भार भी उन्हीं पर ज्यादा है। दोनों नौजवान थे, जबकि पिछली बार मैंने मठ को देखा था। अब दोनों के बाल सफेद हैं। जमींदारी प्रथा समाप्त हुई, उसका प्रभाव मठों पर उतना नहीं पड़ा है। लेकिन, लालबुझक्कड़ों ने मठों के अधिकारियों की नींद हराम कर दी है। जब-जब मठ की सम्पत्ति पर गाढ़ पड़ता, घुमक्कड़ी छोड़कर मैं महन्तजी के बुलाने पर परसा आता, और मेरे आने से लाभ भी होता। यह बात हमारे दोनों गुरुभाई जानते थे। उन्होंने सलाह पूछी। पता लगा, किसी अकिल के अजीर्ण वाले महन्त ने यह सिखलाया है कि हम अपने मठों की सम्पत्ति को प्राइवेट घोषित करें, तो वह बच जायेगी। मैंने समझाया, जमींदारी प्रथा और जमींदारी के रूप में मौजूद सम्पत्ति तो कभी भी पहिले की तरह नहीं रह सकती। जोतनेवाले का खेत पर अधिकर होगा, इसे ब्रह्मा भी नहीं टाल सकता। मठ की सम्पत्ति को अगर सार्वजनिक धर्मोत्तर सम्पत्ति मानते हैं, तो आपको विशेष रियायत मिलेगी। जमींदारी से जो वार्षिक मालगुजारी मिलती रही है, उसमें से वसूल-तहसील के लिए दो-चार सैकड़ा काटकर बाकी नगद रुपया मिल जायेगा। यह सुभीता किसी निजी जमींदारीवाले व्यक्ति को नहीं है। इसके अतिरिक्त निजी जमींदार को कुछ बिगहे ही अपनी खेती के लिए रखने का अधिकार होगा। आपके मठों में बीसियों साधु रहते हैं, उनके हिसाब से मठों को अपनी निजी जोत की काफी जमीन रखने का अधिकार होगा, और सैकड़ों बिगहे आप खेती करा सकते हैं। यह सुभीता भी नहीं रहेगा, और वही बीस-तीस एकड़ जमीन आपके मठ को भी मिलेगी, जो कि दूसरों को। बिहार ही में नहीं, उत्तर प्रदेश में भी महन्तों में ऐसी हलचल है। कितने ही महन्त पहिले भी ब्याह करके मठ की सार्वजनिक सम्पत्ति को निजी बना चुके हैं। अभी ब्रह्मचारी मंगलदेवजी कह रहे थे कि अब तो उत्तर प्रदेश के कितने ही महन्त एक ओर से ब्याह करने की सोच रहे हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति का इस तरह से ध्वंस और लूट-खसूट होने देना किसी सरकार को शोभा नहीं देता। सरकार को उसकी रक्षा के लिए विशेष विधान बनाना चाहिए।

मठ में चारों तरफ घूमकर पोखरे के किनारे से हम पुराने मठ में गए। मूल मठ यही था, जो कि गाँव से सटा हुआ है, और जिसमें गोपाल मन्दिर है। 1913 में भी यह काफी बड़ा मठ था। उससे पहिले तो यहाँ बड़ा फाटक और उसके ऊपर शहनाई या नगाड़ा बजानेवालों के बैठने का स्थान तथा सैकड़ों आदमियों के ठहरने लायक मकान थे। महन्त की गद्दी यहीं है। अब मठ को संकुचित कर दिया गया है। यहाँ के एक मन्दिर (रामजी) को उठाकर पिछले मठ में ले गये हैं, तो भी स्थिति बुरी नहीं है। गाँव के बनियों में किसी की भक्ति ने जोर मारा, और उसने गोपाल मन्दिर के फर्श को नकली संगमर्मर का बना दिया। गाँव के भीतर से होकर हाईस्कूल में जाना था, वहाँ पर स्वागत की सभा होनेवाली थी। तीस वर्ष में परसा के बहुत-से पुराने आदमी चल बसे, उनका स्थान लेनेवाले मेरे परिचित नहीं थे। पर, रामउदार बाबा का नाम तो सभी सुन चुके थे। जब किसी पढ़े-लिखे जवान ने मेरी किसी किताब की चर्चा की होगी, तो उसके गुरुजन ने कहा—"तुम क्या जानो रामउदार बाबा को। उन्हें हम पुजारीजी कहते थे। इसी परसा मठ में वह रहते थे। बड़े अच्छे

थे। वह रहे होते, तो वही मठ के महन्त होते। सुराज में काम करने लगे, फिर न जाने कहाँ चले गये।" उस भीड़ में उन सैकड़ों मुखों में मेरी आँखें परिचितों को ढूँढ़ रही थीं। 'बाईसवीं सदी' में मैंने जिस पुराने अच्छे बड़े गाँव का दयनीय चित्र खींचा है, वह यही परसा था, और उस दयनीय चित्र में अब भी कोई अन्तर नहीं पड़ा है। परसा बहुत पुराना ग्राम होगा। किसी समय यह एक सामन्त की राजधानी रही। परसा के बाबू वस्तुतः उसी सामन्त की सन्तानें हैं। उनका निवास-स्थान अब भी गढ़ कहा जाता है, और गढ़ के चारों ओर भी खाई के कुछ अंश अब भी मौजूद हैं। सामन्त की राजधानी में बाजार और शिल्प-उद्योग होना ही चाहिए। परसा अपने काँसे और फूल के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध था। अब भी देखा, लोटे ढाले जा रहे हैं, लेकिन वे भाग्य लौटाने में सफल नहीं हुए।

गाँव से होते गढ़ पर लक्खी बाबू से मिलने गये। मेरे समय में इनका और बाबू शिव जी का घर बहुत समृद्ध था। उसके बाद बब्बन बाबू थे। बाबू शिव जी के पिता बैजनाथ बाबू को भी मैंने देखा था। उनके बाद बाबू शिव जी की बड़ी तपी। उनके पुत्र राघवजी भी अच्छी बबुआई करके मरे। अब उनका लड़का है, लेकिन जमींदारी प्रथा उठने से पहिले ही जमींदारी भीषण रूप से ऋणग्रस्त हो चुकी थी। लक्खी बाबू उन आदमियों में थे, जिनको कहते हैं–"न ऊधो से लेना न माधो को देना।" सरल प्रकृति के पुरुष थे। ऐसे आदमी को जमींदारी प्रथा उठानेवाली झंझा बहुत पीड़ित नहीं कर सकती। बड़ी तपस्या से एक लड़का हुआ था, वह जवान होने लगा था कि इसी वक्त चल बसा। अब एक छोटा-सा बच्चा था। सुनते ही बब्बन बाबू भी चले आये। फिर हम उनके साथ गाँव से बाहर स्कूल में गये। इस स्कूल को स्थापित हुए पच्चीस से अधिक वर्ष हो चुके हैं। मैं पहिले-पहिल स्कूल में आया था। लड़कों और अध्यापकों ने स्वागत का आयोजन किया था। लोगों को एक ही दिन पहिले तो मेरे आने की खबर लगी थी, और समय का ठिकाना नहीं था; इसलिए गाँव और आस-पास के लोगों को मेरे चले जाने के बाद खबर मिली होगी। स्कूल सामाजिक परिवर्तन में काफी सहायक होते हैं। बाबू और गरीब के लड़के एक साथ बैठकर पढ़ते हैं, इसके कारण उनमें भेदभाव कम होने लगते हैं। अब तो सामन्त-युग के अवशेष जमींदारी प्रथा के अन्त हो जाने से यह सामाजिक विषमता और भी तेजी से कम हो रही है। बाबू लोग पहिले पढ़ने की जरूरत नहीं समझते थे। बब्बन बाबू के लड़के एम. ए. होकर इसी स्कूल में अध्यापक हैं। वह विद्या के गुण को समझ सकते हैं। स्वागत और भाषण के बाद चलने की जल्दी थी, क्योंकि आज ही एकमा और अतरसन में भी स्वागत-सभा होनेवाली थी। स्कूल से लौटते वक्त सारे बाजार के भीतर से जानेवाली सड़क हमने मोटर से नापी। बाजार के घरों में क्या परिवर्तन हुआ है, यह देखना चाहता था। दूकानें कुछ ज्यादा बढ़ी हैं, चेहरे अधिकांश नये हैं। यही परिवर्तन था। सभा-स्थल पर ही एक हलवाइन बुढ़िया अपने गुरु का दर्शन करने के लिए पहुँची। मैंने वैष्णव होते समय उसे मन्त्र-दीक्षा दी थी। मुझसे दीक्षा लेनेवाले स्त्री-पुरुषों की संख्या एक दर्जन से ज्यादा नहीं थी। जब मोटर दरवाजे पर पहुँची, तो देखा उसके ससुर जगेसर भी जिन्दा हैं। कमर टेढ़ी हो गई थी, और शरीर में हाड़-मांस छोड़ और कुछ नहीं था। एक ही लड़का था। वह जवानी में जाता रहा। उसकी बहू ने अपने ससुर की सेवा में ही अपना जीवन बिता दिया। ससुर के कुबड़े देह में न जाने कहाँ से फुर्ती आ गई। मिठाई की दूकान में से जो अच्छी मिठाई थी, उसको इकट्ठा कर हमें अर्पित किया। परसा में रहते सबेरे का जलपान इन्हीं की दूकान से खरीदकर मेरे लिए जाया करता था। बुढ़िया तो गद्‌गद हो गई थी। वह चरणामृत लिये बिना कैसे छोड़ सकती थी, और मैं उससे इन्कार करके उसके हृदय को चोट कैसे पहुँचा सकता था ? बड़ी सड़क पर पहुँचकर मठिया के पास मोटर को खड़ी कर हम फिर मठ में गये। वीर राघवदासजी बिना कुछ पवाये (खिलाये) नहीं छोड़ सकते थे। भात, साग, पूड़ी और हलवा खाने में वही रस आया, जो कि 1913 में आता था। सभी आत्मीय समझते थे, और सभी के मन में एक तरह का भारी उत्साह था।

एकमा में पहुँचते-पहुँचते 1 बजे से अधिक हो गया। लक्ष्मी बाबू ने भी भोजन का प्रबन्ध कर रखा था। खैर, मात्रा तो अपने हाथ में थी, और मैंने यहाँ के लिए भी जगह छोड़ रखी थी। कांग्रेस में काम करते वक्त जिन तरुणों के साथ मेरा घनिष्ठ सम्पर्क हुआ था, उनमें लक्ष्मी बाबू खास स्थान रखते हैं। एकमा हैडक्वार्टर

रहने और यहीं उनका घर होने से उनका घर मेरा अपना-सा था। सैकड़ों बार अचानक भी पहुँचकर मैंने उनके यहाँ भोजन किया होगा। उस वक्त घर के बड़े पिता और चचा थे। पिता सोनवरसा राजा की तहसीलदारी करते भागलपुर जिले में रहा करते थे। लक्ष्मी बाबू डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वायस चेयरमेन भी रह चुके थे, और अब कांग्रेसी एम. एल. ए. थे। मैं कम्युनिस्ट हूँ, और वह कांग्रेसी। पर, इससे क्या जरा भी वैयक्तिक सम्बन्ध में हमारा अन्तर आ सकता था ? मेरे साम्यवादी विचारों को तो वह और उनके मित्र उस समय भी जानते थे, जब मैं असहयोग में उनके साथ काम करता था। 'बाईसवीं सदी' का ख्याल तो उस समय तक दिमाग में परिपक्व हो चुका था, और 1923 में वह कागज पर भी उतर आया था। भोजन के बाद स्कूल में गए। छात्रों के अतिरिक्त जिन पुराने मित्रों को पता लगा, सब आए थे। रामबहादुर लाल 16-18 वर्ष के तरुण थे, जब उन्होंने स्कूल छोड़कर असहयोग में काम करना शुरू किया था। अब वह बूढ़े हो गए थे। रामउदार राय, हरिहर सिंह का अब चेहरा स्मृति-पटल पर ही देख सकता था।

**अतरसन**–जल्दी-जल्दी पड़ी थी। कम से कम दिन रहते अतरसन पहुँच जाना जरूरी था, ताकि वहाँ एकत्रित हुए लोग निराश न हों। अतरसन धूपनाथ का गाँव है। उनके भाई देवनारायण सिंह का ख्याल आये बिना इस समय नहीं रह सकता था। लेकिन, पुरानी पीढ़ियों को पकड़कर बैठाया नहीं जा सकता। इस घर में बाबू रामनरेशसिंह असहयोग के समय से ही कांग्रेस का काम करते रहे, और अब भी उसी में हैं। उस समय वह घर का काम-काज देखते थे और अब होमियोपैथी के एक अच्छे डाक्टर हैं। उनके बुढ़ापे के बारे में कहने की क्या आवश्यकता, जबकि उनके भतीजे अखिलानन्द सिंह के सिर को देखने से मालूम होता था, कि बाल नहीं, झबरी सफेद टोपी पहने हुए हैं। वीरेन्द्र, अखिला आदि समवयस्क आधे दर्जन से ऊपर इस घर के लड़कों को कभी मैंने बच्चे देखा था। मालूम होता है, वह दिन कल ही गुजरा है। आज घर जाने पर उसी उमर के एक दर्जन से अधिक लड़के खड़े दिखाई पड़े, यह उनकी अगली पीढ़ी है। बाबू रामनरेश सिंह और उनके घर के लोगों ही के प्रयत्न का फल स्कूल है। प्राइमरी से उसे मिडिल और फिर हाईस्कूल किया। आजकल लोगों में शिक्षा की कितनी रुचि है, यह इसी से मालूम होगा, कि कोस-डेढ़ कोस के अन्दर यहाँ एकमा, परमा, अतरसन, जेतपुर, बरेजा के पाँच हाईस्कूल हैं। और सभी जगह लड़कों की पूरी संख्या है, सभी स्कूल स्वावलम्बी हैं। अतरसन का स्कूल गाँव से बाहर बगीचे के छोर पर है। काफी इमारतें बन गई हैं। यहाँ भी सभा में भाषण देना था। पुराने सहकर्मियों में लक्ष्मी बाबू हमारे साथ ही थे, मधु बाबू भी और पं. रामदयाल वैद्य भी आ मिले। रामदयालजी सौभाग्यशाली हैं। इनके पिता अब भी जीवित हैं, और पुत्र के पुत्र का भी मुँह देख लिया है। सभा के बाद बाबू रामनरेशसिंह के घर पर गए। वहाँ साग का मेरे लिए विशेषतौर से इंतिजाम किया गया था, एक छोटी-सी चाय-पार्टी हो गई। घर की महिलाओं में भी नई पीढ़ी आ गई थी, जो बाबा का दर्शन किए बिना कैसे रह सकती थी ? उन्हें भी दर्शन देकर 6 बजे छपरा पहुँच गए। सिवान गए दस-बारह वर्ष हो गए। वहाँ जाने की बड़ी इच्छा थी, यदि मोटर सवेरे ही आ गई होती, तो वहाँ भी हो आए होते।

18 जनवरी को छपरा में ही रहना था। उस दिन सबेरे नौ बजे से ही प्रोग्राम शुरू हो गया। पहिले अपनी पार्टी के साथियों के बीच प्रगतिशील साहित्य के सम्बन्ध में एक छोटी-सी गोष्ठी हुई। यह देखकर प्रसन्नता हुई कि नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी का स्थान लेने के लिए और भी उत्साह के साथ तैयार है। मध्याह्न भोजन नर्मदा बाबू के यहाँ हुआ। पहिले यह और पं. गोरखनाथ त्रिवेदी पड़ोसी थे। नर्मदा बाबू और उनके अनुज जलेश्वर बाबू से मेरी पुरानी आत्मीयता है। दोपहर को राजेन्द्र कालेज पहुँचे। प्रिंसिपल मनोरंजन प्रसाद ने यदि परिचय में अतिशयोक्ति से काम लिया, तो यह उनके अधिकार के भीतर की बात थी। 'फिरंगिया' के अमर गायक का मेरे साथ बहुत पुराना परिचय था। हिन्दू युनिवर्सिटी में जब अध्यापक थे, तो उस समय वहाँ जाने पर जरूर मिलते। विश्वनाथ की नगरी छुड़ाकर छपरा लाने में मेरा ही हाथ था, इसे वह कहना नहीं भूले। मनोरंजन बाबू जनता के आदमी हैं, इसलिए जनता के दुःख-सुख को कभी नहीं भूल सकते।

छपरा में राजपूत स्कूल अब जगदम्ब कालेज के नाम से डिग्री कालेज बनने जा रहा था। अभी कालेज

की दो कक्षाएँ खुली हैं, और उनमें पाँच सौ विद्यार्थी हो गए हैं, यह बतलाता है कि शिक्षा की बड़ी माँग है। जगदम्ब कालेज के तरुण प्रिंसिपल से बातचीत करने के बाद पुराने छपरा में राजेन्द्र पुस्तकालय देखने गए। यह तेरह वर्ष पहिले एक किराए की छोटी-सी कोठरी में खुला था, और अब वह अपने पक्के मकान में तथा अच्छी स्थिति में है। शिक्षा और सम्पन्नता के बढ़ने पर यह और भी सेवा कर सकेगा। पुस्तकालय में दो-तीन बहुमूल्यवान हस्तलिखित फारसी पुस्तकें थीं।

वहाँ से लौटकर श्रीमती विद्यावतीजी के वाणी मन्दिर में गए। उनके पति मंगलसिंह की याद बड़ी दुःखद मालूम होती है। हिन्दू विश्वविद्यालय से पढ़ाई छोड़कर उन्होंने पुस्तक का व्यवसाय शुरू किया। अच्छी तरह जमा भी नहीं पाए थे कि जवानी ही में चल बसे। विद्यावतीजी गुरुकुल हर-पुरजान के संस्थापक की लड़की थीं। वहीं उन्हें संस्कृत पढ़ने का बहुत अच्छा अवसर मिला। ब्याह मंगलजी से हुआ। तीन छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर मंगलजी चले गए। उनका घर पोखरपुर (परसा थाना) एक खाते-पीते भद्र कृषिजीवी परिवार का था। उनके चचा तीन या चार भाई एक ही साथ रहा करते। छोटे चचा को शिक्षा का उतना अवसर तो नहीं मिला, पर जो कुछ भी था, उससे उन्होंने अपने ज्ञान को बढ़ाया था। खेती में नई बातों का अनुसरण करने के कारण उपज अच्छी होती थी। घर के सभी लड़कों को उच्च शिक्षा दी गई। लड़कों को छोड़ लड़कियाँ भी उनके घर में एम.ए. हैं। सबसे बड़ी प्रसन्नता मेरे लिए यह थी कि मंगलजी के चचा की लड़की ने अभी हाल ही में अपनी राजपूत बिरादरी को छोड़कर ब्राह्मण लड़के से ब्याह किया। वह डबल एम. ए. हैं। चर्चा आने पर विद्यावतीजी ने कहा–"अभी घर में लोगों को इसकी खबर नहीं है।" इस मर्यादा-भंग को शिक्षित बूढ़े भी क्या पसन्द कर सकते हैं? जिनके लड़के से इस लड़की का ब्याह हुआ, वह स्वयं विलायत हो आए, अर्थात् पुराने विचारों के अनुसार धर्मभ्रष्ट है। इतिहास के एक माने हुए विद्वान् तथा एक कालेज के प्रिंसिपल हैं। लेकिन जब यह पता लगा कि लड़के ने राजपूत लड़की से ब्याह कर लिया, तो उनको भारी धक्का लगा। कुछ लोग तो कहते हैं, बेहोश होकर गिर पड़े। शायद सोचते थे कि कम्बख्त ने थोड़ा और इंतिजार किया होता, ताकि मैं अपनी इकलौती लड़की का ब्याह कर देता। पर, प्रिंसिपल साहब गलत समझ रहे थे। लड़के के कारण उन्हें अपनी जाति के ब्राह्मण-दामाद के मिलने में कोई दिक्कत नहीं होती। विद्यावतीजी ने काम को खूब सँभाला। अपनी दो लड़कियों को ग्रेजुएट बनाकर उनका ब्याह कर चुकी हैं। एक लाख रुपये का मकान बन रहा है, जिसका बहुत-हिस्सा बन चुका है।

फिर शाम को व्याख्यान देने से पहिले मित्रों को ढूँढ़कर मिलने गया। पाण्डे रघुनाथ बूढ़े हो गए हैं, पहचानने में भी कुछ दिक्कत हुई। सोहम् पं. भरतजी तो अपने उसी रूप में वर्षों से दिखाई पड़ते हैं। उनकी संस्कृत माध्यमवाली छोटी पाठशाला ठीक से चल रही है। संस्कृत बोलने-चालने का अभ्यास हो जाता है। जो लड़के तीन-चार साल यहाँ पढ़ जाते हैं, वे युनिवर्सिटी तक के लिए संस्कृत की कमाई कर लेते हैं, इसलिए विद्यार्थियों के मिलने में दिक्कत नहीं है। म्युनिसिपल मैदान में भाषण देने के बाद साहित्य प्रेस में साहित्य-गोष्ठी हुई, जहाँ छपरा के तरुण साहित्यकारों से मिलने का मौका मिला। 11 बजे लौटकर त्रिवेदीजी के घर पर पहुँचा। उनके पुत्र बिन्दु ने बड़े प्रेम से मछली बनाकर तैयार की। रात को गरिष्ठ भोजन करने का मेरा नियम नहीं है, लेकिन प्रेम से बने हुए उस पदार्थ को छोड़ना नहीं चाहता था।

**पटना**–19 तारीख को अँधेरा रहते ही स्टेशन पर पहुँचा। ट्रेन 4 बजकर 40 मिनट पर छूटी। 35 वर्ष के मित्र पं. गोरखनाथ त्रिवेदी अभी भी शरीर से दृढ़ थे, यह जानकर सन्तोष हुआ। सबसे छोटा लड़का वर्षों हुए घर छोड़कर चला गया, तब से उसका पता नहीं लगा। बाकी लड़के अपने काम पर लगे हुए हैं, इसलिए उन्हें घर की कोई चिन्ता नहीं। सोनपुर से गाड़ी बदलकर गंगा के किनारे पहुँचे, और जहाज से 11 बजे पटना पहुँच गये। सिवान के मास्टर साहब भी आए हुए थे। और डा. बाँकेबिहारी मिश्र भी शाम को आ गए। उस दिन 4 बजे बी. एन. कालेज की राजनीतिक परिषद् में भाषण देना पड़ा। फिर साढ़े 6 बजे सम्मेलन-भवन में साहित्यिक गोष्ठी हुई, जिसमें हिन्दी की स्थिति पर भाषण देते हुए मैंने कहा–"उर्दू भी हिन्दी ही है, उसे पराई भाषा नहीं समझना चाहिए। उसकी सभी बहुमूल्य कृतियों को नागरी अक्षरों में छाप देना

चाहिए।"

20 जनवरी को भी पटना ही में रहना था। अब तक लोगों को पूरी तौर से पता लग गया था, इसलिए सबेरे से 10 बजे रात तक अंखण्ड गोष्ठी चलती रही। बीच में सांस्कृतिक विद्यालय में श्री महेन्द्र शास्त्री के साथ गया। ब्रह्मचारी मंगलदेव से मुलाकात हुई। विद्यार्थियों की संख्या 40-50 से अधिक नहीं थी। पिछली बार आने पर देखा था, यहाँ के विद्यार्थी संस्कृत में बातचीत करते हैं, और उनके कारण संस्कृत में उनकी काफी प्रगति थी। अब वह नियम शिथिल कर दिया गया था। ऐसे संस्कृत माध्यमवाले स्कूल लाभदायक सिद्ध होंगे। मैं समझता हूँ विद्यालय ने उस नियम को न रखकर अपनी उन्नति के मार्ग में बाधा डाली है।

उसी दिन शाम को श्री द्वारिकाप्रसाद शर्मा आए। शर्माजी भूमिहार ब्राह्मणों में पहिले आई. सी. एस. थे। बहुत तेज थे, लेकिन हमारी पुरानी संस्कृति आदमी को ले डूबे बिना कैसे रह सकती ? उनके सिर पर वेदान्त का भूत सवार हुआ, और पेन्शन लेने की भी प्रतीक्षा किए बिना कलक्टरी से इस्तीफा दे दिया। कई वर्षों तक घर छोड़ स्वामी बने घूमते रहे, वेदान्त का अच्छा अध्ययन किया। अब भी अरविन्द के फेरे में हैं, और दर्शन के चक्कर से बाहर नहीं हैं। तो भी भगवा छोड़कर सफेद वस्त्र में अपने घर में रहना बतलाता है कि कुछ परिवर्तन हुआ है। बहुत पढ़ते हैं, और बोलने में भी कमी नहीं करते, यद्यपि उनकी बातें सभी के समझ की होती हैं। पर, नई पीढ़ी इसे दोष मानती है। शर्माजी का एक ही पुत्र था, जो मर गया है। मुमकिन है उसका कुछ प्रभाव पड़ा हो लेकिन, उनका भतीजा पुत्र ही समान है। जब हमारी बात चल रही थी, उसी समय डा. बद्रीनारायण प्रसाद के पुत्र डा. देवेशप्रसाद और उनकी पत्नी ने आकर शर्माजी के चरण छूए। उन्होंने प्रेम से आशीर्वाद दिया। फिर बेटी-दामाद ने दादा को चाय-पान भी कराया। मुझे इससे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। मैंने यहाँ देखा कि नई पीढ़ी चुपचाप भीषण समस्याओं को आसानी से हल कर रही है। डा. देवेश जाति से सुनार हैं। उनके पिता बिहार के एक प्रसिद्ध डाक्टर तथा वहाँ के सबसे बड़े मेडिकल कालेज के अवसर प्राप्त प्रिंसिपल हैं। इसलिए जहाँ तक शिक्षा और संस्कृति का सम्बन्ध है, वह ऊँचे वर्ग के हैं। उनकी पत्नी आई. सी. एस. शर्मा की पोती और जाति से भूमिहार है। बिहार में इसी का रोना तो लोग रोते हैं कि वहाँ जात-पाँत का बहुत ख्याल किया जाता है, जिसके कारण राजनीति और सामाजिक जीवन में बड़ी बुराइयाँ आ गई हैं। उसको तोड़ने का साहस डा. देवेश और उनकी पत्नी ने किया। वह हिम्मतवाले तरुण हैं, लेकिन उनसे भी कम साधुवाद के पात्र श्री द्वारिकाप्रसाद शर्मा नहीं हैं, जो कि इस सम्बन्ध का इस तरह से स्वागत कर रहे हैं। श्री द्वारिका बाबू के भाई लाल बाबू का मेरा सम्बन्ध असहयोग के जामने में बहुत घनिष्ट था। एक समय कई महीने तक हम एक साथ हजारीबाग जेल में रहे। वहीं से मैं छूटकर चला आया था, लेकिन लाल बाबू जीवित नहीं निकल सके। अपने हाथ से परोसकर खिलानेवाली बहू के मुँह से जब मैंने सुना कि वह लाल बाबू के भतीजे की लड़की है, तो मुझे भी उनके इस साहस का कुछ अभिमान हुआ।

ये बातें अभी छिट-फुट देखी जा रही हैं, पर असहयोग के जमाने में एक पाँती में खाना भी छिट-फुट ही शुरू हुआ था, और हिन्दू भोजनालय भी उसी समय पहिले-पहिल जहाँ-तहाँ खड़े होने लगे। आज उन्हीं का प्रताप है कि खाने में अब कोई परहेज नहीं है। इसी तरह यह जात-पाँत का तोड़ना भी जो 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के आरम्भ होने के साथ हुआ है, वह अगले 25-30 वर्षों में ही इतना बढ़ जाएगा कि हजारों वर्षों की वज्र-सी मजबूत समझी जानेवाली दीवारें ढह के रहेंगी। बूढ़े नौजवानों के रास्ते में रोड़ा न अटका व्यर्थ का अपयश सिर पर न उठायें। मेरे एक दूसरे दोस्त ने इस विषय में कुछ कायरता दिखलाई। वह स्वयं गुरुकुल में पढ़े आर्यसमाज के प्लेटफार्म से न जाने कितनी मर्तबे जात-पाँत के खिलाफ बोले होंगे। असहयोग और कांग्रेस में बराबर काम किया। अपनी लड़की को पढ़ाकर एम. ए. और वकील बनाया। वह वकालत करने लगी। नाबालिग नहीं थी। अपने भले-बुरे को समझनेवाली थी। ब्राह्मणी की लड़की होते हुए अपने एक भूमिहार प्रोफेसर से हाल ही में ब्याह किया। पिता का सारा सुधारवाद रफू-चक्कर हो गया। सुना है, उनको इसका इतना धक्का लगा कि बाल बढ़ाकर घर से निकल गये। समझा, लड़की ने नाक कटा दी। आखिर लड़की ने जिस तरुण को अपना साथी चुना, वह भी तो एक ब्राह्मण ही है। उनको देखते हुए द्वारिका बाबू का व्यवहार कितना

प्रिय था ? डा. देवेश की बीवी के साथ उनके सास-ससुर विशेष आत्मीयता दिखलाते। वैसा होना भी चाहिए। तरुणी को उसकी जातवाली महिलाएँ कभी-कभी अपने व्यवहार से प्रकट कर देती ही होंगी–तुमने जाति से बाहर ब्याह कर अच्छा नहीं किया।

आज शाम का साग-भोजन देवेन्द्र और कुसुम के घर पर हुआ। डाक्टर ने दाँतों को भर दिया। चलो, एक बला से तो छुट्टी मिली। उस दिन चन्द्रमा भाई भी मिले। होश सँभालते ही उन्होंने देश के लिए सर्वोत्सर्ग किया। यदि देशद्रोही को तलवार के घाट उतारकर फाँसी पर नहीं चढ़ा पाये, तो इसे संयोग कहना चाहिए। कम्युनिस्ट हैं, इसलिए आज के शासन से कोई अवलम्ब नहीं। यह जानकर दुःख हुआ कि उनका परिवार आर्थिक कठिनाइयों में है।

# 18
# कलकत्ता

कलकत्तावाली ट्रेन बड़े कुसमय की थी। दो घंटे लेट रही, नहीं तो उसे साढ़े 4 बजे सबेरे आना चाहिए था। धूपनाथजी भी मिलने ही के लिए यहाँ आए थे, और अब्र क्यूल तक साथ चले। क्यूल में ट्रेन दो घंटा रुकी रही। मालूम हुआ भाषावार प्रान्त की माँग के सम्बन्ध में जो निश्चय भारत सरकार ने किया है, उसके विरोध में कलकत्ता में आज पूरी हड़ताल है। इसका पता तो हमें भी मालूम था, लेकिन विश्वास था हड़ताल शाम तक जरूर खतम हो जाएगी। ट्रेन भी शाम करके ही कलकत्ता पहुँचना चाहती थी। अंग्रेजों ने कितने ही बंगलाभाषी इलाके बिहार के भीतर और कितने ही हिन्दीभाषी इलाके बंगाल के भीतर रख दिये थे। प्रदेशों के निर्माण में नेहरू की सरकार अंग्रेजों के पदचिन्ह पर ही चलना चाहती है। नेहरू बार-बार कहते हैं—"इस तुच्छ चीज के लिए इतना आग्रह क्यों ? भाषावाद नीच मनोवृत्ति का द्योतक है।" उनकी चली होती, तो भाषावार प्रान्त के वाद को सात पोरसा नीचे दबा दिये होते। लेकिन, लोग "मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति" नहीं हैं। अपनी भाषा के साथ जिस व्यक्ति का प्रेम नहीं, वह संस्कृतिविहीन है। भाषा केवल शौक की चीज नहीं, वह एक बड़ी शक्ति है। यदि जनता के साथ घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करना है, यदि जनता को शासन में शामिल करना है, तो उसकी भाषा लिये बिना एक कदम भी आगे नहीं चला जा सकता। पर, इस इन्दोआंग्लियन साहेबों के लिए क्या कहा जाये ? अपने तो उनका किसी जनभाषा से स्नेह और सम्पर्क नहीं, और जिसका उसके द्वारा धरती से सम्पर्क है, उसे हीनवृत्ति का बतलाते हैं। जबानी जमा खर्च के लिए नेहरू भले ही कभी हिन्दी के प्रति आदर दिखाएँ, और अंग्रेजी की शान में कुछ कह भी दें, लेकिन वह मन में समझते हैं कि अंग्रेजी हमारे शासन की भाषा रहती, तो कितना अच्छा होता। लेकिन, भाषा के दीवाने रामुलुओं के लिए क्या कहना ? वह अपनी कुर्बानी से करोड़ों को उत्तेजित कर देते हैं, और जनता पागल होकर करोड़ों की लोक-सम्पत्ति को नष्ट कर देती है। वह भाषा के लिए अहिंसक सरकार की गोलियों को छाती पर लेने के लिए तैयार हैं। यह बहुत बड़ा सिर दर्द है। अभी महाराष्ट्र कांग्रेसी नेता ने कहा—यदि बम्बई को उसके जायज प्रदेश महाराष्ट्र में नहीं मिलाया गया, तो कांग्रेस के टिकट पर महाराष्ट्र में किसी को खड़ा नहीं किया जा सकता, और खड़ा किये जाने पर वह जीत नहीं सकता। नेहरू और उनके अनुचरों की नींद हराम हो गई है।

लेकिन, भाषानुसार प्रदेश बनाने में इतनी आनाकानी क्यों ? गाँधीजी ने जिन बड़े-बड़े तत्वों को मान्यता दी, उसमें एक भाषानुसार प्रान्त-निर्माण भी था। अब उससे मुँह फेरने की जरूरत क्या और उसमें दिक्कत क्या है ? कांग्रेसी नेताशाही हरेक चीज को ऊपर से क्यों लादना चाहती है, और ऐसी जगह पर, जहाँ पर कि उसकी अकल गुम हो गई है। लोगों के बहुमत के अनुसार विवादग्रस्त इलाकों के बारे में क्यों नहीं निर्णय किया जाता ? क्या बम्बई के लोगों के वोट पर भाग्य का निर्णय करना अच्छा है, या पुलिस की गोलियों

से सत्तर-सत्तर आदमियों को भून देना ? फिर यह संख्या सत्तर ही थोड़े ही रहेगी। मतदान में खर्च और प्रबन्ध की दिक्कत का बहाना भी बेकार है। अव्वल तो खर्च और प्रबन्ध करना भी पड़े, तो जनता के खून से हाथ रँगने से वह अच्छा है। जो नेहरूशाही अपने दूतावासों पर ख़र्च करने में मुगल बादशाहों से भी अधिक उदारता दिखलाती है, वह खर्च का बहाना कैसे कर सकती है। फिर खर्च की भी कोई बात नहीं, क्योंकि विवादग्रस्त इलाकों को विचाराधीन रखकर उसका अन्तिम निर्णय अगले सार्वजनिक चुनाव के साथ वोट लेकर किया जा सकता है।

धूपनाथजी क्यूल से चले गये। हमारी ट्रेन साढ़े 9 बजे रात को हवड़ा स्टेशन पर पहुँची। श्री मणिहर्षज्योति जी स्टेशन पर आये थे। उन्होंने अपना आफिस दूसरी जगह पर बदला था, इसलिए हमने समझा, निवासस्थान भी बदल गया होगा, पर वह रहते अब भी थे 4, रामजीदास जेटिया लेन में। मसूरी जैसी सर्दी नीचे उतरने पर नहीं रही, पर तब भी पटना तक वह खतम नहीं हुई थी। यह असली जाड़े का मौसिम था, लेकिन कलकत्ता में वह नाममात्र रह गई थी।

22 जनवरी को रविवार था। लेकिन, मुझे छुट्टी नहीं मनानी थी। जिन मित्रों से मिलना जरूरी था, वहाँ हो आना चाहता था। 10 बजे महादेव भाई भी आ गए, और फिर सेंगरजी भी। 12 बजे भोजन करने के बाद महादेव भाई के साथ मोटर से चले। मणिहर्षजी को अपने काम के लिए कार की जरूरत पड़ती, पर उन्होंने उसे मेरे जिम्मे कर दिया था। इससे कलकत्ता शहर में दस-पाँच मील दूर जाकर मित्रों से मिलने में बहुत सुभीता था। ट्राम या बस दिमागी अड़चन की ही सवारी नहीं है, बल्कि मुझे तो चोट-फॉट से बहुत बचकर रहने की जरूरत पड़ती है, इसलिए भी उनको लेना पसन्द नहीं करता। पहिले डा. भूपेन्द्रदत्त के पास गये। अब 70 से ऊपर के हो गये हैं। वर्षों से डायबेटीज़ के मरीज हैं, इसलिए स्वास्थ्य के अच्छा देखने की आशा क्या हो सकती थी ? पर दिमाग उनका अब भी सचेष्ट है। उनके बड़े भाई श्री महेन्द्रदत्त 80 से ऊपर हो गये हैं। अब अधिकतर लेटे रहते हैं, स्मृति बहुत कमजोर हो गई है। स्वामी विवेकानन्द के अनुज होने के कारण महेन्द्र बाबू को भक्त लोग अपनी श्रद्धा अर्पित करना जरूरी समझते हैं। भूपेन दा अनीश्वरवादी मार्क्सिस्ट हैं, लेकिन महेन्द्र दा अपने बड़े भाई जगत् प्रसिद्ध संन्यासी के वेदान्त से नाता नहीं तोड़े, तो इसलिए जब नवविवाहित वर-वधू आशीर्वाद लेने आते हैं, तो उन्हें आशीर्वाद भी देते हैं। हमें भी मीठी खीलें प्रसाद के रूप में मिलीं। बहुत मुश्किल से आधा ही चीन्ह सके। कुछ ही महीनों में उनका देहान्त हो गया।

श्री गोपाल हालदार घर पर नहीं मिले। हम महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य के दर्शन के लिए गये। पिछली बार ही वार्धक्य उन पर हावी हो गया था। अब की बार तो वह और भी लटक गये थे। शरीर में हाड़-मांस रह गया था, हाथ भी हिलता था, श्रवणशक्ति भी निर्बल हो गई थी, पर बिना चश्मे के किताब पढ़ लेते थे। उनकी वही पुरानी स्नेहपूर्ण मुस्कान अब भी अपरिवर्तित रूप से मौजूद थी। स्मृति क्षीण होने पर भी अभी कार्यकरी थी। पुस्तकों को सामने रखे उस वक्त देख रहे थे। आग्रह करने पर ही उठ खड़े हुए। बीस वर्ष हुए, असंग के महान् ग्रन्थ 'योगचर्याभूमि' को तिब्बत से लाये। महामहोपाध्याय एक दर्जन साल से उसके सम्पादन में लगे थे। यदि प्रेस का सहयोग मिला होता, तो वह अब तक प्रकाशित हो गई होती, लेकिन वह चींटी की चाल से काम कर रहा था। महामहोपाध्याय पिछली बार भी निराशा प्रकट कर रहे थे, और अब तो कह रहे थे–"जल्दी ही इसे मैं आपके पास भेज दूँगा, आप ही इसकी नैया पार करेंगे।" उनके शरीर और स्वास्थ्य की स्थिति देखकर बड़ी चिन्ता हो रही थी। यद्यपि अपने दीर्घ जीवन के एक-एक दिन का उन्होंने मूल्य चुका लिया था, पर ऐसे ऋषि को अपने बीच से जाने का ख्याल भी कौन कर सकता है ? दो घंटा तक वहाँ बैठे बात करते दोनों की तृप्ति नहीं हो रही थी।

फिर सुनीति बाबू के निवास पर ढाई घंटा भिन्न-भिन्न विषयों पर बातचीत करते रहे। आयु इनकी भी काफी है, लेकिन शरीर भी बिल्कुल स्वस्थ है, और मस्तिष्क पहिले ही की तरह काम करता है। मेरे लिए यह समझना भी मुश्किल है, एक प्रखर बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति कैसे अंग्रेजी को अपने देश के शासन और अध्ययन के कार्य के लिए अनिवार्य समझता है। वस्तुतः बचपन से ही अंग्रेजों और अंग्रेजी के घनिष्ट प्रभाव में आने

का ही यह परिणाम है। अंग्रेजी बिना शिक्षा का स्तर गिर जायेगा। पर, अंग्रेजी का स्तर स्वयं बड़ी तेजी से गिर रहा है। उसको ऊँचा उठाने के लिए एक ही रास्ता है कि परीक्षा में बैठनेवाले विद्यार्थियों में 10 सैकड़ा से अधिक को पास न किया जाए। लेकिन, फिर यह भी देखना होगा कि 90 सैकड़ा फेल हुए लड़के चुपचाप इस कसाईपन को बर्दाश्त करने के लिए तैयार होंगे ? यदि यह शक्ति नहीं है, तो अंग्रेजी के स्तर को ऊँचे करने की बात बकवास-भर है। अंग्रेजी के नाम पर कुछ परिवारों के लड़कों की उच्च नौकरियों में इजारेदारी रखने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी के स्तर ऊँचा करने की आवश्यकता क्या है ? हमारी भाषाओं में ज्ञान-विज्ञान की सारी शिक्षा दी जा सकती है। पाठ्य-पुस्तकों की कमी का बहाना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। पाठ्य-पुस्तकों के लिखने और छापनेवाले देश में सैकड़ों मौजूद हैं, और अब भी बी. ए., बी. एस-सी. तक की प्रायः सभी विषयों पर पुस्तकें हिन्दी में लिखी जा चुकी हैं। यदि उनकी अनिवार्यता हो, तो सभी तरह की पाठ्य-पुस्तकों के तैयार होने में देर नहीं लगेगी। सरकार को उसमें करोड़ों रुपये खर्च करने की भी आवश्यकता नहीं। यदि यह कहा जाए कि हिन्दी, बंगला आदि हमारी भाषाएँ अभी साइन्स और शिक्षा में आवश्यक साहित्य के लिए अपूर्ण हैं, तो दुनिया की आज की कौन-सी भाषा है, जो उसके लिए अपने को पूर्ण समझती है। रूसी भाषावाले उच्च अनुसन्धान और तत्सम्बन्धी साहित्य के लिए अपनी भाषा को अपूर्ण समझते हैं। इसीलिए वहाँ हरेक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए जर्मन, फ्रेंच और इंग्लिश का अपने विषय के समझने-भर का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है। यही बात फ्रेंच, इग्लिश और जर्मन भाषावाले भी मानते हैं। यदि उनके अपने प्रथम श्रेणी के साइन्सवेत्ता दूसरी भाषाओं की अनुसन्धान-पत्रिकाओं को स्वयं नहीं पढ़ सकते, तो उनके अनुवाद उनके सामने उपस्थित किये जाते हैं। हमारी भाषाएँ भी यह कर सकती हैं। जब सुनीति बाबू जैसे व्यक्ति भी अंग्रेजी की अनिवार्यता की बात कहते हैं, तो मुझे तो सन्देह होने लगता है, कि कूएँ में ही भाँग पड़ी है। अंग्रेजी ही क्यों, रूसी, जर्मन, फ्रेंच का भी कामचलाऊ ज्ञान हमारे अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए आवश्यक है। हमारे कूटनीतिज्ञों के लिए दूसरी भाषाओं के जानने की भी आवश्यकता है। रूस, चीन, जापान आदि देशों में अंग्रेजी के भरोसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश हमें नहीं करनी चाहिए। अंग्रेजी पर पूरी कमाण्ड रखनेवाले राजदूत की पेकिंग या मास्को में क्या आवश्यकता है ?

सुनीति बाबू चीन से बहुत प्रभावित हैं। एक चीनी पुस्तक को दिखलाकर बतला रहे थे कि देखिए, डा. रघुवीर ने इसे अपना मौलिक कार्य कहकर छपवाया है। यह तो सीधी ठगी है। डा. रघुवीर को ही क्यों दोष दिया जाए। कितने ही लोग ऐसे व्यापार में कुशल हैं। आज के महाप्रभु गम्भीरता को थोड़े ही देखते हैं, वह तो खुद डींग मारते हैं और दूसरों के डींग के प्रभाव में आ जाते हैं। 'स्वाधीनता' कार्यालय में थोड़ी देर बात-चीत कर रात को हम घर लौटे।

आज मोटर बिगड़ गई थी, इसलिए कहीं दूर नहीं जा सके। यहीं कलाकार स्ट्रीट और अफीम चौरस्ते तक घूम आए। अफीम चौरस्ते का 1907 और 1909 वाला रूप अब नहीं है, और न नुक्कड़ पर की अधिकतर खुली एकमंजिला हलवाई की दूकान ही है। चाहे जितनी बार नये रूप को देखें, पर पुराना नक्शा ही दिमाग पर अंकित रहना चाहता है। हमने अभी और भी जगहों में जाने का प्रोग्राम रखा था, और 20 या 21 फरवरी तक मसूरी लौटने की आशा थी। आजमगढ़वालों का विशेष आग्रह था। उन्होंने सब तैयारी कर ली थी। पर, कमला को इस साल एम. ए. फाइनल की परीक्षा देनी थी। उसकी तैयारी में विघ्न हो रहा था, इसलिए लखनऊ छोड़कर बाकी सभी प्रोग्रामों को छोड़कर जल्दी-से-जल्दी मसूरी पहुँचना जरूरी था। 'बौद्ध संस्कृति' को छपकर तैयार हुए दो साल से भी ऊपर हो गए, लेकिन बुरा हो टेक्स्ट-बुक के काम का। 'नेपाल' को उसी ने रोक रखा है, और उसी के कारण 'बौद्ध संस्कृति' दो साल से निकलने का नाम नहीं लेती। मैंने बाबू राममोहिन्दसिंह से कहा कि इस साल बुद्ध की 25 वीं शताब्दी मनाई जा रही है, उसमें यह पुस्तक काफी बिक जायेगी, इसलिए उसे निकाल दें। मैं जानता था, बात का कोई प्रभाव नहीं रहेगा, इसलिए ब्लोक को ठीक करा उन्हें छपवाकर कम-से-कम एक कापी अपने साथ लेने के लिए मजबूर किया। यद्यपि इन पंक्तियों के लिखने के समय (21 अप्रेल 1956) तक कोई कापी मेरे पास नहीं आई, पर महादेव भाई की चिट्ठी से मालूम

हुआ कि पुस्तक प्रकाशित हो गई, और तीन सौ कापियाँ निकल भी गईं। कमला की चचेरी बहिन यहाँ ही रहती है। उसके पति बंगाल के राज्यपाल के किसी दफ्तर में नौकर हैं। राज्यपाल-भवन कलकत्ता के राजधानी रहते समय वायसराय-भवन था, इसलिए वह कितना विशाल होगा, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। दिल्ली के राजधानी होने पर वह गर्वनर (राज्यपाल) भवन बन गया। तब भी भारत के सबसे महत्वशाली प्रदेश के गवर्नर का भवन होने के कारण उस पर काफी साहखर्ची से काम लिया जाता था। लिफाफियों की सरकार लिफाफे के खर्च में एक कौड़ी भी कम करने का नाम नहीं ले सकती, उस तड़क-भड़क को और बड़े रूप में रखना चाहती है। इसका नमूना यह राज्यपाल-भवन है। पुरानी इम्पीरियल लाइब्रेरी और अब राष्ट्रीय पुस्तकालय के लिए पहिले के मकान काफी नहीं थे। उसे एक बड़ी जगह की आवश्यकता थी। लोगों ने इस राजभवन को लेने का प्रस्ताव किया। उस समय काटजू यहाँ के राज्यपाल थे। वह छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। और अलीपुर के पुराने राजभवन में :से ले जाने की सिफारिश करवा दी। हमारे नेता कितने स्वार्थी और अदूरदर्शी भी हैं, इसका यह पक्का सबूत है। काटजू हमेशा [illegible] बंगाल के राज्यपाल होकर नहीं आए थे, और अलीपुर का वह मकान भी एक राज्यपाल के लिए काफी भव्य और बड़ा है। हमारा राष्ट्रीय पुस्तकालय यहाँ रहता, तो शहर के भीतर रहने से उसका अधिक उपयोग हो सकता था, पर एक आदमी के कारण उसे दूर ऐसी जगह में ले जाना पड़ा, जहाँ बहुत-से मकानों के बनाने की आवश्यकता होगी।

अस्तु, पुराना वायसराय और आजकल का राज्यपाल-भवन अपने भीतर ही एक बड़ा शहर है। नौकरों की पंचमंजिला बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। कमला के बहनोई यहीं किसी दफ्तर में चपरासी हैं। 54 रुपया मासिक वेतन और दो रुपया साइकल का एलौंस मिलता है। हाँ, कुछ हाथों की कोठरी उन्हें मुफ्त रहने के लिए मिली है। 56 रुपये में कलकत्ता जैसे शहर में एक आदमी का खर्च चलाना मुश्किल है। फिर वह अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ चार प्राणी हैं। वह कैसे खर्च चला लेते हैं, यह सोचना भी सिरदर्द का कारण हो सकता है। वह आए तो हम भी उनके घर पर चले गये। देखा उस घर को, और पास में ही और भी उसी तरह की पाँच-पाँच छः-छः हाथ लम्बी-चौड़ी कोठरियों को भी देखा, जिनमें उनके जैसे और दूसरे चपरासी रह रहे थे। यदि इन कोठरियों की सभी स्त्रियाँ जवानी में बूढ़ी हो जाएँ, लड़कों के हाड़-हाड़ दिखाई पड़ें, तो आश्चर्य क्या। उधर राज्यपाल की दावतों में लाखों का वारा-न्यारा होता है, और इधर ये बच्चे अपने बचपन को इस भीषण दरिद्रता और अभाव में बिता रहे हैं। पर, आज उसके बारे में सोचने की भी किसको फुर्सत है—"बड़े-बड़े काम हैं। इन छोटी बातों को क्यों सामने लाते हो ?"

24 जनवरी को राज्यपाल-भवन के चपरासियों को देखकर भोजन किया, और फिर बाहर निकले। एसियाटिक सोसाइटी में कुछ पुस्तकें देख लीं। ख़ासकर कवि रहीम सम्बन्धी पुस्तकें, जिसमें 'माआसर रहीमी' की छपी हुई बड़ी पोथी देखने को मिली। इसमें रहीम की नहीं, बल्कि उनके आश्रित सैकड़ों फारसी कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। वहाँ से अलीपुर में राष्ट्रीय पुस्तकालय में गये। इस भवन को तत्काल के लिए ही पर्याप्त कहा जा सकता है। अभी पूरी तौर से हरेक विभाग की पुस्तकें व्यवस्थित रूप से रखी नहीं गई हैं। हिन्दी-विभाग में भी कुछ योग्य पुरुष आ गए हैं। पुस्तकालय के पास ही अलीपुर का चिड़ियाखाना है। थोड़ी देर उसमें भी चले गए। सोचा था, चिम्पोंजी या गोरिल्ला वहाँ होंगे, लेकिन वह मर चुके हैं, और उनकी जगह नये आए भी हैं। मसूरी के हमारे पड़ोसी पुसांग सहोदरा यहीं अलीपुर आकर रह रही थीं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उनके परिचित एक आदमी ने बतलाया, कि वह यहाँ से बंगलोर चली गईं। महाबोधि सभा में श्री देवप्रिय बलिसिंह से मिले। उन्होंने 26 जनवरी को भाषण देने के लिए कहा, मैंने स्वीकार कर लिया।

अबकी कलकत्ता में व्याख्यान देने की ज्यादा जरूरत नहीं पड़ी, यह बुरा नहीं था। इसका कारण पत्रों में सूचना का प्रकाशित न होना था। कलकत्ता के हिन्दी पत्र ब्रह्मा की भी पर्वाह नहीं करते। उनके लिए टका सब-कुछ है। हिन्दी पत्रों का स्तर जितना नीचा यहाँ गिरा है, उतना शायद ही और कहीं।

25 की शाम को शहर के एक कोने पर एक सांस्कृतिक और साहित्यिक गोष्ठी हुई, जिसमें गिने-चुने दो दर्जन साहित्यकार और साहित्यप्रेमी आए। संस्कृति पर मुझे बोलना, और प्रश्नोत्तर देना था। रात को अलीपुर

की तरफ से होते किले के मैदान में मोटर चली, तो चारों ओर महानगरी दीपमालिका मनाती मालूम हो रही थी। 1907 का ही सन् था, जबकि इसी मैदान में पहिली बार मोटर पर चढ़ने का मौका मिला था। लेकिन, उस समय बिजली नहीं गैस-बत्तियाँ जला करती थीं। यहाँ दिन में गर्मी मालूम होती, पंखा चलाना पड़ता था।

चीन से प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी के पत्रों तथा पत्रिकाओं तथा भारतीय पत्रों में तिब्बत के बारे में हम इधर जो बातें पढ़ रहे थे, उनसे यह जिज्ञासा बढ़ गई थी, और चाहता था कि तिब्बत से आए किसी आदमी से विशेष बातें मालूम करूँ। श्री मणिहर्षजी के अपने आदमी ल्हासा में रहते हैं, पर इधर कोई नया आदमी वहाँ से आया नहीं था। जाड़ों में तिब्बती व्यापारी कलकत्ता पहुँचा करते हैं। मालूम हुआ, 15 नम्बर लोअर चितपुर रोड में आकर वह ठहरते हैं। हम वहाँ चले। साथ में तीन-चार और भी तरुण थे। जब सारी पलटन उधर चलने लगी, तभी मुझे सन्देह हुआ कि वह लोग भड़क जाएँगे, और वैसा ही हुआ भी। पाँच आदमियों को उन्होंने देखा, तो मेरी तिब्बती भाषा की भी पर्वाह न करके उन्होंने कुछ भी बतलाने से इन्कार कर दिया। मणि बाबू ने टेलीफोन से विशेष तौर से बात की, तो अगले दिन एक तरुण घर पर आया। वह उस दिन भी गली में मिला था। सम्भव है वह साथ रहता, तो निराश न होना पड़ता। अब उसने सारी बातें बतलाईं। वह मेरे नाम से अच्छी तरह परिचित था। मेरे पड़ोसी और मित्र कादिर भाई की लड़की अमीला उसकी पत्नी थी। अमीला मेरी पहिली तिब्बत-यात्रा के समय ल्हासा में हर वक्त सहायता करने के लिए तैयार रहती थी। उस समय उसकी उमर दस-ग्यारह साल की होगी। यह समाचार मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता का था। तरुण ने बतलाया कि ल्हासा से फरी तक अब मोटर-बस आती है। शिगर्ची के पास ब्रह्मपुत्र का पुल है। मोटर की सड़क जल्दी ही टोमो (चुम्बी वेली) तक खुल जायेगा। व्यापार के बारे में कोई दिक्कत नहीं। हमें वहाँ से पैसों को लादकर लाने की जरूरत नहीं पड़ती। ल्हासा से चेक लाने पर यहाँ चीनी बैंक में रुपया मिल जाता है। सड़कों और पुलों के बनाने में आश्चर्यजनक फुर्ती से काम लिया जा रहा है। बतला रहा था, ल्हासावाली नदी पर पुल बनने लगा था। हम समझते थे, उसके तैयार होने में दो-तीन महीने तो जरूर लगेंगे, लेकिन हमारे अचरज का ठिकाना नहीं रहा, जब देखा कि दो-तीन हफ्ते में ही उसे बनाकर खोल दिया गया।

26 जनवरी को ही शाम को महाबोधि हॉल में पं. अयोध्याप्रसाद के सभापतित्व में बुद्ध-दर्शन पर भाषण दिया। पं. अयोध्याप्रसाद को अब की बहुत सालों बाद देखा। अब भी उनका स्वास्थ्य अच्छा था, यद्यपि आयु मुझसे उनकी कम नहीं है।

27 को फिर डा. भूपेन्द्रदत्त और उनके बड़े भाई 87 साल के श्री महेन्द्रदत्त से मिलने गए। आज ही कलकत्ता छोड़ना था, इसलिए 'बौद्ध संस्कृति' के ब्लाकों को छपवाकर एक कापी लेना जरूरी था। एक तरह से आज का सारा समय और चिन्ता उसी पर रही, तभी रात जाकर एक कापी मिल सकी। मेरी तीन-चार पुस्तकें बंगला में अनुवादित होकर छपी हैं, जिसमें 'वोल्गा से गंगा' भी है। यह भारत की सभी भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है, पर बंगला के कवर में जिस रुचि का परिचय दिया गया है, वह बतलाता है कि बंगला भाषी इस बात में हमारे सारे देश से आगे हैं। प्रकाशक को यह विश्वास नहीं था कि एक साल के भीतर ही पहला संस्करण समाप्त हो जायेगा। उन्होंने दूसरे संस्करण की कुछ प्रतियाँ दीं।

**लखनऊ**–27 जनवरी के लिए सीट पहिले ही से रिजर्व कर ली थी। स्टेशन पर मणि बाबू, महादेव भाई और सेंगरजी आए। हमारे कम्पार्टमेंट की 12 सीटों में 8 रिजर्व थीं। एक बंगाली पाकिस्तानी तरुण भी चल रहे थे, जो इस समय लाहौर में अफसर थे। उन्होंने वहाँ की बातें बतलाईं। बंगाली मुसलमान ऐसे ही पंजाबी पाकिस्तानियों से असन्तुष्ट रहते हैं। वह वामपक्षी विचारों के थे, इसलिए आशा प्रकट कर रहे थे कि कभी हम फिर एक हो जाएँगे। पास में शरणार्थी पंजाबी हिन्दू तरुण बैठा था। वह दूसरे के भावों का बिल्कुल ख्याल किये बिना मुसलमानों की क्रूरता को बड़े जोश के साथ प्रकट करने लगा। मानो उस समय हिन्दुओं और सिक्खों ने क्रूरता दिखलाने में कुछ कसर रखी थी। सेकेण्ड क्लास में सीट रिजर्व कराने का मतलब बैठने-भर के लिए रिजर्व कराना था, इसलिए बैठे-बैठे ही सोना पड़ा।

भिनसार को देखा, वर्षा हो रही है। बनारस में 9 बजे के करीब गाड़ी पहुँची। श्री जयकृष्णदास को

लिख दिया था कि किसी आदमी को स्टेशन पर भेज दें, वह 'संस्कृत पाठमाला' के प्रूफ को दे जाएगा, और बाकी तीसरी, चौथी, पाँचवीं पुस्तकें भी लेता जाएगा। जो सज्जन प्रूफ लेकर आए, उन्हें मैं पहचानता नहीं था, और शायद वह भी मुझे बहुत कम ही जानते थे। सौभाग्य ही समझिये, जो मिल गए। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि अब पाठमाला छपने लगी है। मैं देख रहा था, मिट्टी की छतें किन गाँवों से शुरू होती थीं। जायस में वह शुरू होती दीख पड़ीं। फिर जायस के नाम पड़ते ही जायसी याद आने लगे।

लखनऊ में साथी रमेश, साथी शिव वर्मा और दूसरे मित्र आये हुए थे। विप्लव प्रेस में जाकर ठहरा। यशपालजी घर पर ही थे। श्रीमती प्रकाशवती को डाक्टरों ने टी. बी. की बात बतला दी है, इसीलिए वह पूरा विश्राम ले रही थीं। लेकिन शरीर को विश्राम लेने के लिए दिमाग को भी विश्राम देना जरूरी है, और वह बूते से बाहर की बात है। फिर साथी प्रेस तो प्रकाशवतीजी के बल पर चल रहा था। यशपालजी का उससे इतना ही नाता था कि उनके उपन्यास और कहानियाँ उसमें छप जातीं थीं। देख रहा था, प्रकाशवतीजी अब भी खाट पर लेटे-लेटे प्रूफ देखने में लगी हुई हैं।

वैसे लखनऊ न उतरता, पर 'मध्य-एसिया का इतिहास(2)' 400 पृष्ठ तक छपकर अब खटाई में पड़ा हुआ है। प्रेसवाले न छापते हैं, और न छापने से इन्कार करते हैं। इसके बारे में अब के नौ-छः करना जरूरी था। यहाँ का दूसरा प्रेस अवशिष्ट अंश को छापने को तैयार था। मैं विशेष तौर से उसी के लिए आया था। सोमवार को उन्होंने बतलाया कि हम अवशिष्ट भाग को एक मास में ढाल देंगे। पंच तो सारी पुस्तक हो गई थी। एक मास 2 मार्च को पड़ता। पर 1957 के 10 मार्च को भी उसका कोई पता नहीं।

29 जनवरी को रिसालदार बाग बौद्ध-विहार में गए। श्री प्रज्ञानन्दजी ने अपने गुरु की कीर्ति को बहुत तत्परता से कायम रखा है। वहाँ से रिक्शा ले हम साथी सज्जाद जहीर से मिलने गए। पाकिस्तान बनने पर वह पश्चिमी पाकिस्तान में चले गए थे और वर्षों वहाँ के जेलों में रहे। षड्यन्त्र का मुकद्दमा चला रहा था, और जमानत पर छूटकर आए थे, लेकिन अब मुकद्दमा खतम हो गया था, और वह भारत ही में रहना चाहते थे। इसकी सबसे अधिक प्रसन्नता उनकी बीवी रजिया बेगम को होनी चाहिए, जो बच्चों को लिये अपने पर खड़ी लखनऊ में वर्षों से बाट जोह रही थीं। तीनों लड़कियों में बड़ी मेट्रिक में पढ़ती है, उसे उर्दू में लिखने में दिक्कत नहीं है। मझली हिन्दी में ही लिखती है, उर्दू उसे कबाहत की चीज मालूम होती है। वस्तुतः उर्दू की अपेक्षा हिन्दी-लिपि सुगम है। जिसने उर्दू पर वर्षों नहीं लगाये, उसके लिए तो वह और भी मुश्किल हो जाती है। रजियाजी पहिले मुझे उर्दू-विरोधी समझकर बहुत नुक्ताचीनी करती थीं, लेकिन अब उनकी कहानी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में निकलने लगी हैं, काफी पसन्द की जाती हैं, इसलिए हिन्दी पर भी उनका अपनत्व हो गया है। बन्ने (सज्जाद जहीर) से साहित्य के सम्बन्ध में बातचीत होती रही। अभी वह राजनीति से अलग हैं। पाकिस्तान लौटकर नहीं जाना चाहते, किन्तु उनकी भारतीय नागरिकता खतम हो चुकी है, जिसे फिर से लेना है। पाकिस्तान बनते वक्त सोचा था—"मैं वहाँ रहकर साहित्य और दूसरे कामों द्वारा प्रगतिशील विचारों का प्रचार कर सकूँगा।" लेकिन, अमेरिका के चंगुल में पूरी तौर से फँसा पाकिस्तान और उसके तानाशाह भला इसे बर्दाश्त कर सकते हैं ? बचने के लिए दो ही रास्ता था। या तो पाकिस्तान में रहकर वहाँ की जेलों में सड़ें, और साथ ही अपने बीवी-बच्चों को भारत में अकेले रहने दें, नहीं तो यहाँ चले आएँ, और अपनी शक्तिशाली लेखनी तथा व्यापक ज्ञान से अपने वतन को फायदा पहुँचायें। उन्होंने दूसरा ही रास्ता पसन्द किया है।

उस दिन शाम को 6 बजे से साहित्य गोष्ठी होनेवाली थी, लेकिन मित्र लोग पहिले ही से आने लगे। श्री भगवतीचरण वर्मा सबसे पहिले आए। भाषा की समस्या पर बोलने के बाद फिर गोष्ठी शुरू हो गई। भाषावार प्रदेश, आजकल का भारी प्रश्न था। देश में जगह-जगह लाठियाँ और गोलियाँ चल रही थीं। उर्दू और हिन्दी का भी सवाल आया। श्री हयातुल्ला अन्सारी साहब ने उसके बारे में कई प्रश्न पूछे।

30 जनवरी को कलाकार श्री जे. एन. सिंह के साथ उनके स्टुडियो में गया। स्वनिर्मित कलाकार हैं। मूर्तिकला की ओर उनका विशेष ध्यान है। पिकासो की प्रवृत्ति ने इनको भी आकृष्ट किया है। मैं किसी भी बड़े नाम के कारण प्राकृतिक जगत से दूर के विकलांग चित्रों और मूर्तियों की प्रशंसा नहीं कर सकता। यदि

सामने खड़े किसी के हृदय के दुखने का डर न हो, तो संक्षिप्त भाषा में अपने विचारों को खुलकर कह सकता हूँ। सचमुच यह प्रतिभा और श्रम का अपव्यय है। चित्रकला, मूर्तिकला, काव्यकला का इन विकलांग प्रतीकवादों ने नाश किया, वैसे ही जैसे उस्तादों की गलेबाजी ने हमारे संगीत का।

आज नेशनल हेरल्ड प्रेस में जाने पर कांग्रेसी पत्र 'कौमी आवाज' के सम्पादक श्री हयातुल्ला अन्सारी मिले। वह उर्दूवालों के भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस वक्त राष्ट्रीय भावना रखना मुसलमान के लिए जातिद्रोह समझा जाता था, उस समय अन्सारी साहब कांग्रेसी रहे। वह और उनकी पत्नी मेरठ की रहनेवाली हैं। उर्दू के बारे में वह जो भी विचार प्रकट करें, उन्हें बड़े ध्यान से सुनना होगा। वह अपने साथ अपने घर पर ले गये। चायपान और साथ ही इत्मीनान के साथ बात होती रही। मैं हिन्दी-उर्दू को दो भाषा नहीं मानता, और साथ ही चाहता हूँ कि यह ख्याल जबानी जमा-खर्च तक न रह जाए, बल्कि उर्दू को भी लोग पढ़ें। उसके व्यापक प्रचार के लिए यह आवश्यक मानता हूँ कि उर्दू की पुस्तकें नागरी अक्षरों में भी छपें। इधर श्री गोयलीयजी और फिराक़ साहब के प्रयत्न से कितने ही उर्दू कवियों की कृतियाँ नागरी अक्षरों में छपी हैं, जिनका बहुत अच्छा स्वागत और प्रचार हुआ। उर्दू की पुरानी पीढ़ीवाले इसे खतरे की बात समझते हैं। पर, मुझे तो लिपि बदलने से भाषा के खतरे की बात समझ में नहीं आती। तुर्की भाषा ने अरबी की जगह रोमन लिपि वर्षों से स्वीकार कर ली है। उससे उसको क्षति नहीं पहुँची। सोवियत मध्य-एसिया की भाषाओं—ताजिकी (फारसी), उज्बेकी आदि--ने अरबी लिपि की जगह रूसी को अपना लिया है, उसके कारण उन भाषाओं को कोई हानि नहीं पहुँची। यदि उर्दू नागरी अक्षरों में लिखी जाय, तो उर्दू को क्यों क्षति पहुँचेगी ? हाँ, यह डर हो सकता है कि लिपि के कारण ही तो इस भाषा का नाम उर्दू पड़ा है। यदि लिपि हटी तो ग़ालिब को भी लोग हिन्दी का कवि कहने लगेंगे। यदि ऐसा हो तो क्या बुरा है ? ग़ालिब और अकबर यदि डेढ़-दो करोड़ आदमियों के न होकर 15-16 करोड़ के हो जाएँ, तो क्या बुरा ? पर, मैं यह भी नहीं कहता कि उर्दू के लिए उर्दू लिपि का बायकाट किया जाए। दोनों लिपियों में पुस्तकें प्रकाशित हों। फिर उर्दूवाले शंका उठाएँगे, लोग अधिक हिन्दी लिपिवाली पुस्तकों को ही लेने लगेंगे, और उर्दू लिपि में छपी पुस्तकें वर्षों बिक नहीं पायेंगी। उनका यह सन्देह बिल्कुल ठीक है। दोनों लिपियों में छूट देने से उर्दू लिपि में छपी पुस्तकें पुरानी पीढ़ी को ही सन्तोष देने की कोशिश करेंगी। नई पीढ़ी जो उर्दू से भी अच्छा नागरी लिपि को पढ़ती-लिखती है, वह बन्ने भाई की मझली साहेबजादी की तरह उर्दू से कावा काटने लगेगी। संस्कृत के बारे में हम जानते ही हैं, इस शताब्दी के आरम्भ में संस्कृत पुस्तकें केवल नागरी में ही नहीं छपतीं थीं, बल्कि बंगला, उड़िया, तेलुगु, ग्रंथाक्षर तमिल, मलयालम और कन्नड़ लिपियों में भी छपती थीं। तेलुगु लिपि में तो बहुत काफी छपती थीं, और उनको तमिलनाडवाले विद्वान् भी पढ़ते थे। पर, नागरी के सामने सबको भाग जाना पड़ा। एक तो नागरी लिपि में छपी पुस्तकों का सारे भारत में ही नहीं, भारत से बाहर सिंहल, बर्मा और थाई भूमि में भी प्रचार था। हिन्दी क्षेत्र से बाहर नागरी को संस्कृत की अपनी लिपि-सा माना जाने लगा था। इतना बड़ा क्षेत्र होने के कारण नागरी में छपी संस्कृत पुस्तकें थोड़े समय में काफी संख्या में बिक जाती थीं, जबकि दूसरी लिपियों में छपी पुस्तकें वर्षों तक निकल नहीं पातीं थीं। इस सुभीते के कारण निर्णयसागर और वेंकटेश्वर जैसे प्रेस अच्छे कागज पर सुन्दर अक्षरों में बड़ी संख्या में पुस्तकें छापते थे। बाजार में भला ऐसी पुस्तकों का दूसरे कैसे मुकाबिला कर सकते थे ? आज संस्कृत साहित्य पर नागरी लिपि का अखण्ड राज्य है। कुछ इसी तरह की बात दो-तीन पीढ़ियों में उर्दू के बारे में भी घट सकती है। पर, उर्दू भाषा को नागरी अक्षरों के अपनाने में कोई क्षति नहीं होगी, उलटा उसका प्रचार बहुत बढ़ जाएगा।

अन्सारी साहब से और उनकी विदुषी पत्नी से बातचीत करते यह बातें सामने आईं। लेकिन उनके एक सवाल का मेरे पास जवाब नहीं था। वह कहने लगे, जब उर्दू हिन्दी ही है, तो हिन्दी के साहित्य-इतिहास या कविता-संग्रह में उर्दू को भी क्यों नहीं साथ-साथ स्थान दिया जाता। इस प्रश्न की आवश्यकता न होती, यदि 1944 में बनाई मेरी योजना कार्यरूप में परिणत हो गई होती। मैंने अपभ्रंश-काल की कविता को लेकर 'हिन्दी काव्यधारा' लिखकर प्रकाशित करवाई। दूसरे मित्रों को अगले भाग सम्पादित करने के लिए दिये थे, जो वह

नहीं कर पाए। उसमें यही ख्याल रखा था कि कविताओं को काल-क्रम से संगृहीत किया जाए, और हिन्दी-उर्दू कवियों को एक ही सूची में, बीच-बीच में काल-क्रम के अनुसार रखा जाए। यही करना भी होगा। हिन्दी के हरेक साहित्यिक इतिहास में जब मैथिली, अवधी, ब्रज, डिंगल को काल के अनुसार स्थान दिया जाता है, तो उर्दू के साथ यह भेदभाव क्यों ? यदि उर्दू के कितने ही शब्द सामान्य पाठक को समझ में नहीं आएँगे, तो मैथिली और डिंगल के भी बहुत-से शब्द उन्हें समझ में नहीं आएँगे। इस आधार पर हिन्दी-उर्दू के कवियों को मिलाकर कविता-संग्रह की बड़ी आवश्यकता है। यह उर्दूवालों को खुश करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी एक महत्वपूर्ण धारा से अपरिचित न रहने के लिए भी आवश्यक है। उर्दू भी राजभाषा हो, इसका भी अन्सारी साहब का आग्रह था, जिसके बारे में मैंने स्पष्ट अपना मतभेद प्रकट किया। मैंने कहा—राजभाषा प्रदेश के अनुसार होनी चाहिए। कुछ छिट-फुट व्यक्तियों के अनुसार नहीं। उत्तर प्रदेश को ही लें लें, तो जिन भाषाओं को राजकाज के लिए आगे आने की जरूरत है, वे हैं जनभाषाएँ—भोजपुरी, अवधी, ब्रज, मध्य-देशी या, कौरवी और पहाड़ी, जिनकी लिपि नागरी होगी। यदि नागरी लिपि में उर्दू लिखी जाए, तो भाषा का सवाल बहुत कुछ खतम हो जाता है। अन्सारी साहब इसको तो समझ रहे थे कि मैं उर्दू का अनिष्ट नहीं चाहता, और उन्हीं की तरह उसकी साहित्य-निधियों का प्रचार और संरक्षण चाहता हूँ। इसलिए कहा, अच्छा यही सही।

उस दिन शाम को युनिवर्सिटी छात्र-संघ में भाषण दिया। फिर रात को 'समन्वय' (बंगाली) गोष्ठी में भाषानुसार प्रदेश पर। रिसालदार बाग बुद्ध-विहार में भी भाषण देकर रात को घर लौटा।

31 जनवरी को भी दिन-भर पूरा व्यस्त रहा1 दोपहर तक निवास-स्थान ही पर मित्र लोग आते रहे। नवलकिशोर प्रेस उर्दू-फारसी पुस्तकों के प्रकाशन का सबसे पुराना और सबसे बड़ा प्रेस है। अफसोस है, अब उस तरह की पुस्तकें वहाँ से प्रकाशित नहीं होतीं। पहिले की प्रकाशित पुस्तकें भी गोदाम के जंगल में पड़ी हुई हैं। चिट्ठी लिखने पर जल्दी मिल नहीं पातीं, इसलिए सोचा, स्वयं चला चलूँ। मेरे काम की वहाँ दो-चार ही पुस्तकें मिलीं। हाल में ही 'कुलियात नज़ीर' (नज़ीर काव्य-संग्रह) प्रकाशित हुआ है, जिसकी एक प्रति ली। नजीर अपनी भाषा की दरिद्रता के कारण सरल भाषा में कविता नहीं करते थे। वह फारसी के भी कवि थे। उनकी फारसी कविताएँ इस संग्रह में मौजूद हैं।

मध्याह्न भोजन डा. विश्वनाथ मिश्र के यहाँ किया। उनकी पत्नी महिला कालेज में गणित की अध्यापिका हैं। वहाँ भी भाषण देने के लिए जाना पड़ा। हिन्दी की उपन्यासकार श्रीमती कांचनलता सब्बरवाल कालेज की प्रिंसिपल हैं। विद्यालय में तीन हजार लड़कियाँ पढ़ती हैं, बारह सौ तो केवल कालेज विभाग में हैं। यह बतला रहा था कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार और रुचि खूब बढ़ रही है। लखनऊ युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार श्री तिवारीजी कह रहे थे कि मालूम होता है कुछ दिनों में युनिवर्सिटी लड़कियों की हो जाएगी। मैंने कहा, 1945-46 में मैंने लेनिनग्राद युनिवर्सिटी में भी ऐसा ही देखा था, मुश्किल से सौ में दस लड़के रहे होंगे। महिला कालेज से हजरतगंज के एक बड़े रेस्तोराँ में नेपाली छात्रों की चाय-पार्टी में जाना पड़ा। चालीस के करीब छात्र और एक-दो छात्राएँ नेपाली थीं। श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री यशपाल और बेधड़क बनारसीजी भी मौजूद थे। सबने थोड़ा-थोड़ा भाषण दिया। छात्रों में अधिकांश नेपाल-उपत्यका के थे। उनके बाद पूर्वी नेपाल के। पश्चिमी नेपाल के दो ही तीन विद्यार्थी थे, जो बतला रहे थे कि नेपाल का यह भाग शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है।

कलकत्ता से दूसरे दर्जे में रात को सफर करके देख लिया था, नहीं चाहता था आज भी रात बैठे-बैठे गुजारनी पड़े, इसलिए पहिले दर्जे की सीट रिजर्व करा ली। हमारे कम्पार्टमेंट में एक सरकारी अफसर और मैं था। थोड़ी देर में अफसर मेरे नाम से परिचित मालूम हुए, और उनसे बातें होने लगीं।

**मसूरी वापस**—जितना पश्चिम आएँ, उतनी सर्दी बढ़नी ही थी। कलकत्ता में जहाँ गर्मी मालूम हो रही थी, वहाँ अब खूब कपड़ा ओढ़ना पड़ा था। हरद्वार में पौ फटने लगी थी, लेकिन देहरादून हमारी ट्रेन 9 बजे पहुँची। श्री मेहताजी स्टेशन पर मिले। शुक्लजी और दूसरे मित्रों को लिख चुका था कि देहरादून में एक दिन ठहर कर मसूरी जाऊँगा, पर अब तो कितने ही प्रोग्राम तोड़कर आ रहा था, इसलिए उस ख्याल को भी छोड़ना

पड़ा। स्टेशन से बाहर 4 रुपए टैक्सी को देकर चल पड़ा। 1 घंटे में (11 बजे) मसूरी लाइब्रेरी पहुँचा। दूसरे समय में जहाँ कुली सामान उठाने के लिए मार करते, वहाँ इस समय वह दुर्लभ थे। किसी तरह दो कुली जुटाकर साढ़े 12 बजे घर पर पहुँचा। कमला को विश्वास था मैं 3 तारीख को आऊँगा। डेढ़ महीने बाद देखने पर जया जरा-सा हिचकिचाई, लेकिन जल्दी ही पहचान गई। इतने दिनों में जेता बड़ा मालूम देने लगा था। उसके दाहिने हाथ पर पोलियो का जो हल्का-सा प्रभाव था, वह बहुत कुछ दूर हो गया था। हाथ जिस तरफ चाहे उधर हिला-डुला सकता, किन्तु बाएँ हाथ के बराबर उसमें अभी ताकत नहीं थी। उसे दिखलाने के लिए दिल्ली जाना जरूरी था। गंगा कलिम्पोंग चली गई थी, और उसकी मझली बहिन माहिली आ गई थी, जिसने बच्चों को सँभालकर कमला को पढ़ने का समय देने में सहायता की थी। डेढ़ महीने की चिट्ठियाँ और डाक पड़ी हुई थीं, जिन्हें भुगताना जरूरी था। सम्मेलन-मुद्रणालय से 'मध्य-एसिया(1)' का बहुत-सा प्रूफ भी आया था। घर में आकर एक विचित्र तरह की आत्मतुष्टि मालूम होने लगी। जया-जेता बराबर याद आते रहे। बच्चे कितना माता-पिता को आनन्द प्रदान करते हैं।

# 19
# 63 वें वर्ष की समाप्ति

मसूरी में अबके बरफ नहीं पड़ी। अखबारों में शिमला की बरफ से मैंने सोचा था, मसूरी में भी पड़ी होगी। पर, जहाँ तक सर्दी का सवाल था, वह खूब थी। वस्तुतः सर्दी क्या करे, जब देव बूँद ही न बरसाएँ ? बूँदों के बरसने पर ही तो सर्दी उन्हें बरफ बनाती है। जब हवा चलती, तो सर्दी अपने आप बढ़ जाती। फरवरी के आरम्भ में ही बसन्त की कामना करना बेकार था।

आई हुई चिट्ठियों में एक राष्ट्रपति के डिप्टी सेक्रेटरी की भी थी। मैंने राष्ट्रपति को पासपोर्ट के बारे में लिखा था, उसी के जवाब में यह चिट्ठी और उसके साथ पासपोर्ट के फार्म थे, जिन्हें फिर से उन्हीं कार्रवाइयों को दोहराते जिला-मजिस्ट्रेट के पास भेजना था। मजिस्ट्रेट को लिखा, पुराने कागजों को दिल्ली भेज दें। उनका जवाब आया—अब वह बेकार हैं। अर्थात् दस रुपये के स्टाम्प पर अब फिर आर्थिक गारंटी और दूसरी कार्रवाइयाँ करनी पड़ेंगी। फिर मजिस्ट्रेट कागज-पत्र को पुलिस के पास जाँच करने के लिए भेजेंगे। पूरा नौ मन तेल हो जाएगा, तब राधा नाचेगी।

मैंने अबकी यात्रा में सब जगह कह दिया था कि हम मसूरी छोड़नेवाले हैं, लेकिन यहाँ देखा, कमला का मन बदल गया है। खैर, अभी तो परीक्षा और उसके परिणाम को देखने में जून बीत जाएगा, तब तक इसके बारे में सोचने के लिए बहुत समय मिलेगा। मैं कलिम्पोंग के प्रोग्राम को बुरा नहीं कह रहा था। सोचता था, तिब्बती भाषा और बौद्ध साहित्य के सम्बन्ध में वहाँ रहकर काम करने में सुभीता रहेगा, क्योंकि अच्छे तिब्बती पण्डित भी वहाँ मिल जाएँगे। तिब्बत के वर्षों से छोड़े हुए काम को फिर से हाथ में लेकर यदि ल्हासा में समय देने की आवश्यकता हुई, तो वह कलिम्पोंग से बहुत नजदीक है। अभी भी केवल दो दिन घोड़े की सवारी की जरूरत है, नहीं तो दोनों तरफ मोटरें चली गई हैं। बागडोगरा से ल्हासा विमान उड़ने पर यात्रा बिल्कुल खेल-सी हो जाएगी। मन के लड्डू अच्छे लगते हैं। पर, यह भी समझता था, कलिम्पोंग में मेरे अनुकूल समाज नहीं है।

जया अब खूब बोलने लगी थी। ढाई वर्ष में ही उसकी भाषा जितनी शुद्ध थी, उतना आठ वर्ष पढ़ने के बाद भी उसके पिता की नहीं थी। भाषा भी मुहावरेदार थी। जेता अभी गूँ-गा ही कर रहे थे। जेता नाम सुनने पर एक महिला ने जेतराम कहा, तो मेरा माथा ठनका। सोचने लगा, जेता का जीतराम आसानी से बन सकता है।

'संस्कृत काव्यधारा' के लिए अपेक्षित कुछ पुस्तकें नहीं आई थीं, और अभी कुछ लिखना बाकी था। उसे समाप्त कर आवृत्ति करके बाकी प्रेस-कापी को भी प्रेस में भेजना था। इधर 25वीं बुद्ध-शताब्दी के लिए पत्र-पत्रिकाओं से लेखों की माँग आ रही थी, इसलिए कितने ही लेख उन्हें भी लिखने थे। फिर वही नियमपूर्वक

जीवन शुरू हुआ। सबेरे 7 बजे के आसपास चाय पीकर चार घंटे के लिए बैठकर बोलना, और मंगलजी का टाइप खटखटाना। फिर अगले दिन के काम की तैयारी तथा चिट्ठियों और पत्रिकाओं को पढ़ना। अबके यह भी निश्चय कर लिया था कि 'मेरी जीवन यात्रा' के तीसरे भाग को अपने 63वें साल के अंत तक लिख डालना है। काम की कमी नहीं थी। 6 फरवरी से जीवन-यात्रा आरम्भ हुई, और 12-15 पृष्ठ (फुलस्केप साइज़) रोज के हिसाब से टाइप होने लगी। काम से विश्राम किसी ही किसी दिन लेना पड़ता।

भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) की 7 फरवरी को चिट्ठी मिली। वह समझते हैं, आर्थिक कठिनाइयों के कारण मैं चीन जाने का इरादा रखता हूँ। अनेक कारणों में वह भी एक हो सकता है, पर वही कारण नहीं। मैं वहाँ जाकर साहित्यिक और सांस्कृतिक कामों को करना चाहता था, विशेषकर तिब्बत में अब जो पुराने पुस्तकालयों और उनकी निधियों के दरवाजे खुले हैं, उनसे लाभ उठाना चाहता था।

फरवरी में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। कांग्रेस कहाँ से कहाँ चली गई ? पहिले जहाँ एक अस्थाई नगर और विराट मेला लगता, वहाँ अब उसके प्रति लोगों में उदासीनता। कांग्रेस और उसके मन्त्रियों से जिन्हें काम बनाना था, वही वहाँ आए थे। कई साल तो नेहरू छोड़कर दूसरा कोई सभापति बनने लायक आदमी नहीं मिलता था। अब नेहरू ने अपनी टोपी श्री उच्छंगराय ढेबर के सिर पर रख दी है। दूसरी बार वह उसके अध्यक्ष बने। ढेबर बावन गण्डे दूसरे कांग्रेसी नेताओं से कोई भेद नहीं रखते। फिर न जाने क्यों, नेहरू उन पर डर गये हैं ? क्या यह यही नहीं बतलाता कि नेताओं के सम्बन्ध में कांग्रेस दिवालिया बन गई है। सभी जगह प्रथम श्रेणी की प्रतिभावाले तरुणों का कांग्रेस में अभाव देखा जाता है। जो हैं भी वह बूढ़ों की नजर पर नहीं चढ़ते, और ढूँढ़-ढूँढ़कर बूढ़ों की ही तुम्बा-फेरी की जाती है। कांग्रेस के अध्यक्ष ने नेहरू की भोंपू की तरह भाषानुसार प्रान्तों के निर्माण का विरोध किया, द्विभाषी प्रान्तों का समर्थन किया। काल से लोहा लेने के लिए तैयार होना इसी को कहते हैं। द्विभाषिक प्रान्तों के निर्माण का मतलब है आकाशी योजना, जो बहुत दिनों तक लादी नहीं जा सकती। बिहार और बंगाल को एक कर देने के लिए बड़े जोर-शोर से घोषणा हुई। बंगाल में हाल की म्युनिसिपैलिटियों के चुनाव ने बतला दिया है कि अगले चुनाव में कांग्रेसियों को विजय के लिए केवल धोखा-धड़ी पर ही भरोसा करना पड़ेगा। वह बहुत खतरे की बात है, इसलिए उसकी नींद हराम हो रही है। उधर बिहार में अभी भी लोगों की आँखों में धूल झोंकने में कांग्रेसी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। तानाशाह हैं, इसलिए विलयन के दिनों में ही उन्हें भले दिनों की आशा दिखलाई देने लगी। कांग्रेसी महादेव क्यों न राय–सिंह के सुझाव पर उछल पड़ते ? लेकिन यह काम उतना आसान नहीं था, जितना दिल्ली के महादेव समझते हैं। यह सुझाव रखा जा रहा है कि दोनों प्रदेश अपनी विधान-सभाओं, राजधानियों, हाईकोर्टों, मंत्रिमंडलों को अलग-अलग रखते एक राज्यपाल के अधीन रहें। इस तरह यदि राज्यपालों की संख्या कम करना हो–जो बुरी बात नहीं है–तब तो शायद कोई दिक्कत नहीं हो। शायद सोचते होंगे, संयुक्त प्रान्तों के जो मन्त्रिमण्डल होंगे, उसमें एक में वामपंथियों का बहुमत होने पर दूसरे से दबाया जा सकता है।

अमृतसर-कांग्रेस के अध्यक्ष ने भूदान का महातम भी खूब बखाना : महात्मा भावे पर गाँधीजी का आवेश होता है, उनकी आत्मा भावे के मुँह से बोल रही है। वह गाँधीजी के अपूर्ण काम को पूर्ण कर रहे हैं। उनके भूदान-आन्दोलन द्वारा एक जबर्दस्त क्रांति होने जा रही है। उसके द्वारा शान्तिमय तरीके से रामराज्य कायम हो जाएगा, शोषण खतम हो जाएगा, वर्गभेद मिट जाएगा, देश में गरीबी का नाम नहीं रहेगा। ऐसी बातें यदि ढोंगी कांग्रेसी नेता कहें, तो कोई अचरज नहीं। उन्हें हर दूसरे-चौथे वर्ष एक नया नारा मिलना चाहिए, जिसके द्वारा जनता के हृदय से पुराने असफल प्रयत्न की स्मृति भुलवाई जाए। नई आशा पैदा की जा सके। यह तो उनके लिए बड़े काम की चीज है। इसीलिए सभी कांग्रेसी एक ओर से भावे की जय-जय बोल रहे हैं। प्रधानमंत्री भी उनसे भेंट करने के लिए समय निकाल लेते हैं।

पर, अक्ल रखनेवाला आदमी कैसे इसे मान सकता है ? भूदान से कैसे रामराज्य आयेगा ? जमीन तो पहिले भी हस्तान्तरित होती रही है। दान से हो, या बेंची से। इससे उसके रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। फिर इस हस्तांतरण से क्या भूमि या उसकी उपज कई गुना बढ़ जाएगी ? फिर इस दान की हुई भूमि में

सबसे अधिक तो ऐसी है, जिसे "उड़ता सत्तू पितरन को" कहा जा सकता है, अर्थात् किसान उसे बड़े जमींदारों से छीन रहे थे, उसे इस प्रकार दान देकर छुट्टी ली गई। काफी जमीन ऐसी है, जो लाखों एकड़ कहे जाने पर भी न कभी आबाद हुई, न आबाद हो सकती है। भूदान के बेकारपन को कितने ही कांग्रेसी भी समझते हैं; पर, महताब की तरह खुलकर उसके खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत नहीं रखते।

अमृतसर ने फिर समाजवाद का नाम दोहराया। आजकल के जमाने में समाजवाद के नाम से ही समाजवाद को आने से रोका जा सकता है, यह कांग्रेसी नेता भली प्रकार जानते हैं। इसीलिए यह ढोंग रचा गया है। कांग्रेसी समाजवाद की व्याख्या है—जिसमें गरीब अधिकाधिक गरीब होते जाएँ, और थैलीशाह अधिकाधिक धनी।

19 फरवरी को कई महीनों बाद शीलाजी और डा. सत्यकेतु मिले। डा. सत्यकेतु एक बड़ी मनोरंजक, पर साथ ही हृदयबंधक बात सुना रहे थे। पड़ोसी जिले के एक सेठ को जब मालूम हुआ कि सरकार ने उनके जिले के बाढ़-पीड़ितों के लिए चार लाख रुपया देना स्वीकार किया है, तो उनके पेट में पानी पचना मुश्किल हो गया। वे जानते थे कि चार लाख बाढ़-पीड़ितों के पास नहीं, बल्कि दूसरों की जेब में जाएँगे। सोचा—इस लूट से लाभ न उठाना भारी बेवकूफी है। उन्होंने अपने साहबजादे को फटकारा—"तू कैसा मूर्ख है, बहती गंगा में हाथ धोना नहीं जानता। जा, बाढ़-पीड़ितों में अपना नाम भी दर्ज करा।" लेकिन बाढ़वाले इलाके में उनकी एक अंगुल भी जमीन नहीं थी, और न कोई घर था। पर, इसको देखने कौन आ रहा है ? कागज तैयार हो, उस पर पाँच प्रतिष्ठित आदमियों के हस्ताक्षर हों, फिर सेठ साहब और उनके साहबजादे के बाढ़-पीड़ित होने से कौन इन्कार कर सकता है ? घर में अपनी कार थी। साहबजादे उस पर निकले। जिले के कांग्रेसी नेता से मिले। उनसे हस्ताक्षर करवाया। कांग्रेसी नेता का सेठ से बराबर वास्ता पड़ता था। बेटा-बेटी का ब्याह हो, या दूसरा कार्य-प्रयोजन, सेठजी हमेशा उनकी बलैया लेने के लिए तैयार थे। वह जानने पर भी हस्ताक्षर करने से कैसे इन्कार कर सकते थे ? कांग्रेसी एम. एल. ए. और दूसरे नेताओं के चार-छः हस्ताक्षर हो गए। जिला-मजिस्ट्रेट उसे मानने से कैसे इन्कार कर सकता ? आखिर, सेठ के घर में 16 हजार रुपए आ गए। सेठों का दिमाग विश्राम लेना थोड़े ही जानता है ? सेठ के मकान किराये पर लगे हुए हैं, जिससे उन्हें तीन हजार मासिक की आमदनी है। सरकार मकानों की कमी देखकर नये मकानों को बनवाने के लिए करोड़ों रुपये दे रही है। इसका भी सदुपयोग कुछ होना चाहिए। सेठ साहब ने एक सहयोग-समिति बनाई। समिति सरकार से रुपये लेकर नये मकान बनवाएगी। डाक्टर साहब से भी उन्होंने समिति का मैम्बर बन जाने के लिए कहा। डाक्टर साहब ने कहा—मैं तो इस शहर में रहता ही नहीं।

—अरे, उससे क्या होता है ? मकान किराये पर उठ जायेगा।

– लेकिन, उसमें कुछ रुपया लगाना भी तो पड़ता है।

– उसकी पर्वाह न कीजिए। बल्कि हजार-पाँच सौ ले भी लीजिए।

इसका अर्थ है, सेठ साहब नकली सहयोग-समिति में नकली मैम्बरों को भर्ती कर मकान बनवा उसे भी अपने हाथ में करना चाहते थे।

आज के भारत में जो भयंकर भ्रष्टाचार चल रहा है, क्या उसकी कथा एक सेठ के दो-चार कामों में समाप्त हो सकती है ? एक नगरपालिका की बात डाक्टर साहब बता रहे थे, जिसके अध्यक्ष और उपाध्यक्ष ने लाखों पर हाथ साफ किया है, और काफी ईमानदारी नहीं, तो सफाई के साथ। नगरपालिका के जितने ठेके दिए जाते हैं, उनमें दस प्रतिशत पर "हक्क फकीरों का है।" 16 लाख का वहाँ हर साल सामान मँगवाया जाता है, जिसमें 1 लाख 60 हजार तो जायज हक ठहरा। यह ठीक है कि यह सारा धन अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के ही पाकेट में नहीं गया, पर काफी गया, इसमें कोई सन्देह नहीं। दस लाख सड़क पर लगनेवाला है, तो उसमें से भी एक लाख धरा हुआ है। दोनों अध्यक्ष-उपाध्यक्ष मालामाल हो गए हैं। जायदाद अपने नाम से नहीं ली जा सकती, तो सगे-सम्बन्धियों के नाम से लेने को कौन देखता है ? अपने शहर में वह नहीं ली जा सकती, तो दूसरे शहर में ली जा सकती है। कौन मन्त्री दूध के धुले हुए हैं, जो इनके काम पर अँगुली उठाएँ ? और

फिर उनकी भी पूजा करने के लिए भी तो ये तैयार हैं। रामराज्य की ओर ले जाने के लिए सारे देश में यही रास्ता बनाया जा रहा है। देखें, यह पत्थर की नाव कितने दिनों तक तैरती है ?

हमारे पड़ोसी चौधरी हैपी वेली के मजबूत किसान हैं। इस मोहल्ले में दो ही बड़े-बड़े समतल भूमि के टुकड़े हैं। दोनों के बोने-जोतनेवाले चौधरी हैं। मालिकों ने पहिले यों ही दे दिया, और अब चौधरी का उन पर कानूनन हक है। पास-पड़ौस में कुछ जमीन और भी आबाद होने लायक हो, तो चौधरी उसे बेकार रहने नहीं देते। 'किल्डेर' के फाटक के पास एक ऐसा ही टुकड़ा बेकार पड़ा हुआ था। उन्होंने आदमी लगाकर एक ओर दीवार खड़ी की, और फिर पत्थरों को हटवाया। अहीर के बच्चे हैं, खेती की विद्या खून में है। उस दिन बतला रहे थे–मेरे बाप बैंक में दरबान हुए, यह बात आज से पचास साल से पहिले की है। उन्हें पहिले दो रुपया और भोजन मिलता था। फिर भोजन के साथ चार रुपया, और अन्त में भोजन सहित दस रुपया। बुढ़ापे तक वह नौकरी करते रहे। चौधरी भी उसी समय बाप के पास आए, लेकिन उन्होंने दरबान या चपरासीगिरी नहीं पसन्द की। कुछ इधर-उधर का काम करते, सब्जी बेचते, फिर खेती में लग पड़े। उनके पास काफी जमीन है। लड़का बाराबंकी में अपने गाँव में रहता है। वहाँ भी जमीन है। लड़के का भी कोई पुत्र नहीं। लड़की के बेटे लक्ष्मीनारायण को यहाँ लाए थे। वह लँगोटी बाँधकर देहरादून में साधु बन गया। चौधरी को बड़ी मुश्किल से उसका पता लगा। लौटा लाये, पर तब तक चैन नहीं आया, जब तक कि उसे उसके माँ-बाप के पास पहुँचा नहीं दिया। मैंने पूछा–इस अर्जित खेती को किसके लिए छोड़ना चाहते हैं ? बोलने लगे–यही तो सोचता हूँ। बूढ़ा हो गया, लड़का घर की खेती छोड़ नहीं सकता। चौधरी से भी ज्यादा बूढ़ी चौधरानी हैं। हड्डी-हड्डी-भर शरीर में है, लेकिन जान पड़ता है, वे हड्डियाँ लोहे की हैं। हर वक्त काम में लगी रहती हैं। मसूरी के जाड़े को वे अपनी एक सूती साड़ी में बिता देती हैं, जिसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। वैसे सीधे होकर चल सकती हैं, लेकिन जब घर के दरवाजे की ओर जाना होता है, तो 25 गज पहिले से ही कमर को दोहरी कर लेती हैं। कितनी ही हिम्मत हो, लेकिन बुढ़िया कितने समय तक सँभालेगी। मैंने कहा–लक्ष्मीनारायण को ही फिर लाओ।

–लाता तो, लेकिन यदि कहीं फिर भाग गया ?

–अब उसे थोड़ी अकल आ गई होगी, एकाध साल बाद उसी को लाएँ। शायद वह सम्पत्ति का मूल्य समझे।

बुढ़ापे का ख्याल चौधरी को भी आता है, पर गाँव में जाकर रहनें की सोच भी नहीं सकते। कह रहे थे–पोती के ब्याह में गया था। जान पड़ता था, अब बचकर नहीं लौट सकूँगा। आखिर मैं भी उसी भूमि में पैदा हुआ, लू में तपते मीठे-मीठे आमों को खाता रहा। पर, अब लू के नाम से भी प्राण निकलने लगते हैं।

'संस्कृत पाठमाला' की प्रथम पुस्तक 3 मार्च को छप गई, इससे बहुत सन्तोष हुआ। दूसरी पुस्तक के भी दस पाठों के प्रूफ उसी दिन आए। 'संस्कृत काव्यधारा' अभी अधर में लटक रही थी। जिस समय मैंने उसके सौ पृष्ठों को श्रीनिवासजी को दिया था, और सम्मेलन-मुद्रणालय से बात तय कर ली थी, तो समझने लगा था, अब नैया पर हो जाएगी। लेकिन, मुद्रक और प्रकाशक में कितने ही दिनों तक मोल-भाव चलता रहा। यद्यपि उसके 13 पृष्ठों के प्रूफ आ चुके हैं, लेकिन जब तक कुछ छपे हुए प्रूफ न आएँ, तब तक सन्देह की गुंजाइश है।

10 मार्च को कमला अपनी परीक्षा के लिए देहरादून गईं। यद्यपि आरम्भ होने में चार-पाँच दिन की देर थी, लेकिन उन्हें पहिले जाना जरूरी था। मेरी चली होती, तो एक महीना पहिले भेज देता। वहाँ शुक्लाजी से पढ़ने में सहायता मिलती। पर, बच्चों को छोड़कर वह जाने के लिए तैयार नहीं थीं।

11 तारीख को श्री कालिदास, हरिश्चन्द्र और केशवलाला के भतीजे आए। मुहल्ले के तीन-चार विद्यार्थी तरुणों के उपद्रव की शिकायत कर रहे थे। तरुण लड़कियों को स्कूल जाते समय छेड़ते और टोकने पर मार-पीट के लिए तैयार हो जाते। जो अपनी इज्जत अपने हाथों नहीं बचा सकता, उसकी रक्षा कानून कैसे कर

सकता ? यह भी उन्होंने बतलाया कि मुहल्ले के एक लाला गैरकानूनी शराब और जूआ खेलाने का रोजगार करते हैं। आजकल मसूरी के भाग्य बिगड़ने के कारण बनियों का भी भाग्य बिगड़ गया है। ऐसी अवस्था में वह आमदनी के इस नये रास्ते को स्वीकार करें, तो आश्चर्य क्यों ? पुलिस चौकी मौजूद है, लेकिन जब 50 रुपये मासिक का बँधान हो, तो वह क्यों रुकावट डालेगी। अभी हाल में ही पुलिस के एक सिपाही ने कई जगह चोरियाँ की। भण्डा फूटने पर भाग गया, लेकिन जहाँ तक लोगों की जान-माल की सुरक्षा की बात है, उससे कोई लाभ नहीं हुआ। पुलिस का काम अब कांग्रेस के राजनीतिक विरोधियों के सिर पर डण्डा बरसाना या महाप्रभुओं के स्वागत में हाथ बाँधकर खड़ा रहना है। कालिदास लड़की के पिता पर जोर दे रहे थे कि तुम लड़की को स्कूल भेजना बन्द मत करो, पर लाला की हिम्मत नहीं थी।

इस महीने आगरा युनिवर्सिटी की दो डाक्टरेट थेसिसों को देखने का मौका मिला। वैसे तो जिस तरह टके सेर डाक्टर बनाये जा रहे हैं, उसके कारण थेसिस का स्तर बहुत गिर गया है। पर, ये दोनों थेसिसें उस तरह की नहीं थीं। श्री भरतसिंह उपाध्याय ने बहुत परिश्रम के साथ पालि त्रिपिटक और उसकी अटूट कथाओं की भौगोलिक सामग्री का विश्लेषण किया था। अम्बालाल सुमन ने अलीगढ़ की जनभाषा और उसमें आई सामग्री का सुन्दर विवेचन हजार पृष्ठ से ऊपर में किया था। ऐसे निबन्ध यदि लिखे जाएँ तो उनसे डिग्री के साथ-साथ नई ज्ञातव्य बातें भी सामने आ जाएँगी।

मार्च के तीसरे हफ्ते में पत्रों में स्तालिन की कड़ी आलोचना होने की खबरें आने लगीं। मेरे कुछ साथी इससे तिलमिला गए। सरदार पृथिवीसिंह ने बहुत उत्तेजना और निराशापूर्ण शब्दों में इसके बारे में लिखा। लेकिन, मैं इससे बहुत प्रसन्न हुआ। इसी दिन की मैं आशा रखता था; हाँ, इतनी जल्दी नहीं। मार्क्स ने साम्यवाद के वैज्ञानिक रूप को हमारे सामने रखा, और उसकी तरफ जाने के लिए दुनिया की सर्वहारा जनता को और मानवता के भक्तों को प्रेरणा दी। वह महान् थे, इसमें किसको सन्देह हो सकता है ? लेनिन ने साम्यवाद को पृथिवी पर उतारा। थैलीशाहों की संगीनें उसे असम्भव कर रही थीं। आखिर संगीनों के बल पर मुट्ठी-भर लोग दुनिया के सर्वस्व के स्वामी बन गए थे। उनका शोषण और उत्पीड़न अक्षुण्ण चल रहा था। ऐसी परिस्थिति में जिसने साम्यवादी शासन पृथ्वी पर कायम किया, वह लेनिन महान् थे, यह भी निस्सन्देह है। लेनिन साम्यवादी शासन को पूरी तौर से मजबूत नहीं कर पाए थे। उसके आर्थिक निर्माण के लिए बहुत बड़ा कदम नहीं उठाया जा सका था, कि वह हमें छोड़कर चले गए। ऐसे समय इस बड़े भार को स्तालिन ने सँभाला। पुनर्निर्माण के बाद पंचवार्षिक-योजना का सूत्रपात किया। इसके कारण सोवियत भूमि आर्थिक तौर से इतनी सुदृढ़ हो गई कि अब वह दुश्मनों के लिए लोहे का चना बन गई। यह तीसरा पुरुष भी महान् था। लेकिन, बुढ़ापा समझिये या आत्मश्लाघा की मात्रा अधिक होना, स्तालिन अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षों में कई बुराइयों के लाने के कारण हुए। बाहरी देशों के वैर-षड्यन्त्र के कारण सोवियत-भूमि के भीतर सुरक्षा की ओर ज्यादा ध्यान देना पड़ता। लेकिन, युद्ध की स्थिति के लिए बनाये जानेवाले नियमों को बराबर जारी रखना खतरनाक था। यह नियम बिना कारण भी सन्देह पैदा करते, फिर सन्देह का कठोर दण्ड कितने ही निरपराध व्यक्तियों को भोगना पड़ता। इतनी बड़ी शक्ति को ठीक तौर से इस्तेमाल करना बहुत कम ही आदमियों के बस की बात है। स्तालिन ने दूसरों के लिए कहा था—"सफलता के कारण चकाचौंध में आना", पर वह खुद इसके शिकार हुए। वह अपने को सर्वज्ञ समझने लगे। सर्वज्ञों के हाथ जोड़कर स्तुति करनेवाले खुशामदियों की कमी नहीं रहती। जो खुशामद नहीं कर सका, वह उनके क्रोध का भाजन हुआ। इस स्थिति में उनके चारों ओर खुशामदियों का गिरोह जमा हो गया। उनमें जो सबसे अधिक निष्ठुर हो सकता था, वह उनका कृपापात्र बन सकता था। बेरिया ऐसा ही था, जिसे स्तालिन ने जार्जिया से बुलवाकर गृह-मन्त्रालय का काम सौंपा। गृह-मन्त्रालय का काम था भीतरी शत्रुओं को सिर न उठाने देना। बेरिया ऐसी शक्ति को हाथ में लेने के लिए बिल्कुल अयोग्य था। उसने जब दो-चार अत्याचार किये, तो उसके लिए जरूरी हो गया कि अपने चारों ओर किलाबन्दी करे, फिर अपनी ही तरह के आदमियों को उसने अपनी चारों ओर जमा कर लिया। इन पंक्तियों के लेखक ने भी बेरिया की पुलिस के कारनामे कुछ देखे, और अधिक सुने। लोग साँस लेने में डरते थे। इस स्थिति

को लाने में स्तालिन का बहुत हाथ था। चाहे वह हरेक मामले को न जानते हों, पर जो व्यक्ति-पूजा उन्होंने अपने लिए चलाई, उसका यह अनिवार्य परिणाम था। इस स्थिति को दूर करना सोवियत-भूमि के लिए सबसे बड़ा काम हो गया। बाहर के कम्युनिस्ट या साम्यवाद के हितैषी स्तालिन की कड़ी आलोचना को चाहे नापसन्द करें, चाहे इसके कारण बाहरी दुनिया में साम्यवाद के दुश्मनों को थोड़ी देर तक प्रोपेगेण्डा करने का अच्छा मौका मिले; पर जहाँ तक रूस का सम्बन्ध था, उसके लिए स्तालिन की व्यक्ति-पूजा को एक क्षण भी वर्दाश्त करना हानिकारक था। जो शासन बहुजनहिताय हो, उसमें इतनी पाबन्दियों की आवश्यकता क्या ? सोवियत के नेताओं ने उस बड़ी बाधा को हटाया, जिसे मैं इतनी जल्दी समाप्त होनेवाली नहीं समझता था। इस नीति से सारी सोवियत-भूमि में एक अद्भुत स्फूर्ति आई है, और कितने ही योग्य व्यक्ति, जो उस युग की क्रूरता के शिकार थे, फिर कार्य-क्षेत्र में आए।

प्रो. तुबियान्स्की और प्रो. वोस्त्रिकाफ संस्कृत के अद्भुत विद्वान् थे। डा. श्चेर्वात्स्की उन्हें अपना पुत्र मानकर अपुत्र होने के शोक से विरत थे। उन्हें इन दोनों के ऊपर बड़ा अभिमान था। लेकिन, 1936 में तुखाचेव्स्की षड्यन्त्रों में से जो हजारों जौ घुन के साथ पिस गए, उनमें ये दोनों विद्वान् भी धर लिए गये। ये वस्तुतः पण्डित थे। उनको अपनी विद्या से मतलब था, जिसमें वह दुनिया में लासानी थे। दोनों को पकड़कर जेल में डाल दिया गया। मालूम नहीं, वह मुक्त होने के लिए आज भी बचे हैं या नहीं। पर, इससे तो उस युग की क्रूरता को ढाँका नहीं जा सकता। मैं समझता हूँ, स्तालिन-पूजा का विनाश सोवियत-भूमि में बहुत बड़ा काम हुआ है। दो-तीन मित्रों ने मुझे विकल होकर इसके बारे में पूछा, और मैंने संक्षेप में यही बातें बतलाईं।

25 मार्च को कमला परीक्षा देकर आईं। भाषातत्ववाला प्रश्नपत्र उनका कमजोर रहा। "घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध" ठीक है। मैं बराबर कहता रहता कि इसे पढ़ लो। रात को कथा के तौर पर भी उसे सुनने के लिए तैयार नहीं थीं। अब पछतावा था। फेल होंगी, तो 'भाषातत्व' के ही कारण।

गर्मी के डर से दिल्ली जाने में झिझक हो रही थी, पर वहाँ जाना जरूरी था। जेता का हाथ बहुत-कुछ ठीक हो गया था, और सिर्फ ताकत आने की कुछ कमी थी। पर, जब दिल्ली में पोलियो की चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध है, तो उसे वहाँ दिखाना आवश्यक था। देहरादून से कमला को लेकर जा सकते थे, पर होली यहीं कर लेनी थी, इसलिए 30 मार्च को यहाँ से जाने का निश्चय किया।

**देहरादून**–30 मार्च को साढ़े 7 बजे सबेरे जया, जेता और कमला के साथ घर से निकले। पहाड़ में मोटर पर चलना कमला के लिए जान पर खेलना है, इसलिए वह बिना खाये-पिये रवाना हुईं। 9 बजे किंक्रेग में कार मिली, और सवा 10 बजे हम शुक्लजी के घर पर पहुँच गये। पासपोर्ट के लिए मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर कराने थे। आज छुट्टी थी, लेकिन शुक्लजी ने मजिस्ट्रेट को तैयार कर रखा था। मसूरी के सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट को ही हस्ताक्षर करने का अधिकार था। वह भले आदमी निकले, और पासपोर्ट के फार्म पर दस्तखत का काम खतम हो गया। वह उस दिन स्टेनों से मुकद्दमों का फैसला लिखवा रहे थे। धाराप्रवाह अंग्रेजी का व्यवहार हो रहा था। पन्त से लेकर सम्पूर्णानन्द तक सभी मुख्यमन्त्री और मन्त्री हिन्दी के पक्ष में धुआँधार भाषण देते हैं लेकिन उसका फल हमारे सामने था। जिनके मुकद्दमों का फैसला हो रहा था, शायद ही उनमें से कोई इसे समझ सके। इसको कहते हैं, एक-दूसरे को धोखा देना। यदि वस्तुतः हिन्दी को व्यवहार में लाना है, तो अंग्रेजी के स्टेनो और टाइपिस्ट को हटाकर उसकी जगह हिन्दीवाले देने चाहिएँ, और अपने अफसरों को सख्त ताकीद करनी चाहिए कि वह हिन्दी में ही अपना फैसला दें। ऐच्छिक होने पर अफसरों की वर्तमान पीढ़ी तो हिन्दी के लिए झुकने को तैयार नहीं हो सकती। वह समझती है, मन्त्री लोग सिर्फ ऊपर-ऊपर से हिन्दी की बातें करते हैं, उसके लिए साधन जुटाने को तैयार नहीं। अभी मार्च का अन्त ही था, लेकिन यहाँ 4 बजे तक असह्य गर्मी थी। जब असली गर्मी शुरू होगी, तब न जाने क्या हालत होगी ?

31 मार्च को भी हमें देहरादून में ही रहना था। बनियों का भोजन शुक्लजी के यहाँ और ब्रह्मभोजन पं. हरनारायण मिश्र के यहाँ होता रहा। लेकिन, शुक्लाइनजी के हाथ का बना बनियों का भोजन भी बहुत स्वादिष्ट होता है, इसलिए हम बराबर ब्रह्मभोज के लिए तैयार नहीं थे। आज गुरु रामराय के दरबार का झण्डा

मेला था। संयोग ही समझिये, जो ऐसे समय हम पहुँच गए। उससे फायदा न उठाना उचित नहीं समझा जा सकता था। गद्दी से वंचित गुरु रामराय सिक्खों के सप्तम गुरु के ज्येष्ठ पुत्र थे। वंचित करने का परिणाम पंथ में झगड़ा होना जरूरी था। उनके भतीजे गुरु तेग-बहादुर को औरंगजेब ने मरवाया। अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह को सुमिरनी की जगह खड्ग उठाना पड़ा। जब एक पक्ष औरंगजेब के कोप का भाजन था, तो दूसरा अक्रोध का भाजन होगा ही। इसीलिए गुरु रामराय के लिए सिफारिश करके औरंगजेब ने गढ़वाल के राजा के पास भेज दिया। उस समय दून अनादिकाल से गढ़वाल का चला आया था। गुरु ने जंगल और जंगली जानवरों से भरी दून की भूमि के एक छोटे-से गामड़े में अपना डेरा डाला, जिसके लिए ही इस स्थान को डेरा या देरा कहा जाने लगा। स्थानीय लोग देहरादून को अब भी देरा कहा करते हैं। गुरु रामराय और उनके उत्तराधिकारियों ने यहाँ के मठ को बहुत बढ़ाया। किसी गुरु ने झण्डे को गाड़ने का रवाज जारी किया। 110 फुट का लट्ठा झण्डे के दण्ड का काम देता है। एक बार का कटा हुआ लट्ठा तीन साल तक रहता है, तीसरे साल पुराने की जगह नया खड़ा किया जाता है। इसके देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाती है। 1 बजे झण्डे के मेले के लिए जाना प्रिय बात नहीं हो सकती, किन्तु लिखने के लोभ ने खींच ही लिया। शुक्लजी ने बतलाया, जरा पहिले चलना चाहिए, नहीं तो भीड़ में से पार होना मुश्किल होगा। हमने समझा था, दो-ढाई बजे तक काम खतम हो जाएगा।

जल्दी करते-करते 1 बजे हम घर से निकले। दूर ही ताँगा छोड़ देना पड़ा। फिर भीड़ में से धक्कमपेल करते आगे बढ़े। लौडस्पीकर कान के पर्दे फाड़ रहे थे। सब दूकानदारों ने उन्हें ऊँचे स्वर में बजाने की होड़ लगा रखी थी। सर्कसवाले अलग चिल्ला रहे थे। हर तरह की दूकानें थीं। कपड़ा, मिठाई, खिलौने से लेकर मिट्टी की सुराहियाँ तक, जो चाहें सो ले लें। शुक्लजी ने विशेष निमन्त्रण के तीन पास प्राप्त कर लिये थे। हम दोनों के अतिरिक्त एक आगरा के प्रोफेसर भी साथ थे। विशेष मेहमानों के लिए एक काफी लम्बी छत पर कुर्सियों का इंतिजाम था। सीढ़ी पर पास देखा गया। हम ऊपर चले गए। अभी जगहें पूरी भरी नहीं थीं। शुक्लजी के कुछ और परिचित प्रबंधक मिले, इसलिए हमें सबसे अगली पंक्ति में बैठाया गया। अंग्रेजों के राज्य में दर्जनों साहेब और मेम इन कुर्सियों को अलंकृत करते थे। अब काले आदमी और स्त्रियाँ वहाँ पर बैठी हुई थीं, जिनमें सभी भक्तिभाव-शून्य नहीं थे। एक वृद्धा अपनी बहू को लेकर हमारे पास आईं। पहिले जगह नहीं थी, लेकिन हमने जगह बना दी। झण्डा उठते वक्त उन्होंने हाथ जोड़कर उसी तरह रुपया उसकी तरफ फेंका, जैसे गंगा और जमुना के पुलों को पार करते यात्री पैसे फेंकते हैं, जिनमें से अधिकांश पुल के लोहे के खम्भों में झन्-से करके गंगा तक पहुँचे बिना ही रह जाते हैं। झण्डे का स्थान हमारे बैठने की जगह से काफी दूर था, इसलिए रुपया वहाँ कैसे पहुँच सकता था ?

2 बजे तक अंगुल-अंगुल-भर जमीन और छतें लोगों से भर गईं। मालूम हुआ कुछ लोग मकानों की छतों पर सबेरे ही से आकर तपस्या कर रहे हैं। इस धूप में स्त्री-पुरुषों का यह धैर्य आश्चर्यकर था। इसमें केवल भक्ति ही नहीं, बल्कि तमाशा देखने की प्रवृत्ति भी काम कर रही थी। जब घड़ी ढाई बजाने लगी, तब हममें से कुछ में उत्सुकता बढ़ने लगी। सिर के ऊपर कपड़े का चंदवा था, लेकिन एक जगह फाँक पाकर धूप सीधे खोपड़ी पर पड़ रही थी। आध घंटे में वह हटी। 3 बजे भी अभी महन्तजी का कोई पता नहीं था। महन्तजी इलाहाबाद युनिवर्सिटी के संस्कृत के एम. ए. हैं। शिक्षित श्रद्धाहीन होते हैं, इसे झूठा करने के लिए वह शायद अपने गुरु महन्त लक्ष्मणदासजी से भी अधिक समय तक पूजा करते हैं। साढ़े 3 बजे तक भी उनका पता नहीं लगा। खोपड़ी धूप से पिघल नहीं रही थी, तो भी चिन्ता बढ़ने लगी। लोग कहने लगे, दो-ढाई बजे तक हमेशा झण्डा खड़ा हो जाता रहा है। झण्डे का लट्ठा पहिले ही गिरा दिया गया था। उसके ऊपर चढ़े पिछले साल के खोल निकालकर प्रसाद के लिए रखे गए थे। खोल के दो अंगुल के चीथड़े से भी आदमी का भाग्य बन सकता है, उसका दुर्भाग्य हट सकता है, मनोकामना पूरी हो सकती है। अपनी कार्यसिद्धि के लिए स्त्री-पुरुष पहिले ही से मानता मानते हैं—"हमारा यह काम हो गया, पुत्र-प्राप्ति हो गई, तो हम झण्डा साहब पर थान चढ़ाएँगे।" कोई-कोई तो कामदार मखमल की खोल चढ़ाने की मानता मानते हैं। और ऐसों

की संख्या इतनी अधिक होती है कि दस साल के पहिले शायद ही किसी की बारी आती है। उसके लिए हजार या अधिक रुपये दाता देते हैं। 110 फुट के लट्ठे के दोनों तरफ आदमी खड़े थे। सब एक साथ झण्डे को हाथ से उठाते और उस पर कपड़ा मढ़ा जाता। पहिले पीले सूती थान और दूसरे कपड़े मढ़े गए। अन्त में सारे झण्डे के नाप का लाल मखमल का ख़ोल सिर के ऊपर से डाला गया। फिर सैकड़ों रेशमी रूमालें झण्डियों की तरह जहाँ-तहाँ बाँधी गईं, और सिर पर एक बड़ा-सा झण्डा लगा दिया गया। यह काम पूरा हो जाने पर आशा बँधने लगी कि अब झण्डा खड़ा होगा। लेकिन, महन्तजी अपने अनुचरों के साथ साढ़े 4 बजे झण्डे के पास पहुँचे। सिरहाने से जल छिड़कते, पूजा करते वह उसकी जड़ तक पहुँचे। आज वह विशेष पोशाक में थे। जरी का चोगा शरीर पर और जरी की नोकदार टोपी उनके सिर पर थी। यह पोशाक उनसे पहिले के अनेक महन्तों के शरीर को शोभित कर चुकी थी। वह झंडे के पक्के चबूतरे पर पहुँचे। फिर हाथ का इशारा करते वे उन अधिकारी लोगों को झंडा उठाने के लिए कहने लगे। 110 फुट के मोटे लट्ठे का उठाना इतना आसान नहीं। एक तरफ चोटियों जैसे लट्ठे से हाथ लगाए लोग थे, और दूसरी तरफ लट्ठे में बँधे रस्से को सैकड़ों आदमी खींच रहे थे। हाथ एक पोरसा ही तक पहुँच सकते थे, इसलिए लकड़ी की छोटी-बड़ी कैंचियाँ लगाई जा रही थीं। झंडा कुछ ऊपर उठता और फिर नीचे आ जाता। डर लगता था, जरा भी गलती हुई, तो उसके नीचे खड़े सैकड़ों आदमी हताहत हुए बिना नहीं रहते। लेकिन, झंडा साहब कोई निर्जीव लट्ठा नहीं है, वह दिव्य पुरुष है। झंडा-उत्सव में कभी ऐसा दुर्घटना की बात नहीं सुनी गई।

आज झंडा साहब क्यों थोड़ा ऊपर चढ़कर बार-बार नीचे चले आते हैं। पहिले खड़े होने में दस मिनट भी नहीं लगते थे, लेकिन आज आध घंटे लोग बेकार कोशिश करते रहे। कितने ही निराश होने लगे। खैर, पौन घंटे बाद झंडा साहब खड़े हुए। यातायात पर नियन्त्रण करनेवाला लौडस्पीकर बीच-बीच में अपने काम को छोड़ 'गुरु रामराय की जय' 'झंडा साहब की जय' बोल रहा था। महन्तजी और उनके मैनेजर हाथ हिला करके आदमियों को उत्साह देते परेशान हो गए थे। महन्तजी ने पूजा करने के कारण इतनी देर की थी, और वे डेढ़-दो बजे की जगह पर साढ़े 4 बजे झंडा साहब के पास पहुँचे थे। झंडा महाराज क्यों नहीं उठ रहे थे, इसका पता लौटते वक्त हमारे ताँगेवाले ने बतलाया। कह रहा था—"पहिले के महंत महाराजों में तेज था। उनके तेज और तपस्या के बल से झंडा साहब तुरन्त खड़े हो जाते थे।" वर्तमान महन्त श्री इन्द्रेशचरणदास के गुरु महन्त लक्ष्मणदास झंडा उठाने के वक्त हाथ ज़ोड़कर एक पैर से खड़ा होते थे। मैंने देखा, तरुण महन्तजी एक पैर से नहीं खड़े हैं, और न कोई ऐसा भाव दिखा रहे थे, जिससे मालूम हो कि वह इस दिव्य वस्तु को सूखा काठ नहीं समझ रहे हैं। वह तो वैसे ही लोगों को उत्साहित कर रहे थे, जैसे किसी बड़ी शहतीर के उठानेवाले लोगों को किया जाता है। कसर थी, तो "हेइ यो, हेइ यो" की। फिर यह दिव्य स्तम्भ क्यों आसानी से उठने लगा ? ताँगेवाला यह भी कह रहा था कि झंडा साहेब अन्त में उठे भी, तो पहिले के गुरुओं के पुण्य-प्रताप से ही। "हाँ, महाराज, दफ्तर में बैठकर कागज पर कलम चलाने से थोड़े ही वह तेज आ सकता है, जो पहिले महन्त महाराजों में था।" महन्त इन्द्रेशचरणदास की यह बड़ी कड़ी आलोचना थी। उस दिन हजारों के मुँह से यही बातें निकली होंगी। फिर महन्तजी का घंटों पूजा करना व्यर्थ ही ठहरा। यदि वह एक ही बजे आ गए होते, और दस मिनट में झंडे को खड़ा करवा दिए होते, तो उनके तेज का लोग लोहा मानते। मैंने शुक्लजी से कहा, "आप इस बात की ओर महन्तजी का ध्यान जरूर आकृष्ट करें, क्योंकि लोगों की आवाज भगवान् की आवाज है।" झंडा खड़ा कराते ही महन्तजी अपने सम्माननीय मेहमानों की अभ्यर्थना के लिए आए। पर, उस समय तक बहुत-से बाहर चले गए थे। मुझसे मिलने पर देर के लिए क्षमा-प्रार्थना की। उनके तेज पर टिप्पणी मैंने पीछे सुनी थी, नहीं तो जल्दी-जल्दी में भी दो शब्द कानों में डाल देता।

टेढ़े-मेढ़े घूमते शुक्लजी ऐसे रास्ते हमें ताँगों की जगह पर लाए, जिसमें कम भीड़ थी। ताँगेवाले ने बैठाया, और कम भीड़वाली सड़क से निकला। बेचारा आशा किये था कि ढाई-तीन बजे तक सवारियाँ मिल जाएँगी। इसी आशा पर वह आकर वहाँ खड़ा था। हर मिनट लोगों के आने की आशा थी, इसलिए बीच में वहाँ से अनुपस्थित क्यों होता ? दो-तीन घंटे उसे प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। उस वक्त उसके दिमाग ने अपना जौहर

दिखलाया, और झंडे के देर होने का कारण उसे मालूम हुआ, जिसके बारे में हम पहिले बतला चुके हैं। महन्तजी देहरादून नगरपालिका के अध्यक्ष हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उत्तर प्रदेश या बाहर भी इतने ईमानदार अध्यक्ष शायद ही किसी नगरपालिका को मिले हों। जहाँ हर ठेके और हर बड़े-बड़े खर्च पर दशांश अध्यक्षों-उपाध्यक्षों और उनके सहायकों का धरा हुआ है, वहाँ ईमानदारी सुलभ नहीं हो सकती। पर, महन्तजी को उसकी कोई आवश्यकता नहीं, उनके पास मठ की सम्पत्ति काफी है, और खर्च करने में अपने अर्धशिक्षित गुरु से भी अधिक संयम रखते हैं। यदि जनता के काम के लिए वह दफ्तर में बैठकर दस्तखत करते हैं, या डेढ़ लाख की आबादी के नगर को बेहतर बनाने के लिए घूमते-फिरते हैं, तो उनका यह काम पूजा-पाठ से कम महत्व का नहीं है। उनकी लेखनी भी शक्तिशाली है। मार्शल रोमेल की जीवनी हिन्दी में उन्होंने लिखी है, वह बतलाती है कि वह भाषा पर अधिकार रखते हैं, सैनिक विज्ञान के भी गम्भीर विद्यार्थी हैं। उनका संकल्प था, इस तरह के कितने ही ऐतिहासिक सेनानायकों की जीवनी लिखने के बहाने युद्ध के दाँव-पेच, हथियारों और दूसरी चीजों का हिन्दी में वर्णन लिख देना बहुत बड़ा काम होता, पर नगरपालिका उनका बहुत-सा समय खा जाती है, जो बचता है उसमें भी काफी पूजा-पाठ ले बैठता है–अफसोस, यह सब करने पर भी उनके तेज को लोग मानने के लिए तैयार नहीं। लोगों ने जब राम के घर में आग लगा दी, और सीता को दुबारा वनवास के लिए ढकेल दिया, तो महन्तजी की क्या बात ? मैं तो महन्तजी को कहूँगा, वह सबेरे ही से झंडा साहब की सेवा में लग जाएँ, पूजा-पाठ कम कर दें, क्योंकि मठ की कोठरी में होती पूजा को बाहर इंतिजार करती हजारों जनता नहीं देखती। ठीक 11 बजे झंडा साहब के पास आएँ, और 12 बजे तक वह खड़ा होकर फहराने लगे। तब लोग मानेंगे, कि महन्त इन्द्रेशचरणदास अपने गुरुओं से भी अधिक तेज रखते हैं।

**होली**–1 अप्रेल मूर्खों का दिन है, लेकिन किसी प्राचीन या अर्वाचीन शास्त्र ने इसे यात्रा के लिए वर्जित नहीं किया। न यही लोगों की धारणा है कि 1 अप्रेल के दिन यात्रा करनेवाला भी मूर्ख माना जाएगा। होली के दिन इसलिए यात्रा करना लोग पसन्द नहीं करते कि उस दिन हमारे यहाँ हुड़दंग मच जाती है। शिक्षा और संस्कृति के बढ़ने से हमारे लोगों के स्वभाव में कुछ गम्भीरता, कुछ संयम आना चाहिए था, लेकिन बात उलटी देखी जाती है, जिसका यही अर्थ है, कि हमारी सारी शिक्षा हमें संस्कृत बनाने में समर्थ नहीं है। पहिले जमाने में सिर्फ होली को दोपहर तक लोग मिट्टी-कीचड़ एक-दूसरे के ऊपर फेंकते, या शहरों में अबीर घोलकर पिचकारी से डालते। अब तो एक हफ्ता पहिले ही से लौंडे-लारे इस काम में जुट जाते हैं। फिर रंग ऐसा इस्तेमाल नहीं करते, जो जल्दी धुल जाए। ऐसा रंग ढूँढ़कर लाते हैं, जो कपड़े को हमेशा के लिए खराब कर दे। होली के दोपहर तक ही उसको सीमित भी नहीं रखते, बल्कि शाम तक यह तूफान-बदतमीजी जारी रहता है। मुझे अपने विद्यार्थी-जीवन का बनारस याद है। हमारे गाँवों में पानी में अबीर घोलकर शाम तक डाली जाती थी, लेकिन बनारस में दोपहर के बाद सूखी अबीर ही मुँह पर मलने का रवाज था। ऐसा ही दूसरे शहरों में भी देखा था। उस वक्त के लोग ज्यादा संयत थे या आज के ? आज तो उस दिन मोटर, बस या रेल से यात्रा करने की कोई हिम्मत नहीं कर सकता था। लोगों के लिए छूट है। कीचड़, गोबर जो चीज फेंकते रहें। रेल के डब्बों पर महीनों दाग नहीं छूटता। किसी ने खिड़की खुली रखी, तो कम्पार्टमेन्ट के भीतर की कोई चीज गन्दा होने से बच नहीं सकती। देश के स्वतन्त्र होने से पहिले थोड़ा-सा संकोच भी रहता था–मुसलमान या ईसाई विरोध करेंगे, हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो जाएगा। अब उसकी भी कोई पर्वाह नहीं करता। मुसलमान चुपचाप घर में रहकर उस दिन को बिता देते हैं। हाँ, उनमें से कुछ इसके महत्व को समझने लगे हैं। सोचते हैं कि जनगंगा का प्रवाह जिधर बहता हो, उसमें तुम भी शामिल हो जाओ। आज से सवा सौ साल पहिले कवि नजीर अकबराबादी होली में दूसरों के साथ मिलकर खूब आनन्द लेते थे, उस पर कविता करते थे। लोग नजीर को हाथों-हाथ उठाने के लिए तैयार थे। आज भी जहाँ कोई ऐसा मुसलमान दिखाई पड़ता है, उसकी आवभगत का क्या कहना। स्वतन्त्रता के बाद होली का क्षेत्र और बढ़ा है। पहिले यह हिन्दीभाषी भूभाग का ही त्यौहार था। बंगाल, पहाड़, पंजाब और महाराष्ट्र में देखा-देखी नकल कभी-कभी देखी जाती थी। दक्षिण के चारों प्रदेश तो जानते भी नहीं थे कि होली किस चिड़िया का नाम है। पर, अब जान पड़ता है कि होलिका माई सारे

भारत को एक करने के लिए ही फाँड़ बाँध चुकी है। दिल्ली में भारत के सभी भागों के लोग संसद् के सदस्य हैं। वहाँ होली जवाहरलाल से ही शुरू होती है। उस दिन उनका सारा शरीर और मुँह अबीर से भरा रहता है। सभी सदस्य भी गुलाल मलने में एक-दूसरे से होड़ लगाते हैं। फिर दिल्ली के अधीन सारे भूभाग में होलिका अपना राज्य क्यों न कायम करना चाहें। हैदराबाद तेलुगु भाषाभाषी प्रदेश है। वहाँ के एम. एल. ए. लोगों ने होली की बहार लेनी शुरू की, तो उसका अर्थ है दक्षिण के चारों अभेद्य प्रदेशों में भी छेद हो गया। वस्तुतः होली के डर के मारे ही हमने यात्रा पहले नहीं की।

**दिल्ली**—अब की दिन के समय में दिल्ली की यात्रा करने का हमने निश्चय किया था। पड़े-पड़े सोते यात्रा करने की जगह आसपास की भूमि को देखते चलना अच्छा है। कमला इससे पहिले दिन में दिल्ली की यात्रा नहीं कर सकी थीं, और न जया-जेता ही। जया पहिले की रेलयात्रा को भूल चुकी थी, लेकिन अब वह उसे समझ सकती थी। जेता को कौतूहल मात्र होनेवाला था। दूसरों की देखादेखी गाई कहने की कोशिश करता। भोजन करके 10 बजे स्टेशन पहुँचे। कुछ पहिले पहुँचने से जगह मिलने में आसानी थी। आखिर आजकल का दूसरा दर्जा पहिले का ड्योढ़ा दर्जा ही है, इसलिए काफी भीड़ होने की सम्भावना रहती है। 11 बजकर 35 मिनट पर बम्बई एक्सप्रेस चला। आजकल हरद्वार की अर्धकुम्भी की धूमधाम थी, यद्यपि उसका सबसे महत्वपूर्ण स्नान 13 अप्रेल को होनेवाला है, पर लोग पहिले ही से पहुँच जाना चाहते थे। हरद्वार का कुम्भ हो या अर्धकुम्भ, अप्रेल की भयंकर गर्मी में बड़े बुरे समय में पड़ता है। यदि सफाई का ठीक इंतिजाम नहीं हुआ, तो हैजा होना अवश्यम्भावी है। शायद वह हरद्वार के इस मेले में न आया हो। सरकार बहुत सचेत है, इसका पता इसी से लग रहा था कि देहरादून स्टेशन से हरद्वार के टिकट लेनेवाले हरेक आदमी को वहीं हैजे का इंजेक्शन लगा दिया जाता। हरद्वार में चारों ओर से आनेवाले रास्तों पर इसका प्रबन्ध था। प्रयाग इससे अधिक सौभाग्यशाली है, क्योंकि उसका कुम्भ या अर्धकुम्भ सर्दी के सबसे ठण्डे महीने में पड़ता है। वहाँ भी सूई और इंजेक्शन का प्रबन्ध रहता है, लेकिन इस साल तो दिल्ली और लखनऊ के महादेवों और देवों ने पहुँच कर गजब ढा दिया। सारी पुलिस को अपनी सेवा में बुला लिया, और प्रबन्ध में उनके अभाव के कारण हजारों आदमी कुचलकर मर गये। इससे देवों-महादेवों को कोई शिक्षा मिली, यह कहना मुश्किल है। हरद्वार में गर्मी के कारण भी वह आने की हिम्मत नहीं कर सकते।

पहिले ही से चिट्ठी मिल गई थी। पं. किशोरीदास वाजपेयी हरद्वार गाड़ी के पहुँचते ही आ गये, और जब तक गाड़ी खुली नहीं, तब तक बैठे बातें करते रहे। साथ में पूड़ी, मिठाई, रायता लाये थे। पूड़ियाँ अब भी गरम थीं, और आजकल की दुनिया में आदमी की जितनी शक्ति है, उसके अनुसार प्रयत्न करके शुद्ध घी में बनाई गई थीं। शुद्ध घी कहना आजकल मुश्किल है। जो अपनी भैंस और गाय के मक्खन से घी बनाता है, वही शुद्धता की कसम खा सकता है। यद्यपि हम भोजन करके चले थे, पर गाड़ी पर चलते ही गरम-गरम पूड़ियों ने हमें आकृष्ट किया, शाम तक भी हम चारों प्राणी पूड़ियों को समाप्त नहीं कर सके, लेकिन रायता को न छोड़ने का निश्चय कर लिया था। गाड़ी कुरुभूमि में चल रही थी। कुछ समय पहिले यात्रा करते तो हरे-भरे खेत होते, लेकिन अब वह कट चुके थे। कुरुदेश उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग है, और काशी-मल्ल (भोजपुरी भाषी भाग) पूर्व में। दोनों आजकल चीनी की खान बन गए हैं। यहाँ दर्जनों मिलें खड़ी हैं। खुले डब्बे ऊखों से भरे इधर से उधर जाते दीख पड़ रहे थे। जगह-जगह तौलने के काँटे के आसपास गन्ने से भरी सैकड़ों गाड़ियाँ खड़ी थीं। ऊख नगदनारायण की फसल है, इसलिए जहाँ मिलों में बिकने की जरा भी आशा रहती, वहाँ के लोग अपने खेतों में ऊख बोने के लिए तैयार हो जाते। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गर्मी के लू के दिनों में कुँओं से चरस भर-भरके पानी ऊख के खेतों में डाला जाता है। कुरुदेश सौभाग्यशाली है, जो वहाँ गंगा की धाराओं का जाल बिछा हुआ है, और पानी की कोई कमी नहीं है।

गर्मी 4 बजे जाके कम हुई, पर पंखा था और गाड़ी चलते वक्त बाहर से भी हवा आती थी, इसलिए अधिक घबराने की जरूरत नहीं थी। शाम हो गई थी, जब गाड़ी मेरठ छावनी पर पहुँची। प्रो. कृष्णकान्त मिश्र, अपनी पत्नी कमल, अपने भाई, बहिन और बहनोई के साथ आये, और मेरठ नगर तक साथ चले। करीब

आध घंटे तक सत्संग रहा। कमल की पुत्री कल्पना जब कुछ हफ्ते की थी, तो बहुत ही क्षीण और छोटी दिखाई पड़ती थी, लेकिन अब वह स्वस्थ और हट्टी-कट्टी थी। रात के 9 बजे के करीब हम दिल्ली स्टेशन पर पहुँचे। दो बच्चों और सामान को लेकर रेल से चढ़ने-उतरने में कुछ कठिनाई तो होती ही है, पर श्री शिव शर्मा स्टेशन पर पहुँचे हुए थे। हम आराम से उतरकर टेक्सी पर बैठे, और 22 फ़ैज़ बाजार में भैया के घर पहुँच गये। भैया और भाभीजी हमारे आने की प्रतीक्षा में थे।

गर्मी का तापमान सौ डिग्री से ऊपर नहीं पहुँचा था, लेकिन इसको भी हम 10 बजे से 4 बजे तक पंखे के नीचे ही काट सकते थे। जिस उद्देश्य से हम भट्ठी में जलने आये थे, पहिले उसे पूरा खतम करना था।

**सफदरजंग अस्पताल**–सुना था, दिल्ली में पोलियो की चिकित्सा का आधुनिकतम ढंग से प्रबन्ध है। यह भी मालूम हो गया था कि वह शहर से बाहर सफदरजंग में है। भैया, दोनों बच्चे और हम दोनों टेक्सी लेकर हवाई-अड्डे से भी आगे अस्पताल की जगह पर पहुँचे। युद्ध के समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अस्थायी एक मंजिला नीची छतों की कोठरियोंवाली इमारतें बनी थीं, जिन्हें स्थायी अस्पताल का रूप दे दिया गया था। यदि तिमंजिला-चौमंजिला इमारतें होतीं, तो आदमी को बहुत दूर तक दौड़-भाग करने की आवश्यकता नहीं होती। हम में से कोई यहाँ की विधि-व्यवस्था से वाकिफ नहीं था। शिव शर्मा जी भी पहिली बार आए थे, और वही बात भैया की भी थी। पोलियो क्लिनिक कहाँ है, इसी का पता लगाने में काफी चक्कर काटना पड़ा। अस्पताल में हजारों काम करनेवाले हैं, सभी हजारों कमरों का हिसाब कैसे रख सकते थे। खैर, बच्चों के वार्ड का पता लगा, फिर वहाँ जाकर इस क्लिनिक का भी स्थान मालूम हो गया। जाने पर मालूम हुआ, पहिले नम्बर लाओ। नम्बर के लिए फिर सड़क के किनारेवाले मकान में आना पड़ा। बरांडे में भीड़ लगी थी। दूर तक क्यू था। एक से अधिक आदमियों को नम्बर देने पर लगाकर इसे कम किया जा सकता था, लेकिन लोगों के कष्ट की किसको पर्वाह है। क्यू में यदि कहीं मरीज को भी लेकर खड़ा होना पड़ता, तो बड़ी आफत होती। लेकिन, इतनी अकलमन्दी की गई थी कि स्वस्थ आदमी भी मरीज के लिए नम्बर ला सकता था। शिव जी क्यू में खड़े होकर जेता का नम्बर ले आये। फिर क्लिनिक में भी डेढ़ घंटे के करीब अगोरना पड़ा, तब बारी आई। किसी एक महिला डाक्टर ने देखकर कुछ लिख दिया। अब तीसरी जगह जाना पड़ा। तीसरी जगह गये, जहाँ पर कि बच्चों की इस तरह की बीमारियों के विशेषज्ञ थे। एक बड़े कमरे में पचासों आदमी इन्तिजार कर रहे थे। पच्चीसों छोटे-छोटे बच्चे थे, जिनमें से किसी का पैर टेढ़ा हो गया था, और किसी का हाथ। कितने ही सुन्दर लड़के विकलांग हो गये थे। यहाँ एक नर्स ने पुर्जा पाकर नाम लिख लिया, लेकिन हमें कोई आदेशपत्र नहीं दिया। कह दिया–यहाँ आप भी इन्तिजार करें। पहिले लेडी डाक्टर ने ही कह दिया था–"हाथ ठीक हो गया है।" लेकिन, हम जब दिल्ली तक आए थे, तो विशेषज्ञ को दिखला देना चाहते थे। कुछ देर बाद डाक्टर साहब दो-एक डाक्टरों के साथ आए। हरेक लड़के को देखकर कुछ आदेश लिखवाते जाते थे। जेता के हाथ पर हल्के पोलियो का असर हुआ था, और कुछ ही दिनों तक वह उसे इच्छानुसार हिला-डुला नहीं सकता था। पर, अब हिलाने-डुलाने में कोई शिकायत नहीं थी। कसर थी तो यही कि बाएँ हाथ की अपेक्षा दाएँ हाथ में शक्ति कम थी, इसलिए डाक्टर साहब ने उसे सबसे पीछे के लिए छोड़ दिया। अन्त में बारी आई। हाथ देखा और पूछा। फिर कहा–"अब इसमें अधिक कसर नहीं है। जो कुछ है, वह हाथ के व्यायाम से ठीक हो जायेगा।" भैया पहिले से ही यह बात कह रहे थे। लेकिन, हम तो आधुनिक ढंग के क्लिनिक से विशेष परामर्श लेने के लिए आये थे। डाक्टर ने किसी तरह बेगार टाली। हमें वहाँ से चल देना चाहिए था, लेकिन जिस तरुणी ने यहाँ पुर्जे को लिया था, वह कह रही थी–"जरा ठहरिए, विशेष तौर से देखेंगे।" ठहर जाना पड़ा। शिव जी ने पीछे बतलाया कि वह कुछ पैसा पाने की आशा रख रही थी। खैर, फिर डाक्टर ने देखा। सलाह तो वह पहिले ही दे चुके थे।

छुट्टी मिलने पर 1 बजे हम टेक्सी लेकर घर पर पहुँचे। अब गर्मी में बाहर निकलने की कौन हिम्मत करता ? दिल्ली का काम हमारा हो चुका था, इसलिए जल्दी छोड़ने की पड़ी थी। शाम के 6 बजे तक हम और बच्चे भी शीतलपाटी पर पंखे के नीचे पड़े रहे। स्त्रियाँ बड़ी हिम्मतवाली होती हैं। हाट-बाजार उनके शौक

की चीज है। कमला और भाभीजी, जया और 'ताई के मुन्ने' को लेकर बाजार गईं। भाभीजी के भतीजे को जया ने 'ताईजी का मुन्ना' नाम दे रखा है।

वैसे तो 10-12 अप्रेल तक के लिए हम तैयार होकर गए थे। सोचा था वहाँ बिजली का इलाज या मालिश आदि बतलाएँगे, जिसके लिए कुछ दिन ठहरना पड़ेगा। अब एक दिन और जरूर ठहरना था। देवताओं की कृपा समझिये, उस दिन सबेरे से हल्का-सा मेघ का पर्दा आकाश पर छाया रहा। शाम को कुछ बूँदा-बाँदी भी हुई। हमें कुछ साथियों और प्रकाशकों से मिलना था, पार्टी-आफिस में साथी रणदिवे, खाडिलकर, सच्चिदा और दूसरे मिले। आजकल स्तालिन की ही चर्चा सब जगह सुनाई दे रही थी। स्तालिन के पिछले जीवन के जो दोष प्रकट हुए थे और जिनकी कड़ी आलोचना सोवियत-भूमि में हो रही थी, उसका प्रभाव सबके ऊपर पड़ रहा था। मैंने भी अपने विचार प्रकट किये। सभी इसे कड़वी घूँट समझते थे, लेकिन मानते थे कि यही स्वास्थ्यकर दवा है। साम्यवाद के विरोधियों को यद्यपि मौका मिला है, लेकिन वे उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। निर्बलता को हटाकर विश्व-साम्यवाद और भी मजबूत होगा, और भी फैलेगा। सच्चिदा ने बतलाया, इस महीने हम 'माओ' (जीवनी) में हाथ लगाएँगे। राजकमल के देवराजजी ने फिर अब के इसी महीने में 'शादी' में हाथ लगाने का वादा किया, पर वह कभी नहीं लगा।

4 अप्रेल को भी दिन-भर हमें दिल्ली ही में रहना पड़ा। कल तो बादल ने कुछ अवलम्ब दिया था, लेकिन आज 10 बजे दिन से रात के 8 बजे तक पंखा ही शरण रहा। पसीने से तो बच गए, लेकिन सिर घूम रहा था। समय से कुछ पहिले ही स्टेशन पहुँचे। दूसरे दर्जे में दो सीटें रिजर्व करा ली थीं। हम यह भूल गए कि दूसरे दर्जे में रिजर्व कराने का मतलब सिर्फ बैठने की जगह सुरक्षित करना है, सोने की नहीं। यहाँ आने पर जब देखा, बैठे-बैठे बच्चों को लेकर गुजारा करना पड़ेगा, तो पहिले दर्जे में सीट ढूँढ़ने के लिए दौड़े, पर वहाँ कोई जगह खाली नहीं थी। देहरादून में फौजी स्कूल और दूसरी संस्थाओं के कारण ऊँचे अफसर जाया ही करते हैं, अब के तो अर्धकुम्भी भी लोगों को खींच रही थी। हमारे डब्बे में एक शरणार्थी डाक्टर अपने परिवार की महिलाओं के साथ जा रहे थे। दूसरे आदमियों में रेल के एक भूतपूर्व कर्मचारी अपनी वृद्धा पत्नी के साथ बैठे थे। पास के दूसरे दर्जे के डब्बे में जगह थी, शायद वहाँ अधिक स्थान मिल जाता, लेकिन जब स्थिति मालूम हुई, तो सामान लेकर दूसरे डब्बे में जाना मुश्किल था। मैंने ऊपर सामान रखने की सीट दखल की, इसलिए कमला को दो आदमियों की जगह मिल गई। संयोग से हमारे चार आदमियों की बेंच पर एक आदमी नहीं आया। जैसे भी हो, रात काटनी ही थी।

हरद्वार के ही यात्री ट्रेन में भरे हुए थे, इसलिए हरद्वार आने पर उनमें से बहुत-से उतर गए। भूतपूर्व रेलवे कर्मचारी शरणार्थी थे। देहरादून में उनके सम्बन्धी रहते थे, इसलिए पहिले अपना भारी-भर्कम सामान लेकर वह देहरादून जाना चाहते थे, जहाँ से अर्धकुम्भी स्नान के लिए आते। उनकी वृद्धा पत्नी कुछ अधिक मोटी थीं। चलना-फिरना उनके लिए मुश्किल था। ऊपर से पूरी धर्मात्मा थीं। हाथ धोने के लिए मिट्टी भी अपने साथ लेकर चल रही थीं। हरद्वार स्टेशन पर हाथ-मुँह धोने की सूझी, और मिट्टी लेकर पानीकल पर पहुँचीं। लौटते-लौटते गाड़ी चल पड़ी। पतिदेव दौड़कर चढ़े, लेकिन पत्नी छूटी जा रही थीं। जल्दी से गाड़ी रोकने की जंजीर खींच ली। पहिले दूसरे को खींचने के लिए कहा, लेकिन उसने इन्कार कर दिया। गाड़ी खड़ी हुई। गार्ड ने आकर कहा—"तुम्हारे ऊपर मुकद्दमा चलाया जाएगा।" वह कहने लगे—"मेरी बीवी छूटी जा रही थी, इसलिए मैंने खींची।" गार्ड ने कहा—"यह सब जवाब मजिस्ट्रेट के सामने आप दीजियेगा।" सामान उतार लिया गया और उन्हें स्टेशन के कर्मचारी के सुपुर्द कर दिया गया।

8 बजे हम देहरा पहुँचे। आज यहीं रहना था। बगीचे की रक्षा के लिए टोपीवाली बन्दूक साठ-पैंसठ रुपये में खरीदी थी। उसका कोई काम नहीं था, इसलिए बेच देना चाहते थे। हिमालय आर्मवालों ने उसे 60-65 में बेचा था, और अब 30 रुपया देने के लिए तैयार थे। उसे बेचकर रेमिंगटन के यहाँ मरम्मत के लिए दिये हुए टाइपराइटर को ले घर लौट आए। दिल्ली और देहरा में बहुत फर्क है। गर्मी यहाँ भी थी, पर दिल्ली जैसी नहीं।

**मसूरी**–6 अप्रेल को 9 बजे टेक्सी ली। पौने 10 बजे हम किताबघर (मसूरी) पहुँच गए, और आध घंटे में ही पैदल चलकर घर आ गए। जेता को दस्त आ रहे थे, और जुकाम भी था। हमारे पड़ोसी 'किल्डेर' के स्वामी कर्नल चाँद भी आ चुके थे, इसलिए डाक्टरी परामर्श से हम निश्चिन्त थे।

बुद्ध पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने लेख लिखने की माँग की थी। सोचा, इसी बहाने बुद्ध पर एक छोटी-सी पुस्तक तैयार हो जाएगी, इसलिए उदारतापूर्वक लिखने लग गए। दिल्ली से भैया (स्वामी हरिशरणानन्द) ने अपनी जीवनी की सामग्री दी थी, उसे भी लेकर अब 'घुमक्कड़ स्वामी (हरिशरणानन्द)' को दुबारा लिखना था, जिसे 8 अप्रेल से हमने शुरू किया।

9 अप्रेल के सोमवार को संवत् 2012 चैत बदी 13 रही। 63 साल पहिले वैशाख बदी 8 रविवार को संवत् 1950 विक्रमी को पन्दहा में मैं पैदा हुआ। यहीं आकर 60वें जन्मदिन को कमला ने विशेष तौर से मनाया था। आज 64वाँ जन्मदिन था। हम निश्चय कर चुके थे कि उस दिन अपने घर ही में विशेष खाना-पीना कर लेंगे, पार्टी-वार्टी नहीं करेंगे। सबेरे नित्य नियम के अनुसार तीन घंटे टाइप कराया। दोपहर को और अपराह्न की चाय में कुछ विशेष भोजन रहा। इस प्रकार यह दिन समाप्त हो गया।

# जीवन-यात्रा
# 6

महापंडित राहुल सांकृत्यायन की डायरी एवं पत्रों के आधार पर 10 अप्रैल 1956 से 15 अप्रैल 1963 तक की तथ्यपरक संस्मरणात्मक जीवन-गाथा, उनकी पत्नी श्रीमती कमला सांकृत्यायन द्वारा प्रस्तुत ।

पूज्य, महापंडित राहुल सांकृत्यायनजी की
पावन स्मृति को
सादर सप्रेम समर्पित

**—कमला**

# दो शब्द

पूज्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी ने अपने जीवन-काल में अपनी जीवन-कथा को 'मेरी जीवन-यात्रा' शीर्षक से पाँच भागों में लिखा था, जिनमें चौथा और पाँचवाँ भाग उनके निधन के बाद प्रकाशित हुआ था। हिन्दी के सुधी पाठकों ने 'मेरी जीवन-यात्रा' के सभी भागों को बड़ी रुचि के साथ पढ़ा। कितने ही ऐसे जिज्ञासु पाठकों एवं सज्जनों ने समय-समय पर मेरे पास पत्र भेजे और आग्रह किया कि पंडितजी की जीवनी के शेष भाग को मैं लिखकर पूरा कर दूँ। कई व्यक्तियों ने लिखा कि उन पाँचों भागों को पढ़ने के बाद उन्हें राहुलजी के शेष जीवन के बारे में जानने की प्रबल जिज्ञासा हुई है, जिसे तृप्त करने का क्या उपाय है ?

पंडितजी ने 'मेरी जीवन-यात्रा' के पाँचवें भाग में 9 अप्रैल 1956 ई. तक का विवरण दिया है। इसके बाद वे आठ वर्ष और जीवित रहे। इन आठ वर्षों में, अंत के डेढ़ वर्ष को छोड़, उनका जीवनक्रम गतिशील और क्रियाशील रहा। राहुल-प्रेमी विज्ञ पाठकों एवं मित्रों के अनुरोध पर मैंने उनकी जीवन-यात्रा के छठे भाग को लिखने में हाथ लगाया। इसमें 10 अप्रैल 1956 से 15 अप्रैल 1963 तक का विवरण मैंने प्रस्तुत किया है।

पंडितजी नियमित रूप से डायरी लिखा करते थे और उन्होंने 8 दिसम्बर 1961 तक यह क्रम जारी रखा। उसके बाद जब वे सपरिवार कलकत्ता गये हुए थे, वहीं उनको मस्तिष्क का पक्षाघात हुआ, जिसके कारण वे पढ़ना-लिखना भूल गये थे। फिर 9 दिसम्बर 1961 से मैंने नियमित रूप से डायरी लिखना आरम्भ किया, जिसमें उनकी रुग्ण स्थिति के प्रतिदिन का विवरण अंकित करती रही। अतः प्रस्तुत छठे भाग को लिखने में मैंने पंडितजी की डायरियों, उनकी लिखी हुई चिट्ठियों तथा अपनी डेढ़ साल की डायरी का उपयोग किया है। प्रस्तुत भाग में मैंने, जब तक पंडित जी का मस्तिष्क काम करता रहा, तब तक की लिखी हुई उनकी ही मूल पंक्तियों का अधिक से अधिक उपयोग किया है। इस प्रकार यह पुस्तक लिखने में मैंने यही प्रयत्न किया है कि राहुलजी के जीवन से प्रेरित पाठकों की जिज्ञासा को यथाशक्य शांत कर सकूँ। उन महापुरुष ने अपने जीवन में कैसे-कैसे साहसिक कदम उठाये, जीवन के शेष वर्षों में अपनी रुग्णावस्था में भी वे कितने परिश्रमशील रहे, देश की नई पीढ़ी को कुछ अधिक बौद्धिक खुराक दे जाने के लिए कितने काम किये, कितने स्थानों का भ्रमण किया, अपने परिवार के साथ वे कितने जुड़े हुए थे, इससे भी अधिक वे कितने ईमानदार इन्सान थे, पाठकों की इन्हीं जिज्ञासाओं को शांत करने का मैंने प्रयत्न किया है।

यदि प्रस्तुत छठा भाग राहुल-प्रेमी पाठकों को पसन्द आ जाये तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूँगी। वस्तुतः यह ग्रंथ लिखकर मैंने उन महापुरुष की अपूर्ण जीवन-कथा को पूरा

करने का प्रयास किया है, जिसका दायित्व वे मुझे सौंप गये थे। साथ ही मैं इस ग्रंथ के माध्यम से महापंडितजी को उनकी जन्मशतवार्षिकी के अवसर पर श्रद्धांजलि दे रही हूँ। इस पुस्तक को पूर्ण करने के लिए मेरे बच्चों ने भी मुझे प्रेरित किया है, अतः मैं उनका भी आभार मानती हूँ।

**–कमला सांकृत्यायन**

'राहुल निवास'
21 कचहरी रोड, दार्जिलिंग
25 नवम्बर, 1993

# 1
# मसूरी में राहुलजी की दिनचर्या

## 10 अप्रैल, 1956

उस दिन मसूरी में मौसम साफ न रहने के कारण कुछ सर्दी पड़ रही थी। शाम को ओले भी गिरे। पर सर्दी हो या गर्मी, अपने नियमित कार्यक्रम में राहुलजी को कोई बाधा नहीं पड़ती। उस दिन उन्होंने अपनी पुस्तक 'घुमक्कड़ स्वामी' को दिन के 11 बजे तक टाइपिस्ट को बोलकर लिखाया। उसके बाद लखनऊ से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'नया पथ' के लिए 'बुद्धकाल में नाटक' शीर्षक से एक छोटा-सा लेख लिखाया। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ऋग्वेदिक आर्य' वे उस समय तैयार कर रहे थे। तब तक उसके नौ अध्याय लिखे जा चुके थे तथा ग्यारह और लिखने बाकी थे, साथ ही वे उसे शीघ्र समाप्त कर देने के लिए बहुत उत्कण्ठित थे। इसके लिए सामग्री के पुनः निरीक्षण हेतु फिर से मूल ग्रंथ 'ऋग्वेद' को पढ़ने में भी उन्होंने हाथ लगाया। अतः 'ऋग्वेदिक आर्य' को लिखने के लिए मूल ऋचाओं को टाइप कराने का उन्होंने निश्चय किया। 'ऋग्वेदिक आर्य' वस्तुतः उनकी नवकल्पित पुस्तक 'दाशराज्ञ-युद्ध' (सप्त सिन्धु) की भूमिका था, किन्तु भूमिका ने बढ़ते-बढ़ते एक पृथक् पुस्तक का रूप ले लिया। उस दिन राहुलजी ने निश्चय किया—"भूमिका को लिखकर शीघ्र ही 'दशराज्ञ युद्ध' पर भी हाथ लगा देंगे।" इस वर्ष उसे अवश्य लिख डालने का उन्होंने संकल्प किया।

'घुमक्कड़ स्वामी' का लिखाना जारी रहा। पंडितजी सोच रहे थे कि यह ग्रंथ उनकी दूसरी कृति 'सरदार पृथ्वीसिंह' के आकार का होगा। यह उनके आत्मीय मित्र, जिनको वे 'भाई साहब' कहते थे, की जीवनकथा है। भाई साहब (स्वामी हरिशरणानन्द) अपने समय के नामी घुमक्कड़ रहे। अब वे अमृतसर में रहते थे और गर्मियों में हर साल सपरिवार मसूरी चले आते थे। मसूरी में दोनों प्यारे भाइयों का मिलन और गोष्ठियाँ होती थीं। राहुलजी ने सोच लिया कि इस बार जब भैयाजी आयेंगे तब उनसे पूछकर 'घुमक्कड़ स्वामी' को शुद्ध और रोचक रूप देंगे।

दिन के 12 बजे तक उनका लिखने का काम चलता रहता। भोजन के बाद वे फिर काम करने बैठ जाते। उन दिनों उनकी कई पुस्तकें प्रेस में थीं, जिनके प्रूफ प्रायः रोज ही आ जाते। परन्तु किसी दिन प्रूफ न पाने पर पंडितजी को बेचैनी होती थी। उनको वैसे काम की कमी कहाँ थी ? उस रात देर तक 'ऋग्वेदिक आर्य' के लिए नोट लिखते रहे। अन्य विषयों के लिए भी लेखनी साथ-साथ चल रही थी। बच्चों की ओर भी ध्यान दे रहे थे। उस दिन दोनों बच्चों को हल्का बुखार था, पिता का इनके लिए चिन्तित होना स्वाभाविक था।

13 अप्रैल को भी राहुलजी 'ऋग्वेदिक आर्य' के लिए तैयारी करते रहे तथा 'घुमक्कड़ स्वामी' को लिखाने में लगे रहे। आज सुबह की डाक से 'मध्य एशिया' का ढेर सारा गेली प्रूफ आ गया, उसे भी देखकर आज की ही डाक से लौटा दिया। अन्य यंत्रस्थ पुस्तकों के प्रूफ के आने की बाट भी जोह रहे थे। न आने पर

उन्हें झुँझलाहट होने लगती। आज शाम के समय डॉ. सत्यकेतु सपत्नीक आये। दोनों से उनकी काफी देर तक बातें हुईं। उन दिनों अखबारों में यह समाचार छप रहे थे कि सुभाष बाबू अभी जीवित हैं, किन्तु राहुलजी को विश्वास नहीं था कि वे जीवित हैं।

14 अप्रैल को राहुलजी ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के लिए 'भैषज्य गुरु बुद्ध' शीर्षक एक लेख लिखाया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'घुमक्कड़ स्वामी' के बयालीसवें पृष्ठ तक भी टाइपिस्ट से लिखवाये। उस दिन उन्होंने अपनी डायरी में अंकित किया, "श्रीनिवास जी (किताब महल के मालिक) की चिट्ठी आई। कई पुस्तकों को पुनर्मुद्रित कर रहे हैं। और माँगी है। 'घुमक्कड़ शास्त्र' में एक अध्याय तरुणियों के बारे में[1] लिखना है कल, कुछ और पुरातत्व पर भी। तीनों पुस्तकों को परसों भेज देना है।"

उस दिन दोपहर के भोजन से कुछ पहले राहुलजी के भतीजे उदयनारायण पाण्डे सारनाथ से आ पहुँचे। पंडितजी लिखते हैं, "पाँच ही साल में बहुत मोटे हो गये हैं। पिछले चार महीने से वह कनैला नहीं गये थे। घर के दोनों भाइयों से भी नौकरी कराना चाहते हैं श्यामलाल। पुराने समय का दिमाग समय पर सोचने नहीं देता। उदयजी ने बतलाया कि एक खेत का तीन हजार रुपया मिल रहा था। मुफ्त में चलाना है। जब खुद आबाद नहीं करते, तो दूसरे भला क्यों छोड़ देते ?"

अगले ही दिन (15 अप्रैल) 'घुमक्कड़ शास्त्र' के पन्द्रहवें अध्याय के रूप में उन्होंने एक अध्याय तरुणियों के बारे में लिखाया। अपराह्न में फतुवा के महंत श्री मंगलदेव ब्रह्मचारी उनसे मिलने आये। दोनों में देर तक बातें होती रहीं। उस साल हरद्वार में अर्धकुम्भी हो रही थी और साधु-समाज का सम्मेलन ऋषिकेश में हो रहा था। यहाँ सम्मेलन में भाग लेकर वे लोग पंडित जी से मिलने आये थे। इस समाज में भारत के सभी साधुओं का संगठन है, जिसे कांग्रेसवाले इस्तेमाल करना चाहते हैं। पर तो भी संगठन उन लोगों का है, जिन्हें घुमक्कड़ी और संस्कृति के लिए ही गंभीरता को कायम रखना है। राहुलजी ने कहा, "मठों की सम्पत्ति की रक्षा का प्रबंध करें। केन्द्र से कानून बनवाकर सम्पत्ति को बराबर नहीं कर सकते। उस पर उस सम्प्रदाय के संगठन का अंतिम अधिकार हो।"

दूसरे दिन प्रिंट आर्डर के लिए तीन फर्मे तथा 'मध्य-एशिया का इतिहास' के बहुत-से गेली प्रूफ भी आ गये। अब आज के लिए पंडितजी को खुराक मिल गयी। उन्होंने देर रात तक बैठकर सारे प्रूफों को देख डाला। जान पड़ता है छपने की गति तीव्र होगी–उनको ऐसी आशा थी। पुस्तकें लिखने-लिखाने तथा उनके लिए सामग्री तैयार करने के अतिरिक्त राहुलजी का मस्तिष्क देश की तत्कालीन राजनीति के लिए भी सतर्क रहता था। वे रेडियो से समाचार नियमित रूप से सुनते और समाचारपत्र भी बराबर पढ़ा करते। उन्हीं दिनों कुछ समाचार सुर्खियों में छपे, जिन पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने अपनी डायरी में लिखा–"नेहरू ने पिछले सप्ताह कश्मीर पर जो साफ-साफ कह दिया कि 'अमेरिकन सहायता के बाद अब मतदान की गुंजाइश नहीं है' यह अमेरिका और इंग्लैण्ड के लिए दो-टूक जवाब है।"

17 अप्रैल को 'घुमक्कड़ स्वामी' के करीब-करीब तीन चौथाई भाग को उन्होंने लिख डाला। शेष 20 पृष्ठ भैयाजी के आने के लिए छोड़ दिया। उस दिन 'जीवन-यात्रा' के अवशिष्ट भाग पर भी उन्होंने हाथ लगाया। 'ऋग्वेदिक आर्य' को लिखने के लिए भी सामग्री तैयार हो गयी। अगले महीने लिखकर उसे समाप्त कर देने का उन्होंने संकल्प कर लिया। उदयनारायण पाण्डेय कल चले जायेंगे। "अकाल वृद्धता, सिर के चाँद गंजी है, स्थूलता बढ़ गयी है।"

फिर अगले दिन 'जीवन-यात्रा' का कुछ अंश लिखाया, जिसमें 9 अप्रैल 1956 तक की कहानी आयी। ऋग्वेद की सामग्री ठीक करते रहे। कल लिखाने के लिए एक अध्याय को ठीक कर भी लिया, शेष अध्यायों को भी ठीक कर लेना है। श्रीलंका में तब श्री सोलोमन भण्डारनायके प्रधानमंत्री के पद पर थे। उन्होंने

1. 'घुमक्कड़ शास्त्र' का पहला संस्करण पहले ही प्रकाशित हो चुका था। तरुणियों के बारे में यह अध्याय बाद के संस्करण में जोड़ा गया।

शासन के लिए जो नीति अपनाई है उसके बारे में पंडितजी ने टिप्पणी की, "सोलोमन भण्डारनायके नेहरू के कदम पर चलना चाहते हैं। लंका गणराज्य होगा। अंग्रेजी सैनिक अड्डे हटेंगे। चीन, रूस, पूर्वी यूरोपीय राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करेंगे।" डायरी लिखते समय राहुलजी अपने मित्रों पर भी कभी-कभी टिप्पणी लिखना नहीं भूलते थे। आज उन्होंने लिखा, "श्री प्रभाकर माचवे अब पूरे दरबारी तथा दरबार-विरोधियों के घोर विरोधी हो गये हैं।" उस दिन उन्हें श्री हर्षदेव मालवीय का पत्र मिला था, शायद उसी के सन्दर्भ में पंडितजी ने उक्त टिप्पणी लिखी है।

1956 का वर्ष भगवान बुद्ध की 2500वीं जयन्ती का वर्ष था। चारों ओर से राहुलजी से भगवान बुद्ध के बारे में लेख और भाषण माँगे जा रहे थे। आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र के लिए भी उन्होंने स्वीकृति दे दी, विषय दिया था 'बुद्ध और अहिंसा'। दूसरे दिन वार्ता लिखकर भेज भी दी। इस वर्ष उनके कई विशाल ग्रन्थ प्रेस में थे, जिनके प्रूफ प्रायः प्रतिदिन ही आते। 19 अप्रैल को 'संस्कृत काव्यधारा' के नमूने के प्रूफ आये। उन्होंने उसी दिन देखकर डाक से लौटा भी दिया। अन्य पुस्तकों के गेली प्रूफ भी बहुत-से आये। 'मध्य एशिया का इतिहास' के तब तक पौने तीन सौ पृष्ठ के प्रेस कापी के प्रूफ आ गये। अब डेढ़ सौ पृष्ठ प्रायः रह जाते हैं। पुस्तक 500 पृष्ठ रायल साइज की होनेवाली थी।

प्रयाग के श्री रामनाथ सुमन ने पंडितजी से एक पुस्तक 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों' में प्रकाशनार्थ ली थी। उसको मुद्रण के लिए सम्मेलन मुद्रणालय में दिया गया है, यह समाचार सुनकर राहुलजी को लगा कि उनके ग्रन्थों के प्रूफ आने में देर होगी, क्योंकि 'संस्कृत काव्यधारा' और 'मध्य एशिया का इतिहास' भी सम्मेलन मुद्रणालय से छप रहे थे। प्रूफ के देर से आने की शिकायत उन्होंने प्रेस के तत्कालीन जनरल मैनेजर श्री सीताराम गुण्ठे को लिख भेजी थी, जिस पर गुण्ठेजी ने पत्र की शब्दावली पर असंतोष प्रकट किया। राहुलजी भी मानते थे, नहीं लिखना चाहिए था, पर गति (प्रूफ के आने की) तो कुछ मद्धिम पड़ी ही थी।

उन दिनों राहुलजी का दिमाग और उनके टाइपिस्ट की उँगलियाँ मानो एक दूसरे से प्रतियोगिता कर रही थीं। लिखने-लिखाने का काम नियमित रूप से निर्विघ्न हो रहा था। पंडितजी का प्रतिदिन का कोटा था, 16 पृष्ठ फुलस्केप के टाइप करवाना, चाहे वह किसी ग्रन्थ के लिए हो अथवा कोई लेख हो। 'जीवन-यात्रा' पाँचवें खण्ड की लिखाई भी तेजी से हो रही थी। उन्होंने निश्चय किया कि एक सप्ताह में इसका लिखना समाप्त कर देंगे। 800 पृष्ठों का ग्रन्थ और लिखने का समय सिर्फ दो सप्ताह ! इसी से मालूम होगा कि लिखने की रफ्तार कितनी तेज थी। दोपहर के भोजन के बाद वे कल के लिए लिखाने की सामग्री तैयार करते। आज भी (20 अप्रैल) 'ऋग्वेदिक आर्य' की सामग्री ठीक करते रहे। कल तक अध्ययन का काम समाप्त होनेवाला था, किन्तु 'जीवन-यात्रा' के लिए एक सप्ताह और समय देना था। 'ऋग्वेदिक आर्य' का लेखन अब उन्हें शीघ्र समाप्त होने की आशा थी। इसलिए श्रीनिवास अग्रवालजी को इसकी छपाई का भी प्रबंध करने के लिए उन्होंने लिखा।

घर में कभी-कभी नौकर न होने से कामकाज में काफी दिक्कत पड़ जाती थी। रसोईघर का काम फिर मुझे ही सँभालना पड़ता था, इसके कारण मैं पंडितजी के कार्य में विशेष सहायता नहीं दे पाती थी। मेरा घरेलू काम करना, बर्तन धोना उन्हें बहुत अखरता था, इसलिए जब उस दिन तीन सप्ताह की छुट्टी के बाद हमारा पुराना नौकर लौट आया तो उन्हें विशेष प्रसन्नता हुई। बच्चों पर हाथ चलाना पंडितजी को बुरा लगता था। लेकिन बच्चा हरदम पें-पें करता रहे तो माँ को थोड़ा-बहुत गुस्सा तो आ ही जाता है। उस दिन मुझे भी कुछ ताव आ गया और जेता को मैंने पिता के सामने ही रुला दिया। उनको बहुत दुःख हुआ। रात को अपनी डायरी में मेरे लिए लिखा—"कमला जिद्दी होती जा रही है। जेता को रुलाने में उसे आनन्द आता है। माफी माँगकर फिर भूल जाती है।" उन्होंने कभी किसी पर हाथ नहीं उठाया, हमारे ऊपर भी नहीं। किन्तु उनकी ऐसी पंक्तियाँ ही मेरे गालों पर तमाचा जड़ देती थीं।

21 अप्रैल : 'जीवन-यात्रा' की लिखाई पूरी हो गई। अब कल से 'ऋग्वेदिक आर्य' पर हाथ लगाने का उन्होंने निश्चय किया। अब तक जिन ग्रंथों को लिखने का उन्होंने सोचा था उनमें केवल 'पालि काव्यधारा'

ही शेष रह गयी थी। इस पर भी इसी साल जून महीने में हाथ लगाने का उन्होंने निश्चय किया। उस दिन भोजनोपरान्त पंडितजी मुझको लेकर शहर गये। मसूरी में अप्रैल के महीने में भी उनको गर्मी लगने लगी थी। लगेगी भी क्यों न, जबकि उन दिनों प्रयाग में तापमान 110 फारेनहाइट था। मैदानी क्षेत्र में गर्मी का बढ़ना पहाड़ के दूकानदारों के लिए खुशखबरी होती है। किन्तु मसूरी में तो अप्रैल में सुबह-शाम जाड़ा ही रहता है, तब तक तो यहाँ के भोटिया दूकानदार भी दिल्ली से नहीं आते। शहर जाने पर फिर राहुलजी अपने मित्र डॉ. सत्यकेतु जी से मिले बिना कैसे लौटते। शाम की चाय वहाँ पीकर, कुछ देर देश-विदेश की राजनीति की, साहित्य की, घर की बातें कर उन्होंने डाक्टर साहब से छुट्टी ली और रिक्शे पर बैठकर घर लौट आये। वह देर तक बाहर रहना पसन्द नहीं करते थे, अतः आज शाम सात बजे ही घर लौट आने पर उनको बड़ा संतोष हो रहा था।

'जीवन-यात्रा' के (4-5) खण्ड को उन्होंने 22 अप्रैल के दिन लिखकर समाप्त किया। इस खण्ड में 17 अगस्त, 1947 से 19 अप्रैल, 1953 तक की जीवन-कहानी लायी गयी। अब वे 'ऋग्वेदिक आर्य' में हाथ लगाने के लिए व्यग्र थे। पंडितजी के निरीक्षण में देहरादून-निवासी श्री सदानन्द मेहता शोधकार्य कर रहे थे। सप्ताह में एक बार आकर वह अपने निर्देशक को अपना काम दिखा जाते थे। उस दिन भी मेहताजी आये। इस बार वह थोड़ा ही लिखकर लाये थे और पंडितजी चाहते थे कि शोधकार्य में शोधकर्ता की लेखनी तीव्र गति से चले।

'ऋग्वेदिक आर्य' का लेखन 23 अप्रैल, 1956 से प्रारम्भ हुआ। उस दिन उन्होंने इसके अवशिष्ट अंश को टाइपिस्ट से लिखवाना शुरू किया, जिसका एक अध्याय समाप्त भी हो गया। उस दिन भी गेली प्रूफ बहुत-से आये, और दोपहर भोजन के बाद से रात तक उनको देखकर समाप्त कर दिया। 'संस्कृत पाठमाला'-2 (जो चौखम्बा, वाराणसी से छप रही थी) के पेज-प्रूफ को भी देखकर लौटा दिया। इस वर्ष उनकी कितनी ही पुस्तकें छपकर बाहर आनेवाली थीं। श्रीनिवासजी भी पुस्तकों की छपाई में स्फूर्ति दिखला रहे थे। वर्षों से पड़ी हुई 'तिब्बत में सवा वर्ष' पुस्तक का बंगला-अनुवाद कलकत्ता के केदारनाथ चट्टोपाध्याय (श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय के सुपुत्र) 'निषिद्ध देशे सवा वत्सर' के रूप में इस बार निकाल रहे थे। तेलुगु में 'सिंह सेनापति' का अनुवाद भी तैयार हो गया। इस तरह पुस्तकों के व्यापक प्रचार से लेखक को प्रसन्नता होनी स्वाभाविक ही है।

राहुलजी किसी काम को आरम्भ करते तो उसे समाप्त करके ही छोड़ते। अब प्रतिदिन 'ऋग्वेदिक आर्य' का लिखवाना नियमित रूप से चलने लगा। लेकिन यह ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों की तरह का नहीं, इसमें बीच-बीच में संस्कृत के उद्धरण भी देने थे। इस प्रकार 16 पृष्ठों के स्थान पर प्रतिदिन 8-10 पृष्ठ से अधिक लिखवाना सम्भव न हुआ। लिखाने के अतिरिक्त ढेर के ढेर प्रूफ भी तो उनको देखने पड़ते थे। सेन्सर के पहले देखने के बाद ही उनकी डाक आती, इसलिए कभी-कभी ढेर सारी डाक इकट्ठे आती और डाक की शिकायत सभी जगह एक समान। उस दिन 24 अप्रैल को पंडितजी के तिब्बत के पुराने मेजबान साहु प्रत्येकमान का पत्र कलिम्पोंग से आया। वह नेपाल से तिब्बत जाने के लिए कलिम्पोंग आये हुए थे। पत्र से मालूम हुआ कि "तिब्बत से भेजे गये समाचारपत्रों को याटुंग से भारतीय डाक लौटा देती है। आखिर ऐसा क्यों ?"

सन् 1944 से 47 तक की यात्रा का विवरण 'रूस में पचीस मास' को भी राहुलजी संक्षेप में करके 'जीवन-यात्रा' में जोड़ देना चाहते थे, किन्तु उसे संक्षेप करने की जरूरत नहीं थी। पुस्तक अपने आप में सम्पूर्ण है। लेखक की इच्छा का ख्याल करते हुए उक्त पुस्तक को द्वितीय संस्करण में उनकी 'जीवन-यात्रा' के तृतीय खण्ड के रूप में प्रकाशित कर दिया गया, जिससे उनकी इच्छा की पूर्ति हो गई।

25 अप्रैल को उन्होंने 'ऋग्वेदिक आर्य' का एक अध्याय लिखवाया। आज भी छप रहे ग्रन्थों के पेज प्रूफ और गेली प्रूफ बहुत आये। रात को बहुत देर तक बैठकर उन्होंने देखा। प्रेसवालों के छपे फार्म न भेजने की उनको शिकायत थी। पंडितजी की लेखनी अबाध गति से चल रही थी, जीवन अब अत्यन्त व्यस्तता का बन गया। किन्तु आसपास के वातावरण और लोगों पर भी उनका ध्यान बराबर रहता था। मसूरी में अपने घर के फाटक के पास ही नगरपालिका के बिजली विभाग के एक छोटे क्वार्टर में एक गढ़वाली परिवार रहता

था। गृहपति कल्याणसिंह चौकीदारी के अलावा घर में बाग-बगीचे भी देखता। उसके बच्चे-कच्चे बहुत थे और गरीबी की पराकाष्ठा। उस परिवार पर पंडितजी की बड़ी सहानुभूति रही। वे उस परिवार की दुख-बीमारी में उनका हाल बराबर पूछा करते। एक बार नगरपालिका ने कल्याणसिंह की बदली देहरादून में कर दी। वहाँ उसे रहने के लिए क्वार्टर मिला, किन्तु बाग-बगीचे के लिए वहाँ जमीन नहीं थी। अपने परिवार को लेकर वह देहरादून गया, किन्तु गरीबी पहले से और अधिक बढ़ गयी। अपने घर के पास की उस सूनी कुटिया को देखकर राहुलजी का मन भी कभी-कभी उदास हो जाया करता था। एक बार किसी काम से उन्हें देहरादून जाना पड़ा। वहाँ वे उस गरीब की कुटिया पर भी गये। दरिद्रता का सम्पूर्ण दृश्य वे अपनी आँखों से देख आये। यह देखकर वे चुप नहीं बैठे। देहरादून और मसूरी की नगरपालिकाओं के पास कल्याणसिंह से अर्जी दिलवा स्वयं भी अलग से पत्र लिखकर उस चौकीदार का पुनः मसूरी में तबादला करवाया। इस प्रकार राहुलजी ने इस परिवार का उद्धार किया। उस अप्रैल महीने में इसी कल्याणसिंह के घर में सब के सब बीमार थे। पड़ोसी होने के नाते वे उस परिवार की देखभाल के लिए बराबर जाते रहे। अपनी डायरी में भी उन्होंने लिखा, "कल्याणसिंह के घर में सभी बीमार हैं।"

भगवान बुद्ध के सम्बन्ध में अनेक स्थानों से उनके पास लेखों की माँग आ रही थी। 'वैशाली ग्रन्थ' के लिए उसी दिन 'महान जनवादी बुद्ध' शीर्षक से एक लेख लिखवाया। इसके अतिरिक्त 'ऋग्वेदिक आर्य' का भी एक अध्याय आज लिखवाया। लिखने का काम क्रमबद्ध चलने लगा। 'मध्य एशिया' की छपाई अब समाप्ति पर थी, इसीलिए उसके ढेर के ढेर प्रूफ आते रहते थे। 27 अप्रैल को राहुलजी के पुराने परिचित कोंच-निवासी श्री जयदेव गुप्त आये। वह टेहरी में पंचायत के अधिकारी थे। क्योंकि वह पब्लिक सर्विस कमीशन से नहीं आये थे, इसलिए छः-सात साल बाद अब जवाब मिल गया था। सभी जगह भ्रष्टाचार देखकर वह असंतुष्ट और निराश थे। उनके पिता स्वामी ब्रह्मानन्द, जो पहले रामदीन पहाड़िया के नाम से जाने जाते थे, 95 वर्ष के होकर 1952 में मर गये। इनके तीन बेटे थे जिनमें श्यामलाल और पन्नालाल भी वृद्ध हो गये थे। "श्यामलाल जी का अपना प्रेस है, अच्छी आमदनी है, उनके तीन लड़के भी हैं। पन्नालाल जी के लड़कों को अनाज के भाव गिरने से डेढ़ लाख का घाटा लगा, जिससे परिवार की कमर ही टूट गयी।" उस परिवार के बारे में राहुलजी ने अपनी पुस्तक 'जिनका मैं कृतज्ञ' में प्रकाश डाला है।

दूसरे-तीसरे दिन भोजन के बाद जयदेवजी चले गये। वह कुछ विचित्र किस्म के जीव थे। पंडितजी के टाइपिस्ट मंगलदेवजी का एक हारमोनियम था। जयदेव महाशय बहुत भोर को उठकर हारमोनियम बजाकर गाने लगे और उनका स्वर भी तानसेन को मात करने के लिए होड़ ले रहा था। उनके गायन ने निश्चय ही राहुलजी को आश्चर्यचकित कर दिया। चलते समय जयदेवजी ने अपना विचार उनके सम्मुख रख दिया था। वह नई बीवी की तलाश में थे। पात्र के रूप में उन्होंने मेरी छोटी बहन को, जो उस समय मसूरी में हमारे पास आई हुई थी, चुन लिया। गायन-वादन का आयोजन भी शायद पात्रा को रिझाने के लिए था। राहुलजी सशंकित हो गये थे और इसीलिए उन्होंने मेरी बहन से कह दिया कि उस व्यक्ति के सामने पड़ना ही नहीं, तुम दीदी के कमरे में आकर बैठो। महोदय जब निराश होकर चलने लगे तो पंडितजी ने हिदायत के तौर पर दो-चार शब्द कह भी दिये। उन्होंने लिखा, "जयदेव भोजन के बाद चले गये। अव्यावहारिक और समझ की कमी तो है ही। अच्छी-खासी नौकरी मिली थी। नई बीवी ढूँढ़ने की बात कही।" (24 अप्रैल, 56)।

नित्य नियम के अनुसार 25 अप्रैल को भी 'ऋग्वेदिक आर्य' का अध्याय लिखवाया गया, क्योंकि इसे अगले सप्ताह तक समाप्त कर देना था। सभी संस्कृत ऋचाओं को मिलाकर पुस्तक के पाँच सौ पृष्ठों की होने की आशा थी और छपने पर इतनी ही हुई भी। उसी दिन रिसर्च स्कालर श्री मेहताजी देहरादून से आ गये। उनके लिखे शोधपत्र को भी पंडितजी ने उसी समय देख दिया।

भगवान बुद्ध की 2500वीं जयन्ती के अवसर पर पंडितजी के पास लेखों की बराबर बड़ी माँग आई हुई थी। आकाशवाणी दिल्ली से भी 4 मई के कार्यक्रम में 25 मिनट की एक वार्ता देने के लिए उनके पास निमंत्रण आया। रेडियो में वार्ता की रिकार्डिंग के लिए लखनऊ जाना उनके लिए असम्भव ~~था~~, क्योंकि समयाभाव

के साथ ही उनके अपने विशेष सिद्धांत भी थे। अतः रेडियोवालों से मसूरी के घर में आकर रिकार्डिंग करने की बात तय हो गई। वार्ता के लिए उनको 'बुद्ध का व्यक्तित्व' विषय दिया गया था। अब इसे लिखने की तैयारी होने लगी।

मसूरी-निवास से राहुलजी का मन तो भर ही गया था। विदेश जाने के लिए भी उनके मन में आकांक्षा उत्पन्न हो गयी थी। अतः अपने निजी मकान 'हर्न-क्लिफ' की बिक्री के लिए कई अखबारों में विज्ञापन दे रखे थे। 30 अप्रैल को भी 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में एक विज्ञापन निकला। उस सन्दर्भ में चार पत्र भी आये। आज भी 'मध्य एशिया का इतिहास' पुस्तक के फर्मे आये, जिसे देखकर लेखक को खुशी हो रही थी। 'संस्कृत पाठमाला'-3 के छपे फर्मे भी आये।

काम द्रुत गति से चल रहा था। 1 मई को राहुलजी ने 'बुद्ध का व्यक्तित्व' शीर्षक लेख लिख डाला, जो कुल 12 पृष्ठ का हुआ। किन्तु रेडियो के लिए तो सिर्फ 5 पृष्ठ ही चाहिए थे। बीच-बीच में उनको अपनी नन्हीं बेटी जया के साथ खेलना भी पसन्द था, अतः काम रोक देते। बाजार में राशन आदि की खरीदारी के लिए मुझ को जाना पड़ता और बाजार भी घर से करीब तीन मील की दूरी पर। चीन में हो रही प्रगति से वे प्रभावित थे। उनके मन के एक कोने में उस महान देश को देखने को इच्छा बनी हुई थी, अतः उस देश की प्रगति एवं राजनीति से दिलचस्पी होना उनके लिए स्वाभाविक ही था। 1 मई की डायरी में उन्होंने चीन और रूस के बारे में अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया, "चीन बहुत जल्दी कृषि और उद्योग में समाजीकृत हो रहा है। साइंस के नये आविष्कारों में रूस की तेजी से प्रगति हो रही है, दूसरी ओर स्तालिन के व्यक्तिवाद से जो हानि हो रही थी, उसे हटाया जा रहा है।"

अगले दिन याने 2 मई को उन्होंने और कोई नई चीज नहीं लिखाई। बहुत-से प्रूफ आ गये थे, उन्हीं को देखते रहे। दिल्ली से आल इंडिया रेडियो के प्रतिनिधि श्री भटनागर हमारे घर आये। वह राहुलजी की रेडियो-वार्ता की रिकार्डिंग के लिए आये थे। 'बुद्ध का व्यक्तित्व' शीर्षक से 14 मिनट का भाषण रिकार्ड करा दिया। भारत में राहुलजी की यह पहली रेडियो-वार्ता थी, जबकि लेनिनग्राद में प्रोफेसरी के समय कई वार्ताएँ रिकार्ड की गयी थीं। हो सकता है, मई 1956 में हुई राहुलजी की इस आवाज की रेकार्डिंग को आकाशवाणी दिल्ली ने सुरक्षित रखा हो। उसी दिन खबरों से पता चला कि नेपाल के नये नरेश राजा महेन्द्र का राज्याभिषेक हुआ। राहुलजी डायरी में लिखते हैं, "उस समारोह में गत युग की रस्में अदा की गईं। यह जन-गण-मन वाले नेताओं को भी पसन्द आयेगा।"

3 मई को राहुलजी ने फिर 'ऋग्वेदिक आर्य' का अगला अध्याय लिखवाया। अब उसके अंतिम अध्याय पर वे पहुँच रहे हैं। अध्याय समाप्ति के बाद ऋग्वेद की मूल ऋचाओं को उतरवाना है। उनके पास काम की कमी नहीं थी। उर्वर मस्तिष्क हर नये काम के आविष्कार के लिए तैयार। एक साथ दो-तीन पुस्तकों के लिखाने में हाथ लगाया जाता। इधर 'ऋग्वेदिक आर्य' लिखाया जा रहा है तो उधर 'महामानव बुद्ध' के लिए दसियों लेख लिखे जा रहे हैं। साथ ही 'जीवन-यात्रा' (चौथे-पाँचवें खंड) के लिए भी शेष सामग्री तैयार हो रही है। देखकर आश्चर्य होता है, कैसा मशीनी दिमाग है जो एक क्षण विश्राम लेना भी नहीं चाहता।

उन दिनों पंडितजी को मसूरीवाले मकान को बेच देने की फिक्र थी। 'हर्न-क्लिफ' को उन्होंने कुल 22 हजार रुपये में खरीदा था, किन्तु यह मकान शहर के अंतिम छोर पर था, इसीलिए खरीदार नहीं मिल रहे थे। ऐसे में वे इसे 10-12 हजार में भी बेच देने को तैयार थे। वैसे 1956 के वर्ष में कहीं विदेश जाने की चर्चा नहीं थी, किन्तु मसूरी का मकान उनके लिए एक फन्दा ही था। शहर जाने के लिए काफी चढ़ाई पार करके जाना पड़ता था। दुःख-बीमारी के समय नजदीक कोई डाक्टर या दवा का प्रबंध भी नहीं था। वैसे तो पंडितजी ने खूब देख-भालकर, बहुत पसन्द करके 'हर्न-क्लिफ' को 1950 में खरीदा था, किन्तु यहाँ कई बातों की असुविधाएँ वे स्वयं ही अनुभव करने लगे थे। अतः उन्होंने सोचा कि यह मकान बिक जाने पर पास के ही मिस्टर लेडली के मकान को किराये पर लेकर रहेंगे, ताकि इधर-उधर जाना हो तो सुविधा रहे।

'ऋग्वेदिक आर्य' की लिखाई कितने ही दिनों तक चलती रही। 'संस्कृत पाठमाला' के पाँचों भागों को

चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी वालों ने ले लिया। शीघ्र छाप देने की बात से लेखक का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। इतवार के दिन राहुलजी लगभग छुट्टी रखते, यह दिन उनके मिलने-जुलनेवालों के लिए समर्पित था। 6 मई को भी इतवार पड़ा। उस दिन उनके परम मित्र श्री मुनीश्वरनाथ जुत्शी (लखनऊवाले) अपनी धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी जुत्शी के साथ राहुलजी से मिलने आये। दोनों पति-पत्नी साहित्य-रसिक, पत्नी तो उर्दू की कवयित्री थीं, गोष्ठी अच्छी जमी। जुत्शी साहब पहले इंजीनियर रहे और अब अवकाश प्राप्त कर लखनऊ में रहते थे। गर्मियों में वे सपरिवार मूसरी आया करते थे। दोनों ही बड़े सुसंस्कृत और स्नेही व्यक्ति, इसलिए हमारे घर में उन दोनों का सदैव स्वागत रहता था। श्री जुत्शी संस्कृत सीखना चाहते हैं, उनको भी अपनी 'संस्कृत पाठमाला' पढ़ने की राय हमारे पंडितजी ने दी।

7 मई को 'ऋग्वेदिक आर्य' की ऋचाओं को उन्होंने टाइप करवाया। पुस्तक लगभग 500 पृष्ठ की होने जा रही थी। दिन-भर घर में बैठे-बैठे उनका मन भी तो उकता जाता, इसलिए वे शाम को टहलने का प्रोग्राम बनाते, किन्तु थोड़ी दूर तक ही जाकर वे लौट आते, क्योंकि पहाड़ की चढ़ाई चढ़ने के लिए उनका पहले जैसा स्वास्थ्य अब नहीं था। लेखनी तो उनकी अबाध गति से चलती ही थी, साथ ही उन्हें अपने नन्हें बच्चों का भी पूरा ख्याल रहता। उस समय शहर में 'वचन' नामक फिल्म चल रही थी। इसमें 'चन्दा मामा दूर के'वाला गाना भी है, जिसे हमारी बेटी जया बचपन में बहुत पसन्द करती थी। उसे सुनाने के लिए ही पंडितजी मुझे और जया को लेकर 8 मई को यह फिल्म देखने गये। फिल्म उन्हें अच्छी लगी। शहर जाने पर वे अपने मित्र डॉ. सत्यकेतु जी से भी अवश्य मिलते थे। आज भी उनके यहाँ हम सब गये, शाम की चाय वहीं पी। कुछ देर बातें करके पंडितजी हमें लेकर 'हैपीवेली' लौट आये। उस दिन की डाक से उनके नाम बहुत-सी चिट्ठियाँ आई थीं, जिनमें बहुतों ने उनसे लेख माँगे थे। पर लिखें तब न। इस बार की गर्मी में मैदानी शहरों का तापमान 115-116 फारेनहाइट तक पहुँच रहा था। मसूरी में भी मई के महीने में काफी तेज धूप रहती है। इतनी धूप भी पंडितजी के लिए सह्य नहीं थी।

9 और 10 मई को राहुलजी ने 'प्रज्ञा पारमिता' पर लेख लिखवाया। बाद में यह लेख उनके 'महामानव बुद्ध' में संगृहीत हुआ। 'ऋग्वेदिक आर्य' का लिखना भी प्रायः समाप्त हो गया था। मकान की बिक्री के लिए दुबारा विज्ञापन दिया गया था, जिसके कारण बहुत-से लोगों के रोज ही पत्र आते और मकान देखने के लिए लोग भी बराबर आने लगे। 11 मई को पंडितजी ने 'ऋग्वेदिक आर्य' के 16वें अध्याय को लिखकर समाप्त किया और इसके परिशिष्ट में हाथ लगाया। 'मध्य एशिया' के बहुत-से प्रूफ फिर आये, उन्होंने आज ही देखकर लौटा दिया। उन दिनों बम्बई के लिए महाराष्ट्र और गुजरात के बीच संघर्ष छिड़ा हुआ था। बम्बई के एक प्राध्यापक राहुलजी से मिलने आये। उन्होंने बतलाया कि यदि बम्बई को जनमत पर रखा जाये तो वह महाराष्ट्र को ही पसन्द करेगी। और हुआ भी ऐसा ही।

'ऋग्वेदिक आर्य' पुस्तक वस्तुतः 'दाशराज्ञ-युद्ध' अथवा 'दिवोदास' उपन्यास की भूमिका थी, जो अब एक स्वतंत्र पुस्तक बन गयी। ऋग्वेद की ऋचाओं के अनुवाद के साथ इस ग्रंथ को पूरा होने में मई का पूरा महीना लगनेवाला था। इसके बाद जून में 'दाशराज्ञ-युद्ध' शुरू करने की योजना उन्होंने बना ली। यह भी दो महीने का काम था। उधर वे अकबर के नौरत्नों पर भी लेख लिखकर इतिहास के प्रगतिशील व्यक्ति के नाम से संग्रह छपवाने की योजना बना चुके थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने 13 मई को अपनी डायरी में अंकित किया—"अच्छा हो, यदि मुस्लिम काल (मुगल) को ले लें। पुस्तकों की जरूरत होगी, सुल्तानों और बादशाहों को छोड़ देंगे। डेढ़ दर्जन तो आ ही जायेंगे।"

14 मई से 'ऋग्वेदिक आर्य' की पाण्डुलिपि की आवृत्ति शुरू हो गई। ऋचाओं का अनुवाद भी शुरू कर दिया। काम करने में उनकी गति का क्या कहना, जैसे मशीन की गति हो। इसी दिन उन्हें एक खुशखबरी भी सुनाई दी : उनकी कमला द्वितीय श्रेणी में एम. ए. पास हो गई। "प्रथम श्रेणी में पास हो सकती थी, यदि थोड़ा और परिश्रम किया होता। तो भी बहुत संतोष है। अब डाक्टरेट का रास्ता भी खुला है।" उनके हाथों से लगायी पौध की उत्तरोत्तर वृद्धि पर उनको संतोष होना स्वाभाविक ही था। आखिर उन्हीं की प्रेरणा और

परिश्रम से उनकी कमला इस मंजिल तक पहुँचने में सफल हुई, इसलिए मुझसे भी बढ़कर उनको खुशी हो रही थी।

वैदिक पृष्ठभूमि में एक उपन्यास लिखने की योजना पहले ही बन चुकी थी। उपन्यास का क्या नाम रखा जाये, अभी तय नहीं हुआ। 15 मई को वे लिखते हैं–"क्यों न 'सप्तसिन्धु' उपन्यास का नाम रखें जिसमें शम्बर-युद्ध और दाशराज्ञ-युद्ध दो भाग आ जायेंगे। दोनों स्वतंत्र और जुड़े रहेंगे। अभी पात्रों का निश्चय करना होगा। ऋग्वेद में बहुत-से आये हैं, उनमें से कुछ को ही लेना होगा।" दूसरे दिन याने 16 मई को भी 'ऋग्वेदिक आर्य' की पाण्डुलिपि का वे संशोधन करते रहे। आज ही 'दोहाकोश' के चार फार्मों के प्रूफ आये थे, उनको भी देखकर आज ही लौटा दिया। आज का काम कल के लिए छोड़ने की उनकी आदत नहीं थी। कामों के बीच-बीच में आर्थिक चिन्ता भी उन्हें परेशान कर देती थीं। किताब महल के मालिक श्रीनिवास अग्रवाल की चुप्पी के कारण वे झुंझलाते थे। रुपयों की दिक्कत तो परिवारवालों को होती ही है।

17 मई को राहुलजी 'मध्य एशिया का इतिहास' के लिए शब्दसूची तैयार करते रहे। आज भी बहुत से प्रूफ आये, सबको देखकर उसी दिन लौटा भी दिया। शाम को उनके मित्र श्री सत्येन्द्र तथा श्री वीरेन्द्र पाण्डे देहरादून से आये। सत्येन्द्रजी (बद्रीपुर) बासमती चावल के क्षेत्र के हैं, पंडितजी के साथ उनका बहुत पुराना परिचय था। बद्रीपुर में वे हम सबको कई बार ले गये, बासमती चावल और मीठे रसीले गन्नों का स्वाद हमें बराबर मिलता रहा। श्री सत्येन्द्रजी की धर्मपत्नी श्रीमती लज्जारानी मेरी घनिष्ठ सहेली रहीं। उनका स्नेह मेरे प्रति बराबर बना रहा। अपनी जिन्दगी में कुछ ऐसे स्नेही और सुहृद लोग मिले, जिनका स्नेह हम दोनों के लिए बहुमूल्य रहा है।

अगले दिन याने 18 मई को भी पंडितजी की दिनचर्या व्यस्त रही। वही लिखना-लिखाना, प्रूफ पढ़ना-भेजना। मित्र भी यदा-कदा आते ही रहते, उनके लिए भी समय देना बहुत जरूरी होता। फिर कार्य-व्यस्तता का असर शरीर पर क्यों न पड़े ? उस दिन उन्होंने लिखा–"अब हृदय और आँखों पर जोर पड़ने लगा है, जिससे डर लगता है कार्यव्यस्तता में कमी होने का। जीवन-भर उसे तो कम नहीं होना चाहिए।" इस वर्ष उनकी कितनी ही पुस्तकें तैयार हो रही थीं : 'मध्य एशिया का इतिहास' (दो खण्डों में), 'अकबर', 'ऋग्वेदिक आर्य', 'जीवन-यात्रा' (4-5) तथा 'महामानव बुद्ध'। कुछ तो प्रेस में छप ही रही थीं और कुछ प्रेस में जाने की तैयारी कर रही थीं। इससे लेखक को प्रसन्नता हो रही थी। किन्तु प्रसन्नता के साथ ही व्यक्ति के जीवन की अन्य समस्याएँ न हों तो सोने में सुहागा। ऐसा तो हम लोगों के जीवन में कभी नहीं रहा। अर्थ की व्यवस्था की समस्या सदैव उन्हें घेरे रहती, इसलिए अधिक से अधिक काम करने का वे प्रयत्न करते। 'मध्य एशिया' के दोनों खण्ड अगस्त माह तक निकल आयेंगे, इससे पंडितजी को बड़ा संतोष ही रहा था।

## मसूरी में सैलानियों का मौसम

अन्य पर्वतपुरियों की तरह मसूरी में मई के महीने से गर्मियों का सीजन आरम्भ हो जाता है। पहाड़ों पर सैलानियों की भीड़ आने लगती है। हमारे यहाँ भी हर साल कुछ न कुछ अतिथिगण पहुँच ही जाते थे। इस वर्ष भी बहुत-से लोगों के आने की सम्भावना थी। 20 मई को राहुलजी के भाई साहब (स्वामी हरिशरणानन्द जी)–भाभी जानकी देवीजी, उनकी बहन का पुत्र मुन्ना तथा भाभीजी की ही छोटी बहन कमला के साथ–आ गये। स्वामीजी को उसी दिन अमृतसर लौट जाना था क्योंकि एक बड़े मुकदमे के लिए उनको बम्बई जाना था। इसलिए वे अपने परिवार को हमारे पास ही छोड़ गये। आज इतवार का दिन होने से पंडितजी से मिलने आनेवाले तथा सत्संगियों के आने का दिन। शाम को जुत्शी दम्पति अपने पुत्र और पौत्र के साथ आये। उनके छोटे पुत्र श्री तप्सी जी अमेरिका में इंजीनियरिंग पढ़कर 5-6 वर्ष के बाद स्वदेश लौट आये थे। किन्तु भारत में बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर आने के बाद भी उनको उपयोगी कोई काम नहीं मिला, इसलिए वह फिर अमेरिका लौट जाने की फिक्र में थे। उसी शाम डॉ. सत्यकेतुजी तथा जयपुर-निवासी हजेला साहब (वकील) पंडितजी से मिलने आये। हजेला साहब हमारे बँगले को देखने आये थे। किन्तु मकान का मूल्य बहुत कम दे रहे थे, इसलिए बात नहीं

बनी।

21 मई से फिर कार्य आरम्भ होता है। 'ऋग्वेद' की नामसूची को उस दिन राहुलजी तैयार करते रहे। 'संस्कृत पाठमाला-(3)' का एक फार्म आया, उसे भी देखकर आज ही लौटा दिया। जानकी भाभीजी को शहर में ही रहने की इच्छा थी, क्योंकि वे लोग मसूरी तफरीह के लिए आते हैं। हमारी तरह जंगल में धूनी रमाने में उनको क्या मजा आयेगा ? अतः आज भाभीजी शहर में मकान की खोज करने गईं। पंडितजी का स्वास्थ्य अब दगा देने लगा था। अतः आज की दैनन्दिनी में उन्होंने लिखा–"जान पड़ता है, बहुत समय तक स्वास्थ्य कर्मण्य नहीं रहेगा, इसलिए हाथ के काम तथा आय का भी ख्याल करके कुछ काम कर डालना है।" उसी दिन उनके किसी पुराने मित्र श्री सीताशरण की चिट्ठी बहुत दिनों पर आई। वह रहते थे सुरसंड नामक स्थान में, पर चिट्ठी लिखी दोकरा से। "कितने सीधे और सहानुभूतिवाले पुरुष हैं।" (डायरी, 21 मई, 1956)।

22 मई को भी उसी तरह उनका लेखन-कार्य चलता रहा। ऋग्वेद के परिशिष्ट की नामानुक्रमणी, देवताओं की नामसूची और शब्दसूची को तैयार करके अब टाइप करवा रहे थे। 'मध्य एशिया' की शब्दानुक्रमणी को भी वे इंडेक्स कार्ड पर उतारते रहे, क्योंकि इसको भी वे जल्दी ही प्रेस में भेज देना चाहते थे। पुस्तक की भूमिका को उन्होंने बाद में लिखना तय किया। लेखक का सारा ध्यान अपनी लेखनी की ओर ही केन्द्रित रहता है, यह तो सभी लेखक जानते हैं। परन्तु राहुलजी का घर के आसपास के वातावरण, घर के प्राणियों के व्यवहार पर भी सदा ध्यान रहता था। वे चाहते थे कि आदमी चाहे वह धनी हो या गरीब, उसके साथ समान व्यवहार करना चाहिए, कोई भेद-भाव नहीं। बोली में भी मिठास रहनी चाहिए। तभी तो वे स्वयं किसी कुली या मजदूर के साथ नम्रता से बातचीत करते थे और चाहते थे कि घर के सभी लोग नम्रता का पाठ पढ़ें। उस दिन उन्होंने लिखा–"भाभीजी के मुन्ने ने किसी के चपरासी को पहले तो कुली कहा, फिर जाते समय उसे 'हुलू लूलू' किया। यह तो बिगड़ने के लक्षण हैं। बच्चों की वर्ग-चेतना बुरी है। जया महेश (हमारे रसोइए) को 'रे' कार से बुलाती है। कहने पर उसे छोड़कर आप कहकर बुलाया, पर उसकी माता को यह पसन्द नहीं। नौकर को पूरा आदमी क्यों न समझना चाहिए ? लेकिन जो आदमी काल-देश की सुधबुध नहीं रखता, वह ऐसा करेगा ही।" (22-5-56)।

हमारे घर में मेहमान सब तरह के आते थे। औरों के घर में मेहमानों को अपने घर की तरह सुविधा तो मिलना मुश्किल है, किन्तु हम लोग अपनी ओर से उन लोगों को अधिक सुविधा देने का प्रयत्न तो करते ही थे। हाँ, खान-पान में यदि कुछ त्रुटियाँ रहें तो यह एक सामान्य लेखक की आर्थिक अवस्था के कारण ही। जिसके घर में हरदम मेहमान न टूटते हों और जिस स्थान में आवश्यक वस्तुएँ महँगी हों, वहाँ मेहमानों को कई प्रकार की कठिनाइयाँ सहन करनी ही पड़ती हैं। यह तो सभी भुक्तभोगी मेजबान लोग भली-भाँति समझ सकते हैं। आज तो मध्यवर्गीय लोगों की आर्थिक अवस्था और भी बिगड़ती जा रही है, महँगाई पहले भी थी और आज भी है। ऐसी स्थिति में परिवार के मुखिया को अपने परिवार का पेट भरना ही कठिन हो जाता है और ऐसे घर में यदि अव्यावहारिक अतिथि का आगमन नित्य होता रहे तो उस परिवार के मुखिया की क्या दशा होती होगी, यह कम ही लोग समझ सकते हैं। मेरे स्वामी का भी ऐसे लोगों से पाला पड़ा। खुद उनकी भाभी साहिबा ऐसी ही महिला थीं। इसीलिए तो उनके पति उनको हमारे पास छोड़ गये। किन्तु उनको हमारे यहाँ असुविधा हुई और 23 मई से शहर में मकान लेकर रहने लगीं। पंडितजी ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं–"भाभी जी आज गईं। वह दूसरे के भावों और स्थिति की बिल्कुल पर्वाह नहीं करतीं। श्री जुत्शी जी के यहाँ चाय में दूध की कमी की शिकायत मुँह पर कर दी। हमारे यहाँ तेल में सब्जी बनती है, इसलिए उसे छुआ नहीं। चाहती हैं अपने घर की तरह यहाँ भी घी और दूध की नदियाँ बहें। परन्तु सबकी स्थिति ऐसी नहीं हो सकती। ऐसे मेहमानों को हाथ जोड़ना ही ठीक है।" (22 मई, 1956)

## भगवान बुद्ध की पच्चीस सौ वीं जयन्ती

आज, 24 मई। भगवान बुद्ध की 2500 वीं जयन्ती। इस बार की वैशाख पूर्णिमा संसार-भर में धूमधाम से

मनायी जा रही थी। राहुलजी ने जाने कितने लेख इस अवसर के लिए लिखे, तब भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से लेख के लिए बराबर माँगें आ रही थीं। मसूरी में भी आज बुद्ध-जयन्ती-समारोह का आयोजन है, जिसमें कुछ बोलने के लिए पंडितजी भी निमंत्रित थे। भोजनोपरान्त ढाई बजे के बाद अपने सहयोगी मंगलदेवजी को साथ लेकर वे शहर गये। उस दिन की सभा में राहुलजी को ही सभापति बनना पड़ा। 'बुद्ध-निर्वाण पंचविंशती' के उपलक्ष्य में भाषण हुए। श्रीमती मोहिनी जुत्शी ने आज के अवसर के लिए खास तौर पर लिखी नज़्म पढ़ी। मसूरी के हाकमैन होटल में भी बुद्ध-जयंती की सभा हो रही थी। लौटते समय इस सभा से पंडितजी बचना चाहते थे, किन्तु रमादेवी हायर सेकेण्डरी स्कूल के प्रिंसिपल मल्होत्राजी रास्ते में तैनात थे। वे पंडितजी को खींचकर उस सभा में ले गये और उनको वहाँ बोलना ही पड़ा। सभी वक्ताओं ने वहाँ अंग्रेजी में भाषण किया, परन्तु हिन्दी-भक्त पंडितजी राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही बोले। सैलानियों के कारण शहर में भीड़भाड़ काफी थी। लौटते समय पंडितजी रास्ते में पड़नेवाले अपने पड़ोसी दूकानदारों का हाल-चाल पूछते आते थे। चार्लविल फाटक के पास का एक हलवाई भीखू लाला अपना दुखड़ा पंडित से रोने लगा—'व्यापार सूख रहा है', आदि-आदि। इस बार हैपीवेली क्लब के मैदान में पी. इ. सी. के जवानों का कैम्प लगनेवाला था। "चलो, हमारी तरफ भी एक महीने के लिए कुछ रौनक रहेगी।"

25 मई को 3 बजे दिन में राहुलजी को प्रादेशिक शिक्षावाहिनी के कैम्प में भाषण देना पड़ा। कैम्प में 500 के करीब विद्यार्थी और 100 के करीब प्रशिक्षक थे। हिमालय की यात्रा के लिए ये सभी विद्यार्थी उत्तर प्रदेश के सभी जिलों से आये थे। बहुत-से विद्यार्थी आजमगढ़ जिले (पंडितजी के जिले) से भी थे। इस बार भारत-भर में बुद्ध-जयंती भव्य रूप से मनायी जा रही थी। फिर भारत में बौद्ध धर्म का पुनः उद्धार कराने के महत्वपूर्ण कार्य में राहुलजी का भी योगदान था, इसलिए भी इस महान उपलक्ष्य में उनको बहुत संस्थानों से आमंत्रित किया जा रहा था। किन्तु समयाभाव तथा अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण वे सब जगह नहीं जा सकते थे। उनके प्रिय बौद्ध लेखक विद्वान प्रोफेसर भरतसिंह उपाध्याय (बड़ौत) की मौखिक परीक्षा के लिए मेरठ आने का निमंत्रण भी उसी दिन आया। इसके लिए उनका जाना जरूरी था। 26 मई को भी वे अपनी लेखनी चलाते रहे। 'मध्य एशिया का इतिहास' के प्रूफ बराबर आ रहे थे। इस पुस्तक के दोनों खण्ड एक साथ दो प्रेसों में छप रहे थे। अतः इसके लिए उन्हें बहुत व्यस्त रहना पड़ रहा था। 1954 में लिखित उनकी 'कुमाऊँ' नामक पुस्तक का मुद्रण भी अब ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी से हो रहा था। उसके भी प्रूफ आने लगे। लेखक चाहते थे कि हर पुस्तक का तीन बार प्रूफ देखें, जिससे अशुद्धियाँ न रह जायें। पहले तो कुछ प्रेसों ने उनकी बात मान ली और पुस्तकें शुद्ध रूप में मुद्रित हुईं, किंतु बाद में सिर्फ एक ही बार प्रूफ भेजने लगे, जिसके कारण पुस्तकों में मुद्रण की बहुत-सी अशुद्धियाँ रहने लगीं। उनकी कितनी ही पुस्तकों का यही हाल है।

मई के अंतिम सप्ताह से मसूरी में बदली के दिन शुरू हो जाते हैं। नीचे मैदानी इलाकों से आनेवाले सैलानियों को पहाड़ों में उड़ते बादल बहुत अच्छे लगते हैं, किन्तु जो बारहों महीने पहाड़ में रहता है, उसके लिए ये बादल प्रिय नहीं होते। वर्षा तो और भी अप्रिय लगती है। पंडितजी पर प्रकृति के इन तत्वों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था। उन्हें तो बस गर्मी से ही बहुत डर लगता था, गर्मी से वे बेहद घबरा जाते थे। वर्षों से तिब्बत और भारत के हिमालयी क्षेत्र में उनका निवास रहा, इसलिए वे पहाड़ की गर्मी को भी बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। अतः अपने घर की ठंडक में बैठकर काम करने में उनको बड़ा आराम लगता। उस दिन (27 मई) भी उनसे मिलने जो व्यक्ति आये थे, उनके बारे में वे लिखते हैं—"दोपहर बाद वेदांताचार्य श्री रामदास (नाहन) आये। हिमाचल सरकारवालों ने उन्हें महन्त बनाया था। राजा का अधिकार अब केन्द्र को मिला है, इसलिए वही नियुक्त करते हैं। इस प्रकार इन्हें हटा दिया गया है। कोशिश कर रहे हैं पंतजी के पास।"

डॉ. चन्द्रदत्त पाण्डे (पंतजी के एक रिश्तेदार तथा सेक्रेटरी) को चिट्ठी मैंने लिख दी। पंडितजी के निरीक्षण में शोध करनेवाले श्री सदानन्द मेहता उस शाम को देहरादून से आये। वह अक्सर पैदल ही चलकर आते थे। शोधार्थी की सुस्ती के लिए पंडितजी बहुत झुँझलाते थे, उन्हें काम में दीर्घसूत्रता को देखकर बड़ी कोफ्त होती

थी। मेहताजी के लिए भी उन्होंने कहा–"बहुत सुस्ती और बेतरतीबी से काम ले चल रहे हैं। व्यवस्था का तो ख्याल ही नहीं।" (27 मई)

28 मई को प्रयाग से 'मध्य एशिया' के आठ फर्मों के प्रूफ आ गये। इस तरह पुस्तक के कुल 464 पृष्ठ तक आ गये। दो फार्मों के प्रथम पेज प्रूफ भी मिले। शायद एक या दो फार्म और आनेवाले थे। प्रूफ का मिलना पंडितजी के लिए बढ़िया सुस्वादु भोजन मिलने के बराबर था। बड़े खुश, बड़े चुस्त। बस, धड़ल्ले से प्रूफ देखने में जुट गये। इधर उनको दाँत का दर्द भी सता रहा था, पर कोई परवाह नहीं। जानकी भाभी जब से शहर गईं, तब से उनसे हमारी भेंट कम ही होती थी, "क्योंकि हमारा घर तो ऋषि-मुनियों के तपोवन की भाँति शून्य और सुदूर था।" पंडितजी लिखते हैं–"हमने भाभी जी को बुलाने के लिए मंगलजी (सहयोगी) को भेजा। उन्होंने सारे दिन मंगलजी को रोक रक्खा। उनको काम की रुकावट का कोई ख्याल ही नहीं। ऐसी गैर जिम्मेवारी। मंगल की कोट रख छोड़ी थी। साढ़े आठ बजे मंगल लौटे।" (28 मई) पंडितजी आज बहुत गुस्से में थे, क्योंकि मंगलजी के न होने से आज उनके लिखने के काम में बहुत हर्जा हुआ। परन्तु वे फिर अपने आप ही शांत हो गये, क्योंकि वे समझ गये कि मंगल निर्दोष हैं।

29 मई से राहुलजी ने 'ऋग्वेद' की ऋचाओं का हिन्दी में अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। वे कुछ और संदर्भ पुस्तकों की खोज में थे। प्रयाग में उनके परिचित श्री जयगोपाल मिश्र, जो निरालाजी के शिष्य भी रहे, पंडितजी के साथ भी घूमा करते थे। जयगोपालजी मसूरी में उनसे मिलने आये। वे एक अच्छे कवि और लेखक भी हैं। विश्वज्योति (होशियारपुर) में उन्होंने पता नहीं क्या लिख दिया कि पंडितजी को कहना पड़ा–"श्री जयगोपाल मिश्र में कुछ झक्कीपन है। सारनाथ के बारे में जो कुछ कहना था वह हमारे मुँह से विश्वज्योति में कहलाई।" (29 मई)।

अगले दिन 11 बजे तक पंडितजी ने ऋचाओं के अर्थ लिखाये। फिर दोपहर के भोजन के बाद प्रूफ में लगे। उसी दिन 'मध्य एशिया का इतिहास' : खण्ड-1 के बाकी पेज प्रूफ भी आ गये। पंडित श्री सातवलेकर-स्मारक ग्रंथ के लिए श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठ को एक लेख लिखना उन्होंने स्वीकार कर लिया। रोज काम ही काम जमा होते, किन्तु उसी में पंडितजी को संतुष्टि भी मिलती थी। दूसरे दिन (30 मई) डालमियानगर-निवासी श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय सपत्नीक राहुलजी से मिलने आये और उनके साथ 3-4 घंटे का संत-समागम होता रहा। गोयलीयजी उर्दू के महान साहित्यकार हैं। उन्होंने उर्दू के विख्यात शायरों की कृतियों का देवनागरी लिपि में सम्पादन कर हिन्दी पाठकों का बड़ा उपकार किया है। गोयलीयजी के इस महान कार्य के लिए हमारे पंडितजी उनका सदैव गुण गाते रहे हैं। 'शेरो-शायरी' में उन्होंने अपनी लम्बी भूमिका में श्री गोयलीयजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आगे और भी काम करने के लिए वे पत्रों के द्वारा गोयलीयजी को उकसाते रहे। वे ही गोयलीयजी अब हमारे घर आये, तब पंडितजी को कितनी प्रसन्नता हुई होगी, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। उन दिनों मसूरी में खूब रौनक थी, यदाकदा पंडितजी बाजार की ओर भी टहलने चले जाते। "सैलानियों की भीड़ से मसूरी ने अपनी रोनी सूरत बदल दी थी, परन्तु वर्षा के कारण भीड़ शीघ्र ही छँट जाती है।"

जून महीने का प्रथम दिन। आज पंडितजी सारे दिन ही लेखन-कार्य में व्यस्त रहे। उनको मंगलदेव के रूप में सहयोगी भी तो बड़े कर्मठ मिले। अपने सहयोगी के लिए आज उन्होंने लिखा–"मंगल मेहनती हैं, टाइप करने में आलस्य नहीं जानते, इनको बराबर साथ रखना है।" वस्तुतः पंडितजी को मंगलदेवजी जैसे सहकर्मी के मिलने से अपने साहित्य-निर्माण में बड़ी गति मिली। दूसरों की गुणग्राहकता वे समझते ही थे। किसी में थोड़ी भी अच्छाई हो तो पंडितजी उसके मूल्य को भली प्रकार आँकते थे। सहकर्मियों को उन जैसे विद्वान से प्रशंसा के दो शब्द भी मिल जायें, तो वह खुशी से और उत्साहित हो जाते हैं। यही बात मंगलजी पर भी लागू थी। अपने भाइयों से अपार कष्ट मिलने के कारण मंगलजी भागकर अपनी चचेरी बहन (मेरे) पास मसूरी आये थे और पंडितजी का टाइप तथा अन्य लेखन-कार्य उन्होंने सँभाल लिया। पंडितजी ने भी बदले में उनको अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य बना दिया। किसी को केवल कलमघिसाई में जुताये रखना उनको कभी पसन्द नहीं था।

सरकारी मशीनरी भी किस तरह से चलती है, इसका एक उदाहरण 2 जून को मिला। इन्कमटैक्स ऑफिस के चपरासी ने राहुलजी के घर आये बिना ही कागज को लौटा दिया और लिख दिया कि घर में कोई नहीं है। अचरज हुआ पंडितजी को। 2 जून को उनसे मिलने उनके स्नेही मित्र प्रोफेसर गयाप्रसाद शुक्ल पत्नी सहित आये। दोनों देर तक बातें करते रहे। 3 जून को पूर्वाह्न में चार नौजवान राहुलजी से भेंट करने आये। उनमें से एक तरुण कुछ अप्रामाणिक बातें कर रहा था। "तरुणों को अपना आक्रोश प्रकट करने की छूट है", यह वे मानते हैं, इसीलिए तो उनके पास ढेरों पत्र नौजवानों की ओर से आते रहते थे। पत्रों में कई तरुण अपनी जिन्दगी की परेशानियाँ लिखते और सलाह माँगते। आज आनेवाले इस तरुण की बातें भी वे बड़े धैर्यपूर्वक सुन रहे थे। इतवार का दिन, पंडितजी से मिलनेवालों का दिन। 3 जून को भी घर में काफी लोग आये। दोपहर के भोजन के बाद इंटर कालेज, सहारनपुर के कुछ विद्यार्थी अपने प्रिंसिपल के साथ घूमते-घामते चकराता होते आ पहुँचे। लड़के सभी पंजाबी थे। उनसे बातें होने लगीं। तभी जुत्शी दम्पति भी आ गये। बदायूँ के श्रीकृष्ण कॉलेज के प्रिंसिपल श्री पाठकजी भी आ गये। वह 'भारत में बीजगणित का विकास' विषय पर अपनी थीसिस लिखना चाहते थे। 'ब्रह्मस्फुट सिद्धांत' पुस्तक की उनको आवश्यकता थी। पंडितजी ने अपने पुस्तकालय से निकालकर पुस्तक दे दी। पाठकजी भलेमानुस थे, यह पुस्तक उन्होंने 1963 में लौटा दी।

आजकल प्रूफों के लगातार आने के कारण पंडितजी को जरा भी फुरसत नहीं मिलती थी। इसलिए अब वे सुबह के 7 बजे से रात के 11 बजे तक लगातार काम करते रहते। फिर स्वास्थ्य पर बुरा असर क्यों न पड़े। 4 जून को उन्होंने नोट लिखा—"कलेजे में दर्द नहीं होता, पर विषमता जरूर मालूम होती है। आज भी वही रहा। पेट को हल्का रखना बहुत जरूरी है।"

अगले दिन भोजनोपरान्त मुझे लेकर पंडितजी शहर जाते हैं। चाय जुत्शीजी के यहाँ पी और घंटा-भर उन लोगों से बातचीत करते रहे। जुत्शीजी की सबसे छोटी लड़की डाक्टर उषा जुत्शी भी यहाँ आई हुई थीं। तपसीनाथ जुत्शी 6 वर्ष अमेरिका रहकर भारत आये। इंजीनियरिंग पढ़ने पर भी भारत में नौकरी नहीं मिली। उनको 150-200 की नौकरी जँच भी नहीं सकती थी। घूमते-घूमते वे डॉ. सत्यकेतुजी के यहाँ भी गये। वहाँ पर पंडित गयाप्रसाद शुक्ल के दामाद श्री कृष्णकान्त मिश्र भी मिल गये। मिश्रजी की नियुक्ति हिन्दू कॉलेज (दिल्ली) में हुई थी, यह समाचार पंडितजी के लिए सुखद था। जानकी भाभीजी के घर में भी हम गये। उन्होंने पुराने मकान को छोड़कर नये मकान में शिफ्ट कर लिया था, पर दस्तूर के अनुसार पुराने मकान का किराया देना जरूरी था।

बैरिस्टर मुकुन्दीलालजी के दो अन्तर्देशीय पत्र आये। बैरिस्टर साहब कलापारखी व्यक्ति रहे। उन्होंने गढ़वाल के प्राचीन चित्रकार भोलाराम पर बहुत सुन्दर लेख लिखे थे। भोलाराम को उन्होंने एक प्रसिद्ध कवि के रूप में भी प्रस्तुत किया था। मुकुन्दीलालजी के इन निबन्धों को राहुलजी ने पढ़कर बहुत पसन्द किया। बैरिस्टर साहब का स्वभाव भी अपने मित्र की तरह ही सौम्य था, अतः दोनों में अंत तक बड़ी गहरी मैत्री रही। बुद्ध जयंती के अवसर पर पंडितजी का एक लेख 'इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया' में छपा था, जिसे पढ़कर बैरिस्टर साहब बहुत ही प्रभावित हुए। उनको इस लेख से बौद्ध दर्शन की बहुत-सी जानकारी मिली। अब वह पंडितजी से बौद्धधर्म की दीक्षा लेना चाहते थे। परन्तु उन्होंने उत्तर दिया—मैं भी तो स्वयं बौद्धधर्मी नहीं हूँ, यद्यपि बुद्ध को सर्वश्रेष्ठ मानव और महान विचारक मानता हूँ। बाद में भी श्री मुकुन्दीलाल जी के पत्र बराबर आते रहे। जब तक राहुलजी मसूरी में रहे, तब तक हर साल दोनों मित्रों का सम्मिलन होता रहा। अपने मित्र के प्रति अपनी सहृदयता अभिव्यक्त करने के लिए पंडितजी ने अपनी पुस्तक 'हिमालय-परिचय : गढ़वाल' को गढ़भूमि के सुपुत्र श्री बैरिस्टर मुकुन्दीलाल को समर्पित किया।

7 जून को 10 बजे तक 'ऋग्वेद' की ऋचाओं का अनुवाद करते रहे। फिर हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री जयनाथ 'नलिन' जी उनसे मिलने आये। "बातों से पता चला कि वह मुरादाबाद जिले के काँठ कस्बे के रहनेवाले हैं। शायद वही काटगोला है, जिसे हुसैन खाँ टुकड़िया ने अकबर से पुरस्कार के रूप में पाया था। नलिनजी ज्यादातर बाहर रहे। उस समय (1956) वह मेरठ जिले के एक डिग्री कॉलेज में अध्यापन कर रहे थे। प्रसाद

गुण के प्रशंसक हैं, निबंध, नाटक और कहानियाँ लिखते हैं।" (7-6-56)

उसी दिन भोजन के समय राजा महेन्द्रप्रतापजी आये। आजकल देहरादून के पास राजापुर में रहते हैं। राहुलजी के मकान की बिक्री का विज्ञापन देखकर मकान पसन्द करने आये थे। "उन्होंने मकान तो पसन्द किया किन्तु उनको जमींदारी का बौंड 14 हजार देने हैं।" पंडितजी राजा साहब के बारे में लिखते हैं–"देर तक बातें होती रहीं। वह आदमी के तौर पर बहुत अच्छे और उनके त्याग के बारे में तो कहना ही क्या।" शाम को खडगपुर रेलवे सर्विस के श्रीमूर्ति (आंध्रप्रदेश निवासी) अपने मित्र के साथ आये। मित्र तो आज आये, किन्तु प्रूफ न आने से पंडितजी फिर उदास।

10 जून इतवार का दिन। सुबह से 10 बजे तक राहुलजी ऋचाओं के अनुवाद में लगे रहते हैं। क्योंकि आज मित्रों के आने का दिन है, इसलिए काम सुबह से ही आरम्भ कर देते हैं। 11 बजे के करीब पंडित गयाप्रसाद शुक्ल के सुपुत्र श्री विश्वनाथ शुक्ल अपने बहनोई श्री कृष्णकांत मिश्र के साथ आये। उसके कुछ ही देर बाद जानकी भाभी अपनी बहन कमला और मुन्ना के साथ आती हैं। आज 'हर्न-क्लिफ' में काफी चहल-पहल है। शाम की चाय के बाद पंडितजी के पुराने परिचित श्री श्यामलाल पहाड़िया (कोंच निवासी) आते हैं। बूढ़े पिता श्री रामदीन पहाड़िया (स्वामी ब्रह्मानन्द) 90 वर्ष की आयु में मरे। नई पीढ़ी में खटपट स्वाभाविक है और वह महेशपुरा छोड़कर कोंच आ गये थे। अंतिम दो महीना छोड़ उनका स्वास्थ्य अच्छा रहा। आस्तिक और कर्मनिष्ठ होने में अपने पिता का पूरा अनुगमन श्यामलाल ने किया। 'ऋग्वेदिक आर्य' का जिक्र करके पंडितजी ने गलती की। फिर आर्यों के खान-पान की बात आ गई। 'ऋग्वेदिक आर्य' घोड़ा-बैल खाते थे, इसका स्पष्ट उल्लेख अनेक ऋचाओं में है, यह सुनकर श्यामलाल जी का श्रद्धालु हृदय तिलमिला उठा। वह बेचारे पक्के आर्यसमाजी वृद्ध, आर्यों के खान-पान की ऐसी बातें कैसे पसन्द करते ? घर पर वह रोज हवन करते हैं, पिता की तरह ही वैदिक धर्म में उनकी निष्ठा है। मांसाहार तो पच्चीसों पीढ़ियों से उनके कुल में छूटा हुआ है। उनकी श्रद्धा मेरे प्रति जरूर कम हुई होगी, पर पुराना सम्बन्ध ऐसा है जो तोड़ा नहीं जा सकता। उन्होंने बहुत चिरौरी-विनती की–"इस पुस्तक को आप न छपवाएँ। शायद समझते थे कि पुस्तकों के लिखने में मुझे प्रेरणा पैसा ही देता है, इसलिए कहने लगे–इससे जितना पैसा मिलनेवाला हो, उतना मैं दूँगा। मैं उन्हें क्या समझाता ?" (डायरी, 10 जून, 1956)

अगले दिन श्यामलालजी 11 बजे चले गये। उनके साथ पंडितजी बाजार तक गये, भोजन भाभी जानकी देवी के यहाँ। फिर डॉ. सत्यकेतुजी के निवास 'लक्समोंट' में एक गोष्ठी में शामिल हुए। खुर्जा कॉलेज के प्रिंसिपल (बाद में आगरा विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर) डॉ. पी. डी. गुप्ता ने उच्च शिक्षा के लिए पुस्तकों के अभाव से हिन्दी माध्यम पर शंका प्रकट की। पर उच्च अनुसंधान के लिए कोई भाषा कभी पर्याप्त नहीं हो सकती। उपस्थिति में सर्वश्री जैनेन्द्रजी, जयनाथ नलिन, विश्वनाथ शुक्ल, कृष्णकांत मिश्र, प्रोफेसर वर्मा (उदयपुर) आदि बहुत-से व्यक्ति थे। और लोग भी आ सकते थे, पर पता नहीं चला।

आज 'संस्कृत पाठमाला-(3)' का प्रूफ उन्होंने देखकर भेज दिया। 'मध्य एशिया का इतिहास'-(2) के ढेर सारे गेली प्रूफ भी आ गये। इन सबको भी वे देखकर निबटा देते हैं। 12 जून को 11 बजे केन्द्रीय विद्यालय के दो आई. सी. एस्. आफिसर राहुलजी से मिलने आये। देर तक बातें होती रहीं। आगन्तुकों ने पूछा–"नयों को क्या करना चाहिए ?" शिक्षा, आर्थिक उन्नति और संस्कृति की प्रगति पर जोर देना चाहिए, यह राहुलजी ने बतलाया। उन लोगों के जाने के बाद जामिया मिलिया, दिल्ली के अंग्रेजी-इतिहास के प्रोफेसर चौहानजी उनसे मिलने आये। कह रहे थे–वहाँ के अध्यापक कट्टर इस्लामवाद और निराशावाद का प्रचार कर रहे हैं। 13 जून की शाम को भी ऋषिकेश आश्रम के एक स्वामी, एक जर्मन साधु और एक अन्य तरुण विद्यार्थी उनसे मिलने आये। लोगों का आते रहना राहुलजी को बहुत अच्छा लगता था। घर दूर होने पर भी संत-समागम होते रहने से उनका मन प्रफुल्लित रहता। इसीलिए तो वे कहते हैं–"समय बुरा नहीं कटा। शब्द रेखांकन और उतारने की गति मंद है, पर जरूरत भी जल्दी नहीं पड़ेगी।" (डायरी, 12-6-56)

प्रयाग के सम्मेलन प्रेस में श्री सीताराम गुंठे के निर्देशन में पंडितजी की 'संस्कृत काव्यधारा' मुद्रित होने

जा रही थी, इस बात से वे बड़े ही खुश थे। लॉ जर्नल प्रेस इलाहाबाद के श्री कृष्णप्रसाद दर और श्री सीताराम गुंठे की कार्यकुशलता की दाद देते वे कभी नहीं थकते थे। पहले लॉ जर्नल प्रेस में उनकी कितनी ही पुस्तकें दर साहब के कुशल निर्देशन में मुद्रित हुईं, जो आज भी अपनी छपाई-सफाई के लिए प्रख्यात हैं। श्री गुंठेजी का साथ पंडितजी ने शेष समय में भी नहीं छोड़ा। वे चाहते थे कि उनके निर्देशन में ही उनकी सभी पुस्तकें छपें। खैर, 'संस्कृत काव्यधारा' गुंठेजी के हाथ में पहुँची है, इससे उनको बड़ा संतोष हुआ। श्री रामनाथ सुमन भी उनकी एक पुस्तक 'एशिया के दुर्गम भूखण्डों में' प्रकाशित कर रहे थे। इसके 11 फार्म के प्रूफ को देखकर उन्होंने 14 जून को प्रिंट आर्डर भी दे दिया।

15 जून को उन्होंने निश्चय किया—आज ऋचानुवाद खतम हो गया। अब 7-8 लेख अकबर के समय के आसपास के लिख डालने हैं। एक-एक लेख रोज लिखेंगे। आज उनकी तैयारी करनी है। नल-दमन पर भी लिखेंगे।

## 16 जून, 1956 : डायरी के अनुसार

"मौसम कल जैसा, वर्षा नहीं।

'मुस्लिम भारत के साम्यवादी' शीर्षक लेख लिखा जिसमें सैयद मुहम्मद जौनपुरी, मियाँ अब्दुल्ला नियाजी और मल्लाई के बारे में लिखा। राष्ट्रभारती को भेज देंगे।

11 बजे चले शहर, लंढौर नहीं जा सके। रियाल्टो थिएटर में 'अलबेली' फिल्म को कमला के साथ देखा। नाम ठीक नहीं, चंचल या कोई और नाम होना चाहिए, उसमें व्यंग्य और विनोद था। चाय भाभीजी के यहाँ पी। भीड़ बहुत है, लोग बहुत आये हैं।

रात को कमला ने जेता को ऐसी चपत लगाई कि सो जाने पर भी सिसकता रहा। शिक्षित माता में कोई अंतर नहीं है।"

17 जून इतवार का दिन। उनका काम रुकता नहीं। शेख अब्दुल्ला पर सात पृष्ठों का लेख टाइप करवाते हैं मंगलजी से। यह लेख सात और पृष्ठों में खतम होनेवाला था। उसके बाद फैज़ी और अबुल फज़ल पर लिखेंगे। ये लेख अकबर के नौरत्नों पर हैं और उनकी पुस्तक 'अकबर' में ही संग्रहीत हैं।

आज उनसे मिलनेवाले अधिक लोग नहीं आये। जोधपुर-जयपुर के वकील श्री श्यामलाल दवे आये। राजस्थानी संस्कृति के बारे में उनसे काफी सूचनाएँ राहुलजी को मिलती रही हैं। उम्र में भी श्री श्यामलालजी पंडितजी के समवयस्क थे। सुरुचिसम्पन्न और सुसंस्कृत व्यक्ति, स्वभाव के भी बड़े मधुर और अत्यंत मितभाषी। पंडितजी के साथ उनकी बड़ी पटती थी। बाद में उनके सुपुत्र सुरेन्द्र दवे से ज्ञात हुआ कि जीभ में कैंसर हो जाने के कारण 1962 में श्री श्यामलाल दवे की मृत्यु हो गई।

हैपीवेली क्लब में जो पी. इ. सी. कैम्प लगा था, वह उठ गया। इससे पंडितजी को भी उदासी मालूम हो रही थी।

अगले दिन 18 जून को शेख मुबारक पर लेख समाप्त कर दिया गया। अब कल फैज़ी पर लिखने का निश्चय हो गया। आज शाम को प्रोफेसर ऊ-नो उनसे मिलने आये। वह जापान से वाराणसी में आकर संस्कृत न्याय पढ़ रहे थे। दोनों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। पंडितजी ने उनसे कहा—"यदि कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ चीनी से संस्कृत में करो तो भाषा हम ठीक कर देंगे।" उस रात को पंडितजी ने तय किया कि "जो लेख लिखा रहे हैं उनमें अंतिम होगा अकबर। सबको महान अकबर और सरकार विरोधी के रूप में लिख देंगे।"

19 जून को मसूरी में बादल घिरे रहे और बाद में बूँदें भी पड़ती रहीं। रात को काफी अच्छी वर्षा हुई थी। अब सैलानियों के भागने का समय। राहुलजी ने नियमानुसार आज फैज़ी पर लिखाया। कल इसको समाप्त करके अबुल फज़ल पर लिखाना है। केवल लिखाना ही तो नहीं, उन्हें सामग्री तैयार करने के लिए पढ़ना भी तो था। इसलिए लिखवाने की गति तेज नहीं हो सकती थी। वे सोचने लगते हैं, "जान पड़ता है सप्ताह में तीन या चार ही लेख लिख सकेंगे!" उस दिन कहीं से कोई प्रूफ नहीं आया, इसलिए आज उनका मन फिर

उदास रहा। उन्हें आज 'मध्य एशिया का इतिहास' के परिशिष्ट के प्रूफ आने की आशा थी।

मकान की विक्री की भी उनके सामने एक समस्या थी। उस दिन भी एक सज्जन 'हर्न-क्लिफ' को देखने आये।

**शुक्रवार, 22 जून 1956 :** "आज बादल रहा फिर धूप भी। बदायूनी को समाप्त नहीं कर सके। 10.30 बजे चले, भाभीजी के मुन्ने का जन्मदिन था, पार्टी। शाम तक वहीं रहना हुआ। कमला, जया, जेता, माहिली (कमला की वहन) सभी रहे। जुत्शी-परिवार, ग्रोवर-परिवार, सत्यकेतु-परिवार भी।

वहाँ साथी यज्ञदत्त शर्मा और सरलाजी भी मिलीं। चीन में यात्रा का प्रबंध करना स्वीकार किया है, मालूम हुआ।

लौटते समय श्री कालिकाप्रसाद भटनागर (आगरा विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर) मिले। कहने लगे–'आगरा हिन्दी इंस्टीट्यूट के लिए डाइरेक्टर की जरूरत है, आप स्वीकार करें।' मैंने कहा–'पटना का मैं इन्कार कर चुका हूँ, नहीं कर सकता।" उन्होंने कहा–'तो किसी आदमी का नाम बतलाइए।'

साढ़े आठ बजे बाद लौटे। हैपी वेली क्लब सूनी है।"

**शनिवार, 23 जून, 1956 :** "आज वर्षा नहीं।

बीरबल लिख दिया, तीन और लिखने को हैं, जिन्हें मेरठ से आकर लिखेंगे। विल्सन अनुवादित 'ऋग्वेद' महादेवजी (डॉ. महादेव साहा) ने भिजवाया। मालूम नहीं मोल लेकर या कैसे भिजवाया ? उससे भी मिला लेंगे।

11 बजे के करीब श्री यज्ञदत्त शर्मा विनोद (पुत्र) के साथ आये। शाम की चाय के बाद हम भी साथ ही टहलते झूलाघर तक गये। कुछ भीड़ कम हुई है। मोटरें अब बहुत दीखती हैं। शायद पाँच रुपया शुल्क भी बंद कर दिया। जया दूसरी महिला का हाथ पकड़कर जा रही थी। मुँह नहीं देखा, समझा अम्मा है। स्केटिंग देखने गई। वहाँ एक भद्रपुरुष उसे देखने लगे तो शरमा गई। कहा–घर चलें।

इन्कमटैक्स का नोटिस आया। 25 को तारीख रखी है। कागज देकर मंगलजी के साथ भेजना होगा।"

## मेरठ को प्रस्थान

**इतवार 24 जून, 1956 :** "मौसम, कुछ बादल, कुछ धूप, वर्षा नहीं।

साढ़े नौ बजे घर से चले। लाइब्रेरी (मसूरी का बाजार) से चार आने में टैक्सी पर चढ़कर किंगक्रेग (बस स्टैण्ड) आये। टैक्सी नहीं मिली। 1 रुपया साढ़े 3 आना देकर बस में बैठे। आर. के. कम्पनी (राजपुर रोड, देहरादून) के पास उतर गये। 12 आने का तांगा लेकर शुक्लजी के घर (सेवक आश्रम रोड) पर गये। बातें होती रहीं यहाँ और श्री हरिनारायण मिश्रजी के यहाँ। उनके यहाँ से विन्सेट स्मिथ की 'अकबर' पुस्तक मिल गई। इससे काम चल जायेगा।

कृष्णाकांतजी मिश्र यहीं हैं। मेहताजी (रिसर्च स्कालर) भी रात को आये। बहुत धीरे-धीरे काम कर रहे हैं, कोई सुव्यवस्थित नहीं लिखते, न बतलाने पर ही।"

**मेरठ में : सोमवार 25 जून, 1956 :** "आज थोड़ी-सी बूँदाबाँदी देहरादून में, पर इसी समय मेरठ में मूसलाधार वर्षा हो रही थी। 10.30 बजे ताँगा लेकर मेहताजी के साथ स्टेशन चले। गाड़ी तैयार मिली। नरसिंहगढ़ के युवराज के लिए रिजर्व डब्बे में चढ़े, सोचा दिन-दिन में मेरठ पहुँच जाना है। कुछ एतराज भी किया। पीछे तो परिचय हो गया, फिर तो बातचीत होने लगी। उनकी बीवी–बीकानेर की लड़की–तथा चार बच्चे (दो पुत्र, दो पुत्रियाँ) भी साथ थे। पंखे के कारण गरमी नहीं मालूम हुई। कुरुदेश तो इक्षुदेश हो गया है। मेरठ तक सड़क के दोनों ओर गन्ने के ही खेत। चीनी मिलों के पास बदबू के मारे नाक फट रही थी।

7 बजे पहुँचे मेरठ छावनी। श्री धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री (डी. लिट.) और श्री भरतसिंह उपाध्याय यहीं मिल गये। उतरकर धर्मेन्द्रजी के घर पर (उर्मिला शास्त्री रोड़) गये। रात-भर पंखे के सहारे बाहर सोये।"

**मंगल, 26 जून, 1956, मेरठ-देहरादून :** धूप और गरमी रही।

सबेरे सात बजे मेरठ कॉलेज में गये। भरतसिंह जी (टूंडला-फीरोजाबाद के बीच में गाँव, ब्राह्मणसिंह)

की मौखिक परीक्षा की योग्यता में तो कोई संदेह नहीं। मेरठ कॉलेज में संस्कृत की काफी पुस्तकें हैं, फारसी की कम हैं। निकले तो पहले इस्माइल साहेब के पुत्र असलम सैफी के यहाँ गये। पास के घर के चबूतरे में प्रतिहारकालीन मंदिर के सात खम्भों के भाग हैं, मूर्ति बिगाड़ी है। छुट्टी है, तो भी कुछ बुकसेलरों के पास गये। शाहमीर जहाँगीर के समय रहता था, रोजा जहाँगीर ने आधा बनवाया लाल पत्थर का। छत से पानी नहीं टपकता। किसी अंग्रेज ने अंतिम पत्थर लगवाया। सूर्यकुंड पर एक और पूर्व प्रतिहार-काल की हनुमान-राम आदि की चुनारी पत्थर पर मूर्ति। दूसरी ओर सूर्य दोनों पत्नियों के साथ। द्वार बाहु पर तांत्रिक मिथुन भी। भोजन विश्वम्भर सहाय प्रेमी जी के यहाँ। कमलाजी (चौधरी) मिलीं। 5.30 बजे दिल्ली से आनेवाली गाड़ी पकड़ी। रात 10 बजे बाद देहरा पहुँचकर मेहताजी के यहाँ रहा।"

## मसूरी

**20 जून 1956 :** "सवेरे बादल, रास्ते में कुहरा, कभी छींटें भी। आठ बजे टेक्सी मिली। सवा 9 बजे लायब्रेरी पहुँच गये। भारत-भर के कृषिमंत्रियों की कान्फ्रेंस हो रही है। सेवाई और चार्लविल होटल भरे हैं। कारों की भीड़। (घर पहुँचे) शाम को साथी यज्ञदत्त शर्मा ने उनसे परिचय कराया। कोई स्वार्थ न होने से अपरिचित से परिचित होने की मेरी इच्छा नहीं। परिचित यदि उच्च पद पर पहुँचे हैं तो वह भी वैसे ही, क्योंकि वह दरबारियों को पसन्द करते हैं। सिर्फ पिछले घनिष्ट सम्पर्कवालों से ही मिलने की इच्छा होती है।

कमला ने कहा। जाकर तीनों ने दो फिल्में देखीं। 'देवदास' अपनी गम्भीरता, आधुनिकता और आदर्शवादिता के साथ अभिनय के कारण सुन्दर है। 'हेलेन आफ ट्राय' को ऐतिहासिक फिल्म का ख्याल कर देखा। भारतीय ऐतिहासिक फिल्मों से कहीं बेहतर है। जिम्मेवारी को न समझते हमारे लोग आनन्द को बुद्ध की मूर्ति का बना देते हैं। रात साढ़े आठ बजे लौटे।"

**बृहस्पतिवार, 28 जून, 1956 :** "रात खूब वर्षा हुई, दोपहर तक बूँदाबाँदी।

आज चिट्ठियों का जवाब-भर दे सके। 10 बजे शहर चले। वर्षा के कारण थोड़ी देर श्री कालिकाप्रसाद भटनागर से मिले। आज फिर 'हर्न-क्लिफ' बँगले के खरीदने की बात श्रीमती भटनागर ने कही। भटनागर देखने आयेंगे। आगरा के हिन्दी प्रतिष्ठान के डाइरेक्टर पद स्वीकार करने के लिए फिर आग्रह किया। मैंने कह दिया—जायसवाल प्रतिष्ठान के डाइरेक्टर पद को मैंने स्वीकार नहीं किया। वही कारण। इन्कमटैक्स आफिसर अपने कमीश्नर को पहुँचाने देहरादून गये हैं। हिसाब कुछ समझा दिया क्लर्क को। जरूरत होगी तो मंगलजी को भेज देंगे।

भोजन भाभीजी के यहाँ किया। यहाँ घर में जापानी प्रोफेसर ऊ-नो अत्युसी आनेवाले थे, इसलिए चले आये। 'दोहाकोश' का पेज प्रूफ आया। 168 पेज तक आये।"

**शुक्रवार, 29 जून, 1956 :** "आज भी वर्षा का दिन। पर दिन में नहीं।

'दोहाकोश' का प्रूफ लौटा दिया। दोपहर की डाक से 'मध्य एशिया-2' का प्रूफ आया। पेज प्रूफ था, अच्छा देखा हुआ, आज ही की डाक से लौटा दिया।

ग्रिफिथ के ऋग्वेद को काम लेकर उसे लौटाना है। मंगल इन्कमटैक्स आफिस गये। काम हो गया। दस दिन तक खूब काम करना है। देखें। दूसरे प्रूफ भी आते रहेंगे।"

**शनिवार, 30 जून 1956 :** "आज वर्षा रही, धूप नहीं थी।

'ऋग्वेदिक आर्य' में अनुवाद को मिलाने में लगे रहे। 10 जुलाई तक तो जरूर पूरा कर देना है।

चौखम्बा से तृतीय पुस्तक (संस्कृत पाठमाला) के चौथे फार्म का प्रूफ आया। देख लिया, पर भेज नहीं सके।

ग्रिफिथ का अनुवाद विल्सन से बेहतर है, पर गोल्डनर का उससे भी बेहतर। श्री जयकृष्णदास ने अपनी पाठ्यपुस्तक को यहाँ स्कूलों में लगवाने के लिए भेजा था, पार्सल लौटा दिया। कैसा विचित्र-सा लगा।

कमला वर्षा में गई लाइब्रेरी तक। भीगती आई।

जेता ने जया का भी कान काटा है बोलने में। वर्ष बीतते-बीतते कुछ बोलने लगे, जबकि जया पौने दो वर्ष में बोलने लगी। वाक्य तो नहीं पर बाथरूम जैसे शब्दों को भी बोलने की कोशिश करते हैं। जया के रोने की नकल की।"

## मसूरी का वर्षाकाल

**रविवार, 1 जुलाई 1956 :** "आज भी वर्षा का दिन, धूप नहीं।

ज्यादा समय ऋचाओं के अनुवाद में गया। दस पृष्ठ से अधिक होने की सम्भावना नहीं और अभी 70 पृष्ठ अर्थात् सात दिन के हैं, यदि प्रूफ में न पड़ना पड़े। अब अनुवाद संतोषजनक हो रहा है। अफसोस है गोल्डनर का पूरा लाभ उठा नहीं सकते। जर्मन भाषा का अभ्यास यदि चालू रखा होता, तो काम आता। आखिर फ्रेंच से काम हो ही जाता है। विज्ञान की किसी शाखा में इत्मीनान से काम करने के लिए अंग्रेजी ही नहीं, जर्मन, फ्रेंच और रूसी का भी ज्ञान आवश्यक है। कुछ समय बाद चीनी का भी, जो वर्णमाला बन जाने पर सुगम हो जायेगी।

वर्षा के कारण आज मिलने के लिए कोई नहीं आया।

जेता का उच्चारण यद्यपि सुस्पष्ट नहीं है पर बहुत-से शब्द बोलता है। दिमाग जितना काम कर रहा है, उतने शब्द नहीं आ रहे हैं।"

**शनिवार, 2 जुलाई :** "आज भी वर्षा। सारी रात और दोपहर तक तो अखण्ड।

ऋचानुवाद में लगे रहे। चाहते हैं 10 जुलाई तक ले जायें पुस्तक को। अनुवाद अब बहुत संतोषजनक है।

चीन जाना हुआ तो कमला को साथ ले जायेंगे। जया को अच्छे-से कान्वेट स्कूल में रख देंगे। जेता को साथ लेते चलेंगे। कहीं दूसरी जगह रखने से कान्वेन्ट में रखना अच्छा होगा।"

**मंगलवार, 3 जुलाई :** "आज दोपहर बाद वर्षा नहीं रही।

ऋचानुवाद चलता रहा। शायद 10 तारीख तक भेज सकें पुस्तक को। अब 30 पृष्ठ रहते हैं। प्रूफ कोई नहीं आया, नहीं तो उसमें भी समय जाता।

कमला को सबेरे तीन पतले दस्त आये। जुकाम और सिरदर्द से लेटी रही।

चट्टोपाध्याय जी (क्षेत्रेशचन्द्र) यदि ऋग्वेद का अनुवाद और वैदिक पाठमाला बना सकते तो कितना अच्छा ?"

4 जुलाई तथा 6 जुलाई दोनों दिन पंडितजी ने ऋचानुवाद में लगाये। "शायद ही कल समाप्त कर सकें। इसके बाद दो दिन और पुस्तक का काम रहेगा। मूल ग्रंथ में कितनी ही बातें जोड़नी होंगी। अच्छा होता यदि सारा प्रूफ एक ही बार दे देते। शायद मंगल के लिए चीन जाने के लिए पासपोर्ट मिलना सम्भव न हो। ऐसी स्थिति में कमला और मुझे दो बच्चों को सँभालना मुश्किल होगा। इसलिए जया को कान्वेन्ट में रखना ही ठीक होगा।

भोजन के बाद भाभीजी मुन्ने के साथ आ गईं। चाय तक रहीं। आज तीन दिन का 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' एक साथ आया। रास्ता खराब हो गया है। और भी डाक बहुत कम आती है।"

**बुधवार, 6 जुलाई :** "आज धूप भी कुछ, और वर्षा भी।

ऋचानुवाद का संशोधन समाप्त हो गया। थोड़ा-सा काम है। सोमवार को पुस्तक लौटा सकेंगे। प्रयाग से, 'मध्य एशिया का इतिहास' का प्रूफ और लखनऊ से एक फार्म का प्रूफ आया। देख भी लिया। मध्य एशिया के परिशिष्ट को छोड़ 3 फार्म से अधिक अब मैटर नहीं रह गया। अब अकबर के बाकी अंश का लिखना इसी सप्ताह से शुरू कर देंगे।"

**बृहस्पतिवार, 7 जुलाई :** "दिन में वर्षा नहीं। 10 बजे बाद शहर गये। लंढौर तक। कुल्हड़ी और किताबघर से कुछ सस्ती चीजें मिलीं। भोजन भाभीजी के यहाँ किया। लौटकर 'श्री 420' फिल्म देखी। बुरी नहीं। कथा

असम्बद्ध, राजकपूर के अभिनय में अति विनम्रता। चाय भाभीजी के यहाँ ही। कमला ने कलिम्पोंग के लिए कुछ चीज़ें खरीदी। करुणेन्द्र की कविता बुरी नहीं है। भाभीजी के यहाँ पुरुष नहीं और वह सारे जेवर लायी हैं, इसलिए किसी के रहने की जरूरत है। करुणेन्द्र सहायता करते हैं।"

**8 जुलाई, 1956** : "आज कुछ ही बादल रहे। काम थोड़ा ही कर सके। देखें ग्रिफिथ का काम कल पूरा हो जाता है ? दोपहर बाद जुत्शी-दम्पती आये। जुत्शीजी संस्कृत पाठमाला-2 पढ़ रहे हैं। मोहिनीजी (श्रीमती जुत्शी) भी देखकर उत्साहित हैं। व्याकरण पर अधिकार प्राप्त करने की कोशिश भी करनी चाहिए।

श्री रामनाथ त्रिवेदी (गाजीपुर) आये। किसी प्रकाशक का काम कर रहे हैं। हमें तो दूध का जला छाछ फूँककर नहीं पीना है। दो तरुण आये, जिनसे देश-विदेश की राजनीति पर बातें देर तक होती रहीं।"

**9 जुलाई, 1956** : "आज दिन में नहीं, पर शाम को वर्षा हुई।

ग्रिफिथ का काम करके उसे लौटा दिया। चीनी दूतावास को भी चार पुस्तकें भेजीं। कमला इसके महत्व को भी समझने की कोशिश नहीं करती।

श्री रामनाथ त्रिवेदी चाय के बाद गये। प्रूफ कोई नहीं आया।

'अकबर' लिखने की तैयारी कर रहे हैं। मानसिंह, टोडरमल को लिख डालना है, कल शुरू करेंगे। कमला शहर गई सामान लाने। चाय पर डाक्टर राम (पड़ोसी) को बुलाना चाहती थीं, मंगलजी भोजन का निमंत्रण दे आये।"

**10 जुलाई, 1956** : "आज रात को बहुत वर्षा हुई, दिन में नहीं।

थोड़ा-सा मानसिंह लिखा गया। खादीवाले संतरामजी (नैनीताल) आ गये। लिखना बंद कर दिया। श्रीमती मोहिनी जुत्शी अपने पुत्र तपसी जुत्शी के साथ आईं। तपसी कुछ मिस्टिक आदर्शवादी तबियत के हैं, अमेरिका से 6-7 वर्ष बाद लौटने पर भारत में मन नहीं लगता।

फिर डाक्टर राम सपरिवार आ गये। श्री श्यामलाल दवे की भी चाय यहीं थी। तीन-चार घंटे बातचीत में लग गये। थोड़ा ही पढ़ने का काम हो सका। आज भी कोई प्रूफ नहीं आया।"

**11 जुलाई, 1956** : "आज भी वर्षा। टोडरमल को लिखाना शुरू किया। अकबर के लिए विंसेन्ट स्मिथ को पढ़ डाला। आज इसमें भी हाथ लगाया। श्री जैनेन्द्र, परिवार के साथ आये। थोड़ी देर रहे।

भाभीजी करुणेन्द्र की कविता पर मुग्ध हैं। प्रशंसा करते नहीं थकतीं।"

12 जुलाई का दिन भी पंडितजी ने लिखने में बिताया। आज टोडरमल को लिखकर समाप्त कर दिया। 13 जुलाई, उन्होंने 'अकबर' सम्बन्धी सामग्री को अध्याय के अनुसार लगाया। इसे लिखाना कल से आरम्भ करेंगे, ऐसा उन्होंने सोच लिया। आज उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं। दिन-भर जुकाम और कंठ में दर्द रहा, कुछ ज्वरांश भी, पर काम करते रहे। हमारे बहुत कहने पर चाय के बाद लेट गये। इस सप्ताह कोई प्रूफ न आने से उनका मन खट्टा भी हो रहा था। दूसरे दिन भी उन्हें बुखार रहा। दवा की जगह उन्होंने उपवास रखा। पढ़ने के नाम पर उन्हें अखबार मात्र पढ़ने दिया गया।

15 जुलाई को भी उनका लेटे-लेटे समय बीता। दोपहर के बाद उनको बार्ली का पानी दिया गया। बुखार आने पर वे हमेशा ही उपवास करते थे। इस तरह बिना दवा के ही वे ठीक हो जाते थे। उस दिन डॉ. सत्या गुप्ता के पिताजी श्री वेदप्रकाशजी पंडितजी से मिलने आये। पक्के आर्यसमाजी और बड़े भक्त भी। वह परेशान थे और अस्वस्थ भी रहे। कहने लगे—"दोनों बेटियाँ सत्या और डॉ. गायत्री मेरी फिक्र नहीं करतीं। नौकर रखा 40 रुपया मासिक पर तथा खाने-पीने पर, छोड़ने पर तीन माह की तन्खाह देना। कई बार दण्ड भर चुके थे, फिर उसी को रखना चाहते हैं।"

"जेता 11 मास का होते ही बोलने की कोशिश करता था। अब तो 18वें महीने में जया जीजी आ गी, भूतू (कुत्ता) मेरा, बैया ने मुत्ती करी, जैसे वाक्य बोलता है। कुछ अक्षरों का उच्चारण ठीक से नहीं कर पाता।" (15 जुलाई, 56)

16 जुलाई को भी उन्हें जुकाम रहा, लेकिन बुखार नहीं। कई दिन बाद आज उन्होंने खिचड़ी खाई।

भारतीय ज्ञानपीठ का पत्र मिला कि वे लोग 'हिमाचल प्रदेश' को छापना चाहते हैं। किन्तु पंडितजी की ओर से शर्त रखी गई–पहले तो तुरंत छपनी चाहिए, जिससे उनके चीन जाने से पहले प्रकाशित हो जाये। नहीं तो श्रीनिवास (किताब महल) तो हैं ही। किन्तु किताब महल ने 'हिमाचल प्रदेश' की पाण्डुलिपि को पाँच साल तक अपने पास रखकर कागज न मिलने का बहाना बनाकर 1961 में लौटा दिया। इसका कुछ अंश 'हिमप्रस्थ' (शिमला) में धारावाहिक रूप से छपा। अब महापंडित राहुलजी के जन्म शताब्दी वर्ष में इसका कल्याण होने की संभावना है।

प्रूफ के न आने से राहुलजी बड़े ही खीझ रहे थे। श्री गुंठेजी ने जुलाई में प्रूफ भेजने की बात की और अब तक कुछ नहीं कर रहे थे। किन्तु पंडितजी मनमारे क्यों बैठने लगे ? 17 जुलाई को उन्होंने 'ऋग्वेदिक आर्य' के परिशिष्ट को ठीक कर दिया। उसके बाद 'अकबर' की तिथिसारिणी (क्रोनोलाजी) तैयार करते रहे। अब वे 'अकबर' पर ही हाथ लगानेवाले थे जो 400 पृष्ठ की पुस्तक होने जा रही थी। उस दिन की सुबह भाभी जी टहलते हुए आ गईं। 2 अगस्त को उनके मुन्ने को स्कूल में दाखिल करना है और यहाँ अकेले मन भी नहीं लग रहा, क्योंकि भाई साहब (स्वामीजी) की बम्बई में तारीख़ पड़ गई है और वे बम्बई चले गये हैं, इसलिए अब वे दिल्ली जानेवाली थीं।

**18 जुलाई :** "अकबर लिखना शुरू किया। 12 बजे तक काम चलता रहा। 1 बजे कमला के साथ चले। श्री कैलाशचन्द्र एस. डी. एम. ने कमलमाया परियार की जगह कमलमाया सांकृत्यायन के नाम परिवर्तन (यूनिवर्सिटी के सर्टिफिकेट के लिए) के शपथपत्र का सब कुछ ठीक कर दिया। तब 2.30 बजे हम भाभीजी के पास जा सके। भोजन करके हम वहीं रहे। कमला लंढौर बाजार तक गई। चाय पीकर लौटे। बाबा अमिताभ (सत्यकेतु-पुत्र) अस्पताल से चला आया। डॉ. सत्यकेतु और शीलाजी रास्ते में मिलीं। हजेला साहब पूरा किराया 160 रुपया दावा करने जा रहे हैं। भाभीजी समझती नहीं। रास्ते में सर सीताराम मिले। चीन से प्रभावित हैं।"

**19 जुलाई :** "आज वर्षा रही। दिन-भर बादल भी।

जान पड़ता है, प्रेस में टैक्स्ट बुक छपने लगे हैं। गुंठेजी ने कहा है, सितम्बर तक दोनों पुस्तकें छाप देंगे।

आज 'माओ' (माओ-चे-तुंग) को चीन के लिए उच्चारणानुसार लिपि के बारे में लिखा। सबसे अधिक जोर तिब्बती अक्षरों पर दिया, उसके बाद रूसी वर्णमाला पर। नागरी के बारे में भी कहा। उसी पत्र को लेकर श्री राजेन्द्र प्रसाद (राष्ट्रपति) और चीनी राजदूत, दिल्ली के पास चिट्ठी भेजी। राजेन्द्र बाबू के पत्र में पासपोर्ट के बारे में भी जिक्र किया।

भाई साहब (स्वामी हरिशरणानन्दजी) को भी लिखा दिया। हजेला साहब किराये का मुकदमा चलानेवाले हैं, 160 रुपया देकर छुट्टी लेनी चाहिए।

मानसिंह, टोडरमल को दुहराया। पत्रों को भी लेख भेजने हैं। बदायूनी को भी देखकर साथ ही भेजना है।"

## अस्वस्थता

20 जुलाई को माओ के पत्र को रजिस्ट्री से भेज दिया। उसी दिन बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी से एक थीसिस निरीक्षण के लिए आई। चिट्ठियाँ इधर कुछ दिनों से नहीं आ रही थीं, इसलिए पंडितजी को उदासी मालूम हो रही थी। अकबर के नौरत्नों पर हाल में जितने भी लेख, लिखे सबको आज दिन-भर दोहराते रहे। अब 'अकबर' ही लिखना रह गया था। इसको भी अगले दिन से शुरू करना तय कर लिया और 21 जुलाई को इसके 13 पृष्ठ टाइप भी हो गये। 12-13 पृष्ठ और लिखवाना था। आज ही तीन लेख और पत्रों के लिए भेज दिये। इस प्रकार अब अकबर के भी सहकर्मियों की जीवनियाँ प्रेस में चली गईं। 13 अगस्त तक अकबर को समाप्त करने की योजना बना ली गई। इस साल के कार्यक्रम के अनुसार आगे 'घुमक्कड़ स्वामी' और 'असहयोग के मेरे साथी' पुस्तक लिखना शेष रह गया।

22 जुलाई को राहुलजी पढ़ते रहे। इधर कई दिनों से अत्यधिक परिश्रम के कारण अब उनके शरीर को आराम की जरूरत थी, पर वे आराम करनेवाले जीव तो नहीं थे। अतः उस शाम को कुछ बुखार का पूर्व-रूप दिखाई पड़ा और मुँह का स्वाद भी फीका हो गया। इतना ही नहीं, वे शरीर और हृदय में भी कुछ दर्द महसूस करने लगे। अपराह्न में उनके मित्र जुत्शी-दम्पती आये। जुत्शी साहब ने आज उनसे संस्कृत पढ़ी। रात को पंडितजी का ज्वर 102° तक पहुँच गया। 23 जुलाई को भी दिन-भर 102°-103° तक रहा। इसके साथ ही उन्हें पतले दस्त आ रहे थे। उनकी कमजोरी बढ़ती गई। हम लोगों को बिना बताये चुपचाप अपने आप ही बाथरूम जाते रहे। "शाम तक दुर्बलता अधिक आ गई। कमला ने सँभाला। पाखाने से उठे तो होश नहीं रहा, वहीं गिर पड़े। दो मन के आदमी को भला कमला दोनों बहिन कैसे ही सँभालकर चारपाई पर लायीं। बैडपेन इस्तेमाल करना चाहिए था।"

सचमुच ही उस शाम उनकी अवस्था देखकर हमें बड़ी घबराहट हुई। बाथरूम से शयनकक्ष तक हम दोनों बहिनें उनको बड़ी मुश्किल से ला सकीं। पानी तो बरस ही रहा था। घर भी शहर से दूर, डाक्टर इतनी दूर आने को तैयार नहीं। शहर से दूर मकान लेने का पहली बार बहुत अफसोस हुआ। हमारे पड़ोसी डाक्टर राम, जो स्वयं भी डायबेटीज़, हृदय-रोग तथा टी. बी. के मरीज थे, किसी तरह हाँफते-हाँफते आये और पंडितजी को कुछ दवाएँ दीं। मंगलजी को दवा लेने उसी वक्त शहर भेज दिया।

24 जुलाई को उनका बुखार तो उतर गया, परंतु लाल आँव (डिसेन्ट्री) शुरू हो गया। पुराने दिनों में वे इस रोग को कई बार भुगत चुके थे। दवाइयों का बराबर सेवन किया। डॉ. राम आकर उनको देख गये। मुहल्ले के सभी लोग पंडितजी के साथ आत्मीयता रखते। उनकी बीमारी की खबर सुनकर जानकी भाभी भी करुणेन्द्र के साथ उनको देखने आईं और भोजनोपरान्त गईं।

बीमारी में भी पंडितजी का दिमाग चलता ही रहता। हाथ में जो काम थे, सो तो थे ही। आज फिर उन्होंने 'जिनका मैं कृतज्ञ' एक नई पुस्तक लिखने की योजना बना डाली। 25 जुलाई को भी मैंने उनको लेटे ही रहने के लिए विवश कर दिया। उन्होंने उस दिन लिखा—"हमारा सारा समय लेटे-लेटे ही बीता। कल से दस्तों की संख्या कम है, पर आँव (लाल) जा रहा है। दवा खा रहे हैं। एमेटिन का इंजेक्शन मना किया है।

"जेता के आठ दाँत निकल रहे हैं। बेचारे को दस्त भी आ रहे हैं, बुखार भी। बोलने का स्वर करुण।

"2500 Years of Buddhism पढ़ते रहे। लेख अच्छे हैं, कितनी ही भूलें रह गई हैं।

"पंडित हरिनारायण मिश्र (देहरादून) का देहान्त 23 जुलाई को सबेरे सात बजे हो गया। कितने सहृदय, छात्रों और तरुणों को कितना प्रोत्साहन देते थे।" पंडितजी की देहरादून-यात्रा मिश्रजी के कारण बड़ी मनोरम हुआ करती थी, संत-समागम जमकर होता था उनके डेरे पर। मिश्रजी के उठ जाने पर पंडितजी के मन को आघात लगना स्वाभाविक ही था।

26 जलाई को वे कुछ ठीक रहे। आँव जाना बन्द हो गया, दवाई खाते रहे। पर पेट साफ नहीं रहा। इधर पिताजी बीमार, उधर बेटे जेता की तबियत भी खराब। दाँत निकलने के कारण उसे पतले दस्त आ रहे थे, आज भी वह बन्द नहीं हुआ। इससे पिता को चिन्ता हो रही थी। उत्तरप्रदेश लोकसाहित्य समिति के सदस्य थे पंडितजी। अब उसकी बैठक लखनऊ में होनेवाली थी। पंडितजी ने 15 अगस्त तक घर से जाने का निश्चय किया। तब हमारे देश में सम्पूर्णतः कांग्रेसी शासन था। कम्युनिस्ट राहुलजी ने उस दिन कांग्रेसी राज्य की महिमा पर लेख लिखने का प्रोग्राम बनाया, पर आगे शायद नहीं लिखा।

20 जुलाई को राष्ट्रभारती (वर्धा) और साहित्य संदेश (आगरा) को दो लेख भेज दिये। पटना में शिवपूजन बाबू को पत्र लिख दिया। 28 जुलाई को उन्होंने आराम किया, विशेष काम नहीं कर सके। आज उन्होंने दही के साथ थोड़ा भात खाया। लेटे-लेटे चीनी लेखक 'माओतुन' की कहानियाँ पढ़ते रहे, पर इनमें उनको कोई विशेषता नहीं लगी। 28 जुलाई को चीनी नाटक 'अमर यौवन प्रासाद' पढ़ते रहे। उनको यह नाटक भारतीय क्लासिकल नाटकों जैसा मालूम हुआ। खाने में अभी उनका खूब संयम चल रहा था। इतने दिनों लिखाई भी बंद थी। अब फिर कल से लिखाई शुरू होनेवाली थी। 'अकबर' पुस्तक को 14 अगस्त तक लिख डालने का उन्होंने कार्यक्रम बनाया। 30 जुलाई को पंडित हरिनारायण मिश्र के बारे में उन्हें लिखने का

विचार हुआ। मिश्रजी के सुपुत्र डॉ. रूपनारायण मिश्र ने पिताजी के बारे में कुछ सामग्री भी भेज दी। बाद में उन्होंने इसे लिखकर पूरा किया जो उनकी पुस्तक 'जिनका मैं कृतज्ञ' में संकलित है। 30 जुलाई को ही पंडितजी ने 'अकबर' के सात पृष्ठ मंगलजी से लिखाये। फिर रात को 'अकबर' के बारे में ही पढ़ते रहे। 31 जुलाई की सुबह भी वे 'अकबर' लिखाते रहे। भोजनोपरांत पंडित हरिनारायण मिश्र पर लेख लिख डाला। आज ही के दिन उनके मित्र डाक्टर अशरफ ने शेरशाह के बारे में कुछ पुस्तकों की नामसूची भेज दी।

1 अगस्त को पंडितजी ने 'अकबर' के 10 पृष्ठ लिखाये। आज ही 'दोहाकोश' के प्रूफ को देखकर लौटा दिया। 2 अगस्त को भी 'अकबर' के 11 फुलस्केप पृष्ठ टाइप हुए। लिखाने का काम आज के लिए पर्याप्त हुआ। अतः बहुत दिनों के बाद आज उन्होंने एक अंग्रेजी उपन्यासकार डोरोथी ह्विपल का 'ग्रीन बैक' पढ़ना शुरू किया। इसके बारे में वे अपना विचार यों लिखते हैं–"उपन्यास में गहराई नहीं, पर छोटी-छोटी बातों और चीजों का सुन्दर वर्णन दिलचस्प मालूम होता है।"

3 अगस्त को भी पंडितजी 'अकबर' लिखाते रहे। इसी बीच हमारे पड़ोसी कुंदन लाला की बुढ़िया के मरने की खबर मिल गई। "गये देखने। आज 9 बजे बुढ़िया मरी। कुंदन लाला को धक्का लगना ही था। कोई पुत्र नहीं। बेटियाँ अपने घरों में। शव को हरद्वार जलाने के लिए ले गये। तीन-चार वर्ष से बेचारी असह्य रोग से पीड़ित मृत्यु की कामना करती रही। मैंने कहा था–जमराज के यहाँ तुम्हारा पर्वाना गुम हो गया। हैपी वेली में यह दूसरी मृत्यु–लेडली के बाद।"

4 अगस्त को 'अकबर' के 10 पृष्ठ लिखाने के अतिरिक्त उन्होंने 'असहयोग के साथी' के भी दो लेख लिखाये। 5 को दिन-भर के लेखन-कार्य के बाद रात को मोपांसा के उपन्यास 'एक स्त्री का जीवन' (A Woman's Life) पढ़ते रहे। "मोपांसा अद्वितीय है।"

इस प्रकार 'अकबर' का लेखन नियमित चल रहा था। 6 अगस्त को उसकी आवृत्ति भी की। बहुत दिन पहले लिखा गया 'माओ-चे-तुंग' और बड़े भाई 'चंद्रसिंह गढ़वाली' की पाण्डुलिपियाँ दिल्ली में खटाई में पड़ी हुई थीं। पंडितजी को देरी के कारण बड़ी खीझ उठ रही थी। उन्होंने दिल्ली के प्रकाशक के एक साथी को लिखा कि यदि 'माओ' को जल्दी छापना नहीं चाहते हैं तो लौटा दें। आज उन्होंने बहुत-से पत्रों के उत्तर लिखवाये। एक चिट्ठी से मालूम हुआ कि आनन्दजी (भदन्त आनन्द कौसल्यायन) 'अंगुलिमाल' फिल्म के परामर्शदाता होकर बम्बई में पड़े हुए हैं। उसी दिन डॉ. रामानन्द तिवारी का 'पार्वती' महाकाव्य आ गया। पढ़कर विचार व्यक्त किया, "अच्छा लिखा है।"

7 और 8 अगस्त को भी उनका नियमित लेखन-कार्य चलता रहता है। 'कांग्रेसी राज्य' के चार पृष्ठ लिखवाये। दूसरे दिन भी कांग्रेसी राज्य को 11 पृष्ठों में खत्म किया। 'अकबर' के साथ-साथ 'जिनका मैं कृतज्ञ' तथा 'मेरे असहयोग के साथी' पर भी कलम (टाइप) धड़ाधड़ चलने लगी। इसी समय कलिम्पोंग जाने की भी चर्चा चल रही थी। अतः वहाँ के लिए भी विशेष काम 'सप्त-सिंधु' ले जाने का निश्चय हुआ।

मसूरी में वर्षा का मौसम, अतः मिलनेवाले बहुत कम ही 'हर्न-क्लिफ' में पहुँच पाते थे। उनके एक तरुण शिष्य उनसे मिलने आये। वह कुछ सज-धजकर ही आये थे। पंडितजी ने लिखा–"कोट-पैंट पहनना जरूरी ठहरा।" बीच-बीच में मुझे लेकर सिनेमा भी देख आते। पर उनका सिनेमा हाल में तीन घंटा बैठने में मन नहीं लगता। अब 14 अगस्त को उनको कुछ दिनों के लिए मसूरी से बाहर जाना था, इसलिए पूरी व्यस्तता के साथ 'अकबर' की आवृत्ति पूरी कर डाली।

## लखनऊ-प्रयाग के लिए प्रस्थान

14 अगस्त को भोज़नोपरान्त डेढ़ बजे वे घर से चलते हैं। कुली से सामान उठवाकर किंगक्रेग में उन्होंने बस पकड़ ली। राजपुर रोड (देहरादून) में आर. के. कम्पनी के यहाँ उतर गये। यहाँ उन्होंने फिल्म धोने को दी, मेरी घड़ी भी बनाने को दी। यहाँ पर ही अपने कैमरे का क्लोज़अप लैंस 58 रुपये में खरीदा। फिर ताँगा लेकर शुक्लजी के यहाँ गये। यहीं आकर उन्हें पता लगा कि उनके मित्र मिश्रजी (हरिनारायण) 13 दिनों से

बीमार थे। बीच में दो-चार दिन के लिए कुछ बेहतर मालूम हुए, किडनी ने काम करना शुरू किया, कष्ट कुछ शांत हुआ। पुत्र और बहू ने उनकी खूब सेवा की। तब तक बेटी और बीवी भी आ गई थीं। मिश्रजी की मृत्यु से पंडितजी का मन अत्यन्त व्यथित हुआ, तभी तो उन्होंने लिखा, "अकस्मात् और वीराने में मृत्यु अच्छी है।" (14 अगस्त)

अगले दिन (15 अगस्त) मिश्रजी के घर में हरिनारायण मिश्र के कागजों को जमा करने पर राहुलजी को उनकी कितनी ही कविताएँ मिलीं। उन्होंने इन कविताओं पर भी लेख लिखने का सोचा। मिश्रजी के श्राद्ध में उनको भी भाग लेना था। शाम को श्री मेहताजी उनके पास आ गये। श्री रूपनारायण मिश्र भी राहुलजी के निर्देशन में अपनी थीसिस लिखना चाहते थे, जिनको बाद में आगरा युनिवर्सिटी से पी-एच. डी. की डिग्री भी मिल गई। उसी रात को पंडितजी लखनऊ के लिए रवाना हुए और दूसरे दिन (16 अगस्त) 8.30 बजे लखनऊ स्टेशन पहुँच गये। स्टेशन पर श्री शम्भुनाथ सिंह मिले, जो उस समय 'त्रिपथगा' में आ गये थे।

**लखनऊ :** पंडितजी का ठहरना श्री यशपालजी के यहाँ हुआ। श्री विद्यानिवास मिश्र और डॉ. उदयनारायण तिवारी भी लोक साहित्य समिति की बैठक में भाग लेने आ गये थे। 4 बजे से लोक समिति की गोष्ठी आरम्भ हुई, श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी की अध्यक्षता में और 9 बजे समाप्त हुई। गोष्ठी में साहित्य के व्यापक तत्त्वों के बारे में भाषण हुए। राहुलजी ने संग्रह और जनता के लिए पुस्तिकाओं तथा जनभाषा के उपयोग पर जोर दिया। कल ही यहाँ से प्रयाग जाना तय हो गया। उस दिन पंडितजी नेशनल हेरल्ड प्रेस में गये और वहाँ से प्रूफ लेकर वहीं बैठकर देखा और वहीं लौटा भी दिया।

17 अगस्त को सुबह 9.30 बजे तक लोग उनसे मिलने आते रहे। 10 बजे आयुर्वेद कॉलेज के छात्रों के समक्ष पंडितजी ने भाषण किया। उनके मित्र डॉ. धर्मानन्द केसरवानी इस कॉलेज के प्रिंसिपल थे। उनसे पंडितजी का बहुत पुराना परिचय था। भवाली सेनिटोरियम में 1950 में भी उनके साथ पंडितजी की भेंट हुई थी। वहीं पर डॉ. केसरवानी ने डॉ. अमरनाथ झा और राहुलजी का सम्मान-सत्कार किया था। राहुलजी डॉ. केसरवानी की डाक्टरी योग्यता तथा उनके हिन्दी और संस्कृत के प्रति प्रेम के बड़े प्रशंसक रहे।

**प्रयाग की ओर :** भिक्षु प्रज्ञानन्द (बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क) को 'महामानव बुद्ध' की पाण्डुलिपि देते हुए पंडितजी डॉ. केसरवानी की कार से स्टेशन गये। प्रयाग जानेवाले डिब्बे से डॉ. उदयनारायण तिवारी, पं. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी और एक जिला जज भी सहयात्री थे। ट्रेन के सफर में भी कैसी संगोष्ठी रही होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। सहयात्री जिला जज तो धर्मप्रेमी भी थे। शाम 7 बजे प्रयाग स्टेशन पर उतर पंडितजी सीधे डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के घर जार्ज टाउन जाते हैं। उन दिनों राहुल बाबा के प्रयाग में ठहरने की यही जगह थी। डॉ. बदरीनाथ प्रसाद उनके विद्वान और घनिष्ट मित्रों में से थे। उस दिन भी वह राहुल बाबा की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। आज उन्होंने सफर की थकावट के कारण बिना इन्सुलिन इन्जेक्शन लिये ही भोजन किया। कभी-कभी की इस लापरवाही ने ही उनके मधुमेह रोग को और बढ़ा दिया।

**प्रयाग :** प्रयाग आकर श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय महाशय से मिले बिना बाबा का मन कहाँ मानता ? वे 18 अगस्त को महाशयजी के घर गये। पंडितजी की श्री चट्टोपाध्याय के प्रति ऋग्वेद के महान पंडित के रूप में अगाध श्रद्धा रही। किन्तु क्षेत्रेश बाबू इतने धुरन्धर विद्वान होते हुए भी लेखनी में आलस्य रखते थे, जिसके कारण राहुल बाबा को खेद होता था। उस दिन की भेंट में भी उन्होंने महाशयजी को ऋग्वेद सम्बन्धी कार्य करने के लिए कुछ उत्तेजना दी, किन्तु उनको आशा नहीं थी कि महाशयजी काम करेंगे।

18 अगस्त को ही पंडितजी अपनी नयी पाण्डुलिपियाँ किताब महल को देने गये। फिर वहाँ से सम्मेलन प्रेस में जाकर प्रूफ देखे। शाम को अपने मित्र रायरामचरण जी के यहाँ बड़ी कोठी में गये। उधर से ही वे महामना निरालाजी से मिलने गये। प्रयाग की हर यात्रा में वे निरालाजी के दर्शन के लिए जाते रहे। इस समय (1956) उनका शरीर ठीक था। श्री गणेश पाण्डे भी राहुल बाबा के पुराने मित्रों में से थे। उनसे मिलते हुए वह नागार्जुन के साथ प्रयाग के विज्ञान-पर्व में तरुणों की गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए गये। वहाँ "अमृतराय जी ने सवा घंटे कहानी-कला पर अच्छा भाषण दिया, यद्यपि गोष्ठी के अनुरूप नहीं।"

19 अगस्त को सबेरे 10 बजे राहुलजी ने जैन होस्टल के छात्रों के सम्मुख भाषण दिया और 3 बजे डायमण्ड जुबली होस्टल में। शेष समय में डॉ. प्रसाद के घर पर ही लोग मिलने आते रहे। इस यात्रा में उनको यह संतोष हुआ कि श्रीनिवासजी (किताब महल) ने उनकी तीन पाण्डुलिपियाँ प्रकाशन के लिए ले लीं। वास्तव में लेखक को अपनी कृतियाँ प्रकाशित करवाने के लिए आज भी कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, यह सभी लेखक अच्छी तरह समझ सकते हैं। किसी विशेष अवसर के लिए निर्धारित सरकारी अनुदान से अपनी किताबें प्रकाशित करवानेवाले लेखकों की बात अलग है। प्रयाग में उनके भक्तों की कमी नहीं थी, परन्तु श्री जयगोपाल मिश्र बाबा की सहायता भी करते थे और उनके साथ-साथ ही रहते भी थे। निराला-परिषद के श्री सत्यव्रत अवस्थी इस साल बदरी-केदार की यात्रा पर गये थे। उन्होंने पंडितजी को अपनी यात्रा की कहानी सुनाई थी। वे लिखते हैं—"सत्यव्रतजी सतपथ सरोवर से स्वर्गारोहण जाने लगे। मृत्यु और भगवान दोनों साथ-साथ चल रहे थे। बचकर चले आये।" (19 अगस्त, 1956)

20 अगस्त को राहुलजी का प्रयाग में बड़ा व्यस्त कार्यक्रम रहा। दिन-भर वे अपनी पुस्तक 'संस्कृत काव्यधारा' का प्रूफ देखते रहे। फिर सवा 3 बजे प्रयाग विश्वविद्यालय की संस्कृति-कला सभा में उनका भाषण हुआ। लेक्चर हॉल पूरा भरा था। वहाँ से वे डॉ. उदयनारायण तिवारी तथा जयगोपालजी के साथ राय रामचरण जी के यहाँ चाय पीने गये। अमृतरायजी भी अपनी कार लेकर आये। डॉ. बदरीनाथ प्रसादजी को साथ लेकर पंडितजी उनके यहाँ भोजन करने गये। "सुधाजी (श्रीमती अमृतराय) ने सेकण्ड डिविजन में एम. ए. कर लिया था, अब डाक्टरेट करना चाहती थीं।" वहाँ से 10 बजे रात को डेरे पर लौट आये और काफी देर तक प्रूफ देखते रहे। 22 की सबेरे की ट्रेन से देहरादून की सीट भी आज ही रिजर्व करवाई।

अगले दिन सुबह चाय पीकर पंडितजी डॉ. कपिलदेव व्यास जी के घर (कटरा) पर गये। डॉ. व्यास हर वर्ष मसूरी आते थे। पहले वे राहुलजी के बँगले हर्न-क्लिफ के थोड़े ऊपरवाले मकान हर्न-डेल में ठहरा करते थे। पीछे अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद वे अन्यत्र ठहरने लगे। तो भी जब भी वे मसूरी आते, राहुल बाबा से मिलने उनके घर आते थे। उनकी पुत्री सुनीति प्रयाग विश्वविद्यालय से संगीत की स्नातिका थीं। वह मेरी भी अच्छी सहेली थीं। डॉ. व्यास की नवविवाहिता पत्नी भी हमारे प्रति बड़ा स्नेह रखती थीं। डॉ. व्यास जब आते, देर तक पंडितजी के साथ साहित्य-कला-संस्कृति एवं राजनीति पर विचार-विमर्श करते थे। उस दिन पंडितजी उन्हीं के घर गये, वहाँ भी खूब बातचीत हुई। नवम्बर में आने पर उन्हीं के यहाँ ठहरने का निमंत्रण भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। सायं 6 बजे हालैण्ड हॉल में जाकर उन्होंने व्याख्यान दिया। उन्होंने लिखा—"डाक्टर चटर्जी धोती-कुर्तेवाले ईसाई। भाषण बुद्धिवाद और संस्कृति के समन्वय पर हुए। फिर म्युजियम जाकर काला साहेब से अनुमति ले कुछ अकबर सम्बन्धी फोटो और चित्रों के फोटो लिये। देखें कैसा आता है।"

उस दिन भोजनोपरान्त वे डॉ. बदरीनाथ प्रसाद की कार पर चले। डॉ. भगवतशरण, डॉ. सुमन से मिलते, कुछ मिठाइयाँ आदि खरीदते किताबघर आये। सम्मेलन प्रेस जाकर 'संस्कृत काव्यधारा' के कुछ और प्रूफ लाये। साढ़े 6 बजे सायं निराला-परिषद में गोष्ठी थी। 6 बजे से ही लोग आने लगे। गोष्ठी में सौ से अधिक आदमी थे, जस्टिस अग्रवाल, जस्टिस कमलाकांत वर्मा, पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र, रसालजी आदि बहुत-से मित्र आये। स्वागत हुआ। पंडितजी ने भी भाषण दिया।

## प्रयाग से प्रस्थान

22 अगस्त को सुबह 9 बजे के बाद पंडितजी स्टेशन चले। डॉ. बदरीनाथ प्रसाद, डॉ. उदयनारायण तिवारी और दूसरे कितने ही मित्र स्टेशन पर आये। यहाँ से देहरादून जानेवाले डब्बे में बैठ गये। "लखनऊ तक मैं अकेला ही कम्पार्टमेंट में रहा। लखनऊ में दो सैनिक आफिसर बरेली के लिए आये—एक गोवानी तथा दूसरे बुलन्दशहर के। रास्ते-भर बातें होती रहीं। 7 बजे शाम को बरेली पहुँचे। देखा-देखी बुलंदशहरी कर्नल ने संडीला का लड्डू लिया, पर छोड़कर उतर गये। यहाँ से देहरादून तक के साथी रेवाड़ीवाले एक सिविलियन आर्डिनेन्स-निरीक्षक चले, फलाहारी, शुद्ध दूध-घी के पक्षपाती।

"अमृतराय की 'नागफनी के देश में' पढ़ी, कहानी बहुत सुन्दर लिखी है।"

**मसूरी :** 23 को पंडितजी मसूरी पहुँच जाते हैं। घर में बहुत-सी चिट्ठियों के साथ गुरु नानक की कविता पर पी-एच. डी. की थीसिस पंजाब युनिवर्सिटी से आई थी। अगले दिन उस थीसिस को देखा। "लिखा अच्छा है, पर कवि को दिव्य बनाने के लिए अतिशयोक्ति से काम लिया है।" सुबह के समय वे अपना दैनिक कोटा–लिखाना जारी रखे रहे। मेरी थीसिस की सिनाप्सिस भी उन्होंने देखी।

25-26 अगस्त को भी पंडितजी सदा की तरह ही लेखन-कार्य करते रहे। रविवार के दिन शाम को डॉ. सत्या गुप्ता के पिताजी तथा कोटखाई के रेंजर दम्पती आये। शाम को उनकी अधकपारी दाहिनी ओर दुखने लगी। "क्यों, कार्य का विघ्न शुरू हो गया ?"

अगले दिन समालोचनार्थ बहुत-सी पुस्तकें आईं, जिनमें ओमप्रकाश (करोलबाग, नई दिल्ली) लिखित 'मंगलग्रह की यात्रा' उन्हें रोचक लगी। महाश्वेता भट्टाचार्य की बंगला पुस्तक 'झाँसी की रानी' बहुत अच्छी लगी। इधर अगले माह कलिम्पोंग जाने की तैयारी हो रही थी। श्री मणिहर्ष ज्योति (ज्योति ब्रादर्स) ने कलिम्पोंग में उन्हीं के घर ठहरने का निमंत्रण भेजा। मणिबाबू पंडितजी के बहुत पुराने मित्रों में से हैं। 1930 में तिब्बत की पहली यात्रा से लौटते समय कलिम्पोंग में पंडितजी इन्हीं के घर ठहरे थे। साहु भाजुरत्न–मणिहर्षजी के पिता–ने उस समय पंडितजी का बहुत स्वागत-सत्कार किया था। कलिम्पोंग में मणिबाबू के घर के पड़ौस में ही मेरा भी जन्म हुआ था। मणिबाबू के परिवार ने मुझे बचपन से ही देखा। उनकी बहन ज्ञानशोभा मेरी बचपन की सहेली। 7वीं कक्षा तक दोनों साथ पढ़ी थीं। इस प्रकार ज्योति ब्रादर्स के साथ न केवल पंडितजी का बल्कि मेरा भी बहुत पुराना मैत्री-सम्बन्ध था, यह बात पंडितजी जानते थे।

**हिन्दी विश्वकोष :** 28 अगस्त को डॉ. राजबली पाण्डे का दिल्ली से भेजा हुआ पत्र पंडितजी को मिला। हिन्दी विश्वकोश की बात तै हो गई थी। उसके प्रधान सम्पादक का भार ग्रहण करने के लिए राहुलजी से फिर आग्रह किया गया था। उन्होंने वैसी स्वीकृति दे दी। मणिबाबू तथा ज्ञानज्योतिजी को भी उसी दिन उन्होंने पत्रोत्तर लिख दिया कि कलिम्पोंग में उन्हीं के यहाँ ठहरेंगे। उसी दिन पंडितजी को एक दुखदायक समाचार मिला। उनके अनन्य मित्र साहेबजादे महमूद का 24 अगस्त को अलीगढ़ में देहान्त हो गया। "कितना अकृत्रिम मधुर व्यक्तित्त्व था इस पुरुष का और त्याग भी। एक संस्मरण लिखाना है।"[1]

30 अगस्त को मौलाना आजाद को उर्दू काव्य के नागरी अक्षरों में छापने के लिए जामिया को सहायता देने के लिए उन्होंने पत्र लिखा। सुनवाई हुई या नहीं, राम जाने।

31 अगस्त से उन्होंने 'जिनका मैं कृतज्ञ' पुस्तक लिखाना आरम्भ कर दिया। उनकी तबियत अच्छी तो थी ही नहीं। 25 युनिट इंसुलिन के इंजेक्शन लेने के बाद भी उनको बहुत पेशाब लगती थी। उनका वजन भी पहले से काफी कम हो गया। काम नहीं रहे तो भी, नये-नये काम निकलते ही जा रहे थे। इस साल श्रीनिवासजी ने रायल्टी के तीन हज़ार रुपये दे दिये जिससे पंडितजी को कुछ निश्चिंतता हुई।

कभी-कभी, इतने कामकाज तथा व्यस्त रहने के बावजूद, घरेलू बातों के लिए हमारे बीच टकराहट हो ही जाती थी। उनको लगता कि मैं उनकी भावनाओं का ख्याल नहीं करती, मुझे लगता कि वे मेरी भावनाओं का ख्याल नहीं करते। बस, दोनों झुँझलाते, परंतु यह कड़वाहट क्षणिक होती। हमारे पास-पड़ौस में ऐसे भी जबर्दस्त तत्त्व उन दिनों थे, जो हमारी इस तरह की क्षणिक कड़वाहट को चिरस्थायी बना देने के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे। यदि उन दिनों मेरे दिमाग का संतुलन बिगड़ गया होता, तो जाने किस-किस की पोल खुल जाती। किंतु मैंने अपने ऊपर बहुत ही संयम रखा। उनके आने-जानेवाले मित्रों तथा महिलाओं का हर तरह से स्वागत-सत्कार किया। जो तत्त्व हमारे जीवन में खाई खोद रहे थे, उनको सफलता तो नहीं मिली, लेकिन कुछ हद तक मेरे जीवन में कड़ुवाहट भर देने में उनका हाथ जरूर रहा। इस बात को पंडितजी उन दिनों नहीं समझ सके, परंतु बाद में जब समझे तो उनके लिए मेरा मूल्य बहुत बढ़ गया। तो, हमारे मसूरी

---

1. साहेबजादे महमूद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य थे।

निवासकाल में ऐसे तत्त्व हमारे आसपास मँडराते रहे। इन तत्त्वों का पर्दाफाश करने के लिए आज मैं स्वतंत्र हूँ। यह तत्त्व जो हमारे दाम्पत्य जीवन में घुन की तरह चिपका हुआ था, वह और कोई नहीं, जोधपुर की तथाकथित ठाकुरानी गुलाबकुमारी थी, जिसकी जीवनी को राहुलजी ने 'राजस्थानी रनिवास' नाम से लिखकर छपवाया था। जीवनी क्या लिखी गई कि जीवनी की हीरोइन लेखक के जीवन की हीरोइन बनने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने लगी, किन्तु उसकी दाल गलने न पाई, क्योंकि यहाँ राहुलजी की प्रतिष्ठा का भी सवाल था। वह औरत पति-परित्यक्ता अतृप्त नारी थी। ऐसी औरतें दूसरों के सुखमय दाम्पत्य को फूटी आँख नहीं देख सकतीं, दूसरों की खुशी उनसे सहन नहीं होती। इसी खलनायिका के कारण हमारे घर में भी खटपट हुआ करती थी। परन्तु मेरा राहुलजी पर अटूट विश्वास था, साथ ही मैं उनको पूजनीय मानकर उन पर अन्धश्रद्धा भी करती थी। इसी ने हमारे दाम्पत्य सम्बन्ध को टूटने से बचाया।

इसी घिनौने तत्त्व के कारण पंडित जी मुझ पर अकारण ही रुष्ट हो जाते थे। 1 सितम्बर को भी वे इसी प्रकार मुझसे रुष्ट हो गये। खैर, किसी तरह हम लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त रहकर ऐसी बातों को उड़ा देते। हमारा झगड़ा जोर-जोर से बोलकर या हाथापाई द्वारा नहीं होता था। हमारा झगड़ा होता था लेखनी के द्वारा। एक-दूसरे की शिकायतें हम कागज पर लिखकर रख देते, इसलिए बाहरवाले लोग नहीं समझ पाते थे कि हमारे बीच कोई बात हुई है। मसूरी के निवासकाल में ही मैंने जाना और तय किया कि आदमी को कितनी ही बड़ी मुसीबत क्यों न सताये, उसे चुपचाप सहन करते जाना चाहिए। दिल साफ हो और कभी किसी का बुरा नहीं चेता हो, तो उसका बुरा चाहनेवाले का अनिष्ट प्रत्यक्ष दिखाई देता है। मेरे जीवन में भी ऐसा ही हुआ। अपना बुरा चाहनेवालों के प्रति मैंने भी पंडितजी की तरह ही अजातशत्रु होना सीखा। वस्तुतः उन्हीं महापुरुष ने मुझे क्रोध के समय संयम रखना सिखाया।

2 सितम्बर फिर रविवार का दिन। परन्तु पंडितजी के कामों में कोई व्यवधान नहीं। 'जिनका मैं कृतज्ञ' को सुबह लिखाया। अपराह्न में इंजीनियर महावीर प्रसादजी के साथ जुत्शी-दम्पती आये। ये तीनों मसूरी में थियोसोफिकल सोसायटी के सदस्य थे। पंडितजी को इसकी बैठक में कुछ बोलने का निमंत्रण दिया। 3 सितम्बर को भी उसी तरह काम चालू रहा। 4 को शहर गये। कमजोरी के कारण अधिक चलना उनसे हो नहीं पाता था। वजन देखा, केवल 152 पौंड। शारीरिक कमजोरी के कारण ही उनमें चिढ़चिढ़ापन भी बढ़ता जा रहा था। लेकिन यह स्थिति क्षणिक ही रहती। 5 सितम्बर को उन्होंने अपनी डायरी में नोट किया—"घर बाँधने, पुस्तकों के संग्रह कराने ने तरद्दुद में डाल रखा है।

सुबह होती है शाम होती है
उम्र यूँ ही तमाम होती है।

मुझे पहिले पद के अनुसार 'दिवस जात नाहि लागहि वारा' याद आता है।" (5 सितम्बर, 56)।

'पालि काव्यधारा' पुस्तक तैयार करने के लिए उन्होंने श्री भरतसिंह उपाध्याय से वचन ले लिया था। पर जब उन्होंने नहीं किया तो पंडितजी ने स्वयं ही उसे तैयार करने का निश्चय किया। (सिंहल देश में रहकर उन्होंने इस ग्रंथ को 1960-61 में पूरा कर दिया।) शारीरिक कमजोरी तथा अन्य चिन्ताओं के कारण पंडितजी उन दिनों बहुत ही खीझते रहते थे। मुझ में उन दिनों उनको दोष ही दोष दिखाई देते थे। गुणों का तो उन्होंने लेखा-जोखा नहीं रखा, अलबत्ता मेरे दोषों को डायरी में नोट करते या अपने तथाकथित घनिष्ट मित्रों को लिखा करते। 7 सितम्बर की डायरी में लिखा है—"कमला फिर सिलाई कर रही है। मैं चाहता था थीसिस के आवेदन के स्वीकृत होने तक वह संस्कृत की पाँचों पुस्तकें पढ़ डालती, तो कुछ काम पूरा हो जाता। पर बहाना मिला है—'मंजूर होने पर पढ़ूँगी। इसमें इतनी ढीलमढाल नहीं चलेगी, इसका ख्याल नहीं।"

पंडितजी भूल जाते थे कि मैं जो सिलाई कर रही होती थी, उन्हीं के छोटे-छोटे बच्चों के जरूरी कपड़े होते थे।

हिन्दू विश्वविद्यालय के शोधछात्र रमेश मिश्र की पी-एच. डी. की थीसिस जाँचने के लिए पंडितजी के पास आई। "बहुत ही अच्छी तरह लिखी हुई है और काफी पढ़ने के बाद।" उसी दिन 4 सितम्बर को श्री

लक्ष्मीनारायण तिवारी (डॉ. उदयनारायण तिवारी के सुपुत्र) ने पंडितजी को लिख भेजा—"दिल्ली विश्वविद्यालय बौद्धदर्शन की गद्दी स्थापित कर रहा है, उसे स्वीकार कीजिए। भला यह होने वाली बात है ?" "कित्तिमा बाबा (सारनाथ) ने उदयनारायण और उनकी चाची (पंडितजी की प्रथम पत्नी) की अवस्था लिखकर कुछ आर्थिक सहायता करने का आग्रह किया है।" (8 सितम्बर)

9 सितम्बर को मेरे ऊपर पंडितजी की फिर मेहरबानी होती है। उन्होंने लिखा—"कमला की वही रफ्तार बेढंगी है। पी-एच. डी. की अच्छी थीसिस (रमेश मिश्र की) देखने के लिए आई है। कहा, देख लो। पर कान पर जूँ रेंगनेवाली है ? जानती हैं, पी-एच. डी. भी उसी बेपर्वाही से हो जायेगी। कैसे समझाया जाये। अपने ही देख लेंगी। मुझे तो यह निश्चय मालूम होता है कि ऐसी मनोवृत्ति में वह पी-एच. डी. नहीं कर सकतीं।'

दूसरे दिन जया और जया की माँ (मुझे) को लेकर पंडितजी शहर गये। परिवार के साथ उन्होंने 'शतरंज' फिल्म देखी। फिल्म के प्रति उनके विचार—"कहानी में कोई जोर नहीं, बेकार की फिल्म। अशोककुमार और मीनाकुमारी जैसे अच्छे अभिनेता, पर वे क्या करते ?" शहर जाने पर लक्समौंट में डॉ. सत्यकेतुजी के यहाँ उनका पड़ाव रहता ही। चाय अक्सर उन्हीं के यहाँ पी जाती। अब डाक्टर साहब ने दिल्ली में किताबों का व्यवसाय शुरू कर दिया था। प्रकाशन के कार्य से वे सन्तुष्ट थे। उन्होंने अब दिल्ली में ही ज्यादा समय रहने का विचार किया। बाद में तो वे दिल्ली के ही स्थायी निवासी बन गये।

पंडितजी पुस्तकें जितने उत्साह से लिखते थे, उनके प्रकाशन की व्यवस्था के लिए उतनी ही चिन्ता होती थी। 'हिमाचल प्रदेश' की पाण्डुलिपि उन्हें उसी प्रकार मुश्किल में डाले हुए थी। उसके छपने की व्यवस्था अभी तक नहीं हो पायी थी। प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री (मेरठ) का पत्र आया। आज ही मेरी थीसिस की सिनाप्सिस भेज दी गई थी। मंजूरी मिलनेवाली थी। "पर कमला तो तत्सम्बन्धी पुस्तकों से असहयोग कर रही हैं, उन्हें सिलाई-कढ़ाई ज्यादा पसन्द आती है।" (11 सितम्बर)

12 सितम्बर को भी उन्होंने खूब लिखाई का काम किया। आज प्रूफ के न आने से उन्हें बड़ी झुँझलाहट हो रही थी। व्यस्त होने पर भी उन्हें परिवार का ख्याल रहता ही था। तभी तो उस दिन लिखा—"कमला, जया, जेता, माहिली (बहन) सब बाजार गये। शाम को वर्षा देखकर डर लगने लगा, शायद भीग जायेंगे। 'जिनका मैं कृतज्ञ हूँ' का भी काफी हिस्सा लिखा जा चुका है।"

14 सितम्बर पंडितजी के लिए बड़ी खुशी का दिन। उस दिन उनका पासपोर्ट बनकर आ गया। परन्तु पासपोर्ट मिलने का मतलब यह तो नहीं था कि वे तुरंत विदेश चल दें। उन्होंने विदेश जाने के बारे में सोचा था, किंतु लिखा है—"अब तो नागरी प्रचारिणी की योजना (हिन्दी विश्वकोश) को देखकर ही कुछ निश्चय करेंगे।" उसी दिन प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री (मेरठ) की डी. लिट. की थीसिस निरीक्षण के लिए आ गई। जिसमें "न्याय वैशेषिक तथा दिङ्नाग का तुलनात्मक अध्ययन है। काफी मेहनत की है और अच्छी तरह लिखी गई है।"

अगले दिन 15 सितम्बर को 'जिनका मैं कृतज्ञ' को समाप्त कर दिया। इस पुस्तक में उनके 55 मित्रों के संस्मरण आये हैं। दूसरे दिन 'असहयोग के साथी' पर लिखना तय किया। मन के लड्डू भी राहुलजी खाते जा रहे थे। हिन्दी विश्वकोश की प्रधान सम्पादकी का ख्वाब भी देख रहे थे और उसी के अनुसार अपना भावी प्रोग्राम बनाने लगे। 'दीपिका' बम्बई के लिए उन्हें कई लेख प्राचीन गणराज्यों और सिक्कों पर लिखने थे। "किन्तु मसूरी में सामग्री का अभाव है। यदि बनारस में रहना पड़े तो काम बन सकता है।" 'अकबर' पुस्तक तेजी से छप रही थी। उसके तीसरे फर्मे का प्रूफ भी आ गया। उसकी टाइप से पंडितजी संतुष्ट थे।

"आज 16 सितम्बर को हमारे घर में स्त्री-गोष्ठी रही।" कोटखाई के रेंजर साहब जो इस समय हमारे पड़ोस में ठहरे थे, पत्नी कृष्णा तथा बहन सुनीता भोजन के लिए आईं। सचमुच ही हैपीवेली के उस बियाबान जंगल में इन दो महिलाओं के कारण हमारा मन लगने लगा था। ये दोनों बहुत ही सुसंस्कृत और स्नेही महिलाएँ थीं। हिमाचल प्रदेश के एक राजपरिवार से सम्बन्ध होने पर भी ये लोग बहुत सरल और मिलनसार थीं। यूँ तो मसूरी के 10 वर्ष के निवासकाल में हमारा बहुत-से लोगों से परिचय हुआ, किन्तु मुझ पर निस्वार्थ और अकृत्रिम स्नेह रखनेवाली ये ही दो ननद-भाभी मिलीं, जिनकी स्मृति मेरे मन में सदैव बनी रही। पंडितजी की

बात दूसरी थी। उन पर स्नेह-प्रेम की वर्षा करनेवाले स्त्री-पुरुष बहुत थे। एक महिला (तथाकथित ठाकुरानी गुलाबकुमारी) तो उनकी विद्वत्ता पर इतनी मुग्ध थी, उनके व्यक्तित्व से इतनी प्रभावित थी कि बात-बात में मुझसे कहा करती–'चाचाजी देवता हैं, देवता।' वह पंडितजी से 'वाल्मीकि रामायण' पढ़ने आती थी, जबकि उसे हिन्दी का वाक्य भी ठीक से लिखना नहीं आता था, विराम-अर्धविराम तक की उसे तमीज नहीं थी, और वह लेखिका बनने का ख्वाब देख रही थी। संस्कृत का कभी 'क' भी उसने नहीं पढ़ा था। किन्तु अब उसको 'वाल्मीकि रामायण' चाचाजी से पढ़ने का शौक हो गया। रामायण तो क्या पढ़ती, पर उतनी देर तक चाचाजी का सान्निध्य उसे मिलता था। इसी बहाने से वह रामायण पढ़ रही थी। चाचा और भतीजी के इस संस्कृत-पठन के समय मैंने कभी बाधा नहीं पहुँचाई, क्योंकि मुझे राहुलजी पर अटूट श्रद्धा और विश्वास था। लेकिन मैं मूर्ख नहीं थी, जैसा कि वह महारानी समझती थी। रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने जब अपनी लिखी कुछ किताबें समालोचनार्थ पंडितजी के पास भेजीं तो वह श्वेतकेशी भतीजी ईर्ष्या से जलने लगी और वैसी ही पुस्तकें लिखने की तैयारी की। किन्तु बातें बनाने और काम करने में बहुत अंतर होता है। लिखना भी एक महान कला और साधना है जो सबको नहीं आती। भतीजी साहिबा को शराब का भी शौक था। पंडितजी की आँखें तब खुलीं जब कि एक दिन वह औरत शराब के नशे में धुत्त होकर 'हर्न-क्लिफ' में आई और उनको और मुझको बुरा-भला कहने लगी। इस औरत से पिण्ड छुड़ाने के लिए भी राहुलजी ने 'हर्न-क्लिफ' को छोड़ देने का निश्चय किया था।

इतवार के दिन अक्सर जुत्शी दम्पति 'हर्न-क्लिफ' में आते थे। उस दिन (17 सितम्बर) भी दोनों पति-पत्नी अपनी बेटी डा. उषा के साथ आये। श्रीमती मोहिनी जुत्शी का हम दोनों के साथ बड़ा स्नेह का बर्ताव रहा। वीरान जंगल में रहते वह मुझे अपनी माँ की याद दिला देती थीं। जुत्शी साहब वैसे ही हँसोड़ और उदार हृदय के। समय-समय पर ये ही लोग राहुलजी और मुझको शहर बुलाते, घर में खातिरदारी करने के अतिरिक्त सिनेमा दिखाने भी ले जाते। ऊपर उल्लिखित श्वेतकेशी अधबूढ़ी तरुणी पंडितजी और मेरे बीच कड़वाहट भरने का जितना प्रयत्न करती थी, उससे कहीं अधिक श्रीमती जुत्शी हमारे जीवन में मिठास भर देने का प्रयास करतीं। मेरे प्रति उनका स्नेह अतुलनीय रहा। पद में बड़ी होने पर भी मैं उनकी कनिष्ठा कन्या डॉ. उषा की समवयस्का थी, इसलिए वह मेरी अल्पज्ञता को सदैव नजरअन्दाज कर देती थीं। दोनों ही पति-पत्नी पंडितजी का बहुत सम्मान करते थे। माता-पिता से लेकर बच्चे तक सुसंस्कृत और सुरुचिपूर्ण व्यक्तित्ववाले थे। इस परिवार से भी मैंने गृहस्थी तथा सांसारिक-सामाजिक बहुत-से पाठ पढ़े। हर इतवार को जब ये लोग तीन मील पैदल चलकर हमारे घर आते, तो राहुलजी और मुझको अतीव प्रसन्नता होती थी और हँसी-खुशी के साथ दिन बीत जाता था।

आजमगढ़ जिला गजेटियर कमेटी का सदस्य राहुलजी को भी बनाया गया। निकट भविष्य में आजमगढ़ जिले की यात्रा होनेवाली थी, अतः आजमगढ़ की ग्राम-नामावली के इतिहास की खोज में 18 सितम्बर को वे लगे रहे। "प्रत्ययों से कुछ प्राचीन नामों का पता लग रहा है, औरा, वल, आव, देह जैसे। 1000 से अधिक आबादी के गाँव प्रायः प्राचीन हैं। मुस्लिम काल में नाम बहुत बदल गये। विश्लेषण के बाद लेख लिखना है।"

19 सितम्बर को जुत्शीजी के यहाँ दोपहर के भोजन का निमन्त्रण। पंडितजी के साथ मुझे भी जाना था। भोजन के बाद हम सब ने 'नई दिल्ली' फिल्म देखी। "बहुत दिनों पर एक अच्छी फिल्म। नृत्य आदि भी अच्छे और जाति-प्रांत-संकीर्णता के खिलाफ। उसके बाद थियोसोफिकल सोसायटी में बुद्ध धर्म पर भाषण दिया। कुछ को अच्छा लगा। शाम साढ़े आठ बजे घर लौटे।" "आज जया का चौथा जन्मदिवस। तीन वर्ष की हो गई। सत्यकेतु दम्पती, लेडली दम्पती, जुत्शी-दम्पती, रेंजर-दम्पती और उषा बाबा (सत्यकेतु) सभी आये। चाय पार्टी अच्छी हुई। जया ने जाना–जन्मदिन है।" (20 सितम्बर1956)

अब कलिम्पोंग के लिए प्रस्थान करने का समय निकट आ रहा था, इसलिए हाथ में लिये हुए काम को समाप्त करने के लिए राहुलजी बहुत परिश्रम करने लगे। मंगलदेवजी जैसे चुस्त और निरालस स्वभाव के सहयोगी उनको मिले थे, इसलिए काम करने की गति काफी तेज रही। 'मेरे असहयोग के साथी' को लिखकर

समाप्त कर दिया। इसके बाद ही उनको कनैला की ऐतिहासिक कथा लिखने की इच्छा होती है, जिसको भी बाद में पूरा कर देते हैं। आजमगढ़ जिले के गाँवों के नाम-विश्लेषण का काम भी साथ-ही-साथ चलता है।

24 सितम्बर को राहुलजी मुझे लेकर शहर जाते हैं। लंढौर में अपने मित्र किसनसिंहजी के घर तक गये। हिमाचल प्रदेश के सीमांत गाँव कन्नौर के निवासी किसनसिंहजी से उनका बहुत पुराना सम्बन्ध रहा। कुछ वर्ष पूर्व ही उनका देहान्त हो गया। उनकी पत्नी ने जो क्यूरियो की चीजें बेचती थीं, दूकान पहले से काफी अच्छी तरह से सजा रखी थी। हम लोग कभी-कभी उनसे मिलने जाते और जाड़ों में दिल्ली में जनपथ पर उनकी दूकान पर भी उनका हालचाल पूछने जाते थे। राहुलजी अपने सुहृदों के प्रति सदैव सहानुभूति रखते थे।

उस दिन पंडितजी ने मुझे लेकर बाजार के नवभारत भोजनालय में भोजन किया। रास्ते में ही मरहूम साथी महमूद की चचेरी बहन से राहुलजी की भेंट हुई। उनके पति दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे। उनको घर आने का निमंत्रण देकर हम लोग विदा होते हैं। अभी हाथ में समय था। घर लौटते समय 'जागते रहो' फिल्म भी देख ली। राहुलजी को फिल्म उतनी पसन्द न आई।

1 अक्तूबर को कलिम्पोंग के लिए प्रस्थान करने का निश्चय हो गया। अतः काम जल्दी-जल्दी करने लगे। प्रूफ देखना, चिट्ठियाँ लिखना-लिखाना इत्यादि काम। आगरा तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की थीसिस देखकर आज ही लौटा दी। 30 सितम्बर को रविवार का दिन पड़ा। जुत्शी-दम्पती, सत्या गुप्ता तथा गुलाबकुमारी बाई एवं कुछ अन्य लोग चाय पर आये। पंडितजी उन लोगों से बातचीत करते रहे और हम लोग यात्रा की तैयारी में व्यस्त रहे।

## कलिम्पोंग और नेपाल की यात्रा (1956)

अबकी बार राहुलजी सपरिवार यात्रा पर निकलते हैं। उनके साथ में उनके टाइपिस्ट सहयोगी मेरे भाई मंगलदेव परियारजी, मेरी छोटी बहन माहिली, मैं और जया-जेता भी साथ जा रहे थे। उनको अपने कुत्ते भूतनाथ की भी चिन्ता थी, अतः हमारे नौकर महेश को उसकी देखरेख के लिए घर पर छोड़ने का निश्चय हुआ। हमें महेश बहुत ही विश्वासी सेवक मिला था, जो गढ़वाली था। पंडितजी का उस पर बहुत स्नेह था, वह भी उनकी सेवा करने में अपना अहोभाग्य समझता था। जया-जेता के प्रति भी उसका अगाध स्नेह था। उसी महेश के जिम्मे पंडितजी ने सारा घर खुला रख दिया।

1 अक्तूबर को सुबह पंडितजी के साथ हम लोग चल पड़े। मोटरवाले को बिड़ला निवास तक बुलाया था, किन्तु वह नहीं आया। सामान कुलियों से उठवा रिक्शों पर लदवाया और किताबघर तक गये। 14 रुपये में टैक्सी कार मिली, सब सामान उस पर लाद दिया। दो घंटे में देहरादून पहुँचकर जया, जेता, बहन और मुझको श्री मेहताजी के यहाँ छोड़कर वे मंगलजी को साथ लेकर स्टेशन गये। फर्स्ट क्लास का एक टिकट लखनऊ तक का लिया। मैं अन्य लोगों के साथ थर्ड क्लास में ही जाना चाहती थी। दोपहर का भोजन मेहता जी के यहाँ करके पंडितजी अपने मित्र शुक्लजी से मिलने उनके घर सेवक आश्रम रोड गये। 4 बजे शाम को डी. ए. वी. कालेज में उनका भाषण हुआ। फिर हम सबको लेकर 6 बजे के बाद स्टेशन पहुँचे। मेहताजी हम सबको सी-ऑफ करने के लिए आये थे। गाड़ी 8 बजे के बाद चली।

**लखनऊ** : 2 अक्तूबर को सुबह 8 बजे के बाद हम लोग लखनऊ पहुँचे। भिक्षु प्रज्ञानन्दजी स्टेशन पर ही मिले। सिलीगुड़ी जानेवाली अवध-तिरहुत मेल कल सुबह 8 बजे चलनेवाली थी, अतः हमें 24 घंटा लखनऊ में रहना था। स्टेशन से हम लोग बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क चले गये। प्रतिमागृह के पास पंखे के नीचे पंडितजी को जगह मिली, जिससे रात शान्ति के साथ सो सके। शाम को चार बजे से परिवार को लेकर वे घूमने निकले। आज गाँधी-जन्मदिन के कारण बाजार बंद थे। अमीनाबाद, हजरतगंज होते सिंधी होटल में ग्रामोफोन के हल्ला में भोजन कर लौट आये। आज ही 'महामानव बुद्ध' के बाकी फार्म के प्रूफ देखकर दे दिये। 'महामानव बुद्ध' प्रज्ञानन्दजी छाप रहे थे।

## कलिम्पोंग के लिए प्रस्थान

3 अक्तूबर की सुबह चाय पीकर पंडितजी सबको लेकर स्टेशन गये। अवध-तिरहुत मेल 8 बजे चली। पंडितजी सेकण्ड क्लास के डिब्बे में बैठे और बाकी लोग थर्ड क्लास में। (उन दिनों थर्ड क्लास कम्पार्टमेन्ट भी बहुत अच्छा होता था) जया को हमारे पास छोड़कर जब पंडितजी अपने कम्पार्टमेन्ट में गये तो वह घबड़ाकर रो पड़ी। पापा को दुख हुआ। पंडितजी यह जानकर संतुष्ट हुए कि सिलीगुड़ी तक एक ही ट्रेन जाती है। बस्ती स्टेशन तक जानेवाले कुछ परिचित लोग उन्हें मिले। सेकेण्ड क्लास, पहले का ड्योढ़ा क्लास। सीट इतनी पतली कि लेटा नहीं जा सकता। गोरखपुर से भटनी तक कुछ ज्यादा ही आदमी चढ़े। एकमा और छपरा अँधेरे के बाद आये और आधी रात को मुजफ्फरपुर। अवध-तिरहुत मेल अच्छी ट्रेन है–कानपुर से सिलीगुड़ी तक जाती है। (अब तो सिलीगुड़ी से गोहाटी तक के लिए भी ट्रेन है।)

**4 अक्तूबर :** "कटिहार सूर्योदय के समय पहुँच गये। एक ही ट्रेन होने से उतरने-चढ़ने में जहमत नहीं उठानी पड़ी। कमला थर्ड क्लास में, बच्चे भी वहीं, मैं सेकेण्ड क्लास में। सेकेण्ड में जगह काफी थी, पर उनका आग्रह भाई-बहन के साथ चलने का रहा। बच्चों को कष्ट तो होना ही था। ट्रेन एक घंटा लेट पौने बारह बजे ही सिलीगुड़ी पहुँची। नया स्टेशन (जंक्शन) अब मुख्य हो गया है। वेटिंग रूम थर्ड क्लास के लिए पहले ही जैसा। ऊपरी क्लासों के लिए अच्छा है। पर भीड़। स्नानकोष्टक में मुश्किल से जाने को मिला। दौड़-धूप करने पर 40 रुपये में स्टेशनवेगन लेकर तीन बजे चले। 6 बजे शाम के करीब कलिम्पोंग पहुँचे। मैं धर्मोदय विहार में ठहरा और कमला मातृगृह में। भिक्षु अनिरुद्ध, विवेकानन्द आदि मिले।"

**कलिम्पोंग : 5 अक्तूबर :** "बादल रहे, रात-भर वर्षा भी। चाय पीकर बाबू राधामोहन प्रसाद (कमला के जीजाजी) के घर पर चले गये। रास्ते में कमला के मामा, चाचा आदि से मिलते गये। गरीब अपने आत्मीय राहुल को पाकर क्यों न प्रसन्न हों। राधामोहन बाबू ने छोटा-सा किन्तु सुखद मकान बना लिया है। डाकखाने से 'अकबर' के चार फार्मों के जो प्रूफ मिले, देख लिया, अधिक समय उसी में बीता।"

**6 अक्तूबर :** "आज दिन में तो नहीं पर शाम को बूँदाबाँदी हुई। कुछ चिट्ठियाँ आईं, प्रूफ नहीं। दो बार हाट की ओर घूमे। आज शनिवार हाट का दिन था। ग्यथुक (तिब्बती भोजन) एक रुपये का काफी था। मध्याह्न भोजन राधामोहन बाबू के यहाँ। आज फुटबाल का खेल देखने के लिए लोग टूट पड़े थे। धर्मोदय विहार तक गये। रास्ते में साहु प्रत्येकमान मिल गये। पता चला धर्ममान साहु की कोठी चौपट हो गई। कुछ तो बाप ने किया था, बाकी तिरत्नमान साहु ने खतम कर दिया। तीन औरतें रखे शराब में धुत। कल डॉ. रोयरिक के यहाँ जायेंगे।

**7 अक्तूबर :** "बादल रहे। सबेरे चाय पीकर निकले। श्री धर्मरत्न यमि (नेपाल) के भाई संघरत्न और त्रिरत्नमान साहु के लड़के प्रत्येकमान से बातें करते साढ़े नौ बजे कुकेटी कोठी में डाक्टर जार्ज रोयरिक के पास गये। वहाँ ढाई घंटे विद्या सम्बन्धी बातचीत होती रही। प्रति सप्ताह तीन दिन उनके यहाँ रहकर 'प्रमाणवार्तिक' के अंग्रेजी अनुवाद का काम करना है। एक परिच्छेद पहिले समाप्त हो गया, तीन और बाकी है। इन्हें समाप्त कर डालना है। अबके अधिक सुव्यवस्थित रीति से काम करना है। उनके लिए हर अनुवाद को घर पर देखकर, फिर मिलकर दुहराने में ठीक होगा। डॉ. रोयरिक रूस में जायें तो अनुसंधान का काम बहुत आगे बढ़ सकता है। कलिम्पोंग अमेरिकन गुप्तचरों का गढ़ है। धर्म बहुत आड़ का काम देता है। सिक्किम राजकुमार (बाद में महाराजा छोग्याल) को भी अंग्रेजों ने खरीद लिया है। शाम को कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ साथी मिल गये। इस्माइल भी रात-भर के लिए आये थे। रास्ते में मिल गये।"

**8 अक्तूबर :** "आज भी मौसम साफ नहीं। आज चिट्ठियाँ-भर लिखीं। शाम-सुबह घूमे। पार्टी कार्यालय यहाँ से दूर नहीं है। तिब्बती काफी हैं, कुछ तो नारकीय जीवन बिता रहे हैं। उन्हें पता नहीं, हिमालय पर स्वर्ग का निर्माण हो रहा है। पार्टी-मेम्बर यहाँ 100 से ऊपर हैं। श्री चिन्मय घोष लोकगीत और लोकनृत्य में दिलचस्पी रखते हैं। इधर-उधर घूम रहे हैं।"

**9 अक्तूबर :** "आसमान साफ रहा। 9 बजे रोयरिक के पास गये। 'प्रमाणवार्तिक' द्वितीय परिच्छेद में

प्रत्यत्तः की 40 कारिकाओं का अनुवाद किया। 50 का औसत हो सकता है। 600 कारिकाओं का अनुवाद शायद कर सकें। अर्थात् एक ही परिच्छेद बंचा रहेगा।

दो बजे लौटे। शाम को 'जागृति' फिल्म देखने गये। बंगाली फिल्म होने से संयम है।"

10 अक्तूबर को 'अकबर' के बहुत-से प्रूफ आये थे। उन्हें उसी दिन देखकर लौटा दिया। पंडित हरिहरनिवास द्विवेदी (ग्वालियर) की पुस्तक 'मध्य भारत का इतिहास' के कुछ खण्ड भी आ गये। इस पुस्तक की भूमिका राहुलजी ने ही लिखी है। शाम को वे फिर पार्टी आफिस जाते हैं। वहाँ चर्मकार बन्धुओं से देर तक बातें करते रहे। अगले दिन (11 तारीख) उन्होंने मंगलजी से कुछ लिखवाया। कुछ पढ़ते भी रहे, घूमते भी रहे। कमला के मामा के घर पर भी गये। अपने 1930 के जमाने के मित्र श्री परमहंस मिश्र शाम को डेरे पर उनसे मिलने आये। परमहंस मिश्रजी, जो कलिम्पोंग बोयज़ मिशन हाईस्कूल में हिन्दी और संस्कृत के अध्यापक थे, इनके बड़े भाई श्री सूर्यकांत मिश्र मिशन गर्ल्स स्कूल में हिन्दी पढ़ाते थे, उन्हीं की मैं छात्रा थी। इस नाते परमहंस मिश्र मुझे बचपन से ही जानते थे। 1949 में अप्रैल महीने में महापंडित राहुल सांकृत्यायनजी के सम्मुख मैं इन्हीं मिश्रजी के माध्यम से आई थी। इन्होंने भी कमला नाम की एक नेपाली ब्राह्मणी ईसाई लड़की से विवाह किया। "इस विवाह ने सामाजिक तौर से उन्हें बहुत उदार बना दिया है, पर इस्लाम के साथ नहीं क्योंकि वह इन्हें संस्कृति-विरोधी भी मानते हैं।"

12 अक्तूबर को जया-जेता, मुझे और मंगलजी को लेकर पंडितजी डॉ. रोयरिक के यहाँ कुकेटी गये। दोनों विद्वानों ने बैठकर अनुवाद का कुछ काम किया। भोजनोपरान्त लौट आये। शाम को हम सब लोग दुर्गापूजा देखने गये। "यहाँ बंगालियों का महोत्सव। टाउनहाल तथा अन्य स्थानों में दुर्गा की मूर्तियाँ सजाई गई थीं। कला की और प्रगति हुई है पर कलाकार व्यवसायतः कैसे हो सकते हैं : जबकि उन्हें साल में दस-पन्द्रह दिन के लिए ही काम मिलता है। नवमी के दिन नेपाली घरों में भी बकरे की बलि दी जाती है दुर्गा को।" इस बार पंडितजी ने भी आसपास देखा।

13 अक्तूबर को वे सबेरे से ही काम करने बैठ जाते हैं। जिला आजमगढ़ के ग्राम-नामों का इतिहास लेख तैयार कर दिया। "आज दुर्गाष्टमी के बाद की नवमी। बलिमांस का सब जगह प्रचार। दुर्गापूजा दर्शनार्थियों के मेले की बहार नहीं रही। शाम को भोजन श्री परमहंस मिश्र के यहाँ हुआ, जिसमें राधामोहन बाबू सपत्नीक और राहुलजी सपत्नीक आमंत्रित थे। इस प्रकार मेजबान और मेहमान तीनों बिहारी-नेपाली दम्पती।"

14 अक्तूबर को विजयदशमी। बंगाली और नेपालियों का बड़ा त्यौहार। पर उस दिन दिन-भर वर्षा होती रही। इससे दशहरे का मजा ही नहीं रहा। पंडितजी अलेक्जेंडर डुमा का उपन्यास 'Camille' पढ़ते रहे। "मोपांसा और डुमा कथाकारों में सम्राट हैं।" वर्षा के कारण आज पंडिजी कहीं बाहर नहीं गये। दो गुजराती तरुण डेरे पर ही उनसे मिलने आये। इनमें से एक तिब्बती पढ़ने आये थे, दूसरे की रेडियो की दूकान थी। जया को विजयदशमी का खूब तिलक लगा दिया गया था, ननिहाल में दक्षिणा भी खूब मिली। वर्षा न हुई होती तो पंडितजी भी गये होते।

कलिम्पोंग में भी प्रूफ बराबर आते रहे। 'ऋग्वेदिक आर्य', 'संस्कृत काव्यधारा', 'अकबर' तथा 'दोहाकोश' के प्रूफ एक साथ आये। मोहन प्रेस (पटना) से पंडितजी खीझे हुए थे, क्योंकि उनकी 'नेपाल' की पाण्डुलिपि को इसने कई सालों तक अचार बनाकर रखा। उस दिन नेपाल सम्बन्धी रंगीन डाक्युमेन्ट्री फिल्म उनको देखने को मिली। विजयदशमी के अवसर पर आज रात्रिभोज मेरे चचा के यहाँ था। राधामोहन बाबू सपरिवार बलिया जा रहे थे।"

17 अक्तूबर को राहुलजी 9:30 बजे डॉ. रोयरिक के यहाँ चले गये। वहाँ दो घंटे तक अनुवाद का काम हुआ। लौटते समय वे धर्मोदय विहार गये। विहार में रहनेवाले तीनों भिक्षु प्रव्रजित थे। प्रत्येकमान तथा धर्मरत्न यमि के भाई संघरत्न के साथ ल्हासा के बारे में बातें होती रहीं। उन्हीं बातों से पंडितजी को लगा कि तिब्बत में सामंती स्वार्थ अब भी (1956) अक्षुण्ण है। सड़क-निर्माण, नहर, शिक्षा का काम जरूर हो रहा था। हर साल सैकड़ों तरुण-तरुणियाँ शिक्षा के लिए चीन भेजे जा रहे थे। आज रात्रिभोज हमारे मामा के यहाँ

हुआ।

आज के ही दिन उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक कार्य किया। यहाँ की नेपाली पहाड़ी अनुसूचित जाति की सूची तैयार कराकर उन्होंने अपने सिफारिशी पत्र के साथ राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के पास भेज दी। यहाँ से गन्तोक जाने का भी उन्होंने कार्यक्रम बनाया था, पर वह कार्यान्वित नहीं हो सका। ल्हासा के परिचित एक खम्पा लामा (मिंडमा-पा सम्प्रदाय के) उनसे मिलने आये, वह पंडितजी से एक सिफारिशी पत्र चाहते थे। हाट की ओर भी पंडितजी घूमने गये। फलों के अभाव की उन्हें शिकायत थी। खैर, अभी नारंगी का मौसम भी तो नहीं था।

उनके पुराने जमाने के मित्र मिस्टर थार्चिन से 18 अक्तूबर को भेंट हुई। दोनों में देर तक बातचीत हुई। मिस्टर थार्चिन किन्नर देश के निवासी थे, जो बाद में ईसाई धर्म में दीक्षित होकर कलिम्पोंग में बस गये। उनका 'मिरर प्रेस' नाम से एक तिब्बती प्रेस भी था। उसी दिन डेपुङ् (तिब्बत) के एक भिक्षु लामा भी मिले। वह कम्युनिस्टों से भयभीत हैं। वहाँ पर चीनी लोग ही ज्यादा हैं, इसलिए और भी कठिनाई है। पर डेपुङ् में डेढ़ हजार भिक्षुओं की संख्या में कमी नहीं हुई है। समझाना है और यांत्रिक तौर से नहीं। अंत में अपने ही तजर्बे से लोग ठीक हो जायेंगे। पर बीच की कमी करणीय है।"

19 अक्तूबर को सुबह पौने नौ बजे राहुलजी डॉ. रोयरिक के पास कुकेटी कोठी जाते हैं और वहाँ काम करते हुए एक बजे के बाद तक रहते हैं। आज दोनों विद्वानों ने मिलकर 30 से अधिक श्लोकों का अनुवाद किया। बीच-बीच में दोनों मित्रों में बातें भी होती रहीं। निश्चय हुआ कि डॉ. रोयरिक अनुवाद को लिखकर मसूरी भेजते जायेंगे और राहुलजी उन्हें देखकर लौटाते जायेंगे। 'प्रमाणवार्तिक' के अंग्रेजी अनुवाद को हर हालत में पूरा तो करना ही था।

डायबेटीज़ के कारण घाव आदि तो उनको लगते ही रहते थे—बहुत बचने पर भी। पेशाब में ऐसीडिटी की भी शिकायत थी। बहुत ही परहेज से रहने की हिदायत उनको डाक्टर ने दी थी। चीनी, आलू, चावल को एकदम से बन्द कर देने की सलाह भी दी। ऐसीडिटी के लिए सोडा पीना उन्होंने शुरू कर दिया। उसी दिन कन्नौर के श्री नावाङ् सेर्गे (ल्ह रम्पा) उनसे मिले। वह ल्हासा से डरकर भाग आये थे। चीनियों को समझाना चाहिए। इन्हें 100 डालर (300 रुपया) मासिक पर अध्यापकी दे रहे थे। पर कइयों के साथ भाग आये। (19 अक्तूबर, 56)

दूसरे दिन 3 बजे कलिम्पोंग में लॉ ग्राउण्ड में एक सार्वजनिक सभा हुई। उसमें राहुलजी को भी भाषण देना पड़ा, यद्यपि उनको अब अधिक बोलने में कठिनाई होती थी। 21 अक्तूबर को वे 'ऋग्वेदिक आर्य' के प्रूफ देखते रहे। 9.30 के बाद फिर डॉ. रोयरिक के पास गये। आज 40 से अधिक कारिकाओं का अनुवाद किया। यहाँ रहते एक परिच्छेद को समाप्त करने की आशा नहीं थी।

डेरे पर भी लोग पंडितजी से मिलने आते रहते थे। ज्यादातर तिब्बत और मंगोलिया के लोगों से ही भेंट होती थी। 22 को 'ऋग्वेदिक आर्य' के टेक्स्ट के काफी सारे प्रूफ आ गये। अगले रविवार को स्थानीय कल्चरल फोरम की सभा में भाषण देना उन्होंने स्वीकार कर लिया।

डॉक्टर राजबली पाण्डे का बनारस से मसूरी भेजा हुआ तार लौटकर यहाँ मिला। वह 27 अक्तूबर को हिन्दी साहित्य के बृहत इतिहास के बारे में एक बैठक बुला रहे थे, जिसमें पंडितजी को भी शामिल होने के लिए आग्रह किया गया था। पर वे 27 को नहीं जा सकते, इसलिए 9 या 10 नवम्बर को बैठक रखने के लिए उन्होंने तार दे दिया। फिर आज डॉ. रोयरिक के साथ 47 कारिकाओं का अनुवाद किया।

1949 साल में कलिम्पोंग निवासकाल में पंडितजी जहाँ रहे थे, उस पार्वती कोठी तथा पास के मंजुला कोठी को भी वे देखने गये। मंजुला की गृहस्वामिनी श्रीमती चारुबाला मित्रा से उनकी भेंट हुई। पार्वती कोठी में अब नहर विभाग का आफिस था। कितने ही और आफिस बढ़ गये हैं। "यह है ढंग बेकारी दूर करने का।" (23 अक्तूबर)

## दार्जिलिंग की यात्रा

24 अक्तूबर की सुबह 8-20 पर एक लैण्डरोवर लेकर पंडितजी दार्जिलिंग की ओर रवाना हुए। अपने साथ मुझे, जया-जेता तथा मंगलजी को भी लेकर चले। गाड़ी की सीट छोटी थी, बैठना ही मुश्किल। ऊपर सीधी चढ़ाई का रास्ता तिस्ता नदी छोड़ते ही। 11.30 बजे 32 मील चलकर दार्जिलिंग पहुँच गये। श्री राधामोहन प्रसाद वकील के यहाँ चाँदमारी के घर में ठहरे। घर बंद था, ताला खुलवाया। ऊपरी मंजिल पर बैठक, शयनकक्ष, भोजनशाला, स्नानघर, शौचालय आदि छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं। फ्लश भी। यहाँ भी कलिम्पोंग के घर जितना ही सामान है। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, इसलिए भी राधामोहन बाबू यहाँ नहीं रहते।

पंडित सूर्यविक्रम ज्ञवाली जी पास ही रहते थे। पंडितजी के साथ उनका पुराना परिचय था। वह बनारस के पढ़े हुए थे, इसलिए हिन्दी साहित्य से भी उनका अच्छा परिचय था। 1930 में जब राहुलजी ल्हासा में थे, तभी से ज्ञवालीजी का उनके साथ पत्र-व्यवहार था। यहाँ दार्जिलिंग में इस समय गवर्नमेंट हाईस्कूल में वे अध्यापक थे। पंडितजी और ज्ञवालीजी की यहाँ भेंट हो गई। दोनों बड़े प्रसन्न होकर देर तक बातें करते रहे। उस दिन शाम को हिमाचल हिन्दी भवन स्कूल के बहुत से बिहारी अध्यापक राहुलजी से मिलने आये। कुछ देर बातचीत हुई।

दार्जिलिंग में राधामोहन बाबू के इस घर में कोई नहीं था। बर्तन-भाँड़े सभी रखे हुए थे। होटल के भोजन से कल रात पंडितजी को कै हुई थी, पेट भी ठीक नहीं रहा। अतः मैंने सोचा कि घर पर ही भोजन तैयार कर दूँ। मैं रसोई की तैयारी में लग गई। मसूरी के घर में रसोई बनाने पर भी वे मुझसे समय के बीतने का रोना रोते थे। यहाँ भी वही हाल। उस दिन मेरे लिए यों रिमार्क लिखा गया—"कमला ने डेढ़ बजे भोजन पकाना करके छुट्टी पाई। 1-2-3 का न ख्याल होना बिल्कुल गलत है। कामों में मुख्य को पहली करणीय और गौण को पीछे, इसका ख्याल रखना चाहिए। सब धान बाईस पसेरी समझनेवाला दुनिया में क्या कर सकता है ? उसी तरह दो-चार रुपया बचा लेना बुरा नहीं पर समय उससे भी मूल्यवान है, तो ऐसा नहीं करना चाहिए।" (25 अक्तूबर) अपराह्न में चाय श्री ज्ञवालीजी के यहाँ पी। 6 बजे हिमाचल हिन्दी भवन की ओर से हिन्दी भाषा पर भाषण दिया। हाल पूरा भरा था। आठ बजे वे डेरे पर लौट आये।

26 अक्तूबर को हमें दार्जिलिंग में ही रहना था। पंडितजी को दिन का भोजन करा कर मैं, जया-जेता और मंगलजी लेबोंग छावनी गये। वहाँ मंगलजी के सगे बड़े भाई सपरिवार मिलीटेरी छावनी में रहते थे। वह मेरे भी चचेरे बड़े भाई थे। बस उन्हीं से मिलने हम लोग गये थे। उनका घर मोटर की सड़क से बहुत नीचे पैदल रास्ते पर था। हम लोग विदा लेकर जब मोटर की सड़क पर आये तो बहुत शाम हो गई। दार्जिलिंग बाजार आनेवाली एक भी टैक्सी नहीं मिली। हम लोग परेशान थे। जाड़ा भी बढ़ गया और बच्चे भी सो गये। रात के साढ़े सात बज चुके थे। बड़ी मुश्किल से बाजार से आनेवाली एक टेक्सी मिली और हम लोग लौटे, तो देखा—मोटर स्टैण्ड पर पंडितजी ने एक कामरेड को हमारी प्रतीक्षा में तैनात किया था। पता चला, वे बहुत परेशान हैं, हमारे लिए बहुत चिन्तित होकर वे पुलिस थाने में खबर देने जा रहे थे। खैर, हम लोग पहुँच गये। डेरे पर गये तो देखा, कामरेड रतनलाल ब्राह्मण अपनी जीप लेकर आये हुए थे। हम सबको रात्रि भोजन के लिए अपने घर ले जाना चाहते थे। बस हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। खैर, सब कुछ ठीक रहा। पंडितजी की जान में जान आई। उनको इतना घबराये हुए मैंने पहली बार आज देखा। उनको उस समय दार्जिलिंग शिमला से बड़ा लगा था। यद्यपि उस समय हम दोनों में से किसी ने नहीं सोचा था कि हमें अंत में यहीं आकर रहना होगा और पंडितजी की यशःकाया यहीं की मिट्टी में विलीन हो जायेगी।

**कलिम्पोंग को :** 27 अक्तूबर कलिम्पोंग प्रस्थान करने का दिन। ज्ञवालीजी सवेरे ही पंडितजी से मिलने आये। सवा 8 बजे लैंडरोवर चली। वे अगली सीट पर बैठे। उतराई के कारण 32 मील का रास्ता 3 घंटे से कम में ही पूरा हुआ। हम लोग 11 बजे से पहले ही कलिम्पोंग पहुँच गये। यहाँ आने पर राहुलजी को ढेर की ढेर डाक मिली, प्रूफ भी चार फार्मों के आ गये थे। डॉ. राजबली पाण्डे ने 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' के एक खण्ड का सम्पादन करने के लिए पंडितजी से आग्रह किया था। बाद में यह काम पंडितजी

ने 16वें खण्ड के रूप में पूरा कर दिया। उसी दिन 2 बजे वे डॉ. रोयरिक के यहाँ गये। दोनों मिलकर 'प्रमाणवार्तिक' का अनुवाद साढ़े 4 बजे तक करते रहे। पहले गन्तोक जाने का उन्होंने कार्यक्रम बनाया था। मणिबाबू के यहाँ से जीप भी आनेवाली थी। किन्तु मेरी तरह ही जया भी पहाड़ी मोटर-यात्रा में कच्ची थी, इसलिए प्रोग्राम कैंसिल कर दिया गया।

यहीं पता लगा कि राहुलजी के 1949 के परिचित और हिमालयन स्टोर्स के मालिक श्री सुरेशचन्द्र जैन की कार दुर्घटना में मृत्यु हो गई। 7 की जगह ड्राइवर ने 13 सवारियों को बिठाया था। उनमें चार तो पुलिस के जवान थे। दोनों स्टीयरिंग भी पुलिस जमादार के हाथ में ही थे। ड्राइवर को दो साल की सजा हुई। श्री सुरेशचन्द्र जैन बिहार के उद्योगपति और साहित्यप्रेमी भी थे। उनकी मृत्यु की बात सुनकर पंडितजी को बहुत दुख हुआ।

अगले दिन रविवार। 28 अक्तूबर। सुबह ही राहुलजी कुकेटी चले गये। आज भी उन्होंने 300वीं कारिकाओं तक का अनुवाद किया। लौटकर शाम को 10 माईल बाजार में ज्योति ब्रादर्स की दूकान पर गये। वहाँ श्री मणिहर्ष ज्योति से उनकी भेंट हुई जो आज ही कलकत्ता से आये थे। उन्होंने नेपाल में हो रहे विश्व-बौद्ध सम्मेलन के अवसर पर भारतीय प्रतिनिधि के रूप में राहुलजी को नेपाल आने का निमंत्रण दिया। सम्मेलन शीघ्र ही होनेवाला था, इसलिए वे निश्चय नहीं कर सके कि जायें या न जायें। परतु मैंने ही उनको जाने का आग्रह किया। इसलिए 13 नवम्बर को पटना से जाने का कार्यक्रम उन्होंने बनाया। यहाँ (कलिम्पोंग) से "7 नवम्बर को प्रस्थान कर वाराणसी 11 को पहुँच 13 को पटना आयेंगे और 15 को काठमाण्डू। वहाँ से विमान द्वारा भैरहवा, लुम्बिनी, कसया (कुसीनारा) होते प्रयाग जायेंगे और नवम्बर के अंत में मसूरी।"

शाम को उन्होंने कल्चरल फोरम में संस्कृति पर भाषण दिया, 30 के करीब श्रोता रहे होंगे।

9 नवम्बर को हिन्दू विश्वविद्यालय में पी-एच. डी. की मौखिक परीक्षा लेने के लिए उनका जाना तय हो गया। अपने पुराने बिहारी कांग्रेसी मित्र श्री वासुदेव ओझा (धनगड़हा) से उनकी 18 वर्ष के बाद भेंट हुई। बड़े प्रेम से मिले। रात को 'जवाब' फिल्म सपरिवार देखी। पंडितजी को बलराज साहनी तथा गीता बाली का अभिनय बहुत पसंद आया।

प्रूफ देखना, घूमना, मिलना-जुलना चलता रहा। मेरे आग्रह पर पंडितजी ने नेपाल जाना पक्का कर लिया। 2 नवम्बर को दीवाली थी। वे हम सब को लेकर रात को ज्योति-पर्व देखने निकल पड़े। इस बार नेपालियों के इस विशेष पर्व को उन्होंने बहुत नजदीक से देखा। 4 नवम्बर को भ्रातृद्वितीया। यह तो नेपालियों के लिए और भी विशिष्ट त्यौहार। नेपाली संस्कृति से वे बहुत ही प्रभावित हुए। 6 नवम्बर को वे मुझे, जया, जेता और मंगलजी को लेकर डॉ. रोयरिक के पास गये। दोनों विद्वान अपने कार्य में लग गये और हम लोग रोयरिक की बहन राया (इरिना) से बातचीत करते रहे। पंडितजी ने डॉ. रोयरिक के साथ हम सबका फोटो भी लिया। पंडितजी की नेपाल-यात्रा के लिए मणि बाबू ने 13 नवम्बर के लिए काठमाण्डू का विमान-टिकट लाकर दे दिया। मुझे भी जाने के लिए कह रहे थे, पर गोपाल को लेकर जाने में दिक्कत ही होती। अब कल यहाँ से प्रस्थान करना तय हो गया।

**कलिम्पोंग-वाराणसी-मार्ग** (7 नवम्बर 1956) : सुबह मिलने-जुलनेवाले लोग आते रहे। पंडितजी हमारे सभी सम्बन्धियों से मिलने गये। 2 बजे स्टेशनवैगन से चले। "सजलनयन कमला और सम्बन्धी।" इस बार की कलिम्पोंग-यात्रा पंडितजी के लिए अच्छी रही। यहाँ आधे से अधिक 'प्रमाणवार्तिक' का अनुवाद भी हुआ। इस बहाने डॉ. रोयरिक के साथ काफी समय व्यतीत हुआ। क्या पता था कि यह मिलन दोनों विद्वानों का अंतिम मिलन होने जा रहा था। बहुत-से प्रूफ भी उन्होंने यहाँ रहकर देख डाले। पुराने तिब्बती तथा बिहारी मित्रों से भेंट हुई। कानपुर जानेवाली मेल के सेकंड क्लास में बड़ी मुश्किल से जगह मिली। भीड़ बहुत अधिक थी, आज भी वही हाल है। जया और जेता के सोने की जगह बना दी गई। हम लोग बैठे-बैठे ही चले। दूसरे दिन सुबह हम छपरा स्टेशन उतर गये। वहाँ से हमें बलिया होते बनारस जाना था। छपरा में दो घंटे ठहरने के बाद 11 बजे छोटी लाइन की गाड़ी चली। बलिया पहुँचते-पहुँचते संध्या हो गई थी। रास्ते में सागरपल्ली

स्टेशन पड़ा। पंडितजी ने बतलाया कि यही डॉ. उदयनारायण तिवारी का गाँव है। वाराणसी पहुँचते रात के 9 बज गये। सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी रास्ते-भर, किन्तु पंडितजी गुमसुम थे। वाराणसी में श्री शिवप्रसाद गुप्तजी के घर सेवा उपवन में ठहरना था, इसलिए हम वहीं गये। पंडितजी के लिए बहुत सुन्दर कमरा ठीक करके रखा गया था। रास्ते की थकावट थी, अच्छी नींद सो गये।

**वाराणसी में :** 9 नवम्बर को भोजनोपरांत हम लोग सारनाथ गये। वहाँ राहुलजी के भतीजे श्री उदयनारायण पाण्डे सपरिवार रहते थे। उनसे हमें मिलाने ले गये थे। दिन-भर हम वहीं रहे। परन्तु पंडितजी गुमसुम ही रहे। मैंने समझा अस्वस्थ हैं। वाराणसी से मुझे जया, जेता और मंगलजी के साथ मसूरी जाना था, और उनको पटना होते हुए नेपाल। हमारे रास्ते यहीं से अलग हो रहे थे। 10 तारीख को हिन्दू विश्वविद्यालय में किसी पी-एच. डी. के उम्मीदवार की मौखिक परीक्षा में उनको उपस्थित रहना था। वहाँ वे गये। उस दिन वाराणसी घूमते रहे। रात को डेरे पर लौट आये। पंडितजी की तबियत आज भी सुस्त रही। 11 तारीख को हम लोग सामान के साथ स्टेशन आ गये। हमारी ट्रेन वाराणसी से देहरादून जानेवाली 11 बजे ही चलती थी, और पंडितजी की पटना जानेवाली ट्रेन एक घंटे बाद। स्टेशन पर उदयजी आ गये थे। वाराणसी में ही पहली बार हम दोनों के बीच भारी गलतफहमी हो गई, जिसके कारण हम दोनों का हृदय बहुत दुखी था। मैंने तो पिछली रात आँसुओं में ही बितायी थी। आज हम दानों की दिशाएँ अलग-अलग थीं, किन्तु लग रहा था कि अब सदा के लिए हमारे जीवन की दिशाएँ एक-दूसरे से अलग हो रही हैं। भारी मन से उन्होंने हमें विदा दी। चलते समय हमने एक-दूसरे से आँखें भी नहीं मिलायीं। मेरी आँखें अविरल बह रही थीं, कुछ बोल नहीं सकी। इसी तरह आँसू बहाते-बहाते अकबरपुर स्टेशन आने पर मुझे होश आया। खैर, हम लोग दूसरे दिन 12 बजे सकुशल मसूरी में अपने घर पहुँचे।

## नेपाल में विश्व-बौद्ध सम्मेलन

हम तो अपने घर आ गये, पर उधर मुझे पंडितजी की चिन्ता लगी हुई थी। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था, हृदय-पीड़ा की शिकायत तो थी ही। वैसी हालत में भी उन्हें जाना ही पड़ा, किन्तु वे वचनबद्ध थे। 11 तारीख की शाम को वे पटना पहुँच गये। वहाँ डॉ. बदरीनारायण प्रसाद, अबुल आस लेन, में ठहरे। 12 नवम्बर को "चाय पीकर सबेरे आठ बजे मोटर से निकले तो साढ़े 12 बजे लौटे। जायसवालजी (स्व. काशीप्रसाद) के पुत्र-पुत्री से मिले। वहाँ से एयरलाइंस आफिस गये। वहाँ कहा कि इन्कमटैक्स आफिसर की अनुमति बिना नेपालवाले विमान में जगह नहीं मिल सकती। सोचा, अच्छा होगा, मसूरी सप्ताह-भर पहले ही पहुँचेंगे। श्री योगेन्द्र त्रिवेदी को लेकर इन्कमटैक्स आफिसर श्री बख्शी के घर गये। परिचित निकले, अनुमति की समस्या ही नहीं रही। एयरलाइंस ने कल दोपहर बाद 2 बजे के विमान में जगह दी। कहा—यदि कोई न गया तो 10 बजे के विमान में दे देंगे। पर सम्भावना कम है। मोहनलाल बिश्नोई (मोहन प्रेसवाले) अनुपस्थित थे। 'दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा' दूसरे प्रेस को भेज देंगे। वीरेन्द्र (राहुल प्रतिष्ठान, पटनावाले) को चिट्ठी देंगे, यदि पाण्डुलिपि को लौटा दिया तो ठीक। जलेश्वर बाबू के भी यहाँ होते भोजन करने वासे पर आ गये। फिर 2 बजे निकले 8 बजे तक के लिए। कुसुम और देवेन्द्र शर्मा गये हैं मुजफ्फरपुर। उनका रूस जाना निश्चित हो गया। डॉ. अल्तेकर से मिले। अब वह जायसवाल इंस्टिट्यूट में जा रहे हैं। प्रेस और नौकरशाही की धाँधली से परेशान रहे। "पाँच बजे सम्मेलन भवन गये। नेपाली तीर्थ यात्रियों की चाय-पार्टी के बाद गोष्ठी हुई। मैं बोला। आठ बजे तक लौटकर वासे (डेरे) पर आये।" बीच-बीच में हृदय-पीड़ा उठ जाती। कहीं यात्रा में जाने पर वे घर में नियमित रूप से पत्र लिखते थे। आज, 12 नवम्बर की रात को उन्होंने मुझे यह पत्र लिखा—

*पटना, 12-11-56*

*रानी,*

*आज रात को साढ़े नौ बजे चिट्ठी लिख रहा हूँ। इन्कमटैक्स अफसर ने देहरादून से तो कुछ नहीं भेजा,*

*पर यहाँ के बहुत सज्जन निकले, परिचित भी। उनका अनुमति-पत्र मिलते ही नेपाल जाना निश्चय हो गया। कल दो बजे दिन के विमान से जाना है। हो सकता है खाली होने पर 10 बजे ही चला जाऊँ। दोपहर के डेढ़ घंटे को छोड़कर सबेरे आठ से शाम के आठ बजे तक प्रोग्राम रहा। 'दोहाकोश' का प्रूफ साथ ले जाऊँगा।*

*8 से जो हृदयपीड़ा आरम्भ हुई वह अब भी जारी है। व्यस्त होते समय कुछ भूल जाती थी। कल रात नींद आते न देख कहानी लिखने बैठ गया। यदि फ़ोन्टनपेन की स्याही खतम न हो गई होती तो समाप्त ही कर डालता।... मुझे पत्र प्रयाग ही भेजना, वहाँ मैं 24-25 तक पहुँच जाऊँगा। 13 दिन और यह हृदयपीड़ा। ओह, बर्दाश्त करना होगा। बराबर तुम याद आती हो और सोचते जया-जेता याद आते हैं। हृदय व्याकुल हो जाता है। पर, इसकी चिन्ता न करना। अपने लिए सावधान रहना। कष्ट और चिन्ता न करना। तुम्हारी पीड़ा को बँटाने के लिए मैं मौजूद हूँ। कभी तुम्हारी विपदा को बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा।*

*वहाँ की अवस्था जानना चाहता हूँ। पोस्टकार्ड धर्मासाहु का घर, असनटोल, काठमाण्डू, अथवा जनकलाल जी के पास भेज देना। शायद मिल जाये। भदन्त चन्द्रमणि महास्थविर, कुसीनारा, कसया, जिला देवरिया और प्रयाग भेज देना। कोई तो मिल जायेगा। घर की हालत, बच्चों की हालत और अपनी बातें लिखना।*

*अब 9-50 बजे रात को चिट्ठी समाप्त कर रहा हूँ। लिखने को बहुत है, पर इतना ही। लम्बी रात्रि आ रही है। देखूँ कैसे बीतती है ?*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**13 नवम्बर, (डायरी के अनुसार) :** "मौसम साफ। पूर्वाह्न के ही विमान में जगह मिलने की सूचना मिली। 9.30 बजे तक भोजन और बातचीत करते रहे। श्री महेन्द्र शास्त्री (सारन) और दूसरे भी आये थे।

श्री देवकुमार मिश्र और वीरेन्द्रजी साथ गये। हवाई अड्डे के आफिस में देहरादून के इन्कमटैक्स आफिसर का तार मिला। पर अब उसके उपयोग की जरूरत नहीं थी। बहुत-से बौद्ध-यात्री इसी विमान से जा रहे हैं। डॉक्टर बाप्ट, चंदा बाबा (भदन्त चन्द्रमणि महास्थविर) और दूसरे भी। प्रतीक्षा करनी पड़ी। सभी विमान इंडियन एयरलाइंस कार्पोरेशन के। 50 रुपया टिकट का पहिले ही दे दिया गया था। 11.25 बजे विमान उड़ा और 12-12 बजे काठमाण्डू पहुँचा—52 मिनट में।

अड्डे पर मानदासजी (पुस्तक प्रकाशक) और जनकलालजी मिले। मणिहर्षजी स्वागत कर रहे थे। मोटर पर बैठकर मानदासजी के यहाँ ठहरकर भोजन किया। धर्मासाहु के घर पर मालिक कोई नहीं था। ठहरने का प्रबंध यमिजी के घर पर था, जो यहाँ नहीं हैं। नया मकान आरामदेह है।

हृदय की पीड़ा बराबर जारी रही। जनकलालजी से इसीलिए बातें करते रहे। आज कोई मिलने नहीं आया। यमि को तीन और लड़कियाँ 1952 के बाद हो गईं।"

उसी रात को मुझे लिखे गये पत्र में वे लिखते हैं—

*यमि भवन*
*भुरुङ् खेल, काठमाण्डू*
*13-11-56*

*रानी,*

*कल एक पत्र भेज चुका हूँ। आज पटना से 11.25 बजे विमान से उड़कर 12.12 बजे यहाँ पहुँचा। चार वर्ष पहिले तुम्हारे साथ उड़कर आया था। यमि के उसी घर में ठहरा हूँ जो उस समय बन रहा था। यमि भारत गये हुए हैं। पत्नी को तब से तीन बेटियाँ हो गयी हैं। सबसे पिछली एक मास पूर्व हुई। जनकलाल और मानदास विमान अड्डे पर लेने गये थे। कई विमानों से विदेशी बौद्ध आये हैं। मुझे एकान्त स्थान की आवश्यकता थी। दिल दुखी है, किसी से बात करने का मन नहीं करता। काम में लगे रहते कुछ भूल-सा जाता हूँ, पूरा नहीं। बीच-बीच में आवेग लौटता रहता है। पटना से कुछ प्रूफ आया है, उसे धीरे ही धीरे देख सकता हूँ। मिलनेवाले तुम्हारे बारे में पूछते हैं। एम. ए. पास होने की बात को सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट करते हैं। कुछ तो कहते हैं—यहाँ आकर*

*रहें, घर बना लें, आदि-आदि। बेचारों को क्या मालूम ? मानदासजी के घर मध्याह्न भोजन करने आया तो बस, यमि भवन में ही हूँ, जहाँ से सवा नौ बजे रात को यह पत्र लिख रहा हूँ। एक पैसे बैरंग के पोस्टकार्ड में इतना भर लिख दो कि जया-जेता कैसे हैं। शायद मेरे यहाँ रहते मिल जाये। 19 तारीख तक पूरे छः दिन यहाँ रहने हैं। ओह, कैसे कटेंगे यह दिन ? 20 को भैरहवा उतरकर लुम्बिनी जाऊँगा। 23-24 तक प्रयाग पहुँचूँगा। यदि बनारस जाना अनिवार्य नहीं हुआ तो 25-26 तक मसूरी आ जाऊँगा। डॉक्टर बदरीनाथ प्रसाद (लाउडर रोड) के पते पर विस्तृत पत्र लिखना।*

*जनकलालजी बराबर साथ हैं, यह अच्छी बात है। तुम्हारे योग्य जो किताबें मिलेंगी उन्हें वह जमा कर देंगे। और मैं साथ लेता आऊँगा। हमारे पास की पुस्तकों की सूची मेरे पास नहीं है। श्री धर्मरत्न यमि (भुरुङ खेल) या जनकलालजी के पास पुस्तकों की सूची भेज देना। कल से यह सुई भी (इन्सुलिन) लगा देंगे। मीटिंगों में बहुत कम ही शामिल हो सकूँगा।*

*कितना अन्तर हो जाता है, मानस स्वस्थ हो तो सभी कामों में मन लग जाता है, सुन्दर पर्वत, हरी-भरी उपत्यका, यह पहिले कितनी मोहक मालूम होती थीं, अब उनकी ओर देखने का मन नहीं करता। कई फिल्म लाया था, पर खींचने का मन कहाँ ? तौलने पर वजन 159 पौंड देखा। लोग दुबले होने की शिकायत करते हैं। शायद कोई-कोई आशंका करते हैं, मैं बीमार हूँ। किस-किस को समझाऊँ, Heart Attack का भी संदेह कर सकते हैं। पर वह नहीं होगा। सर्दी कुछ ज्यादा है कलिम्पोंग से।*

*देखूँ, तुम्हारे लिए क्या लाता हूँ। सीधे आना होता तो कुछ ज्यादा चीजें लाता। प्रूफ भी समाप्त करना है और कहानी भी। रात को देर तक नींद नहीं आती। कैसे दिन यहाँ कटेंगे ? तुमने ही तो भेजा, पर शिकायत नहीं।*

*परसों फिर पत्र लिखूँगा। कल लोगों से मिलना-जुलना पड़ेगा ही। धर्ममान साहु के परिवार में शायद कलह ज्यादा बढ़ गया है। घर श्रीहीन-सा मालूम हुआ, कोई घर पर नहीं था। वैसे हमारे ठहरने का प्रबंध यहाँ यमि भवन में पहिले ही से हो गया था। आते ही मैंने किसी से पूछा—यमिजी बीवी को मानते हैं ? उत्तर तो 'हाँ' में दिया है और सीधी-सादी पत्नी कुछ कहेगी नहीं।*

*घर-भर को नमस्ते कहना, भूत को भी....*

*तुम्हारा,*
*राहुल सांकृत्यायन*

14 नवम्बर को उन्होंने दैनन्दिनी में लिखा : "दिन साफ। प्रातःराश जनकलालजी के यहाँ। फिर यमि सदन में ही। श्री मुरलीधर शर्मा सबेरे ही आ गये थे। यमि ने मेरे द्वारा लिखी जीवन साहित्य दिल्ली में छपी अपनी जीवनी को पुस्तकाकार छपवा दिया था। इसमें श्री मुरलीधर और श्री रामजी उपाध्याय को राजाओं का चापलूस लिखा है, अब दुःख होना ही चाहिए। बात चाहे सच्ची हो, पर दूसरे के कलेजे को छेदना बहुत बुरा है। मुझे बहुत दुःख हुआ। तब से वे मिले नहीं। सभ्यता की रक्षा करते हुए कुछ करना ही होगा।

श्री बालचन्द्र शर्मा आ गये, देर तक बातें होती रहीं। आनन्दजी भी आ गये। शाम 4.30 बजे निकले। शिवप्रसादजी रौनियार को हेमू का गीत लिखवाने के लिए कहा। गेशे शेरब आये हैं, सुनकर उनकी खोज में गये। आनन्दकुटी होकर चले गये। शीतल निवास में ठहरे हैं, कल मिलेंगे।

बीच-बीच में मसूरी की ओर चित्त चला जाता है, और हृदय सूचीविद्ध होने लगता है। मुख्य उत्सव कल शुरू होकर तीन दिन रहेगा। 20 को लुम्बिनी जाना है। चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा, लंका आदि के बहुत से प्रतिनिधि आये हुए हैं। सबसे परिचय करने का मौका नहीं मिला।" (14 नवम्बर)

उसी रात को जो पत्र उन्होंने मुझे लिखा, उससे उनके मन में जो उद्विग्नता बनी हुई थी, वह स्पष्ट होती है :

*नेपाल,*
*15-11-56*

*रानी,*

*एक दिन छोड़कर पत्र लिखने के लिए कल लिखा था। बात तो सच हुई, क्योंकि रात के 12 बजे के 6 मिनट बाद इस पत्र को लिखते समय 15 तारीख शुरू हो गई है। अभी कहानी समाप्त कर यह पत्र लिख रहा हूँ। करुण है, मर्मवेधी है, साथ ही कितना पूज्य भाव इसने मन में पैदा किया है। 30 पृष्ठों में समाप्त हुई है।*

*आशा है, जया-जेता अब बिल्कुल ठीक हो गये होंगे। जोकाम नहीं है। तुम्हें भी शरीर और मन से स्वस्थ देखना चाहता हूँ और बड़ी अधीरता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब मसूरी लौटूँगा। मन करता है, वह दिन कल ही आ जाता।*

*आज आनन्दजी (भदन्तजी) से भेंट हुई। पंडित बालचन्द्र शर्मा दो बार आये। शाम को मेरी अनुपस्थिति में भी। वह तुम्हारे बारे में बहुत पूछ रहे थे। थीसिस का विषय मैंने बतलाया, तो कहा—'कमला का ऐसा विषय है जो हमारे भी काम आयेगा।' जनकलालजी ने कहा—'यहाँ उनके लिए एक मकान बनवा दें।' मैं क्या कहता?*

*आज शाम को सिर्फ थोड़ी देर के लिए टहलने गया। दुल्हनोंवाला एक जोड़ा नेपाली चप्पल तुम्हारे लिए लाऊँगा और दो जोड़े लाल-लाल जया-जेता के लिए। तुम से सारा काम नहीं सँभलेगा, थेसिस के लिए भी काम करना है, इसलिए कोई स्त्री या लड़की नौकरानी का प्रबंध कर लेना। मेहताजी को भी कहना, शायद वहाँ कोई मिल जाये। मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि नौकरानी के बिना हमारा काम नहीं चलेगा।*

*आनन्दकुटी आज रात को गया। शिवप्रसादजी (रौनियार) से भी मुलाकात हुई। आज कान्फ्रेन्स शुरू हो रही है। 15-16-17 कान्फ्रेन्स रहेगी। फिर दो दिन परिदर्शन। मोटर की सुविधा होने पर भादगाँउ-पाटन हो आऊँगा। सभी जगह लोग तुम्हें पूछते हैं। आना कैसे हो सकता था ? पर इससे मालूम होता है, तुम्हारे यहाँ काफी आत्मीय हैं।*

*तुमने तो बतलाया नहीं, पर जूतों के अतिरिक्त भी कुछ चीजें लाना चाहता हूँ। खाने की चीजें बेकार हैं। कुछ दूसरी ही लाऊँगा, जो बाजार में दीख जायेंगी और बहुत भारी नहीं होंगी। प्रयाग डाक्टर बदरीनाथ प्रसाद के पते पर अवश्य चिट्ठी लिखना और एक से अधिक। वहाँ भी दो-तीन दिन ठहरना पड़ेगा। यदि विश्वकोश (हिन्दी) के लिए बनारस जाना पड़ा तो जुत्शीजी ने वचन ले लिया है। यदि तुमने आजमगढ़ जाना चाहा तो उनकी कार मौजूद है। तीन चार दिन हो आयेंगे। पर यह तो बनारस में कोश की बात पूरी तौर से तै हो जाने के बाद मसूरी लौटकर ही होनवाली है। सूई जनकलालजी दे देते हैं। इसलिए उधर से निश्चिंत हैं।*

*गेंदे तो वहाँ फूल गये होंगे। यहाँ तो सर्दी कलिम्पोंग से जरा ही अधिक है। पर वहाँ तो जरूर बढ़ गई होगी। स्वास्थ्य ठीक है। लोग भी तारीफ करते हैं। सिर्फ दुबलेपन की बात बतलाते हैं। पटना विमान अड्डे पर तुलने पर 159 पौंड निकला, अभी भी 4-5 पौंड अधिक है। खाने में मात्रा का ख्याल रखता हूँ। कल तो मानदास ने दोनों शाम मोमो (चीनी भोजन) खिलाया। यही खाना पसन्द करता हूँ। जनकलालजी का घर भी दूर नहीं।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**डायरी : 15 नवम्बर 56, काठमाण्डू :** "साफ मौसम। सबेरे चाय पिये बिना चले। पहिले देवकोटाजी (लक्ष्मीप्रसाद) के यहाँ। कैसे सौम्य और सरल। मेरे लेख के लिए (जो 'आजकल' में 1953 में छपा था) बड़े कृतज्ञ थे। फिर डाक्टर शिवमंगलसिंह सुमन के यहाँ। उन्होंने अपने यहाँ प्रबंध कर रखा था। चाय पीकर उनसे मोटर लेकर शीतल निवास (कृष्ण शमशेर के महल) में गये। गेशे शेरब से देर तक बातें होती रहीं, तिब्बत और चीनी के बारे में विशेष। वहीं चीनी बौद्ध सभा के सेक्रेटरी श्री चाउ-फू-चू से भी भेंट हुई। गेशे शेरब 74 वर्ष के हो गये हैं। वहीं भोजन किया।

12 बजे उधर से ही टूँढ़ी खेल में सभा स्थान में। राजा महेन्द्र ने उद्घाटन किया और कई घंटे तक बैठे रहे। अन्तिम भाषण डा. अम्बेडकर का हुआ। बतलाया कि पाँच लाख बौद्ध हुए हैं और पाँच लाख और करने की प्रतिज्ञा है। गेशे शेरब (चीनी बौद्ध सभा के अध्यक्ष) ने भी तिब्बती में भाषण किया जिसका अनुवाद

हुआ। दुनिया के बहुत से बौद्ध आये थे। विद्यालंकार (श्रीलंका) के 12 वर्षीय श्रामणेर (1930-31) भी थे, अब बाल पक गये थे। मई में मुझे आने का आग्रह किया। चायपान के स्थान में भारतीय राजदूत श्री भगवान सहाय, प्रधानमंत्री टंकप्रसाद आचार्य, मंत्री भद्रकाली मिश्र, बालचन्द्र शर्मा आदि मिले। श्री केसर शमशेर, श्री मृगेन्द्र शमशेर और बहुत से दूसरे भी। केसर शमशेरजी और देवकोटा आदि ने कमला के बारे में पूछा। यमि जी भी (भारत से) लौट आये।"

विश्व-बौद्ध सम्मेलन की इस विराट सभा में व्यस्त रहने पर भी पंडितजी का मन उड़ते-उड़ते मसूरी पहुँच जाता था। इसलिए 15 नवम्बर को उन्होंने मुझे पत्र में यों लिखा :

*काठमाण्डू,*
*15-11-65*

*रानी,*

*वास्तविक उत्सव आज से शुरू हुआ। देवकोटाजी ट्यूशन करने जाते हैं, यह ख्याल कर जनकलालजी के साथ मैं 6.30 सबेरे ही निकल पड़ा। (जनकलालजी शाम तक लौट न सके, और इधर उनके घर में मृत बच्चा पैदा हुआ।) देवकोटाजी घर पर ही बड़े प्रेम से मिले। मेरे लेख के लिए बड़े कृतज्ञ—आवश्यकता से अधिक—थे। चाय पीकर उनको भी साथ ले भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक सम्बन्धी डाक्टर शिवमंगलसिंह सुमन के पास गये। उन्होंने एक अच्छा कमरा, दो पलंग सब तैयार रखा था। मुझे अफसोस हुआ तुम्हें साथ न लाने का। देवकोटाजी, केशर शमशेर, चित्तधरजी (कवि) कितने लोग तुम्हारे बारे में पूछते रहे। केसर शमशेर तो बच्चों का नाम भी पूछते थे। चीनी प्रतिनिधियों के अध्यक्ष गेशे शेरब 22 वर्ष बाद मिले बड़े स्नेह से। 3 घंटा बातें होती रहीं, वहीं भोजन करना पड़ा। देवकोटाजी और जनकलालजी खा भी नहीं सके।*

*12 बजे सम्मेलन स्थान पर टूँढ़ी खेल गये। भारत ही नहीं, लंका आदि के भी परिचित भिक्षु गृहस्थ मिले। चायपान की जगह भारतीय राजदूत श्री भगवानसहाय, श्री टंकप्रसाद आचार्य आदि मंत्री, राणावंशी कितने ही सरदार मिले। नेपाल सचमुच ही घर-सा है। श्री बालचन्द्र शर्मा शाम को आकर देर तक बातें करते रहे। फिर श्री भगवानसहाय भी आ गये। शाम को सिंहदरबार में कई जननृत्य दिखाये गये। हलाम (पूर्वी नेपाल) के लड़के-लड़कियों ने कमाल कर दिया। बार-बार तुम्हारा ख्याल आता था। विश्व-भर के बौद्धों के लिए यह रोज-रोज का सांस्कृतिक आयोजन किया गया था जो दूसरे समय आने पर नहीं देखा जा सकता। 'खुकुरी भीरे को' तुम्हारा और मेरा प्रिय गीत भी सुनने को मिला। नेपाल ललित कला में कितना समृद्ध है, इसकी संस्कृति कितनी मधुर और उन्नत है ? यही ख्याल आता रहा। हम डेढ़ ही घंटा देख सके। तुम होतीं तो और देर तक देखते। मंच के पास हमें स्थान मिला था।*

*यमिजी आज अपराह्न में आये। जिस दिन हम बनारस से चले, उसके एक ही घंटे बाद वह आज कार्यालय में पता पूछकर सेवा उपवन पहुँचे थे। हर वक्त तुम्हारी ही उत्कण्ठा रहती है। यद्यपि चार ही दिन हमें अलग हुए हुआ, पर जान पड़ता है युग बीत गये। कल रात दुःस्वप्न देखा—तुम नहीं मिल रही हो, मैं परेशान ढूँढ़ रहा हूँ। ओह, मानवहृदय कितना निर्बल है। अप्रिय जरा-सी भी बात को सुनने-सहने के लिए तैयार नहीं। विशेषकर दिन-भर इधर-उधर व्यस्त मन रात्रि की एकान्त में तुम्हारी ही ओर लग जाता है।*

*जूतों के अतिरिक्त एक विशेष ढंग की ओढ़नी लाऊँगा। सोच रहा हूँ रानी को कुछ लाऊँ, पर कोई यहाँ की ऐसी चीज दीखती नहीं। देखकर कुछ और लाऊँगा। 21 नवम्बर को हमें यहाँ से लुम्बिनी जाना है। आगे शायद कुसीनारा होते प्रयाग पहुँचूँ।*

*इंजेक्शन ठीक से लग जाता है। खाने में मात्रा का ख्याल रखता हूँ। वैसे शरीर ठीक है। यहाँ मौसम कलिम्पोंग जैसा ही है। थोड़ी-सी सर्दी अधिक है। पर, रजाई से ज्यादा नहीं है। जनकलालजी प्रसूता पत्नी की तरद्दुद में हैं, शायद ही तुम्हारे लिए अपेक्षित पुस्तकों को जमा कर सकें। अबकी बार इधर-उधर जाने की बहुत सुविधा है, कितना अच्छा होता यदि जया-जेता को लिये हम इधर ही आ जाते। सभी तुम्हें देखना चाहते हैं। यमिजी का*

*बँगला बहुत अच्छा दोमंजिला है, छः के करीब अच्छे कमरे। फ्लश भी लगवाया है। कुछ साग-सब्जी की जमीन है। 16, 17 हजार रुपये खर्च आया सुनकर विश्वास नहीं होता। लेकिन जनकलालजी की बात पर विश्वास करना ही पड़ता है।*

*दिल रोके नहीं रुकता, इसलिए रोज-रोज पत्र लिख रहा हूँ। तुम्हें हार्दिक प्यार, बच्चों को चुम्बन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**16 नवम्बर, डायरी के अनुसार :** "मौसम साफ। सबेरे 8.30 बजे डॉक्टर सुमन की भेजी जीप से गये शीतल निवास। वहाँ संसार-बौद्ध-भ्रातृत्व की सभा हो रही थी। दो बुर्यात लामा एक गृहस्थ के साथ आ गये। उनसे बात हुई। येशेस दोर्जे (शानवज्र) नेता। थोड़ी-सी रूसी बोल लेते हैं, तिब्बती पढ़ तो सकते होंगे पर बोल नहीं सकते। रूसी द्वारा कुछ काम चलाया। बहुत प्रसन्न होकर मिले। घर आ गये। भोजन किया।

जनकलालजी की पत्नी को मृत बच्चा पैदा हुआ। प्रसव के समय वह नदारद, धुन जिधर लगी उधर ही। 3 बजे यमिजी के साथ चले। साहु त्रिरत्नमान के यहाँ से होते सम्मेलन में। नगरपालिका के स्वागत के उत्तर में मैं भारत की ओर से कुछ बोला। बुर्यात लामा ने पूछा—क्या बोलना चाहिये ? मैंने बतलाया। मलालाशेखर (लंका के प्रतिनिधि) ने घोषित कर दिया, मैं अनुवाद करूँगा।

लौटकर त्रिरत्नजी के यहाँ चाय पी। मैंने कहा—जाकर वहीं ल्हासा बैठिए। यमिजी को भी कहा—वाणिज्य दूत बनकर ल्हासा जाना अच्छा है।"

और मुझको लिखे 16 नवम्बर के पत्र से उस समय की उनकी मनस्थिति का पता चलता है। पत्र यों है :

*काठमाण्डू*
*16-11-56*

*रानी,*

*आज के सभी प्रोग्रामों में शामिल नहीं हुआ। सबेरे आठ बजे बाद निकला। तुम्हारे लिए कामदार लाल स्लीपर और जया-जेता के लिए कपड़े के जूते खरीदे। तुम्हारे लिए एक नेपाली ओढ़नी ले ली। कुछ और चीजें लाना चाहता हूँ, पर अपनी नजर के सामने कोई दीखती नहीं। अभी 20 तारीख तक रहना है, देखें क्या मिलता है ?*

*बौद्ध सम्मेलन प्रतिनिधियों की सभा में थोड़ी देर रहे। रूसी बौद्धों के प्रतिनिधि तीन मंगोल कल ही आये। आज उनसे मुलाकात हुई। उनके नेता येशेस दोर्जे (ज्ञानवज्र) से बात हुई, बल्कि अपराह्न में नगरपालिका के मानपत्र के उत्तर में उनके भाषण का अनुवाद मुझे ही करना पड़ा। मुझे भारत की ओर से बोलना भी पड़ा। पूर्वाह्न में जनकलालजी के घर गये थे। पत्नी मृत संतान के लिए शोकाकुल थीं, ऊपर से पति के समय पर न रहने का दुःख होना ही चाहिए था। मैंने जनकलालजी को उनके पास रहने की ताकीद की, और अपराह्न में यमिजी के साथ गया।*

*घर-मकान की फिर चर्चा हुई। यमिजी की पत्नी ने कहा। मैंने कहा—यदि तुम्हारे पास की जमीन पर्याप्त होती तो यहीं मकान बनवा लेते।*

*आज भारतीय दूतावास के डाकघर में भी गये। वहाँ भी नाम से परिचित पुरुष मिले। ख्याल आ रहा था, यदि मैंने तुम से कह दिया होता, तो वहाँ जरूर तुम्हारी चिट्ठी आई मिलती। कितनी व्याकुलता या उत्सुकता उठ रही है।*

*अपराह्न की बैठक से पाँच बजे चला आया। किसी प्रोग्राम में नहीं गया। प्रधानमंत्री के भोज में भी नहीं, न नाटक नृत्य में। तुम होतीं तो जरूर जाता। पर यहाँ 10 बजे तक मिलनेवालों और सत्संगियों का ताँता लगा रहा। उनके जाने के बाद यह पत्र लिख रहा हूँ। कुछ समय तो मन इसी में लगा रहे, फिर तो निद्रा ही आकर चिंतामुक्त करेगी। तुम्हारे लिए उपयोगी पुस्तकें अभी नहीं मिली हैं। जनकलालजी टोह में हैं।*

*कलिम्पोंग में मिले प्रत्येकमान के पिता त्रिरत्नमान के यहाँ चाय पीने गये, उसी घर में जिसमें पिछली बार हमने एक दिन मोमो खाई थी। तब से परिवार की आर्थिक दशा और हीन हो गई है। देखकर दुःख होता है। तिब्बत की यात्रा में इस परिवार ने मेरी कितनी सहायता की थी ?*

*तुमने यहाँ से लाने की चीज के बारे में कहा होता तो कितना अच्छा रहता। भारत से आई चीजों को यहाँ से लाना बेकार है। बर्तन-भाँड़ा लाना ही नहीं है। राढ़ी (कालीन) शायद ले लूँ, यद्यपि ख्याल आता है कि एक तो ले ही ली है। प्रसाधन सामग्री तो सारे भारत से आती है। एक लकड़ी का घड़े जैसा बर्तन दिखाई दिया, उसका कोई उपयोग नहीं हो सकता।*

*कल दोपहर को श्री बालचन्द्रजी के यहाँ भोजन करना है 1 बजे दिन को। उनकी पत्नी भी तुम्हारे बारे में पूछेंगी ही। यमिजी की पत्नी कह रही थीं—बच्चों को कब दिखायेंगे ? कहा—अगली बार।*

*जया-जेता स्वस्थ और प्रसन्न होंगे, यही कामना है। जाड़ा तो जरूर बढ़ गया होगा, पर वहाँ का जाड़ा तुम्हें और बच्चों के अनुकूल ही मिलेगा। चार ही दिन तुम्हें विदा किये हुआ पर विश्वास नहीं होता। जान पड़ता है कई सप्ताह, कई मास बीत गये हैं। और अभी जल्दी करने पर भी दस दिन से पहिले तुम से मिलना नहीं हो सकेगा। यदि बनारस जाना न पड़ता तो अच्छा रहता। फिर प्रयाग में दो दिन रहकर मैं सीधे चला आता।*

*प्रयाग में रोज-रोज की चिट्ठी पाना चाहता हूँ। लिखती जाना। डॉ. बी. एन. प्रसाद (लाउडर रोड) के पते पर। प्रयाग से जो चीजें चाहती हो, लिखना, लेता आऊँगा। मन में क्या-क्या भाव पैदा होते हैं। जागृत अवस्था में तो सुखस्वप्न ही देखता हूँ, पर स्वप्न कलेजे पर प्रहार किये बिना नहीं रहता। हृदय का आवेग और उत्सुकता तब तक बढ़ती ही जायेगी, जब तक प्रयाग में तुम्हारा पत्र नहीं पा लूँगा।*

*रात के 10 बजकर 25 मिनट हो रहे हैं। कागज और बात भी खतम हो रही है। तुम्हारे मन और शरीर की स्वस्थता अति प्रिय है।*

*तम्हारा,*

*राहुल*

**17 नवम्बर 1956 की डायरी के अनुसार :** "मौसम साफ। 9 बजे शीतल निवास। कमीटियों की बैठक रही। गेशे शेरब से बातें होती रहीं। तिब्बत के साहित्य के कार्य में सहयोग देने में सहमत। 20 नवम्बर को स्वयंभू आदि देखने का प्रबन्ध कर दिया।

मध्याह्न भोजन बालचन्द्रजी के यहाँ करना था, वज्राचार्य के चर्या नृत्य देखने गये। वहीं श्री भगवानसहाय जी मिले। उनके साथ दूतावास 11 बजे से पहिले पहुँचे। वहाँ दो घंटे रह बालचन्द्रजी के यहाँ भोजन। 3.30 बजे बाद वहाँ से भारतीय दूतावास में दो घंटा ठहर श्री भगवानसहाय के साथ राजा की पार्टी में गये। भगवानसहाय जी सुन्दर चित्रकार और उससे भी बढ़कर कुशल मूर्तिकार हैं। राजा की पार्टी में राजा-रानी तथा सारे मेहमान आये थे। उन्होंने अपनी-अपनी भेंट चढ़ाई। दण्डवत प्रणिपात से करते मालूम होते थे। वहाँ से बालचन्द्रजी के साथ घर पर आकर आठ बजे तक बातें होती रहीं। यहाँ मकान बनवाने की बात चलती रही। कमला से पूछने को कहा।"

उनके 18-11-56 के पत्र के अनुसार :

*रानी,*

*17 नवम्बर को पत्र नहीं लिखा, उसके बीतने के तीन घंटे 25 मिनट पर (रात को) यह पत्र लिख रहा हूँ। नींद नहीं आ रही है, इसलिए भी इस समय लिख रहा हूँ। 17 नवम्बर को कान्फ्रेन्स का अंतिम दिन रहा। उसमें भी थोड़ा भाग लिया, पर अधिक समय भारतीय राजदूत श्री भगवानसहाय और श्री बालचन्द्र शर्मा के साथ बीता। बालचन्द्रजी की पत्नी तुम्हारे बारे में बहुत पूछ रही थीं और कह रही थीं—क्यों नहीं लाये ? उनकी लड़की स्वस्थ तथा दो वर्ष की है। कल मध्याह्न भोजन उन्हीं के यहाँ किया और 1 से 3 बजे तक वहीं रहे, कई घंटे श्री भगवानसहाय के साथ बीते। उनकी दिलचस्पी कला और साहित्य की ओर बहुत है। वह सुन्दर मूर्तिकार और चित्रकार भी हैं। आज मध्याह्न भोजन उन्हीं के यहाँ करना है। बालचन्द्रजी तीन घंटे शाम-रात को बात करते*

*रहे। कह रहे थे—मैं भी जमीन लेकर मकान बनवानेवाला हूँ, वहीं आप भी बनवा लें। तुम्हारे लिए पढ़ाने के लिए तीन-साढ़े तीन सौ मासिक का भी प्रबंध कर सकते हैं। मैंने कहा—अभी तो पी-एच. डी. करनी है, फिर मेरे साथ भी रहना है। मकान के बारे में कमला से पूछना होगा।*

*कान्फ्रेन्स सफ़ल रही। चीनी और मंगोल बौद्ध प्रतिनिधियों ने आकर इसके महत्त्व को और बढ़ा दिया। शाम को महाराजा महेन्द्र की ओर से चायपार्टी दी गई थी। कुछ मित्रों के आग्रह पर मैं भी गया। मेला था। महारानी तथा दूसरी राजकुलीन महिलाएँ भी थीं।*

*भादगाँव और पाटन शायद ही जाऊँ। मन ही नहीं करता। लोग ले जाते हैं, तो चला जाता हूँ यंत्रवत्। 'नेपाल' में जोड़ने का भी मन नहीं करता। मित्रों का स्नेह अवश्य मूल्यवान है और उनकी संख्या बढ़ी ही है।*

*इन्सुलिन सबेरे ही श्री जनकलाल दे देते हैं। खाने की मात्रा ठीक नहीं रख सकता, पर अपच की नौबत नहीं आती। यमिजी के हाते में खूब बड़ी-बड़ी गोभी लगी हुई है।*

*तुम्हारे लिए जूते और नेपाली रजाई (ओढ़नी) ले ली है। सोच रहा हूँ एक राढ़ी (कालीन) ले लूँ, कल मानदासजी को खरीदने के लिए कह दिया। कपड़े मैले होते जा रहे हैं, शायद प्रयाग या मसूरी में ही धुलवाया जा सके। जाड़ा मालूम नहीं होता। इस भिनसार को भी कमरे में ऊपर एक गंजी पहिने लिख रहा हूँ।*

*दिन में भी ध्यान बराबर तुम्हारी ओर जाता है, रात को नींद आँखों से दूर हो जाती है, फिर तुम्हारा और जया-जेता का ख्याल आता है। समाचार जानने के लिए अधीर हूँ, सोचता हूँ कि यदि यहाँ के दूतावास के पते पर कह दिया होता तो समाचार मिलता रहता। अब तो प्रयाग में ही आशा रखता हूँ। उस के लिए अब भी सात दिन हैं।*

*रानी का बार-बार चुम्बन, आलिंगन, जया-जेता को प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**डायरी, 18 नवम्बर :** "सबेरे थोड़ा घूमने गये। दो-एक पुस्तकें कमला के लिए लीं। खरीदने की चीजें खरीद लीं। अधिकांश चीजें तो भारत की ही हैं।

मध्याह्न भोजन श्री भगवानसहाय के यहाँ। आनन्द जी वहीं थे। चीन से प्रभावित अनुभव सुना रहे थे। भोजनोपरान्त जो गोष्ठी चली तो 5 बजे शाम को भी रही।

आनन्दजी के साथ चले। पाटन में बौद्ध प्रतिनिधियों के लिए विशेष प्रदर्शन संगठित थे। हम अम्बपाली नाटक (नेवारी) देखने गये। इतिहास का कचूमर निकाला गया था। लौटकर घर पर आये। 20 तारीख का प्रोग्राम दिया था गेशे शेरब को, पर गलती से कल ही कर डाला। देर तक मानदासजी और यमिजी से बातें होती रहीं। निश्चय हुआ, आनन्दजी भी साथ ही जायेंगे। लुम्बिनी से जेतवन कुसीनारा होते गोरखपुर से मैं प्रयाग जाऊँगा।"

**डायरी, 19 नवम्बर, 1956 :** "मौसम साफ। सबेरे आठ बजे यहाँ से गेशे शेरब के पास गये। चीनी प्रतिनिधियों को लिये स्वयंभू के एक नये 'गेलुगपा' विहार में गये। कल का दिन नियत किया था, एक दिन पहिले गये। यमिजी ने भोजन कराया, फिर मानदास जी के यहाँ थोड़ा ठहरकर गेशे को उनके स्थान (शीतल निवास) में छोड़ चले आये। श्री शिवप्रसाद रौनियार के यहाँ दो-तीन घंटा रहे। देवकोटाजी भी वहीं थे और श्री आर. एन. राहुल भी। वहाँ से आकर यमिजी के घर पर ही रहे। बहुत आनेवाले आदमी नहीं थे। यमिजी और जनकलालजी से ही बातें होती रहीं।

भादगाँव आज जाने का प्रोग्राम था, पर मेरा जाने का मन नहीं। इसलिए जाता क्यों ? एक तो 'नेपाल' में कुछ जोड़ने का मन नहीं करता, क्योंकि पुस्तक खटाई में है, दूसरा हर वक्त मसूरी के तीनों प्रियजन याद आते हैं। लुम्बिनी से जेतवन और कुसीनारा देखते जाना है।"

पत्र है :

*काठमाण्डू*
*19-11-56*

*रानी,*

*यहाँ से यह अंतिम पत्र लिख रहा हूँ। अब 21 नवम्बर को लुम्बिनी होते भारतीय स्टेशन ( नवगढ़ रोड) से ही चिट्ठी लिखूँगा। आशा है, 25 नवम्बर को सबेरे साढ़े नौ बजे प्रयाग पहुँच जाऊँगा। आज भादगाँव जाने का प्रबंध कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधियों के लिए हुआ था, पर मेरे जाने का मन नहीं हुआ, कल पाटन भी दूसरों के कारण ही जाना पड़ा था। तुम्हारे साथ जिन जगहों को देखा था, वही बहुत था। शिवप्रसाद रौनियार जी के यहाँ गया था। वहाँ देवकोटाजी भी मिल गये। कल दोपहर का भोजन वहीं करना है।*

*सर्दी मामूली है, सबेरे आठ बजे तक धुंध जरूर हो जाती है। आज सबेरे ही श्री धर्मराज थापा आ गये थे। 3, 4 गीत भी सुनाये। बहुत अच्छा गाते हैं और 4000 लोक गीतों का संग्रह भी कर चुके हैं। मैंने कहा–'तुम्हारे गानों को हम बहुत पसन्द करते हैं, रुचि से सुनते भी हैं।' कुछ लिखवाना चाहते थे। मैंने कहा–'पाँच हजार गीतों को जमा करके मसूरी आ जाओ। फिर लिख देंगे।'*

*जनकलालजी ने बड़ी सहायता की। पत्नी मृत बच्चा पैदा होने के कारण मन से अधिक और कुछ-कुछ शरीर से भी अस्वस्थ हैं। कहने पर भी वह मेरे ही साथ बराबर रहे और जब तक 21 नवम्बर के 9 बजे के विमान से लुम्बिनी के लिए रवाना नहीं हो जाता, तब तक वह साथ ही रहेंगे। अब घूमने-घामने का मन नहीं करता।*

*एक राढ़ी और एक और चादर ले ली है। कोई दूसरी लाने लायक चीज दिखाई नहीं पड़ती। बड़े बर्तन-भाँड़े लाना बेकार है और तरद्दुद भी है।*

*तिब्बत (चीन) के प्रतिनिधियों से आज बहुत बातें होती रहीं। वहाँ आने के लिए कह रहे थे–और यह भी कि पहिले पेकिंग आयें। कब आयेंगे, पूछने पर कहा–1957 या 1958 में।*

*नेपाली रुपये का भाव 150 के ही करीब है, अर्थात् हमारी पिछली यात्रा से उसका मोल गिरा नहीं है। एक दिन चाय पीने दूकान गये थे, उस में जरूर देखा था कि जो चाय आदि हम मसूरी में चौदह आने में पी सकते हैं, उसका यहाँ दाम ड्योढ़ा है। मकानों का किराया भी बहुत बढ़ गया है, जिसके कारण अमेरिकन और उनके नौकर हैं।*

*रात के नौ बज चुके हैं, एकाध घंटा जनकलालजी और रहेंगे, फिर पास में स्थित अपने घर में चले जायेंगे। इधर रात के साढ़े तीन-चार बजे नींद टूट जाती है, फिर नहीं लौटती। यही ख्याल आता है, कब प्रयाग पहुँचूँ और वहाँ से मसूरी। यदि वाराणसी का काम आ गया तो प्रयाग से वाराणसी भी दो दिन के लिए जाना ही पड़ेगा, फिर तो उसी गाड़ी से चलूँगा जिससे उस दिन 12 नवम्बर को तुम्हें विदा किया था। ओह, 7 ही दिन बीते हैं, पर जान पड़ता है बहुत दिन या सप्ताह बीत गये। तुम्हें बार-बार आलिंगन, चुम्बन, और जया-जेता को बहुत-बहुत प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**डायरी, 20 नवम्बर, 1956, काठमाण्डू :** "बादल रहे। सबेरे कुछ घूमे। बालचन्द्रजी के यहाँ गये। भोजन शिवप्रसाद रौनियार के यहाँ। छाता (बलिया) से सम्बद्ध हैं। कह रहे थे–ढकाली कुछ पूर्वजों की गाथा गाते हैं। सार्थवाह जाति भी, संदेह नहीं। पंचपिरवा (सभी हिन्दू) में पूजनेवाले। मकान अच्छा-खासा बनवा लिया है।

वहाँ से सिंहदरबार में गये जहाँ रानी ने मूर्तियाँ (तारा) वितरण कीं। लोगों ने अपनी भेंट धर्मोदय सभा को दी। चीनी प्रतिनिधि मण्डल ने 50 हजार रुपया लुम्बिनी और स्मारक के लिए दो हजार दिये।

रात को पान गोष्ठी रही। देवकोटाजी, घिमिरे (माधवप्रसाद) सिद्धिचरण श्रेष्ठ और सुमन ने अपने गीत सुनाये। 12 बजे रात तक गोष्ठी चलती रही।"

**डायरी, 21 नवम्बर, 1956, बलरामपुर-मार्ग :** "बादल पहाड़ में थोड़ा। जनकलालजी सबेरे आ गये और

मानदासजी तथा अयोध्याप्रसादजी भी। मालूम हुआ 7वीं बारी हमारी मोटर की है, पर पाँचवीं में ही हो गया। जल्दी-जल्दी में न पासपोर्ट देखा गया न सामान। उपत्यका पश्चिम से पार की। पौने 12 बजे विमान उड़ा और साढ़े 12 बजे भैरहवा पहुँचे। गण्डक और रापती नदी को पार करना पड़ा। तराई में उड़ते ही भैरहवा अड्डे पर। अच्छा स्वागत हुआ, नीबू शरबत मिला। थोड़ी देर ठहरने पर मोटर-बस से 13 मील चलकर एक बजे बाद लुम्बिनी। तीन-चार इमारतें बन गई हैं। गड्ढा अब छोटा-सा तालाब है। मायादेवी (बुद्धमाता) के मन्दिर भी बन गये। नेपाली ढंग के स्तूपाकार कुछ मंदिर भी बने हैं। दुमंजिले धर्मशाला में ठहरे। बालचन्द्रजी तथा पशुपति घोष दोनों मंत्री भी यहीं थे। मेले में 10-15 हजार आदमी तो जरूर थे। 'गइल' और 'गयेन' दोनों बोलनेवाले थे। कितने ही परिचित मिले। चलते वक्त सुस्ती थी जिससे आनन्दजी छूट गये। पीछे मिले। सरकार का प्रबंध था। नौगढ़ से बलरामपुर चल रहे हैं।"

**डायरी, 22 नवम्बर, 1956, श्रावस्ती-गोरखपुर-मार्ग :** "गाड़ी लेट हो 7 बजे बलरामपुर पहुँची, यहीं जलपान किया। भोजन ले दो रिक्शों पर चले जेतवन की ओर–10 मील का रास्ता डेढ़ घंटे में। सड़क अच्छी बन गई है, जेवतन में भी अच्छी सड़क। महिन्द बाबा 75 वर्ष के हो गये। जल्दी याद कर लिया। गंधकुटी, कोसम्बकुटी आदि देखी। चीना मंदिर बन गया है और जेतवन पुष्करिणी उसी में आ गई है। कई एक व्यक्ति हैं। जैन धर्मशाला मंदिर बड़ी सड़क के किनारे है। एक बँगला भी जल्दी-जल्दी बन रहा है। विनोबा का आश्रम भी कुछ दूर पर है। आजकल जापानी और दूसरे तीर्थयात्री आये हैं। सवा 3 बजे लौटे। 5 बजे रिक्शा से डाक्टर माधवराम सोफ्त के साथ चल पड़े। राजा का महल भी बाहर से देखा, उदासी होनी ही चाहिए। स्टेशन मास्टर बहुत सज्जन।

त्रिरत्न स्थविर–मेरे शिष्य–मिले। तरुण से अतिवृद्ध हो गये हैं।"

इस प्रकार पंडितजी की यात्रा तो व्यस्तता के साथ चल रही थी, साथ-साथ उनकी हृदय की उद्विग्नता भी बढ़ती गई थी, जिसका आभास उनके 22 नवम्बर के इस पत्र से मिलता है :

*गोरखपुर मार्ग,*
*22-11-56*

*रानी,*

*कल (21) को विमान से काठमाण्डू से उड़कर पौन घंटे में भैरहवा और वहाँ से डेढ़ घंटे में 2 बजे के करीब लुम्बिनी पहुँचे। आनन्दजी भी साथ रहे। लुम्बिनी में खास 10-15 हजार का मेला था। शाम को वहाँ से मोटर द्वारा नौगढ़रोड पहुँचे। आनन्दजी का होल्डाल गुम हो गया था। रात के ही 11.30 बजे रेल पर चढ़ बलरामपुर पहुँचे। साथ में माधवराव सोफ्त (कलकत्ता) भी। जलपान करके आज 9 बजे सबेरे जेतवन रिक्शा से गये। आजकल जापान, चीन, बर्मा, लंका आदि के बहुत से यात्री आ-जा रहे हैं। सभी जगह परिवर्तन है। लुम्बिनी में भी घर बन गये हैं, जेतवन में भी। सड़क बहुत अच्छी है। 75 वर्ष के परिचित भिक्षु महिन्द्र बड़े प्रेम से मिले। लंका में मेरे विद्यार्थी अब वृद्ध होकर मिले।*

*रात 7.30 बजे ट्रेन में बैठकर अब गोरखपुर जा रहे हैं। वहाँ से मोटर से कुसीनारा कल पहुँचेंगे। 25 को सबेरे 9 बजे डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के यहाँ पहुँच जाऊँगा। तुम्हारे पत्रों के लिए बड़ी उत्सुकता है। तब तक दो हफ्ते हो जायेंगे तुम्हारा समाचार भी पाये बिना। ट्रेन में तीन सहयात्री सो रहे हैं और मैं यह चिट्ठी लिखने में लगा हूँ। कितनी ही बातें लिखने को हैं पर कागज पर उतारना मुश्किल है। रातें मुश्किल से कटती हैं, दिन तो इधर-उधर करते जैसे-तैसे बीत जाता है। मन यही कहता है कि जल्दी से जल्दी मसूरी पहुँच जाऊँ, पर प्रयाग गये बिना छुट्टी नहीं मिल सकती।*

*तुम्हें बार-बार चुम्बन-आलिंगन। जया-जेता को प्यार हृदय का।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**डायरी, 23 नवम्बर, 1956, कसया (कुसीनारा) :** "मौसम अच्छा साफ। सबेरे आठ बजे चले गोरखपुर से।

सवा घंटे में 35 मील चलकर यहाँ पहुँचे। (बुद्ध के) 25 वीं शताब्दी के उपलक्ष में बने विशाल होस्टल के ऊपरी भाग के (51वें) कमरे में ठहरे। डॉक्टर सोफ्त साथ में और आनन्दजी दूसरे कमरे में ठहरे। भिक्षु मंगलहृदय (मंगोल) भी यहीं हैं। तिब्बती-चीनी पढ़ा रहे हैं। बुद्ध डिग्री कालेज चल रहा है। मकान भव्य और विशाल को एक चीनी मिल मालिक मजीठिया ने पूरा बनवा दिया।

इंटर कालेज के विशाल भवन, सैकड़ों कमरों का होस्टल (पीछे छात्रावास) बना है। बुद्ध-परिनिर्वाण मूर्ति के ऊपर कार्ला के आकार का हाल बनवा दिया। गोरखपुर से कसया मोटर आती है। देवरिया की भी पुल टूटने के कारण अब यहीं से जाती है। निर्वाण-स्तूप मूर्ति दर्शन करके बिड़ला धर्मशाला में भोजन किया। डिग्री, इंटर कालेज में भाषण दिया। रामागार गये। साथ के वृक्षहीन करके नींव तक खोल दिया गया। चीनिया बाबा को चोट लगी, पैर सूजा हुआ है। चीनी परिव्राजक ने अन्य अच्छा चीनी मंदिर बनवाया। डाकबँगला, सिंचाई विभाग, पुरातत्त्व विभाग के बराबर बिजली-पानी का भी प्रबंध है।"

## पत्र

*कसया (कुसीनारा)*
*23 नवम्बर, 1956*

*रानी,*

*12 दिन से तुम्हारा पत्र या समाचार पाये बिना यह अंतिम चिट्ठी इस महान स्थान से भेज रहा हूँ। मेरी विचारधारा पर उसी पुरुष की बड़ी छाप है। यद्यपि धर्म में मेरी आस्था नहीं, पर हमारी संस्कृति या दर्शन के लिए बुद्ध ने जो किया है, उसके कारण मेरी श्रद्धा उस महापुरुष के प्रति किसी भी श्रद्धालु बौद्ध से कम नहीं है। इस स्थान की काया पलट देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है। लाख से अधिक रुपये लगाकर पचासों कमरों वाले इस विशाल होस्टल को इसी साल सरकार ने बनवाया है। इंटर कालेज और डिग्री कालेज की भव्य इमारतें तैयार हैं। एक चीनी भिक्षुणी ने सुन्दर विहार बनवा लिया है। निर्वाणप्राप्त बुद्ध की विशाल मूर्ति पर कार्ला गुहा मंदिर के नमूने का मंदिर बनवा दिया गया है। बहुत अच्छी सड़क गोरखपुर और देवरिया से यहाँ आई है। रोडवेज की बसों का इंतिजाम है। बहुत-सी इमारतें बन गई हैं। बिजली, नल पानी का इंतिजाम है। रात को 7-55 बजे चिट्ठी लिखते समय सड़कें और कितनी ही इमारतें जगमग कर रही हैं। तथागत का यह निर्वाण-स्थान अब सूना जंगल नहीं है। भारी संख्या में देश-विदेशों के धनी यात्री रोज आ-जा रहे हैं। मैं स्थानीय शिक्षितों का सुपरिचित हूँ। आज इंटर और डिग्री दोनों कालेजों में भाषण देना पड़ा।*

*कल 17 या 18 बजे यहाँ से गोरखपुर जा इलाहाबाद एक्सप्रेस पकड़ सीधा प्रयाग जाऊँगा। तुम्हारी चिट्ठियों की वहाँ बड़ी आशा है। आशा है, तुमने एक से अधिक चिट्ठियाँ लिखी होंगी। 25 नवम्बर को 9 बजे सबेरे प्रयाग पहुँचूँगा। सब ठीक रहा और बनारस न जाना पड़ा तो 28 की रात को गाड़ी पकड़ूँगा और 29 को 11 बजे दिन में मसूरी पहुँच जाऊँगा। तब भी 19 दिन बाद तुम से और बच्चों से मिल सकूँगा, अर्थात् अब भी छः दिन रहते हैं।*

*मैंने गलती की, नहीं तो कम से कम यहाँ पत्र भेजने के लिए तो कह सकता था और चिट्ठी मिल गई होती। तुम को मेरी खबर तो मिल रही है। इन 12 दिनों में मैंने 10 से कम चिट्ठियाँ नहीं लिखी हैं। एकतरफा चिट्ठी से क्या संतोष हो सकता है ?*

*मैंने इन दिनों तुम्हें चिट्ठियाँ लिखने के सिवा कुछ नहीं लिखा, पढ़ा भी नहीं। अखबार तो कल लेकर पढ़ा। घर की खबर देश-विदेश की खबर से ज्यादा महत्त्व रखती है, इसका अनुभव इस सारे समय मिला।*

*आशा है, तुमने मेरी प्रथम चिट्ठी पर विचार कर लिया होगा। कितना ही अच्छा होगा, यदि अनुकूल निर्णय हो। प्रतिकूल के लिए भी मैं प्रस्तुत हूँ। हम परीक्षा में स्वस्थ और प्रसन्न हों, यही चाहता हूँ।*

*प्रयाग से तार द्वारा सूचित करूँगा कि तुम्हारी कितनी चिट्ठियाँ मिलीं। प्रयाग से यदि कोई चीज मँगानी हो तो एक्सप्रेस चिट्ठी लिखना—डा. बदरीनाथ प्रसाद, लक्ष्मी निवास, लाउडर रोड, इलाहाबाद।*

*बार-बार चुम्बन और आलिंगन, जया-जेता को बहुत-बहुत प्यार।*

*तुम्हारा*

*राहुल सांकृत्यायन*

**डायरी, 24 नवम्बर, प्रयाग-मार्ग :** "आकाश निरभ्र। मंगलहृदयजी ने प्रातःराश कराया। घूमने गये। एकाध चिट्ठियाँ लिखीं। 17 बजे की बस से गोरखपुर जाने का ठीक करा लिया। चीनी माई का भोजन दोपहर कर लिया। वृद्धा धनी पुरुष की पत्नी हैं, अपने रुपये से इस विहार को बनवाया। चन्द्रशीला और दूसरी भिक्षुणी सहायता कर रही थीं। भोजन करके लौट रहा था तो महाराणा कालेज के छात्रसंघ के सभापति राजेन्द्रसिंह दो और पुरुषों के साथ आये। कालेज में भाषण देने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया।"

**डायरी, 25 नवम्बर, 1956** : "मौसम साफ, सर्दी नहीं-सी। पर मुझे नहीं।

गाड़ी गोरखपुर में ही डेढ़ घंटा लेट हुई। औड़िहार में 3 घंटे से ऊपर लेट। सारनाथ में पूरा उजाला था। विनोदजी (श्री बैजनाथसिंह) वाराणसी छावनी में मिले। दिल्ली में डॉ. भगवतशरणजी की नियुक्ति (हिन्दी विश्वकोश के लिए) हो गई, यह जानकर प्रसन्नता हुई। मेरे बारे में पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने कहा—वह एकाध वर्ष से ज्यादा नहीं रहेंगे, उन्होंने मुझे पासपोर्ट दिखलाया है कि मैं चीन जा रहा हूँ। वस्तुतः किसी और को लाने का चक्रव्यूह रचा गया है। मुझसे पूछने के लिए नियुक्ति मुल्तवी कर दी गई है। मैंने स्थायी तौर से रहकर कार्य करने के बारे में डाक्टर राजबली पाण्डेय को पत्र लिख दिया। खैर, भगवतशरणजी की नियुक्ति से बड़ी प्रसन्नता हुई।

सवा तीन घंटे लेट हो ट्रेन 12-20 मिनट पर प्रयाग पहुँची। रामबाग स्टेशन से रिक्शा लेकर डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के घर पर गये।"

## पत्र

*प्रयाग,*

*25 नवम्बर, 1956*

*प्रियतमे,*

*गाड़ी गोरखपुर की तीन घंटे लेट आई। मैं बहुत झुँझला रहा था। तुम्हारे पत्र कहीं नहीं मिले थे। यहाँ 19, 20, 21 तारीखों के तीन पत्र मिले। डूबते को तिनके का सहारा बहुत होता है, ये पत्र तो बहुत बड़े सहारे हैं। दो बार उनकी एक-एक पाँती, एक-एक अक्षर पढ़ा। तुम जैसी आत्मग्लानि की बात करती हो वह बिल्कुल अनुचित है। तुम्हारे गुणों को मैं जानता हूँ, बहुत प्रभावित हूँ। तुम्हें अपने जीवन-भर और बाद में भी सुखी देखना चाहता हूँ। बच्चे तो अपने प्यार से मुझे जीवन-भर के लिए बाँध ही चुके हैं, उसके बाद के लिए भी मन में यही उत्कंठा और साध रहेगी। मैं अपने भावों को एक कहानी में व्यक्त कर चुका हूँ जिसे तुम पढ़ोगी। मैं तुम्हें असाधारण तरुणी समझता हूँ। असाधारण वस्तु में थोड़े-से काँटे भी लिपटे हों, तो आश्चर्य नहीं। मैं उनके चुभने से विमनस्क नहीं हो सकता। लेखक-विचारक का जीवन व्यस्त होता है, वह एकाग्र हो जाने पर सबकुछ भूल जाता है, यह दोष मेरे में है, पर मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। प्यार की शक्ति मिलन के समय नहीं, वियोग के समय मालूम होती है। उसकी क्षति का पता उसके हाथ से निकलते वक्त लगता है। तुम घर या दूसरी चीजों को मेरी कहकर मुझ पर अन्याय करती हो। तुमने नजदीक से देखा है कि मैं उन्हें तुम्हारी समझता हूँ। मन-वचन या लेखनी से इस भाव को न प्रकट किया करो।*

*कुसीनगर से कल दोपहर ही गोरखपुर के कालेज के विद्यार्थी भाषण देने के लिए पकड़ लाये थे। वहाँ से रात के 11 बजे गाड़ी बहुत लेट पहुँची। ख्याल ही नहीं था, आज रविवार है। श्रीनिवासजी दिल्ली गये हैं। एक बार तो 27 को ही चलकर 28 को मसूरी पहुँचने का जबर्दस्त ख्याल आया। पर, पुस्तकों के बारे में कुछ करना है, इसलिए कुछ ही मिनट पहिले ख्याल बदलना पड़ा। पिछली चिट्ठी में लिखी कुछ चीजें कल और कुछ परसों खरीदूँगा। जया का लंचबक्स, अमरूद, मिठाई और तुम्हारे कपड़े। खिलौने क्या लाऊँ, समझ में नहीं आता।*

*अरुणा, इन्दु (डॉ. प्रसाद की बेटियाँ) यहीं हैं। इन्दु ने अपनी लड़की का नाम अंशुला रखा है। अरुणा भी जल्दी ही माता बननेवाली है। अरुणा का उलाहना वजा है। मैं स्वीकार करके भी उनके व्याह में नहीं आ सका। तुम्हारी चर्चा सभी जगह हो जाया करती है। इन्दु भी पूछ रही थी। दोनों वहिनें वुहुत मोटी होती जा रही हैं। मैंने कहा—आलू, चावल, मिठाई, घी, चीनी न खाया करो। कहना आसान है, करना मुश्किल है।*

*शायद मेरे आने के पहले ही यह पत्र पहुँच जाये। इसीलिए लिख रहा हूँ। आज रविवार न होता तो तार दे देता, शायद कल दे भी दूँ। 29 नवम्वर के दोपहर को मसूरी पहुँच जाऊँगा... "*

उनकी अनुपस्थिति में वाराणसी में हिन्दी विश्वकोश के कार्य को लेकर दो-तीन पत्र आये थे, जिनमें उनके मित्र डॉ. राजबली पाण्डे तथा श्री युगजीत नवलपुरी के थे। उन्होंने उनसे इस कार्य को स्वीकार करने का स्नेहपूर्ण अनुरोध किया था। मैंने भी इसी बात को लेकर पंडितजी को इस कार्य के प्रति उदासीन न होने का अनुरोध किया था। इसका उत्तर देते हुए उन्होंने इसी पत्र में आगे लिखा :

*"बनारस के काम की उपेक्षा मैं नहीं करता। भगवतशरणजी की नियुक्ति हो गई है। मेरे स्थायी तौर से काम करने के वारे में पूछा गया था, मैंने वैसा पत्र लिखकर बनारस स्टेशन पर आये विनोदजी (वैजनाथसिंह) को दे दिया। अब उसका निर्णय दिसम्बर के अंत में होगा, तव तक भगवतशरणजी काम शुरू कर देंगे। आज दोपहर तक दिल पर भारी भार-सा पड़ा था, अव वह हल्का मालूम होता है। दोनों ओर कमियाँ हैं, पर दोनों ओर स्नेही हृदय हैं, ऊपर से दोनों वच्चों का जबर्दस्त स्नेह सूत्र है। नैया पार हो जायेगी, इसमें मुझे संदेह नहीं। मेरा तुम पर सदा विश्वास रहा है। यदि अविश्वास हुआ तो परिस्थितियों पर ही।*

*बार-बार चुम्वन-आलिंगन और जया-जेता को वहुत-वहुत प्यार।*

*तुम्हारे प्यार का प्यासा,*
*राहुल*

26 नवम्बर और 27 नवम्बर के दो दिन राहुलजी ने प्रयाग में ही बिताये। उनकी कई पुस्तकें प्रयाग के प्रेस में छप रही थीं, उनके प्रूफ देखने थे। तीन-चार संस्थाओं में भाषण के लिए निमंत्रण मिले, किन्तु म्युजियम में बोलना ही स्वीकार किया। म्युजियम में उन्होंने पुरातत्त्व पर व्याख्यान दिया। उनके पुराने मित्र श्री समुएल लाल मिले। उनके पुत्र आर्थर लाल भारत की ओर से संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थायी प्रतिनिधि थे। इंजीनियर पिल्लै भी मिले, उन्होंने अपने नाती का नाम राहुल रखा था जिसका पिता एंग्लोइंडियन है। नागार्जुन, उदयनारायण तिवारी, श्री सेनगुप्त आदि मित्र उनसे मिलने आये। 28 के दोपहर की गाड़ी से उन्होंने देहरादून के लिए प्रस्थान कर दिया। प्रतापगढ़ और लखनऊ में गाड़ी बदलनी पड़ी।

अगले दिन याने 29 नवम्बर की सुबह 8 बजे वे देहरादून स्टेशन पर उतरे। यहाँ से टैक्सी ले सीधे 10.30 बजे मसूरी और कुली से सामान उठवाकर 'हर्न-क्लिफ' में पहुँच गये। 19 दिनों का बिछोह। वाराणसी में अलग होते समय हम दोनों का मन एक-दूसरे के प्रति साफ नहीं था। इतने दिनों बाद घर आने पर उनका मेरे प्रति क्या बर्ताव होगा ? यद्यपि उन्होंने अपनी उद्विग्नता अपने पत्रों में प्रकट कर ही दी थी, किन्तु मेरी आत्मग्लानि व्यर्थ सिद्ध हुई। वे आये और मुझे नवविवाहिता दुल्हन की तरह अपने सीने से लगाया। काठमाण्डू से तथा प्रयाग से मेरे लिए दुल्हनोंवाली साड़ी और ओढ़नी एवं जरीदार चप्पल लाये थे। आज्ञा हुई कि उसी समय ये सब पहनकर मैं उनके सामने आऊँ। आज्ञा जब उतने प्रेम के साथ दी गई थी, उसे भला कौन स्त्री टाल सकती है ? वस्तुतः 29 नवम्बर 1956 का दिन हम दोनों के लिए स्मरणीय दिवस रहा। मुझे लग रहा था, आज ही के दिन हमारी शादी हुई है। इतने दिनों का दाम्पत्य जीवन घिचिर-पिचिर करके ही चला आ रहा था। 19 दिनों तक अलग रहकर मेरे बारे में मूल्यांकन करने का उन्हें पूरा समय मिला। दरअसल इसी काल में उन्होंने अपने जीवन में कमला के मूल्य को ठीक से समझा। अब वे अपनी कमला को किसी भी कीमत पर खोने को तैयार नहीं थे। इस भाव को उन्होंने अपनी 30 नवम्बर की डायरी में ऐसे अंकित किया—"मानस स्थिति में बहुत परिवर्तन हुआ है। कमला कितनी प्रिय लगती है। मन यही करता है हम अब एक दिन के लिए भी अलग न रहें। पर जब तक बच्चे पढ़ने के लिए नहीं जाते, तब तक सम्भव नहीं।"

ऐसा उन्होंने इसलिए भी लिखा कि 'उत्तर प्रदेश लोकसाहित्य समिति' की बैठक में भाग लेने उनको फिर दो दिन बाद लखनऊ जाना था। हर जगह उनके साथ जाना मेरे लिए उस समय तो कठिन ही था, क्योंकि जया-जेता छोटे ही थे और अब घर पर भी उनकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं था। मेरे पढ़ने का समय किसी प्रकार निकल आये, उसकी राहुलजी को बराबर चिन्ता होती थी। इसलिए चाहते थे कि कलिम्पोंग से ही किसी को ले आयें, पर उतनी दूर से मसूरी के जंगल में रहने भला कौन तपस्वी आता ?

इधर के कुछ दिनों तक पंडितजी का ध्यान मुझ पर ही केन्द्रित रहता है। वे जैसे मुझे नये सिरे से पढ़ रहे थे। अब उन्हें लग रहा था कि इतने दिनों तक उन्होंने मेरी उपेक्षा की थी। पर मैं इसे उपेक्षा नहीं समझती थी, क्योंकि जिसका जीवन पढ़ने-लिखने और चिन्तन करने में व्यस्त रहता है, उसके लिए समय अत्यंत कीमती होता है। प्यार जतलाने और प्रेमालाप करने के लिए उसके पास समय ही कहाँ होता है। मैंने तो कभी जाना ही नहीं कि वे मेरी उपेक्षा करते हैं। पर उनको लग रहा था, इसीलिए 2 दिसम्बर को उन्होंने अपना यह मनोभाव प्रकट करते हुए डायरी में लिखा—"अपनी उपेक्षा पर खिन्नता आती है। प्रेम और आसक्ति किसको कहते हैं, इसका अुनभव अब हो रहा है। ऐसी स्थिति में अवश्य पुरुष या स्त्री का मन एक पर केन्द्रित होता है। यदि बच्चे पाठशाला लायक होते, या नानी यहाँ होतीं तो कमला को साथ लेकर ही कहीं जाते।"

घर आने के बाद अब नियमित रूप से उनका लिखना और प्रूफ देखना आरम्भ हो गया। घर में उनकी उपस्थिति जैसे सब को मनोबल प्रदान करती थी। वे भी प्रसन्न, मैं भी प्रसन्न और जया-जेता भी पापा के निकट अति प्रसन्न। हमारी यह प्रसन्नता आस-पास के खास लोगों को सहन नहीं होती थी, वे अपना तिकड़म लगाने की भी कोशिश करते रहते थे। पर हमारे राहुल जी, ऐसे लोगों की पर्वाह ही नहीं करते थे। उनके मन में मेरे प्रति करुणा-दया-प्रेम सब कुछ था, उसमें जरा भी कमी नहीं आने पाई, हालाँकि लोग दाम्पत्य जीवन की इस मजबूती को दूसरी तरह से देखते थे और आज भी वैसा ही कर रहे हैं।

हमलोग अपने में मस्त थे। राहुलजी अपने काम को पूरा करने में व्यस्त रहते। साथ-साथ हम लोगों का भी पूरा ख्याल रख रहे थे। इस बार की लम्बी यात्रा से लौटने के बाद तो उनका हृदय प्यार से और लबालब भर गया था। वे मेरे लिए भी अपने कीमती समय में से बहुत समय देने लगे। 4 दिसम्बर को 10.30 बजे वे लखनऊ के लिए घर से रवाना हुए। उस दिन मसूरी में धर्मगुरु श्रद्धेय दलाईलामा तथा श्रद्धेय पणछेन लामा का आगमन हो रहा था। अतः टैक्सी न मिलने के कारण पंडितजी बस द्वारा ही 2 बजे देहरादून पहुँचे। रास्ते में दो जगह भीड़ के कारण रुकना भी पड़ा था। उसी रात वे हावड़ा मेल में सवार हुए। दूसरे दिन सुबह ही लखनऊ स्टेशन पर उन्हें भिक्षु प्रज्ञानन्दजी मिले। श्री यशपालजी के यहाँ उनको ठहरना था। यशपालजी से मिलकर उनको सदैव बड़ी प्रसन्नता होती थी। समिति की बैठक में भाग लेने डॉ. उदयनारायण तिवारी तथा डॉ. विद्यानिवास मिश्र भी लखनऊ आये थे। मध्याह्न भोजन सूचना एवं प्रचार विभाग में हुआ। बैठक की अध्यक्षता श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने की। भोजपुरी-अवधी-बघेली-रुहेली-कन्नौजी-ब्रज-बुंदेलखंडी-कौरवी-गढ़वाली-कुमाऊँनी आदि के लोक साहित्य पर विचार-विमर्श हुआ। 6 दिसम्बर को भी गोष्ठी चलती रही और शाम की गाड़ी से पंडितजी देहरादून के लिए रवाना हुए। 7 दिसम्बर की सुबह वे मसूरी लौट आये। उनके लिए 'वत्सयोः प्रिययाश्च हार्दिकःस्वागतम्।"

## मसूरी में

काम काफी जमा हो गये थे। मेरी जीवन-यात्रा : 4-5 की पाण्डुलिपि का संशोधन करना था। बीच में उनके एक घुमक्कड़ शिष्य शिव शर्मा आये, वह भिक्षु बनने के लिए उस समय कटिबद्ध थे। राहुलजी ने उनको बहुत समझाया, बहुत ऊँचा-नीचा दिखाया, किन्तु शिव शर्मा अपने विचारों को बदलने के लिए तैयार नहीं थे। बाद में वह सारनाथ में भी रहे, पर दीक्षा लेने का साहस नहीं हुआ। (अब वह विवाहित हैं) 10 दिसम्बर को वह भावी कदम के बारे में पूछने पंडितजी के पास आये थे। उस दिन सुबह 'मेरी जीवन-यात्रा' की पाण्डुलिपि का पंडितजी ने पुनरावलोकन किया। फिर शिव शर्मा तथा 'कमलया प्रियया च सार्धं' बाजार गये। हेमन्त काल

में मसूरी की सड़कें बिलकुल सूनी। इसका अनुभव आज पंडितजी को हुआ। उसी दिन डॉ. श्याम परमार की डाक्टरेट की थीसिस आगरा विश्वविद्यालय ने अवलोकनार्थ भेजी। आज ही साथी डांगे का भी पत्र मिला। ज्ञात हुआ कि पार्टी हमारे मकान को खरीदने जा रही है। किन्तु यह उस समय के लिए ख्याली पुलाव मात्र था

लिखने-पढ़ने की ओर उनका ध्यान तो था ही, किंतु उस समय पंडितजी को क्या हो गया था कि वे हरदम मुझे अपने पास बिठाकर कोई न कोई किताब पढ़ते हुए देखना चाहते थे। वे मुझे संस्कृत पढ़ाने के पीछे भी पड़ गये। घर में मेरा सिर्फ पढ़ना ही काम नहीं था। घर-गृहस्थी और बाल-बच्चों को भी तो सँभालना था। गृहिणी होकर गृह से बेखबर कैसे रह सकती थी? किन्तु उस समय उन्हें कुछ भी कहना बेकार था मन उनका बड़ा कमजोर बन गया था। रोगों के आक्रमण के कारण भी उनके मन में निराशा भरती जा रही थी। तभी तो ऐसे वाक्य अपनी दैनिकी में अंकित करने लगे थे—"तोतसहते मनः किमपि अन्यत्र लिखितुम् यावत् मे मनः प्रियायां अनुरक्तं, तावत्तस्या न भवितुंमर्हति। न जानं कथं अवसानं स्यादस्य जीवनस्य। अम्बेडकर सायं सुप्तः, प्रातः चिरायप्रसुत्पोलब्धः तथैव मयापि स्यादित्येयाकांक्षे। गृह निर्माणार्थं किंचिद् धनं अपेक्ष्यते। तावद्देव जीवनयाकांक्षे···। संस्कृते दैनंदिनी लिखितुमारब्धा, कदाचित् सा एवं संस्कृतं पठेत्। परं, तस्या मन एव नात्र।" (11 दिसम्बर)

ही सही। यह तो मेरे लिए प्रेरणा और आशीर्वाद के समान है जो एक महान विद्वान की लेखनी से निकल रही है। डायरी में पत्नी की शिकायतें लिखना उनकी पुरानी आदत थी। रूस में 25 महीने रहते समय भी उन्होंने अपनी डायरी में लोला के बारे में इसी तरह बराबर शिकायतें-आलोचनाएँ लिखी थीं। बेचारी लोला तो अपने बारे में लिखी हुई ये बातें खुद पढ़ भी नहीं सकती थी। इसलिए वह समझती रही कि राहुलजी उसकी हमेशा तारीफ ही तारीफ करते थे।

अगले दिन फिर वे लिखते हैं—"अद्य दिनं सुदिनम्। प्रियायै: उक्त तवैव नेत्र सृष्टिसंहारकारिणी रात्रौ तया अश्रूणि मोचितानि। जानाति क्षतिं मदभावरूपम्। जीवितमुत्सहे। तदैव यदा तस्या मुख प्रसन्नम्। अन्यथा अवसादे अवतरित चिन्तम्।" (12 दिसम्बर, 1956)

आगे लिखते हैं—'प्रियाया न केवलं स्नेहः प्रेमापि मयि विद्यते इति ज्ञातं, परमस्मिन्तदावपरे तया भूरिशो अश्रूणि मोचितानि। तस्यापिकारणमंहंमिति अतीव खेदकरम्, प्रतिज्ञातं इतः कदापि एवं न ममा करणीयम्। तस्याः प्रसन्न स्मितिपूर्णं मुखं दृष्ट्वा हर्षस्य पराकाष्ठा व्रजामि, विलोम दृष्ट्वा विपीडामितराय। कदापि सा विपन्नमुखी न भूयादित्येवं मे हार्दिकी कामना।" (3 दिसम्बर)

"यादृशी अत्यन्ता सक्ति प्रियायां, तादृशी तु कदा पिनानुभूताः सा च न वांछति माधिक्यं, परं नेतत् स्वायत्तम्" (14 दिसम्बर)··· "हन्त, हृदयं मदीयं की दृश दुर्बलं जातम्। अल्पीयसि अपि दुःखे मरणं शरणं नु वरमेकुस्मरानि। स्वऽनु नैष्यातीदयः यद्येव भवेत् तर्हियमानसी शारीरिकनं विकृतिरेवात्रा पराद्दा। आवेगः क्षीयते यदा स्मरानि प्रिया वत्सौ च मे सर्वस्व भूतौ। कानपि न दूषयामि"। (16 दिसम्बर)

"प्रियायै दयोऽतीव्रवेदना जाता, तन्निराशा चिंतावाणी अपश्रुत्य।" (6 दिसम्बर)

"मानसी स्थिति ने स्वायत्ता। तस्या अपेक्षौपेक्षानुसारिणी - चित्तावसादः सा पि स्वप्रकृतिपरवश, न सततं लक्ष्यति प्रतिक्रियां मेहृदि।" (18 दिसम्बर)

दिल्ली में एशियाई लेखक सम्मेलन होने जा रहा था, जिसकी सूचना तार द्वारा मिली। साथ ही 19.12.56 का लिखा नागार्जुन का पत्र भी मिला, जिसमें लिखा था—

"प्रियेषु पूज्येषुच,

एशियाई लेखकों की कान्फ्रेन्स के लिए हिन्दी के जिन बारह साहित्यकारों को प्रतिनिधि मनोनीत किया गया है, आप उनमें से अन्यतम हैं। इस सम्मेलन में आपकी उपस्थिति अनिवार्य लगती है मुझे तो। तार गया होगा। आप जरूर आवें।

—नागार्जुन"

पर पंडितजी को इस कान्फ्रेन्स में जाने की रुचि नहीं थी, किन्तु मैंने भी उनसे जाने के लिए आग्रह किया—"दिल्ली गमने नरुचि कमला परं इच्छति। तया सार्धंगतुं नास्त्यवकाशः"...

दिसम्बर में मसूरी में सर्दी बहुत बढ़ जाती है। पंडितजी के लिए तो 'शैत्याधियात् न किमपि कार्य कर्तुमलम्।" साथी सज्जाद जहीर, श्री मुल्कराज आनन्द ने भी उक्त सम्मेलन में भाग लेने के लिए उनको तार द्वारा सूचना भेजी, अतः उन्होंने भी अपनी स्वीकृति भेज दी। 21 दिसम्बर को उन्होंने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया और 22 को सुबह दिल्ली पहुँच गये।

## दिल्ली में

22 दिसम्बर को ही सुबह 10 बजे विज्ञान भवन में एडवर्ड पथ पर गये। आज भारतीय लेखकों का सम्मेलन था। उद्घाटन भाषण श्री हुमायूँ कबीर ने दिया। उनके बारे में पंडितजी के विचार थे—"कबीरोऽवाग्मी, भाषाऽपि समीचीना भावोऽपि।" सम्मेलन में हिन्दी के प्रतिनिधित्व के लिए विवाद हुआ, परन्तु बाद में सब ठीक हो गया। अन्य प्रतिनिधियों का भी व्याख्यान हुआ, परन्तु राहुलजी को किसी का भी असाधारण नहीं लगा। रात का भोजन एम्बेसेडर भोजनालय में हुआ। दिल्ली में इस बार वे डॉ. प्रभाकर माचवे के गृह (यार्क होटल) में ठहरे, वहीं नागार्जुन भी ठहरे हुए थे।

23 दिसम्बर को सुबह 9 बजे सम्मेलन-स्थान विज्ञान भवन की ओर चले राहुलजी। उस दिन चीन-बर्मा-वियतनाम-जापान-मंगोलिया-ईरान-सीरिया-रूस के लेखक प्रतिनिधि आ गये थे। पहले प्रतिनिधिमण्डल के अध्यक्षों का भाषण हुआ। बर्मा के प्रतिनिधि श्री उक्कठा पारगू से पंडितजी की भेंट हुई। पारगूजी ने पंडितजी की पुस्तकों बौद्ध दर्शन, वोल्गा से गंगा, बाईसवीं सदी, साम्यवाद ही क्यों आदि पुस्तकों का बर्मी भाषा में अनुवाद किया था। यह भी पता लगा कि सिंह सेनापति का बर्मी अनुवाद भी यंत्रस्थ है। नेपाल के प्रतिनिधियों में श्री लक्ष्मीप्रसाद देवकोटाजी भी आये थे, जिनसे पंडितजी की भेंट हो गई। उस दिन सभी प्रतिनिधियों का मध्याह्न भोजन क्वालिटी भोजनालय में हुआ। उस दिन पंडितजी का भी भाषण हुआ। सायंकाल दिल्ली नगरपालिका ने सभी प्रतिनिधियों का स्वागताभिनन्दन किया।

किसी कार्यक्रम में भाग लेने जाने पर पंडितजी वहाँ का विवरण पत्र में लिखकर मुझे अवश्य सूचित करते थे। दिल्ली के इस सम्मेलन के बारे में भी उन्होंने लिखा :

*नई दिल्ली*
*23 दिसम्बर, 1956*

*प्रियतमे,*

*कल सूर्योदय से पहिले ही यहाँ पहुँच गया। रात को सोता आया। बिस्तरा विमला फारुकी जी के यहाँ रखकर भाई साहेब (स्वामी हरिशरणानन्द) का घर देखने गया। भाभीजी की बहन कमला और माताजी यहीं हैं। भाई साहेब, भाभीजी उनसे नाराज हैं। 10 बजे सम्मेलन में गये। नागार्जुन के साथ। भोजन विमलाजी के यहाँ करके सामान ले माचवेजी के यहाँ चले आये। शरदजी (श्रीमती माचवे) बच्चों के साथ ऋषिकेश गई हुई हैं। कल प्रेसर कुकर देखा। रुपया मिल जायेगा। 65 रुपये का एक मिल रहा है, पर श्री प्रकाशवती का कहना है, जरा बड़ा ले लें। कल खरीद लूँगा। आशा है 25 की शाम को यहाँ से चल दूँगा। वैसे यह सम्मेलन 25 तारीख तक चलेगा। देवकोटाजी तथा अन्य साहित्यकार प्रतिनिधियों से मिले।*

*प्रिये, जल्दी ही भागने की इच्छा होती है। पर परसों से पहिले नहीं चल सकता। आज यह पत्र एशियाई सम्मेलन में बैठे लिख रहा हूँ। चिट्ठी यहाँ से कल ही रवाना होगी, क्योंकि आज रविवार है। तुम्हारी लिखाई चीजों को लेता आऊँगा, अपने लिए कपड़ा नहीं ला सकूँगा। कुकर लाना जरूरी समझता हूँ।*

*आशा है, तुम प्रसन्न हो। जया-जेता भी स्वस्थ होंगे। यही आशा है। यह भी सन्देह है कि यह पत्र मेरे वहाँ पहुँचने से पहिले मिलेगा। फलों की सजी दूकानों को देखकर ख्याल होता है कि एक बड़ा बक्सा भर के लाऊँ।*

*श्री प्रकाशवतीजी से मालूम हुआ कि नेपाली राढी उनके यहाँ लखनऊ में छूट गई है। कोई आने से देहरा*

*भेज देंगी। तुम्हारे लिए एक साड़ी लाने की इच्छा है।*

*बहुत चुम्बन और आलिंगन के साथ,*

*तुम्हारा,*

*राहुल*

24 दिसम्बर को पंडितजी पुरानी दिल्ली की ओर गये। योगध्यान वीथी (मार्ग) में साथी यज्ञदत्त शर्मा के घर गये। पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस से 200 रुपया लेकर बाजार गये और 70 रुपये में एक कुकर खरीदा। अपराह्न 2 बजे पुनः सम्मेलन में गये। श्री हर्षदेव मालवीय से वहीं भेंट हुई। उन्होंने राहुलजी को अपनी पुस्तक भेंट की। फिर वे नागार्जुन के साथ इधर-उधर मिलने-जुलने गये। लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के राहुलजी के पुराने छात्र श्री बर्खुरदारोफ उस समय दिल्ली में थे। दूसरे शिष्य विक्तर बालिन वाराणसी में थे। ईगोर के पत्र के साथ विक्तर बालिन का पत्र श्री बर्खुरदारोफ ने पंडितजी को दिया। कल भी पूर्वाह्न में उनको सम्मेलन की बैठक में जाना था और अपराह्न को भी।

अगले दिन (25 दिसम्बर) पंडितजी दरियागंज स्थित स्वामी हरिशरणानन्दजी के घर गये। स्वामीजी और जानकी भाभी इस समय बम्बई में थे। घर में भाभीजी की वृद्धा माँ और छोटी बहन कमला ही थीं। वहाँ से पार्टी आफिस में जा साथी पूरणचन्द्र जोशी के साथ बातचीत की। फिर 10 बजे वहाँ से सीधे सम्मेलन-स्थान में गये। वहीं पर श्री पीतर बरान्निकोफ, बर्खुरदारोफ आदि लोग मिले। उन्होंने लेनिनग्राद के पंडितजी के अन्य शिष्यों की ओर से अभिवादन प्रेषित किया। यह भी पता चला कि उनके एक शिष्य मेलनिकोफ क्षयरोग से ग्रस्त हैं। आज बंगला आदि के कुछ भाषणों का विवरण सुनने को मिला। आज का मध्याह्न भोजन श्रीमती रजनी पणिक्कर के गृह में हुआ। सायंकाल श्री यज्ञदत्त शर्मा के गृह में जा उनसे भेंट करते हुए स्टेशन गये। रात की गाड़ी से मसूरी के लिए प्रस्थान किया।

**मसूरी में** : 26 दिसम्बर को सबेरे ही पंडितजी देहरादून पहुँचे। और वे वहाँ से सीधे 11 बजे टैक्सी से मसूरी और हर्न-क्लिफ में आ गये। उस समय हमारा बच्चा जेता ज्वर से पीड़ित था, जिससे पिता को दुःख होना स्वाभाविक ही था। अब फिर लोक-साहित्य समिति की बैठक 5 जनवरी को होनेवाली थी, वहाँ पंडितजी का जाना अनिवार्य था। पता नहीं क्यों उनको अपने देश की स्थिति देखकर लगता था कि "अत्र वत्सयो जीविनं च शिक्षणं च अनिश्चितमेव स्यात्। तयोः श्रेयसे चीनेऽवस्थितिः समीचीना।" किन्तु सभी के माता-पिता तो देश छोड़कर नहीं जाते। मैंने भी देश छोड़कर जाना उचित नहीं समझा। इसलिए पंडितजी को कहने को मिला, "परं प्रिया नैतत् विमृशति।" (24 दिसम्बर) यद्यपि उनका सोचना समीचीन था, क्योंकि जया-जेता की शिक्षा-दीक्षा के लिए मुझे कितना संघर्ष करना पड़ा। कहीं से एक पैसे की भी सहायता नहीं मिली हमको।

30 दिसम्बर को मसूरी में हिमवर्षा हुई, सर्दी का क्या पूछना ! हमसे भी अधिक कष्ट उनको होता था, पर अभी कहीं नहीं जाना चाहते थे। उस दिन वे दिन-भर 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के प्रूफ देखते रहे। 30 दिसम्बर को भी मेरे ऊपर उनकी कृपा हुई और अपनी दैनन्दिनी में लिखा—"··· मुखोऽहं प्रियागुणेषु। स्वीयं मानसं भव न प्रकाश्यम् सम्यक करोति। व्यवहारतां मानसाभिज्ञान अर्पामेवभवति।"

31 दिसम्बर 1956। वर्ष का अंतिम दिन। पंडितजी ने इस साल के कामों का लेखा-जोखा करते हुए लिखा :

इस वर्ष के लिए ग्रंथ—1. मेरी जीवनयात्रा : (3), 2. कनैला की कथा (अपूर्ण), 3. जिनका मैं कृतज्ञ, 4. असहयोग के मेरे साथी, 5. महामानव बुद्ध, 6. अकबर। इस वर्ष में प्रकाशित ग्रंथ—1. भारत में अंग्रजी राज्य के संस्थापक, 2. महामानव बुद्ध, 3. मध्य एशिया का इतिहास, 4. संस्कृत पाठमाला-1, बंगला भाषा में बौद्ध दर्शन का अनुवाद प्रकाशित हुआ। तेलुगु भाषा में सिंह सेनापति, मलयालम भाषा में भी अनेक ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित हुए।

इस प्रकार 1956 का वर्ष समाप्त हुआ।

# 2
# हर्न-क्लिफ में अन्तिम वर्ष : 1957

मसूरी : 1-1-1957

आज नववर्ष का दिन। लोग नये वर्ष की खुशियाँ मनाने तथा हिमवर्षा देखने के लिए दिल्ली की तरफ से मसूरी में आये थे। कोई पिकनिक करने, कोई यों ही घूमने। किन्तु हमारे घर में पंडितजी पर नये वर्ष का कोई प्रभाव नहीं दिखाई दिया। आज के दिन मसूरी में कठिन सर्दी पड़ रही थी। हम लोगों ने चिमनी में लकड़ियाँ जलाकर कमरे को गरम बनाने का प्रयत्न किया था। पंडितजी घर पर ही रहे। प्रतिदिन के नियमानुसार मंगलजी से उन्होंने कुछ लेख टाइप करवाये। फिर 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' तथा 'मेरी जीवन-यात्रा' : 3 की पाण्डुलिपियों का संशोधन करते रहे। मैं देख रही थी, वह मुझसे नाराज हैं। मुझको लग रहा था कि आज नववर्ष के प्रथम दिन से ही वह मुझसे खफा रहने लगे हैं। इसका मतलब यह वर्ष हमारे लिए दुखद बीतनेवाला है। वह चाहते थे कि मैं सब काम छोड़कर उनके पास संस्कृत पढ़ने बैठ जाऊँ। खाना पकानेवाला तो एक सेवक था, किन्तु छोटे बच्चे जया-जेता की उपेक्षा भी तो नहीं कर सकती थी, उनको भी तो मुझे समय देना चाहिए। बस इसी में खटपट शुरू। वह मुझसे जोर से डाँटकर तो नहीं बोलते थे, किन्तु मेरे बारे में शिकायतें उनकी डायरी में दर्ज की जाती थीं। 1 जनवरी की डायरी में मेरे बारे में अंकित किया—"कमलादेव्या विस्मतं यद् अस्ति प्रयतितव्यं। डाक्टर मिबंधविषये। कथेन न कोपि लाभेः। एमु दिनेषु संस्कृत पठितं शक्यं, परं उत्साहाभावः। ह्यस्तु वाराणसी यात्रा ते निश्चितेव आसीत्।" उनको वाराणसी के हिन्दी-विश्वकोश का काम मिल जायेगा, इस पर बड़ा भरोसा था। इसलिए वह मुझे भी डाक्टर बनाकर उस काम में लगा देना चाहते थे। खैर, वह तो बाद की बात है। उनको भी नववर्ष का ख्याल आया और लिखा—"अद्य नववर्षे दिनम्। की दशां वर्वेनः। अर्ध हेमन्तस्य एकस्मिन् वत्सरे, अर्ध द्वितीये।" हमारे लिए नववर्ष का दिन बिना किसी विशेष बात के ही गुजर गया। 2 जनवरी को मसूरी में भारी हिमवृष्टि हुई। मसूरी बिल्कुल श्वेत दिखाई देने लगी। पंडितजी ने इसका भरपूर आनन्द लिया, क्योंकि उनको विश्वास था कि पहाड़ का हिमपात यह उनके लिए अब अंतिम है। और बात भी सच, क्योंकि अगले जाड़े में हमलोग मसूरी छोड़ चुके थे। हिमपात का आनन्द व्यक्त करते हुए वे अपनी डायरी में लिखते हैं—"रात्रौ हिमपातः। प्रातः सर्वत्र श्वेतिमा हिमस्य दरी। दृश्यते। इंच द्वयं स्यात् स्थुलम्। वृक्षाणां पत्राणि राजतानि। वृक्षाश्च पृथक् पृथक् स्थिता अरण्ये। दिवा न हिमपातः। सायं स्तोकं हिमशर्करापातः। हिमः स्तोकमेव गलितः। गृहे अग्निः प्रज्वलितः। परं पदेः उच्छायता व्याममात्रैमेव खलप्रतापः। अग्निपार्श्वे चिरं अवस्थितिरस्माकं, धूमेन पीड़ितचक्षुष्काणाम्" (2 जनवरी)। संस्कृत में दैनन्दिनी मेरे लिए लिखी जा रही थी, ताकि मैं संस्कृत सीख लूँ। इससे मैं लाभ उठा ही रही थी, परन्तु पंडितजी को भरोसा नहीं होता था।

नया वर्ष शुरू हो गया। तब पंडितजी का मेरे प्रति विश्लेषण चल रहा था। हमारे बीच में जो पहली खटपट तीन महीने पहले हुई थी, उसे तो मैं भूल भी चुकी थी क्योंकि उन्होंने अपने प्यार भरे पत्रों से मेरे

मन के रोष को धो दिया था। परन्तु वे यदा-कदा याद करते ही थे। मन में अवसाद स्वयं भर लेते थे, इसके लिए किसको दोष दें ? हमारे घर के सोने के कमरे में मेंटलपीस पर एक बड़ा-सा लकड़ी का फ्रेम टँगा हुआ था, जिस पर पाँच चित्र आते थे। यह फ्रेम राहुलजी स्वयं कबाड़िये के यहाँ से खरीद लाये थे। उस फ्रेम में मैंने सबके चित्र भरे और एक में ईगोर के नये चित्र को लगा दिया था। पिछले साल उन्होंने उस चित्र को निकाल देने को कहा था, पर मैंने वैसे ही सजाकर रखा था। आज पता नहीं क्यों, उस चित्र को वहाँ देखकर वे मुझ पर नाराज हुए। उनको लगा कि मैंने उन पर व्यंग्य करने के लिए यह चित्र फ्रेम में लगा रखा है। तभी तो उन्होंने लिखा–"··· अधुनाऽपि ईगरस्य चित्र प्रियाचित्रस्थाने तिष्ठति। व्यंजति च तस्या मनोभावा।" (2 जनवरी) आदमी ने जब कोई दोष नहीं किया है, फिर भी कोई उस पर इस तरह से दोष लगाता है, तब कैसे सहन करे। राहुलजी, आप मेरे पति से भी बढ़कर मेरे भगवान थे। मैं आप ही की शपथ लेकर कह रही हूँ कि मैंने आपका दिल दुखाने के लिए ईगोर का चित्र नहीं लगाया था। वह आपका पुत्र है इसलिए मेरा भी कोई है, इसी ख्याल से मैंने ऐसा किया था। वस्तुतः मैं राहुलजी को दोष नहीं देती। उनके मन में मेरे प्रति जहर भर देने में उनके तथाकथित खास मित्रों का हाथ रहा, साथ ही उनकी धनाढ्य अमीर भतीजी ठाकुरानी गुलाबकुमारी का तो और भी जबर्दस्त हाथ रहा। मैं आयु में राहुलजी से 37 वर्ष छोटी थी, राहुलजी मेरे पिता की उम्र के थे। 1957 में मेरी उम्र कितनी थी, उसी के अनुसार मेरी बुद्धि थी। रातों-रात मैं राहुलजी की तरह पंडिता तो नहीं बन सकती थी, न उनकी तरह की बुद्धि मेरी उस समय हो सकती थी। राहुलजी यहाँ पर मुझ पर बहुत अन्याय करते थे। आज जब ये बातें सोचती हूँ तो मुझे बहुत ही रोना आता है। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा विचित्र था। लोला के प्रति भी उनका यही दृष्टिकोण रहा।

3 जनवरी को उन्होंने 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' का संशोधन किया। मंगलजी से पत्र लिखाये। काव्यधारा को वे स्वयं पटना ले जाकर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् को देनेवाले थे। उसी दिन कानपुर से छात्र सम्मेलन में व्याख्यान देने के लिए उन्हें निमंत्रण मिला। मुझे अपने साथ चलने को कह रहे थे, पर छोटे-छोटे बच्चों को लेकर कहीं जाना मेरे लिए कठिन था। मेरे न जाने से उनका भी मन न हुआ और लिखा–"कमला न जातुमिच्छति, तेन गमनानुत्सकं मे मनः।" (3 जनवरी)

उस दिन भी मुझ पर उनके कोप की वर्षा हुई–"पी-एच. डी. निबंधेऽस्ति अध्यात्मरामायणे न सह भानुभक्ते रामायणस्य तुलना करणीया। एतदर्थ स्वल्पं संस्कृत ज्ञातं अत्यावश्यकम्। परं कमला न वांछति। कदाचिद् डाक्टर पदवी कृतेऽपि न तादृश उत्साह। यथो कलिम्पोंगः गमने एतद् अनिष्टकरं स्याद् वत्सयो। परं न नतदवधारणप्रवृत्ति तस्याः किंकरणीयं।"- क्योंकि मैं रात-दिन उनकी नजरों के सामने रहती थी, इसलिए लेखक की कलम की नोक उसके गुण-दोषों का विश्लेषण न करे तो और किसका करे ? जंगल में तो अन्य लोग उनके साथ रहते न थे।

4 जनवरी को राहुलजी दिन-भर 'दोहा-कोश' का प्रूफ पढ़ते रहे। पुस्तक में भी जो तिब्बती टेक्स्ट थे, उनके संशोधन के लिए उन्हें काफी मेहनत करनी पड़ रही थी। इधर-उधर से व्याख्यान देने के लिए निमंत्रण तो बराबर आते रहते थे। छात्र सम्मेलन, कानपुर के लिए बहुत आग्रह था, किन्तु अब उनको कहीं जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। पर ऐसा करने से भी चलनेवाला नहीं था। लोग भला उनको कहाँ छोड़नेवाले थे। यद्यपि अब उनको कहीं अकेले जाने में कठिनाई होती थी, क्योंकि उन्हें रोज इन्सुलिन का इंजेक्शन लेना पड़ता था। उनकी देखभाल की भी जरूरत थी। मैं हर यात्रा में उनका साथ दे नहीं पाती थी। यदि बच्चों का सवाल न होता तो इस तरह उनके साथ घूमने का मौका मैं क्यों छोड़ती। स्त्री-पुरुष की स्थिति में बड़ा अन्तर है। मुझे घर-गृहस्थी, पढ़ाई-लिखाई सभी को सँभालना था। वे बहुत सालों से कानपुर नहीं गये थे। उनके हितैषी मित्र उनको वहाँ आने के लिए बहुत बुलाते थे। इसलिए इस बार मैंने उनको कानपुर जाने का आग्रह किया।

5 जनवरी की रात को मैंने 'संस्कृत प्राठमाला' से कुछ पाठ पढ़े तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई, "परं आवृत्तिम विनाकथं ज्ञानहृदि स्थास्याति ?" उस दिन 5 जनवरी को उन्होंने 'नया पथ' लखनऊ के लिए 'उत्तर प्रदेश के

लोकगीत' लेख लिखवाकर भेज दिया। फिर 'कनैला की कथा' के लिए एक कहानी भी लिखवाई। जाड़े के कारण उनको तकलीफ बहुत थी, किन्तु अभी मसूरी से बाहर कहीं नहीं जाना चाहते थे। उनको विश्वास था कि मसूरी में उनकी यह 'अंतिम शीत ऋतु' है। इन दिनों वे चाहते थे कि मैं बराबर अपनी थीसिस सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़ा करूँ, संस्कृत पढ़ूँ और क्या-क्या। परन्तु वह मेरी दिक्कतों को समझते न थे। उनका मन मसूरी से उखड़ने लगा था। चीन-तिब्बत जाने की बात करते थे। एक बार चेकोस्लोवाकिया जाकर वहाँ सपरिवार जाकर बसने की भी योजना बना रहे थे। विदेश की बात आते ही मेरा मन उखड़ने लगता। मैंने एक बार यही कहा कि आप विदेश चले जायेंगे, हमें कलिम्पोंग में रख दीजिए। वहाँ के स्कूल में मुझे नौकरी मिल जायेगी। यह प्रस्ताव उनको ठीक ही जँचा था। परन्तु पूरी तरह से वह इस प्रस्ताव पर विचार नहीं कर सकते थे, क्योंकि अभी तक उनके मन में बनारस में जाकर काम करने का मोह बना हुआ था। तब तो कमला को भी उनके इस महती कार्य में सहयोग देना होगा। इसके लिए तो मैं सिर से पाँव तक ही तैयार थी, क्योंकि बनारस के बहाने वे स्वदेश के भीतर ही तो रहेंगे। पर यह बनारस का मोह मन का लड्डू बनकर रह गया।

न जाने उनका मन कहाँ-कहाँ भटकता क्या-क्या सोचता रहा। दो बच्चों के भविष्य के लिए अब वे बहुत चिन्तित रहने लगे, इसीलिए मुझे जल्दी से जल्दी सुशिक्षित करके कहीं काम में लगवा देना चाहते थे। उन्हें अपने जीवन के अंतिम क्षण शीघ्र ही आ जाने की आशंका होने लगी थी। पर मैं उस समय इन बातों को इतनी गहराई से नहीं सोच पाती थी, यहाँ पर वही मेरी उम्र का तकाजा था, इसमें मेरा कोई दोष नहीं। आदमी असमय में ही बूढ़ा होना नहीं चाहता है, न वह बूढ़े की तरह सोच सकता है। राहुलजी तो अपनी ही धुन के पक्के। चिड़चिड़ापन उनमें धीरे-धीरे समाता जा रहा था। इसलिए और कुछ न मिले तो मेरी आलोचना ही सही। पर कोई बात नहीं, यह उनके मन की मर्जी। मैं जानती थी। शीतकाल में हमारे घर में कोई मिलनेवाले नहीं आते। राहुलजी मित्रों के बीच में रहना पसन्द करनेवाले जीव। आजकल उनको सूनापन, अकेलापन महसूस होता था, इसलिए संतसमागम के अभाव में उनको फीका-फीका लगता था।

6 जनवरी को भी मसूरी में काफी ठंड थी। आज उन्होंने 'कनैला की कथा' के अन्तर्गत 'देवपुत्र' शीर्षक कहानी लिखाई। अगले सप्ताह तक 'कनैला की कथा' समाप्त करने का उन्होंने निश्चय लिया। इसके बाद वे 'सप्तसिन्धु' को लिखाने में हाथ लगायेंगे। आज भी उनके मन की स्थिति दोलायमान रही। बच्चों के लिए वे चिन्ता करते हैं, जो एक पिता के लिए स्वाभाविक है। पूँजीवादी देश में बच्चों के लिए शिक्षा-दीक्षा की कोई सुविधा नहीं है, यह बात वह महसूस कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने 'विश्वकोश' के काम के प्रति दिलचस्पी ली थी कि भारत में ही रहकर वे काम करेंगे और जया-जेता के भविष्य के लिए कोई आर्थिक प्रबन्ध कर देंगे, क्योंकि अब उनको अपने जीवन का अंत आता हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। 1957 का वर्ष शुरू होते ही राहुलजी के मन में चिन्ता की लहरें भी लहराने लगती हैं। आज डायरी में उन्होंने अंकित किया—"बच्चों के प्रति परम प्रीति है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विश्वकोश का काम न हुआ तो मेरा चीन जाना परम आवश्यक। इसी ग्रीष्म काल में चीन जाना चाहता हूँ। वहाँ रहकर प्रिया के निबन्ध को भी देखना होगा। वह डाक्टरेट हो जाये तो मेरी सारी चिन्ता मिट जायेगी।" (6 जनवरी)

7 जनवरी को उन्होंने 'कनैला की कथा' के लिए अगली कहानी 'कलाकार' शीर्षक से लिखी। अब आगे की कहानी होगी 'नवमालिका'। इस प्रकार 'कनैला की कथा' में 800 ई. पू. से 1957 ई. के समय को समेटा जा सकता है। अब अगले सप्ताह से 'सप्तसिन्धु' अवश्य लिखना आरम्भ करना होगा। आज उनकी प्रिया ने संस्कृत पाठमाला की आवृत्ति की, इसलिए वे अति प्रसन्न। लिखा—"अस्मिन् शैत्ये अपराह्ने प्रिया गता नगरे। ईषत् क्लिन्नैव प्रतिनिवृत्ता।" (7 जनवरी) 8 जनवरी को मसूरी में फिर भारी हिमपात हुआ। उस दिन 8 इंच मोटी बर्फ की तह जम गई थी। सर्दी अत्यधिक थी, ऐसे में काम कैसे किया जा सकता था। तो भी पंडितजी ने 'कनैला की कथा' की अगली कहानी 'नरमेध' लिखाई। मैंने आज कुछ नहीं पढ़ा। इसलिए फिर उनका मन दुखी रहा—"कमलायानोत्साह निबंधसामग्रीसंग्रहे। वलात् किमपि पठति।" 9 जनवरी को तो 12 इंच से भी अधिक

हिमवर्षा हुई। इसके सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"अद्य दिनं अभ्राकान्तम्, सर्वदा हिमपात, द्वादशांगुलतोऽधिकं एव। छदिर्भारेण पतेयिति भयम्। वृक्षा शिरसि भुजासु च हिमश्वेतिमारंजितः नीरव जगत्। प्राणिनाः पक्षिणा गतां अधोभूखंडे। शैत्यमधिकं परमिदं वेश्म न ज्वलनोपयोगि। धूमं नेत्रं धूमप्रवेशार्नहम्। भूतो मुदितो दाखति हिमे। कोमल हिमराशै मज्जंति पादाः इतो लेडलीनिवासे रतिलालापणे मगनं च दुष्करमृदिष्टया प्रियया खाद्यानि कानिचिदानि र तार्हि द्विदिनं प्राग्...।" (9 जनवरी)

जाड़े के मारे बेचारे वे उस दिन कोई काम नहीं कर सके। केवल 'हेमू रौनियार' पर एक लेख लिखवाकर 'सरस्वती' में छपने के लिए भेज दिया। 10 जनवरी को सुबह उन्होंने 'हिमपात' शीर्षक एक सुन्दर लेख लिखाया। फिर हिमवर्षा का आनन्द उठाने के लिए पंडितजी मंगलजी को साथ लेकर नगर गये, इस बार बरफ इतनी गिरी थी कि उस पर चलने में पैर धँस जाते थे। परन्तु उत्साह तो उत्साह ही है। शाम पाँच बजे दोनों व्यक्ति घर लौट आये। बरफ के पानी से पैर और जूते दोनों भीगे हुए थे, किन्तु चेहरा बहुत प्रसन्न। इससे मानना ही चाहिए कि उनका स्वास्थ्य इस समय भी बहुत अच्छा था।

## 'हिन्दी विश्वकोश' की आशा

अभी तक राहुलजी को 'हिन्दी विश्वकोश' के प्रधान सम्पादक बनने की पूरी आशा थी। उसमें मुझे भी काम दिलाने की बात वह कई बार कह चुके थे। मैं यदि डाक्टर बन जाऊँ तो उस काम के लिए योग्य हो जाऊँगी, इसकी चिन्ता उन्हें बराबर रहती थी। साथ ही अपने वार्धक्य के कारण भी मुझे जल्दी से जल्दी पढ़ाकर योग्य बना देना चाहते थे, ताकि भविष्य में उनके न रहने पर भी मैं अपने बच्चों की परवरिश भली-भाँति कर सकूँ। इस इच्छा के कारण वे मुझे बराबर अध्ययनरत देखना चाहते थे। परन्तु उन दिनों उनकी कही हुई बातों का गूढ़ार्थ मैं नहीं समझ पाती थी, क्योंकि मेरी बुद्धि परिपक्व नहीं थी। अतः उनको रुष्ट कर देने का कोई न कोई कारण निकल ही आता था। इसीलिए आज भी उन्होंने अपना विचार इस तरह प्रकट किया—"मानसं क्षुब्धं, तेन किमपि न कृतम्। रात्रौ बुल्के ग्रन्थ 'रामकथा' पठितः कमलायै। धर्मेन्द्र शात्रिणः पत्रेण शतं कमला निबंधविषयः स्वीकृतः परं यावत् सा अध्ययनेनु न सज्जा, किं भवेतेन। यदि सा उदासीना परिश्रमे, तदा मम सहावास्थितिरेव निष्फलाः सफलता तया अनुसंधित्सया विंश्वकोश सम्पादनेन वा। अन्यथा किमपि अन्यत्कार्यं स्वीकरणीयं मज्जीवनान्तानुरूपं स्यात्" (11 जनवरी)

उसी दिन उन्होंने 'संस्कृत की रक्षा' शीर्षक लेख लिखा। हिमवर्षा बार-बार हो रही थी। सर्दी के कारण उनके लेखन में गत्यवरोध होने लगा। इससे भी उनको खिन्नता होती थी।

अभी तक उनको आशा थी कि 'हर्न-क्लिफ' को पार्टीवाले ले लेंगे। बातचीत और पत्र-व्यवहार इसके सम्बन्ध में चल ही रहा था, पर लगता था कि यह सब पूरा होनेवाला नहीं। 12 जनवरी को थोड़ी-सी धूप निकल आई, जिससे बर्फ भी पिघलने लगी। आज उन्होंने 'नवमालिका' शीर्षक से कई पृष्ठों की कहानी लिखाई। खुद को लग रहा था कि यह कथा का रूप नहीं है। आज ही 'ऋग्वेदिक आर्य' के परिशिष्ट अंश के प्रूफ आ गये जिसे देखकर आज ही डाक से रवाना कर दिया। आज भी उनको अधिक ठंड लग रही थी। दोपहर को तो हिम पिघलने के कारण पानी ही पानी दिखाई देने लगा, जिससे अधिक शीत बढ़ गया। उनका ध्यान बच्चों के कपड़ों पर भी गया कि उन लोगों ने कम कपड़े पहिन रखे हैं। हो सकता है बच्चों को अधिक ठंड नहीं लगती होगी।

13 जनवरी रविवार का दिन, पर ऐसी ठंड में कौन मिलने आता ? आज हिमपात तो नहीं हुआ, किन्तु ठंड कम नहीं हो रही थी। आज भी उन्होंने 'नवमालिका' शीर्षक कहानी लिखवाई। इसके बाद 'तुलसी रामायण' पढ़ने लगे और उसमें चिह्न लगाने लगे क्योंकि मेरे निबंध में 'तुलसी रामायण' का भी अध्ययन जरूरी है। कमरे में आग तो जल रही थी। पर उनको धुएँ के कारण आँखों में तकलीफ होने लगी। 14 जनवरी को 'नवमालिका' लिखाना समाप्त हो गया। आज अनेक दिनों के बाद भाई साहब स्वामी हरिशरणानन्द जी का पत्र आया। भाई साहब और भाभीजी में भारी मतभेद चल रहा था, जो अब पराकाष्ठा को पहुँच गया था।

स्वामीजी ने अपने मन की व्यथा लिख भेजी थी उनके पास। लिखा था कि वे क्लेशमय जीवन बिता रहे हैं। राहुलजी की स्वामीजी के प्रति बड़ी सहानुभूति रही।15 जनवरी को आकाश निरभ्र था और शीत भी कम। आज उन्होंने 'नवमालिका' के आगे के पृष्ठ मंगलजी को डिक्टेट किये। इसके बाद साथी डाँगे, स्वामी हरिशरणानन्द जी को पत्र लिखे। मकान की बिक्री की चिन्ता बनी हुई थी। उधर आज भी मुझ पर रुष्ट, क्योंकि मैंने आज मन लगाकर नहीं पढ़ा। 'उसको डाक्टर बने को इच्छा नहीं है। वह अपने शोध की किताबें न पढ़कर दूसरी-दूसरी किताबें पढ़ती रहती है। क्या किया जाये ! देखें, और दो मास देख लेते हैं।' फिर दाम्पत्य जीवन में यौन सम्बन्ध के बारे में विचार करते हैं–स्वेच्छापूर्वक यौन सम्बन्ध न हो तो यह असाधु है। प्रेम न हो तो यौन सम्बन्ध बलात्कार के समान है। जहाँ रति न हो वहाँ पति के पद में किस का मन रमता है ? चिन्ता होती है प्रिया के अध्ययन के सम्बन्ध में। आगे के दो वर्ष उसके अध्ययन में लग जाएँ। तब शायद वह सोचने के योग्य हो जाय। 15 जनवरी : "नवमालिका के बाद और क्या लिखा जाय, इसके बारे में अभी सोचा नहीं है। 'सप्तसिन्धु' तो लिखना है ही। मंगलजी के लिए भी तो कुछ कार्य चाहिए।"

16 जनवरी को उन्होंने 'कनैला की कथा' को समाप्त किया। फिर मेरे निबंध के लिए 'रामचरितमानस' का पारायण किया, नाम-सूची के बनाने के लिए। इसके बाद 'अध्यात्म रामायण' को भी देखा। 'भानुभक्त रामायण' अभी हमारे पास नहीं है, खरीद लेंगे बाद में। ऐसा लगता है कि सम्मेलन मुद्रणालय की गति मन्थर हो गई है। गुजरात से भोगीलाल गाँधी की चिट्ठी आई, लिखा था वह राहुलजी के सभी ग्रंथों को गुजराती में अनुवाद करना चाहते हैं, पर सर्वाधिकार के लिए सिर्फ तीन सौ रुपया देना चाहते हैं जो उनको स्वीकार नहीं है।

"देखें, डाँगे जी क्या उत्तर देते हैं। बिक्री के लिए कागजपत्र सब घर में तैयार रखा है। जब यह मकान बिक जाये तो मेरे मन से एक बड़ा भार उतर जायेगा।" (16 जनवरी)

17 जनवरी को पंडितजी ने 'बुद्धमार्क्सयोर्वादसाम्यं' शीर्षक से संस्कृत में एक लेख लिखा। इसके बाद उन्होंने 'रामचरितमानस' का पारायण किया। नाम-सूची भी तैयार की। इसमें और दो दिन लग जायेंगे। अब इस काम में योग देना न देना कमला के अधीन है। इस प्रकार 16 से 21 जनवरी तक उन्होंने पहले लिखी पाण्डुलिपियों का संशोधन किया, कई पुस्तकों के प्रूफ देखे। जाड़े के कारण काम करने में उनको कष्ट हो रहा था, इसलिए कुछ दिनों के लिए पहाड़ से नीचे उतरने की तैयारी करने लगे। इसी बीच लोक-साहित्य समिति की बैठक के लिए उनको निमंत्रण मिला था, 'हिन्दी विश्वकोश' का पता लगाने के लिए भी उनको वाराणसी जाना ही था। यहाँ से उत्तर प्रदेश सरकार के जिला गजेटियर के लिए आजमगढ़ जिले का दौरा भी करने का काम था। इस प्रकार वह कम से कम एक महीना तो नीचे मैदानी स्थानों में बिता सकते हैं। हम लोग मसूरी में ही रहेंगे, यह तै हो गया। यहाँ से 26 जनवरी को वह यात्रा के लिए प्रस्थान करेंगे। यह पक्का कर लिया।

## आजमगढ़ जिले की यात्रा

**देहरादून :** 26 जनवरी, 1957। चायपान के बाद सुबह सवा 10 बजे कुली से सामान उठवाकर राहुलजी देहरादून के लिए चल पड़े। किंक्रेग में आकर बस पकड़ ली और दिन के 3 बजे देहरादून में शुक्लजी के घर में पहुँच गये। आज गणतंत्रदिवस की छुट्टी थी। डी. ए. वी. कालेज के हॉल में बी. टी. के छात्रों ने एक लघु नाटक प्रस्तुत किया, अभिनय पंडितजी को अकृत्रिम लगा। सायंकाल श्री मेहताजी आ गये और अपने शोधकार्य को दिखलाया। श्री रूपनारायण मिश्र (पं. हरिनारायण मिश्र के पुत्र) ने अपने महानिबंध के लिए संचित सामग्री को पंडितजी को दिखलाया। देहरादून में मसूरी जितनी ठंड न होने से उन्हें अच्छा लग रहा था।

अगले दिन (27 जनवरी) डी. ए. वी. कालेज के प्रोफेसर श्री धर्मेन्द्रनाथजी अपने डाक्टरेट के निबंध के विषय में पंडितजी से मिले। आज का मध्याह्न भोजन मेहताजी के घर में हुआ और कुछ घंटे वहीं बैठकर उन्होंने मेहताजी के शोध-कार्य का निरीक्षण किया। सांध्य चाय पीने के बाद मेहताजी के साथ 'बसंत बहार'

फिल्म देखने गये। पर उनको उतनी पसंद न आई। उस समय उनका मन मसूरी पहुँच गया था, जिससे चित्त विचलित हो गया। ख्याल आ रहा था कि वहाँ जया-जेता, कमला सर्दी से ठिठुर रहे होंगे। इसलिए फिल्म से उनका विनोद नहीं हुआ।

पंडितजी के पास राइफल और रिवाल्वर थी जिसका लाइसेंस उन्हीं के नाम बना था। अब वे अपने और मेरे संयुक्त नाम से लाइसेन्स बनवाना चाहते थे। आज मुझे पत्र भी लिखा। 'समीप रहने पर मन में क्लेश भर जाता है, पर दूर रहने पर कितनी याद आती है। वह भी इसी तरह विकल रहती है। बच्चों की याद आने पर तो और भी दुस्सह हो जाता है। पर सोचता हूँ कभी-कभी अकेले ही इधर-उधर घूम लेना चाहिए, जिससे कि आपसी सम्बन्ध मधुर रह सकेगा।' लेनिनग्राद में रहते भी उन्होंने यही सोचा था। सो यह उनके लिए कोई नयी बात नहीं थी। पर बेचारे बच्चों ने क्या अपराध किया था जो पापा उनके साथ रहने का समय देने में कटौती कर रहे हैं। शायद महापंडितजी को यह बातें नगण्य लगती हों,पर परिवार के लिए यह बहुत बड़ा अन्याय था उनका। निरीह प्राणियों के प्रति उनकी यह भावना कितनी कठोर लगती थी मुझे उन दिनों भी। खैर, हम जितना उनको कठोर समझते थे, उतने कठोर वे नहीं थे। घर से बाहर जाते ही उनको हमारी याद विचलित कर देती थी, इसलिए पत्र लिखने बैठ जाते थे। आज भी उन्होंने मेरे नाम एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था :

देहरादून<br>*28-1-57*

*प्रिये,*

*शनिवार को पत्र नहीं लिखा कि जायेगा नहीं। सोचा लाइसेन्स का काम कराके लिखना ठीक होगा। आज रूपनारायणजी के साथ कचहरी गया। काम हो गया। रिवाल्वर अपने साथ ले जाऊँगा। राइफल यहीं रख दूँगा।*

*कल डाँगेजी के पास Sale deed की नकलें मेहताजी ने टाइप कर दीं। आज भेज दिया। 31 जनवरी को मेहताजी मसूरी जायेंगे। मिठाई के लिए पैसा दे दिया। रिबन-कागज का दे देना।*

*उस दिन टाउन हॉल में गया तो अभी दो ही तीन आदमी आये थे। टेलीफोन से पता लग गया था कि बस 2.30 बजे जाती है। बस 2-4 मिनट बाद चल पड़ी। बस पकड़ी और शुक्लजी के घर पर।*

*नजदीक से ज्यादा दूर रहने पर आकर्षण अधिक होता है। तुम्हारा, जया-जेता का स्मरण आता है, पर चिपके रहने में भी अच्छा नहीं।*

*प्रतिदिन के 24 घंटे में 4 घंटे गिनकर थीसिस के लिए दो, पुस्तकें पढ़ो, नोट ले लो। इसके बिना कोई दूसरा रास्ता नहीं है। यह 'शतं विहाय' कार्य है। दूसरे कामों को इन चार घंटों को छोड़कर ही करो। ऐसा न करने पर मुझे अत्यंत असन्तोष होगा। आशा खो बैठूँगा। मानसिक कार्य हमेशा शारीरिक कार्य से ज्यादा कष्टप्रद मालूम होता है, पर अपने ऊपर जोर देकर करना पड़ता है। पी-एच. डी. के साथ जया, जेता और तुम्हारा भविष्य बँधा हुआ है। मुझे उसके बिना सन्तोष नहीं हो सकता।*

*आजमगढ़ तो तुम्हारे साथ ही जाना चाहता था, पर तुम्हें इस समय पसंद नहीं आया। कितने साल से आशा दिला रहा हूँ, अब जाना ही होगा। लिख भी दिया।*

*3 फरवरी तक चिट्ठी डॉ. बदरीनाथ प्रसाद, लाउडर रोड, इलाहाबाद, 7से 14 फरवरी तक श्री ज्योतिस्वरूपसिंह कर्मयोगी, आजमगढ़ भेजना। खास चिट्ठियों को रजिस्टर्ड भेजना। अपनी पढ़ाई और नोट लेने की प्रगति के बारे में जरूर लिखना, क्योंकि मेरा ध्यान उसी ओर लगा रहेगा। यहाँ सर्दी कम है। दो कम्बल काफी हैं। नीचे और भी कम होगी। वहाँ से चलते वक्त मसहरी नहीं ली। यहाँ तो नहीं, आगे मच्छर होंगे जरूर। रूपनारायणजी से ले लेते हैं।*

*मैं शारीरिक-मानसिक तौर से स्वस्थ हूँ। यहाँ तो कई पी-एच. डी. वालों को परामर्श देता रहा। उसी में समय लग जाता है।*

*कल हावड़ा एक्सप्रेस से शाम को जाऊँगा। परसों दिन-भर लखनऊ में लगाकर 9-10 बजे रात को प्रयाग के लिए रवाना होऊँगा। वहाँ 5-6 दिन रहकर प्रूफ का काम समाप्त करना चाहता हूँ। वहाँ, बनारस, आजमगढ़*

*चिट्ठी जरूर लिखना। बनारस में जया-जेता के 4-5 फोटो भेजना, आजमगढ़ में जरूरत होगी, मेरी भी 3-4।*
*बहुत-बहुत चुम्बन-आलिंगन तुम्हें, जया-जेता को चुम्बन। उन्हें बहुत डाँटना नहीं।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

29 जनवरी को भी पंडितजी देहरादून में रहे। डॉ. सत्यकेतु से भी भेंट हुई। कितने ही शोधार्थियों को वे दिशा निर्देश करते रहे। आज दिन का भोजन रूपनारायण मिश्रजी के यहाँ हुआ। और रात की गाड़ी से लखनऊ के लिए प्रस्थान किया। ट्रेन में सहयात्री एक शिक्षित तरुण कान्स्टेबल तथा उसकी नवपरिणीता पत्नी। ये महाशय पंडितजी से मसूरी से ही परिचित थे। 30 जनवरी को वे सुबह ही लखनऊ पहुँच गये।

**लखनऊ :** लखनऊ के स्टेशन पर भदन्त प्रज्ञानन्दजी मौजूद थे। बौद्ध विहार, रिसालदार पार्क में सामान रखवा कर पंडितजी श्री यशपालजी के घर गये। वहाँ से वे नेशनल हेरल्ड प्रेस गये और 'मध्य एशिया' के प्रूफ के बारे में पूछा। लौटकर प्रज्ञानंदजी के साथ एक-दो जगह गये, फिर बौद्ध विहार में आकर विश्राम किया। रात की गाड़ी से उन्होंने प्रयाग के लिए प्रस्थान किया।

**प्रयाग :** रात की गाड़ी में सोने की जगह मिल गई इसलिए आराम से सोते हुए प्रयाग तक की रेलयात्रा की। 31 जनवरी, 7 बजे सुबह ही वे प्रयाग पहुँचे, और डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के यहाँ ठहरे। लखनऊ में एक दिन के लिए थे तब भी उन्होंने घर में पत्र लिखा, जो इस प्रकार है :

*लखनऊ*
*30-1-57*

*रानी,*

*साढ़े आठ बजे यहाँ पहुँचा। आज ही रात को 11 बजे चलकर कल सबेरे प्रयाग पहुँच जाऊँगा। प्रतिज्ञानामा की कापी लाना भूल गया। लेखक-प्रकाशक के बीच लिखे जानेवाले प्रतिज्ञानामा की कई जिल्दें पड़ी हैं वहाँ। बाहर की मेज के दाहिने ड्रायर में भी हैं। उसमें से फाड़कर तुरंत एक पैसा बैरंग के साथ डाक्टर बदरीनाथ प्रसाद के पास मेरे नाम भेज दो।*

*तुम्हें और बच्चों को बहुत-बहुत प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

सुबह की चाय पीने के बाद राहुलजी अपने प्रकाशक श्रीनिवासजी (किताब महल) के पास गये। कई पुस्तकें मुद्राणालय में थीं, जिससे पंडितजी को तसल्ली हुई थी, किन्तु वहाँ बाहर पता लगा कि 'मेरी जीवन-यात्रा' : 3 और 'हिमाचल प्रदेश' में हाथ भी नहीं लगाया था। भोजनान्तर वे सम्मेलन मुद्रणालय में गये, वहाँ छपाई का काम हो रहा था। वहीं बैठकर कुछ प्रूफ देखते रहे, और शाम को लौटकर डॉ. प्रसाद के घर आ गये।

इस बार लोक साहित्य समिति का अधिवेशन प्रयाग में हो रहा था। 1 फरवरी को राहुलजी सभास्थान में गये डॉ. उदायनारायण तिवारी के साथ। वहाँ नौ सभासद आये थे। बैठक में लोकगीतिसंग्रह के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुए। बुंदेलखण्डी कहावतें तथा चन्द्रसखी की गीत पुस्तकें छप गयी थीं। इस समय देश में चुनाव की गरमा-गरमी थी। पंडितजी ने इस संबंध में अपना विचार प्रकट किया—"अद्यश्वो निर्वाचन कोलाहलं सर्वत्र। धनशक्तिः प्रभुशक्तिश्च कांग्रेस हस्ते, तेन तत्पक्षे एव कोलाहल भूयः श्रूयते। विजयिनी न कामेन्या शक्तिदर्शते। वामपक्षिणो विभक्ताः" (1 फरवरी, प्रयाग)

घर से बाहर जाकर उन्हें घर की इतनी याद आती कि अपनी उद्विग्नता को प्रकट करने के लिए वे नियमित पत्र लिखते। प्रयाग से कल रात को ही 'प्रियायै पत्र प्रहिताम', यह पत्र इस प्रकार है :

*प्रयाग*
*31-1-57*

*प्रिये,*

*आज तड़के यहाँ पहुँच गया। आशा रखता था, तुम्हारी चिट्ठी मिलेगी, पर कोई चिट्ठी नहीं मिली। सम्मेलन की अमृतराय की पुस्तकें मिल गईं। बाकी भी मिल जायेंगी और उन्हें रेल से भेज दूँगा। 6 फरवरी को यहाँ से जाने का निश्चय है। इस बीच में कुछ प्रूफ यहाँ मिल रहे हैं। सम्मेलन मुद्रणालयवाले कहते हैं यदि आजमगढ़ से यहाँ लौट आयें तो 'ऋग्वेदिक आर्य' समाप्त कर देंगे। देखें क्या होता है। वैसा करने पर डर लगता है, फरवरी के अन्त में ही मसूरी लौट सकूँगा।*

*अखबार में पढ़ा, मसूरी में फिर 6 इंच से 12 इंच तक बरफ पड़ी है। सर्दी वढ़ गई होगी। तुम्हें और वच्चों को बहुत तकलीफ होती होगी। खैर, यह जाड़ा तो किसी तरह विताना होगा, आगे फिर जाड़े का वहाँ मुकाबला नहीं करना पड़ेगा।*

*लोक साहित्य समिति की बैठक कल दोपहर दो बजे होगी। और किसी से भेंट नहीं हुई। पोस्टकार्ड में लिख चुका हूँ, प्रतिज्ञानामा की दो प्रतियाँ कापी से काटकर भेज दो। Agreement लिखवा लेना है। उसके लिए उसकी जरूरत पड़ेगी।*

*मेरी तबियत ठीक है। इधर जाड़ा बिल्कुल मामूली है। मच्छर हैं, पर देहरादून से मसहरी साथ लेता आया हूँ। यहाँ तो, खैर, बिस्तरा खोलने की आवश्यकता नहीं।*

*वहाँ का पूरा हाल लिखना। तुम्हारी तबियत कैसी है? जया-जेता कैसे हैं? कुल्हड़ी का रास्ता फिर वन्द हो गया होगा। चीजों के लिए दिक्कत पैदा हो गई होगी।*

*इधर से कोई खास चीज की जरूरत हो, तो लिखना। लौटते समय यहाँ और लखनऊ में ठहरते आना होगा। प्रकाशवतीजी भी तुम्हारे आने के बारे में बहुत पूछती थीं। यहाँ भी हमारे परिचित पूछते हैं। जयगोपाल जी शाम को आ गये। वह भी जया-जेता के बारे में पूछ रहे थे, और तुम्हारी पढ़ाई के बारे में। जेता अभी तो बरफ के कारण बाहर नहीं जा सकता होगा। उसे रोकना, गिरकर फोड़ लेता है।*

*आजकल यहाँ माघमेला है। कल-परसों 12 लाख आदमियों ने स्नान किया।*

*5 फरवरी को बसंतपंचमी निराला जन्मदिन है। उस दिन वहाँ जाना है और श्री गणेश पाण्डे के यहाँ भोजन भी करना है। प्रूफ बहुत देखने पड़ रहे हैं। इस वक्त पौने ग्यारह बजे रात को भी लगा हुआ हूँ।*

*प्यारी को चुम्बन व आलिंगन। जया-जेता को चुम्बन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

2 फरवरी को 2 बजे पंडितजी फिर लोकसमिति की बैठक में गये। आज कार्य समाप्त हो गया। वहाँ ा संगम में मेला देखने गये। सरकार की ओर से विकास-प्रदर्शनी का भी आयोजन था। सहारनपुर मण्डल ी कृषि प्रदर्शनी बहुत सुन्दर थी। उधर से ही डॉ. उदयनारायण तिवारीजी के साथ पंडितजी उनके निवास थान दारागंज आये। दारागंज से उनका पुराना सम्बन्ध रहा। वहाँ से वे साहित्य भवन प्रकाशन देखने गये। सके प्रकाशक भी राहुलजी की पुस्तकें छापने के इच्छुक थे, पर बाद में वहाँ से उनकी कोई पुस्तक नहीं छपी। स प्रकार पंडितजी प्रयाग में यत्र-तत्र घूमते समय भी मसूरी के लोगों की याद कर रहे थे। मेरे पत्र न मिलने ो उनको खेद होना स्वाभाविक ही था। "प्रियायाः पत्रमद्यापि नागतम् किं कारणमिति न जानामि। हिमवातेन ष्टेन् पतिताः उतान्यात् किमपि कारणम्।" (2 फरवरी)

**3 फरवरी 1957 :** आज राहुलजी का प्रयाग संग्रहालय में भी काम था। सुबह प्रूफ-संशोधन का काम समाप्त कर श्रीनिवासजी के गृह में गये। किताब महल के साथ कुछ पुस्तकों के प्रतिज्ञानामा के बारे में बात होनी थी। हर्न-क्लिफ का विक्रयनामा भी तैयार करके मेरे पास हस्ताक्षर के लिए भेजना था। उम्मीद थी कि मार्च मास में निर्वाचन के समाप्त हो जाने के बाद पार्टीवाले हर्न-क्लिफ का पक्का सौदा कर लेंगे। इसलिए

उधर भी उनका ध्यान लगा हुआ था।

आज मध्याह्न भोजन गुलाबकुमारी के निवास में हुआ। देवीजी यहाँ भी पहुँच गई थी। जब वह मसूरी में थी, तब डॉ. सत्यागुप्ता के साथ उसकी मित्रता हो गयी या मित्रता कर ली थी। उसको ज्ञात हो गया था कि 'चाचाजी' का इस बार प्रयाग जाने का कार्यक्रम है। इसलिए पहले ही पहले प्रयाग जाकर सत्या की सहायता से घर किराया करके वहाँ 'चाचाजी' के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। महिलाएँ पुरुषों का दिल या तो अपने सौन्दर्य से जीतती हैं या अपने गुण या बुद्धि से या अपने धन से। यदि इनमें से कोई न हो तो भोजन के माध्यम से पुरुषों का दिल जीतने का प्रयास करती हैं। गुलाबकुमारी के पास बेशुमार धन और जेवरात थे। 'चाचाजी' को इन सबका लोभ नहीं था, न उनकी अब किसी स्त्री से रोमान्स लड़ाने की उम्र थी। वह अपने कर्तव्य में लीन हुए व्यक्ति थे। पर गुलाबकुमारी उनके दर्शनों के लिए हर समय लालायित रहती थी। मसूरी में भी जब कभी 'चाचाजी' अकेले टहलने जाते थे, वह भी पीछे-पीछे उनका अनुसरण करते हुए पहुँच जाती थी। मैंने पहले ही कहा कि राहुलजी को अपनी प्रतिष्ठा का भी तो ख्याल रहता था। मसूरी में घूमने की बात अलग है, वहाँ भी उनका अपना दोष नहीं था। गुलाबकुमारी भोजन के माध्यम से 'चाचाजी' को अपने बस में करना चाहती थी। इसलिए 3 फरवरी को मध्याह्न भोजन के लिए उनको आमंत्रित किया, सत्यागुप्ता भी वहाँ थीं। प्रयाग में तो और भी राहुलजी के कितने सारे मित्र थे, आत्मीय जन थे, उनके सामने इस छिछोरी औरत की इतनी हिम्मत ! विश्वास नहीं होता था कि ऊँचे घराने की औरतें भी इतनी गिरी हुई होती हैं, किसी के सुखी दाम्पत्य जीवन में आग लगाने के लिए ओछी से ओछी हरकतें भी कर सकती हैं। पर गुलाबकुमारी के आचरण को देखकर मुझको विश्वास करना ही पड़ा। परन्तु मैं अपने स्वामी पर श्रद्धा, भक्ति और विश्वास रखती रही, जिसके बारे में मेरे स्वामी भी जानते ही थे। गर्मियों के सीजन में वह रानी साहिबा मसूरी में हैपी वेली में ही आकर रहती थी। जाड़ा शुरू होने पर वह नीचे उतर जाती थी। जागीरदारिन होने के कारण उसके पास एक पुरुष अंगरक्षक और एक नौकर हमेशा रहते थे। 1957 के अन्त में भी पंडितजी किसी काम से मसूरी से बाहर जा रहे थे, शायद प्रयाग ही जा रहे हों। देहरादून में शाम को ट्रेन में चढ़े, उनको पहुँचाने मेहता जी भी आये हुए थे। उन्होंने हरद्वार स्टेशन पहुँचकर देखा कि भतीजी साहिबा भी उसी ट्रेन में सवार हैं। पूछने पर बतलाया—मैं भी आप के साथ प्रयाग जाना चाहती हूँ। उसके साथ अंगरक्षक और नौकर भी थे। पंडितजी को बहुत गुस्सा आया और कह दिया—"आप इस तरह से मेरा पीछा क्यों करती हैं ? क्या मतलब है आपका ? आप अभी यहीं उतर जाइए और अपनी जगह चली जाइए, वर्ना ठीक नहीं होगा।" उसको वहाँ उतरना पड़ा। ये सारी बातें मुझे उसके अंगरक्षक के द्वारा मालूम हुई थीं। पर मैंने गुलाबकुमारी का नाम लेकर पंडितजी के साथ एक बार भी बहस नहीं की क्योंकि मैं जानती थी कि उनका इस में कोई दोष नहीं है। महारानी साहिबा मरते दम तक 'चाचाजी' की प्रतीक्षा करती रही और मसूरी और हरद्वार में ही रही। हमने तो 1957 के अंत में मसूरी की हैपी वेली को छोड़ ही दिया। इस अध्याय के बारे में तो मैं चुप ही रहना चाहती थी, पर उस ओछी औरत ने मेरे और राहुलजी के बीच एक दीवार खड़ी कर देने की बड़ी कोशिश की। मैं उसको कभी माफ नहीं कर सकती। मेरे भाई मंगलजी इसके प्रत्यक्षदर्शी रहे।

डॉ. उदयनारायण तिवारी के साथ प्रयाग संग्रहालय में कितने ही विद्वानों के भाषण हुए जिनमें से एक राहुलजी भी थे। प्रयाग संग्रहालय जाने का मुख्य आकर्षण तो वहाँ के क्यूरेटर और पुरातत्त्व विद्वान श्री कृष्णदत्त वाजपेयी थे, जो पहले मथुरा संग्रहालय के निदेशक थे। श्री सुमन जी, अमृतरायजी तथा अन्य साहित्यिक मित्रों से भी वहाँ पर उनकी भेंट हुई। आज उन्होंने बहुत-सी पुरानी पुस्तकें रेलवे पार्सल द्वारा भेजने का प्रबंध कराया। कार्य-व्यस्त रहने पर भी ध्यान मसूरी की ओर चला ही जाता था। इसलिए लिखा, "द्रष्टव्यं न वः प्रियायाः पत्र या गच्छति न वा।"

4 फरवरी को पंडितजी का व्यस्त कार्यक्रम रहा। सुबह प्रूफ का संशोधन किया, तब सम्मेलन मुद्रणालय गये। उसके बाद भाई श्रीकृष्णदास तथा श्री अमृतराय के घर गये। भोजन करने में उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। श्री अमृतराय उन दिनों 2 मिन्टो रोड में रहते थे और इन्हीं के बगल में श्री कृष्णदासजी। वहाँ

से अमृतरायजी की कार से फिर प्रूफ लेकर सम्मेलन मुद्रणालय गये। 'ऋग्वेदिक आर्य' के सारे प्रूफों का संशोधन हो गया। अब पुस्तक मार्च महीने में सज्जित होकर निकलेगी। पंडितजी संतुष्ट। दोपहर के भोजन के लिए वे डॉ. प्रसाद के यहाँ लौट आते हैं। शाम को 4 बजे कुछ तरुण उनसे मिलने आते हैं। फिर पी. सी. बनर्जी छात्रालय में उन्होंने भाषण दिया। इधर के छात्रों को पुरातत्त्व विषयक भाषण रुचिकर लगता है, इससे उनका ज्ञान बढ़ता है। मालवीय तरुणों की सभा में भी उन्हें बुलाने आये थे, किन्तु समयाभाव के कारण वे नहीं जा सके। आज भी उन्होंने अपनी कमला पर टिप्पणी करते हुए लिखा—"सर्वत्र प्रिया गंतुमर्हति, स्वागतं च स्यात्, स्वयमेव नागन्तुमुत्सहते, दोषश्च मदीयो भवति।" (4 फरवरी) उसी रात को उन्होंने पत्र लिखा :

*प्रयाग,*
*4-2-57*

*प्यारी,*

*कई दिन की प्रतीक्षा के बाद आज तुम्हारी तीन चिट्ठियाँ मिलीं। तुम्हें शिकायत है, उचित ही होगी। मैं तो बहुत—अत्यधिक—इस बार साथ लाना चाहता था। लखनऊ, प्रयाग दोनों जगहों के बहुत से मित्र भी बहुत पूछ रहे थे। फिर मैं 10 फरवरी को आजमगढ़ जा रहा हूँ। 17 तक वहीं घूमना है। वहाँ भी ले जाना चाहता था। मेरी मामी—बेचारी बहुत बूढ़ी हैं, वह बच्चों को देखना चाहती थीं। खैर, तुम नहीं आईं। शायद फरवरी में हमें बनारस आना पड़े, तब ले चलेंगे। और नहीं तो कनैला, पन्दहा तथा कुछ और जगहों में तीन-चार दिन के लिए जुत्शीजी की कार में चले जायेंगे। मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम्हें एक बार जरूर ले चलूँ।*

*तुमको झिझक है। एटीकेट सब मालूम है। मैं कोई ऐसी बात नहीं कह सकता, जो तुम्हें पसन्द न हो।*

*कल डॉ. भगवतशरण उपाध्याय बनारस से दिल्ली जाते यहाँ आये थे। मुझसे बात नहीं हो सकी। शायद दिल्ली में निर्णय के लिए गये हैं।*

*फर्रुखाबाद तो इन तारीखों में नहीं जा सकता। यदि 20 को रक्खेंगे तो देखूँगा।*

*कुछ पुस्तकों का रेलवे पार्सल भिजवाया है। बिल्टी मिल जायेगी। किताब महल भी किताबें भेज देगा। प्रतिज्ञानामा की बात आज तै हो जायेगी।*

*'चन्द्रसिंह गढ़वाली' कई फार्म छप गया। 'माओ' करीब-करीब समाप्त हो गया। 'जिनका मैं कृतज्ञ हूँ' की तीन कापियाँ साथ आजमगढ़ ले जाऊँगा।*

*यहाँ एक मित्र ने एक दिन कहा—कमलाजी को डाक्टर बन जाने पर यहाँ युनिवर्सिटी में लेक्चरर करवा दीजिए। बात तो ठीक है। पर इसका निर्णय तुम्हें करना होगा।*

*फिर से बरफ पड़ने की खबर पढ़कर मुझे बहुत चिन्ता हुई। तुम्हारी चिट्ठी पढ़ सन्तोष हुआ।*

*मकान के Sale deed की कापियाँ दिल्ली और डांगे के पास भेज दी। दिल्ली से चिट्ठी आई कि लिखाते समय कमलाजी और डांगेजी को भी मसूरी में रहना चाहिए। इस समय तो डांगे चुनाव में फँसे हैं। मैंने लिख दिया, कागज तैयार रक्खें। चुनाव समाप्त होते ही मार्च में लिखा-पढ़ी हो जाये। इस प्रकार मार्च तक मसूरी में रहना ही होगा। इसी बीच विश्वकोश का निर्णय हो जाने पर बनारस जाना पड़ेगा। लिखा-पढ़ी तक तुम्हें मसूरी में ही रहना है। सूचना मिलने पर मुझे बनारस जाना होगा।*

*मुझे यह पढ़कर बड़ी टीस लगती है—अपनापन नहीं मिलता। काश, तुम मेरे मन को भीतर से देखतीं। शायद जीते जी तुम्हें समझा नहीं सकूँगा। मैं अपने मित्रों से तुम्हारा परिचय कराना चाहता हूँ। सभी तुम्हारी शिक्षा की प्रगति को देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। पर ?*

*थेसिस के सम्बन्ध में जो भी पुस्तक पढ़ो, लाल पेंसिल से निशान, फिर थेसिस का अध्याय-अनुच्छेद-अंक लगा दो। अच्छा हो यदि उसे कापी पर नोट भी कर लो। मेरी यही लालसा है, तुम अपनी थेसिस अच्छी लिख सको। बराबर साथ रहना न भी हो सके तो भी जिन बातों को बतलाऊँ में उन्हें नोट कर काम करो। बनारस आने पर नौकरानी जरूर रखनी है, जिसमें तुम अधिक समय दे सको।*

*मैं 6 फरवरी को 6 बजे सबेरे वाराणसी के लिए रवाना हो रहा हूँ। पता जुत्शीजी का। तुम्हें बार-बार*

*चुम्बन-आलिंगन, जया-जेता को बहुत-बहुत प्यार।*

*तुम्हारे पास थेसिस सम्बन्धी जो नेपाली पुस्तकें हैं, उनकी सूची जनकलालजी के पास भेज दो।*

*तुम्हारा,*

*राहुल*

5 फरवरी का दिन भी उनका प्रयाग में ही बीता। प्रातः 'ऋग्वेदिक आर्य' के सारे प्रूफ को देखकर समाप्त कर दिया। फिर श्रीनिवास को दे आये। चाय-पान के लिए अमृतरायजी के यहाँ गये। अमृतरायजी के साथ वे श्री निराला जयन्ती में शामिल होने के लिए दारागंज गये। अनेक अतिथियों ने निरालाजी की षष्ठिपूर्ति के लिए शुभकामनाएँ अर्पित कीं। पंडितजी ने भी। मध्याह्न भोजन श्री गणेश पाण्डे के यहाँ, आज बसंत पंचमी के अनुरूप ही वहाँ सात्विक भोजन था। एक बजे लौटकर डेरे पर आये और सभी प्रूफ आदि को देखकर समाप्त कर दिया। कल सूर्योदय से पहले ही स्टेशन पहुँचना है। यहाँ से इतनी सुबह वाहन नहीं मिलता, इसलिए आज रात पंडितजी श्रीनिवासजी के यहाँ रहे। वहाँ प्रतिज्ञानामा के विषय में बातचीत हुई।

**वाराणसी** : 6 फरवरी को सुबह 6-40 पर राहुलजी स्टेशन गये। श्रीनिवासजी सुबह 5 बजे ही स्टेशन के लिए चल पड़े थे। ट्रेन 6-40 पर। साथ में श्री जयगोपाल मिश्र तथा उनके अनुज शिवगोपाल मिश्र भी झूसी तक आये। 11 बजे वाराणसी पहुँच गये। स्टेशन पर श्री मुनीश्वरनाथ जुत्शी अपने पौत्र के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। कार से उनके घर आ गये। श्री जुत्शीजी के इंजीनियर पुत्र श्री योगीनाथ जुत्शी आजकल वाराणसी में थे। अतः उनकी ही कोठी में पंडितजी को रहना पड़ा। कोठी वाराणसी छावनी के पास थी और गाँव भी यहाँ से नजदीक ही था। रात 9-35 बजे भी वहाँ विवाह के मंगलगान की ध्वनि राहुलजी को सुनाई दे रही थी। आज ही गोधूलि के समय वे सारनाथ में अपने भतीजे उदयजी और उनके परिवार से मिलने गये। 8 तारीख को फिर आना था यहाँ, इसलिए आज जल्दी ही डेरे पर लौट आये। सारा दिन घूमने-घामने में ही बीता, इसलिए उस दिन और कोई काम नहीं हो सका।

अगले दिन 7 फरवरी को श्री योगीनाथ जुत्शी, उनकी माता श्रीमती मोहिनी जुत्शी को लेकर पंडितजी हिन्दू विश्वविद्यालय गये। वहाँ वे डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के गृह में गये। उनके साथ रूस-जापान-चीन आदि देशों के छात्रों से समालाप हुआ। चीनी चाय भी उनको पीने को मिली। फिर दशाश्वमेध बाजार से फल आदि खरीदकर हिन्दी प्रचारक-चौखम्बा आदि प्रकाशन संस्थानों में गये और कुछ पुस्तकें खरीदीं। 'आज' प्रेस में गये। वहाँ उनकी 'कुमाऊँ' पुस्तक छप रही थी।

जुत्शी परिवार के बारे में पंडितजी लिखते हैं—"श्री योगीनाथ जुत्शी अपने पिता की तरह ही मधुर स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। रात को परिवार के सभी सदस्य बैठकर राजनीति, साहित्य आदि की चर्चा करते रहे। बीच-बीच में वे सब कमला का भी स्मरण करते थे। उस रात जुत्शी परिवार के साथ उन्होंने 'एक झलक' नामक फिल्म देखी। उनको लगा 'नासुन्दरम्।'"

8 फरवरी को सबेरे ही योगीजी तथा उनकी माता के साथ पंडितजी सारनाथ में संग्रहालय देखने गये। संग्रहालय में गुप्तकालीन मूर्तियाँ उन्हें बहुत अच्छी लगीं। अन्य वस्तुएँ सभी सुन्दर थीं और सुन्दर रूप में प्रदर्शित की गई थीं। सारनाथ में ही वे अपने भतीजे उदयजी के परिवार से मिले। उनके बच्चों के लिए वे फल और मिठाइयाँ ले गये थे। वहाँ से वे मूलगंधकुटी विहार में प्रतिमागृह में गये। लौटे तीन बजे। फिर योगीजी के बच्चों के साथ मोटर नौका पर सवार हो गंगा की धारा की ओर सैर करने गये। "सौम्या गंगाया धारा।" इस प्रकार आज छः घंटा घूमने-घामने में ही व्यतीत हुए। शाम 5 बजे सेन्ट्रल होटल में चाय-पान का आयोजन था। वहाँ से योगीजी की कार में शीरीं सिनेमागृह में 'बेगुनाह' फिल्म देखने गये। उनको यह फिल्म बिल्कुल ही अच्छी नहीं लगी। रात को 10 बजे डेरे पर लौट आये।

दूसरे दिन (9 फरवरी) प्रातः वे विश्वविद्यालय गये। वहाँ लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में पढ़े पंडितजी के छात्र विक्तर बालिन महाशय से उनको मिलना था। बालिन यहाँ हिन्दी पढ़ने और भाषा का अभ्यास करने आये हुए थे। दिन का भोजन उन्होंने भी जुत्शीजी के गृह में किया। मोहिनीदेवीजी ने दोस्तोएवस्की की पुस्तक

'अपराध और दण्ड' का हिन्दी अनुवाद किया था, उसमें उन्होंने बालिन से रूसी नामों का संशोधन करवाया। नगरपालिका कन्या विद्यालय की निरीक्षिका श्रीमती पाण्डे भी सायं चाय-पान में यहीं रहीं।

पंडितजी के रिश्ते के और दौलताबाद के श्री विश्वनाथ पाण्डे से वहीं भेंट हुई। वह रामराज्य परिषद की ओर से विधानसभा के लिए चुनाव लड़ रहे थे। कई हजार रुपये खर्च कर चुके थे और उस समय उन्हें अपनी विजय पर पूरा-पूरा भरोसा था। पर बाद में वह चुनाव हार गये। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री जगन्नाथ उपाध्याय भी उनसे मिलने आये। फिर उदयनारायण पाण्डे के साथ भिक्षु धर्मरक्षित जी डेरे पर आये। बातचीत हुई। शयन के समय श्री श्यामनारायण पाण्डे आये। वह अंदमन द्वीप में शिक्षण कार्य के बारे में देर तक पूछते रहे। उसी दिन पंडितजी को अपनी 'प्रिया' का पत्र मिला, मसूरी में सब 'शिवं' है। घर में साथ रहते मतभेद और टकराव होने पर भी बाहर जाने पर एक दूसरे की याद में हम बेचैन ही रहते थे। मेरे समय पर पत्र न लिखने की उन्हें शिकायत रहती थी। जब यात्रा में मेरे पत्र उन्हें मिलते, इनको बड़ी प्रसन्नता और शांति मिलती थी। वे भी नियमित रूप से पत्र लिखा करते थे। आज भी रात को उन्होंने एक पत्र मेरे नाम लिखा, जो इस प्रकार है :

*वाराणसी*
*9-2-57*

*प्राणसमे,*

*तुम्हारा 6 का पत्र आज मिला। मैं तो बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। कल सवा सात वजे सवेरे की बस द्वारा आजमगढ़ जा रहा हूँ। जैसा कि लिख चुका हूँ, 17 तक वहीं रहकर जिले में घूमना है।*

*आज आर्यभूषण प्रेस के गोडसे जी आये। कह रहे थे, कोई नेपाली कृति दिलवाइए। हम अपने पैसे से छापकर बिक्री कर देंगे। रायल्टी देंगे। तुम्हारी कहानियों के नेपाली अनुवाद को वह छापने के लिए तैयार हैं। मैंने कहा—अपनी पत्नी से कहूँगा। अच्छा है, यदि तुम्हारी कहानियाँ नेपाली में छप जायें। असली नामों को वदलकर अनुवाद कर डालो। यदि और काम हो जाये तो मेरे आने से पहिले एक-दो कहानियों को वोलकर मंगल से टाइप करवा डालो। हिन्दी के संग्रह को तो 16 कहानियाँ हो जाने के बाद छपवाना चाहिए। पर नेपाली का प्रकाशक को देना चाहिए। वह 60-70 पृष्ठ की ही पुस्तक छापना चाहते हैं।*

*जया-जेता का फोटो मिला। मैं आजमगढ़ मैं जाकर धुलवा लूँगा। अभी वारहवाँ फिल्म वाकी है।*

*भानुभक्त सम्बन्धी पुस्तकों की तीन सूचियाँ टाइप करवा लो। एक-एक ज्ञवालीजी और जनकलालजी को भेजो। उनके अतिरिक्त पुस्तकें भेजने के लिए कहो, विशेषकर भानुभक्त से पहिले की पुस्तकों को भेजने के लिए लिखना।*

*आजमगढ़ कल ही जा सकती थीं। क्या करूँ ? एक वार जरूर ले जाऊँगा। अभी बनारस के काम का कोई निश्चय नहीं हुआ है। नहीं तो यहाँ आते ही ले चलता।*

*तुम्हारे प्रयाग में काम करने के लिए अध्यापक मित्रों ने कहा। मैं भी उसे सुलभ समझता हूँ, यदि तुम ने Ph.D. कर लिया।*

*सारनाथ हो आया। उदयनारायण और परिवार से मिल आया। उदय, भिक्षु धर्मरक्षित और पंडित जगन्नाथ के साथ मिले। सबसे पीछे श्री श्यामनारायण पाण्डे आये।*

*यदि लखनऊ से सीधे आना पड़ा, अर्थात् फर्रुखाबाद जाना नहीं पड़ा तो वहाँ से अचार लेता आऊँगा। नहीं तो फर्रुखाबाद से लेता आऊँगा।*

*भोजन और स्वास्थ्य की ओर ध्यान रखना। उन्निद्रता अच्छी नहीं। काम में वाधा हो जायेगी।*

*मैं रोज इंजेक्शन ले रहा हूँ। यहाँ से इन्सोलिन की एक शीशी ले ली है। सीधे न आने से यहाँ से कोई चीज नहीं ला सकता। आशा है, चौखम्वा (पोस्ट द्वारा) और हिन्दी प्रचारक (रेल द्वारा) की पुस्तकें मेरे पहुँचने से पहिले ही वहाँ पहुँच जायेंगी। तुम्हें अधिक समय अपनी थेसिस सम्बन्धी पुस्तकों पर ही देना चाहिए। नोट लेते जाना।*

*प्रिये, दूर से लिखने की बहुत-सी बातें मन में आती हैं, पर संकोच होता है। आशा है, तुम चित्त और शरीर दोनों से प्रसन्न हो। तुम्हें बार-बार चुम्बन-आलिंगन और जया-जेता को प्यार।*

*जुत्शी दम्पती को तुम्हारा नमस्ते कह दिया। वह तुम्हें वहुत देखना चाहते हैं। मेरा तो बहुत ध्यान दिया। उनके पुत्र कार में बरावर घुमाने में लगे रहे।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**आजमगढ़ :** 10 फरवरी को सुबह ही श्री योगीनाथ जुत्शी के साथ बस अड्डे पर गये। साढ़े 7 बजे वह रवाना हुए। शिवपुर–फिडेर-फूलपुर के मार्ग से होते हुए 10 बजे एक कस्वे में पहुँचकर आधा घंटा विश्राम किया। यहाँ बस-यातायात सुलभ हो गई है। यहाँ से प्रस्थान करके गारा बादशाहपुर, यवनपुर मंडल आ पहुँचा। वहाँ से आजमगढ़ जनपद में प्रवेश किया। फिर ठेकमा–गम्भीरपुर–मुहम्मदपुर होते रानी की सराय पहुँचे। वहाँ सौ से अधिक पुरुष मामा के लड़के कैलाश और दीपचन्द भी राहुलजी के स्वागतार्थ मौजूद थे। पल्हवी स्टेशन पर और अधिक लोग थे। साढ़े 12 दिन में वह आजमगढ़ नगर पहुँची। वहाँ श्री ज्योतिस्वरूपसिंह मिल गये। उनके साथ कार में ज्योतिस्वरूपसिंह के घर गये। मिलनेवाले लोगों का ताँता लग गया। आज ही पंडितजी ने शिबली कालेज तथा हरिऔध कला भवन को देख लिया। अब कल से आजमगढ़ जिले का दौरा करने का कार्यक्रम पक्का हो गया।

इस यात्रा का वर्णन करते हुए उन्होंने पत्र लिखा, जो यहाँ प्रस्तुत है :

*आजमगढ़*
*11-2-57*

*प्राणसमे,*

*9 फरवरी की चिट्ठी आज मिली। परसों एक चिट्ठी लिख चुका हूँ। कल दोपहर को यहाँ पहुँचा। रानी की सराय में बंधुओं ने स्वागत किया और यहाँ भी। श्री ज्योतिस्वरूपसिंह के यहाँ ठहरा हूँ। कल तो यहाँ ग्यारह बजे रात तक मिलना-जुलना रहा। आज से पुरातत्त्वीय स्थानों की यात्रा शुरू हुई। 50 मील से ऊपर का चक्कर लगाकर 4-5 प्राचीन स्थानों को जीप पर से देखा। धूल से भर गया। यह यात्रा तुम्हारे वस की नहीं थी। वैसे पन्दहा-कनैला जाने में तुम्हें कोई दिक्कत नहीं थी। वार-बार ख्याल आता है, तुमने इन्कार करके अच्छा नहीं किया। कल भी चार-पाँच मील का चक्कर काटते हुए अपराह्न में पन्दहा होते यहाँ आना है। मामी (कैलाश की माँ) को जव जेता के होने का पता लगा, तो सोहर गवाया था। देखने की उनकी वड़ी इच्छा थी। मैं कह रहा हूँ, शायद मार्च में आये।*

*16 फरवरी तक ऐसी ही दौड़-धूप जीप पर होती रहेगी। परसों कनैला की ओर जाना है। पुरातात्विक महत्त्व के स्थानों को भी देख रहा हूँ। 17 तारीख को आजमगढ़ में ही रहना है। 18 को शाहगंज में। वहीं हावड़ा-देहरा एक्सप्रेस पकड़ लूँगा, यदि फर्रुखाबाद से निमंत्रण इस बीच में नहीं आ गया। देहरा एक्सप्रेस पकड़कर 19 को देहरा पहुँच उस दिन वहीं रह 20 को दोपहर तक मसूरी आ जाऊँगा। यदि फर्रुखाबाद जाना ही हुआ, जिसकी कम सम्भावना है, तो 23-24 तक आ सकूँगा। वहाँ जाने के लिए निश्चय करने पर एक्सप्रेस से सूचना दूँगा।*

*किताब महल और हंस प्रकाशन की पुस्तकें अलग तुम्हारे पास पहुँचेंगी। हिन्दी प्रचारक और चौखम्बा की पुस्तकें भी जायेंगी। ज्ञानमण्डल के बारे में नहीं कह सकता। द्विवेदीजी नहीं मिले। 'कुमाऊँ' के छपने की अब बहुत आशा है।*

*अभी इधर गर्मी का नाम नहीं है। आज ऊनी बगलबंदी और अंडी की जाकेट पहनकर निकला था, सर्दी लग रही थी। कल से कुर्ता-जाकेट पहनूँगा।*

*दिन-भर तो काम में मन लगा रहता है, रात को तुम्हारी और जया-जेता की याद इतनी तीव्र हो जाती है कि जल्दी से जल्दी वहाँ पहुँचने का मन करता है।*

*लखनऊ उतरने की कम सम्भावना है। शायद मिठाई यहाँ से लाना पड़े। कुछ देहरा में भी ले लूँगा। यदि*

*एक्सप्रेस भेज दोगी, तो इस चिट्ठी के बाद की भेजी तुम्हारी चिट्ठी मिल जायेगी।*

*आशा है, मेरी प्यारी मन लगाकर पढ़ रही होगी। मेरे आने पर तुम अपनी कहानियों का नेपाली में डिक्टेशन करा देना। आर्यभूषण प्रेस (वाराणसी) वाले छापने के लिए तैयार हैं। अच्छा हो, तुम्हारी पुस्तक पहिले नेपाली में ही छपे।*

*मैं अच्छी तरह हूँ। दिनचर्या ठीक से हो रही है। इस भूमि की अति प्राचीन पुरातत्त्व सामग्री को देखकर बड़ी प्रसन्नता होती है। कुछ लेख लिखूँगा वहाँ आने पर। यहाँ के इष्ट-मित्रों का स्नेह देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। तुम्हारे आने पर भी यहाँ वैसा ही स्नेह मिलता। यदि मार्च में बनारस आना हुआ--जिसकी बहुत अधिक आशा नहीं है--तो जुत्शी साहेब की कार लेकर 5 दिन के लिए यहाँ आ जायेंगे।*

*प्रिया को चुम्बन और आलिंगन और जया-जेता को बहुत-बहुत प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

12 फरवरी को पंडितजी आजमगढ़ जिले के विभिन्न स्थानों का दौरा करते हुए पन्दहा पहुँच गये। वहाँ उनकी मामी, जो अतिवृद्धा हो चुकी थीं, उनकी राह देख रही थीं। मामी के पुत्र कैलाश के द्वार पर पंडितजी के दर्शन के लिए सारा गाँव उमड़ आया था। पंडितजी के नाना पाठकजी के भाई लौहर पाठक से भी उनकी भेंट हुई। वह भी बहुत वृद्ध हो चुके थे। अपने ननिहाल के इन बुजुर्गों के स्नेह को देखकर पंडितजी भावविह्वल हो गये। पन्दहा में एकत्रित भीड़ के सामने उनको भाषण भी देना पड़ा। सारी यात्रा वे जीप के द्वारा कर रहे थे। रात सात बजे के बाद आजमगढ़ नगर आये और डेरे पर सो गये।

13 को पंडितजी सुबह नौ बजे निकलते हैं। साथ में फूलचन्द्र त्रिपाठी भी हैं। घूमते हुए, परिदर्शन करते हुए वे अपने पितृग्राम कनैला पहुँचते हैं। वहाँ भी बड़ी संख्या में लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पंडितजी के परिवार के रहने के घर के बाहर चँवा टँगा है। लोग वहाँ एकत्रित हैं। पंडितजी उनके सामने 'कृषि में प्रगति किस तरह हो' इस विषय पर भाषण देते हैं। भोजन कनैला के ही निवासी जायसवाल के यहाँ करते हैं। कनैला से विदा होने से पहले वे अपनी प्रथम परिणीता को देखने जाते हैं, जो इस समय पैर टूटने के कारण बिस्तर पर पड़ी हुई है। दो दिन के बाद अपनी यात्रा का विवरण देते हुए वे पत्र लिखते हैं, जो इस प्रकार है :

आजमगढ़
15-2-57

*प्राणप्रिये,*

*दोनों पत्र मिले। एक में अन्यों के मिले। मैं भी उत्सुक हूँ शीघ्र लौटने के लिए। इसीलिए फर्रुखाबाद नहीं जा सकता। वैसे भी हरदेवी मलकानीजी को 20-21 के लिए लिख दिया था। जान पड़ता है पत्र उन्हें नहीं मिला। आजकल चुनाव की धूम है। ऐसे समय जाना ठीक नहीं है। 11 से आज 15 फरवरी तक रोज आठ-नौ बजे यहाँ से निकलता हूँ और रात को आठ बजे (आज 10 बजे) लौटता हूँ। सारे कपड़ों में धूल भर रही है। पुरातत्वीय स्थानों की जाँच-पड़ताल करते, तथा अरक्षित सामग्री को साथ भी लाता हूँ। यह यहाँ के हरिऔध कलाभवन में रखी जायेगी। पन्दहा की यात्रा का उल्लेख पहिले पत्र में कर चुका हूँ। कल कनैला हो आया। दो घंटा रहा। बहू बेचारी खटिया पर पड़ी है। पैर ठीक नहीं हुआ, फोड़ा अच्छा हो गया। फोटो लिया है। आया या नहीं, नहीं कह सकता। तुम्हें देखने की सभी इच्छा रखते हैं।*

*सबेरे सात बजे से रात के ग्यारह बजे तक मुझे फुर्सत नहीं। सभी मित्र चाहते हैं एक-दो दिन और रखने को, पर समय कहाँ से लाऊँ। आज पौने दो सौ मील का चक्कर रहा। लौटते समय दोहरी के पास गाड़ी बिगड़ गई। डर लगा, शायद रास्ते में ही बैठ जाना पड़े। कल भी ऐसी ही नौबत आई थी। खैर। अब कल की यात्रा-प्रोग्राम रह गया है जो पूरा हो ही जायेगा। कल साहित्यिक गोष्ठी है। परसों दो-तीन प्रोग्राम पूरा करके 18 को वही गाड़ी पकड़ूँगा जिससे देहरादून एक्सप्रेस मिल जाये और शाम को लखनऊ पहुँच जाऊँ। लखनऊ में एक दिन*

*जरूर उतरना होगा, शिवपूजन वाबू के पत्र को पाकर यह निश्चय करना पड़ा, नहीं तो मैं सीधे देहरा आने का निश्चय कर चुका था।*

*दिन-भर धूल फाँकनी पड़ रही है। आँखों में पड़ जाती है। स्वास्थ्य ठीक है। एकाध दिन इन्सोलिन भी लेना भूल जाता हूँ। तुम साथ रहतीं तो निश्चिंत रहता।*

*जया-जेता वरावर याद आते हैं। आज फिल्म धुलाकर आये तो देखा उनके फोटो आये हैं, प्रिंट नहीं किया, वैसे अच्छे हैं।*

*अभी यहाँ गर्मी नहीं है। वहाँ पहुँचने पर मौसम अनुकूल हो जायेगा। आशा है तुमने पढ़ने में प्रगति अवश्य की होगी।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

अगला पत्र आजमगढ़ से ही :

*16-2-57*

*प्रिये,*

*आज जिले का टूर समाप्त कर दिया। 18 को सबेरे चलकर देहरादून एक्सप्रेस से 19 को सबेरे देहरा पहुँचूँगा। 21 को आ जाऊँगा।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

17 फरवरी को पंडितजी का कार्यक्रम इस प्रकार रहा—आज वार्तालाप में ही अधिक समय गया। प्रातः हरिऔध कलाभवन में गजेटियर समिति की बैठक हुई जिसमें उनको बोलना पड़ा। संग्रहीत जो मूर्तियाँ थीं वे सब इस कलाभवन को सौंप दीं। भोजनान्तर वे शिबली संस्थान में गये। यहाँ इस्लामिक और संस्कृत के अनुसन्धान का सम्यक प्रबन्ध है। हिन्दू-मुस्लिम मैत्री के विषय में यहाँ प्रयत्न हो रहे हैं, जो अच्छा है। सायं चायपान का प्रबन्ध ख्रीष्ट छात्रावास में श्री चन्द्रशेखर त्रिपाठी द्वारा आयोजित था। त्रिपाठीजी भी कलाभवन की बैठक में बोले थे। रात्रि भोजन में उन्होंने अपने गृह में मछली पकवाई थी जो पंडितजी को भी सुस्वादु लगी। रात के 11 बजे तक पन्दहा के बान्धव वहाँ बैठे थे। वे लोग बहुत चाहते थे कि कमला भी उनके गृह में आवें। पर अभी तो तुरन्त आने की सम्भावना नहीं है। उन्होंने कैलाश के पुत्र दीपचन्द्र को संयुक्त रूप से कृषि करने को सलाह दी।

**आजमगढ़ से प्रस्थान :** आज यहाँ से प्रस्थान करने का समय आ गया। 18 फरवरी को सुबह 9 बजे आजमगढ़ से पंडितजी चल पड़े। 5-10 मिनट बाद रानी की सराय स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ उन्हें विदा देने के लिए बहुत-से बन्धु-बान्धव उपस्थित थे। चलते समय पंडितजी ने उन लोगों को सामूहिक कृषि करने की सलाह दी। 'देखें क्या होता है।' कनैला के लोगों ने तो स्वीकार कर लिया है। रेल की वातायन से आजमगढ़ की कुंडधानी का दृश्य दिखाई दे रहा था। इस वर्ष वहाँ जो फसल उगी हुई थी, वह यहाँ के लोगों के लिए पर्याप्त नहीं होगी, क्योंकि यहाँ भी हर वर्ष जनसंख्या बढ़ती जा रही है। इस तरह जीवन निर्वाह किस प्रकार होगा ? पंडितजी सोचते हैं। 11 बजे वे शाहगंज पहुँचे। यहाँ की छोटी लाइन रेल अब बड़ी लाइन में बदल चुकी है। यहाँ उनको ट्रेन बदलनी थी। द्वितीय श्रेणी में अनेक भद्र सहयात्री मिले, जिनमें एक आंग्ल दम्पत्ती तथा कुछ मुस्लिम लोग भी थे। माता आनन्दमयी की एक शिष्या भी चढ़ीं। रात को आराम से सोने को मिला। खान महाशय विनोदी और उदार थे, पर वह अनावश्यक और मिथ्या बातें कर रहे थे।

**देहरादून :** 19 फरवरी को वे देहरादून पहुँच गये और शुक्लजी के गृह में चले आये। यहाँ पिछली बार राईफल रख गये थे। उसे निकालकर अपने सामने रखा, नहीं तो मसूरी ले जाना भूल जायेंगे। कई दिनों के बाद आज इन्सोलिन की सुई ली। तबियत भी ठीक नहीं, कुछ पेट में विकार है। मध्याह्न में कुछ समय सोये। आजमगढ़ की इस यात्रा से शरीर बहुत थक गया है। शाम को दयानन्द कालेज की हिन्दी समिति के वार्षिक

अधिवेशन में गये। उनको भी भाषण देना पड़ा। डाक्टर सत्यकेतुजी अध्यक्षता कर रहे थे। रात को मेहताजी की थीसिस का काम देखा। उनके काम से पंडितजी कुछ असंतुष्ट थे। आंग्ल-भाषा भी शुद्ध नहीं है। कैसे शोध का काम पूरा करें, पंडितजी को चिन्ता होती है। आज उनका मन बच्चों को देखने के लिए चंचल हो उठा, पर अभी तो मसूरी पहुँचने में देर है। क्या पता वहाँ प्रिया उनको देखकर कहीं विरक्त न हो जाये, हालाँकि वह उस पर अनुरक्त हैं। पंडितजी, यहीं तो आप समझने में भूल करते थे, काश कि आपने कमला के हृदय की भावनाओं को ठीक से समझने की कोशिश की होती ?

20 फरवरी को भी पंडितजी देहरादून में ही रहे। दिन में पल्टन बाजार में घूमे। कुछ छात्र उनसे डेरे पर मिलने आये, उसके साथ दर्शन विषय पर संलाप हुआ। फिर प्रो. नित्यानन्द शर्मा (हिन्दी विभाग, दयानन्द कालेज) के यहाँ चाय-पान हुआ। रात्रि भोजन प्रो. पी. एन. मुकर्जी (राजनीति विभाग, दयानन्द कालेज) के यहाँ हुआ। मधुर मत्स्यपाक से पंडितजी का मन मुदित हो गया। देहरादून में उनका दिवस 'कथमपित' बीता, परन्तु रात को शीघ्र ही मन मसूरी की ओर चला गया। आज कार्य भी कुछ नहीं किया। ऐसा हो भी क्यों न, जबकि देहरादून से रात को मसूरी की दीपमाला दिखाई देती है। पर हम लोग तो हैपी वेली के घोर जंगल में थे, हमें देहरादून की दीपमाला कहाँ दिखाई पड़नेवाली ? तो भी जब हमें उनके प्रोग्राम का पता चला कि अमुक तिथि को वे देहरा आ जायेंगे, तो हम एक-एक मिनट की गिनती करते उनके गृह आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। मैं ही नहीं, जया-जेता भी अपने पापा के इन्तजार में बैठे हैं। हमने 20 को दिन-भर उनकी प्रतीक्षा की, वे नहीं आये। 21 फरवरी को 12 बजे दिन में वे 'हर्न-क्लिफ' में आये। जया फाटक के पास खड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी, और जेता ज्वर से सुप्त था। जब पता चला कि देहरा में वे दो दिन रहे तो हमें बहुत बुरा लगा, क्योंकि देहरा तो साल में कई-कई बार आते-जाते रहते हैं। लम्बी यात्रा करके सीधे घर आ गये होते तो हमें तो सुख मिलता ही, उन्हें भी आराम मिलता। वस्तुतः उनके स्वास्थ्य के लिए ही मैं चिन्तित रहा करती थी, पर उनको जैसे स्वास्थ्य की पर्वाह ही नहीं। वे मेरे मनोभावों को नहीं समझते थे, उल्टा मेरी उलाहना से वे दुःखी हुए और उसी रात दैनन्दिनी में लिखा—"विचित्रा प्रियायाः प्रकृतिः। मन्ये दहं कदाऽपि संतोषकारीण भविष्यामि। किमर्थं दिनद्वयं देहरायां स्थित इत्यपि असंतोषकारणम्।" खैर, यह 'क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा' वाली बात तो हर गृहस्थ के घर में होती रहती है। हमारे घर में भी यदाकदा ऐसी बात हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। यह कहूँ कि पंडित महाशय महापंडित, महाविद्वान् तथा महान् लेखक होने के साथ थोड़े मनोवैज्ञानिक भी रहे होते, तो हमारे घर में शायद खटपट की नौबत ही न आती, क्योंकि वहाँ किसको फुर्सत थी झगड़ने की ? वे अपने काम में व्यस्त, मैं अपनी लिखाई-पढ़ाई और गृहस्थी में व्यस्त। न उनकी लड़ने की आदत, न मेरी। लेकिन जब कभी भी खटपट की नौबत आई, सदा मधुरेण समाप्त हुआ।

**मसूरी :** 22 फरवरी को पंडितजी पत्रों के उत्तर लिखने में व्यस्त रहे। फिर 'दोहाकोश' के प्रूफ का संशोधन किया और आज की ही डाक से भेज दिया। देखा कि उनकी प्रिया ने अभी संस्कृत पढ़ने में मन नहीं लगाया है, तो फिर क्षुब्ध। इधर जेता को कल से ही ज्वर आ रहा है, उसे डाक्टर के पास दिखाने ले जाना होगा। स्वयं पंडितजी को भी आज अधिक ठंड लग रही है, पर संतोष इसी बात का है कि यह आखिरी सर्दी है। इस वर्ष पंडितजी काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के बृहद इतिहास के 16वें खण्ड का सम्पादन करनेवाले थे। इसमें हिन्दी का लोकसाहित्य विषय समाहित है। हिन्दी की 20 बोलियों के लोकसाहित्य को एकत्रित करने का काम बड़ी जिम्मेवारी का था। 23 फरवरी को डॉ. गोविन्द चातक द्वारा लिखित गढ़वाली भाषा विषयक निबंध आ गया। इस निबंध से पंडितजी संतुष्ट हुए। संसद के चुनाव का समय है, मसूरी में भी महाकोलाहल है। आज मेरे द्वारा लिखित कहानी 'माँ की ममता' को उन्होंने पढ़ा। 'दो और भी कहानियाँ लिखी हैं, सुन्दर हैं, पर अध्ययन के प्रति अभी भी आलस्य है।'

24 फरवरी को मसूरी में काफी ठंड थी। पंडितजी को तकलीफ हो रही थी, पर वे अपना काम करते ही रहे। आज उन्होंने 'रामचरितमानस' तथा 'अध्यात्म रामायण' का पारायण किया और उनमें आये नामों की अनुक्रमणिका भी तैयार कर ली। उनके दो शोधार्थी देहरादून से आज आनेवाले थे, पर कोई नहीं आया। पंडितजी

को कोफ्त हो रही थी। आज ही संसद सदस्यों का निर्वाचन सारे देश में हो रहा था, पंडितजी इसके परिणाम जानने के लिए उत्सुक।

25 फरवरी को पंडितजी की खुराक आ गयी, याने 'ऋग्वेदिक आर्य', 'दोहाकोश', 'कनैला की कथा' आदि के ढेर सारे प्रूफ आ गये। आज ही सबको शोधन करके लौटती डाक से भेज भी दिया। काश, उनकी तरह ही घर के लोगों का भी काम में त्वरित गति से मन लगता तो कितना अच्छा होता। पंडितजी कितना कहते रहते हैं, "पर कमला को अपने शोधनिबंध की सामग्री तैयार करने के प्रति कोई उत्साह ही नहीं।" उसको देखकर पंडितजी को चिन्ता होती है। "कमला के डाक्टरेट के साथ दोनों बच्चों का भविष्य भी जुड़ा हुआ है। किन्तु कमला को इसकी पर्वाह ही नहीं। आदमी के लिए उसकी बुद्धि ही पथ-प्रदर्शिका होती है। बाद में कमला बहुत पछतायेगी। अब उसको कुछ कहना बेकार है।"

पंडितजी इसी तरह मन में कुढ़ा करते, और अपना काम भी करते जाते। बाहर से निमंत्रण आ जाये तो खुश। एक पाँव तो घर के बाहर ही रहता घुमक्कड़ स्वामी का। अब वे रोज-रोज मेरी शिकायतें ही लिखा करते। पुरुष चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा हो, बुद्धिमान हो, विद्वान हो, किंतु उसका स्वभाव तो सामान्य पुरुष की तरह ही रहता है। और दम्पत्तियों के बीच में भी झगड़े हुआ करते थे, झगड़े होते हैं, ज्यादा क्रोध आ जाये तो पति अपनी पत्नी पर दो-चार थप्पड़ भी जड़ देता है। परन्तु हमारे यहाँ का झगड़ा इतनी निम्न कोटि का नहीं होता था। वह तो जोर से डाँटते तक नहीं थे, हाथ चलाना तो दूर की बात। कभी बच्चों तक पर हाथ नहीं उठाया। लेकिन इससे भी जोर की मार उनकी कलम करती थी। डायरी में शिकायत लिख दी, या अपने एक खास मित्र के पास कमला की शिकायत करके चिट्ठी लिख दी। पंडितजी की यही एक आदत मुझे अच्छी नहीं लगती थी। पति-पत्नी का झगड़ा बहुत लम्बा नहीं रहता। कल दोनों में ही मेल-मिलाप हो जाता है, क्योंकि दोनों गृहस्थी-रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। झगड़े की बात भूल भी जाते हैं शीघ्र ही। पर उन्होंने अपने खास मित्र के पास जो चिट्ठी लिखी, वह तो डोक्युमेन्ट बन गया। मुझमें स्वाभिमान की भावना रही। मैं नहीं पसन्द करती थी कि वे मेरी आलोचना करते हुए किसी पराये आदमी को लिखें। वह मुझे थप्पड़ भी लगा सकते हैं, डाँट भी सकते हैं, यह उनका अधिकार है, पर अकेले में यह होना चाहिए न कि संन्यासी मित्रों को पत्र लिखकर मुझे नीचा दिखायें। इस बात में मैंने कभी भी पंडितजी के साथ कम्प्रोमाइज़ नहीं किया। जहाँ मेरी गलती नहीं है, वहाँ मैं क्यों किसी के सामने झुकूँ। इस समय तो राहुलजी को मित्र या मित्राएँ ज्यादा अच्छी लगती थीं, कमला के प्रति तो हरदम क्रोध ही क्रोध आता रहता। कोई बात नहीं। अभी तो गाड़ी को आगे बढ़ाते जाना है, पंडितजी, देखें आपका शुभचिन्तक कौन होगा, आपके मित्र या आपकी पत्नी ? आपकी पत्नी किसी के सामने गिड़गिड़ानेवाली नहीं है। यह शिक्षा तो आप ही ने उसे दी है। अब क्यों उसमें आपको दोष ही दोष नजर आते हैं। उनके इस चिड़चिड़ेपन के पीछे कोई भारी आर्थिक कारण भी नहीं था। जैसे-तैसे गुजारा हो ही रहा था। बस, वे चाहते थे कि कोई बड़ी कार्ययोजना अपने हाथ में ले लें, ऐसा काम करें कि जिससे सबका कल्याण हो। मेरे कहने का मतलब यह है कि पंडितजी अभी भी हिन्दी-विश्वकोश के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी कार्य के अनुसार वे अपने परिवार के भविष्य के लिए सोच रहे थे कि क्या करना चाहिए, पर जब इस योजना को अधर में लटकते हुए देखा, तो उनको लगने लगा कि शायद देश को उनकी जरूरत नहीं है। यह सब सोच-सोचकर वे अपना दिमाग खराब करते और गुस्सा और व्यथा की प्रतिक्रिया मुझ पर बरपा करते। इस समय उन पर गुरु-रूप हावी हो गया है, इसलिए शिष्य उनके मुताबिक ढंग से काम नहीं कर रहे हैं तो वे असंतुष्ट हो जाते थे। उनके शिष्यों में एक मैं भी थी। अस्तु।

28 फरवरी से उन्होंने सद्य समापित आजमगढ़ की पुरातात्विक यात्रा को लिखाना आरम्भ किया। कल ही मेरी एक कहानी 'शराबी' एक पत्रिका में छपकर आ गई। 'काश, कमला इसी तरह लिखती-पढ़ती तो कितना अच्छा होता !' उनका दाँत दर्द कर रहा था। मसूरी में कोई अच्छा दन्त-चिकित्सक भी नहीं। शायद देहरादून ही जाना पड़ेगा।

आज पहली मार्च। सुबह के लेखन-कार्य से निबटकर वे जया और मुझे लेकर शहर जाते हैं। वहाँ कबाड़ी

से दो पुस्तकें खरीद लेते हैं, लंढौर तक घूमते हुए चले जाते हैं। लौटते रास्ते में कुर्ता-पाजामे का कपड़ा खरीदकर दर्जी को सिलने दे देते हैं। 2 मार्च को 'गढ़वाली लोक साहित्य' और 'बघेली लोक साहित्य' दो निबंध आ गये जिनका उन्होंने संशोधन कर दिया। दाँत की पीड़ा ने परेशान कर दिया। शीघ्र ही देहरा जाकर डाक्टर को दिखाना होगा। यह निश्चय कर लिया उन्होंने। 3 और 4 मार्च को 'घुमक्कड़ स्वामी' पुस्तक का संशोधन करते रहे। घर के भीतर ही बैठे रहना भी ठीक नहीं, किन्तु बाहर जाने के लिए शीत को देखना पड़ता है। मार्च के महीने में भी इतनी ठंड है यहाँ। प्रिया का संस्कृत पढ़ने में अत्यल्प उत्साह देख रहे हैं।"यदि नहीं पढ़ना है तो ठीक है, वह कलिम्पोंग में जाकर रहें।" यह उनको निश्चित दिखाई दे रहा है। पर क्या उन्होंने प्रिया से कभी पूछा भी ? क्या पुरुष अपनी पत्नी को दो जून का भोजन खिलाने के कारण उसे अपनी गुलाम समझे और जब मर्जी उसे कहीं लाकर पटक दे ? क्या नारी का कोई अस्तित्व नहीं है ? नारी की वकालत करनेवाले राहुलजी कभी-कभी अपने घर की नारी पर ज्यादती और अन्याय भी करते थे, यह बात अब कहने में मुझे कोई अफसोस नहीं होता। सत्य सत्य ही है, किसी आदमी की प्रसिद्धि और बड़प्पन के पीछे उसकी नारी का त्याग और सहयोग भी तो होता है। पुरुष इस बात को क्यों भूल जाते हैं ? इस मामले में हमारे घर के पुरुष भी अन्य पुरुषों से ही लगते हैं, किन्तु उनके सारे जीवन को ध्यान से पढ़ें या सुनें अथवा विचार करें तो हम पायेंगे, इस असन्तोष के पीछे वे अपने लोगों का हित ही चाहते थे। मुझ पर बार-बार रुष्ट होने के पीछे भी यही बात थी। उनको मालूम था कि वे बहुत वर्ष तक शायद नहीं जी पायेंगे। इसलिए पत्नी और बच्चों के लिए कुछ करके जायें। इसीलिए वे उतावले थे, पर मैं नहीं समझ पाती थी। इसीलिए यह रूखापन।

5 मार्च को वे लिखते हैं–"प्रकृति में वैषम्य हो तो मानव के सुसम्बन्ध में बाधक होता है। कमला जानती है कि शोध निबन्ध के लिए अध्यात्म रामायण को पढ़ना जरूरी है और रामायण को पढ़ने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है, फिर भी वह इस पर ध्यान नहीं देती। मालूम नहीं क्या होगा।" कुढ़ते हुए भी उनका लेखन कार्य तो चल ही रहा था।

7 मार्च को दाँत का दर्द बढ़ गया, इसलिए जया और मेरे साथ शहर गये। पर यहाँ दाँत का डाक्टर ही नहीं है। अब शीघ्र ही देहरादून जाना होगा। लौटते समय डॉ. सत्यकेतुजी के यहाँ जाते हैं, चाय वहीं पी लेते हैं। रात को 7 बजे अपने गृह में लौट आये। 8 मार्च को वे 'दोहाकोश' और दूसरी किताबों के प्रूफ देखते रहे। 'गढ़वाली लोक साहित्य' का भी संशोधन कर देते हैं। नेशनल हेरल्ड प्रेसवाले कितने निर्लज्ज। वचन देकर भी पूरा नहीं किया। इस प्रेस में पंडितजी की पुस्तक 'मध्य एशिया का इतिहास' छप रहा है। 9 और 10 मार्च को उन्होंने आजमगढ़ की यात्रा के अंश को टाइप करवाया। 'कमला को आचार्य निबंध के प्रति कोई उत्साह नहीं,' इसलिए आज भी वे रुष्ट। 10 को सीतापुर से कुछ युवा घुमक्कड़ उनसे मिलने आये। 11 मार्च को 'मेरी जीवन-यात्रा' के प्रूफ देखते रहे। 12 को मतदान करने बाजार की तरफ गये। आज भी कमला के बारे में चिन्तन करते हुए लिखा–"वह डाक्टरेट नहीं करेगी तो कलिम्पोंग जाकर रहेगी। पर; उसको आर्थिक चिन्ता तो होगी ही, पर इसके लिए क्या करना चाहिए।" उनको लगता है कि शायद मैं उनके साथ रहने से खुश नहीं हूँ। हाय रे, पंडितजी, यह आप क्या सोचते थे। काश, कमला के हृदय के बारे में भी आकलन करते तो आपको यह अपनी भूल लगती। 18 मार्च को 'प्रमाणवार्तिकम्' के कुछ अंश का अनुवाद करके उन्होंने डॉ. रोयरिक के पास कलिम्पोंग भेज दिया। आज श्री भोलानाथ शर्मा का लिखा हुआ 'रुहेली लोक साहित्य' निबंध भी आ गया। अगले दिन 'मध्य एशिया' के प्रूफ न आने पर फिर उनको झुँझलाहट होती है।

16 मार्च को वह अपनी संस्कृत पुस्तक 'महापरिनिर्वाणसुतं' का संशोधन करते हैं। 'सूत्रद्वयं' पुस्तक अब प्रकाशित हो रही है। इसके बाद 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' (दर्शन ग्रंथ) को पुस्तकाकार छपाने का प्रबन्ध करना होगा। 16 मार्च को होली, आसपास के लोगों में कुछ पकवान बाँट दिये। रेडियो खराब हो जाने से समाचार सुनने को भी नहीं मिला। 17 को रेडियो बनवाने के लिए लाइब्रेरी बाजार तक गये। मसूरी में अभी उतनी भीड़ नहीं थी। लिखने का काम तो नियम के अनुसार चलता ही रहा। 18 मार्च को भी संशोधन का काम करते रहते हैं। 19 मार्च को निश्चय करते हैं कि वे देहरादून में होनेवाले कवि-सम्मेलन में आमंत्रित होकर जायेंगे।

शोधकर्ता (देहरादूनवाले) क्यों नहीं आ रहे हैं, इससे पीछे भी पंडितजी विचलित। 21 मार्च को घर में ही बैठकर संस्कृत पुस्तकों के प्रूफ देखते रहे।

**देहरादून** : चाय-पान के बाद सुबह 8 बजे घर से प्रस्थान किया। किंक्रेग से बस लेकर साढ़े 11 बजे से पहले ही वे देहरादून पहुँच गये। शुक्लजी के घर गये। उसके बाद प्रदर्शनीस्थल में जाते हैं, जहाँ कवि-सम्मेलन होनेवाला था। बहुत स्थानों से कवि लोग आये हुए हैं। 23 को भी देहरादून रुके। सायंकाल में वे पल्टन बाजार की ओर घूमने गये।

**मसूरी को** : 24 मार्च को स्टेशन वेगन के द्वारा चल पड़े और साढ़े 10 बजे अपने गृह में पहुँच गये। वाराणसी विश्वविद्यालय से निमंत्रण आया है, पर अभी वहाँ जाना नहीं हो सकता।

25 मार्च को 'कनैला की कथा' का संशोधन समाप्त हो गया। आज उसका प्राक्कथन भी लिखा। घर में रसोइया तकलीफ दे रहा था। पुराना नौकर घर गया था, उसकी जगह पर उसका भाई विश्वेश्वर काम कर रहा था, पर बड़ा बदतमीज था। मैंने उसको खाना पकाने से मना कर दिया। 26 मार्च को 'धम्मपद' के द्वितीय संस्करण का प्रूफ आ गया। 'कनैला की कथा' का पूरा संशोधन करके प्राक्कथन के साथ आज भेज दिया। हिन्दू विश्वविद्यालय को लिख दिया–'नाहं आगन्तुं शक्नोमि।' ऐसी गर्मी में यात्रा करना सुखद नहीं है। बस मथुरा तक जाना ही पर्याप्त होगा। केरल में वामपंथी सरकार बनी है। श्री नम्बूदिरीपाद वहाँ के मुख्यमंत्री बन गये, इससे पंडितजी प्रसन्न हुए।

27 मार्च को भी पंडितजी अपना संशोधन कार्य करते रहे। लोक साहित्य समिति के अधिवेशन में फिर उनको आमंत्रित किया गया था, पर शायद अगले महीने के लिए। अब गर्मी में उनको नीचे उतरने में कठिनाई होती है, इसलिए न जाने का निश्चय किया। घर का रसोइया दो दिन के लिए छुट्टी पर गया, इसलिए आज चूल्हे-चौके का सारा काम मुझे करना पड़ा, जो राहुलजी को अच्छा नहीं लगता था। पर मजबूरी भी तो थी। उनके पथ्य तथा बच्चों के लिए भी भोजन का प्रबन्ध करना ही पड़ता था। ऐसे मौके पर उनका वह कोमल हृदय मेरे प्रति अत्यन्त सहानुभूतिशील हो जाता था। परन्तु मेरे लिए घर का काम करने में भी कोई कठिनाई नहीं थी।

29 मार्च को वह शान्त रहे, क्योंकि आज उनको एक बहुत अच्छी पुस्तक पढ़ने का अवसर मिला। अलीगढ़ युनिवर्सिटी के प्रो. सैयद अतहर अब्बास रिजवी द्वारा लिखित कृति 'आदि तुर्ककालीन भारत' को पढ़ते रहे। पुस्तक उन्हें अच्छी लगी। पुस्तक के बारे में अपना विचार यों अंकित किया–"सुन्दर अनुवाद हुआ है (अंग्रेजी या फारसी से) समसामयिकता है इतिहास के नामों में, पर भूगोल पक्ष निर्बल मालूम होता है, इसीलिए पुस्तक में भूचित्र नहीं दिये गये हैं।" आज उनके पेट में कुछ विकार रहा, इसलिए ईसबगोल का सेवन किया और भोजन पर भी नियंत्रण रखा।

29 मार्च को भी 'आदि तुर्ककालीन भारत' को पढ़ते रहे। पुस्तक बहुत समीचीन है, संग्रह करने योग्य भी है। भाषा के सम्बन्ध में उनका विचार यों प्रकट हुआ–"आज तक आंग्लभाषाविद् पंडित लोग देशी भाषा में लिखित पुस्तकों की उपेक्षा करते हैं।" नलिनाक्ष दत्त की 'उत्तरप्रदेश में बौद्ध धर्म' नामक पुस्तक के बारे में पता चलता है। लोक साहित्य का काम भी पंडितजी की देख-रेख में चल रहा है। आज 'कुमाऊँनी लोक साहित्य' का निबंध श्री उपरेती लिखित आ गया। फिर उन्होंने 4 अप्रैल को यहाँ से दिल्ली होते मथुरा जाने का प्रोग्राम बनाया। 30 मार्च को उपरेती लिखित 'कुमाऊँनी लोक साहित्य' का संशोधन करते रहे, मंगलजी ने इसको टाइप किया। लोक साहित्य संकलन के लिए अभी बहुत काम करना है, जिससे कि यह खण्ड सुन्दर बन जाये। किताब महल से भेजी हुई किताबें मिल गईं, किन्नर देश का नया संस्करण निकला है। मार्च का अन्त आ रहा है, फिर भी यहाँ सर्दी खतम नहीं हो रही है। 31 मार्च को वे 'आजमगढ़ की पुरातात्विक यात्रा' को समाप्त करने में लगे। आज उसका टंकन भी हो गया, किन्तु यह पुस्तकाकार मुद्रित होगी, इसमें पंडितजी को संदेह है। जब 'लोक साहित्य' पर काम हो रहा है तो मुझसे नेपाली लोक साहित्य पर निबंध लिखवायेंगे, उन्होंने यह तय किया।

**1 अप्रैल, 1957 :** अप्रैल का महीना पंडितजी का जन्म-महीना। लगता था कि वे इस महीने में शीतल ही रहेंगे। अबाध गति से काम चल रहा था। भोजन,पथ्य आदि का मैं ध्यान रख रही थी। वर्षों से मैं ही उनको इन्सुलिन के इंजेक्शन देती आ रही थी। एक तरह से मैं उनके लिए नर्स का भी काम कर रही थी। पहले-पहले पंडितजी मेरी इस सेवा की कदर करते थे, तारीफ करते थे। परन्तु अब मुझ में दोष दिखाई देने लगे। जो भी हो, मैं चाहती थी कि वे प्रसन्न रहें। इसलिए उनके काम में बिल्कुल बाधा नहीं देती थी। जब वे मंगलजी से लिखा रहे होते, तो मैं उनके सामने भी नहीं पड़ती थी। सिर्फ 10 बजे के समय उनके सामने चुपचाप कॉफी का प्याला रखने जाती थी। हर सुबह मैं यही प्रार्थना करती थी–'हे विधाता ! राहुलजी का आज का दिन शांतिपूर्वक बीत जाये।' पहली अप्रैल को वे ठीक रहे। आजमगढ़वाले विस्तृत निबंध के साथ आजमगढ़ का मानचित्र भी संलग्न करके उन्होंने छपने के लिए सम्मेलन पत्रिका (प्रयाग) में भेज दिया। लेख उस पत्रिका के दो अंकों में छपा, पर मानचित्र नहीं दिया।

2 अप्रैल को भी प्रूफ संशोधन तथा टंकन का काम चलता रहा। धूपनाथजी, हबीब और महादेवजी को पत्र लिखे। हमारे घर के आसपास डाकघर के न होने से बड़ी दिक्कत होती है। ऊपर चार्लविल होटल के फाटक के पास एक उपडाकखाना था, पर वहाँ तार या रजिस्ट्री की कोई व्यवस्था नहीं थी और पंडितजी को डाकखाने से बहुत सम्बन्ध रखना पड़ता था। 3 अप्रैल को 'मध्य एशिया' के प्रूफ न आने से वे क्षुब्ध थे। इसके प्रकाशन में भी सन्देह करने लगे। लेकिन प्रकाशन तो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से ही हो रहा था। सभी लोग उनकी तरह जल्दबाज तो नहीं होते। मथुरा भी जाना है। आज रामचरितमानस का भी पारायण हुआ। "यदि कमला की माताजी यहाँ आतीं तो कितना अच्छा होता। उनके आने से कमला को अध्ययन के लिए समय तो मिलता।" उनको इधर की भी बराबर चिन्ता रहती।

## मथुरा के लिए प्रस्थान

**4 अप्रैल : देहरा-दिल्ली मार्ग :** तीन बजे से पहले ही पंडितजी घर से चले। साढ़े तीन बजे किंक्रेग बस अड्डे से बस में सवार हो पाँच बजे के बाद देहरा रेलवे स्टेशन पहुँचे। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद श्री सदानन्द मेहता आ गये। 29 रुपया 25 पैसे लगे मथुरा तक के टिकट के लिए। रात की ट्रेन से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। 5 अप्रैल को सबेरे ही दिल्ली पहुँचे। पहले पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस के आफिस में गये। पता चला कि केरल में वामपंथी मंत्रिमण्डल बना है। पंडितजी को वहाँ झण्डोत्तोलन के लिए जाने का आग्रह किया गया, पर उनको इसमें कोई उत्साह नहीं था। वहाँ से सच्चिदानन्द शर्मा को लेकर फ़ैज़ बाजार गये। जानकी भाभी घर पर ही थीं। उनकी बहन का पुत्र भी अब अपने पिता के पास चला गया है, इसलिए एक दत्तक पुत्र को लायी हैं। पति-पत्नी में बहुत झगड़ा चल रहा है, इसलिए उस घर का माहौल ही बदल गया है। अतः अबकी बार पंडितजी वहाँ ठहरना नहीं चाहते थे। वहाँ से वे अपने मित्र पं. चन्द्रगुप्त विद्यालंकारजी से मिले। फिर माचवेजी के घर पहुँचे, पर उस समय माचवे दिल्ली से बाहर थे, श्रीमती माचवे से भेंट हुई।

**मथुरा (6 अप्रैल) :** कल शाम को 6 बजे उन्होंने पंजाब मेल पकड़ ली। गाड़ी 7 बजे के बाद चली। रात दस बजे के बाद गाड़ी मथुरा पहुँची। श्री प्रभुदयाल मित्तल के गृह में ठहरे। दो बजे के बाद मथुरा संग्रहालय गये, जहाँ लोक साहित्य समिति की बैठक हो रही थी। संग्रहालय में महत्वपूर्ण पुस्तकों का भी संग्रह था। आज की बैठक में लोक गीतों के संग्रह पर ज्यादा बातचीत हुई। बैठक के बाद पंडितजी अन्य मित्रों के साथ मथुरा संग्रहालय का परिदर्शन करने लगे। वहाँ हूण राजा कदफिस, कनिष्क आदि की मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

7 अप्रैल को भी पंडितजी मथुरा में ही रहे। चाय-पान के बाद 9 बजे जीप लेकर पर्यटन के लिए निकले। 24 मील पर स्थिति गोबर्धन पर्वत को पहले देखने गये। वहाँ की परिक्रमा की। वहाँ से विकासपुरी होते 'पुछरी' ग्राम गये, वहाँ पर भगवान बुद्ध की एक प्राचीन मूर्ति भी है। यहाँ पर एक लोकोक्ति प्रचलित है–धन-धन रे पूछरी को लौटा। अन्न न खाये न पानी पिये। कोसो पड़ो सिलौटा। गोबर्धन के आसपास वनरोपण हुआ है। वहाँ से 12 मील की दूरी पर बरसाने गाँव को भी देखने गये। यह गाँव पर्वत के पार्श्व में है। राधा की

महिमा गायी जाती है यहाँ। यहाँ पर विवाह-विच्छेद का आचरण भी होता है। सांस्कृतिक प्रदर्शन में स्त्रियों का भी गायन होता है। होली का कीर्तन भी प्रदर्शित होता है। नागरिक लोग भीड़ की भीड़ इन प्रदर्शनों को देखने आते हैं। वल्लभी सम्प्रदाय में और भी अनेक उत्सव होते रहते हैं। कृष्ण-राधा का मंदिर भी सुन्दर है, इसको भी वे देखने गये। गोबर्धन पर्वत का दर्शन करके वे मथुरा लौट आये। भोजनान्तर फिर समिति की बैठक में गये। व्रज साहित्य मण्डल की ओर से राहुलजी का अभिनन्दन किया गया। उसके बाद भी मित्तलजी के गृह में गोष्ठी का आयोजन था। महिला कला केन्द्र की ओर से संगीत तथा नृत्य का आयोजन था। उसमें भाग लेनेवाली तरुणियाँ भी थीं। उसके बाद पार्वती परिव्राजक का सितारवादन हुआ, जो सुन्दर था।

## देहरादून के लिए प्रस्थान

**8 अप्रैल :** प्रातः सवा चार बजे ही पंडितजी श्री प्रभुदयाल मित्तल के साथ जीप में स्टेशन गये। दिल्ली जानेवाली ट्रेन में जगह मिल गई। सवा आठ बजे दिल्ली पहुँचकर वे फ़ैज़ बाजार में स्वामी हरिशरणानन्दजी के मकान पर गये। भाई साहब (स्वामी जी) आये हुए थे। उनसे भेंट हो गई। पति-पत्नी के बीच के विवाद को सुनना उनको अच्छा नहीं लगा। स्वामीजी ने कहा कि अपनी पत्नी के साथ रहना अब कठिन है, समझौता होना ही कठिन। पंडितजी ने स्वामीजी को यही परामर्श दिया कि आप अपनी पत्नी के आभूषण आदि लौटा दीजिए। अपने हाथ से लगाये कोमल बिरवे को यों सूखने मत दीजिए। आप अपने हृदय को कोमल बनायें।

आज रात की ही ट्रेन से वे देहरादून चल पड़े और सुबह देहरादून उतरकर मेहताजी के गृह में गये। आज उनके गृह में ही रात्रिवास किया और मेहताजी की थीसिस सम्बन्धी सामग्री को देखते रहे। मेहताजी की निबंधगति अति असंतोषकारी है, यह उनकी टिप्पणी थी।

9 अप्रैल को सुबह चाय-पान के बाद पंडितजी बस स्टैंड पर आये। कुछ शाक-भाजी खरीदकर सात बजे की बस से मसूरी की ओर चले। किंक्रेग में बस से उतरकर पैदल ही घर को आ रहे थे कि रास्ते में मंगलजी के साथ जया-जेता को पापा के स्वागत में आते हुए उन्होंने देख लिया। सभी एक साथ साढ़े 11 बजे हर्न-क्लिफ पहुँच गये। आज उनका 65वाँ वर्ष पूरा हो गया। जन्मदिन मनाने के लिए पहले ही निषेध कर दिया था। प्रूफ-संशोधन का काम करते रहे। दो पुस्तकों 'ऋग्वेदिक आर्य' तथा 'दोहाकोश' के सारे प्रूफ आ गये थे। घर आते ही उनका मन फिर उद्विग्न होने लगा। क्या करें। मन इस तरह उद्विग्न रहेगा तो जीवन लम्बा नहीं हो सकता। 'कमला जिस तरह से पढ़ाई की अवहेलना कर रही है,' उससे उनका मन क्षुब्ध रहता है। कुछ अनिष्ट होने की आशंका लगती है। "महाअनिष्ट हो जाये तो उसकी आत्मजय होगी, शायद वह ऐसा सोचती है। भविष्य के लिए कुछ करना चाहिए। पर इसके लिए भी वह लापर्वाह है। बच्चों के लिए तो हमें कुछ करना ही चाहिये। इस पर भी वह ध्यान नहीं देती।" डायरी क्या हुई,मेरे बारे में शिकायतों की पिटारी हो गयी। और कोई बात लिखने की न हुई तो चलो कमला के बारे में अंटसंट लिखें। उनके इस व्यवहार से मैं भी कम क्षुब्ध नहीं रहती थी, पर मैं अपने मन की उद्विग्नता उनके सामने प्रदर्शित नहीं करती थी। पंडितजी के बारे में तो कभी किसी से, यहाँ तक कि बच्चों से भी कोई शिकायत नहीं की। सारी क्षुब्धता मैं अपने मन के भीतर रखकर सहन करती आ रही थी। मुझे पंडितजी जैसे महाविद्वान से ऐसे सामान्य आचरण की आशा कतई नहीं थी। दोष वे सिर्फ मुझमें ही देखते थे, पर उनमें भी तो कितने दोष होंगे, इसके बारे में उन्होंने कभी नहीं सोचा। बस कमला के दोष पर रामायण लिखकर वह अपने संन्यासी मित्र के पास भेजने में अपने पाण्डित्य को सफल समझते थे। काश, उस समय मुझमें बोलने की शक्ति होती। या मेरे घर के लोग धन की दृष्टि से मजबूत होते। असहाय नारी पर इस प्रकार मानसिक अत्याचार करना पंडितजी जैसे व्यक्ति को शोभा नहीं देता, यह बात उस समय भी मैं बोल देती थी। आखिर आदमी के सहने की शक्ति की भी सीमा होती है। हर समय दोष ही दोष, हर समय बुराई ही बुराई। किन्तु मैं उनसे लड़ाई नहीं लड़ती थी, चुपचाप आँसू बहाकर ही रह जाती थी। स्त्री के आँसुओं का मूल्य यदि वे समझते तो अपनी प्रथम परिणीता की जिन्दगी को आँसुओं के सागर में न डुबो देते। फिर भी नारी के लिए दुख के समय आँसू ही एकमात्र सहारा है। यह

मैं उस समय भी (जब मेरी आयु 26-27 वर्ष थी) अनुभव करती थी। राहुलजी के मित्रों को राहुलजी के नारी के प्रति ऐसे व्यवहार के प्रति नाज था।

**10 अप्रैल :** आज 'दोहाकोश' और 'ऋग्वेदिक आर्य' के संशोधन का काम समाप्त हो गया। 'प्रमाणवार्तिकम्' के अनुवाद का कुछ काम किया। घर की बिक्री के सम्बन्ध में डांगे का पत्र अभी तक नहीं आया। इस घर की बिक्री करके दूसरे स्थान में जाना भी तो दुष्कर है। 11 अप्रैल को डॉ. रोयरिक के 'प्रमाणवार्तिकम्' के अनुवाद को देखते रहे। 'अकबर' और 'मध्य एशिया' के प्रूफ आ गये। नवनालन्दामहाविहार परिषद् से निमंत्रण आया है। वहाँ अवश्य जायेंगे। मई मास के लिए निमंत्रण भेजने के लिए लिख दिया। जाना ही होगा। पर यात्रा में इन्सुलिन का क्या होगा। सुई लेना भी तो आवश्यक है। पटना से लौटते समय दो दिन के लिए प्रयाग में रुकेंगे। 16 मई को प्रयाग में होंगे। दो दिन वहाँ रहकर 19 तारीख को प्रस्थान करके 20 तारीख को यहाँ आ जायेंगे। बेचारे बच्चे—पापा के जीवित रहते भी पापा के साथ से इस तरह वंचित होते रहे।

**12 अप्रैल (पटना मार्ग) :** "आज विशेष काम नहीं किया। 'ऋग्वेदिक आर्य' के कुछ अंश को देखा। आज कमला ने संस्कृत पाठमाला की चतुर्थ पुस्तक को समाप्त किया। ओमप्रकाश शर्मा ने भृगुसंहिता के बारे में कुछ लिखकर पूछा था। उत्तर लिख दिया। दो बजे कमला और जया के साथ घर से चले। लायब्रेरी बाजार में एक अच्छी टैक्सी मिल गई।" मैं और जया उनको विदा देने आई थीं। वहाँ से वे किंक्रेग से बस के द्वारा 5 बजे तक देहरादून स्टेशन पहुँच गये। स्टेशन पर श्री मेहताजी आ गये। हरद्वार में वैशाख संक्रान्ति का मेला लगा हुआ था। इसलिए लोगों का ताँता लगा था। ट्रेन में दूसरी श्रेणी में स्थान ही नहीं मिला। रास्ते में बेचारे वे मेरे ही बारे में सोचते जा रहे थे। "उसने संस्कृत पाठमाला की चौथी पुस्तक को पढ़ डाला है। पाँचवीं पुस्तक को समाप्त कर अध्यात्म रामायण पढ़ना आरंभ करना होगा।"

13 अप्रैल के सुबह आठ बजे लखनऊ पहुँच गये। यहाँ उन्होंने चार घंटे बिताये। नेशनल हेरल्ड मुद्रणालय में जाकर 'मध्य एशिया' के प्रूफ ले लिये। रास्ते में देखते हुए जायेंगे। दोपहर बाद पाटलिपुत्र के लिए ट्रेन मिली। मुगलसराय तक रास्ता प्रतिक्षण सुन्दर लग रहा था। गाँव के खेत उनको सुन्दर लग रहे थे। प्रूफ-संशोधन का काम भी साथ-साथ चल रहा था। उनके कम्पार्टमेंट में देहरादून का एक सहयात्री था। और लोगों में अधिकतर नेपाली यात्री थे। एक डब्बे में रेल के कर्मचारी थे, जो मुजफ्फरपुर जा रहे थे। पंडितजी ने बहुत समय आज अध्ययन में नहीं लगाया, क्योंकि उनको उत्तरप्रदेश-बिहार के गाँव-खेत आदि के मनोरम दृश्यों को भी देखते हुए जाना था। बीच में हेरोदोतस लिखित 'द हिस्ट्री' के खण्ड को भी पढ़ने लगे। इसमें बुद्ध-निर्वाण का ठीक समय लिखा गया है। ट्रेन के सहयात्रियों के साथ भी बातचीत चली, सभी से परिचय हुआ। नेपाली तरुण लोग भी राहुलजी के नाम से परिचित थे। चार बजे सायंकाल मुगलसराय॰आ पहुँचा। पंडितजी यहीं उतर गये। आठ बजे अमृतसर मेल आ गया, उससे वे पाटलिपुत्र गये। डॉ. देवेश (डॉ. बदरीनारायण के सुपुत्र) अपनी कार लेकर स्टेशन पर मौजूद थे। उनके साथ पंडितजी पटना के अबुलआस लेन में आ गये। रात को बिजली के पंखे के नीचे आराम से सो गये।

**पाटलिपुत्र (पटना) में :** 14 अप्रैल को सुबह सबसे पहला काम उन्होंने किया मुझे पत्र लिखकर। बाहर जाने पर अपनी कमला और बच्चे उन्हें बहुत याद आते थे, इसलिए वे पत्र लिख देते थे। आज के संक्षिप्त पत्र में उन्होंने लिखा :

पटना<br>14-4-57

*प्रिये,*

*कल रात साढ़े ग्यारह बजे यहाँ पहुँचा। पहिले प्लेटफार्म पर किसी को न देखकर सोचा, चिट्ठी यहाँ नहीं पहुँची। पर स्टेशन से बाहर निकले तो डाक्टर देवेश कार लिये वहाँ पहुँचे थे। आज साढ़े सात बजे यह पत्र लिख रहा हूँ। अभी किसी से मिला नहीं। 4 बजे बैठक में जाना है। कल भी यहाँ रहकर परसों सबेरे आठ बजे यहाँ से प्रयाग रवाना होना है। 17-18 वहाँ रहकर 19 को चल 20 को जरूर 10 वजे किताबघर पहुँच जाऊँगा। सब*

*अच्छा है। तुम्हें और वच्चों को चुम्वन और प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

14 अप्रैल को चाय-पान के बाद सुबह ही वे लोगों से मिलने-जुलने निकल पड़े। पहले प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा के घर गये, किन्तु वे सपत्नीक मुजफ्फरपुर चले गये थे, अब वे शीघ्र ही रूस जानेवाले थे। उनके गृह में अब यतीन्द्रनाथ जी रहते थे। श्री वीरेन्द्रकुमार सिंह (श्री धूपनाथ जी के भतीजे) भी इस समय पटना में नहीं थे। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में जाकर आचार्य शिवपूजनसहाय से संलाप किया। उनसे पता लगा कि राहुलजी की पुस्तक 'दक्षिणी हिन्दी काव्यधारा' अभी मुद्रणालय में ही है। यहाँ शिवपूजन बाबू के परिवार में पंडितजी को सभी सुखी मिले। उसी दिन सायं चार बजे वे राज्यपाल भवन में गये। नालन्दा महाविहार सम्बन्धी बैठक यहीं हो रही थी। राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का भाषण हुआ। भाषण का मुख्य विषय था–'संस्कृत की संवर्धना।' तब मिथिला और नालन्दा प्रतिष्ठान के सभी सदस्यों की सम्मिलनी होगी। पंडितजी ने कहा–"चीन तिब्बत देश में अनेक भारतीय ग्रंथ मूल रूप में और अनुवाद के रूप में भी हैं। उन सबके सम्पादन करने की व्यवस्था की अपेक्षा है।" श्री आर. आर. दिवाकर ने इस बारे में राजभवन अर्थात् सरकार को लिखने के लिए कहा। मसूरी में परिचित श्री कुमठेकरजी भी यहीं थे ज़ो श्री दिवाकर के साथ रहते थे। इस समय कुमठेकर रुग्ण थे। इन्होंने श्री शिवराम कारन्त के प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर राहुलजी के कहने पर किया है। उपन्यास के हिन्दी रूपान्तर का नाम है 'धरती की ओर' जिसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने प्रकाशित किया था। अपने पुराने मित्र भिक्षु जगदीश काश्यप जी के साथ यहाँ पंडितजी की लम्बी बातचीत हुई। काश्यपजी चाहते थे, पंडितजी 'पालि त्रिपिटक' के अनुवाद कार्य में प्रधान सम्पादक बन जायँ, परन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उनके पास समय की कमी थी।

15 अप्रैल का दिन भी उनका पाटलिपुत्र में ही गुजरा। गर्मी से कुछ-कुछ परेशानी हो रही थी। आज भी नालन्दा परिषद् की बैठक थी। इसलिए पूर्वाह्न में पंडितजी श्री अनूपलाल मण्डल के साथ पटना संग्रहालय देखने गये। तत्कालीन संग्रहालय निदेशक से उन्होंने पूछा कि कुछ तिब्बती चित्रपट नहीं दिखाई दे रहे हैं। पाठकों को मालूम होगा कि पंडितजी ने तिब्बत से लायी हुई, विशेषकर प्रथम यात्रा में लाई हुई सारी चीजें संग्रहालय को दान कर दी थीं। इसलिए पूछने का उनका अधिकार था। वहाँ पर सिद्ध सरहपाद का चित्र भी था, जिसके बारे में अनूपलाल मंडल को उन्होंने 'दोहाकोश' में देने के लिए कहा। साथी इन्द्रदीपसिंह, सुनील दासगुप्त एवं श्री योगेन्द्र त्रिवेदी के साथ उनकी कुछ देर बातचीत हुई। कुमठेकरजी भी पंडितजी से मिलने आये। उनको कन्नड़ के और कुछ उपन्यासों का अनुवाद करने के लिए पंडितजी ने सलाह दी। आज भोजन श्री यतीन्द्र त्रिवेदी के यहाँ हुआ। ये पंडितजी के परमहितैषी मित्र श्री गोरखनाथ त्रिवेदी के सुपुत्र हैं। इस भोज में श्री योगेन्द्र त्रिवेदी, श्री परमानन्द तथा अन्य लोग भी शामिल हुए। नौ बजे के बाद वे डेरे पर लौट आये। कल प्रयाग के लिए प्रस्थान करने का उन्होंने निश्चय किया।

**प्रयाग, 16 अप्रैल** : बहुत गर्मी लग रही थी पंडितजी को। सुबह श्री देवकुमार मिश्र (ग्रंथमाला कार्यालय, बाँकीपुर के मालिक) आ गये। चाय-पान के बाद आठ बजे वे स्टेशन पर आये और 9 बजे ट्रेन भी आ गई। पटना की गर्मी से उनका मन व्याकुल होने लगा। ट्रेन में मुगलसराय तक दो अच्छे सहयात्री चढ़े थे। प्रयाग स्टेशन पर श्रीनिवासजी और गुंठेजी उपस्थित थे। इन लोगों से मिलकर वे डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के गृह में गये। अभी हाल ही में डॉ. प्रसाद नेपाल की यात्रा पूरी करके लौटे थे। इस यात्रा से वे अतीव सन्तुष्ट थे। पहाड़ निवासी राहुलजी को मैदान की गर्मी परेशान करने लगी थी। मच्छरों से भी वे घबराते थे। इसलिए उस रात वे बाहर आँगन में सोये। यद्यपि बाहर सोने में उनको अच्छा लग रहा था, किन्तु मच्छरों की भनभनाहट से पूरी नींद नहीं सो सके। निद्राघात को दूसरे दिन पूरा किया दिन में सोकर। सायंकाल गये किताब महल। वहाँ से सम्मेलन मुद्रणालय। प्रयाग में पंडितजी से मिलने बहुत लोग आते थे। आज उनकी अनुपस्थिति में भी बहुत से आये थे।

17 अप्रैल को डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के सुहृद मित्र कौंसिलर बी. के. सरकार से वहीं पंडितजी की भेंट हुई। सरकार महाशय का स्थायी निवास कलकत्ते में है, दार्जिलिंग में भी उनकी कोठी थी। (1960 में जब राहुलजी दार्जिलिंग में थे तब दोनों की कई बार भेंट हुई थी।) उन्होंने पंडितजी की 'वोल्गा से गंगा' का बंगलानुवाद पढ़ा था, जिससे वे बड़े प्रभावित थे। आज सायंकाल पंडितजी अपने मित्र सामुएल आइजक महाशय से मिलने गये। उनके सुपुत्र श्री जगदीशकुमार के मस्तिष्क में उन्हें कुछ विकृति दिखलाई दी, किन्तु वह क्षणिक थी।

18 अप्रैल को वे प्रयाग में ही थे। डॉ. प्रसाद के गृह पर भी उनसे अनेक लोग मिलने आये। प्रो. रंजन की प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर के रूप में नियुक्ति से पंडितजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। डॉ. ईश्वरी प्रसाद तथा श्री प्यारेलाल श्रीवास्तव भी इस नियुक्ति से प्रसन्न थे।'

**प्रयाग-देहरा-मार्ग (19 अप्रैल) :** आज पंडितजी प्रयाग से चले। ट्रेन में एक सहयात्री देहरादून तक जानेवाला था। अन्य लोग रास्ते में उतरनेवाले भी थे। रात ट्रेन में ही बीती। दूसरे दिन 20 अप्रैल को सुबह देहरा पहुँचकर टैक्सी लेकर सीधे हर्न-क्लिफ में आकर हम पर बड़ी कृपा की। उनकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हम लोग उनके घर आ जाने से कितने प्रसन्न हो जाते थे। घर में उन्होंने सबको स्वस्थ-प्रसन्न पाया। बहुत-से पत्र आये थे, उनका उत्तर लिखाया। इसके बाद दिन-भर विश्राम किया। यात्रा के कारण उनको कितनी थकावट होती थी, तब भी यात्रा करने से अपने को रोक नहीं सकते थे। 20 को इतवार पड़ा किन्तु मिलनेवाला कोई नहीं आया, क्योंकि मसूरी में अभी सैलानियों का सीजन शुरू नहीं हुआ है। अतः पंडितजी बिस्तर पर लेटे हेरोदोतस की किताब 'द हिस्ट्री' को पढ़ते रहे। 22 अप्रैल को भी वे हेरोदोतस को ही पढ़ते रहे। फिर कल से 'सप्तसिंधु' उपन्यास लिखवाने के लिए रात को तैयारी की।

अगले दिन 23 अप्रैल को सुबह के समय वे 'सप्तसिन्धु' की सामग्री का विश्लेषण करते रहे। आज लिखाने का काम नहीं हुआ। भोजनान्तर नगर गये। उन्हें रास्ते में ही पता चला कि पं. विद्यानिवास मिश्र आये हुए हैं। बाजार में उनसे भेंट हुई। चाय-पान जुत्शीजी के गृह में हुआ। जुत्शी परिवार गर्मियों में मसूरी आता था। पता चला कि श्री योगीनाथ जुत्शी का नेपाल में दो माह के लिए तबादला हुआ है। कौरवी लोक साहित्य का निबंध उनके पास पहुँच गया। उसके अपेक्षित अंश का वे दिन-भर संशोधन करते रहे। मध्याह्न के बाद आचार्य बापट आ गये। वह उस समय दिल्ली विश्वविद्यालय के बुद्धिस्ट स्टडीज़ विभाग में प्रधान थे। यहाँ वह पंडितजी के निजी संग्रह के पालि ग्रंथों को देखने आये थे। ग्रंथों की बिक्री की बात होने लगी, पर पंडितजी को इसमें उत्सुकता नहीं थी। किन्तु दिल्ली विश्वविद्यालय के लिए 'त्रिपिटक अट्ठकथा' के साथ उन्होंने लेना चाहा। अभी मूल्य के बारे में कोई निश्चय नहीं हुआ। डाक्टर बापट 26 अप्रैल को चले गये। 25 को उन्होंने 'ऋग्वेदिक आर्य' की विषयसूची को तैयार करके टाइप करवाया। "कमला का अपने शोध निबंध लिखने की ओर शायद रुचि नहीं है। यह काम किस तरह से पूरा करेगी वह ?"

26 को डाक्टर बापट ने पंडितजी से तय किया कि इन पालि ग्रंथों का एक सहस्र मुद्रा मूल्य देंगे। उस समय एक हजार रुपये का भी बहुत मूल्य था। ये ग्रंथ सिंहली और बर्मी लिपि में थे, जिसके बारे में पंडितजी ने सोचा—"एवं एषां पुस्तकं ऩानुपयोगः स्यात्। उपरते तु मयि क एतात्युपर्युंजते। कमलायै नोपयोग एषाम्। जयाजेतौ क्वचिरिति अनिश्चतम्।" इसलिए उन्होंने पुस्तकों की बिक्री कर देने का निश्चय कर लिया। (26 अप्रैल)

हर्न-क्लिफ की बिक्री के बारे में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी से बातचीत चल रही थी, यह हम पहले कह आये हैं। 24 अप्रैल को कामरेड डांगे और कामरेड घाटे कार से दिल्ली से आये। हमारे घर को देखा। निर्णय के बारे में एक सप्ताह बाद खबर देंगे, ऐसा कहकर वे लोग उसी दिन दिल्ली लौट गये। 'मकान वे लोग लेंगे इसमें सन्देह है,' यह बात पंडितजी उसी दिन अनुभव करते हैं। 25 अप्रैल को पूर्वाह्न में श्री विद्यानिवास मिश्र तथा श्री भगवतीशरण सिंह पंडितजी से मिलने हमारे घर आये। भगवतीशरणजी उस समय उत्तरप्रदेश सूचना विभाग के डाइरेक्टर थे और विद्यानिवासजी लोक साहित्य समिति के अधिकारी। तीनों लोगों में उत्तर प्रदेश लोक साहित्य समिति के बारे में ही देर तक बातें होती रहीं। उन लोगों के चले जाने के बाद पंडितजी

अपना लेखन कार्य शुरू करते हैं। 'कौरवी लोक साहित्य' वाला निबंध संतोषजनक नहीं लिखा गया है। इसलिए उन्हें थोड़ी झुँझलाहट भी हो रही थी। अतः इसे पुनः लिखने का निश्चय किया।

घुमक्कड़राज को 'बहिर्गमन' में ही आनन्द आता था। अतः 27 अप्रैल को उन्होंने 'बहिर्गमन' की कामना की। शायद वे मेरे मनोभावों को न समझते थे। किसको दोष दें। ऐसा नहीं कि वे रात-दिन मुझसे झगड़ते ही हों। अपना प्यार-प्रदर्शन भी करते ही थे। उनकी तरह मैं 24 घंटे पुस्तकें लेकर नहीं बैठ सकती थी। वहाँ मेरे छोटे-छोटे बच्चे थे, जिनकी ओर भी मुझे ध्यान देना पड़ता था। मेरी भी कई ड्यूटियाँ थीं। सबेरे 6 बजे से लेकर रात के 10-11 बजे तक काम, काम और काम। यद्यपि मैंने काम की अधिकता की कभी शिकायत नहीं की, किन्तु घर-गृहस्थी का काम छोड़ दूँ तो वहाँ और कोई करनेवाला भी तो नहीं था। और पंडितजी इसी से रुष्ट हो जाते थे। चाहे उनका मिजाज जैसा भी हो, मैं हर समय उनको शांत करने का प्रयास करती थी।

28 अप्रैल को श्री योगीनाथ जुत्शी उनसे मिलने आये। पता चला, पंडित जवाहरलाल नेहरू कल मसूरी पधार रहे हैं। हम लोगों को समारोह देखने की इच्छा थी, अतः कल नगर जाने का निश्चय किया। 29 अप्रैल को सुबह पंडितजी ने 'सप्तसिन्धु' की शब्दानुक्रमणी को स्वयं टाइप किया। मध्याह्न में उनके घनिष्ट मित्र बैरिस्टर मुकुन्दीलाल आ गये। संत-समागम देर तक चला। चाय-पान के बाद मुझे और जया को लेकर पंडितजी नगर गये। जुत्शी दम्पती के विवाह की आज वर्षगाँठ थी। अब मसूरी में सैलानियों की भीड़ लगने लगी थी। बाद में हम लोगों के साथ 'देख कबीरा रोया' नामक छायाचित्र को देखा। "उसमें कोई खास कथानक नहीं, सिर्फ गीत और नृत्यों की भरमार है जो अनावश्यक है।" ऐसी फिल्में उन्हें पसंद नहीं। रात 10 बजे घर लौट आये। प्रदर्शनी देखने हमारे हैपीवेली गाँव के बहुत-से छोटे बच्चे भी गये थे। उन्हीं के साथ हम लोग भी लौट आये।

इन दिनों हमारे घर में नौकर के न होने से बड़ी दिक्कत हो रही थी। मसूरी में ऑफ सीजन के समय ही नौकर आसानी से मिलते हैं। मुझे भोजन बनाते और बर्तन धोते देख उनको बहुत दुःख होता था, पर किये बिना कोई चारा भी तो नहीं। कोई छोटा-सा लड़का भी मिल जाता तो कितना सहारा मिलता।

1 मई को पंडितजी को फिर देहरादून जाने का निमंत्रण मिला। उनको 'बहिर्गमन' में आनन्द तो आता ही था, किन्तु हम लोगों को बहुत ही दुःख होता, क्योंकि रात-दिन यात्रा में ही रहनेवाले का शरीर कैसे स्वस्थ रहेगा ? अब उनका काफी समय लोक साहित्य के सम्पादन में भी खर्च होने लगा। हर क्षेत्र के निबंध के साथ वे उस बोली के क्षेत्र का मानचित्र भी तैयार करते और उसके साथ वे संशोधन भी करते जाते। 2 और 3 मई को भी लोक साहित्य के संशोधन और मानचित्र बनाने के काम में वे व्यस्त रहे। अवधी का चन्द्रावली लोकगीत उन्हें रस से आप्लावित लगा। उनका कहना था—"प्रायः सभी लोकभाषाओं में यह कथा है। शायद जनमानस को यह बहुत आकृष्ट करता है।" उसी दिन भारत सेवक समाज के एक तरुण संन्यासी आनन्द सरस्वती पंडितजी से मिलने आये। दोपहर को श्री रामचन्द्र शर्मा के पुत्र आये। राजनीति में शोध करने की उनकी इच्छा थी। अभी इसी वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। दोनों में देर तक संलाप हुआ।

4 मई को भी पंडितजी लोक साहित्य के निबंधों का संशोधन करते रहे। वे यह काम जल्दी-जल्दी इसलिए भी कर रहे थे क्योंकि उनका उपन्यास 'सप्तसिन्धु' लिखने का काम रुक गया था। उपन्यास में कुल 14 अध्याय रखने की उन्होंने योजना बनाई थी। अब वे कुछ स्वस्थता अनुभव करने लगे थे। किन्तु नौकर के अभाव में मुझे घर का सारा काम करते देखकर उनको बहुत ही दुख हो रहा था। 5 मई को रविवार का दिन। सुबह उन्होंने नियमित रूप से लिखने का काम किया। दोपहर बाद श्री जुत्शीजी आये। उन्होंने पंडितजी से 'संस्कृत पाठमाला' का चौथा भाग पढ़ा। उनके साथ पंडितजी हैपीवेली क्लब तक गये। लौटते समय हमारे पड़ोसी डाक्टर राम के गृह में गये। इस समय वह अस्वस्थ थे। उन्होंने भी उम्र ढलने के बाद विवाह किया था, अभी दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, डॉक्टर राम के प्रति पंडितजी के मन में बड़ी करुणा भर आई।

6 मई का दिन पंडितजी के लिए प्रसन्नता का दिन रहा। 'संस्कृत काव्यधारा' के कुछ फर्मे प्रिंट आर्डर

के लिए आये। 'दोहाकोश' की भूमिका के प्रूफ भी आ गये। दिन-भर वे उसी में लगे रहे। सुबह 8 से 12 बजे तक लिखवाने का जो नियम था, उसमें कोई व्यतिक्रम नहीं होता था। 7 मई को भी 'सप्तसिन्धु' का लिखाना तथा लोक साहित्य के निबंधों का संशोधन कार्य दिन-भर चला। जया बेटी को उस दिन तेज बुखार रहा, कै भी की उसने। उनको दुख हो रहा था, अतः बेटी के पास ही वे बैठे रहे। हर्न-क्लिफ की बिक्री के सम्बन्ध में हम लोगों ने विज्ञापन छपवाया था। उस दिन इस सम्बन्ध में बहुत-से लोगों के पत्र आये। यह भी एक बड़ी समस्या थी हमारे लिए।

**9 मई** : तिब्बती भाषा में लिखित 'कंजूर' और 'तंजूर ग्रंथराशि' की सूची तथा नामानुक्रमणी को अब पंडितजी तैयार करने लगे। यह इसलिए कि किन-किन ग्रंथों का पहले अनुवाद हो चुका है, इस नामानुक्रमणी से पता चल सके। यह सूची कुल हजार पृष्ठों की है। पंडितजी को इसे तैयार करने में बहुत समय लगा। यह कार्य उन्होंने 8 मई से आरम्भ किया और टाइप भी स्वयं किया। गृह बिक्री के विज्ञापन छपने के कारण बहुत-से पत्र रोज आने लगे। यह अलग एक सिरदर्द बन गया हमारे लिए। नौकर पुराना था, अभी तक उसके लौटने की आशा थी, किन्तु 9 मई को पता चला कि वह नहीं आयेगा। नया नौकर मिलता भी नहीं। बड़ी परेशानी थी। सर्दी लगने के कारण मेरे गले में बड़ी तकलीफ थी। आवाज ही बैठ गई थी, तो भी मुझे घर का सारा काम करना पड़ रहा था। इससे पंडितजी के हृदय में मेरे प्रति दया का भाव उमड़ रहा था। मुझको पढ़ना और बच्चों की देखभाल भी करनी थी। पहले तीन बरस तक मेरी बहनें बारी-बारी से मेरे पास रहीं। अब वह भी कलिम्पोंग चली गयीं। बहनों के सहयोग से ही मेरी अब तक की पढ़ाई हुई। पंडितजी ने सोचा, मेरी माँ को मसूरी बुलाया जाय, उनके आने से मुझे पढ़ने की थोड़ी छुट्टी मिलेगी। माँ आने के लिए तैयार थीं, पर सहयात्री कोई न होने से अकेले नहीं आ सकती थीं। पंडितजी ने सोचा कि मंगलजी को भेज दें। पर मंगलजी को भेज देने से उनके लिखने के कामों में हर्ज होता। इसलिए अभी बात नहीं बनी। बाद में कुछ लोगों के साथ मेरी माँ मसूरी आ गयीं, कुछ समय के लिए।

10 मई को देहरादून में 'लोक साहित्य समिति' का अधिवेशन हो रहा था। पंडितजी को भी उसमें सम्मिलित होना था। सुबह आठ बजे ही वे घर से निकले। बस स्टैण्ड भी तो हमारे घर से ढाई-तीन मील पर था। वहाँ तक पैदल पहुँचने में एक घंटा लग जाता था। 9 बजे बस मिली और 11 बजे देहरादून में सेवक आश्रम रोड पर पं. गयाप्रसाद शुक्ल के गृह में पहुँच गये।

## लोक साहित्य समिति की वैठक में

समिति के इस बार के अधिवेशन में भाग लेने के लिए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. बाबूराम सक्सेना भी आये हुए थे। इस अधिवेशन में हिन्दी के मध्यदेशीय क्षेत्रों के लोक साहित्य के बारे में विचार-विमर्श हुआ। मध्यप्रदेश को तीन क्षेत्रों में बाँटा गया—(1) कन्नौजी (इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, पीलीभीत, मातलि), (2) ब्रज (आगरा, धौलपुर, भरतपुर, करौली, मथुरा, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, बदायूँ, बरेली मण्डल, बुलंदशहर, मुरादाबाद और रामपुर का कुछ अंश), और (3) बुंदेलखण्ड। प्राचीन भाषाओं में मैथिली, मगही, भोजपुरी। इस खण्ड के लिए प्रतिनिधि राहुलजी चुने गये। अवधी समूह के लिए डॉ. बाबूराम सक्सेना और मध्यदेशीय समूह—विशेषकर मालवी के लिए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा चुने गये। साथ ही कौरवी, पंजाबी भाषा, कुछ राजस्थानी एवं पर्वतीय भाषाओं के बीच साहित्य के बारे में भी विचार-विमर्श हुआ।

सन् 1857 की क्रान्ति के शतवार्षिकोत्सव का आरम्भ सायं 6 बजे से हुआ। भाषणकर्ताओं में थे—डॉ. सत्यकेतु, डॉ. बलवीरसिंह तथा राहुलजी। सभापति थे श्री रामचन्द्र मनचंदा। यहीं पर राहुलजी के लेनिनग्राद विश्वविद्यालय के शिष्य बर्खुरदारोफ और बालिन भी मिल गये। यहाँ (देहरादून में) सर्वदेशीय भाषातत्वशिक्षण के विद्यार्थियों का शिविर लगा हुआ था। उसी सिलसिले में ये रूसी द्वय देहरादून में उपस्थित थे। दिन-भर पंडितजी का बड़ा सुन्दर कार्यक्रम रहा।

अगले दिन 11 मई को पंडितजी सुबह ही मसूरी के लिए रवाना हो गये और 11 बजे अपने गृह में

प्रवेश किया। "कमला अभी तक अस्वस्थशरीर थी, भृत्य के अभाव में उसको बहुत कष्ट हो रहा था।" यह राहुलजी ने सोचा। घर आकर वे अपने पढ़ने-लिखने के कार्य में व्यस्त हो गये। 12 मई को (रविवार) पंडितजी के दर्शनार्थ 20 से अधिक भाषा विज्ञान-सत्र के छात्र-छात्राएँ आये। उसमें भारत के अनेक भागों के शिक्षार्थी थे। सबका चाय-नाश्ते से सत्कार किया गया। मध्याह्न के बाद विक्तर बालिन और बर्खुरदारोफ भी आये। इन दोनों को आज यहीं रहना था। रात को उन लोगों से पंडितजी का वार्तालाप होता रहा। कुछ प्रौढ़ लोग हर्न क्लिफ को देखने आये।

13 मई को राहुलजी 'सप्तसिंधु' उपन्यास को लिखाते और लोक साहित्य के निबंधों का पुनरावलोकन करते रहे। 'सप्तसिन्धु' को लिखाने का काम नियमित रूप से चलने लगा। बीच-बीच में मिलनेवाले लोग भी आ ही जाते थे। उनके लिए भी समय देना पड़ता था। पढ़ने का काम वे रात के लिए छोड़ देते। इधर देश-भर में इनफ्लुएंजा रोग फैला हुआ था। हमारे घर में भी इसका प्रवेश हो गया। इस बीमारी की पहली शिकार जया बेटी हो गई। 16 मई को उसे 103 डिग्री बुखार रहा। छोटी बच्ची, औषधि भी नहीं पी रही थी, जिससे पिता को चिंता होना स्वाभाविक ही था।

10 मई के पूर्वाह्न में कमला चौधरी महाशया अन्य सज्जनों के साथ आयीं। अपराह्न में तीन पुरुषों के साथ डॉ. उदयनारायण तिवारी भी आ गये। आज उन्हें यहीं ठहरना था। उसी दिन एक छोटा-सा लड़का काम करने के लिए मिला जो बर्तन भी ठीक से नहीं धो सकता था। फ्लू का प्रभाव मुझ पर भी पड़ा, ज्वरग्रस्त होने पर भी घर का काम तो मुझे करना ही था। घर में इस समय बहुत सारे मेहमान आ जाते थे। उनको देखना भी मुझको ही था। अतः वहाँ विश्राम कहाँ मिलनेवाला था। "बेचारी क्या करे। उसको अकेले ही सबकुछ करना पड़ रहा है।" दूसरे दिन अपराह्न में कुछ लोग चले गये। डॉ. उदयनारायण तिवारी तथा उनके शिष्य अमरबहादुर के साथ पंडितजी नगर गये। चाय-पान जुत्शीजी के गृह में हुआ। ताल्स्ताय-कृत रूसी आख्यान पर बनी फिल्म 'वार एण्ड पीस' देखी तीनों ने। तीन घंटे से भी ज्यादा लम्बी फिल्म थी। रात को 11 बजे तीनों जने घर लौटे।

18 मई को दो और अतिथि आ गये। अबकी बार दोनों महिलाएँ थीं। पर ये दोनों ही पूरी तौर से मेहमान बनकर आई थीं। 19 मई को डॉ. सुकुमार सेन महाशय पंडितजी से मिलने आये। 'दोहाकोश' के विषय में दोनों में संलाप हुआ। अपराह्न में डॉ. उदयनारायण तिवारी अपने शिष्य के साथ चले गये। उसके बाद श्रीमती मोहिनी जुत्शी अपनी छोटी बेटी डॉ. उषा के साथ आईं। बहुत वर्षा में भीगकर कर आई थीं। "अपने गृह में जया ज्वराक्रांता, कमला भी सर्वथा मुक्त नहीं हुई है। महेश ने भी काम छोड़ दिया। उसका भाई विश्वेश्वर लौटकर नहीं आया। समस्या अभी तक पूर्ववत् ही है। आज मंगल को भी ज्वर आया।" इस घर में अब सब तरह से स्वस्थ केवल पंडितजी ही थे। सब के एक साथ बीमार पड़ जाने से बड़ी मुश्किल हो गई। किसी तरह पंडितजी ने ही सब रोगियों की देखभाल की।

20 मई के दिन भी लोक साहित्य के निबंध आ गये। अब इन निबंधों के संशोधन में ही पंडितजी का सारा समय खर्च होने लगा। लिखे निबंध को संशोधन कर उन्हें पुनः मंगलजी से टाइप करवाते थे। अब अधिकांश समय उसी में जाता। लखनऊ से भिक्षु प्रज्ञानन्द का पत्र आज आया, जिससे पता चला कि 'मध्य एशिया का इतिहास' अगले महीने प्रकाशित हो जायेगा। राहुलजी को बड़ी खुशी हुई। 21 मई को जुत्शीजी के पौत्र का जन्मदिन था। पंडितजी निमंत्रित थे। जुत्शीजी का यह पौत्र जया से कुछ ही महीने बड़ा था। पंडितजी उसको खूब प्यार करते थे। लड़का जब तीन-चार महीने का था, तब उसकी माँ चल बसी थी। तब से वह बच्चा अपनी दादी मोहिनी जुत्शी के साथ रहता था। पंडितजी रात आठ बजे लौटकर आये। क्या करें, नगर से घर पहुँचने में भी पैदल चलते इतना समय लग जाता था।

22 मई को एक चीनी विद्वान् लो शुङ् आये। 15 वर्ष से वह भारत में रह रहे थे। अब अगले वर्ष स्वदेश लौटनेवाले थे। इस समय वह शांतिनिकेतन से सम्बद्ध थे। खूब बातचीत हुई। शेष समय में 'सप्तसिन्धु' के लिखे अध्याय का संशोधन करते रहे। अगले दिन (23 मई) को लोक साहित्य के और निबंध आ गये।

पंडितजी आज उन्हीं को देखते रहे। लोक साहित्य का काम धड़ल्ले से हो रहा था। पंडितजी को इसके लिए अतिरिक्त समय देना पड़ता था। इसी समय कुमाऊँ अंचल के लोक कलाकार श्री मोहन उप्रेतीजी अपने दो सहयोगियों के साथ हमारे यहाँ आये। उन्होंने कुमाऊँ के कुछ लोकगीत, विशेषकर 'भेरु पाक्यो बारा मासा नारन काफल पाक्यो चैता मेरी छैला'—गीत सुनाकर पंडितजी को बहुत मुग्ध कर दिया। लोक-कलाओं के लिए पंडितजी के मन में अपार श्रद्धा थी और लोक-कलाकारों के प्रति उनके मन में सम्मान का भाव सदैव रहा।

24 मई को ही हमारे गृह में आगरा से दो अध्यापिकाएँ कुछ दिनों के लिए आ गईं पंडितजी के एक मित्र का परिचयपत्र लेकर। कुछ देर बाद बर्खुरदारोफ और विक्तर बालिन भी आ गये। अब हर्न-क्लिफ में हाउस फुल हो गया। गर्मियों में हमारे घर में इसी तरह बहुत मेहमान आया करते थे। 25 मई को भी चार अन्य अतिथि आ गये। कोठी के भीतर अब जगह नहीं थी, अतः उन्हें बाहर औटहाउस का कमरा दिया गया। औट हाउस में भी राहुलजी ने काफी पैसा खर्च करके फ्लशवाला शौचालय तथा स्नानघर बनवाया था। कमरों को भी रंग-चूना करवाकर ठीक-ठाक करवाया था। उनको मालूम था कि जब उन्होंने स्वयं जीवन में कितने ही वर्ष दूसरों के यहाँ आतिथ्य ग्रहण किया, अब जब उनका घर है तो उन्हें स्वयं आतिथेय बनना पड़ेगा, लोग इसी तरह आते ही रहेंगे। लोगों का आना उनको बहुत अच्छा लगता भी था। परन्तु एक साहित्यकार की आमदनी ही कितनी थी ? जब वे अपना बैंक-बैलेन्स देखते तो घबड़ा जाते थे। मुझे कोई आपत्ति नहीं होती थी, क्योंकि हम फिज़ूलखर्च नहीं थे। उस समय हम लोगों पर मुसीबत आई हुई थी। घर में मेहमानों की भीड़, पंडितजी के लेखन की व्यस्तता, बच्चे बीमार, मैं स्वयं अस्वस्थ, मंगलजी भी अस्वस्थ। पर काम में कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए थी।

26 मई को जेता का ज्वर बहुत बढ़ गया, वह अचेत हो गया। पिता को भी घबड़ाहट हो गई, लिखा—"कमला विह्वला, डाक्टर समीपे गंतुं सन्न्द्धा, कथमप्यवरुद्ध।" अपने बच्चे की ऐसी हालत थी, मैं घर के अत्यधिक कामों के कारण उसकी देख-भाल भी ठीक से नहीं कर पा रही थी। मुझे रसोईघर में काम करना था, पंडितजी अपना सारा काम छोड़कर अपने अचेत बच्चे को गोद में लिटा, अस्वस्थ बेटी जया को अपने ही पास लिटाये कमरे में बैठे रहे। जेता की अवस्था से वे बहुत चिन्तित हो गये थे। आज भोजनान्तर दो रूसी मेहमान चले गये। शाम के समय रविवार होने के कारण जुत्शीजी सपरिवार आये। फिर कैम्पटी जलप्रपात को देखकर लौटे हुए कुछ तरुण भी पंडितजी से मिलने आये। 27 मई को भी जेता ज्वराक्रांत था, उसका ज्वर थोड़ा भी कम नहीं हो रहा था। मध्याह्न के बाद पंडितजी हैपीवेली क्लब में, जहाँ पी. इ. सी. के जवानों का शिविर लगा हुआ था, भाषण देने गये—यह स्थान हमारे धर से नजदीक ही था। आज का भाषण हिमालय के विषय पर था। लौटते वे पड़ोसी डॉक्टर राम के पास जेता की बीमारी के बारे में परामर्श करने गये। पश्चात् मैं जेता को गोद में उठाकर डॉक्टर राम के यहाँ गई, उन्होंने औषधि दे दी। जेता दवा पी ही नहीं रहा था। पंडितजी कहते हैं—'बच्चों के लिए औषधि कुछ मीठी होनी चाहिए, तभी वे पीते हैं। कड़वी औषधि कैसे पी सकते हैं।' जेता को भी जबर्दस्ती करके पिलानी पड़ी। पंडितजी की दृष्टि चारों तरफ रहती थी। उस दिन उन्होंने डायरी में लिखा—"पाचकाभावे सर्व कृत्यं कमलाया क्रियते।" जो दो महिला अतिथि हमारे घर में थीं, वह हमारी जरा भी मदद नहीं करती थीं। इसलिए पंडितजी खिन्न हो गये। उस दिन मैं रसोई में खाना बना रही थी। जेता ज्वर के कारण बहुत कमजोर हो गया था, इसलिए मैं उसे अपनी गोदी में लेकर काम कर रही थी। रसोईघर के पास ही हाथ धोने का बेसिन था। मैंने देखा पंडितजी चाय की प्यालियाँ धो रहे थे। उनको ऐसा करते देख मेरे हृदय में जो पीड़ा हुई, मैं किन शब्दों में बयान करूँ। मैंने तुरन्त कहा—"पंडितजी, आप यह क्या कर रहे हैं ? आप का काम यह नहीं है।" वे बोले—"मैं तो तुमको मदद कर रहा हूँ, तुम्हें अकेले कितना काम करना पड़ता है।' मैं बोली—"आपका काम बाहर लिखने का है, वह महत्वपूर्ण है। जब मैं और काम कर सकती हूँ तो चाय के प्याले भी तो धो सकती हूँ, आप छोड़ दीजिए।" वे मुस्कुराते हुए बोले—"जब मैं लेनिनग्राद में था, तब वहाँ बरतन धोने, बिस्तर बनाने और सफाई करने की डयूटी मेरी थी।" सुनकर मैंने जवाब दिया—"उस समय तो मैं आपके पास नहीं थी। मुझ को अपने घर से जो संस्कार मिला है, मुझे उसी के अनुसार

चलने दीजिए। हमारे घर में पुरुष लोग बरतन नहीं धोते हैं।" महामानव राहुलजी, आपके मन को समझना मेरे लिए बहुत कठिन है। एक तरफ तो आप कमला से रुष्ट रहते हैं और दूसरी ओर आप उस पर कितनी सहानुभूति रखते हैं। यह सब सोचकर मेरी आँखों में आँसू आ गये थे। उसी समय राहुलजी की इच्छा हुई कि 'घुमक्कड़शास्त्र' की शैली में एक 'अतिथिशास्त्र' भी लिखें। उन्होंने इसके लिए कुछ अध्याय और कुछ टिप्पणियाँ भी लिखीं अपने नोटबुक में, बाद में उन्होंने यह काम पूरा नहीं किया। सोचा कि इससे मेरे कई मित्रों पर भी आँच आयेगी। उस वक्त उनके पास समयाभाव था। यदि वह शास्त्र लिख दिया होता उन्होंने, तब आज के मेहमानों के लिए बहुत उपयोगी होता।

28 मई को उन्होंने कोई विशेष काम नहीं किया। 29 को भोजन के बाद नगर में गये। मसूरी में अब सीजन जोरों पर है, 'इसलिए आशावती मसूरी होगी' ऐसा लगता है। इस समय कई शिक्षण संस्थाओं के ग्रीष्मकालीन शिविर मसूरी में लगे थे। इसी प्रकार के एक प्रशिक्षण विद्यालय के ग्रीष्मकालीन शिविर में पंडितजी को एक व्याख्यान देना था। यहाँ के अध्यापक शिक्षार्थियों ने अपने द्वारा तैयार की गई एक सुन्दर बुद्ध-प्रतिमा और प्लास्टिक का एक फोटो फ्रेम पंडितजी को उपहार में दिया। आज यहाँ का पारितोषिक वितरण समारोह भी था। नई पीढ़ी को उत्साहित करते हुए उन्होंने कला विषय पर भाषण दिया। उसी दिन उनको थियोसोफिकल सोसायटी के तत्वावधान में हो रही गोष्ठी में भी 'तिब्बत में बौद्ध धर्म-प्रचार' विषय पर बोलना पड़ा। यह गोष्ठी डॉ. सत्यकेतु के निवास लक्समौंट में हुई। सभा सायं छः बजे शुरू हुई थी। यहाँ बहुत-से परिचित लोगों से उनकी भेंट हुई। भाषण के समय श्रोताओं की संख्या 20 से अधिक नहीं थी। किन्तु सभी बुद्धिजीवी और पठित लोग थे। रात 9 बजे के बाद घर लौट आये। इन दिनों बाहर के कार्यक्रमों के कारण उनका लेखन-कार्य मन्द पड़ गया था। इससे वे खेद अनुभव करते थे।

30 मई के दिन घर पर ही बहुत-से लोग उनसे मिलने आये। उनका आज ज्यादा समय बातचीत करने में ही बीता। रविवार का दिन होता तो उनको कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि सप्ताह में एक दिन वह छुट्टी रखते थे। किन्तु आज काम के दिन में काफी हर्ज हो रहा था। इधर तो सप्ताह में हर दिन लोग उनसे मिलने आया करते थे। समालाप में उनका कीमती समय खर्च होता। पर किसी न किसी प्रकार से वह अपने रुके हुए कामों को पूरा कर ही लेते। आज पी. इ. सी. के शिविर में उनको भाषण देने जाना था। रात को 'सप्तसिन्धु' के अगले अध्याय लिखाने के लिए सामग्री ठीक की। 31 मई को सुबह के समय 'सप्तसिन्धु' का नया अध्याय लिखाया। छत्तीसगढ़ अंचल के एक अध्यापक श्रीधर शास्त्री उनसे मिलने आये। श्रीधरजी ने छत्तीसगढ़ के बारे में बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएँ और विवरण उनको सुनाये। पंडितजी भी सब काम छोड़कर उनका विवरण सुनते रहे। बस्तर के आदिवासियों के बारे में शास्त्री महोदय ने इतना अच्छा विवरण दिया कि सुनने में पंडितजी को ही नहीं, मुझे भी अच्छा लग रहा था। शास्त्रीजी को हमने 4-5 घण्टे तक अपने यहाँ रोक रखा। भोजन और चाय से उनका सत्कार किया। नई बातों की जानकारी पाने के लिए पंडितजी में कितना उत्साह है, उसी दिन देखने को मिला। रात्रि को वे कुंडधानी विषय पर नोट लिखते रहे।

1 जून को अलीगढ़ विश्वविद्यालय से प्रकाशित 'खिलजीकालीन भारत' और 'तुगलककालीन भारत' दो ग्रंथ पंडितजी को मिले। पढ़ने के लिए उनको कुछ अच्छी चीज मिल गई आज। देर तक पढ़ते रहे। उस दिन देहरादून से पं. गयाप्रसाद शुक्लजी एक रात के लिए हमारे यहाँ आये। उनके साथ भी काफी देर तक पंडितजी का सत्संग चलता रहा। शुक्लजी के आने से पहले ही दिन के भोजन के बाद राहुलजी जया और मुझे लेकर बाजार गये और 'प्यासा' फिल्म देख आये। यह फिल्म उनको अच्छी लगी। 2 जून को सुबह अपना नियमित लिखाने का काम किया। उसके बाद कल आये इतिहास के दो ग्रंथों को पढ़ते रहे। सन्ध्या को जुत्शी-दम्पती के अतिरिक्त कुछ अन्य लोग भी उनसे मिलने आये। आज रविवार का दिन, किन्तु हम लोगों के लिए कोई छुट्टी नहीं थी।

3 जून को 'कुमाऊँ परिचय' तथा 'संस्कृत काव्यधारा' के बहुत-से प्रूफ आये, प्रूफ देखने में भी उनका काफी समय गया। अपनी लिखी हुई पुस्तकों के मुद्रण में देरी होने से उनको निराशा भी घेरने लगती थी।

आज ही रात को 'जनयुग' कार्यालय से एक तरुण—बाबूलालजी आ गये। वह क्षयरोग के मरीज थे, स्वास्थ्य काफी खराब था, अतः जलवायु परिवर्तन के लिए पार्टीवालों ने हमारे यहाँ भेजा था। अब राहुलजी का घर टी.वी. सेनिटोरियम भी बन गया ! बाबूलालजी करीब तीन महीने रहे हमारे मेहमान के रूप में। अगले वर्ष भी इसी तरह एक अन्य कामरेड टी. बी. के मरीज को पार्टी ने राहुलजी के यहाँ भेजा। और उन दिनों टी. बी. का विशेष इलाज नहीं होता था। क्या करें, पार्टी का आदेश है। बेचारे राहुलजी चुपचाप आदेश का पालन करते थे। मेहमानों के सुख-आराम का ख्याल करना आवश्यक था, अपना सुख-आराम चाहे भाड़ में जाये।

कलिम्पोंग में पंडितजी के मित्र डॉ. जार्ज रोयरिक 'प्रमाणवार्तिकम्' का अंग्रेजी अनुवाद कर रहे थे। इस का उल्लेख पहले हो चुका है। आज 4 जून को अनुवाद के कुछ अंश पंडितजी के पास अवलोकनार्थ आये। इसी प्रकार 5 और 6 जून को भी प्रूफ देखने, 'सप्तसिन्धु' को लिखाने तथा 'तुगलककालीन भारत' को पढ़ने में व्यस्त रहे।

इस बार श्लेष्मज्वर (Flue) का प्रसार मद्रास, बम्बई, कलकत्ता और देहली में तो हो ही चुका था, मसूरी में भी इस रोग के कीटाणु पहुँच गये। हर घर में इस ज्वर से पीड़ित कोई न कोई मिलता। हमारे घर में भी ज्वर लौट-लौटकर आने लगा। 7 जून को जया-जेता को फिर एक साथ ज्वर आ गया। सन्ध्या तक पंडितजी को भी ज्वर ने आ घेरा। उस दिन बिस्तर पर लेटकर 'संस्कृत काव्यधारा' का प्रूफ देखते रहे। फिर डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा लिखित 'भोजपुरी लोक साहित्य' का निबंध आ गया। ज्वर से पीड़ित होने पर भी पंडितजी ने पढ़ना-लिखना जारी रखा। इस निबंध को वह पढ़ते रहे। अगले दिन (8 जून) को भी उनको 100 डिग्री ज्वर रहा, शयनकक्ष में विश्राम करते रहे और 'भोजपुरी लोक साहित्य' के निबंध को देखते रहे। ज्वर आने पर पंडितजी उपवास रखते थे, दवाओं पर उन्हें भरोसा नहीं होता था। 9 जून को भी उनके शरीर में ज्वर का अंश शेष था। अतः उनको विश्राम करना पड़ा।

प्रयाग से डॉ. बदरीनाथ प्रसाद का पत्र आया, लिखा कि वे परसों 12 जून को मसूरी आयेंगे। पंडितजी के भैयाजी (स्वामीजी) बम्बई में जिस केस में फँसे थे, उसका फैसला हो जाने की सूचना मिली। स्वामीजी को केवल 500 रुपया दण्ड भरना पड़ा। यह सुनकर पंडितजी को शांति मिली।

11 जून को उन्होंने 'शिष्टाचार' पर पुस्तक लिखने की योजना बनाई, उसके लिए अध्याय एवं विवरण का खाका बनाया। उनके परम मित्र बाबा (सरदार) पृथ्वीसिंह आजाद के गुजराती मित्र डॉ. मेहता सपरिवार आये पंडितजी से मिलने। बड़े सुसंस्कृत और मिलनसार स्वभाव के लोग थे ये। बड़ी देर तक राहुलजी के साथ बातचीत होती रही। आज ही सायंकाल श्री श्यामनारायण पाण्डेय (मानव भारती, मसूरी) मिलने आये। ये वैदिक भूगोल पर अनुसन्धान भी कर रहे थे। आज 'छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य' का निबंध भी आया। इसमें बहुत संशोधन करने की जरूरत थी। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होनेवाले इस 16वें खण्ड का सम्पादन पंडितजी बड़ी मेहनत से कर रहे थे, उनका बहुत-सा समय इसी काम में चला जाता।

12 जून को डॉ. बदरीनाथ प्रसादजी आये। पंडितजी के गृह में वे पहली बार पधारे थे। पंडितजी तो प्रयाग में बराबर उन्हीं के घर ठहरा करते थे। डॉ. साहब की खातिर हम लोग बहुत अच्छी तरह नहीं कर पायेंगे, इससे मुझे तो बहुत ही संकोच हो रहा था। परन्तु वे सचमुच ही बड़े पक्के मित्र थे। दूसरों के घर में आडम्बर की उन्हें जरूरत न थी। पुराने और घनिष्ट मित्र के आगमन पर पंडितजी का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। वे डाक्टर प्रसाद का बहुत ही सम्मान और आदर करते थे, और डाक्टर साहब भी राहुलजी का इसी प्रकार सम्मान करते थे। तथाकथित कुछ विकृत मानसिकता से ग्रस्त अप्राकृतिक लोगों ने राहुलजी के सम्बन्ध में कुछ घिनौने और झूठे आरोप लगाये और आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं। किन्तु ऐसे विकृत मानसिकतावाले महाविद्वानों को अपने ही गिरेबान में झाँककर देखना चाहिए, तब किसी पर लिखने के लिए लेखनी उठानी चाहिए। डॉक्टर बदरीनाथ थोड़े समय के लिए ही मसूरी आये थे। वे पंडितजी और पंडितजी के परिवार से मिलकर चले भी गये। सायंकाल दोनों मित्र पैदल टहलते-टहलते किताबघर तक गये। दूसरे दिन भी पंडितजी डॉक्टर प्रसाद से मिलने पिक्चर पैलेस बाजार तक गये। तब मसूरी की मुख्य सड़क जनाकीर्ण थी। राहुलजी

के एक एकलव्य शिष्य श्री चन्द्रशेखर त्रिपाठी (आजमगढ़) ने एक बक्सा बढ़िया आम पार्सल द्वारा भेजा था, वह न खट्टे न अतिपक्व थे। आम्रफल पंडितजी का प्रिय फल रहा। आज पार्सल पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर ये आम तो उनकी जन्मभूमि की मिट्टी से आये थे, इसलिए डबल स्वाद मिला।

आज भी (14 जून) विशेष काम नहीं हुआ। डॉक्टर बदरीनाथ प्रसादजी आज अपने मित्र से मिलने आये। मित्र के साथ संलाप करते रहे। सायंकाल मसूरी के पोलो मैदान में पी. इ. सी. के जवानों की सैनिक परेड तथा अन्य रंगारंग कार्यक्रम होनेवाला था। यह पोलो मैदान कैम्प्टी फाल के रास्ते में पड़ता है। चढ़ाई-उतराई में राहुलजी को तकलीफ होती थी, इसलिए आमत्रिंत होने पर भी वे नहीं जा सके। डॉ. प्रसाद के साथ उन्होंने मंगलजी, जया और मुझे भेजा। प्रोग्राम डाक्टर प्रसाद को बहुत पसन्द आया। सैनिक आज्ञा के शब्द हिन्दी में बोले गये, यह जानकर राहुलजी को परम प्रसन्नता हुई। आई. जी. पुलिस का भाषण भी हिन्दी में था, किन्तु ब्रिगेडियर का सम्भाषण अंग्रेजी में हुआ। समारोह देखने अनेक नर-नारी-बच्चे गये थे। जीप से जाने का प्रबंध था। हमारे हैपीवेली के सूने वातावरण में इस समारोह से थोड़ी बहार आ गयी थी। मसूरी के मकान हर्न-क्लिफ की बिक्री करने के बारे में जब डॉ. प्रसाद को पता लगा तो उन्होंने पंडितजी से तो नहीं, पर मुझसे यह कहा था कि इतना अच्छा मकान बेचना नहीं चाहिए। मकान तो अच्छा था ही, वहाँ के फर्नीचर भी बहुत कीमती और खूबसूरत थे। डाक्टर साहब ने मकान को अपने पास ही रखने की सलाह दी थी। परन्तु राहुलजी पर विदेश जाने की धुन सवार थी, और कुछ अन्य कारणों से भी उन्होंने सोचा कि घर रखकर क्या करना। मेहमानों की भीड़ और अपनी आर्थिक अनिश्चितता ही इसका मूल कारण था। इसलिए घर की बिक्री कर देना ही उन्होंने ठीक समझा। संयोग देखिए कि जिस तिब्बत के लिए उनका मन उल्लसित रहता था, वही छोटा-मोटा तिब्बत उनके आँगन पर चला आया। आज हर्न-क्लिफ को भी तिब्बती रिफ्यूजी स्कूल ने खरीद लिया है। अब हैपी वेली का वह हर्न-क्लिफ तथा उसके सामने की जमीन पर तिब्बती स्कूल तथा तिब्बती नागरिकों के लिए कितनी ही नई हमारतें बनी हैं। 15 जून को डाक्टर साहब चले गये।

16 जून को रविवार का दिन। आज तो घर में बहुत-से अतिथि आ गये। मिलनेवालों में से थे—जुत्शी-दम्पती, ब्रिगेडियर जुयाल और उनकी श्रीमती भी। ब्रिगेडियर साहब पी. इ. सी. के शिविर के साथ मसूरी आये थे। ठहरे थे हमारे ऊपरवाली कोठी हर्नहिल में। सायंकाल उनकी भगिनी अपने पति के साथ आयीं। उन लोगों के साथ पंडितजी की काफी देर तक बातचीत चलती रही। पुरुष मेरठ में शिक्षा विभाग के संचालक थे। मित्रों या आगन्तुकों के साथ समालाप करने में राहुलजी का मिजाज शांत रहता था, इसलिए प्रायः हर रविवार वे मित्रों के लिए दे देते थे। उस दिन चाहे कोई भी धड़ल्ले से आकर मिल सकता। कोई रुकावट नहीं। लेकिन घर के लोगों के लिए कोई छुट्टी नहीं, कोई मनोरंजन नहीं। इतवार के दिन तो मुझे दम लेने की भी फुरसत न मिलती।

अजमेर से आये डॉ. मेहता की ओर से 17 जून के लिए पंडितजी को निमंत्रण था। पंडितजी गये। मध्याह्न भोजन उन लोगों के साथ ही कुल्हड़ी के क्वालिटी रेस्टुरेन्ट में हुआ। फिर मेटिनी शो में 'मिस इंडिया' फिल्म देखी। पर यह फिल्म भी पंडितजी का मन नहीं मोह सकी। डॉ. मेहताजी की पत्नी तथा उनके दो बच्चे भी साथ में थे। अभी तक नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से हिन्दी विश्वकोश के बारे में पंडितजी के लिए कोई फैसला नहीं किया गया था। अब उनकी आशा क्षीण होने लगी। अतः 18 जून को उन्होंने निश्चय किया—"अस्मिन्यासे विश्वकोशविषये न निश्चयः चेत भोटगमनाय प्रयतितव्यमः।" उन दिनों किताब महल ने अग्रिम रायल्टी देने के बारे में तय करके पंडितजी के साथ फिर से सम्बन्ध जोड़ा था। अब वे पछता रहे थे। तभी तो उनका विचार हुआ—'किताबमहलतोऽग्रिम ग्रहणं हानिकरमेव' (18 जून)। 19 जून को उन्होंने ऋग्वेद की नामसूची का अवलोकन किया। सायंकाल जेता के साथ टहलने के ख्याल से चले और डॉक्टर राम के घर तक दोनों गये। 20 जून को 'नेपाली लोक साहित्य' को देखते रहे। कुछ लोग उनसे मिलने भी आये। गृह-बिक्री का अभी कोई काम नहीं हुआ, यह उनके लिए भारी चिन्ता का विषय है। (20 जून)

21 जून को सुबह 'ऋग्वेद' पर काम किया। फिर राजा राधिकारमण-अभिनन्दन-ग्रंथ के लिए एक लेख

लिखकर भेज दिया। 'नेपाली लोक साहित्य' के निबंध को भी ठीक-ठाक करके समाप्त कर दिया। आज घर में टिके हुए मेहमान चले गये। फिर शंकरशरण नामक दूसरे मेहमान आ गये। दूसरे दिन वह भी चले गये। खैर, मेहमानों का आना-जाना तो लगा ही रहता था। 22 जून को 'नेपाली लोक साहित्य' निबंध का टंकन कराया। 'सप्तसिन्धु' के लिए भी कुछ सामग्री तैयार की। गृह की बिक्री की चिन्ता बनी हुई थी। दूरस्थ मन उनका रहा। उस दिन उनके मन में यह भी विचार आया कि यदि घर नहीं बिका तो स्वामी हरिशरणानन्दजी को बिक्री का अधिकार दे देंगे। इस प्रकार वे स्वतंत्र होकर विदेश के लिए प्रस्थान कर सकेंगे। 'इच्छापत्र शीघ्र लिखना होगा। श्री रामचन्द्र सिंह (वकील) के आने पर उनसे ही यह कार्य करायेंगे' यह तय हो गया।

चारों तरफ की चिन्ताओं से चिन्तित अपने मन का गुब्बार यदा-कदा वे मुझ पर ही निकालते थे। आज (22 जून) को भी ऐसा ही हुआ—"कमला डाक्टरेट का निबंध नहीं लिखेगी, न पढ़ेगी।" यह उनको विश्वास हो गया। पर इतने दिनों तक मैं 'पीर बावर्ची भिश्ती खर' बनी हुई थी, मुझे कहाँ कुछ पढ़ने-लिखने का समय मिला। अब मेरी और बच्चों के भविष्य की चिन्ता उन्हें परेशान करने लगी। तभी तो लिखा—"अब समय-समय पर हम लोगों को अलग रहना होगा। हरदम साथ रहने से सम्बन्ध मधुर नहीं रहता। इच्छापत्र लिख देने का काम जल्दी करना होगा। ऐसा न करने से प्रकाशकों से धन मिलना कठिन हो जायेगा। यह स्थान उसके अनुकूल नहीं है, अनुकूल होगा उसके स्वजनों के नजदीक। पर उसको यह पसन्द नहीं है। यदि विश्वकोश का काम न मिला तो उसको भी मेरे साथ देशान्तर चले जाना जरूरी होगा, अन्यथा प्रकाशक से मिले धन उसके और बच्चों के लिए अपर्याप्त होगा। यदि अग्रिम रूप से धन लें तो यह हमारे ऊपर ऋण की तरह चढ़ता जायेगा। किसी से ऋण लेना शिशुद्वय के लिए अनिष्टकर होगा। इसलिए ऋण लेना मुझे पसन्द नहीं। यदि वह (कमला) पी-एच. डी. कर लेती, तो समस्या का समाधान हो जाता। पर इसमें मुझे संदेह है।" (23 जून)

24 जून को हमारे घर डॉ. मेहता सपरिवार आये। चायपान यहीं हुआ। पंडितजी की पुस्तक 'धम्मपद' का नवीन संस्करण हुआ था, जिसकी प्रतियाँ आ गयीं। 25 जून को वे 'सप्तसिन्धु' के लेखन में व्यस्त रहे। सायंकाल उनके परिचित विहारी बन्धु बिंदाबाबू आ गये। भोजपुरी भाषा की बहार आ गई। आचार्य रमण भी सायंकाल चायपार्टी के लिए आ गये। अगले दिन 26 जून को कनखल से पंडित किशोरीदास जी वाजपेयी पधारे। भाषा-तत्व के विषय में दोनों मित्रों में बहुत देर तक विचार-विमर्श हुआ। मुझको पढ़ने-लिखने के लिए पूरा समय नहीं मिल रहा था, साथ ही बच्चों की देख-भाल भी ठीक से नहीं कर पा रही थी, इसलिए पंडितजी ने कलिम्पोंग से हमारी माँ को बुला भेजने के लिए कहा था। वह अन्य तीन व्यक्तियों के साथ 26 जून को मसूरी पहुँच गयीं। पंडितजी को घर भरा-भरा लगने लगा। मसूरी रेलवे आउट ऐजेन्सी के कर्मचारी भलेमानुस थे, तभी तो आजमगढ़ से श्री चन्द्रशेखर त्रिपाठी द्वारा भेजे गये आम का दूसरा पार्सल उन लोगों ने स्वयं ही हमारे पास कुली के हाथों भेज दिया।

जून महीने में मसूरी सैलानियों से भर जाती है। उस साल (1957) में भी सब तरफ बहार ही बहार थी। लोग बहुत आये हुए थे। पंडितजी के परिचित भी बहुत बड़ी संख्या में मसूरी आते ही थे। मसूरी आकर उनसे न मिलें, यह कैसे हो सकता था ? 27 जून को भी हमारे यहाँ बहुत-से अतिथि आ गये। प्रथम श्री रामचन्द्र सिन्हा (वकील) आये। इनके साथ पंडितजी का 1933 से परिचय था। पहली बार दोनों की भेंट बर्लिन (जर्मनी) में हुई थी। सिन्हाजी के साथ राहुलजी ने इच्छापत्र (वसीयतनामा) के बारे में सलाह-मशविरा किया। उनके बाद कामरेड फारुकी और उनकी पत्नी विमला फारुकी आये और संध्या तक रहे। अतः आज पंडितजी का लेखन-कार्य नहीं हो सका। रात को 'सप्तसिन्धु' के लिए कुछ सामग्री ठीक करते रहे।

अगले दिन 28 जून को उन्होंने 'उर्दू के प्रति हिन्दीवालों का कर्तव्य' शीर्षक एक लेख लिखवाया। उस दिन भी कोई पुरुष पंडितजी से भेंट करने आये, पर उनका नाम दर्ज नहीं किया है। इस वर्ष देश में इन्फ्लुएंजा का प्रकोप महामारी का रूप ले रहा था। केवल दिल्ली में ही 10 प्रतिशत लोग इस बीमारी से आक्रान्त थे। यद्यपि रोग बहुत हानिकर नहीं, लेकिन बुखार के कारण आदमी बहुत कमजोर हो जाता है, इसलिए सबको सँभल कर रहना था। रोग लौट-लौटकर आ रहा था। 29 जून को ही 'गढ़वाल जनसाहित्य सम्मेलन' का उद्घाटन

करने के लिए राहुलजी को शहर जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने उद्‌घाटन भाषण भी दिया। सायंकाल की चाय जुत्शीजी के गृह में पीकर रात 8 बजे घर लौट आये। 30 जून को 'सप्तसन्धि' उपन्यास की सामग्री के विषय में कुछ काम किया। आज फिर श्री रामचन्द्र सिन्हा आये। स्वजीवन के उतार-चढ़ाव के बारे में उन्होंने पंडितजी को बतलाया। पंडितजी उनसे बहुत प्रभावित हुए। सिन्हा महोदय पहले साइन्स के विद्यार्थी थे। बर्लिन में डाक्टरेट के लिए प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंसटाइन के निरीक्षण में अनुसन्धान कार्य कर रहे थे। सिर्फ एक साल बाकी था, तभी दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया। आइंसटाइन को भागकर अंमेरिका जाना पड़ा, जिसके कारण सिन्हाजी का काम अधूरा ही रह गया। फिर किसी तरह उन्होंने वकालत पास की। अब लखनऊ में प्रैक्टिस कर रहे थे। पंडितजी को उनकी जीवनी लिखने का मन हो रहा था, पर नहीं लिख पाये। उसी दिन बिहार के गौरेया कोठी के मालिक चतुरी बाबू पंडितजी से मिलने आये। दोनों में बड़ी देर तक भोजपुरी में वार्तालाप चलता रहा।

मसूरी की गर्मियों में जल-कष्ट रहता है, इससे सभी क्षुब्ध हो जाते थे। इधर पहाड़ों में यही समस्या है। 1 जुलाई की रात से लेकर दूसरे दिन के 11 बजे तक नलके में पानी नहीं आया। भोजन से पहले साथी यज्ञदत्त शर्मा, उनकी पत्नी सरला शर्मा अपने पुत्र और पुत्री के साथ आये। चाय-पान के समय जुत्शी दम्पती भी आये। गोष्ठी अच्छी रही। इस प्रकार अब रोज ही मिलनेवाले आते रहते थे। बातचीत करने में समय खर्च होता था। इसकी पूर्ति कैसे हो ? पंडितजी ने उपाय ढूँढ़ निकाला–"सुबह के 7 बजे से ही लिखवाने बैठ जाना।" 12 बजे तक टंकन चलता रहता था। मंगलजी को पूरा खटना पड़ता था। दोपहर बाद भी समय मिले तो लिखना-लिखाना। इस तरह उनके काम में हर्ज होने का सवाल ही नहीं उठता था। 2 जुलाई को भी रामचन्द्र सिन्हा आये। उनके साथ कोई महात्माजी भी पधारे थे। बातचीत में काफी समय गया। सिन्हाजी की जीवन-कथा से पंडितजी बड़े प्रभावित थे। सिन्हा से पूछ-पूछकर नोट भी लिखते रहे, किन्तु बाद में उन्होंने इस नोट का इस्तेमाल नहीं किया।

**3 जुलाई** : मिलने-जुलनेवालों को समय देते हुए भी पंडितजी बीच-बीच में लेख भी लिखाते रहते। केवल पुस्तकों की रायल्टी पर जीना अब कठिन हो गया। किताब महल तो क्या, किसी अन्य से भी ऋण के रूप में कुछ न लेने का उन्होंने सिद्धान्त बनाया था। इसलिए अब अतिरिक्त कमाई की भी उन्हें चिन्ता सताने लगी। फिर अतिथि-सत्कार के लिए भी धन चाहिए, यह भी उनके लिए चिन्ता का विषय था। इसीलिए उन्होंने लिखा–"विश्वकोश कार्याभावे चीनेगंतव्यम् एव, नान्यः पंथा" (4 जुलाई)। हम यहाँ देख रहे हैं कि 'हिन्दी विश्व कोश' के कार्य के लिए वे कितने उत्सुक थे। उसी कार्य के आधार पर उन्होंने अपने भविष्य की योजना बनाई थी। पर अब जब कोई आशा नहीं दीख रही थी तो वे बहुत ही चिन्तित रहने लगे। यहाँ परिवार के पालन का प्रश्न उतना गम्भीर नहीं था, जितना कि उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न। वे इस बात को बहुत गम्भीरता से ले रहे थे, इसीलिए उनका मन चिंतित रहता था।

5 जुलाई को उन्होंने नियमित रूप से 'सप्तसिन्धु' के नये अध्याय को लिखाया। उसी दिन आगरा विश्वविद्यालय से किसी शोधकर्ता की मौखिक परीक्षा लेने के लिए उनको तार द्वारा निमंत्रण आ गया। उन्होंने जाना तय कर लिया।

## देहरा-लखनऊ-मार्ग

6 जुलाई को सुबह-सुबह ही रामदुलारे नामक परिव्राजक सागर से पैदल चलकर राहुलजी से मिलने आ गये। वह घमुक्कड़ गुरु महाराज का आशीर्वाद लेने के लिए आये थे। पंडितजी ने कहा–'यदि तुम घुमक्कड़ी करना चाहते हो, पढ़ना-सुनना भी चाहते हो तो फौरन साधु बन जाओ।' शिष्य ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की। तभी तो जब 1960 में ये परिव्राजक महाशय अपने घुमक्कड़ गुरु से मिलने हमारे दार्जिलिंग के मकान में आये, तब वह पूर्णतः साधु के रूप में थे और दाढ़ी तथा लम्बी कुंतल राशि से युक्त। भारत के चारों कोनों की सैर कर चुके थे। उस समय वह आसाम की यात्रा समाप्त करके दार्जिलिंग आये थे। पर्यटन के अनुभव पर

एक पुस्तक भी लिखी थी। घुमक्कड़ गुरु को इस उपलब्धि से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी दिन मेरठ से डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री अपनी सम्बन्धी श्रीमती सत्यवती मलिक के साथ आये। शास्त्रीजी की डी.-लिट् की थीसिस का निरीक्षण राहुलजी ने भी किया था। अब वे शास्त्रीजी को बतला रहे थे–'तत्वचिन्तामणि का भाषान्तर करें।'

उसी दिन (6 जुलाई) दोपहर बाद श्री श्यामनारायण पाण्डे (मानव भारती) को लेकर पंडितजी देहरादून गये। रात 7 बजे देहरादून से हावड़ा एक्सप्रेस पर सवार हुए। जुलाई की मैदानी गर्मी से वे काफी परेशान रहे। तब तक मैदान में वर्षा नहीं हुई थी। भूमि भी सर्वत्र तृषाक्रान्ता थी। ऐसी भीषण गर्मी में भी उन्होंने सैर करने की हिम्मत की, मुझे तो आश्चर्य होता था। लेकिन करें भी क्या ? घुमक्कड़ी-वृत्ति उन्हें कहाँ चैन लेने देती ? अगले दिन 9 बजे के बाद ट्रेन लखनऊ पहुँची। स्टेशन पर उनके स्वागत के लिए भिक्षु प्रज्ञानन्द मौजूद थे। उनके साथ पंडितजी श्री यशपालजी के गृह में (हिवेट रोड) गये। उस दिन उनके भाग्य से गगन मेघाछन्न था, अन्यथा गर्मी के मारे उनकी क्या दशा होती, उसके बारे में वे सोच भी नहीं सकते थे।

**लखनऊ :** लखनऊ में फिर लोक साहित्य समिति की बैठक हो रही थी। उसी दिन (7 जुलाई) दो बजे के बाद श्री विद्यानिवास मिश्र के साथ लोक समिति की बैठक में गये। वहाँ पर 6 सभासद जमा थे, कृष्णानन्द गुप्त महाशय नहीं आये। इसलिए बुंदेली लोक साहित्य का कितना काम हुआ, इसकी जानकारी राहुलजी को नहीं मिल सकी। किसी एक अनिल नाम के तरुण से वहाँ भेंट हुई। वह साधनसम्पन्न थे। उनसे 'कन्नौजी लोक साहित्य' को तैयार कर देने के बारे में चर्चा हुई। अन्य सहयोगियों से भी उनके अपने-अपने अंचल के लोक साहित्य को तैयार कर देने का उन्होंने आग्रह किया।

8 जुलाई को सुबह ही पंडितजी बुद्ध विहार (रिसालदार पार्क) में गये, वहाँ भिक्षु प्रज्ञानन्द से मिलना था। इतनी गर्मी में भी लखनऊ में उनका व्यस्त कार्यक्रम रहा। पहले केसरबाग में जनयुग कार्यालय में गये। वहाँ साथी रमेश सिन्हा सहित अन्य कई कामरेडों से भेंट हुई। वहाँ से वे नेशनल हेरल्ड प्रेस गये। अब वहाँ के अधिकारी कोई नये व्यक्ति थे. जो कर्मठ मालूम हुए। उन्होंने अगले महीने तक 'मध्य एशिया' की छपाई को समाप्त कर देने का उन्हें आश्वासन दिया। फिर 1 बजे के बाद डॉ. उदयनारायण तिवारी के साथ श्री विद्यानिवास मिश्र के गृह में भोजन किया। उसके बाद डॉ. तिवारी की पुत्री राजकिशोरी देवी से मिलने गये। कुछ देर वहाँ भी लग गयी। फिर 2 बजे लोक साहित्य समिति की बैठक में उपस्थित हुए। समिति का अगला अधिवेशन 15 अगस्त के दिन होना निश्चय हुआ। सायंकाल यशपालजी के गृह में एक गोष्ठी का आयोजन था। अनेक स्त्री-पुरुष आ गये। पंडितजी को भी कुछ बोलना पड़ा। वहाँ प्रश्नोत्तर और कवितापाठ भी हुआ। अब उनको कल ट्रेन द्वारा खुर्जा के लिए प्रस्थान करना था। उसी दिन उन्होंने घर में यह पत्र लिखा :

*लखनऊ*
*8-7-57*

*प्यारी,*

*मैं यहाँ कल ही पहुँच गया। गरमी की कुछ न बूज्झो। उस दिन रात के दस बजे ही राहत हुई। सारी खिड़कियाँ खुली रखनी पड़ीं। यहाँ बस पंखे के भरोसे ही जी रहा हूँ। अभी एक सप्ताह बिताना है। आज ही रात को यहाँ से चल रहा हूँ। कल की शाम को खुर्जा, अलीगढ़ होते आगरा पहुँचना है।*

*डॉ. उदयनारायण तिवारी साथ में हैं और जयगोपाल मिश्र भी। दो-चार दिन में श्री शिवगोपाल मिश्र सपत्नीक वहाँ जायेंगे। 20 को उन्हें लौट आना है, क्योंकि 22 को युनिवर्सिटी खुलेगी।*

*आशा है, तुम पढ़ रही होगी। डॉ. उदयनारायण का भी कहना है कि तुम्हें थीसिस का काम आगे बढ़ाना चाहिए। पुस्तकों को पढ़कर नोट लेती जाना। यदि इस समय थीसिस के लिए समय नहीं निकाल सकतीं, तो कभी नहीं समय मिलेगा। यहाँ से कुछ नहीं ला रहा हूँ। आगरा से लूँगा। वहाँ से सीधे देहरादून जाऊँगा। गाड़ी नौ बजे रात के बाद आयेगी 15 जुलाई को। 16 को भोजन के बाद देहरादून से चलूँगा, क्योंकि साग-सब्जी भी लेते आना है।*

*अपनी अम्मा और सबको नमस्ते कहना। सबको अच्छी तरह रखना।*

*तुम्हारा,*
*राहुल सांकृत्यायन*

**खुर्जा :** 9 जुलाई को पंडितजी सुबह ही खुर्जा के लिए रवाना हुए। गर्मी के बारे में क्या कहना ? अभी तक कहीं वर्षा नहीं हुई थी। चार घंटे के बाद वे खुर्जा पहुँच गये। यहाँ के डिग्री कालेज की ओर से उनको निमंत्रण भेजा गया था। खुर्जा नगर से डिग्री कालेज 4 मील की दूरी पर है। वे स्टेशन उतरकर वहाँ से रिक्शा से चले। रिक्शावाले को भी डिग्री कालेज का स्थान मालूम नहीं था। गर्मी से पंडितजी की क्या हालत हो गयी होगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। बड़ी खोज के बाद प्रिंसिपल एस. डी. गुप्ता का घर मिला। प्रिंसिपल गुप्ता से पंडितजी का परिचय डॉ. सत्यकेतुजी के माध्यम से मसूरी में हुआ था। गुप्तजी उस समय घर में नहीं थे, परन्तु उनके पुत्र और जामाता ने पंडितजी का हार्दिक स्वागत किया। गरमी के कारण पंडितजी 'मृतक' जैसे हो गये थे। ठण्डा पानी पीते रहे, दो बार स्नान किया। सोने में भी उनको आराम नहीं मिल रहा था, बड़ी बुरी हालत हो गई। 4 बजे के लगभग गुप्ता महाशय दिल्ली से आ गये। उनके बहुस्नेहसमादर-भाव से पंडितजी आकर्षित हो गये। कालेज में अभी तक कपाट बन्द था। उसे महाकालेज का रूप दिलवाने के लिए गुप्ताजी बहुत प्रयत्न कर रहे थे। वहाँ इस समय 1500 छात्र पढ़ रहे थे। कालेज का विशाल भवन, क्रीड़ा-क्षेत्र एवं छात्रावास भी विशाल है। मुगल काल में खुर्जा यहाँ की मिट्‌टी के बरतनों के लिए बहुत प्रसिद्ध था। आज भी वहाँ चीनी मिट्‌टी के पात्रों का उत्पादन होता है। खुर्जा के बने मिट्‌टी के प्याले, गुलदान तथा अन्य सजावट के पात्र दिल्ली में बहुत बिकते हैं।

अगले दिन (10 जुलाई) पंडितजी का डिग्री कालेज में भाषण था। तीस से अधिक अध्यापक सभा में उपस्थित थे। भाषा-समस्या के बारे में विचार-विमर्श हुआ। पंडितजी सारे दिन समालाप और पठन में लगे रहे। नियम के अनुसार रात को उन्होंने घर में एक संक्षिप्त पत्र लिखा, जो इस प्रकार है :

*खुर्जा*
*10-7-57*

*प्रिये,*

*कल सबेरे यहाँ आ गया। वर्षा नहीं है, जिसके कारण किसानों में हाहाकार और हमारे जैसों के लिए तीव्र गर्मी। प्रिंसिपल गुप्त के यहाँ पंखे का आसरा है, गर्मी में आकर पछताता हूँ।*

*12 के दोपहर को आगरा पहुँच जाऊँगा। 14 की शाम को अथवा आधी रातवाली ट्रेन से प्रस्थान करूँगा। 15 की शाम को देहरा, अगले दिन दोपहर को चलकर शाम तक तुम्हारे पास।*

*थेसिस का कुछ काम करती रहो।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

11 जुलाई को वर्षा आरम्भ होने से सबको थोड़ी राहत मिली। पंडितजी को तो शायद उस समय मसूरी का शीतल मौसम याद आ रहा था। उस दिन वे खुर्जा में ही रहे और वी. पी. मेनन की पुस्तक पढ़ते रहे, जिसमें रियासत के विलयन के बारे में प्रांजल भाषा में लिखा गया था।

**आगरा :** 12 जुलाई को वे श्री गुप्त के साथ बस-स्टेशन गये और आगरा के लिए बस पकड़ी। मार्ग में अलीगढ़, हाथरस, सैदाबाद आदि नगर पड़े। आधे घंटे के बाद ही वे आगरा पहुँच गये। रास्ते पर आम बिक रहे थे। उन्होंने भी कुछ आम खरीदे। रिक्तहस्त से किसी के यहाँ न जाना उनका सिद्धान्त था, इसीलिए। बस-स्टेशन पर ही कार लेकर पंडितजी का कोई परिचित पहुँच गया। वहाँ से वे सीधे पंडित हृषीकेश चतुर्वेदी के गृह में (किनारी बाजार) पहुँच गये। मकान खोजने में उनको दिक्कत नहीं हुई। भोजन आदि करके उन्होंने काफी देर तक आराम किया और सायंकाल 4 बजे किसी श्री निरंजन पोद्‌दार के साथ ताँगे पर सवार हो कैलाश गये। सायंकाल साढ़े 7 बजे नवीन लेखक संघ की सम्मिलनी हुई। सम्मेलन में पंडितजी का भी व्याख्यान

हुआ। प्रश्नोत्तर भी हुआ। इस सम्मिलनी में श्री हरिशंकर शर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा तथा डॉ. कमलेश भी उपस्थित थे। इन सभी साहित्यिक बन्धुओं से मिलकर राहुलजी को बड़ी प्रसन्नता हुई।

अगले दिन (13 जुलाई) का मध्याह्न भोजन श्री निरंजन पोद्दार के यहाँ था। ये बड़े प्रगतिशील विचार के व्यक्ति मालूम हुए। अस्पृश्यता-वर्जन तथा अवगुण्ठन-वर्जन आदि सामाजिक सुधार कार्य में इन्होंने बहुत काम किया था। इस समय वह मोटर-बिक्री का व्यवसाय कर रहे थे। आज आगरा विश्वविद्यालय में श्री श्याम परमार की पी-एच. डी. के लिए मौखिक परीक्षा ली गई। निरीक्षकों में पंडितजी तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी उपस्थित थे। मौखिक परीक्षा संतोषजनक हुई और परमारजी को डाक्टरेट की डिग्री मिल गई। वहाँ से निकलकर राहुलजी हिन्दी प्रतिष्ठान को देखने गये। अखिल भारतीय हिन्दी विद्यालय में अहिन्दी क्षेत्र के लोग हिन्दी-प्रशिक्षण तथा हिन्दी भाषा की शिक्षा ले रहे थे। लौटने के बाद डेरे पर ही विचारगोष्ठी आयोजित की गई।

14 जुलाई को पंडितजी नामनेर आर्यसमाज भवन में गये। इस भवन से उनका सम्बन्ध 1917-18 ई. में घनिष्ठ रूप से रहा, जो कि उस समय के आर्यसमाज के प्रचारक बनने के लिए यहाँ अध्ययन करने आये थे। अतः इस स्थान से उनकी कितनी पुरानी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। वहाँ से अभी तक साप्ताहिक पत्र निकल रहा था। भवन में बहुत-से भक्त लोग रहते थे, पर पंडितजी का किसी के साथ भी परिचय नहीं था। भवन में भी पहले से काफी परिवर्तन हो गया था। इस बार श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदी जैसे तरुण सहचर पंडितजी को मिल गये। वे पं. हृषिकेश चतुर्वेदी के सुपुत्र हैं। उनके साथ राहुलजी ताजमहल भी गये। इसका भव्य दृश्य सबके मन को आकृष्ट करता है। उसी के बहुत पास में कवि नजीर की समाधि है, किन्तु वह उपेक्षित है। उधर से लौटकर वे डॉ. कमलेश के गृह में गये। वहाँ से चाय पी, नागरी प्रचारिणी सभा में गये। वहाँ कुछ लोग एकत्र हुए थे। राहुल बाबा कुछ बोले। श्री हरिशंकर शर्मा, श्री महेन्द्र (साहित्यरत्न भंडारवाले) आये। पंडितजी वहाँ के बौद्ध विहार में भी गये। रात को कपूर परिवार के संगीत-कार्यक्रम को भी सुना। पुत्री, तीन पुत्र, उनकी जननी और पिता—सभी संगीतकला में निपुण थे। उर्दू कवि सहबाँ (मदिरा) ने कुछ रचनाएँ सुनाईं। एक कविता-पाठान्तर के बाद पंडितजी वहाँ से उठे और निद्रादेवी का अवलम्ब लेने चले आये। इस बार उनको पता लगा कि 'हृषिकेश चतुर्वेदिन तत्पुत्रस्य सतीशचन्द्रस्य चात्मीयता स्पृहणीय' (14 जुलाई)।

**मसूरी को प्रस्थान :** 14 जुलाई की रात के 7 बजे पठानकोट एक्सप्रेस से पंडितजी रवाना हुए। शयन के लिए उन्हें जगह मिल गई थी। दूसरे दिन 6 बजे सुबह दिल्ली पहुँच गये। वहाँ से देहरादून जानेवाली बम्बई-देहरा एक्सप्रेस आधे घंटे के बाद मिली। गर्मी बहुत अधिक थी। सायं 6-35 में देहरा पहुँच गये। स्टेशन पर उन्हें मेहताजी मिल गये। पहले तो उनका आज ही मसूरी चल देने का ख्याल हुआ, किन्तु वर्षाकाल में रात को घर पहुँचना कष्टदायक ही होता। यह सोचकर देहरादून में शुक्लजी के गृह में उन्होंने रात्रिवास किया। दो डाक्टरेट की थीसिस भी उनको देखनी थी। उस समय शुक्ल जी भी हृदयरोग से अस्वस्थ थे।

16 जुलाई को साढ़े सात बजे पंडितजी बस-स्टेशन गये, रास्ते में कुछ शाक-सब्जी खरीद ली और 4 रुपये में टैक्सी से किताबघर पहुँच गये। वहाँ से रिक्शा लेकर 11 बजे अपने गृह में पहुँच गये। सभी स्वस्थ थे, किन्तु जया बेटी को दो दिन से ज्वर आया हुआ था। बहुत-से पत्र आये थे, उनको पढ़कर उत्तर लिखाया। मालूम हुआ कि मेरे एक चाचा का कलिम्पोंग में निधन हो गया। इतने दिनों की यात्रा और गर्मी से थके हुए पंडितजी को मसूरी की शीतल बयार ने शांत किया। घर में आते ही काम शुरू हो गया उनका। 17 जुलाई को उन्होंने पत्रों के उत्तर लिखवाये। उसी दिन मालवी, कुल्लुई, कांगड़ी के लोक साहित्य निबंध एक साथ आ गये। उनको संशोधन और पढ़ने का काम भी करना था। दिन में श्रीमती सरला शर्मा के साथ श्री यज्ञदत्त शर्मा मिलने आये।

18 जुलाई को सुबह के समय लोक साहित्य के निबंधों का संशोधन कर टाइप करवाने लगे। भोजन के बाद नगर गये और फिल्म देखी 'मिस मेरी'। मैं भी उनके साथ गई थी। फिल्म उनकी पसन्द की नहीं थी। 19 जुलाई को भी उन्होंने लोक साहित्य निबंध का टंकन कराया। उनका उपन्यास लिखने का काम अभी

रुक गया है। इतना काम कर रहे हैं, तो भी मन सुस्थिर नहीं है। भविष्य की चिन्ताएँ बनी हुई हैं। 20 को भी वे लोक साहित्य पर काम करते रहे। 21 को हमारी माँ के साथ आये मेरे दो भाई लौट गये। अब मेरी भतीजी शांति और मेरी माँ कुछ दिन रहेंगी, यह तय हो गया। उसी दिन बड़े भाई वीर चन्द्रसिंह गढ़वालीजी आ गये। श्री गढ़वाली जी पर पंडितजी पुस्तक लिख रहे थे। उन्हीं के निमंत्रण पर वे आज आ पहुँचे। आज मैथिली लोक साहित्य का अवलोकन करते रहे। सायंकाल डाक्टर राम को देखने गये। वह अभी भी ज्वर से बीमार पड़े हुए हैं। 22 जुलाई को उन्होंने इण्डो-सोवियत कल्चरल सोसायटी के जर्नल के लिए 1857 की क्रान्ति पर दो लेख लिखकर भेज दिये। आजमगढ़ के चन्द्रशेखरजी को भी पत्र लिखकर भेज दिया। आज आन्ध्र प्रदेश से पत्र आया–तेलुगु विश्वकोश के लिए पाँच बौद्ध दार्शनिकों पर लेख मँगाये हैं। उन्होंने लिखने का निश्चय किया। ये पाँच बौद्ध दार्शनिक हैं–नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्ति। प्रत्येक दार्शनिक पर उन्होंने स्वतंत्र लेख लिखा है।

23 जुलाई को उन्होंने पाँच बौद्ध दार्शनिकों पर लिखवाना शुरू कर दिया। उसके बाद लोक साहित्य के निबंधों का काम भी किया। भोजनान्तर मुझे साथ लिये नगर गये, 'बन्दी' चित्रपट देखा। "सप्ताह में एक बार देखना चाहिए, क्योंकि कमला का मनोरंजन भी तो होना चाहिए। चायपान जुत्शी-गृह में हुआ। अपने निबंध लिखने के प्रति उत्सुक नहीं है।" अब उन्होंने कुछ कहना भी छोड़ दिया। श्री चन्द्रसिंह गढ़वाली बड़े ही सरल प्रकृति के व्यक्ति, बड़े मिलनसार और मधुरभाषी। पंडितजी पर उनका छोटे भाई जैसा ही स्नेह था। वैसे भी गढ़वालीजी सभी साथियों, यहाँ तक कि पंडित नेहरू के लिए भी बड़े भाई थे। उनकी ज्येष्ठ कन्या उस समय बी. ए. में पढ़ रही थी। उन्होंने हमारे भाई मंगलजी के साथ बेटी का ब्याह सम्बन्ध करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु पंडितजी ने उस समय मना कर दिया, क्योंकि मंगलजी उस समय सिर्फ मैट्रिक तक पढ़े थे, बाद में लड़की को पछतावा होता।

25 जुलाई को मसूरी स्थित मानव भारती संस्थान का वार्षिक अधिवेशन था। उसमें राहुलजी भी आमंत्रित थे। मुझे और जया को लेकर पंडितजी सुबह ही चल दिये। वहाँ दिन-भर का कार्यक्रम था। पंडितजी को संस्कृति-प्रतिष्ठान सुन्दर लगा। वहाँ आधुनिकता के साथ भारतीयता की भी शिक्षा दी जाती थी। संगीत, नृत्य, मूर्तिकला के शिक्षण का भी अच्छा प्रबन्ध था। सारे प्रोग्राम में भाग लेकर हम लोग रात 10 बजे घर लौटे। जया और मुझको उन्होंने रिक्शा में भेज दिया और स्वयं बड़े भाई गढ़वालीजी के साथ पैदल चले आये। घर पहुँचने पर श्री गुंठेजी का पत्र मिला, जिससे पता चला कि श्रीनिवासजी ने कागज नहीं दिया। इसलिए 'संस्कृत काव्यधारा' का छपना स्थगित हो गया है। खैर, बाद में झगड़े का निबटारा पंडितजी ने किया और पुस्तक भी छप गई।

26 जुलाई के दैनिक हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड में यह खबर छपी कि सक्य विहार (तिब्बत) में सात सौ हस्तलिखित ग्रंथ हैं, उनमें से कुछ आठवीं शताब्दी के हैं। इस खबर से पंडित जी की उत्सुकता तीव्र हो गई। वैसे भी भोट (तिब्बत) में अंतिम बार जाने की वे चेष्टा कर रहे थे, ऐसे समाचार ने आग में घी का काम किया। 27 जुलाई को भी पंच दार्शनिकों के बारे में लिखाते रहे। उनके ग्रंथों की सूची भी तैयार कर दी। उसी दिन भाई चन्द्रसिंह गढ़वाली चले गये। उनकी सरल प्रकृति ने राहुलजी का मन मोह लिया था। उधर दूसरे भैयाजी (स्वामीजी) के भी मसूरी आने की बात थी। पंडितजी उनकी बड़ी प्रतीक्षा कर रहे थे। 28 जुलाई को फिर उनके मन में ख्याल आया कि "यदि नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दी विश्वकोश का कोई निर्णय नहीं होता तो चीन (तिब्बत) गमन निश्चित है। कमला उनके साथ जाना नहीं चाहेगी तो मंगल को ले जायेंगे, यदि उनको पारपत्र मिल जाये।"

29 जुलाई को भी दिन-भर पंच दार्शनिकों के बारे में लिखाते रहे, उनकी कृतियों की सूची का भी निरीक्षण किया। भोट अनुवाद में 313 वेष्ठनी हैं, जिनमें कुल 97,530 पृष्ठ हैं और श्लोकों की कुल संख्या 83,90,000 हैं। इतने ही से पर्याप्त नहीं, चीन-भोट भाषाओं के कुछ और ग्रंथों के परिमाण का भी निर्णय आवश्यक है। कुछ दिन उनको बहुत ही एकाग्र चित्त से काम करना था। तेलुगु विश्वकोश के लिए सामग्री तैयार कर रहे थे। कहीं थोड़ी भी गलत सूचना जाये तो ठीक नहीं। किन्तु समय-समय पर उनका चित्त अस्थिर हो ही जाता

था। 30 जुलाई को भोजन के बाद नगर गये। इस वर्ष बाबा सिनेमा भी खूब देखने लगे थे। आज भी 'चोरी चोरी' फिल्म देखी, लेकिन उनको कभी भी कोई फिल्म अच्छी नहीं लगी। लगता है फिल्म देखते समय भी वे चीन के बारे में ही सोचते थे। मेरे चीन न जाने के विचार से उनको क्रोध आ रहा था। तभी तो उन्होंने लिखा—"सा चीनं गन्तुं नोत्सते। अदूरदर्शिताएव कारणम्। जीवतो मृत ग्राह्यमपि न स्वीकरोति। किं करणीयम्। मया प्रयस्यते तस्या वत्सयोश्च कृते, परं सर्वत्र शक्तेरवधिर्भवति।" (30 जुलाई)।

चीन देश चाहे उन पर सोना-रुपया की भी वर्षा कर देता, हर तरह का आराम देता, किन्तु विदेश तो विदेश ही है। लेनिनग्राद में जब वे प्रोफेसर थे, परिवार का सुख था, स्वास्थ्य था, पैसे भी खूब मिलते थे, तब भी तो उनको मानसिक सुख नहीं मिला। देश की खातिर काम करने की प्रेरणा ने उनको स्वदेश लौटने के लिए विवश कर दिया, अपने परिवार को आँसुओं के समुद्र में डुबोकर चले आये। अब तो उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं, उनकी देखभाल करने के लिए एक साथी हरदम चाहिए। चीन की राजनीति भी अलग है। सबसे बड़ी बात जीवन के छोर पर पहुँचकर विदेश में निवास करने का सपना देखना। विदेश में लाखों-करोड़ों रुपये मिल जायें, पर अपने देश का रुखा-सूखा भोजन ही पर्याप्त होता है। चीन-तिब्बत जाने की रट वे पिछले वर्ष से ही लगा रहे थे। 1956 में भी इसी बात को लेकर हम दोनों में पहली बार मनमुटाव हो गया था। उस समय मैंने उनको पत्र में लिख दिया था कि "तिब्बत जाने का मुझे कोई शौक नहीं है, इस बात से आप नाराज हो जायेंगे। मेरे न जाने पर भी आप अकेले ही जाना चाहते हैं। इससे तो अच्छा होता कि आप रूस ही चले जाते, जहाँ आपकी देखभाल करने के लिए आपका परिवार तो है।" खैर ! फिर चीन-तिब्बत को लेकर अपनी पत्नी से इतना तर्क करने की क्या आवश्यकता, जबकि उस समय तक (जुलाई 1957) चीन से कोई निमंत्रण नहीं आया था। तिब्बत अब चीन के हाथ में है। पहले की तरह जब चाहो, वहाँ प्रवेश करना अब निषिद्ध हो चुका है। जब तक चीनी सरकार अनुमति नहीं देती, तब तक वहाँ कोई भी नहीं जा सकता। पंडितजी ने चाहे पहले तिब्बत में रहकर काम किया हो, पर चीनी सरकार यह सब कहाँ देखती थी। न जाने राहुलजी को उस समय क्या हो गया था। क्यों उनका मन इतना अस्थिर रहता था ? आर्थिक चिन्ता ही मुख्य कारण नहीं था, क्योंकि हमारे देश में गरीब से गरीब प्राणी भी अपना पेट पाल सकते हैं। फिर राहुलजी की तो कभी धनसंग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं रही। सीधा-सादा जीवन बिताने में उनका विश्वास था। उनकी कमला को तो गरीबी का दुःख भोगने का बचपन से ही अभ्यास था। उस समय मैं उनसे तर्क नहीं करती थी, न मुझमें ऐसी क्षमता थी। यहाँ आयु का बहुत अन्तर होने से भी मैं चुप ही रहती थी। ज्यादा दुःख लगे तो कमरे में अकेले बैठकर रोती थी, पर अपना आँसू किसी को दिखाना मैं पसन्द नहीं करती थी। आज जब उनके बारे में सोचती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि उनको अपनी प्रतिष्ठा से ज्यादा मोह था। एक तरफ तो वे अपनी पत्नी पर अगाध प्यार की वर्षा करते थे तो दूसरी तरफ इस तरह भावी कल्पनाओं में डूबकर अपनी पत्नी को रुला-रुलाकर उसका मानसिक शोषण भी करते रहे। राहुलजी, आपको समझना ही कठिन है। जो भी हो, आप हमारे लिए सदैव श्रद्धेय रहे।

पंडितजी पर तिब्बत का जादू चल गया था। मैं कहती—"सब गरीब माता-पिता के बच्चों का अपने देश में गुजारा हो जाता है। हमारे बच्चे कोई अति विशिष्ट तो नहीं हैं। अपने समय में वे लोग भी कुछ करने लायक तो बन ही जायेंगे। अभी से उनके लिए इतनी चिन्ता करके अपना स्वास्थ्य खराब करना कौन-सी बुद्धिमानी है ?" उस समय मेरी बुद्धि इतनी परिपक्व नहीं थी, किन्तु भविष्य में होनेवाले अनिष्ट की कल्पना तो किया ही करती थी। चाहे यह अप्रिय सत्य है, किन्तु यह तो मुझे अहसास होता ही था कि अब उनका जीवन बहुत लम्बा नहीं है। इसीलिए मैं स्वदेश से बाहर उनको नहीं जाने देना चाहती थी। पर उनके परम हितैषी मित्र लोग उनको सुन्दर परामर्श दिया करते थे। उनके सामने मेरी बोली कहाँ बिकनेवाली थी ? अगर कोई उनका हितैषी मित्र उनको इस बारे में समझ देता तो शायद वे समझ भी जाते। पर कमला तो तब बेअकल थी, उसकी बातों में सार ही क्या, बकौल बलभद्र ठाकुर—'कमला के साथ तीसरे विवाह ने तो राहुलजी के जीवन को नरक ही बना दिया। नहीं तो राहुलजी शेर की तरह मस्त घूमा करते।' हाँ, शेर तब तक ही मस्त रहता

है, जब तक कि उसके शरीर में ताकत रहती है, कर्मठता रहती है। और शेर को भी शेरनी का साहचर्य चाहिए। और शेर भी एक दिन बूढ़ा होकर मर जाता है। वैसे राहुलजी के धन पर ही मेरी नजर होती तो उस समय चीन-तिब्बत जाने के उनके प्रस्ताव को मैं सहर्ष स्वीकार कर लेती। विदेश में हीं रहना पसन्द करती। पर, मुझे तो राहुलजी के स्वास्थ्य की चिन्ता थी। और अपने मन के भीतर यही सोचती थी, कि यदि उनके जीवन का अन्त होना है तो अपने ही देश में हो, अपनों के बीच में। तो बताइए, मैंने कौन-सी बुरी बात सोची थी ?

हाँ, तो इस चीन जाने के विचार ने हमारे घर में कलह उत्पन्न कर दिया। मेरा उत्तर 'ना' में होता और इससे वे चिढ़ने लगते।

किसी तरह खींचते-खींचते जुलाई का महीना समाप्त होता है।

पहली अगस्त को पंडितजी पंच दार्शनिकों में असंग और नागार्जुन के बारे में लिखाते रहे। 2 अगस्त को भी यही काम करते रहे। आज संगीत के प्रति अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा–"संगीत के विकास के लिए लोकसंगीत पर ध्यान देना चाहिए।" यह इसलिए कहा कि उस दिन प्रयाग संगीत विद्यालय के प्राचार्य श्री महेशनारायण सक्सेनाजी उनसे मिलने आये थे और संगीत पर विशेष चर्चा हुई थी।

**3 अगस्त :** लोक साहित्य सम्बन्धी अधिकांश निबंध तो आ चुके थे, पर बहुत-से लेखकों ने वचन देकर भी नहीं लिखा, इसके लिए पंडितजी चिट्ठी पर चिट्ठी भेजते, झुँझलाते भी। अभी तक (3 अगस्त) बुंदेली और डोगरी के निबंध नहीं पहुँचे थे। 4 अगस्त को 'पंच दार्शनिक' लिखाना समाप्त हो गया। सायंकाल पंडितजी डाक्टर राम के घर में गये। डाक्टर अभी बीमार ही चल रहे हैं। उनके बगल का लेडली का मकान आर्टेन 12 हजार में बिक गया। मकान बहुत बड़ा, सुन्दर और 'वेल फर्निश्ड' था। अब हमारे मकान की बिक्री की आशा क्षीण हो गई। यद्यपि खरीदते और उसमें फ्लश आदि लगाने से 20 हजार से अधिक मूल्य लग गया, किन्तु अब बेचने पर आधे दाम की भी आशा नहीं की जा सकती। अगर वह मकान नगर में होता तो बात हीं दूसरी थी। उस दिन रेडियो से पोस्टल हड़ताल की खबर सुनी। जिनका कारोबार डाक पर ही आधारित है (जैसे पंडितजी का), उनके लिए यह बुरी खबर थी। 5 अगस्त को हम नगर गये। आज वे छुट्टी के मूड में थे। नीलम उपहारगृह में मध्याह्न भोजन किया और 'मुसाफिर' फिल्म देखी। फिल्म उनको तुष्टकर नहीं लगी।

अब 'हिन्दी लोक साहित्य' के लिए 6 अगस्त तक नेपाली-भोजपुरी-मालवी-लोक साहित्य के निबंध तैयार हो गये। इनके सम्पादन में पंडितजी का बहुत समय जा रहा था। 7 अगस्त को 'नवदीक्षित बौद्ध' शीर्षक से एक लम्बा लेख लिखा , जो 'धर्मदूत' में छपा और बाद में उसे पुस्तिका के रूप में बुद्ध विहार, लखनऊ ने छापा। नेशनल हेरल्ड प्रेस फिर प्रूफ भेजने में सुस्ती दिखलाने लगे, जिससे पंडितजी को बहुत झुँझलाहट हो रही थी। अगले दिन (8 अगस्त) उन्होंने 'सप्तसिंधु' के 7 पृष्ठ लिखवाये। इस बार लोक साहित्य समिति की बैठक लखनऊ में होनेवाली थी। उनके भैया स्वामी हरिशरणानन्दजी ने लिखा कि लखनऊ के लिए उतरें तो अमृतसर भी आयें। घुमक्कड़ों को ऐसा निमंत्रण प्रलोभन देता है, पंडितजी को तब न गर्मी की चिन्ता होती, न यात्रा की थकावट की, बल्कि उनमें तरुणों की-सी स्फूर्ति आ जाती।

10 अगस्त को भी उन्होंने 'सप्तसिंधु' का दूसरा अध्याय लिखाया। उस दिन भी दिल्ली से कुछ व्यक्ति हर्न-क्लिफ को देखने आये। खरीदेंगे, यह संदिग्ध था। 11 अगस्त को मध्याह्न में राहुलजी के पुराने साथी पी. सी. जोशी हमारे घर आये। लोक साहित्य-विषय में दोनों मित्रों के बीच देर तक वार्तालाप होता रहा। "जोशी जी का साहित्य–विशेषकर लोक साहित्य पर विशेष अनुराग है। इन्होंने इस क्षेत्र में बहुत काम भी किया है। स्वयं कुमाऊँ अंचल के हैं।" 'सप्तसिंधु' का तीसरा अध्याय लिखकर समाप्त किया। दूसरे दिन 12 अगस्त को जोशीजी सबेरे आ गये। दोनों मित्रों का पार्टी के सिद्धांत के बारे में वार्तालाप हुआ। वे अपराह्न में चले गये। कल पंडितजी को भी लखनऊ के लिए प्रस्थान करना था। इसलिए 'सप्तसिंधु' के तीसरे अध्याय का लिखवाना आज ही समाप्त किया।

**लखनऊ :** 13 अगस्त को जया और मुझे लेकर पंडितजी सुबह ही घर से रवाना हुए। 11 बजे देहरादून में शुक्लजी के गृह में पहुँचे। दिन-भर वे श्री रूपनारायण मिश्र तथा सदानन्द मेहता के निबंध को देखते रहे। शाम की गाड़ी से उन्हें लखनऊ के लिए प्रस्थान करना था। उनको छोड़ने के लिए मैं और जया भी रेलवे स्टेशन तक गई और दूसरे दिन मसूरी लौट आईं।

राहुलजी 14 अगस्त की सुबह को ही लखनऊ पहुँच गये और स्टेशन से सीधे श्री यशपाल के गृह में गये। प्रज्ञानन्दजी से स्टेशन पर ही भेंट हो गई। चाय-पान के बाद वे नेशनल हेरल्ड प्रेस गये और पुस्तक को जल्दी मुद्रित कर देने के लिए ताकीद की। उधर से बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क गये। वहीं पर सायंकाल उनको बौद्ध धर्म पर भाषण देना था। रात को लोक साहित्य-समिति द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने गये। कुमाऊँ के लोकगीत उनको सबसे अधिक सुन्दर लगे।

15 अगस्त को सुबह ही नवस्थापित बौद्ध विद्यालय देखने गये, जो अभी एक माह पहले स्थापित हुआ था, तो भी वहाँ छात्र बड़ी संख्या में थे और अध्यापक भी योग्य। लौटकर 2 बजे वे सूचनाकेन्द्र में गये, जहाँ लोक समिति की बैठक हो रही थी। वहाँ बहुत-से परिचित लोग आये हुए थे। रात को कवि-सम्मेलन में उनको बड़ी देर तक बैठना पड़ा। डेरे पर लौटने के लिए वाहन की भी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। बड़ी तकलीफ हुई उनको, इसलिए उसी दिन उन्होंने निश्चय किया कि "आगे से लोक साहित्य समिति में जायेंगे, पर रात को नहीं।"

16 अगस्त को भी पंडितजी लखनऊ में ही थे। यशपालजी के यहाँ वैसे भी कवि-गोष्ठी या विचार-गोष्ठी का आयोजन प्रायः होता ही रहता, फिर जब महापंडित राहुल सांकृत्यायनजी वहाँ उपस्थित हों तो गोष्ठी अनिवार्य थी। उस दिन प्रातःकाल से मध्य दिन तक गोष्ठी चलती रही। डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने मास्को के बारे में कहा। श्री अमलपुष्प सिन्हा (श्री रामचन्द्र सिन्हा वकील के पुत्र) ने असम की खसिया जाति पर व्याख्यान दिया। उन्होंने बतलाया कि ईसाई धर्म प्रचार ने उनकी जातीयता-राष्ट्रीयता की भावना को भ्रष्ट कर दिया है। श्री अमलपुष्पजी उन दिनों एन्थ्रापोलोजी विषय पर शोधकार्य कर रहे थे।

उस दिन मध्याह्न में भिक्षु प्रज्ञानन्द के साथ वे किन्हीं लाला महाशय के यहाँ भोजनार्थ गये। उनके पिता भी बुद्ध के भक्त थे, शायद पुत्र का प्रभाव हो। दोपहर को बहुत वृष्टि होने लगी। इसीलिए इधर-उधर घूमना नहीं हो सका। वहाँ से वे सीधे लोक साहित्य समिति में गये, उसके बाद किसी गोष्ठी में गये। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सभापति के आसन पर थे। उन्होंने सुभाषित किया, अन्य सदस्य भी कुछ बोले। सीतापुर के श्री वंशीधर शुक्ल (नेत्रहीन कवि) भी वहाँ उपस्थित थे, जो लोकगायक थे। समिति ने उनकी कविता-पुस्तक को प्रकाशित करने का निश्चय किया। गोष्ठी में कुछ देर बाद तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी महोदय भी पधारे। चाय-पान के अनन्तर पंडितजी डेरे पर लौट आये। रात को सूचना भवन में कठपुतली-नृत्य का आयोजन था, परन्तु वे नहीं गये।

17 अगस्त को भी बरेली के आसपास वृष्टि हो रही थी। ग्रीष्म के ताप से संतप्त थे पंडितजी, पर घुमक्कड़ी का आकर्षण ! नेशनल हेरल्ड प्रेस में गये। यहाँ के कार्य में ढिलाई के कारण पंडितजी बड़े क्षुब्ध थे। फिर साथी रमेश सिन्हा से 'जनयुग' कार्यालय में देर तक बातें कीं। आज उन्हें अमृतसर जाना था, तीन बजे के करीब अमृतसर मेल में वे चढ़े भी थे। परन्तु मेरी भेजी चिट्ठी उनके चले जाने के बाद यशपालजी के घर पहुँची। वहाँ से कोई आदमी दौड़ता हुआ स्टेशन जाकर उनको पत्र दे आया। बिना सोचे-समझे यात्रा करने में अपनी ही हानि होती है। स्वामीजी ने उनको अभी अमृतसर न आने के लिए लिखा था, वह समाचार मैंने पंडितजी को तुरन्त लिख भेजा था। वे अमृतसर जानेवाली ट्रेन से उतर गये और रात को देहरा-एक्सप्रेस में चढ़ गये। 18 तारीख को सुबह लुक्सर में ट्रेन दो घंटे लेट थी। इस प्रकार 10 बजे दिन में वे देहरादून पहुँच गये। आज कृष्णाष्टमी का दिन। शुक्लजी के गृह में सब उपवास कर रहे थे। पंडितजी को भी उपवास करने में कोई आपत्ति नहीं हुई। आज टैक्सी भी नहीं मिल रही थी, अतः उन्हें रात को देहरादून ही ठहरना पड़ा।

**मूसरी :** 19 अगस्त को सुबह से ही वर्षा हो रही थी। पंडितजी 10 बजे के बाद टैक्सी से रवाना हुए

और 12 बजे के बाद घर आ गये। घर में सभी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, अतः उनके लिए 'गृहं गृहमेव'। लोक साहित्य के निबंधों को सम्पादित करने के लिए अब उसमें मनोयोग देना आवश्यक था, अतः घर आते ही वे उसी काम में व्यक्त हो गये। 21 अगस्त को भी लोक साहित्य के निबंधों को देखने में व्यतीत किया।

मेरी माँ को यहाँ आये करीब डेढ़ महीना हो रहा था। यहाँ उनका बिल्कुल ही मन नहीं लगता था। वे पढ़ी-लिखी नहीं हैं, हिन्दी बोलनी भी नहीं आती, पंडितजी से उन्हें बहुत संकोच होता था। बेटी के घर में ज्यादा दिन रहना उनको पसन्द नहीं, क्योंकि वे पुराने संस्कारों में पली हुई हैं, आज तक उन्होंने अपनी परम्परा का पालन किया है। गरीब है तो क्या वह मनुष्य नहीं होता है। मेरी माँ बड़ी स्वाभिमानिनी महिला रहीं। वे भी जब युवती थीं, तभी विधवा हो गयीं। बहुत संघर्ष करके उन्होंने हम पाँच भाई-बहनों का पालन-पोषण किया, पढ़ाया-लिखाया। वह खुद काम करके अर्जन करनेवाली महिला रहीं। जब तक उनका शरीर स्वस्थ रहा, उन्होंने किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। मसूरी में उनका मन कैसे लगता ? पंडितजी ने सोचा था कि वे हमारे घर में खुश रहेंगी, गृहकार्य में वे सहायता करेंगी। पर जो स्वयं अर्जन करके अपने परिवार के पालनेवाला व्यक्ति हो, वह दूसरे की दया पर कितने दिन तक जीना चाहेगा ? मेरी माँ अब बहुत वृद्धा हैं, पर किसी के सामने आज भी वे झुकती नहीं। पंडितजी भी उनका सम्मान करते थे, पर यदि उनका यहाँ मन नहीं लगता तो उनको रोके रखना भी ठीक नहीं। मेरे चचेरे भाई की अकेली लड़की शांति भी उनके साथ आई थी, उसके माता-पिता भी उसको जल्दी ही लौट आने के लिए चिट्ठी पर चिट्ठी भेज रहे थे। इसलिए पंडितजी ने लिखा–"जब किसी का सहयोग नहीं मिलता तो स्वावलम्बनमेव शरणम्।"

अब प्रश्न उठा कि माँ को पहुँचाने कौन जायेगा ? घर में पुरुषों में राहुलजी और मंगलजी हैं, नौकर नहीं है। दोनों पुरुष कार्य व्यस्त हैं। यदि मंगलजी जाते, तो पंडितजी का काम ही रुक जाता। माँ और भतीजी को अकेले इतनी दूर भेज भी नहीं सकते। किसको जाना होगा ? हम सोचते ही रहे। "यदि कोई नहीं जायेगा तो मैं ही जाकर पहुँचा दूँगी।" जब मैंने यह बात कही तो पण्डितजी चौंक गये, सभी चकित हो गये किंतु पंडितजी को खुशी भी हुई और लिखा–"परं तस्या भयनिर्मुक्तिः स्वतंत्र च आवश्यक।" (21 अगस्त)

23 अगस्त को लोक साहित्य के और निबंध–राजस्थानी और डोगरी के–मिले। वे इनका सम्पादन करने में व्यस्त हो गये। आज घर में पंडितजी के कुछ मेहमान आनेवाले थे। हम लोग सुबह से ही भोजन आदि की तैयारी में लगे हुए थे। तभी अचानक मेरी तबियत खराब हो गई, सिर चकराना, सिर-दर्द और हृदय-पीड़ा एक साथ। दो दिन तक चारपाई से उठ नहीं सकी। उन्होंने मेरी खूब तीमारदारी की, मेरे पास ही बैठे रहे। मेरी बीमारी से वे घबरा गये थे। वैसे तो मैं नीरोग ही रही, किन्तु इधर घर के तनाव और पंडितजी के रूखे व्यवहार के कारण मन बड़ा दुःखी रहता था। फिर मैं ज्यादा उनके स्वास्थ्य का ही ध्यान रखती थी, अपने बारे में बेपरवाह थी। मेरे बीमार पड़ने से सबको ही तकलीफ होती थी। खैर, उस समय मेरी माँ वहाँ मौजूद थीं। भीतर का काम उन्होंने सँभाल लिया।

अगले दिन 24 अगस्त को वे नगर गये। भोजन जुत्शीजी के यहाँ किया और उन्हीं लोगों के साथ उन्होंने 'नया दौर' फिल्म देखी। जब चित्रपट उनको अच्छे लगते ही नहीं थे, तो मालूम नहीं वे क्यों देखते रहते थे ? सायंकाल छः बजे वे घर लौट आये। पंडितजी को मेरे कलिम्पोंग जाने के नाम से चिढ़ हो रही थी। और मेरी बीमारी से भी चिन्तित। अतः 23 अगस्त को उन्होंने लिखा–'सार्धैकादश वादने कमलायाः घूर्णितं, मस्तिष्कं हृदयं व सम्पीड़ितम्। कपाट आलम्बितो व्यथा सम्पतिता स्याद्: हृदरोगस्य न कि मप्यौषधम्। औषधः सर्वं वान्तम्। न किमपि भुक्तम्। अथापि सा जिगयिषति कालिम्पोंगम्। निवारण व्यर्थम्। गच्छतु नाम। हृदयरोग विशेषज्ञो अत्र दुर्लभाः बहुशुल्काश्च।"

25 अगस्त को डॉ. उषा जुत्शी अपनी माँ के साथ आईं। उन्होंने मेरी डाक्टरी जाँच की, दवाइयाँ भी लिख दीं। परन्तु मैं दवाइयों का सेवन करूँगी, इसमें भी पंडितजी को संदेह था। उनके इस व्यवहार से तो मुझे असह्य दुःख होने लगा। नौकरी करने के लिए कहीं अन्यत्र जाने भी नहीं देते थे। उस समय गन्तोक (सिक्किम) से मुझे तार मिला था कि वहाँ के बालिका उच्चविद्यालय में अध्यापन के लिए शीघ्र आ जाऊँ। इतनी दूर तो

वे कतई जाने नहीं देंगे, यह मुझे मालूम ही था। मेरे घर में न रहने से उनकी देखभाल अच्छी तरह से कौन करता, यह उनको अच्छी तरह मालूम था। पर, हर समय चिड़चिड़ करते रहना आखिर किसको अच्छा लगता ? चीन जाने के लिए मैं तैयार नहीं, उस पर भी उनको गुस्सा, मैं अध्ययन में मन नहीं लगाती, इस पर भी गुस्सा। मैं दवा शायद न लूँगी, इस पर भी पहले से ही संदेह। आखिर इतना कड़वापन कौन बर्दाश्त करता ?

उन दिनों उनके व्यवहार को देखकर मुझे बड़ा विचित्र लगता था। क्या हुआ है इनको ? क्यों इतने उखड़े-उखड़े रहते हैं। हमने इनका क्या बिगाड़ा है। मेरे खिलाफ उनके कान भरनेवालों की कमी नहीं थी। बाहर के लिए पंडितजी चाहे कितने बड़े विद्वान् और महान व्यक्ति क्यों न हों, पर आदमी की सच्ची परख करने की शक्ति शायद तब उनमें नहीं थी। वह पत्नी के दोषों के बारे में अपने एक-दो खास मित्रों को लिखकर उनसे सलाह माँगते, परन्तु मैंने तब तक उनके बारे में किसी से भी एक शब्द तक नहीं कहा था। उनके रूखेपन को चुपचाप सहन करते रहने का यह दण्ड मुझे मिल रहा था। हमारे आसपास भी ऐसे तत्व मौजूद थे, जो हमारे घर को तोड़ने के लिए बहुत प्रयत्नशील थे। एक तो हमारे दरवाजे पर ही बैठी हुई थी, जो मुझसे नफरत करती थी। ऐसे तत्वों की सलाह हमारे स्वामी बड़े प्रेम से सुनते और प्रतिक्रियास्वरूप मुझसे रुष्ट रहते। इसीलिए मामूली बीमारी को मैं चुपचाप ही सह लेती थी। पर कोई बहुत विवश हो जाये तो क्या करे। 27 अगस्त को वे बाजार जाकर मेरे लिए दवाइयाँ ले आये। उनका तो अभी एक पैर घर से बाहर ही रहता था और बाहर से निमंत्रण भी नित्य आते रहते। 27 को भी कहीं से निमंत्रण आ गया। अब बच्चों की शिक्षा के बारे में भी सोच रहे थे। अंग्रेजी शिशुशाला में न देकर उन्हें गुरुकुल में देने की बात सोचने लगे।

28 और 29 अगस्त को पंडितजी लोक साहित्य के विविध निबंधों के सम्पादन में व्यस्त रहे। अभी भी पूरे निबंध नहीं मिले थे। शांतचित्त से काम करते रहें तो घर के लोगों को भी अच्छा लगता था। 30 अगस्त को भी मेरे पेट में भयंकर पीड़ा होने लगी। लगता था, अपेन्डिसाइटिस का दर्द है। उस जंगल में दवाई भी तो झट से नहीं मिलती। दर्द इतना असह्य हो रहा था कि लगता था, मेरी जान ही चली जायेगी। मेरे स्वस्थ रहने पर वे चाहे जितना ही चिढ़ते रहें, लेकिन मेरे इस तरह बीमार पड़ने पर तो वे परेशान हो जाते थे। उनको बड़ी तकलीफ होती थी। इस बार भी मुझे तीन दिन तक बिस्तर पर ही पड़े रहना पड़ा। वे मेरे पास ही बैठे रहे, पेनिसिलीन के इंजेक्शन दिये, गरम पानी पिलाते रहे। जया-जेता का भी ध्यान रखते रहे। ऐसे समय में पंडितजी का महामानव रूप प्रकट हो जाता था। काश, कि वे किसी की बातों में न आते।

## सिद्धान्त के प्रति निष्ठा

उन दिनों पंजाब में हिन्दी-पंजाबी का आन्दोलन चल रहा था। हिन्दी का पक्ष लेनेवाले नर-नारी को जेल भेज दिया जा रहा था। आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। आन्दोलन शीघ्र शांत होगा, अभी इसकी कोई उम्मीद नहीं थी। अब इस झगड़े में उभयपक्ष में समझौता कराने की जरूरत थी। इस कार्य का जिम्मा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने ले लिया। मध्यस्थता के लिए एक योग्य व्यक्ति की पार्टी को तलाश थी। इस प्रस्ताव को लेकर साथी सच्चिदानन्द शर्मा 1 सितम्बर को दिल्ली से हमारे घर आये। प्रस्ताव को पंडितजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। आन्दोलन चाहे कितना ही भयाकृत क्यों न हो, वे जायेंगे ही। आखिर पार्टी का आदेश जो था। उन्होंने लिखा—"कमलाऽप्रसन्ना, विरोधे सन्नद्धा··· कारा मृत्युभयं सर्वत्रं तया दृश्यते।" हाँ, मैंने उनके जाने का घोर विरोध किया। विरोध किसी अन्य कारण से नहीं। वृद्ध शरीर है उनका, वहाँ अमृतसर में हिन्दी-पंजाबी कितने ही जेल पहुँचाये जा रहे थे। इस बुढ़ापे में जेल जाने में कौन-सा लाभ था? उनकी बातों को पंजाबी के पक्षधर सुनेंगे ही, इसकी क्या गारंटी थी ? पार्टीवालों को और कोई तरुण या प्रौढ़ व्यक्ति नहीं मिला। आदेश देनेवालों ने यह नहीं देखा कि राहुलजी अब वह पहले के 'डेरिंग राहुलजी' नहीं हैं। अब तो भोजन करने से पहले रोज इन्सुलिन की शरण लेनी पड़ती है, और भी कई शारीरिक कष्ट हैं उनको। आखिर हम लोग तो राहुलजी के हितैषी थे, शत्रु तो नहीं। हम उनका बुरा कभी नहीं चाहते थे। इसी बात पर पहली बार

हमारा झगड़ा हो गया। मैं भी उनसे बहस करने के लिए तत्पर हो गई। चार दिन के लिए आपस में बोलचाल बन्द हो गई। यह हमारे सम्मिलित जीवन में पहली और अंतिम घटना थी। इस तरह का मनमुटाव इससे पहले और बाद में कभी नहीं हुआ। वैसे हम दोनों में कोई झगड़ा हो जाये, यह अन्य लोगों को कभी पता नहीं लगता था, क्योंकि बाहर से हम लोगों के आपसी व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता। इस बार वे भी झुकने को तैयार नहीं थे, और मैं भी सोचती थी—इस आयु में उनको अमृतसर जाने में रोककर मैंने कोई बुरा काम नहीं किया है। इसलिए मैं भी सिर झुकाने को तैयार नहीं थी। आखिर इतने दिनों से उनकी ज्यादती को मैं चुपचाप बर्दाश्त करती आ रही थी, आदमी की सहनशक्ति की भी एक सीमा होती है। वे आधे समय तो घर से बाहर ही रहते थे। घर में भी उनके मनोरंजन के लिए इष्ट-मित्र आते ही रहते थे। मेरा काम होता उन लोगों की खातिरदारी करना। मैं काम करते-करते थकती भी होऊँगी। मुझे भी तो मनोरंजन चाहिए। यह नहीं सोचना। जंगल के घर में निवास है, न कहीं आना न जाना। मेरे लिए वे ही तो एक साथी हैं, पर वे भी इस तरह हमसे दूर-दूर रहते हैं, यह सोचकर मेरा मन बहुत रो रहा था। 1957 का वर्ष मेरे लिए 'अभिशप्त वर्ष' रहा। क्या पार्टी के भीतर मीडिएटर बनाये जानेवाला और कोई नहीं था ? इन्हीं को क्यों चुना गया, जो अनेक व्याधियों से ग्रस्त थे। उनको अपने शरीर का भी तो ख्याल रखना चाहिए। सो, मैं भी इस बार अड़ गई। यह झगड़ा हम दोनों के बीच ही अकेले में हुआ, किसी और को पता लगने नहीं दिया।

श्री सच्चिदा अगले दिन 2 सितम्बर को दिल्ली लौट गये। हम दोनों अपनी-अपनी धुन में ही रहे। उनका लिखने-लिखाने का काम यथावत् रहा, कोई गत्यवरोध नहीं, पर हमने बोलचाल बन्द रखी। 3 सितम्बर को भी वे लोक साहित्य पर काम करते रहे। आज कई भाषाओं के निबंध संशोधित और टाइप कर काशी भेजने के लिए तैयार हो गये। डॉ. त्रिगुणायत की डी. लिट्. की थीसिस भी निरीक्षण के लिए पंडितजी के पास आ गई। इस शीतयुद्ध के समय उन्होंने अपने अपको काम में ही व्यस्त रखा। बच्चों से थोड़ा-थोड़ा बोल लेते थे। 4 सितम्बर को जया-जेता दोनों ज्वराक्रान्त हो गये, दोनों को क्रमशः 103° और 102° ताप रहा। अब मुश्किल में पड़ गये। मैं दोनों बच्चों को अपनी गोद में लेकर बैठी रही। इस बार इन दोनों पर फ्लू का तीसरा आक्रमण हुआ। उस दिन सुबह भी पंडितजी नहीं बोल रहे थे। परन्तु अब चुप रहने से भी काम कैसे चलता। हमारे घर के नीचे जौनसारी गाँव पड़ता था। वहाँ के गाँववाले कभी-कभी ताजी हरी सब्जियाँ हमारे घर बेचने लाते थे। खरीदारी मैं ही किया करती थी पहले से। उस समय पंडितजी काम में व्यस्त थे, सो मुझे आवाज देना अनिवार्य हो गया। आवाज न देकर वे स्वयं कमरे में आये और मेरे कन्धे को छूकर बोले—"रानी, जाओ सब्जी ले लो।" मैं तो रूठी हुई थी, बोली—"आप ही ले लीजिए न, यह काम आप भी तो कर सकते हैं।" वे अब बुरा नहीं मान रहे थे, मुस्कराकर मुझे आलिंगन में बाँधकर फिर बाहर चले आये। खैर, चार दिन का यह 'वाग्विलासावरोध' उसी क्षण 'त्यक्त' कर दिया। इसके बाद इस तरह का मौन युद्ध फिर हमारे बीच कभी नहीं हुआ।

उस समय के झगड़े से मुझे पता लगा था कि कम्युनिस्ट पार्टी उनको कितनी प्यारी थी, पार्टी के सिद्धांत उनको कितने प्यारे थे और सिद्धान्त की लड़ाई में वे कितने दृढ़ थे।

5 सितम्बर को वे शांत चित्त से लोक साहित्य का काम दिन-भर करते रहे।

**अभिनन्दन :** 6 सितम्बर को जुत्शीजी के घर में एक विशेष पार्टी थी। उसमें हम दोनों आमंत्रित थे। भोजनान्तर हम दोनों गये। अभी तक यह ज्ञात नहीं था कि किस खुशी में पार्टी दी जा रही है। वहाँ जाने पर पता लगा कि जुत्शी दम्पती राहुलजी का अभिनन्दन कर उनको मानपत्र देना चाहते हैं। समारोह में अनेक वयोवृद्ध परिचित व्यक्ति आमंत्रित थे। मोहिनी महाशया ने अपनी कविताएँ मानपत्र के रूप में पंडितजी को समर्पित कीं। डॉ. सत्यकेतुजी ने पंडितजी के गुणों का परिचय दिया। श्रद्धेय 'सर' सीतारामजी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। बहुत सुन्दर समारोह हुआ। चाय-पान का भी अच्छा प्रबन्ध किया गया था। वैसे भी जुत्शी परिवार का हम लोगों के प्रति सदैव स्नेह बना रहा। आज का यह समारोह तो विशिष्ट था।

कलिम्पोंग जाने का समय निकट आया। प्रश्न खड़ा हुआ, हमारे जाने पर पंडितजी और मंगलजी के

भोजन की क्या व्यवस्था होगी ? उस समय घर में नौकर नहीं था। मंगलजी चाय-नाश्ता तो दे सकते हैं, पर भोजन बनाने का उनको समय नहीं मिलेगा, क्योंकि उनको पंडितजी के लिखने का काम करना है। पड़ोस में ठाकुरानी गुलाबकुमारी रहती ही थी। वह पंडितजी और मंगलजी तथा हमारे अल्शेशियन कुत्ते भूत के भोजन का इन्तजाम करने को राजी हो गई। इस बहाने वह आपने चाचाजी की देखभाल भी कर सकती थी। खैर, मरता क्या न करता। मजबूर होकर मैंने उसकी सहायता को स्वीकार किया। मैं बहुत जल्दी ही लौट आनेवाली थी, सिर्फ सप्ताह-भर की बात थी। पंडितजी को कोई कष्ट न हो, इसीलिए मुझे यह व्यवस्था करनी पड़ी।

7 सितम्बर को 9 बजे सुबह मैं जया-जेता को लेकर माँ और शांति को पहुँचाने कलिम्पोंग के लिए चल पड़ी। उस दिन पंडितजी ने अपनी डायरी में लिखा–"9 वादने प्रातः कमला सर्वेस्सह गता कालिम्पोंगम्। वत्सयो ज्वरांश असीदेव, परं मातृगृहाभिमुखेन हृतयेन वनिता न किमपि गणयंति। शुभाःस्युः पंथान इत्यमेवाशासे।··· शून्यभिव गृहं प्रतिभाति। गृहं प्राक्र पूर्णमिवासीत्।

भोटगमनायार्थिक चिंता न प्रेरिका, तत्र प्रतीक्षमाणं कृत्यमपि वलवदाहरति। कमला च न जिगषिति। तार्हि सा तिष्ठतु कालिम्पोंगे।"

मुझे भेजने में उनको कोई आपत्ति नहीं थीं, क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में वह दूसरा काम करना चाहते थे। इसके बारे में उनके पत्र से ज्ञात हुआ। उनके अमृतसर जाने के कार्यक्रम के लिए मैंने जो कड़ा विरोध किया था, उस समय वे चुप लगा गये। किन्तु मन-ही-मन उन्होंने जाने का निश्चय कर रखा था। दोस्तों को पत्र भी लिख दिये थे। 8 सितम्बर को प्रस्थान करना उन्होंने तय कर रखा था। घर को देखने के लिए मंगल जी थे ही। मुझे तो उन्होंने अपना प्रोग्राम उस समय नहीं बतलाया, पर मेरे कलिम्पोंग पहुँचते ही उनका पत्र मिला, जिसमें मुझे आदेश दिया गया था कि–मुझे कलिम्पोंग रहना पसन्द है। स्वजनों के बीच में वहाँ रहूँ तो उन्हें भी सन्तोष होगा। वह अमुक तिथि को अमृतसर में हिन्दी-पंजाबी आन्दोलन में मीडियेटर बनकर जायेंगे। उधर से लौटकर इस मकान की बिक्री करके चीन (भोट) चले जायेंगे। यदि 'हिन्दी विश्वकोश' का फैसला हो गया और उनकी नियुक्ति हो जाय तो वे काशी चले जायेंगे काम करने और मुझे भी वहाँ आना होगा। यदि मैं वहाँ भोट जाना नहीं चाहती तो वे दबाव भी नहीं डालेंगे। किन्तु वे जायेंगे ही। मुझे कलिम्पोंग तथा गन्तोक में तब तक के लिए काम स्वीकार करने की सलाह दी। वे साल में दो महीने के लिए भारत आयेंगे। चूँकि ल्हासा से कलिम्पोंग के रास्ते भारत आने में बड़ी सुविधा है, इसलिए मेरे कलिम्पोंग रहने में उनको कोई आपत्ति नहीं।

जो बात वे मुँह से कह नहीं सके, उसे पत्र द्वारा इस तरह व्यक्त किया। मेरे ऊपर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई होगी, इसे बतलाने के लिए मेरे पास शब्द ही नहीं। खैर, उस समय तो उन्होंने मेरे विरोध की पर्वाह नहीं की, किंतु प्रकृति ने तो उनके अमृतसर जाने में रुकावट डाली ही।

हमारे चले जाने के बाद उनको पूरा काम करने का समय मिला। लोक साहित्य के कार्य को लगभग खत्म ही कर दिया। 8 सितम्बर को जुत्शी दम्पती उनसे मिलने आये। दिन अच्छी तरह से कटा। उसी रात को उनको ज्वर हो गया, रात को 102° ताप रहा। 9 सितम्बर को भी ज्वर 102° ही रहा। यदि मध्याह्न तक ज्वर 99° से अधिक ही रहा तो उनका जाना सम्भव नहीं है, यह उन्होंने सोच लिया। पर ज्वर 102° से कम नहीं हुआ। उनकी सेवा में मंगलजी और गुलाबकुमारी थी। रात को फिर उनका बुखार चढ़ने लगा, तो सब लोग घबरा गये। मंगलजी ने जुत्शीजी को फोन कर दिया। जुत्शीजी भी दौड़े-दौड़े आ गये। पंडितजी ने अब 'नगंतव्य मिति' का निश्चय कर लिया। 10 सितम्बर को भी उनका ज्वर कम नहीं हुआ। डाक्टर राम की पत्नी ने (जो एक कुशल नर्स थीं) पंडितजी को इंजेक्शन लगा दिया। डॉ. उषा जुत्शी ने भी आकर उनके शरीर की जाँच की। ज्वर से पीड़ित हो बिस्तर पर पड़े-पड़े भी वे सोच रहे थे–"पंचनदे हिन्दीकृते किमपि करणीयमिति मे मनो मनस्यावासीदत्।" (10 सितम्बर) कमरे में उनको सूना-सूना लगता था, बच्चों की किलकारी की याद आती थी। इसलिए मंगलजी को अपने कमरे में सुलाया, ताकि वे उनकी देखभाल कर सकें। 11 सितम्बर को भी उनको ज्वर आया। ज्वर-ग्रस्त होने पर वे उपवास रखते थे, किन्तु शरीर दुर्बल हो रहा था। इसलिए

आज कुछ दूध और पावरोटी ली। "रोगि परिचर्याऽत्तीव सौहार्देन ठाकुराणी गुलाबकुमार्या कृता।" तेज ज्वर दो दिन रहा, पर लगता था कि बहुत दिनों से आ रहा है। शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया है। 12 सितम्बर को ज्वर उतर गया। उस दिन उनको पलामू और अल्मोड़ा से अक्तूबर में आने के लिए दो निमंत्रण मिले। जाने के लिए पंडितजी झटपट तैयार। इतना ही नहीं, अक्तूबर मास में छत्रपुर जाने का भी बुलावा आया। नवम्बर में पलामू जायेंगे। यह प्रोग्राम पहले से ही बना डाला। 12 से 14 सितम्बर में उनको बुखार तो नहीं रहा, किन्तु बहुत कमजोरी महसूस कर रहे थे। 13 तारीख को उनको लखनऊ से प्रज्ञानन्द जी द्वारा भेजा तार मिल गया, जिससे पता चला कि "कमला सकुशल लखनऊ पहुँच गई।" उस दिन शैया पर लेटे-लेटे ही काम करते रहे। दो मित्र श्यामनारायण पाण्डे तथा कैप्टन शुक्ल उनको देखने आये। 14 को उन्होंने पथ्य लिया, जिसमें दो उबले अण्डे, दो पाव दूध, पोटल की सूप तथा आधा फुलका। भूख अभी नहीं लगती थी। फिर भी शरीर के लिए खाना ही था। 15 सितम्बर (रविवार) को डा. उषा जुत्शी अपने माता-पिता के साथ पंडितजी को देखने आईं। और भी कई लोग उनसे मिलने आये। उस दिन भी पंडितजी शैया पर लेटे ही 'मैथिली लोक साहित्य' वाला निबंध पढ़ते रहे। 16 सितम्बर को भी शायद उनको उम्मीद थी कि वे अमृतसर जा सकेंगे। अब जाने का ख्याल छोड़ दिया।

कमजोरी के कारण अभी वे हाथ से नहीं लिख पा रहे थे। परिवार की याद भी उनको आ रही थी। मेरी चिट्ठी उनको मिल गई थी। उनको मालूम हुआ कि जया को फिर लखनऊ में ज्वर आ गया और ऐसी ही अवस्था में वह कलिम्पोंग गई। उनको बहुत दुःख हुआ। मंगलजी से एक पत्र टाइप करवा कर मेरे नाम भेजा :

*मसूरी*
*16-9-57*

*रानी,*

*बुखार के कारण मैं पंजाब नहीं जा सका। बुखार और जुकाम अब नहीं है, कमजोरी है जो अच्छी हो जायेगी। अभी बाहर जाना नहीं है। यह जानकर चिन्ता हुई कि जया को बुखार आ गया। उनके स्वास्थ्य के बारे में लिखती रहो। विस्तृत पत्र पीछे लिखूँगा।*

*यहाँ सब ठीक है।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

17 सितम्बर को वे 'मगही लोक साहित्य' का अवलोकन करते रहे। 18 को हाथ में आये निबंधों को देखकर समाप्त किया। 18 को हमारे पड़ोसी डाक्टर राम सपरिवार फर्रुखाबाद के लिए रवाना हो गये। उनको विदा देने पंडितजी चार्लविल फाटक तक गये। इतने दिनों तक बिस्तर में पड़े रहने के कारण आज उनको चलने में कठिनाई हो रही थी। अपना समाचार देते हुए उन्होंने फिर मंगलजी से टाइप करवाकर दूसरा पत्र भेजा—जो इस प्रकार है :

*हर्न क्लिफ, मसूरी*
*18-9-57*

*रानी,*

*आज मकान के गाहक आये। मकान देख लिया। तीन-चार सौ रुपया खर्च करके मकान देखने आये थे, इसलिए सौदा पटने की पूरी उम्मीद है। उनकी पत्नी हरद्वार ठहर गई हैं। दो-तीन दिन में आ जायेंगे और बात पक्की हो जायेगी। लिखा-पढ़ी के लिए या तुम्हें आना है या वकील साहेब से पूछ लो। शायद पावर ऑफ अटर्नी से काम चल जाय। अधिकतर तुम्हें आने के लिए ही तैयार रहना चाहिए। मैं तार दूँगा। मेरी तबियत ठीक है। कमजोरी है। कल इन्कमटैक्स अफसर के पास जाना है। जया-जेता को बहुत-बहुत प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

19 सितम्बर को वे धीरे-धीरे इन्कमटैक्स आफिस गये। पर आज काम नहीं हुआ। चाय-पान जुत्शीजी के यहाँ हुआ। मध्य एशिया : 2 के प्रूफ आये। पर उसमें रूसी शब्द-सूची नहीं दी है। क्या खो दिया है ? 20 सितम्बर को 'डोगरी भाषा' का विस्तृत निबंध आ गया। पंडितजी उसको देखने में लगे रहे। आज भी उन्होंने कमला के नाम अपने हाथ से लम्बा पत्र लिखा, जो इस प्रकार है :

*मसूरी*
*20-9-57*

*रानी,*

*कल अमृतसर भेजा तुम्हारा पत्र मिल गया। यह जानकर बहुत अफसोस हुआ कि गर्मी से बच्चों को बड़ी तकलीफ हुई। यह गर्मी तो सारे अक्तूबर-भर रहेगी। इधर मकान के तीन ग्राहक मालूम होते हैं। 8,000 देनेवाले आकर परसों मकान देख गये। उनकी पत्नी हरद्वार में रुक गयी थीं। उनको बुलाने के लिए लिखा है। आते ही पक्का हो जायेगा। फिर विक्रय-पत्र लिखने को रह जायेगा। दूसरे सज्जन ने 10,000 रुपये को दो बार में देने के लिए लिखा था, हमने मंजूर भी कर लिया। वह तुम्हारे आने पर यहाँ आयेंगे। तीसरे कलकत्ता के वकील का पत्र आया है कि वह दुर्गापूजा में यहाँ आयेंगे। हमें किसी से बयाना लेकर पक्का करना है। यदि तुम वकील साहब से पूछकर मेरे नाम पावर ऑफ अटर्नी लिखकर भेज दो तो मैं ही तुम्हारी ओर से विक्रय-पत्र लिख सकता हूँ। अन्यथा तुम्हें आना पड़ेगा। सो 5 अक्तूबर को वहाँ से जरूर चल देना होगा। वैसे मुझे अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में नागरी प्रचारिणी सभा के काम के लिए बनारस जाना है और वहाँ 5-6 दिन रहना होगा। पर डरता हूँ कि जया-जेता को गर्मी से बहुत परेशानी होगी। कहीं फिर फुंसियाँ न निकल आएँ। उससे तुम्हारा यहाँ सीधे चला आना अच्छा होगा। मकान बेचने की चिन्ता बहुत है, पर गर्मी के कारण मैं दुविधा में पड़ा हूँ। मकान तो बेचना ही है। इसलिए यदि पावर आफ अटर्नी लिखकर नहीं भेज सकती, तो तुम्हें आना है। ग्राहकों को सूचना भी देनी है, ताकि काफी पैसा खर्च करके यहाँ न आयें।*

*मुझे ज्वर रविवार (8-9 सितम्बर) को आधी रात के बाद आया था। तीन दिन रहा। और 103° तक गया। उसके बाद बुखार हट गया, पर दो दिन तक भारी जोकाम रहा। कमजोरी बहुत आ गई। कल इन्कमटैक्स आफिसर के पास गया। काम हो गया। वह 5-7 दिन में करके रुपये की सूचना दे देंगे। कल चाय जुत्शीजी के यहाँ पी और 6.30 शाम को घर लौट आया।*

*घर के लिए कोई ठीक नौकर नहीं मिला। एक चालीस माँग रहा था। मुझे तो बाहर जाना पड़ेगा और यहाँ मंगल रह जायेंगे। इस ख्याल से भी नौकर नहीं रक्खा। खाना बीमारी के समय तो गुलाबकुमारीजी का नौकर यहीं बनाता था, अब हम नीचे खा आते हैं। डॉ. राम कल यहाँ से जा रहे हैं। वर्षा तो 2-4 दिन से बंद है, पर उनको बहुत कष्ट हुआ। पैर सूज गये हैं, पेशाब में अल्बुमिन आ रहा है। परसों मैं उनसे मिलने गया था। उदास थे।*

*बच्चों का और अपना बहुत ध्यान रखना। ऋतुसंधि में बीमारियाँ बहुत होती हैं। जमुना दीदी, वकील साहेब, कल्पना, अनु और बच्ची को मेरा यथायोग्य कहना।*

*स्वामीजी का पत्र आया है। वह पुस्तकों को अमृतसर के घर में रखने की सलाह देते हैं। देहरादून में 40 रुपया मासिक से कम में मकान नहीं मिलेगा। रूपनारायणजी और शुक्लजी का मकान नहीं ले सकते। किराया न लेने का आग्रह होगा, जो मैं नहीं चाहता।*

*बहुत-बहुत प्यार, चुंबन-आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

*'कल तुम्हारा तार मिल गया था। ज्वर हट जाने के बारे में मैंने पत्र लिखे थे जो मिल गये होंगे। इसलिए तार से जवाब नहीं दिया।'*

21 और 22 सितम्बर को वे 'लोक साहित्य' के निबंधों को देखने में ही व्यस्त रहे। शरीर अस्वस्थ है

और इतना काम कर रहे हैं। इस समय मैं भी उनके पास नहीं हूँ। उनको कैसा लग रहा होगा, किंतु वे चिन्ता को काम में व्यस्त रहकर ही भुलाने का प्रयत्न करते थे। 'लोक साहित्य समिति' की बैठक इस बार बनारस में होनेवाली थी। नागरी प्रचारिणी सभा के लिए 'हिन्दी लोक साहित्य' खण्ड का वह इतने परिश्रम से सम्पादन कर रहे थे। इसके सारे निबंध वे देख चुके थे, अब सभा को सौंप देना चाहते थे। यह भी चाहते थे कि मैं बच्चों को लेकर लखनऊ तक आ जाऊँ तो साथ मसूरी आ जायेंगे। 23 सितम्बर को डॉ. सत्येन्द्र का लिखा 'ब्रज लोक साहित्य' का निबंध भी आ गया। पंडितजी ने आज ही इसको पढ़ डाला।

उधर कलिम्पोंग में जया-जेता फिर अस्वस्थ हो गये। जया को तो लखनऊ से ही बुखार आ रहा था। पिता की प्यारी बेटी, रात दिन 'पापा-पापा' की रट लगाती रहती। उधर पंडितजी का वह पूर्वोल्लिखित पत्र पाकर मेरा भविष्य ही असंतुलित हो गया। अपना पूरा प्रोग्राम पहले ही उन्होंने बतला दिया होता तो यह गलतफहमी न होती। पत्र ने मुझ पर गजब ढा दिया। मैं कलिम्पोंग हमेशा रहने के लिए तो नहीं आई थी और जब आई तो उनकी सलाह से ही आई थी। मेरा मन अस्थिर हो गया। इसलिए मैंने इनको पत्र नहीं लिखा, पर मेरे भाई मंगलजी को बच्चों का समाचार देते हुए लिखना पड़ा। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी दैनन्दिनी में लिखा—"... वाराणसी का कार्य न होने पर चीन जाना मेरा अनिवार्य है। वह (कमला) अपने बच्चों के साथ रहें। वह यदि नहीं चाहतीं तो उसके लिए निवास का प्रबंध कर देना होगा। उसको कालिम्पोंग अच्छा लगता है, इसीलिए मैंने सुझाव रखा था। मैं अकेला नहीं जा सकता, पर उस पर दबाव भी नहीं डाल सकता। आज मैंने तार द्वारा समाचार भेज दिया—विजयादशमी के तुरन्त बाद तुम बच्चों को लेकर यहाँ चली आओ। सारे देश में अभी उष्णता है। जया को आँखों में पीड़ा है। बेचारी तपस्विनी क्या करे। सारा जीवन (उनके न रहने पर) कमला ही 'शाक शिश्नू' से बच्चों की रक्षा करेगी। अब तो मुझे भी जीने की इच्छा नहीं होती।" (24 सितम्बर)

अपने मन की व्यग्रता को व्यक्त करते हुए उन्होंने दो और पत्र मेरे नाम कलिम्पोंग भेजे। पत्रों को पढ़ने से पाठकों को पता चलेगा कि राहुलजी का हृदय कितना निर्मल था हम लोगों के प्रति। बाहर से वे चाहे सख्त दिखाई दें, पर भीतर से वे कितने कोमल थे। पहले पत्र में वे लिखते हैं—

*हैपी वेली, मसूरी*
*24-9-57*

*रानी,*

*मंगल की चिट्ठी से हालचाल मालूम हुआ। कल भी मैं तुम्हारी चिट्ठी की प्रतीक्षा कर रहा था, आज भी नहीं आयी। जया के स्वास्थ्य की खबर सुनकर बहुत चिंता हुई। तुम गलत समझती हो कि मुझे अपने बच्चे प्यारे नहीं हैं। रोज-रोज मेरे दिमाग में खलबली पैदा होती है। कभी-कभी तो जान पड़ता है, जया-जेता बोल रहे हैं। तुम्हें भी अलग करने की बात नहीं कर सकता। मैं तो चाहता हूँ जब तक जीवन है तब तक तुम्हें साथ लेता फिरूँ, पर जबर्दस्ती करने की शक्ति नहीं रखता। यह तो बिल्कुल तुम्हारे हाथ में है। मैंने सोचा था कि मकान दे देने पर कहीं रहने का ठाँव होना चाहिए, तुम्हें कालिम्पोंग पसन्द है, इसलिए प्रस्ताव रखा था।*

*पिछले पत्र में लिख चुका हूँ कि गर्मी से डरता हूँ, नहीं तो अभी आने के लिए लिखता। रुपये वकील साहेब से ले लेना, पीछे भेज दिये जायेंगे।*

*बनारस अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में जाना है, पर अभी निश्चय नहीं हो पाया है। कभी मन करता है वहाँ आने के लिए लिख दूँ, पर गर्मी से बच्चों की बुरी हालत होगी। गंगा को जरूर साथ लाना। यदि बनारस जाना हुआ तो मैं तार द्वारा वहाँ पहुँचने की तारीख लिखूँगा। वहाँ सप्ताह-भर जरूर रहना होगा। बनारस में कहाँ रहना होगा, अभी निश्चय नहीं किया। तुम सारनाथ उदय के यहाँ उतर जाना। वहाँ से साथ ले आयेंगे। सम्भव है अबके डाक्टर मंगलदेव के यहाँ ठहरूँ।*

*तुम दसहरा के बाद 5 अक्तूबर को कालिम्पोंग से चल पड़ना।*

*मुझे बनारस छोड़ और कहीं नहीं जाना है। नवम्बर 20 को। फिर बनारस से आगे जाना है। अक्तूबर*

*के अंत में छतरपुर (मध्यप्रदेश) में।*

*यहाँ सब अच्छा है। खाना बनानेवाला नहीं मिला, इसलिए गुलाबकुमारी के यहाँ ही हम लोग खा रहे हैं। तुम्हारे आने पर नौकर रखना होगा। जाड़ों के लिए देहरादून या अमृतसर में कहीं जाना होगा।*

*जया-जेता को मेरी ओर से बहुत-बहुत चुम्बन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

दूसरा पत्र :

*हैपी वेली, मसूरी*
*26-9-57*

*प्यारी,*

*तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। रोज प्रतीक्षा है। कल 195 रुपये भेज दिये। तार से भेजना नहीं हो सका, क्योंकि डाकवाले ने नहीं लिया। आज तार भी दे रहा हूँ कि तुम वहाँ से सीधे यहाँ आ जाओ। 5 अक्तूबर को वहाँ से चलने पर सिलीगोड़ी की ट्रेन तुम्हें 6 अक्तूबर की शाम को लखनऊ पहुँचा देगी। उसी रात देहरादून एक्सप्रेस मिल जायेगा और 7 के सबेरे तुम देहरादून पहुँच जाओगी। सीधे टेक्सी कर मसूरी आ जाना। वहाँ से तार दे दोगी तो मेहताजी को लिख दूँगा। वैसे भी उन्हें लिख रहा हूँ कि 7 तारीख के देहरा-हावड़ा एक्सप्रेस में तुम्हें देख लें। लखनऊ में 20.30 बजे सिलीगोड़ी की ट्रेन पहुँचेगी, इसलिए देहरा की ट्रेन मिल जायेगी। यदि किसी कारण न मिल सके तो बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, चली जाना।*

***गंगा को जरूर साथ लाना।*** *मैं भिक्षु प्रज्ञानन्दजी को भी लिख रहा हूँ कि स्टेशन पर मिल लें।*

*जया के बोखार की बात सुनकर बड़ी चिन्ता हुई। मैंने बनारस तार दे दिया कि 12 अक्तूबर के बाद ही मीटिंग रखें। यह इसीलिए कि तुम्हें यहाँ देख लूँ।*

*यह ख्याल मन से निकाल दो कि बच्चों से मेरा प्रेम नहीं है। वस्तुतः तुम्हारे और बच्चों के भविष्य का ख्याल करके ही मैंने चाहा कि कालिम्पोंग में चार-छः महीने रहकर तजर्बा कर लो, कि वहाँ कहाँ तक तुम्हारे रहने लायक है। मेरे सामने तजर्बा करने का मौका था क्योंकि असफल रहने पर–जिसकी मुझे पूरी उम्मीद थी–दूसरा प्रबंध हो सकता है। जीवित रहते मैं तुम्हें निराश्रित कैसे छोड़ सकता हूँ। बनारस का काम न होने पर ही चीन जाना होगा। और आशा है, सब तरह से सोचकर तुम बच्चों को लिये मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो जाओगी। जाड़ों में हम भारत लौट आया करेंगे। यदि वहाँ जाने पर अनकूलता न हो तो फिर विचार हो सकता है। तुम्हें यह ख्याल होना चाहिए कि* ***तिब्बत का अनुसन्धान और साम्यवाद की सेवा मेरे जीवन के सबसे बड़े आदर्श रहे हैं।*** *मैंने इनके लिए प्राणों की बाजी लगाने में भी आनाकानी नहीं की। उनसे विमुख होने की तो आशा ही नहीं हो सकती। पर उसमें भी मैं तुम्हें और बच्चों को नहीं छोड़ना चाहता। सभी बात मिलने पर होगी।...*

*बच्चों को चुम्बन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

## कलिम्पोंग आगमन (1957)

जया बेटी का स्वास्थ्य बिगड़ता गया। ज्वर और खाँसी एक साथ चल रही थी। उसका मन कलिम्पोंग में नहीं लग रहा था और 'पापा' को खोजती रही। इतने समय से ज्वरक्रांत रहने के कारण वह बहुत कमजोर हो गई, खाना भी न खाती। मुझे बहुत चिन्ता हो गई। इतनी दूर से घर जाना भी मुश्किल। जया की अवस्था देखकर मैं बहुत ही घबरा गई। तभी मसूरी से पंडितजी का तार मिल गया। लिखा था–"Come with children immediately, wire Jaya's health." (बच्चों को लेकर शीघ्र चली आओ, जया के स्वास्थ्य के बारे में सूचना दो।)

27 सितम्बर को ही मैंने कलिम्पोंग से चल देने का निश्चय किया था। तैयारी भी कर चुकी थी, किन्तु मेरी बेटी जया में इतनी लम्बी यात्रा करने की शक्ति नहीं रह गई थी। मैंने ही कलिम्पोंग से पंडितजी को तार दिया–Jaya very sick. She needs papa. Come immediately." वह तार उनको 27 सितम्बर को सुबह मिल गया। उन्होंने अपनी डायरी में अंकित किया–"तार पत्रं कमलाया लब्धम्। जया रुग्णा, पितरं वांछति। परश्व इतः प्रस्थातव्यम्। चित्तं चिंतितः क्वापि मनो न निविशति। कथं स्यान्मे वत्सा। गम्भीरा रोग इति न सूचित, इत्येव मनस्तुष्टकरम्।"··· (27 सितम्बर) उन्होंने 28 सितम्बर को कुछ निबंधों को देखा। मन उनका चिंतित था। अतः कल सुबह ही मसूरी से कलिम्पोंग के लिए प्रस्थान करने का प्रोग्राम बनाया। पिता का अपना बच्चों के लिए चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। वाराणसी तक तो उनको ऐसे भी जाना ही था। अब कितने ही दिनों तक वे यात्रा में रहेंगे, इसलिए 28 सितम्बर के दिन-भर वे लोक साहित्य के कई निबंधों का संशोधन करते रहे।

**कलिम्पोंग के लिए प्रस्थान :** 29 सितम्बर को सायं चार बजे पंडितजी ने घर से प्रस्थान किया। देहरादून स्टेशन पर रूपनारायणजी तथा मेहताजी उपस्थित थे। रात की गाड़ी में सवार होकर अगले दिन (30 सितम्बर) लखनऊ स्टेशन पर पहुँच गये। लखनऊ में पूरे दिन रहना था, क्योंकि आगे जानेवाली गाड़ी शाम को 7 बजे मिलती थी। स्टेशन से वे सीधे यशपालजी के घर में गये। कल रात की ट्रेन में उनके सहयात्री थे मलीहाबाद के सैयद हुसैन। वह एम. ए. संस्कृत के द्वितीय वर्ष के छात्र थे। संस्कृत में बोल भी रहे थे, सरल और मेधावी छात्र। लखनऊ में सबसे पहला काम उनको नेशनल हैरल्ड प्रेस में जाना था। 'मध्य एशिया' के कुछ गेली प्रूफ मिले, जिसको वहीं बैठकर उन्होंने देख लिया। भिक्षु प्रज्ञानन्दजी ने बुद्ध विहार की ओर से पंडितजी द्वारा अनूदित 'दीर्घागम' का पद्यानुवाद 'सूत्रद्वयम्' के नाम से प्रकाशित किया था, उसकी प्रति पंडितजी को दी गई।

**लखनऊ-सिलीगुड़ी मार्ग :** 1 अक्तूबर की सुबह साढ़े 8 बजे सिलीगुड़ी जानेवाली ट्रेन में पंडितजी बैठ गये। लखनऊ से डॉ. उदयनारायण तिवारी भी गोरखपुर तक इसी ट्रेन से जा रहे थे, इसलिए पंडितजी की यात्रा सुखद रही। तिवारीजी पंक्ति ब्राह्मण थे, किन्तु पंडितजी को बाहर के भोजन के लिए कोई निषेध नहीं किया। त्रिपुरा के एक और सैनिक (साहसिक) कटिहार तक साथ जा रहे थे। वह दूसरे महायुद्ध के समय भी सैनिक थे। छपरा स्टेशन पर श्री गोरखनाथ त्रिवेदी तथा उनके दामाद प्रोफेसर देवेन्द्रनाथ शर्मा उपस्थित थे। शर्मा जी का रूस-गमन उस समय निश्चित था। बाद में वे दो वर्ष मास्को में रहे भी। पंडितजी को कलिम्पोंग से लौटते समय मुजफ्फरपुर आने के लिए शर्माजी ने आग्रह किया। 'रात के समय वाराणसी पहुँचेंगे, इसके बारे में भी सोचना था।' फिर भी राहुल बाबा इन्कार नहीं कर सके।

**कलिम्पोंग :** 2 अक्तूबर को प्रातःकाल ट्रेन कटिहार पहुँची और 12 बजे के बाद सिलीगुड़ी स्टेशन पर। पहाड़ के ड्राइवर मैदानी यात्री को खूब ठगते हैं। दार्जिलिंग और कलिम्पोंग में तो उत्तरप्रदेश की तरह गवर्नमेंट रोडवेज सर्विस भी उन दिनों नहीं थी, इसलिए टैक्सीवाले तब भी यात्रियों से मनमाना किराया वसूलते थे। पंडितजी को भी 14 रुपया देने पर स्टेशन वेगन में जगह मिली। कलिम्पोंग जाने के लिए तिस्ता का पुल अभी सही सलामत था। चार बजे के बाद वे कलिम्पोंग मोटर स्टेण्ड पहुँच गये। मैं और मेरे परिवार के लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जया-जेता अभी दोनों उस समय भी रुग्ण थे। पंडितजी को लेकर मैं श्री राधामोहन प्रसाद वकील (मेरे जीजा) के घर गई। इस बार भी हम लोग उनके यहाँ ही ठहरे थें। बच्चों को इतने बीमार और कमजोर पाकर उनको बहुत दुःख हुआ। किन्तु बच्चे तो पापा को अपने पास पाकर बहुत ही प्रसन्न हो गये। जया बेटी के लिए तो पापा ही सबकुछ थे, इसलिए वह अब धीरे-धीरे ठीक होने लगी। इस बार वे सिर्फ एक सप्ताह का प्रोग्राम बनाकर कलिम्पोंग आये थे। उन्होंने हम सबको लेकर 10 अक्तूबर को यहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय किया।

उस वर्ष 3 अक्तूबर को ही विजयदशमी की तिथि पड़ी। दसहरा नेपाली और बंगालियों के लिए महत्वपूर्ण पर्व है, नेपाली इसे **दशैं** या **बड़ा दशैं** कहते हैं। इस दिन परिवार के सबसे बड़े बुर्जुग के हाथ से उनसे छोटे लोग चावल का टीका लगवाते हैं, आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। इस बार हमारे पिता के परिवार में सबसे छोटे

चाचा की मृत्यु हो जाने से त्यौहार की धूम-धाम नहीं थी। किन्तु भोजन के लिए कोई निषेध नहीं था। आज दसहरे के दिन हमारे दूसरे चाचा (राधामोहन बाबू के श्वसुर) के यहाँ हम सबको भोजन के लिए निमंत्रण था। अब हमारे परिवार में यही एक चाचा जीवित थे। इसलिए जाना जरूरी था। उन्होंने दिल खोलकर पंडितजी का स्वागत किया। त्यौहार के दिन लोग थोड़ा-बहुत मद का सेवन तो करते ही हैं, पर हमारे चाचा पीकर भी संयत थे। पंडितजी के साथ वे बातचीत भी करते रहे।

उस वर्ष भी कलिम्पोंग में तिब्बती लोग बहुत-से आ गये थे। 4 अक्तूबर को पंडितजी दिन-भर हेनरिख हेरर की पुस्तक Seven Years in Tibet (तिब्बते सप्ताब्दाः) पढ़ते रहे। उन्हें पुस्तक अच्छी और समीचीन लगी, क्योंकि उसमें तिब्बत और तिब्बती लोगों का वास्तविक चित्रण किया गया है। उस रात को पंडितजी हम सबको लेकर 'काबुलीवाला' बंगला पिक्चर देखने गये। उनको यह फिल्म अच्छी लगी। 5 अक्तूबर को ही पंडितजी इस नगर से ऊब गये। 1949 का समय और 1957 के समय में बहुत अन्तर था। 1949 में राहुलजी अपने सहयोगियों के साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए कोश-कार्य कर रहे थे। उस समय वे लगभग एक वर्ष यहाँ रहे थे। तब कलिम्पोंग की अवस्था भी अच्छी थी, लेकिन अब तो उजड़ी नगरी थी। गत वर्ष भी डॉ. रोयरिक के कारण यहाँ पंडितजी का मन लगा था। इस बार तो वे भी रूस जा चुके थे। "न तो यहाँ दर्शनीय स्थान है न कोई समानधर्मा पुरुष ही है।" शाम को टहलते-टहलते वे धर्मोदय विहार तक गये।

अगले दिन (6 अक्तूबर) 'मैथिली लोक साहित्य' की पाण्डुलिपि उनको डाक से मिल गयी। उसी को दिन-भर देखते रहे। 7 को 'राजस्थानी लोक साहित्य' तथा 8 को 'बुंदेली लोक साहित्य' की पाण्डुलिपि आ गयी। जेता को कल से ही ज्वर आने लगा और 8 को भी ज्वर कम नहीं हुआ और हमें 10 को यहाँ से चल देना था। इस साल दोनों बच्चे कई बार बीमार पड़े, जिसके कारण दोनों ही कमजोर हो गये थे। खैर, अब वापसी की यात्रा तो करनी ही थी।

**कलिम्पोंग से प्रस्थान :** राहुलजी की कलिम्पोंग की यह अंतिम यात्रा थी। यहाँ से 10 को चलना था। हमारे साथ शायद राधामोहन बाबू भी चलनेवाले थे, पर वे अभी दार्जिलिंग गये थे। अभी नहीं पहुँचे। यहाँ आकर पंडितजी का दो ही दिन मन लगा, उसके बाद फिर वही उदासीनता। वह सोचते हैं, "अब यह जीवन दुर्भर एवं निरर्थक प्रतीत होने लगा है। केवल बच्चों के लिए ही जीने की इच्छा होती है। शरीर और स्वास्थ्य भी सुखकर नहीं है।" कभी यह कलिम्पोंग उनको अच्छा लगता था। इसके साथ पंडितजी का सम्बन्ध 1929 से (मेरे जन्म से पहले से) रहा था। यहाँ वे कई बार आये, कई-कई दिनों तक रहे। सबसे अधिक समय 1949 में रहे। कलिम्पोंग के बारे में 'दार्जिलिंग परिचय' नामक अपनी पुस्तक में इतिहास एवं अन्य पहलू पर पुस्तक का अंश भी लिखा। इसी नगर में पैदा हुई एक पहाड़ी लड़की की उन्होंने बाँह पकड़ी। अब यही कलिम्पोंग उनको अनाकर्षक लग रहा था। वह लिखते हैं—"कालिम्पोंग नगर थोड़ा भी सौमनस्यकर नहीं है। यहाँ के गाँव भी नग्न वृक्षविहीन हैं।··· पिछले वर्ष तो रोयरिक महाशय यहाँ थे, काम भी बहुत थे। वे दिन कितने अच्छे थे।" इस वर्ष सप्ताह-भर के लिए आये, "यही अच्छा है, शायद यही मेरा यहाँ अंतिम आगमन है।" (9 अक्तूबर)

**मुजफ्फरपुर-मार्ग, 10 अक्तूबर :** भोजन के पश्चात् 1 बजे हम तीनों को लेकर पंडितजी टैक्सी में बैठे। लोग बिदा देने आये थे। राधामोहन बाबू रास्ते में मिल गये। वे कार्य व्यस्त थे। सिलीगुड़ी पहुँचकर अवध-तिरहुत मेल में द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में हम चढ़ गये। प्रथम श्रेणी में तो स्थान नहीं था, पर उसमें जगह मिल गई, बच्चों को सोने की जगह बना दी। सहयात्री एक मारवाड़ी तरुण कटिहार तक जा रहे थे। उनसे पता लगा कि तिब्बत में प्रवेश करने नहीं देते। आधे रास्ते तक जीप जाती है, पर ज्यादातर पैदल जाना पड़ता है। कटिहार में कुछ और परिचित लोग चढ़ गये। सड़कें भी नयी बन गयी हैं।

अगले दिन सुबह 6 बजे ट्रेन मुजफ्फरपुर पहुँची। आज दिन-भर हमें यहाँ रुकना था। स्टेशन पर शर्माजी उपस्थित थे। हम उनके घर गये, और पंडितजी कुछ घंटे तक सोये। मध्याह्न में लंगटसिंह कॉलेज में लोक साहित्य के विषय में पंडितजी ने भाषण दिया। इस कॉलेज में दो हजार से अधिक छात्र उस समय पढ़ रहे

थे। देवेन्द्र शर्माजी के श्वसुर श्री गोरखनाथ त्रिवेदी भी आ गये। उन्होंने 'सदुपदेश सत्परामर्शः कमला कृते दत्तः।'

**वाराणसी मार्ग :** उसी रात को हम वाराणसी के लिए रवाना हुए और 12 अक्तूबर की सुबह 5 बजे हम वाराणसी पहुँच गये। इस बार हम इंग्लिशिया बाजार में डा. मंगलदेव शास्त्री के गृह में ठहरे।

## निराशा एवं प्रतिक्रिया

**वाराणसी (12 अक्तूबर) :** पंडितजी दिन में नागरी प्रचारिणी सभा में गये। वहाँ पता चला, विश्वकोश में उनके लिए सम्भावना नहीं है। (विश्वकोषे नास्ति सम्भावना) यह भी पता चला कि प्रधान सम्पादक का निर्वाचन तत्कालीन गृहमंत्री पंतजी को करना था। वह पंडितजी के विरोधी थे, कारण था पंडितजी के राजनीतिक विचार। वैसे उन्हें कई महीने पहले प्रोफेसर हुमायूँ कबीर के मार्फत पता चल गया था कि 'हिन्दी विश्वकोश' के प्रधान सम्पादक के पद के लिए कुछ राजनीतिक चक्र चलाया जा रहा है। राहुलजी के खिलाफ में कहा गया कि वे तो कम्युनिस्ट हैं, वह शीघ्र ही चीन जानेवाले हैं। उन्होंने अपना पासपोर्ट भी हमें दिखाया है। इसलिए वह इस काम को बीच में ही छोड़कर विदेश चले जायेंगे। प्रधान सम्पादक ऐसा होना चाहिए जो स्थायी तौर से काम कर सके। और जिन्होंने यह चक्र चलाया था, उन्हीं को यह पद दिया गया था। पंडितजी आज जब गये सभा में तो यह भी मालूम हो गया कि प्रधान सम्पादक के रूप में पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी की नियुक्ति तो पहले ही हो गई है।

पंडितजी की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। उन्होंने इस विश्वकोश के काम मिलने पर क्या-क्या करना है, इसकी योजना बना ली थी। परिवार को भी कुछ व्यवस्थित ढंग से रख पायेंगे। बनारस और मसूरी में रहकर सुनिश्चित ढंग से यह काम कर लेंगे। विश्वकोश के काम को अधूरा छोड़कर वे कहीं जानेवाले नहीं थे। चीन जाने की बात तो तभी उठती जब यह काम उनको न मिलता। इस काम को उन्होंने बहुत पसन्द किया था, क्योंकि यह उनकी रुचि का काम था। उन्होंने बाहर से तो अपना भाव व्यक्त नहीं किया, किन्तु मन से वे बहुत आहत थे। पंडितजी के नये जीवनी-लेखकों ने यह भ्रम फैलाया है कि प्रधान सम्पादक के पद के लिए डॉ. भगवतशरण उपाध्याय लालायित थे, इसलिए यह चक्र भी उन्हीं का चलाया हुआ था। पर यह बात गलत है। यह चक्र चलाया था आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने और वे ही कुछ समय के लिए 'हिन्दी विश्वकोश' के प्रधान सम्पादक बन गये थे। राहुलजी को यह सारा खेल पहले ही मालूम हो गया था। पर मन में क्षीण आशा लिये बैठे हुए इतने समय से प्रतीक्षा करते रहे। अंत में उनके साथ इस तरह से धोखा किया। बस, उसी दिन से राहुलजी के सम्पूर्ण व्यवहार, व्यक्तित्व सब में परिवर्तन आ गया। इस निराशा और धोखे की प्रतिक्रिया उन पर बुरी ही हुई। लोगों पर से, विशेषकर सरकार के खैरख्वाहों पर से उनका विश्वास सदा के लिए उठ गया और अपने देश में अब उनकी विद्वत्ता का कोई प्रयोजन नहीं, यह उनको पक्का विश्वास हो गया। अब अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए उनको भोट देश जाना ही होगा, याने देश छोड़कर जाना ही होगा। एक विद्वान् व्यक्ति ने दूसरे विद्वान् व्यक्ति का किस तरह से पत्ता काट दिया, यह इसी घटना से मालूम हो सकता है।

राहुलजी इसके बाद वह सहज, सरल, शान्त राहुल नहीं रहे। अब क्रोधी, निराश, अशांत, चिन्तित और जीवन से उदासीन बन गये। उन्होंने अपनी डायरी में कई स्थानों पर अंकित किया कि "अब उनके लिए जीवन निष्प्रयोजन हो गया है। यह जीवन दुर्भर हो गया है। अब इसका अन्त शीघ्र हो जाय, इसी की कामना है।"

कितनी घोर निराशा उनके हाथ लगी। उस दिन (12 अक्तूबर को) वह हम लोगों से भी ज्यादा बोले नहीं। हमें तो बताया भी नहीं कि क्या हुआ है। मैं समझ रही थी कि मुझसे कोई गलती हो गई होगी, इसीलिए चिढ़े हुए हैं। गर्मी के कारण भी वे परेशान थे। जहाँ ठहरे थे, वहाँ बिजली का पंखा चलाना भी शायद वर्जित था। रात किसी तरह उन्होंने वहाँ बिताई। किन्तु बहुत सबेरे हम वहाँ से निकले और हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के मालिक श्री कृष्णचन्द्र बेरी के यहाँ गये। फिर बेरीजी की कार से सारनाथ चले गये। सारनाथ में पंडितजी के भतीजे उदयजी थे। बर्मी धर्मशाला में बहुत जगह थी। पंडितजी ने वहाँ ठहरने का निश्चय किया। सारनाथ

में उनके घुमक्कड़ शिष्य शिवशर्माजी भी उपस्थित थे। पंडितजी उनको लेकर वाराणसी लौट आये और सामान गाड़ी में रखकर फिर हम लोग बर्मी धर्मशाला में चले आये। शिवशर्माजी ने बड़ी सहायता। गर्मी तो यहाँ भी थी, पर खुली जगह थी और बिजली के पंखे चलाना वर्जित नहीं था। राहुलजी गर्मी सहन नहीं कर पाते थे। यहाँ आत्मीय लोगों के साथ उनको अच्छा लग रहा था। किन्तु रात में ही पंडितजी को पीठ पर साइटिका का दर्द उठ गया। उनको बहुत ही असह्य पीड़ा होने लगी, जिसके कारण वे परेशान हो गये। रात को नमक की पोटली से उनकी पीठ की सिकाई की, आराम तो क्या मिलता उनको। ऐसे दर्द के रहते भी दूसरे दिन 14 अक्तूबर को काशी विद्यापीठ में जाकर छात्रों के सम्मुख भाषण दिया। वहाँ से फिर सारनाथ लौट आये। बेरीजी ने घूमने-घामने के लिए अपनी कार दे दी थी। रास्ते में ही उनको यह दर्द होने लगा, बहुत परेशान थे। रात फिर नमक की पोटली से दर्द की जगह पर सेंक लगवाई। दो घंटा कुछ आराम रहा, फिर दर्द। किसी तरह से रात बिताई। साइटिका का यह दर्द उनको जीवन में पहली बार हुआ था।

15 अक्तूबर को 11 बजे पंडितजी श्री जगन्नाथ उपाध्याय तथा शिवशर्माजी के साथ वाराणसी गये। डा. मंगलदेव शास्त्रीजी के घर कुछ सामान पड़े हुए थे। सामान को ले जगन्नाथजी के घर भोजन कर वे नागरी प्रचारिणी सभा गये। समिति के 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' के बारे में विचार-विमर्श हुआ। व्याकरण आदि के बारे में कुछ बातें तय की गईं। 'हिन्दी का लोक साहित्य' वाला 16वाँ खण्ड बिल्कुल तैयार था। उसको सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग में छपवाने की बात तय हो गई। आज रात को भी उनके शरीर में साइटिका का दर्द बना रहा। शारीरिक कष्ट तो है ही, विश्वकोश को लेकर उनके मन में जो क्लेश उत्पन्न हुआ, उसके कारण पंडितजी बहुत बेचैन दिखाई दे रहे थे। वेदना उनके लिए असह्य हो गई थी। (15 अक्तूबर)

**प्रयाग के लिए प्रस्थान :** 16 अक्तूबर को सुबह ही मोटर पर सामान लादकर हम लोग सारनाथ से बनारस आ गये। प्रयाग जानेवाली ट्रेन से चलकर 12 बजे हम प्रयाग पहुँचे गये।

**प्रयाग :** प्रयाग में हम लोगों को डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के गृह में ठहरना था। डॉ. प्रसाद अभी कुछ ही देर पहले दिल्ली से लौटे थे। पंडितजी से मिलकर वे बहुत प्रसन्न हुए। मध्याह्न भोजन के बाद पंडितजी सम्मेलन मुद्रणालय गये, जहाँ उनकी 'संस्कृत काव्यधारा' का मुद्रण हो रहा था। लोक साहित्य की पाण्डुलिपि को भी यहीं से छपवाने के बारे में बात हुई। किताब महल ने 'घुमक्कड़ शास्त्र' का नया संस्करण निकालने के लिए यहीं छपवाने दिया था। जहाँ-जहाँ वे गये, वहाँ भी उनको अनेक मित्र मिले, उन लोगों से खूब बातें हुईं, पर मन के भीतर बहुत पीड़ा थी।

पंडितजी हम लोगों को वहीं छोड़कर बाहर गये थे। डॉ. प्रसाद से मैं मसूरी में मिली थी, पर उनसे मेरा विशेष परिचय तो नहीं था, उनकी बेटी इन्दुजी से भी मैं मिली थी, पर वे लखनऊ में रहती थीं। डॉ. प्रसाद की पत्नी का देहान्त बहुत साल पहले हो गया था। उस समय उस घर में एक भी स्त्री नहीं थी, न नौकरानी ही। हम लोगों से बात करनेवाला वहाँ कोई नहीं था। डॉ. प्रसाद का रहन-सहन बिल्कुल अंग्रेजों की तरह का था। वह लोगों से बहुत कम बोलते थे। उनके साहबी ठाट-बाट के सामने हम लोगों का सामंजस्य नहीं हो रहा था। राहुलजी का उनके घर में सालों से आना-जाना रहा, पर हम लोगों के लिए तो वह बिल्कुल नया था। उस दिन 16 अक्तूबर को पंडितजी बड़ी देर बाद लौटकर आये। उनके आने पर भी बाहरवाले कमरे में बहुत-से लोग आये और बराबर उन लोगों से बोलते-बतियाते रहे। जया-जेता और मैं अन्दर के अँधेरे कमरे में सिकुड़े-सिमटे बैठे रहे, पर पंडितजी ने हम लोगों के बारे में पूछा तक नहीं, मित्रों से परिचय कराना तो दूर की बात। पंडितजी हम लोगों को भूल गये। इसीलिए मुझे उनके साथ प्रयाग और वाराणसी आने का उत्साह नहीं होता था। उनके यहाँ असंख्य मित्र, परिचित हैं, हमारा तो कोई नहीं। पंडितजी का व्यवहार हमारे प्रति अजीब-सा था, मैं हैरान हो गई कि वे क्यों ऐसे हो गये, उन्होंने हमें कुछ बताया भी तो नहीं था। मेरा मन कुंठित होना स्वाभाविक था।

अगले दिन 17 अक्तूबर को निरालाजी के दर्शनार्थ हम लोग दारागंज गये थे। पंडितजी ने लिखा—'नात्यस्वस्थो सो महात्मा।' बड़ी देर तक पंडितजी उनसे बातें करते रहे। आज निरालाजी हिन्दी और

बंगला में बोल रहे थे। मुझसे भी अच्छी तरह बोले और बच्चों के साथ भी। चाय पीकर जाने के लिए उनका बड़ा आग्रह था और उनके इस स्नेह-भरे आग्रह को ठुकराने का साहस स्वयं पंडितजी में भी नहीं था।

डेरे पर लौटे तो स्वामी का वही रवैया। उनके लिए अलग कमरा था। लोग आते जा रहे थे। बोलते रहने से भी तो आदमी को थकावट होती है। वाराणसी की ही तरह यहाँ भी मैंने हमारे प्रति उनकी उपेक्षा का अनुभव किया। इस तरह हमारी उपेक्षा ही करनी थी, तो हमलोगों को यहाँ लाना ही नहीं चाहिए था। मैंने तो प्रयाग आने के लिए कोई आग्रह भी नहीं किया था। सफर में मय समान के बच्चों के साथ दो-तीन जगह रुकते हुए चलने में कितनी तकलीफ होती है, यह तो कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है। इसीलिए मैं कलिम्पोंग से सीधे मसूरी जाना चाहती थी, वे चाहें तो घूमते हुए आ सकते थे। उन्होंने ऐसा करने भी नहीं दिया। इस घर में बच्चों के खाने-पीने की अलग व्यवस्था भी नहीं थी। इस साल जया-जेता प्रायः बीमार ही रहे, इसलिए अब दोनों ही कमजोर हो गये थे। वे भूख से परेशान थे बेचारे। पंडितजी के मित्र का घर उनके लिए सुपरिचित था, पर हमारे लिए तो नहीं। फिर टाइम की पंक्चुआलिटी को तो बड़े लोग व्यवहार में ला सकते हैं, छोटे बच्चे भला क्या जानें। उस जगह आसपास में कोई चने की दुकान तक नहीं थी। मैं बहुत दुखी थी। दारागंज से लौटने के बाद वे जो मित्रों की भीड़ में खो गये तो सायं 8 बजे तक उन्होंने हमारी कोई खोज-खबर नहीं ली। सायंकाल कहीं से सत्या गुप्ताजी वहाँ पहुँचीं। मुझे दुःखी देखकर वे जया-जेता और मुझ को सिविल लाइन्स ले आईं। वहाँ कॉफी पिलाई, बच्चों को मिठाई-बिस्कुट खिलाये। कॉफी हाउस में एक बहुत परिचित व्यक्ति भी वहाँ मिल गये। मेरा मन बहुत दुःखी था, किन्तु बाहर से मुझे सबके साथ हँसकर बोलना पड़ रहा था। हम लोग 8 बजे डेरे पर आये। तब भी पंडितजी उसी तरह मित्रों के साथ सम्भाषण में संलग्न थे। उन्होंने अपने मित्रों से हमारा परिचय भी नहीं कराया। खैर, रात्रि-भोजन के बाद मैं जया-जेता को लेकर हमारे लिए नियत कमरे में लेट गई। पंडितजी अपने कमरे में देर तक बातें करते रहे। फिर शायद 11-12 बजे रात को उनको छुट्टी मिली। उपेक्षा की हद हो गई। मेरे इतने दिनों तक की सहनशक्ति ने जवाब दे दिया। आँसुओं में मैं डूब गई। जया-जेता, निर्दोष बालक, उनकी तरफ देखकर मन भर आया। सोचने लगी–इन्होंने संसार में जन्म लेकर अपने महान विश्वविख्यात पिता को बहुत कष्ट पहुँचाया। इच्छा हुई कि स्वामी के इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार के लिए उनको खूब सुनाऊँ, पर मैंने संयम से काम लिया। कागज में लिखा– "आपके इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार का कारण क्या मैं जान सकती हूँ ?" इतना लिखकर उनकी मेज के पास फेंक दिया। हमारी लड़ाई इसी तरह कागजी लड़ाई होती थी। उस दिन वे समझने पर भी किसी तरह समझने को तैयार नहीं थे। मर जाने की कामना करने लगे। कल वाराणसी में भी वे हम लोगों को हरिश्चन्द्रघाट, मणिकर्णिकाघाट की ओर घुमाने ले गये थे। शव को जलते देखकर छोटी-सी बच्ची जया ने पूछा–"यह क्या हो रहा है ?"तो पापा ने जवाब दिया था–'तेरे पापा भी एक दिन मर जायेंगे और इसी तरह उनको जलाया जायेगा।" जया सुनकर रो पड़ी। मैंने उनको बच्चों से ऐसे कहने के लिए मना किया था। आज फिर वही मरने की बात दुहराने लगे। बहुत मुश्किल से वे शांत हुए। उन्होंने अपनी दैनन्दिनी में भी लिखा है–'जीवन निष्प्रयोजनम्। किमनेव दुर्भरभारवहने न,··· जीवनान्तोऽपिकांक्षनीय एव' (16 अक्तूबर) और 'मर्षतु भवति,··· जीवनं दुर्भर किमनेव' (17 अक्तूबर) रात को वे सहज हो गये। प्रयाग में बीते वे दो दिन मेरे जीवन की कभी न भुलानेवाली दुखभरी स्मृति है। इसके बाद तो मैं उनके साथ प्रयाग गई भी नहीं। 6 साल के बाद इस बार गई थी तो यह हाल हुआ। वस्तुतः 1957 का दुखद वर्ष इसी तरह बीत रहा था। तनाव ही तनाव, गलतफहमी अलग से। उस रात को उन्होंने मुझे बतलाया था कि विश्वकोश का काम उनको नहीं मिला। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रधान सम्पादक बना दिये गये हैं, पर इस सम्बन्ध में भी उनको कोई सूचना नहीं दी। तत्कालीन कांग्रेस सरकार की नौकरी के लिए विश्वविद्यालयी प्रमाणपत्र भी तो चाहिए जो पंडितजी के पास नहीं था।

वस्तुतः पंडितजी के उस चिड़चिड़ेपन का मुख्य कारण था–भारत के विद्वद् वर्ग में उनकी उपेक्षा। हिन्दी विश्वकोशवालों ने पहले उनको आशा दिलाई। 1955 में डॉ. राजबली पाण्डेय और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस योजना में प्रधान सम्पादक बनने का उनसे वचन ले लिया था। वे उस समय दिल्ली में थे। उसके तुरंत

बाद ही पंडितजी ने देहरादून और मसूरी में विदेश के छपे विभिन्न भाषा (अंग्रेजी-रूसी) के विश्वकोशों का अध्ययन शुरू भी कर दिया था। दो वर्ष तक उनको अधर में लटकाये रखा, फैसला ही नहीं हुआ। अभी फैसला नहीं हुआ है, कहते रहे। और अंत में उनके साथ धोखा हुआ, नये प्रधान सम्पादक की नियुक्ति की बात भी कितने ही दिनों तक गोपनीय रखी गई। राजनीतिक चक्र चला और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रधान सम्पादक के पद पर आसीन हुए। यह व्यथा एक ऐसी व्यथा थी कि एक स्वाभिमानी व्यक्ति किसी अन्य के सम्मुख प्रकट नहीं कर सकता। पत्नी होने के नाते मैं उनकी मानसिक स्थिति को समझती थी, मेरे साथ अपने मन की व्यथा वे प्रकट करते भी थे। इस प्रत्याख्यान से उनको लगा कि देशवासी उनके कार्य के महत्व को अभी तक न समझ सके। तब भी उन्होंने किसी के प्रति अपशब्द नहीं निकाले, यह उनका स्वभाव था। डॉ. द्विवेदी जी का निर्वाचन होने पर उन्होंने अपनी खुशी ही जाहिर की। पर यह व्यथा घुन की तरह उनके मन-मस्तिष्क में चिपक गई। अब देश में रहकर काम करने की उनकी इच्छा मर गई। मुझे पत्र में भी उन्होंने लिखा था–कि भोट देश आर्थिक चिन्ता के कारण नहीं जाना चाहता, बल्कि अपने शेष जीवन का सदुपयोग करना चाहता हूँ। पहले ही आशा न दिखाते, पर वचन देकर सब कुछ तय हो जाने के बाद इस तरह उनके साथ खेल खेला गया, जिससे उनकी व्यथा चरम सीमा पर पहुँच गई। इसीलिए चीन-तिब्बत की रट लगाने लगे। बाद में तो रूस तक जाने की सोचने लगे। डॉ. जार्ज रोयरिक को उन्होंने मास्को में जाकर काम करने की इच्छा व्यक्त करते हुए पत्र लिखे थे। उनके साथ किये गये इस व्यवहार के कारण उनके स्वास्थ्य और स्वभाव में परिवर्तन आ गया। अब हर समय मरने की बात। उनके चेहरे की प्रसन्नता ही समाप्त हो गई सदा के लिए। स्वभाव में चिढ़चिढ़ेपन के मूल में भी यही कारण था, और भुगतना मुझ को पड़ रहा था। हरदम नाराज, हरदम रुष्ट, बात भी न सुनते।

17 अक्तूबर को भी दिन-भर हम प्रयाग में रहे। उस दिन भी पंडितजी का समय समालाप में बीता। प्रूफ संशोधन अब मसूरी जाकर करनेवाले थे। श्रीनिवासजी ने एक बहुत बड़ा 'महल' खरीद लिया था, पंडितजी देख आये, हमें साथ ले गये थे।

**लखनऊ :** 18 अक्तूबर की रात की ट्रेन से पंडितजी सपरिवार चल पड़े और 19 को सुबह 9 बजे के बाद यशपालजी के गृह में पहुँच गये। आज हम सबको यहाँ ठहरना था। आज की तिथि में यहाँ उत्तरप्रदेश लिपि सुधार सम्मेलन में पंडितजी को भी सम्मिलित होना था। इसलिए वे 11 बजे के बाद सूचना भवन में गये। प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. सम्पूर्णानन्द, शिक्षामंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठीजी के भाषण हुए। फिर भाषणों पर विचार-विमर्श हुए। आज के उपस्थित सभासदों में थे–सर्वश्री सीताराम चतुर्वेदी, डॉ. राजबली पाण्डेय, सभापति उपाध्याय, श्रीनारायण चतुर्वेदी, गोरखप्रसाद, भैरवनाथ झा, धीरेन्द्र वर्मा, उदयनारायण तिवारी, राहुल सांकृत्यायन, बाबूराम सक्सेना, दीनदयाल गुप्त, जे. शैमेल, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, विद्याभास्कर आदि। वहाँ से पंडितजी नेशनल हैरल्ड प्रेस में गये। पर आज विशेष शोधन नहीं हो सका। भोजन के बाद 3 बजे वे फिर सम्मेलन-स्थान में गये। लोगों ने लिपि-सुधार के बारे में अपने-अपने विचार रखे। वहाँ कुछ पुरातनपंथी थे, तो कोई आधुनिकपंथी। अक्षरों में हलन्त लगाने और संयुक्ताक्षरों के बारे में पंडितजी ने भी अपने सुझाव रखे।

20 अक्तूबर को भी पंडितजी लखनऊ में रहे। यशपालजी का गृह उनको स्वर्ग जैसा लगता था। सब बातों का आराम रहता। आज भी वे सम्मेलन की बैठक में गये। आज की बैठक में अन्य सदस्यों के साथ प्रदेश के मुख्यमंत्री तथा शिक्षामंत्री के भी भाषण हुए। 1 बजे से पहले ही बैठक समाप्त हो गई। लौटकर कुछ सामान खरीदने के लिए वे बाजार गये। श्री फणि मुखर्जी द्वारा ली गई भोट पुस्तकों की छवि श्रीनारायण चतुर्वेदीजी ने उनको दी। शाम के हावड़ा-देहरा एक्सप्रेस से प्रस्थान करने के लिए हम लोग स्टेशन गये। गाड़ी रात को चलती थी। उस समय भी बिना आरक्षण के ट्रेन में जगह मिलनी मुश्किल थी। प्रथम श्रेणी में जगह नहीं मिली, दूसरी श्रेणी में भी भीड़ थी। तभी कुछ तरुण लोग चढ़े, उन लोगों ने पंडितजी को अपनी सीट दे दी। स्टेशन पर ही बरेली-निवासी श्री भोलानाथ शर्मा मिल गये। पंडितजी ने उनसे कहा–"ग्रीक भाषा के अन्य ग्रंथों के अनुवाद में मनोयोग दीजिए।"

**मसूरी :** 21 अक्तूबर के प्रातः 10 बजे हम देहरादून पहुँचे। स्टेशन पर मेहताजी आये हुए थे। क्योंकि हमारे पास काफी सामान था, इसलिए 17 रुपये में पूरी टैक्सी लेकर और रास्ते में कुछ शाक-सब्जी खरीदते चले और 11 बजे के करीब अपने घर हर्न-क्लिफ पहुँच गये। पंडितजी के नाम की बहुत-सी डाक जमा थी। चिट्ठियों के उत्तर लिखाये, प्रूफ-संशोधन का काम भी किया। रात को फिर उनका दिमाग उड़ने लगा। सोचने लगे—"चीनयात्रायां कमलास्वीकृतिं प्राप्य ज्ञायतेऽधुनाऽस्ति जीवनशेषः। चीनेषु रोगस्य चिकित्साऽपि सुलभा। आद्यत्विके मन्नेऽम्लं बाधते।" पर अभी चीन से निमंत्रण तो नहीं आया है। अगले 22-23-24-25 अक्तूबर को भी पत्र लिखाने, प्रूफ-संशोधन आदि का काम करते रहे, क्योंकि कल फिर उनको लम्बी यात्रा पर निकलना था।

## शिकोहाबाद के लिए प्रस्थान

शनिवार 26 अक्तूबर को भोजनान्तर दो बजे घर से चले। हैपीवेली इलाके में भारवाहक का मिलना भी मुश्किल। वहाँ किसी तरह एक आदमी मिल गया और किताबघर से टैक्सी लेकर किंक्रेग बस अड्डे पर आये। टैक्सी लेकर एक घंटे बाद 4 बजे देहरादून पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने मेहताजी के गृह में जाकर थोड़ी देर विश्राम किया और उनका शोधकार्य भी देखते रहे। आज रात की गाड़ी से उन्होंने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया और 27 की सुबह 6 बजे दिल्ली पहुँच गये। वहाँ से कालका-हावड़ा मेल से सफर करके 1 बजे के बाद वे शिकोहाबाद पहुँच गये।

**शिकोहाबाद (27 अक्तूबर, 28 अक्तूबर) :** यात्रा में, विशेषकर इस तरफ की यात्रा में पंडितजी ने देखा कि लोग हिन्दी या अपनी भाषा न बोलकर ज्यादा अंग्रेजी बोलते हैं। कल की ट्रेन में सहयात्री तो आंग्ल भाषा में ही बोलने के लिए 'बद्धपरिकर' थे। शिकोहाबाद से पंडितजी ने वहाँ के उनके कार्यक्रम के बारे में घर में इस तरह पत्र लिखा :

*शिकोहाबाद*
*8-10-57*

*प्रिये,*

*कल दोपहर को यहाँ पहुँचा। रेल में संयम नहीं हो सका। साखरिन नहीं मिल सकी थी। आलू-चावल-चाय का पूरा बायकाट चल रहा है।*

*कल आज मिलकर प्रूफ देख डाले और उन्हें लौटा भी दिया। यहाँ शाम-सबेरे गर्म कपड़े पहिने जाने लगे हैं, पर ठंडे जल में स्नान करने में आनन्द आता है। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं।*

*नौकर जरूर रख लेना, महीने-डेढ़ महीने की बात है। पुस्तकों के बक्सों को भी हटाना पड़ेगा। मंगल को भेजकर लंढौर के बक्सों को पहिले मँगवा लेना—गोपालू से हो या दूसरे किसी से। हिन्दी की पुस्तकों को पहिले बंद करायें। पुस्तक-पेटी के ऊपर लिख दें हिन्दी कथा आदि। संस्कृत की आलमारी तथा मेरी अपनी पुस्तकों को अभी बन्द न करायें।*

*श्री श्यामनारायण को चाहो तो 30 रुपये दे दो जिससे वह घर जा सके।*

*भैया (जेता) और जया को सर्दी से बचाना। नहीं तो नाक बहने लगेगी।*

*यहाँ कल रात को मैंने एक व्याख्यान शहर में दिया। आज 4.30 बजे कालेज में मुख्य व्याख्यान होगा। कल 7.15 बजे सबेरे बस द्वारा आगरा जाऊँगा। रेल चार घंटे में जाती है, बस दो ही घंटे में। कल 9 बजे पहुँचकर आगरा में ही रहना है। परसों बारह बजे झाँसी के लिए पंजाब मेल पकड़ना है। दिल्ली में कोई पता नहीं मालूम हो रहा है, नहीं तो चिट्ठी मँगवाता। चाहे तो स्वामी हरिशरणानन्दजी, 22 फैज बाजार के पते पर भेज देना। जाकर देख लूँगा।*

*शिकोहाबाद 30 हजार से कम का ही कस्बा है, पर यहीं बिजली के बल्ब का सबसे बड़ा कारखाना है।*

*दो डिग्री कालेज हैं, लड़कियों का एक इंटर कॉलेज भी है। इस प्रकार शिक्षा में बढ़ा हुआ कस्वा है।*

*जया-जेता को बार-बार चुम्बन, तुम्हें आलिंगन भी।*

*तुम्हारा,*

*राहुल*

कल 27 को स्टेशन पर उनका स्वागत करने डिग्री कॉलेज के प्रिंसिपल तथा अनेक छात्र आये थे। यहाँ अग्रवाल धर्मशाला में सार्वजनीन भाषण हुआ था पण्डितजी का।

28 अक्तूबर को सुबह से ही उनका काम शुरू हो गया। प्रूफ तो देखकर भेज दिये। पर पढ़ने के लिए घर से कुछ नहीं ले गये थे, इसलिए कुछ पढ़ नहीं पाये। पर अविच्छिन्न गोष्ठी आरम्भ हो गई। कॉलेज में पाँच बजे भाषण था। उनको मानपत्र भी दिया गया। यहाँ कालेज के विज्ञान विभाग प्रधान हैं। 1955 में यह केवल विद्यालय था। यह शहर विद्युत बल्ब निर्माण के कारण भारत का एक महत्वपूर्ण नगर है। (डायरी, 28 अक्तूबर)

**आगरा :** 29 अक्तूबर को प्रातः 6 बजे ही चाय-पान हुआ। फिर लोग फोटो खींचते रहे। बस सात बजे मिली और वहाँ से उन्होंने प्रस्थान किया। दो घंटे की यात्रा के बाद ही वे आगरा पहुँच गये। बीच में फीरोजाबाद और एतमादपुर निगम पड़े। रेल से आने पर चार घंटे लगते हैं। आगरा में राहुलजी को अति आत्मीयता का बोध होता था। उस दिन वे पंडित हृषिकेश चतुर्वेदी के गृह में (किनारी बाजार) ठहरे। इस बार वे बिना सूचना दिये ही अकस्मात वहाँ पहुँचे थे। भोजन के बाद वे आगरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में गये। वहाँ बाबू गुलाबराय, श्री हरिशंकर शर्मा, श्री श्रीराम शर्मा, एवं डॉ. रामविलास शर्मा से भेंट हुई। इधर डेरे पर भी कुछ लोग उनसे मिलने आये और देर तक समालाप करते रहे। पंडित हृषिकेश चतुर्वेदी स्वयं सुकवि थे। उन्होंने पुरानी शैली में अच्छी कविताएँ लिखी हैं। मेघदूत और गीता का भी भाषान्तर किया था। उस समय वे राधाकृष्णायन काव्य को लिख रहे थे।

**झाँसी :** 30 अक्तूबर को श्री चतुर्वेदी के साथ पंडितजी स्टेशन गये। उन्होंने आगरा के बारे में लिखा—"दूर से अकबरीय दुर्ग दिखाई देता है। अकबर-जहाँगीर-शाहजहाँ तीनों की राजधानी आगरा, इसलिए यह दुर्ग राजपीठ स्थान है।" ठीक समय पर ही उनको पंजाब मेल मिल गई। उसी दिन चार बजे सायं झाँसी पहुँच गये। श्री कृपानन्द गुप्त स्टेशन पर मिल गये। उनके साथ पंडितजी श्री वृन्दावनलाल वर्मा के गृह में गये। वर्माजी उनसे बड़ी आत्मीयता से मिले। वहीं पंडितजी का रात्रिवास हुआ। झाँसी के बारे में लिखा—"सैनिक शिखर नगरी पान्तोऽयम् स्वच्छता, मार्ग परिष्कार विस्तृत भूमी उद्यान गृहं। इति विशेष।" (30 अक्तूबर)

**छतरपुर :** 31 अक्तूबर को चाय-पान के अनंतर श्री कृष्णानन्द गुप्त के साथ पंडितजी रेलवे स्टेशन गये। वहाँ पंडितजी के पुराने मित्र श्री वियोगी हरि तथा एक अन्य सहयोगी श्री हरिश्चन्द्र पुष्प भी मिल गये। रेल मार्ग मानिकपुर तक जाता है, मार्ग में मऊरानीपुर तक निगम की सड़कें हैं। हरिपालपुर तथा अलीराजपुर छोटे-छोटे राज्य हैं। वहाँ से 9 बजे ज़ीप या बस चलती है। मार्ग में पड़नेवाले घावेहा राजप्रासाद तथा पुरातत्व संग्रहालय को भी देखा। अध्यक्ष श्री दीक्षित के पुत्र समर्थ हैं पैतृक विषय में। संग्रहालयों में पाशुपतों की अनेक मूर्तियाँ हैं। यहाँ की मूर्तियाँ सुपरिचित हैं। वहाँ से छतरपुर के गाँधीनिधि भवन के लिए 11 बजे प्रस्थान किया। यहाँ उन्होंने दलितों की कर्म-कुशलता भी देखी। शिविर के उद्यम भी देखे। यहाँ की सभा का उद्घाटन-भाषण राहुलजी ने दिया। अन्य लोग भी बोले। समारोह रात को भी चलता रहा। छतरपुर छत्रसाल नाम से बना, किन्तु उसकी राजधानी महोबा और पन्ना है।

अगले दिन (1 नवम्बर) को भी राहुलजी छतरपुर में रहे। प्रातः 6 बजे प्रस्थान कर 7 बजे **खर्जरवाह** (खजुराहो) 28 मील पहुँचे। "चन्देल राजवंश के काल में 11वीं शताब्दी में इस मंदिर का निर्माण हुआ। पाशुपत धर्म का प्राधान्य है। मूर्त्तिकला अवनतमुखी। तान्त्रिक प्रभाव स्पष्टतः। थोड़ी दूर पर जैन देवालय। वहाँ गव्यूति मार्ग से जाने पर चतुर्भुज देवालय है। विशाल प्रतिमा है यहाँ। अब यहाँ अतिथिशाला भी निर्मित हुई है।" राहुलजी के साथ श्री दशरथ जैन (उपमंत्री), श्री महेन्द्रकुमार मानव (भूतपूर्व मंत्री) तथा कुछ अन्य लोग भी थे। वे तीन

घंटे तक वहाँ की मूर्त्ति कलाओं को देखते रहे। फिर 1 बजे दिन में डेरे पर लौट आये। 4 बजे महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं के सम्मुख उनका भाषण हुआ। रात को ही वे हरपालपुर-छतरपुर से 33 मील दूर आकर सोये।

**दिल्ली :** 2 नवम्बर को प्रातः 5 बजे के बाद ट्रेन आई। बरवाताल के पास पेड़ा मिष्टान्न खरीदे। दो रुपये में एक सेर। झाँसी में 9 बजे के पश्चात् पंजाब मेल आई और 1 बजे रवाना हुई। श्री वियोगी हरिजी भी छतरपुर से दिल्ली जा रहे थे। दोनों का साथ अच्छा रहा। हरिजी का जन्म छतरपुर के कान्यकुब्ज कुल में हुआ था। वे अभी भी वैष्णव हैं। मल्लकला के अभ्यस्त थे। अब तो दिल्ली में ही रहते हैं। पंडितजी रात को 8 बजे दिल्ली पहुँच गये। स्टेशन से फ़ैज़ बाजार 'हरिशरणानन्द भवन' में आये। वहाँ जानकी भाभीजी मौजूद थीं। पंडितजी वहीं ठहरे।

अगले दिन 3 नवम्बर को सुबह ही पंडितजी श्री यज्ञदत्त शर्मा के घर गये। यहीं तय हुआ कि आज चीनी राजदूत से मिलने जायेंगे। इसलिए यज्ञदत्तज़ी के साथ वे गये और राजदूत से बातचीत की। चार आने प्रति मील के हिसाब से स्कूटर रिक्शा लेकर पंडितजी मित्रों से मिलने के लिए निकले। पहले माचवेजी के घर (यार्क होटल) गये। माचवेजी नहीं थे। फिर श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (पटौदी हाउस) के पास गये। कुछ देर उनसे बातचीत की। वहाँ से आसफअली रोड स्थित पार्टी-कार्यालय में भी गये, पर वहाँ कोई भी नहीं मिला। हरिजन कालोनी से उनको लिवाने के लिए जीप आ गई थी, किन्तु आज वहाँ जाने के लिए उनके पास समय नहीं था।

4 नवम्बर को प्रातः साढ़े 8 बजे जीप द्वारा पंडितजी हरिजन उपनिवास में गये। यहाँ चर्म-काष्ठ-कर्तन कला विभाग को देखा। प्रायः सभी प्रदेश के तरुण वहाँ प्रशिक्षण पाते हैं। जनजातियों ने भी कुछ काम किया है, ऐसा नहीं देखा गया। वहाँ से वे चीनी दूतावास में आये। श्री वाई. डी. शर्मा भी पहुँच गये। पंडितजी अपनी 'भावी तिब्बत यात्रा' के बारे में कुछ लिखकर लाये थे, वहाँ प्रेषित किया। उसके बाद वे पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस के नये भवन को देखने गये। बिल्डिंग अच्छी लगी। वहाँ से वे फ़ैज़ बाजार गये और फल इत्यादि खरीदकर स्वामी भवन में आये। वियोगी हरिजी वहीं आ गये। दोनों मित्रों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। रात को 9 बजे वे स्टेशन गये। देहरा जानेवाली ट्रेन में द्वितीय श्रेणी में जगह मिल गई। सैनिक अधिकारियों के अनेक तरुण पुत्र भी देहरादून जा रहे थे। सभी आंग्ल भाषा के भक्त मालूम हो रहे थे। आज सोवियत का द्वितीय कृत्रिम चन्द्रमा आकाश में उड़ रहा था। एक कट्टर साम्यवादी के लिए यह खुशी की खबर थी।

**मसूरी :** 5 नवम्बर को प्रातः 8 बजे ट्रेन देहरादून स्टेशन पर पहुँची। पंडितजी को वहाँ टैक्सी तुरन्त मिल गई और किताबघर (मसूरी) में साढ़े 9 बजे पहुँच गये, फिर वहाँ से चलते हुए अपने गृह में। घर आते ही उनका संशोधन का काम आरम्भ हो गया। अब तक की जमा डाक को देखकर निबटाया। मंगलजी से सब पत्रों का उत्तर लिखवाया।

इतनी लम्बी यात्रा के बाद आखिर शरीर थक क्यों न जाता। शरीर भी किसी युवक का शरीर तो नहीं था। 6 नवम्बर से फिर उनको ज्वर हो गया। आराम करने के लिए उनको बाध्य होना पड़ा। 7 नवम्बर को भी पेट खराब था, आँव भी आने लगे। इसलिए वे कमजोरी महसूस कर रहे थे। लेटे-लेटे ही कुछ संशोधन कार्य करते रहे। 8 तारीख को भी उनकी तबियत ठीक नहीं थी। इसलिए उनको बिस्तर पर लेटे रहना पड़ा। संशोधन का काम तो खैर चलता ही रहा।

हर्न-क्लिफ को खरीदने के लिए दिल्ली के एक व्यक्ति परमेश्वरीदास सेठी (रिटायर्ड इंजीनियर) तैयार हो गये। मूल्य 8 हजार रुपया तै हुआ, याने आधे से भी कम दाम में। इस मकान को राहुलजी ने 14 हजार में खरीदा था। उसमें फ्लश तथा सैनिटेरी फिटिंग आदि में 6 हजार और लग गये थे। इस प्रकार उसका कुल मूल्य 20 हजार रुपया पड़ा था। पर वह बिका सिर्फ 8 हज़ार में। बस किसी तरह इस मकान से पिंड छुड़ाना था। राहुलजी के खास मित्रों ने बाद में प्रचार किया। "मसूरी का मकान बेचने से कमलाजी को बहुत रुपये मिले थे।"

हर्न-क्लिफ की बिक्री के लिए रजिस्ट्री पत्र आज ही (5 नवम्बर) लिखा गया। मूल्य भी आज ही मिल गया। अब सामान बाँधने की चिन्ता हो गई। उन्होंने पुस्तकालय की पुस्तकों को कलिम्पोंग भेजना तै कर लिया, मसूरी में रहते पंडितजी ने 'राहुल प्रकाशन' शुरू किया था। हमने तीन पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं। पर हमारा घर जंगल में होने के कारण पुस्तक-विक्रय या भेजने आदि की कोई सुविधा यहाँ नहीं थी। अतः इन बिक्री की पुस्तकों को पी. पी. एच. दिल्ली भेज देने का निश्चय किया। पंडितजी दिल्ली में बातचीत कर आये थे। 8 नवम्बर से ही हम लोगों ने किताबों को बक्सों में बन्द करना आरम्भ कर दिया। किताबें भी कम हों तो बात थी। पुस्तकालय की पुस्तकें ही कुल 80 पेटियों में समा गईं।

पंडितजी की तबियत अगले दो दिन भी ठीक नहीं रही। पर मकान की बिक्री करके वे अब चिन्ता-मुक्त हो गये, इसलिए मन शांत था। काम भी लेटे-लेटे करते रहे।

10 नवम्बर को इतवार था। श्रीमती शीला सत्यकेतु अपने पुत्र और पुत्री के साथ आईं। बातचीत करती रहीं। हम लोग उन्हीं के सहारे नैनीताल से मसूरी आये थे। आज हम लोग मसूरी छोड़कर जा रहे हैं, इससे उन लोगों को दुख होना स्वाभाविक ही था। अब मंगलजी और मैं पुस्तकों को पैक करने में लगे थे। बहुत व्यस्त। पंडितजी अपना लेखन कार्य करते रहे। जया-जेता को भी वे सँभाल रहे थे। पुस्तकों को पेटियों में बन्द करने का काम 10 नवम्बर से चालू हुआ तो 15 दिनों तक चलता ही रहा।

11 नवम्बर को लोक साहित्य के निबंधों को देखकर समाप्त कर दिया। भोजन के पश्चात् वे नगर गये और पुस्तकों को बन्द करने के लिए 21 और पेटियाँ खरीद लीं। और भी पेटियों की आवश्यकता पड़ेगी। इसके बाद चाय-पान जुत्शीजी के यहाँ हुआ। घर लौटे तो उनको 'मध्य एशिया' के ढेर सारे प्रूफ मिल गये। रात को बैठकर उनको भी संशोधन करके समाप्त किया। इधर फिर पंडितजी को लम्बी यात्रा में जाना था। इस वर्ष तो यात्राओं की भी गिनती नहीं रही। हर पन्द्रहवें दिन घर से बाहर। इस बार उनको नगर ऊंटारी (डाल्टनगंज, बिहार) से निमंत्रण आया था। मसूरी से बहुत दूर।

नवम्बर के 12-13-14-15 तारीखों में पंडितजी लोक साहित्य सम्बन्धी काम समाप्त करके पुस्तकों को छाँट कर पेटियों में बन्द कराने के काम में सहयोग देते रहे। अगले दो दिन भी उन्होंने 'किमपि विशेषतः न कृतम्' पुस्तकों को बन्द करने का ही काम किया। कल फिर वे जा रहे हैं।

**नगर ऊंटारी के लिए प्रस्थान :** 14 नवम्बर को सबेरे ही पंडितजी देहरादून को चल पड़े और 1 बजे शुक्ल सदन (सेवक आश्रम रोड) में मध्याह्न भोजन के बाद पुराना डालनवाला में सेठ सूरजभान अग्रवाल अम्बालावाले के नवनिर्मित निवास को देखने गये। रिस्पना नदी के किनारे यह मकान 30 हजार रुपये में बना, जिसमें 10 कमरे थे। सब्जी आदि बोने के लिए किचन गार्डन भी। पंडितजी को बहुत अच्छा लगा, किन्तु अभी हम लोगों का भविष्य में कहाँ निवास होगा, कोई तय नहीं था। उसी रात को देहरादून एक्सप्रेस से वे आगे के लिए रवाना हुए। रात को मुरादाबाद तक के लिए उन्हें अच्छे सहयात्री मिल गये। अगले दिन (16 नवम्बर) फैजाबाद स्टेशन में वाराणसी जानेवाले और यात्री चढ़े। उसी दिन शाम को देहरी-आन-सोन स्टेशन आ गया। पंडितजी को यहीं उतरना था। नगर ऊंटारी के कुछ लोग उनके स्वागत के लिए वहाँ उपस्थित थे। यहाँ से डाल्टनगंज जाने के लिए ट्रेन मिलती है, परन्तु पंडितजी के लिए वहाँ मोटर आई हुई थी। 'गुर्जरी बी. डी. पत्रवणिजा' के गृह में गये और वहीं रात को सो गये। आराम मिला।

20 नवम्बर को सुबह चाय-पान के बाद रहेला प्रशिक्षण विद्यालय में पंडितजी ने स्वागतोत्तर दिया और कुछ भाषण भी किये, फिर जीम द्वारा कोयल नदी के तट पर गये। अभी वहाँ सेतुनिर्माण हो रहा था, इसलिए जीप में बैठकर ही नदी को पार किया। उस पार भी जीप आई हुई थी। 6 मील तक गढ़वा निगम चलकर वहाँ से 22 मील पर नगर ऊंटारी है। यहाँ के हाईस्कूल के भवन में उनके रहने का प्रबन्ध किया गया था। यहाँ पर धनी सामन्त लोग घूमने के लिए आया करते थे। यहाँ 7 दुर्ग भी हैं। पहले यहाँ जंगल बहुत होने के कारण व्याघ्र (बाघ) भी बहुत होते थे। अभी भी व्याघ्र पाये जाते हैं। श्री कीर्त्ति द्वारा निर्मित 14वीं शताब्दी की एक मूर्त्ति भी है।

दोपहर दो बजे के बाद सभा में गये पंडितजी और वहाँ उनको कुछ बोलना भी पड़ा। लोग बड़ी संख्या में उपस्थित थे। सायंकाल अभिनय और कविता-पाठ की गोष्ठी भी हुई, जो अखण्ड चलती रही। यहाँ से डाल्टनगंज जाकर रेलयान को पकड़ा होगा। इन्सुलिन की शीशी भी टूट गई। अगले दिन (21 नवम्बर) यहीं पर लोग उपस्थित हुए। पंडितजी ने छात्रों के प्रश्नों के उत्तर दिये। भोजनान्तर के बाद 1 बजे चले, गढ़वा जानेवाली गाड़ी में बैठ गये और कोयल नदी को पार करके डाल्टनगंज नगर में आ गये। घंटे-भर की 47 मील की यात्रा करके वे डेरे पर पहुँचे और विश्राम किया। उस बिहार बैंक के मैनेजर साहित्यानुरागी थे। चार बजे के बाद, दूसरे डिग्री कॉलेज में भाषण दिया, जहाँ छात्र-छात्राओं की उपस्थिति अच्छी थी। रात 9 बजे के बाद प्रयाग के लिए उन्होंने प्रस्थान किया।

**प्रयाग :** 21 नवम्बर को दोपहर 1 बजे तक पंडितजी डाल्टनगंज में ही थे। वहाँ पता चला कि कल जिस डिग्री कॉलेज में उन्होंने भाषण दिया था, वह कॉलेज किसी निस्संतान धनी व्यक्ति द्वारा निर्मित था। रात को 9-20 की ट्रेन से पंडितजी ने प्रयाग के लिए प्रस्थान किया और दूसरे ही दिन (22 नवम्बर) 10 बजे प्रयाग में डॉ. बदरीनाथ प्रसाद के भवन में पहुँचे। उसी दिन वे सम्मेलन मुद्रणालय गये। उनकी 'संस्कृत काव्यधारा' छप चुकी थी, पर अभी उसका मूल्य तय नहीं हुआ था। डॉ. उदयनारायण तिवारी उनसे मिलने डेरे पर आये। फिर उनके साथ बाजार जाकर लोहे के दो बक्से खरीद लिये। इलाहाबाद में बने लोहे के ट्रंक बहुत मजबूत होते हैं, इसलिए पंडितजी को ये ट्रंक अच्छे लगते थे। हमारे घर में पंडितजी के खरीदे हुए इलाहाबाद के ट्रंक एक दर्जन से अधिक हैं।

**प्रयाग-देहरा मार्ग :** 23 नवम्बर को 9 बजे के पश्चात् देहरादून जानेवाली ट्रेन में बैठ गये। लखनऊ तक बहुत कम सहयात्री थे, पर लखनऊ के बाद मुरादाबाद तक बहुत लोग आ गये। नजीबाबाद के बाद उनको नींद आने लगी और आराम से सो गये।

**मसूरी (24 नवम्बर) :** आकाश बादलों से ढँका था। 20 तारीख को यहाँ बजरी पड़ी थी। इसलिए ठंड थी। उसी दिन वे घर आ गये। रास्ते में यही सोचते आये कि पुस्तकों की पेटियों को रेलमार्ग से किस तरह से भेजा जाय।

## हर्न-क्लिफ में आखिरी दिन

घर में लगभग सभी पुस्तकें पेटियों में बन्द हो गयी थीं। पंडितजी की देख-रेख में अन्य सामान भी पैक किये जाने लगे। 27 नवम्बर को 20 मन भार की पुस्तकें रेलवे से लखनऊ भेज दी गईं। 25 को ही वे आयकर अधिकारी के पास गये और इलाहाबाद बैंक के चेक द्वारा कर का भुगतान कर दिया। 28-29 को भी वे हमारे साथ सामान बाँधने-बँधवाने में ही लगे रहे। 30 नवंबर को हर्न-क्लिफ में हमारा आखिरी दिन था। भेजनेवाले सामान सब भेज दिये जा चुके थे। साथ ले जानेवाले सामान भी पैक हो चुके थे। सायंकाल चाय-पान के समय जुत्शी-परिवार और लेडली परिवार आ गये थे। पंडितजी जैसे पड़ोसी के मसूरी से चले जाने के कारण लेडली-दम्पती बहुत दुखी थे। हमारे सबसे निकट के पड़ोसी वे ही लोग थे। हमारे दुख में भी वह हरदम मदद करते रहे। उन लोगों के पास रहने से हमें कितनी ही बातों में सहायता मिलती रहती थी। जुत्शी-दम्पती भी उतने ही दुखी थे। पंडितजी के साथ जुत्शी साहब की मैत्री बहुत गहरी थी। जुत्शी साहब के मधुर व्यक्तित्व से पंडितजी बड़े प्रभावित थे। हम लोग जब से मसूरी आये, तभी से उनके साथ बड़ी दोस्ती रही। एक ही परिवार के-से लगते थे। आज ही हमारे यहाँ 8 वर्ष से पलते आ रहे अल्शेशियन कुत्ते भूतनाथ को भी एक गोश्तवाले को दान में दिया गया। परिवार के एक सदस्य की भाँति वह वफादार कुत्ता इस जंगल में हमारे घर की रक्षा करता हुआ इतने लम्बे समय तक हमारे साथ रहा था। आज उसे घर से बाहर निकालते हुए हम सब का दिल भारी हो रहा था। मैं तो बहुत देर तक रोती ही रही, और पंडितजी ने लिखा—"भूतो गतौ वलीमुहम्मदगेहे। कमला विमुक्तवत्यश्रूणि।" 30 नवम्बर की रात को हर्न-क्लिफ में आखिरी रात थी। घर जोड़ने में हमें कितनी मेहनत पड़ी थी, पर तोड़ने में थोड़ा समय भी नहीं लगा। अब क्या आशा हो सकती थी कि हमारा घर फिर इसी

तरह जुड़ेगा। भारी मन लेकर हमने अपने घर में वह आखिरी रात बिताई।

1 दिसम्बर को हमें हर्न-क्लिफ से विदा होना था। पुस्तकें रखने के लिए 18 बड़ी-बड़ी अलमारियाँ थीं। खरीदते समय कुल 450 रुपये लगे थे, आज 200 रुपये में बेच देना पड़ा।

## नीड़ उजड़ गया

1 दिसम्बर को रविवार पड़ा था। अन्य रविवारों को हमारे यहाँ लोगों की भीड़ आती थी, पंडितजी प्रसन्नचित से सबका स्वागत करते थे, वार्तालाप करते थे। कितना अच्छा वातावरण रहता था। आज भी रविवार का दिन, किन्तु हम सब अपना बसेरा छोड़कर जा रहे थे। 10 बजे हम सब 'हर्न-क्लिफ' से निकल रहे थे। घर छोड़ते समय मुझे बहुत दुःख हो रहा था। इस घर की मधुर स्मृतियाँ हमारे पास थीं। यहीं रहकर पंडितजी ने कई बड़े-बड़े महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। यहीं भारत-भर के जिज्ञासु और राहुल-प्रेमी आकर मिला करते थे। कितनी ही पार्टियाँ हुईं, गपशप हुईं, नई-नई बातें सुननें-सीखने को मिलीं। इसी प्रकार की अनेक स्मृतियाँ इस मकान के कोने-काने से जुड़ी हुई थीं। जया-जेता ने अपना शैशव पिताजी की गोदी में खेलकर यहीं बिताया। मैं भी पहली बार इसी घर में गृहिणी बनकर आई थी। आज इस तरह अपने नीड़ को छोड़ जाने में हमें गहरी वेदना हो रही थी। यदि पंडितजी का भावी कार्यक्रम अस्थिर न रहा होता, तो हमें इस घर को छोड़ने की जरूरत ही न थी। उन्होंने विदेश का स्वप्न न देखा होता तो 'हर्न-क्लिफ' हम सबके लिए एक बसेरा था। पर क्या करें, उनके जीवन की अस्थिरता एवं उद्विग्नता उनको कहाँ चैन लेने देती। कमरे से बाहर निकलने से पहले एक बार मैं फिर उस घर के प्रत्येक कमरे में गई। जिस दिन यहाँ प्रवेश किया था उस दिन मकान की जो अवस्था थी, आज तो उससे ज्यादा खाली-खाली, सूना-सूना लग रहा था। आँखों में आँसू लेकर मैंने उस घर से विदा ली। पंडितजी, बच्चे और मंगलजी पहले ही फाटक के बाहर निकल चुके थे।

भोजन हम सबके लिए जुत्शीजी के घर में तैयार था। 50 रुपये में पूरी बस लेकर उसमें सामान लदवाकर हम देहरादून चले आये और 4 बजे से पहले ही श्री रूपनारायण मिश्र के गृह में पहुँच गये।

**देहरादून** : 2 सितम्बर को भोजन मेहताजी के घर में हुआ। अब हम लोग खानाबदोश-जैसे भटक रहे थे। दूसरों के घर में रहना एहसान के भार से दबना था। पुराना डालनवाला मुहल्ले में सूर्यभानजी का मकान देखने पंडितजी मुझको लेकर गये। मकान अच्छा लगा। परन्तु देखकर क्या करते ? पंडितजी के रहने का निश्चित प्रोग्राम होता तब न ? वह तो चीन के निमंत्रण की उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर हम लोग वहाँ मकान लेकर क्या करते ? हमने अपना सारा सामान मिश्रजी के मकान में एक कमरा लेकर रख दिया।

3 दिसम्बर को अपराह्न में 'दो आँखें बारह हाथ' फिल्म दिखलाने के लिए राहुलजी हम सबको सिनेमा हॉल ले गये। फिल्म उनको अच्छी लगी। उनके मित्र शुक्लजी, मिश्रजी तथा मेहताजी एवं सूरजभानजी ने पंडितजी को देहरादून में जमीन लेकर मकान बनवाने की सलाह दी। उस समय तो उनको यह प्रस्ताव अच्छा ही लग रहा था। परन्तु सवाल था वे भारत में रहेंगे या नहीं। जब उनको रहना हो, तभी मकान के बारे में निश्चय कर सकते थे। देहरादून से उनको नफरत भी नहीं थी।

## 4 दिसम्बर : देहरा-दिल्ली

4 दिसम्बर को राहुलजी दिल्ली जा रहे थे। वहाँ चीन की ओर से निमंत्रण आया या नहीं, इसकी जानकारी लेनी थी। 5 दिसम्बर को सुबह दिल्ली स्टेशन पर उतर वे हरिशरणानन्द भवन (फ़ैज़ बाजार) में गये। चाय पीकर उर्दू बाजार स्थित पार्टी ऑफिस में कामरेड फारुकी और श्रीमती विमला फारुकी से मिलने गये। विमला फारुकी शीघ्र ही प्राग (चेकोस्लोवाकिया) जा रही थीं। उसी दिन 10 बजे लोकसेवा आयोग में रूसी शिक्षक के चुनाव के लिए गये। वहाँ उनके रूसी शिष्य शिवायेफ से भेंट हुई। श्री वीर राजेन्द्र ऋषि, जिन्होंने 'रूसी हिन्दी शब्दकोश' बनाया है, रूसी शिक्षण के योग्य ठहराये गये। चाय-पान के लिए शिवायेफ ने पंडितजी को आमंत्रित किया। अगले वर्ष वह अवकाश ग्रहण कर रहे थे। वहाँ से पंडितजी पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, रानी

झाँसी रोड में गये। उसी रात वे देहरादून की वापसी यात्रा के लिए चल पड़े। स्टेशन पर श्री यज्ञदत्त शर्मा और सी. महाजन के पुत्र और पुत्रवधू उनसे मिलने आये।

**देहरादून :** 7 दिसम्बर को राहुलजी साहित्य गोष्ठियों में ही व्यस्त रहे। एक जगह दर्शन परिषद् महाविद्यालय में भारतीय दर्शन के सम्बन्ध में भाषण दिया। वहाँ पर अनेक साहित्यकारों के साथ उनकी भेंट हुई। इन्हीं सब कार्यक्रमों में पंडितजी का खूब मन रमा रहता था। 8 दिसम्बर को रविवार पड़ा। 10 बजे के बाद वे परिवार के साथ ताँगे में बैठकर बद्रीपुर गये। वहाँ श्री राजेन्द्रकुमार (लेखक) के घर पर मध्याह्न भोजन का आयोजन था। वहाँ से पड़ोस में ही श्री सत्येन्द्रजी के गृह में गये। उस स्थान से पंडितजी का 1948 से सम्बन्ध और परिचय था। सत्येन्द्रजी को मैंने भी 1949 में पहली बार हैदराबाद में देखा था। उनके यहाँ आज राहुलजी के लिए चाय-पार्न का आयोजन था, हम भी बुलाये गये थे। बहुत देर तक बातचीत चली। फिर 4.30 बजे ताँगा लेकर पंडितजी सपरिवार करणपुर (देहरादून) लौट आये। आज जया-जेता दोनों को दिन-भर पापा के साथ घूमने का अवसर मिला।

**अमृतसर :** देहरादून में राहुलजी को ज्यादा नहीं रहना था, क्योंकि अमृतसर से भैयाजी (स्वामी हरिशरणानन्द जी) बुला रहे थे। राहुलजी ने परिवार को जाड़े-भर वहीं रख देने का विचार कर लिया था। 10 दिसम्बर को 3 बजे वे सपरिवार अमृतसर के लिए रवाना हो गये। दूसरे दिन सबेरे 8 बजे हम अमृतसर पहुँच गये। दो ताँगों में सामान रखकर हम लोग मुहल्ला कुत्तियाँ दी गली में हरि-भवन में आ गये। स्वामीजी अपनी दूकान पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी गये थे, शीघ्र ही आ गये। अब पंडितजी यहाँ इस महीने के अंत तक रहनेवाले थे। स्वामीजी का घर हम लोगों के लिए अपना ही घर जैसा था। उनकी पत्नी ज्यादातर दिल्ली में रहती थीं। अमृतसर के घर में स्वामीजी रहते और कुछ किरायेदार भी। जाते ही उन्होंने रसोई मेरे सिपुर्द कर दी। राहुलजी आ रहे हैं, यह सोचकर खाने-पीने का सब सामान पहले ही घर में लाकर रख दिया था। यहाँ आकर जया-जेता भी बड़े खुश थे। यहाँ रहकर पंडितजी को कुछ निश्चिंत होकर काम करना था। डाक़ बहुत जमा हो गई थी। 12 दिसम्बर से ही उन्होंने काम करना आरम्भ कर दिया। उनके टाइपिस्ट और सहयोगी मंगलजी भी हमारे साथ ही थे। उसी दिन पंडितजी को जबलपुर जाने का निमंत्रण मिल गया। दूसरी जगहों में जाने के लिए और भी बुलावे आ गये। श्रीनिवासजी के साथ रायल्टी के लिए कुछ खिपपिच चल ही रहा था। आज वहाँ से कोई दुःख पहुँचानेवाली खबर मिली। पत्र में किताब महल ने पैसे के बारे में कुछ लिख दिया था, जो उनको चित्त में खेद पहुँचा रही थी।

अब अमृतसर में भी जाड़ा पड़ने लगा। परन्तु स्वामीजी के मकान की छत पर दिन-भर धूप रहती थी। राहुलजी धूप सेंकते हुए काम करते रहते, कमरे के अंदर तो अँधेरा और बहुत ठंड रहती थी। 13 दिसम्बर को दोपहर बाद वे पैदल ही घूमने निकले। हम सबको भी साथ ले गये थे। उन्होंने हमारे साथ ही अमृतसर गुरुद्वारा का दर्शन किया। लौटकर डेरे पर कुछ काम करते रहे। सायंकाल पंजाबी लेखक श्री गुरांदित्ता खन्ना उनसे मिलने आये। आज ही एक निम्बार्क सम्प्रदाय के गोस्वामीजी भी आये थे। उन्होंने 28 वर्ष पहले 'वारबधू' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी थी, किन्तु उसका गुणग्राही तब कोई नहीं निकला। उन्होंने पुस्तक की एक प्रति पंडितजी को भेंट की। उसी दिन साथी पूरनचंद जोशी का पेंकिंग से भेजा पत्र उनको मिला। पत्र से ज्ञात हुआ कि अभी तक वहाँ से कोई स्वीकृति नहीं मिली है। पता नहीं वहाँ से कब तक संदेशा मिले ? "का चिन्ते, यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।" (13 दिसम्बर)

लोक साहित्य के निबंधों पर संशोधन का काम निरन्तर चल रहा था। 15 दिसम्बर सायंकाल सार्वजनिक सभा में 'पंजाब में हिंदी भाषा की रक्षा' के विषय में उनका भाषण हुआ। अमृतसर के कम्युनिस्ट पार्टी के अनेक साथी सभा में उपस्थित थे। 16-17 दिसम्बर को भी पंडितजी का लेखन कार्य चलता रहा। 18 दिसम्बर को उन्होंने 'पंजाब में हिन्दी की रक्षा' और 'हिन्दी के शत्रु' शीर्षक दो लेख लिखाये। इसके बाद तीसरा लेख 'मेरी भावी तिब्बत यात्रा' भी लिखवाना शुरू किया। लेख लिखवाते समय भी पंडितजी की इस इच्छा की पूर्ति में सन्देह था, तभी तो उन्होंने लिखा—"न जाने पूर्ति गच्छेत् मानसे तुं लेखनीयमेव।" (18 दिसम्बर) 19 दिसम्बर

से अमृतसर में भी काफी सर्दी पड़ने लगी। 'मेरी भावी तिब्बत यात्रा' का लिखाना आज समाप्त हो गया। इसके बाद उन्होंने 'सप्तसिन्धु' का एक अध्याय भी लिखवाया। प्रतिदिन एक अध्याय लिखेंगे, ऐसा उन्होंने निश्चय किया। चीन-गमन के बारे में अभी सन्देह ही था, इसलिए दिल्ली जाना अभी कोई प्रयोजनीय नहीं था। पंडितजी देहरादून ही लौटना चाहते थे। 20-21 दिसम्बर को उन्होंने 'सप्तसिन्धु' का पंचम अध्याय लिखवाया। 'संस्कृत काव्यधारा' के प्रूफ आये थे, उनका भी संशोधन कर दिया। उसी दिन जालंधर से निमंत्रण आ गया। उन्होंने निश्चय किया कि चले जायेंगे, क्योंकि यह स्थान अमृतसर से दूर नहीं है।

**जालंधर :** 22 दिसम्बर को पंडितजी अमृतसर से बस द्वारा जालंधर की ओर चल पड़े। सिर्फ दो घंटे का रास्ता था। जालंधर के बारे में उन्होंने लिखा—"साधं नव वादने यावत् तिमिरावृता मृत मही। भरतानां मही यावद् वियाशम्। इदानी माझा (मध्य) नाम्ना प्रसिद्ध स्व भूभाग (वियाशः) शुतुद्रर्योमध्ये द्वाबा, यत्र पुरा पुरवो वरुन स्टजयाश्नः।" साढ़े 10 बजे नगरशाला (टाउनहाल) में पंजाबी लेखक संघ समिति का अधिवेशन हो रहा था। प्रातः सभा संग्रंथन के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ। इस सभा के अध्यक्ष थे नाटककार शेखू। भोजनान्तर सायंकाल के अधिवेशन में राहुलजी को भी कुछ बोलना पड़ा। उनका भाषण सभी को रुचिकर लगा। पंजाब में पंजाबी भाषा का समर्थन किया गया। कामरेड सुरजीत सिंह भी सभास्थल में मिले। पुराने साथी श्री सोहनलाल जी भी मिले। जालंधर नगर में उस समय दो लाख लोग रहते थे। कल उनको होशियारपुर की ओर चल देना था।

**होशियारपुर :** अगले दिन (23 दिसम्बर) राहुलजी ने बस द्वारा होशियारपुर के लिए प्रस्थान किया। एक घंटे की यात्रा थी (अमृतसर से सीधे आने पर दो घंटे लगते थे)। बस का किराया भी उस समय 1 रुपया 9 पैसे मात्र था। पंडितजी की दृष्टि में—"होशियारपुर नगर की भी वृद्धि हुई थी। वहीं साधु आश्रम है और वहीं पास में विश्वबन्धु वैदिक शोध-संस्थान भी।" संस्थान के डाइरेक्टर आचार्य विश्वबन्धु जी भी मिले। होशियारपुर में ही पुरानी बसी ग्राम में अपने बहुत पुराने मित्र श्री संतरामजी से वे मिलने गये। श्री संतरामजी ने परिवार को साथ न लाने के लिए उपालम्भ दिया पंडितजी को। संतरामजी के साथ उनकी मैत्री 1917-18 के जमाने से आरम्भ हुई और आजीवन बनी रही। पंडितजी के प्रति उनका कैसा स्नेह रहा, यह उनके लिखे पुराने पत्रों से ज्ञात होता है। साधु आश्रम में पंडितजी ने 'तिब्बत यात्रा' के बारे में भाषण किया। रात को बड़ी देर तक मित्रों के साथ सत्संग चलता रहा।

**अमृतसर-मार्ग :** दूसरे दिन (24 दिसम्बर) सुबह की चाय-पान के बाद पंडितजी ने लौटने के लिए श्री विश्वबन्धु जी से विदा माँगी। अतीव सौजन्यवाले थे विश्वबन्धुजी। एक घंटे के बाद बस से वे जालंधर आ गये। दिन के 3 बजे तक श्री सोहनलालजी के साथ पंडितजी जालन्धर के दर्शनीय स्थानों को देखते रहे। वे गुलाबदेवी अस्पताल को भी देखने गये। फिर गुरुद्वारा भी देखा और आर्यसमाज भवन में भी गये। इस भूमि के साथ पंडितजी की पुरानी प्रिय स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं। जब वे आर्यसमाजी धर्मप्रचारक थे, उन दिनों उनका जालंधर आना-जाना बराबर रहता था। किन्तु अब शहर बहुत बढ़ चुका था और उसमें परिवर्तन भी बहुत हो चुके थे।

**अमृतसर :** उसी दिन (24 दिसम्बर) सायंकाल 4 बजे बस द्वारा वे अमृतसर लौट आये। 25 दिसम्बर को भी वे घर में ही बैठकर 'संस्कृत काव्यधारा' के प्रूफ को देखते रहे। फिर स्वामीजी के पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर पढ़ते रहे। 26 दिसम्बर को पंडितजी अपने परिवार तथा स्वामीजी के साथ जलियाँवाला बाग घूमने गये। अब वहाँ सुन्दर उद्यान बना दिया गया था। उसी समय पंडितजी को जेल के पुराने परिचित मित्र पितामह केसरसिंहजी मिले। इस समय नब्बे वर्ष के आसपास उनकी उम्र थी। बाबा सोहनसिंह भकना से मिलने भी वे उनके निवासस्थान में गये। वह भी उस समय नब्बे वर्ष के आसपास थे, किन्तु अभी भी वे स्वस्थ थे। इनकी मृत्यु 1968 में हुई। बाबा सोहनसिंह भकना पंडितजी के देवली डिटेन्शन कैम्प निवास के परिचित थे।

27 दिसम्बर को पंडितजी से मिलने के लिए कुछ लोग डेरे पर ही आये। उनमें से एक श्री मक्खन तरसिक्का भी थे। तरसिक्काजी रीजनल पासपोर्ट आफिस में पदाधिकारी थे। 28 को भी वे कुछ न कुछ लिखते

या पढ़ते रहे। 29 दिसम्बर के दिन पंडितजी ने हाल ही में की हुई 'नगर ऊंटारी की यात्रा' के बारे में टाइप करवाया। 30 दिसम्बर को वे मंगलजी के पारपत्र के सम्बन्ध में तरसिक्काजी से मिले और कागजात आदि भी दे दिये, किन्तु बाद में किन्हीं अन्य कारणों से पारपत्र नहीं दिया गया। आज के दिन भी 'संस्कृत काव्यधारा' के बहुत-से प्रूफ आ गये थे, पंडितजी उसके संशोधन में भी व्यस्त रहे। उन्होंने जनवरी मास के सातवें दिन यहाँ से जाने का कार्यक्रम बनाया। अब परिवार की ओर से वे निश्चिंत थे, क्योंकि यहाँ पर 'कमला का मन लग गया' था और बच्चों के लिए और मंगल जी के लिए स्वामीजी के यहाँ सुविधाएँ थीं।

**वर्ष समाप्ति :** 31 दिसम्बर। आज 1957 के वर्ष का अन्तिम दिन, बहुत उतार-चढ़ाव का वर्ष रहा यह। अस्थिरता, अनिश्चितता का दुखद वर्ष। इसी वर्ष 'हर्न-क्लिफ' का हमारा बसेरा उजड़ गया। पंडितजी का विदेश जाने का कार्यक्रम अभी तक निश्चित नहीं हुआ। आगे के दिन कैसे आयेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता था।

31 दिसम्बर के दिन सदा की तरह राहुलजी ने पूरे वर्ष की अपनी उपलब्धियों के बारे में चिन्तन किया। कृतित्व की दृष्टि से यह वर्ष अच्छा ही रहा उनके लिए। इस वर्ष उन्होंने 'संस्कृत काव्यधारा', 'मध्य एशिया का इतिहास' (दो भागों में), 'चन्द्रसिंह गढ़वाली', 'कनैला की कथा' आदि पुस्तकों को समाप्त किया और जो उस समय प्रेस में छप रही थीं। पूर्व लिखित कृतियों 'ऋग्वेदिक आर्य', 'दोहाकोश' आदि को भी प्रेस में दे दिया, जिनके प्रूफों को वे देखते रहे। आगामी वर्ष में वे क्या लिखेंगे, वह अभी अनिश्चित था। चीन-यात्रा का भी अभी निश्चय नहीं हुआ था। चीन-तिब्बत-यात्रा के बारे में उन्होंने साहु मणिहर्ष ज्योति (नेपाल) को भी पत्र लिखे थे। कलिम्पोंग से श्री मणिहर्ष ज्योतिजी का पत्र आया, जिससे मालूम हुआ कि चीन जाने के लिए दो हजार रुपया चाहिए। सब मिलाकर चार हजार। परन्तु पहले निमंत्रणपत्र तो आ जाय, तब देखेंगे। इस विवरण से मालूम होता है कि राहुलजी चीन (तिब्बत) जाने के लिए कितने तत्पर थे।

लोकभाषा के प्रायः सभी निबंध आ चुके थे। आज 'चम्बियाली भाषा' का निबंध भी आ गया था। यह साल उनका दौड़-धूप और परेशानियों में ही बीता। अब आगे का जीवन अस्थिर हो गया था। अगला वर्ष कैसे बीतेगा, इसके लिए कोई सुन्दर कल्पना नहीं हो रही थी। जो भी हो, कुछ दिनों के लिए हम लोग अमृतसर निवासी हो गये।

# 3
# वर्ष 1958 का शुभारम्भ

## अमृतसर में

सन 1958 का प्रथम दिवस। आज नववर्ष के पहले दिन संसार के सभी लोग पूरे वर्ष की सुख-शान्ति की कामना करते हैं। जब तक हम लोग मसूरी में थे, राहुलजी भी पूरे वर्ष अपनी तथा परिवार की सुख-शान्ति की कामना करते थे। उस दिन वे अपने आगामी कार्यक्रमों की सूची बनाते, नयी चीजें क्या-क्या लिखनी हैं इस वर्ष, उसका खाका तैयार करते, सभी कुछ रुटिन के अनुसार ही चलता। लेकिन 1958 के वर्ष के आरम्भ में अब हमारा अपना कोई घर नहीं था, गृहस्थी भी उजाड़ दी गई, और आज दूसरों के यहाँ मेहमान की तरह पड़े हुए हैं। घर के कुछ सामान देहरादून में, कुछ अमृतसर में और कुछ रेलों में। मसूरी में एक-एक ईंट जोड़कर घर बनाया, गृहस्थी बसायी। इसको बनाने में कितनी मेहनत पड़ी थी, किन्तु उसे उजाड़ने में जरा भी देर नहीं लगी। जिसने इतनी बड़ी गृहस्थी चलायी, आज वही दूसरों के यहाँ मेहमान की तरह पड़े हुए हैं, वह भी अनिश्चित काल के लिए। तब किसके मन में शांति होती। मन की चिन्ता को बहलाने के लिए नववर्ष के प्रथम दिन पंडितजी ने मंगलजी से कुछ लेख टाइप करवाये। उसके बाद वे 'Hungry Hill' एक अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते रहे।

मसूरी छोड़ने के बाद अपनी पुस्तकों की पेटियाँ रेलवे पार्सल से कलिम्पोंग भेज दी गईं। पर मैं उन्हें कलिम्पोंग भेजने के पक्ष में नहीं थी। कलिम्पोंग जाकर रहेंगे, ऐसा कोई निश्चय तो हमने किया ही नहीं था, फिर पुस्तकों की आवश्यकता भी तो पड़ेगी। अभी भी हमें कलिम्पोंग सामान भेजकर खुशी नहीं हो रही थी। परन्तु पंडितजी की इच्छा के आगे किसका जोर चलता। किसी तरह उन्हें समझा-बुझाकर, उनसे लखनऊ में श्री यशपालजी को तार दिलवाकर सामान लखनऊ में ही रुकवा दिया। सामान को रेलवे से भेजने में 200 रुपये खर्च हुए थे। लेकिन क्या किया जाय ? रहना तो अभी राहुलजी को उत्तरप्रदेश में ही था, फिर उन्हें पुस्तकों की आवश्यकता भी तो पड़ेगी। जब तक सामान के रुकने और देहरादून लौटाने की खबर नहीं मिलेगी, पंडितजी चिन्तित थे।

भावी कार्यक्रम अनिश्चित था। चीन जाने की बात भी अनिश्चित थी। यदि इसका शीघ्र निश्चय हो जाता तो उनको आगामी प्रोग्राम बनाने में सुविधा होती। चीन जाने के नाम पर मसूरी छोड़ दी, किन्तु अब भी कोई खबर नहीं आ रही थी। राहुलजी ने 2 जनवरी को तय किया कि यदि जनवरी-भर भी यात्रा के लिए कोई खबर न आये तो वे फरवरी के प्रथम सप्ताह में दिल्ली जायेंगे और वहाँ पार्टी-आफिस में पूछताछ करेंगे।

3 जनवरी के दिन भी पंडितजी बहुत उत्सुक नहीं थे। नया वर्ष उनको भी भारी लग रहा था। मन को भविष्य की चिन्ताएँ परेशान करती थीं। किसी प्रकार भी वे अपने मन को आश्वस्त नहीं कर पा रहे थे।

उस दिन की डायरी में उन्होंने लिखा—"प्रकाशक पर विश्वास नहीं है। आर्थिक अभाव खटकता है, अधिक कमाने का सामर्थ्य भी अब नहीं है, जीविका का अभाव भी है ही। किसी बड़ी जगह में मैं अध्यापन का कार्य भी स्वीकार कर सकता हूँ। बच्चों के भविष्य की चिन्ता होती है।" चिन्ता से आखिर कोई लाभ नहीं। चिंता किसको नहीं होती, किन्तु 24 घंटे रात-दिन उसी में डूबे रहें तो कुछ भी तो समाधान नहीं हो सकता। लेकिन हमारे पंडितजी अब बड़े भावुक हो गये थे। सोचना, चिन्ता करना और खामोश रहना, जैसे यही काम रह गया था।

उस दिन भी वे वही अंग्रेजी उपन्यास पढ़ते रहे। उनको समय बिताने के लिए यह अच्छा साधन मिल गया था। प्रयाग में 10 जनवरी को उपस्थित होने के लिए आज ही निमंत्रण पत्र मिल गया। वहाँ माध्यमिक शिक्षा परिषद् में किसी भाषा विशेष के पाठ्यक्रमों पर विचार-विमर्श करना था।

अमृतसर में राहुलजी को आये अभी कुछ ही दिन हुए थे, किन्तु उनके यहाँ पर होने की चर्चा सभी पंजाबी साहित्य प्रेमियों में फैल गई। अब गोष्ठी और सभा के लिए लोग उनसे अनुरोध करने लगे। 4 जनवरी को भी खालसा कॉलेज के विद्यार्थियों के सम्मुख भाषण देने के लिए उनको जाना पड़ा। भाषण का विषय था—'पंजाबी भाषा का विकास।' अन्य कई वक्ता थे जिन्होंने सुन्दर भाषण किया। पंडितजी उनसे बहुत प्रभावित थे। यह खालसा कॉलेज प्राचीनतम सिक्ख विद्यालय है, "जिसे अंग्रेजों ने स्थापित किया था। राष्ट्रवुभुक्षा से विरत करने के लिए ही यह विद्यालय खोला गया था।"

शाम को घर लौटकर राहुलजी 'संस्कृत काव्यधारा' के प्रूफ को देखते रहे। प्रूफ में बहुत संशोधन करना था। परन्तु आज अपने उस प्रिय कार्य में भी उनका मन नहीं लगा रहा था। भविष्य अनिश्चित लग रहा था उनको। यह अनिश्चित अवस्था उनके लिए अति चिन्तनीय थी। आज अपना उपन्यास 'सप्तसिन्धु' लिखाने में भी उनकी रुचि नहीं हो रही थी। घर की तरह सुविधा अन्यत्र कहाँ मिल सकती है ? विशेषकर एक लेखक को, वह भी किसी प्रतिष्ठित लेखक को एक स्थान में बैठकर कार्य करने में ही सुविधा होती है। अब यहाँ अमृतसर में रहकर पंडितजी क्या लिख सकते थे ?

अगले दिन 5 जनवरी को भी प्रूफ संशोधन का काम करते रहे। उनके प्रति स्वामीजी का व्यवहार सहृदयतापूर्ण था। अतः यहाँ पराये की भावना का सवाल ही नहीं था। स्वामीजी राहुलजी को सपरिवार यहाँ अथवा दिल्ली के अपने मकान में रहने का आग्रह कर रहे थे। खैर, कुछ दिनों तक परिवार को अमृतसर में ही रखने का उन्होंने तय कर लिया। हम लोगों को भी स्वामीजी के यहाँ कोई तकलीफ नहीं थी। स्वामीजी ने सारे घर का भार हमारे ऊपर ही छोड़ दिया। खाना मैं खुद बनाती थी, इसलिए अपने को मेहमान की तरह महसूस नहीं करते थे। बच्चे भी यहाँ खुश ही थे, इसलिए पंडितजी की तसल्ली हो गई। अतः परिवार को यहाँ रखकर वे एक महीने के लिए प्रयाग और दिल्ली में रहने का कार्यक्रम बनाने लगे।

6 जनवरी को राहुलजी अपने परिवार के साथ कम्पनी बाग घूमने गये। मसूरी छोड़ने के बाद अब वे कहीं स्थिर होकर अपना लेखन-कार्य नहीं कर पा रहे थे, इसलिए उनका चित्त अस्थिर रहना स्वाभाविक ही था। कम्पनी बाग में घूमते समय उन्हें कुछ भोटभाषी (तिब्बती) लोग मिले, जिनके साथ तिब्बती भाषा में बात करते हुए उन्हें बड़ी सन्तुष्टि हुई। कल 7 जनवरी को उनको प्रयाग के लिए प्रस्थान करना था। अतः पहले वे देहरादून जाना जाते थे। परिवार को अब स्वामीजी के गृह में रख देने के कारण उनको कोई परेशानी नहीं थी।

7 जनवरी को राहुलजी स्वामीजी लिखित 'सृष्टि-रचना' की पाण्डुलिपि को पढ़ते रहे। अब इस पुस्तक के प्रकाशन के सम्बन्ध में सोचा जा रहा था। आज ही उनको देहरादून लौटना भी था। सायंकाल पाँच बजे कमला-जया-जेता तथा मंगलजी के साथ वे स्टेशन गये। कुछ देर में भैयाजी (स्वामीजी) भी पहुँच गये। 6.10 बजे वे रेल में सवार हुए और प्रस्थान करने लगे। कम्पार्टमेंट में भीड़ अधिक नहीं थी, अतः उन्हें सोने के लिए अच्छा स्थान मिल गया था। दूसरे दिन सहारनपुर होते दोपहर के 1 बजे के बाद वे देहरादून पहुँच गये।

**देहरादून में :** 8 जनवरी को यहाँ आते ही वे श्री रूपनारायण मिश्र की थीसिस को पढ़ने में व्यस्त रहे।

कुछ समय बाद श्री सदानन्द मेहता भी वहाँ आ गये और उनकी थीसिस को भी पंडितजी ने देखा। मसूरी के पत्रालय (डाकघर) को उन्होंने अपनी डाक देहरादून रिडाइरेक्ट करने के लिए नहीं लिखा था, इसलिए यहाँ डाक उतनी आई नहीं थी।

लखनऊ से किताबों की 20 पेटियाँ लौटकर देहरादून पहुँच गई थीं। साथ ही उसी दिन श्री अनूपलाल मंडप ने पटना से सूचना दी कि 'मध्य एशिया का इतिहास' पूरा छप गया है।

9 जनवरी से लेकर 13 जनवरी तक राहुलजी देहरादून में श्री रूपनारायण मिश्र के घर में रहे। परिवार अमृतसर में और वे यहाँ थे। परिवार को यहाँ लाकर किसी के यहाँ मेहमान के रूप में रखना भी उनको उचित नहीं लग रहा था। उन्हें परिवार की याद आना स्वाभाविक ही था। इस बीच 9 जनवरी के दिन देहरादून स्थित कन्या गुरुकुल देखने गये। इस स्थान का उन्होंने बड़े ध्यान से निरीक्षण किया। कन्या गुरुकुल के प्रति वे उत्सुक इसलिए हुए थे कि भविष्य में वे अपनी पुत्री जया को इसी स्थान में पढ़ाने का निश्चय कर रहे थे। परन्तु बाद में उन्होंने अपने इस निश्चय को बदल दिया। 10 जनवरी को वे स्थानीय इलाहाबाद बैंक के मैनेजर श्री मालवीयजी के घर सायं भोजन के लिए आमंत्रित होकर गये। 11 जनवरी को उन्हें फिर कन्या गुरुकुल में भाषण देने जाना पड़ा। श्री रामदेवजी तथा श्री यशपालजी वहाँ आये हुए थे। इसी दिन भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय से एक पत्र आया, जिसमें पंडितजी से नेपाल में सांस्कृतिक भाषण देने का आग्रह किया गया था। उन्होंने 2 मार्च से 15 मार्च के बीच वहाँ जाने के अपने निश्चय की सूचना भारत सरकार को भेज दी।

राहुलजी की मनःस्थिति इस समय अस्थिर थी। दूसरे के घर में ठहरे थे। वहाँ बैठकर लोगों की थीसिस देखते थे, पर अपना लिखना-पढ़ना ठप्प था। कल उनको दिल्ली भी जाना था, क्योंकि वहाँ जाकर चीन के निमंत्रण के बारे में पता लगाना चाहते थे। 13 जनवरी को वे दिन-भर अपनी पुस्तक 'संस्कृत काव्यधारा' के प्रूफ देखते रहे। शाम के समय मसूरी से श्री श्यामनारायण पाण्डे आ गये। पंडितजी उन्हीं के साथ 8.10 बजे देहरादून स्टेशन गये और 8.30 की गाड़ी से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। मसूरी का घर छोड़ते समय उनका पासपोर्ट कहीं गुम हो गया था। अतः पासपोर्ट खो जाने की सूचना पुलिस को देनी थी।

**दिल्ली :** 14 जनवरी को सबेरे पंडितजी दिल्ली पहुँच गये। वहाँ साथी सच्चिदानन्द शर्मा के यहाँ गये। पासपोर्ट के सम्बन्ध में बड़ी भ्रांति हो गई थी। पासपोर्ट गुम होने की सूचना पहले देहरादून के पुलिस सुप्रिंटेन्डेन्ट को देनी पड़ती है, तब उस सूचना और आवेदन पर नये पासपोर्ट के लिए दिल्ली से कार्यवाही की जाती है। उस समय पासपोर्ट मिलना ही बहुत कठिन था। फिर पंडितजी ने अपने गुम हुए पासपोर्ट का कहीं नम्बर भी नोट करके नहीं रखा था। उसी दिन वे सच्चिदाजी के साथ रूस-भारत निर्मित 'परदेशी' फिल्म को देखने गये। फिल्म उनको अच्छी लगी।

**दिल्ली-प्रयाग मार्ग :** पंडितजी का दिल्ली में व्यस्त कार्यक्रम रहा। 15 जनवरी को वे दिल्ली से प्रयाग की ओर चल पड़े। 16 जनवरी को सबेरे 11 बजे प्रयाग पहुँचकर वे सदा की तरह डाक्टर बदरीनाथ प्रसाद के गृह में गये। उस समय डाक्टर साहेब दक्षिण भारत की यात्रा पर गये हुए थे। सामान वहाँ रखकर पंडितजी सम्मेलन प्रेस गये। उनकी 'संस्कृत काव्यधारा' सम्पूर्ण छप गई थी। इस बार वे अपनी अन्य पुस्तकों के छपवाने की व्यवस्था करने के लिए भी प्रयाग गये थे। प्रयाग माध्यमिक शिक्षा परिषद् में उन्हें भाषण भी देना था। परिषद् में बाबा राघवदासजी से भी भेंट हुई। पुराने परिचितों से मिलकर पंडितजी खुश हुए। परिचित लोग चरम वियोग देकर एक-एक कर चले जा रहे हैं। इससे उनको दुःख होता है। 18 जनवरी को वे सम्मेलन मुद्रणालय गये। 'संस्कृत काव्यधारा' पुस्तक की भूमिका वहीं बैठक लिखकर दे दी छपने के लिए। नामानुक्रमणी को पहले ही समाप्त कर दिया था।

19 जनवरी को पंडितजी प्रूफ संशोधन कार्य में लगे रहे। पूर्वाह्न में ही डाक्टर प्रसाद के घर समाजवादियों की गोष्ठी हुई। विचार-विमर्श के समय लोगों ने कम्युनिस्टों की आलोचना की। भाषा के बारे में भी तर्क हुए। मध्याह्न भोजन पंडितजी ने श्रीनिवास अग्रवाल के यहाँ किया। सम्मेलन के लोग भी मिलने आये। उसी दिन दिन में वे पंडित क्षेत्रेशचन्द्र महाशय से भी मिले। 20 जनवरी को वे प्रयाग से देहरादून जानेवाली ट्रेन में सवार

हुए। 21 जनवरी को सुबह लखनऊ पहुँचकर पंडितजी रेलवे एजेन्सी में गये, वहाँ देहरादून से भेजी गई पुस्तकों की पेटियों के बारे में पता लगवाया तो मालूम हुआ कि पेटियाँ पहुँच गई थीं। इनको कलिम्पोंग भेज देने का ख्याल छोड़ दिया और अब वापस देहरादून भेजने का निश्चय किया।

**देहरादून :** 22 जनवरी को राहुलजी देहरा वापस आ गये। बहुत सारी चिट्ठियाँ आई हुई थीं, उन्होंने सबका उत्तर लिख दिया। जुत्शी दम्पती अपनी बेटी डॉ. उषा के पास देहरादून में थे। पंडितजी उनसे मिलकर प्रसन्न हुए। 'राहुल प्रकाशन', मसूरी से प्रकाशित तीन पुस्तकों की ढेर सारी कापियाँ रेलवे आउट एजेन्सी, मसूरी से दिल्ली पी. पी. एच. के पास भेज दी गई थीं, अभी उनकी पहुँच की सूचना नहीं मिली थी। 29 जनवरी को अमृतसर जाना उन्होंने तय कर लिया। 13 जनवरी का लिखा हुआ डा. राजबली पाण्डेय का पत्र पढ़कर वे कुछ उत्तेजित-से हुए। पत्र में हिन्दी के लोक साहित्य सम्बन्धी तीन-चार सुझाव दिये गये थे, पूरे साल-भर लगातार उन्होंने इतना परिश्रम करके ग्रन्थ का सम्पादन किया था, उसमें भी उनके सम्पादन में मीन-मेख निकाला गया था। अन्त में डॉ. पाण्डेय ने लिखा था–हमें यह मालूम नहीं कि आपका स्वास्थ्य इस समय कैसा है। आपके पास यह सामग्री सम्पादनार्थ भेज दी जाय अथवा यदि आपका स्वास्थ्य और समय अनुकूल न हो तो आपका यह कार्य किसी अन्य से कराया जा सकता है ? इसके लिए आपकी आज्ञा अपेक्षित है। उस दिन की अपनी डायरी में उन्होंने लिखा–"नागरी प्रचारिणी सभा मंत्रिण लिखितं, लोकसाहित्य निबन्धेषु परिवर्तन पूरणीयम्। मया लिखितं, तत् क्रियते चनास्तिमया प्रयोजनम्।" इतनी बड़ी पाण्डुलिपि को उन्होंने अपने टाइपिस्ट मंगलजी से टाइप करवाया था। टंकक को कुछ पारिश्रमिक तो सभा की ओर से मिलना चाहिए था। पंडितजी को अफसोस हो रहा था कि लोक साहित्य के सम्पादन की बात जब पक्की हो गई थी, उस समय टंकन आदि के बारे में उन्होंने कुछ क्यों नहीं कहा ?

हिन्दी का लोक साहित्य जब छपकर तैयार हुआ, तब इसके सम्पादक के नाम को लेकर फिर मतभेद हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा वाले चाहते थे, चूँकि पाण्डुलिपि में कुछ संशोधन का काम दूसरे विद्वान ने भी किया है, इसलिए सम्पादन में राहुलजी के साथ उन विद्वान का भी नाम दिया जाय। इस प्रस्ताव से पंडितजी को बहुत ही दुःख हुआ। अपने बहुमूल्य कार्यों को स्थगित रखकर 'लोक साहित्य' का इतना बड़ा काम अपने हाथ में उन्होंने लिया था और बहुत परिश्रम और लगन के साथ उन्होंने यह काम पूरा कर दिया था। सम्पादन में यदि दूसरे का भी नाम देना सभावाले उचित समझते हैं, तो उसमें राहुलजी का नाम न रखा जाय। उन्होंने सभा के मंत्री को लिख भेजा। वह लोग कठिनाई में पड़ गये। राहुलजी को दुःख हुआ है, यह समझ गये, फिर भी दो सम्पादकों का नाम रखने के लिए निर्णय लिया जा चुका था। राहुलजी ने अपना नाम हटाने की जिद की है, उनको कैसे समझावें। सभावालों ने डा. उदयनारायण तिवारी को मध्यस्थ बनाकर राहुलजी से मिलवाया। तब भी वे तैयार नहीं हुए थे। फैसला होने से पहले ही राहुलजी चीन चले गये। तब दो सम्पादकों के नाम के साथ वह ग्रन्थ प्रकाशित कर दिया गया।

इधर पंडितजी अपने पासपोर्ट के गुम हो जाने से परेशान थे। रूपनारायण मिश्रजी के घर में कमरा लेकर उन्होंने मसूरी का सामान रखवाया था। पेटियों को एक-एक कर खोलकर देख रहे थे, पर पासपोर्ट नहीं मिला। 23 तारीख को उन्होंने सुप्रिंटेन्डेन्ट आफ पुलिस, देहरादून के पास अपने पासपोर्ट खो जाने की रिपोर्ट दर्ज कराई। मसूरी में सामान पैक करते समय उन्होंने अपने आवश्यक कागजात एवं पुस्तकों को खुद ही बन्द करवाया था। अब इतने सामान में पासपोर्ट कैसे मिल सकता था। परिवार तो उस समय अमृतसर में था, इधर पंडितजी दूसरों के घर में मेहमान बनकर रह रहे थे। ऊपर से पासपोर्ट भी गुम है, फिर चीन से भी अभी तक निमंत्रण नहीं आया था। वे अब बहुत ही उद्विग्न हो गये। मन में सन्देह हुआ कि क्या पता कमला ने ही पासपोर्ट कहीं छिपा दिया हो। अमृतसर के स्वामीजी ने भी यही लिख भेजा कि कमला ने ही आप विदेश न जायें, इसलिए वह चीज कहीं रख दी होगी। एक निर्दोष व्यक्ति पर बिना सोचे-समझे इस तरह का लांछन लगाना राहुलजी जैसे व्यक्ति के लिए शोभनीय नहीं था। किन्तु राहुलजी उस समय यह सब सोचने की स्थिति में नहीं थे। परिणामस्वरूप 23 जनवरी से 30 जनवरी तक वे बहुत ही उद्विग्न रहे। पेटियों को खोल-खोलकर देखा,

ट्रंकों को खोल-खोलकर देखा, पर वह नहीं मिला। कलिम्पोंग में रहते समय भी इस तरह खुफिया विभाग के अफसर ने उनके रसोइये के माध्यम से उनका पासपोर्ट चुरा लिया था। वे सोचने लगे, यदि चीन से इसी समय निमंत्रण आ जाये और उनका पासपोर्ट न मिले तो वे चीन कैसे जायेंगे। इसी कारण से उनका मन उखड़ गया। अब अस्थिरचित्तता के कारण कभी उनका मन रूस की ओर दौड़ता, कभी भारत के अपने परिवार की ओर। रूस में मन दौड़ जाने का प्रमाण मुझ को बाद में मिला। इस समय पंडितजी की नजर में मैं ही दोषी दिखाई दी। इस समय उनको मित्रगण ही ज्यादा प्रिय लगे और पत्नी को तुच्छ समझा। काश, वे विद्वान होने के साथ मनोवैज्ञानिक भी होते। उनकी यही बुरी आदत थी कि वे दूसरों की बातों में आ जाते थे और घर के लोगों में उन्हें दोष दिखाई देते। उनके मित्र और मित्राओं में सभी हमारे हितैषी नहीं थे, पर पंडितजी भला समझने की कोशिश करते तब न ?

**अमृतसर :** 31 जनवरी को पंडितजी देहरा से अमृतसर आये। उस दिन जेता का जन्मदिन भी था। पर उनके मन में कोई खुशी नहीं थी। आकर स्वामीजी की लिखी हुई पुस्तक 'सृष्टि-रचना' को देखते रहे, बच्चों से बातें करते रहे। अभी तक दिल्ली से कोई खबर नहीं आई थी, इसलिए वे चिन्तित थे।

1 फरवरी को वे घर पर ही रहे। प्रूफ कुछ आ गये थे, उन्हीं को देखते रहे। अभी कोई नया काम हाथ में नहीं ले रहे थे। 2 फरवरी को भी 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के प्रूफ संशोधन का काम करते रहे। आज उस काम को समाप्त ही कर दिया। 3 फरवरी को स्वामीजी की पुस्तक का अवलोकन करते रहे। 4 फरवरी को परिवार के साथ कम्पनी बाग घूमने का प्रोग्राम बनाया। जाने के लिए ऊपर के कमरे से उतर ही रहे थे कि अँधेरा होने के कारण एक सीढ़ी नहीं दिखाई दी, इससे उनके पैर में मोच आ गयी। अतः जाना स्थगित हो गया। पैर में चोट तो नहीं लगी, पर बहुत दर्द हो रहा था। 5 फरवरी को आहत पाँव में सूजन आ गयी, पीड़ा अधिक होने लगी। स्वामीजी ने कुछ औषधि दी, और पेनिसिलिन का इन्जेक्शन भी लगा दिया। 6 फरवरी को भी पैर में वैसा ही दर्द बना रहा। चलना कठिन हो गया। पूर्वनिश्चित कार्यक्रमानुसार कल 7 फरवरी को उनको 'इंडियन काउन्सिल ऑफ कल्चरल रिलेशन' की एक बैठक में भाग लेने के लिए दिल्ली जाना था, परन्तु पाँव के दर्द के कारण वे न जा सके। लखनऊ जाने का प्रोग्राम भी उन्होंने स्थगित कर दिया। 8 फरवरी को स्वामीजी के ग्रंथ 'सृष्टि-रचना' को ही देखते-पढ़ते रहे। 9 फरवरी को भी वे भैया (स्वामीजी) की पुस्तक को देखते-पढ़ते रहे। उनके पाँव में अभी भी कुछ पीड़ा थी, पाँव की सूजन अभी कम नहीं हुई थी। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पंडितजी को आज 10 फरवरी को लखनऊ पहुँचना था, क्योंकि कल वहाँ लोक साहित्य समिति की बैठक होनेवाली थी, किन्तु उन्होंने जाना स्थगित कर दिया। पाँव का दर्द अभी तक बना हुआ था। ऐसी हालत में यात्रा करना उनके लिए ठीक नहीं था। अभी तो पाँव के दर्द के कारण वे घर से बाहर भी नहीं जा सके थे। 11 और 12 फरवरी को भी वे स्वामीजी की पुस्तक 'सृष्टि-रचना' का अवलोकन करते रहे। 13 फरवरी को उन्होंने स्वामीजी की 'सृष्टि रचना' को पूरा देख लिया। पुस्तक उनको बहुत अच्छी लगी। पुस्तक में विश्वविज्ञान, विकासवाद, सूर्य-पृथ्वी निर्माण, विज्ञान और ईश्वर का भेद आदि विषय पर स्पष्ट प्रकाश डाला गया था, इसलिए भी पंडितजी को यह पुस्तक बहुत अच्छी लगी।

**अमृतसर-दिल्ली मार्ग :** 13 फरवरी की रात की गाड़ी से पंडितजी दिल्ली के लिए चल पड़े और अगले दिन 14 फरवरी सुबह सात बजे हरिभवन, फ़ैज़ बाजार पहुँच गये। चाय-पान के बाद वे पटौदी हाउस गये। वहाँ श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारजी से उनको मिलना था। वहाँ से सांस्कृतिक सम्मेलन में भाग लेने विज्ञान भवन गये करीब 11 बजे के। सम्मेलन का प्रथम सत्र साढ़े 12 बजे तक चला। इसकी अध्यक्षता मौलाना आजाद ने की। मध्याह्न भोजन के बाद पंडितजी जोशीजी (पी. सी.) से मिलने उनके पार्टी-ऑफिस में गये। वहाँ श्री अजय घोष से भी उनकी बातचीत हुई। विशेषकर चीन से निमंत्रण जल्दी मँगवाने के बारे में पंडितजी ने उन दोनों साथियों को कहा। मालूम हुआ पार्टी की ओर से जोरदार कोशिश हो रही है, किन्तु अभी उतनी सफलता नहीं मिली है। उसके बाद पंडितजी रानी झाँसी मार्ग स्थित पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस में गये। कुछ देर वहाँ बैठकर साथियों से बातचीत की। फिर बिड़ला मन्दिर के पास बुद्ध मंदिर में भी गये। 3 बजे वे विज्ञान

भवन गये। वहाँ उन्होंने भोट में सुरक्षित निधि (ग्रंथ) के बारे में भाषण दिया। आज पार्टी-ऑफिस में साथी इन्द्रदीप तथा साथी सज्जाद जहीर साहेब से भी पंडितजी की भेंट हुई। इनसे मिलकर शाम को वे डेरे पर लौट आये।

15 फरवरी को भी उन्हें दिल्ली में रहना था। आज भी संस्कृति परिषद् का सम्मेलन हुआ। पूर्वाह्न में वे गये और सम्मेलन अपराह्न 4 बजे समाप्त हुआ। 16 फरवरी को स्वामी हरिशरणानन्दजी (जो अमृतसर से यहाँ आ गये थे), उनकी पत्नी जानकी देवी तथा भतीजे के साथ पंडितजी हरिजन निवास (किंग्सवे) में गये, वहाँ उनको श्री वियोगी हरिजी से मिलना था। वहाँ श्री विष्णु प्रभाकर से भी भेंट हुई। पूर्वाह्न और रात को भी वे पार्टी ऑफिस गये और श्री पी. सी. जोशी से चीन जाने के सम्बन्ध में देर तक संलाप किया। उसी रात को उन्हें देहरादून लौटना था।

**देहरादून :** 17 फरवरी को सुबह साढ़े 8 बजे राहुलजी देहरादून पहुँच गये। आज का दिन शीतल एवं बादलयुक्त था। यद्यपि पंडितजी ने पासपोर्ट गुम होने की सूचना पुलिस सुप्रिंन्टेण्डेण्ट को दे दी थी, पर अभी भी उनको लग रहा था कि वह क़िसी पेटी या बक्स के अंदर शायद मिल जाये। फिर पेटियों, ट्रंकों को खोलकर देखने लगे। पर वह नहीं मिला। अब रीजनल पासपोर्ट ऑफिस, लखनऊ में आवेदनपत्र भेजने की जरूरत थी। उस समय लखनऊ में पंडितजी के घनिष्ठ मित्र पंडित बलभद्र मिश्रजी सरकारी ऊँचे पद पर थे, इसलिए राहुलजी को दुबारा पासपोर्ट मिलने में कोई कठिनाई नहीं होनेवाली थी। इधर सारे देश में उनके चीन जाने की खबर फैल गई थी। अब किसी बड़े काम के अभाव में वे अपना जीवन दुर्भर होने की आशंका कर रहे थे।

देहरादून में अभी तक ठंड पड़ रही थी। पुस्तकों के प्रूफ आये थे, पंडितजी उनका संशोधन करते रहे। रूपनारायणजी तथा मेहताजी की थीसिस भी उनको देखनी थी, यह काम भी वे करते रहे। 18 फरवरी को अमृतसर से पत्र आया, जिससे पता चला कि कमला अस्वस्थ है, शिरोवेदना और हृदय-पीड़ा से वह पीड़ित है। पंडितजी चिन्तित हो गये। सब काम छोड़कर अमृतसर चले जाने का मन हुआ, पर पहले उन्होंने अमृतसर तार भेजा। इस बार कमला को अस्पताल में दाखिल होना है शल्यचिकित्सा के लिए। इसलिए पंडितजी दुविधा में पड़ गये—जायें या न जायें।

19 फरवरी को प्रातः पंडितजी रूपनारायणजी की थीसिस को देखते रहे। उसके बाद स्वयम्भू पर कुछ लिखा। कल उन्होंने मुझे यहीं बुलाने के लिए तार भेजा था। पर आज सोच रहे थे कि यहाँ आने पर मुझको तकलीफ होगी, इसलिए अमृतसर में रहना ही ठीक रहेगा। वे इन थीसिसों का काम समाप्त करके स्वयं अमृतसर जायेंगे। 20 फरवरी को अमृतसर से तार आया, उनको शीघ्र बुलाया गया था। इस बीच उनको प्रयाग में कार्यवश जाना था, किन्तु अब उन्होंने अपना विचार बदल दिया। उनको बच्चों की भी चिन्ता हुई। इसलिए उसी रात को 8.18 मिनट की ट्रेन से अमृतसर के लिए उन्होंने प्रस्थान किया।

**पुनः अमृतसर में :** अपने आने की सूचना उन्होंने कल ही तार द्वारा भेजी थी। 21 फरवरी को सुबह वे अमृतसर पहुँच गये। 'कमला चिन्तामग्न थी।' यहाँ परदेश में दूसरे के घर में परिवार को इतने दिन से रख छोड़ा था, अब उनको फिक्र हो रही थी कि क्या करें। अभी के लिए उन्होंने अन्यत्र जाने का निश्चय त्याग दिया। अभी उनको परिवार के साथ रहना था। नेपाल से निमंत्रण पहले ही आ चुका था। इस बार उन्होंने अकेले न जाने का निश्चय किया, जायेंगे तो बाल-बच्चों के साथ। "पर देखें, कमला तब तक स्वस्थ होती है या नहीं। बाद में निश्चय हो सकता है, इस महीने के अन्त तक जाने की स्थिति में हों।" 23 फरवरी को भोजनान्तर पंडितजी परिवार को लेकर कम्पनी बाग घूमने गये। आज दिन भी शुभ रहा। 24 फरवरी से मैं बीमार पड़ गई। 25-26-27-28 फरवरी तक ज्वर 103° तक रहा। पंडितजी बहुत चिंतित। बच्चों को भी देखना था। अच्छा हुआ कि उस समय मंगलजी साथ में थे। पंडितजी ने मुझे इतनी बीमार पड़े पहले नहीं देखा था। 1 मार्च के दिन मेरी अवस्था और बिगड़ गई। पंडितजी आतंकित हो गये कि कोई अनिष्ट हो जाये तो बच्चों का क्या होगा। 2 मार्च को भी मैं रोग-शैया पर ही थी, पर आज ज्वर कुछ कम हो जाने से पंडितजी थोड़े आश्वस्त हो गये। आज उन्होंने सोचा कि मेरे ठीक हो जाने पर हम सब नेपाल जायेंगे। स्वामीजी के यहाँ

उस समय नौकर नहीं था, इससे पंडितजी को बहुत कष्ट हुआ था। और सोच भी रहे थे किसी के यहाँ मेहमान बनकर रहना ठीक नहीं है। आज थोड़ा प्रूफ संशोधन का काम किया।

3 और 4 मार्च को राहुलजी अपने परिवार के साथ रहे, कुछ पढ़ते-लिखते भी रहे। साथ ही नेपाल-भ्रमण के बारे में भी चिन्तन करते रहे। 5 मार्च को होली पड़ी थी। अमृतसर की होली का आनन्द वे ले रहे थे। जेता भी होली खेलने में मस्त, पिताजी भी प्रसन्न। आज ही दिल्ली से तार द्वारा सूचना आ गई कि 12 मार्च को नेपाल (काठमाण्डू) पहुँचना होगा। 6 और 7 मार्च को पंडितजी ने कोई विशेष काम नहीं किया। घर पर ही रहे। यहाँ से कल प्रस्थान करने का कार्यक्रम बनाया। 8 मार्च को पंडितजी ने अपना काम समेट लिया। आज ही रात की गाड़ी से पटना के लिए प्रस्थान कर देना था, इसलिए काम जल्दी-जल्दी निबटाने लगे। वे मंगलजी को कुछ दिनों के लिए यहाँ छोड़कर जा रहे थे। शाम को 7 बजे से पहले ही वे संपरिवार स्टेशन पहुँच गये। जालन्धर तक उतनी भीड़ नहीं थी गाड़ी में। रास्ते में वे सोचते जा रहे थे, 'भैया (स्वामीजी) अच्छे हैं किन्तु उनका ऊपरी व्यवहार बहुत रुक्ष है, पर हृदय से दयालु हैं। मौका पड़ने पर वह मुक्तहस्त से दान करते हैं, पर कुछ आवश्यक कामों में वह बहुत कंजूस भी हैं।' पंडितजी के लिए उनका हृदय उदार था। वह पंडितजी की हर तरह से सहायता करना चाहते थे, पर हमारे राहुलजी सहायता लें तब न !

9 मार्च को दिन-भर ट्रेन चलती रही और रात के 12 बजे वह पटना पहुँची। स्टेशन पर डॉ. बदरीनारायण प्रसाद (पटना युनिवर्सिटी) के सुपुत्र डॉ. देवेश पंडितजी के स्वागत के लिए आए हुए थे। उनके साथ पंडितजी सपरिवार उनके घर अबुल आस लेन गये। रात मच्छरों ने उनको बहुत तकलीफ दी।

## नेपाल-भ्रमण

**पटना :** 10 मार्च को नेपाल जाने के लिए जितने औपचारिक काम थे, उनको निबटाने में पूरा दिन गया। अब नेपाल-प्रवेश के लिए अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये थे। 1953 में सिर्फ मजिस्ट्रेट प्रदत्त एक परिचयपत्र ही काफी होता था। 1956 में आयकर भुगतान के प्रमाणपत्र की जरूरत पड़ी। अब जिलाधीश का भी प्रमाणपत्र चाहिए। यहाँ पटना में आयकर अधिकारी पंडितजी के नाम से परिचित थे, इसलिए प्रमाणपत्र मिलने में कठिनाई नहीं हुई। यह सारा काम कर लेने के बाद पंडितजी परिवार के साथ 'भाभी' फिल्म देखने गये, किन्तु फिल्म उनको पसन्द नहीं आई। 11 मार्च को भी उनका पटना में ही रहना हुआ। दिन में जाकर नेपाल जानेवाले विमान का टिकट ले आये। कमला, जया और जेता के लिए क्रमशः 50 रुपये, 25 रुपये, 5 रुपये लगे। तब विमान का किराया इतना अधिक नहीं था।

**नेपाल (काठमाण्डू, 12 मार्च से 22 मार्च तक) :** 12 मार्च को दिन के डेढ़ बजे पंडितजी सपरिवार पटना के विमानस्थल पर गये। 2.25 पर विमान को उड़ना था। उस दिन आकाश निरभ्र नहीं था। जेता हवाई जहाज को देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा था। ठीक समय पर विमान उड़ा और 3.20 बजे वह नेपाल के गोचर विमानस्थल पर उतरा। वहाँ पर पंडितजी के स्वागत के लिए नेपाल में भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक सचिव डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन, प्रथम सचिव श्री उमाशंकर वाजपेयी तथा पंडितजी के मित्र श्री जनकलाल शर्मा उपस्थित थे। वहाँ से पंडितजी श्री सुमनजी के वासस्थान में गये, जहाँ पर उनको सपरिवार ठहराने की व्यवस्था की गई थी।

इस बार पंडितजी को भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने नेपाल में भारत और नेपाल की संस्कृति के बारे में कई भाषण देने के लिए काठमाण्डू भेजा था। वैसे भी नेपाल उनके लिए अपना घर-सा था। यहाँ उनके मित्रों और परिचितों की संख्या कम नहीं थी। सभी उनसे मिलने के लिए उत्सुक थे। उस दिन 13 मार्च को उनके परिचित और सुहृद आकर पंडितजी से मिले। इन में श्री बालचन्द्र शर्मा (इतिहासकार और राजनीतिज्ञ) भी थे। पंडितजी के बहुत पुराने परिचित और हितु मित्र श्री धर्मरत्न यमिजी भी पंडितजी से मिलने आये। मध्याह्न भोजन के बाद वे भारतीय राजदूत श्री भगवान सहायजी से मिलने गये। बड़ी देर तक दोनों में समालाप हुआ। बाद में श्री भगवान सहायजी ने पंडितजी की (मिट्टी और काँसे की) मूर्त्ति तैयार की। उसी दिन सायंकाल

भारत-नेपाल सांस्कृतिक केन्द्र में पंडितजी का भाषण हुआ। विषय था–भारत-नेपाल सांस्कृतिक ऐक्य।

14 मार्च को दिन उतना साफ नहीं था। पंडितजी परिवार सहित श्री धर्मरत्न यमि के घर गये। 1953 की नेपाल-यात्रा में पंडितजी मेरे सहित एक महीना यमिजी के घर में ठहरे थे। अब यमिजी ने एक और नया मकान बना लिया था। उसी दिन वे परिवार को लेकर श्री मानदास साहु से मिलने असनटोल गये। श्री मानदासजी नेपाल के एक बहुत बड़े पुस्तक विक्रेता थे। उनके यहाँ भारत से हिन्दी पुस्तकें विक्रयार्थ मँगाई जाती थीं। उन्होंने स्वयं कितनी ही नेपाली पुस्तकों का प्रकाशन भी किया था। वह राहुलजी को बहुत पहले से मानते और श्रद्धा करते आये थे। उस दिन अपराह्न में 2 बजे त्रिचन्द्र कालेज के छात्रों के समक्ष पंडितजी ने सांस्कृतिक सद्भावना विषय पर भाषण दिया। रात का भोजन उन्होंने सपरिवार यमिजी के यहाँ किया।

15 मार्च को दिन शुभ्र रहा। प्रातः समय उनको पाटन में भाषण देना पड़ा। सायंकाल संस्कृति परिषद् में उनका भाषण रखा गया था। 16 मार्च को डेरे पर ही अनेक लोग उनसे मिलने आये। आज का मध्याह्न भोजन श्री बालचन्द्र शर्माजी के यहाँ हुआ। उस समय श्री बालचन्द्रजी नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान (रायल नेपाल एकेडमी) के उपकुलपति थे। इसलिए दोनों मित्रों के बीच एकेडमी विषय पर देर तक बातें होती रहीं। सायंकाल काठमाण्डू के श्रीघ विहार में बौद्ध धर्म और संस्कृति विषय पर पंडितजी का भाषण हुआ। 17 मार्च को स्वयंभू विहार के पास ही स्थित आनन्दकुटी विद्यापीठ में आमंत्रित होकर पंडितजी सपरिवार गये। इस विद्यापीठ को भदन्त अमृतानन्दजी ने स्थापित किया था। 1953 में यहाँ सिर्फ 30 छात्र थे और 1958 में इनकी संख्या 83 पहुँच गई थी। अब वहाँ मैट्रिक तक की पढ़ाई होती थी। पिछले दशक में यह विद्यापीठ कॉलेज बन गया। यहाँ के छात्रों ने राहुलजी के सम्मान में नेवारी लोकनृत्य प्रस्तुत किये। 18 मार्च को पंडितजी अपने परिवार के साथ अपने पुराने मित्र श्री त्रिरत्नमान साहु के घर मिलने के लिए गये। त्रिरत्नमान साहु उनके बहुत पुराने मित्र स्वर्गीय धर्ममान साहु के सुपुत्र थे। पहले धर्ममान साहुजी ल्हासा (तिब्बत) के छुशिंङ्-शा में रहते थे, वे नेपाल की ओर से बहुत बड़े व्यापारी थे। तब पंडितजी अपनी प्रथम तिब्बत यात्रा में गये और वहाँ सवा साल तक (1929-30) रहे थे। उस समय इन्हीं धर्ममान साहु ने उनकी बड़ी मदद की थी। तब से ही इस परिवार के साथ पंडितजी का घनिष्ट सम्बन्ध रहा। आज यह घर श्रीहीन हो गया था, क्योंकि तिब्बत के साथ व्यापार में साहु-परिवार का बहुत नुकसान हुआ था।

उसी दिन (18 मार्च) स्थानीय नेवारी साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था च्वाशा-पाशा ने हनुमान ढोका (मल्ल राजाओं का राजमहल) में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम रखा, जिसमें पंडितजी को अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया। इसके प्रत्युत्तर में उनको भी यहाँ भाषण करना पड़ा। आज ही रात को भारतीय राजदूत श्री भगवान सहायजी के आवास स्थान में एक लघु गोष्ठी का आयोजन हुआ। काठमाण्डू के बहुत-से गण्यमान्य अतिथि वहाँ उपस्थित थे। इसमें शामिल होने के लिए पंडितजी सपरिवार आमंत्रित थे। वहाँ पंडितजी के सम्मान में कवि-गोष्ठी और संगीत-गोष्ठी का भी कार्यक्रम रखा गया था। साथ ही शराबनोशी भी चल रही थी। परन्तु पंडितजी और परिवार को कोई दिलचस्पी नहीं थी। अन्य कार्यक्रमों में पंडितजी बहुत प्रसन्न रहे। रात को 12 बजे वे डेरे पर लौट आये।

मसूरी निवासकाल के पुराने मित्रों में से श्री मुनीश्वरनाथ जुत्शीजी के साथ पंडितजी का बहुत बाद तक सम्बन्ध रहा। उन्हीं के द्वितीय सुपुत्र श्री योगीश्वरनाथ जुत्शी इस समय काठमाण्डू में थे। भारत सरकार की सहायता से बननेवाले नेपाल के त्रिशूली मार्ग के वे प्रधान इंजीनियर होकर यहाँ आये थे। त्रिशूली मार्ग तो शहर से काफी दूर था, किंतु योगीजी से पंडितजी की काठमाण्डू में ही भेंट हो गई थी। 17 मार्च को श्री योगीजी पंडितजी को परिवार सहित निर्माणाधीन त्रिशूली मार्ग दिखाने अपनी जीप में ले गये। यह मार्ग उस समय 18 मील तक ही बन सका था। इसको शुरू किये अभी तीन ही महीने हुए थे। इस मार्ग के बन जाने से काठमाण्डू तथा अन्य स्थानों के बीच आवागमन की सुविधा हो गई। उसी दिन शाम को भारत से डॉ. भगवतशरण उपाध्यायजी आ गये। वे भी भारतीय दूतावास की ओर से सांस्कृतिक भाषणकर्ता के रूप में आमंत्रित होकर आये थे। उनका भी आज संस्कृति विषय पर व्याख्यान हुआ। राजदूत के गृह में यह आयोजन हुआ। रात्रि प्रीति-

भोज भी राजदूत महोदय के यहाँ ही। आज से उन्होंने पंडितजी का बस्ट (आवक्ष प्रतिमा) बनाना आरम्भ किया। अब इस काम के लिए मॉडल की सिटिंग देने पंडितजी को कुछ दिनों तक भारतीय दूतावास में जाते रहना पड़ा। राजदूत श्री भगवानसहाय ने बाद में राहुलजी की कांस्यमूर्त्ति भी बनाई थी। पर मालूम नहीं वे मूर्त्तियाँ अब कहाँ हैं।

**पाटन-भक्तपुर (नेपाल) :** 20 मार्च को पंडितजी सपरिवार पाटन गये जो काठमाण्डू से तीन मील की दूरी पर है। वहाँ पूर्वाह्न में उनका सांस्कृतिक विषय पर व्याख्यान हुआ। फिर सायंकाल राजदूत महोदय की बैठक में गये। मूर्त्ति के लिए सिटिंग देना अब उनके लिए अनिवार्य हो गया। 21 मार्च को भादगाँव (भक्तपुर) में कार्यक्रम था। भक्तपुर मल्ल राजाओं के समय की राजधानी होने के कारण यहाँ की प्राचीन मूर्त्तिकला और वास्तुकला दर्शनीय थी। ऐसे स्थानों को सपरिवार देखने में उनको अच्छा लग रहा था। आज उनके साथ डॉ. भगवतशरण उपाध्याय तथा श्री जनकलाल शर्माजी भी गये थे। सभी ने घूम-घूमकर वहाँ की चीजें देखीं और पंडितजी ने उनके कितने ही फोटो भी लिये। 21 मार्च को ही अपराह्न में अमेरिकन कॉलेज ऑफ एजुकेशन में पंडितजी का व्याख्यान हुआ। उनके विचार के अनुसार—यहाँ के भवन बनाने तथा कार्यक्रम में डालरों की वर्षा की गई थी। इस प्रकार अमेरिकी सरकार ने सहस्रों जनों को खरीद लिया था। पंडितजी को लगा कि यह भारत के साथ प्रतिस्पर्धा के लिए ही किया गया था।

**कान्तिपुर-पाटन :** 22 मार्च को राहुलजी पुनः पाटन (कान्तिपुर) गये। आज वहाँ पर उनका व्याख्यान रखा गया था। बहुत-से वज्राचार्य भी वहाँ उपस्थित थे। श्रोताओं में हजार से अधिक की संख्या में उपस्थित थे। सभी निष्ठावान और प्रतिभाशाली श्रोता। आज का मध्याह्न भोजन राजदूत महोदय के गृह में हुआ। पंडितजी की दृष्टि में श्री भगवानसहायजी सुसंस्कृत होने के साथ सौहार्दयुक्त भी थे। वहाँ से पंडितजी किसी राहुलभद्र से मिलने की इच्छा से गये, पर भेंट न हो सकी। अपने पुराने मित्र श्री शिवप्रसाद रौनियारजी से मिलना भी आवश्यक था। वे गये और दोनों में देर तक बातें हुईं। श्री जनकलाल शर्माजी तो पंडितजी के साथ बराबर ही रहे। अब कल सुबह ही पंडितजी को परिवार सहित भारत के लिए प्रस्थान करना था।

## नेपाल से भारत आगमन

**पटना :** 23 मार्च को विदाई की बेला। गोचर विमानस्थल पर पंडितजी तथा परिवार को विदाई देने के लिए राजदूत महोदय सपत्नीक पधारे थे। पंडितजी पर स्नेह रखनेवाले 50 से अधिक नेपाली और भारतीय मित्र भी वहाँ उपस्थित थे। पूर्वाह्न के 9.35 बजे विमान उड़ा। आज आकाश उतना साफ नहीं था, इसलिए विमान से हिमालय का दृश्य नहीं दिखाई दिया। वस्तुतः पंडितजी की यही अंतिम नेपाल-यात्रा थी। वे नेपाल में राणा शासक चन्द्र शमशेर के समय से कुल आठ बार आये थे और यहाँ वे अपना घर-सा अनुभव करते थे। यहाँ के मित्रों-परिचितों से जो स्नेह उनको मिला, वह उनके जीवन में बहुत मूल्यवान रहा।

9.25 में विमान उड़कर 10.25 बजे पटना विमानस्थल पर उतरा। यहाँ भी आकाश निरभ्र नहीं था। पटना विमानस्थल पर पंडितजी के परम मित्र श्री गोरखनाथ त्रिवेदी के अनुज श्री योगेन्द्रनाथ त्रिवेदी अपनी कार लेकर उपस्थित थे। उनके साथ ही डॉ. बदरीनारायण प्रसाद की कार भी आ गई। परन्तु इस बार पंडितजी श्री योगेन्द्रजी के यहाँ ठहरना चाहते थे। खैर, डॉ. प्रसाद के आग्रह को देखकर उन्हीं के यहाँ ठहरने का सोच लिया। कार के अन्दर जैसे ही बैठने लगे, कार के दरवाजे से जेता की एक अँगुली दब गई, रक्त बहने लगा, हड्डी बच गई, पर उसको बहुत दर्द हो रहा था। यह देखकर राहुलजी द्रवित हो गये। डेरे पर पहुँचकर वे जेता को लेकर सीधे चिकित्सालय गये और जेता की उँगली को सिलवाया। लौटकर आज दिन-भर पटना के मित्रों से वार्तालाप करते रहे। नेपाल-यात्रा का विवरण उनको सुनाया। डाक उतनी नहीं आई थी।

24 मार्च को भी पंडितजी पटना में रहे। सुबह के समय वे बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् गये। वहाँ उनको रायल्टी के कुछ रुपये प्राप्त हुए। उधर से वे मोहन प्रेस में गये। मोहन प्रेस के मालिक मोहनलाल विश्नोई ने उनकी 'नेपाल' पुस्तक को 400-500 पृष्ठ तक छापकर उसका छापना रोक दिया था। कई वर्षों तक उसने

पाण्डुलिपि भी नहीं लौटाई। राहुलजी के निधन के बाद कुछ लोगों के बीच में पड़ जाने पर बड़ी मुश्किल से 'नेपाल' की पाण्डुलिपि का उद्धार किया गया। सांयकाल पंडितजी परिवार को लेकर 'मेहंदी' चलचित्र देखने गये। उमरावजान के जीवन पर बनी यह फिल्म थी, जो पंडितजी को अच्छी लगी। आज ही उन्होंने निश्चय किया–"कल गहमर (गाजीपुर जिला) जायेंगे।"

**गहमर :** यह स्थान हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हिन्दी के प्रथम जासूसी कथा लेखक श्री गोपालराम गहमरी का जन्म यहीं हुआ था। राहुलजी को यहाँ की शिक्षण संस्था की ओर से निमंत्रण मिला था। पंडितजी के परममित्र श्री धूपनाथजी उनसे मिलने अतरसन (छपरा) से पटना ही आ गये थे। अतः वे भी इस छोटी यात्रा में पंडितजी के साथ आ गये। पटना में पंडितजी असहयोग के समय के अपने साथी श्री जलेश्वर बाबू से भी मिलने गये। अब वे भी वृद्ध हो चुके थे। अगले दिन (25 मार्च) धूपनाथजी और अपने परिवार को लेकर वे शाम 6 बजे जनता एक्सप्रेस से गहमर के लिए रवाना हुए। ट्रेन में जगह बहुत थी। सहयात्रियों में गहमर के ही निवासी रामनाथ त्रिवेदी भी थे, जो पुस्तकों के ट्रेवलिंग एजेन्ट का काम करते थे। रात के समय गहमर पहुँचे जो उस समय एक कस्बा जैसा था। ठहरने का प्रबन्ध उच्चतर विद्यालय के पुस्तकालय भवन में किया गया था। रात को ही भोजन पकाकर वहाँ के लोगों ने अतिथियों को खिलाया।

26 मार्च को ही पंडितजी ने गहमर ग्राम के बारे में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की। तब इस ग्राम की आबादी 18 हजार की थी। यहाँ के गाँव में भी सांकृत्य गोत्र के भूमिहार और क्षत्रिय जाति के लोग थे। इतना ही नहीं, यहाँ अन्य गोत्र के क्षत्रिय भी थे, जैसे–सकरवारा, दोनवारा, किनरवारा आदि। ब्राह्मणों में भी सांकृत्य गोत्र के बहुत लोग हैं। इनकी संतान अब शिक्षा प्राप्त कर रही थी। यहाँ पहुँचने के बाद पंडितजी और स्थानीय लोगों के बीच अखण्ड गोष्ठी चलती रही। रात को भी बहुत से श्रोता वहाँ उपस्थित रहे।

**बनारस में :** अगले दिन 27 मार्च को सुबह छः बजे ही पंडितजी धूपनाथजी तथा परिवार के साथ स्टेशन गये और 7 बजे के बाद वाराणसी छावनी पहुँच गये। डॉ. उदयनारायण तिवारी के सुपुत्र श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी स्टेशन पर ही मिल गये। कार द्वारा बुलालाना जाकर रामघाट पर अवस्थित श्री कृष्णचन्द्र बेरी के भवन में गये। वहाँ कुछ समय विश्राम कर भोजनादि के बाद दोपहर को पंडितजी हम सबको लेकर सारनाथ गये। सारनाथ में उनके पुराने मित्र एवं सहयोगी भिक्षु जगदीश काश्यपजी से उनकी भेंट हुई। वहाँ से फिर परिवार तथा धूपनाथजी को लेकर पंडितजी अपने भतीजे उदयनारायण पाण्डे के घर गये। उदयजी उस समय सपरिवार सारनाथ में रह रहे थे। उसके बाद आज ही हिन्दू विश्वविद्यालय में डॉ. राजबली पाण्डेय से वे मिले, छात्रों की गोष्ठी में पंडितजी का व्याख्यान भी हुआ। वहाँ से गंगा-तट पर घूमते हुए बेरी भवन में लौट आये। बनारस में तब तक गर्मी काफी होने लगी थी। पंडितजी गर्मी से घबरा रहे थे। अतः रात को बेरी भवन की छत पर सोने का प्रबन्ध किया गया, जिससे पंडितजी को सोने में खूब आराम मिला। रात को ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि धूपनाथजी को भी लेकर कल जन्मस्थान में जायेंगे। धूपनाथजी को इसलिए भी साथ लाये थे कि वे इस बार मुझे और बच्चों को आजमगढ़ ले जाना चाहते थे।

## आजमगढ़ की अंतिम यात्रा

जन्मस्थान किसको प्रिय नहीं होता। पंडितजी को भी जन्मस्थान जाने का बराबर मन करता था। इसलिए इस बार के यात्रा-कार्यक्रम में जन्मस्थान को भी शामिल किया गया था। आज आकाश भी निरभ्र था और दिन में उष्णता अधिक रही। 28 मार्च की सुबह साढ़े 6 बजे ही सबके साथ पंडितजी ने आजमगढ़ के लिए प्रस्थान किया। यह यात्रा बस द्वारा हो रही थी। जाना जौनपुर के मार्ग से था। बस का किराया तब प्रति सवारी 3 रुपया 60 पैसा था। बस में सहयात्री एक मद्रासी दम्पती भी थे। दिन के 12 बजे पंडितजी अपने परिवार और मित्र के साथ आजमगढ़ पहुँच गये। उन्होंने अपने श्रद्धालु श्री चन्द्रशेखर त्रिपाठी (जस्टिस ब्राडवे) को अपने आने की सूचना पहले ही दे रखी थी। चन्द्रशेखरजी अपने गृह में मिले। पुराने ईसाई पादरी मार्टिन द्वारा निर्मित

स्मिथसन परिगृह में पंडितजी के ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। रास्ते की पूरी थकावट थी, अतः यहाँ कुछ देर विश्राम किया। गर्मी से बचने के लिए यहाँ बिजली का पंखा लगा हुआ था। अंग्रेजों द्वारा निर्मित बँगला होने के कारण यहाँ ठहरने की सुविधा थी। पंडितजी को बाथरूम की ही चिन्ता रहती थी सब जगह, क्योंकि मधुमेह के रोगी होने के कारण उनको बार-बार पेशाब के लिए जाना पड़ता था। भोजन और आराम करने के बाद वे शिबली मंजिल गये और लोगों से मिले। अगले दिन भाषण देने के लिए आग्रह किया जा रहा था, पर अब पंडितजी के पास समय ही नहीं था। कल परिवार को लेकर वे अपने जन्मग्राम पन्दहा जानेवाले थे और परसों पितृग्राम कनैला।

29 मार्च को दो रिक्शे लेकर पंडितजी धूपनाथ एवं परिवार के साथ रानी की सराय स्टेशन से होते हुए पन्दहा गये। यह उनका ननिहाल और जन्मग्राम था। पिछले वर्ष भी वे यहाँ आये थे और अपने आत्मीयजनों को यह वचन देकर गये थे कि अगले साल कमला-जया-जेता को लेकर फिर आयेंगे। गाँव से गुजरते हुए वे अपने मामा के पुत्र श्री कैलास पाठक के गृह में गये। अब यहाँ के सभी लोग, जो पंडितजी की पीढ़ी के थे, श्वेतकेशी हो गये थे। काल के बीतने का मनुष्य को पता ही नहीं चलता। घर के बाहर आँगन में गाँव के पुरुषों का जमघट हो गया, जहाँ पंडितजी ने सहकारी कृषि विषय पर छोटा-सा व्याख्यान दिया। पंडितजी की मामीजी (कैलास की माता) ने बड़े सौहार्द के साथ मेरा और बच्चों का स्वागत किया। मुझे हल्दी से रँगी हुई पीली धोती पहनाई, मुँह मीठा करने के लिए दही और गुड़ खिलाया गया। फिर हमें भोजन कराया गया। "बहू होकर पहली बार कमला पंडितजी के अपने गृह में आई थी, इसलिए उनके मातुल परिवार ने कमला और बच्चों के प्रति स्नेह और प्यार दिया।" पंडितजी इससे बहुत प्रसन्न हुए। दोपहर बाद पंडितजी सपरिवार वहाँ से विदा लेकर आजमगढ़ नगर लौट आये। डेरे पर भी शाम को एक गोष्ठी हुई, जिसमें पंडितजी को भी कुछ बोलना पड़ा।

30 मार्च को सुबह 10 बजे मोटरकार आ गई। पंडितजी हम सबको लेकर उससे चल पड़े। कनैला से उनको बुलाने आया हुआ आदमी भी उस गाड़ी में था। गाड़ी पहले किशनपुर नामक गाँव में रुकी। इस गाँव के एक बलभद्र सिंह नामक व्यक्ति पंडितजी को बराबर पत्र लिखा करते थे। आज पंडितजी के आगमन के कारण गाँव में पूरी तैयारी थी। हम लोग तो कार में बैठे रहे। पंडितजी ने वहाँ एकत्रित सभा में कुछ देर भाषण दिया। वहाँ से चलकर कनैला ग्राम पहुँच गये। तब 12 बज चुका था। यहाँ पर भी पंडितजी के आगमन का समाचार सुनकर बहुत-से लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। महिलाओं की भीड़ अलग थी, पुरुषों की अलग। यहाँ भी पंडितजी ने सम्मिलित कृषि विषय पर भाषण दिया। दोपहर का भोजन यहीं पर हुआ। कल पन्दहा ग्राम में जिस प्रकार राहुल परिवार का स्वागत किया गया था, वैसा कनैला में नहीं हुआ। यहाँ केवल राहुल का स्वागत हुआ, उनकी पत्नी (कमला) और बच्चों का नहीं। पुराने बूढ़े लोग या तो मृत हो चुके थे या बहुत वृद्ध हो चुके थे। यहाँ कनैला में पंडितजी की प्रथम परिणीता स्त्री रोगशैया पर पड़ी थी। मैंने एक बार उसको देखने की इच्छा प्रकट की थी, इसीलिए पंडितजी हमें यहाँ ले आये थे। पंडितजी को लोग घेर-घारकर अन्दर ले गये। धूपनाथजी भी थे। हम लोग महिला-मंडली में बैठे थे। प्रथम परिणीता हम से बोली ही नहीं। और महिलाएँ भी नहीं बोलीं। मुझे कोई दुःख नहीं हुआ, क्योंकि पंडितजी ने अपनी उस प्रथम परिणीता को जब छोड़ा था तब कमला तो क्या कमला की माँ का भी जन्म नहीं हुआ था। उस समय यही बात सच लगी कि सौत चून की भी बुरी होती है। धूपनाथजी ने जब उस महिला से पूछा कि क्या आपको राहुलजी से कुछ कहना है तो उसने जवाब दिया—"अब मुझे कुछ नहीं कहना है।" फिर धूपनाथजी ने कहा—उनसे नहीं तो उनके बच्चों जया-जेता को तो आशीर्वाद दीजिए। तब शायद बच्चों का ख्याल आया, और अपनी अंटी से एक-एक रुपये के दो सिक्के निकालकर दोनों बच्चों के हाथ में रख दिये और दोनों के सिर पर हाथ फेरा। पंडितजी ने यह सब देखा। रात को डायरी में लिखा—"कमला न तथा तुष्टा यथा पन्दहाग्रामेऽह्यः।" (30 मार्च) सब लोग भीतर से उठकर बाहर चले आये। उस समय कनैला के गृह और खेती की देखभाल पंडितजी के छोटे भाई श्यामलाल के बेटे कैलाश तथा भतीजे रामआसरे कर रहे थे। कृषि सम्पन्न थी। पंडितजी के जीवन की आजमगढ़ की

यह यात्रा अंतिम थी। लौटते समय भी रास्ते में लोग मिलते रहे। डेरे पर भी देर रात तक गोष्ठी चलती रही।

**वाराणसी :** 31 मार्च को सबेरे 7 बजे प्रातः ही पंडितजी हम सबको लेकर वाराणसी की ओर चल पड़े। बस के स्थल तक उनके परम भक्त मित्र श्री चन्द्रशेखर त्रिपाठी भी आये। कैलाश पाठक (मातुल-पुत्र) रानी की सराय स्टेशन तक आये। ड्राइवर बहुत धीरे-धीरे बस चला रहा था। गोमती नदी पर तब अस्थायी पुल था, यहाँ पर बस को कुछ कठिनाई हुई। दिन के 12 बजे वाराणसी पहुँच गये। गर्मी बहुत अधिक थी। पंडितजी को सायंकाल 5 बजे तक बिजली के पंखे की शरण में रहना पड़ा। सायंकाल पास में ही महताघाट के उद्‌घाटन के लिए तत्कालीन राज्यमंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठी आये। फिर पंडितजी हम सबको लेकर गंगा पर नौका विहार करने गये। रात्रि में निर्मल चन्द्रिका में वाराणसी का गंगा-तट अनुपम लग रहा था। सुंघनी साहु (कवि जयंशकर प्रसाद की दुकान) की पण्यशाला को खोजने का पंडितजी ने बहुत प्रयास किया, पर वह नहीं दिखाई दी। सुंघनी साहु की दूकान पर पंडितजी—तब के केदारनाथ पाण्डे—ने बही-खाते में हिसाब लिखने का काम किया था। कुछ देर इधर-उधर घूमकर पंडितजी डेरे पर लौट आये। रात के समय पंडित जगन्नाथ उपाध्याय के साथ उनका संलाप हुआ। डॉ. महादेव साहा भी आये थे। उनसे भी बातचीत की।

1 अप्रैल को पंडितजी सपरिवार पूर्वाह्न में सारनाथ गये। वहाँ श्री जगदीश काश्यप स्थविर के साथ उनका समालाप हुआ। लौटते समय भिक्षु कित्तिमा थेरोजी से भी उन्होंने बातचीत की। उस संध्या को भी वे सपरिवार नौका विहार करने गये। "डेरे पर लौटते समय कमला को जेता को गोद में उठाना पड़ा। बेरी भवन की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते वह बहुत थक गई और मूर्च्छित हो गई।"

**देहरा मार्ग :** पंडितजी अब गर्मी से परेशान होने लगे थे, इसलिए जल्दी से जल्दी वे ठंडी जगह पर लौट जाना चाहते थे। मसूरी में अपना मकान तो नहीं था, तब भी कुछ समय के लिए किराये का मकान लेकर मसूरी में ही रहने का उन्होंने निश्चय किया था। अतः 2 अप्रैल को 10 बजे पूर्वाह्न में पंडितजी सपरिवार वाराणसी स्टेशन गये। धूपनाथजी को यहाँ से पटना लौटना था और हम लोगों को देहरादून के लिए गाड़ी पकड़नी थी। उदयनारायण पाण्डे सपरिवार चाचाजी को विदा करने आये। दिन के 12 बजे देहरा एक्सप्रेस ट्रेन आई और हम सब उसमें सवार हो गये। जगह पर्याप्त मिली। पंडितजी ने अपने देहरादून आने की सूचना पहले ही श्री सदानन्द मेहताजी को दे दी थी। अगले दिन 3 अप्रैल को वह देहरादून स्टेशन पर मिले। इस बार मेहताजी हृदय-रोग से पीड़ित थे, अतः चिन्ता-भार से चिन्तित थे। वहाँ से टैक्सी लेकर पंडितजी श्री रूपनारायण मिश्र के गृह में आये। यहाँ उन्होंने रूपनारायणजी की थीसिस देखी। रात को परिवार को लेकर पल्टन बाजार तक घूमने गये। पंडितजी के लिए अभी चीन-यात्रा का निमंत्रण नहीं पहुँचा था। श्री पी. सी. जोशी का पत्र भी नहीं पहुँचा था। यात्रा का अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ था। राहुलजी फिर चिन्तित हो गये और 3 अप्रैल को उन्होंने लिखा—"धृतः शरीरेण मृतः स जीवावििति न साधु मन्ये।"

**देहरादून में :** घर बिक चुका है, स्थायी रूप से रहने का कहीं भी अभी निश्चय नहीं हुआ। किताबें सब पेटियों में बन्द और पंडितजी का कर्मठ जीवन। वे कुछ लिख नहीं पा रहे थे, सोच नहीं पा रहे थे। इस तरह कैसे चलेगा ? वे फिर उद्विग्न रहने लगे। बीच में इस चीन-यात्रा ने उनको अटका दिया। नया काम भी शुरू नहीं कर सकते। इस तरह की प्रतीक्षा और अनिश्चित जीवन ने उनको और अधिक चिन्ता में डाल दिया। देहरादून में गर्मी थी पर उतनी असह्य नहीं। रात-भर पंडितजी चिन्तित रहे। दूसरे दिन 4 अप्रैल को भी वे पेरशान रहे। उन्होंने पार्टी के तत्कालीन मंत्री श्री अजय घोष और साथी पी. सी. जोशी. को चीन के बारे में पूछते हुए पत्र लिखे। साथ ही भारत के राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसादजी को भी इस विषय में पत्र लिखा। आज उनका मन बिल्कुल अशान्त था। लिखा—"किंकर्तव्यविमूढ़तामग्नऽत्र सहचर्या नावलम्बनम्।" 5 अप्रैल को वे दिन-भर मेहताजी तथा रूपनारायणजी की थीसिस को देखते रहे। फिर अपनी पुस्तक 'पुरातत्व निबंधावली' की अनुक्रमणिका बनाने में लगे रहे। 6 अप्रैल को भी यही काम करते रहे, जिसमें 'कमला ने भी' उनकी सहायता की। 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' के प्रूफ आये थे, उनका भी संशोधन कर दिया। कल हरद्वार जाने का उन्होंने निश्चय कर लिया।

**हरद्वार :** 7 अप्रैल को उन्होंने अपनी चार पुस्तकें मित्रों के पास भेज दीं। संशोधित प्रूफ को भी सम्मेलन मुद्रणालय में भेज दिया। अपराह्न 3 बजे की ट्रेन से पंडितजी सपरिवार हरद्वार की ओर चले। 5 बजे हरद्वार पहुँच गये। वहाँ श्रवणनाथ मठ के पास आनन्द होटल में ठहरे। उसमें कमरे का प्रतिदिन 15 रुपया किराया। कुछ परिचित लोग पंडितजी को यहाँ भी मिल गये। होटल में हमारे पड़ोस में ठहरे थे जेनरल शमशेर के पौत्र–बहादुर शमशेर के पुत्र। शाम को हम सबको लेकर पंडितजी पैदल ही हर की पैड़ी की तरफ टहलने गये। उनको लगा कि "यह नगर अब जनाकीर्ण हो गया है। प्रतिदिन ही यहाँ यात्रोत्सव होता रहता है, ऐसा मालूम हुआ। यहाँ पंजाबी लोग बहुत बड़ी संख्या में बस गये हैं, इनका साहस ही स्तुत्य है।"

अगले दिन (8 अप्रैल) सुबह 9 बजे से पंडितजी के साथ हम लोग भी गंगा के आसपास टहलने निकले। फिर बस द्वारा ऋषिकेश गये। वहाँ इधर-उधर घूमते रहे। भोजन के बाद अपराह्न में रेलमार्ग से हरद्वार लौट आये। 9 अप्रैल। आज पंडितजी का 66वाँ जन्मदिन। आज का दिन पंडितजी ने अपने बच्चों और पत्नी के साथ हरद्वार में ही व्यतीत किया। हम चार आत्मीय जन ही एक साथ रहे। 9 बजे रिक्शा लेकर पंडितजी सपरिवार गुरुकुल कांगड़ी महाविद्यालय, ज्वालापुर गये। बहुत वर्षों के बाद वे यहाँ आये थे। उनकी दृष्टि में विश्वविद्यालय बहुत समुन्नत हुआ है। अनेक भवन बन गये हैं। बी. एस सी. तक की कक्षा खुल चुकी है। विश्वविद्यालय के वर्तमान आचार्य श्री इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी थे। यहाँ से पंडितजी परिवार के साथ श्री किशोरीदास वाजपेयी से मिलने कनखल गये। उनके घर में और भी साहित्यकार आये हुए थे और एक छोटी-सी साहित्यिक गोष्ठी भी हुई। संध्या के समय फिर हम सबको लेकर पंडितजी हर की पैड़ी की तरफ घूमने गये। हरद्वार में तीन दिन रहना हुआ। पंडितजी एक तरह से शान्त ही रहे। यहाँ की प्रकृति का प्रभाव भी उन पर पड़ा था।

**देहरादून :** 10 अप्रैल को सुबह ही स्टेशन गये। पं. किशोरीदास वाजपेयी के बेटे मधुसूदन वाजपेयी मिलने आये। फिर 45 रुपया देकर होटल छोड़ आये। अमृतसर पैसेन्जर से हम लोग देहरादून के लिए चल पड़े। मध्याह्न 12 बजे देहरादून पहुँचकर पंडितजी सपरिवार मिश्रजी के घर आ गये। वहाँ भोजन किया। अब देहरादून में गर्मी और अधिक हो गई थी, जिसके कारण पंडितजी को तकलीफ हो रही थी। उन्होंने सप्ताह के भीतर ही मसूरी चले जाने का निश्चय किया। 11 अप्रैल को भी गर्मी बहुत अधिक थी। अब तो 17 अप्रैल को मसूरी जाने का पक्का इरादा कर लिया। आज भी वे 'पुरातत्व निबंधावली' के लिए नामानुक्रमणिका तैयार करते रहे। इसे समाप्त करके सोमवार को अवश्य भेज देना था। 'नेपाल' पुस्तक के कुछ हिस्सों को टाइप करने के लिए मंगलजी के पास अमृतसर भेज दिया। मंगलजी की चिट्ठी से पंडितजी को पता लगा कि अमृतसर में अभी भी स्वामीजी ने नौकर नहीं रखा, अर्थात् पकाने-धोने का काम मंगलजी को करना पड़ता है। स्वामीजी कुछ मानों में कंजूस हैं, ऐसा पंडितजी का ख्याल बन गया था।

देहरादून की गर्मी से बचने के लिए राहुलजी ने मसूरी जाकर रहने का निश्चय किया था, तभी 12 अप्रैल को उनके शिष्य श्री शिवशर्मा का पत्र जम्मू से आ गया जिसमें उन्होंने पंडितजी को सपरिवार कश्मीर आने का निमंत्रण भेजा था। अभी उनका चीन जाना कब होगा, यह पक्का नहीं हुआ था, अतः उन्होंने बीच के दो महीने कश्मीर में बिताने का कार्यक्रम बनाया। जब कहीं जाना निश्चय हो गया तो पंडितजी जल्दी-जल्दी काम निबटाने लगे। 12 अप्रैल को भी उन्होंने मेरी सहायता से 'पुरातत्व निबंधावली' की अनुक्रमणिका का काम जल्दी-जल्दी समाप्त कर दिया। शेष समय में रूपनारायण मिश्रजी का निबन्ध देखते रहे। सदानन्द मेहताजी का निबंध भी देखा। 13 अप्रैल को गर्मी और बढ़ गई, अतः पंडितजी दिन-भर बिजली के पंखे के नीचे बैठकर काम करते रहे। उनको गर्मी बहुत अधिक लगती थी। आज भी वे नामानुक्रमणिका को तैयार करने में ही लगे रहे और अगले दिन उसे प्रेस में भेज दिया।

अब कश्मीर जाने की तैयारी करनी थी। हमारा सारा सामान पेटियों में बन्द था। हम अतिथि की तरह यहाँ रह रहे थे। बन्द सामान में से कुछ को निकालकर तैयार करना था। जाते समय अमृतसर होते हुए जाना था। अभी तक चीन से लिखित निमंत्रण न आने से पंडितजी का मन दुविधा में पड़ गया था, इसलिए

कश्मीर जायें या न जायें, इस बारे में सोचते ही रहे। मैं उनको विदेश न जाने के लिए ही कहती आ रही थी, क्योंकि उनके गिरते हुए स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित जो थी। परन्तु पंडितजी मेरे मनोभावों को कहाँ समझते थे ? इसीलिए उन्होंने लिखा–"पत्नी जानाति चीन गमनं नस्यादिति।" (14 अप्रैल)

15 अप्रैल को गर्मी और अधिक हो गई थी। इतने सालों से राहुलजी ठंडी जगह में रहते आये थे। इस बार देहरादून में पड़े हुए हैं। उन्हें तकलीफ हो रही थी। परिवार को भी कम तकलीफ नहीं थी। गर्मी के कारण पंडितजी विशेष काम नहीं कर पाये। आज ही बेटी जया को दिन-भर और रात-भर 103° तक बुखार रहा। पंडितजी चिन्तित हुए। बच्चों की चिकित्सा के लिए भी कठिनाई थी। दिन-भर वे अपनी बेटी के पास ही बैठे रहे। अमृतसर और जम्मू में उन्होंने अपने आगमन का तार भेज दिया।

**अमृतसर के लिए प्रस्थान :** 16 अप्रैल की सुबह राहुलजी ने रूपनारायण मिश्र के निबंध को देख डाला। आज मध्याह्न को उनके पुराने मित्र स्वामी सत्यस्वरूपजी उनसे मिलने आये। कई बरस के बाद दो मित्र मिले थे, अतः देर तक बातें हुईं। उसी दिन सायंकाल 7 बजे पंडितजी सपरिवार अमृतसर के लिए रवाना हुए, ट्रेन में जया-जेता को सोने के लिए जगह मिल गई, इसलिए पिताजी को सन्तोष हुआ।

अगले दिन (10 अप्रैल) पूर्वाह्न में पंडितजी परिवार सहित अमृतसर पहुँच गये। स्टेशन से स्वामी हरिशरणानन्दजी के गृह हरिभवन में गये। कुछ समय विश्राम करने के बाद पंडितजी कमला के साथ बाजार गये और कुछ आवश्यक चीजें खरीद लीं। स्वामीजी से उनकी बातचीत हुई। उनको पता चला कि अभी तक स्वामीजी और उनकी पत्नी के बीच मनमुटाव समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए दोनों के बीच सम्बन्ध अमधुर था। पंडितजी की दृष्टि में जानकी भाभी अपने पति के प्रति विनम्र नहीं थीं। पंडितजी अपने सहयोगी तथा टाइपिस्ट को यहीं स्वामीजी के पास छोड़ गये थे। मंगलजी के साथ स्वामीजी का व्यवहार अच्छा ही था, इससे उनको संतोष हो गया। इस बार पंडितजी का अमृतसर में ज्यादा काम नहीं था। मंगलजी को अभी कुछ समय के लिए यहीं रहना था।

## जम्मू और कश्मीर में (18 अप्रैल से 9 मई तक)

**18 अप्रैल :** सबेरे चाय-पान के बाद पंडितजी अपने परिवार के साथ रेलवे स्टेशन गये। तब ट्रेन पठानकोट तक जाती थी। सुबह 9 बजे ट्रेन चली। मार्ग में बटाला, दीनानगर, गुरदासपुर होते हुए दोपहर 1 बजे हम लोग पठानकोट पहुँचे गये। स्टेशन पर शिवशर्माजी मिल गये। फिर 3 बजे दिन में बस द्वारा जम्मू के लिए रवाना हुए और 4 बजे वहाँ पहुँच भी गये। जम्मू जाने का मार्ग बहुत सुन्दर और कुछ पहाड़ी भी था। कुलियों से सामान उठवाकर पंडितजी परिवार सहित तत्कालीन लद्दाखी मंत्री लामा कुशोक बकुल के गृह में गये, पंडितजी को ठहरना यहीं था। पंडितजी के विचार में राजमार्ग बहुत अच्छा बना हुआ है। जम्मू नगर 1000 फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। तवी नदी का दृश्य भी दिखाई दे रहा था।

**जम्मू :** आज ही रात के समय पंडितजी परिवार को लेकर जम्मू शहर देखने निकले। डोगरी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री रामनाथ शास्त्री के गृह में गये। कुछ देर वहाँ साहित्यिक चर्चा हुई।

19 से लेकर 21 अप्रैल को पंडितजी सपरिवार जम्मू में ही रहे। ये तीन रोज उन्होंने जम्मू शहर को ठीक से देखने में लगाये। शिवशर्माजी के यहाँ होने से पंडितजी का खूब मन लग रहा था। जम्मू तवी के पास ही मुस्लिम कब्रगाह को भी देखा। तब जम्मू की आबादी 50 हजार थी। लामा कुशक बकुल के गृह में अनेक लद्दाखी लामा ठहरे हुए थे। 19 अप्रैल को चाय-पान के बाद पंडितजी हम सबको लेकर रणवीर पुस्तकालय देखने गये। यहाँ उस समय 19 हजार पुस्तकों का संग्रह था। विजिटर्स बही में पंडितजी ने अपनी सम्मति लिख दी पुस्तकालय के बारे में। उसी दिन शाम को 6 बजे डोगरी स्वाध्याय गोष्ठी में अनेक साहित्यकारों से भेंट हुई। वहाँ राहुलजी का छोटा भाषण भी हुआ।

20 अप्रैल को पंडितजी जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन शिक्षामंत्री से मिलने गये। जम्मू प्रदेश के बिखरे हुए ग्रंथों की रक्षा के बारे में बातचीत हुई, पर उन महानुभाव को इसमें कोई रुचि नहीं थी। वहाँ से पंडितजी

रघुनाथ मंदिर में हस्तलिखित ग्रंथों को देखने गये। उस समय मंदिर के अधीक्षक कोई शिवशंकरण थे। यहाँ उनको अनेक खंडित मूर्त्तियाँ भी दिखाई दीं। इनमें अखनौर-थिलौडा-संदरीप आदि खंडित मूर्त्तियाँ थीं। शाम को 6 बजे गाँधी भवन में जम्मू-कांगड़ा-बसोहली चित्रों को देखा। वहीं सभा भवन में डोगरी संस्थान के साहित्यिकों से उनकी भेंट हुई। कविता-पाठ के साथ पंडितजी का भाषण भी हुआ। रात को 9 बजे वहाँ से विदा हुए। 21 अप्रैल को भी पंडितजी अपने परिवार के साथ नगरपरिदर्शन करने गये। गर्मी से चारों प्राणियों की हालत खराब रही।

**श्रीनगर (कश्मीर) :** 22 अप्रैल को सुबह 6 बजे ही पंडितजी और अन्य लोग बस अड्डे पर गये। 7 बजे श्रीनगर जानेवाली बस चल पड़ी। कुल 203 मील की यात्रा बस से करनी थी। कुद नामक स्थान में बस रुकी और यात्रियों ने प्रथम विश्रॉम लिया। यहाँ चाय-पान की व्यवस्था थी, किन्तु जया और मैंने कुछ नहीं खाया। मैंने वमन नहीं किया, किन्तु जया की तबीयत बहुत खराब हो गई। मार्ग में भी उसको कई बार वमन हुआ और भोजन के बाद भी। बनिहाल ग्राम श्रीनगर से 28 मील पहले है। रास्ता बड़ा भयानक लगा हमें तो। कभी 8000 फुट के ऊपर बस चढ़ जाती थी, तो कभी 4000 फुट पर ही बर्फ जमी हुई थी। सड़क की ऊँचाई को देखकर हम सब भयभीत हो गये। ऐसी सड़क पर सामान से लदी बड़ी-बड़ी ट्रकें चढ़ रही थीं। शाम को 7 बजे हम लोग श्रीनगर पहुँच गये। जया की तबीयत बहुत ही खराब हो गयी थी, वह एकदम सुस्त रही। पंडितजी उसको अपनी गोद में लेकर बैठे। यहाँ भी श्री कुशक बकुल के गृह में हमारे ठहरने की व्यवस्था की गई थी।

श्रीनगर पहुँचकर अगले दिन (23 अप्रैल) पंडितजी सपरिवार यहाँ की खाद्यसामग्री को खरीदने के लिए गये, क्योंकि यहाँ हमें स्वयं भोजन बनाना था। किन्तु खाद्य वस्तुएँ बहुत महँगी थीं। शायद पानी बदलने के कारण होगा, आज ही जेता का भी पेट खराब हो गया। कई दिनों से बेचारे बच्चे यात्रा ही यात्रा में रहने के कारण दूध से वंचित थे। दोनों बीमार ही चल रहे थे, इस कारण बहुत कमजोर हो गये थे। यहाँ श्री कुशक बकुल के गृह में स्त्रियाँ नहीं ठहर सकतीं, इसलिए शायद यह स्थान छोड़ना पड़े, यह भी पंडितजी के लिए एक चिन्ता थी। उसी दिन दोपहर के 2 बजे पंडितजी हमें डल झील में नौकाविहार के लिए ले गये। बहुत साल पहले (शायद 1936 में) वे पहली बार कश्मीर आये थे। पर अबके कश्मीर में उनको बहुत परिवर्तन मिला। उन्हें लगा कि सभी नगरों की भाँति यहाँ भी जनाधिक्य है।

24 अप्रैल को सुबह चाय पीकर पंडितजी परिवार सहित अमीराकदल की तरफ गये। टूरिस्ट कार्यालय तथा राशन कार्यालय में भी गये। दूकानों में चीजों का दाम सुनकर डर लगता था, शायद हम यहाँ का खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। दो ही दिन में श्रीनगर से पंडितजी और मेरा मन भर गया। वस्तुतः हम लोगों का यहाँ आने का कोई पक्का कार्यक्रम ही नहीं था। पंडितजी तो मसूरी जाने का निश्चय कर चुके थे। अचानक शिवशर्माजी ने तार द्वारा हमें निमंत्रण दिया। यहाँ पहुँचने में ही हमारा 200 रुपया खर्च हो गया। श्री बकुल से भी पंडितजी का नाममात्र ही परिचय था। यहाँ सिर्फ 15 दिन रहकर मसूरी जाने का पंडितजी ने निश्चय कर लिया।

25 अप्रैल को भोजनोपरान्त वे हम सबको लेकर पैदल ही अमीराकदल घूमने गये, वहाँ से आगे नवकश्मीर उद्यान (पार्क) तक। वहीं पर रेस्तराँ में चाय-पान हुआ। पंडितजी की दृष्टि में श्रीनगर भी एक 'विलासनगर' है। घर में स्वयं भोजन बनाने पर भी प्रतिदिन 15 रुपये खर्च हो जाते हैं (1958 में 15 रुपये का भी बहुत मूल्य था)। उसी दिन शाम को नेहरू पार्क गये, वहाँ से डल झील का बड़ा ही सुन्दर दृश्य दिखाई दे रहा था। इसकी बगल में ही बड़े-बड़े हाउसबोट (गृह नौकाएँ) खड़ी थीं। झील के तट की दीवार पर लिखा हुआ था—शेरे कश्मीर जिन्दाबाद। इसी तरह के और भी पोस्टर दिखाई दिये। पंडितजी को विश्वास था—कश्मीरी भाषा कश (खश) तथा दरद भाषा से बनी है। मध्य-एशियायी तुर्की भाषा से इसका पर्याप्त मेल है, साथ ही हिन्दी आर्यभाषा से भी। आज भी दोनों बच्चे अस्वस्थ रहे। विशेषकर जेता का पेट कई दिनों से खराब हो गया था। पेचिश की शिकायत हो गई थी, जिससे वह बहुत कमजोर हो गया था, चल भी नहीं सकता था। शाम को उसे गोदी

में उठाकर हम लोग डेरे पर लौट आये।

26 अप्रैल के दिन राहुलजी का मन बहुत विचलित रहा। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा—"कहीं भी नहीं गये। कार्य से विरत रहकर कैसे जीयें। मन विषण्ण है। यह अनिश्चय की स्थिति मेरे लिए दुर्भर है। दो दिन तक यदि चीन-भ्रमण के बारे में पत्र न आये तो इस महीने के अंत में स्वयं दिल्ली जाकर पता लगाना होगा। मोहन प्रेस के लिए पाण्डुलिपि को संशोधन करने में भी मेरा मन नहीं लगता, कोई उत्साह नहीं है। शिवशर्मा की सहायता श्लाघनीय है। पर मुझे यहाँ उतना रुचिकर नहीं लगता।"

उस दिन (27 अप्रैल) मैंने भी अपनी डायरी में लिखा—"यहाँ आकर जी ऊब गया है। धर्मशाला जाने की इच्छा हो रही है। श्रीमानजी चिन्तामग्न रहते हैं। हम लोगों से बोलते भी बहुत कम हैं। बच्चों से भी उन्हें अरुचि-सी हो गई है। बेकार में ही हम लोग यहाँ आये।"

27 अप्रैल को आकाश मेघाच्छन्न था। सायंकाल पंडितजी अपने परिवार को लेकर पैदल ही घूमने निकले। आज शंकराचार्य मठ तक गये। यहाँ की आबादी (उस समय) 90 प्रतिशत मुस्लिम तथा 10 प्रतिशत हिन्दू की थी। पाकिस्तान पास ही में है। यहाँ के लोग रेडियो में पाकिस्तानी खबरें सुनते हैं। वे लिखते हैं—"कमला न तुष्यति श्रीनगरे। अहमपि नातिप्रसन्नः बाधा चेत्, गच्छायो धर्मशालायाम्।"

श्रीनगर आने के बाद इतने दिनों तक पंडितजी का चेहरा उदास-उदास ही रहा। किन्तु 28 अप्रैल का दिन उनके लिए खुशी का सन्देश लेकर आया। इतने दिनों की उत्कष्ट प्रतीक्षा के बाद आज दिल्ली से साथी पूरनचन्द्र जोशी का पत्र आ गया—जिसमें पंडितजी की चीन-यात्रा का प्रबन्ध हो जाने की बात लिखी थी। यह समाचार पंडितजी के लिए आह्लादकर था और 'एतद्वृत्तं कमलाये विषादकर' (कमला के लिए विषादकर) था। लिखते हैं—"वह साश्चर्य सखेद मुझे देखती है। मेरी क्या स्थिति हो रही थी या मैं मरण की शरण में जा रहा हूँ, वह यह पूछती भी नहीं।" पूछती कैसे मैं ? मेरे हृदय में क्या बीत रही होगी, ~~वह इसे~~ समझने की कोशिश ही नहीं करते थे। फिर इतनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब उन्हें निमंत्रण मिला है और उनको प्रसन्न होते देख रही थी, तो बाधा डालना ठीक नहीं लगा। उन्होंने अब आगे का कार्यक्रम बनाया—"दस दिन के भीतर ही यहाँ से चले जाना होगा। रास्ते में अमृतसर सिर्फ एक दिन के लिए रुकना होगा, क्योंकि गर्मी दुस्सह होगी। वहाँ से शायद देहरादून में भी एकाध दिन ठहरना होगा, फिर मसूरी जाना होगा। यात्रा के औपचारिक कागज-पत्र बनवाने के लिए दिल्ली भी जाना होगा। प्रकाशक से मिलने के लिए प्रयाग भी जाना है। मई मास के भीतर ही मुझे चीन के लिए प्रस्थान करना होगा। पर कमला चीन जाने की इच्छा नहीं करती।" चीन तक तो मैंने उनके साथ जाने का निश्चय किया था, परन्तु वे तिब्बत जाने की तैयारी कर रहे थे, जहाँ जाना मुझको पसन्द नहीं था। तिब्बत उस समय स्त्रियों के लिए सुरक्षित स्थान नहीं था, इसलिए मैंने इन्कार कर दिया था। तिब्बती पुरुष निर्लज्ज और बर्बर होते हैं, यह हम बचपन से ही देखते आ रहे थे।

अब थोड़े ही दिनों के बाद पंडितजी को चीन के लिए प्रस्थान करना था, इसलिए कुछ आवश्यक कपड़े बनवाना उन्होंने तय किया। 29 अप्रैल को सबेरे ही पंडितजी सपरिवार भ्रमण के लिए निकले। श्रीनगर के खादी भण्डार से उन्होंने अपने लिए ड्रेसिंग गाउन तथा बच्चों के लिए कोट के ऊनी कपड़े खरीदे। कुछ अन्य वस्तुएँ भी खादी भण्डार से ले लीं। पंडितजी को श्रीनगर में आकर इस बार अनुभव हुआ कि यहाँ सर्व वस्तुओं में मिलावट की बहुलता है, खाद्य वस्तुओं में भी कुमिश्रण है। सब जगह ही मुस्लिम प्रभाव। शहर में आज कुछ गड़बड़ी-सी दीख रही थी।

30 अप्रैल को शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी हो गई थी, इसीलिए शहर में भारी गड़बड़ के डर से बड़ी संख्या में पुलिस तैनात थी। अमीराकदल की सब दुकानें बन्द थीं।

पहली मई को भी पंडितजी कहीं नहीं गये। 'नेपाल' में जोड़ने के लिए उन्हें कुछ लिखना था, परन्तु यहाँ टाइपराइटर न होने के कारण कुछ न लिख सके। पता चला कि श्री कुशक बकुल लदद्दाख से 5 मई को यहाँ आवेंगे। मैं सोचने लगी—उनके बँगले में स्त्री नहीं ठहर सकती। अब हमें दूसरी जगह रहना होगा। पंडितजी कह रहे थे—हाउसबोट में रहेंगे। पर मुझे पसन्द नहीं आया, क्योंकि उसका किराया देने के लिए इतना

पैसा हमारे पास नहीं था। इसलिए तय हुआ कि चार दिन में ही हम लोग देहरादून-मसूरी लौट जायेंगे।

चीन की यात्रा का प्रबन्ध हो जाने के कारण अब पंडितजी का मन प्रसन्न था। अब कुछ पढ़ने-लिखने में भी उनका मन लग रहा था। आज 2 मई को उन्होंने कश्मीरी भाषा के शब्दों के संग्रह की ओर ध्यान दिया। उनको प्रतीत हुआ कि कश्मीरी भाषा की अपेक्षा दरद भाषा संस्कृत के नजदीक है। इन दोनों में भी सादृश्य है, यह कहा नहीं जा सकता। कशगर>कशकर>कश्मीर से नेपाल तक कश, खश, शक का प्रयोग होता है। वहाँ कश्मीरी, दरद आदि भाषा कश (खशों की) भाषा है। ऐसा मुझे लगता है। किन्तु इसमें अनेक मतभेद है। आज कश्मीरी लेखक श्री नादिस और श्री पुष्प के साथ पंडितजी का समालाप हुआ। कश्मीरी साहित्य सम्मेलन में कदाचित् उनको भाषण भी देना होगा। यहाँ खाने-पीने की चीजें अच्छी न मिलने के कारण बच्चों को पेचिश की शिकायत हो गई। आज से जया बेटी की हालत फिर खराब हो गई। महीनों की यात्रा, खानाबदोशी तथा खाने में तकलीफों के कारण दोनों बच्चे कितने ही दिनों से बीमार चल रहे थे। इसलिए भी हम सबका कश्मीर से दिल भर गया। यहाँ का पानी बच्चों के लिए माफिक नहीं आया।

पंडितजी अब मानसिक रूप से चीन-तिब्बत जाने के लिए तैयार हो चुके थे। पर वे अभी भी मुझे अपने साथ ले चलने के लिए जोर लगा रहे थे। चीन तक जाने का मैंने सोच लिया था और पंडितजी को बतला दिया था। पर तिब्बत के लिए, उपरिलिखित कारणों से, मैं कतई तैयार नहीं थी, इसलिए उनको मुझसे शिकायत करने का मौका मिल रहा था। यहाँ श्रीनगर में हम लोगों को एक-एक दिन बिताना कठिन लग रहा था। कश्मीर में आनेवाले सैलानी अमीर होते हैं, पैसा खर्च कर सकते हैं। पर हमारे पास गिनती के पैसे थे, उसी में गुजारा करना था। बच्चों को ज्यादा ही तकलीफ होने लगी, तो हमारा मन यहाँ से जल्दी भागने के लिए छटपटाने लगा।

3 मई को पंडितजी का कश्मीरी साहित्य सम्मेलन में कार्यक्रम था। सबेरे ही प्रो. पुष्पजी उनको लेने आये। सम्मेलन में पंडितजी के दो भाषण हुए। उन्होंने भाषण में बतलाया कि कश्मीरी भाषा में उनको दो भाषा-परिवारों के शब्द मिले—केन्तुम और शतम् के। पंडितजी को विचित्र लग रहा था, किन्तु शब्दों के उच्चारण में बहुत परिवर्तन हुए हैं।

4 मई को भी पंडितजी का चित्त बहुत प्रसन्न रहा। इसलिए चाय-पान के बाद सबेरे ही परिवार को लेकर घूमने निकल पड़े। शिकारा लेकर हम लोग पहले रैणाबारी, फिर नागिन झील, चार चिनार, नसीम बाग होते हुए शालीमार बाग देखने गये। पानी के फौव्वारे बहुत-से लगे हुए थे जो देखने में अति सुन्दर लग रहे थे। यहाँ बहुत-से लोग पिकनिक करने आते हैं। पंडितजी ने सपरिवार शिवशर्मा के साथ वहीं मध्याह्न भोजन किया। फिर वहाँ से शिकारा में बैठकर निशात बाग देखने गये। रविवार होने के कारण भीड़ अधिक थी। पुलिस की ड्यूटी भी थी। लौटते समय बादल मँडराने लगे। हम लोग डल झील पहुँचे ही थे कि हवा बड़ी तेज चलने लगी, बारिश भी हुई। नौका हिलने लगी। जया बेटी डर के मारे चीख-चीखकर रोई—"नाव उलट जायेगी, हम डूब जायेंगे"—कहकर रो रही थी। जेता बिल्कुल नहीं डरा। कुछ ही देर बाद हवा थम गई। हम सबके लिए यह बड़ा विचित्र अनुभव रहा। फिर हम लोग नेहरू पार्क होते घर लौट आये। आज दिन-भर के नौका विहार के कारण हम सबकी तबीयत खराब थी। दिन-भर घूमने का किराया नौका चालक को 6 रुपया दिया, वह खुश हुआ।

5 मई को पंडितजी बस स्टैण्ड जाकर 9 तारीख के लिए बस के टिकट ले आये। 10 तारीख को हम लोग अमृतसर पहुँच जायेंगे और 11 की शाम को वहाँ से चल देंगे। अब पंडितजी से गर्मी बर्दाश्त नहीं होती, श्रीनगर में भी काफी गर्मी पड़ रही थी। उसी दिन लामा कुशक बकुल लद्दाख से यहाँ आ गये। पंडितजी ने उनसे बातें कीं। दोपहर के बाद परिवार को लेकर पंडितजी घूमने निकले। आज सुबह से ही मेरी तबीयत खराब थी। वस्तुतः अमृतसर में जो बीमार पड़ी, तब से ही स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। वजन भी कुछ कम हो गया था, इसलिए कमजोरी आ गई थी। यहाँ आकर भी पंडितजी को छोड़कर हम तीनों माँ-बेटों की तबीयत खराब ही चल रही थी। आज तो मैंने खाना भी नहीं खाया। टूरिस्ट आफिस तक जाने की भी शक्ति

नहीं रही। लौटते समय रास्ते में ही चक्कर आ गया, एक दूकान में बैठना पड़ा। रात को भी हृदय डूबता रहा, पल्पिटेशन बहुत देर तक होता रहा। सोचती थी—ऐसा स्वास्थ्य लेकर मैं विदेश कैसे जाऊँगी ? पंडितजी मेरे स्वास्थ्य के बारे में बहुत चिन्तित थे। उन्होंने उस दिन लिखा—"'कमला बहुहृच्चांचल्येन पीड़िता भवति। कदाचित्तु होरावयम् यावंत्। अद्येकासिन् सायण निःसंज्ञा जातोः।"

6 मई को श्रीधर कौल नामक कोई सज्जन उनसे मिलने आये। कुछ देर तक लामा कुशक बकुलजी से भी उनकी बातें हुई। पंडितजी को लगा—"कुशक बकुलजी मृदुल भाषी हैं।" आज सायंकाल पंडितजी परिवार को लेकर पैदल ही डल गेट तक घूमने गये। 7 मई को वे भोजनोपरान्त नगर गये। आज उन्होंने अमरसिंह कॉलेज के छात्रों के समक्ष यात्रा विषय पर भाषण दिया। समय दिन के 2 बजे का था। तत्पश्चात् साढ़े 4 बजे शाम को हिन्दी साहित्य सम्मेलन में कश्मीर के पंडितों (बुद्धिजीवियों) के सम्मुख हिन्दी-कश्मीरी विषय पर उन्होंने व्याख्यान दिया। सम्मेलन में बहुत-से लोग आये थे। उन्होंने यहाँ का संग्रहालय भी देखा, जिसमें सुप्रबन्ध था। अनुसन्धान सम्बन्धी पुस्तकालय टेक्स्ट बुक कमेटी के हाथ में था। हाय मूर्खता ! यहाँ के अनेक तरुणों ने राहुल के ग्रंथ पढ़े थे, यह आज ही पता चला। अब कल का ही दिन श्रीनगर के लिए बचा था। 8 मई को पंडितजी बच्चों को लेकर अमीराकदल की ओर गये। सरकारी दूकान से कुछ चीजें खरीदीं मित्रों को उपहार देने के लिए। कल तो यहाँ से प्रस्थान करना है।

## कश्मीर से वापसी यात्रा

अब पंडितजी श्रीनगर से जाने की तैयारी में थे। अन्ततः 9 मई का दिन आया, जब सुबह 7 बजे ही वे परिवार सहित बस स्टेशन पर आये। बस शीघ्र ही जम्मू की तरफ चल पड़ी। रास्ते में जया बेटी को फिर बहुत तकलीफ हुई, पर पिताजी ने उसे सँभाल लिया। रात को 8 बजे हम जम्मू पहुँच गये। यहाँ पता लगा कि शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी के समय कोई नुकसान नहीं हुआ। "आज की 203 मील की यात्रा कमला ने बड़ी हिम्मत के साथ तय की। यहाँ के अतिथि विश्रामगृह में 14 रुपया देकर एक रात के लिए सोये।"

**अमृतसर-देहरादून मार्ग :** अगले दिन 10 मई सुबह 5 बजे ही पंडितजी ने सपरिवार जम्मू से प्रस्थान किया। लखनपुर में पारपत्र दिखाना पड़ा। अनुज्ञापत्र हमारे पास नहीं था, इसलिए पंडितजी ने पासपोर्ट ही दिखा दिया। अनुज्ञापत्र न होने से यहाँ कोई जुर्माना वगैरह नहीं देना पड़ा। 9 बजे हम लोग पठानकोट पहुँच गये। कश्मीर राज्य के यात्रियों के लिए इस तरह रहने आदि के लिए अच्छा प्रबन्ध किया गया है। पठानकोट स्टेशन पर मालगाड़ी के हेडक्लर्क श्री रघुनाथ शर्मा मिले, जो शिवशर्माजी के मित्र थे—उनके गृह में मध्याह्न भोजन हुआ। कुछ घंटे हम लोग वहीं बैठे। "रघुनाथजी की पाँच पुत्रियों तथा पति-पत्नी का परिवार था। इसलिए उनका जीवन संघर्षमय देखा।" रात को जनता गाड़ी से पंडितजी सपरिवार अमृतसर के लिए रवाना हुए और दो घंटे बाद अमृतसर पहुँच गये। दो बक्सों को रेलवे स्टेशन पर रखवाकर हम लोग वहाँ से निकले और स्वामीजी के डेरे पर चले आये। स्वामी हरिशरणानन्दजी राहुलजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोगों के लिए उनका गृह अपना ही गृह जैसा था। यहाँ पिछली बार नेपाल जाते समय श्री मंगलजी को छोड़ गये थे। वे कुछ दुबले हो गये थे, पंडितजी की पैनी नजर ने यह देख लिया। इस बार मंगलजी भी हमारे साथ मसूरी जा रहे थे।

**अमृतसर से प्रस्थान :** अगले दिन 11 मई को शाम के 5 बजे हम लोग अमृतसर स्टेशन आये। इस बार कुल पाँच प्राणी थे—पंडितजी, मैं, जया, जेता और हमारे भाई मंगलजी। हमारे साथ लगेज भी बहुत था क्योंकि अब अमृतसर लौटना नहीं था। जया-जेता और मुझे जनाने डब्बे में बैठने को मिला। ट्रेन में जगह काफी थी। पंडितजी और मंगलजी दूसरे डब्बे में बैठे। अगले दिन 12 मई को दोपहर 2 बजे देहरादून पहुँच गये। वहाँ प्रोफेसर गयाप्रसाद शुक्लजी के गृह में भोजन किया। मसूरी से आने के बाद हमारा सब सामान सेवक आश्रम रोड स्थित रूपनारायण मिश्रजी के यहाँ रखा हुआ था। उसमें से कुछ को मसूरी ले जाने के लिए छाँट लिया।

**मसूरी में :** भोजन के बाद हम लोग उसी दिन मसूरी जानेवाली बस में सवार हुए और दोपहर तीन बजे मसूरी पहुँच गये। इस बार कुल्हड़ी बाजार के पास बड़े डाकखाने से लगे हुए एक मकान 'क्लेरेन्स हाउस'

में ठहरने का इन्तजाम था। यह घर स्वामी हरिशरणानन्दजी ने ठीक किया था, क्योंकि गर्मियों में वे सपरिवार यहाँ आनेवाले थे। वस्तुतः मसूरी आकर ही राहुलजी का मन खुश हो गया। उन्हें पुरानी यादें आईं और उनको श्रीनगर की तुलना में मसूरी ही शुद्धतर लगी।

अपना घर बेचकर हम लोग चले गये थे। अब यहाँ फिर आना पड़ा, परन्तु अब हम नगर के बीच में थे। राहुलजी को यहाँ कुछ दिन विश्राम करना था; क्योंकि वे अब शीघ्र ही चीन जानेवाले थे। उनकी 'मध्य एशिया' पुस्तक पटना से छप रही थी। आज 13 मई को पुस्तक के लिए मानचित्र पटना भेज दिया। राहुलजी मसूरी आ गये हैं, यह खबर नगर में जल्दी ही फैल गई थी। अतः जहाँ पंडितजी ठहरे थे वहाँ बहुत-से लोग उनसे मिलने आये। वे सभी सुहृद मित्र और परिचित थे। यह घर न तो सुविधापूर्ण था न सुन्दर ही, तो भी अनुकूल स्थान पर था। 13 मई को प्रातः ही पंडितजी अपने मित्र डा. सत्यकेतुजी से मिलने लक्समौंट कोठी में गये। दोपहर को भी वे अकेले ही घूमने निकले। फिर सायंकाल में अपने बाल-बच्चों सहित किताबघर तक टहलने गये। कल उन्हें आयकर अधिकारी से 'आयकर क्लियरेन्स प्रमाण पत्र' लेने के लिए देहरादून जाना था। फिर चीनी दूतावास से सम्पर्क करने के लिए दिल्ली भी जाना था। अतः कल सुबह ही चले जाना निश्चय किया उन्होंने। रास्ते में कुछ मित्र उनको देखकर चकित हो गये। शायद सोचा होगा कि राहुलजी तो मसूरी छोड़कर चले गये थे, फिर यहाँ कैसे ?

**दिल्ली मार्ग :** 14 मई को चाय-पान के अनन्तर पंडितजी ने देहरादून के लिए प्रस्थान किया। वहाँ आयकर अधिकारी के कार्यालय में गये। उनके साथ प्रो. रूपनारायण मिश्र भी गये थे, इसलिए सारा काम हो गया। लौटकर पंडितजी सदानन्द मेहताजी के घर में गये और उन्हीं के साथ स्टेशन गये। रात 10 बजे की दिल्ली जानेवाली ट्रेन में सवार हुए। उन्हें सोने के लिए पूरी जगह मिल गई। अगले दिन 15 मई को सुबह 6 बजे दिल्ली स्टेशन पर उतरकर वे आसफअली स्थित पार्टी-कार्यालय में गये। वहाँ श्री पूरनचन्द्र जोशीजी से मिले और उनके निर्देशन पर पंडितजी चीनी दूतावास में चीनी राजदूत से भेंट करने गये। वहाँ महामहिम राजदूत ने उनके साथ सौहार्दपूर्ण वार्तालाप किया। उस समय मेरे लिए भी चीन जाने का निमंत्रण मिला था, तो भी दो महीने के लिए तिब्बत की यात्रा में भी जाने की बात उन्होंने राजदूत को बतला दी। पंडितजी ने कहा—"वहाँ पत्नी तथा बच्चों के साथ जाना आवश्यक है।" इतना कहकर वे लौट आये। मध्याह्न भोजन उन्होंने डॉ. प्रभाकर माचवे के गृह में किया जो उस समय कनाट प्लेस के यार्क होटल के फ्लैट में रहते थे। उस शाम को पंडितजी श्रीमती निर्मला जोशी के संगीत नाटक अकादमी के कार्यालय में गये, कुछ पंडितों के साथ उनकी बातचीत हुई। फिर रात 8.10 बजे की गाड़ी से उन्होंने मसूरी के लिए प्रस्थान किया।

**मसूरी में :** 16 मई को सुबह 6 बजे ट्रेन देहरादून स्टेशन पर आ खड़ी हुई। पंडितजी को स्टेशन से शीघ्र ही एक वैगन मिल गया और मसूरी के लिए चल पड़े। 10 बजे तक अपने घर पहुँच गये। उस समय उनको जेता ज्वर से पीड़ित मिला। आज दोपहर का भोजन श्री रामचन्द्र चंढक के घर में थी। श्री चंढकजी मानव भारती स्कूल में अध्यापक थे और पंडितजी को बहुत मानते थे। वे सेवाय होटल के पीछे चमन इस्टेट में रहते थे। उनके घर तक पहुँचने के लिए चढ़ाई पड़ती थी जो पंडितजी के लिए कष्टप्रद था। वे परिवार को लेकर गये थे। शाम को चाय पीकर 5 बजे वहाँ से विदा हुए। कुल्हड़ी बाजार में आकर उन्होंने सुना कि दो साधु अहोरात्र समाधि में बैठे हुए हैं। वह इस प्रकार योगसाधना कर रहे हैं। साधुओं के दर्शनार्थ सहस्रों लोग जा रहे थे।

17 मई को राहुलजी ने कोई विशेष काम नहीं किया। पुस्तकें सभी देहरादून में रखी थीं। फिर वे चीन जाने की तैयारी में थे। अब नया काम शुरू करना ठीक नहीं था। अतः आज वे दिन-भर घर पर ही रहे। शाम को परिवार को साथ लेकर घूमने गये। रास्ते में उनके अनेक परिचित लोग मिले, सभी उनसे चीन-यात्रा की बातें पूछते। अभी किस दिन यहाँ से प्रस्थान करना है, यह निश्चित नहीं हुआ था। काम के अभाव में पंडितजी उदास थे, तभी उन्होंने लिखा—"मन उदासीनम् कार्याभावातः।" शाम को घर लौटकर श्री करपात्री महाराज द्वारा लिखित पुस्तक 'मार्क्सवाद और रामराज्य' को पढ़ते रहे। "मूढ़ जन धंधी करणाय बहुजल्पित मिह।" इस

ग्रंथ का खण्डन करना होगा, किन्तु खेद की बात है कि पंडितजी की सारी पुस्तकें पेटियों में बन्द हैं। पीछे उन्होंने इस पुस्तक का खण्डन करते हुए 'करपात्री का रामराज्य' शीर्षक से पुस्तक लिखी जो बहुत लोकप्रिय हुई और अब तक उसके कितने ही संस्करण निकल चुके हैं।

14 मई को भी सुबह राहुलजी करपात्री महाराज की कृति को पढ़ते रहे। फिर लोगों से बातचीत में दो घंटे लगे। आज सायंकाल वे अपने पुराने निवासस्थान हैपी वेली को देखने गये। बाल-बच्चों को भी साथ ले गये थे। वहाँ सभी कुछ पूर्ववत्। लेडली-दम्पती उस समय भी दूध की डेरी चला रहे थे, किन्तु डेरी ठीक से नहीं चल रही थी। सेठ रतीलाला से भी वे मिले। फर्रुखाबादवाले डाक्टर राम अभी भी अस्वस्थ पड़े हुए थे। वह बहुत दिनों से रोगाक्रान्त थे, इसलिए जीवन से निराश हो चले थे। उनके दो बच्चे छोटे ही हैं, जिनके लिए वह चिन्ता करते थे। रात को साढ़े 7 बजे हम लोगों के साथ पंडितजी डेरे पर लौट आये।

19 मई को भी पंडितजी बच्चों के साथ घूमने निकले। उनके मित्र कपूरजी की चित्रशाला में भी गये, जहाँ उनको कुछ परिचित लोग मिल गये। घर लौटकर वे करपात्रीजी की पुस्तक को पढ़ते रहे। अपना विचार उन्होंने उस दिन प्रकट किया था—"करपात्रीजी ने उच्च वर्ग के हित के लिए इस महाग्रंथ को लिखा है। सेठ और महासेठों की प्रशंसा में लिखे गये इस 800 पेजी महाग्रंथ का दाम सिर्फ 14 रुपया है।" इस पुस्तक में राहुलजी के मार्क्सवादी विचार पर भी बहुत आक्षेप किया गया है। 20 मई को उन्होंने यह पुस्तक पढ़कर समाप्त की। उन्होंने इस पुस्तक का खण्डन करने के लिए सामग्री तैयार कर ली और 'करपात्री का रामराज्य' शीर्षक पुस्तक लिखना आरम्भ कर दिया। सायंकाल अपने मित्र श्री मुनीश्वरनाथ जुत्शी के गृह में गये। जुत्शीजी बीमारी से उठे थे, वे अब भी दुर्बल थे। शाम को पंडितजी टहलने के लिए परिवार सहित किताबघर तक गये, कल उनको विशेष काम के लिए देहरादून जाना था।

22 मई को पंडितजी चाय-पान के बाद चल पड़े और 9 बजे देहरादून पहुँच गये। उन्हें कितना चलना पड़ता था, कितनी चुस्ती थी उनमें, कितनी व्यस्तता थी उन दिनों। देहरादून में आयकर-अधिकारी के पास जाकर आयकर चुकाने का प्रमाणपत्र लिया। इस वर्ष तो आयकर लगने लायक कोई आमदनी हुई ही नहीं थी, अतः आयकर नहीं देना पड़ा। दोपहर 2 बजे पंडितजी देहरादून के प्रतिष्ठित वकील श्री दीपचन्द्र कुकरेती से मिले। उस दिन उन्होंने अपनी समस्त कृतियों का प्रकाशनाधिकार (कापीराइट) मेरे नाम बिक्री करके रजिस्टर्ड करवा दिया। यही देहरादून में उनका विशेष काम था। यह काम करके वे मसूरी आज ही लौटना चाहते थे, पर उन्हें अनुकूल यान नहीं मिला। अतः आज यहीं ठहर गये। वे मेहताजी के घर गये। मेहताजी शोधग्रन्थ लिख रहे थे। पर अभी तक उसमें दीर्घसूत्रता दिखाई दी, पंडितजी असन्तुष्ट हो गये। वहाँ से वे पंडित गयाप्रसाद शुक्लजी के घर गये। वे उस समय एक सप्ताह तक ऋषिकेश में रहकर अभी लौटे थे, शुक्लजी कई दिनों से हृदय रोग से पीड़ित थे।

23 मई को पंडितजी सुबह मेहताजी को लेकर बस अड्डे गये और टैक्सी लेकर चल पड़े। 11 बजे दिन में वे अपने गृह में पहुँच गये। सायंकाल वे अपने परिवार के साथ किताबघर से कुछ आगे तक टहलने गये।

24 मई को पंडितजी ने 'करपात्री का रामराज्य' पुस्तक का पहला अध्याय लिखाया। इसे पाँच ही दिन में समाप्त करने की योजना बना ली। इसके अलावा और कोई काम आज उन्होंने नहीं किया। मध्याह्न में खुर्जा कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ. पी. डी. गुप्त आये और उनसे दो घंटे तक बातें होती रहीं। 25 मई को भी वे 'करपात्री का रामराज्य' के अगले अध्याय को टाइपिस्ट मंगलजी को बोलकर लिखवाते रहे। सायंकाल भ्रमणार्थ वे गये। रास्ते में उन्हें अनेक मित्र एवं परिचित लोग मिले। 26 मई को भी उन्होंने 'करपात्री का रामराज्य' का अगला अध्याय लिखवाया। आज ही स्वामी हरिशरणानन्दजी का पत्र उन्हें मिला। वे शीघ्र ही सपरिवार मसूरी आ रहे थे। उनके ठीक किये हुए मकान 'क्लेरेन्स हाउस' में अभी पंडितजी रह रहे थे। स्वामीजी के आने पर दो परिवारों का साथ रहना कठिन ही होगा। कुछ दिनों तक उन्होंने दिन में 'करपात्री' लिखाने और शाम को टहलने जाने का कार्यक्रम बनाया। मसूरी में उनके अनेक मित्र और परिचित थे। प्रायः सभी से भेंट

हो जाया करती थी, इसलिए पंडितजी प्रसन्न रहते थे। 28 मई को उन्होंने अपनी नई पुस्तक का पाँचवाँ अध्याय लिखाया और परसों सारी पुस्तक लिखाना समाप्त करने का निश्चय किया।

मिलनेवाले उनसे मिलने डेरे पर बराबर आते रहते थे। उस दिन (28 मई) फतेहपुर सीकरी नगरपालिका के अध्यक्ष पाराशरजी उनसे मिलने आये। पाराशरजी ने पंडितजी लिखित 'अकबर' पुस्तक पढ़ी थी और उसे बहुत पसन्द भी किया था। उनको सीकरी के बारे में गम्भीर ज्ञान था, क्योंकि सीकरी उनकी जन्मभूमि थी। पंडितजी को उनसे बहुत-सी ज्ञातव्य बातें मालूम हुईं। सायंकाल वे भ्रमणार्थ गये, साथ में जया-जेता को भी ले गये। 9 मई को भी सुबह के समय वे 'करपात्री' को टाइप करवाते रहे। अपराह्न में चीनराज्य के दूतावास (दिल्ली) से 'बहुप्रतीक्षित तडित्सूचना' (तार) आ गयी। उसमें सपरिवार चीन जाने का निमंत्रण दिया गया था। किन्तु अभी दो महीने के लिए ही निमंत्रण था। मैं दो मास के लिए भी जाना नहीं चाहती, क्योंकि मुझे डर था कि वे चीन जाने के नाम पर तिब्बत जा रहे हैं। तिब्बत से डर लगता था। इसलिए पंडितजी ने फिलहाल अकेले ही जाने का निश्चय कर लिया। क्योंकि चीन जाने के लिए बर्मा से होकर जाना था, इसलिए उन्होंने अपनी पुस्तकों के बर्मी अनुवादक श्री परगूजी को अपने आने की सूचना दे दी। कलकत्ता के अपने मित्र साहु मणिहर्ष ज्योति को भी उन्होंने पत्र लिखा। मसूरी से 7 जून को प्रस्थान करने का उन्होंने पक्का कर लिया। पहले उनको चीनी वीसा के लिए दिल्ली जाना था, फिर उसी दिन जनता गाड़ी से कलकत्ता आकर 14 तारीख को रंगून के लिए प्रस्थान करना था। रंगून में मित्रों के बीच सप्ताह-भर रहकर 18 जून तक चीन के लिए प्रस्थान करने का उन्होंने कार्यक्रम बनाया।

30 मई को उन्होंने कलकत्ता से निकलनेवाले मासिक 'नया समाज' के लिए 'नया कश्मीर' शीर्षक एक लेख लिखा और कुछ पत्र भी लिख भेजे। आज वे बड़े खुश थे, क्योंकि चीन-यात्रा का कार्यक्रम निश्चित हो गया था। इसी खुशी में वे परिवार को 'फरिश्ता' फिल्म दिखाने ले गये। फिल्म बच्चों के लिए उपयुक्त थी, किन्तु पंडितजी को तो फिल्में कभी निर्दोष नहीं लगीं। आधा ही देखकर चले आये। अगले दिन 31 मई को 'सरस्वती' मासिक के लिए 'उर्दू अमर हो' शीर्षक लेख लिखा और परिवार के कहने पर 'फरिश्ता' चित्रपट को पूरा देखने के लिए गये।

अब तो राहुलजी के चीन के लिए प्रस्थान करने की तिथि निश्चित हो गई थी, अतः लोग उनसे बराबर मिलने आ रहे थे या रास्ते में मिलकर चीन-यात्रा के बारे में ही उनसे बातें करने लगते थे। 1 जून को उन्होंने अपने पुराने निवास हैपीवेली की ओर जाने का निश्चय किया था, पर जा नहीं पाये। डॉ. बापट (बौद्ध दर्शन एवं साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान) उनसे मिलने आये। डॉ. बापट सपरिवार आजकल मसूरी आये हुए थे। पंडितजी उनसे बौद्ध दर्शन पर बातचीत करते रहे। बातचीत का मुख्य विषय था पंडितजी की 'भावी चीन-यात्रा'। शाम को सदा की भाँति पंडितजी टहलने गये। 2 जून को उन्होंने 'न किनपति कृत्यम्'। सिर्फ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयजी की पुस्तक 'उर्दू शायरी के नये मोड़' को पढ़ने में निमग्न रहे। आज उनकी बाँह में कुछ सुई चुभने-सी पीड़ा हो रही थी। अतः सायंकाल वे भ्रमणार्थ नहीं गये। 3 जून को भी वे गोयलीयजी की पुस्तक को दिन-भर पढ़ते रहे। फिर सायंकाल अपने परिवार सहित किताबघर तक टहलने गये। 4 जून को भी 'उर्दू शायरी के नये मोड़' को ही पढ़ते रहे। आज सायंकाल का भोजन श्री जुत्शीजी के यहाँ हुआ।

कल उन्हें चीन के लिए प्रस्थान करना था, अतः आज (4 जून को) वे कुछ उद्विग्न रहे क्योंकि वे अब बीवी-बच्चों को यहीं (मसूरी) छोड़कर जा रहे थे। घर भी अपना नहीं था, रुपये-पैसे की मजबूती भी उस समय नहीं थी। स्वयं उनके पास यात्रा के लिए रुपये पर्याप्त नहीं थे। जाते समय खर्च की कमी होगी, इस ख्याल से उन्होंने अपने मित्र स्वामी हरिशरणानन्दजी से कुछ रुपये कर्ज के रूप में माँगे थे, और कहा था कि रायल्टी के पैसे मिल जाने पर कमला उसे चुका देगी। पर स्वामीजी ने उनको पत्र में लिखा कि रमते राम को रुपये की क्या जरूरत ? वह तो बिना पैसे-कौड़ी के भी यात्रा कर सकते हैं। हमारे पंडितजी को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने तत्काल ही स्वामीजी को पत्र लिखा—"मैंने आपसे कर्ज माँगा था, दान नहीं।" वस्तुतः वे किसी के सामने हाथ पसारना पसन्द नहीं करते थे। और यहाँ मन से विश्वास करके हाथ फैलाया तो ऐसा जवाब मिला। पर

उन्होंने स्वामीजी के साथ हमेशा मधुर सम्बन्ध ही रखा। खैर, पैसे का इन्तजाम हो ही गया। केवल रंगून (बर्मा) तक पहुँचने के लिए उनको रुपयों की जरूरत थी। अब पंडितजी ऐसी जगह अनिश्चित काल के लिए जा रहे थे, जहाँ हम स्वप्न में भी नहीं पहुँच सकते थे। उनके चले जाने के ख्याल से ही जया-जंता और मैं बहुत दुखी थे। हमारी अवस्था को देखकर उन्होंने उस दिन अपनी उद्विग्नता पर नियंत्रण रखा। मनुष्य के जीवन का कोई भरोसा नहीं। 66 वर्ष की उम्र में वे फिर विदेश जा रहे थे, लौटना शायद ही हो सके, यह सोचकर उनको भी दुःख हो रहा था।

# 4
# चीन-भ्रमण एवं भावी तिब्बत-यात्रा

## चीन-यात्रा के लिए प्रस्थान

इतनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद आखिर वह दिन भी आ ही गया, जिस दिन (5 जून) पंडितजी ने चीन-यात्रा के लिए मसूरी से प्रस्थान किया। अभी जाते-जाते उन्हें कुछ दिन तो भारत में ही बिताने थे, कई जगह औपचारिकता के लिए उन्हें जाना था। हम लोग तो कल रात से ही दुःखी थे। किसी आत्मीय का बिछुड़ना किसे प्रिय लगता है ? हमारी भी वही अवस्था थी। हमारी स्थिति को वे अच्छी तरह समझते थे। अंततः वह दुखद घड़ी भी आ ही गई जब पंडितजी अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर अनिश्चित काल के लिए लम्बी यात्रा पर निकल पड़े।

**देहरादून में :** 5 जून, बृहस्पतिवार को दिन साफ था। प्रातः 10 बजे पंडितजी मंगलभाई के साथ चल पड़े। दो घंटे बाद देहरादून में श्री गयाप्रसाद शुक्ल के गृह में पहुँच गये। गर्मी बहुत अधिक थी। शुक्लजी के पुत्र श्री विश्वनाथ शुक्ल भी आये हुए थे। पंडितजी को देहरादून के बैंक से रुपया निकालना था। यह काम कर के उन्होंने मंगलजी को मसूरी वापस भेज दिया। आज पंडितजी को देहरादून में ही रहना था, किन्तु वे गर्मी से परेशान हो गये। इस बार वे गयाप्रसाद शुक्लजी के यहाँ ठहरे। गर्मी से बचने के लिए रात को वे आँगन में चारपाई डालकर सोये, किन्तु मच्छरों ने उन्हें कम परेशान नहीं किया। सदानन्द मेहताजी इस समय रुग्ण थे, अतः उन्होंने शोधप्रबन्ध के काम को आगे नहीं बढ़ाया था।

**दिल्ली मार्ग :** 6 जून को भी राहुलजी दिन-भर देहरादून में ही थे। किसी तरह उन्होंने समय बिताया। गर्मी के कारण वे बाहर कहीं नहीं गये। सायंकाल वे प्रोफेसर रूपनारायण मिश्र के साथ रेलवे स्टेशन गये। 8 बजकर 10 मिनट पर ट्रेन चली। भीड़ बहुत अधिक थी। प्रथम श्रेणी में भी भीड़ ! गर्मी भी असह्य थी, किसी तरह रात कटी।

**दिल्ली में :** अगले दिन (7 जून) सुबह के 6 बजे ट्रेन दिल्ली स्टेशन पर रुकी। हरिजन कालोनी के श्री विष्णुजी कार सहित वहाँ उपस्थित थे। स्टेशन से पंडितजी हरिजन कालोनी गये। उनके पुराने मित्र श्री वियोगी हरिजी से उनकी भेंट हुई। चाय-पान के अनन्तर पंडितजी नगर की ओर लोगों से मिलने चल पड़े। उनको सबसे पहले श्री पी. सी. जोशी से मिलना था, सो उनके पार्टी-कार्यालय में गये। उसके बाद श्री जोशीजी के साथ पंडितजी चीनी दूतावास में गये। वीसा प्राप्त करने के लिए जो औपचारिक नियम थे, पंडितजी ने उनको पूरा किया। चीन के लिए वीसा मिल गया। क्योंकि पंडितजी को चीन जाते समय बर्मा की भूमि से होकर जाना था, इसलिए बर्मा में प्रवेश करने के लिए ट्रांसिट वीसा की आवश्यकता थी। दिल्ली में ट्रांसिट वीसा मिलने में देर होने की सम्भावना थी, अतः कलकत्ता से लेना उन्होंने तय किया। किन्तु वे मसूरी के घर से

चलते समय आयकर प्रमाणपत्र ले आना भूल गये थे। "धिक् प्रमादः"। उन्होंने श्री रूपनारायण मिश्र और मुझे जल्दी से तडित्सूचना दे दी कि प्रमाणपत्र को तुरन्त कलकत्ता भेज दें। आज रात को वे श्री वियोगी हरिजी के यहाँ ठहरे। आयकर-प्रमाणपत्र के सम्बन्ध में उन्होंने पत्र लिखा, जो इस प्रकार है–

*हरिजन कालोनी, दिल्ली*
*7-6-58*

*प्यारी,*

*आज सबेरे यहाँ पहुँचा। यह पहिले ख्याल ही नहीं किया था कि कल रविवार है, आफिस बन्द रहेंगे। आज नौ बजे ही जीप लेकर निकला। चीनी वीसा ले आया, फिर कुछ मित्रों से भी मिला। 40-42 रुपये की चीजें खरीदीं। लौटकर 2 बजे भोजन किया। गरमी के मारे तबीयत परेशान है, कहीं जाने का मन नहीं है। कल साहित्य गोष्ठी में 6 बजे शाम को जाना होगा। जनता का टिकट आज ही ले आया, सीट भी रिजर्व कर ली। कल 21..45 बजे कलकत्ता के लिए रवाना होऊँगा। पी. पी. एच. से दो सौ रुपये मिले हैं। कलकत्ता से रंगून का किराया 185 रुपये है। सौ रुपये तक सामान के लिए देना है। 150 पौंड अर्थात् 1 मन 35 सेर से अधिक जो सामान होगा, उसे मणिबाबू के यहाँ रख दूँगा।*

*जितना मसूरी से दूर होता जा रहा हूँ, उतना ही मन अधिक एकान्तता तथा वेदना अनुभव कर रहा है। किसी समवयस्क बच्चे को देखकर जया-जेता याद आते हैं। इससे तुम्हारे मन की स्थिति का भी अनुभव होता है। पुनः-पुनः चुम्वन बच्चों को और तुम्हें।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

*पुनश्चः*

*Income Tax Clearance Certificate मैं वहीं इन्कमटैक्सवाली फाइल में भूल आया। उसे तुरन्त रजिस्टर्ड कर Jyoti Brothers, 4 रामजीदास जेटिया लेन, बड़ा बाजार, कलकत्ता के पते पर भेज दो।*

*–राहुल*

## दिल्ली से कलकत्ता के लिए प्रस्थान

8 जून, रविवार को दिन में पंडितजी ने कोई विशेष काम नहीं किया। बस, हरिजन कालोनी के कुछ मित्रों तथा वियोगी हरिजी के साथ बातचीत करते रहे। सायंकाल स्थानीय हिन्दी भवन में पंडितजी के स्वागतार्थ एक साहित्यिक गोष्ठी थी, उसमें गये। वहाँ अनेक साहित्यकार आये। पंडितजी ने उनके सामने अपनी यात्रा के उद्देश्य का वर्णन किया। वहाँ पी. सी. जोशी से मिलकर वे माचवेजी के गृह में गये। आज ही अपने मित्र श्री जगदीशचन्द्र माथुर से भी उनकी बातचीत हुई। माथुरजी तब दिल्ली में उच्च सरकारी पदाधिकारी थे। उन्होंने भारतीय प्रशासन से भी पंडितजी की यात्रा में सहयोग देने की बात कही। सहयोग भला कौन नहीं चाहता, किन्तु वह मिले तब न ? 9 बजे रात को पंडितजी रेलवे स्टेशन गये। उनके साथ श्री विष्णुजी तथा कुमारिल स्वामी भी थे। यहीं पर हिन्दी के कथाकार जैमिनी बरुआ मिले। वह भी कलकत्ता जा रहे थे। आज शुभ घड़ी में यात्रा आरम्भ हुई।

**कलकत्ता-मार्ग में** : 9 जून का दिन और रात ट्रेन के सफर में ही बीती। आज गर्मी बहुत थी। उन्हें गर्मी परेशान कर रही थी। मसूरी से चलते समय उन्होंने इलाहाबाद में अपने प्रकाशक किताब महल के मालिक को पत्र लिखा था कि वे 9 जून को सबेरे प्रयाग स्टेशन पर आकर मिल लें। शायद उन्होंने उनसे रुपयों के लिए भी कहा था। पर प्रयाग स्टेशन पर श्रीनिवासजी नहीं मिले। पंडितजी का मन विह्वल हो गया। कितनी आशा से वह यहाँ आये थे। पटना स्टेशन पर उनके मित्र धूपनाथजी के भतीजे श्री वीरेन्द्रजी तथा श्री अनूपलाल मंडल मिले। सफर के साथी श्री जैमिनी बरुआ के साथ पंडितजी की खूब पटरी जमी, इसलिए उनकी यह सहायात्रा सुखद रही।

**कलकत्ता में** : अगले दिन (10 जून) के अपराह्न में 11 बजे वे हावड़ा स्टेशन पहुँच गये। यहाँ कृषि शुरू हो गई थी, इसलिए एकदम सूखी गर्मी नहीं थी। हावड़ा स्टेशन पर उन्हें नेपाल के पुराने कवि श्री चित्तधर हृदय अपने साथियों सहित मिले। वहाँ से पंडितजी 4 रामजीदास जेटिया लेन, बड़ा बाजार में साहु मणिहर्ष ज्योति के निवास स्थान पर आये। उनको कुछ दिन यहीं रुकना था। स्नान और भोजन के बाद उन्होंने कुछ देर विश्राम किया। श्री मोहनसिंह सेंगर (नया समाज के सम्पादक) पंडितजी के कलकत्ता पहुँचने की खबर पाते ही उनसे मिलने आ गये। आयकर-प्रमाणपत्र के लिए पंडितजी यहीं के आयकर-अधिकारी से मिले, प्रमाणपत्र उनको मिल गया। अब कलकत्ते से 14 जून को प्रस्थान करने का उन्होंने निश्चय कर लिया। बरुआ महाशय आज भी पंडितजी के साथ देर तक रहे।

11 जून को कलकत्ते की गर्मी से पंडितजी बहुत परेशान रहे। इसलिए कहीं बाहर नहीं गये। 12 जून को वे बर्मा के लिए ट्रांसिट वीसा प्राप्त करने के लिए गये। वहाँ किसी साक्षी और जिम्मेदार की आवश्यकता थी। अतः पंडितजी महाबोधि सोसाइटी में गये। सोसाइटी के महासचिव श्री जिनरतना महास्थविर ने बर्मी कौन्सल को आवेदनपत्र लिखकर दे दिया। पत्र इस प्रकार था :

MAHA BODHI SOCIETY OF INDIA
4-A, BANKIM CHATTERJEE STREET.
(COLLEGE SQUARE), CALCUTTA. 12
12th June, 1958

Ref No......

To,

The Consul General,
Govt. of the Union of Burma,
Calcutta.

Sir,

We hold ourselves responsible for Sri Rahula Sankrityayana. holder of India Passport No. A 600739 issued at Lucknow on 20-3-58.

We hereby guarantee for his repatriation to India within the period of Visa granted.

So, you are requested to kindly issue him with the necessary entry Visa & oblige.

Thanking you,

Yours faithfully,
Secretary,
Maha Bodhi Society of India.

वीसा के लिए अगले दिन फिर जाना था। उस दिन सायंकाल श्री भँवरलाल सिंघी द्वारा आयोजित एक संस्था की सभा में गये। वहाँ पंडितजी ने 'तिब्बत और बौद्ध धर्म' पर भाषण दिया। आज का मध्याह्न भोजन श्री भँवरलाल सिंघी के गृह में हुआ।

अगले दिन शुक्रवार 13 जून को भी कलकत्ता बहुत गर्म था। पर अपराह्न में थोड़ी वृष्टि हुई। लोग पंडितजी से मिलने डेरे पर ही आ रहे थे। पंडित भगवत्दत्त शर्मा राकेश द्वारा अनूदित 'कामायनी' संस्कृत को प्रकाशित करने की बात चली। इस कार्य में पंडितजी ने भी सहयोग दिया था। स्थानीय तरुण संघ में उन्होंने 'रूढ़ि विरोध' के सम्बन्ध में भाषण दिया। 9 बजे वे हिन्दुस्तान ट्रैवल एजेन्सी के आफिस में गये। वहाँ बर्मी कन्सुलेट से उनको बर्मा के लिए ट्रान्सिट वीसा दे दिया गया। इसके लिए 30 रुपया देना पड़ा। कुछ कपड़े भी उन्होंने खरीद लिये। फिर सायंकाल 8 बजे भारतीय संस्कृति परिषद् में उन्होंने भाषण दिया।

14 जून, शनिवार को पंडितजी ने पेटियों से कुछ पुस्तकें निकाल लीं, जिन्हें वे चीन ले जाना चाहते

थे। उसके बाद मध्याह्न भोजन उनका डॉ. नलिनाक्ष दत्त महाशय के गृह में हुआ। नलिनाक्ष दत्त पंडित पुरुष हैं, श्रम में भी, शील में भी। तिब्बती कार्य के विषय में उनसे वार्तालाप हुआ। उसके बाद हिन्दी दैनिक 'स्वाधीनता' कार्यालय में वे गये, वहाँ उन्होंने साथी मुजफ्फर अहमद को देखा। वह राष्ट्रीय पुस्तकालय में भी थे। यहाँ उनको छोड़कर और कोई परिचित नहीं था। अपराह्न में कुछ लोग डेरे पर ही मिलने आ गये। 7 बजे के बाद पंडितजी श्री अशोक वर्मनजी के गृह (डाबर हाउस, बालीगंज) में गये। यहाँ सभी लोग श्वेतांग (गोरे) ही श्वेतांग हैं। उनका अपना ही विमान है, कार, रथ (ट्रकें) आदि हैं, तो भी वह सत्कर्म भी कर रहे हैं। साहित्यकारों का मान-सम्मान रखनेवाला घर है यह डाबर हाउस। रात्रि भोजन यहीं हुआ। बहुत-से लोग वहाँ आमंत्रित थे।भोजनान्तर न्यूगिनी की प्रचार फिल्म (डोक्यूमेन्ट्री) भी देखी और 11 बजे रात को मणिहर्ष ज्योतिजी के गृह में लौट आये। अब आगामी कल उन्हें रंगून के लिए प्रस्थान करना था। कलकत्ता छोड़ने से पहले उन्होंने घर में यह पत्र लिखा :

*कलकत्ता*
*14-6-58*

*प्यारी,*

*आज रजिस्टर्ड पत्र मिला। तार का उत्तर देहरा से आ गया था। इसलिए कल सब काम कर टिकट भी खरीद लिया था। कल (15 जून को) साढ़े सात बजे दिन को बर्मा सरकार का विमान लेकर उड़ेगा। कल 4 बजे तक रंगून पहुँच जाऊँगा। वहाँ शायद ही दो-चार दिन रहना हो।*

*भैया (जेता) की बात पढ़ी। भैया को तो पापा बनना है, उसकी अकल तेज होनी ही चाहिए। जया को सँभालकर रखना भी भैया का काम है। यदि मुझे तिब्बत जाना पड़ा तो भैया को लिखूँगा, वह अपनी अम्मा को अवश्य पापा के पास लायेगा। पापा भैया से दूर जा रहे हैं, पर वह भैया को बार-बार याद करते हैं और चाहते हैं कि भैया का पेट खराब न रहे। जया तो अब स्कूल रोज मन से जाती होगी। अक्षर भी पढ़ती होगी। अम्मा को मत तकलीफ देना, जया बेटी !*

*भैया और जया को पापा बार-बार चूमते और प्यार करते हैं।*

*प्यारी, वियोग से दुख होता ही है, पर सहना चाहिए। मेरा प्यार अक्षुण्ण रहेगा, यह निश्चय रखना। पढ़ाई कुछ करती रहना ताकि अगले साल तक थीसिस तैयार हो जाये। सभी लोगों से मित्रता रखनी चाहिए, कभी-न-कभी सहायता मिलती है।*

*यह जानकर बड़ा दुख हुआ कि जुत्शीजी की तबियत खराब है। अच्छा होने की खबर सुनने का इच्छुक हूँ।*

*श्री रूपनारायण को 130 रुपये का चेक भेज रहा हूँ 1958 में किराये के लिए।*

*मैं गरमी से बहुत परेशान रहा, पर स्वास्थ्य ठीक रहा। टीके का घाव बिल्कुल अच्छा हो गया। अपनी प्यारी का पुनः-पुनः चुम्बन-आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

## बर्मा की भूमि में प्रवेश

**रंगून में सात दिन :** रविवार, 15 जून का सबेरा हुआ। सुबह 7 बजे के बाद श्री मदनगोपालजी के साथ कवि श्री कन्हैयालाल पोद्दार के घर में वे गये। वहाँ नेपाल के वयोवृद्ध कवि चित्तधर हृदय भी मिले। वहीं पर और कितने ही साहित्यकार एकत्र हुए। श्री मोहनसिंह सेंगरजी भी आ गये। यहाँ से पंडितजी 10 बजे चले। श्री अशोक वर्मन की कार 12 बजे तक आ गई। उसी कार से पंडितजी दमदम विमानस्थल पर आये, उनका सामान तौला गया। अतिरिक्त भार के लिए 185 रुपया देना पड़ा, क्योंकि उनके साथ किताबें अधिक थीं। 1 बजे दिन में वाइकाउंट विमान उड़ा। 15 हजार फुट की ऊँचाई पर वह विमान उड़ने लगा। क्योंकि धरती

मेघाछन्न थी, इसलिए वह अस्पष्ट दिखाई दे रही थी। समुद्री दृश्य भी दिखाई दे रहा था। विमान में दो भिक्षु थे, और भारतीय अधिक थे। विमान तीन घंटे तक उड़ा। इधर की भूमि हरितवसना थी। यहाँ दो सप्ताह से वृष्टि हो रही थी। सायंकाल 5 बजे वह विमान रंगून के विमानस्थल पर उतरा। विमानस्थल सुन्दर था।

विमानस्थल पर पंडितजी के स्वागत के लिए बहुत-से लोग उपस्थित थे। उनमें से 14 लोग तो पूर्वपरिचित थे। विमानअड्डे पर चीनी दूतावास के प्रतिनिधि भी आये थे। उन्होंने पंडितजी को चीनी दूतावास में रहने का निमंत्रण दिया, परन्तु पंडितजी ने अपने भारतीय मित्रों के साथ रहना पसन्द किया। वहाँ श्री सत्यनारायण गोयनका, पंडितजी की पुस्तकों के बर्मी भाषा में अनुवादक श्री पारगूजी, बर्मी लेखक संघ के मंत्री ऊ-थेन-पे थे। अनेक भारतीय अपरिचित लोग भी पंडितजी के स्वागतार्थ वहाँ आये थे। कस्टम से भुगतना था। बर्मा के कस्टम के बारे में पंडितजी ने लिखा–"15 जून के 4 घंटे की उड़ान के बाद रंगून पहुँचा। मेरे बर्मी और भारतीय मित्र स्टेशन पर मिले। पूँजीवादी देशों में कस्टम की व्यवस्था परेशान कर देनेवाली होती है। रंगून में तो यह पराकाष्ठा को पहुँची थी। कीमती जेवरों, धातुओं और दूसरी चीजों को छिपाकर ले जाने का जो बड़े ब्लैक रूप में व्यापार हो रहा है, उसी के कारण यह कठोरता है। मुझे उतनी दिक्कत नहीं उठानी पड़ी, क्योंकि मेरे एम. पी. बर्मी मित्र ऊ-थेन-पे विमान से उतारकर मुझे बाहर ले आये। पर तीन महीने बाद जब मेरी पत्नी बच्चों के साथ यहाँ उतरीं, तो उन्हें बहुत परेशान किया गया। तलाशी लेनेवाली महिला ने पाँच रुपये का नोट अपने पास रख लिया।"

15 जून को सायं 5 बजे राहुलजी रंगून पहुँच गये। उस दिन से लेकर 20 जून तक श्री सत्यनारायण गोयनकाजी की पंचमंजिली बिल्डिंग की सबसे ऊपरवाली मंजिल का एक विशाल कक्ष पंडितजी के लिए तैयार किया गया था, जहाँ उनकी और अन्य राहुल-प्रेमी बर्मी एवं भारतीय बन्धुओं के बीच अखण्ड गोष्ठी चलती रही। बर्मा में जितने भी बर्मी और भारतीय लोग मिल सकते थे, पंडितजी के लिए उतना ही अच्छा था। उनके बहुत पुराने मित्र महास्थविर उक्कठा भी मिले जो पहले बहुत साल तक भारत में रहे थे। पंडितजी से इनका परिचय 1928 से रहा था।

16 जून को 10 बजे राहुलजी चीनी दूतावास गये। पता चला कि शनिवार (21 जून) को रंगून से चीन के लिए प्रस्थान करना होगा और रविवार को वे पेकिंग पहुँच्च जायेंगे। वहाँ से लौटकर वे गोयनकाजी के गृह में आये। यहाँ पर बहुत सारे भारतीय मूल के लोग उनसे मिलने आये। उन्हें आज कुछ सभाओं में भी जाना पड़ा, जहाँ उनके व्याख्यान हुए। उन्होंने बर्मा में रहनेवाले सेठ गोयनकाजी के यहाँ देखा कि मारवाड़ी होकर भी उनमें बहुत परिवर्तन हुआ है। भोजन में छुआछूत का भेद नहीं है। मारवाड़ी समाज में परिवर्तन तो बहुत हुआ है, पर अपने घर में वे लोग किसी बर्मी को नौकर नहीं रखते।

17 जून को रंगून में वृष्टि हो रही थी। सुबह चाय-पान के बाद गोयनकाजी की कार लेकर पंडितजी घूमने निकले। पहले शान्ति तूप (पेगोडा) को देखने गये। रंगून का स्वेडेगोन पेगोडा बौद्धों के लिए महत्त्वपूर्ण एवं दर्शनीय मन्दिर है। उसके बाद पास की ही षष्ठसंधान गुहा को भी उन्होंने देखा। रंगून के कृत्रिम पहाड़ों को भी देखा। वहाँ से पंडितजी अपने साथियों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध प्रतिष्ठान को भी देखने गये। प्रतिष्ठान के संचालक ने उन्हें पुस्तकालय को दिखलाया एवं कर्मचारियों से मिलवाया। इसके म्युजियम के संचालक से बात करने में पंडितजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। आज का मध्याह्न भोजन वाराणसी से आये किसी मधुर पाठक के गृह में हुआ। लौटे साढ़े 3 बजे। फिर सायंकाल 7 बजे आर्य समाज भवन में बर्मी-हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की ओर से राहुलजी को अभिनन्दनपत्र दिया गया। यहाँ पर उनका राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध में व्याख्यान हुआ। बर्मी मित्रों से वार्तालाप करते हुए वे रात को मोगल स्ट्रीट में गोयनकाजी के गृह में आ गये। उसी रात को उन्होंने मसूरी में पत्र लिखा जो इस प्रकार है :

*मोगल स्ट्रीट, रंगून*
*17-6-58*

*प्यारी,*

*परसों रविवार (15-6) को शाम के चार बजे मैं बर्मा पहुँचा। 3 घंटे की उड़ान रही। भारतभूमि से ऊपर उठते न जाने कैसा कसमसा रहा था। बार-बार जया और जेता और उनकी माँ याद आ रही थी। बहुत से लोग एरोड्रोम पर पहुँचाने आये थे। उनसे बातों में लगा था, पर मसूरी की ओर ध्यान गये बिना नहीं रहता था। सोचता था, बच्चों को और तुम को और प्यार करके चलना था। विमान 18000 फुट के ऊपर उड़ने लगा। बादल बीच-बीच में धरती को छिपाये थे, इसलिए उधर भी मन नहीं लग रहा था। मनोलोक ही में मैं विचर रहा था।*

*कलकत्ता में मैं पंखे के सहारे रहा। विमान में गरमी का नाम नहीं था। रंगून कलकत्ता से भी गरम है, इसलिए आशा करता था और अधिक गरमी की। पर यहाँ 15 दिनों से वर्षा आ गई है, इसलिए उतनी गरमी नहीं है। जिस चौमंजिले पर श्री सत्यनारायण गोयनका ने मुझे ठहराया है, उसमें बराबर ही हवा आती है।*

*यहाँ के एरोड्राम पर बर्मी मित्रों, चीनी कौन्सल के भाई के अतिरिक्त पचासों भारतीय स्वागत के लिए आये थे। कब तक यहाँ रहना होगा, इसका निश्चय भी कल हुआ।*

*शनिवार (21 जून) को यहाँ से रवाना होकर 5 घंटे में कुनमिंग में रात बितानी है। रविवार को पेकिंग पहुँच जायेंगे।*

*यहाँ बराबर भारतीय और बर्मी भाई घेरे रहते हैं। आज सात घंटा मोटर से यहाँ से म्युजियम और दूसरे स्थानों को देखकर 3.30 बजे लौटे। हमारे अनुवादक उ. पारगू साथ रहे, विद्वानों और विशेषज्ञों से बातचीत हुई।*

*बर्मा में 7 लाख भारतीय रहते हैं। पहिले 14 लाख थे। लड़ाई में बहुत से चले गये। आजमगढ़, गोरखपुर, बनारस के बहुत से आदमी मिले।*

*पत्र को बीच में छोड़ना पड़ा, फिर छोड़ना पड़ रहा है। मिलनेवाले आ रहे हैं।*

*जया-जेता को प्यार, तुमको चुम्बन-गाढ़ालिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

18 जून को भी पंडितजी रंगून में बहुत व्यस्त रहे। आज मारवाड़ी छात्रों के बीच में भी उनका भाषण रखा गया था। दिन के समय अनुवाद समिति के बहुत-से लोगों के साथ उनकी भेंट हुई। समिति ने 300 से अधिक ग्रंथ प्रकाशित किये हैं। पंडितजी की पाँच-छः पुस्तकों—सिंह सेनापति, वोल्गा से गंगा, बौद्धदर्शन आदि का श्री पारगू महाशय ने बर्मी भाषा में अनुवाद किया था, इसलिए बर्मी लेखकों और पाठकों में पंडितजी सुपरिचित हो गये थे। यहाँ पर भिक्षु उक्कठा महाथेरो से उनकी बातचीत हुई। सायंकाल 7 बजे के बाद आर्य समाज भवन में भारतीय संस्कृति विषय में उनका भाषण हुआ। उनके सभी भाषणों को श्री सत्यनारायण गोयनकाजी ने टेप किया था। ऐसे श्रोताओं के बीच भी पंडितजी का 'हिन्दी में भाषण हुआ जहाँ अंग्रेजी जाननेवाले लोग थे।'

19 जून को वृष्टि होने के बावजूद भी रंगून में काफी गरमी थी। उस दिन उन्होंने साथियों के साथ 'निरपराध' नामक एक मार्मिक बर्मी चित्रपट को देखा, उनको अभिनय समीचीन लगा, किन्तु भारतीय से थोड़ा कम। सायंकाल 7 बजे स्थानीय रामकृष्ण मिशन में 'बौद्ध बुद्धिवाद' विषय पर उनका भाषण हुआ। पारगू महाशय ने भाषान्तर किया। श्रोता बहुत अधिक थे। आज रात्रि भोजन का ब्रह्मदेशीय किसी भोजनालय में प्रबन्ध किया गया था। आज दिन-भर भी बहुत-से लोग राहुलजी से मिलने आते रहे। उन सभी के साथ वार्तालाप हुआ। कुछ वृद्धा भारतीय महिलाएँ भी आईं। पंडितजी ने देखा कि अब प्राचीन रूढ़ियों में परिवर्तन आ रहा है। यहाँ पंडितजी को सर्वत्र स्नेह और सम्मान उपलब्ध हुआ। उन्होंने यहाँ दो चीजें खास तौर से देखीं—यहाँ के विश्वविद्यालय में बर्मी भाषा के माध्यम से पढ़ाई होती है, जिसे भारतीय लोग पसन्द नहीं करते।

20 जून को प्रातः राहुलजी दो भारतीय विद्यालयों में गये, एक गुजराती दूसरा हिन्दी। यहाँ इन्हीं भाषाओं

में पढ़ाई होती है। आज का मध्याह्न भोजन बर्मी लेखक संघ में हुआ। इस संघ के अध्यक्ष उ-थेन-पे महाशय थे, जिनका राहुलजी के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार श्लाघनीय था। यहाँ पर भी उन्होंने व्याख्यान दिया। बीस से अधिक लेखक यहाँ उपस्थित थे। यहाँ भी भाषान्तर का काम पारगू महाशय ने किया। वहीं पर स्तालिन शांति पारितोषिक विजेता 92 वर्षीय वृद्ध साहित्यिका को पंडितजी देखने गये। उन्होंने स्वतंत्र बर्मा के राजा थी-यीबो (शिव) के शासनकाल को देखा था। चार बजे सम्मेलन की सभा थी। स्थानीय कांग्रेस सभा में राहुलजी को मानपत्र दिया गया। चाय-पान भी वहीं पर था। रात के 8 बजे साहित्य सम्मेलन में साहित्य विषय में उनका व्याख्यान हुआ। आज मध्याह्न भोजन के बाद वे चीनी दूतावास में जाकर विमान का शुल्कपत्र ले आये। बर्मा के लोगों के प्रति पंडितजी के उद्गार थे–"तुष्टा अमत्या जनाः मयि, मयाऽपि तोषः।" (20 जून)

इस प्रकार बर्मा में छः दिन बीतते राहुलजी को पता ही न चला। कल चीन के लिए प्रस्थान करना था।

## जनवादी चीन की भूमि में प्रवेश

शनिवार, 21 जून का पूर्वाह्न। "आज 7 बजे सबेरे ही चीनी विमान को उड़ना था। श्री सत्यनारायण गोयनका, उ-थेन-पे तथा अन्य कई मित्र-परिचित विमानस्थल पर आ गये। उ-थेन-पे के सहयोग से कस्टमवालों ने राहुलजी को दिक नहीं किया। 7 बजे ही चीनी विमान ने धरती छोड़ी।" पंडितजी के ही शब्दों में–"बर्मा हरा-भरा देश है। समुद्र तट से हटने पर पहाड़ ही पहाड़ मिलते हैं जो बारहों महीने हरे-भरे रहते हैं। वर्षा हो गई थी, इसलिए चारों ओर हरियाली गहगहा रही थी–यह चावल का देश है। प्रायः 10 हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ता हमारा विमान उत्तराभिमुख जा रहा था। कितनी हीं दूर तक इरावती नदी पथप्रदर्शन करती रही। फिर पर्वतश्रेणियों को लाँघकर मेकांग नदी मिली। यह एशिया की बड़ी नदियों में से है। इसी के बाद हम चीन की भूमि में प्रविष्ट हुए। नदी, पहाड़ और जंगल में बर्मा और चीन के युन्नान प्रदेश में कोई अन्तर नहीं।··· पाँच घंटे की यात्रा के बाद 12 बजे के करीब विमान धरती की तरफ उतरने लगा। मेरा निमंत्रक चीनी बौद्ध संघ था। धरती पर उतरते ही बौद्ध संघ के प्रतिनिधि तथा एक सरकारी प्रतिनिधि स्वागत के लिए आगे बढ़े और कार पर बैठाकर 20 किलोमीटर दूर कुनमिंग शहर ले गये।"

**कुनमिंग :** आज (21 जून) राहुलजी के पास खाली समय था, अतः वे उसका उपयोग करना चाहते थे। कुनमिंग शहर के एक छोर पर बसे दुमंजिला होटल में जाने पर वे सोचने लगे कि यहाँ बैठे-बैठे दिन काटने से अच्छा है कि चलो कुछ देख आयें। रंगून में विमान पर चढ़ते समय एक और भारतीय श्री चेरियन थामस मिल गये। इतनी देर में दो यानी आत्मीय बन गये थे। चेरियन साहब विनोबाजी के संगठन में काम करते थे और कितने ही समय से हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के बीच रह रहे थे। चीन के कृषि विभाग ने उन्हें एक महीने के लिए बुलाया था। दोनों के स्वागतकारी मित्रों ने इन दोनों मेहमानों की इच्छा सुनी तो घुमाने ले जाने के लिए तैयार हो गये। भाषा की कठिनाई उन दोनों मेहमानों को नहीं हुई, क्योंकि हिन्दी या अंग्रेजी के दुभाषिए मिल जाते थे। पंडितजी को केवल अंग्रेजी दुभाषिए से काम लेना पड़ा। चेरियन महाशय केरल के रहनेवाले थे, पर उत्तर भारत में रहते-रहते हिन्दी भी जानते थे। उन्हें देखकर पंडितजी को ख्याल आया कि उन्होंने इनको कहीं देखा है। अन्त में यह मालूम होते देर नहीं लगी कि सेवाग्राम में श्री आर्यानायकम् के यहाँ दोनों की भेंट 1956 में हुई थी। दोनों यात्री पश्चिम पर्वत का एक पुराना विहार देखने निकले, जो पाँचवीं सदी से पहले बना था। वहाँ से वे लोग बौद्ध विहार देखने गये, जिसकी बनावट कलापूर्ण थी। विहार के ठीक नीचे विशाल कुनमिंग झील भी है, जिसका दृश्य भी पंडितजी को बड़ा ही मनोहर लगा। चेरियन महाशय यहाँ के किसानों की अवस्था को भी देख रहे थे। उनके मुँह से यह बोल निकल पड़ा–गरीबी और अन्न का अभाव यहाँ से दूर हो गया है। वहाँ से दोनों यात्री अपने होटल में लौट आये। आज दोनों ने आने-जाने की यात्रा में 40 मील की दूरी तय की थी। "आज शनिवार को आमोद-प्रमोद का दिवस था। होटल के बड़े हॉल में नृत्य-महोत्सव मनाया जा रहा था। हमें यह सूचना दी गई। चेरियन बरसों पश्चिमी देशों, विशेषकर अमेरिका में रह चुके थे। वह नौजवान थे, पर उन्हें भी नाचने का शौक नहीं था। मैं तो इस कला में सर्वथा निर्दोष

था। हम कुर्सियों पर बैठकर देखने लगे।"

**पेकिंग में** : रविवार 22 जून को सवा सात बजे रंगून से आया विमान आगे के लिए उड़ा। कुनमिंग के नौ-दस सज्जन इन अतिथियों को हवाई अड्डे तक पहुँचाने आये। "रास्ते में विमान चुङ्किङ्, सिआन और तायुवान में थोड़ी-थोड़ी देर के लिए ठहरा। दोपहर का भोजन सिआन नगर में हुआ।" प्रायः 10 घंटे की उड़ान के बाद 5 बजे शाम को राहुलजी और चेरियन महाशय पेकिंग के हवाई अड्डे पर पहुँचे। हवाई अड्डा शहर से प्रायः 16 मील दूर था। पंडितजी के स्वागत के लिए चीनी बौद्ध संघ के दो उप-प्रधान श्री चाउ-फू-चू और श्री चाउ-शू-चिया दूसरे साथियों के साथ अड्डे पर पहुँचे हुए थे। श्री चाउ-फू-चू महाशय से राहुलजी 1956 में नेपाल में मिल चुके थे, जबकि वे 25सौवीं बुद्ध जयन्ती के अवसर पर आयोजित विश्व बौद्ध सम्मेलन में चीन के प्रतिनिधि बनकर नेपाल आये थे। वे कवि थे, संसद सदस्य थे और बहुत ही प्रभावशाली सोम्य व्यक्ति थे। इन विशेषताओं के साथ ही उनके मधुर और विनम्र स्वभाव में मानों बौद्ध संस्कृति साकार हो उठी थी। श्री चेरियन के स्वागत के लिए कृषि मंत्रालय के लोग आये थे। अब राहुलजी और चेरियन महोदय का रास्ता चीन-दर्शन के लिए अलग-अलग था। पर 'शिनचाउ' नामक विशाल होटल में दोनों सज्जनों की मुलाकात होनेवाली थी। पेकिंग में पंडितजी को उस समय बहुत गरमी लगी, पर पीने के लिए यहाँ ठंडा पानी नहीं दिया जाता, क्योंकि चीन में ठंडा पानी पीने का रिवाज नहीं है। रात को उन्होंने होटल में विश्राम किया। अपने देश से इतनी दूर आने पर पंडितजी को अपने परिवार की याद आये बिना कैसे रहती। उसी रात को उन्होंने अपने परिवार को जो पत्र लिखा, वह यहाँ उद्धृत है :

*मार्फत आल चाइना बुद्धिष्ट ऐसोसिएशन, पेकिंग*
*22-6-58*

*प्यारी,*

*रंगून से चलकर आज शाम को यहाँ पहुँच गया! स्वागत करने के लिए दो कार लेकर लोग एरोड्राम पर आये थे। मुझे कितनी ही बार ख्याल आता रहा कि चाहे दो ही महीने के लिए सही, तुम्हें ले आना अच्छा होता। खैर, अब तो हो गया। अभी आगे का प्रोग्राम दो-चार दिन में निश्चित होगा। दो-तीन दिन से बाईं काँख में फोड़ा उठा हुआ है। शायद डाक्टर की छुरी आवश्यक हो। बुखार आदि कुछ नहीं है।*

*नन्हें-मुन्ने याद आते हैं। जेता क्या-क्या बातें करता होगा। जया न जाने तुम्हें कितना परेशान करती होगी। मारने से काम कुछ नहीं बनता। बच्चे जिद्दी हो जाते हैं। आशा है, वह स्कूल बराबर जाती होगी। तुम अपना मन उदास न करना। मेरा भी चित्त कभी-कभी उद्वेलित हो जाता है। पर, आना तो आवश्यक था। अपने मन की स्थिति को बतलाकर तुम्हें खिन्न नहीं करना चाहता।*

*रंगून में भारतीय भाइयों ने तो और भी रहने का आग्रह किया था, पर मैं रह नहीं सकता था। यहाँ वाले हमारे आने के लिए अप्रैल से ही प्रतीक्षा कर रहे थे।*

*रंगून में बादल रहते ही उड़ना पड़ा। 7 बजे से 5 घंटा उड़कर कुनमिंग पहुँचे। वहाँ भी बौद्ध प्रतिनिधि स्वागतार्थ मौजूद थे। आधा दिन था। 25 मील पर अवस्थित एक पुराने विहार शी-स्याङ् को देखने गये। यहाँ तो वर्षा हो गई है, सभी जगह हरी-भरी थी। एक गाँव भी देखा, गरीबी और भुखमरी यहाँ से विदा हो गई है। और बातों को भी हटाने का प्रबन्ध यहाँ तेजी से हो रहा है। सारे देश में कारखाने बन रहे हैं। खेतों की उपज पंचायती खेती से बढ़ गई है।*

*मेरे साथ केरल के भूदान-सेवक श्री चेरियन थोमस यहाँ आये हैं। कभी-कभी साथ ही घूम आते हैं।*

*तुम्हारी और बच्चों की याद बहुत आती है।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

राहुलजी ने चीन-यात्रा पर अपनी अलग ही पुस्तक लिखी है, इसलिए यहाँ उनके पत्रों के माध्यम से संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। पत्रों में कुछ ऐसी बातें भी हैं जो 'चीन में क्या देखा' पुस्तक में नहीं दी हैं। अस्तु।

*आल चाइना बुद्धिष्ट ऐसोसिएशन, पेकिंग*
*27-6-58*

*प्यारी,*

*कल रात को 19-6 के दो और 20-6 का एक पत्र मिला। मालूम नहीं मेरे भेजे कलकत्ता, रंगून और यहाँ के पत्र पहुँचे या नहीं। यहाँ से एक पत्र 23 को भेजा था।··· अभी तिब्बत जाने का कोई निश्चय नहीं हुआ है। मैं न जा सका तो दूसरों के जाने की सम्भावना ही नहीं है। यहाँ आये आज छठा दिन बीत रहा है। रोज स्थानों को देखना और व्यक्तियों से मिलना, कहीं-कहीं बोलना पड़ता है। अभी तक प्रोग्राम निम्न प्रकार है–1 जुलाई तक पेचिंग (पेकिंग), 2-11 जुलाई उत्तरपूर्व चीन, 12-15 ताथुङ्, (गुहा विहार), 16-25 पेकिंग (लेक्चर), 26 जुलाई-10 अगस्त तक सियान, हाङ्चो, तुङ्हाङ् (पश्मिोत्तर), 11-12 अगस्त लोयाङ्, 12-13 नानकिङ्, 15-19 शाङ्है, 20-22 अगस्त हाङ्चो, 25 नाकिङ्। तिब्बत जाना हुआ तो 13 अगस्त को ही।···*

*दिन में कार्यव्यस्त रहता हूँ, ज्यादातर घूमने में गुजरता है। दुभाषी श्री चेङ् और मैं कार लेकर घूमते रहते हैं। परसों हम शहर से बहुत दूर विश्वविद्यालय वज्रासन विहार आदि देख आये। उससे पहिले मिङ् राजप्रासाद देखा। यह तो एक शहर है, चार घंटे में कहाँ पूरा देखा जा सकता है ? नया पेकिंग पंचमंजिले-छहमंजिले विशाल मकानों का बन रहा है। पुराने पेकिंग को अभी गिराया नहीं जा रहा है, क्योंकि अभी उसके एकमंजिले मकानों की आवश्यकता है। सम्राटों के समय एकमंजिला ही मकान बनाने दिये जाते थे, जिसमें पर्देवाली पालकी में बैठकर घूमते सम्राट से ऊपर कोई स्थित न हो, उसका दर्शन उसे सुलभ न हो। नये मकान बड़े आराम के हैं। यह 'शिन-चाउ' होटल ही ले लो। इसमें सात सौ के करीब कमरे हैं, एक आदमीवाले या दम्पतीवाले। हर कमरे में स्नानगृह, शौचालय, कपड़े टाँगने का कोष्टक और सोने का कमरा है। हर कमरे में टेलीफोन है। जाड़ों में गरम रखने का यंत्र है। भोजन चीनी और यूरोपियन दोनों प्रकार के मिलते हैं। कलकत्ता में मेरी बाईं काँख में फोड़ा निकलने लगा। मैंने पर्वाह नहीं की। यहाँ आने पर वह पक गया। 23 जून को डाक्टर ने चीर दिया। घाव ठीक हो रहा है। इसका एक परिणाम यह हुआ कि मैं भोजन कमरे में ही लेता हूँ। चिंता की कोई बात नहीं। इन्सोलिन के इंजेक्शन की जगह रंगून से लायी गोलियाँ खा रहा हूँ। यह इन्सोलिन का ही काम करती हैं। वैसे पास में इन्सोलिन भी है। जब से फोड़ा चीरा गया है, तब से चीनी, चावल आदि छोड़ दिया है।*

*चीन के लोग कितने भले हैं, आर्ती तो देखतीं। चीन के एक भाग को 23 वर्ष पहिले मैंने अच्छी तरह से देखा था। उस समय तो मालूम होता था कि इतना गंदा रहनेवाला देश दुनिया में नहीं होगा। अब उल्टा है। चिड़ियाखाने में सिंहों के पास से गुजरते जो दुर्गन्ध भारत में आती है, उसका यहाँ कहीं पता नहीं है। न कहीं मक्खियाँ दीखती हैं। एक प्रदर्शनी में चेङ् महाशय को एक मक्खी दीख पड़ी। उन्होंने तुरन्त रक्षिका से कहा और उसने मक्खी को मारकर ही दम लिया। गर्मी तो मुझे बहुत सताती है। कमरे में तो पंखा लगवा लिया है, पर बाहर क्या किया जाये ? परसों एक नाटक देखने गये, अच्छा यथार्थवादी था। पर गरमी के कारण भागने का मन करता था। मैं श्री चेङ् का भी ख्याल करके नहीं उठा। एक फिल्म और एक ओपेरा नाटक-भर और देखूँगा। मन नहीं करता, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि वह अच्छे नहीं हैं।*

*तिब्बत जाना हुआ तो यहाँ से सीधे जाना होगा, भारत आना इतना आसान नहीं है। देखें उसके बारे में क्या निश्चय होता है।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

पेकिंग में राहुलजी 22 जून से 1 जुलाई तक रहते हैं। इस बीच उन्होंने बहुत-सी महत्त्वपूर्ण इमारतों, कारखानों तथा विश्वविद्यालय को देखा। शहर से बाहर के दूर-दूर के स्थानों का परिदर्शन किया। सुबह के निकले शाम को ही होटल में लौटते थे। चीनी मेजबान लोग उनका बहुत ध्यान रखते थे। अब कुछ दिनों के लिए वे पेकिंग से बाहर घूमने जानेवाले थे। पूर्व निर्धारित्त कार्यक्रम के अनुसार वे अपने दुभाषिए के साथ 2 जुलाई को चीन का प्राचीन नगर सैयाँ-शिआन की ओर चले। सैयाँ या शियान का पुराना नाम मुकदन था।

इस शहर में वे पाँच दिन रहे और घूम-घूमकर बहुत कुछ देखा, जिसका विवरण उनकी पुस्तक 'चीन में क्या देखा' में दिया है। शियान से उन्होंने मसूरी में परिवार को पत्र लिखा था, जो इस प्रकार है :

*शियान् (उत्तरपूर्वी चीन)*
*5-7-58*

*प्यारी,*

*... मैं 2 जुलाई को चलकर उसी दिन 700 किलोमीटर दूर यहाँ पहुँचा। 6 जुलाई तक आसपास के दो और उद्योगप्रधान नगरों को देखकर छङ्छुङ् जा 11 या 12 तारीख को पेकिंग लौटूँगा।... रोज पूर्वाह्न और अपराह्न में 5-5 घंटे परिदर्शन में बीतते हैं। सैंयाँ (शियान) महानगर है, जहाँ 24 लाख आदमी बसते हैं। मैंने 1935 ई. में इस नगर को देखा था। तब चीन का पूर्वोत्तर भाग जापान के कब्जे में था। जापानी बड़ी अवहेलनापूर्वक यहाँ के लोगों को देखते थे। उन्हें निकम्मा और अपने को कर्मठ समझते थे। अब वही निकम्मे आदमी पिछले नौ-दस वर्षों में कहाँ से कहाँ चले गये। कल भारी मशीनरोल के एक कारखाने को देखा। यहाँ मशीन बनानेवाली विकराल मशीनें 150 टन तक की बनती हैं। अचिर में ही ये 1000 टन की बननेवाली हैं। सभी कर्मी चीनी हैं। पिछली वार यह शहर वहुत गंदा देखा था। अब स्वच्छता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। कहीं मक्खियाँ नहीं, मच्छर नहीं। चूहों और गौरयों का संहार हो चुका है। मैंने अपने दुभाषिए मिस्टर चेङ् से पूछा—'गौरयों का संहार क्यों ?' उत्तर मिला—'वह अनाजचोर हैं। खाद्य खा जाती हैं।' जिस लाउचिङ होटल में ठहरा हूँ उसे जापानियों ने वनवाया था। जापानियों ने बहुत अत्याचार किये, इसलिए उनकी स्मृति मधुर कैसे हो सकती है ?*

*मेरी काँख में फोड़ा निकल आया था, पेकिंग में चिरवाया। अब अच्छा हो गया है। पर चिरवाते वक्त फोड़े की जड़ नहीं उखड़वाई, इसलिए फिर होने की सम्भावना रहती है। अब शायद एकाध वर्ष बाद देखा जायेगा।... इन्सोलिन लेने की जगह गोलियाँ खाने लगा हूँ। फायदा तो है, पर यहाँ वह नहीं मिलेंगी। फिर इन्सोलिन ही शुरू करनी होगी।*

*तिब्बत जाने के वारे में अभी निश्चय नहीं हो पाया है। 11 जुलाई को पेकिङ् लौटने के बाद मालूम होगा। यदि निश्चय अनुकूल हुआ तो जाऊँगा। फिर भारत लौटने का समय जल्दी नहीं रहेगा।...*

*तुम्हारा अपना,*
*राहुल*

**पुनः पेकिङ् में :** शियान में छः दिन बिताकर वे छाङ्-छुङ् नगर में तीन दिन के लिए गये। क्योंकि पंडितजी को चीन के बौद्ध संघ ने आमंत्रित किया था, अतः परिदर्शन के कार्यक्रम में चीन के प्राचीन बौद्धमंदिरों को देखने का भी आयोजन था। इसलिए उनको इन प्राचीन बौद्ध विहारों को भी देखने का अवसर मिला। 10 जुलाई को पंडितजी पेकिङ् लौटने के मार्ग में थे। अगले दिन 11 जुलाई को सुबह साढ़े 7 बजे पेकिंङ् नगर पहुँच गये और अपने होटल शिन-चाउ के पहलेवाले कमरे में गये। उसी दिन उन्होंने अपनी इस सद्ययात्रा के बारे में मसूरी में परिवार को पत्र लिखा, जो यहाँ उद्धृत है :

*पेचिङ्*
*11-7-58*

*प्यारी,*

*2 जुलाई को पेचिङ् से पूर्वोत्तर यात्रा के लिए निकला था। आज सबेरे साढ़े सात बजे लौटा। मेरे साथ श्री चेङ् अंग्रेजी के दुभाषिया हैं। एक चिट्ठी मैंने वहाँ से भेजी थी। आशा है, वह इस पत्र के हाथ में पहुँचने तक मिल चुकी होगी। अव कल भी यहीं रहना है। परसों दोपहर को जाकर 15 जुलाई की शाम को लौटकर 25 जुलाई तक यहीं रहना है, कई भाषण देने हैं। इसी बीच इसका निश्चय हो जायेगा कि मैं सितम्बर में भारत लौटूँगा या और रहना पड़ेगा। मुझे बार-बार ख्याल आता है कि तुमको और बच्चों को साथ लाना चाहिए था। यहाँ के स्वस्थ-स्वच्छ बच्चों को देखकर बार-बार जया-जेता याद आते हैं। एक यहाँ के बच्चे हैं, जिनको आजकल या आगे की कोई चिन्ता हो ही नहीं सकती, एक हमारे भी बच्चे हैं। आज जिस कमरे में मुझे ठहराया गया,*

*उसमें शायद कोई दम्पती ठहरे थे। दो चारपाइयाँ हैं, एक पर मैं सोऊँगा, एक खाली रहेगी। मेरा लौटने का कितना मन करता है, इसे लिखकर विश्वास दिला नहीं सकता। फिर यह भी ख्याल आता है, ढाई सौ मासिक ही तो खर्च करने पड़ेंगे··· फिर बाद के दिनों का ख्याल आता है।*

*मंचूरिया में 1935 में मैं गया था, इसलिए उसकी आज से तुलना कर सकता हूँ। जमीन-आसमान का अंतर है—और अंतर की गति दिन-दिन बढ़ रही है। कहाँ गाँव के लोगों में बिरला ही कोई भाग्यवान था जो जूता पहिन सकता था, कहाँ आज नंगे पैरवाला बच्चा भी देखने को नहीं मिलता। झोंपड़ियाँ ढह रही हैं, कुछ ही सालों में उनका दर्शन दुर्लभ हो जायेगा। उनकी जगह और अलग भी महल—पंचमंजिले-छहमंजिले उठ रहे हैं। यहाँ के लोग हिम्मत और आशा से भरे हैं।*

*फोड़ा यहाँ चीर दिया गया था और 2 जुलाई तक अच्छा हो गया था। अब कोई कसर नहीं है। वजन बढ़ा है। तौला तो नहीं है और यहाँ की तौल किलोग्राम में होती है। 165 पौंड से कम वजन नहीं होगा। इन्सोलिन की इंजेक्शन की जगह नई निकली गोलियाँ खा रहा हूँ। खाने के बाद दिन में दो बार गोलियाँ खानी चाहिए, पर एक ही समय खाता हूँ, क्योंकि गोलियाँ खत्म हो जायेंगी। खत्म हो जायें, तो फिर इंजेक्शन लगाना ही होगा।*

*तुम्हारा अपना,*
*राहुल*

## घोर निराशा

अब तक राहुलजी को बड़ी आशा और विश्वास था कि उन्हें चीन सरकार से तिब्बत जाने की अनुमति दे दी जायेंगी। परन्तु 12 जुलाई को उन्हें बहुत निराश होना पड़ा। उस दिन उन्हें खबर मिली—"चाउ महाशयनां गतस्य ज्ञापितं—तिब्बते गमनं न भवेत। इतो भारतप्रत्यावर्तनमेव श्रेयः" (12 जुलाई)

यद्यपि मई में चीनी दूतावास, दिल्ली से ही उनको सूचना दे दी गई थी कि तिब्बत जाने की व्यवस्था शायद ही हो सके। फिर भी पंडितजी के मन में दृढ़ विश्वास था। वे चीन में भ्रमणार्थ ही नहीं गये थे। उनकी विशेष इच्छा तो तिब्बत जाने की थी। वहाँ उन्होंने अपने जीवन के कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे। अभी भी वे प्राचीन भारतीय लुप्त हस्तलिखित ग्रंथों का उद्धार कर उन पर विशेष काम करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से वे चीन देश गये थे, क्योंकि तिब्बत अब चीन के अधीन में आ रहा था। इस सम्बन्ध में स्वयं पंडितजी ने अपने उद्गार प्रकट किये हैं :

"मैं केवल चीन देखने नहीं आया था, बल्कि मेरी इच्छा तिब्बत जाने की थी, यद्यपि निमंत्रण पर यह साफ लिखा था कि अभी तिब्बत जाने का प्रबन्ध नहीं हो सकता। 12 जुलाई के दिन उन्होंने बतलाया कि कुछ दिक्कतें हैं जिनके कारण हम आपको वहाँ नहीं भेज सकते। मुझे उन दिक्कतों का पता नहीं था, पर उन्हें था और आज तिब्बत के सामन्तों के खुल-खेलने को देखकर सभी को मालूम हो सकता है कि तिब्बत उस समय शोध करने लायक स्थान नहीं था। फिर भी मैं हाथ-पैर ढीला करके बैठा नहीं रहा··· पर हार्ट अटैक हो जाने पर डाक्टर ने कहा कि आपका इतनी ऊँचाई पर जाना खतरे का काम है। हम आपको वहाँ जाने की इजाजत नहीं दे सकते।" ('चीन में क्या देखा', पृष्ठ 78)

अगले साल मार्च 10 तारीख को ही ल्हासा में बहुत बड़ी क्रान्ति हुई और बहुत से तिब्बती सामन्त एवं धनी लोग श्री दलाईलामाजी के साथ भागकर भारत आये। इतनी बड़ी अशान्ति निकट भविष्य में होनेवाली थी, इसीलिए चीनी सरकार ने राहुलजी को तिब्बत जाने की इजाजत नहीं दी। साथ ही उनके स्वास्थ्य ने भी जवाब दे दिया था। भारत से जाते समय पंडितजी जिद करके ही गये थे कि वे तिब्बत अवश्य जायेंगे। मुझे तो मालूम था कि जो शरीर मसूरी की ऊँचाई को बर्दाश्त नहीं कर पाता, वह तिब्बत की ठंड और ऊँचाई को कैसे बर्दाश्त करेगा। वे पहले से ही 'तिब्बत-तिब्बत' की रट लगा रहे थे, इसीलिए चीन के लिए दो महीने का निमंत्रण मुझ को भी मिला था, पर मैं नहीं गई और बच्चों को लेकर मसूरी में रह गई। मैंने जैसा सोचा था, वही हुआ। तिब्बत न जा पाने का दुख उनके मन को व्यथित करने में सहायक हुआ, जिसके कारण ही

अब चीन में उनका मन नहीं लग रहा था। अपने भावों को उन्होंने निम्नलिखित पत्र में व्यक्त किया है :

*पेकिंग,*
*15-7-58*

*प्यारी,*

*परसों ताथुङ् गया था, आज दोपहर को लौटा। एक घंटा रेल का रास्ता था। वहाँ से कल चिट्ठी लिखने का ख्याल आया था, पर वह तो यहाँ आकर विमान से जाती है। इसलिए यहाँ आकर यह पत्र लिख रहा हूँ। यहाँ आते ही तुम्हारा पत्र मिला लेकिन यह तो 28 जून का है। 30-6 मसूरी की डाक मुहर लगी है, यहाँ भी जान पड़ता है, अधिक दिन पड़ा रहा। तुम्हारा 2 जुलाई का पत्र मुझे मिल चुका था। खैर, डाक की गड़बड़ी का क्या कहना है। मालूम नहीं यह पत्र तुम्हें कब मिलेगा।*

*तिब्बत जाना नहीं हो सकेगा। मेरे 26 अगस्त को बर्मा जाने की बात बहुत हद तक पक्की हो गई है। संदेह 5 प्रतिशत से अधिक नहीं है। बर्मा में शायद दो सप्ताह रहना पड़े। पिछली बार बहुत आग्रह किया था। यदि ऐसा हुआ तो सितम्बर के दूसरे सप्ताह में कलकत्ता पहुँचूँगा। रास्ते में कहीं ठहरने या उतरने का विचार नहीं है। सीधे देहरा स्टेशन से मसूरी आ जाऊँगा। मन बहुत जोर करता है, जल्दी तुम्हारे पास आ जाऊँ। बच्चे बराबर मानस-नेत्रों के सामने आकर खड़े हो जाते हैं। यहाँ छोटे-छोटे हँसते-खेलते बराबर देखने में आते हैं, उस समय जया-जेता को उठाकर चूमने का मन करता है।...*

*मैं परसों ताथुङ् नगर में पहुँचा था। कल वहाँ से 15-16 किलोमीटर दूर अवस्थित युन-काङ् की गुहाएँ देखने गया, दूसरी अजन्ता समझो। यह चौथी सदी के उत्तरार्द्ध में बनी थी। 1 किलोमीटर लम्बाई तक चली गई है। बर्फ और कड़ी सर्दी को पत्थर बर्दाश्त नहीं कर सके, नहीं तो इनकी संख्या सैकड़ों थी। जो बचे हैं वह बहुमूल्य हैं। ताथुङ् नगर में भी 11वीं-12वीं सदी के तीन सुन्दर विशाल विहार हैं। देखने-जानने में बहुत समय लग गया। परसों भी समय निकालकर वहीं से पत्र लिखता पर देर के डर से यहाँ आकर लिख रहा हूँ।...*

*... अभी वार्तालाप से जानकारी प्राप्त कर रहा हूँ, कल से रोज भाषण देना है। रहना 25 जुलाई तक पेकिंग में ही है, पर व्याख्यान छः देने हैं। बीच के समय में देखने-सुनने की बहुत-सी बातें हैं। तू नहीं है, पर पंखे के बिना तबीयत परेशान हो जाती है। बरसात का मौसम है। 600 कमरोंवाले इस विशाल शिन-चाउ होटल की चहल-पहल से मुझे कोई मतलब नहीं। यही सोचता हूँ कि कब दिन पूरे हों और दर्शनीय स्थानों को देखकर मैं भारत लौट आऊँ।...*

*तुम्हारा ही,*
*राहुल*

16 जुलाई को राहुलजी पेकिंग में थे। आज उनकी तबीयत कुछ सुस्त थी। फिर भी उन्होंने बौद्ध संस्थान में जाकर भाषण दिया। पंडितजी अपना भाषण अंग्रेजी में देते थे, और दुभाषिया उसका चीनी में अनुवाद कर देते थे। उन्हें चीन की अजन्ता तुङ्-हाङ् देखने जाना था, जो भारत लौटने के बाद देखना नहीं हो सकता था। उस समय चीन की विशाल नदी 'ह्वाङ् हो' में बाढ़ आई हुई थी, अतः यह यात्रा उनको हवाई जहाज से करनी थी। वे लिखते हैं—"हवाई जहाज से जाने के लिए डाक्टरी परीक्षा की गई। हमारा रक्तदाब 200 था। ऐसे हृदय के साथ हवाई यात्रा नहीं की जा सकती थी। मैं पछताने लगा कि क्यों परीक्षा करवाना स्वीकार किया। लेकिन अब तो परीक्षा हो चुकी थी। मुझे कोई बेचैनी नहीं थी। पर इसका परिणाम यह हुआ कि डाक्टरों के आदेश के अनुसार मुझे चारपाई पर पड़ा रहना पड़ा। आज मुझे भाषण देना था, उसे भी स्थगित कर दिया गया। उतने ही से छुट्टी नहीं मिली, बल्कि 18 को पेकिङ् के बड़े अस्पताल में जाना पड़ा। वहाँ भी 200 दाब निकला।" ('चीन में क्या देखा', पृष्ठ–85)

बीमारी से पंडितजी उतने परेशान नहीं थे, पर बैठे रहना उन्हें पसन्द नहीं था। वे लिखते हैं—"19 को मेरे जोर देने पर भारत में 'बौद्ध निकाय' विषय पर मेरा व्याख्यान हुआ। लौटकर भोजन के बाद अस्पताल गये। डाक्टर ने कहा, रक्तदाब अब भी मौजूद है।" (वही, पृष्ठ 85)

पंडितजी अपनी बीमारी के बारे में विशेष कुछ नहीं लिख रहे थे। इसको केवल उच्च रक्तचाप कहकर मन को समझा रहे थे। पर उनके हृदय के भीतर तिब्बत न जा सकने का अफसोस बना हुआ था। इसलिए उन्होंने 17 जुलाई को रात को ही पत्र लिखकर मसूरी भेजा था। उस पत्र का मजमून इस प्रकार है :

पेचिङ्
*17-7-58*

*प्यारी,*

*आठ जुलाई का लिखा तुम्हारा पत्र आज मिला। यह पढ़कर बड़ी निराशा हुई कि मेरे पत्र तुम्हें नहीं मिले। इसके पहिले दो दिन हुए, तुम्हारा 29 जूनवाला पत्र मिला था। डाक की अव्यवस्था और सेन्सर की बेपर्वाही आफत है। मैं झुँझलाकर भी क्या कर सकता हूँ। मैंने दो-तीन दिन पहिले पत्र में लिखा था कि 26 अगस्त या एक सितम्बर को यहाँ से बर्मा को चलूँगा। अब मेरा मन बिल्कुल नहीं लग रहा है। बार-बार बच्चों का और तुम्हारा ख्याल आता है। लौटते ही एक काम सबसे जरूरी यह है कि तुम्हारी थीसिस पूरी हो जाये। समय बहुत कम निकाल सकोगी। पर घंटा-दो घंटा निकालकर थीसिस सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़ा करो, उन पर निशान तथा विषय का नाम लिख दिया करो। डाक्टर हो जाओ तो दार्जिलिंग में कोशिश करेंगे। वहीं अनुकूल रहेगा। मैं साथ रहूँगा।*

*आज जुकाम रहा, इसलिए व्याख्यान लोगों ने बन्द कर दिया। कल एक व्याख्यान दिया था। अच्छा रहा। अंग्रेजी से चीनी अनुवाद करनेवाले योग्य थे। पाँच व्याख्यान और देने हैं। आज बहुत जोर लगाया, पर कल भी व्याख्यान बंद करके विश्राम करने के लिए मजबूर किया गया। वैसे 26 जुलाई को दो सप्ताह की यात्रा पर निकलने वाला था। अब शायद दो दिन देर हो। यहाँ आज तो एक-दो परिचित मिलने आये थे। नहीं तो कमरे में पड़ा रहा। पढ़ने के लिए भी कोई पुस्तक नहीं थी। बाहर जाने पर तो देखने के लिए बहुत-सी चीजें थीं। यहाँ भी दो-तीन घंटे घूमने के लिए मिल जाते थे। पर अभी कल भी कोठरी में बंद रहना पड़ेगा।*

*यदि यह चिट्ठी मिल जाये, तो रानी, समझ लेना कि मैं भी बच्चों में लौटने के लिए उतावला हूँ। यहाँ आने का उद्देश्य तो तिब्बत का काम था, जिसके बारे में जब निराशाजनक उत्तर मिला, तभी से मेरा मन नहीं लग रहा है। लौटने का मन हो रहा है। खैर, इतने दिनों अलग रहने से हम लोगों को एक दूसरे का मूल्य मालूम हुआ। तुम्हारे बुखार की बात सुनकर बड़ा खेद हुआ। उस वक्त बच्चे कैसे रहे होंगे ? अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना, बच्चों का भी।*

*चीन से मैंने आठ से कम पत्र नहीं भेजे हैं। हफ्ते में दो-दो पत्र तो अवश्य गये। आज पत्र लिखने ही वाला था कि मेरे दुभाषिया मि. चेङ् ने तुम्हारा यह पत्र दिया और रात के साढ़े नौ बजे यह पत्र लिख रहा हूँ। इन्सोलिन की जगह आज गोलियाँ ले रहा हूँ। शायद यह एक महीना और नहीं चलेंगी। फिर इन्सोलिन लेने लगूँगा। सभी मित्रों को नमस्ते कहना और यह भी कि सितम्बर में मैं मसूरी पहुँच जाऊँगा। खाने-पीने में बहुत ध्यान रखता हूँ। इन्सोलिन इसलिए भी छोड़नी पड़ी, क्योंकि अपने इंजेक्शन लेने से खून निकल आया। अपनी रानी को बार-बार चुम्बन करते,*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

20 जुलाई को उनका रक्तदाब 190 पर उतर आया। डाक्टर ने उन्हें दवा दी। आज उनको भूख भी नहीं थी, पेट खाली रखा, रेचन औषधि का सेवन किया था। सोच रहे थे कि वे यहाँ से लौटते समय अन्यत्र कहीं नहीं जायेंगे, सीधे मसूरी चले जायेंगे। अकेले कमरे में बैठकर वे घर की याद कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने 20 जुलाई को फिर पत्र लिखा, जिसमें अपने मन की बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। पत्र इस प्रकार है :

पेचिङ्
20-7-58

*प्यारी प्राणसमे,*

*मेरे मित्र टामस के हाथों पत्र भेज रहा हूँ। वह उसी विमान से चीन आये थे, जिससे मैं। वह एक मास बाद लौट रहे हैं।*

*मेरी तबीयत दो-तीन दिन से अच्छी नहीं रही। जुकाम था, एक दिन हल्का बुखार भी। कमजोरी है। मन यही चाहता है कि भारत लौट चलूँ। ऐसी ही हालत रही तो क्या जाने 15-20 अगस्त को लौट पड़ें। नहीं तो सितम्बर के पहिले सप्ताह में तो जरूर ही। बस, मन में यही आता है, आकर सबसे पहले तुम्हारा पी-एच. डी. का काम खतम हो जाये, कोशिश करें तो हो सकता है दार्जिलिंग कालेज में जगह मिल जाये। मैं भी वहीं रह जाऊँगा। जाड़ों में छुट्टी तो होगी ही। एक-दो मास घूम आयेंगे। खैर, यह तो मेरे आने पर करना है। इसकी ओर ध्यान दर्जनों बार जाता है।*

*यहाँ से गई चिट्ठियाँ वहाँ पहुँचती रही हैं, इसमें सन्देह नहीं। अनिश्चित समय पर तो अवश्य पहुँचती हैं। जया-जेता मेरे प्राणों से प्यारे बच्चे क्या कर रहे होंगे, पापा के बारे में क्या सोचते होंगे। कहना—पापा जल्दी आ रहे हैं, पापा जया-जेता को बार-बार याद करते रहते हैं।*

*यहाँ दो-तीन दिन से वर्षा नहीं हुई, जिससे गर्मी बहुत बढ़ गई। बिजली का पंखा आधार है।*

*अमेरिका, इंग्लैंड, लेबनान और जोर्दन ने नृशंसता का जो नंगा नाटक छेड़ा है, उससे यहाँ का जनगण क्षुब्ध हो गया है। चार दिन से प्रदर्शन निकलता रहा है। चार-चार, पाँच-पाँच लाख लोग सड़कों पर नारा लगाते घूमते हैं। मैं तो चारपाई पर लेटा रहा। डाक्टर की यही सलाह है। लोग बहुत भले हैं। हर तरह से मेरी सहायता करने के लिए तैयार हैं। चाहते हैं मैं अपना प्रोग्राम पूरा कर लूँ। उन्हें अफसोस है कि मैं तिब्बत नहीं जा सकूँगा। मुझे उसका अफसोस नहीं है। क्या जरूरी है कि मैं ही सभी कामों को करूँ।*

*रानी, अपने स्वास्थ्य का खूब ख्याल रखना। जनवरी-फरवरी तक तुम्हें थीसिस सबमिट करनी है। जया को मत मारना। जया के शरीर पर छोड़ा तुम्हारा हाथ मेरे शरीर पर पड़ता है, यह ख्याल रक्खो। बच्चे फूल हैं, मारने की चीज नहीं हैं। गलतियाँ तो करते ही हैं।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

## पेकिङ् के यूनियन अस्पताल में

बीमारी की अवस्था में भी पंडितजी को चारपाई पर लेटे रहने का मन नहीं करता था। दिमाग तो उनका चलता ही रहता था। मेरे और बच्चों के भविष्य के बारे में सोचते ही रहते थे। 21 जुलाई को भी उन्होंने पत्र में लिखा—"... अब यही संकल्प है, पहिले वहाँ आकर तुम्हारी थीसिस समाप्त करवा दूँ। जनवरी तक उसे अवश्य टाइप कराके युनिवर्सिटी में दाखिल करा देना है। जाड़े में ही वाइवा हो जाये। फिर ऐसा स्थान ढूँढ़ना, जहाँ तुम्हारे लिए पढ़ाने का काम हो। दार्जिलिंग में मिले तो ज्यादा अनुकूल होगा। नहीं तो दूसरी ही जगह।... यदि दार्जिलिंग में काम न मिला तो गन्तोक में। नहीं तो उत्तरप्रदेश में कहीं तो मिल ही जायेगा। मई में छुट्टियाँ मिल ही जाती हैं, गर्मियाँ पहाड़ पर बिता लेंगे। कभी विदेश घूमने चले चलेंगे। रानी, समय निकाल सको तो थीसिस सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़ने, उन पर निशान तथा थीसिस के अध्याय आदि के नोट लगा डालो। इससे काम जल्दी बनेगा। मैं लौटकर कोई दूसरा काम नहीं करूँगा। माचवेजी को लिख रहा हूँ कि लौट रहा हूँ, तिब्बती-संस्कृत-कोश का काम सँभाल सकता हूँ।"

22 जुलाई को उन्होंने फिर बौद्ध संस्थान में जाकर 'बौद्ध धर्म' पर एक व्याख्यान दिया।

ज्ञात हुआ कि पंडितजी के उच्च रक्तदाब से चिंतित होकर उनके मेजबानों ने उन्हें चिकित्सालय में रहने का प्रबन्ध कर दिया। उनके लिए तुङ्-हाङ् की यात्रा कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई। 24 जुलाई

को पंडितजी पेकिङ् के सबसे बड़े अस्पताल–यूनियन अस्पताल–के एक कक्ष में रहने चले गये। अपनी बीमारी के सम्बन्ध में वे लिखते हैं :

"25 जुलाई को कार्डियोग्राम से हृदय की परीक्षा हुई। मालूम हुआ एक जगह क्षत है। फिर डाक्टर और हमारे मेजबान क्यों न चिंतित होते ? मुझे कोई तकलीफ नहीं हो रही थी। तकलीफ हो तो भी मैं जीवन के बारे में पूरा दार्शनिक हूँ। अगले दिन एक्स-रे से कई फोटो लिये गये, जिससे मालूम हुआ कि फेफड़े में कोई दोष नहीं है।" (वही, पृ. 85) 24 जुलाई से 15 अगस्त तक पूरे 22 दिन मुझे इस अस्पताल में रहना पड़ा। (वही, पृ. 85)

वहाँ पेकिङ् में वे इस तरह बीमार पड़े थे, पर हम लोगों को लिख रहे थे कि बीमारी कोई खास नहीं, ऐसे ही परीक्षण हो रहे हैं। वास्तव में वे जानते थे कि असली बीमारी की बात यदि हम लोग सुनेंगे तो घबड़ा जायेंगे। पेकिङ् अस्पताल से उन्होंने मुझे पत्र में इस प्रकार लिखा :

*पेकिङ्*
*25-7-58*

*प्यारी प्राणवल्लभे,*

*...26 जुलाई से 15 दिन की यात्रा पर जाना था, पर एक दिन रक्तचाप बढ़ गया था। इधर वर्षा के कारण ह्वाङ्-हो में बाढ़ आ गई। रेल की जगह विमान से जाने का इन्तिजाम हुआ, जिससे रक्तचाप को दिखलाना जरूरी हो गया। बदकिस्मती से परसों वह 200 निकला। फिर प्रस्ताव आया कि अस्पताल में रहकर पूरी जाँच कर ली जाये। कल पेकिङ् के सबसे वड़े अस्पताल में दाखिल हुआ। कल से ही जाँच शुरू हो गई। रक्तचाप, कार्डियोग्राम, रक्त-मूत्र-परीक्षण आदि सभी हो रहे हैं। एक जगह इतने बड़े-बड़े विशेषज्ञ नहीं मिलते। अच्छा ही हुआ। मालूम नहीं एक सप्ताह, दो सप्ताह यहाँ रहना पड़े। पूरी रिपोर्ट डाक्टर देंगे और आगे के लिए संयम और चिकित्सा की विधि भी। इसके कारण शायद लौटने में एक सप्ताह की देरी हो।..."*

*अगले पत्र में उन्होंने लिखा :*

*पेचिङ् अस्पताल*
*30-7-58*

*प्यारी,*

*... मैंने पिछली चिट्ठी में अस्पताल–'पेचिङ्-यूनियन अस्पताल'–में आने की बात लिखी थी। कार्डियोग्राम ने साफ बतलाया है, वैसे कोई दर्द नहीं है। वजन तो 160 पौंड से अधिक 74.3 किलोग्राम है। चेहरा भरा मालूम होता है, लेकिन कमजोरी जरूर है। अब तक हृदय का परीक्षण होता रहा। कल से डायबेटिस का परीक्षण नियंत्रण शुरू हो रहा है। डाक्टर बड़े ही सहृदय पुरुष हैं।... पिछली चिट्ठी लिखने के बाद से मैं अस्पताल के वाहर नहीं गया, अपने तिमंजिले से भी नीचे आज ही हाथगाड़ी से उतरा। डाक्टर पूर्ण विश्राम लेने के लिए कहते हैं। यहाँ दंत, नेत्र, कंठ, नासिका और कर्ण चिकित्सक भी देख रहे हैं। चश्मा बदलवाना पड़ेगा। शायद दाँत भी दो मरम्मत करने पड़ें। 4 अगस्त को अस्पताल से वाहर जाना है। दो-तीन दिन बाहर रहकर यात्रा पर जाना है। घबड़ाना नहीं, रानी, मैं डाक्टर की एक-एक बात मानूँगा। अभी हफ्ता-भर से बिना नमक का भोजन कर रहा हूँ। कोई असुविधा नहीं।..."*

इस प्रकार पंडितजी अपनी बीमारी को गम्भीर रूप से नहीं ले रहे थे या अपने परिवार को अपनी असली स्थिति बतलाना नहीं चाहते होंगे। चीन से एक पत्र को आने के लिए एक से दो सप्ताह लग जाते थे।

परन्तु पंडितजी के पत्र बीमारी के सम्बन्ध में मिलने से पहले ही मुझे दिल्ली स्थित चीनी दूतावास से सूचना मिली जो दूसरे ही दिन याने 27 जुलाई को ही मसूरी पहुँच गई थी। पत्र चीनी अक्षर और भाषा में लिखा हुआ था और अंग्रेजी अनुवाद भी संलग्न था। पत्र इस प्रकार था :

*(Translation)* *26th July 1958*

*Dear Mrs. Rahula,*

*After his arrival in Peking on 22nd June, 1958, Dr. Rahula visited Peking and North-East China in good health. Recently it has been found that he is suffering from high blood pressure of arteriosclerosis. He remained under treatment in the Union Hospital, one of the best hospitals in Peking since 24th July. Now he is in fairly good health and takes meals normally. We hope he will soon recover from his illness and you should not worry about it.*

*With kindest regards,*

*Director of the General Office*
*of the Buddhist Association*
*of China Wang Shao-yu.*

चीनी दूतावास से दूसरी चिट्ठी आई, जो इस प्रकार थी :

*EMBASSY OF THE PEOPLE'S REPUBLIC OF CHINA IN INDIA*

*New Delhi*
*August 4, 1958*

*Mrs. Rahula Sankrityayana,*
*Happy Valley,*
*Mussoorie, U.P.*

*Dear Mrs. Rahula,*

*We are sorry to inform that Dr. Rahula is not feeling well in Peking. A telegram from the Buddhist Association of China is enclosed herewith. We hope he will soon recover from his illness.*

*With best wishes,*

*Yours sincerely,*
*Sd/-*
*(Chen Lu-chih)*
*Second Secretary.*

फिर चीनी दूतावास से तीसरी चिट्ठी मुझे मिली, जो इस प्रकार लिखी गई थी :

*Embassy of the People's*
*Republic of China in India*
*New Delhi*
*11th August , 1958*

*Dear Mrs. Rahula,*

*I am enclosing herewith a copy of information on "Indian Buddhist Scholar in Hospital" which we received today.*

*With Kindest regards,*

*Yours sincerely,*
*Sd/- Chen Lu-chih*
*Second Secretary*

*Mrs. Rahula Sankrityayana*
*Happy Valley,*
*Mussoorie, U.P.*

सूचनार्थ भेजी गयी चीन के दैनिक पत्र 'शिनहुआ' में छपी खबर का अंग्रेजी भाषान्तर इस प्रकार था :

*INDIAN BUDDHIST SCHOLAR IN HOSPITAL*

*Peking, August 6 : The Indian Buddhist scholar Sankrityayana Rahula, now in Peking as guest of the Chinese Buddhist Association, has been hospitalised. The diagnosis at the Chinese Union Medical College Hospital states that he is suffering from a hypertensive arteriosclerotic heart disease with chronic coronary insufficiency and diabetes mallitus.*

*Ho Cheng Hsiang, Director of the Bureau of Religious Affairs of the State Council, and Chao Pu Chu, Vice-Chairman of the Chinese Buddhist Association have paid several visits to the Indian scholar since his admittance to the Chines Union Medical College Hospital on July 24.*

*Rahula arrived in Peking in late June of this year to visit and give lectures in Peking, North-East and East China. (Hsinhua)*

चीनी दूतावास से इतने विस्तार से उनकी बीमारी की सूचनाएँ मुझे मिलीं, यह शायद पेकिंग में पंडितजी को पता नहीं लगा। सूचना पाते ही मैं बहुत चिंतित और उद्विग्न हो गई। वे उस समय ऐसी जगह में थे जहाँ कि हम स्वप्न में भी नहीं पहुँच सकते थे। घबड़ाकर मैंने चीनी दूतावास, नई दिल्ली में तार भेजकर पंडितजी की बीमारी की आगे की खबर माँगी। चीनी दूतावास ने 7 अगस्त को मेरे पास मूसरी में तार भेजा, जो मुझे 8 अगस्त को मिल गया। तार में लिखा गया था :

*Mrs. Rahula Sankrityayana*
*Happy Valley, Mussorie*

*Please contact Buddhist Association China Peking directly for latest news about Rahula's health.*

बहुत उद्विग्न होकर मैंने बुद्धिस्ट एसोसिएसन के महामंत्री को पंडितजी की बीमारी के बारे में ताजा समाचार जानने के लिए एक तार भेजा। पेकिंग में यह समाचार पंडितजी को दिया गया था, तभी तो उन्होंने उस दिन की अपनी डायरी में लिखा–(9 अगस्त 1958) "कमला उद्विग्नमना तडित्सूचना मत्स्वास्थ्यविषये प्रेषितवती। इहत्येने चिकित्सकाश्चि परीक्षा परिणामः पत्रेरूपेण लिखितः।"

वे कुछ दिन हमारे लिए अत्यन्त चिन्ता के दिन थे, न खाना, न सोना, चिन्ता और चिन्ता। चीन से पत्र मिलने में कई दिन लग जाते थे। उधर पंडितजी भारत लौटने के लिए व्यग्र थे। यह बात रोज वे अपनी डायरी में लिखते और मेरे नाम भेजे गये पत्र में भी लिखते थे। मेरा चीनी दूतावास, नई दिल्ली से बराबर सम्पर्क रहा। शायद मेरी अत्यन्त चिन्तित मनःस्थिति को देखकर चीनी राजदूत ने मुझे और बच्चों को चीन भेजने के लिए प्रबन्ध कर दिया और पेकिंग में भी इसकी सूचना दे दी।

पंडितजी को अबकी बीमारी ने सोचने के लिए बाध्य कर दिया। वे अस्पताल में चिकित्साधीन थे और रात-दिन भारत में अपने परिवार के बारे में सोचा करते थे। वे लिखते हैं–"हृदय की बीमारी ऐसी है कि चेहरे पर उसका प्रभाव महाप्रयाण के अंतिम चार-पाँच क्षणों में ही दिखाई पड़ता है।" (पृ. 93)

20 अगस्त को राहुलजी ने निश्चय कर लिया कि वे 24 अगस्त को बर्मा के लिए प्रस्थान करेंगे और वहाँ एक-दो सप्ताह रहकर भारत लौट आयेंगे। यह बात उन्होंने चीनी बौद्ध संघ के उपाध्यक्ष श्री चाउ-फू-चू को बतला दी थी। किन्तु अचानक ही मानों चित्रपट-परिवर्तन हो गया। इस सम्बन्ध में पंडितजी के ही शब्दों में सुनें–

"20 अगस्त हमारे लिए विशेष महत्त्व का दिन था। सबेरे श्री चाउ-फू-चू आये तो मैंने उनसे कहा–मैं जल्दी ही भारत लौटना चाहता हूँ। यदि प्रबन्ध हो सके तो तुङ्ह्वान देख लेना चाहता हूँ। वह मन से नहीं चाहते थे कि मैं इतनी जल्दी जाऊँ, स्वास्थ्य का भी ख्याल कर रहे थे। पर मैंने बहुत आग्रहपूर्वक 24 अगस्त को यहाँ से प्रस्थान करने के बारे में कहा तो उन्होंने स्वीकार कर लिया। बीमारी शरीर को निर्बल करती है

और निर्बल शरीर मन को। इसका प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा था। इसलिए मैंने बहुत जोर देकर श्री चाउ के सामने अपनी बात रखी तो उनके चेहरे पर उसका जरा भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ा। वह उसी तरह मुस्कुराते बातें करते रहे··· वहाँ से वह अपने कार्यालय में गये और टेलीफोन द्वारा सियान के लिए हवाई जहाज में सीट रिजर्व करा ली और सियान वालों को तुङ्ह्वान दिखलाने की हिदायत दी।

"जब जाने का निश्चय देख लिया तो श्री चाउ मेरे लिए आवश्यक पुस्तकें खरीद लाये। मैंने अपनी पत्नी को भी आने की सूचना दे दी। पुस्तक की दुकान से आये आधा घंटा ही बीता होगा कि चाउ फिर मेरे पास पहुँचे। अबकी वह बहुत हँस रहे थे। उन्होंने बतलाया–दिल्ली से हमारे दूतावास ने हमारे पास तार भेजा है कि आपकी पत्नी यहाँ आने के लिए तैयार हैं। हमारा संघ भी उन्हें निमंत्रित करना चाहता है। अब आपकी क्या राय है ? मुझे क्या राय देनी थी। सभी बदलना पड़ा। कमला, जया-जेता नवीन चीन देख लेंगे, जेता के हाथ की चिकित्सा भी हो सकेगी। उसी समय श्री चाउ ने देहली तार भेजा, मुझे भी कहा और मैंने अपनी पत्नी को मसूरी तार दिया।

"एक और दिक्कत थी। हमारा पासपोर्ट सम्मिलित था जो मेरे पास था। मैं उसी दिन भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव श्री शंकर से मिला। शंकरजी गोरखुपर के थे, वह हर तरह की सहायता के लिए तैयार थे। उन्होंने कहा कि पासपोर्ट यहाँ से भेजा नहीं जा सकता, लेकिन हम विदेश विभाग को जल्दी ही पासपोर्ट दिलवाने के लिए लिख रहे हैं। मैंने एक पत्र राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद को लिखा···"

पंडितजी के पत्र का बहुत असर हुआ। उन्होंने जो पत्र राष्ट्रपतिजी को हमारे पासपोर्ट के बारे में लिखा था, उसी के आधार पर विदेश विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी का पत्र इस सम्बन्ध में मेरे पास आया। तुरन्त कार्यवाही कराने के लिए उन्होंने बड़े विस्तार के साथ पासपोर्ट प्राप्त करने सम्बन्धी निर्देश दिये थे। पत्र की नकल इस प्रकार है :

*No. F. 12 (98) PV. 1/58*
*MINISTRY OF EXTERNAL AFFAIRS,*
*NEW DELHI*
*Dated : 10th Sept, 1958*

*Dear Shrimati Kamala Sankrityayana,*

*The Rashtrapati has received a letter for your husband from Peking indicating his desire that you should travel immediately to Peking to join him. Your difficulties in obtaining a passport have been described and your attempt to contact the Chinese Ambassador in India has been mentioned.*

*2. I am sending a copy of this letter immediately to the Regional Passport Officer, Lucknow, with instructions that he should send to you by registered post immediately, at 2, Hari Sadan, Mussoorie, the necessary passport application forms which you may kindly return to him, soon after completing them, also by registered post and having attached three passport-size photographs of yourself. You should also kindly send to him Rs. 10/- by money order which is the cost of a new passport to a citizen who applies for one. The Regional Passport Officer will issue to you a passport in your own name valid for three months and endorsed for China and countries which you will actually traverse on your journey to and from that country. These should be indicated by you when completing your passport application form.*

*3. Your husband, you and your children have a joint passport now in the possession of Shri Sankrityayana at Peking. When you reach Peking you should decide whether to surrender the new passport and travel again with your husband on the joint passport or whether all of you, making*

*your application to our Embassy at Peking, would prefer to obtain separate passport.*

*4. I would be grateful for an acknowledgement of this letter.*

*yours sincerely,*
*Sd/-*
*(Ranbir Singh)*
*Deputy Secretary*

*Smt. Kamla Sankrityayana,*
*2. Hari Sadan, Mussoorie.*
*ps: The address of the Regional Passort Officer is : "Captial Building, Vidhan Sabha Marg. Lucknow (U.P.)*

पेकिंग, दिल्ली, लखनऊ, तथा मसूरी—इन चार जगहों से भुगतना था। यदि ऊपर का प्रभाव नहीं पड़ता तो पासपोर्ट मिलने में डेढ़ महीने से भी अधिक समय लगता।

सचमुच ही इतनी कोशिश के बावजूद जब पारपत्र मिलने में देरी हो रही थी, तो हमारा चीन जाना असम्भव दिखाई देने लगा। और मैंने पंडितजी को आने में असमर्थता बतलाते हुए पत्र लिखा, तब उन्होंने पहली बार अपने स्वास्थ्य की वास्तविक स्थिति के बारे में मुझे लिखा, जो उन्हीं के शब्दों में—

*बेइज़िङ्*
*10-9-58*

*प्यारी,...*

*मैं यहाँ रहने का ख्याल छोड़ चुका हूँ। रहना चाहता था स्वास्थ्य के ख्याल से। आज प्राय: तीन मास हो रहे हैं हार्ट अटैक के, अभी भी भीतर से कमजोर हूँ। दो मिनट भी पैरों पर खड़े रहने पर डर लगता है, गिर जाऊँगा। कल डाक्टर ने यहाँ (अस्पताल में) बुला लिया कि चीनी में नियंत्रण की कोई विधि निकाले। मुझे जीने में स्वार्थ केवल तुम्हारा और बच्चों के लिए कुछ और करना है। जानता हूँ, मसूरी या दार्जिलिंग दोनों में हार्ट स्पेशलिस्ट नहीं हैं। कलकत्ता, बम्बई हम रह नहीं सकते। तो भी यह तो बड़े सन्तोष की बात होगी यदि तुमने पी-एच. डी. करके काम सँभाल लिया। मुझे आशा है, दार्जिलिंग में जगह मिल जायेगी।...*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

पासपोर्ट मिलने में पूरे डेढ़ महीने का समय लगा। इस बीच पंडितजी के कई पत्र आये। सब में वे मुझे बच्चों सहित तुरन्त आने के लिए लिख रहे थे। मेरा स्वास्थ्य भी उन दिनों ठीक नहीं था। पंडितजी की बीमारी की खबर; मसूरी में बेसरोसामानी, बच्चों की बीमारी आदि अनेक चिन्ताओं को मैं झेल नहीं सकी, जिसके कारण मेरे शरीर का वजन भी तेजी से गिरने लगा था। फिर भी जाना तो था ही। पासपोर्ट 26 सितम्बर को लखनऊ से आ गया। इसके बाद की कई औपचारिकताएँ निभानी थीं। पासपोर्ट मिलते ही मैंने दिल्ली में चीनी दूतावास में पत्र भेज दिया और आगे की सुविधाओं के लिए प्रार्थना की। उस समय मैं कितनी चिन्तित थी, इसके लिए राजदूत महोदय ने हमारी पूरी मदद करने का आश्वासन दिया था, इसलिए मैंने मसूरी छोड़ने से पहले राजदूत महोदय को एक विनतीपत्र लिखा, जो इस प्रकार था :

*From*
*Kamala Sankrityayana*
*Hari Sadan, Mussoorie*

*Dated, 27-9-58*

*To,*

*The Excellency.*
*The Chinese Ambassador in India*
*Embassy of the People's Republic of China, in India*
*New Delhi.*

*Your Excellency,*

*Kindly permit me to convey my grateful thanks for your Embassy's letters Nos. G/322/58 and G/333/58 dated 4-8-58 and 11-8-58 respectively wherein your Second Secretary has kindly informed me about the illness of my husband, Dr. Rahula Sanskrityayana who is in Peking these days as the guest of the Chinese Buddhist Association. I have also received a few personal letters from my husband asking me to reach Peking at the earliest possible opportunity. I have decided that I should join him without any undue delay.*

*2. The Union Government of India have been good enough to have issued me the Passport No. A61921 for self and my two children for going to China.*

*3. I am reaching Delhi on Monday next (29-9-58) after completing all the necessary formalities including inoculations etc. and hope to contact you at Embassy the same day.*

*4. In the meantime may I request your Excellency to make necessary arrangements for my travel by air from Rangoon to Peking on behalf of the aforesaid Association.*

*5. As I am very much upset about the illness of my husband I shall simply feel much obliged if you kindly move the things personally and make necessary arrangements as requested above.*

*6. I fervently hope that with your full cooperation and assistance in the matter, I shall be able to join my ailing husband without any undue delay.*

*Once more thanking you for all this botheration,*

*I remain,*
*Yours faithfully,*
*Sd/-*
*Kamala Sankrityayana*
*(Mrs. Kamala Sankrityayana)*

28 सितम्बर को हम लोग मसूरी से रवाना हुए। 29 को दिल्ली पहुँचकर चीनी दूतावास से वीसा ले आये। दिल्ली में हमें रुकना नहीं था, उसी दिन कलकत्ता के लिए चल दिए और अगले दिन कलकत्ता पहुँचकर दो दिन रुकना था। सुदूर पेकिंग में रहकर भी पंडितजी ने परिवार को रास्ते में कोई कष्ट न हो, इसकी चिन्ता करते हुए अपने मित्रों को पत्र लिख दिये थे। कलकत्ता से डाबर कम्पनी के मालिक तथा रंगून में श्री सत्यनारायण गोयनका जी को उन्होंने हमारे ठहरने तथा आगे की यात्रा में मदद कर देने के बारे में पहले ही लिख दिया था :

"कमलाजी के आने की खबर मिली तो मुझे इसकी फिक्र पड़ी कि तीन और पाँच बरस के दो बच्चों को लेकर वह अकेली भारत से आने में दिक्कत अनुभव करेंगी। मैंने डाबर कम्पनी के श्री अशोक वर्मन को लिख दिया कि कलकत्ता से आप आगे की सुविधा कर देंगे। रंगून में गोयनकाजी को लिख दिया था। आज ही श्री अशोकजी का तार आया। मैंने कमलाजी को लिख दिया है, वह सिर्फ कलकत्ता-भर आ जायें, बाकी सब काम हो जायेगा। बाहर न गये पुरुष को भी ऐसी यात्रा में हिचकिचाहट होती है। कमलाजी को तो दो बच्चों के साथ दूर पेकिंग आना था। भारत में उन्हें दिक्कतें उठानी पड़ीं। पासपोर्ट देर से ही सही, मिल तो

गया। फिर इन्कमटैक्स अदा करने का सर्टिफिकेट भी लेना था और कई बीमारियों के टीके के प्रमाणपत्र की भी जरूरत थी। अब विदेश यात्रा पहिले की तरह आसान नहीं है।"

इधर मेरे बच्चों के साथ चीन जाने की तैयारी हो रही थी, उधर पंडितजी हमारी प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठा से कर रहे थे। जब उनका रक्तचाप थोड़ा कम हुआ तो 22 दिन अस्पताल में रहकर वे अपने होटल के कमरे में आ गये। जब थोड़े ठीक हुए तो उन्हें पेकिंग के भीतर दर्शनीय स्थानों को देखने जाने की इजाजत मिली, किन्तु उनका शरीर पूरी तरह रोगमुक्त नहीं हुआ था। 9 सितम्बर को फिर उन्हें शरीर की जाँच के लिए अस्पताल जाना पड़ा और इस बार भी उन्हें कुछ दिनों तक अस्पताल में रहना पड़ा। उन दिनों वे कोरिया, मंचूरिया और तुङ्-ह्वान जाने के बारे में भी सोच रहे थे। पिछली बार जब वे अस्पताल में थे, तब उन्हें पढ़ने के लिए बहुत-सी किताबें मिली थीं, किन्तु इस बार तो वह भी अवलम्ब नहीं रहा। इसलिए उन्हें अपने विचारों में ही डूबना पड़ता था। उन्हें बीमारी में सोचने के लिए और उत्तेजना मिली थी। उन्हीं के शब्दों में–"66 वर्ष की आयु में हृदय की बीमारी साधारण बात नहीं होती। मैं अपने मित्र महमूद जफर को देख चुका था। अंतिम आयु में संतान का ख्याल मन में बार-बार आता था, उसी के लिए कमला को पढ़ाया था। वह साहित्यरत्न और एम. ए. हो चुकी थी। अगले ही साल पी-एच. डी. कराने का निश्चय था। मैं यहाँ चला आया। सोचता था भारत लौटकर पहिला काम कमलाजी का निबन्ध तैयार करवाकर युनिवर्सिटी में भिजवा देना है। यदि उन्हें पढ़ाने की कोई अनुकूल नौकरी मिल गई तो चिन्ता का एक बड़ा भार उतर जायेगा। नौकरी में एक यह भी दिक्कत थी कि बच्चे और कमला स्वयं सर्द पहाड़ी स्थान में पैदा हुए थे और गरम स्थान में दिन नहीं बिता सकते थे। मैदान में यदि कोई अनुकूल स्थान था तो देहरादून, जहाँ अपेक्षाकृत कम गरमी पड़ती है और जरूरत पड़ने पर मसूरी नजदीक है। सबसे अनुकूल स्थान उनके लिए दार्जिलिंग है। यही सब बातें दिमाग में आ रही थीं…" (वही, पृ. 141)

13 सितम्बर को पंडितजी पेकिंग यूनियन अस्पताल में ही थे। उसी दिन उन्हें मेरा तार मिल गया जिसमें लिखा था–पासपोर्ट मिलने के बाद तुरंत आऊँगी। तार पाकर उनको बड़ा संतोष हुआ–कमला और बच्चों को भी चीन देखने को मिलेगा। अब वह अपने परिवार के आने का एक-एक दिन गिन रहे थे। पर अभी भी कई दिक्कतों को पार करना था उनके परिवार को, इसलिए पंडितजी जब कुछ चलने लायक हुए तो पेकिंग से बाहर कुछ समय बिताने का कार्यक्रम बनाया।

**तुङ्-ह्वान् (चीन की अजन्ता) का भ्रमण :** 14 सितम्बर को राहुलजी को अस्पताल से छुट्टी मिली। अब उन्हें तुङ्-ह्वान् की यात्रा पर जाना था। 16 सितम्बर को वे ट्रेन से प्रस्थान कर सके और 17 सितम्बर को वे सियान (सैयाँ) पहुँचे। उस दिन वे अपने दुभाषिये श्री चेङ् के साथ सियान शहर का परिदर्शन करते रहे। सियान कोई मामूली शहर नहीं था। पहले याङ् के वैभवशाली राजवंश की यह राजधानी रहा था। शायद 7वीं-8वीं सदी में दुनिया में इतना बड़ा शहर कोई नहीं रहा होगा। उस समय इसका मुकाबला यदि कोई कर सकता था तो भारतवर्ष का कन्नौज ही था।

**छाङ्अन स्वेनचाङ् की भूमि में :** 18 सितम्बर को पंडितजी छाङ्अन् नगर पहुँचे। सम्राट हर्षवर्धन के समय का यह 20 लाख आबादीवाला शहर बीच के समय में एकदम वीरान होकर अब फिर 13 लाख आबादीवाला नगर बन गया था। यहाँ पंडितजी तथा श्री चाउ रेनमिनतास्स होटल में ठहरे। खाली समय उन्होंने शहर की परिक्रमा करने में लगाया। यहाँ का शिनकाउअस्स विहार शहर से 20 किलोमीटर दूर था। इसी विहार में कितने ही समय तक चीनी यात्री स्वेनचाङ् (हुएनसाङ्) रहे थे। पंडितजी के शब्दों में, "स्वेनचाङ् ने भारत का कितना उपकार किया है। उनकी यात्रा-पुस्तक में सातवीं सदी के हमारे भूगोल-इतिहास पर बड़ा प्रकाश पड़ता है, नालन्दा में रहकर उन्होंने पढ़ा ही नहीं था बल्कि उससे प्रेम करना सीखा था।" अतः स्वेनचाङ् से सम्बन्ध रखनेवाले विहार को देखना इतिहास-प्रेमी राहुलजी को देखना आवश्यक था। वे आगे कहते हैं–"एक बार थाङ् वंश के राजा के प्रकोप में स्वेनचाङ् को भागकर भारत की यात्रा करनी पड़ी। लेकिन जब लौटकर आये, थाङ्राजा ने उन्हें सिर-आँखों पर रखा। पहिले वह नगर थाङ्आन् के पास नबन्धा (नालन्दा) में रहे। नालन्दा उनको इतना

प्रिय था कि छाङ्आन् में भी उन्होंने अपने विहार को यही नाम दिया। पर स्वेनचाङ् को सैकड़ों भारतीय ग्रंथों का अनुवाद करना था, छात्रों को पढ़ाना भी था। इन कामों के लिए जनाकीर्ण स्थान उपयुक्त नहीं था। इसलिए उन्होंने 20 किलोमीटर दूर इस स्थान पर वास किया।··· बीस किलोमीटर दूर भाग आने पर भी फिर वही भीड़ स्वेनचाङ् ने यहाँ देखी। इस पर वहाँ से 150 किलोमीटर दूर 'नीच्वेन' चले गये। वहीं उनका देहान्त हुआ। उनकी भस्म को नालन्दा, शिनकाउ और नीच्वेन तीन स्थानों पर रखकर उन पर स्तूप बनाये गये।" ('चीन में क्या देखा' पृ. 149)

**नरेन्द्रयश** : पंडितजी ने 1956 में 'विस्मृत यात्री' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा था, जिसका नायक नरेन्द्रयश है। नरेन्द्रयश ने अपना अंतिम जीवन छाङ्आन् में बिताया था। इसलिए उनके बारे में जानने की पंडितजी की इच्छा हुई। वे एक और पुराना विहार ता-शिन्-शान को देखने गये। वहाँ के भिक्षुओं ने उन सब भारतीय भिक्षुओं के नाम पट्टिका पर लिखे थे, जो इस विहार में रहे थे। उनमें ना-ले-थी-ली य-श और च्वें-ना-वे-तो (जीनगुप्त) दोनों समसामयिक भिक्षुओं का नाम मौजूद था।

**इचिंग और फाहियान** : प्रसिद्ध यात्री इचिंग भी यहीं के थे। उनका विहार यहीं था। इसका नाम स्याउएन था। पंडितजी लिखते हैं–"यहीं इस महान यात्री ने अनेक ग्रंथों का अनुवाद किया। फा-शी (फाहियान), स्वेन चाङ (हुएनशांग), ईचिंग (इत्सिन) तीनों महान यात्री थे, जिनके यात्रा विवरण भारत के लिए अनमोल निधि हैं।

**लनचाउ** : 19 सितम्बर को पंडितजी अपने साथी श्री चाउ के साथ लनचाउ (लेनूटौ) गये। इस नगर में 15 विहार थे, जिनमें 5 भिक्षुणी विहार थे। जिस प्रकार हरद्वार में निकट ही भागीरथी नदी बहती है, उसी प्रकार लेनटौ के निकट से पीतनदी बहती है जिसका दृश्य उनको बहुत प्रिय लगा। लनचाउ के अनेक बौद्ध मन्दिरों को पंडितजी ने देखा। एक बौद्धविहार के मिनदाङ् भिक्षु नायक थे। दूसरे भिक्षु भी वहाँ रहते थे। उन लोगों ने पंडितजी का स्वागत-सत्कार किया और फल तथा चाय-पान हुआ। पंडितजी को शीतल जल पीने की इच्छा थी, पर चीन में ठंडा जल प्रायः नहीं पीते।

**तुङ्-ह्वान** : 20 सितम्बर के प्रातः सात बजे ही पंडितजी अपने साथी के साथ विमानस्थल पर गये। 7.15 में विमान उड़ा। सड़क से तुङ्-ह्वान 404 किलोमीटर दूर था। अनेक पर्वत-श्रेणियों को पार करते हरियाली से ढँकी भूमि के ऊपर से उड़ते हुए चीन की पीतगंगा नदी के आसपास के मनोरम दृश्यों का आनन्द लेते हुए पंडितजी का विमान 9.40 पर अर्थात् ढाई घंटे बाद च्युछाङ् हवाई अड्डे पर उतरा। यहाँ का दृश्य पंडितजी को "बिल्कुल ईरान का जैसा लगा। उसी तरह के तृणहीन छोटे-छोटे पहाड़ दूर दिगन्त में दिखाई पड़ते थे। उसी तरह जलहीन नदियों की चौड़ी धाराएँ थीं। उसी तरह मिट्टी के दीवार और छतवाले घर गाँव में दिखाई पड़ते थे।" उसी दिन भोजन के बाद फिर तुङ्-ह्वान के लिए पंडितजी अपने साथी सहित प्रस्थान करते हैं। हवाई अड्डा छोड़ने के आध घंटे बाद उनकी जीप चीनी महा दीवार के पास पहुँची। 15-16 सौ मील लम्बी दीवार का छोर यहीं पर था। वहाँ पर भी 8-10 गज चौड़ी दीवार खड़ी थी। 283 किलोमीटर पार करने के बाद उन्हें अंशी नामक कस्बा मिला। कुछ देर अंशी कम्यून को देखकर विश्राम लेने के बाद वे लोग 4 बजे शाम को यहाँ से रवाना हुए और शाम को 6 बजे तुङ्-ह्वान क्षेत्र में दाखिल हुए। गुहा के संचालक म-शांङ् महोदय ने बतलाया कि यहाँ पर कभी कोई गाँव नहीं बसा, क्योंकि यहाँ सदैव जल का अभाव रहा। केवल भिक्षु लोग ही यहाँ रहते आये हैं। अतिथि गृह में उनको एक अच्छा कमरा दिया गया था। आज की लम्बी यात्रा जीप से करने के कारण वे धूलि-धूसरित हो गये थे, अतः स्नान की आवश्यकता थी। पर जल की कमी थी। पंडितजी तुङ्ह्वान गुहा की भूमि में 20 से 22 सितम्बर तक रहे और गुहा तथा वहाँ के परिसर को घूम-घूमकर देखा, जिसका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक 'चीन में क्या देखा' के पृष्ठ 159-167 में किया है। संक्षिप्त विवरण उनके ही शब्दों में यहाँ प्रस्तुत है–"तुङ्-ह्वान चीन की अजन्ता है। भारतीय संस्कृति और कला का विद्यार्थी अजन्ता देखे बिना भारत से लौट जाये तो उसकी यात्रा बिल्कुल अपूर्ण समझी जायेगी। वही बात चीन की संस्कृति और कला के विद्यार्थी के लिए होगी, यदि तुङ्ह्वान गये बिना यहाँ से लौट जाये।··· तुङ्ह्वान

पेकिंग से हजार मील (1400 मील) दूर है। वह हमारे दार्जिलिंग से सीधे उत्तर शायद इतनी ही दूर पर पड़ेगा। हृदय रोग के कारण डाक्टर मुझे इस यात्रा के लिए आज्ञा देने में शायद हिचकिचा रहे थे। पर मेरा आग्रह भी जबर्दस्त था। अन्त में उन्होंने स्वीकृति दे दी और हम 15 सितम्बर को रेल से सियान के लिए चल पड़े। दुभाषिया साथी चाउ (श्री चाउ-फू-चू) जैसे कलाविद् और संस्कृति-साहित्य प्रेमी मिले।"

**तुङ्ह्वान से प्रत्यावर्तन :** पंडितजी तथा श्री चाउ ने तुङ्ह्वान गुहाएँ तीन दिन तक घूम-घूमकर देखीं। गुहा के पास तुङ्ह्वान नगर का परिदर्शन किया। 23 सितम्बर को वे लोग सुबह आठ बजे जीप से रवाना हुए और 60 किलोमीटर प्रतिघंटा के हिसाब से चलकर 12.30 बजे नोमन महाग्राम में पहुँचकर भोजन किया और कुछ देर वहीं विश्राम करके फिर 2 बजे वहाँ से चले। आज च्युछङ् हवाई अड्डे के पास अतिथिशाला में विश्राम किया। पंडितजी ने समय निकालकर यहाँ के एक कम्यून का परिदर्शन किया। 24 सितम्बर को वे लेनटौ (लनूचाउ) आये और 25 को दोनों साथी सियान के मार्ग पर थे। 26 सितम्बर को पंडितजी सियान पहुँच गये। आज दोनों साथी यहाँ विश्राम करनेवाले थे। ये सारे स्थान जहाँ अभी पंडितजी अपने साथी के साथ भ्रमण कर आये, चीन के पश्चिमोत्तर भाग में स्थित हैं।

**लोयाङ् (श्वेताश्व विहार)-पेगास्स :** 27 सितम्बर को सबेरे 6.40 पर रेल की यात्रा शुरू हुई और शाम के चार बजे दोनों साथी लोयाङ् नगर में पहुँचे। इस स्थान के बारे में राहुलजी लिखते हैं–"लोयाङ् चीन की सबसे पुरानी राजधानी है।··· चीनी जाति सभ्यता के क्षेत्र में यहीं अवतीर्ण हुई थी।··· चीनी साहित्य कला, साहित्य की दृढ़ नींव लोयाङ् में ही रखी गयी थी। लोयाङ् ने ही सबसे पहले भारत के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किया। पूर्वी हाम सम्राट मिङ् (57-75 ई.) ने स्वप्न में एक सुवर्णमय पुरुष को देखा। उसके एक दरबारी ने बतलाया कि यह पश्चिम के ऋषि फो या फोता (बुद्ध) का रूप है। सम्राट ने तुरन्त बौद्ध भिक्षुओं तथा बौद्ध पुस्तकों को लाने के लिए तीन दूत भारत को भेजे। उस समय संस्कृति, धर्म तथा कितनी ही हद तक भाषा में भी काश्गर का प्रदेश भारत का ही अंग था। सम्भवतः उसी रास्ते दूतमंडल भेजा गया। वह अपने साथ दो भिक्षुओं–काश्यप मातंग और धर्मरत्न–को लेकर बहुत-सी धर्मपुस्तकें सफेद घोड़े पर लादे 62 ईसवी के आसपास लोयाङ् पहुँचे। काश्यप मातंग मध्यमण्डल (उत्तर बिहार) के रहनेवाले हीनयान साहित्य के पारंगत विद्वान थे। वह दक्षिण भारत में भी धर्मप्रचार कर चुके थे। उनके साथी धर्मरत्न भी मध्यमण्डल के ही निवासी थे। दोनों भिक्षुओं ने चार ग्रंथों का अनुवाद कर वहाँ बौद्ध धर्म की नींव रखी। वे श्वेत घोड़े पर धर्मग्रंथ लाये थे। इसलिए सम्राट मिङ् ने उनके लिए जो विहार बनवाया, उसका नाम श्वेताश्व विहार पड़ा। (पृ. 123)

**लोङ्मेन् की गुहाएँ :** 28 सितम्बर को भी पंडितजी लोयाङ् में ही रहे। वे जिस होटल में थे, वह एक हजार कमरोंवाला होटल था, जिसके 205 नम्बरवाले कमरे में वे ठहरे थे। उसी दिन वे अपने साथी श्री चाउ के साथ लोङ्मेन् की गुहाएँ भी देखने गये। यहाँ कुल मिलाकर 2102 गुहाएँ थीं, जो लो नदी के दोनों तट तक फैली हुई थीं। ये गुहाएँ विभिन्न कालों में बनी थीं। उदाहरणतः उत्तरी वेई (386-534 ई.), उत्तरी छी (550-577 ई.), पश्चिमी वेई (535-557 ई.), सुई (581-618) और थाङ् (618-960 ई.) वंशों के समय में ये गुहाएँ बनी थीं। इसमें धर्मचक्र-प्रवर्तन की मुद्रावाले बुद्ध की मूर्ति थी। इसी तरह एक अन्य गुहा में भगवान बुद्ध की प्रतिमा के दोनों ओर सारिपुत्र और मौदगल्यायन की प्रतिमाएँ बनी हुई थीं।

कल उनको बेइज़िंग (पेकिंग) के लिए वापसी यात्रा करनी थी।

29 सितम्बर को दिन शुभ्र था। पंडितजी पेकिंग जाने से पहले यहाँ के एक कम्यून को देखना चाहते थे। अतः सुबह सवा 8 बजे लोनान (लोयाङ् के दक्षिण में स्थित) कम्यून को देखने गये। इसका संचालक 28 वर्षीय सातवीं कक्षा तक पढ़ा हुआ एक युवक था। इस कम्यून की स्थापना 18 अगस्त 1958 को ही हुई थी। कम्यून की प्रगति, उत्पादन की वस्तुओं तथा खाद्य स्थिति के बारे में पंडितजी ने बहुत सारी जानकारी प्राप्त की। लोयाङ् और लोङ्मेन् जैसे बौद्ध गुहाओं से भरे हुए चीन के इस महान स्थान में हमारे पंडितजी कुछ दिन और रहना चाहते थे। किन्तु उनको यथासम्भव 30 सितम्बर तक पेकिंग लौट आना था। इसलिए 29 सितम्बर को कम्यून को देखकर कुछ विश्राम के बाद भोजन किया और ट्रेन से पेकिंग के लिए चल पड़े।

स्टेशन से उन्हें श्वेताश्व विहार दिखाई पड़ा।

30 सितम्बर को पूर्वाह्न 11 बजे वे लोग पेकिंग पहुँच गये। पंडितजी का स्वागत करने के लिए उनके दुभाषिये चेङ् महाशय स्टेशन पर उपस्थित थे। इस बार उनको शिन्-चाउ होटल में जगह नहीं मिली, क्योंकि चीन के अक्तूबर-महोत्सव को देखने के लिए बाहर से बहुत-से अतिथि आकर इसी होटल में ठहरे थे। अतः दूसरे इससे भी बड़े होटल में छिङ्अन में उनको दो कमरोंवाला 305 नम्बरवाला कोष्टक मिल गया था। परिवार के आने की बात थी, इसीलिए उनको यह कमरा दिया गया था। पेकिंग के होटल में विश्राम करते रहे। उनके नाम की बहुत-सी चिट्ठियाँ आई हुई थीं, उनके उत्तर लिखें। 23 को भेजा हुआ मेरा तार भी यहाँ आया हुआ था, जिससे मालूम हुआ कि मुझे पासपोर्ट मिल गया है। अब वे दिल्ली चीनी दूतावास की ओर से परिवार के आने की सूचना की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हीं चिट्ठियों में एक चिट्ठी लंका से आई थी। विद्यालंकार परिवेश के केलानिया से भिक्षु प्रज्ञाकीर्ति स्थविर ने पंडितजी को विद्यालंकार, जो अब शीघ्र ही विश्वविद्यालय बनने जा रहा था, उसमें काम करने के लिए आमंत्रित करते हुए पत्र लिखा था। किंतु पंडितजी ने उस दिन लिखा, "तु न गंतु शक्यते।" (30 सितम्बर, 1958)

## चीन की राजधानी में राष्ट्रीय महोत्सव

पंडितजी 30 सितम्बर को ही पेकिंग इसलिए लौट आये थे कि उनको भी अतिथि के रूप में चीन के 1 अक्तूबर के महान राष्ट्रीय महोत्सव में आमंत्रित किया गया था। 30 सितम्बर की शाम को महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रधानमंत्री का भोज पेकिंग होटल में था। पंडितजी भी निमंत्रित थे। अपने दुभाषिया श्री ली के साथ वे वहाँ गये। प्रधानमंत्री श्री चाउ-एन-लाई अतिथियों के स्वागत के लिए द्वार के पास खड़े थे। सबसे हाथ मिला कर 'कैसे हैं' (नी हाउ) कहना—यही शिष्टाचार था। हजार अतिथि थे। विशाल हॉल में मेहमानों के बैठने के लिए मेजें सजी हुई थीं।··· भोज से पंडितजी को नगर के अलंकार ने ज्यादा आकृष्ट किया। होटल भी अलंकृत था और यह महाशाला तो और भी। भोज के बाद भाषण हुए। साढ़े 8 बजे वे अपने होटल लौट आये।

1 अक्तूबर को महोत्सव का दिन। थ्यान-आन-मिन मिङ् प्रासाद के मुख्य द्वार को कहते हैं। यहाँ संसार-भर के अतिथि अपने-अपने देश का प्रतिनिधित्व करते हुए आमंत्रित थे। भारतीय बौद्धों की ओर से हमारे पंडितजी भी आमंत्रित थे। इन अतिथियों के लिए मंच पर स्थान निश्चित था। महोत्सव पूर्वाह्न आठ बजे से दो बजे तक छः घंटा चला। राहुलजी ने स्वास्थ्य खराब होने के बावजूद भी 5 घंटे तक खड़े रहकर उत्साह के साथ इस महोत्सव को देखा। 9 बजे अध्यक्ष माओ-त्से-तुंग प्रधान द्वार के अपने निश्चित स्थान पर आकर खड़े हो गये। (पंडितजी ने 1956 में ही माओ पर एक बड़ा ग्रंथ लिखा था) कार्यवाही ठीक समय पर शुरू हुई। इससे पहले मास्को के लाल मैदान में उन्होंने मई दिवस और अक्तूबर क्रान्ति दिवस महोत्सवों को देखा था। यहाँ भी उनको रूस की तरह जीवित अवस्था में ही व्यक्ति की चित्र-पूजा दिखाई दी थी। उस दिन सायं 8 बजे वहाँ से चलने के लिए मुक्त हुए। उनके साथ आज ली महाशय अपनी पत्नी और पुत्री को लेकर गये थे। होटल पहुँचते रात के 10 बज गये थे। आज उनको कमला की बहुत याद आ रही थी। तभी उन्होंने लिखा—"कमला वंचिताऽनेन लोक विस्मयकरेण महोत्सवेत।" (1 अक्तूबर, 1958)

## परिवार की यात्रा

इधर भारत में हम यात्रा की तैयारी कर रहे थे। 22 सितम्बर को हमें पासपोर्ट मिल गया। फिर आयकर-अधिकारी से आयकर चुकाने का प्रमाणपत्र लिया। इसके बाद चेचक तथा टाइफाइड आदि के इंजेक्शन लेकर प्रमाणपत्र लिया। उसके बाद 29 तारीख को दिल्ली के लिए हम लोग—भाई मंगलजी, जया-जेता और मैं—रवाना हुए और वहाँ चीनी दूतावास से चीनी वीसा ले लिया। उसी दिन हम लोग जनता एक्सप्रेस से शाम को कलकत्ता के लिए चल पड़े। अगले दिन हम लोग कलकत्ता पहुँच गये। वहाँ हमको दो-तीन दिन रुकना था। डाबर हाउस के मालिक श्री अशोक वर्मनजी ने हमारे लिए बर्मा वाणिज्य दूतावास से बर्मा के लिए ट्रांसिट वीसा ले दिया

और रंगून जाने के लिए हवाई जहान का टिकट आदि ले दिया। उन्होंने ही जया-जेता और मुझको रंगून ले जानेवाले बर्मी विमान पर चढ़ा दिया। मंगलजी को नेपाल जाना था, इसलिए वे कलकत्ता में ही रह गये। 4 अक्तूबर को हम लोग पाँच घंटे की उड़ान के बाद अपराह्न में रंगून पहुँच गये। वहाँ विमान स्थल पर पंडितजी के परम मित्र श्री सत्यनारायण गोयनकाजी हमें लेने पहुँच गये थे। वे रंगून स्थित अपने घर में हमें ले गये और पिछली बार जिस कमरे में पंडितजी ठहरे थे, उसी कमरे में हमें ठहराया। जया-जेता और मैं रंगून की गर्मी से बहुत परेशान थे, पर चीनी हवाई जहाज बर्मा से रोज नहीं उड़ता था। रंगून से हमारे चीन जाने की सारी व्यवस्था श्री गोयनकाजी ने कर दी। 8 अक्तूबर को हमें रंगून से कुनमिङ् की उड़ान करनी थी। एक-एक दिन मुश्किल से बीत रहा था। हमें भी पंडितजी से मिलने की उत्कंठा थी और उन्हें भी हमें देखने की।

6 अक्तूबर को ताशकन्द में हो रहे एशिया-अफ्रीका लेखक-सम्मेलन में जाने का निमंत्रण पंडितजी को मिला था। अन्य समय होता और स्वास्थ्य ठीक रहता तो वे चले भी गये होते, पर वे अस्वस्थ ही चल रहे थे, साथ ही परिवार के आने की प्रतीक्षा भी कर रहे थे, अतः उन्होंने जाने से इन्कार कर दिया–हमारे पहुँचने की ठीक तिथि उनको मालूम नहीं थी। ऐसी ही अनिश्चित स्थिति में 7 अक्तूबर को रात्रि के साढ़े 8 बजे उनके दुभाषिये श्री चेङ् ने टेलीफोन से उन्हें सूचना दी–"9 दिनांके राहुलपत्नी समायाति पेचिंङ् नगरे। हर्षातिरेक्स्य किंकथनीयम्।" याने परसों राहुल-पत्नी पेकिंग नगर पहुँच रही हैं। वे कितने प्रसन्न हुए होंगे खबर सुनकर। इतने दिनों की प्रतीक्षा के बाद अब परिवार से मिलना हो रहा था।

इस बीच पंडितजी कोरिया भी जाना चाहते थे और 90 प्रतिशत उन्हें आशा भी थी कि कोरिया जाने की अनुमति कोरिया दूतावास से मिल जायेगी। वे वहाँ अब सपरिवार जाना चाहते थे। पर जब 8 अक्तूबर को उन्हें कोरियायी दूतावास से अनुमति न दिये जाने की सूचना मिली तो उनको बड़ी निराशा और दुःख हुआ। उस दिन उन्होंने लिखा–"कोरिया दूतावासतो ध्वनितं–इदानीं कोरियागमनव्यवस्था न भवितुर्महतीति। किमर्थं ते मयि श्रद्धानाः स्युः नाहं राजपुरुषः, न च वहिरतीवख्यातः।" (8 अक्तूबर)

चाउ महाशय भी उनके लिए कोरिया जाने का प्रबन्ध करने में असमर्थ रहे।

भारत लौटने से पहले पंडितजी चिकित्सा के लिए मास्को भी जाना चाहते थे। इस सम्बन्ध में वे शायद साथी पी. सी. जोशी को लिख चुके थे। जोशीजी ने मास्को में सब प्रबन्ध हो जाने का आश्वासन देते हुए 27 सितम्बर को जो पत्र लिखा था, वह उनको 3 अक्तूबर को मिला था। अब पंडितजी का मन दोलायमान था–भारत लौटें कि मास्को जायें। अन्त में उन्होंने सोचा–"मास्को गमनम् परित्यक्त प्रायम्।" इस प्रकार उन्होंने भारत लौटने का ही निश्चय किया।

इधर हम लोग रंगून से 8 अक्तूबर को ही चीन के प्रथम नगर कुनमिङ् में आ गये थे। रात-भर वहीं होटल में रहे, देखभाल करने के लिए चीनी बौद्ध संघ के प्रतिनिधि विमानस्थल पर ही मौजूद थे। खाली समय में हमारे बौद्ध प्रतिनिधि मेजबान हमें शहर घुमाने ले गये। वह बहुत कम अंग्रेजी जानते थे, उसी से काम चला लिया। दूसरे दिन 9 अक्तूबर को हमें सियान होते पेकिंग तक की उड़ान करनी थी। पर मौसम खराब होने के कारण हमारा विमान सियान से आगे नहीं जा सका। अतः उस रात सियान के एक विशाल होटल में हमें ठहराया गया। हम लोग कहीं भी घूम नहीं पाये, क्योंकि वहाँ मौसम खराब होने से बहुत सर्दी थी। सियान में एक बौद्ध प्रतिनिधि महिला ने हमारी देखभाल की। आज स्वामी से मिलने की कितनी उत्सुकता मेरे मन में थी, पर पूरी न हो सकी। उधर पंडितजी का भी यही हाल था। वे लिखते हैं–

"9 अक्तूबर को प्रतीक्षा कर रहा था। सूचना मिली कि कुनमिङ् से चलकर वह (श्रीमती सांकृत्यायन) सियान पहुँच गई हैं। पर आज मौसम ठीक नहीं है, वह कल आयेंगी। मित्रों ने बहुत कोशिश की कि सियान से टेलीफोन से सम्बन्ध स्थापित करके मैं बात कर लूँ। पर उसमें सफलता नहीं मिली। मुझे यह चिन्ता थी कि पहिले-पहिल वह विदेश में आयी हैं, तजुर्बा नहीं है। भाषा की भी दिक्कत होगी, जरूर कष्ट होता होगा।…

आखिर 10 अक्तूबर का सबेरा हुआ। सियान से ताइवान में ठहरते हुए विमान पेकिंग आनेवाला था।

कहीं मौसम खराब हुआ तो फिर यात्रा स्थगित हो सकती थी। मन में यही शंका उठ रही थी।

साढ़े 12 बजे हम हवाई अड्डे पर पहुँचे। श्री चेङ् और श्री चाउ साथ थे। थोड़ी देर में विशाल विमान भूमि पर उतरा। हमारे यहाँ की तरह यहाँ विमान-स्थल के पास जाने में कोई दिक्कत नहीं थी। पर अभी चलने-फिरने में संयम रखने की हिदायत थी। इसलिए मुसाफिरखाने में ऊपरी कमरे से नीचे ही मैं उतर आया। विमान की खिड़की से ही शायद जया-जेता ने पिता को देख लिया था। जेता ने आकर पाँव छुए।··· वहाँ से हम होटल के अपने कमरे में आये। उस दिन लिखा–सुखेनागता प्रिया वत्स्याभ्याम्।"

इस प्रकार पंडितजी 128 दिन के बिछोह के बाद अपने परिवार से मिल सके।

## सहयात्रा के कार्यक्रम

**चीन से प्रत्यावर्तन :** परिवार को अपने साथ पाकर पंडितजी प्रसन्न थे, किन्तु उनका शरीर रोग के कारण दुर्बल था। ज्यादा चलना-फिरना उनके लिए वर्जित था। फिर भी परिवार के साथ कुछ घूमना वे चाहते थे। उनकी इस शारीरिक अवस्था को देखकर मुझे बहुत चिन्ता हुई। चाहे कितनी ही बढ़िया चिकित्सा क्यों न उपलब्ध हो, किन्तु विदेश तो विदेश ही है। पंडितजी को देखा, चेहरा भरा हुआ है, उजाला भी है, शरीर भी देखने में भरा-भरा ही है, पर वे पाँव से देर तक खड़े नहीं हो सकते थे। अतः मैं तो यही सोचने लगी कि जितनी जल्दी हो सके, उनको स्वदेश लौटाना ही अच्छा होगा। अभी भी उनकी चिकित्सा चल रही थी। डाक्टर उनकी मूत्र-परीक्षा तथा कार्डियोग्राम ले ही रहे थे। स्वास्थ्य इतना गिर गया था उनका, पर मुझे वे पत्र में लिखते थे कि मैं ठीक हो गया हूँ।

11 अक्तूबर के दिन से ही हमारे लिए पेकिंग के दर्शनीय स्थानों में जाने का कार्यक्रम बना। उनमें से कई स्थानों को तो पंडितजी पहले ही देख चुके थे। 11 को हम लोग शिशु चिकित्सालय गये। जेता के बायीं बाँह में कुछ कमजोरी थी, इसलिए चिकित्सक के पास दिखाने के लिए गये थे। डाक्टर ने ओक्यूपंक्चर पद्धति से सुई चुभाकर जेता की बाँह को देखा और किस तरह कहाँ-कहाँ सुई चुभानी चाहिए, इसके बारे में भी हमें बताया। श्री चाउ फ्-चू महाशय मध्याह्न में आये। साथ ही भोजन किया। वे ही हम लोगों का निश्चित कार्यक्रम बनानेवाले थे। अगले महीने के प्रथम सप्ताह तक हमें यहाँ से जाना है, यह उन्होंने बतलाया। आज ही पंडितजी हम लोगों को मिङ् प्रासाद दिखाने ले गये। अभी वे बहुत अधिक घूमना-फिरना नहीं कर सकते थे, क्योंकि बीमारी के बाद पश्चिमोत्तर चीन का परिभ्रमण करके लौटे थे। रात को कहीं भी नहीं गये।

12 अक्तूबर को हम लोगों को लेकर पंडितजी पेहाई झील देखने गये। सायंकाल देवपूजा उद्यान को देख आये। पंडितजी हम लोगों के साथ इन स्थलों को देख रहे थे। चीन का मौसम हमलोगों के लिए इस समय उतना अनुकूल नहीं था, मैं और बच्चे एक-एक कर बीमार पड़ रहे थे। आज भी रात के भोजन के समय मैं हृदयगति तेज होने के कारण कुछ क्षण अचेत हो गई। रात-भर शिरोवेदना से भी पीड़ित रही। शीत के कारण ही ऐसा हुआ। वह अपने साथ उष्ण वस्त्र भी नहीं लायी थी। पंडितजी को चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

13 अक्तूबर को पंडितजी मुझे डाक्टरी परीक्षण के लिए ले गये। डाक्टर ने सर्दी के कारण ही शिरोवेदना और पल्पिटेशन होना बतलाया। औषधि दी। मेजबान श्री चाउ मेरे और बच्चों के लिए गरम कपड़े ले आये। आज ग्रीष्मप्रासाद देखने का कार्यक्रम था, पर परिवार की अस्वस्थता के कारण स्थगित करना पड़ा। सायंकाल पेकिंग विश्वविद्यालय गये। वहाँ अनेक भारतीय लोग मिले। उत्तर बंगाल विश्वविद्यालय के वर्तमान उपकुलपति डाक्टर कृष्णनाथ चटर्जी उस समय पेकिंग विश्वविद्यालय में बौद्ध दर्शन तथा चीनी भाषा का अध्ययन कर रहे थे। श्री चटर्जी से पंडिजी की भेंट विश्वभारती, शांतिनिकेतन में हुई थी। जब पंडितजी हृदयरोग से पीड़ित होकर अस्पताल में थे, तब ये ही भारतीय मित्रगण उनको देखने आया करते थे। पेकिंग के छिन्मेन होटल में हर तरह का आराम था। कहीं घूमने जाना हो तो सुबह ही कार आ जाती थी। 14 अक्तूबर को शीत बहुत बढ़ गई थी, तेज हवा चल रही थी। प्रातः जया को ज्वर हो गया था, उल्टी हो गयी उसे। पंडितजी को बड़ी

चिन्ता हुई। इसलिए सुबह कहीं नहीं गये। बाद में तुङ्स्स विभाग में लुङ् चाउ भिक्षुणी विहार देखने सबको ले गये। यह विहार मिंङ् शासन काल में निर्मित हुआ था। इस समय वहाँ 86 भिक्षुणियाँ थीं, जिनकी आयु 22-40 तक की थी। वहाँ की नायिका एक 61 वर्षीया भिक्षुणी थी।

जया आज दिन-भर ज्वराक्रान्त रही। पेट में भी बहुत दर्द हो रहा था, इसलिए उसे पेनिसिलिन का इंजेक्शन दिया गया। जया के पास जेता और मुझको रखकर पंडितजी चीन लोक कला साहित्य-अनुसंधान समिति की सभा में गये। यह संस्था 1950 में स्थापित हुई थी। यहाँ पर उन्होंने विभिन्न प्रदेशों की कला की वस्तुओं को असम्बद्ध अवस्था में देखा। इसीलिए उनको व्यवस्थित रखने के सम्बन्ध में आज की यह विचार-सम्मिलनी हुई थी। इस संस्था के लिए करणीय अनेक कार्य थे, जिनका विवरण पंडितजी ने अपनी पुस्तक में दिया है। वहाँ से वे सायंकाल अपने होटल में लौट आये। लौटकर भी देखा–जया अभी तक ज्वर से पीड़ित थी। इसलिए पिता उसके पास रहे और जेता और मुझको दुभाषिये मि. ली के साथ चीनी ऑपेरा देखने भेज दिया। मि. ली ने ऑपेरा की कथा को संक्षेप में हमें समझा दिया।

15 अक्तूबर को जया बेटी का ज्वर थोड़ा कम हुआ था। इसलिए आज चीन का महाप्राकार Great wall of China, मिङ् समाधि देखने का कार्यक्रम बना। श्री चाउ महाशय पंडितजी के सहयात्री थे। अतः बच्चों को भी साथ लेकर पेकिंग से प्रायः 60 मील दूर चीन की महा दीवार देखने गये। पंडितजी चढ़ाई चढ़ नहीं सकते थे और जया बेटी का ज्वर अभी पूरी तरह से उतरा नहीं था। फिर चीनी दीवार के क्षेत्र में एकदम हाड़ कँपा देनेवाली बर्फीली हवा तेज गति से बह रही थी। अतः पिता-पुत्री दीवार की सीढ़ी के पास ही रुक गये, जेता और मैं ही कुछ दूर तक दीवार को देखने गये और जल्दी ही लौट भी आये। लौटकर भोजन मिङ् समाधि के पास रेस्तराँ में किया। वहाँ से भारतीय दूतावास गये। वहाँ हमारे पासपोर्ट को लौटाना है या अपने पास रखना है, यह जब पूछा गया तो मैंने अपना पासपोर्ट अलग ही रखने को कहा। ऐसा करने से सम्मिलित पासपोर्ट को बार-बार मँगाना नहीं पड़ा। रात को हम चारों जने फिर पेकिंग ऑपेरा देखने गये। उनकी उस परम्परागत कला को देखकर हम सब चकित रह गये।

**पाउदिन :** 16 अक्तूबर को दिन शुभ्र नहीं था। सुबह चाय-पान के बाद पंडिजी चीन स्थित बर्मी दूतावास गये और हम चारों के लिए बर्मी ट्रांजिट वीसा ले आये। आज पेकिंग से दूर 'पाउदिन' नामक नगर जाना था, जहाँ पंडितजी को कम्यून भी देखना था। पाउदिन में दो दिन रहने का प्रोग्राम था। पूर्वाह्न 10.45 बजे बच्चों के साथ चीन की रेल-यात्रा शुरू हुई। जया-जेता के लिए रेल-यात्रा कौतूहल की चीज थी। 2.5 बजे पाउदिन पहुँच गये। वहाँ हम सबको बहुत सुन्दर और स्वच्छ अतिथिशाला में ठहराया। हमारे साथ श्री चेङ् भी आये थे। पंडितजी ने कमरे में कुछ देर विश्राम करने के बाद उस नगर की विशेषता की पूछताछ शुरू कर दी। वहाँ की शिक्षा-व्यवस्था, खाद्यस्थिति, नगर की आबादी, पशुपालन, कर्मशाला, गृह-निर्माण में मग्न छात्रों के बारे में बहुत-सी सूचनाएँ लीं। यह नगर पेकिंग के विशाल नगर की तुलना में छोटा, किंतु अपनी ही सुन्दरता और विशेषता लिये हुए था। इसलिए भी पंडितजी तथा परिवार को यह नगर बहुत पसन्द आया।

17 अक्तूबर को भी हम लोग पाउदिन में रहे। आज पंडितजी को खास तौर से यहाँ से कुछ दूर स्थित शूशेङ कम्यून को देखना था। आज का दिन भी शुभ्र था। सुबह ही होटल से चल पड़े और पाँच बजे शूशेङ कम्यून पहुँच गये। कम्यून के 34 वर्षीय अध्यक्ष के नेतृत्व में पंडितजी ने कम्यून को घूम-घूमकर देखा। वहाँ की सारी बातों की जानकारी हासिल की। जनसंख्या, आमदनी, उत्पादन आदि के आँकड़ों सहित सूक्ष्म जानकारी उन्होंने प्राप्त की। कम्यून पर उन्होंने अलग ही पुस्तक लिखी है, जिसमें इस कम्यून का भी वर्णन आया है।

18 अक्तूबर को सुबह के समय पाउदिन नगर के अन्य विशेष दर्शनीय स्थानों को देखने गये। दिन के 12.30 बजेवाली ट्रेन नहीं मिल सकी। इसलिए कुछ घंटे और पंडितजी के हाथ में थे। अतः वे सपरिवार यहाँ का जंतु-संग्रहालय देखने गये। पंडितजी को पुस्तक के लिए सूचनाएँ इकट्ठी करनी थीं। इसलिए वे यहाँ की प्रत्येक वस्तु की सूक्ष्म जानकारी ले रहे थे। अपराह्न सवा 3 बजे हम सब पेकिंग के लिए रेल से रवाना हो गये और सायं 5 बजे पेकिंग पहुँच गये। पेकिंग पहुँचते ही पंडितजी तिब्बत और चीन के सबसे बड़े गुरु श्री

गेशे शेरब से मिलने गये। वे 70 वर्ष से अधिक के हो गये थे, पर उनका शरीर बिल्कुल स्वस्थ था। अब पेकिंग में 10 दिन रहने के बाद पंडितजी को यहाँ से विदा लेना था।

**पेकिंग से प्रस्थान :** 20 अक्तूबर को हमें पेकिंग से प्रस्थान करना था। उसी समय चीनी बौद्ध महासंघ के अध्यक्ष श्री गेशे शेरब गेम्छो (पूज्य लामा) पंडितजी से मिलने आ गये। गेशे शेरब पंडितजी के बहुत पुराने मित्र थे, जिन्होंने उनकी तिब्बत की दो यात्राओं में काफी मदद की थी। अपने शिष्य गेदुन-छोमफेल को पंडितजी के हवाले कर दिया था। उस समय भी चीन में उनकी विद्वत्ता का भरपूर सम्मान हो रहा था। पंडितजी ने हम लोगों का परिचय उनसे कराया। वे बड़े खुश हुए। मुझे विशेष तौर से उन्होंने 108 मनकोंवाली सीपी की माला उपहार में दी, जिसको मैंने सँभाल के रखा है। गेशे शेरबजी के साथ पंडिजी की 1956 में नेपाल में भेंट हुई थी। इस बार की भेंट दोनों मित्रों की अंतिम भेंट थी।

दोपहर का भोजन पेकिंग के प्रसिद्ध होटल में हुआ, जहाँ बत्तख को रोस्ट करके अतिथियों को खिलाया जाता था। वहाँ बड़ी भीड़ थी। एक-एक टेबुल पर पूरा-का-पूरा भुना हुआ बत्तख रखा जाता था। किन्तु हम भारतीयों को तो मसाले का चस्का लगा हुआ है। हमें फीका लगा। उसी दिन हमें चलना था। पेकिंग स्टेशन पर पंडितजी के कुछ भारतीय मित्र आये। पंडितजी के मेजबान चीनी बौद्ध महासंघ के उपाध्यक्ष श्री चाउ-फू-चू महाशय अपने विशिष्ट अतिथि राहुलजी तथा उनके परिवार को विदा देने स्टेशन पर खड़े थे। श्री चाउ से विदा लेते हम सबका मन भर आया। पंडितजी के साथ उनका 1956 का परिचय था और यह घनिष्ठता बढ़ती ही गई। इस बार की चीन-यात्रा में उन्होंने राहुलजी की बड़ी सेवा की। बीमारी के समय उन्होंने पंडितजी का ढाँढ़स बँधाया, देखने जाते रहे। हर चीज का उन्होंने ख्याल रखा। उनकी बीमारी से परेशान थी मैं, श्री चाउ की कोशिश से ही मैं बच्चों सहित पंडितजी के पास आ सकी थी। इस महानगर में फिर ऐसे व्यक्ति के साथ कहाँ मिलना हो। पंडितजी को भी उनसे विदा लेते बहुत दुःख हो रहा था। हम लोग ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। उजाला रहने तक चारों तरफ के प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुए गये। यह ट्रेन शांघाई जानेवाली थी। मार्ग में याङ्त्सी नामक विशाल नदी पड़ी जो देखने में समुद्र मालूम दे रही थी। विशाल आकार की नदी होने के कारण इस पर पुल भी नहीं बना था। अतः रेल को चा· टुकड़ों में बाँटकर, जहाज पर बिठा उस पार पहुँचा दिया ! जहाज पर ट्रेन को बिठाकर भी चलाया जा सकता है। यह दृश्य देखकर पंडितजी सहित हम लोग चकित रह गये।

**नानकिंग :** 20 अक्तूबर के दोपहर 2 बजे हम लोग नदी के उस पार नानकिंग शहर में पहुँच गये। वहाँ पर पंडितजी के स्वागत के लिए बौद्ध संघ के प्रतिनिधि उपस्थित थे। हम लोगों के ठहरने के लिए एक बढ़िया होटल में प्रबन्ध था। उस दिन भारी वर्षा के कारण हम लोग विशेष कुछ तो नहीं देख पाये, किन्तु कार पर नानकिंग की सड़कें और बाजार देख आये। हमारे साथ पंडितजी के दुभाषिये मित्र श्री चेङ् भी आये थे। 21 अक्तूबर को मौसम कुछ ठीक रहा, इसलिए आज नानकिंग के बहुत-से स्थानों को देखने का कार्यक्रम बनाया गया। पंडितजी चीनी बौद्ध महासंघ के अतिथि की हैसियत से चीन आये थे, इसलिए जिन-जिन शहरों में वे गये, वहाँ के बौद्ध विहारों को देखने का अनिवार्य कार्यक्रम रहता था। नानकिंग में भी दो बौद्ध विहार–छी-शा-स्स और सान्-छिन्-स्स का परिदर्शन किया। भिक्षुओं और भिक्षुणियों से मिलकर बौद्ध धर्म सम्बन्धी चर्चाएँ कीं। उस दिन श्री चेङ् और पंडितजी के साथ हम लोग यू-हुवा-थाई नामक पहाड़ों को देखने गये। कहा जाता था कि चाङ्-काई-शेक के समय यहाँ बहुत-से क्रान्तिकारी मारे गये थे। जनवादी चीन ने 1955 में यहाँ उन शहीदों के लिए सम्मिलित स्मारक बना दिया। पहाड़-ही-पहाड़ होकर जाने पर चीन के प्रसिद्ध पुरुष डॉ. सुन-यात-सेन की समाधि मिली। इस समाधि के अन्दर डॉ. सुन-यात-सेन की शवपेटी को पेकिंग से लाकर रखा गया है। ठीक समाधि के स्थान तक पहुँचने के लिए सौ से भी अधिक सीढ़ियों के द्वारा चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। इस कारण पंडितजी ऊपर तक नहीं जा सके। वे और जेता नीचे ही रह गये और मैं और जया तथा श्री चेङ् ऊपर समाधि तक पहुँच गये। एक बड़े-से कक्ष में संगमर्मर की एक कब्र है। उसके ऊपर डाक्टर सुन-यात सेन की संगमर्मर की मूर्ति लेटी हुई थी। शांत एकान्त रमणीय हरा-भरा यह स्थान नानकिंग शहर से 10 किलोमीटर

बाहर है। समाधि को देखकर पंडितजी वहाँ की वेधशाला को दिखाने हमें ले गये। विशाल और समृद्ध राष्ट्र चीन की चौतरफा प्रगति को वे अपनी आँखों से देखना चाहते थे, इसलिए वहाँ की प्रत्येक उद्योगशाला, विज्ञानशाला, शिक्षणालय को देखने में वे बहुत दिलचस्पी ले रहे थे।

22 अक्तूबर को भी पंडितजी सपरिवार नानकिंग में रहे। आज भी वहाँ वर्षा हो रही थी, किन्तु दर्शनीय जो स्थान थे वे उनको देख लेना चाहते थे। अतः उस दिन सुबह सवा 8 बजे ही हम सबको लेकर वे वहाँ का म्युजियम देखने गये। सभी वस्तुएँ सुव्यवस्थापित थीं। म्युजियम की संचालिका ने पंडितजी को सभी वस्तुओं के बारे में ऐतिहासिक जानकारियाँ दीं। उसके बाद चीन के रेशम उद्योग कारखाना देखने गये। चीन की कीमती सिल्क 'कुच्चीन' बनानेवाला कारखाना दर्शनीय था। कुच्चीन को ही संस्कृत में 'चीनांशुक' कहा जाता है। इस निर्माणशाला में काम करनेवालों में महिलाओं की संख्या अधिक थी। आज ही पंडितजी हमें यहाँ के भिक्षुणी विहार सान्-छिन्-स्स को दिखाने ले गये।

**शाङ्है (शांघाई) :** 23 अक्तूबर को दिन उज्ज्वल रहा। आज पंडितजी सपरिवार शाङ्है के लिए प्रस्थान करनेवाले थे। सुबह प्रातःराश के बाद 8.40 बजे रेल द्वारा शाङ्है के लिए हम लोग रवाना हुए। प्राकृतिक सुरम्य दृश्यों को देखते हुए हम लोग छः घंटे की यात्रा के बाद चीन के सबसे अधिक जनसंख्यावाले विराट शहर शाङ्है पहुँचे। पंडितजी ने 1934 में शाङ्है शहर को देखा था। तब के और अब के इस शहर में उनको काफी बदलाव नजर आया। शाङ्है स्टेशन पर बौद्ध महासंघ विभाग के दो प्रतिनिधि पंडितजी के स्वागत के लिए उपस्थित थे। होटल जाने के मार्ग से वे इस स्थान की पहाड़ी सुरंगों, गाँवों का सूक्ष्मासूक्ष्म अवलोकन करते हुए चल रहे थे। उनको लगा यह शालिदेश (धान्य प्रदेश) और जलमय स्थल है। शाङ्है में विशाल चिन-चाङ् होटल की दसवीं मंजिल पर 1021-22 के दो कोष्ठक हम लोगों को दिये गये। होटल के बरामदे से शाङ्है शहर का अधिकांश भाग दिखाई पड़ता था। सामने विशाल जलाशय था, जहाँ उद्योग-व्यापार के लिए अनेक जलपोत खड़े दिखाई दिये। होटल के कक्ष में कुछ समय विश्राम करके दोपहर के भोजन के बाद पंडितजी सपरिवार चले शहर-परिदर्शन के लिए। सबसे पहले डॉक्टर सुन-यात-सेन का आवासगृह देखने गये। मुख्य नगर देखने में कलकत्ता या बम्बई जैसा लग रहा था, क्योंकि इस नगर को भी पुराने समय में कलकत्ता और बम्बई के नगर को बसानेवालों ने ही बनाया था। इमारतें बहुत ऊँची-ऊँची कई-कई मंजिलों की थीं। पहले यहाँ बड़े-बड़े उद्योगपति रहते थे।

24 अक्तूबर को भी हम लोग शाङ्है में थे। पूर्वाह्न में पंडितजी हम सबको लेकर यु-फु-स्स (विहार) देखने गये। यहाँ 26-40 वर्षीय 60 भिक्षु उस समय थे। सुंदर, स्वच्छ, समृद्ध विशाल वेश्म। विहार के अध्यक्ष भिक्षु ने कितनी प्राचीन वस्तुएँ पंडितजी को दिखलायीं। अध्यक्ष पंडित संस्कृतश्चासौ महात्मा थे। उस विहार में बौद्ध ग्रंथ भी बड़ी संख्या में रखे हुए थे। वहाँ से चिन्-आनस्स (विहार) देखने गये। इस बौद्ध विहार में दोपहर के भोजन का आयोजन था। बड़ी-सी मेज पर 56 प्रकार के खाद्यपदार्थ रखे हुए थे, जो निरामिष भोजन था। शाङ्है में भी पुराने-पुराने बौद्ध विहार थे, जिनकी सुन्दरता और सुरक्षा का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जा रहा था। पंडितजी ने 1935 में शाङ्है के चापे नामक इलाके को विशेष तौर से देखा था। 1939 में जापानियों ने इसको ध्वस्त कर दिया था। अब उस नगर का पुनर्निर्माण हो चुका था। शाङ्है में जितने भी दर्शनीय स्थान थे, उनमें से कुछ को हमने पंडितजी के साथ देखा और कुछ को उन्होंने अकेले देखा। 24 अक्तूबर को ही अपराह्न में वे सोवियत प्रदर्शनी देखने गये, जो चीनी जनता के लिए अर्पित की गई थी। शाङ्है में बहुत-सी इमारतें जापानियों की बनाई हुई भी थीं।

25 अक्तूबर को पंडितजी श्री चेङ् के साथ फूतान विश्वविद्यालय देखने गये। पहले यह फ्रेंच विश्वविद्यालय था जो 1905 में बना था, बाद में इसकी नीति का विरोध करके इसे फूतान नाम दिया गया। पंडितजी ने यहाँ से चीन की शिक्षा-व्यवस्था की अनेक सूचनाएँ प्राप्त कीं। इसके बाद वे चेङ् महाशय के साथ शाङ्है मेडिकल कालेज देखने गये। शाङ्है में हम लोगों को और दो दिन रहना था। वे चाहते थे कि इन दो दिनों को विभिन्न स्थलों के परिदर्शन में खर्च करें। 26 अक्तूबर को दिन शीतल था। सबेरे आठ बजे हम सबको लेकर वे कार

द्वारा 'प-मौ' कम्यून के परिदर्शन के लिए रवाना हुए। यह कम्यून शाङ्है शहर से 45 किलोमीटर की दूरी पर था। 'प-मौ' कम्यून के बारे में भी पंडितजी ने पूरी-पूरी सूचनाएँ प्राप्त कीं। पूरा दिन वहाँ बिताकर सायंकाल शाङ्है लौट आये।

27 अक्तूबर को भी घूमने का कार्यक्रम बना। उस दिन पूर्वाह्न में पंडितजी और श्री चेङ् के साथ हम लोग कपड़ा मिल देखने गये। इस मिल के पहले के मालिक से भी पंडितजी ने मुलाकात की। उन्हें वहाँ का वातावरण बड़ा दिलचस्प लग रहा था। अपराह्न में पंडितजी के साथ हम लोग भी छू-शिन पोत-निर्माणशाला देखने गये। 1952 में यहाँ सिर्फ 160 कर्मचारी थे, किन्तु अब 1958 में 2000 से अधिक काम कर रहे थे। आज रात के भोजन का बौद्धविहार में प्रबन्ध किया गया था। यहाँ चीन के विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ मेज पर सजाये गये थे। भिक्षु-भिक्षुणी यहाँ निरामिष भोजन करते थे। पंडितजी को उतना स्वादिष्ट नहीं लगा, किन्तु सभी खाद्य पौष्टिक एवं स्वच्छ थे। तब के देखे शाङ्है और अब के शाङ्है में जो परिवर्तन देखा, उसके बारे में पंडितजी लिखते हैं–"शाङ्है को मैंने 1935 में देखा था। नगर में परिवर्तन अत्यधिक था। पहिले के धनियों, भिखमंगों गौर गरीबी का कहीं पता नहीं। शाङ्है पहिले वेश्याओं, जुआरियों और गुण्डों का जबर्दस्त अड्डा था। दुनिया-भर की जातियों की यूरोपियन और एशियाई वेश्याएँ यहाँ कई हजार की तादाद में रहती थीं। अक्तूबर क्रान्ति के समय भागे हुए रूसियों की लड़कियाँ काफी संख्या में यहाँ वेश्यावृत्ति करती थीं। वेश्यावृत्ति का उच्छेद तो केवल साम्यवादी देश ही कर सकते हैं। वेश्याएँ तो उस समय अस्तित्त्व में आईं, जबकि समाज में अमीर-गरीब का भेद हुआ।" ('चीन में क्या देखा' पृ. 214)

**हाङ् चाउ (28 अक्तूबर से 2 नवम्बर तक) :** 28 अक्तूबर को सुबह पौने सात बजे पंडितजी सपरिवार रेल से हाङ् चाउ शहर के लिए चल पड़े। इस शहर में हम लोगों को 6 दिन रहना था। सुबह चलकर चार घंटे बाद हम लोग इस शहर में पहुँच गये। पूरे रास्ते-भर प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर और मनोरम देखने को मिले। बच्चे भी बहुत आनन्द ले रहे थे। बच्चों के साथ उनके पापा भी बड़े प्रसन्न थे। 11 बजे हमारी ट्रेन हाङ् चाउ–चीन के कश्मीर–पहुँची थी। वहाँ हमें हाङ्चाउ होटल नामक एक पंचतल्ला विशाल इमारत की ऊपरी मंजिल में ठहराया गया। बौद्ध प्रतिनिधि राहुलजी तथा उनके परिवार के स्वागतार्थ यहाँ भी लोग उपस्थित थे। यह होटल हाङ् चाउ सरोवर के सामने था। इस बार हम लोगों को 386 नम्बरवाला सुन्दर कमरा मिला था। हाङ् चाउ के इस सरोवर को देखकर कश्मीर की डल झील की याद आ रही थी। शहर साफ और सुन्दर दिखाई दिया। होटल जहाँ था, वहाँ का इलाका भी बहुत सुन्दर दृश्यवाला था। यहाँ नौका-विहार की सुविधा थी। हम लोग उसी दिन तीन बजे नाव पर चढ़े। जया-जेता बड़े कौतूहल के साथ देख रहे थे। शाङ्है और नानकिङ् में स्टीमर से नदी पार हुए थे। फिर हम लोग पीतनाग गुहा देखने गये। वहाँ बाँस की बहुतायत थी। घर की छतें भी बाँस की बनी हुईं यहीं देखने को मिलीं। दीवारें भी बाँस की और फर्नीचर भी बाँस के।

29 अक्तूबर को मि. चेङ् सहित हम चारों प्राणी यहाँ का सबसे पुराना बौद्ध विहार देखने गये। कहा जाता था कि इसे 326 ई. में एक भारतीय भिक्षु हुई लिन ने बनवाया था। यहाँ के विहार की एक विशाल बुद्धप्रतिमा के सामने एक लड़की को पूजा करते हुए देखा। किसी को घुटने टेककर पूजा करते हुए देखने का चीन में यही पहला अवसर था। यह बौद्ध मन्दिर उस विशाल सरोवर के पास है।

हाङ् चाउ के चार दिन के निवास में हमने पंडितजी के साथ सेनेटोरियम, शांति स्तूप, कपड़े मिल, हाथ-करघा मिल, म्युजियम, विश्वविद्यालय आदि कितने ही स्थान देखे। इनके अतिरिक्त कितने ही बौद्ध विहार भी देखने को मिले। कसीदाकारी की चीजें यहाँ बहुत अच्छी मिल रही थीं। मैंने भी यहाँ से कुछ उपयोगी चीजें खरीदीं। रात के समय ऑपेरा देखने पंडितजी हमें लेकर चले जाते थे। तीन रात में तीन ऑपेरा हमने देख लिये। 30 अक्तूबर को पंडितजी सपरिवार एक कम्यून देखने गये। अब तक चीन के जितने शहर हमने देखे, उनमें सबसे सुन्दर हाङ् चाउ ही लगा। यहाँ गरमी भी अधिक नहीं और प्राकृतिक सौन्दर्य भी अति मनोहर।

**कान्टन (क्वानचाउ) 3-5 नवम्बर :** अब हमें यहाँ से कान्टन जाना था, जिसे चीनी भाषा में क्वानचाउ

कहते हैं। इस समय पंडितजी सपरिवार दक्षिण चीन की भूमि में घूम रहे थे। 3 नवम्बर को दिन शुभ्र था। हम लोग वहाँ से प्रातः ही चल पड़े ट्रेन से और शीघ्र ही क्वानतुङ् प्रदेश में प्रवेश किया। हरियाली से ढँके पर्वत फैले हुए थे। अभी गिरिश्रेणी के कुछ भाग हिम से ढँके हुए थे। लीची, पपीता, कदली फलों के वृक्ष दिखाई पड़ रहे थे। पाटलिपुत्र के सदृश इस स्थान पर गर्मी भी उतनी ही मालूम हो रही थी, पंडितजी ने ऐसा अनुभव किया। दोपहर से थोड़ा पहले ही हमारी ट्रेन कान्टन पहुँची। स्टेशन पर धर्माधिकार विभाग के प्रतिनिधि भिक्षु और भिक्षुणी स्वागतार्थ आये हुए थे। वहाँ से हम लोग शहर के बारह मंजिले एचुन-होटल में चले गये, जिसकी सातवीं मंजिल पर 703 नम्बर के कमरे का हम लोगों के लिए प्रबन्ध किया गया था। कमरा बहुत स्वच्छ और हवादार था। यहाँ पर जापान और हाङ्काङ् जानेवाले कुछ भारतीय भी मिले। पता लगा कि यहाँ से जापान बहुत नजदीक है। गरमी बहुत थी, क्योंकि हम दक्षिण चीन में थे। होटल में भोजन का प्रबन्ध भी अच्छा था।

4 नवम्बर को राहुलजी के साथ हम लोग सुनयातसेन विश्वविद्यालय देखने गये। भोजन के बाद अपराह्न में पंडितजी परिवार सहित कागज की एक फैक्ट्री को देखने गये। यहाँ की गरमी भारत की मैदानी गरमी की याद दिला रही थी। गरमी के कारण पंडितजी ने आज ग्रे रंग के टसर का सूट पहन रखा था, जिससे वे बड़े सुन्दर लग रहे थे। प्रतीत ही नहीं हो रहा था कि वे हृदय के रोगी हैं। फैक्ट्री की विशाल मशीनों को, जिनका वजन कई-कई टन बतला रहे थे, देखकर हम लोग आश्चर्यचकित हो गये थे। पंडितजी इन सभी चीजों को ब्योरेवार देखने में बड़ी दिलचस्पी ले रहे थे।

5 नवम्बर को हम किसान आन्दोलन स्कूल देखने गये, जिसमें 1936 में माओ-त्से-तुंग प्रिंसिपल थे। इस स्कूल का नाम चीनी भाषा में लोङ्-छिन्-छुङ्-च्याङ्-शीशो था। यहाँ पर साथी माओ द्वारा इस्तेमाल की गयी सभी चीजें, कुरसी-टेबुल चारपाई आदि सभी सुरक्षित रखी गई हैं। यहाँ चीनी मुसलमान 'हुइ' भी दिखाई दिये। चीन से निर्यात की जानेवाली चीजों की प्रदर्शनी भी देखने गये। उसी दिन अपराह्न में हम सब सिलाई मशीन की फैक्ट्री भी देखने गये। यहाँ की बनी मशीनें विदेशों में भेजी जाती थीं। एक दुकान में हमने भारत की बनी ब्लेड 'भारत' को भी देखा। देखकर हम भारतीयों को अच्छा लगा।

कान्टन में हम तीन दिन रहे। अब हम लोगों को भारत की ओर प्रस्थान करना था। कुनमिङ्, चीन का अंतिम शहर जो चीन-बर्मा के सीमान्त पर बसा है, को देखना बाकी रह गया था।

**कुनमिङ् (6-8 नवम्बर) :** 6 नवम्बर को 7.20 सुबह हमारा विमान उड़ा और 11 बजे हम कुनमिङ् पहुँच गये। यह शहर चीन के युन्नान प्रदेश में पड़ता है। पहले रंगून से चीन आते समय पंडितजी को दूसरे ही होटल में ठहराया गया था। इस बार हम लोगों को उसी होटल में ठहराने का प्रबन्ध किया गया था, जिसमें मैं अपने बच्चों के साथ पिछली बार ठहरी थी। बहुत सुन्दर और नफीस होटल। कुनमिङ्, पहाड़ी इलाका है और ठंडा भी। यहाँ हम लोग एक दिन के लिए ही आये थे, किन्तु मौसम की खराबी के क़ारण एक दिन और रुकना पड़ा। 6 नवम्बर को ही पंडितजी सपरिवार नगर-परिदर्शन के लिए निकले। कई स्थान तो उन्होंने पहले ही देख लिये थे। यहाँ समय बिताने के लिए घूमना पड़ा। कुनमिङ् में 'ताई' जाति के आदिवासी लोग भी दिखाई दिये। यहाँ युन्नान कृषि प्रदर्शनी भी लगी हुई थी। अब पंडितजी का मन भारत प्रत्यावर्तन के लिए उत्सुक हो रहा था। रात को उन्होंने हम सबके साथ एक चीनी नाटक देखा। कल कुनमिङ् से जाने के लिए हवाई जहाज नहीं मिलेगा, इसलिए 9 नवम्बर को भारत जाने का निश्चय हो गया। कुनमिङ् का महासरोवर दर्शनीय था, उसी के नाम पर होटल का नाम भी सरोवर होटल पड़ा था। कुनमिङ् के अन्य बौद्ध मंदिर भी देखने गये। 7 नवम्बर को पंडितजी हम लोगों को लेकर फिर एक कम्यून को देखने गये जो कुनमिङ् शहर से बहुत दूर था। यह इलाका माइनोरिटी जातियों का इलाका था जो आपस में मिल-जुलकर रहते थे। इस कम्यून को देखकर लौटने में आधी रात हो गई थी। जया-जेता और मैं तो बुरी तरह से थक गये थे, पर पंडितजी में बड़ी स्फूर्ति थी। 8 नवम्बर को हम लोग कहीं भी नहीं गये। सर्दी बहुत थी, और बहुत अधिक यात्रा करने के कारण मेरे सारे शरीर और सिर में बहुत पीड़ा थी। जेता को भी ज्वर हो गया था। इसलिए हम लोग होटल के अपने

कमरे में ही बैठे आराम करते रहे।

अब कल सुबह भारत के लिए प्रस्थान करना था।

## भारत-भूमि की ओर

**रंगून के लिए :** 9 नवम्बर को पूर्वाह्न 9 बजे कुनमिङ् से चीनी विमान उड़ा। पंडितजी चीन में पूरे साढ़े चार महीने रहे और जया-जेता तथा मैं एक महीना। पंडितजी को यह भूमि छोड़ते दुख लगना स्वाभाविक ही था। अपनी पिछली गम्भीर बीमारी के समय उन्हें यहाँ के लोगों से ही बहुत सहायता मिली थी, सभी मित्रों से उन्हें आत्मीयता मिली थी। मुझे भी चीन देश से विदा लेते समय बड़ा दुख हुआ। विशेषकर यदि चीनी सरकार ने पंडितजी की बीमारी के समय हमारे चीन आने का प्रबन्ध न कर दिया होता तो शायद मैं अपने प्रिय स्वामी का मुँह भी न देख पाती। उस परेशानी की घड़ी में, उस मायूसी तथा वियोग की घड़ी में जो सहायता मुझे और मेरे बच्चों को चीन सरकार से मिली थी, वैसी सहायता तो अपने देश में स्वप्न में भी नहीं मिली। पंडितजी रोग से मुक्त हो जायेंगे और इस तरह चलने-फिरने लग जायेंगे, इस पर स्वयं पंडितजी को भी सन्देह था। पर उत्तम चिकित्सा एवं डाक्टरों की तत्परता के कारण वे चलने-फिरने योग्य हो गये और अब स्वदेश की ओर प्रस्थान कर रहे थे। मन में चीन सरकार के प्रति कृतज्ञता लिये हुए ही उस दिन पंडितजी और उनके परिवार ने चीन की भूमि से अंतिम विदा ली। हमारे दुभाषिया चेङ् महाशय ने, जो पंडितजी के साथ और बाद में हम लोगों के साथ भी बराबर रहे थे, यहीं से विदा ली।

साढ़े चार घंटे की लगातार उड़ान के बाद हमारा विमान रंगून हवाई अड्डे पर उतरा। रास्ते-भर बेटे जेता को तेज ज्वर रहा। पंडितजी भी गरमी से परेशान थे। रंगून विमान-स्थल पर श्री सत्यनारायण गोयनका जी अपने कुछ साथियों सहित उपस्थित थे। पिछली बार पंडितजी ने चीन से लौटते समय बर्मा में एक-दो सप्ताह रहने का वचन दिया था। पर आज हम लोग तो सीधे ही कलकत्ता जा रहे थे, क्योंकि हवाई जहाज का टिकट सीधे कलकत्ता तक के लिए बना हुआ था। गोयनकाजी को बड़ी निराशा हुई। कस्टम ने यहाँ फिर बहुत परेशान किया। कहाँ चीन के कस्टम अधिकारी और कहाँ पूँजीवादी देश के कस्टम अधिकारी। यद्यपि हमारे पास आपत्तिजनक कोई सामान नहीं था, तब भी हमें रंगून में बहुत परेशान किया गया।

कस्टम से भुगतकर गोयनकाजी के साथ हम चारों प्राणी उनके गृह में गये। भोजन किया और एक घंटा आराम किया। आजकल गोयनकाजी सपरिवार बम्बई में रहते हैं। उनके परिवार का सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार हम लोगों के लिए स्मरणीय रहा है। पंडितजी के प्रति उनकी अपार श्रद्धा देखकर मैं विस्मित हो गई थी। विमान स्थल में लौटते समय गोयन्काजी हमें अपनी कम्बल-फैक्ट्री दिखाने ले गये। एक कम्बल भी उन्होंने हमें भेंट की। कस्टमवालों ने उस कम्बल को भी खोल-खोलकर देखा, कहीं उसमें हम हीरे-जवाहिरात छिपाकर तो नहीं ले जा रहे हैं। उस समय तो कम से कम मुझे लग रहा था कि संसार-भर में सबसे रद्दी कस्टम तो बर्मा में होगा। रंगून की गरमी से पंडितजी की तबियत खराब होने का डर था। टी. ए. मी. सी. का जो इन्जेक्शन उन्होंने चीन जाते समय लिया था, उसकी मियाद भी खत्म हो चुकी थी। अतः उनके बीमार पड़ जाने का खतरा था। जेता तो ज्वराक्रान्त था ही, बेटी जया भी बहुत स्वस्थ नहीं थी। इसलिए जल्दी से जल्दी हम भारत की भूमि में प्रवेश करना चाहते थे।

**कलकत्ता में :** उसी दिन शाम के 4 बजे भारतीय वाइकाउंट विमान ने बर्मा की धरती छोड़ी और 6 बजे वह दमदम हवाई अड्डे पर उतरा। यहाँ भी हमारा सामान कस्टम के पास पहुँच गया। गरमी काफी थी, जिससे पंडितजी की हालत खराब हो रही थी। पता नहीं यहाँ कितनी देर तक रहना पड़े। जैसे ही हमारा सामान एक कस्टम अधिकारी के सामने चेकिंग के लिए आया, उन्होंने राहुल सांकृत्यायन का नाम पढ़ते ही पंडितजी को प्रणाम किया, क्योंकि उन्होंने पंडितजी की पुस्तक पढ़ रखी थी। सामान को बिना देखे ही पास कर दिया। कितने भले लोग होते हैं कोई-कोई तो। दमदम से हम लोग बालीगंज डाबर हाउस में चले आये। पिछली बार पंडितजी डाबर के मालिक श्री अशोक वर्मनजी से मिल के गये थे। मेरा और जया-जेता का रंगून जाने का

सारा प्रबन्ध उन्होंने ही कर दिया था। अतः इस बार उन्हीं के यहाँ ठहर गये। अब भारत भूमि में आकर हम आराम की साँस ले रहे थे। इतनी लम्बी यात्रा की थकान भी थी। एक-दो दिन यहाँ आराम करके हमारा देहरादून-मसूरी जाने का प्रोग्राम था, किन्तु होनी कुछ और ही थी।

**टाइफाइड के चंगुल में राहुलजी :** उसी रात को, याने 9 नवम्बर की रात से ही पंडितजी को ज्वर आने लगा। उस रात तो मामूली ज्वर समझकर उन्होंने कोई दवा भी नहीं ली। भोजन करके जल्दी ही वे सो गये। अगले दिन 10 नवम्बर के पूर्वाह्न में उनका ज्वर 99° तक था और दिन के 12 बजे के बाद 102° पहुँच गया। यूँ भी इतने दिन के हृदय-रोग के कारण वे दुर्बल हो गये थे, अब ज्वर ने उनको और कमजोर बना दिया। रात को वे ज्वराधिक्य के कारण प्रलाप करते रहे। अगले दिन भी सुबह ज्वर 99° तक रहा। फिर शाम होते न होते 102-103° तक पहुँच जाता। तीसरे दिन रक्त-परीक्षण करने के बाद पता चला कि यह मामूली ज्वर नहीं है, बल्कि टाइफाइड ज्वर है। 13 से 15 नवम्बर तक पंडितजी बेहोश रहे। मुझे बहुत चिन्ता हो गई। एक तो परेदश में हम दूसरों के यहाँ पड़े हुए थे, और वे इतने बीमार हो गये। मुझे बहुत संकोच हो रहा था, किन्तु डाबर परिवार के सभी सदस्यों ने हमारी हर तरह से सहायता की। पंडितजी के लिए डाक्टर और दवा-पानी का उन लोगों ने अच्छा इन्तजाम कर दिया। इतनी देखभाल और कौन कर सकता था ? रक्त-परीक्षण से जब टाइफाइड का सन्देह हुआ तब उसी का इलाज होने लगा। एक नर्स भी रख दी गई। यद्यपि 16 और 17 नवम्बर को उनके ज्वर का ताप घटकर 99° तक रहा, पर वे बहुत कमजोर हो गये थे।

मैंने कलकत्ता पहुँचते ही पंडितजी को टाइफाइड हो जाने की खबर अमृतसर में स्वामी हरिशरणानन्दजी को लिख भेजी थी। उन्होंने पत्र के साथ तुरन्त 500 रुपये भी भेज दिये। मैंने कलिम्पोंग में अपने भाई और बहन को भी पंडितजी के बीमार होने की सूचना दे दी। वे लोग पंडितजी को देखने के लिए कलकत्ता आये। हम लोग इतने दिनों तक कलकत्ता रहने के लिए नहीं आये थे। परन्तु अब कुछ दिनों तक पंडितजी रेलयात्रा करने लायक नहीं रह गये थे। 24 नवम्बर को हम लोगों ने यहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय किया। अभी श्री अशोक वर्मनजी भी कलकत्ता से बाहर गये हुए थे, अतः उन्होंने पंडितजी को रोक रखने के लिए कहा था। यों भी बीमारी ने उनके शरीर को खोखला बना दिया था और करने को यहाँ कोई काम भी नहीं था, यहाँ पंडितजी का मन ही नहीं लग रहा था।

इतने दिनों तक उन्होंने ठीक से खाया नहीं था। 23 नवम्बर को बुखार उतरने के कारण उनको दिन में दही और चावल का भोजन दिया गया। रात के 9 बजे पूरा व्यंजन दिया गया। शरीर में दुर्बलता अनुभव कर रहे थे। गरमी के कारण वे अलग परेशान थे। इन्हीं कारणों से वे कुछ चिड़चिड़े भी हो रहे थे।

उधर देहरादून में हमने श्री सदानन्द मेहता को किराये का एक मकान ठीक करने के लिख दिया था। उन्होंने पुराना डालनवाना मुहल्ले में एक छोटा फ्लैट ठीक कर दिया था। किराया 30 रुपया प्रतिमाह था। पंडितजी कुछ निश्चिन्त हुए। ज्वर के कारण उनका पेट साफ नहीं हो रहा था, इसलिए ईसबगोल की भूसी का सेवन करने लगे। 22 नवम्बर को देहरादून के लिए रेल की टिकटें भी आ गईं। अब 28 नवम्बर को यहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय हो गया। 24 नवम्बर को भी वे निर्बलता का अनुभव कर रहे थे। कई दिनों से वे अपने कमरे से बाहर भी नहीं निकल सके थे। बस जया-जेता और मेरे साथ थोड़ी-थोड़ी बातें करते हुए समय बिता रहे थे। 25 नवम्बर को दिन शुभ्र रहा, इसलिए आज उन्होंने बाहर घूमने जाने की इच्छा प्रकट की। डाबर हाउस ने अपनी मोटर से जाने का इन्तजाम कर दिया। पंडितजी अपने परिवार सहित कुछ देर के लिए कलकत्ता नगर में घूमे और फिर विक्टोरिया मेमोरियल को देखने गये। फिर बड़ा बाजार होते रासबिहारी एवेन्यू में डाबर हाउस में लौट आये। 26 और 27 नवम्बर को भी वे निर्बल रहे। बाहर नहीं जा सके।

28 नवम्बर को पंडितजी ने सपरिवार देहरादून के लिए प्रस्थान किया। स्टेशन पर अशोक बाबू सपत्नीक आये थे। श्री मोहनसिंह सेंगर तथा राकेशजी भी थे। ट्रेन में सीटें अच्छी मिलीं, जिनमें सोने के लिए पर्याप्त जगह थी। ट्रेन चल रही थी और पंडितजी का दिमाग यही सोचते चल रहा था कि देहरादून जाकर जाड़े के कुछ महीने विश्राम करेंगे और सबसे पहला करणीय कार्य होगा—मेरी पी-एच. डी. की थीसिस को तैयार कराकर

युनिवर्सिटी में भेज देना। 29 नवम्बर को पूर्वाह्न 11 बजे दून एक्सप्रेस ट्रेन वाराणसी स्टेशन पर रुकी। खबर पहले से ही दे दी गई थी, अतः स्टेशन पर श्री देवनारायण द्विवेदी (ज्ञानमंडल प्रकाशन), विश्वनाथ दम्पती, तथा डॉ. राजबली पाण्डेय पंडितजी से मिलने आये। रायल्टी के रूप में 438 रुपये पंडितजी को वहीं दे दिये। शाम को ट्रेन लखनऊ आ पहुँची। रात को मुरादाबाद स्टेशन पर कवि हरिऔधजी के पौत्र हमारे कम्पार्टमेंट में चढ़े और पंडितजी के साथ वह भी बातें करते हुए चले।

**देहरादून में :** 30 नवम्बर को सबेरे 9 बजे हमारी ट्रेन देहरादून स्टेशन पर रुकी। श्री सदानन्द मेहता पंडितजी के स्वागतार्थ स्टेशन पर पहुँचे हुए थे। उन्होंने हमारे रहने के लिए यशोदा भवन, 193 पुराना डालनवाला में कमरा ले दिया था। हम अपना सामान लेकर सीधे वहीं गये। घर में दो कमरे, रसोई, स्नानघर तथा शौचालय था, पर बिजली नहीं थी। तो भी हमें सिर छिपाने के लिए यह जगह मिल गई थी, इसी में संतोष किया। इतनी लम्बी रेल-यात्रा करने के कारण पंडितजी को फिर रात को ज्वर हो गया। आज रात का भोजन मेहताजी के गृह में हुआ, जो हमारे नये आवास से नजदीक ही था। यहाँ पंडितजी ने सुना कि श्री रूपनारायण मिश्र को पी-एच. डी. की उपाधि मिल गई है। समाचार से पंडितजी को खुशी होनी ही थी, क्योंकि वे ही मिश्रजी के सुपरवाइजर थे।

1 दिसम्बर को पंडितजी को ज्वर तो नहीं था, किन्तु शरीर निर्बल हो गया। बैठे रहना भी उनके लिए मुश्किल था। अतः (प्रायः) लेटे ही रहे। राहुलजी चीन से लौट आये हैं, यह खबर देहरादून में फैल गई। सुनकर कुद सुहृद लोग उनसे मिलने आये। इस समय तो वे कुछ काम नहीं कर सकते थे। सीढ़ी से नीचे उतरने की भी उनमें शक्ति नहीं थी। यशोदा भवन में वैसे तो आराम ही था, किन्तु बिजली न होने से पढ़ने-लिखने और काम करने की कठिनाई थी। मेहताजी तथा दूसरे मित्रों ने दो-तीन दिन के अन्दर ही बिजली की लाइन खींचकर बल्ब लगवा दिये, अतः तत्कालीन कठिनाई दूर हो गई। डॉ. रूपनारायण मिश्र के गृह में भी 40 रुपया मासिक पर हमें कमरा मिल रहा था, किन्तु हमने यहीं यशोदा भवन में रहना ही पसन्द किया। मकान-मालिक तथा पास-पड़ोसी सभी अच्छे थे। हमारे फ्लैट के ऊपर एक बंगाली परिवार रहता था। गृहिणी मुझे बहुत पसन्द करती थी, क्योंकि उनको पता लगा कि मैं भी बंगाल से हूँ और थोड़ा बंगला बोलना भी जानती हूँ। जया-जेता के लिए वह बौदि बन गई। वह दोनों को खूब प्यार करती थी। पंडितजी का भी बहुत आदर करते थे वे लोग। निचले फ्लैट में मसूरी के ही एक कुमाऊँनी त्रिपाठी परिवार रहता था। वे लोग भी सीधे-सादे अच्छे लोग थे। इस परिवार के साथ हम लोग अपनापन अनुभव करते थे। मकान मालिक से भी पंडितजी का पहले से ही परिचय था। इस प्रकार हम लोग यशोदा भवन में शांति और आराम के साथ रहने लगे।

## देहरादून में पाँच मास

चीन में रहते हृदयरोग से पीड़ित होकर जब पेकिंग अस्पताल में गये थे, तभी से राहुलजी यही सोचने लगे थे कि अब उनका जीवन बहुत लम्बा नहीं है। कमला को इसीलिए पढ़ाया, उनको डाक्टर बनाकर कार्य में लगा सकूँ तो मैं निश्चिंत हो जाऊँगा, क्योंकि बच्चों का पालन-पोषण तो कमला को ही करना होगा। अतः पेकिंग में रहते उन्होंने बहुत सारे पत्रों में मुझे लिखा था–"तुम अपनी थेसिस के लिए पढ़ाई शुरू कर दो और नोट लिखा करो।" मुझे आगे बढ़ाने के लिए उनके मन में कितनी बेचैनी थी, वह उनकी ही पंक्तियों से पता चलेगा।

उदाहरणतः उनकी चिट्ठियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं–

*[1]*

*पेचिंग*
*12-7-58*

*प्यारी*

*..मैंने दो-तीन पत्र में पहिले लिखा था कि 28 अगस्त या 1 सितम्बर को यहाँ से बर्मा को चलूँगा। अब*

*मेरा मन बिल्कुल नहीं लग रहा है। बार-बार बच्चों का और तुम्हारा ख्याल आता है। लौटते ही एक काम सबसे जरूरी यह है कि तुम्हारी थेसिस पूरी हो जाये। समय बहुत कम निकाल सकोगी। पर घंटा दो घंटा निकालकर थेसिस सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़ा करो। उन पर निशान तथा विषय का नाम लिख दिया करो। डाक्टर हो जाओ तो दार्जिलिंग में कोशिश करेंगे। वहीं अनुकूल रहेगा, मैं साथ रहूँगा···।*

*[2]*

*पेचिंग*
*20-7-58*

*प्यारी प्राणसमे,*

*···मेरी तबियत दो-तीन दिन से अच्छी नहीं रही। जुकाम था, एक दिन हल्का-सा बुखार भी। कमजोरी है। मन यही चाहता है, भारत लौट जाऊँ। ऐसी हालत रही तो क्या जाने 15 अगस्त तक लौट पड़ूँ, नहीं तो सितम्बर के पहिले सप्ताह में तो जरूर ही। बस मन में यही आता है, आकर सबसे पहिले तुम्हारी पी-एच. डी. का काम खतम हो जाये। कोशिश करें, हो सके तो दार्जिलिंग के लिए जगह दिलवायें। मैं भी वहीं रह जाऊँगा। जाड़ों में छुट्टी होगी ही। एक-दो मास घूम आयेंगे। खैर, यह बातें आने पर करना है। इसकी ओर ध्यान दिन में दर्जनों बार जाता है।···*

*[3]*

*पेचिंग*
*21-7-58*

*प्यारी प्राणाधिके,*

*···अब यही संकल्प है, पहिले वहाँ जाकर तुम्हारी थेसिस समाप्त करवा दूँ। जनवरी तक अवश्य उसे टाइप करके युनिवर्सिटी में दाखिल करा देना है। जाड़े में ही Viva भी हो जाये। फिर ऐसा स्थान ढूँढ़ना, जहाँ तुम्हारे लिए पढ़ाने का काम हो। दार्जिलिंग में मिले तो ज्यादा अनुकूलता होगी। नहीं तो दूसरी ही जगह···। रानी, समय निकाल सको तो थेसिस सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़कर उन पर निशान तथा थेसिस के अध्याय आदि का नोट लगाओ। इससे काम जल्दी बनेगा।···*

*[4]*

*पेचिंग*
*27-7-58*

*प्यारी प्राणवल्लभे,*

*···अबके आकर सबसे पहिले तुम्हारी थेसिस पूरी करानी है।···नौकर रख लेना, जिससे कुछ समय निकालकर पढ़ सको, यदि पास की पुस्तकों को पढ़कर नोट लिया जा सके तो आधा काम समाप्त समझो।···*

*[5]*

*पेकिंग*
*30-7-58*

*प्यारी,*

*आने पर पहिला काम थेसिस को समाप्त करना है। जनवरी तक उसे **Submit** करवाके जाड़े में ही मौखिक परीक्षा भी करवा लेनी है। हर वक्त इसका ख्याल मेरे मन में आता रहता है।···पढ़ने के लिए समय निकालने के*

*वास्ते कोई नौकर रख लेना। पढ़ाई न होने पर खर्च उससे ज्यादा पड़ेगा। तुम कभी-कभी बुद्धि की नहीं, झोंक की वात मानती हो। यदि पुस्तकें पढ़कर नोट तैयार होंगे तो थेसिस लिखने में बहुत आसानी होगी।…*

*[6]*

*पेकिंग*
*18-8-58*

*प्यारी प्रणासमे,*

*…अब के तो यही दिन-रात मन में ख्याल आता है कि तुम्हें डाक्टर बनाकर कहीं कार्य में लगा वहीं मैं भी रहूँ। शायद वैसा स्थान दार्जिलिंग ही हो। यदि वहाँ कॉलेज में जगह खाली होगी तो मित्रों के प्रयत्न से दुर्लभ नहीं होगी।…*

*[7]*

*पेकिंग*
*3-9-58*

*प्यारी,*

*तुम किसी दुविधा में नहीं पड़ना। कुछ ठहरना भी पड़ा तो थेसिस का भी काम कुछ यहाँ कर डालेंगे। बाकी वहाँ होगा। थेसिस मार्च 1959 तक दाखिल हो जायेगी।…*

इस तरह के आदेश जब उनके बहुत-से पत्रों से मिलने लगे, तो मैंने शोध सम्बन्धी बहुत-सी पुस्तकें पढ़ डालीं और नोट भी तैयार करने लगी। काम भी बहुत कर लिया था। पर बीच में उसे छोड़ना पड़ा, और फिर पंडितजी की बीमारी की खबर सुनकर मेरा मन उद्विग्न हो गया, और स्वयं को भी चीन चले जाना पड़ा था। इस प्रकार मेरे काम में बाधा पड़ी थी। अब देहरादून में रहकर मुझे यही काम करना था। यहाँ कठिनाई यह थी कि हमारी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि हम किसी नौकर को रख सकते। पंडितजी की देखभाल, घर की देखभाल, बच्चों की देखभाल, अपनी पढ़ाई-लिखाई, सब मुझे ही करनी पड़ती। फिर पंडितजी के हितैषी, मित्र, प्रशंसक भी आते रहते थे। इन सबसे बचे हुए समय को मैं पढ़ने में लगा सकती थी। पंडितजी अभी पूरी तरह से स्वस्थ नहीं हुए थे। उन्हें कमजोरी थी, टाइफाइड ने उन्हें दुर्बल बना दिया था, इसीलिए ज्यादा चल-फिर नहीं सकते थे। निजी काम न कर पाने का उन्हें बहुत अफसोस था। इसलिए वे दुखी और उदास भी रहते थे। 2 दिसम्बर से ही उनके मन में जैसे जीवन के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने लगा था। उन्होंने उस दिन लिखा—"दिनं दुर्वहं जीवितं वाधिव्याधिजरा चिंता ग्रस्तम्।" सोचते रहते थे मेरे ही बारे में कि निबंध लिखना समाप्त हो जाने पर कुछ समय के लिए कलिम्पोंग चला जाये। यदि वहाँ कुछ काम उसे मिल जाये तो ठीक है। दिमाग उनका कहाँ-कहाँ उड़ता रहता था। उनके शरीर में शीघ्र ही शक्ति आ जाये, इस ख्याल से मैं उन्हें पौष्टिक खाद्यों का सेवन करा रही थी। मेहताजी भी इसमें खूब सहायता कर रहे थे। पर जो शरीर सदैव कार्यरत रहा वही अब निष्क्रिय-सा हो गया, इससे उनको दुःख होना स्वाभाविक था। अब वह दिन-पर-दिन चिड़चिड़े होते जा रहे थे।

देहरादून में जब कभी उनके परिचित या मित्र आ जाते, तो उनका मन लग जाता था। 4 दिसम्बर को श्रीमती मोहिनी जुत्शी अपने सुपुत्र के साथ आईं। उन्होंने दोस्तोयव्स्की का उपन्यास (Crime and Punishment) का हिन्दी में 'अपराध और दण्ड' नाम से अनुवाद किया था। इसके बारे में वे पंडितजी से सम्मति लिखाने आई थीं। अब हमारे गृह में बिजली की रोशनी आ गई थी, अतः रात को पढ़ने-लिखने में कोई कठिनाई नहीं थी। मेरे शोधकार्य को अब वे बड़ी दिलचस्पी से देखने लगे, क्योंकि मेरे सुपरवाइजर वे ही थे। मेरे शोध का विषय था—'भानुभक्त की नेपाली रामायण तथा गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन।' गुरुजी जब पास ही में हों, तो मुझे तत्परता से ही काम करना चाहिए। पर 24 घंटे मैं बैठ नहीं पाती थी।

इसी बीच 8 और 9 दिसम्बर को उन्हें फिर ज्वर हो गया, कमजोरी पर और कमजोरी। उनके शरीर की दुर्बलता बढ़ती ही गई। अच्छा ही हुआ कि अब हम घर में आ गये थे। परदेश में होते तो बड़ी मुश्किल होती। 10 से 13 दिसम्बर तक कमजोरी के कारण वे प्रायः लेटे ही रहे। 14 को कुछ मित्रों के साथ उन्होंने संलाप किया। हमारा बहुत-सा सामान जो मिश्रजी के घर में रखा था। उसे रेलवे द्वारा कलिम्पोंग भिजवाने का प्रबंध किया। अब देहरादून में सर्दी बढ़ रही थी, इससे पंडितजी को कष्ट हो रहा था। अतः उनको घर से बाहर इधर-उधर जाना नहीं था। अभी वे मेरे लिखे हुए निबन्ध के पृष्ठों को ही देख रहे थे। उन्होंने जो हाल में चीन की यात्रा की थी, उसके बारे में पुस्तक लिखने की तैयारी थी। पहले वे 'चीन में कम्यून' नामक छोटी किताब लिखना चाहते थे। 18 दिसम्बर से कम्यून के बारे में लिखना आरम्भ किया। उनके पुराने टाइपिस्ट मंगलजी तो अब नेपाल में थे, इसलिए नये टंकक से लिखवाना शुरू किया। 18 दिसम्बर को राहुलजी तथा उनके परिवार के परम हितैषी श्री सत्येन्द्रजी (बदरीपुरवाले) पंडितजी से मिलने आये। वह पंडितजी को किसी दिन बदरीपुर आने का निमंत्रण दे गये। 19 दिसम्बर को प्रथम कम्यून पर लेख टंकित हो गया। एक लेख सात पृष्ठों के हिसाब से लिखवाना चाहते थे। 20 दिसम्बर को उन्होंने लोनान कम्यून के बारे में टंकन करवाया। अब लिखने का सिलसिला ठीक से चलने लगा। 21 दिसम्बर को देहरादून में भी बहुत सर्दी हो रही थी। इससे पंडितजी को कष्ट हो रहा था। दूर पहाड़ के मस्तक पर हिमपात हुआ था—इसी कारण यहाँ इतनी ठण्ड हो रही थी।

23 दिसम्बर को उनके पुराने मित्र गढ़भूमि के सुपुत्र बैरिस्टर मुकुन्दीलालजी उनसे मिलने आये। संत-समागम घंटे-भर से ज्यादा चला। मुकुन्दीलालजी ने उनसे चीन के बारे में ही पूछा। इस प्रकार पंडितजी का लेखन का कार्य तथा संत-समागम चलता ही रहा। बीच-बीच में मेरे शोध निबंध को भी देख लिया करते थे। वे घर से बाहर कम ही निकलते थे, क्योंकि अभी उनके पाँवों में ताकत नहीं थी। 24-25 दिसम्बर को भी वे पूर्ववत् कार्य करते रहे। 26-27 दिसम्बर को नया निबन्ध कम्यून पर आरम्भ किया और दो दिन में समाप्त कर दिया। 28 दिसम्बर को भी देहरादून में दिन शुभ था। और 'पर्वशिखरेषु रात्रौ हिमपातः।' आज कुछ सुहृद बन्धु लोग आये, उनसे संलाप करके पंडितजी प्रसन्न रहे। 29 दिसम्बर को उनका कम्यून सम्बन्धी प्रथम लेख आज पत्र में मुद्रित होकर आया था। 30 दिसम्बर को वे मेरे शोध निबंध को पढ़ते रहे। अन्य कोई काम नहीं किया।

31 दिसम्बर, 1958; साल का आखिरी दिन। इस अंतिम दिन में पंडितजी साल-भर में किये गये अपने कामों का लेखा-जोखा करते और आगामी वर्ष के लिए कार्य की योजना बनाते थे। मसूरी में मैंने उनको यही करते देखा था। इस साल (1958) में तो वे लेखनकार्य विशेष नहीं कर पाये थे। उस दिन उन्होंने लिखा—"कार्य पहिले की तरह करता रहा, आज समाप्त हो गया। इस वर्ष कोई विशेष लेखन नहीं हुआ। 'दिवोदास' अभी अपूर्ण है। चीनयात्रा लिखना शुरू किया था, वह अभी पूरा नहीं हुआ। हृदय-रोग से आक्रान्त होने से अनिष्ट की सूचना मिल रही है। टाइफाइड ने शरीर को और निर्बल बना दिया है। अब दैनन्दिनी की भाषा में परिवर्तन करना होगा। पूर्व प्रयत्न से प्रिया को लाभ नहीं हुआ। दैनंदिनीभाषा परिवर्तितः स्यात्। पूर्व प्रयत्नेन न लाभः प्रियायाः।" उन्हें क्या पता कि मैंने उससे कितना लाभ उठाया है। हाँ, उनकी दैनंदिनी पढ़ने में मैं संकोच करती थी। भाषा का ज्ञान तो मुझे हो ही रहा था।

इस प्रकार 1958 का वर्ष भी बीत गया। यह वर्ष सुख-दुख, रोग-कष्ट और देश-विदेश की यात्राओं में ही बीता। एक लाभ यह भी हुआ कि यद्यपि हमारा अपना घर नहीं था, मसूरी का अपना घर बिक गया, परन्तु हमने एक दूसरे के प्रेम की दृढ़ता को पहचाना। इतने दिनों तक बाधाओं, प्रतिकूल परिस्थितियों तथा अनचाहे व्यक्तियों की कुचेष्टाओं के कारण हमारे दाम्पत्य जीवन की भित्ति में दरार पड़ती जा रही थी। परन्तु अब हम एक दूसरे के सामने हृदय खोल सके थे और एक दूसरे को ठीक से पहचानने लगे। बल्कि यह कहें, इसी वर्ष पंडितजी ने अपनी कमला का मूल्य ठीक से समझा और अपना सारा प्यार उस पर उँड़ेलने लगे। इस दृष्टि से 1958 का वर्ष हमारे लिए सुखद ही रहा।

# 5

# सन 1959 का आरम्भ

## देहरादून : पुराना डालनवाला में

आज नववर्ष का प्रथम दिवस। नववर्ष की पूर्व संध्या पर पंडितजी सदैव नववर्ष के किए कार्यों की योजना बनाया करते थे और वर्ष के अन्त तक उस योजना को कार्यान्वित कर देते थे। किन्तु इस बार उन्होंने कोई योजना नहीं बनाई। बस, 'दिवोदास' समाप्त हो जाये और चीन सम्बन्धी दो पुस्तकें लिखी जायें तो अच्छा। उनका सारा ध्यान मेरे पी-एच. डी. करने तथा काम में लगने में लगा था। यदि यह हो जाये तो उनके जीवन का भारी भार हल्का हो जायेगा।

पहली जनवरी के दिन धूप नहीं थी। जाड़े का महीना, देहरादून में भी कम ठण्ड नहीं पड़ती थी। उस दिन पंडितजी अपने लिखने-पढ़ने का काम करते रहे। अब वे 'चीन में कम्यून' नामक पुस्तक लिखा रहे थे। शाम के समय वे मेरे शोध प्रबन्ध के पृष्ठों को देखते, संशोधन कर देते और सलाह भी देते थे। जिस दिन मैं अपने लिखने का काम ज्यादा करती, उस दिन वे बहुत प्रसन्न हो जाते थे। घर के भीतर बैठे-बैठे वे कभी-कभी ऊब भी जाते। 2 जनवरी को भी धूप नहीं थी। उनको ठण्ड लगती थी। पर काम पूर्ववत् ही करते रहे। 3 जनवरी को 'श्वीश्वे कम्यून' शीर्षक लेख लिखाया। बाकी समय मेरा शोध निबन्ध पढ़ते रहे। 4 जनवरी की संध्या को कुछ वर्षा हुई, जिससे ठण्ड और बढ़ गई थी। शाम को परिवार को लेकर 'तलाक' फिल्म देखने गये। फिल्म उन्हें बुरी नहीं लगी। 5 जनवरी को भी वे मेरे लिखे हुए निबन्ध का संशोधन करने और पढ़ने में लगे रहे। 6 जनवरी को भी इसी तरह मेरे निबन्ध को पढ़ते रहे। 7 जनवरी को कोई विशेष काम नहीं हो सका। सायंकाल वे सेवक आश्रम रोड में रूपनारायणजी तथा शुक्ल जी से मिलने गये। इस समय अपने लिखने-पढ़ने के अलावा मेरे शोधकार्य को देखने के लिए भी वे पूरा समय दे रहे थे। 8 जनवरी को भी वे मेरे काम को देखते रहे। इस समय वे कुछ प्रसन्न रहने लगे थे, क्योंकि मैं अपने शोध के काम में लगी हुई थी। 9 जनवरी को हम सबको लेकर वे सेवक आश्रम रोड पर गये। वहाँ कुछ बक्स और ट्रंक रखने थे। ज्यादा सामान रखने के लिए उस नये घर में जगह भी नहीं थी।

10 जनवरी को दिन साफ रहा। निबन्ध का काम चलता रहा। भोजनोपरान्त वे डॉ. रूपनारायण मिश्र के यहाँ सेवक आश्रम रोड गये। आज कुछ पेटियाँ ठीक करवानी थीं, पर बढ़ई नहीं मिला। डी. ए. वी. कॉलेज के प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री बहुत आशावान थे कि कमला को महादेवी गर्ल्स कॉलेज में स्थान मिल जायेगा। लेकिन यह तो बहुत दूर की बात थी। मिश्रजी के यहाँ कितने ही लोग जमा हो गये थे। देर तक पंडितजी के साथ सत्संग चलता रहा। 11 जनवरी को उन्होंने 'चीन में कम्यून' का नया अध्याय श्वीश्वे कम्यून पर लेख पूरा किया और कल 'सरस्वती' पत्रिका में छपने को भेजने का निश्चय किया, जो बाद में छपा भी। सर्दी के कारण उन्हें कुछ कष्ट हो रहा था, तो भी वे कुछ न कुछ काम करते ही थे। उनकी नजर मेरी ओर भी लगी

रहती थी कि मैं कितना समय चूल्हे में दे रही हूँ और कितना पढ़ने-लिखने में। उनका अपना लिखना भी चल ही रहा था। डॉ. रूपनारायण मिश्र के यहाँ रखी हुई किताबों की पेटियों को कलिम्पोंग भिजवाना भी एक सिरदर्द ही था, तो भी यह काम कर डालना था, क्योंकि भविष्य में हम लोगों को कलिम्पोंग या दार्जिलिंग में रहना था।

अब घर में हम लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त रहते। पंडितजी का चीन पर लिखना तो चल ही रहा था, मेरा शोधकार्य भी काफी प्रगति पर था। साथ ही मुझको घर-गृहस्थी तथा बच्चों सहित स्वयं पंडितजी को भी सँभालना था। पंडितजी का स्वास्थ्य अब पहले जैसा नहीं था। इस टाइफाइड ज्वर ने तो उन्हें और भी चिड़चिड़ा बना दिया था। बात-बात पर वे तुनक जाते। जीवन के शेष में वे कुछ बड़ा कार्य अपने हाथ में लेना चाहते थे, वह नहीं हुआ। हिन्दी-विश्वकोश निर्माण का सपना देखा, वह पूरा नहीं हुआ। तिब्बत में जाकर नये ढंग से अनुसन्धान कार्य करने की सोचकर वे चीन गये, पर तिब्बत नहीं जा सके। अब विदेश जाने का आकर्षण हो रहा था, पर मेरी थीसिस के समाप्त न होने तक वे कहीं भी नहीं जा सकते थे। इन्हीं सब कारणों ने उन्हें चिड़चिड़ा बना दिया था। निबन्ध-लेखन के प्रति मुझे जरा भी ढिलाई करते देखते तो आग-बबूला हो जाते थे। इतने वर्षों से उनके साथ रहती आ रही थी, पर उनको इतना गुस्सा करते मैंने कभी नहीं देखा था। इसके पीछे उनका जीवन के प्रति मोह न होना भी कारण था। मैं चपुचाप उनके मिजाज को देखती। घर के काम में कमी नहीं होती थी। मैं और क्या करती !

उसी बीच रेलवे आफिस से आदेशपत्र मिला कि पुस्तकों की पेटियों को कलिम्पोंग भेज सकते हैं, किन्तु समय बहुत कम दिया था। इस आदेश की प्रतीक्षा पंडितजी कई दिनों से कर रहे थे, और इस विलम्ब के लिए वे कुछ चिन्ता में पड़ गये थे। आदेश मिलने पर उन पेटियों को तार से बाँध देना था। अब बक्सों को ठीक-ठाक करवाना उन्होंने शुरू कर दिया। 21 जनवरी को वह आदेश मिला था, लेकिन उसके अनुसार कल (23 जनवरी को) यदि सामान रेलवे स्टेशन पर नहीं पहुँच गया तो आज्ञा रद्द हो जायेगी। इसलिए 22 जनवरी को बक्सों पर पता लिखने और पट्टी लगवाने में व्यस्त रहे। 23 जनवरी को 54 बक्से रेलवे से कलिम्पोंग के लिए भिजवा दिये। उधर पंडितजी अपनी पुस्तक 'चीन में कम्यून' को नियमित लिखवा रहे हैं। 15 और 16 जनवरी को उन्होंने मेरे निबन्ध का संशोधन किया। 19 जनवरी को कम्यून सम्बन्धी चौथा लेख टाइप करवाया। 19 जनवरी को भी काम पूर्ववत् चलता रहा। उसी दिन उन्होंने रेडियो समाचार से सुना कि उनकी पुस्तक 'मध्य एशिया का इतिहास' पर साहित्य अकादमी ने पाँच हजार रुपये का पुरस्कार देना घोषित किया है। सुनकर उनको आश्चर्य हुआ, क्योंकि वे आशा करते थे कि 'दोहाकोश' पर शायद चर्चा होगी। उन्होंने इस समाचार को विशेष ढंग से नहीं लिया, किन्तु हम लोगों को सुनकर बहुत खुशी हुई थी।

बेटी जया पिछले वर्ष से मसूरी के कान्वेंट स्कूल में पढ़ रही थी। पर सितम्बर के अन्त में जब हम लोगों को चीन के लिए प्रस्थान करना पड़ा, तो उसका स्कूल जाना बन्द हो गया था। देहरादून के स्कूल में चाहे कुछ महीनों के लिए ही सही, उसे दाखिल कर देना था। अतः 19 जनवरी को देहरादून स्थित 'कान्वेन्ट आफ जीसस एण्ड मेरी स्कूल' में राहुलजी स्वयं जया को ले गये और उसका नाम लिखवा दिया। पिछले साल जया ने जो पढ़ा था, यहाँ वही फिर से दुहराया जानेवाला था। पंडितजी खुश तो नहीं थे, पर बच्ची को स्कूल तो भेजना ही था। 20 जनवरी की सुबह पापा स्वयं जया बेटी को स्कूल पहुँचाने गये और दोपहर को अपने साथ ही ले भी आये। इससे उनको थोड़ी तफरीह भी हुई। पिता-पुत्री आपस में न जाने क्या-क्या बातें करते हुए खुश होकर घर आये। पंडितजी के मित्र सदानन्द मेहताजी के तीन बच्चे भी उसी स्कूल में पढ़ रहे थे, इसलिए कल से जया बेटी भी उन्हीं लोगों के साथ स्कूल जाया करेगी, यह व्यवस्था पंडितजी ने कर दी। पिछली बार की पढ़ाई जया सब भूल गई थी। वह शब्दों को पढ़ना उतना नहीं जानती थी, नहीं तो ऊपर की क्लास में उसे जगह मिलती। 21 और 22 जनवरी को भी कम्यून सम्बन्धी लेख लिखवाते रहे। 23 को भी कम्यून के 9 पृष्ठ टाइप करवाये। वे सोच रहे थे—यह पुस्तक 43-44 पृष्ठ (टाइप के) से अधिक न होगी। चार फार्म की पुस्तक होगी।

24 जनवरी को 'कम्यून' का लिखना समाप्त हो गया और 25 से उसको दोहराने लगे। हमारी थीसिस के पृष्ठों को भी दुहराते रहे। इस समय उनको यही काम मुख्य लग रहा था। 26 जनवरी को उन्होंने छुट्टी रखी। उस दिन का मध्याह्न भोजन डी. ए. वी. कॉलेज के प्रोफेसर डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री के यहाँ हुआ। उनकी पत्नी श्रीमती शशिप्रभा शास्त्री महादेवी कन्या गर्ल्स कॉलेज में हिन्दी की प्रोफेसर थीं। यहीं पर हिन्दू कॉलेज, दिल्ली के प्रोफेसर डॉ. चन्द्रभानु गुप्त भी मिले। पंडितजी ऐसे ही विद्वानों की खोज में थे। उन्होंने गुप्तजी को 'प्राकृत काव्यधारा' लिखने का जिम्मा दे दिया। पर बाद में यह काम नहीं हुआ। दिन-भर हम लोग शशिप्रभाजी के घर में रहे। संतों का समागम चलता रहा। पंडितजी को ऐसा ही वातावरण चाहिए था। समय बीतने का उनको पता ही न चला। रात के 8 बजे घर लौटे।

27 को टाइप की गई कापी को दोहराते रहे। पहली कापी को तो दोहराकर समाप्त भी कर दिया, अब दूसरी कापी को दोहराना रह गया। छापने के लिए उन्होंने पी. पी. एच. को देना निश्चय कर लिया। आगरा विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति डॉ. के. पी. भटनागर स्मारक ग्रन्थ के लिए भी उन्होंने आज 'हमारी रगों में किसका रक्त है' शीर्षक लेख लिखना तय किया। मूड उनका बीच-बीच में उखड़ जाता था, इसलिए लिखा–"आज भी दिन में थेसिस का कोई काम नहीं हुआ, फिकर ही नहीं है।" यह टिप्पणी मुझ पर थी। पर 28 को तो निबन्ध का काम चला ही। कम्यून की आवृत्ति वे करते रहे।

29 जनवरी को देहरा में रात-भर वर्षा होती रही और मसूरी में बर्फ पड़ी। इसके कारण ठण्ड रही। आज उन्होंने भैया (जेता) को भी जया के स्कूल में दाखिल करने का निश्चय किया, क्योंकि वह भी स्कूल जाने के लिए जिद करने लगा था। पंडितजी को हिमपात का दृश्य बहुत ही मुग्ध कर देता था, पर अब तो हम लोग मसूरी के हिमपात से वंचित हो चुके थे, अब तो मसूरी की बर्फ से ढँकी पहाड़ियों को देखकर ही मन को संतुष्ट करना था। दूसरे दिन भी ठंड थी और पहाड़ों पर हिम का दृश्य दिखाई दे रहा था। 30 को मेरे निबन्ध को देखने का काम हुआ। 31 जनवरी को जेता का जन्मदिन था, आज वह चार वर्ष का हो गया। आज के दिन हमने छोटी-सी पार्टी की, जिसमें मेहताजी के परिवार को आमंत्रित किया था। चाय-पान के बाद पंडितजी जया-जेता, मेहताजी और उनके बच्चों के साथ सहस्रधारा के रास्ते पर थोड़ी दूर तक टहल आये।

1 फरवरी को रविवार का दिन था। शाम के समय कम्युनिस्ट पार्टी की देहरादून शाखा की ओर से आयोजित पार्टी कान्फरेन्स में पंडितजी का चीन पर भाषण हुआ। 2 फरवरी से जेता स्कूल जाने लगा। 'न्यू एज' पत्रिका, दिल्ली से पंडितजी को पता चला कि 'मध्य एशिया का इतिहास' को लेकर मेरे कम्युनिस्ट होने पर आक्षेप किया गया था। अज्ञेय ने समर्थन किया है। पुरस्कार की घोषणा वे सुन ही चुके थे, तभी कह रहे थे कि मैं पुरस्कार लेने नहीं जाऊँगा। अब 'न्यू एज' में छपी इस खबर से तो वे और भी उखड़ गये और निश्चय किया कि पुरस्कार स्वीकार नहीं करेंगे। जब व्यक्ति के काम को महत्व न देकर उसके विचारों पर आक्षेप किया जाता है, तो उसे पुरस्कार क्यों ग्रहण करना चाहिए। उन्होंने दिल्ली न जाने का ही निश्चय किया। लेकिन मैं उनसे इस पुरस्कार को ग्रहण करने का अनुरोध करती रही।

3 फरवरी को भी दुर्दिन रहा, धूप नहीं थी, कुछ बूँदें भी पड़ीं। इससे सर्दी अधिक हो गई। आज उन्होंने चीन में कम्यून का संशोधन समाप्त करके उसे सच्चिदा, पी. पी. एच. नई दिल्ली के पास भेज दिया। "अब जब तक कमला की थेसिस समाप्त नहीं होती तब तक वे अगला काम नहीं करेंगे", ऐसा निर्णय ले लिया। बेटे के बारे में वे लिखते हैं–"जेता आज दूसरे दिन स्कूल गये। किसी को भाषण सुना आये। कह रहे थे–मैंने भगवानजी की मूर्ति ही देखी है। सच्चे भगवान को देखना चाहता हूँ।" पिताजी बेटे को स्कूल से लिवा लाने के लिए गये थे। बच्चों से बातें करते हुए चलना उनको अच्छा लगता था। 4 फरवरी को उन्होंने अपनी दैनिकी में लिखा–"भैया नहीं जाना चाहता था, पर ले गये स्कूल। जया को स्टेडर्ण्ड प्रथम में प्रविष्ट करा दिया, उसका कुछ पढ़ना नहीं हो रहा था।"

"मेहताजी की थेसिस देखकर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने पहिले अपनी असमर्थता को नहीं बतलाया। अब

भी कुछ करेंगे।" (4 फरवरी)।

5 फरवरी को दिन अच्छा नहीं था। पंडितजी के लिए यह यों ही सरक रहा था। आज वे कमला के प्रति असंतुष्ट थे। उन्होंने लिखा–"थेसिस अंतिम चरण पर पहुँच रही है। इस समय सुस्ती ठीक नहीं, कहने पर कमला रुष्ट हो जाती हैं। रह-रहकर कलेजे में दर्द मालूम होता है, कुछ जोर से चलने पर और। इसीलिए हमें काम पूरा कराने की चिन्ता होती है, पर कमला इसका अर्थ नहीं समझतीं।"

6 फरवरी को हमने शोध-निबन्ध लिखना समाप्त कर दिया। यह प्रथम प्रारूप था, फिर इसको संशोधन करके दुबारा लिखना था, तब बाद में इसकी टाइप कापी तैयार होनी थी। पंडितजी सोच रहे थे कि 'दिल्ली नहीं जाना है।' इसलिए आज 6 फरवरी को माचवेजी को अपने दिल्ली न जाने के बारे में लिख दिया। पर तब पार्टी आफिस से सच्चिदा शर्मा की चिट्ठी आई, जिसमें लिखा था कि राहुलजी यह पुरस्कार अवश्य स्वीकार करें, क्योंकि इसके कारण पार्टी का गौरव बढ़ रहा है। फिर भी वे जाने का ख्याल छोड़ चुके थे। इस सम्बन्ध में पुरस्कार ग्रहण करने का आग्रह करते हुए डॉ. प्रभाकर माचवे (साहित्य अकादमी के तत्कालीन सचिव) के तीन पत्र आये। 5 फरवरी के पत्र में माचवेजी ने लिखा था–"आज श्री मामा वरेरकर ने फोन पर मुझे बताया कि दिल्ली में ऐसी अफवाह फैली है कि आप पुरस्कार अस्वीकार करने जा रहे हैं। मेरा विश्वास है कि यह एकदम निर्मूल अफवाह है। परन्तु कृपया हमारे इतने पत्रों में से किसी एक की स्वीकृति तो एक पंक्ति से दें और लिखें कि 20 फरवरी को आप पधार रहे हैं···।"

राहुलजी ने जो पत्र माचवेजी को लिखा था, जिसमें अस्वस्थता के कारण दिल्ली न जाने के बारे में सूचना दी थी, उस पत्र को पढ़कर श्री मामा वरेरकर ने निम्नलिखित पत्र राहुलजी को लिखा–

*प्रिय राहुलजी,* *5 फरवरी, 1959*

*सप्रेम नमस्कार।*

*आपका पत्र प्रभाकर माचवेजी के नाम आया था कि आप अस्वस्थ हैं और दिल्ली न आ सकेंगे।*

*इस सम्बन्ध में मैं आपको लिख रहा हूँ कि आप 21 फरवरी 59 को हर हालत में यहाँ आयें, अस्वस्थता की हालत में भी आपको आना चाहिए। आपके सम्बन्ध में यहाँ कुछ लोग बड़ी अफवाहें फैला रहे हैं। इसलिए आप मेरी लाज रखने के लिए हर हालत में उक्त अवसर पर अवश्य पधारें। स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य की बातों तथा हालत में भी आप मत रुकिए। इस अवसर पर आपको आना ही चाहिए, यह मेरा आग्रह है।*

*आप कब आ रहे हैं, इस सम्बन्ध में पत्र दीजिएगा।*

*विशेष मिलने पर,* *भवदीय,*

*ह. मामा वरेरकर*

मित्रों की ओर से इतना आग्रह किया जा रहा था, पर उनकी मनःस्थिति डावाँडोल थी। फिर निश्चित तिथि के आने पर उनके दोनों पाँवों को छूकर मैंने विनती कि आप अवश्य इस पुरस्कार को ग्रहण करने दिल्ली जायें, इसे मत ठुकरायें, यह हम सबके लिए बड़े गौरव की बात होगी। वे कहने लगे–"वहाँ वही दृश्य होगा जो स्कूलों में होता है। नेहरूजी मुझे पुरस्कार देंगे और मैं एक स्कूली बच्चे की तरह उनके हाथ से पुरस्कार लेने के लिए सिर झुकाऊँगा। नहीं, यह मुझसे नहीं होगा।" मैंने फिर आग्रह से विनती करते हुए कहा था–"ठीक है, आप उनके हाथ से पुरस्कार लेते समय अपना सिर न झुकायें, बस नमस्ते कर दीजिए।" कहने का मतलब यह कि उनको बहुत ही फुसलाना-समझाना पड़ा। इस बारे में उनके अपने सिद्धांत थे।

7 फरवरी को पंडितजी खुश थे, क्योंकि "अब कमला थेसिस में लगी है, उद्धरण पूरे करने हैं। फिर हमें देखना है। तब टाइप करवाना है।" अब मेरे लिखने का काम प्रायः समाप्त हो गया था। इसी से पंडितजी खुश थे। पर टाइप करना तो पूरा बाकी था, और टाइप भी मुझे ही करना था। कब करूँगी, कब समय निकलेगा, मुझे यह चिन्ता थी। उनकी नाराजगी का डर अलग से। 8 फरवरी को डी. ए. वी. कॉलेज के अर्थशास्त्र विभाग के छात्रों के सम्मुख पंडितजी ने 'चीन में कम्यून' विषय पर भाषण दिया। 9 फरवरी को सर्वधर्म सम्मेलन का

उद्घाटन करने के लिए गुजरात साधु समाज का निमंत्रण उनको मिला। "पर धर्म से अपना क्या सम्बन्ध ? साधु समाज होता, तो भी।" इस समय तो वे चीन और कलकत्ता की लम्बी यात्रा से थककर आये थे, शरीर भी उतना स्वस्थ नहीं था। अतः तत्काल उनका कहीं जाने का मन नहीं था। 10 फरवरी को भी उन्होंने कोई विशेष काम नहीं किया। उनको जीवन अनिश्चित लग रहा था। 11 फरवरी को उन्होंने लिखने का काम किया।

12 फरवरी को दिन साफ नहीं था, बादल छाये रहे। इससे सर्दी भी बढ़ गई थी। फिर भी काम में कोई बाधा नहीं हुई, थीसिस का काम भी चलता रहा। शाम को रूपनारायण मिश्रजी के यहाँ गये। अभी हमारे पास आवश्यक सामान नहीं पहुँचे थे, इसलिए मिश्रजी के घर में रखे हुए अपने सामान में से कुछ ले आये, बाकी को मेहताजी के यहाँ पहुँचा दिया। "13 फरवरी के दिन वर्षा होती रही और सामने मसूरी के पहाड़ों पर हिमवर्षा होती रही। सुबह धूप न निकलने से संदेह हो रहा था कि सारा दिन ऐसा ही मौसम रहेगा, किन्तु दोपहर के बाद आसमान साफ हो गया था।" उस दिन वे मेरे काम से असंतुष्ट थे, इसलिए उन्होंने लिखा–"कमला को थेसिस के लिए ताकीद करने पर उनको क्रोध आ जाता है। अप्रैल तक थेसिस दाखिल करने पर जुलाई तक परिणाम मालूम हो जायेगा, जिससे काम में सुभीता होगा। अप्रैल तक समाप्त हो जाने पर हम निश्चित ही पहाड़ पर जायेंगे। हमें उनके गुस्से का ख्याल नहीं करना है, बल्कि बच्चों और उनके श्रम का।"

उसी दिन बड़े भाई श्री चन्द्रसिंह गढ़वाली पंडितजी से मिलने घर पर आये।

14 फरवरी को उन्होंने दूसरा काम नहीं किया, सिर्फ हमारे निबन्ध को ही पढ़ते-संशोधित करते रहे। इस प्रकार काम पूर्ववत चल रहा था–मेरा भी, उनका भी। 15 फरवरी को भी अपराह्न में दिन साफ नहीं था, बादल घिर आये और ओले भी पड़े। रात को फिर आकाश निरभ्र रहा। शाम को डी. ए. वी. कॉलेज के एम. ए. के छात्रों की परिषद् में पंडितजी ने व्याख्यान दिया। विषय था–'हिन्दी की उन्नति।' उसी शाम को मसूरी से श्रीमती मोहिनी जुत्शी अपने सुपुत्र के साथ आई थीं। 16 फरवरी को भी हमारा काम पूर्ववत् चला। पर इन दिनों पंडितजी मेरे काम की गति को देखकर रुष्ट ही रहते थे। मेरे हर काम को वे मंदगति से चलनेवाला बताते और खुद कुढ़ते रहते। पर मैं उतनी मंद गति से नहीं चल रही थी, यह मुझे मालूम था। आज भी लिखा–"निबंध की गति बहुत मंद। कभी-कभी तो हताश हो जाना पड़ता है। थेसिस के टाइप हो जाने तक के लिए सिर्फ 46 दिन हैं। इसी में कुछ शब्दों के लिए नेपाल से भी सम्मति लेनी है।" खैर, गुरुजी का डर रखकर मैं काम कर रही थी।

17 फरवरी को उनके मित्र श्री सत्येन्द्रजी (बदरीपुर) उनसे मिलने आये। कुछ देर बातें हुईं। 18 को भी दिन साफ नहीं रहा, बादल और बूँदाबाँदी होती रही, जिससे सर्दी और बढ़ चली थी। मित्रों, सुहृदयों तथा पत्नी के बहुत आग्रह करने पर पंडितजी दिल्ली जाने के लिए तैयार हुए और अब कल उनको दिल्ली के लिए प्रस्थान करना था।

## साहित्य अकादमी पुरस्कार (1959)

**दिल्ली-मार्ग (19 फरवरी)** : आज दिन कुछ साफ रहा। पंडितजी मेहताजी के साथ शाम साढ़े 6 बजे देहरादून स्टेशन गये। दिल्ली के लिए मसूरी एक्सप्रेस रात 8.10 पर रवाना हुई। अगले दिन (20 फरवरी) सुबह 6 बजे के थोड़ी देर बाद वे दिल्ली पहुँच गये। स्टेशन से स्कूटर से थोड़ी देर बाद यार्क होटल (कनाट प्लेस) माचवेजी के पास पहुँचे। स्कूटर चालक ने मीटर न होने का बहाना करके उनसे कुछ अधिक वसूल किया। फिर 5 रुपया और स्कूटर में देकर वे पी. पी. एच., पार्टी आफिस, नवीनजी, आजकल, फारुकी आदि से मिलते जनपथ होटल में गये, जहाँ पूर्वी जर्मनी के लेखक हाइख का स्वागत था। लौटते समय उन्हें मसूरी में परिचित रामसिंह भोटान्ती मिले। वह दिल्ली में क्यूरियों की चीजें बेचा करते थे। व्यवसाय के बारे में पंडितजी के पूछने पर रामसिंहजी ने बतलाया–कुछ बिक ही जाता है।

अगले दिन–दिल्ली, शनिवार 21 फरवरी–का विवरण पंडितजी के ही शब्दों में :

"दिन साफ रहा। सबेरे 10 बजे विज्ञान भवन में सांस्कृतिक परिषद में गये। हुमायूँ कबीर ने भाषण

दिया। शाम को 4.30 बजे चाय पीकर हॉल में पारितोषिक वितरण हुआ। जवाहरलाल ने दिया। 1 मिनट में पुरानी बातें याद कीं–"बहुत दिनों बाद मिले, तरुण हो गये।" शाम को हैदराबाद हाउस में भोज। निजाम का महल। 100 अतिथि रहे होंगे। भरतनाट्यम मिस वजीफदार ने दिखलाया, शीरीं वजीफदार ने व्याख्या की। कितने ही परिचित मिले।"

दिल्ली, रविवार 22 फरवरी। "दिन स्वच्छ। सबेरे बहुत से मित्र मिलने आये। श्री बालकृष्णजी भी। शाम को 4 बजे युनिवर्सिटी में हिन्दी विभाग में गये। सोरों की सामग्री देखी। सौ-डेढ़ सौ वर्ष से तो जरूर तुलसी के यहाँ के होने की परम्परा है। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में भी नंददास के तुलसीदास भाई थे, यह पता लगता है। इसलिए इसे फूँक के उड़ा नहीं सकते।

रात को भारतीय साहित्य परिषद् में स्वागत हुआ। मैं, केशवन, मुहीउद्दीन थे। अय्यंगर सभापति। पं. सुन्दरलाल जी भी बोले।"

**सोमवार 23 फरवरी, दिल्ली-देहरा मार्ग :** आज दिन साफ रहा। हिन्दी भवन में शाम को स्वागत हुआ और उसी दिन रात की गाड़ी से देहरादून के लिए रवाना हुए। स्टेशन तक छोड़ने शिवशर्मा आये थे। कल प्रयाग के बोर्ड के लिए निमंत्रण था, पर जाना बेकार था–क्योंकि बोर्ड की मीटिंग सुबह थी और वे पहुँचते शाम को। इसलिए जाना स्थगित कर दिया।

25 और 26 फरवरी को कोई विशेष काम उन्होंने नहीं किया। चिट्ठियों के उत्तर-भर लिखे। 27 और 28 फरवरी को लिखने का काम पूर्ववत् चला।

मार्च 1 का दिन रविवार था। दिन शुभ्र नहीं था। पंडितजी का आज का दिन मिलनेवालों के लिए था। सबेरे दो मण्डली उनसे मिलने आईं। पहली में श्री सेन और चातकजी (गोविन्द) थे। दूसरी मण्डली में रेंजर विद्यार्थी के साथ श्री जोजफ गेर्गन (लद्दाखी) के पुत्र जंगल अफसर थे। "इनसे देर तक बात होती रही। लदाख के इतिहास में दिलचस्पी रखते हैं।" शाम को मेहताजी हैदराबाद के लिए रवाना हुए। घर में थे तो उनके रहने से बहुत सहायता थी।

2 मार्च को भी दिन धूमिल रहा। आज उन्होंने 'तिब्बती हिन्दी कोश' में हाथ लगाया। अगले दिन भी तिब्बती कोश का काम करते रहे। 4 मार्च को दिन साफ रहा, और रात भी। सर्दी कम हो गई। आज भी वे तिब्बती कोश में लगे रहे। फिर बहुत-सी चिट्ठियों का जवाब दे दिया। अपनी ओर से भी चिट्ठियाँ लिखीं। 'तिब्बती संस्कृत कोश' के बारे में भी प्रकाशन-संस्थाओं को पत्र लिखा। 5 मार्च को दिन साफ रहा। आज पंडितजी ने हिन्दी विश्वविद्यालय का निबन्ध बिना देखे ही लौटा दिया। 6 को उन्होंने कोश का काम किया। प्रायः पूरे दिन ही। कानपुर से बंग समाज का तार आया था निमंत्रण का, पर उन्होंने नहीं आने के बारे में लिख दिया। अब उनके मन-बहलाव के लिए 'तिब्बती कोश' मात्र रह गया था।

8 मार्च को श्री प्रभाकर माचवेजी के ससुर ऋषिकेश से पंडितजी से मिलने आनेवाले थे। उस दिन पंडितजी दिन-भर उनकी प्रतीक्षा करते रहे, पर वे नहीं आये, किसी कारणवश आये होते तो उनसे बातचीत कर पंडितजी को अच्छा लगता, मन बदल जाता। उन्होंने लिखा–"कमला को नाहक तैयारी में लगा रहना पड़ा।" वे अपने कोश के काम में लग गये। आज रविवार होने के कारण मैं भी घर के काम में व्यस्त हो गई और पढ़ाई ठीक से नहीं हो पाई। बस, पंडितजी नाराज। 9 और 10 मार्च को भी वे अपने कोश-कार्य में ही लगे रहे। बच्चे स्कूल से आ जाते तो उनसे बातें करते। मैं लिखने का काम कर रही हूँ या नहीं, यह देखने के लिए मेरी तरफ भी उनकी नजर रहती थी।

यों तो पंडितजी अपने तिब्बती कोश के कार्य में व्यस्त रहे, यह काम सुचारु रूप से चल ही रहा था, पर बीच-बीच में उनको कुछ मनोरंजन की भी जरूरत थी। 11 मार्च को बदरीपुर के चौधरी सत्येन्द्रजी सपत्नीक आये। फिर हम सबको 'शोला' फिल्म दिखाने ले गये। पंडितजी ने शायद इसे पसन्द किया, पर जया और जेता के लिए इसमें कुछ नहीं था। 12 और 13 मार्च को भी उन्होंने कोश का काम किया। उसके कुछ पृष्ठ वे माचवेजी के पास नमूने के लिए भेजना चाहते थे। 14 मार्च को वे कुछ अधिक व्यस्त रहे। अपनी पुस्तक

'जौनसार देहरादून' की पाण्डुलिपि का आज उन्होंने संशोधन किया और कोश का काम भी चलता रहा। 'मध्य एशिया का इतिहास' पर हाल ही में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था, इसलिए इसका बंगला और अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिए लोग उत्सुक थे। इस सम्बन्ध में उनके पास लोगों के पत्र आये थे। बाद में इसका अंग्रेजी अनुवाद में भाग-1 प्रकाशित हुआ था।

15 मार्च को रविवार था और छुट्टी का दिन भी। पुराना डालनवाला के जिस मकान में हम लोग रहते थे, उसकी ऊपरी मंजिल पर एक बंगाली परिवार रहता था। परिवार में दो बेटे, पति-पत्नी तथा ससुर रहते थे। सभी सीधे-सादे और बड़े मिलनसार थे। उन लोगों के साथ हमारा घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था। आज उन्हीं लोगों ने पंडितजी को सपरिवार रायपुर चलने के लिए कहा। वहाँ आर्डिनेन्स फैक्ट्री (Ordinance Factory) है। जिसे 1942 में जब जापानियों ने कलकत्ता पर बमवर्षा की थी, उस समय कलकत्ता से यहाँ स्थानान्तरित कर दिया गया था। उस समय फैक्ट्री में काम करनेवाले बहुत-से बंगाली परिवार भी यहाँ आ गये थे। रायपुर में ऐसे सैकड़ों बंगाली परिवारों के होने से वहाँ एक बंगाली कालोनी ही बसी हुई थी। उनमें से बहुतों ने पंडितजी की पुस्तकों का बंगला अनुवाद पढ़ा था और उनके नाम से भलीभाँति परिचित थे। आज इन्हीं लोगों में से एक घर में पंडितजी को परिवार सहित रायपुर आने का निमंत्रण दिया गया था। हम लोग तथा बौदि परिवार (ऊपरवाले) बस में गये। वहाँ दिन-भर का कार्यक्रम था। बंगाली भोजन हुआ, जिसमें मछली का प्राधान्य था। पंडितजी को पता चला कि फैक्ट्री में उस समय 1000 मजदूर काम कर रहे थे और ढाई सौ लोग दूसरे काम करते थे। बंग गृहपतियों ने पंडितजी का दिल खोलकर स्वागत किया और दिन-भर उनके साथ सत्संग चलता रहा। आज पंडितजी बहुत प्रसन्न रहे। रात हो जाने के बाद पंडितजी हम सबको लेकर घर लौट आये।

16 मार्च को उन्होंने कोश के दो पृष्ठ टाइप किये। उनकी पुस्तक 'जौनसार देहरादून' के लिए कुछ सरकारी आँकड़े और सूचनाएँ उनको चाहिए थीं। सूचना अधिकारी से अपेक्षित सामग्री मिलने के आश्वासन से वे प्रसन्न हुए। आज ही शाम के समय श्री गयाप्रसाद शुक्लजी अपनी पत्नी के साथ पंडितजी से मिलने आये। शुक्ल जी के साथ पंडितजी का मैत्री-सम्बन्ध था और शुक्लजी तथा उनकी पत्नी पंडितजी का बहुत ख्याल रखते थे। समानधर्मा होने के कारण शुक्लजी के साथ उनकी बहुत बनती थी। अगले दो दिन (17-18 मार्च) भी पंडितजी कोश-कार्य में ही लगे रहे। वे श्रीलंका जाने की भी मन-ही-मन तैयारी कर रहे थे, इसलिए हाथ के सारे काम को समय पर ही समाप्त कर देना चाहते थे। यही कारण था कि मैं भी जल्दी से जल्दी अपनी थीसिस लिखकर समाप्त करूँ, इसके लिए मेरे पीछे लगे रहते थे। परन्तु श्रीलंका जाने या न जाने के अपने निर्णय के बारे में पत्नी को अभी नहीं बताना चाहते थे।

मार्च का तीसरा सप्ताह चल रहा था। देहरादून में दिन के समय धूप तेज होने लगी थी। पंडितजी अब इतनी गर्मी से ही घबराने लगे थे। अप्रैल में भी यहीं रहना था और उन्हें अभी से चिन्ता होने लगी थी कि अप्रैल का महीना कैसे बीतेगा ? अभी तो बिजली के पंखे का इन्तजाम पहले करना होगा। मच्छर, मक्खियाँ और खटमल भी आने लगे थे, जिनसे पंडितजी को बहुत चिढ़ थी।

हमारे दोनों बच्चे स्कूल जा रहे थे। कभी-कभी शाम को उनके पापा ही उन्हें स्कूल से लिवाने चले जाते थे। बच्चे बड़े प्रसन्न रहते पापा के साथ। जेता का दाहिना हाथ कमजोर होने से लिखने में उसके अक्षर अच्छे नहीं बनते थे, वैसे वह दाहिना हाथ ही चलाता था। पंडितजी को चिन्ता होना स्वाभाविक ही था। इन दिनों उनको छोड़कर हम सबको खाँसी हो रही थी। वे हम लोगों की देखभाल करते थे।

## श्रीलंका से निमंत्रण

पंडितजी श्रीलंका में पहले भी बहुत समय तक रहे थे। उस समय 1925-26 में वहाँ के विद्यालंकार परिवेण (कालेज) में वे संस्कृत का अध्यापन करते थे और स्वयं पालि भाषा का अध्ययन करते थे। तभी से विद्यालंकार कॉलेज के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा था। 1959 में अब वह कॉलेज विश्वविद्यालय बन रहा था, जिसका विधिवत् उद्घाटन भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्र प्रसादजी के कर-कमलों द्वारा हो गया था। उसी

विश्वविद्यालय में हमारे राहुलजी को दर्शन के महाचार्य-पद पर कार्य-भार स्वीकार करने का निमंत्रण मिला था। इस सम्बन्ध में प्रथम पत्र उनको पेकिंग में 1958 में ही मिल चुका था। उन्होंने तब उत्तर दिया था कि वे थोड़े समय के लिए ही श्रीलंका आ सकेंगे। उसके उत्तर में फिर केलनिया से पत्र गया था, जो इस प्रकार था—

*(Seal)*

*Vidyalankara Pirivena,*
*Kelaniya, Ceylon.*
*27 October, 1958*

*Acharya Mahodaya,*

*It is just now that I received your letter dated 30-9-58. We are happy to hear that you would come to Vidyalankara University even for a short while. We hope that you would stay here at least for a year. We would try our best to make you happy and at home here. Our Principal and our Director were very glad when I told them your intention to come to this University.*

*The 84th anniversary of this Institution falls on the 1st November, 1958, and we have decided to hold a special function to celebrate this occasion. The Prime Minister with several members of the Cabinet will be attending this function.*

*The University Bill has not yet passed through the Senate, the Upper House. I think it would take at least a month or two before the University would be really established. However we are making every arrangement to start the 1st session on the 1st week of May 1959. I do hope that you would be able to come to Ceylon by that time.*

*We are making every efforts to make this University a great success. As you advised us it is our intention and determination to make ours a great seat of learning-a Cultural Centre. We are making arrangements to have departments for Buddhist Philosophy, Philosophy and so on. We have written to Bhadanta Ananda Kausalyayana Thera, to be the Head of the Hindi Language section.*

*Shri Sivali Thera and N. Pragnakara Bhikkhu went to the U. S. S. R. to attend the Afro-Asian Writers Conference as representatives of Ceylon writers. I, too, were invited but declined to go as I was greatly needed by the Institution specially at this moment. They came back to Ceylon on the 23rd of this month.*

*ACHARYA RACHITA BAUDHA*
*SANSKRITI TU MAYA NA DRISHTA.*

*Yours faithfully,*
*K. Prajnakitti.*

आज 21 मार्च (1959) को भी विद्यालंकार विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर का निमंत्रण पत्र आया जिसमें लिखा था—"चार वर्ष के लिए दर्शन के प्रोफेसर का पद स्वीकार करें।" पंडितजी ने तत्काल उत्तर नहीं दिया। बस, डायरी में लिखा—"यह तो कमला के आधीन है।" दो-तीन दिन इस सम्बन्ध में हमारे बीच विचार-विमर्श होता रहा। एक तरफ मैं देखती थी कि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की विश्वकोश-योजना में पंडितजी के साथ जिस तरह से धोखा और उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया गया था, और चीन में जाकर तिब्बत जाने की अनुमति न मिलने से उन्हें जो निराशा हुई थी, उसकी पूर्ति के लिए श्रीलंका का यह निमंत्रण संतोषजनक था। पर दूसरी

ओर मैं देखती थी–उनके स्वास्थ्य की वर्तमान अवस्था जैसी है, उसको देखते हुए उनको विदेश नहीं जाना चाहिए। अब उनकी आयु भी ढल रही है, दो बार हार्ट अटैक हो चुका है, परिवार से दूर रहने पर उनकी देखभाल कौन करेगा ? यह सब सोचकर मैंने उनके श्रीलंका जाने के निश्चय को पसन्द नहीं किया। परन्तु, यह भी देख रही थी कि भारत में रहकर भी वे किसी बड़े काम के अभाव में बहुत उदास रहते हैं, तब क्या किया जाय ? उनको कुछ समय के लिए श्रीलंका जाने देना ही ठीक रहेगा। यदि अनुकूल रहा तो परिवार को बाद में ले जायेंगे। अतः उन्होंने 24 मार्च को अपनी स्वीकृति का पत्र विद्यालंकार विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर को लिख दिया और यह भी लिखा कि वे सिर्फ दो साल के लिए ही श्रीलंका आयेंगे।

विद्यालंकार विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने उनके वेतनमान के बारे में सूचना देते हुए फिर 7 अप्रैल को उन्हें एक पत्र भेजा था, जो पाठकों के लिए यहाँ उद्धृत है :

*THE VIDYALANKARA UNIVERSITY OF CEYLON*
*K E L A N I Y A,*
*CEYLON.*
*7th April, 1959.*

*To,*
*Maha Pandit Sri Rahula Sankrityayana Esqr.*
*193, Purana Dalanwala,*
*Dehradun, India.*

*Dear Sir,*

*I am directed by the Vice Chancellor to acknowledge with thanks your air letter dated 24th March 1959, and to request you kindly to assume duties as Professor and Head of the Department of Philosophy in the Vidyalankara University of Ceylon on the first day of June 1959 the latest.*

*The Scale of salary attached to your post is Rs. 1500/4/600 & 4/900 =2,100 but considering your experience you will be placed on the maximum of the scale of salary.*

*You will also be paid the cost of living allowance, Special living allowance & house rent according to govt. rates.*

*You will be reimbursed the first class train fare of yourself and members of your family, from India to Ceylon.*

*Please let me know the probable date of your arrival in Ceylon. If you need any assistance from University as regards obtaining the passport and other travel documents, please let us know.*

*Yours faithfully,*
*Sd\-*
*Registrar.*

पंडित को वहाँ वेतन के रूप में 2100 रुपया तथा अन्य भत्ता वगैरह अलग, साथ-साथ ही मकान किराया, श्रीलंका जाने का खर्चा सभी कुछ देने की मंजूरी थी। पंडितजी ने अक्तूबर से कार्यभार सँभालने का निश्चय किया। अब वे कुछ समय के लिए आर्थिक रूप से निश्चिन्त होना अनुभव करने लगे थे।

21 मार्च को ही उन्होंने डॉ. नलिनाक्ष दत्त को एक पत्र लिखा और डॉ. राघवन के लिए संस्कृत में एक लेख भी लिखा। 22 मार्च को बदरीपुर के चौधरी सत्येन्द्रजी के यहाँ पंडितजी सपरिवार आमंत्रित होकर गये। उनके पास ही चौधरीजी के रिश्तेदार राजेन्द्रकुमार जी के घर में दोपहर का भोजन किया और चाय-पान चौधरीजी

के यहाँ। बदरीपुर बासमती चावल और गन्ने के लिए प्रसिद्ध है। दिन-भर वहाँ रहकर पंडितजी ने बासमती और गन्ने की खेती के बारे आँकड़े इकट्ठे किये और खेती-किसानी की अन्य जानकारी प्राप्त की। श्री सत्येन्द्रजी तथा उनकी पत्नी श्रीमती लज्जारानी बहन का हम लोगों पर अत्यधिक स्नेह रहा। बहुत वर्षों के बाद श्री सत्येन्द्रजी राहुल परिवार से मिलने राहुल निवास में भी आये थे। पंडितजी के साथ उनकी बहुत पुरानी मैत्री थी। उस दिन पंडितजी तथा अन्य बड़े लोग आपस में बातचीत करते रहे और जया-जेता और मैं गन्ना चूसते रहे। रात को डेरे पर लौट आये। आज रात-भर हम तीनों को बहुत खाँसी रही और पंडितजी हम लोगों को औषधि देते रहे।

23 और 24 मार्च को भी राहुलजी 'तिब्बती कोश' पर काम करते रहे। 'चीन में क्या देखा' के अंश तुङ्ह्वान् को शेरजंगजी से टाइप करवाया। बीच-बीच में सभा और गोष्ठी भी हो जाया करती थी। कभी-कभी पंडितजी उसमें भाग लिया करते थे। 25 मार्च को होली पड़ी थी और उसी शाम को देहरादून में एक हिन्दी गोष्ठी का आयोजन था, जिसमें डेढ़ दर्जन कवियों और कहानीकारों ने भाग लिया। इसमें राहुलजी भी कुछ बोले थे। 26 मार्च को वे अपने लेखन-कार्य में व्यस्त रहे। उस दिन भटनागर स्मारक ग्रंथ तथा 'आजकल' के लिए दो लम्बे लेख भी लिखे। फिर शाम के समय सेवक आश्रम रोड पर श्री रूपनारायण मिश्र तथा श्री गयाप्रसाद शुक्ल के घर जाकर सत्संग कर आये। मुझको तो अपने थीसिस-लेखन में व्यस्त रहने के कारण कहीं बाहर जाने का समय नहीं मिलता था। पंडितजी इसी काम के लिए श्रीलंका जाने से रुके हुए थे। 27-28-29-30 और 31 मार्च के पाँच दिन अपने कोश-कार्य में ही लगे रहे। बस, बच्चों के लिए थोड़ा समय देते थे। शेष समय में वही प्रिय काम याने कोश का काम। कहीं बाहर गये नहीं।

1 अप्रैल को देहरादून के रोटरी क्बल में उन्हें जाना पड़ा। वहाँ की सारी कार्यवाही अंग्रेजी में हुई, पर राहुलजी ने हिन्दी में भाषण दिया। रोटरी क्लब के सदस्य उच्च-मध्यवर्ग के लोग थे। पर हिन्दी के हिमायती को हिन्दी की जगह पर दूसरी भाषा कहाँ पसन्द आती ?

2 अप्रैल को भी पंडितजी को बाहर निकलना पड़ा। सुबह उन्होंने कोश का काम किया। फिर हाल ही में की हुई अपनी 'चीन-यात्रा' पर पुस्तक लिखने का काम भी आज ही से शुरू किया। प्रतिदिन 10 पृष्ठ लिखवाने का उन्होंने निश्चय किया। पुस्तक बाद में 'चीन में क्या देखा' नाम से छपी, जिसके प्रकाशक का नाम है पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, रानी झाँसी रोड, नई दिल्ली। दोपहर बाद स्थानीय रवीन्द्र संस्कृति केन्द्र में उनको तिब्बत-चीन पर भाषण देना पड़ा। श्रोतावर्ग में समझदार नर-नारी अधिक थे। अध्यक्ष मनचन्दाजी ने पंडितजी की तारीफ में 'कलमतोड़' की संज्ञा दी। उसके बाद पंडितजी पल्टन बाजार घूमने गये। संत निहालसिंह से भी वे मिलने गये। उस समय संतजी 76 वर्ष के थे, पर चलते-फिरते-टहलते थे।

3 अप्रैल को उन्होंने कोश का काम किया और 4 अप्रैल को भी। आज ही उदयाचल प्रकाशन, पटना से बौद्ध सिद्ध साहित्य पर एक शोध निबन्ध लिखने के लिए पंडितजी के पास अनुरोध पत्र आया। इसके लिए उनके पास सहायक ग्रंथों की कमी थी। आज के ही दिन उनको यह भी पता चला कि 'आज' साप्ताहिक में छपने के लिए जोशीजी ने तिब्बत को लेकर तूफान और बदतमीजी का लेख भेज दिया था। 6 अप्रैल को कुछ देर कोश-कार्य किया। फिर टाइपिस्ट श्री शेरजंग के आने पर चीन-यात्रा पर टाइप करवाया। आज ही किताब महल ने रायल्टी के 3 हजार रुपये और साहित्य अकादमी ने कोश के लिए अग्रिम धन 1 हजार रुपये का चेक भेजा। पंडितजी ने अपने पुराने टाइपिस्ट तथा मेरे चचेरे भाई श्री मंगलदेवजी को नेपाल से बुला भेजा था। उनके आने का समाचार पाकर पंडितजी आवश्स्त हो गये। उनको आशा हो गई कि मंगलजी कमला की थीसिस टाइप कर देंगे। 7 और 8 अप्रैल को भी उन्होंने कोश-कार्य किया और चीन-यात्रा पर टाइप करवाया।

9 अप्रैल के दिन पंडितजी ने 67वें वर्ष में प्रवेश किया। घर के ही लोगों ने उनको जन्मदिन पर बधाई दी। मैंने उनके कुछ फोटो भी लिये। पर आज वे बहुत उदास थे। उन्होंने आज की दैनन्दिनी में लिखा—"आज 67वें वर्ष में प्रवेश किया। कोई उत्साह नहीं। ख्याल आता है अब फिर यह दिन देखने को न मिलता।" दोस्त, मित्र लोग उनको जन्मदिन पर प्रायः भूल ही जाते थे।

कोश-कार्य के साथ-साथ चीन-यात्रा पर भी वे टाइपिस्ट को बोलकर लिखवा रहे थे और पुस्तकों का करीब-करीब तीन-चौथाई भाग टाइप भी हो चुका था। बस, अपने कामों में ही वे व्यस्त रहते थे। दिन-भर बच्चे स्कूल में होते, मैं अपने घरेलू काम को समाप्त करके लिखने या टाइप करने बैठती। वे घड़ी देखते रहते कि कब मैं पढ़ने-लिखने बैठती हूँ। प्रायः दिन के एक बजे मैं घर का काम समाप्त कर पाती। नौकर के न होने से सारा काम मैं ही करती थी। इसके लिए पंडितजी उन दिनों मुझसे बहुत नाराज रहते थे और इसीलिए वे अपने जीवन के प्रति उदासीन भी होते जा रहे थे। यद्यपि इसमें मेरा कोई कसूर नहीं था, मैं तो अपने लिखने के काम में लगी ही हुई थी, पर घर, बच्चे और बीमार राहुलजी की देखभाल भी तो मुझे ही करनी पड़ती थी। गृहिणी होकर इन सबसे मुँह कैसे फेर सकती थी ? पंडितजी जो गुरु के रूप में थे, लाठी लेकर जैसे मेरे पीछे पड़े रहते थे। थोड़ी-सी भी रियायत नहीं, थोड़ा सोचना भी नहीं, अपने ही दृष्टिकोण से देखना, अपनी ही बात को ठीक समझना, दूसरे की कुछ न सुनना। यही उन दिनों उनका स्वभाव बन गया था। एक दिन तो उन्होंने यहाँ तक कह डाला–"जाओ, तुम अपनी थेसिस को चूल्हे में डाल दो, तुम्हें तो केवल घर का काम करना है।" ऐसे वातावरण में मेरे पास रोने के सिवा और कोई चारा नहीं था। जवाब दूँ तो आसपास के लोग सुनेंगे, फिर जवाब देना मेरा स्वभाव भी नहीं था। मैं अपना काम तो कर ही रही थी, पर उनको दिखाई नहीं देता था। मूक होकर मैं आँसू बहाती और अपना काम भी करती जाती। कितने चिड़चिड़े और कितने कठोर हो गये थे वे उन दिनों। क्या ये वही राहुलजी थे जिनके चेहरे पर हमेशा मधुर मुस्कान रहती थी, पर अब तो मुस्कान की जगह पर तनाव ही रहता था। 10 अपैल को ऐसा ही अप्रिय प्रसंग हो जाने से उन्होंने सोच लिया कि कुछ समय के लिए हमें अलग रहना होगा। हाँ, तो अलग रहने ही के लिए वे श्रीलंका जाना तय कर चुके थे। कोई बात नहीं, ताली दो हाथों से बजती है। तनावपूर्ण वातावरण को बनाने में सिर्फ मेरा ही तो हाथ नहीं था। खैर। सबसे बड़ी बात थी कि पंडितजी में यह चिड़चिड़ापन देहरादून की गर्मी के कारण भी आ रहा था। उनसे गर्मी बर्दाश्त ही नहीं होती थी, पर श्रीलंका की भयानक गर्मी में जाने के लिए वे एक तरह से कमर कस चुके थे। उसी दिन शाम को मेरे भाई श्री मंगलदेवजी नेपाल से आ गये, जिनके आने से मुझको बड़ा सहारा हो गया।

तनाव के रहने पर भी हम लोग बेकार नहीं बैठते थे। वे अपना कोश-कार्य तथा चीन पर लेखन-कार्य नियमित रूप से करते रहे। दिन में मक्खियों से परेशान रहते तो रात को मच्छरों से। इससे उनको बड़ी झुँझलाहट होती थी। यात्रा के लेखन-कार्य में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं हुआ। उसमें अब मंगलजी भी सहायता करने लगे। 14 अप्रैल को भी उन्होंने चीन-यात्रा पर लिखवाया और दोपहर बाद कोश का काम किया। उस दिन विद्यालंकार विश्वविद्यालय से रजिस्ट्रार का पत्र आया जिसमें उनको जून से ही अपना कार्य-भार सँभालने के लिए कहा गया था। पंडितजी ने लिख दिया कि वे सितम्बर से पहले तो जा नहीं सकते। तब तक तिब्बती-हिन्दी कोश को भी समाप्त कर देना था, क्योंकि अन्यत्र जाने पर रिफरेन्स के लिए सामग्री नहीं मिल सकती थी। 15 अप्रैल को पंडितजी के घुमक्कड़ शिष्य श्री शिवशर्मा जी भी आ गये। मुझे अपनी थीसिस को जल्दी से जल्दी टाइप करके समाप्त करना था। पंडितजी का रुख कड़ा था, तने हुए ही रहते थे, क्योंकि उनको लगता था कि उनके सीलोन जाने से पहले शायद मैं अपना काम समाप्त नहीं कर सकूँगी।

भाई मंगलजी ने थीसिस की टाइपिंग में मेरी सहायता शुरू कर दी। शिवशर्माजी भी कुछ सहायता करना चाहते थे। इसी बीच पंडितजी को लखनऊ से बुलावा आ गया। साथी शिव वर्मा और साथी रमेश सिन्हा का पत्र आया कि लखनऊ में कम्युनिस्ट पार्टी की कान्फ्रेन्स हो रही है। उसमें राहुलजी को डेलीगेट के तौर पर आमंत्रित किया गया था। यह पत्र 18 अप्रैल को सुबह मिला। इससे पहले भी लखनऊ जाने के लिए इन दोनों मित्रों का पत्र आया था। तब उन्होंने अपने स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण जाने से इन्कार कर दिया था। परन्तु जब शिव वर्माजी का दुबारा आग्रहपूर्वक पत्र आया तो फिर वे जाने के लिए तैयार हुए और 18 अप्रैल को तीन दिन के लिए लखनऊ चले गये। उनके जाते समय हम दोनों में बोलचाल भी करीब-करीब बन्द थी।

खैर, इन तीन दिनों का मैंने खूब इस्तेमाल किया। वैसे भी काम करने में मैं कभी आलस नहीं करती थी। न पहले करती न अब। पर मशीन तो नहीं हूँ न ! पंडितजी की अनुपस्थिति में मैंने शिवशर्माजी को रसोई का भार दे दिया। जया-जेता को देखने का भार ऊपरवाली बौदि को दिया। मंगलजी मेरी थीसिस की अनुक्रमणिका को टाइप करने में मदद करने लगे और मैं दूसरे अध्यायों को टाइप करने में सुबह से रात तक लगी रही। इस तरह उनके आने तक अपना काम समाप्त करके रख दिया।

**लखनऊ :** राहुलजी ने 18 अप्रैल के पूर्वाह्न में चीन-यात्रा के आगे के अध्याय को टाइप करवाया, फिर तिब्बती कोश-कार्य का काम करते रहे। वह इसे सितम्बर से पहले ही समाप्त कर देना चाहते थे, क्योंकि श्रीलंका जाने पर फिर पुस्तक के लिए सन्दर्भ-सामग्री नहीं मिल सकती थी। फिर रात की गाड़ी से वे लखनऊ के लिए रवाना हो गये।

अगले दिन (रविवार, 19 अप्रैल) सुबह 8.30 बजे पंडितजी लखनऊ पहुँच गये। स्टेशन से सीधे वे बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क गये। वहाँ भिक्षु प्रज्ञानन्दजी से मिलना था, पर वे ज्वर से पीड़ित थे। उनको देखते हुए वे यशपालजी के गृह में गये। उन्हीं के यहाँ ठहरे भी। लखनऊ पार्टी कान्फ्रेन्स में उन्हें कई साथी मिल गये। प्रादेशिक पार्टी कान्फ्रेन्स में वे थोड़ी देर के लिए गये। अपराह्न में वे तिब्बत के बारे में बोले। आजमगढ़ के तीन एम. एल. ए. से भी उनकी वहाँ भेंट हुई। उनमें से श्री झारखण्डे राय भी थे जिनमें पंडितजी ने विशेष परिवर्तन होते नहीं पाया। यहाँ बहुत-से मित्र वर्षों के बाद पंडितजी से मिले थे। रात को कवि-सम्मेलन का आयोजन था। उसमें राहुलजी ने उद्घाटन किया और भाषण दिया। थोड़ी देर तक कविताएँ भी सुनीं और 11 बजे रात को डेरे पर आकर सो गये।

20 अप्रैल की डायरी में वे लिखते हैं–"साढ़े 10 बजे गये पासपोर्ट आफिस में। काम की नौकरशाही। दो रुपये देकर इन्दोनेसिया, लंका, सिंगापुर, मलाया के नाम जोड़ने के लिए रसीद और फार्म दे आये। कमला की तो यहाँ इस वक्त नहीं हो सकती। फार्म पर कमला का और मजिस्ट्रेट का भी हस्ताक्षर होना चाहिए। बिना कराये ही अपना भरकर दे आये। थोड़ी देर के लिए कान्फरेन्स में गये। साथी सज्जाद जहीर मिले। पाँच सदी की हिन्दी काव्यधारा की रूपरेखा बतलाई। उर्दू भाग को संग्रह करने का काम सज्जाद ने लिया और हिन्दी संग्रह का काम नामवरसिंह ने लिया।

**देहरादून :** उस दिन अपराह्न में वे थोड़ी देर सोये। फिर उदयनारायण तिवारीजी से कुछ देर तक बातें होती रहीं। रात पौने 8 बजे की गाड़ी से देहरादून के लिए उन्होंने प्रस्थान किया। दूसरे दिन (21 अप्रैल) सुबह 10 बजे से कुछ पहले वे घर पहुँच गये। घर पहुँचने पर उन्हें यह देखकर संतोष हो गया कि "कमला ने थेसिस टाइप कर डाला। अब चार पृष्ठ और बाकी रहते हैं।" उस दिन उन्होंने अपने कोश का काम भी किया। दूसरे दिन से थीसिस को देखते रहे मेरे साथ। 23 अप्रैल को उन्होंने चीन-यात्रा का अगला अध्याय लिखवाया। मेरी थीसिस को भी देखते रहे। 24 अप्रैल को उन्होंने थीसिस देखने का काम समाप्त किया और उसे जिल्द बाँधने के लिए भेज दिया। उसके बाद वे अपना कोश-कार्य देखने में लग गये। 28 को ही रात को उन्होंने लंका-यात्रा के लिए मेरी राय पूछी तो मैंने उनकी इच्छा को देखकर आपत्ति नहीं की, क्योंकि मेरे आपत्ति करने पर भी वे जाने से रुकनेवाले तो थे नहीं। फिर खामखा झगड़ा क्यों करती। उसी दिन उन्होंने लंका में अपने आने की स्वीकृति भेज दी। भाई मंगलजी भी नेपाल लौट गये।

अब पंडितजी को देहरादून की गर्मी असह्य लग रही थी। रात को मच्छर तंग करते। मसहरी में सोने से पसीना होता था, चारपाइयों में खटमलों की भरमार हो गई थी। इन सब के कारण भी उनका दिमागी चिड़चिड़ापन और बढ़ रहा था। जहाँ हम रहते थे, वहाँ बिजली के पंखे की सुविधा नहीं थी। ऐसी गर्मी को सहन न कर सकनेवाले पंडितजी अब सीलोन की गर्मी बर्दाश्त करने का निश्चय कर रहे थे, जिससे मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। अप्रैल की 28-29 तारीख हो चुकी थी। पंडितजी गर्मी से बहुत परेशान रहने लगे, मुझे उनको परेशान देखकर बहुत दुःख होता था। हमने मसूरी जाने का निश्चय करके वहाँ एक फ्लैट ले भी लिया था। पर अभी डॉ. धर्मेन्द्र का डी. लिट्. का निबन्ध पंडितजी के पास जाँच के लिए आया था। वह बड़ा काम था, इसलिए

यह काम समाप्त करके ही वे मसूरी जाने की सोच रहे थे। पर 30 अप्रैल को एक दिन के लिए ही उनको मसूरी जाना पड़ा।

**मसूरी :** श्री मुनीश्वरनाथ जुत्शी के द्वितीय पुत्र इंजीनियर योगीश्वर जुत्शी का विवाह-समारोह मसूरी में हो रहा था, उसी में राहुलजी भी आमंत्रित थे। विवाह-भोज हैकमेन होटल में आयोजित था। बहुत लोग आये हुए थे। कुछ भाषण भी हुए और हमारे पंडितजी भी बोले। शाम को सत्येकतुजी की पत्नी श्रीमती सुशीलादेवी के साथ पंडितजी अपने पुराने नीड़ हैपीवेली तक टहलते हुए गये, लेडली दम्पती से मिलने। अब तक तिब्बत में क्रांति हो जाने के कारण श्री दलाईलामाजी सदल-बल मसूरी में आकर बिड़ला हाउस में ठहरे हुए थे। उनकी सुरक्षा के लिए वहाँ पुलिस का कड़ा पहरा था। सड़क पर बत्तियाँ भी खूब जल रही थीं। उन दिनों भारत सरकार दलाईलामाजी के साथ आये हुए व्यक्तियों को भी प्रतिदिन के हिसाब से खर्च दे रही थी। हैपीवेली की वर्षों से खाली पड़ी किदवई की कोठी भी तिब्बती शरणार्थियों के लिए ली गई थी। इस समय मसूरी में सनसनी थी। तिब्बत तथा दलाईलामाजी इस समय चर्चा के विषय बने हुए थे। उस रात को राहुलजी डॉ. सत्यकेतुजी के घर लक्समौंट में ठहरे और देर तक इसी विषय में मित्र तथा मित्र-परिवार के साथ बातचीत होती रही। दूसरे दिन 1 मई को सबरे 9 बजे की बस पकड़ी और 11 बजे अपने घर-परिवार में आ गये।

**देहरादून में :** 2 मई को पंडितजी ने किताबों के 7 बक्सों को ठीक करके लखनऊ भेज दिया। वहाँ से भिक्षु प्रज्ञानन्दजी कलिम्पोंग रवाना कर देनेवाले थे। हम लोग कुछ ही दिन बाद मसूरी जानेवाले थे, इसलिए वहाँ के लिए ले जाने के सामान भी आज ही ठीक करते रहे, जिसमें काफी समय लग गया। 3 मई को शाम को पर्वतीय सांस्कृतिक प्रदर्शनी देखने पंडितजी हम सबको लेकर गये। यह कार्यक्रम देहरादून के परेड मैदान में हो रहा था। राहुलजी निर्णायकों में से एक थे। यहाँ गढ़वाली, कुमाऊँनी, नेपाली, हिमाचली आदि पर्वतीय लोकनृत्य, लोकगीत प्रस्तुत किये गये। लोककला के तो पंडितजी सदैव प्रशंसक ही रहे। आज के इस कार्यक्रम में उन्होंने बहुत आनन्द लिया। कुमाऊँ के श्री मोहन उप्रेती की टोली द्वारा प्रस्तुत लोकनृत्य और लोकगीत सर्वश्रेष्ठ चुने गये। इसमें पंडितजी और अन्य सभी निर्णायक सहमत थे।

4 मई को गर्मी बहुत प्रखर थी। गर्मी के मारे पंडितजी बहुत परेशान रहे। दिन में गर्मी से और रात को मच्छरों से। मच्छरों से उनको बहुत नफ़रत थी, सो ही नहीं सके। 5 मई को मंगलवार पड़ा। आज भी उनका वही हाल रहा। दिन उनको असह्य हो गया। अब कल तो यहाँ से मसूरी के लिए चल देना था।

## मसूरी में राहुलजी का अंतिम निवास

इस बार हम लोगों ने मसूरी के कुल्हड़ी बाजार के पास हरि लॉज काटेज का एक बहुत छोटा-सा फ्लैट किराये पर लिया था। अतः 6 मई को देहरादून में दिन-भर की गर्मी किसी तरह बिताकर शाम को 5 बजे 12 रुपये में पूरी टैक्सी लेकर साढ़े 6 बजे पिक्चर पैलेस बस स्टैण्ड पर पहुँच गये और 8 कुलियों की पीठ पर सामान लदवाकर हरि लॉज काटेज पहुँच गये। पंडितजी को गर्मी से राहत मिली, सबकी जान में जान आई। श्री शिवशर्माजी से हम लोगों को बड़ी सहायता मिली।

7 मई को पंडितजी ने 'चीन में क्या देखा' के पृष्ठों को दोहराया, क्योंकि दिल्ली से इस पुस्तक को छापने के लिए पाण्डुलिपि की माँग आई थी। शाम को वे परिवार के साथ लण्ढौर बाजार तक घूमने गये। वहाँ उनके पुराने मित्र किशनसिंहजी की बीवी मिलीं। दुकानदार दूकान की बिक्री से संतुष्ट दिखाई दे रहे थे। चिर-परिचित बाजार को देखकर पंडितजी बहुत प्रसन्न हो रहे थे। अभी सैलानियों की भीड़ नहीं आई थी। 9 मई को राहुलजी अपनी चीन-यात्रा की पाण्डुलिपि का संशोधन करते रहे। डॉ. धर्मेन्द्रनाथ की थीसिस को भी देखना था। दिल्ली से रूसी अध्यापक की नियुक्ति के लिए परीक्षक की हैसियत से पंडितजी को निमंत्रण आया। अब एक दिन के लिए दिल्ली जाने का प्रोग्राम बन गया। वर्षों पहले पंडितजी ने ल्हासा (तिब्बत) में रहते समय तिब्बती-संस्कृत कोश की पाण्डुलिपि तैयार की थी। अब बिहार सरकार उसे छापना चाहती थी, पर उस समय सम्भव न हो सका। पाण्डुलिपि आज भी अप्रकाशित अवस्था में है। बिहार सरकार ने इस कोश

को छापने के लिए अनुमानित खर्च का ब्यौरा माँगा था। कोश की पाण्डुलिपि बिहार रिसर्च सोसायटी के पास पहुँच भी गई थी। किन्तु इतने वर्षों तक उसका क्या हुआ, कुछ पता नहीं चल सका। जब सोसायटी के निदेशक अस्करी साहब थे, तब यह पाण्डुलिपि ले ली गयी थी। इस बार 1993 में पता चला कि यह पाण्डुलिपि विश्वभारती के डाक्टर सुनीतिकुमार पाठक के पास है और वह उसके आधार पर अपनी डिक्शनरी बना रहे हैं। मैंने पंडितजी की उस पाण्डुलिपि को मुझे लौटा देने की माँग की थी, पर अभी तक उनका कोई उत्तर नहीं आया।

उन दिनों श्री दलाईलामाजी के मसूरी आकर रहने से वहाँ खूब सरगर्मी थी। जासूस लोग भी भरे हुए थे। हमारे पंडितजी हाल ही में चीन की यात्रा कर आये थे। अतः 10 मई, रविवार को चीन-भारत-मैत्रीसंघ की सभा में तिब्बत की घटनाओं और समस्याओं के बारे में भाषण हुए। राहुलजी ने भी व्याख्यान दिया। मसूरी आने के दिन से ही पंडितजी का शाम को रोज टहलने जाने का नियम बन गया। वे ज्यादातर किताब घर या उससे थोड़ा आगे रिवेयरा तक जाया करते थे। दिन-भर वे 'चीन में क्या देखा' की आवृत्ति करते। मसूरी में मई के महीने में भी राहुलजी गर्मी महसूस कर रहे थे। 12 मई को उन्होंने 11 से 4 बजे तक 'चीन में क्या देखा' की आवृत्ति कर डाली। अब उसकी दूसरी प्रतियों का संशोधन करना रह गया। पहले यह काम मंगलजी कर दिया करते थे। फिर वे शाम को टहलने निकल पड़े। 13 मई को भी उन्हें खूब गर्मी लग रही थी। दिन में संशोधन का काम करते रहे और शाम को सपरिवार टहलने निकले।

14 मई को श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय का फिर पत्र आया। वहाँ पंडितजी On Condition पर जा सकते हैं, ऐसा उन्होंने सोचा। सामान के लिए थामस कूक में प्रबन्ध हो सकता है। विश्वविद्यालय वालों ने इस बार भारत में लंका के उच्चायुक्त तथा लंका में भारत के उच्चायुक्त को भी लिख दिया था। पर विद्यालंकारवाले चाहते थे कि राहुलजी जून के महीने में ही श्रीलंका आयें। पत्र इस प्रकार लिखा गया था :

*THE VIDYALANKARA UNIVERSITY OF CEYLON,*
*K E L A N I Y A*
*CEYLON.*
*29th April 1959*

*Maha Pandit Sri Rahula Sankrityayana Esqr.*
*193, Old Dalanwala,*
*Dehradun,*
*India.*

*Dear Sir,*

*I am directed by the Vice- Chancellor to acknowledge with thanks your air letter dated the 20th April 1959, and to inform you the following.*

*2. You are authorised to travel with your family in the airconditioned class of the Indian Railways.*

*3. When an officer is coming to this country, on a contract of service with the government or with a Government sponsered institution like an University, the normal practice is that the officer is authorised to meet his travelling expenses including his baggage and library and the expenses so incurred will be reimbursed to the officer on his arrival in the island. That is indeed for the purpose of convinience and to obviate audit querries. However, I am prepared to contact Thos Cooks (Travel agents) and to request them to book your passage etc. provided you are pleased to inform the*

*University of the date of your departure from India and the place of departure etc. We are prepared to extend you all facilities in this regard.*

*4. As regards your travel documents, I am enclosing a letter I have written to the Ceylon High Commision in India and the Indian High Commision in Ceylon.*

*5. Please keep me informed of your Programme.*

*Yours faithfully,*
*Sd/-*
*Registrar.*

20 मई को वहाँ से एक और पत्र लिखा गया :

*THE VIDYALANKARA UNIVERSITY OF CEYLON*
*K E L A N I Y A*
*CEYLON*
*20th May, 1959.*

*Maha Pandit Sri Rahula Sankrityayana Esqr.*
*Hari Lodge,*
*Mussoorie*
*India.*

*Dear Sir,*

*We are in receipt of your air letter dated 14th 5. 1959.*

*We have noted that you would be assuming duties in your post in October, 1959.*

*It would facilitate matters if you would be pleased to inform us of the names, and also the ages in the case of children, the probable date of departure from India and the railway station from where you would entrain, so that this information can be supplied to Thos; Cook & Son Travel Agents.*

*We would also like to know in advance whether or not your family will be accompanying you to Ceylon, in order that we may take steps to provide suitable accomodation for you. If you so desire we shall probably be able to secure on rent for you a house in the vicinity of the University.*

*Yours sincerely,*
*Sd/-*
*Registrar.*

पंडितजी अपने काम से बचे समय में मेरी थीसिस को भी देख रहे थे। अभी नेपालीवाला अंश शेष रह गया था। रुचि बदलने के लिए 'तिब्बती कोश' का काम भी वे करते जाते और थीसिस का काम भी। 17 मई को गर्मी कुछ कम लगी, दिन में वर्षा भी हुई। दिन-भर वे कोश का काम ही करते रहे। शाम को नियमित टहलने गये। 18 मई की दिनचर्या भी पहले जैसी रही। 19 मई को जब वे शाम को परिवार के साथ टहलने जा रहे थे तो उनको लगा कि "सी. आई. डी. का आदमी बराबर पीछे-पीछे रहता रहा है कई दिनों से। आज पूछ लिया, उसने स्वीकार किया। पंत (गृहमंत्री) का विभाग हमारे लिए अंग्रेजों के वक्त से ही जागरूक है।"

**दिल्ली-मार्ग :** 20 मई को राहुलजी दिल्ली के लिए प्रस्थान करते हैं। मसूरी से दोपहर साढ़े 3 बजे चले और पाँच बजे देहरा स्टेशन पर पहुँच गये। प्रथम श्रेणी में ट्रेन में बर्थ मिल गई। आराम से गये। मेहताजी स्टेशन पर आ गये थे। उनको कुछ लिखवा दिया।

**दिल्ली में धौलपुर हाउस में :** 21 मई की सुबह वे दिल्ली पहुँचे। गर्मी बहुत लग रही थी उनको, पर यहाँ के लोग उसे कम कह रहे थे। पी. पी. एच. में गये और 'चीन में क्या देखा' की पाण्डुलिपि दे आये। वहाँ से श्रीलंका के दूतावास में वीसा के लिए गये, पर काम नहीं बना। आज छुट्टी का दिन था। दोपहर ढाई बजे वे धौलपुर हाउस में लेंग्वेज कमीशन में गये। साक्षात्कार के लिए दो ही प्रत्याशी थे। दो में से एक को रूसी अध्यापक के लिए चुनना था। शायद वीर राजेन्द्र ऋषिजी को चुन लिया गया था। मध्याह्न भोजन पंडितजी ने माचवेजी के साथ चीनी ढंग का किया। शाम का चाय-पान एम्बेसेडर रेस्तराँ में श्रीमती सत्यवती मलिक तथा जयचन्दजी के साथ हुआ। पंडितजी को उसी दिन देहरा जानेवाली गाड़ी पकड़नी थी। ट्रेन में मुश्किल से बैठने-भर को जगह मिली। रात को सो नहीं सके, लोगों की बड़ी भीड़ थी। 22 मई की सुबह वे देहरादून स्टेशन पहुँचे और टैक्सी लेकर 10 बजे तक मसूरी में अपने परिवार के पास पहुँच गये। शाम को टहलने गये।

**मसूरी में :** 23 मई को जया को 103° बुखार के साथ छोटी चेचक निकल आई। जेता स्कूल गया था, किन्तु शाम को उसको भी बुखार और चेचक निकल आई। दोनों बच्चे एक साथ ही बीमार पड़े। पिताजी बच्चों के पास ही बैठे रहे। वे आज विशेष काम नहीं कर सके। उनसे मिलने के लिए पूर्वाह्न में डॉ. चन्द्रगुप्त सपत्नीक आये। पत्नी संगीत की विशेषज्ञा। रात के समय डॉ. उदयनारायण तिवारीजी के दामाद श्री प्रमोद अपने मित्र के साथ आये। इसलिए पंडितजी आज शाम को टहलने भी नहीं जा सके। 24 को भी बच्चे बुखार से बीमार रहे। पंडितजी उनके पास ही बैठे रहे, उनका कहीं बाहर जाना नहीं हुआ। स्वयं पंडितजी को भी जब-तब सिर में पीड़ा हो रही थी। सिर के आगे की दाहिनी ओर ज्यादा पीड़ा मालूम होती थी। मेरी थीसिस को कल युनिवर्सिटी भेज देना था, इसलिए 25 मई को 200 रुपयों का ड्राफ्ट बनवा लाये। 26 मई को थीसिस को युनिवर्सिटी भेज दिया। पंडितजी कोश का काम करते रहे, पर बीच में सिर दर्द के कारण उनको उठना पड़ा। 27 मई को उन्होंने लंका में श्री प्रज्ञाकीर्तिजी को लिख दिया कि वे 8 जून को देहरादून से प्रस्थान कर महीने के अन्त तक लंका पहुँच जायेंगे। उस दिन शाम को वे कुछ दूर तक टहलने गये।

इन दिनों आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री भटनागरजी मसूरी आये हुए थे। 28 मई को पंडितजी उनसे मिलने गये और देर तक बातें कीं। 'पेकिंग रिव्यू' का तिब्बत अंक भी उसी दिन उनको मिल गया। 29 मई को भी पंडितजी दिन-भर तिब्बती कोश का काम करते रहे। फिर शाम को दूर तक टहलने गये। जया-जेता का बुखार आज उतर गया था, सिर्फ मिजल्स की पपड़ी उतरनी रह गई थी। 30 और 31 मई को भी वे कोश का काम करते रहे। 31 मई को श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयजी (शेरो-शायरी के लेखक) उनसे मिलने आये। दोनों मित्रों में देर तक बातें होती रहीं। ज्यादातर उर्दू-काव्यधारा के सम्बन्ध में बातें हुईं।

1 जून से राहुलजी लगातार कोश का काम करने में लग गये। शाम को नियमित टहलने जाते। रास्ते में पुराने परिचितों से भेंट हो ही जाती। 4 जून को उन्हें मसूरी में भी बहुत गर्मी लगी, इसलिए कोश का काम नहीं कर सके। 5 और 6 जून को कोश का काम पूर्ववत् चला। 5 की रात को देहरादून से मेहताजी का भेजा आम और लीची का पार्सल आ गया। 6 जून को भी वे दिन-भर कोश का काम करने में ही लगे रहे। 7 जून को मेहताजी अपनी थीसिस के कुछ अंश को लेकर पंडितजी को दिखाने आये। उन्होंने देख दिया। कोश का काम आज बहुत नहीं कर पाये। शाम के समय श्री मुनीश्वर पाण्डे देहरादून से आये, उन्हीं के साथ पंडितजी टहलने के लिए गये। 9 और 10 जून को भी उनका कोश का काम जारी रहा। तिब्बती शब्दों का अर्थ लगाने का काम भी साथ-साथ चला। 10 जून को सहारनपुर के डॉ. बुद्धप्रकाशजी पंडितजी से मिलने आये। इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से ही इतिहास में डी. लिट्. की डिग्री प्राप्त की थी। पंडितजी को उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अगले दिन (11 जून) डॉ. बुद्धप्रकाशजी आये और पंडितजी उनके साथ घूमने निकले। 12 और 13 जून को भी वे कोश-कार्य में व्यस्त रहे। शाम को टहलने का नियम भी पालन करते रहे। 14 जून को वे लण्ढौर में डॉ. बुद्धप्रकाशजी के यहाँ मध्याह्न भोजन के लिए आमंत्रित थे। उस दिन भोजन के बाद लण्ढौर से कुछ आगे तक घूमने गये। 15 जून को भी उनका डाक्टर साहब के साथ खूब सत्संग रहा। 17 जून को वे घर पर ही रहकर कोश का काम करते रहे। आज से डॉ. रोयरिक की तिब्बती पुस्तक से शब्द

लेना आरम्भ कर दिया। मसूरी में उस समय सैलानियों की भीड़ तो थी, पर खर्च करनेवाले लोग कम थे। इसलिए वहाँ की चीजें बिक नहीं रही थीं। 17 जून की डायरी में वे लिखते हैं–केरल में कांग्रेस और दूसरी पार्टियाँ कम्युनिस्ट सरकार के खिलाफ उपद्रव मचा रही हैं। शायद नेहरू सरकार वहाँ दखल दे, और अमेरिका से कर्ज लेने में सफलता प्राप्त करे।

18 जून को पंडितजी ने कमला और बच्चों को देहरादून घूमने भेज दिया और तीनों शाम को लौट आये। 20 जून को मसूरी में श्री दलाईलामा का प्रेस कान्फ्रेन्स होनेवाला था। इसमें भाग लेने बाहर से बहुत-से पत्रकार आये थे, जिनमें से एक राणा जंगबहादुर (कानपुर) भी थे। 19 जून को वह पंडितजी से मिलने आये। 20 जून को पंडितजी नियमित रूप से कोश का काम करते रहे। उस दिन की उनकी डायरी के अनुसार–"10 बजे श्री दलाईलामा ने तीन पृष्ठ का वक्तव्य प्रेस कान्फ्रेन्स को दिया। प्रश्नोत्तर में भी बहुत-सी बातें कहीं, चीन के विरुद्ध–जबर्दस्ती–हमसे हस्ताक्षर करवाया गया 1951 में। पण्छेन लामा चीनी गुड़िया, 50 लाख चीनी तिब्बत में बसा दिये गये। ल्हासा और आसपास में 65000 तिब्बती को चीनियों ने मार डाला। हजार मठ जला दिये गये, हजारों साधु (लामा) मारे गये। चीनी लोग तिब्बत से तिब्बती जाति और बौद्ध धर्म का उच्छेद करना चाहते हैं। हम यहाँ बराबर रहने नहीं आये हैं। भारत में और बाहर भी घूमेंगे। आशा है, भारत अल्जीरिया की तरह हमारी भी सहायता करेगा। हमारा मंत्रिमण्डल बराबर काम कर रहा है। तिब्बत की खबरें रोज रोज हमें मिल रही हैं। 1950 की स्थिति में तिब्बत के होने पर ही हम लौटेंगे।" सुरखङ्-के भी पास में बैठे थे। बड़े भाई ने जवाब भी दिया। दलाईलामा नामशेष होने जा रहे हैं।

21 जून को पंडितजी अपने पुराने इलाके हैप्पीवेली की तरफ घूमने गये। वे लिखते हैं–"हर्नक्लिफ (अपने पुराना घर) को देखा। मुहल्ले के लोगों जॉन लेडली, बारबरा (मिसेज लेडली), गूगनलाला, रतिलाला परिवार, शादीलाला आदि से भेंट हुई। कितनी आत्मीयता थी सबसे। डाक्टर राम, कुन्दनलालाजी की स्त्री बुढ़िया, धोबिन का पति हर्न ली का चौकीदार, बूढ़े लाला, कितने लोग चले गये।" उस हैप्पी वेली इलाके में दलाईलामाजी के आकर रहने से इन व्यापारी लालाओं को कोई लाभ न हुआ, बल्कि दलाई लामा के रहने से इस इलाके में दूसरे सैलानी लोग नहीं आये। उस दिन हैप्पी वेली का परिदर्शन कर पंडितजी रात के साढ़े 8 बजे घर लौटकर आये।

22 जून को पंडितजी ने मध्याह्न भोजन श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयजी के यहाँ किया। उनको मेरी थीसिस की भी चिन्ता थी, क्योंकि वे थीसिस का सारा काम हो जाने के बाद अपनी लंका-यात्रा के लिए तैयार बैठे थे। शाम को टहलना तो नियमित रहा। उस समय सैलानियों की भीड़ के कारण मसूरी में भी पानी का अकाल पड़ रहा था। हमारे घर के स्नान-कोष्ठक में तो पानी आता ही नहीं, रसोईघर में भी एक घंटे के लिए थोड़ा-थोड़ा आता है। 23 जून–"पानी का अभाव आज फ्लश पर भी हो गया। पानी के लिए कहा गया और बिजलीवाला रात को आया। अन्धेर नगरी यही है। चेयरमैन जगन्नाथ शर्मा को लिखने का कोई फल नहीं।" अब मसूरी में वर्षा हो रही थी। वर्षा में भी पंडितजी टहलने के लिए निकल जाते थे। घर में दिन-भर रहकर वे बराबर तिब्बती कोश का काम करते रहते। 28 जून को डाक्टर भटनागरजी से उनकी भेंट हुई। पंडितजी ने मेरी थीसिस का काम जल्दी निबटा देने के बारे में उनसे अनुरोध किया।

24-25-26-27 जून को पंडितजी ने कोश के काम में ही अपने को व्यस्त रखा। बस, शाम के समय वे टहलने निकल जाते–कभी परिवार के साथ और कभी अकेले ही। 28 जून को मेहताजी देहरादून से आये, अपनी थीसिस का काम उन्होंने पंडितजी को दिखाया और तीन घंटे बाद चले भी गये। पंडितजी अब कोश के लिए अंग्रेजी-तिब्बती कोश को भी देख रहे थे। शब्दों में निशान लगाते रहे। यदि इंडेक्स-कार्ड उनके साथ होते तो शब्दों को उन पर उतारते जाते।

29 जून को मसूरी में रात-भर मूसलाधार वर्षा होती रही। अब सैलानी लोग भागने लगे। पंडितजी का कोश का काम चलता रहा। कुछ मिलनेवाले लोग भी आते रहे। शाम को वे घूमने चले गये। 30 जून को इलाहाबाद के श्री तायलजी की लड़की की शादी के लिए राहुलजी का आशीर्वचन और फोटो लेने के लिए

शर्मा-इंजीनियर (देहरादून-प्रयाग से) आये। उसी दिन कलिम्पोंग से बाबू राधामोहनप्रसाद जी की चिट्ठी उनके नाम आई। पंडितजी ने उनसे दार्जिलिंग में एक मकान देख देने के लिए कह रखा था। राधामोहन बाबू ने पत्र में लिखा था—दार्जिलिंग का मकान उनको बहुत पसन्द आया। वह मुझे भी पसन्द होगा और कमला को भी। उसके लिए 1000 रुपयों का चेक बयाना के लिए भेज दिया। 25 हजार नहीं तो 26 हजार में मकान मिल जायेगा। 5 शयनकक्ष, 5 स्नान कोष्ठक, दो भोजनशाला, 2 रसोई, 3 पेंटरी, 2 नौकरों का घर है। बाजार, कॉलेज आदि नातिदूर है।" पंडितजी यह जानकर संतुष्ट हो गये।

अगले दिन (1 जुलाई) रास्ते में डॉ. भटनागरजी के साथ उनकी भेंट हो गई। उनको पता चला कि कमला की थीसिस के लिए परीक्षकों को नियुक्त करने का काम भटनागरजी ने कर दिया है। इस महीने शायद परिणाम मालूम हो जाये, फिर तो अगले मास वाइवा होने की सम्भावना है। यूँ तो पंडितजी को श्रीलंका शीघ्र ही जाना था, किन्तु वे तब तक के लिए अपना कार्यक्रम स्थगित रख रहे थे जब तक कि मेरी थीसिस का सारा काम निबट जाये। वे इसीलिए बेचैन थे कि जिन्दगी का क्या भरोसा, सारा उत्तरदायित्व जितनी जल्दी पूरा हो जाये, उतनी ही निश्चिन्तता होगी।

2 जुलाई से 8 जुलाई तक राहुलजी की दिनचर्या रही—दिन भर तिब्बती शब्द कोश पर काम करना, फिर शाम को यदि वर्षा न हो तो टहलने के लिए निकलना। रास्ते में बहुत-से मित्रों,परिचितों से उनकी भेंट होती ही थी। इस प्रकार वे अपना समय व्यतीत कर रहे थे। उनके श्रीलंका जाने का मैं बराबर विरोध कर रही थी, क्योंकि उनका स्वास्थ्य अब किसी गरम स्थान में जाकर काम करने योग्य नहीं रह गया था। मुझे आशा थी कि मैं भी कहीं न कहीं पढ़ाने की नौकरी करने लगूँगी, फिर हम लोगों को आर्थिक चिन्ता नहीं रहेगी। परन्तु वे तो विदेश जाने के लिए छटपटाने लगे थे। अन्त में 8 जुलाई को उन्होंने निश्चिय किया कि पहले वे अकेले ही श्रीलंका जायेंगे, और यदि अनुकूल हुआ तो बाद में परिवार को बुलायेंगे। 9 जुलाई को उन्हें भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी का पत्र मिला, जिससे ज्ञात हुआ कि विद्यालंकार सरकारी विश्वविद्यालय है, पर आर्थिक स्थिति तजर्बे में है। उन्होंने उसी दिन भदन्तजी को अपने श्रीलंका जाने के निर्णय की सूचना देते हुए पत्र लिखा था।

इधर पंडितजी की प्रबल इच्छा थी कि दार्जिलिंग में एक मकान खरीदकर परिवार को वहाँ रख दें। इसलिए मकान के सम्बन्ध में राधामोहन बाबू से पहले से ही लिखा-पढ़ी चल रही थी। 11 जुलाई को उन्हें पता चला कि वकील साहेब मकान देखने के लिए दार्जिलिंग गये हैं।

अपने काम के अलावा पंडितजी अपने बच्चों के मनोरंजन का भी ख्याल रखते थे। इसलिए जया-जेता को लेकर वे 12 जुलाई को 'स्पुतनिक' फिल्म देखने गये और लौटते समय वर्षा से भीग गये। अन्य समय वे निरन्तर कोश का काम करते रहते। 13 जुलाई को काशी नागरी प्रचारिणी सभा से छप रहे लोक साहित्य खण्ड के कुछ प्रूफ आये, जिनमें मैथिली, मगही और भोजपुरी (अपूर्ण) के प्रूफ थे। शाम को उनका टहलना भी नियमित चलता रहता। पर लंका जाने से पहले ही समाप्त कर देने के लिए वे कोश के काम में पूरी तरह लगे हुए थे। इन्डेक्स कार्ड पर शब्दों को उतारना भी उन्होंने शुरू कर दिया था।

16 जुलाई को श्री लोकेशचन्द्र गुप्त (पुत्र डॉ. रघुवीर) अपनी पत्नी सहित पंडितजी से मिलने आये। उन्होंने बतलाया कि वे भी तिब्बती-संस्कृत कोश प्रकाशित कर रहे हैं। 17 जुलाई को उन्होंने अपने कोश के लिए 'मेघदूत' से भी शब्द लिये। आज दिन-भर वर्षा होती रही। इसलिए घूमने नहीं जा सके।

**देहरादून को :** 18 जुलाई को वे 12.30 बजे टैक्सी से चलकर 2 बजे देहरादून पहुँचे। वहाँ बँगला सर्किल स्टेट बैंक कर्मचारी सम्मेलन में 6 बजे गये और उन्होंने सभा का उद्घाटन भाषण किया। देहरा की गर्मी उनको परेशान करनेवाली थी। दोपहर का समय उन्होंने धर्मशाला में बिताया। यूँ देहरादून में श्री गयाप्रसाद शुक्लजी से मिलना हो ही जाता था। उस दिन भी वे पहले ही उनके यहाँ जाकर मिल आये थे। शुक्लजी भी उस सम्मेलन में आये। सभा समाप्त हो जाने पर सवा 7 बजे टैक्सी से लौटे। रास्ते में थोड़ी दूर बादल-से रहे फिर चाँदनी रात रही। 10.30 बजे रात को मसूरी में घर पर पहुँच गये।

**मसूरी में :** 19 जुलाई को मसूरी में वर्षा होती रही। पंडितजी का इन्डेक्स कार्ड पर लिखने का काम समाप्त हुआ। इनके शब्दों को जमा करके कोश में जोड़ने के लिए आगे कार्य चलता रहेगा। उसी शाम को कानपुर के कामरेड संतोष कपूरजी पंडितजी से मिलने आये।

20 जुलाई को हम सब को लेकर पंडितजी टेन कमाण्डमेंन्ट्स (Ten Commandments) फिल्म देखने गये। फिल्म चार घंटे की थी। इसे देखने श्री दलाईलामाजी भी सदल-बल आये थे। उनके दर्शन के लिए लोगों की भीड़ थी। अगले दो दिन (21-22 जुलाई) वे पहले की तरह ही कोश-कार्य में व्यस्त रहे। 23 जुलाई की शाम को श्री दिनकरजी तथा बैरिस्टर मुकुन्दीलालजी तथा श्री मेहरबानसिंह राहुलजी से मिलने आये। हरि सदन कुल्हड़ी बाजार में ही होने के कारण अब उनसे मिलनेवालों के लिए सुविधा थी। इस वर्ष मसूरी में लोगों का सबसे बड़ा आकर्षण रहे श्री दलाईलामाजी। बैरिस्टर मुकुन्दीलालजी की तो धर्मगुरुजी से बातचीत भी हो गई थी। 25 को ही बैरिस्टर वोरोन भी पंडितजी से मिलने आये जो संस्कृत में सुपठित थे।

मसूरी में नौकरों की दिक्कत ही रहती थी। उस समय हमारे यहाँ 14-15 वर्ष का एक गढ़वाली लड़का सुरेन्द्र काम करता था। उसे 26 जुलाई से बुखार आ गया। यद्यपि बुखार पहले हल्का-हल्का आ रहा था, पर उस दिन तो 104° तक पहुँच गया और वह बेहोश-सा पड़ा हुआ था। पंडितजी के मित्र बौद्ध शम्भुनाथ जी को दिखलाने पर कहा कि सुरेन्द्र को शायद टाइफाइड हो गया है। वैदजी ने दवा दी। उस दिन पंडितजी उस बेचारे बीमार लड़के को अस्पातल नहीं ले जा सके, क्योंकि शाम हो गई थी। कल ले जाना तय हुआ। बीमार की तीमारदारी करते हुए पंडितजी अपना कोश-कार्य भी करते रहे थे। अपनी व्यस्तता उनको अच्छी लगती थी। 27 जुलाई को सुरेन्द्र को डांडी पर लिटाकर पंडितजी सिविल अस्पताल ले गये और वहाँ उसे भरती करा दिया। उस दिन भैया (जेता, चारवर्षीय) ने बड़ी दिक्कत पैदा की थी। वह दो बार भागकर सड़क पर पहुँच गया था। दूसरे घर के नौकर को भेजकर उसे पकड़ लाये। वर्षा से भीग गया था वह। पंडितजी ने मुझसे कहा—मैं तो बच्चों पर हाथ नहीं उठाता, पर तुम उसे दो थप्पड़ लगा दो ताकि आगे वह ऐसी शैतानी न करे। पंडितजी विदेश जाने की भी तैयारी कर रहे थे। लंका जाने के लिए वीसा चाहिए और वीसा प्राप्त करने के लिए उनको भारत में श्रीलंका के उच्चायुक्त के दिल्ली स्थित दफ्तर में जाना होगा। यदि मेरी मौखिक परीक्षा भी उसी समय हो तो उसके लिए वे आगरा भी जायेंगे। 28 जुलाई को आगरा युनिवर्सिटी से डॉ. बुद्धप्रकाश की डी. लिट्. की थीसिस पंडितजी के पास आई। वीसा के लिए उन्होंने अपना पासपोर्ट आदि डॉ. प्रभाकर माचवे के पास दिल्ली भेज दिया। आज भी उन्होंने कुछ समय तक कोश का काम किया।

29 जुलाई को वे सुरेन्द्र को देखने अस्पताल गये। आज उसकी हालत कुछ बेहतर थी। इससे पंडितजी कुछ आश्वस्त हुए। घर आकर फिर वे कोश-कार्य देखने में व्यस्त हो गये। 30 और 31 जुलाई को भी वे यही काम करते रहे। अब शब्दों को कापी पर उतारना उन्होंने आरम्भ कर दिया।

1 अगस्त से उन्होंने कोश की प्रेसकापी बनाना शुरू किया। सुरेन्द्र को देखने अस्पताल भी गये। अब वह ठीक हो रहा था। 2 अगस्त को कोश की 20 पृष्ठ प्रेसकापी तैयार की। 3 अगस्त को उसे 40 पृष्ठ तक पहुँचाया। आगरा युनिवर्सिटी से कोई पत्र न आने के कारण वे झुँझला भी रहे थे, क्योंकि पत्र आने में देर हुई तो फिर सारा काम ठप्प हो जायेगा। उसी दिन जया को फिर तेज बुखार आया, उसके मम्पस (गले में सूजन) निकल आया था। अब 21 दिन तक स्कूल नहीं जा सकेगी। 4 अगस्त को श्री दिनकरजी राहुल बाबा से मिलने आये। कोश का काम आज भी कुछ देर तक किया। 5 अगस्त को जया का बुखार उतर गया था, पर गले में अभी भी सूजन है। आज पंडितजी किसी काम से सुबह देहरादून गये। वहाँ दोपहर को काम समाप्त करके शाम की टैक्सी से मसूरी लौट आये। वे सब काम अपनी ओर से जल्दी-जल्दी निबटा देना चाहते थे, क्योंकि उनका सीलोन जाने का समय निकट आ रहा था।

6 अगस्त को पंडितजी जेता को लेकर डॉ. ज्वालाप्रसाद की डिस्पेन्सरी में गये और दोनों ने टाइफाइड आदि का इन्जेक्शन लगवाया। इन्जेक्शन लेने के कारण 7 अगस्त को उनको कुछ बुखार रहा रात-भर और दिन में शरीर सुस्त रहने से कोई काम नहीं कर सके। इसी दिन मेरे थीसिस सम्बन्धी सारे कागजात आगरा

युनिवर्सिटी भेज दिये गये। 8 अगस्त को कलकत्ता के न्यू एज पब्लिशर्स, 22 केनिंग स्ट्रीट से 'मध्य एशिया का इतिहास' के अंग्रेजी और बंगला अनुवाद के लिए शर्तनामा आया, उसी दिन पंडितजी ने हस्ताक्षर करके लौटा भी दिया। उस दिन कमला और जया ने भी टाइफाइड का इंजेक्शन लगवाया।

राहुलजी आर्थिक चिन्ता से मुक्त हो नहीं पा रहे थे। उन्होंने 10 अगस्त को किताब महल के मालिक श्रीनिवास अग्रवालजी को लिख दिया कि सालाना हजार रुपये और पहले के हिसाब का बाकी 1500 रुपया देना ही होगा, क्योंकि अग्रवालजी सालाना 6 हजार रुपया अग्रिम देने में आनाकानी कर रहे थे। यदि न देना चाहें तो शर्त इन्कार करने को पत्र भेज दिया। उसी दिन उन्होंने टंडनजी और श्री डांगे पर पाँच पृष्ठों का लेख स्वयं टाइप करके छपने भेज दिया। कुछ देर कोश का काम भी उन्होंने किया। मसूरी में अभी वर्षा चल ही रही थी।

पंडितजी को सीलोन के लिए प्रस्थान करने में विलम्ब हो रहा था। वे हमारी थीसिस का परिणाम जानने के लिए उत्कंठित थे, इसलिए रोज आगरा युनिवर्सिटी की चिट्ठी की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर 11 अगस्त को भी वहाँ से कोई सूचना नहीं मिली। अगले दिन भी कोई पत्र नहीं आया। उनका मन परेशान था, फिर भी आज दिन-भर वे कोश-कार्य करते रहे।

**आगरा :** 13 अगस्त को उन्होंने स्वयं आगरा जाने का निश्चय किया और दोपहर को 2.30 बजे घर से चले और 5 बजे देहरादून के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। सेकण्ड क्लास में उनको सोने की जगह मिल गई। 14 अगस्त को 11 बजे दिन में पंजाब मेल से वे रानीमंडी स्टेशन पर उतरे। वहाँ से पहले वे युनिवर्सिटी के असिस्टेंट रजिस्ट्रार के पास गये। उनको मालूम हुआ कि अभी मौखिक परीक्षा की तिथि निश्चित नहीं हुई, क्योंकि परीक्षकों ने मेरी थीसिस पर सम्मति अभी तक नहीं भेजी। श्री भटनागरजी (वाइस चांसलर) इसके लिए बहुत ताकीद कर रहे थे। उस समय तो पंडितजी को आशा नहीं थी कि कल तक परीक्षकों की रिपोर्ट आ जायेगी। उस रात वे पंडित हृषिकेश चतुर्वेदी के गृह में ठहरे। श्री हरिशंकर शर्मा से भी मिल आये।

इस बार के 15 अगस्त के दिन पंडितजी आगरा में ही थे। वहाँ स्वतंत्रता-दिवस की धूम थी। यांत्रिक उत्सव सुबह ही हो चुका था। 1 बजे दिन में वे श्री भटनागरजी से मिलने उनके निवास स्थान पर गये। उनको पता चला कि कमला की थीसिस पर सम्मति आ गई है। भटनागरजी ने उनको कल के लिए बुलाया। पंडितजी की उस दिन की डायरी के अनुसार–"शाम को रत्नदीप का विशेष अधिवेशन हुआ। 10-12 उर्दू कवियों ने शेर पढ़े, अच्छे और चुभते हुए थे। तीन हिन्दी के कवि भी थे, पर एक को छोड़कर बाकी फीके लगे। कवि-सम्मेलन 11 बजे तक चला। पंडित हृषिकेशजी की सारी चल सम्पत्ति उनका साला ले गया है, वे चिन्तित हैं। चाय-पान श्री कमलेशजी के यहाँ हुआ। किरणजी (डॉ. किरणकुमारी अग्रवाल) के कॉलेज में सबेरे ध्वजोत्तोलन किया।" (15 अगस्त, 59)

**दिल्ली मार्ग :** 16 अगस्त को आगरा में 10 घंटे वर्षा होती रही, जिसके कारण आगरा के कुछ कच्चे मकान भी गिर गये। पंडितजी युनिवर्सिटी गये। उन्हें पता चला कि "परीक्षकों की सम्मति अनुकूल आ गई है। 29 से 31 अगस्त के बीच मौखिक परीक्षा होगी, जिसके लिए कमला को यहीं आना होगा।" पंडितजी को मसूरी लौटना था। अतः उस दिन दोपहर 2 बजेवाली ट्रेन उनको मिली जो एक घंटा लेट चलनेवाली थी। ट्रेन में जगह मिलेगी या नहीं यह भी डर था, इसलिए पंडितजी जल्दी रानीमंडी स्टेशन पहुँचे। वर्षा के कारण वे बहुत भीग गये थे। अगर लेट न होती तो उन्हें पंजाब मेल न मिलती। जगह बस बैठने-भर की मिल गई। ट्रेन में उनको मैकश अकबराबादी भी मिले जो बड़े भद्रपुरुष थे। रात को 9 बजे से कुछ पहले ही नई दिल्ली स्टेशन पर उतरकर पंडितजी माचवे जी के घर (यार्क होटल, कनाट प्लेस) पहुँचे। माचवेजी के ससुर श्री पारनेरकरजी भी उस समय वहाँ आये हुए थे।

**देहरा मार्ग :** 17 अगस्त की सुबह पंडितजी श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारजी से मिलकर 'आजकल' के लिए दिवोदास का एक अध्याय दे आये। लौटकर फिर पार्टी-आफिस में श्री पी. सी. जोशी तथा कामरेड फारुकी आदि से मिलकर पी. पी. एच. गये। उनकी पुस्तक 'चीन में क्या देखा' 96 पृष्ठ तक छप गई थी। चाय-पान

अम्बेसेडर रेस्तराँ में चन्द्रगुप्तजी तथा मन्मथनाथजी के साथ किया। माचवेजी 9 सितम्बर को साल-भर के लिए अमेरिका जा रहे थे। साढ़े 8 बजे रात को टैक्सी से पंडितजी दिल्ली स्टेशन गये। देहरा जानेवाली गाड़ी मसूरी एक्सप्रेस में सेकेण्ड क्लास में सोने की जगह मिल गई। उस दिन उनको दिल्ली में बहुत गर्मी लगी।

**मसूरी :** वर्षा नहीं थी, पर बादल छाये हुए थे। 18 अगस्त को सुबह 8.30 बजे देहरादून स्टेशन पर ट्रेन से उतरे और 10 बजे मसूरी (पिक्चर पैलेस) बस स्टैण्ड पर वे पहुँच गये। बच्चे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किताब महल के श्रीनिवास अग्रवालजी अब भी पुस्तकों की रायल्टी के सम्बन्ध में कोई पक्की बात नहीं कर रहे थे। 19 अगस्त को राहुलजी ने बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखीं। कलकत्ता में न्यू एज पब्लिशर्स ने अग्रिम रायल्टी के तौर पर 500 रुपया चेक से भेजा था। उस शाम को जेता को भी मम्पस हो गया। स्कूल से ही बुखार लेकर लौट आया। अब उसको 21 दिन तक घर में रहना था। 20 अगस्त को डायरी में पंडितजी ने लिखा—"लोकायत (देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय लिखित) पढ़ते रहे। भिन्न-भिन्न विषयों को इतना-इतना मिला दिया गया है कि लोकायत दर्शन का पता पाना आसान काम नहीं है। तत्वाऽप्लव सम्बन्ध का उन्हें पता नहीं है। शक्तिस्युन्त का सम्बन्ध लोकायत से जोड़कर उस पर ही बहुत लिख डाला।

"17-8 की लिखी राधामोहन बाबू की चिट्ठी मिली। मकान 25000 रुपये पर ठीक हुआ। मालिक ने हजार रुपया बयाना ले लिया। अब कलकत्ता से कलिम्पोंग और दार्जिलिंग जाना होगा।"

अगले दो दिन 21 और 22 अगस्त को पंडितजी 'लोकायत' पढ़ते रहे और शाम को टहलने भी गये। आगरा से मौखिक परीक्षा की कोई सूचना न आने से वे फिर बेचैन होने लगे। 25 अगस्त को उन्होंने आगरा के डॉ. विश्वनाथप्रसादजी, तथा डॉ. किरणकुमारी गुप्ता को पत्र लिख दिया। शाम को नियमित टहलने गये। पंडितजी को पत्र-पत्रिकाओं से लेखों की माँग भी आती थी। अतः 23 अगस्त को ही 'ज्ञानोदय' के लिए 'हमारी भाषाएँ और परिभाषाएँ' लेख लिखा। एक मराठी 'रत्नदीप' के लिए भी लिखने लगे। निश्चय किया कि एक लेख 'त्रिपथगा' के लिए भी लिख डालना है। लोकायत पुस्तक को पढ़ ही रहे थे। उनको इस पुस्तक का नाम गलत लगा। उनके विचार से इसका नाम होना चाहिए था 'Lokayat and other Essays'। आगरा से सूचना न आने से वे झुँझलाने लगे। 26 अगस्त को भदन्त आनन्दजी का भेजा हुआ सिंहल भाषा शिक्षक (अंग्रेजी के साथ) उनको मिल गया। आनन्दजी विद्यालंकार पहुँच गये थे। 27 अगस्त को पंडितजी के लिए दिन बहुत अच्छा था। उनको आज अक्तूबर का जैसा दिन लगा। आकाश निर्मल, आज वर्षा भी नहीं हुई। उन्होंने डॉ. भटनागर को एक्सप्रेस पत्र पूर्वाह्न में ही भेज दिया था। पर शाम 4 बजे के बाद आगरा से रजिस्ट्रार का तार आ गया—मौखिक परीक्षा 30 अगस्त को 12 बजे दिन में हिन्दी संस्थान में रखी है। पंडितजी ने तार से ही आने की सूचना दे दी।

**देहरा-दिल्ली मार्ग :** उन दिनों जया-जेता अभी-अभी बुखार से उठे थे और स्कूल जाना शुरू कर दिया था। अब पंडितजी के साथ मुझको आगरा जाना था, किन्तु मसूरी में बच्चों को किसके पास छोड़कर जायें, इसकी चिन्ता हो रही थी। पड़ोस में ही जुत्शी दम्पती रहते थे। उनके यहाँ ही जया-जेता को रखकर पंडितजी 28 अगस्त को मुझको लेकर 1 बजे किंक्रेग बस अड्डे पर आये। टैक्सी तुरन्त मिल गई। देहरादून में राजपुर रोड पर फोटो स्टूडियो में ब्रह्मदेवजी से मिलकर वे मेहताजी के घर पुराना डालनवाला गये। थोड़ी देर के लिए पुराना डालनवाला के ही यशोदा भवन के मालिक सूरजभान अग्रवालजी के यहाँ भी हम गये। उस समय कुछ वर्षा हो रही थी। ठाकुर विश्वनारायणसिंह के परिवार तथा रोय परिवार (बौदि) का आतिथ्य स्वीकार किया और मेहताजी के यहाँ होते स्टेशन गये।

**आगरा :** 29 अगस्त की सुबह दिल्ली में ट्रेन बदलकर 11 बजे के बाद हम लोग आगरा पहुँचे। "पं. हृषिकेश चतुर्वेदीजी के मकान पर गये, वहाँ कमला और हमारा सत्संग चलता रहा। फिर हमलोग ताजमहल, सिकन्दरा और कैलाश देख आये।" शाम को डेरे पर आकर मैं तो अगले दिन की—मौखिक परीक्षा के लिए तैयारी करती रही और पंडितजी चतुर्वेदीजी तथा अन्य मिलनेवालों से वार्तालाप करते रहे। 30 अगस्त को उन्होंने लिखा—"दिन साफ और गरम भी रहा। कमलेशजी और किरणजी के पास से होते हम हिन्दी संस्थान

में गये। डॉक्टर मुंशीराम शर्मा (डी. ए. वी. कॉलेज, कानपुर) और डॉक्टर विश्वनाथप्रसादजी मौखिक परीक्षा के परीक्षक थे।…एक घंटे बाद परीक्षा शुरू हुई। कमला सफल रही।"

पंडितजी मेरे सुपरवाइजर थे, उनको भी परीक्षक होना था, किन्तु मैं उनकी पत्नी थी इसलिए उनको परीक्षा कक्ष से बाहर बैठना पड़ा। करीब आधा घंटे के बाद मौखिक परीक्षा समाप्त हो गई। सुपरवाइजर को शायद उसी समय मेरी सफलता का संकेत मिल गया था। इसीलिए उन्होंने 30 अगस्त की डायरी में लिखा–"1949 का संकल्प आज पूरा हुआ। कमला पी-एच. डी. हो गई।" 1949 में मैं उनके पास आई थी, तभी से उन्होंने मुझे पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया था। आज उनको प्रसन्नता होनी ही थी।

**आगरा-दिल्ली-देहरा-मार्ग :** बेचारे दोनों बच्चों को हम मसूरी में छोड़ आये थे, अतः जल्दी से जल्दी हमें उनके पास पहुँचना था। 30 अगस्त को कुछ देर तक पंडितजी और मैं श्री सतीशचन्द्र चतुर्वेदीजी के साथ उनकी कार पर घूमे, बच्चों के लिए आगरे का दालमोठ, पेठा आदि पंडितजी ने खरीदे। दिल्ली जानेवाली गाड़ी लेट थी, पर हमें जगह मिल गई। डब्बे में एक पंजाबी परिवार चार बच्चों सहित बैठा था जो इण्डोनेशिया से आ रहा था और वहाँ की भाषा बोल रहा था। पंडितजी को सुनकर बड़ा अच्छा लगा। उसी दिन 7 बजे शाम को नई दिल्ली स्टेशन पर उतरकर हम दोनों माचवेजी के घर (यार्क होटल) में गये और रात को वहीं पर विश्राम किया।

31 अगस्त को पंडितजी दस बजे के बाद निकले। श्री पी. सी. जोशी से मिलकर वे पी. पी. एच. में गये। उनकी पुस्तक 'चीन में क्या देखा' अब 15 तारीख सितम्बर तक छपनेवाली थी। लौटकर वे माचवेजी के गृह में गये। शाम को चन्द्रगुप्तजी के यहाँ चाय-पान था। उसके बाद रात को श्रीमती अमृता प्रीतमजी के यहाँ का स्वागत निमंत्रण स्वीकार किया। माचवेजी शीघ्र ही अमेरिका जानेवाले थे, इस उपलक्ष्य में वहाँ पार्टी का आयोजन था। श्री अज्ञेय तथा श्रीमती कपिला वात्स्यायनजी से भी वहीं पर भेंट हुई। उसी रात को 9 बजे की मसूरी एक्सप्रेस गाड़ी से हम लोग रवाना हुए। गाजियाबाद में ट्रेन चार घंटे रुकी। कोई मालगाड़ी उसी लाइन पर गिरी थी। गाड़ी के हटाये जाने पर ही हमारी ट्रेन चली।

1 सितम्बर का सबेरा मुजफ्फरनगर से पहले हुआ। दिन के एक बजे गाड़ी देहरादून पहुँची–पाँच घंटा लेट। यहाँ वर्षा पहले से ही हो रही थी और देहरा पहुँचने पर और जोर की हो गई। वर्षा कम हो जाने पर हम दोनों ने बस पकड़ी और रास्ते-भर वर्षा होती रही, और हम लोग तीन बजे के बाद मसूरी पहुँच गये। बच्चे अच्छी तरह से थे।

## मसूरी में अंतिम पखवाड़ा

2 सितम्बर को राहुलजी ने बहुत-सी चिट्ठियाँ भेजीं, फिर शाम को वे टहलने गये। अगले चार दिन मसूरी में लगातार वर्षा होती रही। शाम को वर्षा कम हो जाने पर वे घूमने निकलते। किन्तु ज्यादा वर्षा में वे बाहर नहीं जा सकते थे, तब घर में ही बैठकर कुछ पढ़ते या परिवार के साथ बातें करते–लिखने का काम भी करते थे। चिट्ठियाँ बहुत आ रही थीं जिनका उत्तर लिखने में उनको बहुत समय देना पड़ता था। 7 और 8 सितम्बर को उन्होंने अपने उपन्यास 'दिवोदास' का कुछ अंश स्वयं टाइप किया। 7 सितम्बर को आनन्दजी का पत्र आया, जिससे मालूम हुआ कि श्रीलंका से भारत में रुपया भेजना कठिन होगा। श्रीनिवास अग्रवाल (किताब महल) दो-चार दिन बाद ही राहुलजी के पत्र का उत्तर देंगे, यह भी उनको उस दिन पता चला।

8 सितम्बर को पंडितजी 85 रुपये में हावड़ा का टिकट ले आये। यात्रा 14 सितम्बर को शुरू होनेवाली थी। कई बार लिखने पर अभी भी उनका इन्कमटैक्स क्लियरेन्स सर्टिफिकेट नहीं आया था। इसलिए उन्होंने फिर इन्कमटैक्स आफिसर को पत्र लिखा। 9 सितम्बर को उन्होंने 'दिवोदास' के टाइप किये अंश को श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ('आजकल' के सम्पादक) के पास भेज दिया। 10 सितम्बर को उन्हें आयकर अदायगी का प्रमाण-पत्र भी मिल गया। पंडितजी श्री जयशंकर प्रसादजी की 'कामायनी' को सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य के रूप में बहुत पसन्द करते थे। कलकत्ता निवासी पंडितजी भगवद्दत्त शर्मा राकेशजी ने इसका संस्कृत में अनुवाद पंडितजी के ही

आग्रह पर किया था। उसके प्रकाशन की बात पहले से चल रही थी। इधर शायद पंडितजी ने ही डाबर कम्पनी के मालिक श्री अशोक वर्मनजी को इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए तैयार किया था। 11 सितम्बर को संस्कृत 'कामायनी' की भूमिका उन्होंने लिख डाली। यह पुस्तक बाद में प्रकाशित भी हुई।

अब पंडितजी को मसूरी में दो दिन और रहना था, इसलिए वे अपने मित्रों-परिचितों सबसे मिल रहे थे, विदा ले रहे थे। उस दिन 11 सितम्बर अपराह्न में श्री कपूरजी की चित्रशाला में राहुलजी की श्रीलंका-यात्रा के उपलक्ष्य में चाय-पार्टी का आयोजन था। बहुत-से मित्र-परिचित उसमें आमंत्रित थे।

इधर किताब महल के मालिक श्रीनिवास अग्रवालजी और राहुलजी के बीच में कुछ कड़वा सम्बन्ध हो गया था। किताब महल में जबसे राहुलजी की पुस्तकें छपने लगी थीं, तब से लेखक को 20 प्रतिशत रायल्टी दी जाती थी। परन्तु इधर दो साल से अग्रवालजी ने पंडितजी की पुस्तकें न बिकने की शिकायत करते हुए रायल्टी का प्रतिशत घटाकर 15 प्रतिशत करना चाहा। पंडितजी ने अपनी ओर से शर्त रखते हुए लिखा कि सालाना अग्रिम 6 हजार रुपये दें तब रायल्टी में 5 प्रतिशत कम कर देंगे। साल में छः हजार रुपये रायल्टी-भर की पुस्तकों की बिक्री तो थी ही, बल्कि कभी 8 हजार भी बन जाते थे। पंडितजी की शर्तें मानते हुए श्रीनिवासजी ने 6 हजार सालाना अग्रिम देना स्वीकार किया और एक-डेढ़ साल तक उतनी रायल्टी दी भी। पर उसके बाद वह अपनी बात पर अटल नहीं रहे और पंडितजी को मानसिक कष्ट देना शुरू कर दिया। सालाना 6 हजार रायल्टी का भुगतान प्रकाशक की ओर से होता रहा होता तो पंडितजी को जीविका के लिए श्रीलंका जाने की आवश्यकता नहीं थी। पर किताब महल की चालबाजी से वह तंग आ गये। इधर लंका जाने से पहले हिसाब साफ हो जाना चाहिए, "या तो आप 6 हजार सालाना अग्रिम रायल्टी दीजिए या फिर 20 प्रतिशत के हिसाब से रायल्टी ही दीजिए।" किताब महल के इस व्यवहार से पंडितजी बहुत क्षुब्ध हो गये थे। उन्होंने लंका जाने से बहुत पहले ही किताब महल को चिट्ठी लिख दी थी, जिसके उत्तर की प्रतीक्षा वे कर रहे थे। 12 सितम्बर 1959 की डायरी में उन्होंने लिखा–"श्रीनिवासजी की आज भी चिट्ठी नहीं आई। आज फिर एक्सप्रेस लेटर भेजा, लिख दिया–चाहे 6000 सालाना दें या 20 प्रतिशत रायल्टी का हिसाब बेबाक करें। डॉ. उदयनारायण तिवारी को अपना पंच बनाकर पंचायत कर लो। तिवारीजी को भी पत्र वैसे ही लिख दिया।"

उस दिन उन्होंने मध्याह्न भोजन जुत्शीजी के यहाँ किया, मैं और बच्चे भी साथ गये थे। शाम को वे किताबघर, सेवोय होटल जानेवाली सड़क पर सपरिवार टहलने गये। मसूरी की सड़क पर उनका टहलना यही आखिरी बार हुआ।

# 6
# राहुलजी का लंका-प्रवास

विद्यालंकार विश्वविद्यालय, सीलोन से राहुलजी के पास बराबर पत्र आ रहे थे। जून 1959 से ही विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग को सँभालने का उनसे अनुरोध किया जा रहा था। उनकी यात्रा की सुविधाओं के लिए भी थामस कूक ट्रैवल एजेन्सीज की चिट्ठियाँ आईं। अतः राहुलजी ने श्रीलंका जाने की पक्की तैयारी की। कुछ चिट्ठियों के नमूने यहाँ पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं :

*Air Mail*
*(Seal)* *THE VIDYALANKARA UNIVERSITY OF CEYLON*
*KELANIYA, CEYLON.*
*1st July, 1959.*

*Dear Professor Rahula Sankrityayana,*

*I am sending herewith a copy of a letter addressed to Messers Thos. Cook & Sons regarding your travel arrangements. We trust that these arrangements will suit you.*

*We have been endevouring to secure on rent a dwelling house for you, but there are not many houses to choose for. There is a house within a distance of about a mile from the University, but there is no suitable school in this area for the children. Professor Hema Chandra Ray whom you probably know lives here at Kelaniya and sends his children by car to School in Colombo.*

*We shall be glad to be of assistance in any other matter on hearing from you.*

*Yours faithfully,*
*Sd/-*
*Registrar.*

*(Seal)* *THE VIDYALANKARA UNIVERSITY OF CEYLON*
*KELANIYA, CEYLON.*
*1st July, 1959.*

*Messers Thos. Cook & Son.,*
*Colombo.*

*Travel arrangements--Professor Rahula Sankrityayana.*

*Gentlemen,*

*Professor Rahula Sankrityayana who has been appointed to the Chair of Philosophy of this University is expected to leave Dehra Dun on 8th September, 1959. He will travel via Calcutta*

*reaching there on or about 20th September, 1959. He is expected to arrive at Dhanuskodi on or about 25th September, 1959.*

*We shall be obliged if you would be so good as to provide travel facilities at the expense of this University for Professor Sankrityayana, his wife and two children of ages 6 and 4, by train in air-conditioned class. If so desired by Professor Sankrityayana, air passage may be provided from Trichinopoly or Madras to Colombo.*

*Please be good enough to communicate with professor Sankrityayana for any further information.*

*A remittance on account of the charges will be sent on hearing from you. The address of Professor Sankrityayana is 193, Old Dalanwala, Dehra Dun, India.*

*Yours faithfully,*
*Sd/-*
*Registrar.*

*THOS. COOK & SON*
*(Continental and Overseas) Ltd.*
*LLOYD'S BUILDING, PRINCE STREET*
*P. O. BOX NO. 36. COLOMBO.*
*TELEPHONE : ""2278/9*
*Date 6/7/59*

*Ref. R/53877/RLP.*

*Prof. Rahula Sankrityayana,*
*193, Old Dalanwala,*
*Dehra Dun, India.*

*Dear Sir,*

*We are pleased to inform you that the Registrar of the Vidyalankara University of Ceylon, Kelaniya, Ceylon, has requested us to provide air-conditioned class rail transportation from DehraDun to Colombo via Calcutta. If desired by you to provide air passages from Madras or Trichinopoly to Colombo.*

*We regret to inform you that we are not in a position to comply with the request as both our offices at Delhi and Calcutta have ceased to exist.*

*In the case of residents in India no rail tickets could be issued from this office as the validity of rail tickets is only nine days from the date of issue. It may be possible to issue air passage tickets from Madras to Colombo on a permit issued by the Controller of Exchange, Echelon Square, Colombo, for which we are forwarding the necessary form to the Registrar of the University direct.*

*Yours faithfully,*
*for Thos. Cook & Son.*
*(Continental and Overseas) Ltd.*
*Sd/*

*c.c. to*
*The Registrar,*
*The Vidyalankara University of Ceylon,*
*Kelaniya.*

## प्रवास की तैयारी

पंडितजी ने जब सीलोन जाने का विचार पक्का किया, तो विद्यालंकार विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर तथा रजिस्ट्रार ने यही सोचा कि राहुलजी परिवार के साथ लंका आ रहे हैं। ठहराने के लिए उनको एक मकान किराये पर ले देने का उन लोगों ने निश्चय किया। साँथ ही पंडितजी यदि सपरिवार आ रहे हैं तो उनके पास सामान भी ज्यादा रहेगा, यह सोचकर उन लोगों ने थामस कूक ट्रेवल एजेन्ट को लिख दिया कि कम्पनी हर प्रकार की सुविधा राहुलजी को दे। इसी से पता चलता है कि विद्यालंकार युनिवर्सिटी के लोग राहुलजी को किसी भी प्रकार से श्रीलंका ले आना चाहते थे। यद्यपि उनकी उम्र अब 66 वर्ष की हो चुकी थी, और कई प्रकार के रोगों से ग्रस्त थे, विशेषतः मधुमेह से, पर राहुलजी का सीलोन जाने का उत्साह देखते ही बनता था। इस उत्साह-रूपी आग में घी का काम रहे थे उनके कुछ तथाकथित मित्र लोग। उस समय किसी मित्र का ध्यान उनके गिरते स्वास्थ्य की ओर नहीं गया। सब लोग उनके लंका जाकर काम करने के लिए 'वाह-वाही' दे रहे थे। अगर उनके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने या स्वास्थ्य की चिन्ता करनेवाला कोई था तो वह सिर्फ कमला थी। हिमालय में वर्षों तक विचरण करनेवाला शरीर जो मसूरी की जून-जुलाई की गर्मी से भी परेशान हो जाता था, वह अब लंका की विषुवत रेखा (Equator) की गर्मी को कैसे झेल सकेगा, इसकी चिन्ता मुझे को थी, इसलिए मैं पंडितजी के लंका जाने का बहुत विरोध कर रही थी। पर उस समय मेरी बात पर ध्यान देने की उनको फुरसत नहीं थी। वे हर काम में शीघ्रता इसलिए कर रहे थे कि उन्हें श्रीलंका जाकर विद्यालंकार विश्वविद्यालय में दर्शनाचार्य का पद सँभालना था। उनको अप्रैल में ही वहाँ पहुँचना था, युनिवर्सिटी से चिट्ठी पर चिट्ठी आ रही थी, उनके लिए सब तरह के प्रबन्ध किए जा रहे थे।* पर मेरी थीसिस के कारण ही उनको इतने दिन मसूरी में रुकना पड़ा। अब सारा काम हो गया था। अतः उन्हें जाने की छुट्टी मिल गई।

**देहरा-मार्ग :** आखिर वह दिन भी आ गया जबकि उनको मसूरी छोड़कर जाना था और हम लोग मसूरी में उनके वियोग में तड़पने के लिए पीछे छूट रहे थे। 13 सितम्बर का प्रातःराश जुत्शीजी के यहाँ हुआ। घर से वे 10 बजे पिक्चर पैलेस टैक्सी स्टैण्ड गये। उनको विदा करने के लिए जुत्शी परिवार तथा दूसरे मित्र भी गये, जया-जेता और मैं भी वहाँ तक गये थे। टैक्सी उस समय नहीं मिली, इसलिए बस से जाना पड़ा। उनके अनुसार—"चेहरे सभी के कुम्हलाये हुए थे। कमला को आशा नहीं कि मैं लौटकर आऊँगा।" विदाई के समय न मैं उनके पास गई, न कुछ बोली। उनका श्रीलंका जाना मुझे अच्छा नहीं लगा था। मैंने घोर विरोध किया था, परन्तु हम सबको छोड़कर परिव्राजक महाराज चले ही गये। हमारे हृदय पर क्या बीत रही होगी, उन्हें इसकी परवाह ही कहाँ। मेरे साथ बच्चे भी आँसू बहाते हुए घर लौट आये। मसूरी में मैं और जया-जेता ही रह गये। उस रात देहरादून पहुँचकर वे पंडित गयाप्रसाद शुक्ल के यहाँ रुके। मेहताजी के घर से चार ट्रंक ले आये जिनमें किताबें थीं। श्री किशोरीदास वाजपेयीजी भी आये हुए थे। पंडितजी उनसे बातचीत करते रहे।

## देहरादून से कलकत्ता

14 सितम्बर को डी. ए. वी. कॉलेज की हिन्दी समिति में श्री किशोरीदास वाजपेयी और महापंडितजी का भाषण था। उनका मध्याह्न भोजन उस दिन श्री रूपनारायण मिश्रजी के यहाँ हुआ था। आज शाम को उन्हें कलकत्ता के लिए प्रस्थान करना था। अतः शाम को उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने के लिए शुक्लजी, रूपनारायणजी, धर्मेन्द्र शास्त्री आदि थे। बदरीपुर के सत्येन्द्रजी बासमती के बीज लेकर स्टेशन पर मिले। थोड़ी देर बाद दून एक्सप्रेस गाड़ी पौने सात बजे चली। पं. किशोरीदास वाजपेयीजी हरद्वार तक साथ रहे। सुश्री सत्या गुप्ता अपने पिता के साथ हरद्वार स्टेशन पर पहुँची। वह अपनी थीसिस—कौरवी लोकसाहित्य पर प्रायः लिख चुकी थी। सहयात्री के रूप में भूतपूर्व पेशावर निवासी वकील सेठी मिले। लखनऊ तक उनका साथ रहा।

* थामस कूक का पत्र।

**हावड़ा मार्ग :** 15 सितम्बर को सुबह आठ बजे के बाद दून एक्सप्रेस लखनऊ पहुँच गया। स्टेशन पर बुद्ध विहार के दो भिक्षु, सपत्नीक रमेश सिन्हा, मिले। शाहगंज स्टेशन पर कोई नहीं मिला। विश्वनाथ पाण्डे (दौलताबाद) कल ही वहाँ पहुँचे थे। गाड़ी बनारस होकर जा रही थी। बनारस स्टेशन पर श्यामलाल पाण्डे (राहुलजी के भाई), उदयनारायण पाण्डे (श्यामलाल के बेटे), ज्ञानमण्डल के सत्येन्द्र गुप्त, भैयाजी बनारसी, देवनारायण द्विवेदी आदि मिले। बहुत-से आत्मीय और मित्र स्टेशन पर मिलने आये थे। पं. जगन्नाथ उपाध्याय और उदयनारायण तथा न्यायाचार्य त्रिपाठीजी मुगलसराय तक पंडिताजी के साथ गये। आगे देहरी आन-सोन स्टेशन पर श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय जी कई मित्रों के साथ उनसे मिलने आये। राहुल-परिवार भी साथ में है, यह सोचकर गोयलीयजी भोजन भी ले आये थे। वहाँ से एक एंग्लो-इंडियन मित्र हावड़ा के लिए चढ़े। पंखे के सहारे पंडितजी को गर्मी नहीं लग रही थी। आगरे में ली हुई सुराही ठंडे जल का काम दे रही थी। पंडितजी ने ट्रेन के स्नान-कोष्ठक में नहा भी लिया।

**कलकत्ता :** 16 सितम्बर के सबेरे 7 बजे दून एक्सप्रेस गाड़ी हावड़ा स्टेशन पर कुछ देर से पहुँची। पंडितजी के स्वागत के लिए राकेशजी तथा अशोक बाबू स्टेशन पर मिले। गाड़ी में सामान रखकर वे डाबर भवन चले गये। दिन में विश्राम करके वे घूमने निकले। साथ में श्री नागार्जुन रहे। महाबोधि सोसाइटी में जाकर देवप्रिय जी से मिले। वहाँ से वे श्री वी. के. सरकार से मिलने गये।

इस बार पंडितजी को कलकत्ता में 10 दिन रहना था, इसलिए प्रोग्राम भी उसी तरह बनाया गया था।

17 सितम्बर को अनागारिक धर्मपालजी की जयन्ती समारोह के निमंत्रण पर वे महाबोधि सोसाइटी गये। उन्होंने 'धर्मपालजी की भारतीय बौद्ध धर्म के प्रति देन' के सम्बन्ध में भाषण दिया। उसी दिन विश्वकर्मा-पूजा भी थी। वैद्यनाथ आयुर्वेद भवनवालों ने उनको इस उत्सव में कुछ बोलने के लिए निमंत्रित किया था। अतः वे वहाँ गये और कुछ बोले भी। कल उनको इन्कमटैक्स सर्टीफिकेट का प्रबन्ध करना था, साथ ही कोलम्बो के लिए हवाई जहाज का टिकट लेना था। उनके मसूरी छोड़ने के बाद उनके नाम की कई चिट्ठियाँ आई थीं। मैंने सब चिट्ठियों को एक साथ ही रजिस्टर्ड करके कलकत्ता के पते पर भेज दिया था। उन्होंने उस दिन अपनी दैनन्दिनी में लिखा—"कमला ने पत्र भेजा दिये, पर अपनी ओर से एक भी पत्र नहीं भेजा।" मैं क्यों पत्र भेजती ? वे तो मेरे मन को बहुत दुखी करके चले गये थे। मसूरी में हम तीन प्राणियों को बिना किसी के सहारे छोड़ गये थे। उनका इस अवस्था में विदेश जाना मुझे अच्छा नहीं लगा था, इसीलिए बहुत दिनों तक मैंने उनको कोई पत्र नहीं लिखा।

कलकत्ते में उनके साथ नागार्जुन छाया की तरह थे ही, फिर उनको किसकी चिन्ता रहती ? किन्तु उस समय मेरा यह सोचना गलत था। पंडितजी ऐसे व्यक्ति कदापि नहीं थे कि अपने कार्य के लिए अपने परिवार का बलिदान करें। उन्हें घर-परिवार की चिन्ता रही और अपनी चिन्ता को व्यक्त करते पत्र भी लिखते रहे। कलकत्ता में रहकर वे क्या-क्या कर रहे थे, मेरी नौकरी के लिए कितना प्रयत्न कर रहे थे, इसके बारे में ब्यौरा देते हुए उन्होंने मुझे पत्र लिखे थे, जो इस प्रकार हैं :

[1]

*देहरा / 14-9-59*
*सवा बजे दिन*

*रानी,*

*कल यहाँ पहुँच गया। कल ही मेहताजी के यहाँ से चारों ट्रंक लाया। डॉ. नलिनाक्ष दत्त की पुस्तकें भी मिल गयीं। शाम को 6-25 बजे गाड़ी मिलेगी।*

*सभी मित्र तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे।*

*बच्चों को चुम्बन दें। जुत्शीजी और मोहिनीजी को नमस्कार कहें। तुम और बच्चे बराबर याद आते हैं।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

[2]

*डावर लिमिटेड,*
*142, रासबिहारी एवेन्यू, कलकत्ता*
*17-9-59*

*प्यारी,*

*कल 7 बजे सबेरे हावड़ा पहुँच गया। अशोक बावू और राकेशजी दोनों स्टेशन पर मिले। आज तुम्हारी Redirect की हुई चिट्ठियाँ भी आ गईं। रसीद हस्ताक्षर करके यथास्थान लौटा रहा हूँ।*

*दार्जिलिंग जाना स्थगित करना पड़ा क्योंकि यहाँ मित्रों से काम के लिए मिलना है। कल सरकार वावू से मिला। प्रयत्नशील हैं, अशोक वावू तो हैं ही। और भी 5-6 मित्रों से उसी के लिए मिलना है।*

*अशोकजी मकान के लिए आवश्यक रुपये भेजने के लिए तैयार हैं। वैंकों का हिसाब मँगा लो। मेरे विचार में 3000 रुपये जाने पर मकान के 24000 और खर्च का 1000 का काम हो जायेगा। फिर जरूरत होने पर 1000 और चले जायेंगे। पैसे के लिए चिन्ता न करो। यह भी आशा है कि लंका से भी मैं रुपया भेज सकूँगा। जया के वारे में अशोक वावू ने कहा कि उसकी पढ़ाई का खर्च मैं देना चाहता हूँ। बस इतना ही, और कुछ नहीं चाहता। मैंने कहा, वच्चों के दार्जिलिंग आ जाने पर कहें।*

*तुम तो यही कहोगी कि मैं वनावटी प्रेम वच्चों के साथ दिखलाता हूँ। पर, उसके वारे में तो मेरा मन ही जानता है। जव मिलनेवाले नहीं रहते हैं तो जया-जेता के शब्द कानों में आने लगते हैं। वहुत-वहुत याद आते हैं।*

*सभी तुम्हारे बारे में पूछते हैं। बनारस और डालमिया नगर में तो सपरिवार का ख्याल करके खाना भी आया था। बनारस में आज के स्वामी तथा दूसरे बहुत से मित्र तथा श्यामलाल, उदय आदि आये।*

*यहाँ दिन में भी और रात में भी मित्र आते रहते हैं। सेंगरजी देर रात तक रहे। यहाँ रखी पुस्तकों में से आधी से अधिक कालिम्पोंग लौटाने की हैं। कुछ खराव-सी भी हुईं। नये बक्सों में रखवा देंगे। अशोक वावू के आदमी दार्जिलिंग जाते रहते हैं, वक्स भिजवाये जा सकते हैं। पता लिख दो कि वहाँ कहाँ रखवाये जायें।*

*मैं वरावर यही कहता हूँ कि तुम चिंता मत करो। मेरा शेष जीवन तुम्हारे और बच्चों के लिए है। स्वास्थ्य ठीक है। अपना समाचार लिखोगी तो संतोष होगा।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

[3]

*कलकत्ता*
*26-9-59*

*प्यारी,*

*तुम्हारी 24 सितम्वर की चिट्ठी मिली। यह चिट्ठी दो-तीन दिन में तुम्हारे पास पहुँचेगी। मैं 28 सितम्बर (सोमवार) को यहाँ से उड़कर उसी दिन दोपहर को लंका पहुँच जाऊँगा।*

*दार्जिलिंग कॉलेज में काम के वारे में अशोक बावू भी प्रयत्नशील हैं। श्री बी. के. सरकार (4-8 वोसपाड़ा लेन) भी पूरी कोशिश कर रहे हैं। डाक्टर नलिनाक्ष दत्त के मित्र हैं दार्जिलिंग कालेज के प्रिंसिपल। वह उनको लिख रहे हैं। सभी प्रभावशाली व्यक्ति हैं।*

*मैंने अशोक वावू को तीन हजार रुपया भेजने के लिए कहा, जिसका चेक इस पत्र के साथ जा रहा है। तुम्हें जव जरूरत हो, उनको पत्र लिख देना, वह दो हजार और भेज देंगे। यहाँ से सीधे देहरादून में इलाहाबाद वैंक को दो चेक 250 रुपया मैंने भेजा है।*

*डाक्टर उदयनारायण तिवारी श्रीनिवास से मिलकर वात करनेवाले हैं। वह अगले महीने प्रथम सप्ताह को*

*मेरे पास और तुम्हारे पास भी पत्र लिखेंगे। यदि वहाँ से कुछ रुपया आ जाये, तो यहाँ से क्यों रुपया लिया जाय, इसीलिए नहीं भिजवा रहा हूँ।*

*यह तुम गलत समझती हो कि मैं बच्चों से भागा-भागा रहना चाहता हूँ। आज तक मैंने आर्थिक बातों में किसी के सामने दीनता नहीं प्रकट की। उसे मैं अब नहीं कर सकता।*

*अशोक वाबू जया को खर्च निष्काम भाव से देना चाहते हैं। मैं कह दूँगा, अगले महीने से सौ रुपया मासिक भेजते रहें।*

*जुत्शीजी और मोहिनीजी को नमस्ते कहो। जया और जेता को बहुत-बहुत प्यार। अब पत्र विद्यालंकार युनिवर्सिटी केलनिया (सीलोन) के पते पर भेजना।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

पंडितजी क्योंकि कम-से-कम दो साल के लिए सिंहल जा रहे थे, इसलिए अपने साथ कुछ पुस्तकें भी ले जाना चाहते थे। अतः 18 सितम्बर को उन्होंने सिंहल ले जानेवाली पुस्तकों को चार पेटियों में भरकर तैयार किया। उसके बाद रामजीदास जेटिया लेन, बड़ा बाजार में श्री मणिहर्ष ज्योतिजी से मिलने गये। मणिबाबू उनके बहुत दिनों के मित्र और सहयोगी रहे। उसी दिन 335 रुपये में 29 सितम्बर का टिकट कोलम्बो जाने के लिए उन्होंने लिया।

19 सितम्बर को पंडितजी श्री अशोक वर्मन के साथ कलकत्ता म्युजियम देखने गये। आजमगढ़ आदि जगहों से लायी मूर्त्तियाँ वहाँ नहीं थीं, पर सूचीपत्र हैं बिना छपे। उसी दिन शाम को वे अमेरिकन फिल्म देखने गये, जिसमें भूत-प्रेत की कथा थी। अपराह्न में डाबर हाउस में ही अच्छी गोष्ठी हो गई, जिसमें बहुत-से साहित्यिक आये थे। 20 सितम्बर को वे डेरे पर ही रहे, पर उनसे मिलने के लिए लोग बराबर आते रहे। भारत सरकार के तत्कालीन वित्त विभाग के उपमंत्री श्री बलिराम भगत भी उनसे मिले। भगतजी पटना के रहनेवाले थे, यह बात पंडितजी को श्री नागार्जुन से पता लगी। उस दिन श्री राजकमल चौधरी भी पंडितजी से मिलने आये थे।

21 सितम्बर को पंडितजी अशोक बाबू के साथ पुनः म्युजियम देखने गये। "दोपहर दो घंटे तक म्युजियम के पुरातत्व विभाग को देखते रहे। मौर्य-शुंग-कुषाण-गांधार-गुप्त-मध्ययुगीन मूर्त्तियाँ एवं कलाकृतियाँ देखीं। अशोकजी ने लौटते समय बहुत-सी पुस्तकें कला एवं पुरातत्व सम्बन्धी लीं। आज शाम को भी कितने ही मित्र मिलने आये।" 22 सितम्बर को डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, डा. नलिनाक्ष दत्त आदि मित्रों से मिल आये।

23 सितम्बर के दिन वे लिखते हैं : "पूर्वाह्न में लामा मंदिर देखने गये। छोटा है, चित्रपट आदि है। फिर कहीं नहीं गये। कुछ बंधु-मित्र डेरे पर ही मिलने आये। पहले माताप्रसाद शुक्ला (वकील), फिर आजमगढ़ के व्यवसायी जायसवाल आये। भोजन का आग्रह स्वीकार नहीं किया।" 24 सितम्बर–"आज कई जगह मिलने गये, पहले सरकार महाशय के पास, फिर मित्रालय प्रकाशन (वोल्गा से गंगा, बंगला के प्रकाशक) से होते देवप्रिय (महाबोधि) के पास गये। आज टिकट भेजा साउथ विंग ने। किताब महल से दो पुस्तकें लेते यहाँ आये। तीन बजे रेडियो में सिंहल के बारे में भाषण रिकार्ड कराया, फिर 'स्वाधीनता' अखबार के मित्रों से मिलते यहाँ डेरे पर आये। अब तीन दिन और कलकत्ता (भारत) में रहना है।"

26 सितम्बर की शाम को पंडितजी के सम्मान में साहित्यिक गोष्ठी रही। इसी दिन श्रीलंका के प्रधानमंत्री श्री भंडारनायके की दुखद हत्या हो जाने की खबर मिली। 27 सितम्बर को अशोक बाबू से तीन हजार कर्ज लेकर चेक को मसूरी भेज दिया। ये रुपये दार्जिलिंग में मकान खरीदने के लिए कर्ज के रूप में लिये गये थे। पंडितजी को अब कल कोलम्बो के लिए प्रस्थान करना था।

## कलकत्ता से नागार्जुन के पत्र

[1]

*6-10-59*

*प्रिय कमलाजी,*

*सादर नमस्कार।*

*आपका 3 ता. वाला पत्र अभी-अभी मिला है। यहाँ मैंने बार-बार उन्हें ताकीद की थी कि मसूरी पत्र लिख दीजिए। बार-बार राहुलजी कहते रहे, लिख तो दिया है। कोलम्बो जाने से पूर्व, उस रात को हम साथ ही रहे, क्योंकि सुबह ही दमदम पहुँचना था। वह अशोक बाबू की पत्नी सुधा बर्मन से कई बार कह गये कि "कमला तुम्हारी हम-उम्र है, तुम उसे पत्र जरूर लिखा करो।"*

*खैर, उनकी इस बेरुखी का क्या इलाज है। जया और जेता को छुट्टियों में अपने पास बुलवा लिया करेंगे–ऐसा उन्होंने यहाँ मित्रों से कई बार कहा।*

*मुझसे एक बार कहा था कि "कमला को मेरा यह लंका जाना पसंद नहीं अया।"···लगता था कि वह मन ही मन परेशानी महसूस कर रहे थे और बाहर जाने का मौका छोड़ना नहीं चाहते थे।*

*मैं आपकी दिक्कतें और परेशानियाँ महसूस करता हूँ और सोच नहीं पाता हूँ कि क्या लिखूँ।*

*दार्जिलिंग कॉलेज में आपकी नियुक्ति के प्रसंग में यहाँ वह कई प्रमुख व्यक्तियों से मिले, सभी ने आश्वासन दिया है।*

*आयुष्मती बच्ची जया और चिरंजीव जेता को मेरा प्यार।*

*मसूरी से दार्जिलिंग शिफ्ट होने में यदि मेरी उपस्थिति आवश्यक लगे तो निःसंकोच लिखियेगा।*

*नागार्जुन*

[2]

*14-10-59*

*प्रिय कमलाजी,*

*पत्र मिला। आप डाक्टरेट पा गईं, इस शुभ समाचार से अपार प्रसन्नता हुई है। राहुलजी ने बतला तो दिया ही था। अब आप से सविधि सूचना मिली तो खुशी दुहरी हो गई।*

*उनके पत्र लगातार आपको मिल रहे हैं, तसल्ली हुई। दूर देश में स्वजन नहीं, तो और कौन याद आयेंगे ? यहाँ तो उनका मूड बेरुखी का था, अब तनाव हटा। शायद यह सिंहली समीर का असर हो···पासपोर्ट तो आपके पास भी है न ? अब की गर्मियों में लंका पहुँचकर नुवर एलिया का आनंद उठाने दीजिए बच्चों को। नुवर एलिया लंका का दार्जिलिंग है।*

*29-9 के बाद मैं डावर निवास गया ही नहीं। अब दो-चार दिन के अंदर जाऊँगा।*

*हाँ, राहुलजी मेरे पास एक ट्रंक छोड़ गये हैं। एक चादर (खेस), चमड़े का पुराना बैग, उनका कुर्ता, बूट का जोड़ा···दो-एक छोटी वस्तुएँ और भी होंगी···मैंने पूछा था–इनका क्या करेंगे ? बोले–खुद इस्तेमाल न कर सको तो किसी को दे देना।*

*नागार्जुन*

## कलकत्ता से कोलम्बो के लिए प्रस्थान

**28 सितम्बर 1959 :** "सबेरे वर्षा होती रही। सुबह सवा पाँच बजे प्रस्थान करते समय बन्द हो गई। सपत्नीक अशोकजी तथा नागार्जुन साथ चले। सवा छः बजे दमदम पहुँच गये। राकेशजी भी मौजूद थे। खटराग में (कस्टम) में कुछ समय लगा। घेरे के भीतर कोई नहीं जा सका। सवा सात बजे विमान (एयर इण्डिया इन्टरनेशनल)

उड़ा। बारह हजार फुट पर उड़ा होगा। पर हमारी तो गरमी बहुत कम दूर हुई। ऊँचे उड़ने से देखने के लिए समुद्र और समतल भूमि दिखलाई पड़ी। उत्तर भारतीय यात्री कम ही थे। 10 बजे के बाद मद्रास पहुँचे। यहाँ कस्टम आदि में बहुत समय लगा। किसी तरह छुट्टी मिली। विमान फिर 11 बजे के बाद उड़ा। समुद्र के बीच पथरीला स्थान मिला। पार हो सिंहल के पश्चिम तट से बढ़े। सवा एक बजे सिंहल भूमि पर उतरे। आनन्दजी (भदन्त) तथा दूसरे भिक्षु एवं डाक्टर राय (विद्यालंकार में इतिहास के प्रोफेसर) स्वागतार्थ तैयार थे। पर पासपोर्ट आदि से छुट्टी मिलने में पौन घंटे लग गये। कस्टमवालों ने नहीं देखा।

भिक्षु ने भंडारनायके को मारा, इसलिए भिक्षु जनप्रिय हो गये हैं। बाहर निकलने की हिम्मत नहीं करते। यह स्थिति बहुत दिन नहीं रहेगी। पर कलंक तो लगा ही।

विद्यालंकार में नायक स्थविर प्रज्ञासार, जक्कडु हामदुरु प्रज्ञाराम, भिक्षु स्थविर प्रज्ञाकीर्ति सभी बड़े स्नेह से मिले। मुझे रहना होगा दुमंजिले पर, दो कमरे और असमाप्त स्नानकोष्ठक है।"

## केलानिया (सिंहल) के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में निवास-अध्यापन

राहुलजी कल (29 सितम्बर) से विद्यालंकार युनिवर्सिटी, केलानिया के निवासी हो गये। 29 सितम्बर को उन्होंने लिखा–"वर्षा तो यहाँ अनिश्चित है। दिन साफ रहा, पर नगर में जाने पर बौछार आ गई। भण्डारनायके के शव को देखने के लिए मील-भर का क्यू था। रात 12 बजे तक लोग जाते रहते हैं। पहले भिक्षु कम आते थे, लोग व्यंग्य करते थे, अब ज्यादा आते हैं, हत्या के पीछे दूसरों का हाथ है। पुलिस अभी कुछ नहीं बतला रही है।

डाक्टर के यहाँ दिखा आये। 12 अक्तूबर को फिर डाक्टर के यहाँ क्वारन्टिन पहुँचकर छुट्टी लेनी होगी। तीन सौ रुपये की चीजें खरीदीं, कुछ पुस्तकें, 105 रुपये की घड़ी, 95 का इलेक्ट्रिक शेमर और कुछ कपड़े लिये। शाम को लौटे। स्नानकोष्ठक तैयार न होने से स्नान की दिक्कत है।"

पंडितजी ने अपनी इस यात्रा का रोचक वर्णन करते हुए मुझे और बच्चों को कई पत्र लिखे, जो इस प्रकार हैं–

[1]

*प्यारी बेटी जया,*

*मैं कल ही कलकत्ता से हवाई जहाज पकड़कर 6 घंटे में लंका पहुँच गया। हवाई जहाज में तुम बराबर याद आती रहीं। कलकत्ता से आगे चलने पर एरोप्लेन समुंदर के किनारे-किनारे उड़ा। समुंदर का नीला पानी बहुत अच्छा लगता था। मद्रास से आगे एक बार समुंदर के ऊपर से उड़ना पड़ा। फिर लंका के पहाड़, नदी, खेत पड़े। बहुत तेज उड़नेवाला विमान था। तुम लंका आओगी तो ऐसे ही समुंदर, पहाड़, जमीन दिखाई पड़ेगी। अपना हाल लिखना–पढ़ने में ढिलाई न करना। प्यार।*

*तुम्हारा पापा,*<br>*राहुल*

[2]

*लंका से*

*भैया जेता,*

*नमस्ते।*

*कल तो कलकत्ता से यहाँ आते समय जो मौसी मिली थी, वह उतनी खराब नहीं थी। मिठाई, औरेंज जूस और दूसरी चीजें दे रहीं थी। कुछ लड़के भी थे, तुमसे बड़े ही थे। तुम भी साथ रहते तो कितना मजा रहता। भैया, अब तुम बड़े हो गये हो। मन लगाकर पढ़ना। अम्मा को दुःख नहीं देना। पापा का बहुत-बहुत प्यार।*

*तुम्हारा पापा,*<br>*राहुल*

[3]

*Vidyalankara University*
*Kelaniya, Ceylon,*
*29-9-59*

*प्यारी,*

*कल सात बजे सबेरे कलकत्ता से उड़कर छः बजे शाम को कोलम्बो पहुँच गया। यहाँ पहुँचने में कोई कष्ट नहीं हुआ। यहाँ के प्रधानमंत्री की हत्या के शोक में सारा द्वीप खिन्न है।*

*मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा और है। तुम्हारी और जया-जेता की याद बराबर आती है। नवम्बर में तो तुम दार्जिलिंग जा ही रही हो। अशोक बाबू प्रामाणिक नौकर भेजने को तैयार हैं, जो तुम्हें मसूरी से दार्जिलिंग पहुँचा देगा। अगर चाहो, तो अशोक बाबू को चिट्ठी लिख देना। नक्शों को अशोक बाबू के पास रखने के लिए भेज देना, इसका कारण है। कलकत्ता से भेजे तीन हजार रुपये मिल गये होंगे। अशोक बाबू को चिट्ठी लिख देना कि 3000 हजार रुपये कर्ज का मिला। और यह भी कि आपका कर्ज है,ऐसा पत्र लिख दें। इसकी इन्कमटैक्स के समय जरूरत पड़ेगी।*

*डाक्टर उदयनारायण तिवारी तथा श्री वाचस्पति पाठक श्रीनिवास से बात करनेवाले हैं। उसके बाद उसके परिणाम के बारे में लिखेंगे। कांछा (मंगलजी) के बहनाई दो दिन मिलने आये थे। और बातें पिछले पत्र में लिख चुका हूँ।*

*बहुत-बहुत चुम्बन। पत्र की आशा में,*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

30 सितम्बर को पंडितजी पुस्तकें पढ़ते रहे। वे सिंहली भाषा पर अधिकार प्राप्त करना चाहते थे, क्योंकि विश्वविद्यालय में उनको सिंहली माध्यम से पढ़ाना था।

1 अक्तूबर को भण्डारनायके का शव उनके जन्मग्राम में दफनाया गया। यह भार्या (श्रीमती भण्डारनायके) का आग्रह था। वैसे सारा कृत्य बौद्धों का हुआ। 50 भिक्षु विद्यालंकार से भी गये थे।

आज विश्वविद्यालय की कक्षाओं के लिए पाठ्यपुस्तकों के बारे में पंडितजी ने चर्चा की।

3 अक्तूबर को पंडितजी लिखते हैं–"10 बजे अपने मित्र श्री माणिकलाल पटेल के घर गये। साथ में भदन्त आनन्दजी तथा दो भिक्षु भी गये। पटेल-पत्नी ने हमारी बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी हैं। बाजार से कुछ चीजें खरीदीं। वहाँ अस्पताल में सीवलीजी और नाराविल धर्मरत्न हामदुरु से भी मिले। कमला का तार आनन्दजी के नाम आया मेरे बारे में कुशल-समाचार के लिए। उत्तर दे दिया। आज तो पत्र भी मिल गया होगा।"

पंडितजी आज भी (4 अक्तूबर) सिंहली भाषा और दूसरी पुस्तकें पढ़ते रहे। साथ ही सीवलीजी से बात होती रही। सीवली, प्रज्ञाकीर्ति, प्रज्ञाराम तीनों लिक्खाड़ हैं। अच्छी ख्याति रखते हैं। प्रज्ञाकीर्ति की विद्या को विशेष ख्याति मिली है।

5 अक्तूबर को भी पंडितजी सिंहली भाषा पढ़ते रहे। फिर प्रज्ञाराम स्थविर जी से उन्होंने बातें कीं। उनकी बड़ी विचारशक्ति है। उन्होंने महासांघिक विनयवस्तु की तुलना कई सूत्रों से की है, वे जैनागमों को भी पढ़ना चाहते हैं। मोनो टाइप में नागरी भी आनी चाहिए। विश्वविद्यालय की पत्रिका निकालने के पक्ष में भी हैं। विश्वविद्यालय में वे ही प्रमुख हैं।

"आज कमला को दो पत्र भेजे।" (5 अक्तूबर)

6 अक्तूबर को पंडितजी सिंहल भाषातत्व पर काम करते रहे। उन्हें समय-संकोच मालूम हो रहा था। मैंने कलकत्ता की सिर्फ एक ही चिट्ठी पाई। रुपये नहीं मिले। चिन्ता उन्हें होनी ही चाहिए। 7 अक्तूबर को वे गेगर की पुस्तक An Etymological Glossary से संस्कृत में सिंहल में वर्णव्यत्यययायिका को कार्ड पर लिखते रहे। स्नानकोष्ठक दो दिन में तैयार होनेवाला था, अतः वे आश्वस्त हो गये। 8 अक्तूबर को पंडितजी लिखते

हैं–"हर वक्त ख्याल आता है बच्चों का और कमला का। यहाँ लाना तो निरी स्वार्थान्धता होगी। समय-समय पर आना ही ठीक होगा। चेक की बड़ी चिन्ता है। कहीं दूसरा न ले गया हो। पर है तो क्रास चेक।" 9 अक्तूबर को लिखा–"कमला की चिट्ठी से मालूम हुआ, चेक मिल गया। चिन्ता दूर हुई।"

## सीलोन से प्रारम्भिक पत्र

### [1]

*Kelaniya, Ceylon*
*4-8-59*

*प्यारी,*

*कल आनन्दजी को तुम्हारा तार मिला। कल ही उत्तर दे दिया। मैंने आते ही वैमानिक पत्र लिखा था। आशा है, कल तक पहुँच गया होगा।*

*यहाँ मैंने इंजेक्शन की जगह रेस्टिनन की गोलियाँ लेनी शुरू की हैं। उनसे भी वही लाभ है। कमरे हवादार हैं, विजली का पंखा भी है, इसलिए गरमी की परेशानी नहीं है। आजकल वर्षा का मौसम नहीं है, तो भी जब-तव छींटे पड़ ही जाते हैं। कल अपने गुजराती मित्र श्री माणिकलाल पटेल के घर मैं और आनन्दजी भोजन करने गये थे। कोलम्बो बहुत वड़ा शहर है। दोपहर को घूमना अच्छा नहीं है। गरमी लगती है। बाजार से कुछ चीजें खरीदनी थीं, इसलिए घंटे-भर घूमना ही पड़ा। 105 की घड़ी ले ली और 95 का बिजली का shaver। टाइपराटर के लिए आनन्दजी ने पहिले ही से आर्डर दे रक्खा है। जव तक नहीं आता, लेख नहीं लिखा जा सकता। चाहता हूँ महीने में दो-तीन लेख लिख दिया करूँ। घर भेजने के लिए रुपयों की मंजूरी सरकार से लेनी होगी। उसका भी प्रयत्न करना है।*

*विश्वविद्यालय आजकल गर्मियों के लिए बन्द है। यही सबसे बड़ी छुट्टी प्रायः दो-ढाई मास की होती है, जो जुलाई के आरम्भ से होती है। पढ़ाई पहिली नवम्बर से आरम्भ होगी।*

*कलकत्ता से तीन हजार का चेक भिजवाया था, आशा है, मिल गया होगा। वकील साहेब ने लिखा था, अक्तूवर में दार्जिलिंग के मकान की लिखा-पढ़ी हो जायेगी। अशोक बाबू अपना विश्वस्त आदमी मसूरी से दार्जिलिंग पहुँचाने के लिए दे देंगे। पसन्द हो तो निःसंकोच लिख देना। एक और आदमी साथ रहे तो सामान उतारने-चढ़ाने में आसानी होगी। मंगल या हरि आ जाये तो अच्छा ही है। अपना और जया-जेता का समाचार अपने हर पत्र में लिखना। झुँझलाकर बच्चों को जोर से न मारना। पिछली बार जया को घाव हो गया था। बच्चे मासूम हैं, उनको क्या ज्ञान है? यहाँ जब कल शहर में बहुत सारे खिलौने, मोटर, साइकिल, घोड़े देखे, तो बड़ा ख्याल आया जया-जेता का।*

*अपनी कहानियों की तीन कापियाँ टाइप कर डालो। कोई भी प्रकाशक मिल सकता है। श्री श्रीराम शर्मा के पास जो कहानी भेजनी है, उसे पहिले टाइप कर डालना। थेसिस के पहले प्रकरण को पाँच पृष्ठ टाइप करके उनके पास भेजना।*

*मैं समझता हूँ, कोई लड़का नौकर जरूर रख लो। भीग जाओ या वैसे भी बुखार आ जाये तो बच्चों को वहुत तकलीफ होगी। डेढ़ महीने की वात है। आदमी सदा स्वस्थ नहीं रहता। 30-40 रुपये की बात है। हाँ, नौकर अच्छा हो। यहाँ अभी मैंने नौकर नहीं रखा है, वात की है।*

*प्यारी को वहुत-बहुत चुम्वन, जया-जेता को बहुत-वहुत प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

[2]

*Vidyalankara University*
*Kelaniya (Ceylon)*
*5-10-59*

प्यारी,

आज पत्र डाल देने पर जुत्शीजी का पत्र मिला। 26 या 27 तारीख को कलकत्ता से 3000 रुपये का चेक चिट्ठी के साथ तुम्हारे नाम भिजवाया था। 27 रविवार होने से शायद बैरंग भेजा गया। जुत्शीजी के 1 अक्तूवर के पत्र से मालूम होता है कि चेक नहीं पहुँचा। कहीं कोई गड़बड़ी न हुई हो। मैं फिर पत्र अशोकजी को लिख रहा हूँ। चेक के बारे में तुम भी अशोकजी को लिखो जिसमें पैसों की दिक्कत न रहे। और पिछले पत्र में लिख चुका हूँ। जया, जेता, तुम्हें बार-बार चुम्बन और प्यार।

तुम्हारा,
राहुल

[3]

*Kelaniya*
*6-10-59*

प्यारी,

तुम्हारा 3 अक्तूबर का पत्र आज मिला। कुछ समझ में नहीं आता कि मेरे पत्र कलकत्ता से भेजे क्यों तुम्हें नहीं मिले ? मैंने कम से कम चार पत्र भेजे थे। 27 सितम्बरवाले पत्र में तीन हजार रुपयों का चेक भी था। वह तुम्हें नहीं मिला। यहाँ से भी यह चौथा पत्र भेज रहा हूँ। जुत्शीजी के 1 अक्तूबर के भेजे पत्र से भी मालूम हुआ कि तुम्हारे पास चेक नहीं पहुँचा। न पहुँचा हो तो तुरन्त श्री अशोकजी को सूचना दो।

मैं कैसे जया, जेता और तुमको भूल सकता हूँ ? कैसे मेरा प्यार कम हो सकता है ? आर्थिक कारण परेशानी पैदा करनेवाले थे, इसलिए मुझे यहाँ आना पड़ा। तुम भी आना नहीं चाहती थीं और मैं चाहता था कि तुम्हारे लिए काम का निश्चित हो जाना जरूरी है। मैं कलकत्ता में रहते इसके लिए कोशिश करता रहा। यहाँ से फिर सुनीति बाबू को लिखा है। क्या कारण हो सकता है जो मेरी चिट्ठियाँ तुम्हें नहीं मिलतीं। सोच रहा हूँ, राष्ट्रपति को लिखूँ। अभी थोड़ी और प्रतीक्षा करूँगा। मैं बहुत चिन्तित हूँ। चेक जैसे ही मिले, मुझे तार द्वारा सूचना दो।

मैं कैसे तुम्हें दिखलाऊँ कि मैं तुम्हें दिल से प्यार करता हूँ। पर, प्यार का यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि मैं बच्चों के भविष्य को भूल जाऊँ। यहाँ इसी विश्वविद्यालय में इतिहास के अध्यापक डाक्टर राय हैं। वह भी 62-64 के हैं। बच्चे तीन हैं, सात से चार तक के। उन्हें वह दूर कान्वेन्ट में पढ़ने भेजते हैं। एक कार भी ले ली है। पत्नी कोई काम नहीं करती हैं। उन्हें भी बच्चों के भविष्य की चिन्ता बनी रहती है। मैंने कल एक पत्र अशोकजी और एक पत्र राधामोहन बाबू को लिखा है।

यहाँ मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। 28 को (सितम्बर) यहाँ पहुँचा। आज आठ दिन हो गये। अधिकतर बिना वर्षा का दिन रहा, तो भी गरमी सतानेवाली नहीं है। आज दो-तीन झोंके वर्षा हो गई। शरीर को तो कष्ट नहीं है, पर मन को संतोष तुम्हारे संतोष से हो सकता है। अपने मन से संदेह दूर कर दो। सोचता हूँ रजिस्ट्री चिट्ठी भेजूँ, पर उसमें बहुत दिन लग जायेंगे।

तुम्हारा अपना,
राहुल

**[4]**

*केलानिया*
*6-10-59*

*प्यारी,*

*आज ही हवाई डाक से एक पत्र भेजा। यह दूसरा भी भेज रहा हूँ। यह यहाँ का पाँचवाँ पत्र होगा। मुझे वड़ी चिन्ता है तुम्हारे यह लिखने से कि कलकत्ता का सिर्फ एक पत्र तुम्हें मिला था। 27 के पत्र में तीन हजार का चेक था, वह भी तुम्हें नहीं मिला। न मिला हो तो एक तार श्री अशोक वर्मन को भी लिख दो। चेक गड़बड़ न हो जाये।*

*जेता-जया को वहुत-वहुत प्यार। पापा की वात मानकर अव दोनों अम्मा से पढ़ेंगे।*

*चुम्वन के साथ,*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**[5]**

*केलानिया,*
*9-10-59*

*प्यारी,*

*6-10 का पत्र कल मिला, तो भारी संतोष हुआ। मैंने तो अशोक वावू के पास तार भेज दिया था। आशा है, तुमने चेक की पहुँच लिख दी होगी। अव चेक को अपने नाम वहीं के बैंक में जमा कर दिया होगा, यह उम्मेद है। राधामोहन वावू को लिख दो कि जिस वक्त रुपया चाहिए, उसी वक्त चला जायेगा। इसी महीने में लिखा-पढ़ी हो जानी चाहिए। मेरी तो इच्छा है कि तुम इसी वक्त चली जाओ दार्जिलिंग तो मेरी चिन्ता दूर हो। यदि हरि कालेज में नहीं पढ़ता हो, प्राइवेट तैयारी कर रहा हो, तो उसे वुला लो। मसूरी में तैयारी में तुम भी मदद कर देना। जव तक ऐसा कुछ नहीं होता, तव तक मेरी चिन्ता दूर होने की नहीं। जिस डाक को वहाँ नहीं रखना चाहती हो, उसे यहाँ Redirect कर दो, पैसा नहीं लगता।*

*पटना का पार्सल यह कहकर लौटा दो कि मैं लंका चला गया हूँ।*

*मैं Restinon गोलियाँ ही खा रहा हूँ। कलकत्ता से लायी खतम हो गईं, तो दूसरी मँगवा ली हैं। वजन 160 पौंड पहुँचकर खाने पर कंट्रोल करना होगा या गोलियाँ कम खानी होंगी। स्वास्थ्य वहुत अच्छा है। गर्मी इतनी ही है जितनी हवा और विजली के पंखे से दूर हो सकती है। रानी, जव तुम्हीं घवड़ा जाओगी तो बच्चे क्यों न घवड़ायेंगे। उनको कहो, हम सव हवाई जहाज से लंका चलेंगे। पढ़ने का सुभीता दार्जिलिंग में जैसा है, वैसा यहाँ नहीं हो सकता। वेचारे राय मोशाय को अपने लड़के को दाखिल कराने में बड़ी दिक्कत हो रही है। 10 मील भेजने के लिए तो उन्होंने कार खरीद ली है, पर दाखिला मिलने की आशा नहीं है।*

*चाहे हरि को वुलाओ या वहाँ कोई नौकर रख लो, तभी मुझे चिन्ता से मुक्ति मिलेगी। 6 वजे शाम के वाद वाहर न जाना, नहीं तो तुम्हारे भी शीशे टूट जायेंगे।*

*वहुत-वहुत चुम्वन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

[6]

केलानिया
8-10-59

प्रियतमे,

5 का पत्र आज तीन दिन बाद मिल गया। आज मैंने अशोक बाबू को तार दिया—"Cheque not reached Mussoorie, Arrange and wire"। 27 को मेरी चिट्ठी के साथ उन्होंने तीन हजार का चेक भेजा था, क्यों नहीं पहुँचा ? उन्होंने कहा था, पीछे और पैसों की आवश्यकता हो तो कमलाजी को लिखने को कहिये। यह भी मैंने उसी पत्र में लिख दिया था।

चोरी की बात सुनकर मुझे भी बड़ी चिन्ता हुई। मैं तो कह रहा था इसी समय चले चलो दार्जिलिंग, पर तुम क्यों मानने लगीं। मुझे दोनों बातों की बड़ी चिन्ता है। यदि चाहो तो अशोक बाबू को पत्र लिखकर आदमी बुला लो और दार्जिलिंग चली जाओ। मैं इसके बारे में भी अशोक बाबू को लिख रहा हूँ।

कलकत्ते में 12 दिन रहकर कुछ समय तो सुनीति बाबू, डॉ. नलिनाक्ष दत्त, श्री बी. के. सरकार आदि से एक से अधिक बार तुम्हारे लिए दार्जिलिंग में काम के लिए मिलता रहा। भाषण देने भी कहीं नहीं गया। दो-तीन बार अशोकबाबू के घर ही में साहित्य गोष्ठियाँ हुईं, हाँ, प्रकाशक (वोल्गा थेके गंगा) से मालूम हुआ, महादेवीजी को उन्होंने 800 रुपये रायल्टी के दिये। 200 रुपये का चेक मुझे चौथे संस्करण के लिए दिया, जिसे मैंने देहरादून बैंक के पास भेज दिया।

चेक के बारे में मुझे बहुत चिन्ता है। क्रास चेक था। कहीं किसी ने उड़ाया न हो! राधामोहन बाबू को लिख दिया है कि रुपयों की कमी अपने पास से पूरा करके कागज लिखवा लें। रुपया तो चला ही जायेगा। यहाँ से भेजने में तो अभी देर लगेगी। पर, अशोक बाबू भेज देंगे। अशोक बाबू को एक चिट्ठी भी लिख रहा हूँ।

शाम से पहिले ही बाहर जाने-आने का काम पूरा कर डालना, नहीं तो तुम्हारे यहाँ भी चोरी हो जायेगी। फिर कहूँगा। कोई नौकर रख लो। पैसा बहुत थोड़ा पास रक्खो। रस्तोगी (राशनवाला) को भी चेक दे देना और स्कूल को भी।

सब अच्छा है।

तुम्हारी चिन्ता से चिन्तित,
राहुल

[7]

केलानिया
12-10-59

प्यारी,

आज ही तुम्हारी दोनों चिट्ठियाँ तथा राधामोहन बाबू की भी एक चिट्ठी मिली। उनको जवाब दे दिया। लिख दिया—ड्राफ्ट भिजवा रहे हैं। ज्वाइंट एकाउंट में से तुम ड्राफ्ट भिजवा सकती थीं। वहाँ इलाहाबाद बैंकवालों से बात करने पर वह सब कर देते। मैंने राधामोहन बाबू के नाम चेक लिखकर देहरादून भेजा है कि इसे ड्राफ्ट से **State Bank of India** पर राधामोहन बाबू को भेज दें। यह भी लिख दिया कि कोई अड़चन हो तो तुम से पूछ लें। तुम वहाँ इलाहाबाद बैंक में जाकर देहरादून से पूछवाना, जुत्शी साहेब को भी साथ ले लेना। अक्तूबर के अंतिम सप्ताह में लिखा-पढ़ी होनी है, इसलिए देर न होनी चाहिए। यहाँ लिखा-पढ़ी करने में काम ठीक नहीं होगा।

मकान का पता है—**Green Ridges, 21 Kutchery Road, Darjeeling.** आशा है, अशोक बाबू को तुमने रुपयों के लिए प्राप्ति लिख दी होगी। यह भी लिख देना कि रुपये कर्ज हैं, इस सम्बन्ध में वह तुम्हें एक पत्र लिख दें, नहीं तो इन्कमटैक्स लग जायेगा। घड़ी मैंने अशोक बाबू को दे दी है। उसे दार्जिलिंग जाकर मँगा लेना।

यहाँ मैंने 105 की *Valgina* घड़ी ले ली है।

मैं पता लगाऊँगा कि खिलौने भेजे जा सकते हैं या नहीं। भेजने पर वहाँ कस्टम ड्यूटी मनमाना लगायेंगे।

चोरियों की खवर सुनकर चिन्ता बढ़ रही है, चीजों के लिए, तुम्हारे लिए और बच्चों के लिए। हरि, शिवजी या कांछा (मंगल) को वुला लो। हरि से भी काम चल जायेगा, क्योंकि अशोक बाबू कोई होशियार आदमी अपने यहाँ से भेज देंगे। वह सव कर देगा।

वच्चों को मारना नहीं। गुस्से में ख्याल नहीं रहता कि चोट कहाँ और कैसे लगेगी। समझा-बुझाकर काम लेना चाहिए। दार्जिलिंग पहुँचकर देखना। यदि बच्चों की पढ़ाई फरवरी से आरम्भ होती है तो दिसम्बर-जनवरी के लिए यहाँ चली आना।

यद्यपि यहाँ किसी प्रकार का कष्ट नहीं है, आनन्दजी ही नहीं और भी कितने ही पुराने मित्र हैं, जो सव वात का ख्याल रखते हैं। युनिवर्सिटी के डाक्टर भी हैं। खाने-पीने की सारी अनुकूलता है, पर एकांत समय में तो तुम्हारी और बच्चों की याद आती ही है। पर क्या चारा ? वहाँ रहते, जमा-पूँजी में से गुजर करना पड़ता। यहाँ आशा है, तुम्हारे लिए कुछ भेज सकूँगा। कितना, इसके लिए अगले महीने लिखा-पढ़ी करनी होगी।

जया वेट्टी से कहना कि तुम्हें पढ़ना चाहिए। तुम्हें डाक्टर वनना है, गरीवों की मुफ्त दवा करनी है। कैसे होगा, जो न पढ़ेगी तो ?

भैया, मेरा बेट्टा वहुत होशियार है ! वह जरूर पढ़ेगा और अपनी मैन्ना को भी कहेगा कि जरूर पढ़ना चाहिये।

आज अंतिम वार डाक्टर के पास जाना है। वाहर से आनेवालों को ऐसा करना पड़ता है। *International Health Certificate* पर्याप्त नहीं है।

मैंने अभी तिब्वती-हिन्दी कोश का कोई भाग साहित्य अकादमी के पास नहीं भेजा। कलकत्ता में वाप्टिस्ट मिशन प्रेस से वातचीत हो गई है। अगले महीने कुछ भाग नकल करके दिल्ली भेजूंगा।

जुत्शीजी और श्री मोहिनीजी को नमस्ते कहना।

मकान की लिखा-पढ़ी ठीक तरह से हो जाये, तो चिन्ता दूर हो। श्री डी. के. सरकार ने कहा है, सीज़न-भर के लिए ही काफी किराये पर वह उठ सकता है। खैर, अगले साल देखा जायेगा।

भैया कव पापा को चिट्ठी लिखेगा ? उसे हिन्दी जल्दी-जल्दी सीखनी चाहिए जिससे पापा को अपने हाथ से चिट्ठी लिखे। जया की चिट्ठी पढ़कर पापा को बहुत खुशी हुई। इसी तरह चिट्ठी भेजा करो वेट्टी !

बहुत-बहुत प्यार और चुम्बन के साथ।

तुम्हारा,
राहुल

[8]

केलानिया
18-10-59

प्यारी,

12 अक्तूबर का पत्र मिल गया। पी-एच. डी. की विजय के लिए बधाई, चुम्बन, आलिंगन। प्यार लिखने के लिए नाराज न होना। पास रहने में देखती नहीं, कैसा हो जाता था। यहाँ रहने में मीठे ही मीठे भाव रहते हैं।

आशा है, दोनों हिसाबों में से मिलाकर 24 हजार का ड्राफ्ट वकील साहेब के पास पहुँच गया होगा। भेजते ही मुझे लिखना। मुझे उसकी बहुत चिन्ता है। चिन्ता तो तब तक दूर न होगी जब तक तुम दार्जिलिंग नहीं चली जातीं। भिक्षु प्रज्ञानन्द कल यहाँ से लखनऊ गये, पर दो हफ्ते में यहाँ लौट आने की वात कहकर गये हैं। इसलिए तुम्हारे जाने के समय वह वहाँ नहीं रहेंगे। पर वहाँ जो भिक्षु रहेंगे, वह सहायता करेंगे। श्री रमेश सिन्हा (जनयुग, कैसरवाग) को भी लिख देना। वह भी सहायक होंगे।

*दार्जिलिंग जाकर वकील साहेब जिस बैंक में कहें, उसमें हिसाव खुलवा लेना। देहरादून में इलाहावाद बैंक में दो सौ रुपया छोड़ना—मेरे नाम जो चेक आयेगा, उसको यहाँ से हस्ताक्षर करके भेजना होगा। आशा तो है, यहाँ से कुछ सौ रुपया मासिक मैं तुम्हारे लिए भेज सकूँगा। अभी निवास वीजा लेना है। उसके वाद विदेशी विनिमय के लिए आवेदन देना होगा।*

*धीरे-धीरे यहाँ के खाने से अभ्यस्त होता जा रहा हूँ। कोलम्बो में एक गुजराती और एक सिन्धी मित्र का भी निमंत्रण रहता है, पर वहाँ दो-तीन सप्ताह बाद ही हम जा सकते हैं। 105 की घड़ी Valgina ले ली है, एक बिजली का शेवर भी ले लिया है। शहर में जाने पर खिलौनों को देखकर मन जया-जेता के पास भेजने के लिए मचल उठता है, पर भेजने पर कस्टमवाले इतनी ड्यूटी लगायेंगे कि उससे अच्छा है, उनको वहीं ले लेना।*

*वजन यहाँ वढ़कर उतना हो गया, जितना चीन में था। Restinon गोलियाँ ले रहा हूँ। 45 रुपया मासिक का हिसाव वैठेगा। और सव अच्छा है।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

पंडितजी श्रीलंका गये थे विद्यालंकार विश्वविद्यालय में दर्शन के प्रोफेसर होकर, किन्तु उन्हें अध्यापन के साथ-साथ अपना लेखन-कार्य भी करते रहना था। आगे क्या-क्या लिखेंगे इसके लिए योजनाएँ वे पहले से ही बना चुके थे। सिंहल-प्रवास में रहकर वे 'पालि साहित्य का इतिहास' तथा 'पालि काव्यधारा' लिखने का निश्चय कर चुके थे। इसके साथ ही उनका भाषाविज्ञानी मस्तिष्क सिंहल भाषा के सम्बन्ध में गहन अध्ययन करके पुस्तक लिखने के बारे में भी सोचने लगा। इसीलिए उन्होंने पहले सिंहल भाषा के बारे में लिखने की तैयारी की। इसी के सम्बन्ध वे सिंहल निरुक्ति के शब्दों को कार्ड पर लिखकर क्रम से लगा रहे थे। धातु और प्रत्यय के कुछ शब्दों को भी वे देना चाहते थे। 10 अक्तूबर 59 को विश्वविद्यालय कौंसिल की बैठक हुई। उपकुलपति महोदय ने पंडितजी की नियुक्ति का भी उल्लेख किया। बैठक में पंडितजी भी बोले। उसी दिन 'लंकाद्वीप' पत्र के प्रतिनिधि का भी उल्लेख किया। बैठक में पंडितजी भी बोले। उसी दिन 'लंकाद्वीप' पत्र के प्रतिनिधि से उनकी बातचीत हुई।

राहुलजी श्रीलंका जाते समय बासमती चावल का बीज भी लेते गये थे। वहाँ कई जगह बीज को बाँटने के बाद भी उनके पास कुछ बच गया। 11 अक्तूबर को भदन्त आनन्दजी कुछ दिन बाहर घूमकर केलानिया पहुँच गये। उनके साथ एक महन्तजी आये थे, बासमती के बीज को पंडितजी ने इन महन्त के हाथ सौंप दिया। उसी दिन निवास-वीसा के लिए वे अपना फोटो खिंचवाने गये। कोलम्बो से लौटते समय रास्ते में प्रो. डॉक्टर राय के घर उनके परिवार से मिलने चले गये। डॉक्टर राय के तीन बच्चे हैं। उनको वहाँ किसी अच्छे स्कूल में पढ़ाने की बड़ी दिक्कत थी। डॉ. राय की पत्नी बी. ए. की परीक्षा में नहीं बैठ सकी थीं, इसलिए वह घर में ही रहती थीं। परिवार बड़ा होने से डॉक्टर को आर्थिक कष्ट था। इस परिवार के प्रति पंडितजी की सहानुभूति रही।

12 अक्तूबर को पंडितजी लिखते हैं—"कमला की चिट्ठी आई। राधामोहन बाबू की भी। अक्तूबर में मकान (Green Ridges 21, Kutchin Road, Darjeeling) की लिखा-पढ़ी करनी है। कमला दोनों एकाउंट से 28 हजार रुपये का ड्राफ्ट भेज सकती थीं, पर देहरादून के लिए यहाँ लिखा। बारह हजार का चेक भेजते कह दिया इसे ड्राफ्ट करके भेज दें। कोलम्बो गये। डाक्टर (कोरेन्टिन) से छुट्टी मिल गई। श्री कुन्दनलाल (सिन्धी) के मकान पर वृद्ध से परिचय हुआ। जान पड़ता है मासिक रुपये कमला के पास भेज सकेंगे। पहिले आवास का अनुज्ञापत्र आ जाये तब।"

विद्यालंकार में रहकर पंडितजी सिंहली भाषा पढ़ना जारी रखे हुए थे। इसके अतिरिक्त कुछ बाहरी पुस्तकें भी पढ़ रहे थे। 13 अक्तूबर को उन्होंने 'On the trace of unknown animals' नामक पुस्तक को पढ़ा। उसी

दिन शाम को भिक्षु शरणंकर पंडितजी से मिलने आये। 14 को बासमती के बचे हुए बीज को उन्होंने विद्यालंकार के आसपास के खेत में बो दिया और पेरादेनिया फार्म के लिए भी भेज दिया। उस दिन उन्होंने R. L. Spiltel की पुस्तक 'Wild Ceylon' पढ़ी जो उनको बहुत अच्छी लगी, यद्यपि उसमें भाषा और तत्त्व पर बहुत नहीं लिखा था। 15-16 अक्तूबर को भी वे सिंहल भाषा पर कुछ काम करते रहे। इस समय वे दूसरी पुस्तक (कुमारादेय की) पढ़ रहे थे। 15 की शाम को श्री अभयसिंह परेरा पंडितजी से मिलने आये। अभयसिंहजी पंडितजी की तीसरी तिब्बत-यात्रा (1936) में उनके साथ तिब्बत गये थे। वह काशी के न्यायाचार्य थे, पर उनको वेतन वार्षिक 5 हजार ही मिलता था जो उनके लिए बहुत कम था। विश्वविद्यालय में भी उनको उतना ही मिलनेवाला था। 16 को डॉ. रोयरिक का पत्र राहुलजी को मिला। रोयरिक उस समय मास्को में थे। 17 और 18 अक्तूबर को सिंहल भाषा के अध्ययन के साथ पंडितजी इतिहास की पुस्तकें भी पढ़ते रहे। A Comprehensive History of India (II) को उन्होंने तभी पढ़ डाला। यह Indian History Congress का 1957 का प्रकाशन था। इसमें कई विद्वान लेखकों ने लिखा था। पंडितजी को यह ग्रंथ बहुत अच्छा लगा। 19 अक्तूबर को उनका सिंहली पाठ चला। फिर उनके लाये सुभाषित रत्नकोश, जो गोखले-कोशाम्बी-सम्पादित होकर हार्वर्ड से छपा है, को पढ़ते रहे। उसी दिन शाम को फिर विश्वविद्यालय के कौंसिल की बैठक हुई। आज के ही दिन काशी से श्री कोमलचन्द्र जैन का पत्र आया जो रिसर्च स्कालर थे। वह विद्यालंकार में आना चाहते थे। पंडितजी ने उनके बारे में विद्यालंकार के वाइस चान्सलर श्री प्रज्ञारामजी से बातें की थीं और प्रज्ञारामजी उनको बुलाने के लिए तैयार थे। 20 अक्तूबर को पंडितजी ने लेविस की पुस्तक Introduction of Philosophy को समाप्त किया। 21 अक्तूबर को भी वे दासगुप्त की पुस्तक दर्शन-इतिहास (5) और चीनी दर्शन : फुङ् चु-लान कृत पढ़ते रहे। उनका सिंहली का पाठ भी नियमित चलता रहा। पढ़ने के अलावा उधर मुझे और दूसरे मित्रों के पत्रोत्तर भी भेजे। अगले दिन (22 अक्तूबर) चीनी दर्शन के साथ-साथ सिंहली भी पढ़ते रहे। 23 को उन्होंने रोम से निकलनेवाले त्रैमासिक East and West के अंक को पढ़ा। उस दिन विश्वविद्यालय के डीनों की बैठक में भी पंडितजी ने भाग लिया।

24 अक्तूबर को केलानिया, कोलम्बो में कुछ वर्षा हुई, विशेषतः अपराह्न में। पंडितजी 2 बजे दोपहर को जलियस द लानरोल महाशय से मिलने गये। महाशयजी अर्द्धांग थे एक साल से, और चारपाई से उठ नहीं सकते थे। स्मृति ठीक थी। वहाँ से पंडितजी बाजार गये। कुछ चीजें खरीदीं और फिर माणिकलाल पटेल के यहाँ दो घंटे रहे। रात हो जाने पर वे विद्यालंकार केलानिया लौट आये। आज उन्होंने कई जगहों में चिट्ठियाँ लिखीं। उसके बाद आचार्य क. ण. बुद्धदत्त की पुस्तक Correction of Geiger's Mahavansa Etc. पढ़ते रहे। अगले दिन केलानिया में कठिन दान का महोत्सव था, दिन-भर बाजा बजता रहा। आज (26 अक्तूबर) उन्होंने जेलर की पुस्तक ग्रीक दर्शन को समाप्त किया। 26 अक्तूबर को वे The Works of Aristotle (Oxford) के 1-X-XII खण्डों को पढ़ते रहे। अपराह्न में 1.30 बजे विद्यालंकार परिवेण (कालेज) को युनिवर्सिटी से सम्बन्धित करने की जाँच के लिए पंडितजी गये। इसका आफिस होरला नामक स्थान में था, जो यहाँ से 25 मील की दूरी पर था। उनके साथ डॉक्टर हेमन्त राय तथा श्री सीवलीजी भी थे। रात को सात बजे विद्यालंकार लौट आये। 27 अक्तूबर को उन्होंने वीसा के लिए फार्म भरकर भेज दिया। इसके साथ ही भारत में परिवार को 1000 मासिक रुपये भेजने के लिए अनुज्ञा प्राप्ति के वास्ते आवेदनपत्र भी भेज दिया। इसके बाद लापेर की पुस्तक को पढ़ा, फिर प्लेटो पर लिखी एक पुस्तक को। पुस्तक समाप्त करने के बाद वे अरस्तू की भौतिकी पर लग गये।

28 अक्तूबर को कोलम्बो में जोर की आँधी आई—यह खबर सुनकर पंडितजी 8 बजे सुबह कोलम्बो से समुद्र की उद्वेलित लहरों को देखने गये। आँधी के कारण आन्दोलित अम्बुनिधि समुद्र का दृश्य देखने योग्य था। आज जहाज भी धनुषकोटी की ओर लौट गये। आज ही पुत्र बोधिश्री के साथ शान्तिभिक्षु दम्पती विद्यालंकार पहुँच गये। शान्तिजी की भी इसी विश्वविद्यालय में नियुक्ति हो गई थी। अगले दिन (29 अक्तूबर) भी वे अरस्तू की पुस्तक के 6 और 7 खण्डों को पढ़ते रहे।

30 अक्तूबर को उन्होंने 'तिब्बती-हिन्दी कोश' की प्रेस-कापी के दो पृष्ठ लिखे। निश्चय किया कि अब वे रोज छः-छः पृष्ठ लिखेंगे। इस प्रकार नवम्बर में कोश का 'ककार' समाप्त हो जायेगा। इसे भेज देंगे, छपने में तो बहुत समय लगेगा। महीने में 50 पृष्ठ लिखना बहुत होगा। कोश के लिए पंडितजी चीनी दूतावास के चेङ् महाशय से सहायता ले रहे थे। कितने ही शब्द कोश में छूटे हुए थे। 31 अक्तूबर को वे शान्ति भिक्षु जी के नये मकान को देखने गये।

## नवम्बर, 1959

पंडितजी की 1 नवम्बर की डायरी के अनुसार–"कोश लिखते रहे। इस महीने को इसी को लिखने में लगाना है। सिंहल पाठ भी किया। सबेरे नौ बजे विश्वविद्यालय का वर्ग उद्घाटन समारोह हुआ। प्रथम भाषण मैंने संस्कृत में दिया। वर्ग भाषणों के लिए संस्कृत को ही माध्यम बनाना है।"

रविवार को बिजली दिन-भर छुट्टी ले लेती है। और पंडितजी बिजली के पंखे के सहारे ही श्रीलंका में जी रहे थे।

कोश का काम (प्रेस-कापी तैयार करना) नियमित चल रहा था। 2 नवम्बर को भी उन्होंने यही काम किया। प्रतिदिन छः पृष्ठ लिखने पर सारे कोश की प्रेस-कापी 90 दिन में तैयार हो जायेगी, पर अभी तो वे 100 पृष्ठ ही भेजना चाहते थे। बीच-बीच में उनको घर-परिवार की भी याद आती रहती थी। इसलिए चिट्ठियाँ बराबर लिखते थे। इधर कई दिनों से उनको कमला की चिट्ठी नहीं मिल रही थी। तब उस दिन उन्होंने लिखा–"कमला की चिट्ठी नहीं आई। जान पड़ता है पिछली चिट्ठी की सत्योक्ति कड़वी लगी। पर साल में दो मास साथ रहने पर ही सम्बन्ध मधुर रह सकता है।" पंडितजी अभी जोश में थे। सोच रहे थे कि श्रीलंका में वे अकेले भी रह सकते हैं। भदन्त आनन्दजी का साथ ही पर्याप्त है। अभी स्वास्थ्य भी उतना बुरा नहीं है। इसलिए मुझे पत्र में ऐसी चुभानेवाली बात उन्होंने लिखी, यह नहीं सोचा कि ऐसी बातों का मुझ पर और बच्चों पर क्या असर पड़ेगा। फिर ऐसे पत्रों का क्या जवाब देना ? इसलिए मैंने कुछ समय के लिए पत्र लिखना बन्द कर दिया था।

2 नवम्बर को उन्होंने पहली बार विद्यालंकार में दर्शन की क्लास ली। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा–"उसमें बी. ए. की तीन कक्षाएँ हैं। पर प्रथम कक्षा, 1st Year B.A. में ही छात्र हैं। 19 की संख्या अपर्याप्त नहीं है, जिनमें दो-तिहाई अभिक्षु हैं।" उस दिन उन्होंने शिक्षण-माध्यम के रूप में संस्कृत और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया। "प्रज्ञाकीर्तिजी ने सिंहली में भाषान्तर किया, यह प्रयोग बड़ा रोचक रहा।"

3 नवम्बर की कक्षा में पंडितजी के भाषान्तरकार पहले प्रज्ञाकीर्ति रहे, तत्पश्चात् भदन्त आनन्दजी रहे। 'तिब्बती-हिन्दी कोश' का काम भी तीव्र गति से चल रहा था। उस दिन पंडितजी ने निश्चय किया कि प्रतिदिन 5 पृष्ठ प्रेस-कापी तैयार करने से सप्ताह में 35 पृष्ठ हो जायेंगे, जो पर्याप्त है। इस महीने के अंत तक 150 पृष्ठ हो जायेंगे जो कोश का चतुर्थांश है। आज चेङ् महाशय ने कोश के कुछ शब्दों में सहायता की। उस दिन पंडितजी सोच रहे थे–"मोटर ले लेंगे यदि शांतिभिक्षुजी भी साथी हो गये तो।" 4 नवम्बर को उन्होंने न्यायप्रवेश की क्लास ली। आज कोश का काम भी काफी हुआ। 60 पृष्ठ लिखकर 12 तारीख को प्रेस में भेज देने का उन्होंने निश्चय किया। उपनिषदों को भी क्लास के लिए संक्षेप करना था।

महास्थविर प्रज्ञारामजी ने छठी और सातवीं सदी के अभिलेखों पर अनुसन्धान करने का निश्चय कर लिया था। पहले तो 127 अभिलेखों की कापी करनी है। तभी काम आगे बढ़ेगा, यह परामर्श पंडितजी ने प्रज्ञाराम जी को दिया।

यद्यपि राहुलजी लेखन और अध्यापन-कार्य में व्यस्त थे, पर रह-रहकर उनका ध्यान मसूरी की ओर जाता था, जहाँ वे अपने दो छोटे बच्चों और मुझे जुत्शी परिवार के भरोसे छोड़ गये थे। हमें मसूरी को छोड़कर दार्जिलिंग चले जाने की सलाह उन्होंने कलकत्ते से लिखे पत्रों में दी थी, पर मैं सब सामान के साथ कैसे यात्रा कर सकती थी ? मैंने अपने चचेरे भाई मंगलजी (जो अब काठमाण्डू में रहते थे) को मसूरी आने के लिए

लिखा था। वे मसूरी पहुँच गये और पंडितजी को उन्होंने अपने मसूरी पहुँचने की सूचना दे दी। अतः 11 नवम्बर को पंडितजी लिखते हैं–"मंगल की चिट्ठी आई, मसूरी पहुँच गये। मन स्थिर हुआ।" दार्जिलिंग के मकान के बारे में क्या तय हुआ, इसकी अभी तक उनको कोई खबर नहीं मिली थी इसलिए चिन्तित थे।

14 नवम्बर को पंडितजी ने तय किया–सप्ताह में चार घंटे सोम, बुध और शुक्र को पढ़ाना है। बाकी समय में वे कोश की प्रेस-कापी लिखते रहे। इसके बारे में वे लिखते हैं–"आज कोश 80 पृष्ठों तक लिखा गया, छपी पुस्तक में 122 पृष्ठ। छपी के डेढ़ पृष्ठ का हमारा एक पृष्ठ होता है। छपी पुस्तक 970 पृष्ठ की है अर्थात् हमें 650 पृष्ठ लिखना है, जिसके लिए 114 दिन चाहिए, चार मास अर्थात् मार्च में समाप्त हो जायेगा। अप्रैल में व्याकरण, भूमिका आदि लिख डालेंगे।" पंडितजी का काम करने का तरीका बड़े हिसाब-किताब के साथ था। 15 नवम्बर को वे History of Ceylon पढ़ते रहे, यह पुस्तक उनको बहुत अच्छी लगी। कुर्सी पर पैर लटकाकर पढ़ते-लिखते रहने से इनके दोनों पैरों में सूजन हो आई थी। अगले दिन भी वही पुस्तक वे पढ़ते रहे। पेशाब की जाँच भी करवा ली। सब ठीक निकला।

पंडितजी परिवार के लिए मासिक कुछ पैसे भेजना चाहते थे। पर श्रीलंका से भारत में पैसा भेजना आसान काम नहीं, बहुत लिखा-पढ़ा करनी होती है।

19 नवम्बर को उन्हें राधामोहन बाबू का पत्र मिला, जिससे पता चला कि 7 नवम्बर को दार्जिलिंग का मकान रजिस्टर्ड हो गया। इससे पंडितजी को बहुत संतोष हुआ।

कलकत्ते में जो पुस्तकें वे डाबर हाउस में रखकर गये थे, वे अभी तक श्रीलंका नहीं पहुँची थीं, इसलिए उनको अध्ययन के लिए कठिनाई हो रही थी। अतः पुस्तकों को शीघ्र भिजवाने के लिए उन्होंने अशोक बाबू (डाबर हाउस) को तार दिया। तिब्बती-हिन्दी कोश के प्रकाशन के सम्बन्ध में साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के साथ पंडितजी का पत्र-व्यवहार हुआ था। कोश के 100 पृष्ठों को श्री कुलकर्णी और श्री कृपलानी के पास भेजने के लिए उन्होंने 21 नवम्बर को तैयार किया। उन्होंने पहले कुलकर्णी के पास इसे हवाई डाक से भेजने का सोचा। इस प्रकार पंडितजी पढ़ाने के अलावा अन्य लेखन-कार्य भी कर रहे थे। उनका सिंहली भाषा का अध्ययन तो चल ही रहा था, कोश-कार्य भी तीव्र गति से कर रहे थे। परन्तु बीच-बीच में परिवार की याद से भी व्याकुल हो जाते थे। छोटे-छोटे बच्चों को यों ही छोड़कर चले जाने से उन्हें अपराध-बोध भी हो गया था। मैंने भी पत्र नहीं लिखा जान-बूझकर। इसीलिए 23 नवम्बर को अपनी डायरी में उन्होंने अंकित किया–"कमला ने दूसरी चिट्ठियाँ भेज दीं, अपने कुछ नहीं लिखा।" फिर 24 नवम्बर को लिखा–"मंगल का 21 का पत्र आज चौथे दिन पहुँच गया। वे लोग 22 को मसूरी से चलेंगे, 23 को देहरादून में गाड़ी पकड़ेंगे। आज लखनऊ में रहे होंगे, कल चलकर 26 को दार्जिलिंग पहुँचेंगे।" भाई मंगलजी के आने से मुझे बहुत सहायता मिली। दो छोटे बच्चों सहित 20 बड़े-बड़े ट्रंकों-पेटियों के साथ यात्रा करना, वह भी मसूरी से दार्जिलिंग तक की, बड़ा कठिनाईपूर्ण काम था। और पंडितजी श्रीलंका में बैठक, 25 नवम्बर को लिखते हैं–"कल कमला बच्चों के साथ दार्जिलिंग पहुँचेगी।" लिखना जितना आसान है, करना उतना ही कठिन।

27 नवम्बर को उन्होंने हिसाब लगाया कि कुल मिलाकर उनको वेतन 2016 रुपया मिलेगा, जिसमें से 750 रुपया प्रतिमास वह कमला के पास भेजना चाहते हैं। नवम्बर की किश्त लेकर उन्होंने एक व्यक्ति को बैंक में भेजा, पर बैंकवाले ने यह कहकर चेक नहीं दिया कि दार्जिलिंग उनके लिए अपरिचित स्थान है। दूसरे दिन भी पंडितजी चेक नहीं भिजवा सके जिसके कारण उनको बहुत दुःख हो रहा था। 29 नवम्बर रविवार का दिन, उन्होंने हर रविवार को छुट्टी रखने का निश्चय किया। उस दिन करुनागले से दो-तीन मील नजदीक उडुमिया के परिवेण (कालेज) का निरीक्षण करने गये। उनके साथ श्री अभयकून, श्री लारमल और डॉक्टर राय भी गये थे। परिवेण का प्रस्ताव मंजूर हो गया।

अंत में 30 नवम्बर को सीलोन से मेरे पास 750 रुपये का चेक भिजवाने में सफल हुए।

दिसम्बर की पहली तारीख को भिक्षु प्रज्ञाश्री के साथ पंडितजी सीलोन स्थित चीनी दूतावास गये। उन दोनों की चीनी राजदूत के साथ डेढ़ घंटे बातें हुईं। विश्वविद्यालय के लिए कंजूर और तंजूर को दिलाने का प्रयास करेंगे, यह चीनी राजदूत का आश्वासन मिला। वहाँ से प्रज्ञाश्रीजी तथा पंडितजी पुरातत्व आफिस गये, वहाँ उस समय 1500 ब्राह्मी अभिलेख थे। 2 दिसम्बर को उन्हे दार्जिलिंग से भेजे मंगलजी और जया बेटी के पत्र मिले। उसी दिन उन्होंने केलानिया से बाहर मातरे तक घूमने की योजना बनाई। उस यात्रा में प्रज्ञाकरजी और आनन्दजी भी चलनेवाले थे। इस प्रकार दो कारों के यात्री दो ड्राइवरों को लेकर ग्यारह आदमी होंगे। 3 दिसम्बर को पंडितजी की महास्थिवर भिक्षु प्रज्ञाराम से सिंहल अभिलेख संहिता (ब्राह्मी) विषय में वार्ता हुई। वे तैयार थे। तय हुआ—साधारण सम्पादक मण्डली में प्रज्ञारामजी, डॉक्टर राय तथा राहुलजी होंगे। सम्पादकों में सिद्धार्थ, ज्योति रत्नकीर्ति, सीवली, प्रज्ञाकर रहेंगे। यात्रा में दो ड्राइवरों को छोड़ नौ आदमी होंगे—भिक्षु आनन्द, प्रज्ञाश्री, सिद्धार्थ, प्रज्ञाकर, मेधंकर, राहुलजी, सातवाँ-आठवाँ नौकर, नौवाँ दूसरा नौकर आदि।

**5 दिसम्बर, विद्यालंकार :** "दिन साफ। 180 वें पृष्ठ तक कोशकार्य।" इतने दिनों की चुप्पी के बाद 5 दिसम्बर को उन्हें मेरा तार मिला। तार कलिम्पोंग से भेजा गया था। क्या कारण है ? पंडितजी चिन्ता में पड़ गये। तार में लिखा था—ARRANGE OUR DEPARTURE, ANXIOUS, MEETING SOON.—KAMLA. (आ रही हूँ, इन्तिजाम करें, शीघ्र भेंट होगी—कमला)

तार पाते ही उन्होंने उसी दिन कमला को तार भेजा, जिसमें लिखा था : MONEY SENT DARJEELING RECEIVE. TEN DAYS AFTER VACCINATION COME DABAR CALCUTTA. GET INCOME CERTIFICATE. WIRE ARRIVAL. AIR GOING DARJEELING.—RAHULA

(पैसे दार्जिलिंग के पते पर भेज दिये हैं, प्राप्त कर लेना, चेचक के टीके आदि लेने के दस दिन बाद कलकत्ता में डाबर कम्पनी के पास आ जाओ, वहाँ आयकर भुगतान का प्रमाणपत्र ले लो। पहुँचने की सूचना तार द्वारा दे देना, हवाईपत्र दार्जिलिंग के पते पर भेज रहा हूँ—राहुल)

पंडितजी ने 6 दिसम्बर को अपनी डायरी में लिखा—"विद्यालंकार केलानिया से सुबह सवा सात बजे चले। लारनल को यहाँ से और अभयकून को उनके घर से लिया। 100 मील से अधिक की यात्रा रही। बेलिगम विश्रामालय से भोजन करके विश्राम के बाद 13 बजे चल 14 बजे महामलिन्द परिवेश में पहुँचे, इसको विश्वविद्यालय से युक्त करना था। सब काम सन्तोषजनक हुआ। 31 वर्ष के बाद यहाँ गये। दूसरे नायक स्थविर भी बूढ़े हो चले हैं। 16 बजे चलकर 20 बजे लौटे।

कलुतुर में प्रतापी बोधि सड़क पर ही सिद्धिदायिनी, रात को धूप-दीप से जगमग-जगमग दिखाई दिया। अधिकतर मार्ग समुद्र के किनारे नारियल के बगीचों में से होते हुए था। अम्बलगोडा के रेस्ट हाउस में लेमोनेड पिया। समुद्रतट पर अधिक स्वच्छ विश्रामालय नहीं है। हिक्काडस होते गाल द्वितीय तीर्थ पहुँचे। यहाँ की दुकानें बाजार डचों ने बनाया था। वहाँ से रेनकोर, कुचेगी, धालोगाई, बेलिगमे-चट्टान में नवीं सदी की अवलोकितेश्वर की उत्कीर्ण प्रतिमा पर कमल नहीं, किन्तु सिर मुकुट में दो अमिताभ हैं। यहीं भोजन—मांस, मछली, देशी चावल, दाल का—किया, फिर विश्राम किया। गन्दव क्षुद्र द्वीप हरा-भरा है। हमने फोटो लिया। मडेरा दक्षिण तक स्याम समुद्रतल। मातर के आगे तक। मातर की आबादी 30000 के करीब है। नारियल और रस्सी और कुछ उत्तर हटकर चाय के बगीचे हैं। यहाँ भी दूसरा कॉलेज होगा। रात को ही सब लोग लौट आये।

उसी रात को सिंहल 'द्वीप का एक कोना' लेख लिखकर उन्होंने 7 तारीख को 'सरस्वती' में छपने भेज दिया। दार्जिलिंग से भेजी मंगलजी की चिट्ठी से उनको मालूम हुआ—"कुछ और चीजें चोरी चली गयीं सिलीगुड़ी स्टेशन पर, जिनमें टाइपराइटर (ओलीवेत्ती) भी है। कमला के पास पाँच सौ रुपये हैं, जिनमें 300 बच्चों के दाखिले के लिए लोरेटो कान्वेन्ट को देना है। कल 750 और तार से भेज देते हैं। 1500 से काम चल जायेगा।" (7 दिसम्बर) कोश का काम जारी था। 8 दिसम्बर को "750 रुपया तारा द्वारा कमला के पास दार्जिलिंग भेज दिया। यहाँ आने पर रहने का स्थान यहीं पांथशाला होगी, पर भोजन का अलग प्रबन्ध करना होगा।"

जब मैंने सीलोन आने के बारे में पत्र लिखा, तब पंडितजी कुछ चिंतित हुए। परिवार को कहाँ रखना पड़ेगा, सीलोन में रहने से कमला को भारत में नौकरी नहीं मिलेगी। यहाँ रहना उसके लिए ठीक है या नहीं, इस संबंध में चिंता करते हुए पंडितजी जी ने 9 दिसम्बर, 1959 की डायरी में निम्न विचार व्यक्त किए थे :

"6 बजे शाम को जोर की वर्षा आई।

"195 वें पृष्ठ तक कोश गया। चीनी सहायता 353 वें पृष्ठ तक पहुँच गई।

"कमला का छोटा-सा पत्र आया। दार्जिलिंग पसन्द नहीं। मसूरी के लिए पछता रही है। यहाँ स्थायी तौर से आना चाहती है। मेरे स्वार्थ की बात है कि वह मेरे जीवन-भर यहाँ रहे, पर बच्चों का ख्याल करने पर यह स्वार्थवृत्ति अनुचित मालूम होती है। यदि यहाँ रहना हुआ तो दार्जिलिंग कालेज की बात छोड़नी होगी। मेरे बाद वहाँ रहें, क्या करें, यह सोचना होगा। मकान तो अभी नहीं बेचना है। वकील साहेब (राधामोहन बाबू) प्रबन्ध करेंगे।

"लिख दिया कमला को भी और अशोकबाबू और राकेशजी को। फर्स्ट क्लास रेल से मद्रास आयें—टीका और इन्कमटैक्स प्रमाणपत्र कलकत्ता में ले लें, Visa मद्रास में, आदमी साथ लायें।

"यहाँ फिर अलग घर लेना पड़ेगा।"

अपनी चिन्ता को प्रकट करते हुए पंडितजी ने मुझे भी पत्र लिखा, जो इस प्रकार है :

*Prof. Rahula Sankrityayan*
*Dean & Head of Philosophy Deptt.*
*Vidyalankara University, Kelania (Ceylon)*
*9-12-59*

*प्यारी,*

*6 का तुम्हारा कालिम्पोंगवाला और 3 का जया-जेता-कांछ (मंगल) का पत्र आज मिला। आज ही सबेरे एक पत्र भेज चुका हूँ। मैंने समझा था, मार्च में बच्चों का स्कूल खुलेगा, तब तक के लिए तुम आ रही हो। यह जान पड़ता है, दार्जिलिंग में जिस आत्मीयता की आशा रखती थीं, उससे उलटा हुआ, फिर मन कैसे लगे। यहाँ साथ रहने से मुझे आराम होगा, इसमें संदेह नहीं, पर बच्चों के भविष्य का ख्याल आता है तो मन बागी होने लगता है। आखिर तुम यहाँ बराबर के लिए नहीं रह सकतीं। तुम्हारी विद्या का उपयोग यहाँ हो नहीं सकता। मेरे बाद का सवाल गम्भीर है। पर अभी तो आ जाओ। यदि मार्च में लौटना है तो वहाँ के घर का स्थायी प्रबन्ध कर डालना। कलकत्ता में सीलोन का कौन्सल नहीं रहता। उससे VISA लेना है। दिल्ली आने में खर्च का बच्चों का सवाल है। मद्रास में लंका का कौन्सल जेनरल रहता है। वहाँ से VISA मिल जायेगा। ऐसी हालत में तुम्हें जहाँ कलकत्ता में अशोकबाबू की सहायता से Income Tax Certificate और Vaccination लेना है, वहाँ मद्रास में उनके आदमी के साथ आकर VISA लेना है। फिर वहाँ से हवाई जहाज से यहाँ आना होगा। मैंने पिछले पत्र में VISA का ख्याल नहीं किया था। मद्रास में शायद दो-चार दिन ठहरना पड़े। यदि रेल से आना हो तो मेरी पुस्तकों के बक्से भी साथ लेती आना। अपने ही डिब्बे में रखना। अशोकबाबू के आदमी धनुषकोडी में जहाज में बैठा देगा। यदि तार दे दोगी मद्रास से तो समुद्र के इस पार मैं पहुँचा रहूँगा।*

*सब सोचने पर जान पड़ता है, अभी तुम्हारा यहीं आ जाना अच्छा है। बातें तुम्हारे आने पर मालूम होंगी।*

*कलकत्ता तक किसी को साथ लाना। अशोकबाबू को तार दे देना, राकेशजी को Express लेटर जदुलाल मल्लिक स्ट्रीट के पते पर दे देना। साथ ही ट्रेन-टाइम भी लिख देना।*

*दोनों बार के भेजे रुपये मिलते ही मुझे तार देना, साथ यह भी उसी में सूचित कर देना कि किस तारीख को कलकत्ता पहुँच रही हो।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

10-दिसम्बर को केलानिया में बड़ी जोर की आँधी आई थी। उसी दिन पंडितजी एक सिंहली विवाह देखने गये। श्री अभयकून की लड़की का विवाह था। सारी मण्डली उपस्थित थी। "कोलम्बो के गोलफेस होटल में विवाह-विधि सम्पन्न हुई, दाढ़ीवाले वृद्ध सज्जन जूता पहिने विधि करवा रहे थे। लड़की साड़ी में पतले अवगुण्ठन के साथ पिता का हाथ पकड़े आई। वह गोरी पतली थी। पति साँवला था और कोट-सूट पहिने। अँगूठे पुरोहित ने बाँधे। जल चढ़ाने का काम चचा एस. आई. पी. ने किया।"

अब कमला और बच्चे सीलोन आ रहे थे, इसलिए पंडितजी को रहने के घर की चिन्ता हो गई। वे स्वयं तो विद्यालंकार विहार में रहते थे, जहाँ स्त्री नहीं रह सकती थी। वे शांतिभिक्षु के पास के मकान के लिए कोशिश करने लगे। अब 15 दिन के भीतर परिवार आनेवाला था। "कमला ने टीका ले ली है और वह वीसा के लिए प्रयत्न कर रही है।" वह दो मास के लिए ही यहाँ आ रही है, यह जानकर पंडितजी को सन्तोष हुआ।" कमला ने तार में भी यही लिखा था।"

16 दिसम्बर को भी मकान की तलाश हो रही थी। वे शहर में चेष्टा करनेवाले थे। 17-18 दिसम्बर को उन्होंने मकान को तलाश किया। साथ ही कोश-कार्य तथा सिंहली भाषा पर काम करते रहे। 19 को सिंहलीभाषावाला लेख तैयार हो गया और इसे छापने के लिए सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग को भेज दिया। उसी दिन राधामोहन बाबू का 16-12 को लिखा पत्र पहुँच गया। पत्र में लिखा था कि कमला 18 को विमान से कलकत्ता पहुँचेगी। सोम या मंगल (21-22) को ही वह वहाँ से मद्रास आ सकेगी। 24 दिसम्बर तक शायद ही वह यहाँ आ जाये।

**सिंहल-परिदर्शन में :** 20 दिसम्बर को भी पंडितजी अपने अन्य साथियों के साथ लंका के विभिन्न स्थानों के विहारों और परिवेण के निरीक्षण के लिए चलने लगे। "सात बजे सबेरे दो मोटरों में से एक में डाक्टर राय, मैं, अभयकून तथा लानरल बैठे, दूसरे में आनन्दजी, प्रज्ञारामजी तथा एक और भिक्षु बैठे। पहिले पोलगाहावेला से 4 मील आगे पोतूहरेक चन्दसेन विहार में पहुँचे। यहाँ स्वाभाविक पत्थर पर स्तूप है। देवानाम पियतिस्स की रानी का बनवाया सुन्दर स्थान है। देखकर हम सन्तुष्ट हुए, यह विहार (कालेज) विश्वविद्यालय को स्वीकृत होगा। फिर कुरुणागल में बौद्धलोक (रामण्य) विहार में गये, यह भी सुन्दर और परिष्कृत है। इसे भी विश्वविद्यालय से अनुबद्ध होने लायक माना गया। फिर विश्रामभवन में भोजन करके प्रतीक्षा करते रहे। भिक्षुदल एक घंटा बाद कार ले जाने पर आये। कुरुणागल ही में विद्याशिक्षक परिवेण को भी देखा। संतोष जानकर फिर कई मील छोटी-मोटी सड़कों से हरना पहुँचे। मैं विहार में नहीं गया। फिर पेरेदिनिया विश्वविद्यालय को देखा। यहाँ 1200 छात्र-छात्राएँ हैं, और मकानों पर ख़र्च सिर्फ विश्वविद्यालय से भी अधिक है। रात को सवा दस बजे लौटे।" गेस्ट हाउस में एक कमरा ले रहे हैं (परिवार के लिए)। पंडितजी का कोशकार्य भी नियमित चल रहा था। विहार में उनके रहने के कमरों में बिजली के पंखे लग गये, इसलिए उनको गरमी से राहत मिली। उस महीने सब काट-कूटकर उनको वेतन के 1900 से कुछ कम रुपये मिले। 125 रुपया मकान का किराया भी कट गया। 23 दिसम्बर को पंडितजी कोश-कार्य में ही लगे रहे। आज उन्होंने कोश की प्रेस-कापी को 257 पृष्ठ तक पहुँचाया। उनके सहायक चेङ् महाशय अभी छुट्टी पर बाहर गये हुए थे। 28 दिसम्बर से फिर काम करने का निश्चय किया। कोश के 900 पृष्ठों में से 489 तक चेङ् महाशय के साथ देख लिया था। अभी ढाई महीने का काम और बाकी था, पर परिवार के आने पर तीन सप्ताह तो कार्य नहीं हो पायेगा, यह पंडितजी सोच रहे थे। विद्यालंकार विश्वविद्यालय के कुलपति प्रज्ञासारपाद की बाईं आंख में ज्योति नहीं थी। डॉक्टर उन्हें आपरेशन करने की सलाह दे रहे थे, कुछ ने उनको भारत जाने की सलाह दी, पंडितजी ने रूस जाने की सलाह दी। उस दिन उन्होंने डाबर कम्पनी, कलकत्ता के पते पर मुझे शीघ्र आने के लिए तार भी दिया। विद्यालंकार (केलानिया) से कुछ मील की दूरी पर महरा नामक स्थान में एक विश्रामगृह (रेस्ट हाउस) में पंडितजी ने परिवार के रहने के लिए एक कमरा ठीक कर लिया था।

## परिवार के साथ महरा विश्रामगृह में

**परिवार का आगमन :** 24 दिसम्बर को पंडितजी लिखते हैं–"9.30 बजे कमला का मद्रास से कल का भेजा तार

मिल गया, लिखा था—कल (24) पूर्वाह्न में आ रही हूँ।

"11 बजे कार से चले। श्री प्रज्ञाश्री भी साथ रहे। शान्ति (भिक्षु) जी पत्नी और बेटी बोधि के साथ पहुँचे। आज क्रिसमस इव की भीड़ थी। पहिले (कमला और बच्चों को) विमान से उतरते न देख निराश हो गये। पर, यात्री नाम-सूची में नाम मिला। देखा। कुछ देर में छुट्टी मिल गई। कस्टमवालों ने दिक नहीं किया। जरा देर के लिए हम लोग विश्वविद्यालय में जाकर फिर महरा विश्रामगृह में आये। यहीं ठहरने का प्रबन्ध मासिक 1000 रुपये पर शायद तै हुआ है।"

परिवार के पहुँचने पर पंडितजी ने विश्वविद्यालय से कुछ दिनों की छुट्टी ली थी। विद्यालंकार विश्वविद्यालय भिक्षुओं के लिए है। पंडितजी को रहने के लिए विहार में ही दो अच्छे कमरे तथा एटैच्ड बाथरूम के साथ मिला था। पर वहाँ स्त्री नहीं रह सकती थी। हाँ, दिन के समय जाने दिया जाता था। पर इसके लिए भी विशेष अनुमति ली गई थी। इसीलिए पंडितजी को हमारे ठहरने के लिए अलग इन्तजाम करना पड़ा। परिवार के पहुँचने पर उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक था। हम लोग चार महीने के बाद इकट्ठे हुए थे। रेस्टहाउस में बाथरूम के साथ एक बड़ा कमरा मिला था, पंखे के कारण गरमी महसूस नहीं होती थी।

25 दिसम्बर के पूर्वाह्न में पंडितजी मुझे और जया-जेता को लेकर विद्यालंकार गये। फिर 1.30 बजे हम सबको लेकर डॉक्टर राय के यहाँ गये। वहाँ दोनों परिवार गॉल फेस समुद्र-तट पर गये। जया-जेता को बहुत ही अच्छा लग रहा था, क्योंकि उनके पिता उनके पास थे। समुद्र की लहरों के साथ वे लोग भी उछल रहे थे। जया तो लहरों में उतरना चाहती थी और पापा उसको उकसा रहे थे, पर मैंने उसे जाने नहीं दिया। उस दिन हम लोग रात के 10 बजे विश्रामगृह लौट आये। एक मकान किराये पर मिल रहा था, परन्तु पंडितजी ने रेस्ट हाउस में रहना ही पसन्द किया। हम सबको इधर-उधर ले जाने और विद्यालंकार जाने के लिए उन्होंने युनिवर्सिटी की एक कार का बन्दोबस्त कर लिया था, इसलिए हम लोगों को आने-जाने में कठिनाई नहीं हुई। वहीं पहली बार देखा—मोटरों का प्रवाह नदियों के प्रवाह से भी अधिक तीव्रगामी।

पंडितजी ने दार्जिलिंग के मकान को देखा नहीं था, इसलिए बार-बार उसके बारे में पूछते रहे। मसूरी के मकान की तुलना में यह मकान अच्छा है, यह मैंने बतला दिया। मकान का फोटो लाने के लिए उन्होंने लिखा था, इसलिए मैं अपने साथ फोटो ले गई थी। मैं दार्जिलिंग के मकान से बहुत संतुष्ट हूँ, यह जानकर उनको भी सन्तोष हुआ। चलो, अपना एक ठिकाना तो हो गया, इससे उनको भी सन्तोष हुआ। यद्यपि हम लोगों के रहने से पंडितजी का काम रुक गया था, पर वे बाल-बच्चों को अपने निकट पाकर बहुत प्रसन्न थे। वे हम लोगों को घुमाने ले जाते, विद्यालंकार भी प्रायः ही ले जाते थे। 27 दिसम्बर को वे रेस्ट हाउस से कहीं बाहर नहीं गये। अपना पूरा समय मुझे और बच्चों को दिया। 28 दिसम्बर को छुट्टी थी, पर वे विद्यालंकार गये और कुछ कोश-कार्य करके विश्रामगृह लौट आये। 29 को भी वे विद्यालंकार गये और चीनी तरुण की सहायता से 'तिब्बती कोश' का कुछ काम किया।

30 दिसम्बर की शाम को अच्छी वर्षा हुई। पंडितजी सबेरे 10 बजे क्लास लेने गये। 12 बजे महरा लौटे और भोजन तथा विश्राम किया। फिर तीन बजे विद्यालंकार गये और चेङ् महाशय की सहायता लेकर कोश का कुछ काम किया। शाम को परिवार को लेकर शहर कोलम्बो गये और कुछ आवश्यक चीजें खरीदीं। 7 बजे वर्षा में भीगते विश्रामगृह लौट आये। फिर मेरे और जया-जेता के साथ बातें करते रहे। मैं सोचती थी; काश, हमें बराबर इसी तरह एक साथ रहने को मिलता। 31 दिसम्बर को वे हम सब को लेकर कोलम्बो शहर गये और एक जापानी नेशनल ट्रांजिस्टर खरीदकर मुझे उपहार-स्वरूप प्रदान किया।

इस प्रकार 1959 का वर्ष समाप्त हुआ। इस वर्ष की घटनाएँ कुछ दुःखद और कुछ सुखद रहीं—मुझ को पी-एच. डी. की उपाधि मिली। पंडितजी की विद्यालंकार विश्वविद्यालय में नियुक्ति हुई, दार्जिलिंग में हमारा एक मकान हो गया तथा वर्ष के अन्त में जया-जेता सहित मुझको श्रीलंका जाने का अवसर मिला, और सबसे सुखद घटना—पूज्य पंडितजी से हम लोग मिल सके।

# 7
# वर्ष 1960 का आरम्भ

## महरा विश्रामगृह में

नया वर्ष आरम्भ हुआ। हम सबने 1960 का वर्ष सुखद हो, इसकी कामना की। नये वर्ष के प्रथम दिन में भी पंडितजी को क्लास लेने विद्यालंकार जाना पड़ा। पर दिन के 12 बजे से पहले ही वे महरा लौट आये। आज शाम की क्लास को वे भूल गये। रेस्ट हाउस में वे परिवार के साथ बातें करते हुए विश्राम करते रहे। दोपहर की धूप में कमरे से बाहर निकलने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। 2 जनवरी को थोड़ी वर्षा हुई। सबेरे पंडितजी ने परिवार के साथ श्री भण्डारनायके के स्थान होरागोल्ला के लिए प्रस्थान किया। यह स्थान काण्डी के रास्ते पर है, महरा से 14 मील की दूरी पर। विशाल बाग के एक अंश में स्वर्गीय भण्डारनायके की सीमेंट से बनी कब्र थी, जिस पर बाद में समाधि बननेवाली थी। पीछे की तरफ दोमंजिला बँगला था। आज वहाँ चुनाव की मीटिंग हो रही थी श्रीलंका फ्रीडम पार्टी की। हम लोग 4 बजे विश्रामगृह लौट आये।

3 जनवरी को उन्होंने फिल्म देखने का कार्यक्रम बनाया। भोजन के बाद 1 बजे वे हम सबको लेकर नुगेगोडा (कोलम्बो को पार) गये। समझा था सिंहल चित्रपट है, पर था हिन्दी फिल्म 'भाई-भाई' का सिंहल रूपान्तर। अच्छा भाषान्तर किया था, गाने को गाने में। नुगेगोडा का यह सिनेमाघर इतना साधारण था, जितना भारत के कस्बे में भी न होगा।

4 जनवरी को वे विद्यालंकार गये और कुछ अपना ही काम किया। सायंकाल परिवार के साथ वे गॉलफेस समुद्र तट पर गये। आज चीनी दूतावास के चेङ् महाशय से कोश-कार्य में कुछ सहायता ली। गॉलफेस से लौटकर पंडितजी हम लोगों को कल्याणी चैत्य (केलानिया चैत्य) बुद्ध विहार दिखाने ले गये। प्राचीन चैत्य मंदिर भी दर्शनीय है, लगता है कि जैसे भारत में ही कोई मंदिर देख रहे हों। 5 जनवरी को वे विद्यालंकार गये अपने ही काम से। छात्रों की क्लास तो मंगल-बुध और शुक्र को ही होती है। समय का उपयोग करते हुए वे परिवार को श्रीलंका के अधिक से अधिक दर्शनीय स्थानों को दिखला देना चाहते थे। उस दिन (3 जनवरी) नुगेगोडा से लौटते समय भी वे हमको वेल्लावेत्ता, बोरेल आदि स्थानों को दिखाते हुए लौटे थे। रेसकोर्स तथा बड़े-बड़े सरकारी कार्यालय उधर ही पड़ते थे। इस प्रकार प्रतिदिन कोई न कोई नया स्थान हमें देखने को मिल रहा था। 5 जनवरी को वे दोनों समय युनिवर्सिटी गये और अपने कोश का काम किया। सिंहल भाषा पर भी उनका काम चल रहा था।

6 जनवरी (बुधवार) को पंडितजी अपने परिवार के साथ कोलम्बो श्री माणिकलाल पटेल के घर तक घूमने गये। गुजराती परिवार का गृह बहुत साफ-सुथरा था। मैं तो उनका रसोईघर देखकर चौंक गई—बहुत साफ चमचम चमकता हुआ। पटेल दम्पती ने राहुलजी और उनके परिवार की बहुत खातिरदारी की। लौट

कर विद्यालंकार आये और चेड् महाशय की सहायता से कुछ देर पंडितजी ने कोश-कार्य किया। 7 जनवरी को वे हम तीनों को लेकर कोलम्बो स्थित कोरेन्टिन आफिस में गये। हम तीनों–कमला, जया, जेता–के स्वास्थ्य की जाँच हुई, कोई छूत की बीमारी नहीं थी। आज जाँच पूरी हो गई। 8 जनवरी को पंडितजी दो बार विद्यालंकार गये। अपराह्न में भोजन और विश्राम के बाद हम लोगों को भी विहार ले गये और शाम को साथ ही विश्रामगृह लौट आये। केलानिया के फोटो स्टूडियो में आज पंडितजी ने मेरे और जया-जेता के साथ फोटो खिंचवाया। स्टूडियो का खिंचवाया यही पहला फोटो था। 9 जनवरी शनिवार का दिन। आज उनको क्लास में नहीं जाना था। इसलिए केलानिया से बहुत दूर 'देहिवाला' नामक स्थान में प्राणिउद्यान (Zoo) दिखाने जया-जेता और मुझे लेकर गये। जया-जेता को जानवरों को देखकर बहुत आनन्द आया। पिता भी उतने ही उत्साहित दिखाई दे रहे थे। लौटते समय विद्यालंकार से होते लौटे। वहाँ देखा, कलकत्ता से डाबर कम्पनी ने पंडितजी की किताबें 19 पार्सलों में भेजी थीं, जो आज पहुँच गईं। ये सभी उनकी लिखी पुस्तकों का संग्रह था।

10 जनवरी रविवार और छुट्टी का दिन! गरमी के कारण दिन में बाहर निकलना सम्भव नहीं था, इसलिए परिवार के साथ बातें करते वे आराम करते रहे। शाम के समय हम लोगों को लेकर महादेवी पार्क (Victoria Park) देखने गये। वहाँ लोगों की बड़ी भीड़ थी। पर यह पार्क उस समय बहुत बेतरतीब था। लोग वहाँ टहलने जाते हैं और यह टाउनहाल के पास ही पड़ता है। लौटते सीलोन का अस्पताल भी देखा। 11 जनवरी को अपराह्न में वे हम लोगों को लेकर विद्यालंकार गये। कोश का कुछ काम किया और शाम के समय कोलम्बो शहर घूमने गये। जया-जेता के लिए कुछ खिलौने पिता ने खरीद दिये। जल्दी ही महरा लौट आये। 12 जनवरी मंगलवार, आज उनको क्लास लेने जाना था, गये। भोजन के लिए रेस्टहाउस आये और दोपहर कुछ देर विश्राम करके पुनः विद्यालंकार गये और चेड् महाशय के साथ कोश का काम करते रहे। शाम को डेरे पर लौट आये। आज हम लोगों को भी विश्वविद्यालय ले गये थे। विहार में रहनेवाले चीनी भिक्षु श्री आनन्द जया-जेता को बहुत प्यार करते थे। पंडितजी तो कोश-कार्य कर रहे थे, पर इधर चीनी आनन्दजी ने जया-जेता के रंगीन फोटो उतारे, साथ ही टेपरिकार्डर पर जया का गाना टेप किया और फिर सुना दिया। बच्चे इन भिक्षुजी को बहुत पसन्द करते थे। हम लोगों की अनुपस्थिति में ये ही भिक्षु राहुलजी का बहुत ख्याल रखते थे। इन्सुलिन की सुई भी ये ही लगा देते थे। पंडितजी अपने समय का उपयोग काम करने और बच्चों के मनोरंजन में करते थे। दिन के समय जब हम रेस्ट हाउस में रह जाते, तो उनको बराबर यह ख्याल रहता कि कहीं हम लोग बोर न हो जायें। इसलिए घूमने-घामने का कार्यक्रम भी तै करते थे।

कुछ दिन पहले श्री अभयसिंह परेरा न्यायाचार्यजी आकर राहुलजी को सपरिवार उनके गाँव आने का निमंत्रण दे गये थे। इसलिए पंडितजी ने 13 जनवरी को जाने का निश्चय किया था। 13 जनवरी को सुबह ही अभयसिंहजी हम लोगों को ले जाने के लिए रेस्ट हाउस पहुँच गये। उनका गाँव काण्डी के रास्ते पर किंतु महरा से 29 मील दूर वाराकापोला के पास पड़ता था। उनकी डायरी (13 जनवरी) के अनुसार–"आठ बजे अभयसिंहजी आ गये। उनके गाँव गये जो यहाँ से 29 मील दूर है। अभयसिंह की पत्नी अध्यापिका हैं। श्वसुर ने अभयसिंह को मकान-बाग-खेत दिये हैं। ग्रामीण पहाड़ी दृश्य है। नारियल के बाग चारों ओर हैं। गाड़ी मुश्किल से उनके घर पहुँची। उनकी लड़की चक्र 7 वर्ष की है। भोजनोपरान्त दडिगम में पराक्रम प्रसूतिकागृह चैत्य देखने गये, खोदकर निकाला गया है। लौटकर अभयसिंह के घर के आँगन में चारपाई डलवाकर पंडितजी ने थोड़ी देर विश्राम किया। फिर चाय पीकर रेस्ट हाउस के लिए चल पड़े और 7 बजे पहुँच गये। आज कुछ वर्षा हो जाने से गरमी उतनी महसूस नहीं हुई। कितना हरा-भरा पहाड़ी दृश्य था, पर लोग सभी सुखी नहीं हैं।

14 जनवरी के अपराह्न में वे हम लोगों को लेकर विद्यालंकार गये। वहाँ उन्होंने दो घंटा काम किया, जया-जेता कुछ खेलते रहे, मैं पुस्तक पढ़ती रही। फिर विश्रामगृह लौट आये। हमारे कमरे के पड़ोस में एक अमेरिकन महिला अपने सिंहली प्रेमी के साथ कुछ दिन से रह रही थीं। जया-जेता को प्यार करती थीं। पंडितजी के साथ भी बोलती थीं। आज वह भारत चली गयीं, जिससे हम लोगों को सूना लगा। 15 जनवरी को पंडितजी

पूर्वाह्न में अकेले ही विहार गये और देर तक काम किया। दोपहर के भोजन के समय रेस्ट हाउस आ गये। भोजन के बाद विश्राम किया और अपराह्न में परिवार को लेकर फिर विहार गये। वहाँ उन्होंने 'तिब्बती कोश' पर काम किया और शाम के समय महरा लौट आये। 16 जनवरी को उन्होंने छुट्टी रखी। सुबह के समय बाल-बच्चों के साथ कोलम्बो गये और कुछ जरूरी सामान खरीदकर भोजन के समय रेस्ट हाउस लौट आये। फिर कहीं नहीं गये।

17 जनवरी रविवार, आज छुट्टी थी, पर वे विहार गये सुबह के समय। कुछ देर कोश-कार्य करके महरा लौट आये। फिर घर ही में रहे। उनको जया-जेता के साथ बातें करना, कहानी सुनाना भी अच्छा लगता था। गरमी से भी परेशान रहते थे, इसलिए दोपहर के समय बाहर निकल नहीं सकते थे। आज भी तेज गरमी थी। 18 जनवरी को सुबह वे अकेले ही युनिवर्सिटी गये। दोपहर को रेस्ट हाउस आये और कुछ देर विश्राम करके अपराह्न में हमें भी साथ लेकर परिवेण गये। वे कोश का काम जल्दी समाप्त कर देना चाहते थे।

19 जनवरी को बहुत अधिक पानी पीने से उनकी छाती में दर्द होने लगा। रेस्ट हाउस में ही रहे। अब उनके कोश-कार्य में सहायता के लिए चेङ् महाशय नहीं आयेंगे, क्योंकि वे कोलम्बो से बाहर जा रहे थे। बहुत अधिक परिश्रम करने से फिर उनकी तबीयत खराब हो रही थी। 20-21-22 जनवरी को उन्हें लगातार ज्वर आता रहा, इसलिए विश्राम करते रहे। बुखार के समय वे खाना बिल्कुल बन्द कर देते थे। 21 जनवरी को उन्होंने डाक लेने के लिए मुझको परिवेण भेजा। बाकी समय हम भी उन्हीं के पास बैठे रहे। 23 को वे कुछ ठीक हुए, ज्वर उतर गया था।

घर बैठे-बैठे वे उकता गये थे, इसलिए 24 जनवरी को उन्होंने फिल्म देखने का कार्यक्रम बनाया। 2 बजे के शो में गेमिनी सिनेमा हॉल में हम सबको लेकर 'बनमोहिनी' फिल्म देखने गये। उसमें पर्वत, जीव-जन्तु का बहुत सुन्दर दृश्य था। अभिनय और संगीत हिन्दी फिल्म के जैसे थे। आखिर इनको अधिकार है उत्तर भारत की चीजों को अपनाने का। रात को कुछ वर्षा हुई। 25 जनवरी को पंडितजी हम सबको लेकर कोलम्बो शहर गये। वहाँ वे प्रेशर कुकर लेना चाहते थे, पर नहीं मिल सका। शाम को विद्यालंकार से कुछ आवश्यक सामान लेकर घर में रख आये। ड्राइवर का महीने-भर का पारिश्रमिक 300 रुपया दिया। सोचा, कार का किराया आदि बाद में चुका देंगे, क्योंकि पैसे की तंगी तो थी ही।

पंडितजी ने श्रीलंका के कुछ स्थानों की यात्रा अपने परिवार के साथ करने का निश्चय किया। वस्तुतः ये स्थान तो पंडितजी के पहले देखे हुए थे, परन्तु इस समय उनका परिवार उनके साथ था, इसलिए सिर्फ कमला-जया-जेता के साथ वे तफरीह के लिए यात्रा करना चाहते थे। अन्य समय तो विहार में वे स्वयं को मुक्त नहीं रख पाते थे, इसलिए करीब हफ्ते-भर वे हम सबको लेकर केलानिया से बाहर रहना चाहते थे। अतः कल 26 जनवरी को यहाँ से प्रस्थान करने का उन्होंने कार्यक्रम बनाया था।

**नुवरएलिया :** 26 जनवरी को "सवा आठ बजे सबेरे विश्वविद्यालय की गाड़ी पर महरा से चले। ड्राइवर अंग्रेजी नहीं जानता। 10 बजे पेरादेनिया पहुँचे। पेरादेनिया विश्वविद्यालय में पहिले डाक्टर अलुबिहारे (अध्यक्षा संघमित्रा हॉल) के पास गये। वे तरद्दुद में थीं। बतलाया, जबर्दस्ती टेलीफोन उठाने पर कोई अश्लील बात करने लगा। यहाँ के भी छात्र उद्दण्ड हैं। उन्होंने डॉ. पाम्चाउ के यहाँ पहुँचा दिया। थोड़ा देर ठहर कल आने का वादा कर 11 बजे हम रवाना हुए। 12 बजे पेस्सलवा (3200 फुट) में दो घंटा ठहरे। यहाँ भोजन किया। पेरादेनिया छोड़ने के थोड़े ही समय बाद चाय से ढँके पर्वत मिलने लगे। पेस्सलवा से विस्तृत दूर तक चाय की हरितावली थी। यही बात नुवरएलिया के घर तक देखी जो पेस्सलवा से 22 मील पर है। कुछ उत्तर की दिशा पर नुवरएलिया 6100 फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ मसूरी की गर्मियाँ हैं। यहाँ तो ऋतुपरिवर्तन नहीं होता। आर्काइव में गये। चिट्ठियोंवाले पुरुष नहीं मिले। वृद्ध को दे दिया। बोर्डिंगवाले 24 घंटे के मेहमान को नहीं चाहते। देवदारु जाति के वृक्षों के भीतर सवा दो बजे तक झील और घुड़दौड़ की परिक्रमा की। श्री बूटानी (सिन्धी व्यवसायी) ने सहायता की और श्रीमती वीरकोण के यहाँ 35 रुपये में स्थान बहुत अच्छा मिल गया। कमला ने रास्ते में उल्टी की, यहाँ उनकी तबीयत सुस्त रही। कल का दिन और यहाँ काटना है। यहाँ हमने

मसूरी के गर्मियों के कपड़े पहने। यहाँ व्यापार बारहों महीने का है। प्रेस्टिज़ प्रेशर कुकर यहाँ मिल गया।"

पंडितजी को गरमी बर्दाश्त नहीं होती थी। कोलम्बो, केलानिया और महरा में वे गरमी से परेशान और थके-थके रहते थे। परन्तु नुवरएलिया की दार्जिलिंग, नैनीताल और मसूरी जैसी पर्वतीय शीतल जलवायु का उन पर गहरा असर पड़ा। उनकी सारी थकान दूर हो गयी और वे चुस्त युवक जैसे लग रहे थे। यहाँ हमने इतने दिनों के बाद शान्त, स्नेही, सहृदय, रसपूर्ण व्यक्ति के रूप में उनको पाया। यात्रा की थकान के बावजूद वे हम लोगों के साथ अति प्रसन्न रहे थे। संध्या समय वे हमको नुवरएलिया के बाजार को दिखाने ले गये और रात्रि भोजन के बाद जल्दी ही सो गये।

**पेरादेनिया :** 27 जनवरी, बुधवार। "दिन साफ रहा। सुबह आठ बजे निकले। आर्काइव दिखलाया। फोटो स्टेट मशीन, सूक्ष्म फोटो मशीन आदि देखी। यहाँ कुछ पुस्तकें और अभिलेख भी हैं। 1838 ई. से अखबारों की फाईल रखी हैं। यहाँ फिर आना पड़ेगा। अपने तालपत्र और फोटो लाने चाहिए थे।

फिर ताल के किनारे होते सीताएलिया (बदुल्ल सड़क पर) गये। झरने के पास यहाँ छोटा सीतामन्दिर है, भद्दा है, केवल परिपार्श्व सुन्दर है। यह बड़ी नास्पातियों और साग-भाजी का गाँव है। 6000 फुट पर भी चाय के बाग हैं, इस सौन्दर्यराशि का तमिल हाथों द्वारा निर्माण हुआ है। श्री बूटानीजी के यहाँ 207 रुपये की चीजें खरीदीं। भोजनोपरान्त वहाँ से प्रस्थान किया। 35 रुपया भोजन-वास का अधिक नहीं। श्रीमती वीरकोण सन्महिला हैं। बूटानी हम सबको अपने घर ले गये। 400 रुपये मासिक का मकान अत्यन्त सस्ता और सुन्दर है। उनके यहाँ चाय पीकर हम लोग तीन बजे चले। चढ़ाई चढ़कर मलाबलिका जलविभाजक पार किया, फिर उत्तर दिशा में, काण्डी तक चालीस मील चाय के ही बगीचे मिले। पर्वत नीचे से ऊपर तक हरियाली से आच्छादित था। पुस्सवेला, गम्पोला होते 5 बजे से पहले ही हम पा-चाउ निवास में पहुँचे। आज हम लोगों को यहीं ठहरना था।"

**काण्डी-पेरादेनिया :** "28 जनवरी को दिन साफ रहा। विदा लेकर जाने के लिए निकले थे, पर पा-चाउ दम्पती के आग्रह पर छोड़ना पड़ा। घूमने निकले। सबेरे पूर्वाह्न में दंतमंदिर, सरोवर और पुष्पउद्यान देखे। कुछ चीजें खरीदीं। भोजनोपरान्त विश्वविद्यालय (सीलोन युनिवर्सिटी) को देखने गये जो पेरादेनिया में है। अनेक विशाल इमारतें हैं। 1200 में आधे से 15-20 अधिक छात्राएँ हैं। धनाढ्य देश के अनुरूप ही सारी चीजें बनी हैं। बौद्ध विश्वकोश पर पहिला खण्ड भी न जाने कितने वर्षों में निकलेगा। जयतिलक जैसे व्यक्ति सिंहलकोश नहीं निकाल सके, वे. से. मलालसेकर इसे नहीं निकाल सकेंगे। यहाँ आक्सफोर्ड-केम्ब्रिज का अन्धानुकरण किया गया है।

प्रोफेसर सरकार (दर्शन) बिहार से पत्नी सहित आये हैं। 16 वर्ष से घूम रहे हैं। छपरा राजेन्द्र कॉलेज में भी पढ़ाते रहे। पत्नी भी पढ़ाती हैं।

शाम को पेरादेनिया बाग को फिर देखा, फिर नगर भी हो आये।"

**पोल्लनरुवा :** "29 जनवरी को वर्षा नहीं हुई। प्रातःराश के बाद हम लोग नौ बजे चले। काण्डी होते उत्तर की ओर बढ़े। पहाड़ी रास्ता, नारियल के बगीचे, कहीं-कहीं कोको के वृक्षों से ढँके पहाड़ दिखाई दिये। मातले, दम्बुल्ल तक बस्तियाँ, खेत, बगीचे मिलते गये। दम्बुल्ल से कुछ पहिले ही से नई बस्तियाँ शुरू हुईं। जंगल साफ कराकर किसानों को आबाद किया गया है। सम्भवतः पक्की सड़कों और सिंचाई के सुभीते से बाद में जंगलों में आबादी हो जायेगी। नीचे शिला पर चढ़ते सीढ़ियों तक मैं भी गया। पर आगे की चढ़ाई के कारण वहीं बैठा रहा : पंडितजी हृदय के रोगी थे, अतः चढ़ाई चढ़ नहीं सकते थे। जया उनके साथ बैठ गई थी। कमला और जेता आदमियों के साथ गुफा तक गये। फिर सीगिरिया (यहाँ से 12 मील पर) में भी अजंता शैली के चित्रों को देखने जाना किसी से नहीं हुआ, क्योंकि ये चित्र पहाड़ की खड़ी ऊँचाई पर बने हुए थे। बस पर्वत और अलग-अलग स्थानों को देख लिया। थोड़े से वर्षों में कैसे बनवाया इतना ?

भोजन सुन्दर, 13 रुपये में। भोजन के बाद 2 बजे चले। हेवरना होते 45 मील चलकर चार बजे पोल्लनरुवा पहुँचे। अब भी घर जंगल पर वाणी के उद्गार के साथ बस्तियाँ ही बसाई जाती हैं। पराक्रम सागर के रेस्ट

हाउस में ठहरे। रेस्ट हाउस महँगा है पर 20 रुपया प्रतिदिन साधारण कमरे में ठहर सकते हैं। आज से वायुनियंत्रित कमरा 30 रुपया बढ़ गया। वहाँ थोड़ी देर विश्राम कर, चाय पीकर पंडितजी हम सबको लेकर शिवदेवालय देखने गये। आसपास के दूसरे स्थानों को भी देखा।"

30 जनवरी को सबेरे प्रातराश के वाद पंडितजी परिवार के साथ कई ऐतिहासिक स्थानों को देखने गये, जिनमें त्रिभंग प्रतिमागेह सेवविलिमागे पराक्रमबाहु की मूर्त्ति आदि भी हैं। यहाँ के पुरातत्वाधिकारी से भी वे मिले। "पराक्रम समुद्र को भी देखा, कई नहरें निकली हैं। नई बस्तियाँ बस रही हैं।

26 घंटे का भोजन आदि के साथ 60 रुपया रेस्ट हाउस का देना पड़ा, आराम था।"

**अनुराधपुर-मार्ग :** 30 जनवरी को दोपहर एक बजे हम लोग पोल्लनरुवा से चले। 3 बजे मिहिनताले पहुँचे। यहाँ सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र के नाम पर ऊपर पहाड़ी पर विहार बना हुआ है। पर ऊपर जाने के लिए पत्थर की 1880 खड़ी सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। पंडितजी सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सके। उनके लिए ऐसी चढ़ाई वर्जित थी। वे नहीं जा सके, इसलिए हम लोग भी नहीं गये। वहाँ से हेवरना होते हुए 4 बजे के करीब हम लोग अनुराधपुर पहुँचे। वहाँ के रेस्ट हाउस में कमरा नहीं मिला! नवनिगम (Nastom) से साथ के गलविहार में 9 नम्बर का कमरा 7.50 रुपया रोज पर मिला। बाथरूम, शौचालय साथ और साफ हैं, पर एक भी पंखा नहीं था। इसलिए गरमी के मारे हम सब परेशान हो गये। पंडितजी को और अधिक गरमी लगी। वे सिर्फ बनियान पहनकर बैठे।

अनुराधपुर शहर छितरा हुआ था। कुछ देर विश्राम करके पंडितजी हम सबको लेकर ऐतिहासिक स्थानों को देखने गये। सबसे पहले संघमित्रा के लाये बोधिवृक्ष के दर्शन किये। बहुत साफ-सुथरी जगह थी। सम्राट् द्रुतगामिनी का बनवाया विशाल बौद्ध चैत्य भी देखा। इसके बाद वे हमें अन्य ऐतिहासिक स्थान–रत्नमाल्य चैत्य, अभयगिरि, जेतवन, थूपारामा विहार, मिरिसवही, पाषाण-पुष्करिणी आदि दिखाने ले गये। यहाँ की आबादी बढ़ी है, पर लगातार नहीं। गरमी बहुत अधिक है। सिंहल शालि (धान) और नारिकेल-प्रिय देश है। वे यहाँ जम गये हैं। 1926 में जब पंडितजी पहली बार यहाँ आये थे, उस समय रत्नमाल्य चैत्य बन रहा था। अब तैयार हो गया था। पर उस समय विशाल स्तूपों के पुनर्निर्माण का काम नहीं हो रहा था। आज बहुत अधिक पैदल चलने के कारण हम चारों प्राणी बहुत थक गये। पंडितजी अनुराधपुर में दो दिन रहने का सोचकर आये थे, पर यहाँ की गरमी और मच्छड़ों के कारण बहुत परेशान हो गये। अतः कल सबेरे यहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय किया।

**अनुराधपुर से प्रस्थान :** पंडितजी इस बार अपने पुत्र जेता की पाँचवीं वर्षगाँठ के अवसर पर हमारे साथ थे। जन्मदिन अनुराधपुर जैसे पवित्र तीर्थस्थान में मनाने का निश्चय किया था। पर यहाँ की गरमी और मच्छड़ों से तंग आकर 31 जनवरी को ही यहाँ से चल देने का पक्का कर लिया। 31 जनवरी की सुबह पिता-माता ने और दीदी जया ने जेता को जन्मदिन की बधाई दी, उसे नये कपड़े पहनाकर कुछ खिलौने दिये। प्रातराश के बाद हम लोग मोटर पर सवार हुए। कोलम्बो-मार्ग पकड़ने से पहले पंडितजी हम सबको 'ईसुरुमुनिया' मंदिर दिखाने ले गये। शिव-पार्वती की युगलमूर्त्ति-जैसी यहाँ स्त्री-पुरुष की सुन्दर मूर्त्ति दीवार पर उत्कीर्ण की गई थी। इन मूर्त्तियों को सिंहल में 'ईसुरुमुनिया प्रेमी' कहा जाता है।

अनुराधपुर के इन ऐतिहासिक दर्शनीय स्थानों को देखते हुए हम आगे की यात्रा कर रहे थे। पंडितजी प्रसन्न थे।

**कोलम्बो-मार्ग :** हमारी कार आगे बढ़ी। अब हम लोग पुत्तलम के रास्ते जा रहे थे, जहाँ पर सिंचाई के लिए बना हुआ प्राचीन सरोवर था। पहला नगर तिस्सवेवा आया जो अनुराधपुर से 47 मील की दूरी पर था। यह समुद्र के तट पर बसा हुआ नगर था। यहाँ का म्युजियम आज बन्द था, लंका का एक अन्य नगर पुत्तलम यहाँ से 46 मील से अधिक दूरी पर था। "यह नगर समुद्र के तट पर डच लोगों के द्वारा बसाया हुआ नगर था। बहुत साफ-सुथरा। कहीं-कहीं पर मीलों हरा-भरा। यहाँ कुछ देर विश्राम करके 9 बजे चल पड़े। अधिकांश स्थान जंगलों से ढँका हुआ था, कहीं-कहीं गाँव बस गये थे। अनुराधपुर जिले में अधिकतर सिंहली लोग हैं।

पुत्तलम में मुसलमान तमिल कैथलिक अधिक हैं। दिन का नाश्ता करके हम लोग पुत्तलम से आगे बढ़े और डचद्वीप से 5-6 मील जाकर मामपुरी तक पहुँचे। सारा प्रायद्वीप सुन्दर है और नारियल से ढँका हुआ है। कैथलिक विज्ञापनार्थ भी मूर्त्तियाँ हैं।

**कोलम्बो :** पुत्तलम से 82 मील पर कोलम्बो शहर है। इतनी लम्बी यात्रा सबेरे करते थक गये थे हम लोग। पंडितजी चाहते थे आज यहीं कहीं रहना। इसलिए कुछ दूर चिलाव रेस्ट हाउस में गये, जो समुद्र तट पर है। यहाँ भोजन अच्छा मिला, किन्तु पंखा न होने के कारण गरमी बहुत अधिक लगी। इसलिए ठहरने का ख्याल छोड़ दिया। यहाँ से आगे नेगम्बो और बेअल में पंखारहित रेस्ट हाउस थे। यहाँ ठहरने का कोई आकर्षण नहीं था। अतः उन्होंने कोलम्बो शहर जाकर ही रात बिताने का निश्चय किया। सारे रास्ते हम लोग नारियल और अन्य वृक्षों की छाँह से होते गुजरे थे। आज करीब डेढ़ सौ मील की यात्रा हुई। थकावट से शरीर चूर-चूर था। कोलम्बो के मेरिस रोड पर स्टेशन (फोर्ट) के समीप मालिवान होटल में 17 रुपये में भोजनसहित कमरा मिला, वहीं ठहरे। शाम को विद्यालंकार और महरा भी हो आये। महरा में जगह मिल जाती, पर उस दिन होटल में ही रुकना था। आज गरमी कम थी, नहीं तो होटल के कमरे में हवा भी नहीं, पंखा भी नहीं था। सब लोग बुरी तरह थक गये थे, इसलिए जल्दी ही नींद की शरण में गये।

## पुनः महरा विश्रामगृह में

1 फरवरी को पंडितजी हम लोगों को साथ लेकर 11 बजे विद्यालंकार युनिवर्सिटी होते महरा विश्रामगृह के उसी कमरे में आयें। इस जिले में सबसे अच्छा यही रेस्ट हाउस है। पंखे के कारण गरमी नहीं लगी। यहाँ का कमरा साफ-सुथरा और खाना भी अच्छा है। रहने और खाने के लिए 34 रुपया प्रतिदिन खर्च भी बहुत नहीं है। यहाँ पता लगा कि बागडोगरा तक 843 रुपया हवाई टिकट का लगेगा। अब कल प्रबन्ध करना है। पंडितजी परिवार के लिए लौटने के टिकट का प्रबन्ध कर रहे थे।

2 फरवरी के पूर्वाह्न में पंडितजी युनिवर्सिटी गये और तिब्बती विद्या पर कुछ नोट लिखा। अपराह्न में 3.30 बजे कमला और बच्चों के साथ कोलम्बो शहर गये। 3 फरवरी को भी विमान-टिकट के लिए उन्हें प्रज्ञारामजी के साथ शहर जाना पड़ा। वहाँ पता चला कि 843 रुपये का विदेशी विनिमय लेना होगा। कार्यालयवालों ने परसों पूछकर देने का वादा किया। श्री प्रज्ञारामजी ने संस्कृत-काव्यधारा और कर्मविभाग के सम्पादन की समर्थ-स्वीकृति दे दो।

4 फरवरी को वे प्रातः और अपराह्न में भी युनिवर्सिटी गये। आज श्रीलंका का स्वतंत्रता दिवस था। झण्डा फहराया गया यूनिवर्सिटी में भी। पंडितजी का ध्यान भारत की राजनीतिक स्थिति पर भी लगा हुआ था। आज (4 फरवरी) उनको पता चला कि केरल में कम्युनिस्ट पार्टी को पिछले चुनाव से अधिक वोट मिले, पर अबके 60 प्रतिशत की जगह 80 प्रतिशत लोगों ने वोट दिये। सभी प्रतिगामी दल–कांग्रेस, प्रसोपा और मुस्लिम लीग–एक हो गये, जिससे अधिकांश उनके प्रतिनिधि चुने गये। कम्युनिस्ट 28 पहुँचे, बाकी 6 स्थानों में भी दो शायद पा जायें। इस प्रकार तीस सदस्य रहेंगे। यहाँ (सिंहल) भी केरल की भाँति है। कैथलिकों और अमेरिकी–दो थैलियाँ खुली हुई हैं प्रतिगामियों के लिए।

5 फरवरी को उन्होंने टेलीफोन से विनिमय आफिस से पूछा, भारत रुपया भेजना है। जवाब हाँ में मिला और अनुज्ञानामा भी दे दिया। आज पंडितजी ने तिब्बत पर लेख भी लिखा। 6 फरवरी की डायरी में उन्होंने लिखा–"वर्षा नहीं हुई। सवेरे 10 बजे आनन्दजी के साथ वैदेशिक विनिमय नियंत्रण कार्यालय में गये। तुरन्त अनुज्ञापत्र मिल गया। Airways के टिकट बनाने में आधा घंटा समय लगा। बागडोगरा (दार्जिलिंग) तक Indian, Airways टिकटों का 843 रुपये लगे। कलकत्ता से बागडोगरा की तारीख नहीं लिखी। आज अशोक बाबू, राकेशजी और सेंगरजी को पत्र लिख दिये कि बच्चे 27 फरवरी को नौ बजे रात को विनावतरण में पहुँच रहे हैं।

2000 रुपया मासिक भी खर्च के लिए पर्याप्त नहीं हुआ। उसका एक कारण यहाँ रेस्ट हाउस को 1000

रुपया मासिक और मोटर का 300 रुपया है। कल से तिब्बत सम्बन्धी लेख लिखने लगे। 14 फरवरी तक समाप्त कर डालना है। 30 पृष्ठ लिखना है, फिर दुहराकर टाइप करना है। 8-9 सौ रुपये कर्ज के होंगे, जो मार्च में दे पायेंगे। अप्रैल-मई-जून-जुलाई में दो हजार रुपये जमा करने हैं, यदि अगस्त में भारत जाना है। तीन मास की छुट्टियों का वेतन अग्रिम शायद न मिले।

पंडितजी फिजूलखर्ची को पसन्द नहीं करते थे। इसका कारण यही था कि वे किसी के सामने हाथ फैलाये बिना आत्मसम्मान के साथ जीना चाहते थे। इसलिए पैसे-रुपये को वे बड़े हिसाब से चलाना पसन्द करते।

5 फरवरी को जय-जेता अपने सिंहली बालमित्रों के साथ मालिगाना नामक स्थान में गये थे। रात को आठ बजे आये। आते ही जया उल्टी करने लगी, गाड़ी के सफर में उसकी तबीयत खराब हो जाती थी। दिन-भर उछल-कूद करते रहेंगे पर रात को तो बच्चे माँ के पास ही रहना पसन्द करते हैं। इस तरह बच्चे सिंहल आकर खूब प्रसन्न थे, फिर पिताजी उनके निकट ही थे, तब उनको और क्या चाहिए।

7 फरवरी को पंडितजी अपने परिवार सहित हिन्दी फिल्म देखने क्राउन सिनेमा (कोलम्बो) में गये। यहाँ पर अधिकतर हिन्दी फिल्में आती थीं। दूसरे-तीसरे दर्जे में लोग भरे हुए थे—भाषा जाने बिना भी। आज की फिल्म का नाम था 'उजाला' जिसमें शम्मी कपूर और माला सिन्हा की मुख्य भूमिकाएँ थीं। शाम को विश्रामगृह लौटकर वे परिवार के साथ बातें करते, बच्चों के साथ मनोरंजन करते आराम करते रहे। 8 और 9 फरवरी को वे तिब्बत के सम्बन्ध में लेख लिखते रहे। क्लास न होने पर भी वे विश्वविद्यालय के अपने कक्ष में बैठकर लिखने का काम करते रहते थे। 10 फरवरी को वे महरा से विद्यालंकार (केलानिया) गये, सुबह की क्लास ली, लेख भी लिखते रहे, शायद कल समाप्त हो जाये। पैसे की कमी थी, इसलिए उन्होंने श्री माणिकलाल पटेल से 500 रुपये उधार लिये।

इसी प्रकार 11-12-13 फरवरी को भी उन्होंने विद्यालंकार जाकर क्लास भी ली और अपने लिखने का काम भी करते रहे। 14 फरवरी को पंडितजी हम सबको मोरातुवा तक घुमाने ले गये। उसके बाद समुद्र तट पर गये। अगले तीन दिन (15-16-17 फरवरी) तक पंडितजी नियमित रूप से लेखन कार्य करते रहे। बीच-बीच में वे पढ़ाने भी जाते थे। फिर शाम के समय विश्रामगृह में आकर विश्राम करते। 18 फरवरी को वे पूर्वाह्न और अपराह्न दोनों समय युनिवर्सिटी गये। सम्मेलन पत्रिका (प्रयाग) ने उनके सिंहली भाषावाले लेख का प्रूफ भेज दिया, देखकर उन्होंने उसी दिन लौटा दिया। शाम को युनिवर्सिटी की सिनेट की बैठक में रहे। उस दिन पूर्वाह्न में विद्योदय विहार के अधिपति का शव देखने गये, विद्यालंकार के सारे लोग वहाँ पहुँचे थे। अभयरत्ने ने अपनी योग्यता की परीक्षा दी। काम मिलने पर उसे 300 रुपया दे रहे हैं। इनको विद्योदय युनिवर्सिटी में पढ़ाना था।

19 फरवरी को पंडितजी ने पता लगाया कि हम लोग अपने साथ नेशनल ट्राजिंस्टर और 44 पौंड वजन-भर का सामान भारत ले जा सकते हैं।

अगले दो दिन (20-21 फरवरी) पंडितजी नियमित रूप से विद्यालंकार गये और पढ़ाने के अतिरिक्त अपना लेखन-कार्य भी करते रहे। वे तिब्बत सम्बन्धी लेख 28 पृष्ठों का लिख रहे थे। 23 और 24 फरवरी को भी पंडितजी लिखने का काम करते रहे। 25 को उन्होंने अपनी डायरी में लिखा—"दो दिन बाद बच्चे चले जायेंगे, इसका मन पर प्रभाव तो पड़ता ही है।" क्या करें, हम लोग चाहने पर भी उनके साथ यहाँ अधिक दिन तक नहीं रह सकते थे। वीसा दो महीने का ही मिला था, अब वह समाप्त हो रहा था। दूसरा, परिवार के साथ रहने पर पंडितजी पर आर्थिक बोझ भी पड़ रहा था। इसलिए भी हमें भारत लौटने के लिए बाध्य होना पड़ा। उनको भारत चलने के लिए मैं कहती रही, पर वे अभी जाना नहीं चाहते थे। मन हमारा भी दुखी था उनको छोड़कर जाने में, पर और कोई चारा भी नहीं था।

26 फरवरी को वे सबेरे युनिवर्सिटी गये। शाम को श्री धनपाल (डी. बी.) उनसे मिलने आये। फिर सपरिवार उनके घर गये। श्रीमती धनपाल संस्कृत रुचि की महिला थीं। वे शान्तिनिकेतन में पढ़ी थीं, इसलिए घर को बड़ी कलात्मक रुचि के साथ सजाया था। लंकाद्वीप पत्रिका को धनपाल की लेखनी ने आगे बढ़ाया था। अब

इस पत्र को कैथलिक आर्चबिशप ने खरीद लिया था। आज सिंहली लोगों का अपना कोई पत्र नहीं है। रात को नौ बजे वर्षा में लौट आये। आज पूर्वाह्न में ही 750 रुपये का ड्राफ्ट मेरे लिए भिजवा आये थे।

27 फरवरी, परिवार का भारत लौटने का दिन था। उन्होंने लिखा—"शुक्र दिन। मध्याह्न भोजन अंतिम बार महरा रेस्ट हाउस में किया। सवा नौ सौ रुपयों के करीब 27 दिनों का बिल चुकाया। 12 बजे बच्चों के साथ विद्यालंकार आये। सवा बारह बजे चले। रत्नमाल्य हवाई अड्डे पर एक बजे से पहिले ही पहुँच गये। 122 पौंड का सामान साथ था। पुस्तकें (कमला) रख गईं। कस्टमवालों ने देखा भी नहीं। ढाई बजे विमान उड़नेवाला था, सवा दो बजे हम लौटे। मद्रास में भारतीय कस्टम से भुगतना होगा। फिर कलकत्ता। बच्चे भी अपने-अपने कन्धे पर अपनी चीजें लटकाये हुए थे। प्रज्ञाश्रीजी ने बड़ा थर्मस कमला को भेंट किया।"

महरा रेस्ट हाउस सब तरह से अच्छा था, पर चीटियों की परेशानी थी। यहाँ पंडितजी के कैमरे के भीतर तमाम चीटियाँ घुस गई थीं। उसे बड़ी मुश्किल से साफ किया था।

## पुनः विद्यालंकार में

2 फरवरी को पंडितजी ने अपनी डायरी में लिखा—"मद्रास से कल कमला ने तार दिया, वह आज केलानिया तारघर में 8-10 बजे पहुँच गया, यहाँ 1 बजे। तार में **fifty Rupees for Radio, Alright** लिखा था। तार कलकत्ता से भेजना चाहिए था। कल नौ बजे रात को वह कलकत्ता पहुँची होंगी। आज और कल रहेंगी। परसों पहिली मार्च को जायेंगी दार्जिलिंग। भारत जाने के लिए मुझे 2500 रुपये चाहिये। विमान-व्यय तो मिल जायेगा, पर 1600 रुपया खर्च करने के लिए मिलेगा या नहीं।

आज 163 वेष्टक परत अक्षर भोटकोश में समाप्त हुआ। 140 पृष्ठ की सामग्री लिखने के लिए तैयार है, इस प्रकार 400 पृष्ठ हो जायेंगे। 200 पृष्ठों में कितने ही शब्दों में चेङ् या डाक्टर पा-चाउ से सहायता लेनी होगी।"

29 फरवरी को उन्होंने निश्चित कार्य ठीक नहीं किया था, इसलिए वे पुस्तक पढ़ते रहे। परिवार के चले जाने से वे सूनापन अनुभव कर रहे थे, इसलिए उन्होंने मुझे पत्र लिखा, जो इस प्रकार है :

*केलानिया*
*27-2-60*
*(22.35 बजे)*

*प्यारी,*

*आशा है, मद्रास में भी कोई दिक्कत न हुई होगी। मैं और मेरे साथी एक साथ तब तक एरोड्रोम ही में रहे, जब तक तुम और दूसरे यात्री विमान पर चढ़ नहीं गये। यहाँ आकर मन काम में नहीं लगा। दो घंटा लेटा-सोया रहा। अभी-अभी पुस्तकों के चार पारसल बनाये, जो परसों रजिस्टर्ड बुकपोस्ट से भेज दिये जायेंगे। प्रायः सभी पुस्तकें आ गई हैं। यात्रा का पूरा समाचार न लिखा हो तो लिखना। कलकत्ता के बारे में विशेष तौर से।*

*मैं अगस्त के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में दार्जिलिंग आने का निश्चय कर चुका हूँ। पासबुक भेजकर अप्रैल में देहरादून से हिसाब मंगवा लेना। दार्जिलिंग स्टेटबैंक में ज्वाइंट एकाउंट खुल जाये तो अच्छा। पूछकर लिखना उसके लिए क्या करना चाहिए।*

*बच्चे कैसे हैं ? रास्ते में कैसे रहे ? जया और जेता अपने मसूरी स्कूल की परीक्षा में कैसे रहे ? बात न मानने पर अपने पर संयम रखना। मारने से काम बहुत नहीं बनता। कहीं भाग के दूसरी जगह न चले जायें।*

*मेरी पुस्तक 'प्रमाणवार्तिकभाष्य' की कापियाँ हैं। उनमें से एक 25 रुपये की वी. पी. से भेज देना। श्री अभयसिंहजी ने उसके बहुत-से भाग को स्वयं लिखा था। मैंने पुस्तक में उल्लेख भी किया है। उन्हें एक प्रति देना चाहता हूँ। वी. पी. पी. से पैसा भी चला जायेगा।*

*कल तक कितना मधुर व्यस्त जीवन था, इस समय एकान्त-सा, शून्य-सा जान पड़ता है। कुछ दिन मन नहीं लगेगा। एकान्त में याद तो बराबर रहेगी। तुम्हारी अवस्था मुझ से भी बुरी होगी, पर धैर्य से काम लेना। दार्जिलिंग कालिम्पोंग के समाचार लिखना। मैं अप्रैल में देहरादून इन्कमटैक्स आफिसर को लिख दूँगा कि हमारी फाइल दार्जिलिंग भेज दें। घड़ी 10-15 (रात) बजा रही है। ख्याल आता है, तुम डेढ़ घंटा पहिले डावर हाउस में पहुँच गई होगी। कैसे, इसकी चिन्ता है। बीच-बीच में कलम रुक जाती है, और तुम्हारे बारे में सोचने लगता हूँ। आज तो एकाध बार जया-जेता के मुँह से 'पापा' सुनने में आया। मन भ्रम पैदा कर देता है।*

*प्यारी को बार-बार चुम्बन-आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

1 मार्च को उन्होंने कक्षा में 'न्यायविन्दु' पढ़ाना शुरू किया और स्वयं भी पढ़ते रहे। क्या करें, अभी निश्चय ही नहीं कर पाये थे। बार-बार उनका मन उचट जाता और अपने बाल-बच्चों के बारे में सोचने लगते। जब रहा नहीं गया तो उन्होंने आज भी मुझे एक पत्र लिख भेजा जो इस प्रकार था :

*केलानिया*
*1-3-60*

*प्यारी,*

*मद्रास से भेजा तार मिल गया था। सन्तोष होता, यदि कलकत्ता से भी भेज दिया होता और आज दार्जिलिंग पहुँचने पर भी। मैं कहना भूल गया।*

*आशा है सारी यात्रा सानन्द हुई होगी। यात्रा के बारे में सविस्तार लिखना। दार्जिलिंग पहुँचने की बातें और जया-जेता के स्कूल में भरती होने की। यदि कान्वेंट में हिन्दी पढ़ाने का काम मिल जाये तो कितना अच्छा ?*

*मैं अब अपने कमरों में आ गया हूँ। पढ़ाई का काम कर देता हूँ और कुछ पढ़ लेता हूँ। पर सीरियस काम करने का अभी मन नहीं हो रहा है। कभी-कभी जया-जेता के 'पापा' के शब्द कान में सुनाई देते हैं।*

*'आजकल' का एक पारिश्रमिक 50 रुपया यहाँ सिंहल रुपयों में मिला। चन्द्रगुप्तजी को लिखा है, तुम्हारे पास भेज दें, न हो तो भारतीय रुपये में चेक भिजवायें।*

*स्थान या व्यक्ति के गुणों की ओर देखो, दोषों की ओर नहीं, तो असन्तोष से बच जाओगी। इसे अभ्यास करने की आवश्यकता है। मैं अभी से अगस्त के बारे में सोचने लगा हूँ।*

*कालिम्पोंग से कितनी पुस्तकें वहाँ पहुँच गईं। अपनी माता की बीमारी के बारे में लिखना। यदि ज्यादा हो और जरूरत समझो तो उन्हें दार्जिलिंग बुला लेना।*

*अभी आनन्द श्रामणेर ने फोटो नहीं धुलवाये हैं। धुलवाने पर इन्लार्ज करके भिजवाऊँगा।*

*यहाँ का कोई नया समाचार नहीं है। वर्षा भी दो-तीन दिन से नहीं है।*

*बहुत-बहुत चुम्बन-आलिगंन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

पंडितजी विश्वविद्यालय में पढ़ाने के अलावा अपना निजी लेखन भी बहुत अधिक करने लगे। अभी 'तिब्बती हिन्दी शब्दकोश' का काम तो चल ही रहा था, अब 'सूत्रकृतांगम्' जैन ग्रंथ के सम्पादन का काम भी उन्होंने हाथ में ले लिया। यह जैन संस्थान, भारत की ओर से दिया हुआ काम था। ग्रंथ को संस्कृत से हिन्दी में रूपान्तर भी करना था। 2 मार्च से उन्होंने यह काम हाथ में ले लिया। आज उन्होंने इस ग्रंथ के कुछ अध्याय उतारे। काम में व्यस्त रहते हुए भी उनका ध्यान परिवार की ओर गये बिना नहीं रहता था। 3 मार्च को

वे लिखते हैं :

"कमला का पत्र मिला। कलकत्ता से विमान नहीं मिल रहा है। (क्लास में) व्याख्यान दिया। कमला अगले वर्ष स्थायी तौर से यहाँ आना चाहती हैं। पर मैं अपने बाद यहाँ उनकी अनुकूलता नहीं देखता। यदि 300 रुपये मासिक का प्रबन्ध हो जाये, तो मैं भी वहाँ आ सकता हूँ, लिख दिया। बच्चों के प्रति कर्तव्य और प्रेम बाध्य करता है कि मैं उनके पास उनके लिए जीऊँ।"

4 मार्च को उन्होंने क्लास में उपनिषद् पर व्याख्यान दिया। पुस्तकालय समिति में भी वे कुछ बोले। उनके सहायक श्री प्रज्ञाश्री भन्ते को 150 रुपया मासिक ऋण के तौर पर दे, दो वर्ष शान्तिनिकेतन में पढ़ने का अवसर दिया गया। उसी वर्ष प्रज्ञाश्रीजी शान्तिनिकतेन में पढ़ने आ गये। पंडितजी लिखते हैं–"कमला की चिट्ठी से मालूम हुआ कि 2 मार्च का विमान मिल गया है। कल बच्चे स्कूल में दाखिल हो गये होंगे।" 5 मार्च को कृपलानीजी का पत्र उन्हें मिला, जिसमें लिखा था कि 'तिब्बत' सम्बन्धी उनका लेख पसन्द आया। आज युनिवर्सिटी से सम्बद्ध कॉलेजों के अध्यापकों की कक्षा में भाषा के सम्बन्ध में वे बोले। 6 मार्च को उन्होंने लिखा–"1961 से आगे यहाँ रहने का मन नहीं करता। यदि भारतीय विद्यार्थी आ गये तो उनकी थेसिस पूरी करने के लिए 1962 तक रह जायें। (दो शोधार्थी 1961 में भारत से गये थे दर्शनशास्त्र पर पंडितजी के निर्देशन में शोधकार्य करने के लिए, परन्तु बीमारी के कारण पंडितजी पहले ही भारत लौट आये थे) वे आगे लिखते हैं–'सूत्रकृतांगम्' पढ़ रहे हैं। ईसा की पाँचवीं सदी में लिपिबद्ध होने से पीछे की बातें अधिक आ गईं हैं। पर भौगोलिक, ऐतिहासिक सामग्री के लिए 'पालित्रिपिटक' पूरा है।" अगले दिन भी उन्होंने लिखा–"सूत्रकृतांगम्' के दूसरे भाग को देख रहा हूँ। 'त्रिपिटक' से बहुत समानता है–बुद्ध, सम्बुद्ध, जिन, अर्हत् सारे समान शब्द हैं।"

पंडितजी को आर्थिक चिन्ता भी रहती थी, इसलिए वे बहुत अधिक काम कर रहे थे। परन्तु श्रीलंका में तो उनको वेतन के भरोसे ही काम चलाना था। इसलिए 8 मार्च को उन्होंने प्रज्ञाराम स्वामी से 500 रुपये उधार लिये और बैंक में जमा करा दिया। बैंक में पैसा कम था और बड़ा चेक महरा रेस्ट हाउस को दे दिया था। उसी दिन उन्हें कमला का पत्र मिला जिससे मालूम हुआ कि घर में तीन मास के लिए भेजे चेक मिल गये हैं। उसी दिन मास्को से डॉ. जार्ज रोयरिक का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि रूस में भी 'तिब्बती शब्दकोश' पर काम हो रहा है। पूर्वाह्न में उन्होंने कक्षा (पंक्ति) ली।

9 मार्च को वे सुबह के समय क्लास लेने गये। उसके बाद अपने कमरे में दिन-भर लिखने का काम करते रहे। 10 मार्च को वे 8 बजे सबेरे ही कक्षा में गये। पढ़ाने के बाद साढ़े 9 बजे श्री सीवलीजी के साथ वे कोलम्बो गये। वहाँ वे डाक्टर हेमन्त राय से भी मिले। "तत्पश्चात् गये गणदेविया (भारतीय उच्चायुक्त) के पास। डा. राय ने म्युजियम और प्लास्टर काम के लिए भारत सरकार के पास करने को कहा था। उच्चायुक्त ने कहा–'2-3 हजार की चीजें भले ही मिल सकती हैं, यह तो चार-पाँच लाख की बात है।' मैंने पुस्तकों के बारे में नहीं कहा, क्योंकि उसमें दो हजार की ही चीजें मिलने की आशा थी।

'डब्ल्यू राहुल' (W. Rahul) की पुस्तक 'History of Buddhism in Ceylon' पढ़ी। अच्छी है। Buddhism नहीं Buddhist church अथवा Buddhist होना चाहिए।"

पंडितजी 1948 से ही मधुमेह के रोगी थे। इसलिए अब उनका स्वास्थ्य ढीला रहने लगा था, ऊपर से श्रीलंका की ऊष्म जलवायु का असर उनके शरीर पर पड़ रहा था। पर वे काम करने के लिए जिद पकड़े हुए थे और बहुत अधिक परिश्रम करने लगे। शारीरिक स्थिति से वे सतर्क थे, इसलिए बीच-बीच में उनको चेकअप के लिए डॉक्टर के पास जाना पड़ता था। 11 मार्च की सुबह की क्लास करके शाम को Dr. Medonsa (मधुमेह विशेषज्ञ) के पास गये। दक्ष चिकित्सक के तौर पर इनकी प्रसिद्ध थी। डाक्टर ने पंडितजी का 15-20 मिनट तक परीक्षण किया–हृदय का, गुर्दे का। परीक्षण के अनुसार रक्तचाप 180, मूत्र में शर्करा 2-5 प्रतिशत, शरीर का भार 170 पौंड। डाक्टर ने सलाह दी–"Insulin 30 unit से आरम्भ करें। तीन बार तीन-तीन Brewers Yeast की गोलियाँ खायें, घाव को पोडर लगाकर सूखा रखें, दिन में दो बार मूत्र-परीक्षण

करें। घाव सूख जाने पर चर्म ऑपरेशन करा सकते हैं।" आदि-आदि।

12 मार्च को उन्हें पंक्ति (क्लास) में नहीं जाना था। अब वे नयी पुस्तक लिखने के बारे में सोच रहे थे। अतः 'पालि काव्यधारा' के लिए कुछ सामग्री नोट की। वे इस पुस्तक के लिए 'अंगुत्तर निकाय' और 'संयुत्त निकाय' से भी सामग्री लेना चाहते थे। आज उन्होंने "डाक्टर मेडोन्सा के परामर्श अनुसार 30 युनिट इन्सुलिन लिया, दो बार मूत्र-परीक्षा की, तब भी पेशाब में 2 प्रतिशत चीनी रही। दोनों वक्त (6 बजे और 14 बजे) देखी, कल 35 युनिट इन्सुलिन लेकर देखना है। कमला को लिखने पर घबड़ायेगी। पर शरीर भार 170 पौंड है।"

13 मार्च को उन्होंने 1 सी. सी : 40 युनिट इन्सुलिन लिया, तो भी चीनी 2 प्रतिशत रही, इसलिए कल से 50 युनिट लेना निश्चय किया। अब वे 'पालि काव्यधारा' लिखने में लग गये थे। काम में व्यस्त रहने पर भी वे बाल-बच्चों के पत्र की प्रतीक्षा करते रहते थे। अतः 14 मार्च को उन्होंने लिखा—"आज भी दार्जिलिंग की चिट्ठी नहीं आई। 50 युनिट इन्सोलिन से भी चीनी 2 प्रतिशत रही। कल 55 युनिट लेना है। दूसरी दवा की गोलियाँ कुछ acidity को कम कर रही हैं। कमला का लेख 'सीलोन में साड़ी' 'आज' (वाराणसी) में छप रहा है। आज विश्वविद्यालय की पालक समिति की बैठक हुई।"

अगले दो दिन (15-16 मार्च) पंडितजी कक्षा में भी गये, फिर शेष समय में 'पालि-काव्यधारा' को लिखने में लगे रहे। 'वुत्तमाला' (उनकी दृष्टि में सोलहवीं सदी की रचना) पालि की उत्कृष्टतम रचना लगी। 17 मार्च को भी उन्होंने 'पालि-काव्यधारा' के कई पृष्ठ लिखे। "अब संशोधन करके उतारना है। सभी उद्धरणों के उतार डालने पर ही उन पर लिखा जा सकती है। आज प्रातः मूत्र में चीनी 1-4 प्रतिशत थी और अपराह्न में 2 प्रतिशत हो गई।"

**18 मार्च, शुक्रवार :** "वर्षा नहीं हुई। आज कक्षा भी नहीं हुई। चुनाव के कारण छात्र नहीं आये। काव्यधारा का काम जोर से चल रहा है। 60 पृष्ठ प्रति सप्ताह का नियम डालना चाहता हूँ, फिर तो अप्रैल तक काम समाप्त हो जायेगा। आज इन्सोलिन 50 युनिट ली। प्रातः चीनी शून्य और अपराह्न में 1 प्रतिशत रही। कल दोपहर को एक गोली भी लेकर देखेंगे।"

**19 मार्च :** " 'पालि काव्यधारा' का काम किया। फिर श्री महेन्द्र कार्तिकेय का पत्र आया कि 'जौनसार' का भाग भेज दें। उसका संशोधन किया, परसों की डाक से 50 पृष्ठ भेज देंगे।

निर्वाचन परिणाम में दहनायक हार गये। तालियाँ पिटीं। आज कमला की चिट्ठी आई।" मेरे पत्र के उत्तर में उन्होंने लिखा :

*केलानिया*
*18-3-60*

*प्यारी,*

*8 मार्च की चिट्ठी आज 10 दिन बाद मिली। तुमने Inland letter पर और टिकट नहीं लगाया, इसलिए देर से और 10 सेंट बैरंग से आया। मैं बड़ा इन्तिजार कर रहा था। मैं प्रति सप्ताह कम से कम दो पत्र भेज रहा हूँ। एक में चीनी आनन्द का खींचा जया-जेता का फोटो भी भेजा है। देखें पहुँचता है कि नहीं। मैं अब चिट्ठियों पर टिकट को देख लेता हूँ, फिर बैरंग कैसे गया, समझ में नहीं आता। टिकट अपने ही चिपकाता हूँ।*

*बच्चों का Shy होना दूर हो जायेगा। अभी उनके परिचित लड़के नहीं हैं। घर में अवश्य, थोड़ा-थोड़ा बच्चों को पढ़ाना। कपड़े-लत्ते ठीक से बनवा लेना। सरदी खाने की जरूरत नहीं। तुम भी अपनी पड़ोसिनों से मिला करो। बातचीत करने से अटक जाती रहेगी।*

*मन लगाना ही होगा। मेरा भी तो मन उचट जाता है। तुम्हारी बात का ख्याल आता है—अंतिम वर्षों को साथ व्यतीत करना चाहिए। पर, यहाँ छोड़कर वहाँ आ जाऊँ तो कैसे काम चलेगा। कम से कम तीन सौ रुपये मासिक निश्चित होने चाहिये, नहीं तो गुजारा नहीं होगा। तुम्हें यहाँ बुलाकर साथ रहने के लिए कहना इसलिए*

*नहीं चाहता, कि यदि इन चार-छः वर्षों को यहाँ बिता दिया तो भविष्य में तुम्हें काम मिलना मुश्किल होगा। साथ रहना तो तभी होगा, जब तुम यहाँ काम करने के लिए भी तैयार हो। फिर मैं निश्चिंत हो जाऊँगा। मुझे रह-रहकर बच्चों के भविष्य का ख्याल आता रहता है। अभी तो यही सोचता हूँ कि 1961 तक रहूँ। फिर वहीं चला जाऊँ। इस बीच में यदि वहाँ तुम्हें कोई काम मिल गया तो आकर रहना निश्चित समझो। यहाँ छोड़ने न छोड़ने के बारे में तुम्हें पूरा सोचना है।*

*अपना जीवन निरर्थक क्यों समझती हो ? बच्चों के लिए करती जो हो। लेख सूझे तो टाइप करके भेज दो, मैं सुधारकर लौटा दूँगा। अभी मैं लेख नहीं लिख रहा हूँ। 'पालि-काव्यधारा' पर जोर से काम कर रहा हूँ। एक-दो महीने में सामग्री तैयार हो जायेगी, फिर अनुवाद करना रह जायेगा। 'संस्कृत काव्यधारा' से थोड़ी ही कम होगी।*

*पैर में भयंकर दर्द है तो तुरन्त डाक्टर को दिखाना चाहिए था। पैसे का क्यों ख्याल करती हो ? चारपाई पर पड़ जाओगी तो बच्चों का क्या होगा ? प्यारी, मैं तुम से बार-बार कहता रहा हूँ, कि बुद्धिवादिनी बनो। पत्र पाने और लिखने के लिए मैं तुम से भी अधिक उतावला रहता हूँ। बच्चों की रोज-रोज की बात जानना चाहता हूँ। यह तुम पूरी तरह विश्वास करो कि मेरे जीवन-नैया को खेने का बड़ा उद्देश्य तुम्हारी और बच्चों की सेवा करनी है।*

*यहाँ Election का भूत कल खतम हो जायेगा। आज तो मुझे क्लास में जाना नहीं पड़ा, क्योंकि छात्र आये ही नहीं।*

*नींद आती है, किसी समय सो जाता हूँ। रात को देर तक लिखता-पढ़ता हूँ। अभी तक 'तिब्बती कोश' का कोई प्रूफ नहीं आया। और बातें वहीं हैं जो तुमने देखीं। उस दिन रेस्ट हाउस में बगल के कमरे में जो डाक्टर की बीवी कुछ घंटों के लिए आई थीं, वह हमारे विश्वविद्यालय के डाक्टर परेरा की बीवी थीं। कल डाक्टर परेरा ने बतलाया। बड़े सज्जन हैं, देखते-पूछते रहते हैं। हमारे विश्वविद्यालय की नई जमीन डाक्टर राय के घर के आगे है। नई मिनिस्ट्री आयेगी, तब उसके लेने का ठीक होगा।*

*सनीचर-रविवार, सोमवार को मेरी क्लास नहीं होती। सप्ताह में चार दिन ही पढ़ाना पड़ता है। शरीर ठीक है। गोली से काम नहीं चलता देख डाक्टर की सलाह से आजकल Insulin का इंजेक्शन ले रहा हूँ। चीनी आनन्द देते हैं। तुम्हारी थीसिस छपाने के बारे में सम्मेलन को लिखने जा रहा हूँ।*

*जया को प्यार, भैया को प्यार। प्यारी को चुम्बन और गाढ़ालिंगन।*

*तुम्हारा ही,*
*राहुल*

20 मार्च को वे लिखते हैं–" 'पालि काव्यधारा' लिखते रहे। 'संस्कृत काव्यधारा' जैसी नहीं बनानी है। आज श्रीलंका के चुनाव का शेष परिणाम भी निकल आया–पार्टियों की स्थिति इस प्रकार रही–यू. एन. पी. 48, लंका स्वतंत्र (भण्डारनायके) 46, फेडरल (तमिल) 14, एन. इ. डी. 10-2, स्वतंत्र समसमाज–10, कम्यूनिस्ट–2, स्वतंत्र 2-5-2।"

21 मार्च को भी वे 'पालि-काव्यधारा' पर काम करते रहे। डॉ. राघवन (मद्रास) को उनका भेजा हुआ लेख मिल गया। आज डॉ. उदयनारायण तिवारीजी का पत्र भी उनको मिल गया। आज ही महेन्द्र कार्तिकेय के पास 'जौनसार-देहरादून' के कुछ पृष्ठ रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा भेज दिया।

अगले तीन दिन (22-23-24 मार्च) पंडितजी कक्षा में गये और 'पालि-काव्यधारा' पर भी नियमित काम करते रहे। 25 मार्च को वे क्लास लेने गये, शेष समय काव्यधारा पर काम करते रहे। वे लिखते हैं–"कमला के पास मेरे सारे पत्र नहीं पहुँच रहे हैं। श्री प्रज्ञाकीर्ति (उनके दुभाषिया) से कह दिया कि दो ही साल रहना है मुझे।" 26 मार्च को डॉ. राय के एम. ए. क्लास के छात्रों को पंडितजी ने वैदिक-पालि भाषाओं के काव्य-विकास पर व्याख्यान दिया। आज उन्होंने मेरे नाम भी पत्र भेज दिया। पंडितजी चाहते थे कि उनके और मेरे बीच

पत्रों का आदान-प्रदान बराबर होता रहे। इसलिए पत्र बराबर लिखने के बारे में वे ताकीद करते रहते थे।

28 मार्च को पंडितजी कोलम्बो शहर गये और इस मास का 750 रुपये मेरे पास भेज दिया। आगे फिर जाना न पड़े, इसके लिए विदेश विनिमय कार्यालय आज ही गये। "29 मार्च को ईद की छुट्टी रही। छात्र-परिषद् की वार्षिक सभा थी और भोज भी। कविता-पाठ हुआ। शाम को पौने दस बजे तक चीनी दूतावास ने फिल्म दिखलाये। फिल्म अच्छे थे।" पंडितजी को 'तिब्बती कोश' की भी चिन्ता थी, इसलिए उत्सव में पूरा ध्यान नहीं दे पा रहे थे। आज के समारोह में आये चीनी दूतावास के कर्मी श्री चेङ् महाशय से उनकी बात हुई। तय हुआ कि मई से प्रति सप्ताह दो दिन (वृहस्पति-शुक्र को) दो घंटे आकर अज्ञात तिब्बती शब्दों के अर्थ लिखेंगे। आशा है, मई-जून में ही यह समाप्त हो जायेगा।

30 मार्च को 'पालि-काव्यधारा' पर उनका काम जारी रहा। कक्षा में जाकर उन्होंने व्याख्यान भी दिया और मेरा पत्र भी आज ही मिला था, जिसका उत्तर भी आज ही लिखकर भेज दिया। 31 मार्च को उन्होंने 'पालि-काव्यधारा' पर ही थोड़ा काम किया। आज भी उन्हें दार्जिलिंग से भेजा हुआ मेरा पत्र मिला। उत्तर आज ही लिख दिया, पर कल पोस्ट करेंगे।

## अप्रैल 1960 : राहुलजी की व्यस्तता

इस महीने पंडितजी बहुत ही व्यस्त रहे। तबीयत ठीक न होने पर भी वे स्वयं को काम में जोते रखते रहे। 1 अप्रैल को उनके कमरे के दो गवाक्षों (वेन्टिलेशन) पर शीशे लग रहे थे, अतः दिन में उनका लिखने का काम बन्द रहा। कक्षा में जाकर पढ़ाया और रात के समय निजी लेखन कार्य किया। पंडितजी को कीड़ों-मकोड़ों और मच्छरों से सख्त नफरत थी। रात को रोशनी जलाते ही कीड़े उनके कमरे में भर जाते थे। इसीलिए उन्होंने वेन्टिलेशन पर शीशा चढ़वाया। इससे प्राकृतिक हवा के आने का रास्ता रुक गया, कृत्रिम हवा (बिजली के पंखे) के सहारे उनको श्वास लेना था। इसकी ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। 2 अप्रैल को उनकी तबीयत ठीक नहीं रही। दिन-भर उन्हें जुकाम रहा और रात को ज्वर भी। 3 अप्रैल को भी वे ज्वर पीड़ित रहे और बिस्तर पर लेटे-लेटे जैन ग्रंथ पढ़ते रहे। 4 अप्रैल को ज्वर तो उतर गया पर उन्हें कमजोरी महसूस हो रही थी। फिर भी उन्होंने थोड़ा काम किया। आज तिब्बती कोश की 7 गेलियाँ (गेली प्रूफ) आईं, देखकर आज ही लौटा दीं। इसके लिए पंडितजी ने प्रेसवालों से दो पेज प्रूफ भेजने के लिए लिखा। किताब महल, इलाहाबाद के मालिक श्रीनिवास अग्रवाल को भी आज एक चिट्ठी लिखकर भेज दी।

5 अप्रैल को उन्होंने डायरी में लिखा—"वर्षा हुई। आज कक्षा में जाने की जगह डाक्टर राय और श्री सीवली के साथ ब्रिटिश कौंसिल के इन्चार्ज मिस्टर ब्रैडी से मिलने गये। उनसे पुस्तकें और छात्रवृत्ति देने के बारे में बातें हुईं। यहाँ अच्छा पुस्तकालय है। तीन पुस्तकें पढ़ने के लिए लाये। पारिजात प्रकाशन, कानपुर ने दो उपन्यास 'गलत रास्ता : एक सवाल' (बैजनाथ गुप्त), 'एक समिधा' (हरिशंकर) समालोचनार्थ भेजे। ज्यादा अंश पढ़ गये जिससे दोपहर को सोने का मौका नहीं मिला। दोनों ही उपन्यास रोचक, यथार्थवादी और कलात्मक लगे। पहले में वेश्या जीवन का दयनीय चित्र खींचा गया है। भाषा सीधी और सरल है। दूसरे उपन्यास में भाषा काव्यमयी, चुभती तथा उच्चवर्गीय समाज के जीवन का चित्रण है। दोनों उपन्यास-लेखक आदर्शवादी हैं, पर पहला अधिक व्यावहारिक और दूसरा आदर्शवादी है। दोनों उपन्यास सफल हैं।

6 अप्रैल को पंडितजी कक्षा में गये। फिर काव्यधारा का काम करते रहे। उनका स्वास्थ्य बहुत ठीक नहीं था। मधुमेह के कारण पेशाब में चीनी की मात्रा बढ़ जाने से उनके गुप्तांग में घाव-सा हो गया था, जिससे ऑपरेशन कराना जरूरी हो गया था। इसलिए उसी दिन 13.30-14 बजे (डेढ़-दो बजे) के बीच वे कोलम्बो शहर गये। डॉ. जयशेखर सर्जन ने कहा—सोमवार (11 अप्रैल) को सवा सात बजे सबेरे आ जायें। वहाँ शल्य क्रिया हो जायेगी। कोलम्बो से वे दो घंटे बाद विद्यालंकार लौट आये। शल्यक्रिया के बाद मलहम-पट्टी डॉ. परेरा यहाँ कर देने को तैयार थे। आज संसद का उद्घाटन हुआ। कुछ भीड़ थी, कुछ यातायात में अवरोध भी दिखाई पड़ा। 7 अप्रैल को पंडितजी का 'पालि-काव्यधारा' का कार्य जारी रहा। 8 अप्रैल को उन्होंने प्राप्य

सामग्री में से धारा के लिए नोट उतारना समाप्त कर लिया और अब कापियों पर लिखना बाकी रहा। आज पूर्वाह्न में सोवियत राजदूत ने आकर ताशकंद युनिवर्सिटी और दूसरे प्रकाशन विद्यालंकार विश्वविद्यालय को भेंट किये।

9 अप्रैल को पंडितजी ने अपने जीवन के 68वें वर्ष में प्रवेश किया। शरीर अब शिथिल होता जा रहा था, पर उनका काम करना बराबर तीव्र गति से चल रहा था। आज भी 'पालि-काव्यधारा' पर काम किया, एम. ए. की कक्षा को पढ़ाया। 'पालि-काव्यधारा' के कवियों की जीवनियाँ लिखने का भी उन्होंने निश्चय किया। आज उनको घर-परिवार की बहुत याद आ रही थी, इसलिए उन्होंने मेरे नाम पत्र लिखा, जो इस प्रकार है–

*केलानिया*
*9-4-60*

*प्यारी,*

*9 अप्रेल को यह पत्र लिख रहा हूँ। तुम्हारा तो एक ही पत्र इस हफ्ते मिला, और मेरा यह तीसरा पत्र है। यों ही मैं नहीं लिखता। अव बहुत तुम्हारे साथ रहने का मन करता है। आज तो जन्मदिन का ख्याल कर मन और उत्सुक हो रहा था। उसके वाद यह पढ़कर प्रसन्नता होती है कि तुम और वच्चे अच्छी तरह अपने काम में लगे हैं। अव अप्रेल के दूसरे सप्ताह में तो जाड़े ने पिण्ड छोड़ा होगा। अगले महीने से तो सैलानी भी आने लगेंगे। मेहमानों से कष्ट तो होगा, पर वह तो जहाँ भी जाओगी, आवेंगे ही।*

*मैं अपने भोजन के लिए डाक्टर की राय की पूरी पालना कर रहा हूँ। सबेरे तो चीनी Nill हो जाती है, पर अपराह्न में 1% होती है। पहिले तो 2 से भी अधिक होती थी। Acidity नहीं है। डाक्टर की सलाह है, वह सदा के लिए जाती रहेगी।*

*आज से 1 मई तक के लिए विश्वविद्यालय की छुट्टियाँ हैं, 20 अप्रैल तक तो मैं कहीं नहीं जा रहा हूँ। मैंने कल सच्चिदा को दिल्ली (पी. पी. एच.) लिख दिया कि तुम्हारे नाम Soviet Union, Soviet Woman, China Reconstruct. और 'चीन सचित्र' को जारी करवा दें। यहाँ दो अच्छे उपन्यास आये हैं। मैं पढ़ चुका हूँ। अगले सप्ताह तुम्हारे पास भेज दूँगा।*

*'पालि काव्यधारा' के संग्रह का काम समाप्त हो गया है। कंबोडिया और लाओस से सामग्री पाने का प्रयास कर रहा हूँ। आ गई तो सम्मिलित कर दूँगा। अब कवियों पर नोट ले रहा हूँ। फिर हिन्दी रूप देना है और भूमिका लिखनी है। चाहता हूँ तैयार पुस्तक साथ लाऊँ। प्रकाशकों से बातचीत चल रही है।*

*जया और भैया (जेता) की रोज-रोज की वात लिखा करो। पढ़ने में कैसा करते हैं, स्कूल कैसे जा रहे हैं। खाने में कैसे हैं। उनके स्वाद और रुचि की चीजें वनाकर खिलाया करो। अण्डे तो रोज-रोज दे दो, उन्हें चाहिए, जैसे पसंद करें वैसे बनाकर दो।*

*कपड़ा धोने-धाने का काम अपने ही करती हो या धोबी को देती हो ? शारीरिक परिश्रम कम करा करो, शायद बेहोशी उससे आती हो।*

*मैं लिखने से घबड़ाता था, समझता था कौन पढ़ेगा। पर अब प्रेस के नाम से कलम अपने ही रुक जाती है। 'काव्यधारा' मैंने अपने हाथों लिखा, प्रेसवाले पढ़ सकते हैं। बड़ा-सा लेख सम्मेलन पत्रिका को लिखा, वह भी पढ़कर उन्होंने कम्पोज कर लिया। 'तिब्बती हिन्दी डिक्शनरी' की भी वही बात है। हिन्दी का टाइपराइटर ले तो लिया है, पर इससे किताव लिखने की नहीं सोच सकता। बहुत समय लगेगा, और समय सबसे मूल्यवान चीज है।*

*जया बेट्टी को पापा का प्यार। भैया को पापा का प्यार।*
*आज अपने जन्मदिन पर पापा तुम दोनों को और अम्मा को प्यार भेज रहे हैं।*
*सालिंगन,*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

10 अप्रैल को उन्हें मेरा भेजा जन्मदिन की बधाई का तार मिल गया। कल उनको आपरेशन के लिए डाक्टर के पास जाना था। 11 अप्रैल को सुबह सात बजे वे कोलम्बो शहर गये, डॉ. जयशेखर ने अस्पताल में 8.30 बजे उनका आपेरशन (शिश्न-चर्म का) किया। 9.30 बजे तक वे विद्यालंकार लौट आये। घाव से कुछ देर तक खून बहकर सूख गया। डाक्टर परेरा ने पेनिसिलिन का इंजेक्शन दिया। यद्यपि दर्द नहीं है, पर लेटे रहना पड़ा। 12 अप्रैल को भी वे लेटे या पढ़ते रहे। आज घाव में दर्द कम हो गया था। डायरी में लिखा–"8 तारीख की कमला की चिट्ठी आज मिली, जिससे ज्ञात हुआ–जया-जेता को छोटी चेचक (मीजल्स) के साथ 104° बुखार है। बच्चे भी घबराये हुए हैं और उनकी माता भी। मैं भी क्षुब्ध हो गया। जवाबी तार भेजा स्थिति जानने के लिए। कल उत्तर आ सकेगा। मेरा मन बहुत शंकाकुल है।" उन्होंने पत्र में लिखा :

*केलानिया*
*12-4-60*

*प्यारी,*

*8 का पत्र पढ़कर बड़ी चिन्ता हुई। आज ही जवाबी तार तुम्हारे पास भेजा। यह पत्र तो 16-17 तक तुम्हें मिलेगा। आशा है, कल तक तुम्हारा तार मुझे मिल जायेगा। जब तक तुम्हारा पत्र नहीं आता, कि बच्चों को बुखार हट गया, तब तक मैं बराबर परेशान रहूँगा। मेरे कानों में बार-बार शब्द आ रहे हैं–"पापा को तार दे बुलाओ, मेरी चारपाई पर बैठे रहेंगे।" पापा कितने कठोर हैं कि बेटी को 104° टैम्परेचर के बुखार में छोड़े हुए हैं। तुम भी तुरंत चेचक का टीका लगवा लो। हरि को भी लगवा देना। अब हर छठे महीने टीका लगवाना चाहिए।*

*'आंध्रकोश' की रसीद लौटा रहा हूँ। चेक आने पर भेज दूँगा। मैं 3-4 अगस्त तक आ जाने की सोच रहा हूँ।*

*पेशाब से घाव दिक किया करता था, डाक्टर ने सलाह दी–चिमड़ा थोड़ा निकलवा दें। कल करा लिया, दर्द नहीं है। दो-तीन दिन में घाव ठीक हो जायेगा। कल तो लेटे रहना पड़ा। आज बैठ भी लेता हूँ।*

*आजकल युनिवर्सिटी की छुट्टियाँ हैं, 2 मई से खुलेगी।*

*कुछ लिखने के बाद यही ख्याल आ रहा है कि आज चार दिन बाद बच्चों की कैसी हालत होगी। तुम्हारे पास कोई सहायता करनेवाला है कि नहीं ? मैं बार-बार कहता हूँ कि कोई नौकर या नौकरानी रख लो, पर तुम तो मानती ही नहीं। तुम भी बीमार हो गईं तो बच्चों को कौन देखेगा ? आशा है हरि आ गया होगा। उसको भी टीका लगवा देना।*

*आज दोनों उपन्यास (हिन्दी) रजिस्टर्ड पार्सल द्वारा तुम्हारे पास भेज दिया। मेरा तीन दिन के लिए काम बन्द है। डाक्टर परेरा रोज इंजेक्शन दे रहे हैं। घाव जल्दी अच्छा होता मालूम हो रहा है।*

*मेरी ओर से कहो–"मैं अपनी प्यारी बेट्टी को कितना प्यार करता हूँ। बीमारी की खबर सुनकर हृदय तड़प रहा है। आने की कोशिश करूँ तब भी तो 15 दिन लग जायेंगे। फिर रुपये भी नहीं हैं। मेरी बेट्टी जल्दी अच्छी हो जायेगी। दवाई खाना, फिर डाक्टर जैसा खाना खाने को कहे, उसे खाना। जया को बहुत-बहुत प्यार।*

*भैया मेरा बेट्टा बहुत कमजोर हो गया होगा। कितना जोर का बुखार आया ? जल्दी अच्छा हो जा बेट्टा, जल्दी अच्छा हो जा। मेरा बेटा पहिले ही बहुत कमजोर था, अब तो और भी हो गया होगा। अम्मा बहुत घबड़ा रही होगी। मैं भी वहाँ ढारस बँधाने के लिए नहीं हूँ। भैया को प्यार।*

*प्यारी, मैं तुम्हें बातों से क्या ढाँढस बँधा सकता हूँ। पूरा समाचार लिखो।*

*सालिंगन,*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

13 अप्रैल को वे बिस्तर पर लेटे रहे। दार्जिलिंग से तार नहीं पहुँचा तो वे और चिन्तित हो गये। उस

दिन डायरी में लिखा—"कमला का तार आज नहीं आया। बड़ा चिन्ता है। आज भी मुझे इंजेक्शन लेना पड़ा। दवा का वही क्रम रहा। बैठे-लेटे पढ़ते ही रहे।"

तार न पहुँचने पर उद्विगन होकर उन्होंने घर पत्र लिखा :

*केलानिया*
*14-4-60*

*प्यारी,*

*परसों तुम्हारी 8-4 की चिट्ठी मिलते ही मेरा हृदय विकल हो गया। मैंने परसों ही जवाबी तार दिया। कल नहीं जवाव आया तो ख्याल हुआ शायद सिंहली नववर्ष की छुट्टी के कारण आज तार नहीं पहुँचा। पर आज तुम्हारा जवाब नहीं मिला। फिर तार देने का मन करता है। तुम्हारी चिट्ठी भी नहीं आई। बच्चों की बीमारी की खवर से परेशान हो गया हूँ। उसी से मैं जानता हूँ, तुम्हारी परेशानी कितनी होगी। आशा है, तुमने अब तक तार दे दिया होगा, न दिया हो तो दो और पत्र में पूरा ब्यौरा लिखो।*

*मेरा मन विल्कुल दार्जिलिंग में लगा हुआ है। यहाँ कोई नयी बात नहीं। 11 को मैंने आपरेशन करा लिया था, घाव अच्छा है। कल शायद सिलाई काट दी जायेगी। खाने का परहेज चल रहा है। रोज 1 सी. सी इन्सोलिन ले रहा हूँ।*

*हरि को, आशा है, वुला लिया होगा। अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रक्खो।*

*प्यार, मेरे बच्चों को वहुत प्यार।*

*सालिंगन,*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

फिर 14 अप्रैल को लिखते हैं—"शाम को कमला का तार आया, जिसमें लिखा था—Children getting better, धैर्य हुआ। आज भी कल ही का क्रम रहा। सुनीति बाबू (डा. सुनीतिकुमार चटर्जी) को पत्र लिखा।"

15-16 अप्रैल की शाम को केलानिया में वर्षा हुई। उस दिन पंडितजी 'पालि-काव्यधारा' का काम करते रहे। इसमें देने के लिए उनको पालि के चार-पाँच सौ कवि मिल गये। आज उनको मेरे पत्र से मालूम हुआ कि बच्चे अब ठीक हो गये हैं, पर कमजोरी है।

17 अप्रैल को वे लिखते हैं—"पालि के चार-पाँच सौ कवियों में वुनना है। संख्या अस्सी से ज्यादा होगी उनकी पुस्तक में।" आज डाक्टर परेरा ने पंडितजी के घाव की जाँच की और पेनिसिलिन का इंजेक्शन भी दिया। घाव ठीक हो रहा है—यह डाक्टर ने कहा। 18 अप्रैल को भी वे पूर्ववत् काम करते रहे। उस दिन उन्हें मेरी 13 और 14 अप्रैल की तीन चिट्ठियाँ एक ही साथ मिलीं। जवाब भी उन्होंने दे दिया। अगले दो दिन 'काव्यधारा' का काम पूर्ववत् चला। 21 अप्रैल को उन्हें किताब महल के श्रीनिवास अग्रवाल की 12-4 की लिखी चिट्ठी मिली। लिखा, उन्होंने कमला के पास तीन हजार रुपये भेज दिये हैं। जुलाई, अगस्त में तीन हजार और भेज देंगे और दिसम्बर में भी। "1956-57 से हिसाब नहीं दिया। साफ लिखना होगा।"

22-23-24 और 25 अप्रैल को पंडितजी 'काव्यधारा' के काम में व्यस्त रहे। 25 से 'पालि काव्य' का हिन्दी अनुवाद भी उन्होंने शुरू कर दिया। अगले दो दिन भी पालि कविताओं का हिन्दी अनुवाद करने का काम करते रहे। पंडितजी का लिखा एक अत्यन्त मार्मिक पत्र मिला :

केलानिया
22-4-60

प्यारी,

पत्र नहीं आया। जान पड़ता है युग हो गये तुम्हारा पत्र मिले। बात लिखने की न हो तो जया भैया की ही बातों को लिख दिया करो। मेरे बेटे पापा की बात तो चलाते ही होंगे।

तुम्हें श्रीनिवास का पत्र और 3000 का चेक मिल गया होगा। उसी पत्र को उन्होंने मेरे पास भेजा है। बहुत चालाकी लगा रहे हैं। 4 वर्ष से 5 प्रतिशत रायल्टी काट रहे हैं और हिसाब इस साल का कर रहे हैं। मैं लिखने जा रहा हूँ, ऐसे काम नहीं चलेगा। यदि 5 प्रतिशत रायल्टी कम करना है तो 56-57, 57-58, 58-59, 59-60 चार सालों के जो छः हजार में बाकी है उसे दो, नहीं तो रायल्टी 20 प्रतिशत रहेगी। जो हिसाब बाकी पड़ता है, उसका रुपया दे दो।

यदि वकील साहेव कम दाम का मकान चाहते हैं तो इसी को ले लें। तुम उस ज्यादा दामवाले को ले लो। शायद उसमें किराये पर भी दिया जा सके। पर यह मेरा सुझाव-भर है। निश्चय तुम्हें करना है। यदि किरायेदार मिलते हों तो मेरी सलाह है 10-12 हजार लगाकर 'ग्रीन रीजेस' को दो मंजिला करा लो। रुपये का इससे अच्छा उपयोग नहीं हो सकता। दिसम्वर तक तो प्रायः नौ हजार श्रीनिवास ही देंगे। इसलिए मकान में पैसा लगाने की दिक्कत नहीं होगी।

मेरा लिखने का काम चल रहा है। जव-तव थोड़ी सामग्री मिल जाती है। उसे लिख लेता हूँ। पर अव हिन्दी करने और खण्ड-भूमिका लिखने में लगूंगा। भोजन में संयम चल रहा है। वेचारे आनन्द (चीनी भिक्षु) रोज 10 वजे आकर पेनिसिलिन लगा जाते हैं। प्यास अब वहुत कम लगती है। लघुशंका भी वहुत कम बार जानी पड़ती है।

'पालि काव्यधारा' के लिए 'वेस्सन्तर जातक की गाथाएँ' टाइप कर रहा था। जाली और कृष्णा भाई-वहन को शिविराजा किसी माँगनेवाले ब्राह्मण को दे देते हैं। बच्चे वहिन-भाई छोटे-छोटे हैं, पिता से कहते हैं—तात, अम्मा को आने दो तो हमें दे दो। परन्तु वह तो दिये जा चुके हैं। फिर वह कहते हैं—तात, ये हमारे हाथी-घोड़े-वैल हैं, इनसे हम खेलते थे, इन्हें अम्मा को दे देना। इस से उसका मन बहलेगा। मेरे लिए आँसुओं को रोकना मुश्किल हो गया, अनेक बार। 60-70 गाथाओं को टाइप करने में समय भी लगा। शायद इस भावोद्रेक में जया-जेता का ख्याल भी हो। वहाँ जाली बड़ा था, कृष्णा छोटी थी। अधिकतर बातें जाली ने ही की हैं।

मेरे भी जाली-कृष्णा हैं। मैं कितना प्यार करता हूँ उन्हें। बीमारी की खबर सुनकर मैं विकल हो गया था। उनके स्वास्थ्य सुधार की बात रोज-रोज की लिखा करो।

अब मेरे बेटों को—

बेट्टी जया, पापा का प्यार। चिड़चिड़े न होना, बेट्टी। अम्मा की वात मानना। तुम्हारी बीमारी में अम्मा कितनी दुःखी हो गई थी। जो बच्चे चिड़चिड़े नहीं होते, वह बहुत पढ़नेवाले होते हैं। तुम्हें तो, मेरी बेट्टी, डाक्टर बनना है ना? क्यों? गरीवों, बेचारों की डाक्टर लोग दवा नहीं करते, क्योंकि उनके पास पैसा नहीं होता। तू डाक्टर बनकर गरीबों की दवा करोगी—विना पैसा लिये, है ना? तो डाक्टर बनने के लिए बहुत पढ़ना होता है। ऐसा करना जिसमें मई के वाद फर्स्ट स्टैण्डर्ड में चली जाओ।

अब मेरे बेट्टे जेता को प्यार। जो खाना हो उसे खाया करो। बहुत कमजोर हो गये हो बेट्टे। जल्दी तगड़े हो जाओगे तभी न पढ़ सकोगे, खेल सकोगे? खेलना भी, पर उतराई में न दौड़ना, नहीं तो गिरने पर घाव लग जाती है।

प्यारी को आलिंगन-चुम्वन।

तुम्हारा,
राहुल

अप्रैल की उनकी लिखी पंक्तियों के अनुसार–"काव्यधारा पर काम होता रहा। अब कल ही भर का काम इस परिच्छेद में है। इस समय धर्मलिपि (अशोक) का अनुवाद कर रहे हैं। उसके बाद नागसेन ही रहते हैं। यदि सम्भव हुआ तो खारवेल से भी कुछ देंगे। प्राकृत काल को अगले महीने लेना है ! 'अंगुत्तर निकाय' की भूमिका लिखकर।"

29 अप्रैल को भी धारा का काम पूर्ववत् हुआ। 30 को उन्होंने इसका प्रथम परिच्छेद लिखकर समाप्त किया। अब चाहते थे कि प्रथम परिच्छेद से सम्बन्ध रखनेवाली सामान्य भूमिका लिख डालें। आगे उन्होंने लिखा–"आज कमला का छोटा-सा पत्र आया। हर समय वही जीवन की कुंठा की बात लिखती है। बच्चों के लिए जीती हूँ, कहती है। मेरी भी वही बात है, पर वैसी निराशा थोड़े ही मन पर लाता हूँ। यदि बहुत सावधानी से खर्च करें तभी अगले महीने के लिए 750 रुपया जमा हो सकेगा। अबके वेतन 1760 ही है, जबकि पिछले महीने 2000 से ऊपर बैंक में जमा था। भारत जाने के लिए दो हजार ही अगस्त के आरम्भ में रहेगा।"

## मई 1960

प्रथम से लेकर 4 मई तक उन्होंने 'पालि काव्यधारा' के काम में बड़ी प्रगति कर ली। बीच में क्लास भी लेते रहे। 5 मई को कल आने के लिए श्री चेङ् का फोन आया। पंडितजी के ही शब्दों में–"श्री प्रज्ञाराम चाहते हैं कि कमला भी यहाँ आ जायें। यहाँ लड़कियों के लिए विद्यालय खोलकर उन्हें यहाँ रख देंगे। पर कमला का भारत ही रहना अच्छा है। अकेले होने पर (पंडितजी के न रहने पर) उन्हें कष्ट होगा।

जर्नल के लिए हिदायत कर दी। शिलालेखों के सम्पादन के बारे में जक्कडु हामुदुर ने स्वयं कहा।"

6 मई को वे कक्षा में गये। लौटकर विश्राम करके 3 बजे श्री चेङ् के पास तिब्बती-शब्दकोश लेकर गये। वहाँ वे इस काम में बहुत व्यस्त रहे। आज तो खैर वे रह गये। आगे दो तरुणों से परिचय हो गया। जरूरत हो तो सप्ताह में चार दिन दे सकते हैं। 7 मई को भी 'काव्यधारा' का काम करते रहे। 8 मई को भी वे 'काव्यधारा' लिखने में ही व्यस्त रहे। उसी दिन भारत से लखनऊ के एक भिक्षु और बम्बई के एक गृहस्थ उनसे मिलने आये। 9 मई को कमला का पत्र आया और उसी समय उत्तर भी दे दिया।

10 मई को वैशाख पूर्णिमा का अवसर होने से विश्वविद्यालय की छुट्टी रही। पंडितजी छुट्टी का लाभ उठाकर 'पालि काव्यधारा' पर ही काम करते रहे। 11 मई की सुबह के समय वे लेखन-कार्य ही करते रहे। पुस्तक की थोड़ी भूमिका भी लिखी। फिर साढ़े 6 बजे शाम को वे साथियों के साथ वैशाख उत्सव देखने गये। यहाँ दीपमाला, प्रकाश-तोरण, नाट्य और अभिनय का आयोजन था। मोरादुवा तक घूमने गये। ईसाइयों के घर निराले थे। सिन्धी भी दीप-मालाएँ सजाये हुए थे, पर सम्मिलित नहीं थे। प्रज्ञाश्रीजी भी गये थे और पड़ोसी दूसरे अध्यापक भी। साढ़े 4 घंटे की सैर रही। प्रति व्यक्ति 10 रुपये दिये, अच्छा ही रहा।

12 मई को उन्होंने क्लास ली। अपराह्न में वे तिब्बती कोश के काम के लिए चेङ् महाशय के साथ चीनी दूतावास गये। यदि इस महीने में अपेक्षित गति न हुई तो अगले महीने सप्ताह में तीन दिन जाना होगा।

"न्यू एज प्रकाशक (कलकत्ता) का पत्र आया। 'मध्य एशिया का इतिहास' के सम्बन्ध में वे लोग बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के उत्तर से बहुत रुष्ट हैं। श्री मण्डलजी (अनूपलाल) के पत्र से मालूम होता है कि परिषद् आज्ञा दे देगी।··· इस सप्ताह कमला का पत्र नहीं आया।" 13 मई को वर्षा रही। पंडितजी कक्षा में पढ़ाने गये। फिर चेङ् महाशय के साथियों ने आकर कोश के काम में उनकी मदद की। 14 मई को दोपहर के दो बजे एम. ए. की कक्षा में वे खारवेल की भाषा पर बोले। उस दिन प्रज्ञारामजी से सिंहल के ब्राह्मी अभिलेखों के बारे में उनकी बातचीत हुई। डाक्टर राय के सुझाव को प्रज्ञारामजी ने पसंद किया। फोटो आदि धोने का काम यहाँ किया जायेगा, यह निश्चय हो गया।

15 मई को उन्होंने 'पालि काव्यधारा' की भूमिका लिखी। अब आगे दूसरे परिच्छेद की हिन्दी का काम शुरू करने का उन्होंने निश्चय किया। आज उन्होंने कई पत्रों में से एक पत्र नेहरूजी को भी लिखा, जिसमें

सिंहल के बारे में उल्लेख किया था। पता नहीं उस पत्र का उत्तर उन्हें मिला या नहीं। 16 मई को भी उनका काम पूर्ववत् चला। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मंत्री रामप्रताप त्रिपाठीजी ने 'पालि काव्यधारा' को मँगाया, पर इस समय वे कहाँ भेज सकते थे ? उन्होंने मुझे लिख दिया कि अपनी थीसिस सम्मेलन में भेज दें। (मैंने उनकी आज्ञानुसार सम्मेलन को अपनी थीसिस भेज दी। पर वहाँ तीन वर्ष तक रखकर पंडितजी के निधन के बाद ऐसे ही लौटा दिया।) 17 मई को उन्हें मेरी चिट्ठी मिली। तब वे 'पालि काव्यधारा' के दूसरे परिच्छेद का हिन्दी अनुवाद करने लगे। उन्होंने यह सोचा कि अच्छा है, यहाँ रहते ही यदि सारी पुस्तक की हिन्दी हो जाये। वहाँ (भारत में) करना मुश्किल होगा, क्योंकि सहायक सामग्री तो यहीं मिल सकती थी। 18 मई को पंडितजी 'पालि काव्यधारा' में लगे रहे। दिल्ली से श्री सच्चिदानन्द शर्मा का पत्र आया, जिसमें लिखा था—पंडितजी की पुस्तक 'दिवोदास' और 'पालि काव्यधारा' दोनों को पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (पी.पी.एच.) छापने को तैयार है। सच्चिदानन्दजी ने पांडुलिपियाँ मँगाई थीं। इसलिए अगले सप्ताह पंडितजी ने प्रथम परिच्छेद को भेज देने का निश्चय किया। पर 'दिवोदास' बाद में किताब महल से छपा और 'पालि काव्यधारा' की पाण्डुलिपि को किताब महल ने बिना छापे 15-20 वर्ष तक रखा। अब इस पुस्तक का उद्धार दिल्ली से होनेवाला है।

पंडितजी ने 19 मई को 'काव्यधारा' का प्रथम परिच्छेद प्रेस के लिए तैयार कर दिया। फिर तिब्बती कोश-कार्य के लिए वे चेङ् महाशय के पास गये। उन्होंने सोचा, प्रतिदिन 17 पृष्ठों के हिसाब से तीन सप्ताह चाहिए। इसलिए सप्ताह में तीन दिन कोश के लिए काम करना होगा। अगले दिन भी वे तिब्बती कोश के लिए चेङ् महाशय के पास गये। आज ही सच्चिदानन्द को 'दिवोदास' और 'पालि काव्यधारा' की कुछ सामग्री भेज दी।

20 मई को पंडितजी कक्षा में पढ़ाने गये। उसके बाद अपराह्न में तिब्बती कोश कार्य के लिए गये। सोच रहे थे, इसे 10-12 दिनों में कर डालना है। शायद आरम्भ के पृष्ठों को नहीं कर सकेंगे। 22 मई को पूर्वाह्न में अपना लेखन-कार्य करने के बाद पंडितजी और आनन्दजी दोपहर के भोज के लिए माणिकलाल पटेलजी के यहाँ गये। रात को सीलोन रेडियो के संचालक श्री शर्माजी आकर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की चिट्ठी दे गये। नागरी में पता लिखने का आग्रह था। 23 मई को युनिवर्सिटी परिषद् की बैठक हुई। आज की अपनी डायरी में उन्होंने लिखा—"कमला के पत्र से चिन्ता होने लगी। भूल जाती हैं, कहीं दूसरी जगह चली गईं। सावधानी नहीं रखतीं। मानसिक रोग बढ़ा तो पढ़ाई का फल अपने और बच्चों के लिए नहीं हो सकता। बुद्धि ही नियंत्रण कर सकती है। पर वह उसकी शत्रु है।" अगले दिन उन्होंने लिखा—"कमला की चिट्ठी आई। साथ रहने का आग्रह किया है, ठीक ही है।"

25 मई को उन्हें कमला-जया-जेता के पत्र मिले। नियमित रूप से वे कक्षा में गये। व्याख्यान दिया। मेरे पत्र से उन्हें मालूम हुआ—21 मई को उनके मित्र डॉ. जार्ज रोयरिक का मास्को में देहान्त हो गया। तिब्बती विद्या का सबसे बड़ा पंडित चल बसा। वे अपने क्षेत्र में दूसरे श्चेर्वात्सकी थे। कहाँ जल्दी क्षतिपूर्ति हो सकती है। उन्हें 10 वर्ष और काम का अवसर मिलना चाहिए था।

26 मई को वे कोश-कार्य के लिए शहर गये। उनकी पुस्तक 'विस्मृति के गर्भ में' का रूसी अनुवाद छप गया था। मास्को से उनके पास इसकी चार प्रतियाँ भेजी गयी थीं। रूसी अनुवाद का नाम 'जावितोई स्राना' है। बच्चों के लिए सुचित्रित नब्बे हजार का संस्करण निकाला गया। यदि 'वोल्गा से गंगा' की छपी होती तो प्रसन्नता होती। 20 मई को डॉ. मलालशेखर द्वारा सम्पादित 'एनसाइक्लोपीडिया' की जिल्द पेरादेनिया विश्वविद्यालय से आ गई। पंडितजी आज उन्हीं जिल्दों को देखते रहे। 28 को उन्होंने मध्याह्न के बाद एम. ए. की क्लास ली। उसके बाद उन्होंने 'पालि काव्यधारा' का कुछ काम किया। इतना ही नहीं, 'आजकल', दिल्ली के लिए एक समालोचनात्मक लेख लिखा और फिर दो अध्याय 'सूत्रकृतांगम्' के पूरे किये।

पंडितजी कई पुस्तकों को एक ही साथ लिखने के लिए हाथ लगा देते थे। इस समय भी 'पालि काव्यधारा' 'सूत्रकृतांगम्', 'तिब्बती कोश' आदि का एक साथ काम चल रहा था। 29 मई को उनके लिए मध्याह्न भोजन माणिकलालजी दे गये। आज वे 'सूत्रकृतांगम्' के अनुवाद में लग गये। आज ही पहला अध्याय समाप्त कर

उन्होंने दूसरे अध्याय में हाथ लगा दिया। उन्होंने इसको जल्दी ही समाप्त करके भेज देने का संकल्प किया था और यह काम उन्होंने निःशुल्क किया। 30 मई को उन्होंने 'सूत्रकृतांगम्' के तीन अध्याय कर डाले। अब 4 और बाकी थे, परन्तु अभी काम दशांश ही हुआ था। अपने 'तिब्बती कोश' के लिए आज उनको शहर जाना पड़ा। पर कार नहीं मिली। वे दूर तक बस में गये, फिर टैक्सी ली। डेढ़ रुपये में हो गया। पर शरीर कर्मण्य नहीं है, इसलिए सोवियत दूतावास नहीं गये। लौटने में 3.50 रुपये टैक्सी का देकर सीधे घर पर आ गये। अब चार अध्याय भेजना चाहिए। 31 मई को वे 'सूत्रकृतांगम्' पर ही काम करते रहे।

## जून 1960

1 जून को पंडितजी ने 'सूत्रकृतांगम्' की 299 गाथाएँ (चार अध्याय) तैयार कर दीं, कल भेज देने का निश्चय किया उन्होंने। 2 जून को वे लिखते हैं–"गये कोश के लिए कोलम्बो। क्लास भी रही। हिन्दी परिभाषाओं पर 4 पृष्ठ का एक लेख आजकल के लिए टाइप कर दिया। मंगल (उनके पहले के सेक्रेटरी) का पत्र आया नेपाल से। वह नेवार लड़की से ब्याह किया है। आज ही उनको 'लिब्बती कोश' के लिए कोलम्बो जाना पड़ा। लखनऊ विश्वविद्यालय के लिए पी-एच. डी. करने की तैयारी के लिए बस्ती (उत्तर प्रदेश) के शिवाधर जगन्नाथ पाण्डे आ गये।" वह दो-तीन मास वहाँ रहनेवाले थे। 3 जून को उन्होंने पहले एम. ए. की क्लास ली। इसके बाद 'पालि काव्यधारा' के कुछ पृष्ठ लिखे। वे तीसरा परिच्छेद हर हालत में समाप्त करना चाहते थे। 4 जून को उन्होंने ज्यादा नहीं लिखा पर 'सूत्रकृतांगम्' की सारी टीकाएँ उन्होंने पढ़ डालीं। उनको ज्ञात हुआ कि जैन ग्रंथों में और भी समकालीन लुप्त मतों के बारे में सामग्री है। "पिछले रविवार (मई) से रोज कमला को पत्र लिख रहा हूँ।"

6 जून को लिखा–"धारा का काम करते रहे। आज मुसलमानों को खुश करने के लिए प्रशासन ने उनके त्यौहार पर डाकघर तक की छुट्टी कर दी। ई. आई. (एपिग्राफिका इंडिया) के 11 चित्र लिये गये, फल परसों मालूम होगा।" 7 जून को भी छुट्टी रही भिक्षु महेन्द्रागमन की स्मृति में। 8 जून को उपस्थ की छुट्टी रही। महेन्द्र-दिवस होने के कारण पोस्ट की भी छुटटी रही, इसलिए काव्यधारा का काम करते रहे।

9 जून को पंडितजी ने क्लास ली। शाम को श्री शिवाधारसिंह के व्याख्यान के वे सभापति बने। आनन्दजी ने व्याख्यान का सिंहली में अनुवाद किया। आज चीनी दूतावास से फोन आया, इसलिए वे चीनी तरुणों के पास गये। जान पड़ता है डॉ. पा-चाउ के पास दो दिन के लिए जाना ही पड़ेगा। 10 जून को उन्होंने नियमित क्लास ली और अपराह्न में 3 से 4 बजे तक कोलम्बो में कोश का काम किया। 6 बजे चीनी दूतावास में अफीम युद्ध और महोत्सव-फिल्में देखीं। इन फिल्मों को भिक्षुओं के लिए विशेष तौर से दिखाया गया था। अफीम युद्ध में युद्ध के साथ ही कला और तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण किया गया था। 11 जून को भी एम. ए. की क्लास हुई पर उससे पहले 9 बजे से 1 बजे तक पंडितजी कोश के काम के लिए कोलम्बो में रहे। कोश के अब 50 पृष्ठ बाकी रहे गये थे, जो चार घंटे का काम था। मुझे चार-चार दिन के पत्र इकट्ठे मिल रहे थे।

12 जून को वे लिखते हैं–"धारा का कुछ काम लिया। छंद आदि ठीक कर अब हिन्दी अनुवाद करना शुरू कर दिया है। 19 जून तक परिच्छेद समाप्त करना है। पत्र रोज नियमपूर्वक कमला के लिए लिख रहा हूँ।" 13 जून धारा का काम करते रहे। श्रीनिवासजी को चिट्ठी लिख दी कि "इसका भी जवाब न आने पर समझूँगा आप सफाई नहीं करना चाहते। सच्चिदा को लिख दिया–राजपाल एण्ड संस से बात करें। रतलाम के पास के ठाकुर (सर्दार) में सिंहसेनापति की ईंटों के बारे में पूछा है।"

14 जून को उनको कोई पत्र नहीं मिला। घर से रोज पत्र पाने की वे आशा रखते थे। इसलिए वे आज भी 'पालि काव्यधारा' पर काम करते रहे। उनको इसका चतुर्थ परिच्छेद इस सप्ताह समाप्त करना था और उधर 'तिब्बती कोश' का काम भी देखना था। यदि समय मिला तो काव्यधारा को इसी महीने में दोहराने का संकल्प उन्होंने किया। अगले महीने के लिए काम भी अभी उन्होंने सोच लिया था। यही कि अगले

महीने कोश के मैटर पृष्ठों को लिखने में लगायेंगे। 15 जून को केलानिया में जोर की वर्षा हुई। परन्तु पंडितजी तो काम करते रहे। अब कोश के पृष्ठ देखने को रह गये थे। कल (15 जून) एक घंटा पहले ही कोश कार्य के लिए कोलम्बो जाना था। आज सुबह उन्होंने कक्षा में पढ़ाया और 17 जून को उन्होंने तिब्बती-हिन्दी शब्दकोश का काम समाप्त कर डाला। 18 जून को उन्हें मेरी और जया-जेता की चिट्ठियाँ मिलीं। आज उन्होंने 'पालि काव्यधारा' का चतुर्थ परिच्छेद पूरा कर डाला। अब थोड़ा-सा ही बाकी रहा था। 19 जून को काव्यधारा का चौथे परिच्छेद का हिन्दी रूपानतर भी पूरा हो गया। अब इन परिच्छेदों को दुहराने का काम रह गया था।

20 जून को उन्हें मेरे तीन पत्र इकट्ठा मिले। "बच्चे परीक्षा में अच्छे रहे। जया धीमी बोलती है, भैया (जेता) के हाथ के कारण अक्षर नहीं बन पाता। पर उतना बुरा भी नहीं है।" रवीन्द्र जयन्ती के लिए साहित्य अकादमी से 'तिब्बती अध्याय' का लेख देखने के लिए पंडितजी के पास आया। 21 जून को उन्होंने काव्यधारा के तृतीय परिच्छेद को दुहरा लिया, कल शायद चौथा परिच्छेद भी हो जाये। 22 जून को उनका क्लास लेना और पालि काव्यधारा का काम हुआ। 23 जून को अमावस्या के कारण विश्वविद्यालय की छुट्टी रही। समय का सदुपयोग करते हुए पंडितजी 'पालि काव्यधारा' के चौथे परिच्छेद को दुहराते रहे। प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सिंहल भाषा का प्रूफ आया, जिसे आज ही संशोधन करके लौटा भी दिया। 24 जून को उन्होंने 'काव्यधारा' का चतुर्थ परिच्छेद को दुहरा दिया। अब उसके दो-तीन पृष्ठ प्रवेशक लिखना रह गया था। आज की कक्षा में श्री प्रज्ञाकीर्तिजी (उनके सिंहली अनुवादक) नहीं थे, अतः पंडितजी को अपने ही काम चलाना पड़ा। उन्होंने पाया कि यदि सुप्रसिद्ध प्रत्यय याद कर लें तो काम चल सकता है।

25 जून को पंडितजी ने काव्यधारा के चतुर्थ परिच्छेद को सर्वथा समाप्त कर लिया। उसके बाद अपराह्न में उन्होंने एम. ए. की कक्षा ली। 'पालि काव्यधारा' को छपवाने के बारे में पंडितजी ने कई प्रकाशन संस्थाओं के साथ पत्र-व्यवहार किया था। उस समय साहित्य अकादमी भी काव्यधारा छापने के लिए तैयार थी और पी. पी. एच. भी। पर दोनों में से किसी ने भी नहीं छापा। 26 जून को पंडितजी की क्लास नहीं थी अतः उन्होंने आर्यधर्मकोश की कारिकाएँ अपनी टीका में जोड़कर ठीक कर दीं। रात को उन्होंने 'तिब्बती हिन्दी कोश' की प्रेस-कापी तैयार करने में हाथ लगा दिया। "प्रतिदिन 5 पृष्ठ का नियम रखना होगा। चश्मे को बदलने की आवश्यकता है। यहीं बदलवा लेंगे। प्रज्ञासार भिक्षु (जो वर्धा में रहे थे) आये। 'विस्मृत यात्री' का सिंहल अनुवाद करने को दिया।"

27 जून को पंडितजी दिन-भर विश्वविद्यालय के दूसरे कार्यों में व्यस्त रहे, इसलिए कोश के 5 ही पृष्ठ किये। आज के ही दिन अमृतसर से भैया हरिशरणानन्दजी का पत्र उन्हें मिला। स्वामीजी ने कमला से क्षमा माँगते हुए यह पत्र पंडितजी के पास भेजा था। आज प्रज्ञाश्रीजी (विद्यालंकार के लाइब्रेरियन) गये शान्तिनिकेतन के लिए। पंडितजी ने उनके हाथ से कलकत्ता में पोस्ट करने के लिए कमला को पत्र भेजा था। 28 जून को वे तिब्बती कोश का काम करते रहे, आज उन्होंने 8 पृष्ठ लिखे। आज ही उन्हें मेरा पत्र भी मिल गया। शिवाधारजी भी कल भारत लौटनेवाले थे। 29 जून को भी पंडितजी ने कोश का काफी काम किया और कक्षा भी ली। आज उन्होंने कोश का दस पृष्ठ लिखा था और 30 जून को भी 10 पृष्ठ लिखना हुआ। इस प्रकार जुलाई महीने में सारे कोश की पाण्डुलिपि को तैयार करने का उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया। क्योंकि जुलाई में यह सारा काम समाप्त करके अगस्त में तीन महीने की छुट्टी में वे भारत आने की तैयारी कर रहे थे। इस प्रकार वे बहुत द्रुत गति से लेखन-कार्य कर रहे थे। इधर कुछ समय से मधुमेह की उग्रता भी कम हो गई थी, इसलिए काम में उनकी इतनी चुस्ती दिखाई दे रही थी।

## जुलाई 1960

1 जुलाई को भी उन्होंने कोश के 10 पृष्ठ लिखे, जो छपी पुस्तक के 12 पृष्ठों के बराबर था। छोटे-छोटे तिब्बती शब्दों को हाथ से लिखना, उनका हिन्दी पर्यायवाची शब्द देना, यह सारा काम पंडितजी अपने हाथ

से ही कर रहे थे। आज उनको मेरी चार चिट्ठियाँ एक साथ मिल गईं। वे स्वयं प्रतिदिन पत्र भेजते थे, इसलिए आशा रखते थे कि कमला भी रोज-रोज पत्र लिखा करे। 2 जुलाई को उन्होंने कोश का कार्य 9 बजे रात तक किया। 10 पृष्ठों का मैटर तैयार हो गया। आगरा निवासी एक हरिजन युवक अमरसिंह ने पंडितजी को पत्र लिखकर श्रीलंका आने की इच्छा व्यक्त की थी। पंडितजी ने अमरसिंह को पी-एच. डी. के शिष्य के रूप में रखने के लिए महास्थविर श्रीप्रज्ञारामजी की राय ले ली। 3 जुलाई को भी उन्होंने 10 पृष्ठ कोश के लिखे। 270 पृष्ठ और हो जाने की आशा है, अर्थात् 6 सौ पृष्ठ। दो सौ पृष्ठ से कुछ अधिक रह जायेंगे। आज ही उन्होंने विद्यालंकार के रजिस्ट्रार से भी कह दिया कि वे 3 अगस्त को भारत जा रहे हैं। कल कापड़ियाजी को फोन करने का सोच लिया।

4 जुलाई को उन्हें ज्वर आ गया था, किन्तु उन्होंने 10 पृष्ठ कोश के लिखे और संशोधन किया। ज्वर से काम में विघ्न पड़ता वे महसूस कर रहे थे। अपने शरीर को स्वयं ही इतना कष्ट दे रहे थे अत्यधिक काम करके, फिर क्यों न काम में विघ्न पड़ता। 5 जुलाई को वे ज्वर भगाने के लिए निराहार विहार करते रहे। ज्वर में भी अपराह्न में उन्होंने 5 पृष्ठ कोश का काम किया। 7 जुलाई को उपवास के कारण वे कमजोरी महसूस कर रहे थे, इसलिए आज पंक्ति (क्लास) नहीं ले सके। पर कोश का काम 10 पृष्ठ तक किया। 7 जुलाई को उन्होंने पंक्ति ली और कोश के 10 पृष्ठ बहुत मुश्किल से लिख सके। उसके बाद वे `History of Ceylon, Part-II' को पढ़ते रहे। शोधार्थी कोमलचन्द्र जैन (वाराणसी) और अमरसिंह (आगरा) को विद्यालंकार विश्वविद्यालय ने शोध-कार्य के लिए आज मंजूर कर लिया। शारीरिक दुर्बलता के कारण आज पंडितजी चिट्ठी नहीं लिख सके। उनकी देखभाल करनेवाला भी तो वहाँ कोई नहीं था। 4 जुलाई को उनकी तबियत कुछ ठीक रही, इसलिए उन्होंने कुछ चिट्ठियाँ लिखीं और कोश का काम भी किया। इसी प्रकार 9 जुलाई को उन्होंने कोश का काम 10 पृष्ठ तक का किया। अब उनको विश्वास हो गया कि यही क्रम मासान्त तक जायेगा।

पंडितजी को विद्यालंकार में सब प्रकार की सुविधाएँ मिलने पर भी खाने-पीने का कष्ट था। रुचिकर भोजन वहाँ नहीं मिल सकता था। इसलिए वे दूसरी जगह घर लेकर रहने के बारे में भी सोच रहे थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने कापड़ियाजी से भी बात कर रखी थी। अतः 10 जुलाई को 3 बजे कापड़ियाजी के साथ उनके घर गये, गॉलफेस पर विद्यालंकार से सात मील दूर। "घर देखा, कापड़ियाजी कार भी देंगे। यदि 500 रुपये में हो जाये तो ले लेंगे यही। बाकी 500 में खाने-पीने की चीजें हो जायेंगी।" पर बाद में शायद उन्होंने अपना विचार बदल लिया था। उस दिन श्री राजेन्द्रपति नामक एक दिलचस्प आदमी से पंडितजी की भेंट हुई। "वह विवाहित नहीं, पर घुमक्कड़ हैं। अंग्रेजी न जानते भी बाली भी हो आये हैं, अब फीजी जा रहे हैं।" दूसरे दिन 11 जुलाई को श्री राजेन्द्रपतिजी विद्यालंकार में उनसे मिलने आये। वह बोलने में भी चतुर व्यक्ति थे। उन्होंने पंडितजी को बतलाया कि 50 हजार रुपये की किताबें बड़ौदा विश्वविद्यालय को दीं और लाख की पुस्तकें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय को दे देंगे। आज उनको मेरे 30-6 और 6-7 के दो पत्र इकट्ठा ही मिले। 12 जुलाई को उन्होंने लिखा—"कमला का पत्र आया, स्नेहाप्लुत।" उस दिन उन्होंने 'कोश' के 10 पृष्ठ लिखे, कुछ 'सूत्रकृतांगम्' के भी लिखे, साथ क्लास भी करने गये। 13 जुलाई के पूर्वाह्न उन्होंने पंक्ति (क्लास) ली, फिर कोश के 10 पृष्ठ लिखे। 'सूत्रकृतांगम्' पर भी कुछ काम किया। काम करने में उनका उत्साह और बढ़ता जा रहा था। उन्होंने सुना कि भारत में सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल चल रही है।

14 जुलाई को पंडितजी का काम पूर्ववत् रहा। उस दिन उन्होंने कोश के 10 पृष्ठ और 'सूत्रकृतांगम्' के 4 पृष्ठ लिख डाले। 15 जुलाई को वे कोलम्बो शहर गये और 722 रुपये का चेक देकर बागडोगरा (दार्जिलिंग) का रिटर्न टिकट ले लिया। फिर 400 रुपये की चीजें भी खरीदीं। उसी दिन उनको 'किताब महल' से श्रीनिवास अग्रवाल का पत्र मिला, जिसके साथ रायल्टी का हिसाब भेजा बुकपोस्ट से, 30 मार्च 1960 को समाप्त होनेवाले वर्ष में 41 पुस्तकों की रायल्टी 15 प्रतिशत दर से कुल 9626 रुपया हुई, यही कारण है जो अग्रिम पाँच सौ रुपया देने को तैयार हैं। इसीलिए हिसाब नहीं भेज रहे थे। "उत्तर प्रदेश सरकार 250 पृष्ठों का 'पालि साहित्य का इतिहास' लिखाना चाहती है। 2000 रुपया नकद और 5 प्रतिशत रायल्टी का। लिख डालेंगे।"

(पंडितजी ने 'पालि साहित्य का इतिहास' लिखकर हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश को दे दी, पुस्तक उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुई।) इसकी रायल्टी का एक पैसा भी परिवार को नहीं मिला।

16-17 जुलाई दो दिन में उन्होंने कोश के 25 पृष्ठ और 'सूत्रकृतांगम्' के 4 पृष्ठ लिखकर समाप्त किया। भारत में डाक-कर्मचारियों की हड़ताल के कारण उन्हें घर की चिट्ठियाँ एक-दो दिन नहीं मिलीं। इसलिए 18-19 जुलाई को वे मेरे पत्र की आशा कर रहे थे, पर उस दिन भी पत्र नहीं पहुँचे। घर से पत्र पाने के लिए वे व्यग्र थे, "पर यह तो डाक-व्यवस्था की कृपा पर ही निर्भर था।"

20 जुलाई को उन्होंने कोश के 10 पृष्ठ लिखकर समाप्त कर दिये। 'सूत्रकृतांगम्' के भी 4 पृष्ठ लिखे। उन्होंने लिखा—"अमरसिंह को यदि छात्रवृत्ति मिल गई भारत में तो वह यहाँ नहीं आयेंगे। उनके लिए यह अच्छा है। अपनी पिछड़ी जाति का नेतृत्व करना है।" 'पालि काव्यधारा' को साहित्य अकादमी में पहुँचा दिया। तीन परिच्छेद और भेजने हैं भारतभूषण जी के पास। पाँचवें का प्रवेशक दो पृष्ठ का लिखकर भेजना है। भारत में ही हिन्दी करके इसे भी भेज देंगे। बैंक से नोट आया, 20 रुपये ओवर का चेक दे दिया था। संशोधन करके लौटा दिया उन्होंने।

21 जुलाई को श्रीलंका की नयी सरकार बनी। पंडितजी लिखते हैं—"श्रीमा : (भण्डारनायके) विश्व की प्रथम महिला प्रधानमंत्रिणी होंगी। अब उन्हें शिवजी की बारात को सँभालना है।" आज के दिन भी उन्होंने शब्दकोश के 10 पृष्ठ और 'सूत्रकृतांगम्' के 4 पृष्ठ योजनानुसार लिखे। 22 जुलाई को सिंहल भाषा भाग-2 के प्रूफ आये। छपाई बहुत अशुद्ध थी, पंडितजी को बड़ी झुँझलाहट हुई। लिखा—"शुद्ध छापने का ध्यान न जाने कब आयेगा।" आज भी उन्होंने कोश के 10 पृष्ठ और 'सूत्रकृतांगम्' के दो पृष्ठ लिखे। 23 जुलाई को कोश के 10 पृष्ठ से थोड़ा कम लिखना हुआ। फिर पुरातत्व आयुक्त मि. गोडकोवरिन से मिले जो उनके परिचित ही निकले। उपसम्पाद-सम्बन्धी प्रश्न को भी पूछ रहे थे, इस समय वह 'प्रमाणवार्तिकम्' को पढ़ रहे थे। पंडितजी लिखते हैं—"ब्राह्मी लेखों की सारी बातें अब ठीक हो गयी हैं। आज कमला की 6-7 और 19-7 की दो चिट्ठियाँ मिलीं।"

24 और 25 जुलाई को भी उन्होंने प्रतिदिन 10 पृष्ठ के हिसाब से कोश-कार्य और 4 पृष्ठ के अनुसार 'सूत्रकृतांगम्' का काम किया। 'सूत्रकृतांगम्' के तो प्रूफ भी आने लगे थे। इस समय पंडितजी हाथ के सभी काम को जल्दी-जल्दी समाप्त कर देना चाहते थे, क्योंकि अगले महीने वे तीन महीनों की छुट्टियों में भारत आ रहे थे।

26 जुलाई को कोई डाक नहीं आई, क्योंकि कल ही बहुत-सी डाक उनको मिल गई थी। नियमित रूप से कोश के 10 पृष्ठ और 'सूत्रकृतांगम्' के तीन पृष्ठ उन्होंने लिख डाले। उन्होंने कोश का काम अब छोड़ देने के बारे में सोचा, क्योंकि तब तक 18 हजार शब्द तो तैयार हो चुके थे। शेष शब्दों को भारत जाकर देखने का उन्होंने संकल्प किया। इतना काम, वह भी हाथ से लिखने का काम, करते-करते वे कितना थक गये होंगे। उसी दिन जमनालाल बजाज परिवार के एक तरुण बजाज पंडितजी से मिलने आये। वह अपने ही खर्च से अमेरिका में पढ़ने जा रहे थे। वह वहाँ अमेरिका में वाणिज्य पर पी-एच. डी. लेना चाहते थे।

27 जुलाई को पंडितजी ने कोश का काम समाप्त कर दिया। अब 'सूत्रकृतांगम्' के लिखे भाग को दुहरा कर आगे का भाग लिखना रह गया। 28 जुलाई को वे कोलम्बो में विनिमय विभाग गये और 1000 रुपये को भारतीय रुपये में बदला। कल ही उन्होंने इस काम को करने का निश्चय कर लिया था। आज का मध्याह्न भोजन उन्होंने माणिकलालजी के यहाँ किया। 29 को वे 'सूत्रकृतांगम्' के लिखे भाग को दोहराते रहे, आगे का भाग लिखने का काम उन्होंने आज नहीं किया। विदेशी विनिमय विभाग के नियंत्रक ने 300 रुपया भारत ले जाने की अनुमति दी।

30 जुलाई को वे 'सूत्रकृतांगम्' के लिखे भाग को ही दुहराते रहे। कुछ अनुवाद-कार्य भी किया। फिर यात्रा की सुरक्षा के लिए उन्होंने टीका भी लगवाया। 31 जुलाई को उन्होंने 'सूत्रकृतांगम्' के अंतिम भाग में भी हाथ लगाया, "शायद जाने से पहिले यहीं समाप्त हो जाये। फिर रिवाइज करना सम्भव हो सकेगा।"

पहली अगस्त को पंडितजी शहर गये और बैंक से 300 का ड्राफ्ट तथा 50 रुपया नकद ले आये। टीका लगवाने का सार्टिफिकेट भी लिया। "चलो उससे छुट्टी हो गई। आज लिखने का काम नाम मात्र ही हुआ।"

2 अगस्त को 'सूत्रकृतांगम्' के कलकत्ता भेजनवाले अंश को दुहरा दिया और दूसरा काम नहीं किया। कल दोपहर साढ़े 12 बजे यहाँ से प्रस्थान करना है।

## तीन माह का अवकाश : भारत आगमन

**अगस्त 1960 : श्रीलंका से प्रस्थान :** भारत के लिए प्रस्थान करने से एक दिन पहले पंडितजी ने घर में जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार है :

*केलानिया*
*2-8-60*

*प्यारी,*

*शाम को 5-7 वजे पत्र लिख रहा हूँ। सब सामान बाँध दिया। 44 पौंड के अतिरिक्त 10-12 पौंड हमारे हाथ में रहेगा। एक पुस्तक पार्सल से भेज रहा हूँ, जो हमारे दार्जिलिंग पहुँचने पर ही पहुँचेगा। कल तार दे दिया है। अपना कैमरा भी ला रहा हूँ। आज क्लास की अंतिम बैठक भी हो गई। 'वोल्गा से गंगा' की एक प्रति कल डाक से श्रीमती भण्डारनायके के पास भेजूँगा जो उनके हाथ में तब पहुँचेगा जब मैं मद्रास में रहूँगा। 26 सितम्बर को यहाँ आया था। 10 महीने हो गये। कितनी जल्दी दिन वीतते हैं। यहाँ के लोगों की आत्मीयता तो देखी ही। श्री प्रज्ञाराम सबसे अधिक स्नेह रखते हैं। हमारे दीक्षा-गुरु उनके भी गुरु थे। वह वस्तुतः स्नेहमूर्त्ति थे। उनका मेरे ऊपर कितना स्नेह था, वह यह भी जानते हैं और स्मरण करते रहते हैं।*

*तुमने उन्हें देखा नहीं। उनको बुहत वर्षों से रात में काम करने की आदत है, दिन में सोने का काम लेते हैं। इसीलिए तुम नहीं देख पाईं। अब विश्वविद्यालय का भार है। वह स्वयं वाइस चांसलर नहीं हैं पर अपनी उदारता के कारण अपने बड़े भाई को सम्मान प्राप्त कराया, पर काम इन्हीं को करना पड़ता है।*

*चीनी भिक्षु आनन्द तो इधर हमारे अनुसन्धान के काम में भी वहुत भाग ले रहे हैं।*

*मैंने अंतिम अध्याय के भाग को छोड़कर सारे 'सूत्रकृतांगम्' का अनुवाद कर डाला। वुकपोस्ट बनाके तैयार रखा है। परसों सवेरे तो कलकत्ता में डाक में डाल देना है। थोड़ा ही बाकी रहता है। युनाइटेड कमर्शियल बैंक के मैनेजर श्री पाठकजी की चिट्ठी आई है। पिछली बार भी अपने घर ले गये थे, जो अशोक बाबू के घर से वहुत दूर नहीं है। अव भी घर पवित्र करने का निमंत्रण दे रहे हैं। सारा परिवार अच्छा है।*

*शायद यह पत्र और मैं साथ ही दार्जिलिंग पहुँचूँ। बहुत लिखने को है भी क्या। जो है, वह तो वहीं मुँह से कहूँगा। यही इच्छा है, तुम वर्षा में न मेरा इंतिजार करो।*

*अगले साल दो एम. ए. फिलासफी के विद्यार्थी यहाँ आकर भिक्षु बनना और पढ़ना चाहते हैं। 75 रुपया मासिक में काम हो जायेगा, ऐसा लोग सोच रहे हैं। एक कोमलचन्द्र जैन ही मंजूर हुए। इस प्रकार तीन पी-एच. डी. के छात्र हमारे विभाग में रहेंगे।*

*पत्र को लिखते समय बीच-बीच में मिलनेवाले आ रहे हैं। सात बजने में चार मिनट हैं, जब आगे की पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। आनन्दजी बुद्धमूर्त्ति को ले जाने के लिए जहाज से जाते हैं। फिर 8-25 पर यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। अभी-अभी शांतिजी और उनकी पत्नी गई हैं। सामान 44 पौंड और 10-12 पौंड से ज्यादा है। हाथ में लेने का भरोसा है।*

*वहुत-बुहत चुम्वन, वहुत-वहुत आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

एक पत्र उन्होंने इससे पहले 1 तारीख को भी लिखा था, जो इस प्रकार है :

*केलानिया*
*1-8-60*

*प्यारी,*

*27-7 का पत्र मिला। यह जानकर संतोष हुआ कि 22 जुलाई तक के मेरे सारे पत्र मिल गये। फाटक भी लग गया, बोर्ड भी बना हुआ है, गार्डन बन गया। प्यारी ने कितनी स्वागत की तैयारी कर रखी है। मैं वस की फिकर नहीं करूँगा, टैक्सी ले लूँगा और लोरेटो कान्वेन्ट के पास उतर जाऊँगा।*

*मुकुन्दीलालजी का पता नहीं मालूम था, इसलिए मैंने पत्र नहीं लिखा। पहिले पते से हटनेवाले थे। प्यारी, आज ज्यादा नहीं लिख सकतीं, और इधर मैं हूँ कि कागज का कोना भी छोड़ना नहीं चाहता।*

*आज कोलम्बो गया। श्री मगनभाई कापड़िया के साथ वैंक गया। वहाँ से 300 रुपये का ड्राफ्ट कलकत्ता के पते का और 50 रुपया नगद लिये। कुछ देर थी, पास में हजामत की दूकान थी, इसलिए वाल भी कटवा लिये।*

*डॉ. परेरा ने टीका आदि लगा दिया था। कोलम्बो से पुस्तिका लेके इनके हस्ताक्षर करा लिये, जिसमें लौटते समय दार्जिलिंग में उसकी जरूरत न हो। यहाँ की सरकार कलेरा, टाइफाइड, चेचक का बहुत ख्याल करती है। भारत में इसकी पूछ नहीं है। इसलिए यहाँ से जाते समय जरूरत नहीं पड़ती। इस समय 7-12 वजे रात के हैं। परसों इस वक्त विमान कलकत्ता की ओर उड़ रहा होगा और 9 बजे कलकत्ता में उतार देगा। आज डाबर को आने का तार दे दिया। आज कुछ नहीं लिखा। 1 बजे तक नींद तो आयेगी नहीं, इसलिए कुछ शायद लिख भी लूँ।*

*सामान आज ही तीनों बैगों-बक्सों में डाल दिया। परसों तोल लूँगा। 44 से अधिक पौंड नहीं लाना है। मेरा एक ही सूटकेस है। बैग और अटैची तो तुम्हारे लिए है। देखें कलकत्ता में क्या चीज दीख जाती हैं। वहाँ से और लाना है। राधामोहन वावू के बच्चों के लिए तीन खिलौना लाऊँगा। सूती साड़ी 4 लाऊँगा 6 गजवाली। एक डिब्बा रसगुल्ले का भी या दो। एक पहिले खाने के लिए और एक जया के जन्मदिन पर। मेरी बेट्टी बहुत पढ़ रही है ना ? कित्ती प्यारी बेटी है। पापा की सारी कहानियाँ जरूर पढ़ी होंगी। और मेरा बेटा भी किसी से पीछे नहीं रहेगा। वह मेरे आते ही टेबुल सुना देगा। बेटा कभी पीछे रहनेवाला नहीं है। पापा की और अपनी नाम-हँसाई थोड़े ही करेगा। राहुलजी का बेटा है ना ? उसे भी तो बहुत पढ़ना है। पापा की सारी पुस्तकें पढ़नी हैं। चित्र भी बनाना है।*

*अब तो 'ग्रीन रीजेस' भी सज गया है। उसका कोई दूसरा नाम रखना होगा।**

*प्यारी को खूब चुम्बन, खूब आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**कलकत्ता में :** 3 अगस्त (1960) बुधवार को पंडितजी ने 1 बजे दिन के पहिले ही विद्यालंकार से प्रस्थान किया। कार से रत्नमाल्य विमान स्थल पर 1 बजकर 20 मिनट पर पहुँचे। उनके साथ उनके सहयोगी भिक्षु प्रज्ञाकीर्ति, भिक्षु प्रज्ञाकर, अनिरुद्ध आदि विमान स्थल तक उनको पहुँचाने आये। यहाँ के कस्टम आफिसर बहुत अच्छे थे। डेढ़ घंटे बाद मद्रास पहुँचे। वहाँ पर भी कस्टम में कोई दिक्कत नहीं हुई। शाम तक मद्रास में ही ठहरना था। शाम सात बजे विमान उड़ा और 9 बजे रात को दमदम हवाई अड्डे पर पंडितजी उतर गये। विमान स्थल पर उनको लिवाने श्री अशोकबाबू सपत्नीक तथा भगवद्दत्त राकेशजी आये हुए थे। उनके साथ पंडितजी रासबिहारी एवेन्यू स्थित 'डाबर हाउस' गये। आज की लम्बी यात्रा की थकान मिटाने के लिए पंडितजी

* 'ग्रीन रीजेस' का नाम अव 'राहुल निवास' है।

जल्दी ही सोने चले गये।

4 अगस्त को वे कलकत्ता में कई जगह गये। पहले राष्ट्रीय पुस्तकालय में सारिपुत्र प्रकरण को टाइप कराने का प्रबन्ध करवाया डॉ. महादेव साहा के माध्यम से। फिर रामजीदास जेटिया लेन (बड़ा बाजार) में श्री मणिहर्ष ज्योतिजी से भी मिलने गये। रात को 'डाबर भवन' में रहकर तिब्बती कोश के प्रूफ देख डाले। यह कोश कलकत्ता के बैप्टिस्ट मिशन प्रेस में छप रहा था। 5 अगस्त को वे प्रेस में प्रूफ दे आये, 'सूत्रकृतांगम्' (जो कलकत्ता के प्रेस में छप रहा था) की प्रेस-कापी भी दे आये। उस प्रेस में फारसी–हिन्दी का भी टाइप है। 12 प्वाइंट का उर्दू मोनोटाइप भी था। प्रेस से वे 1 बजे डाबर हाउस लौट आये। 6 बजे शाम को डाबर भवन में एक साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन हुआ, जो राकेशजी की 'संस्कृत कामायनी' के सम्बन्ध में आयोजित की गई थी। श्री पट्टाभि (संस्कृत अध्यापक, विदेश) भी अच्छा बोले। पंडितजी भी बोले। गोष्ठी में 20-25 आदमी थे, जिनमें श्री केसरियाजी भी थे।

अगले दिन 6 अगस्त को स्थानीय माहेश्वरी भवन में पंडितजी का भाषण रखा गया था। उससे पहिले ही वे बाल परिषद् में गये। वहाँ रणदिवे ने गाया और बाँसुरी बजाकर भी सुनाया। अब कल पंडितजी अपने घर की ओर प्रस्थान करनेवाले थे। उन्होंने कलकत्ता को चार दिन दिये।

## दार्जिलिंग के निजी गृह में

**7 अगस्त (1960) रविवार :** पंडितजी लिखते हैं–"पौने सात बजे सबेरे दमदम विमानस्थल पर पहुँचे, कुछ साथी पहुँचाने आये। हवाई जहाज आठ बजे के बाद उड़ा। पर थोड़ी दूर जाकर लौटना पड़ा, क्योंकि उससे तेल निकलने लगा था और आग लगने का डर था। 1 घंटा में दूसरे विमान से 11 बजे के करीब बागडोगरा (दार्जिलिंग) विमान स्थल पहुँच गये। 1949 से अब तक बहुत मकान बन गये हैं।" 8 मील की दूरी पर सिलीगोड़ी पहुँचे, फिर टैक्सी से 48 मील (80 किलोमीटर) तय करके दार्जिलिंग पहुँचे दो बजे के बाद। बीच में खरसांग में उतरकर खाना खाया मोटर अड्डे के पास। (लोरेटो कान्वेन्ट के गेट पर) बच्चों के साथ कमला प्रतीक्षारत थी।

"अपने घर 'ग्रीन रिजेस' (अब 'राहुल निवास') में पहुँचे। जैसे हर्न-क्लिफ (मसूरी) में स्थान के अनुपयोग में हद की थी, वैसे ही यहाँ। घर के आधे भाग में चार बड़े कमरे, दो स्नानगृह, कोठार और रसोई और बरामदा है। दूसरे भाग में छोटे-बड़े चार कमरे हैं और दो स्नानगृह तथा एक रसोई। बाद में किराये पर देना होगा।" सो ग्रीन रिजेस (Green Ridges) पंडितजी को बहुत भाया। घर के सामने बड़ा-सा लॉन होने के कारण धूप में बाहर बैठना पसन्द किया।

दार्जिलिंग आकर 8 अगस्त को उन्होंने प्रतिदिन नियम से टहलने का निश्चय किया, वैसे तो यहाँ वर्षा होती रहती है। आज भी 9 को टहलने गये मेरे और बच्चों के साथ। 10 अगस्त को दार्जिलिंग सरकारी कालेज में तुलसी जयंती समारोह में वे भी सम्मिलित हुए। श्रीलंका में अत्यधिक परिश्रम करने के बाद पंडितजी अपने घर में विश्राम करने आये थे, अतः यहाँ उनको कोई विशेष काम नहीं करना था। 11 अगस्त को वर्षा के बावजूद वे टहलने गये। आज कलिम्पोंग से राधामोहन बाबू (वकील साहेब) उनसे मिलने आये। दोनों में काफी बातें हुई। वकील साहेब मेरे जीजाजी थे और उन्होंने ही दार्जिलिंग के इस मकान का प्रबन्ध किया था। 12 अगस्त को भी वे टहलने गये। अपने साथ जया-जेता और मुझे भी ले ही जाते थे।

दार्जिलिंग में उस समय सिंहली भिक्षु जयवर्धन (इन्दसुमन) आये हुए थे, जिनसे तिब्बत से ही पंडितजी का पुराना परिचय था। 13 अगस्त को भिक्षुजी पंडितजी से मिलने घर ही आये। उनके साथ स्थानीय ओरियेन्ट रेस्तराँ के मालिक एक नेपाली बौद्ध सज्जन भी आये थे। इन सज्जन के आग्रह पर पंडितजी सपरिवार ओरियेन्ट होटल में गये और जयवर्धनजी से भी मिले। आज दोपहर का भोजन ओरियेन्ट के मालिक की ओर से हुआ। पंडितजी स्वयं घुमक्कड़ थे और समानधर्मा घुमक्कड़ों को वे पसन्द करते थे। उनकी इच्छा हुई कि "जयवर्धन जैसे साहसिक घुमक्कड़ की एक 60 पृष्ठों की जीवनी लिखी जाय।" जयवर्धनजी ने अपना सारा जीवन तिब्बत की कई बार की कठिन यात्राएँ करके बिताया, इसलिए पंडितजी उनसे प्रभावित थे। वह उनके साहसिक जीवन

की कथा को आज के युवा पाठकों के लिए लिपिबद्ध कर देना चाहते थे। तय यह हुआ कि जयवर्धनजी एक महीने के लिए पंडितजी के घर में रहेंगे और पंडितजी प्रतिदिन उनसे पूछ-पूछकर नोट लेंगे। और 14 अगस्त से उन्होंने यह कार्य आरम्भ भी कर दिया। आज उन्होंने भिक्षुजी के जीवन के कुछ नोट लिये। टहलना भी उनका जारी रहा।

इस साल उनका स्वास्थ्य पहले की तुलना में ठीक था। इसलिए टहलना, चलना, फिरना, लिखना इत्यादि काम करने में उनको आनन्द आ रहा था। फिर परिवार के साथ होने से उनको आराम भी मिल रहा था। अतः वे खुश थे।

15 अगस्त को पंडितजी ने जयवर्धन की जीवनी के और नोट लिये। वह भिक्षुजी हमारे घर रहने आ गये थे, इसलिए पंडितजी को सुविधा हो गई। टहलना नियमित हो रहा था। उसी दिन (15 अगस्त) शाम को 'एलिस विला होटल' में कटिहार से आये 'रसधारा' साहित्यिक संस्था के कुछ साहित्यकारों ने एक गोष्ठी का आयोजन किया था। पंडितजी को आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया। वे मुझे लेकर गये और वहाँ भारतीय दर्शन पर उन्होंने व्याख्यान दिया। इस साल आसाम में बंगाली और असमियों के बीच जातीय दंगा हो जाने के कारण बंगाल ने स्वाधीनता दिवस उत्सव नहीं मनाया; लोगों को पता चल गया कि राहुलजी इस समय दार्जिलिंग में हैं, अतः घर पर भी उनसे मिलने प्रायः लोग आने लगे। मधुमेह के रोगी का स्वास्थ्य पूरी तरह ठीक तो नहीं रहता, पर कंचनजंघा की गोद में बसे इस पर्वतीय नगर की शीतल बयार का वे आनन्द ले रहे थे। 16 अगस्त को भी उन्होंने सिंहली भिक्षु का यात्रा-वृत्तान्त लिखा। 17 अगस्त को भिक्षु इन्दसुमन से पूछ कर नोट लिया।

आज के ही दिन सागर (मध्यप्रदेश) निवासी घुमक्कड़ रामदुलारेजी उनसे मिलने आये। 18 अगस्त को घुमक्कड़ रामदुलारे ने अपनी यात्रा का वृतान्त उनको सुनाया, क्योंकि पंडितजी के 'घुमक्कड़ शास्त्र' को पढ़कर ही रामदुलारेजी घुमक्कड़ बने थे। पता चला, इन्होंने असम को छोड़कर सारे भारत की पैदल यात्राएँ की थीं। आज पंडितजी ने इन्दसुमन की जीवनी को 1940 तक पहुँचा दिया। 19 अगस्त को तिब्बती कोश के गेली प्रूफ कलकत्ता के बैप्टिस्ट मिशन प्रेस से आये, उन्होंने देखकर आज ही लौटा दिये और शाम को चौरस्ता तथा मालरोड की ओर टहलने गये।

20 अगस्त की सुबह उन्होंने भिक्षु इन्दसुमन की जीवनी के कुछ अंश लिखे। आज भी 'तिब्बती कोश' का गेली प्रूफ आया और उन्होंने देखकर आज ही लौटा दिया। शाम को श्री फुनछोग फोटाङ् (साक्या) के पास मिलने गये। फुनछोग फोटाङ् साक्या (तिब्बत) में 1934-36 की यात्राओं में पंडितजी के मेजबान रहे थे। तिब्बत में हुई 1959 की क्रान्ति के कारण वह अपनी माता और परिवार के अन्य लोगों के साथ आकर दार्जिलिंग में निवास कर रहे थे। फुनछोग फोटाङ् लामा के वेश में थे। पंडितजी मुझे भी उनसे मिलाने ले गये थे। उन लोगों ने राहुलजी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। 22 अगस्त को भी वे फुनछोग से मिलने उनके निवास स्थान पर गये। 21 और 22 अगस्त को इन्दसुमन की जीवनी के अंश लिखे। 21 अगस्त को ही दार्जिलिंग के नेपाली साहित्य सम्मेलन की गोष्ठी में उन्होंने भाषण दिया। 23-24 अगस्त को भी उन्होंने इन्दसुमन-चरित्र लिखा। 23 अगस्त को 'सूत्रकृतांगम्' का पहला फर्मा छपकर आ गया। 25 को किताब महल से 'दिवोदास' का प्रूफ आया और अगले दिन प्रूफ को देखकर लौटा दिया। 26 अगस्त को भी जयवर्धन की जीवनी में उन्होंने कुछ अंश जोड़े। "जयवर्धन को डिक्टेट करने के लिए टाइपिस्ट मिलेगा, सोमवार 29 से आरम्भ होगा। कमला को पसन्द नहीं कि कोई और आकर टाइप करे क्योंकि कमला स्वयं टाइप कर देना चाहती थीं। वह नहीं समझतीं कि 'दिवोदास' और 'सूत्रकृतांगम्' को टाइप कर दें तो वही बहुत है।" बाद में इन्दसुमन की जीवनी को मेरे छोटे भाई हरि ने टाइप कर दिया। उस शाम पंडितजी परिवार को लेकर घूमने गये। जया-जेता अतिशय प्रसन्न थे पापा का सान्निध्य पाकर।

27 अगस्त को पंडितजी ने 'इतिहास पुरुष' शीर्षक लेख दो पृष्ठ का मुझ से टाइप करवाया। सोचा कि कल एक और लेख लिखवायेंगे। यह भी निश्चय किया कि परसों से 'दिवोदास' और 'सिंहल घुमक्कड़' को टाइप करवाना शुरू करेंगे। 28 अगस्त को हमारे पड़ोसी कप्तान लाल के इकलौते बेटे का पन्द्रहवाँ जन्मदिन

था। स्थानीय ग्लेनरीज रेस्तराँ में लाल साहेब ने टी-पार्टी में पंडितजी और मुझे आमंत्रित किया था, और भी कई सुसंस्कृत लोग वहाँ आये थे। श्रीमती लाल सुसंस्कृत और कलामर्मज्ञ महिला हैं। उनके परदादा मुखिया जोधपुर से 18वीं सदी के आरम्भ में आये थे, राय-रायान थे और सिलहट के गवर्नर के पद पर रहे। राजबाड़ी पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगला देश) में रह गई और अन्य सम्पत्ति भारत में। कप्ताल लाल के पिता राजा पी. सी. लाल से भी पंडितजी का पहले से ही परिचय था। इस वजह से लाल-परिवार के साथ पंडितजी मिलते रहते, वे लोग भी ग्रीन रिजेस में जाते रहते।

सोमवार 29 अगस्त से उन्होंने 'सिंहल घुमक्कड़ जयवर्धन' की जीवनी को हरि से टाइप कराना शुरू किया। "आज इसके छः पृष्ठ टाइप हुए, आठ पृष्ठ हो सकेगा प्रतिदिन। पुस्तक 200 पृष्ठ की होगी।" उसी दिन स्थानीय रामकृष्ण बी. टी. कालेज में उन्होंने शिक्षा विषय पर भाषण दिया। 30 अगस्त को भी उन्होंने जयवर्धन के पाँच पृष्ठ टाइप कराये। "आशा है छः से आठ पृष्ठ तक रोज होंगे। 20 फर्मे की पुस्तक लिखनी है, जिसको 30 दिन तक लिखाना है। दिवोदास को यहीं रहकर समाप्त करना है।" 31 अगस्त को 'घुमक्कड़' के आठ पृष्ठ टाइप कराये, अब तक कुल 20 पृष्ठ टाइप के हो गये।

## सितम्बर 1960

1 सितम्बर को हरि कलिम्पोंग गया था, इसलिए टाइप का काम न हो सका। अब घर में चार ही प्राणी–पंडितजी-कमला-जया-जेता–रह गये। आज सिंहल के आठ पृष्ठ तक लिखा। टाइप का काम मैंने किया, अब उसके 28 पृष्ठ हो गये। इस हफ्ते 16 पृष्ठ और लिखे जायेंगे। 2 और 3 सितम्बर को भी उन्होंने जयवर्धन पर लिखवाया और रात के 10 बजे तक काम किया। 4 सितम्बर को वे काम नहीं करवा पाये, क्योंकि लोग मिलने आते रहे। पंडित जगन्नाथ त्रिपाठी शास्त्री (रिसर्च स्कालर) उनसे मिलने आ गये। आज ही पंडितजी ने अपनी डायरी में लिखा–"आज शरीर की शक्ति कमजोर हो गई। एकाएक यह बात हुई।"

5 सितम्बर को उनका लिखने का काम चलता रहा। किताब महल ने 4200 रुपये का चेक भेज दिया। 6 और 7 सितम्बर को भी 'घुमक्कड़' का अध्याय लिखाने का काम चलता रहा। फिर 8 और 9 सितम्बर को उन्होंने कुछ नहीं लिखाया। अगले सारा दिन भी उन्होंने लिखाने का कोई काम नहीं लिया, बस 'सिंहल घुमक्कड़' के टाइप किये पृष्ठों का संशोधन किया। 14 सितम्बर को फिर उन्होंने 'जयवर्धन' में हाथ लगाया और 15 सितम्बर को भी यही क्रम चला। "आज डॉ. उदयनारायण तिवारी की चिट्ठी आई। लिखा था राहुलजी की बीमारी से उन्हें परेशानी हुई है।" 16 सितम्बर को भी वे जीवनी लिखाते रहे। परन्तु हमें ऐसा लगता था कि अब उनको शारीरिक शिथिलता के कारण पढ़ने-लिखने में भी पहले की तरह रुचि नहीं रह गई थी।

श्रीलंका से 17 अगस्त की लिखी अमरसिंह की चिट्ठी उनके पास पहुँची, जिसमें लिखा था कि आपने जान-बूझकर (याने पंडितजी ने) भाजी मारी। "उसको छात्रवृत्ति शायद नहीं मिली थी, इसलिए क्षुब्ध था।" 17 सितम्बर की शाम को पंडितजी परिवार के साथ हिन्दी फिल्म देखने गये। 18 सितम्बर को 'सिंहल घुमक्कड़' लिखाने का काम समाप्त हुआ। 19 को उन्होंने घुमक्कड़ को दोहराया। 20 सितम्बर को बेटी जया का जन्मदिन। इस बार अपनी बेटी के जन्मदिन पर पिताजी घर में उपस्थित थे, इसलिए बिटिया का जन्मदिन सबने मिलकर मनाया। 21 सितम्बर को उन्होंने 'सिंहल घुमक्कड़' को दोहराया। 'जयवर्धन' कुछ दिन ही पहले हमारे यहाँ से चले गये थे, पर वह प्रायः आते थे। आज वह फिर आये। 22 सितम्बर को मौसम अच्छा रहा। अतः पंडितजी शाम को घूमने गये परिवार को लेकर। 23 को वे 'सूत्रकृतांगम्' को दुहराते रहे। यह क्रम अगले 30 सितम्बर तक जारी रहा, बीच-बीच में विश्राम भी कर रहे थे। उनका शरीर अब पहले जैसा चुस्त नहीं था।

## अक्तूबर 1960

1 और 2 अक्तूबर को उन्होंने डायरी में कुछ नहीं लिखा। 3 अक्तूबर को 'सूत्रकृतांगम्' की शेष सामंग्री भेज दी। उस दिन की डायरी में लिखा–"25-10 को कलकत्ता जाना ठीक किया। 8-10 को गन्तोक (सिक्किम)

जायेंगे। ट्शी नाम्गयाल इंस्टीट्यूट आफ तिब्बतोलोजी की ओर से उनके पास निमंत्रण भेजा गया था। 4 अक्तूबर को इंडियन एयरलाइंस आफिस में जाकर वे 29-10 को कलकत्ता से कोलम्बो तक की विमान सीट का आरक्षण करवा आये। 5 और 6 अक्तूबर को उन्होंने कोई खास काम नहीं किया। 7 अक्तूबर को तिब्बती-हिन्दी कोश के प्रूफ को देखकर लौटा दिया। आज ही वे इंडियन एयरलाइंस के आफिस में जाकर पता लगा आये कि 29-10 को मद्रास का विमान कलकत्ता से मिल जायेगा। उससे आगे कोलम्बो तक का मंगल तक मिल जायेगा। कल (8 अक्तूबर को) उन्हें गन्तोक जाना था।

**गन्तोक (सिक्किम) :** 8 अक्तूबर "जीप साढ़े 10 बजे चली। 5 बजे शाम के करीब गन्तोक पहुँचे। रास्ता बहुत जगह टूटा हुआ था। जीप आफिस से 1 मील इधर ही नाम्गयाल इंस्टीट्यूट आफ तिब्बतोलोजी के डाइरेक्टर श्री निर्मलकुमार सिन्हा से भेंट हुई। उसी समय डॉ. बापट तथा श्री देवप्रिय बलिसिंह (महाबोधि सभा) आ गये। गेस्ट हाउस में हमारे रहने का प्रबन्ध था।" गन्तोक में बौद्ध धर्म और संस्कृति पर एक महासम्मेलन का आयोजन हो रहा था। उसमें अंशग्रहण करने के लिए भारत के अनेक बौद्ध विद्वान आमंत्रित होकर गये थे, जिनमें हमारे पंडितजी भी एक थे। 9 अक्तूबर को "दोपहर बाद इंस्टीट्यूट गये। यहाँ के पुस्तकालय को देखा, कंजूर-तंजूर के अतिरिक्त और भी बहुत-सी दुर्लभ पुस्तकें हैं।" सभा में भाषण दिया। स्मृतिक्षीणता के कारण 20 मिनट से अधिक भाषण नहीं दे सके।

10 अक्तूबर, शनिवार, "शाम को 2.30 बजे इंस्टीट्यूट गये। किताबें देखीं। डाक्टर नलिनाक्ष दत्त, डाक्टर बापट, देवप्रिय बलिसिंह, लामा कुशक बकुल आदि आये थे। शाम को भोजन राजा (छोग्याल) की ओर से हुआ।"

**गन्तोक से दार्जिलिंग को प्रस्थान :** मंगलवार, 11 अक्तूबर—"साढ़े 10 बजे चले गान्तोक से। मुश्किल से सीट मिली। 62 मील की यात्रा। वर्षा रही। शाम को 3 बजे दार्जिलिंग पहुँचे। धूपनाथजी आये हुए थे।" 12 और 13 अक्तूबर को पंडितजी ने कोई विशेष काम नहीं किया, बस अपने मित्र धूपनाथजी से बातें करते रहे। बीच-बीच में जया-जेता के साथ भी बातें होती थीं। शाम को दोनों मित्र घूमने के लिए जाते रहे। 14 अक्तूबर को 'सूत्रकृतांगम' के चार फर्मे छपकर आ गये। 15 अक्तूबर को उन्होंने लिखा—"कमला और धूपनाथ तथा जेता सुबह कालिम्पोंग गये और शाम को लौट आये।" श्री बी. के. सरकार इंजीनियर आये और कहा—"इस मकान को दुमंजिला मत बनवाइए। दूसरा मकान लीजिए।" पंडितजी सोच रहे थे कि एक और मकान मिल जाय, सेठ जेठमल भोजराज से कर्ज लेकर, और उसे किराये पर उठा दें। महीने में कम से कम 300 रुपया किराये का उठ जाये तो हमारे लिए काफी होगा, तब वे सीलोन से घर लौट आयेंगे। विद्यालंकार में उनकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं था, परिवार को साथ रखने में सोचते थे कि बच्चों की पढ़ाई की वहाँ दिक्कत होगी, साथ ही कमला के भविष्य को भी देखना है। जब तक वे जीवित रहेंगे, तब तक तो कोई बात नहीं, पर उनके संसार से उठ जाने के बाद विदेश में कमला और बच्चों का क्या होगा ? इससे अच्छा है, अपने देश में ही रहें और नौकरी की भी तलाश करें। किन्तु मैंने उनको बराबर सीलोन याने विदेश जाने से रोका था। यह उनके मित्र लोग शायद नहीं जानते थे, क्योंकि वे लोग 'आगे नाथ न पीछे पगहा' वाले लोग थे। दूसरों की समस्याओं को सोचने के लिए उन लोगों के पास हृदय नहीं था। वे चाहते थे कि बस, राहुलजी श्रीलंका में रहें और अधिक से अधिक लिखने का काम करें, उनकी कठिनाइयों की परवाह करनेवाला वहाँ कौन था ? वे लोग तो राहुलजी को मनुष्य की तरह जीने भी नहीं दे रहे थे। परिवार से उनको अलग रखकर उनके मस्तिष्क और रुग्ण शरीर पर अत्याचार ही कर रहे थे। मैं नहीं चाहती थी कि इतने बुढ़ापे और रोगग्रस्त शरीर को लेकर राहुलजी श्रीलंका में रहें। पर स्वयं राहुलजी पर संन्यासी मित्रों का प्रभाव था, वे उनसे काम ले रहे थे, पर उनके शरीर की स्थिति पर ध्यान नहीं दे रहे थे।

दार्जिलिंग आये अभी दो ही महीना हुआ, पर राहुजली फिर श्रीलंका लौटकर जाने की बात करने लगे, सुनकर हमें बहुत दुःख होता था, पर वे किसी के कहने से रुकनेवाले तो नहीं थे, उन पर तो संन्यासी मित्रों का जादू चढ़ा हुआ था। उनके फिर से जाने की बात सुनकर हम—जया-जेता और मैं तीनों दुःखी थे, परन्तु वे तो जायेंगे ही। मानेंगे कहाँ ! पंडितजी का बार-बार कहना यही था कि "बस एक और मकान का जोगाड़

करने के लिए मुझे कुछ समय विद्यालंकार में रहने दो। जब तीन सौ रुपये किरायेवाला मकान ले सकूँ तब मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा। बस मुझे दो साल और सीलोन में रहने दो।" कहने को कह रहे थे पंडितजी, पर उन्हें खुद अपनी शारीरिक स्थिति का भरोसा नहीं था। एक और मकान लेने के पैसे जुगाड़ करने के लिए वे सेठ जेठमल भोजराज की जीवनी लिखने को तैयार हो गये, ताकि वे सेठ से कर्ज ले सकें। पर विडम्बना यह हुई कि पंडितजी एक और मकान लेने की इच्छा को अंजाम न दे सके, और जिस सेठ से वे कर्ज लेना चाहते थे, उसका भी व्यवसाय में दिवाला निकल गया। बस, बात खत्म।

16 और 17 को दार्जिलिंग में मौसम अच्छा था, अतः उनको अच्छा लग रहा था। परन्तु सैलानी लोग अब कम हो रहे थे। 19-20-21 अक्तूबर को भी दिन साफ रहा। पंडितजी ने कोई लिखने का काम नहीं किया। धूपनाथजी के साथ बातें करते थे अपने परिवार के भविष्य के बारे में। धूपनाथजी भी नहीं चाहते थे कि पंडितजी फिर श्रीलंका जायें। 21 को भदन्त आनन्दजी का तार आया, जिसमें पंडितजी के प्रोग्राम के बारे में पूछा था। 22 को पंडितजी धूपनाथजी के साथ घूमने निकल पड़े। बर्चहिल होते सिंहमारी उतरे और लौटे चौरास्ता होते हुए। आज इतना चले कि खुद तो थके ही, बेचारे धूपनाथजी के वृद्ध शरीर को भी थका दिया। पर लिखते हैं—"धीरे-धीरे चलने में उतनी थकावट नहीं हुई।"23 को भी वे धूपनाथजी से बातें करते रहे। आज उन्होंने धूपनाथजी को रोक लिया था। वे दूसरे दिन गये।

## कलकत्ता के लिए प्रस्थान

**मंगलवार :** 25 अक्तूबर को सुबह 6 बजे ही पंडितजी घर से रवाना हुए। मैं और जया-जेता उन्हें एलिस विला तक पहुँचाने आये। टैक्सी में जब पंडितजी बैठने लगे तो इन तीनों ने आखों में आँसू भरकर उन्हें विदाई दी। दार्जिलिंग टैक्सी स्टैण्ड से कार 7 बजे चली। कर्सियांग में एक सुहृद बौद्ध उनसे मिलने आये। वहाँ कुछ मिनट ठहरे। 9 बजे बागडोगरा पहुँचे। एक सिद्ध पुरुष भी विमान से चल रहे थे। तरुणियाँ उनके पैरों पर सिर रखकर नमस्कार कर रही थीं। 10.30 बजे चले और सवा 12 बजे दमदम पहुँचे। राकेशजी अड्डे पर आये हुए थे। उनके साथ डाबर भवन गये। अशोक बाबू देवघर गये हुए हैं।

**कलकत्ता,** 26 अक्तूबर—महाबोधि सभा गये। बंगला प्रकाशक के पास गये। आधुनिक पुस्तक भवन (प्रकाशक) के पास भी गये। टिकट मद्रास से कोलम्बो तक का कन्फर्म हो गया। प्रतीक्षा-सूची में नाम कर दिया है।

कलकत्ता, 27 अक्तूबर—सीलोन में तार दे दिया। सबेरे राष्ट्रीय पुस्तकालय में कुलकर्णीजी से मिल आये, पुस्तकों के बारे में उनसे कुछ कहा भी। भोजन श्री बी. के. सरकार के यहाँ हुआ। उनकी लड़की का फोटो और वंशवृक्ष ले आये सिलहट के राजकुमार के लिए। सुनीति बाबू से फोन पर बात हुई। अच्छी तरह से हैं। उन्हें ध्यान है—कमला की नौकरी के विषय में। मास्को के बारे में कह रहे थे। गौरीशंकर शास्त्री और चट्टोपाध्याय जी गये थे। शाम को बंगीय हिन्दी परिषद् में भाषण दिया।

24 अक्तूबर को दिन साफ रहा। अबके आदमी मिलने नहीं आये। शाम को संस्कृत प्रचारिणी सभा में संस्कृत में बोले। "पट्टाभिराम 'चित्रस्वामी' के सम्पादक हैं, उनका भाषण सुन्दर था।"

## पुनः श्रीलंका में

कलकत्ता से प्रस्थान करने से पहले पंडितजी ने घर में चिट्ठियाँ लिखीं। एक ओर पुनः श्रीलंका जाने का उत्साह तो दूसरी ओर उनके मन में मुझे और दो छोटे बच्चों को छोड़कर जाने का दुःख था। इसी दुःख को व्यक्त करने और मन के भीतर स्थित अपराध-बोध को सांत्वना देने के लिए उन्होंने ये पत्र लिखे :

[1]

*कलकत्ता*
*25-10-60*

*प्यारी,*

*आज 9.30 बजे बागडोगरा, वहाँ से 10.30 बजे उड़कर 12-15 पर कलकत्ता। राकेशजी एरोड्रम पर मिले। आज अशोक वावू से भी फोन पर बात हुई। वह देवघर (विहार) हैं, दो दिन में आ जायेंगे। मद्रास से कोलम्वो का 29-10 का जाना ठीक-सा हो गया है विमान द्वारा। कल निश्चित खबर मिल जायेगी। अशोक वावू के छोटे भाई अमेरिका से आ गये। उनकी माँ वहुत डर रही थीं कि कहीं मेम न लायें।*

*बच्चों को खूब प्रेम से रखना। दोनों गलती करते हैं, पर प्रेम से रखो। बच्चे वहुत याद आते हैं। जया का रोता मुँह और जेता का गम्भीर। मोटर छोड़ते समय तुम्हारे धैर्य का बाँध टूट गया। प्यार की कमी नहीं है मेरे घर छोड़ने का कारण। जिस दिन 300 रुपया मासिक घर के भाड़े का प्रबन्ध हो जायेगा, मैं चला आऊँगा। दो वर्ष से ज्यादा उसमें नहीं लगेगा। प्यारी को वहुत-वहुत चुम्वन-आलिंगन, जया-जेता को प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

[2]

*कलकत्ता*
*27-10-60*

*प्यारी,*

*कल शाम को मालूम हो गया कि 29-10 को मद्रास से कोलम्बो की सीट मिल गई। अब निश्चिंत हूँ। अशोकजी आज देवघर से आनेवाले हैं। आज मैं श्री सरकार से मिलने जाऊँगा दोपहर को। कल नहीं मिल सके। आज एक जगह भाषण देना है और कल भी एक जगह।*

*तुम्हारा रोता चेहरा याद करके मुझे बड़ी टीस होती है, पर मजबूरी है। बच्चों के भविष्य के लिए करना ही होगा।*

*जया को प्यार, जेता को प्यार। प्यारी को आलिंगन-चुम्बन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

[3]

*कलकत्ता*
*29-10-60*

*प्यारी,*

*आज सबेरे पाँच बजने में दस मिनट बाकी है। साढ़े पाँच बजे डाबर हाउस से चलेंगे और 6-50 बजे विमान मद्रास के लिए उड़ेगा। यहाँ अच्छा रहा। अशोकजी के पिता-माता और भाई बड़े आत्मीय की तरह हैं। तुम्हारी भी प्रशंसा कर रहे थे—बाहर की मालूम ही नहीं होतीं।*

*जया-जेता को प्यार। तुम्हारे लिए गाढ़ालिंगन।*

*अशोकजी नहीं मिल सकें।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

## कोलम्बो के लिए प्रस्थान

"**शनिवार, 29 अक्तूबर 1960**–सबेरे साढ़े 5 बजे डाबर भवन से प्रस्थान किया। अशोकजी के माता और पिता पौने पाँच बजे ही उठ आये। जलपान हुआ। राकेशजी (भगवद्दत्त शर्मा) उड्डयन अड्डे तक गये। विमान 6-50 में नहीं चला, 7 बजे के बाद चला। तीन घंटे और कुछ मिनट में मद्रास पहुँचे। वहाँ से 12 बजे चले, डेढ़ बजे कोलम्बो पहुँचे। विमान-स्थल पर भिक्षु प्रज्ञाकरजी, आनन्दजी, मेघंकरजी, शांति भिक्षु सपत्नीक, तिस्स आदि आये थे। कस्टम ने कहीं दिक नहीं किया।"

विमानस्थल से सबके साथ पंडितजी केलानिया में विद्यालंकार के अपने निवासस्थान पर पहुँचे।

30 अक्तूबर को वर्षा चल रही थी। उस दिन पंडितजी चिट्ठियाँ लिखते रहे और सारी खत्म कर दी। उसके बाद प्रूफ भी देख डाला।

अपने श्रीलंका पहुँचने की खबर देते हुए उन्होंने घर में पत्र लिखा उसी दिन, जो इस प्रकार है :

*केलानिया*
*30-10-60*

*प्यारी,*

*कल 5.30 वजे सबेरे डाबर भवन से चला। अशोकजी के माता और पिता पौने पाँच बजे ही जागकर आ गये थे। नाश्ता हल्का कर लिया। राकेशजी हवाई अड्डे तक आये। विमान 6-50 की जगह 7 बजे उड़ा और 11.15 वजे मद्रास आया। ट्रांजिट (Transit) तो होती ही है, पर दिक्कत नहीं। विमान 12 बजे के बाद चला और 1.30 बजे कोलम्बो पहुँच गया। शांतिदम्पती, प्रज्ञाकर, आनंद आदि आये हुए थे। यहाँ भी कोई देखा नहीं गया, जल्दी काम खतम कर दिया। रास्ते में चीनी रेस्तराँ में खाना खाया। थोड़ी बातचीत, फिर बारह बजे तक लगकर सारी डाक देख डाली। साहित्य अकादमी का 1015 रुपये का चेक आया मिला, जिस पर हस्ताक्षर करके तुम्हारे पास बंक में जमा करने के लिए भेज रहा हूँ। बिहार राष्ट्रभाषा के कागजों पर हस्ताक्षर करके भेज रहा हूँ, चेक पीछे आयेगा।*

*सीलोन-बंक ने सूचित किया कि अक्तूबर तक 750 रुपये के हिसाब से भेजा गया, अब आगे के लिए आज्ञा लीजिए। कल सोमवार को आज्ञा के लिए पत्र जायेगा। कल ही तुम्हारे बीजा के लिए भी सीलोन हाई कमिश्नर (दिल्ली) के पास लिख भेजेंगे और एक चिट्ठी तुम्हारे पास भी। उस चिट्ठी के साथ अंग्रेजी में बीजा के लिए चिट्ठी लिखकर पासपोर्ट रजिस्टर्ड द्वारा सीलोन हाईकमिश्नर के पास भेज देना। आशा है, जल्दी जवाब आ जायेगा।*

*रात चार ही घंटा सोया था, आज दिन में चार घंटा सोया। तुम तो विश्वास नहीं करोगी, पर मुझे सूना-सूना मालूम होता है। कभी तुम्हारी साश्रुनयन सूरत याद आती है, कभी जया की सजल आँखें। जेता का दार्शनिक चेहरा गम्भीर था, पर वह कुछ सोच नहीं पा रहा था। जरूर पीछे विकल हुआ होगा।*

*कलकत्ता में सुनीति बाबू से भी अच्छी तरह फोन पर बात हुई।*

*अब दार्जिलिंग में तो जाड़ा बढ़ गया होगा। मैं व्यग्रता से तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अलग बुकपोस्ट से कुछ पुस्तकें भेज रहा हूँ। 'आज' वालों ने पारिश्रमिक के बारे में पूछा है। लिख रहा हूँ तुम्हारे पास साप्ताहिक भेज दिया करें।*

*जया को प्यार, जेता को प्यार। रानी को गाढ़ालिंगन-चुम्बन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

31 अक्तूबर को भी वर्षा होती रही। वे कोरंटिन आफिस में स्वास्थ्य की जाँच करवाने गये। वहाँ 12 नवम्बर को बुलाया। दोपहर का खाना माणिकलाल जी के यहाँ खाया और चश्मे की जाँच करवाकर वे विद्यालंकार लौट आये।

## नवम्बर 1960

पहली नवम्बर को भी केलानिया में वर्षा हुई। पंडितजी ने मेरे वीसा के लिए सीलोन हाई कमिश्नर को लिख दिया। हमारे पास भी पत्र की प्रतिलिपि भेज दी। "2 नवम्बर को भी वर्षा हुई। 750 रुपया भेजने के लिए फिर से विनिमय आफिस में दर्खास्त दे दिया। हाल ही में घंटे-भर टहलते रहे।" 3 नवम्बर को वर्षा कम हुई। पर घंटा-भर घूमे हाल के भीतर ही। आज 5 पृष्ठ से ज्यादा 'तिब्बती कोश' का लिखा और 575 पृष्ठ तक पहुँचा दिया। अब प्रतिदिन 5 पृष्ठ का हिसाब रहेगा। 4 नवम्बर को 'सूत्रकृतांगम्' का प्रूफ आया और उन्होंने आज ही देखकर लौटा दिया। आज उन्होंने 'पालि काव्यधारा' के भी पाँचवें परिच्छेद का अनुवाद किया। 5 नवम्बर को वे लिखते हैं–"आज भी प्यारी की चिट्ठी नहीं आई, क्या बात है ? कोश 5 पृष्ठ और पालि काव्यधारा 3 पृष्ठ लिखा।" फिर 6 नवम्बर को लिखते हैं–"दार्जिलिंग छोड़ने पर कोई चिट्ठी न मिलने से चिंता बहुत हो रही है, देखें कल। आज भी 5+3 पृष्ठ हुआ।"

7 नवम्बर को विद्यालंकार विश्वविद्यालय में परीक्षा-परिणाम की सभा थी। उसमें पंडितजी ने कहा–"फेल करने की नहीं, पास करने की बात सोचनी चाहिए। इस बात को लोगों ने पसन्द किया। राय महाशय पेरेदेनिया से तुलना करते थे–"प्रथम श्रेणी में ख्याल करें, द्वितीय श्रेणी में भी, पर तृतीय श्रेणी में पास कराने का ख्याल उचित नहीं।" 8 नवम्बर को उन्होंने कोश 5 पृष्ठ और 'पालि काव्यधारा' 3 पृष्ठ लिखे। घंटा-भर घूमना भी रोज हो रहा था। दार्जिलिंग में रोज-रोज टहलने से उनको लाभ पहुँचा था, इसीलिए वे यहाँ भी प्रतिदिन टहलने का क्रम जारी रखना चाहते थे।

9 नवम्बर को वे लिखते हैं–"गये भारतीय हाई कमिश्नर के यहाँ। अच्छी तरह पेश आये। भारत से सम्बद्ध इस विश्वविद्यालय के विषय में बतलाया। पुस्तकों-जर्नलों की आवश्यकता बतलाई। हमारे पासपोर्ट में तीन वर्ष की मियाद और बढ़ जायेगी। पहिले के क्लर्कों ने 3 मास रहने के लिए बदलने के लिए कहा था। अब सितम्बर 1964 तक का पासपोर्ट हो जायेगा। शायद उतना ही जीवन हो। (जीवन तो अप्रैल 1963 तक का ही मिला)। संतरामजी का पत्र बीमारी की खबर से चिंता का आया। कमला के पास चिंता का जवाबी तार आज भेजा। (इतने दिनों से उन्हें मेरा पत्र नहीं मिला था, अतः चिंतित थे) आज भोजन कापड़ियाजी के यहाँ हुआ।"

10 नवम्बर को पंडितजी ने कोश के 5 और 'पालि काव्यधारा' के 3 पृष्ठ लिखे। दिनमणि नामक संस्था को वक्तव्य संसार की स्थिति पर दिया। कल तास को भी देने का वचन दिया। आगे उन्होंने दैनन्दिनी में लिखा–"आज कमला का पत्र आया। वियोग का दुख है। पर मैं भी क्या करूँ। दो साल किसी तरह यहाँ बिताने हैं। 31 जुलाई, 1962 में छुट्टी लेनी है।" (परन्तु उन्हें 31 जुलाई 1961 को ही छुट्टी लेनी पड़ी) 11 नवम्बर को उन्होंने क्रमशः 5 और 3 पृष्ठ लिखे। तास को मित्रता विश्वविद्यालय (Friendship University) पर वक्तव्य दिया।

12 नवम्बर को वे शहर गये और कोरंटिन का काम समाप्त किया। "हमारे पासपोर्ट में बदमाशों ने 1963 तक ही याने दो ही वर्ष और किया। विदेशी विनिमयवालों ने पासपोर्ट बीजा और इन्कमटैक्स की रसीद माँगी। इन्कमटैक्स मँगाने पर आया ही नहीं। 13 नवम्बर को कमला का तार आया। उनको मेरे स्वास्थ्य का समाचार नहीं मिला। तार में लिखा था–"Darjeeling. No news. Very anxious, Your health wise. Kamla Sankrityayan."

14 नवम्बर को विश्वविद्यालय का परीक्षा-परिणाम निकला–सभी पुरानी परिपाटी के भक्त। याने पंडितजी के विद्यार्थी उत्तीर्ण हो गये। आज उन्होंने कोश का 5 पृष्ठ लिखा। 15 नवम्बर को उन्होंने भी 5-3 पृष्ठ लिखा। उनकी पंक्ति के अनुसार–"रानी का पत्र आज आया, जया-जेता का भी। अब भी पेंसिल से ही लिखते हैं। चंक्रमण (टहलना) जारी रहा।'

16 नवम्बर को उन्होंने नियमित 5-3 पृष्ठ लिखे। डॉ. राममनोहर लोहिया की चिट्ठी उज्जैन में अंग्रेजी हटाओ के द्वितीय सम्मेलन के बारे में आई। उज्जैन से ही यह चिट्ठी आई है, पर कैसे जायेंगे। राधामोहन

बाबू को पत्र लिखा। 17 नवम्बर को भी उनका काम 5-3 पृष्ठ लिखना और पढ़ना चला। 18 नवम्बर को 5 और 3 पृष्ठ लिखा। उन्होंने सोच लिया कि 'काव्यधारा' को इसी सप्ताह समाप्त करना है और कोश का काम अगले मास के आधे में। इसके बाद पालि साहित्य के इतिहास में हाथ लगायेंगे। 19 और 20 नवम्बर को भी उन्होंने 5-3 पृष्ठ लिखने का क्रम जारी रखा। निश्चय किया 'पालि काव्यधारा' में अब दो-तीन दिन का काम रह गया है, अब उसको दुहरायेंगे। आनन्दजी कहीं बाहर गये हुए थे, आज भी उनका पता नहीं। 21 को लिखाने के काम में 5-3 पृष्ठ का हिसाब रहा। आनन्दजी आज आ गये। 22 नवम्बर को भी पंडितजी के लिखने का काम वैसा ही रहा। आज क्लास की सभा यहीं भवन में ही हुई, उसमें खाली व्याख्यान-भर हुए।

23 नवम्बर से पंडितजी ने 'पालि काव्यधारा' के हिन्दीकरण का काम शुरू किया। शुद्ध तो तभी करेंगे जब प्रेस का प्रबंध हो जाये। 24 को उन्होंने 'पालि साहित्य के इतिहास' में हाथ लगा दिया। कोश का काम भी चल रहा है। आज क्लास लेने गये, पर उनके अनुवादक प्रज्ञाकीर्ति थे ही नहीं। अतः पंडितजी ने संस्कृत और अंग्रेजी से काम चलाया। 25 नवम्बर को उनका 5-3 पृष्ठ का क्रम रहा। चंक्रमण भी नियमित हो रहा था। फिर 26 को 5-3 पृष्ठ का क्रम चला। और आज पालि काव्यधारा समाप्त। चंक्रमण भी जारी रहा। आज ही उन्होंने एक नया लेख संस्कृत में लिखना आरम्भ किया, जिसका शीर्षक रक्खा–द्रविड़ेषु स्थविरवादः, यह अनुमानतः 12-14 पृष्ठों का होना चाहिए।

27 नवम्बर को उन्होंने 4 पृष्ठ कोश का काम किया। लेख का थोड़ा ही अंश लिख पाये। शाम को शांतिजी के आग्रह पर चले गये गॉलफेस घूमने। उसमें डेढ़ घंटा लग गया। "28 नवंबर को भी पाँच पृष्ठ कोश का काम किया। लेख में 5 पृष्ठ आज लिखा। अभी 6 पृष्ठ ही हुए हैं, 7 पृष्ठ और लिखना है।" इसी प्रकार उन्होंने 29 और 30 नवम्बर को 5-5 पृष्ठ कोश का काम लिया। इसके साथ ही संस्कृत लेख 'द्रविड़ेषु स्थविरवादः' को भी लिखते रहे।

## परिवार के आने की प्रतीक्षा

**दिसम्बर 1960 :** पंडितजी ने 1 दिसम्बर को भी संस्कृत लेख का कुछ अंश लिखा, पर अभी पूरा नहीं हुआ। इसके अलावा 5 पृष्ठ कोश का काम भी किया। 2 दिसम्बर को भी 5 पृष्ठ कोश का लिखा। पर वह संस्कृत लेख आज नहीं लिख पाये। 'सूत्रकृतांगम्' का अंतिम प्रूफ भी आज आ गया। वे लिखते हैं–"कमला का तार आज नहीं आया, इसका मतलब है बीजा अभी नहीं मिला।" 3 और 4 दिसम्बर को उन्होंने 5-5 पृष्ठ कोश के लिखे और 4 दिसम्बर को संस्कृत लेख 'द्रविड़ेषु स्थविरवादः' को उन्होंने समाप्त कर दिया। 5 दिसम्बर को उन्होंने कोश के 10 पृष्ठ लिख डाले, "अब उसे 3 दिन में समाप्त करना है। कमला का कल का तार मिला। बीजा मिल गया।"

6 दिसम्बर को भी उन्होंने कोश के 10 पृष्ठ लिखे और दो क्लासें लीं। 7 को भी कोश का काम चला और 10 पृष्ठ लिखे। दैनिकी में लिखते हैं–"कमला की चिट्ठी आई। 3-12 को बीजा मिला, इसी दिन टीका लगवाया। 16-12 को नये किरायेदार घर में आयेंगे, तब चलेंगी। 18-12 तक आने को लिखा है। खैर, आना तो कलकत्ता से विमान मिलने पर ही निर्भर करता है।"

लिखने का काम उनका चलता रहा। 8 दिसम्बर को उन्होंने कोश के 10 पृष्ठ लिख डाले। 9 दिसम्बर को लिखा–"आज तिब्बती कोश की प्रेस कापी तैयार हो गई। अशोक बाबू का शाम को तार आया–'कमला 14 को कलकत्ता पहुँच रही हैं।' ब्याह के लिए कलिम्पोंग जाना पड़ा। पर क्रिसमस की भीड़ में विमान में जगह, देखें, कैसे मिलती है। कोश 782 पृष्ठ पर समाप्त हुआ।" 10 दिसम्बर को उन्होंने 'सूत्रकृतांगम्' की शब्दानुक्रमणिका टाइप कर डाली। 11 को भी वे 'सुत्रकृतांगम्' को लिखते रहे। परिवार के आने की बात थी, अतः 12 को वे कापड़ियाजी का मकान देखने गये, पर वह पसन्द नहीं आया। महरा विश्रामगृह के लिए चिट्ठी लिखवा दी। 13 दिसम्बर को काश्यपजी (भिक्षु जगदीश) का तार आया त्रिपिटक पर राय के लिए। लिखकर

भेज दिया। एक लेख भाषा पर लिखकर 'जन' मासिक के लिए भेज दिया। 14-15-16 दिसम्बर को उन्होंने डायरी में कुछ नहीं लिखा।

**परिवार के साथ :** पंडितजी को हमने कोलंबो पहुँचने की तिथि समय पर ही तार द्वारा सूचित कर दी थी। हम लोग याने जया-जेता और मैं, 17 दिसम्बर को कलकत्ता से विमान से चले। मद्रास में थोड़ी देर रुक कर विमान फिर उड़ा। हम लोग सोच रहे थे कि कोलंबो के रत्नमाल्य विमानस्थल पर पंडितजी हमें मिल जायेंगे। परन्तु जब विमान भूमि पर उतरा तो वहाँ किसी को भी न देखकर हम लोग बहुत घबरा गये। पास में सिंहली पैसे भी नहीं, क्या करेंगे, कस्टम से निबटने के बाद हम लोग बाहर आकर असमंजस में खड़े हो गये। तभी उसी विमान से यात्रा करनेवाले एक मारवाड़ी या बिहारी युवक ने हमसे पूछा कि आप को कहाँ जाना है ? मैंने 'विद्यालंकार विश्वविद्यालय' का नाम लिया। तब उसने अपना परिचय देते हुए कहा—"मैं भी काठमाण्डू से आ रहा हूँ। कोलंबो प्लान के अन्तर्गत स्कालरशिप पर यहाँ इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने आया हूँ। मैं काठमाण्डू में छुट्टी बिताकर लौटा हूँ। चलिए, मैं आप लोगों को ठिकाने पर पहुँचा दूँगा।" तब हमने एक टैक्सी ली और सवा बजे विद्यालंकार पहुँच गये। टैक्सी का किराया उसी युवक ने चुका दिया। जया-जेता और मुझको हठात् अपने सामने देखकर पंडितजी चौंक गये। वे हम लोगों को लेने नहीं आये, इसलिए मैं थोड़ा रूठ गई थी, पर भदन्त आनन्दजी ने मुझे समझाया। 17 की दैनिकी में उन्होंने लिखा—"आज कमला एकाएक आई। टैक्सी से आई थी। महरा रेस्ट हाउस में हम सब उसी समय चले आये।"

जब अगस्त, सितम्बर में पंडितजी घर (दार्जिलिंग) आये थे, तब यहाँ उन्होंने डाक्टरी चेक-अप कराया था, दवाइयाँ भी ली थीं। स्वास्थ्य उतना बुरा नहीं था। पर अभी ठीक दो महीने बाद उनको देख रही हूँ—उनके स्वास्थ्य में बहुत अन्तर आ गया है। कमजोर और थके हुए लग रहे हैं। काम बहुत अधिक करने से दिमाग भी शिथिल हो रहा है। गरमी से परेशान तो थे ही। बिजली के पंखे की कृत्रिम हवा में वे साँस ले रहे थे। पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण ही उनकी ऐसी दशा हो रही थी। खैर, इस समय बच्चे उनके पास आ गये। अतः उनका थोड़ा-बहुत मनोरंजन हो रहा था। मस्तिष्क और शारीरिक शिथिलता के कारण वे कुछ दिन विश्वविद्यालय भी नहीं जा सके। इस बार हम लोग पिछले साल की तरह दूर-दूर तक घूमने भी नहीं गये। पिछले साल वे बच्चों को श्रीलंका के दर्शन कराने के लिए कितने उत्साहित थे, इस बार उनका उत्साह ठंडा पड़ गया था। एक-दो बार कोलंबो तक गये। जब उनका शरीर ताकत महसूस करने लगा तब वे हम लोगों को युनीवर्सिटी भी ले गये। वहाँ घंटे-दो-घंटे रहकर फिर हम लोग महरा लौट आते थे। इस तरह अबकी ज्यादतर रेस्ट हाउस में ही बने रहे। किन्तु अब धीरे-धीरे उनकी शारीरिक गति में शिथिलता आ रही थी। 18-19-20-21-22-23 और 24 को उन्होंने डायरी में एक अक्षर भी नहीं लिखा। 25 दिसम्बर को उन्होंने लिखा—"आज जीभ पर कुछ लकवा मार गया। बोलने में कुछ कठिनाई हुई है।" हाँ, सच ही उनकी वाणी लड़खड़ा रही थी। 26 दिसम्बर को भी उन्होंने कुछ नहीं लिखा। 27 को भी दिन-भर रेस्ट हाउस में आराम करते रहे। 28 दिसम्बर को वे विश्वविद्यालय गये, पर उस दिन क्लास नहीं थी। 29-30 और 31 दिसम्बर को उन्होंने डायरी में कुछ नहीं लिखा। कहीं बाहर गये भी नहीं। मेरे और जया-जेता के साथ मन बहलाते रहे। उन्होंने पहले ही निश्चय किया था कि 'अब डायरी का उपयोग नहीं करना है', इसलिए भी उन्होंने इधर सविस्तार डायरी नहीं लिखी।

इस प्रकार 1960 का वर्ष भी बीत गया।

# 8
# वर्ष 1961 : कर्मण्यता का अंत

## विद्यालंकार विश्वविद्यालय (केलानिया, श्रीलंका) में शेष दिन

नये वर्ष (1961) के दिन भी पंडितजी ने अपनी डायरी में कोई विशेष बात नहीं लिखी। सिर्फ लिखा–"स्वास्थ्य ठीक नहीं।" अभी भी हम महरा रेस्ट हाउस में ही थे। इस बार हम लोग ज्यादा घूमना-घामना इसलिए नहीं कर सके कि पैसे की तंगी हो गई थी। सीलोन में हमें खाना-पीना-रहना सब कुछ महँगा लगता था। साथ ही पंडितजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। वे बहुत दुर्बलता अनुभव कर रहे थे। मैं उनसे बराबर आग्रह करती रही कि वे हमारे साथ भारत लौट चलें। भारत की, विशेषकर दार्जिलिंग की जलवायु उनके लिए अनुकूल है, वहाँ अपना घर है। हम लोग एकदम तंगी में भी नहीं हैं। यहाँ विदेश में हमें आपकी बीमारी के समय बड़ी कठिनाई होगी। पर वे आर्थिक चिन्ताओं को कारण बनाकर यहाँ श्रीलंका में ही रहने का आग्रह करते थे। मैं बच्चों के साथ सीलोन में तभी तो रह सकती थी, यदि पंडितजी का 'दीर्घजीवन' होता। रात-दिन की उनकी अस्वस्थता के कारण मुझे ही नहीं बल्कि उनको भी लग रहा था कि अब उनका जीवन बहुत दिनों के लिए नहीं है। ऐसी स्थिति में हम लोग विदेश में कैसे रहेंगे, क्या करेंगे ? जब तक उनका शरीर है, तब तक तो ठीक है, पर उनके न रहने के बाद हम लोगों की क्या स्थिति होगी ? इसलिए मैंने श्रीलंका में बसना पसंद नहीं किया। वैसे तो भारत में भी बहुत अधिक अच्छे लोग होंगे, यह कोई कह नहीं सकता। जिन्दगी के थपेड़ों ने तो हमें यह सिखला ही दिया कि रक्षक ही भक्षक भी होते हैं। यह भी हमने देख लिया कि साधु-संन्यासी का जीवन व्यतीत करनेवाले पंडितजी के मित्रों में से कुछ तो राहुलजी के दुश्मन के रूप में गुण्डों को भी प्रशिक्षण दे रहे थे। पर हमारे पूज्य पंडितजी लोगों के ऐसे मुखौटेवाले चेहरे को पहचानते नहीं थे। वे सब को अपने समान ही निर्मल हृदय समझते थे। इसीलिए तो उस समय पंडितजी श्रीलंका में अपने कुछेक ऐसे मित्रों को अपना 'गार्जियन' समझकर उन्हीं के सहारे परिवार को भी यहाँ रहने के लिए कह रहे थे। किन्तु मैंने सीलोन में बसना बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। बल्कि उनका सीलोन में रहने का मैं बराबर विरोध करती रही। आज भी मैं सोचती हूँ कि उस समय मैंने ऐसा निर्णय करके ठीक ही किया, अन्यथा हम पंडितजी के जीवन के अंतिम क्षण में उनका मुँह भी न देख पाते।

पंडितजी स्वयं इतने गम्भीर विचारक, नारी जाति के प्रति सहानुभूतिशील रहे। पहले से ही उन्होंने स्वयं हमारा श्रीलंका में बसना पंसद नहीं किया था। चाहते थे कि मुझे कोई काम मिल जाये तो वे भी यहीं आ जायेंगे। हमारी कठिनाइयों को वे समझ जाते थे। पर बाद में वे इसी जिद पर अड़े रहते कि मैं भी उनके साथ श्रीलंका में बस जाऊँ। मेरे विरोध करने पर वे नाराज होने लगे। खैर, श्रीलंका की गरमी उनके अनुकूल नहीं थी, ऊपर से उच्च रक्तचाप और मधुमेह में चीनी की मात्रा अधिक हो जाने के कारण अब उनका शरीर

शिथिलता अनुभव करने लगा था। इस प्रकार वर्ष के आरम्भ में ही, स्वास्थ्य की दृष्टि से 1961 का वर्ष खतरे की घंटी ले आया।

## कोलम्बो के अस्पताल में

2 जनवरी को भी उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। इन दो दिनों में ही पंडितजी का स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया। उनकी वाणी लड़खड़ाने लगी, आँखों से धुँधला दिखाई देने लगा, पावों में ताकत नहीं। परदेश में चिन्ता ही चिन्ता। ऐसी स्थिति में कैसे पढ़ा सकते ? अतः 3 जनवरी को भदन्त आनन्दजी तथा प्रज्ञाकीर्ति जी सभी ने मिलकर उनको कोलम्बो में डाक्टर मेडोन्सा के अस्पताल में भरती करा दिया। टैक्सी करके उन्हें ले जाया गया था। मैं और बच्चे महरा रेस्ट हाउस में थे। उनको अस्पताल में भर्ती कराने की सूचना हमें उस दिन शाम को मिली। उस रात चिन्ता और घबड़ाहट के कारण मैं रात-भर जागी रही। किस अस्पताल में उनको रखा गया है, वहाँ तक कैसे जाया जाय ? इस परेशानी में मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था। इस समय अपने ही देश की याद आ रही थी। 4 जनवरी को भी वे अस्पताल में रहे, हम उनके पास जा नहीं सके क्योंकि हमें वहाँ ले जानेवाला कोई नहीं था। साथ ही महरा से कोलम्बो तक की दूरी को तै करने के लिए हमारे पास गाड़ी भी नहीं थी। 4 जनवरी को हमारा दिन भी परेशानी में बीता और रात आँखों में कटी।

5 जनवरी को विद्यालंकार के महास्थविर प्रज्ञारामजी ने महरा रेस्ट हाउस से जया-जेता और मुझे विद्यालंकार (केलानिया) में बुलवाया। फिर हमारे साथ भदन्त आनन्दजी, श्री प्रज्ञारामजी, प्रज्ञाकीर्तिजी सभी पंडितजी को देखने के लिए अस्पताल गये। दिन के 12-1 बजे हम लोग वहाँ पहुँचे, केलानिया से भी अस्पताल बहुत दूर था। जाकर मैंने वहाँ का जो करुण दृश्य देखा, उसे मैं अपने जीवन-भर नहीं भूल सकती। अस्पताल का जनरल वार्ड था, एक बड़े-से हॉल में बहुत सारे रोगी चारपाइयों पर लेटे हुए थे। अस्पताल के कमरे की सीलिंग बहुत ऊँची नहीं थी, वह भी टीन की छत। गरमी के कारण मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। छत का पंखा भी वहाँ नहीं था। इन्हीं रोगियों के बीच में हमारे पंडितजी अपनी चारपाई पर बैठे हुए थे। गरमी से परेशान, इसलिए सिर्फ बनियान पहिने हुए थे। शायद दिन के खाने का समय था। उनके हाथ में आलमोनियम की एक थाली में रोटी जैसी चीज और कुछ सब्जियाँ थीं, वे धीरे-धीरे खा रहे थे। उनकी ऐसी अवस्था को देखकर मुझे बहुत कष्ट हुआ, आँखों में आँसू उमड़ आये। मैं सोच रही थी—'मेरे स्वामी, आप अपने शरीर पर इतना अत्याचार क्यों कर रहे हैं ? क्यों अपने देश, अपने घर नहीं चले चलते। यहाँ आप मित्रों की दया पर जी रहे हैं और वहाँ आपका अपना घर है, अपना परिवार है जो आपकी सेवा के लिए हर वक्त तैयार है। यहाँ अकेले रहकर आपको कौन-सा सुख मिल रहा है ?' गरमी से उनका चेहरा तमतमाया हुआ था। वहाँ वरिष्ठ भिक्षुओं के सम्मुख में उनसे कुछ कह नहीं सकी, पर मेरा हृदय रो रहा था। बच्चे भी अपने पापा को इस दशा में देखकर बहुत दुखी हो रहे थे। भिक्षु मित्र उनके लिए फल-बिस्कुट ले गये थे। डाक्टर से उन लोगों ने बात की तो पता चला कि पंडितजी को दो दिन और अस्पताल में रहना होगा। उदास मन लेकर हम लोग रेस्ट हाउस लौट आये। आने के बाद मैं जया-जेता से उनके पापा के बारे में ही बातें कर रही थी। तभी करीब आधे घंटे बाद एक कार रेस्ट हाउस के सामने आकर रुकी और उससे उतर रहे थे हमारे पंडितजी। उनको हठात् वहाँ देखकर हम लोग चौंक गये। पूछने पर उन्होंने बतलाया कि उनको अस्पताल में बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। डाक्टर से उन्होंने छुट्टी माँग ली और टैक्सी करके रेस्ट हाउस में बच्चों के पास आ गये।

मैंने उनको बहुत-बहुत समझाया, अनुरोध किया कि वे हमारे साथ भारत लौट चलें—सुख-दुख जैसा भी हो, पर साथ रहेंगे। श्रीलंका महँगी जगह हे, फिर हमारे वीसा की मियाद पूरी हो जाने पर हम लोग यहाँ एक दिन भी अधिक नहीं रह सकते। यदि मियाद बढ़ाकर कुछ दिन रहना भी चाहें तो हमारे रहने का खर्च, खाने का खर्च कौन देगा ? पंडितजी पर ही बोझ पड़ेगा। इसी ख्याल से मैंने सीलोन से भारत लौट चलने का आग्रह उनसे किया, परन्तु वे अभी लौटना नहीं चाहते थे। तब मैंने पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली के श्री सच्चिदानन्द शर्मा के नाम पंडितजी की हाल की बीमारी तथा उनकी शारीरिक अवस्था का विवरण देते हुए पत्र लिखा।

शर्माजी ने मेरे पत्र को 'नवभारत टाइम्स', 'नवयुग', 'जनशक्ति' आदि अखबारों में छपवा दिया। कई लोगों ने यह सूचना पढ़कर पंडितजी को उनकी बीमारी के लिए चिन्ता प्रकट करते हुए पत्र लिखा। पंडितजी को मालूम होना चाहिए था कि भारत में उनके कितने शुभचिन्तक हैं पर अभी वे स्वयं को युवक ही समझते होंगे, तभी तो उन्होंने पत्रोत्तर में अपनी बीमारी के बारे में साफ न लिखकर, "मैं बिलकुल ठीक हूँ चिन्ता का कोई कारण नहीं", आदि-आदि लिख भेजा। याने मेरी दी हुई सूचना मानो गलत हो।

6 जनवरी को वे रेस्ट हाउस से विश्वविद्यालय गये। डाक्टर से इंजेक्शन लिया। आज से उन्होंने 40 युनिट इन्सुलिन इंजेक्शन लेना शुरू किया। कमजोरी उनको थी, भोजन में बहुत परहेज कर रहे थे, इसीलिए वे दुर्बल हो गये। अतः 7 जनवरी को विश्वविद्यालय जाकर डाक्टर परेरा से विटामिन बी का इंजेक्शन लिया। 8 को भी इसी प्रकार विटामिन बी इंजेक्शन लगवाया। भारत रुपयें भेज सकते हैं या नहीं, इसकी भी उन्हें चिन्ता थी। अतः 9 जनवरी को उन्होंने लिखा–"विदेशी विनिमय में सन्देह है। क्या करें ?"

विटामिन बी के इंजेक्शन लेने के बाद उनके शरीर में थोड़ी शक्ति आ गई। इसलिए 9 जनवरी को वे मुद्रा नियंत्रक (Foreign Exchange Controller) के पास गये। कल निर्णय होने के बाद सूचित करने को कह आये। उसी दिन हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदाता श्री जगदीशस्वरूप का पत्र उन्हें मिला, जिसमें लिखा गया था कि सम्मेलन ने धर्मनीति विश्वकोश को तैयार करने की योजना बनाई है जिसके प्रधान सम्पादक का आसन पंडितजी को स्वीकार करना होगा। इस अनुरोध की स्वीकृति का उन्होंने पत्रोत्तर भी दे दिया। आज भी विदेशी विनिमय के आफिस से कोई सूचना नहीं आई। उन्हें विदेशी विनिमय की अनुमति की बड़ी चिन्ता हो रही थी। परिवार को अब शीघ्र ही भारत लौटना था, इसलिए उनके टिकट आदि का प्रबन्ध 11 जनवरी को ही कर लिया।

पंडितजी अभी बाल-बच्चों के साथ महरा विश्रामगृह में ही रह रहे थे। उनको सीलोन में अपने परिवार के साथ रहने का यही अवसर मिला था। वे बच्चों के साथ खुश रहते थे, कभी-कभी मुझ से भी अपनी पसन्द के गीत-लोकगीत गाकर सुना देने का आग्रह करते। 12 से 15 जनवरी तक वे विद्यालंकार भी नहीं गये। 16 जनवरी की डायरी के अनुसार–"बच्चों का कोई स्थायी प्रबन्ध नहीं हो सका। (कमला को) पी-एच. डी. कराया, पर काम नहीं।" वे बच्चों के भविष्य के बारे में अधिक चिन्ता करते थे। इसीलिए वे श्रीलंका आये थे कि अपने बच्चों के लिए कोई स्थायी आर्थिक प्रबन्ध कर जायँ। पर उन्होंने यह नहीं सोचा कि कमला भी एक दिन नौकरी करने लगेगी, बच्चों को सँभाल ही लेगी। काम तो थोड़ा और जोर लगाने से मिल ही जाता। दार्जिलिंग में न सही, अन्यत्र भी मिल सकता था। पर पंडितजी यही चाहते थे कि कमला और बच्चे श्रीलंका में ही बस जायें। दार्जिलिंग में जब घर लिया है तो उसको भी देखना होगा। विदेश तो आखिर विदेश ही है, अपने देश में रहना ही ज्यादा अच्छा है, यह मेरा तर्क होता था उनके साथ।

**पुनः विद्यालंकार में :** 17 जनवरी को हमारा भारत प्रस्थान करने का दिन था। इस बार हम एक ही महीना पंडितजी के साथ रह सके। आगे भी रहने का मन था, परन्तु तब आर्थिक कठिनाई होने की सम्भावना थी और हम उन पर बोझ बनना नहीं चाहते थे। उस दिन जलपान करने के बाद अपने सामान के साथ हम लोग महरा रेस्ट हाउस को छोड़कर विश्वविद्यालय आ गये। इस बार भोजन आदि सबका जोड़कर रेस्ट हाउस का 1500 रुपया खर्च पड़ा, जो हम लोगों के लिए अधिक था। दोपहर का खाना बच्चों ने पंडितजी के कमरे में खाया, जो विश्वविद्यालय के छात्रावास से बनाकर भेजा गया था। बच्चे चले जायेंगे, इस ख्याल से पंडितजी का मन व्यथित था, इसलिए उन्होंने दिन में भोजन ही नहीं लिया। वे लिखते हैं–"दिन में 1.30 बजे एरोड्रोम गये। सब ठीक हो गया। 2 बजे विमान आया, 3 बजे उड़ गया। कमला मद्रास से तार देगी। मन नहीं लगता। बच्चों के साथ रहने से ही सारी कठिनाइयाँ दूर हो सकेंगी। पर रुपयों का प्रबन्ध करना है। कम से कम एक मकान 200 मासिक किराया आनेवाला के लिए चाहिए 20000 रुपया, अर्थात् 9000। 3 वर्ष रुकना होगा।"

इस प्रकार वे बच्चों के बारे में सोच-सोचकर विकल हो रहे थे। जया और जेता को बड़े होते वे देख नहीं पायेंगे, इसलिए उनके भविष्य के लिए कुछ प्रबन्ध कर देने की चिन्ता वे किया करते थे। भारत में इसकी

आशा नहीं देखते थे, इसलिए उनको और अधिक व्याकुलता होती थी।

परिवार को विदा करने के बाद पंडितजी की मनःस्थिति और उदास हो गई। 18 जनवरी को अपनी डायरी में उन्होंने लिखा–"कमला को और एक मास यहाँ रखते, पर फिर मासिक खर्च नहीं दे पाते। मन कैसे लगे ? अब तो बराबर पास रहने का समय है।" उसी रात को उन्होंने कमला के नाम जो पत्र लिखा, उसमें भी उन्होंने अपनी व्याकुल मनःस्थिति को व्यक्त किया है। पत्र इस प्रकार है :

*केलानिया*
*18-1-61*

*प्राणाधिके,*

*कल तुम गईं, बड़ी देर तक नींद नहीं आई। आज दिन में भी मन नहीं लगा। रात साढ़े नौ बजे यह चिट्ठी लिखने बैठा हूँ। मेरे लिए मन को समझाना बहुत मुश्किल है। अगस्त के आने तक कैसे ही काटूँगा। भावुकता के लिए स्थान होता है, पर बुद्धि की बात मानता हूँ। स्थायी आमदनी का प्रवन्ध करके आने में ही कुशल देखता हूँ। यदि 1962 का समय लग जाय तो प्यारी, अगस्त-अक्तूबर की छुट्टियों पर सन्तोष करना होगा। तुम्हारे लिए ही नहीं, मेरे लिए भी यह दुस्सह है।*

*मैं खाने में पूरे नियम को बरत रहा हूँ। आनन्द श्रामणेर ने आज 40 युनिट इन्सोलिन सबेरे ही दे दिया। कल ही मैं 40 युनिटवाली चार इन्सोलिन की शीशियाँ लाया। गोलियाँ भी कुछ लाया। अभी कोई काम नहीं कर रहा हूँ। आज भी प्रज्ञाकीर्ति ने क्लास ली। पर कल से (मैं) लूँगा। तुम्हें धैर्ययुक्त जानकर मुझे प्रसन्नता और सन्तोष होगा। जेता बेटे को मेरी ओर से चुम्बन करना। जया बेटी को भी चूमना माता-पिता दोनों की ओर से। बच्चे निर्दोष होते हैं। झोंक में आकर गलती कर बैठते हैं। उनको हमेशा क्षमा करने के लिए तैयार रहना चाहिए।*

*यह चिट्ठी इसी आशा पर कलकत्ता भेज रहा हूँ कि शायद 21 जनवरी तक तुम कलकत्ता रहो। अपनी यात्रा का सारा समाचार लिखना, क्या तकलीफ हुई। तुमसे वियुक्त रहकर मैं सुखी नहीं रहूँगा, पर अनिवार्यता को भी समझता हूँ। बुद्धि और हृदय का संघर्ष है। संघर्ष उचित रीति से जल्दी ही समाप्त हो जाये, यही चाहता हूँ। तुम्हारा पत्र जब तक नहीं आता, तब तक मन स्थिर नहीं होगा। प्रयाग की चिट्ठी आते ही लिखूँगा। शुक्लजी को लिखना। यदि देहरादून में काम मिल जाये तो दर्खास्त दे देना। दार्जिलिंग में तो आशा नहीं है।*

*प्यारी को बहुत चुम्बन और आलिंगन।*

*सदा तुम्हारा, राहुल*

19 जनवरी को वे लिखते हैं–"कल सबेरे कलकत्ता पहुँच गये बच्चे, कमला का तार मिला। आज एक पत्र राजेन्द्रबाबू (डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, राष्ट्रपति) को लिखा कमला के काम के लिए।"

राहुलजी ने राष्ट्रपति को पत्र लिखा तो राष्ट्रपति ने उसका इस प्रकार उत्तर दिया :

*राष्ट्रपति भवन,*
*नई दिल्ली*
*पहली फरवरी 1961*
*माघ 12,1882 शक*

*श्रद्धेय राहुलजी,*
*आपका 19.1.61 का पत्र मिला। मैं डाक्टर बी. सी. राय को पत्र लिख रहा हूँ। दार्जिलिंग बंगाल में पड़ता है और इसलिए वही ऐसे सज्जन हैं जो इसमें कुछ विशेष कर सकते हैं।*

*आपके पत्र से यह जानकर कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, चिन्ता हुई। उसका विशेष ध्यान रखियेगा।*

*आपका,*

*राजेन्द्र प्रसाद*

*Prof. Rahula Sankrityayana,*
*Dean & Head of Philosophy Dept.*
*Vidyalankara University,*
*Kelaniya (Ceylon).*

20 जनवरी को भी उनका काम में विशेष मन नहीं लगा। कुछ पढ़ते रहे और कुछ ग्रन्थों से नोट लेते रहे। 21 जनवरी को लिखते हैं–"कमला के मद्रास और कलकत्ता से भेजे दो पत्र आये। महादेवजी का भी पत्र स्वास्थ्य के बारे में आया। दोनों को उत्तर दिया। एम. ए. कक्षा को पढ़ाया। 'पालि साहित्य का इतिहास' की रूपरेखा फिर बनानी है, पहिली खो गई। अब सब अध्यायों के लिए सामग्री जमा करेंगे।"

21 जनवरी को भी पंडितजी मेरे नाम जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार था :

*केलानिया*

*21-1-61*

*प्यारी,*

*तार पहिले ही मिल चुका था। आशा के अनुरूप 19-1 की कलकत्तावाली चिट्ठी आज मिल गई। बस, आजकल सबेरे 9 बजे की डाक की प्रतीक्षा बहुत उत्सुकता से करता हूँ। मेरा भी इरादा रोज ही चिट्ठी लिखने का करता है। अब कलकत्ता में यह दूसरा पत्र नहीं मिल सकेगा, इसलिए दार्जिलिंग के पते पर लिख रहा हूँ। मेरी चिन्ता मत करो। मैं स्वयं तुम्हारे और बच्चों की चिन्ता करते सब तरह की सावधानी बरत रहा हूँ। राजेन्द्र बाबू को भी पत्र लिख दिया। मेरा ध्यान सदा इसी ओर रहेगा कि कैसे तुमसे आ मिलूँ और बच्चों के भविष्य का भी प्रबन्ध हो जाये। अगस्त में तो आऊँगा ही।*

*इस महीने का वेतन 2060 रुपया मिला। जितना जल्दी प्रबन्ध हो जाये, करूँगा।*

*मेरी प्यारी, मुझे ठीक से समझो। अब मेरा ध्यान केवल यही है कि तुम्हारे भविष्य को निश्िंचत करते तुम से आ मिलना। काम की निराशा ही बतलाती है कि दूसरा रास्ता लेना होगा। मैं बच्चों के लिए अभी कुछ वर्षों तक और जीने का संकल्प रखता हूँ। मैंने तुम्हें यहाँ रखने का बहुत आग्रह नहीं किया, इसीलिए कि तुम्हें पसन्द नहीं था (यह) देश। इसलिए एक घर और लेने के सिवा चारा क्या ? यदि प्रयाग का काम मिल गया तो वहीं तुम्हें भी काम करना होगा। तुम जीवन से निराश न हो, तभी मुझे धैर्य होगा, क्योंकि सवाल हमारे दोनों मासूम बच्चों का है। तुम्हारी दृढ़ता और मेरा स्थायी आर्थिक प्रबन्ध दोनों आवश्यक है।*

*खाने और इन्जेक्शन का मैं ध्यान रखता हूँ। टहलना तो हफ्ते बाद ही हो सकेगा, जब थोड़ी ताकत आ जाये। मेरे मन की स्थिति अपने मन से पूछो। किसी काम से मन नहीं लगता। अगस्त भी अभी सात मास है। रात को भी और दिन को भी देर से नींद आती है। मैं तुम्हें एक मास और रखना चाहता था, पर मेरी शारीरिक स्थिति देखकर तुम्हें चिन्ता होती, इसलिए आग्रह नहीं किया। मित्रों से भी बहुत बात करने का मन नहीं करता। सोच रहा हूँ अगले साल के पाठ्य ग्रन्थों को भी पढ़ा दूँ, जिससे छुट्टी मिल जाये।*

*आज 1 बजे मद्रास का लिखा पत्र भी मिल गया। बड़ा सन्तोष हुआ। मैं दस-बीस वर्ष और जीना चाहता हूँ, जिसमें तुम्हें अकेले संघर्ष न करना पड़े। तुम, 2040 ई. तक जीओ–बच्चों को सँभालते और लोगों को मेरे सपने के बारे में बात करते। प्यारी, तुम से मैं बहुत संतुष्ट हूँ, तुम्हारे गुणों की कदर करता हूँ। जितना चाहता था उतना नहीं कर सका। गरमी मुझे नहीं सताती क्योंकि पंखा जोर से रात-दिन चलता रहता है। तुम्हारी दिल्ली में लिखी चिट्ठी 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली) में छपी। महादेवभाई ने पढ़ा, उन्होंने उत्सुकता प्रकट करते हुए लिखा।*

*आज ही पत्र आया है।*

*यही सोचता हूँ प्रयाग या दार्जिलिंग या देहरादून। वार्षिक 24 हजार रुपया यदि आगे भेज सकता। प्यारी, हर निराशा और चिन्ता की घड़ी में दोनों बच्चों को देखना।*

*चुम्बन-गाढ़ालिंगन के साथ,*<br>*सदा तुम्हारा,*<br>*राहुल*

## अस्वस्थता की सूचना से राहुल-प्रेमी चिन्तित

पंडितजी की मनःस्थिति इन दिनों बीमारी के कारण कैसी हो रही थी, इसका अनुमान उनकी डायरी से लगाया जा सकता है। 22 जनवरी को वे लिखते हैं–"अनवरत चिन्ता मन को जला रही है। चारपाई पर छटपटाता हूँ। जिनको (बच्चों को) दुनिया में लाया, उनके प्रति कर्तव्य का ख्याल आता है। टाइप से ज्यादा नहीं लिख सकते। मेज पर बैठना भी कष्टकर है। चारपाई पर लेटे-लेटे हाथ से लिखने में आसान है। कुर्सी का सहारा लेना है।" 23 जनवरी को उन्होंने लिखा–"बस, जया-जेता और कमला हर वक्त आँखों के सामने आते हैं। जया-जेता मानो कहते हैं–हमारा क्या होगा ? उस वक्त आँखों में आँसू आ जाते हैं। यहीं बुलाने का मन करता है। पीड़ा के कारण नींद भी नहीं आती। स्वप्न कैसा भी हो अच्छा लगता है। आज तिब्बती कोश की भूमिका लिख डाली, व्याकरण भी आरम्भ किया। अब डायरी में कुछ अधिक लिखा करेंगे। नया जीवन अपनाना है। यदि कमला और बच्चे रहने के लिए आ जायें तो 90 वर्ष तक जी सकता हूँ। तब सब कर्तव्य पूरा हो जायेगा। खाना अच्छा नहीं लगता। कैसे ही पूरी रोटी गले के नीचे उतारता हूँ। शरीर को कर्मण्य रखना है।"

अपने लिखने के काम में व्यस्त रहने पर भी पंडितजी अपने परिवार को भुला नहीं पाते थे। हमारे चले आने के बाद से तो वे और अकेलापन महसूस करने लगे और रात के एकान्त में बच्चों के भविष्य की ही चिन्ता करने लगे। अतः 24 जनवरी को उन्होंने लिखा–"आज तिब्बती कोश के लिए संक्षिप्त व्याकरण लिख कर समाप्त कर दिया। भूमिका कल ही लिख दी थी। फिर जया-जेता और प्यारी (कमला) की चिन्ता मन को विचलित करती रही। उनका संघर्षहीन जीवन यहीं (लंका) आने में है। उनके पास रहने पर मैं दस वर्ष तो जरूर जी जाऊँगा। 10 वर्ष में 10 लाख जमा कर देना आसान है। कमला को काम भी मिल जायेगा। मेरे ही मित्र और शिष्य अगले 30-40 वर्षों तक विश्वविद्यालय के संचालक रहेंगे। वह मेरे बच्चों का ध्यान रखेंगे। कमला को स्कूल में तीन सौ रुपये की नौकरी मिल ही जायेगी। सिंहल में आ जायेगी तो मुखर भी होगी। बच्चे पढ़ेंगे, मेडिकल कॉलेज से डाक्टर बन जायेंगे। फिर कमला चाहेगी तो भारत चली जायेगी। इससे अच्छा सम्मेलन का कार्य नहीं होगा।

"सुरेन्द्र दवे की (जोधपुर) की चिट्ठी अपराह्न में आई, पत्र में पढ़ा–मैं अंधा हो गया, वाणी भी खो गई। लिख दिया, ऐसी बात नहीं है। अब 'पालि साहित्य का इतिहास' कल से शुरू करना है। रोज 10 पेज हाथ से लिखेंगे चारपाई पर ही। 20 दिन में इतिहास पूरा हो जायेगा।"

कभी-कभी मित्र लोग पंडितजी से मिलने विद्यालंकार में आया करते थे, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती थी। 25 जनवरी को "श्री वेणीशंकर झा, भूतपूर्व कुलपति, काशी विश्वविद्यालय आये।" अपरिचित नहीं बल्कि अधिक परिचित थे हम दोनों। उनसे विश्वविद्यालय के बारे में बातें हुईं। तीन विभागों के अध्यक्ष तीनों भारतीय[1] हैं, यह जानकर प्रसन्न हुए। आज भी चिट्ठी नहीं आई कमली[2] की। शायद दार्जिलिंग जाकर ही भेजें। हमने

1. राहुल सांकृत्यायन, आनन्द कौसल्यायन, शान्ति भिक्षु शास्त्री।
2. आनंद कौसल्यायन ने नामकरण किया था–कमली पगली।

फिर चिट्ठी लिखी साथ रहने के बारे में। निश्चित है बच्चों की चिन्ता आयु को क्षीण कर देगी। राजकमल (चौधरी) ओर श्री हरिश्चन्द्र (पुष्प) ने भी बीमारी के बारे में उत्सुकता प्रकट की है। थोड़ा 'पालि साहित्य का इतिहास' लिखा। दो-चार दिन में मन की स्थिरता आयेगी।

26 जनवरी को वे अपनी दैनिकी में लिखते हैं–"कमला की 21 जनवरी और 22 जनवरी की दो चिट्ठियाँ आईं। दार्जिलिंग पहुँच गईं। मन का आवेग हमारा ही जैसा है। इकट्ठा रहना तो अभी यहीं मालूम होता है। जवाब लिख दिया। हाईकमिश्नर ने फोन पर हमारी बीमारी के बारे में पूछा। कह दिया।" 27 जनवरी को उन्होंने लिखा–"आज भी बीमारी की खबर पढ़कर दिल्ली से डॉ. उदयनारायण तिवारी और (पटना से) किशोरी भाई की घबड़ाहट भरी चिट्ठी आई। किशोरी भाई ने मेरा पटना में रहने का प्रबन्ध किया है। 10 पृष्ठ पालि इतिहास लिखा। इतना ही क्रम रक्खें तो अच्छा है। मार्च तक पता लगेगा कि क्या करना है।"

28 जनवरी को वे 'पालि साहित्य का इतिहास' लिखते रहे। एम. ए. की कक्षा में आज उन्होंने वैशेषिक (न्याय दर्शन) पढ़ाया। "आज ही प्रयाग से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की चिट्ठी आई। कैसे जायें ? वेतन की बात है, फिर पढ़ाई खतम करना है। कमला की चिट्ठी आज आई।" 29 जनवरी को पंडितजी ने 'पालि साहित्य का इतिहास' के दस पृष्ठ से अधिक ही लिखे। उस दिन उनकी बीमारी के सम्बन्ध में उन्हें बहुत-सी चिट्ठियाँ मिलीं। वे लिखते हैं–"आज बीमारी के बारे में दो तार आये। शांति परिषद् के मंत्री श्री रमेशचन्द्र पालीवाल ने लिखा–Illness Greatly Perturbing. मिर्जापुर का तार है–Cityzens Anxious Welfare। पार्टी की ओर से तार है–All India Peace Croncil, Greatly concerned your health, wish your speedy recovery.–रमेशचन्द्र पालीवाल। भिक्षु शरणकर भी New Age (Delhi) पढ़कर आये पूछने।"

30 जनवरी को उन्होंने लिखा–"स्वास्थ्य अच्छा है। इन्सोलिन काम कर रही है।" भारत में उनके कितने ही स्नेही मित्र तथा बन्धु थे, जो उनकी बीमारी की खबर से चिन्तित थे। ऐसे ही एक मित्र थे सर्दार पृथ्वीसिंह आजाद, जिनको वे बड़े भैया कहते थे। "31 जनवरी को बड़े भाई सरदार पृथ्वीसिंह ने मेरे स्वास्थ्य के बारे में लिखा–यहाँ चण्डीगढ़ आयें। आज भी कुछ और चिट्ठियाँ आईं।"

अब वे इन्सुलिन के भरोसे फिर से लेखन-कार्य में जोर से संलग्न हुए। काम में व्यस्त रहते भी उन्होंने मुझे बड़े कातर होते कई मार्मिक पत्र लिखे, जिनमें वे मुझे और बच्चों को श्रीलंका में अपने साथ रखने के लिए आग्रह कर रहे थे। कई नये जीवनीकारों ने यह लिखा कि राहुलजी परिवार को दार्जिलिंग में सदा के लिए छोड़कर गये थे। पर वस्तुतः यह बात नहीं थी। अफवाह उड़ानेवाले और राहुलजी और उनके परिवार से ईर्ष्या रखनेवाले ही ऐसा लिखते रहे हैं।

## फरवरी 1961

1 फरवरी को पंडितजी ने 'पालि साहित्य के इतिहास' के 10 पृष्ठ लिखे। उसी दिन 50 पृष्ठ की एक छोटी-सी पुस्तक सिंहल पर भी लिखने का उन्होंने निश्चय किया। उधर भारत से उनके स्वास्थ्य के बारे में चिन्ता प्रकट करते हुए कई चिट्ठियाँ आज भी आईं और इधर वे अपनी लेखनी को और तीव्र गति दे रहे थे। 2 फरवरी को उन्होंने बड़ी मुश्किल से 10 पृष्ठ 'पालि साहित्य' के लिखे। 5-6 अक्षर सिंहली के पढ़े नहीं जाते थे। "हिन्दी टाइम्स साप्ताहिक' ने चित्र के साथ हमारी बीमारी की खबर छापी है।" 3 फरवरी–"10 पृष्ठ लिखे, कमला की चिट्ठी आज नहीं आई।" 4 फरवरी को वे लिखते हैं,"12 पृष्ठ (172) तक किया 'पालि साहित्य का इतिहास', 12-13 फरवरी तक पुस्तक समाप्त हो आयेगी। एक हफ्ते में दुहरा देंगे। आज भी प्यारी की चिट्ठी नहीं आई, इसका अर्थ है सोमवार को आयेगी। उसी दिन विश्वविद्यालय की छुट्टी खतम होगी।" 5 फरवरी–"10 पृष्ठ लिखे, 180 पृष्ठ हो गये। आनन्दजी घूमकर आ गये। दो दिन से डाक बंद है।" 6 फरवरी–"आज इकट्ठी ही पाँच चिट्ठियाँ कमला की आईं। उनको कोलम्बो से रुचि नहीं है। वहीं दार्जिलिंग में काम हो जाये तो क्यों यहाँ बुलायें। राजेन्द्र बाबू की दो चिट्ठियाँ आईं। उन्होंने विधानचन्द्र राय (बंगाल के मुख्यमन्त्री) को कमला के बारे में लिख दिया है। शायद अब अगस्त में जाना ही हो। पढ़ाई के लिए प्रज्ञाकीर्ति को तैयार करा देना

है। अगस्त में सारी पुस्तकों को लेकर आनन्दजी के साथ रेल में जाना है। प्रज्ञाश्री कलकत्ता तक जायेंगे। अच्छा होगा। आज 19 पृष्ठ तक 'पालि साहित्य का इतिहास' लिखा। दोहराने में बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। राजेन्द्र बाबू की दो चिट्ठियाँ आईं। लिखा है–बीमारी के बारे में पटने में प्रबन्ध हो सकता है।" 7 फरवरी को उन्होंने 'पालि साहित्य' के 13 पृष्ठ और लिखे। "अब लंका छोड़ने का ही निश्चय करना है। देखें, कैसे ही काम चल जायेगा, यदि कमला को काम मिल जाये तो ही निश्चिन्त होंगे।" 8 फरवरी–"आज 220 पृष्ठ तक लिखा। तीन दिन में 'पालि साहित्य' को लिखकर समाप्त करना है। वीरेन्द्र (धूपनाथजी के भतीजे) की चिट्ठी आई। पटने के पत्रों में भी हमारी बीमारी की खबर छपी है।"

9 फरवरी को पंडितजी ने दैनिकी में मार्मिक पंक्तियाँ लिखीं। मैंने उनको पत्र में लिखा था कि "आप हम लोगों से दूर हैं, बच्चों को पिता के सान्निध्य से वंचित कर रहे हैं और मुझको जीते जी अपने से अलग कर रहे हैं। अपने बच्चों के प्रति आप अन्याय कर रहे हैं। आप घर आयें और बच्चों के साथ रहें। उनको अपने से अलग रखकर उनका अहित न करें।" पर पंडितजी का मन इतना कमजोर हो चुका था कि वे शब्दों का अर्थ भी अन्यथा लेने लगे थे। अतः आज की डायरी में उन्होंने लिखा–"कमला की कड़ी चिट्‌ठी आई। मुझे अपना और बच्चों का अहितचिंतक समझा··· अब तो भारत में काम मिल ही जायेगा, इसलिए बच्चे निराश्रित नहीं होंगे, मेरा भी जाने से तब क्या स्वार्थ रहता है। काम तो जीवन में एक आदमी जितना कर सकता है, कर लिया है।"

इस प्रकार पंडितजी विद्यालंकार की अपनी कोठरी में बैठकर अकेले न जाने क्या-क्या सोचा करते थे। कभी आशावान और कभी एकदम निराश। हमारे बारे में कभी अच्छी-अच्छी बातें सोचते और कभी मन को कष्ट पहुँचानेवाली बातें सोचते। मैं तो बार-बार यही आग्रह करती रही कि वे भारत लौट आयें और अपने बच्चों-मित्रों के साथ रहें। अपनों के बीच रहेंगे तो उनको प्रसन्नता मिलेगी, मन शान्त रहेगा। पर न जाने क्यों जीवन के अंतिम वर्षों में वे इस तरह निराशावादी होते गये। क्या उनको अपने देश से उतना लगाव नहीं रहा या देश की व्यवस्था से असंतुष्ट हो गये थे ? और क्या कारण हो सकता था ? सुदूर उष्ण देश में रहकर वे अकेले कष्ट उठा रहे थे और इधर हम उनको अपने पास, अपने बीच में रखने के लिए उद्विग्न थे। वह कंचन काया, जो हिमाचल की गरमी को भी सहन नहीं कर सकती, इस समय भूमध्यरेखा (Equator) से सिर्फ 8 डिग्री ऊपर अवस्थित लंका की भयंकर गरमी में कृत्रिम हवा के सहारे जी रही थी। पर अन्य लोग इस बात को क्या समझें ? वह तो हमारा हृदय ही जानता था, उस तड़प, को उस छटपटाहट को तो सिर्फ मैं ही अनुभव कर सकती थी। शायद पंडितजी को भी इतना महसूस न हुआ होगा, नहीं तो दैनिकी में इस तरह की बातें न लिखते। खैर। मैंने उनको बहुत बार समझाया था, बच्चों के लिए इतनी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। सब ठीक हो जायेगा। उन्होंने 22 जनवरी से 8 फरवरी तक 10 पत्र मुझे लिखे थे, जिनमें अपने जीवन के प्रति निराशा ही उन्होंने व्यक्त की थी। बाद में वे थोड़ा सँभल गये।

10 फरवरी से पंडितजी 'पालि साहित्य के इतिहास' को दुहराने लगे। आज उन्होंने 49 पृष्ठ दुहराये। दिन में भी दुहराना होगा। रात को बारीक काम करने में कठिनाई होती थी। 11 फरवरी को वे लिखते हैं–"आज भी 'पालि साहित्य' दुहराते रहे। एक हफ्ता लगेगा। पाँच-छः चिट्‌ठियाँ आईं बीमारी के बारे में। जवाब दे दिया। कमला की चिट्‌ठी शीतल आई। रात को लिखना छोड़ना होगा, आँखों पर जोर पड़ता है।"

12 फरवरी को भी वे 'पालि साहित्य' को दोहराते रहे, "कल शायद समाप्त हो जाये। आज एक तमिल मुस्लिम तरुण आये। मेरी 'वोल्गा से गंगा', 'राजस्थानी रनिवास' और 'साम्यवाद ही क्यों' को तमिल में पढ़ चुके हैं। प्रगतिशील विचार के हैं। फ्रेंड्स पार्टी से सहानुभूति नहीं रखते। आज साप्ताहिक को लेख 'अंतिम निर्णायक युद्ध विनाशकारी होगा' लिखा।"

13 फरवरी को भी उन्हें बीमारी के बारे में कई चिट्ठियाँ मिलीं, साथ ही मेरी चिट्‌ठी भी मिली। पालि साहित्य का इतिहास दोहराते रहे ।

14 फरवरी को भी पंडितजी 'पालि साहित्य' के इतिहास को दोहराते रहे। शायद कल समाप्त हो जाये।

"प्यारी की चिट्ठी आज भी आई। राष्ट्रपति के पत्र का उल्लेख नहीं है। अब के चलकर एक पुस्तक 'धर्मों के अत्याचार' लिखेंगे," इस निश्चयार्थ पर यदि वह जोर देने को तैयार हुए।

15 फरवरी—"आज थोड़ा ही संशोधन किया। उज्जैन के जगन्नाथ शर्मा आ गये। करुणगेल के प्राइवेट कॉलेज ने बुला लिया। अब माध्यम की बात कर रहे हैं। आज चिट्ठियाँ नहीं आईं। घंटा भर टहले।"

16 फरवरी को पंडितजी 'पालि साहित्य के इतिहास' को दोहराने में व्यस्त रहे। लिखते हैं—"दोनों दिन कल-आज प्यारी का पत्र नहीं आया। मजा तो होगा अब डायरी में लंका की यात्रा लिखें।

"लंका, पहिली बार 1926 में आये थे। अपरिचित और असाधारण-सा देश मालूम हुआ। अंग्रेजों का शासन था। लोग बड़े अच्छे मालूम हुए। श्री धम्मानन्द नायकथेरो तो बिल्कुल मधु जैसे मीठे थे। सब चीज का ख्याल रखते थे—खाने का, किताबों का। बस, एक दिन राजनीति में भाग लेने के लिए आज्ञा माँगी तो चीख निकल गई, शायद पिता भी उतना प्रेम अपनी ओर से पुत्र पर नहीं करेगा। श्री धम्मानन्दजी तो हमारे जन्मने के बाद पढ़े थे और समझते नहीं थे। जरा देर के लिए भी पराया देश नहीं मालूम हुआ। विद्यार्थी पढ़ते थे, हम भी विद्यार्थी थे। मुग्ध होकर बाँचते थे। दयानन्द, प्रज्ञासार जो भी मिलता। जल्दी ही पिटक समाप्त करना था। उस समय माणिकचन्द्र पटेल, दूसरा परमारथ पंडित जगतराम कोलम्बो से मिलने आते थे। अब कोई नहीं है। मिर्च अब बहुत खाने में पड़ती है। सबेरे तो दूध पावरोटी से काम चल जाता। कभी कोलम्बो कश्मीरी होटल में खाना खाते। रुचिकर था, कोई कष्ट नहीं था। उस वक्त तो मधुमेह भी नहीं था।"

लगता है पंडितजी रोज-रोज घर की चिट्ठी की प्रतीक्षा करते थे। न मिलने पर उनको दुःख होता था। चिट्ठियाँ डाक में ही देर से पहुँचती थीं। 17 फरवरी को वे लिखते हैं—"आज भी पाण्डुलिपि का संशोधन किया। कल पाठ पढ़ेंगे दूसरे विषय पर। आज भी प्यारी का कोई पत्र नहीं आया। हम तो एक दिन छोड़कर लिखते रहेंगे।" 18 फरवरी—"आज भी प्यारी का कोई पत्र नहीं, मैंने चिट्ठी लिखी। महेन्द्र (अशोकपुत्र) पर एक लेख 'आजकल' के लिए और दूसरा 'मथुरा के सोरठिया' पर लिख दिया। भेजना तो परसों होगा। कमला की चिट्ठी क्यों नहीं आ रही है ?" 19 फरवरी—"आज दोनों लेख 'आजकल' और 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक' के लिए लिखकर पोस्ट के लिए तैयार कर लिया। कल भेज देंगे। आधा घंटा धूप में टहले।"

20 फरवरी को उन्होंने 'पालि साहित्य का इतिहास' के पाँचवें परिच्छेद को खतम कर दिया। "जैसे ही हिन्दी समिति की चिट्ठी आ जाये, भेज सकते हैं। राजेन्द्र बाबू की चिट्ठी विधान बाबू (विधानचन्द्र राय) की चिट्ठी के साथ आई। सरकारी कालेजों में तो 'पब्लिक सर्विस कमिशन' से आना ठीक उतरता है। उसी से नौकरी मिलती है। प्राइवेट कॉलेजों या स्कूल में जगह स्वीकार करने के लिए पूछा है। पर कमला ने तो आज पाँच-छः दिन हुए चिट्ठी नहीं भेजी। कल देखकर उत्तर देंगे।

"आज एक घंटा टहलते रहे। अब रोज एक घंटा टहलेंगे। इन्जेक्शन लेने पर भी चीनी बार-बार आती है। 40 युनिट नहीं, 50 युनिट लेते हैं। श्री फ्रेडरिक की अंग्रेजी किताब How to live with Diabetis में तो खाने के लिए भी ताकीद की है। कमला की चिट्ठी कल आती है या नहीं, कल देखकर परसों तार दे देंगे। आज डाक्टर परेरा को 65 रुपये विटामिन के इंजेक्शन के दिये।"

21 फरवरी को वे लिखते हैं—"आगे के लेखों की सामग्री जुटाते रहे। प्यारी की चिट्ठी आई, सिर-दर्द होता रहा, इसलिए चिट्ठी नहीं लिखी थी। आज राजेन्द्रबाबू को पत्र लिखा। डाक्टर तिवारी (उदयनारायण) की चिट्ठी से मालूम हुआ कि सम्मेलन के कोश की बात पक्की होने पर लिखेंगे।" 22 फरवरी—"आज दुट्टगमणी, विजयबाहु, पराक्रमबाहु पर लेख लिखने के लिए चिह्न कर रहे थे, सीलोन के इतिहास पर। आज कोई चिट्ठी नहीं आई। यदि जब तक और किसी का पत्र नहीं आया तो किताब महल को दे देंगे। घंटा भर टहलते रहे। पेट साफ होता है, यह लाभ तो प्रत्यक्ष दीखता है। इन्सोलिन इजेक्शन लेने के बाद दो गोलियाँ दवाई लेने पर भी चीनी शून्य नहीं होती। चलो, करते रहेंगे।"

23 फरवरी को भी वे 'सिंहल के वीर पुरुष' पुस्तक के लिए सिंहल के इतिहास को पढ़कर चिह्न करते रहे। "परसों शायद लेख लिखना शुरू करें। आज छः लदाखी लड़के आये जो यहाँ पढ़ने के लिए आये हैं।

अभी सिंहली पढ़ रहे हैं। बड़ा 14-16 वर्ष और छोटा 9-10 वर्ष का है। आज क्लास नहीं रही। प्यारी का पत्र नहीं आया। दो दिन चिट्ठी न आये हुआ। आज वर्षा हुई। हम तो कहीं जाते नहीं, मन भी जाने का नहीं होता। घंटा भर रोज टहलने का नियम कर लिया। पैरों पर बुढ़ापे का असर है। तीन लेख लिखकर यदि फिर सामग्री मिली तो 'धर्मों के अत्याचार' को लिखेंगे।"

24 फरवरी–"आज 'सिंहल के वीर पुरुष' के नोट लिये। अब लिखता हूँ जिसे 'आजकल' छापना चाहे तो उसको भेजेंगे, बाकी 'सरस्वती' को छापने दे देंगे। पीछे पुस्तकाकार किताब महल छापे। आज भी प्यारी की चिट्ठी नहीं आई, मैं भेज रहा हूँ, कल शायद आये। घंटे भर टहलते रहे। अब निश्चित हैं बच्चों के बारे में। नौकरी भी (कमला को) मिल जायेगी, किताब महल कुछ रुपया तो जरूर देगा।"

25 फरवरी–"आज भी नोट लेते रहे। प्यारी के दो पत्र आये। घंटा भर घूमे। श्रीनिवास का पत्र आया। अपनी किताबें न देने की बात लिखी। जब छः हजार से ज्यादा रायल्टी से मिल रहा है, तो छः हजार देने का सवाल क्या ? दो किताबें रखे हुए हैं, इसलिए नई किताब नहीं मिल रही हैं।

"चिट्ठी लिख रहे हैं, 88 रुपया लेकर उसे भारत भेज दें।"

26 फरवरी को उन्होंने दुष्ट गामणी (सिंहल के प्राचीन वीर पुरुष) पर लिखा दो पेज। "हाथ से लिखना होगा। टाइप में जल्दी करना होता है। 27 को विजयबाहु और पराक्रमबाहु दो लेख लिखे। आज कमला का पत्र आया। दूसरे भी पत्र आये।"

28 फरवरी को पंडितजी लिखते हैं–"आज 'टिकरी वडार' लिख डाला। विजय पर निशान लगाये। भण्डारनायके को अंत में लिखेंगे। कल-आज भी बाहर सड़क के पास तक घूमते रहे। 6 बार में एक घंटा होता है। एटली आये हैं। कल या आज सीलोन युनिवर्सिटी में उनका स्वागत है। हमारा शरीर जीवट नहीं मालूम होता। चलते वक्त पैर बेबस मालूम होते हैं। अभी पूरे पाँच मास हैं भारत जाने में।"

इस प्रकार फरवरी का महीना उन्होंने लिखने के काम में व्यस्त रहकर बिताया।

## मार्च 1961

1 मार्च को उन्होंने दिन का वर्णन किया–"आज विजयबाहु लिखा और भण्डारनायके थोड़ा लिखा। एटली यहाँ आये थे। विश्वविद्यालय ने स्वागत किया। पहिले ही बहुत से तमाशबीन थे, इसलिए हम नहीं गये।" 2 मार्च–"आज जीवनियाँ सारी लिख डालीं। शाम को घंटे भर नहीं टहल सके। बहुत कमजोरी मालूम हुई।" (भोजन पौष्टिक नहीं मिलने के कारण)।

पंडितजी ने कमला के काम के लिए 19-1-61 को केलानिया से जो पत्र राष्ट्रपति के नाम लिखा था, उसका उत्तर उन्होंने 1-2-61 को ही दे दिया था। उसी संदर्भ में राष्ट्रपतिजी ने 28 फरवरी के पत्र में मुझे भी इस प्रकार सूचित किया :

*राष्ट्रपति भवन,*
*नई दिल्ली*
*फरवरी 28, 1961*
*फाल्गुन 9, 1882 शक*

*प्रिय डाक्टर कमला सांकृत्यायन,*

*आपके सम्बन्ध में श्री राहुलजी ने मुझे लिखा था। मैंने उसके पश्चात् डाक्टर विधानचन्द्र राय से निवेदन किया। डाक्टर राय का उत्तर मेरे पास आया जिसकी प्रतिलिपि मैंने राहुलजी को भेज दी थी। उसका आशय यह था कि गवर्नमेंट कॉलेज में नियुक्तियाँ पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा होती हैं पर दार्जिलिंग में दो प्राईवेट कॉलेज भी हैं जिनमें नियुक्तियाँ कालेज के गवर्निंग वाडी द्वारा होती हैं। डाक्टर राय ने वहाँ के शिक्षा विभाग को निर्देश दिया है कि जो कुछ आपकी सहायता वे कर सकते हों, करें। डाक्टर राय ने मुझे यह भी लिखा था कि यदि*

*आप हाईस्कूल में काम करना चाहें तो इसका प्रबन्ध वे शायद करा सकते हैं। राहुलजी ने आपको लिखा ही होगा। उनका पत्र मेरे पास आया है कि जब तक कॉलेज में काम नहीं मिलता है, आप हाईस्कूल में काम कर लेंगी। अतः आप जहाँ जगह खाली हो आवेदन पत्र दे दें।*

*आपका,*
*राजेन्द्र प्रसाद*

*डाक्टर कमला सांकृत्यायन,*
*ग्रीन रिजेज़, 22 कचहरी रोड,*
*दार्जिलिंग।*

3 मार्च को "हिन्दी समिति, लखनऊ का पत्र आया। लिखा था, पालि साहित्य का इतिहास की पाण्डुलिपि भेज दें।" एक बार और रिवाइज करने में लग गये। अगले सप्ताह इसे भेज देने का निश्चय किया। "अभी भी पूरे पाँच मास हैं छुट्टी होने में। मार्च से जुलाई तक कैसे बीतेंगे, अथवा बीत ही जायेंगे।" 4 मार्च को भी वे 'पालि साहित्य' की पाण्डुलिपि को दोहराते रहे, अगला सप्ताह भी उसी में लग जायेगा। 'तिब्बती शब्दकोश' के प्रूफ अभी नहीं आ रहे थे। 5 मार्च को पालि साहित्य की पाण्डुलिपि के 150 पृष्ठ संशोधन के लिए रह गये थे। शायद ही परसों भेज सकें। घंटे-भर घूमने का जो नियम बनाया था, उसमें भी गति बढ़ जाने की आशा थी, पर अब वे बहुत कमजोरी महसूस कर रहे थे।

6 मार्च को उन्होंने मौंट ब्लैंक कलम मँगाई। उसी से आज की दैनंदिनी लिखी। उनको कलम अच्छी लगी। "आज प्यारी की चिट्ठी आई। कई और चिट्ठियों का जवाब देना है। शाम को 'श्वेतकेशी कन्या' चीनी फिल्म देखी, सब नहीं देख सके। घूमने में 2,3 परिक्रमा भर की, थक जाते हैं। अभी 100 पृष्ठ पालि साहित्य का दुहराना बाकी है। बस, यही ख्याल आ रहा है कि कब जुलाई आये और घर चल दें। अब यहाँ जरा भी रहने का मन नहीं करता। दिन भी गिने मालूम होते हैं, उन्हें वहीं बिताने हैं। 'तिब्बती कोश' (प्रूफ) नहीं आ रहा है। दो लेख रजिस्टर्ड भेजे हैं, पहुँचे या नहीं मालूम नहीं हुआ।"

7 मार्च को उन्होंने 'पालि साहित्य' को दोहरा दिया। प्रज्ञानन्दजी को भी दिखा दिया, दो सौ रुपया भी उनको दे दिया। पंडितजी 'सिंहल के वीर पुरुष' की पाण्डुलिपि को दुहराने में लग गये। एक ओर उनका शरीर निर्बल होता जा रहा था, और दूसरी ओर वे काम में इतना अधिक परिश्रम कर रहे थे और पौष्टिक आहार उनको उपलब्ध नहीं था। इसलिए वे शीघ्रता से सारा काम समाप्त कर देना चाहते थे। घर की याद आती थी, रोज चिट्ठी की प्रतीक्षा करते थे। 8 मार्च को भी वे लिखते हैं–"आज प्यारी की चिट्ठी नहीं आई।" 9 मार्च को उन्होंने 'सिंहल के वीर पुरुष' को दुहरा दिया। "प्यारी का पत्र आज भी नहीं आया।"

10 मार्च को पंडितजी 'धर्माचार विश्वकोश' पढ़ते रहे। "शाम को टहलने में कठिनाई होती है। आज पहुँच गये होंगे प्रज्ञानन्दजी मद्रास।" 11 मार्च को मुझे चिट्ठी लिखी, कक्षा में एक पाठ पढ़ाया। "पहिले यहाँ से मद्रास, फिर दार्जिलिंग जाना है। फिर अगस्त में ही प्रयाग जाना होगा।" हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में हिन्दी में धर्मकोश-निर्माण की बात चल रही थी। उसी के बारे में पता लगाने वे प्रयाग जाना चाहते थे।

12 मार्च को केलानिया के गुरुकुल विद्यालय में त्यौहार था। पंडितजी आमंत्रित थे। पहले बच्चों में पारितोषिक बाँटे। मध्याह्न हो गया। वहीं 'रवीन्द्र जयन्ती शती' मनाई गई। पंडितजी भिक्षु शरणंकरजी के साथ गये थे। वे कवि रवीन्द्र पर बोले। रात होने पर लौट आये। विद्यालंकार में जगन्नाथजी आये थे, उनके निबन्ध का खाका (रूपरेखा) लिखवाया। उनको प्रज्ञाकीर्तिजी से मिला दिया। 13 मार्च को पंडितजी ने 'आजकल' को चार-पाँच लेख इकट्ठे भेज दिये। सम्पादक चन्द्रगुप्तजी (विद्यालंकार) का पत्र आया था। "श्री जयगोपाल मिश्र के पत्र से पता लगता है, शायद कमला को प्रयाग महिला विद्यापीठ में जगह मिल जाय।" 14 मार्च को उन्होंने कक्षा में पाठ पढ़ाया। आज खुश थे, क्योंकि उनको "प्यारी का पत्र मिला।" 15-16 मार्च को पंडितजी कुछ

काम नहीं कर सके, शरीर में शिथिलता का अनुभव करने लगे। 17 मार्च को किसी तरह पालि साहित्य के अंश को देख सके। फिर 18-19-20 मार्च को उनकी तबियत ठीक नहीं रही। घबड़ाहट हो रही थी उन्हें। 21 मार्च को डाक्टर ने उन्हें नर्सिंग होम में रहने की सलाह दी, परन्तु पंडितजी ने घर ही जाने का निश्चय किया, और परसों याने 23 मार्च को जाना तय हो गया। 22 मार्च को उन्होंने लिखा कि शायद कल जाना हो जाय। पंडितजी इस प्रकार दिन-पर-दिन बहुत अस्वस्थ होते जा रहे थे।

## चिकित्सा के लिए भारत आगमन

पंडितजी के अस्वस्थ हो जाने का समाचार उनके पुराने सहयोगी श्री अभयसिंह परेरा, न्यायाचार्य (जो पंडितजी के साथ तिब्बत की दूसरी और तीसरी यात्रा में गये थे) पंडितजी से मिलने आये थे। पंडितजी की वर्तमान शारीरिक अवस्था से वे चिन्तित हुए और अपने घर लौटकर उन्होंने पंडितजी को यह पत्र लिखा :

*77 देमाटागोडा रोड, कोलम्बो*
*21-3-1961*

*श्री राहुलजी की सेवा में,*

*इसके साथ पालि का पद्य भेज रहा हूँ।*

*कल आपको देखने से मुझे ऐसा मालूम हो गया है कि आपको एक तरह की चिन्ता जितना दुबला बना रही है, उतना मूत्र का दोष नहीं। शायद यह बाल-बच्चों की चिंता होगी। यह स्वाभाविक है। शकुन्तला कण्व की अपनी ही लड़की न थी, उसकी विदाई में–घरबार छोड़कर जंगल में तपस्या पर बैठे कण्व जैसे ऋषि को भी इतना दुःख हो गया। यह सब ऐसा ही होता है। पर प्रकृति के दबाव में हम न दब जायें।*

*'चिन्तचिंतयोर्मध्ये चिन्ता दहति सजीवकम्।'*

*आपने भारत के लिए अनुपम सेवा की है। आप बच्चों का ख्याल न करें। भारत ही उनका सब बन्दोबस्त करायेगा। यह मेरा पूरा विश्वास है।*

*इस पर भी ख्याल कीजियेगा–*

*किसी का बनाया हुआ कोई न बनता। आपको किसने बनाया है ? अपने आप ही बन गये हैं। मुझे भी किसी ने नहीं बनाया है। फिर चिन्ता काहे की ? काम कम कीजियेगा। आराम से रहियेगा, यह ही आपके लिए आवश्यक है। तब स्वास्थ्य बन जायेगा। किसी वक्त आ जाऊँगा।*

*आपका,*
*अभयसिंह*

पंडितजी का स्वास्थ्य तेजी से गिरता जा रहा था। पर मुझको लिख रहे थे कि "मैं ठीक हूँ, कोई चिन्ता की बात नहीं। मैं डाक्टर के परामर्श के अनुसार हर प्रकार से स्वास्थ्य पर ध्यान दे रहा हूँ", किन्तु यह बात सच नहीं थी। उनके 18 मार्च के पत्र की लिखावट से ही मुझे मालूम हुआ कि वे काफी बीमार हैं। अक्षर बहुत अस्पष्ट, एक ही शब्द को दो-दो बार लिखा हुआ। क्या बात है ? मेरी चिन्ता बहुत अधिक बढ़ गई उनकी तबीयत को लेकर। उनको यहाँ लिवा लाने के लिए जाऊँ भी तो कैसे, वही वीसा का सवाल, जिसे प्राप्त करने में कई दिन लग जाते हैं। चिन्ता के कारण कुछ उपाय भी नहीं सूझ रहा था। काश, कोई उनको समझा-बुझाकर भारत पहुँचा देते, हम उनको सँभाल ही लेते। पर ऐसा कोई व्यक्ति भी उस समय नहीं था। इसी चिन्ता में डूबी हुई थी कि उनके 21 मार्च को लिखे हुए दो पत्र यहाँ 24 मार्च को मिले, जिनके अक्षर देखकर मेरा माथ ठनका। बिल्कुल अस्पष्ट लिखावट, एक पत्र में तो वे हस्ताक्षर करना भी शायद भूल गये थे। पत्र इस प्रकार थे :

[1]

*21-3-61*

*प्रियतमा,*

*आज 16-3 और 19-3 की दो चिट्ठियाँ मिलीं। साथ ही किताब महल की चिट्ठी भी मिली। मुझे जिस दिन तुम्हारा पत्र मिलता है उसी दिन उत्तर देता हूँ। नहीं मिलता है, तब भी एक दिन के बाद चिट्ठी लिखता हूँ। अच्छी बात है, किताबों के लिए आल्मारी बनवा लो।*

*अव वस, तुम्हारे पास आने के लिए उतावला हूँ। अभी भी मार्च महीना है। देखें, कब जून-जुलाई आता है और मैं छुट्टी पाता हूँ। विजली का चूल्हा भी मन में है। डर तो है कस्टम का। देखें।*

*प्यारी को चुम्बन-आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

जेता को कुछ लिखना चाहिए। जया को भी कुछ लिखना चाहिए। सोचने से कोई बात याद आयेगी।

[2]

*21-3-61*

*प्यारी,*

*शायद एक हफ्ता में आ जाऊँ। डाक्टर ने नर्सिंग होम की सलाह दी। मैंने कहा घर ही आने का। आज विमान के रुपये के लिए लिखा-पढ़ी हो रही है। मंजूर हो ही जाय। रेल से नहीं आ सकेंगे। सामान आनन्दजी कलकत्ता तक अपने साथ लायेंगे। किताबें कुछ भेज देंगे, टाइपराइटर भी वही लेते आवेंगे। मैं उसे साथ ला नहीं सकूँगा। प्रसन्नता होगी, जल्दी आने में आनन्द होगा। कुछ किताबें कल ही भेजूँगा। तबीयत बुरी नहीं है, कमजोरी है, इसीलिए रेल से आने नहीं देना चाहते।*

*जया को प्यार*
*जेता को प्यार*
*प्यारी को चुम्बन-आलिंगन।*

*(हस्ताक्षर नहीं है)*

घबड़ाहट के मारे हमारा बुरा हाल था। कैसे होंगे ? वे कैसे यात्रा करेंगे ? वह भी अकेले। कब घर पहुँचेंगे ? कुछ भी अदांज नहीं लग रहा था।

तभी उनका 26-3 का पत्र मुझे 27 मार्च को मिला। यह पत्र कलकत्ता से लिखा हुआ था और बहुत ही अस्पष्ट घसीट लिखावट में। पत्र इस प्रकार था :

*कलकत्ता*
*26-3-61*

*प्यारी*

*23 को यहाँ आया। डाक्टर के संरक्षण में हूँ। डाबर हाउस ने सँभाल लिया था। आज अशोक और सुधाजी भी आ गये। कह रहे थे, कमला को बुला लें। मैंने कहा—नहीं। मैं चला जाऊँगा। बागडोगरा, फिर टैक्सी से दार्जिलिंग।*

*और सब ठीक है, कमजोरी है। बच्चों को प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

## कोलम्बो से प्रस्थान

**23 मार्च, 1961 :** पंडितजी के शरीर की स्थिति अकेले यात्रा करने की नहीं थी। परन्तु वे घर आने के लिए व्यग्र थे। सिंहल में भारतीय उच्चायुक्त के द्वितीय सचिव ने उनके लिए एक परिचयपत्र दिया, लिखा था कि राहुलजी अस्वस्थ हैं, वह सिंहल से मद्रास और कलकत्ता होते हुए अपने घर दार्जिलिंग जा रहे हैं। उन्हें कहीं किसी की आवश्यकता पड़े तो उन्हें सहायता दे दी जाय।

*OFFICE OF THE*
*HIGH COMMISSIONER FOR INDIA IN CEYLON*
*67, Turret Road, COLOMBO-3*
*March 23, 1961*

*This is to introduce Rev. Rahula Sankrityayana who has been Professor in the Vidya Lankara University here and is now proceeding to Madras en route to Calcutta and then his home town Darjeeling. Rev. Sankrityayana is known to the President of India and has been in indifferent health for some time now. He might require assistance in the form of being looked after at Madras and also he might request that the West Bengal Government should be informed of his arrival in Calcutta by the night air-mail service at 5 a.m. on the 24th March, 1961. Any assistance rendered to Rev. Sankrityayana will be highly appreciated.*

*(N. N. Jha)*
*Second Secretary.*

*Seal*
*(High Commission of Ceylon)*

23 मार्च को उन्होंने कोलम्बो से प्रस्थान किया, उनके साथ नारद थेरो और एक-दो अपरिचित भिक्षु भी थे। डेढ़ घंटे की उड़ान के बाद वे मद्रास पहुँचे। विमानस्थल पर राजकर्मचारी उपस्थित थे, उनको अतिथिशाला में चलने के लिए कहा, पर पंडितजी ने आगे जाना ही ठीक समझा।

मद्रास में कुछ देर रुककर विमान नागपुर की ओर उड़ा। नागपुर में जलपान के बाद कुछ समय तक विश्राम करना पड़ा। रात को बहुत देर बाद विमान कलकत्ता के लिए उड़ा और सूर्योदय के समय कलकत्ता पहुँचा। वहाँ नारद थेरो की अगवानी के लिए पंडितजी के गुरुभाई महानामजी भी उपस्थित थे। एक टैक्सी लेकर सभी ने मिलकर पंडितजी को डाबर हाउस पहुँचा दिया।

**कलकत्ता में चिकित्सा :** 26 मार्च को वे लिखते हैं—"चिकित्सा होने लगी। चलने की ताकत पैरों में नहीं मालूम होती है।" कुछ दिन उनको कलकत्ता में रहकर चिकित्सा करानी थी। डाबर हाउस में उनके लिए सब प्रकार की व्यवस्था कर दी गयी थी। मूत्र में चीनी की अधिकता के कारण उनका दिमाग भी इस समय ठीक से काम नहीं कर रहा था। यद्यपि वे डाबर हाउस के एक विशाल कक्ष में थे, किन्तु समझ रहे थे कि डाक्टर के घर में ठहरे हुए हैं। अशोक बाबू तथा उनके माता-पिता ने पंडितजी की चिकित्सा के लिए बहुत अच्छी व्यवस्था कर दी थी। 27-28-29-30 मार्च को पंडितजी को इंजेक्शन लगते रहे। खून, पेशाब की जाँच हुई। पंडितजी अब दार्जिलिंग जाने के लिए उत्सुक हो रहे थे। अशोक बाबू ने कहा कि कमलाजी को बुला देंगे, तब आप जायेंगे। परन्तु पंडितजी ने यह कहकर मना कर दिया कि वे अकेले ही यात्रा कर सकते हैं। उनका मन उस समय डाँवाडोल हो रहा था—घर (दार्जिलिंग) जायें या कुछ और दिन रहकर इलाज करवायें कलकत्ता में।

उपरिलिखित पत्र (26.3.61) के द्वारा हमें पंडितजी के कलकत्ता पहुँचने की सूचना मिली थी। हम परेशान थे और उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी कलकत्ता से 29 तारीख का भेज़ा हुआ उनका तार मुझे 31 मार्च को सबेरे मिला। तार में लिखा था–29, Calcutta Kamala Sankriatyayan, Darjeeling. "BODY STRONG FLYING ON DOCTORS ADVICE ATTEND AMBARI WITH TAXI"--RAHULA. वे 31 मार्च को दार्जिलिंग आ रहे थे। तार के मुताबिक मुझे टैक्सी लेकर उनको रिसीव करने आमबाड़ी विमानस्थल पहुँचना था, पर तार तो उसी दिन सुबह मुझे मिला था, अब टैक्सी लेकर जाऊँ भी तो वे कहीं रास्ते में क्रास हो जायें या मिलें ही न। बड़ी फिक्र होने लगी। 31 मार्च को उनकी तबीयत थोड़ी बेहतर हुई। सुबह कलकत्ता से चले थे। कोई परिचित साथी नहीं। मैं आमबाड़ी नहीं पहुँच सकी थी। क्या हाल होगा उनका। मैंने घर के लोगों को अलग-अलग रास्ते पर खड़ा होने के लिए भेज दिया। न जाने वे किस रास्ते से आयेंगे। कोई मोटर स्टैण्ड पर प्रतीक्षा करने गया, कोई एलिस विला के पास गाड़ी के रुकने की जगह पर। मैं स्वयं पाँच कोठी से राजभवन को जानेवाली सड़क के मुँह के पास प्रतीक्षारत थी। साढ़े 10 बजे के करीब मैंने दूर से देखा, राजभवन के फाटक के पास से वे एक कुली के साथ धीरे-धीरे उसी सड़क की ओर उतर रहे हैं, जहाँ मैं खड़ी थी। वे अपना घर भूल गये थे, पता भी भूल गये थे। कुली को भी मालूम नहीं था। किसी न किसी तरह वे राजभवन के फाटक के पास आये थे। वहाँ तैनात किसी सिपाही ने बतला दिया कि आप नीचे सड़क से चले जायें, शायद उधर ही कहीं आपका घर हो।

वे चल नहीं पा रहे थे। जैसे ही मैंने उनको देखा, दौड़ते हुए जाकर मैंने उनको अपनी बाँहों में थाम लिया। आश्चर्य हो रहा था कि वे कैसे यहाँ तक भी आ सके होंगे। चेहरा बिल्कुल हल्दी-सा पीला, दुर्बल शरीर, लड़खड़ाते पाँव। मैंने अपने आँसुओं को किसी तरह उमड़ने से रोका। एक व्यक्ति की सहायता माँगकर दोनों तरफ से उनकी बाँह पकड़ी और 'ग्रीन रीजेस' में ला पहुँचाया उनको। मैं सोच रही थी–'शरीर का यह हाल और आप सिंहल-सिंहल करते रहे।' घर आने के बाद बच्चों से मिलकर उनको शांति तो मिली, किन्तु शरीर तो रोगग्रस्त था। अतः सोचने लगे–'कुछ दिन कलकत्ता में रहकर इलाज करा लिया होता तो अच्छा रहता।"

## दार्जिलिंग निवास

**ग्रीन रीजेस (राहुल निवास) में :** 1 अप्रैल को वे लिखते हैं–"तबियत बेहतर है। कलकत्ते की दवा खा रहे हैं। कलकत्ता में दवाई करा लेनी चाहिए थी।" 2 अप्रैल, इतवार–"आज यहाँ दूसरा दिन है। अच्छा रहा। कलकत्ता चिट्ठी लिखना चाहता हूँ। अब कलकत्ता से जैसा सुझाव आये वैसा करना है।" अभी उनके स्वास्थ्य में कोई विशेष सुधार हुआ तो नहीं था, परन्तु पंडितजी को काम की चिन्ता होने लगी। 3 अप्रैल को उन्होंने डायरी में लिखा–"आज आनन्दजी की चिट्ठी आई, कुछ दूसरी भी। मई से डॉ. पृथ्वीनाथ शास्त्री को बुलाकर काम (धर्मकोश का काम) शुरू कर देने की आज्ञा सम्मेलन से माँगनी होगी। कुछ किताबें आ जाने पर 'अ' अक्षर तो आरम्भ किया जा सकेगा।" 4 अप्रैल को लिखते हैं–"आज राष्ट्रपति का आदमी सचिव की ओर से स्वास्थ्य के बारे में पूछने कलकत्ता से आया था। कलकत्ता के डाक्टर के बारे में लिख दिया।"

5 अप्रैल–"आज आनन्दजी ने कई चिट्ठियाँ लंका से लौटाईं। विश्वकोश (धर्मकोश) में हाथ लगाते हैं, जितना कर सकें। ठीक है। बच्चों के भविष्य के बारे में निश्चिंत हूँ, इसलिए जीवन से भी।" 6 अप्रैल को वे लिखते हैं–(मूत्र में) "चीनी ज्यादा हो गई। कलकत्ता की चिकित्सा से काम नहीं हुआ। डायबिटिज़ की गोली ली। प्रयाग में फिर से परीक्षा करके चिकित्सा करानी होगी। यदि सहयोग धारिणी (पत्नी) का मिला तो स्वास्थ्य चिन्ताजनक नहीं होगा, नहीं तो जीवन की कामना दुष्कामना मात्र है। इतना ही देखना है कि बच्चों का भविष्य निश्चिंत हो जाये।"

काम की चिन्ता भी पंडितजी को लगी हुई थी, क्योंकि खाली बैठने की उनकी आदत नहीं थी। इसलिए 7 अप्रैल को लिखते हैं–"कोई काम नहीं। काम के बारे में लिखा आदाता (रिसिवर, सम्मेलन) को, निजी सहायक दे दें तो काम शुरू कर दूँ।"

हमारे घर के सामने बड़ा-सा आँगन है। पंडितजी अब यहीं घास (लॉन) पर थोड़ा-थोड़ा टहलने लगे। 9 अप्रैल को उनकी 68वीं वर्षगाँठ थी। उस दिन राधामोहन (वकील) जी सपत्नीक आये और श्री लालजी भी सपत्नीक आये। छोटा भोज हुआ। रविवार का दिन था, सबकी छुट्टी थी। "नेहरूजी भी दार्जिलिंग आये हैं। कमजोरी बहुत मालूम होती है। अब उससे निराशा नहीं होती। प्रियजनों पर भार ही तो बनना पड़ेगा।"

राहुलजी के स्वास्थ्य के बारे में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को चिंता थी। उन्होंने अपने छः अप्रैल के पत्र में राहुलजी को लिखा :

*राष्ट्रपति भवन,*
*नई दिल्ली*
*अप्रैल 6, 1961*
*चैत्र 16, 1883 शक*

*प्रिय श्री राहुलजी,*

*कल पश्चिम बंगाल के राज्यपाल के उपसचिव ने मेरे सचिव को फोन करके बताया कि आप 24-3-61 को कलकत्ते आ गये और वहाँ एक दिन ठहरकर दार्जिलिंग गये। यह जानकर खुशी हुई कि आप भारत आ गये। राज्यपाल के उपसचिव ने यह भी बताया कि उनको पता लगा है कि आपका स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है।*

*कृपा करे मुझे सूचित करें कि आपकी तबीयत अब कैसी है। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने तक चिकित्सा करानी चाहिए। जहाँ भी रहकर आप चिकित्सा कराना चाहेंगे, आप करा सकते हैं और उसका प्रबन्ध किया जा सकता है।*

*मैं आज रात को उत्तरप्रदेश तथा पंजाब के कुछ स्थानों के दौरे पर जा रहा हूँ और 13-4 को वापस आऊँगा।*

*आपका,*
*राजेन्द्र प्रसाद*

*श्री राहुल सांकृत्यायन,*
*ग्रीन रिजेज़, 22 कचहरी रोड,*
*दार्जिलिंग।*

पंडितजी का दिमाग हर समय उड़ता रहता था। उनका स्वभाव भी बहुत चिड़चिड़ा-सा हो गया। हर समय मरने की बात, बच्चों के भविष्य की चिन्ता। हमारे समझाने का भी कोई असर उन पर नहीं होता था। कभी-कभी तो चिन्ता की हद हो जाती थी। जैसे उनको लगता था कि मुझको (कमला को) जिन्दगी में कभी नौकरी नहीं मिलेगी, कमला को भविष्य की चिन्ता नहीं है अन्यथा वह उनके साथ श्रीलंका ही में बस जाती आदि-आदि। तथाकथित मित्रों के पास मेरी शिकायत भी लिखते थे। पर मैं समझती थी कि जो मैं कर रही हूँ, ठीक ही कर रही हूँ। उनके बिना लम्बा जीवन विदेश में कैसे बिताऊँगी, बार-बार उखड़-उखड़कर बच्चों के साथ कहाँ-कहाँ भटकती फिरूँगी। सुदूर भविष्य तो सामने है ही, वर्तमान के बारे में भी तो सोचना था। जब मैं सिंहल की चर्चा से चिढ़ जाती तो उन्हें लगता कि कमला को दार्जिलिंग के घर का बड़ा मोह है। खैर, वे चाहे जैसा सोचते, मुझे तो उनके प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करना ही था। चिकित्सा कहाँ करायें, वे कैसे ठीक होंगे, यह चिन्ता मुझे भी तो खाये जाती थी। इस समय बुढ़ापे में उनको कमाने के लिए सिंहल जाने की कोई बाध्यता नहीं थी। मुझे सदैव दार्जिलिंग में ही बने रहने का कोई आग्रह नहीं था। काम के सिलसिले में अन्यत्र भी तो जाने के लिए तैयार थी, पर विदेश में जाना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं था, क्योंकि पंडितजी की जैसी शारीरिक स्थिति थी, उससे यह तो लग ही रहा था कि अब उनके जीवन की अवधि बहुत लम्बी नहीं है। इसलिए भी शेष जीवन में मैं उनसे स्वदेश में ही रहने का आग्रह कर रही थी। ऐसा करके मैंने कोई अपराध तो नहीं किया था। परन्तु हाँ, पंडितजी की सोचने की शक्ति भी शायद क्षीण होती जा रही थी। तभी

तो मेरी बात को वे नहीं समझ पाते थे और अपनी ही जिद पर अड़े रहते थे। परिणाम, घर में आकर भी प्रसन्न नहीं थे।

खैर, पहला काम था उनका डाक्टरी इलाज। 10 अप्रैल को वे स्थानीय प्लान्टर्स अस्पताल की लेडी डाक्टर मिसेज पेटर्सन से स्वास्थ्य के बारे में सलाह लेने गये। उस दिन बात नहीं हो सकी। डाक्टर स्वयं बीमार थी। पंडितजी का गुर्दा स्वयं प्रभावित हो रहा था, कोलम्बो-कलकत्ता का तजर्बा तो देख लिया था। दिल्ली में दिखा लेना चाहिए। नहीं तो मास्को में भी परीक्षा करानी चाहिए। 11 अप्रैल को वे लिखते हैं–"जयवर्धन आये। गुर्दा चिन्ता की बात है। जोशी (पी. सी.) को लिखते हैं, देखें क्या सलाह देते हैं। अभी तो कोई आशाजनक तरीका नहीं मालूम होता। शरीर की दुर्बलता मन की दुर्बलता भी प्रकट करती है।" 12 अप्रैल–"कुछ नहीं लिखा अभी, सिंहल से महत्वपूर्ण लेख नहीं आये। यहाँ रहने से ही मन उखड़ गया है।"

23 अप्रैल को–"डाक्टर पेटर्सन घर पर आईं दो बजे। 37 रुपया उनकी फीस देनी पड़ी। डाक्टर पेटर्सन दवा करेंगी, यद्यपि चिकित्सा थोड़ी महँगी होगी। शायद एक या दो दिन अस्पताल में रहना हो। उससे परीक्षा में सुविधा होगी, परसों जाना है। आज भतीजे उदयनारायण पाण्डे सारनाथ से आये देखने, वह दो दिन यहाँ रहेंगे। अभी आदाता की चिट्ठी नहीं आई प्रयाग से। काम शुरू करना है।"

## दार्जिलिंग के प्लान्टर्स अस्पताल में

14 अप्रैल को पंडितजी लिखते हैं–"कई चिट्ठियों का जवाब दिया। आनन्दजी को भी लिखा। राष्ट्रपति, तिवारीजी, रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री आदि को पत्र लिखे। उच्च रक्तचाप, गुर्दा बिगड़ना और चीनी की शिकायत (मधुमेह) है।"

15 अप्रैल को डॉ. पेटर्सन द्वारा बुलाये जाने पर पंडितजी प्लान्टर्स अस्पताल में पहुँचे। डाक्टर से उन्होंने कहा–"हम अस्पताल में रह सकते हैं।" उन्होंने कमरा दे दिया और वे भरती हो गये। जाँच होने लगी पेशाब की ही। अभी रक्त की जाँच नहीं हुई।

16 अप्रैल–"कल इन्सुलिन इंजेक्शन दिया। कमला अस्पताल में 9 से 11 बजे तक रही। उदयनारायण कल बनारस जायेंगे।

चीनी का नियंत्रण पेशाब में और रक्त में और उच्च रक्तदाब की रोक हो जाये तो (घर) जाना होगा। ऐसे चिररोग में जीने की इच्छा केवल जया-जेता के लिए ही होती है।"

17 अप्रैल–"अस्पताल ही में श्वास और शर्करा, रक्तचाप पर नियंत्रण कर लिया। अभी कुछ दिन और रहना है। चौखम्बा की रायल्टी ही आई 114 रुपया 13 नये पैसे की। अशोक बाबू को चिट्ठी लिख दी यहाँ (अस्पताल में) रहने के बारे में। क्या उपाय किया जाय यही सोच रहा हूँ। कमला का यहाँ रहना ठीक नहीं है।"

18 अप्रैल–"आज चौथा दिन है। शर्करा, रक्तचाप पर नियंत्रण पा लिया है।

"राजेन्द्र बाबू की चिट्ठी 17 अप्रैल (दिल्ली से) की लिखी मिल गई।" पूरी चिट्ठी इस प्रकार है :

*राष्ट्रपति भवन,*
*नई दिल्ली*
*अप्रैल 17,1961*

*श्रद्धेय राहुलजी,*

*श्री पाई के नाम आपका भेजा 8 अप्रैल का पत्र देखने को मिला और उसके बाद 14 अप्रैल का पत्र भी आज देखने को मिला है। पहले पत्र को देखकर मुझे काफी सन्तोष हुआ कि आपका स्वास्थ्य सुधर रहा है किन्तु दूसरा पत्र देखकर पुनः चिन्ता हो आई है। डाक्टर मिसेज पेटरसन ने आपका अच्छी तरह से परीक्षण किया होगा,*

*उन्होंने क्या राय दी है, कृपा कर सूचित करियेगा। जब तक पूर्ण रूप से तवियत में फर्क न पड़ जाय तव तक चिकित्सा जारी रखें। मुझे भी अपनी तबियत के बारे में वरावर सूचित करवाते रहियेगा। यदि किसी विशेष प्रवन्ध की आवश्यकता हो, तो निस्संकोच लिखियेगा।*

*मैं ठीक हूँ।*

*आपका,*
*राजेन्द्र प्रसाद*

*श्री राहुल सांकृत्यायन,*
*21 कचहरी रोड,*
*दार्जिलिंग*

जब पंडितजी अस्पताल में थे, उस समय दार्जिलिंग के राजभवन में तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ. बी. सी. राय आये हुए थे। उनके साथ अन्य मंत्रियों सहित डी. पी. आई. (Director of Public Instruction) डॉ. धीरेन बोस (या घोष) भी आये हुए थे। मुझको (कमला को) राजभवन के दफ्तर में उन्होंने बुला भेजा, मेरी नौकरी के सम्बन्ध में इंटरव्यू लेने के लिए। अन्य बातें पूछने के बाद डी. पी. आई. ने प्रश्न किया—"क्या राहुलजी पहले कभी सोशलिस्ट पार्टी में थे ? क्या उनका बाबू जयप्रकाश नारायण से सम्बन्ध था ?" मुझे इस बारे में विशेष जानकारी नहीं थी। मैंने ऐसा ही उत्तर दिया और कहा कि वे तो साम्यवाद के समर्थक हैं। बस डी. पी. आई. को उत्तर मिल गया। तब पश्चिम बंगाल में भी कांग्रेसी शासन था और डी. पी. आई. भी कांग्रेसी सरकार के आदमी थे। एक कम्युनिस्ट पुरुष की स्त्री को भला नौकरी क्यों मिलती ? मुझे सरकारी कॉलेज में नौकरी नहीं मिली, अन्य कॉलेजों में तो उस समय रिक्त स्थान नहीं था। नौकरी न मिलने की बात से पंडितजी और चिन्तित होते जा रहे थे, चिन्ता के साथ-साथ उनका चिड़चिड़ापन भी बढ़ता जा रहा था। मेरी हालत दयनीय थी। वे किसी प्रकार भी खुश नहीं होते थे, बस, 'लंका चलो, लंका चलो' करते रहते। मेरी कठिनाइयों की ओर जरा भी ध्यान देने को तैयार नहीं थे। हाँ, पंडितजी शारीरिक तौर से स्वस्थ होते तो मुझे उनके साथ लंका जाने में कोई एतराज नहीं था। मैं सोचती थी और यह सोचने का मेरा अधिकार था कि लंका जाकर उनको कोई आराम नहीं मिलेगा। अस्वस्थ तो हैं ही, अनिष्ट की आशंका भी बनी हुई थी। चाहे कुछ हो उनको अपने देश, अपने घर-परिवार में ही रहना चाहिए। कुछ संवेदनशील मित्रों की ओर से भी उनको अनुरोध किया जा रहा था कि वे अब निश्चिन्त होकर अपने देश में रहें, शरीर को ज्यादा कष्ट न दें। परन्तु पंडितजी पर मित्रों के अनुरोध का भी कोई असर नहीं पड़ रहा था। 'लंका, लंका और लंका' यही रटते रहते थे। भविष्य की बात को कौन जानता है, परन्तु जो होना है वह होकर रहता है। जिन मित्र की मित्रता के वशीभूत होकर पंडितजी सिंहल में बसना चाहते थे, उन मित्र को भी सिंहल की राजनीतिक परिस्थिति के कारण सिंहल छोड़कर भारत आना पड़ा। भारत में वे जहाँ रहे, वहाँ भी उनके नवदीक्षित चेलों ने उन्हें चैन से नहीं रहने दिया। यहाँ तक कि उस समय विद्यालंकार और विद्योदय का अस्तित्व भी मिट गया था। अब मालूम नहीं कि इन विश्वविद्यालयों का फिर से अस्तित्व बना या नहीं। यह पंडितजी के निधन के कुछ ही समय बाद की घटना है। यदि हम उस समय पंडितजी की जिद के आगे घुटने टेक देते तो हम उनके साथ जाते ही, पर पंडितजी के न रहने पर लंका में हमारी क्या स्थिति होती ? जैसी उन्होंने लंका के बारे में सुखद आशाएँ रखी थीं, जैसा सुन्दर सपना देखा था, क्या वैसा सचमुच ही साकार होता ? उस समय मेरी लंका न जाने की घोषणा से उनको बड़ा क्रोध आता था। मुझ पर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए वे लंकानिवासी अपने अतिप्रिय मित्र को मेरे बारे में लिखा करते थे। आज पंडितजी के नये-नये जीवनी-लेखक पैदा हुए हैं। जिन्होंने पंडितजी के सामने खड़े होने का भी साहस नहीं किया था, वही आज आँखों से देखे की तरह वर्णन करते हैं। ऐसे रक्षक के रूप में भक्षक लोग, मित्र के रूप में भेड़िए लोग पहले समाज के सामने अपना मुखौटा तो खोलें, अपना नकाब तो उतारें, तब राहुलजी की जीवनी लिखने बैठ जाएँ। राहुलजी को दार्जिलिंग का समाज कतई पसन्द

नहीं था, इसलिए वे लंका जाना चाहते थे।' यदि राहुलजी को दार्जिलिंग का समाज, याने नेपाली समाज पसन्द नहीं था तो उसी समाज में जन्मी-बढ़ी एक स्त्री की बाँह उन्होंने क्यों पकड़ी ? क्या उनको और सभ्य समाज की स्त्री नहीं मिल सकती थी ? इन तथाकथित राहुल-भक्त भेड़िये से तो यहाँ के निम्नकोटि के समाज के लोग कहीं ज्यादा अच्छे हैं, जो कम से कम अपनी माँ-बहनों के प्रति सुरक्षा की दृष्टि तो रखते हैं, संकट की घड़ी में सहायता तो देते हैं। जो व्यक्ति ऐसा लिख सकता है, उससे भी मैं प्रश्न करती हूँ कि तुम्हारे सभ्य समाज ने कौन-से भले काम किये ? तुमने ही कौन-सा भला काम किया ?

आज पंडितजी जीवित होते तो मैं यही कहती कि पंडितजी, आपने बहुत कुछ देख-परखकर ही कमला का चुनाव किया था। आप अपने मन और इच्छा के स्वामी और समर्थ पुरुष थे। आपको किसी 'गार्जियन' की क्या आवश्यकता थी ?

ओह, मैं तो पंडितजी के बारे में लिख रही थी। अब आगे की बात।

19 अप्रैल, 1961 : प्लान्टर्स हास्पिटल, दार्जिलिंग, पंडितजी लिखते हैं–"आज स्वास्थ्य पूर्ववत्। दवाई देते रहे। डाक्टर पेटर्सन आशावादी हैं। 20 वर्ष आयु बढ़ाने की बात कह रही थीं। कमला आई सबेरे भी, शाम को भी। अब शक्ति बढ़ रही है।"

20 अप्रैल : "शरीर पूर्ववत् है। खून का विश्लेषण भी हो गया। कल फिर रक्त निकालकर विश्लेषण करेंगे। बीच में सप्ताह-भर के लिए घर जाकर फिर सप्ताह-भर के लिए आयेंगे। शाम को लाल साहेब (कप्तान लाल) आये अपने मित्र के साथ मिलने। कमला बच्चों के साथ पहिले ही आई थी।"

21 अप्रैल–"खून की परीक्षा की गई, शुगर नार्मल से थोड़ा ही अधिक है। पेशाब की शर्करा भी नियंत्रित, रक्तचाप थोड़ा अधिक है।

आज सम्मेलन (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) को कमला ने भी लिखा : काम कराना है या नहीं। पंडितजी लंका जाने की बात कर रहे हैं। न काम कराना हो तो वही बेहतर है। शायद कमला भी चलें अब के। नहीं, तो जबर्दस्ती नहीं करेंगे। वह जहाँ चाहें रहें। उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखना होगा। बच्चों के भविष्य का उन्हें भी ख्याल है। आखिर हम बहुत दिनों तक सँभाल भी तो नहीं सकते। स्थायी रूप से सिंहल लौटना पड़ा और कमला भी साथ रहें तो बीस वर्ष तो अवश्य जी जायेंगे, फिर बच्चे भी पढ़ जायेंगे। कमला को भी वहीं अच्छा काम मिल जायेगा।

गंगा (कमला की छोटी बहन) आई कालिम्पोंग से।"

## प्लान्टर्स अस्पताल से घर आगमन

कुछ दिन डाक्टर पेटर्सन के निरीक्षण में रहकर पंडितजी कुछ स्वास्थ्य-लाभ होने का अनुभव करने लगे, तो उनको घर ले आने के लिए मैं हास्पिटल पहुँच गई। प्लान्टर्स अस्पताल चायबागान के मालिकों तथा कर्मचारियों के लिए बनाया गया था और उसमें डुअर्स और दार्जिलिंग के चायबागान के रोगियों को ही रखा जाता था, यहाँ का चार्ज भी काफी महँगा था, पर डाक्टर बड़े कुशल और स्पेशलिस्ट रखे जाते थे। डाक्टर मिसेज पेटर्सन भी ऐसी ही कुशल डाक्टर थीं, साथ ही रोगियों के प्रति उनका व्यवहार भी बहुत अच्छा रहता था। वे पंडितजी को देखने कई बारे हमारे घर भी आई थीं। उन्हीं के और डाक्टर पेम्बा के प्रयत्न से पंडितजी को उस अस्पताल में रहने को जगह मिली थी। अब तो प्लान्टर्स अस्पताल में अन्य रोगियों का भी इलाज होता है। इस अस्पताल से एकदम पास ही में क्लबसाइड मोटरस्टैण्ड है, जिसकी वजह से दुर्बल और अशक्त रोगियों के लिए वाहन की सुविधा सदैव मिलती है।

22 अप्रैल को पंडितजी लिखते हैं–"कमला 12 बजे से पहिले आईं। अस्पताल से 9 बजे ही छुट्टी मिल गई थी। भोजन और दवाइयों की सूची दे दी। थोड़ी दूर टैक्सी से जाकर फिर घर पहुँचे पैदल।

ताकत बढ़ी है, पर पूरा इत्मिनान नहीं है, जैसे पराये शरीर पर भरोसा करना पड़ता है। इन्सोलिन और दूसरी दवाइयों के खोराक के भरोसे रहना है, बहुत परवशता अनुभव होती है। बच्चों की शिक्षा आदि की

निश्चिन्तता हो जाये। फिर जीवन भार ढोने से क्या लाभ ?

सम्मेलन का काम टाँय-टाँय फिस्स मालूम होता है। फिर तो सिंहल जाना होगा। कमला पर जबर्दस्ती जाने के लिए कहना नहीं है। यदि यहाँ रहने में सुख है तो यहीं रहने देंगे। बच्चे भी रहेंगे। रुपये उनके लिए भेजते रहेंगे। दवा-भोजन की व्यवस्था सिंहल में करनी होगी।"

**ग्रीन रीजेस (राहुल निवास) में :** 23 अप्रैल–"आज ठीक समय पर दवा खाना नहीं हुआ। अभी घूमने की शक्ति भी नहीं। शरीर का भार बढ़ना भी अच्छा नहीं।"

24 अप्रैल–"आनन्दजी की चिट्ठी आई। अभी कोई किताब नहीं भेजी। अब आये होंगे वे कोलम्बो। बीमारी ने बड़ी परतंत्रता लाद दी, खाने-पीने सब चीजों की। शरीर भी स्ववश नहीं।

महापरमबाहु लेख आज साप्ताहिक में छपा। सभी लेख आ जाते तो किताब महल के पास भेजते।"

25 अप्रैल–"औषधि यथाक्रम और यथासमय ले रहे हैं। कहीं बाहर घूमने नहीं गये। यदि कोई फोड़ा हो गया तो बुरा होगा। और तो चल जायेगा। तिब्बती हिन्दी कोश के बारे में कृपलानीजी को लिखना है। आनन्द को पत्र लिखा।"

26 अप्रैल को पंडितजी बड़ी व्याकुलता के साथ लिखते हैं–"श्री रामप्रताप त्रिपाठी के पत्र से मालूम हुआ कि 'धर्माचार विश्वकोश' सरकारी सहायता के बल पर होनेवाला था, सो सरकारी अनुमति नहीं मिली। अब आशा भी नहीं हो सकती। फिर क्या सिंहल फिर जाना होगा ? कोश के काम के लिए प्रयाग जाना पड़ता। औषधि-भोजन का विधान हो ही जायेगा। फिर सिंहल में उसके अनुसार रहा जा सकता है। कमला को गरमी असह्य हो सकती है। उसको कष्ट हो ऐसा कोई काम नहीं करना है। 150 रुपया मासिक देने पर ऐसा व्यक्ति मिल जायेगा जो भोजन आदि में सहायता करेगा, पर अपनों से अलग रहना सुखकर तो नहीं होगा, पर दूसरा चारा ही क्या ? सिंहल से रुपये तो भेज सकेंगे। आनन्दजी को जल्दी ही सूचित कर देंगे कि पुस्तकें वहाँ से भेजें या न भेजें।"

दार्जिलिंग, घर, 27 अप्रैल–"पूर्ववत् पथ्य-उपचार। लाल साहिब से रात को देर तक भिन्न-भिन्न विषयों पर बातचीत हुई।"

28 अप्रैल–"आज जेता अपनी माँ के साथ कालिम्पोंग गये 2 बजे दोपहर को। कल आ जायेंगे। उस वक्त वर्षा हो रही थी। अमरकीर्ति (अमरसिंह) सिंहल पहुँच गये, मेरे आने के बारे में पूछ रहे हैं।"

29 अप्रैल–"थोड़ी वर्षा हुई, बादल रहा। कमला आज नहीं आई, कल आयेगी। दवा जया समय पर दे रही है।"

30 अप्रैल–"आज भी वर्षा नहीं, पर बादल रहा। कमला 2 बजे बाद कालिम्पोंग से आई। हम दोपहर से पूर्व पाँच कोठी सड़क (कचहरी रोड) तक टहलने गये। थक गये। अभी चढ़ाई-उतराई नहीं कर सकते।"

## मई 1961

अब पंडितजी शरीर में थोड़ी-थोड़ी शक्ति का अनुभव कर रहे थे, इसलिए पैदल चलने का अभ्यास बढ़ाने लगे। 1 मई को वे लिखते हैं–"आज मई दिवस। आज विटामिन इन्जेक्शन नहीं लगा। बाकी सारे औषधि का सेवन किया। सबेरे कम्पनी बाग (विक्टोरिया पार्क) तक टहलने गये।" 2 मई–"विटामिन इन्जेक्शन आज लगा। आज वर्षा नहीं हुई, हम चौरस्ता तक टहलने गये।" मैं उनको अकेले जाने नहीं देती थी। उनके साथ मैं और जया-जेता भी होते थे। परिवार को साथ लेकर घूमने में उनको बुरा नहीं लगता था और वे प्रसन्न हो जाते थे।

3 मई को वे लिखते हैं–"श्री केदारमान व्यथित (नेपाल के प्रतिष्ठित कवि) आये। कविता सुनाई। नेपाल के बारे में उन्होंने बतलाया कि राजा महेन्द्र की तानाशाही चल रही है।" 4 मई–"सबेरे नाश्ता करके घूमने गये। चौरस्ता के आगे दूर तक गये। चलने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए।" 5 मई को वे लिखते हैं–"डाकखाने के आगे तक सबेरे घूमने गये, शाम को चौरस्ते तक गये।" डाकखाने के आगे तिब्बत से आये हुए पंडितजी के पुराने परिचित लोग रहते थे। वहाँ की एक महिला साक्या दामो से पंडितजी की भेंट हुई। उन्हीं के बारे

में वे लिखते हैं–"साक्या दामो तिब्बत में अत्याचार की सुनी-सुनाई बातें दोहरा रही थीं। रमाशंकर प्रसाद एम. एल. ए. मिले थे। लाल साहेब के यहाँ भी थोड़ी देर रहे।

शाम को कमला के साथ घूमने गये। चौरस्ता में बहुत अधिक यात्रियों की भीड़ देखी। थोड़ी मेहनत पड़ती है, पर घूम लेते हैं। अमरकीर्ति समझते हैं हम लंका लौटेंगे।"

6 मई को भी पंडितजी सबेरे दो मील से आगे तक घूम आये। अब उनके पैरों में थोड़ी ताकत आ रही थी। उन्होंने उस दिन लिखा–"नेपाली भाषा को हटा बंगला रखने का यहाँ प्रयत्न है, जिसका लोग विरोध कर रहे हैं। 478 रुपया आठ दिन का अस्पताल का बिल आया। 60 रुपया रोज। चार्ज 60 रुपया रोज बहुत है, पर दूसरा कोई अस्पताल ही वैसा नहीं है।" 7 मई को वे तीन मील के करीब घूमने गये। कल अस्पताल फिर जायेंगे।

8 मई–"आज अस्पताल बुलाया था, पर वहाँ से पत्र न आने के लिए आया, इसलिए नहीं गये। यहीं मूत्र-परीक्षा करके यदि चीनी न हो तो जाने की जरूरत नहीं मालूम होती। कमला का बर्ताव किसी निर्णय पर न पहुँचने देने का मालूम होता है। अस्तु।"

**इच्छापत्र :** पता नहीं क्या सोचकर पंडितजी ने ऐसा इच्छापत्र लिखा ? उन्होंने शायद मई 8 को ही यह लिखा था, जो इस प्रकार है–

इच्छापत्र

*हृदयरोग और तीव्र मधुमेह ने जीवन को अत्यन्त दुर्वह बना दिया है। और जीने का प्रयास करने पर अपने को ही नहीं, अपने आत्मीयों को बहुत कष्ट होगा। इसलिए इस जीवन का अंत ही श्रेयस्कर मालूम होता है। कमला और बच्चों के लिए रायल्टी के रुपये जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त होंगे। मैं किसी के प्रति दुर्भाव न रखते हुए यह कार्य करता हूँ।*

*ह. राहुल सांकृत्यायन*

*मई 1961*

वे इतने जटिल रोग के रोगी थे, पर बार-बार फिर विदेश (लंका) जाने की बात करते रहते थे। घरवालों को उनकी जिद पर झुँझलाहट होती थी। इसलिए जब मैंने सिंहल जाने के बारे में विरोध किया तो उनको गुस्सा आ गया और गुस्से में वह अपना अनिष्ट करने के बारे में सोचने लगे। तभी उन्होंने ऐसा इच्छापत्र लिखा, जिसे मैंने उनके मरणोपरान्त देखा। लगता था, जैसे-जैसे उनके जीवन का अंत नजदीक आ रहा था, वैसे-वैसे ही वे निराश और क्षुब्ध रहने लगे थे। उनका वह शांत स्वभाव अब चिड़चिड़ेपन में बदल चुका था। ऐसे में घरवालों को बहुत भुगतना पड़ता है, सो मैंने भी भोगा।

8 मई को उन्होंने 'अवन्ती' तथा 'तिब्बत और सिंहल' शीर्षक दो लेख लिखे। अब जब अस्पताल से सूचना आयेगी, तभी जायेंगे। 10 मई को पंडितजी लिखते हैं–"शाम को घूमने पोस्ट ऑफिस तक गये। डाक्टर पेटर्सन मिल गईं। कल आने के लिए कहा। कल जो सिंहल-तिब्बत और अवन्ती जनपद पर लेख लिखे–पहिला हिन्दुस्तान साप्ताहिक में और दूसरा 'मध्यप्रदेश संदेश' में जायेगा। आकर तीन-चार लेख और लिखूँगा। लोगों की भीड़ चौरस्ते पर रही। अंग्रेजों की परतंत्रता गई, पर उनकी उद्भावित मानसिक दासता अब भी है।" वे 11 मई को डाक्टर पेटर्सन से मिले। उन्होंने पंडितजी को दूसरे दिन अस्पताल आने के लिए कहा।

## फिर प्लान्टर्स हास्पिटल में

12 मई को पंडितजी फिर प्लान्टर्स नर्सिंग होम में दाखिल हो गये। डॉ. मिसेज पेटर्सन बहुत अच्छी चिकित्सक थीं। उन्होंने ही पंडितजी को अस्पताल में रहने की सलाह दी थी। आज से फिर पंडितजी के शरीर का चेकअप शुरू हुआ। पहले खून का विश्लेषण किया, पता चला पहले से कोई अधिक विकार नहीं हुआ है। वे खाली बैठे रहनेवाले जीव तो नहीं थे। अस्पताल में बैठकर दो 'लेख' लिखे और पत्रों में भेज दिये। (लेख के शीर्षक

नोट नहीं किए) बाकी समय में वे किताबें पढ़ते रहे।

13 मई को मिस्टर पेटर्सन मिले जो (अंग्रेजी के) अच्छे लेखक भी हैं। वे तिब्बत के खाम प्रदेश में रह चुके थे, इसलिए वहाँ की बोली जानते हैं। उनकी किताबें राजनीतिक और सामाजिक हैं, अर्थात् चीन-विरोधी और तिब्बती सामन्त-पक्ष की।

"कल 8-10 बजे सबेरे घर चले जायेंगे।"

14 मई–आज सुबह मैं उनको अस्पताल से घर ले आई थी। वे लिखते हैं–"आज कुछ नहीं लिखा, न घूमने गये। दवा और इन्जेक्शन लेते रहे। आज रविवार होने के कारण डाक भी नहीं आई" और डाक के न आने से पंडितजी को कुछ भी अच्छा नहीं लगता था।

15 मई को मौसम अच्छा देखकर मेरे आग्रह पर सिनेमा हाल में 'लाल किला' देखने गये। फिल्म उनको अच्छी नहीं लगी। कहने लगे–"फिल्मवालों ने इतिहास का कचूमर निकाल दिया।" बहादुरशाह जफर को लालकिले के भीतर 'लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में' गाते हुए जब दिखाया गया तो पंडितजी उठ खड़े हुए और मुझे भी उठाया और घर को चल दिये। इन्टरवल होने से पहले ही वे उठ के चल पड़े थे।

इधर पंडितजी एक और मकान लेने के बारे में गम्भीरता से सोच रहे थे। पैसा हमारे पास उतना नहीं था, इसलिए वे सेठ जेठमल भोजराज से कर्ज लेना चाहते थे। (बाद में जेठमल भोजराज की कम्पनी और बैंक दिवालिया हो गया) मैंने कर्ज लेने की बात पर मना किया, फिर भी वे इसके लिए प्रयत्न करने लगे। पुराने इंजीनियर साहेब बी. के. सरकार अभी दार्जिलिंग में ही थे। पंडितजी 15 मई को उनके यहाँ मिलने गये। सरकार साहेब कूचबिहार राज्य की प्रापर्टी में से एक मकान लेकर दार्जिलिंग में रह रहे थे। सरकार साहेब राहुलजी के लिए 30-35 हजार रुपये का एक मकान ठीक कर रहे हैं। मुश्किल है हम 22 हजार ही जमा कर सकते हैं। और के लिए इस मकान (ग्रीन रीजेस) को बेचना होगा। आठ कमरों का दो मंजिला मकान है। 3 कमरा रखकर बाकी 2000 वार्षिक किराये पर चल सकता है।

16 मई (घर में)–आज से श्री जसवन्तलाल चौधुरी की जीवनी (कप्तान लाल) लिखनी शुरू की। कुमार जसवंतलाल की माता कोचीन की श्वेत यहूदी थीं। आज सबेरे सुरगांग (तिब्बत के एक सामन्त) से मिलने गये, उनकी पत्नी मिली। मंगोल गेशे (पंडित प्रमाणशास्त्री) घर तक पहुँचाने आये।

"कल राज्यपाल कुमारी पद्मजा नायडू ने मिलने के लिए बुलाया है, कमला को भी। आजकल बंग मंत्री लोग यहाँ आये हुए हैं।"

17 मई को वे लिखते हैं–"राज्यपाल से मिलने 10 बजे गये कमला के साथ। आधा घंटा बातें होती रहीं। दोपहर बाद श्री यशवन्तलाल की जीवनी लिखी। पंचन बाबू (पूर्णिया के वकील) मिले। यहाँ चश्मे की दुकान के पीछे ठहरे हुए हैं। सैलानियों की भीड़ है आजकल। भाषण-स्थल पर बंगाल सरकार की नेपाली विरोधी नीति के खिलाफ वक्ता घंटों बोलते रहे। आज से जया की तिमाही परीक्षा है। जेता की शुक्रवार से होगी।"

18 मई (घर में) "घूमने गये श्री विनयकुमार सरकार के घर तक (गाँधी रोड)। कूचबिहार के घर की बात हुई। यदि इस मकान का (ग्रीन रीजेस) 25 हजार मिल जाये तो उस मकान को ले सकते हैं। बड़ा ही मौके का है। अपने लिए रखकर सात हजार सालाना किराया आ सकता है।" उत्थीद्वते विलीयेते दरिद्रणां मनोरथ। "... आज भी यशवन्तलाल की जीवनी लिखी। पुस्तक का नाम होगा–'कुमार यशवन्तलाल : अहिन्दू माता के हिन्दू पुत्र की जीवनी'। (पर नाम 'कप्तान लाल' रखा गया)। अब 1942 में आ गये हैं। अभी 18 वर्ष और लिखना है। यदि यह लिख लिया तो राजा साहेब (यशवन्तलाल के पिता) की जीवनी लिखने की उत्सुकता खतम हो जायेगी।"

19 मई को पंडितजी परिवार के साथ चौरस्ता तक टहलने गये। आज उन्होंने लाल साहेब की जीवनी नहीं लिखी। 20 मई को भी वे चौरस्ता तक टहलने गये। शाम को सिंहजी (डाबर हाउस के) आये लड़कों को यहाँ से छुट्टियों में कलकत्ता ले जाने के लिए। आज अशोक बाबू के पुत्र आनन्द और चचेरे भाई हमारे

यहाँ ही रहे। लाल साहेब की जीवनी आज लिखी। आज ही राष्ट्रपतिजी की चिट्ठी आई। पटना में काम के लिए शिक्षामंत्रीजी को लिख रहे हैं। हम दोनों के लिए। राष्ट्रपतिजी का पत्र इस प्रकार है :

*राष्ट्रपति भवन,*
*नई दिल्ली*
*मई 18, 1961*

*श्रद्धेय राहुलजी,*

*आपका 12 मई का पत्र मिला। मैं बिहार के शिक्षा मन्त्री को एक पत्र लिख रहा हूँ और आपने जो कुछ अपने पत्र में लिखा है उसके बारे में उनसे पूछ रहा हूँ कि क्या स्थिति है और वह इस सम्बन्ध में क्या कुछ कर सकते हैं। उनका उत्तर आने पर आपको सूचना दूँगा।*

*आपके पत्र से यह भी मालूम हुआ कि आप जब गत बार अस्पताल में थे तो उसका खर्चा 60 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से आपसे चार्ज किया है। पिछले दिनों डॉ. विधानचन्द्र राय से आपके सम्बन्ध में पत्र द्वारा मेरी चर्चा हुई थी और उन्होंने मुझे लिखा था कि आपके लिए चिकित्सा की व्यवस्था हो जायगी, अतः मैं निश्चिन्त हो गया। अभी क्या स्थिति है, लिखियेगा। आपसे सूचना मिलने पर जो कुछ व्यवस्था हो सकेगी, कराने का प्रयत्न करूँगा, आप चिन्ता न करें।*

*आपका स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है, यह जानकर प्रसन्नता हुई।*

*आपका,*
*राजेन्द्र प्रसाद*

*श्री राहुल सांकृत्यायन,*
*21 कचहरी रोड,*
*दार्जिलिंग*

21 मई को बनारस से श्री कोमलचन्द्र जैन आये। वह पंडितजी के निरीक्षण में शोधकार्य करना चाहते थे, इसी सम्बन्ध में मिलने आये थे। इन्होंने जब पंडितजी विद्यालंकार में थे, तभी से पत्र-व्यवहार उनके साथ किया था। पर पडितजी को दूसरे मकान की धुन सवार थी। 22 मई को वे बी. के. सरकार के पास गये। 46 हजार का मकान उन्होंने ठीक किया है। "हम 22 हजार का प्रबन्ध कर सकते हैं। शेष 1963 तक रुपये हो सकते हैं। देखें। कमलाजी मकान के बारे में अनुत्सुक हैं।" 23 मई को जौनसार-देहरादून के छपे फार्म आये। सारे नहीं आये, कुछ तो कोलम्बो भेजे गये थे। अगले तीन दिन पंडितजी लाल-चरित लिखकर मुझ से टाइप कराते रहे। 27 को वे "सरकार महाशय के यहाँ गये। दूसरा मकान कूचबिहार का ठीक कर रहे हैं। पर 40 हजार से ऊपर तक लगेगा। पैसे की चिन्ता बनी हुई है।" 28-29 मई को भी उन्होंने लाल-चरित के अंश लिखकर टाइप करवाया। कोमलचन्द्रजी आज चले गये। 30 और 31 मई को पंडितजी घूमने गये। इसलिए लाल-चरित लिखाने का काम नहीं हो सका। 31 मई को राजा साहब पृथ्वीचन्द्र लाल से भेंट हुई। मिलनसार मालूम हुए। शाम को वे श्री यशवन्तलाल के साथ सरकार महाशय के यहाँ गये, देर तक बातें होती रहीं। सिलहट के राजकुमार (लाल साहेब के साले) के लिए लड़की ठीक कर देंगे सरकार महाशय। अग्रिम देने पर वे लाल-चरित राजपाल एंड सन्स को दे देंगे। (बाद में यह पुस्तक राजपाल से ही प्रकाशित हुई।)

## जून 1961

1 जून को पंडितजी अपने बच्चों–जया और भैया (जेता) को लेकर सरकार महाशय के घर तक घूमने गये।

शनिवार को कर्सियांग जाने के लिए उन्होंने चिट्ठी लिख दी। 2 जून को वे लिखते हैं–"रात भर वर्षा होती रही। दिन में थम गई। घूमने गया। जयपुर के तरुण डाक्टरेट के इच्छुक आये। खसिया (खासी) पर अनुसन्धान करना चाहते हैं। आनन्दजी के पास I, II, III बार पुस्तकें भेजने की चिट्ठी भेज दी। रजिस्ट्रार (विद्यालंकार युनिवर्सिटी) की चिट्ठी आई। छुट्टी लेना चाहते हैं। नवम्बर 1962 तक की छुट्टी ले लें।

श्रीनिवास अग्रवाल, किताब महल, अगस्त में 5 हजार रुपया भेजेंगे, एक किश्त और देंगे।"

## खरसांग में

3 जून को 10 बजे सबेरे खरसांग गये मोटर से। "दोनों बच्चों और हम दोनों का 6 रुपया किराया लगा। वहाँ पानी बरसने लगा। कमला जाना नहीं चाहती थी। वही Inferiority Complex. श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवालजी का घर बिल्कुल अपने घर-सा लगा। वहीं भोजन और चायपान हुआ। मधुमेह के अनुकूल स्वादिष्ट भोजन मुझे मिला। बच्चों को मिठाइयाँ और फल मिले। बाजार में घूमने गये। पीछे वर्षा बन्द हो गई। पाँच बजे के बाद वहाँ से प्रस्थान कर रात को घर पहुँचे। श्री जनार्दन चतुर्वेदी (पुष्परानी हाई स्कूल के हिन्दी अध्यापक) ने सारा प्रबन्ध किया था। तुलसी-जयन्ती के लिए निमंत्रण दे दिया है। जायेंगे।

डाक्टर उदयनारायण तिवारी की चिट्ठी से मालूम हुआ कि सम्मेलन की धर्माचार विश्वकोश योजना बनी है, हो जाने की सम्भावना है। मैं स्वीकार कर लूँगा। यदि जायसवाल संस्थान की माँग आये तो सोचना पड़ेगा। दोनों को आधा-आधा समय देंगे। तब यहाँ का मकान लेना निश्चय हो जायेगा।"

8 जून को वे कहीं नहीं गये। जयपुर के पी-एच. डी. के उम्मीदवार आये। "खसिया (खासी) आसाम पर काम करना चाहते हैं, गये भी वहाँ। पर, मैंने सलाह दी, किसी ने काम किया होगा, दूसरा विषय लें।"

अब पंडितजी नियमित रूप से टहलने जाते थे। 6 जून को वे टहलते हुए सरकार महाशय के यहाँ गये। यदि किताब महल 6 हजार रुपया भेज दे तो मकान आधा ले लेंगे। लाल साहब के प्रति सरकार साहब का अच्छा प्रभाव है। 7 जून को वे लिखते हैं–"आज सरकार साहब के यहाँ हम दोनों (कमला और पंडितजी) गये। मकान की बात चली। उधार लेना पड़ेगा। यदि कमला इन्कार करती है तो मकान का ख्याल छोड़ देंगे।" कमला ने भी कर्जा लेकर नये मकान खरीदने की बात को अस्वीकार कर दिया। कर्जा लेने पर चुकाना भी तो होगा, फिर कर्जा चुकाने के लिए रुपये कहाँ से आयेंगे। रहने के लिए एक छोटा मकान है ही, इसी से गुजारा कर लेंगे। यह बात समझाने पर पंडितजी की समझ में आ गई। इसलिए फिर, मेरे साथ दूसरा मकान लेने की चर्चा उन्होंने नहीं की।

8 जून को वे लिखते हैं–"घूमने गये कैपिटल सिनेमा हॉल तक। भीड़ बहुत है। जौनपुर के रामलगनसिंह एम. एल. सी. आये, जौनपुरवासी और जमशेदपुर के ठाकुरदास मिलने आये–कूचबिहार का मकान 36 हजार में मिले तो आधा ले लेंगे। वैसे ठीक दाम करना है। कूचबिहार के मकानों की आयु बीत चुकी है।"

मकान का खब्त अभी तक पंडितजी पर सवार था। 9 जून को उन्होंने लिखा–"सरकार महाशय के पास कमला और बच्चों के साथ गये। 35 हजार में मकान ठीक करने की कोशिश कर रहे हैं। आधा हमें देना होगा। रुपये का प्रबन्ध करना है। 20 जून को लगातार वर्षा होने के कारण घूमने नहीं जा सके। कमला माहिली और हरि (बहन और भाई) के साथ अंग्रेजी फिल्म देखने गई बरसात में 8 बजे के समय में।"

दिवोदास और सिंहल के वीर पुरुष की पाण्डुलिपियाँ सम्मेलन प्रेस में भेज दीं। श्रीनिवास को 6000 रुपया भेजने के लिए लिखा। देखें, क्या करते हैं। 'दिवोदास' में तीन अध्याय और जोड़ देना है–किरात परिगृहीत पीतकेश बालक, अबाला सेना और अंतिम युद्ध। प्रूफ नजदीक होने पर भेजेंगे। 'धर्मों के अत्याचार' तीसरी पुस्तक भी श्रीनिवास को देनी है।

11 जून को भी पंडितजी और लाल साहब सरकार महाशय के घर तक टहलने गये। लाल साहब के साथ वार्तालाप करना उनको अच्छा लगता था। 12 जून को अधिक वर्षा के कारण वे टहलने नहीं गये। आज बड़ी मुश्किल से 'नेपाल' की पाण्डुलिपि उन्हें मिल गई। पटना के मोहनलाल बिश्नोई ने वर्षों तक इस पाण्डुलिपि

को अचार बनाकर रोके रखा। कलकत्ता के डॉ. पृथ्वीनाथ शास्त्रीजी के प्रयत्न से यह पाण्डुलिपि अब पंडितजी के हाथ लगी। इस पुस्तक को अन्यत्र छपाने के लिए पंडितजी ने बहुत प्रयत्न किये। उनके निधन के बाद मैंने भी बहुत प्रयत्न किये, एक-दो प्रकाशक के पास इसे भेजा भी, पर देर तक रखकर इसे लौटा दिया। अब दिल्ली से छपने की आशा है।

13 जून—"सरकार महाशय के यहाँ तक घूमने गये। मकान में तीन आदमियों का भाग करने को कहते हैं। दो तक हो सकता है। अच्छा तो अकेला ही होता है, नहीं तो झगड़ा हो सकता है। वैसे तीन भाग होने पर 12 हजार रुपयों के कुछ ऊपर होगा। दो भाग में 18-18 हजार लगेगा। यदि श्रीनिवास ने 6000 रुपया भेज दिया तो उधार लेना नहीं पड़ेगा।" पंडितजी अगले दो दिन (14-15 जून) वर्षा के कारण टहलने नहीं जा सके। वैसे उनको टहलने का अभ्यास हो गया था और इस क्रम को रोकना नहीं चाहते थे, पर दार्जिलिंग की बरसात को क्या करें। अब वे समय को खाली जाने नहीं देना चाहते थे, अतः 'नेपाल' की पाण्डुलिपि को देखने लगे।

16 जून को उन्हें पता चला कि श्री देवप्रिय (महाबोधि सभा, कलकत्ता) हृदयरोग से बीमार होकर स्नोह्वाइट होटल में ठहरे हैं। शाम को वे मिलने गये। चलना-फिरना उन्हें मना है, बाजार के रास्ते निचले रास्ते से लौटे। एक बार तो रास्ता ही भूल गये, उस वक्त वर्षा नहीं हो रही थी। 17-18 जून को भी पंडितजी बाहर घूमने गये। वे प्रायः शाम को चले जाते और दिन में लिखने-पढ़ने का काम करते रहे। फिर बरसात के कारण 18-20 जून को वे टहलने न जा सके। स्थानीय बौद्ध विहार के भदन्त आर्यदेव आगामी पूर्णिमा में पंडितजी को विहार आने के लिए कह गये। न्यू एज (New Age) और आत्माराम (दिल्ली) किताबों की बात कर रहे हैं। 'जीवन-यात्रा' शायद आत्माराम को दे दें।

21 जून को पंडितजी लिखते हैं—"टहलने नहीं गये। तीनों बड़ी किताबों के लिए आत्माराम और किताब महल से बात हो रही है।" शायद आत्माराम को दे दें। 27 जून—"चिट्ठियाँ लिखीं। घूमने गये कान्वेन्ट तक। बाबू ईश्वरशरण (वकील) और कुछ स्त्री-पुरुष छपरा के आये। छपरा भी जाना होगा। यहाँ से पूर्णिया, फिर छपरा, तब बनारस जाना होगा। यदि कमला नहीं जाना पसन्द करेगी तो, मैं ही अकेला जाऊँगा। लाल साहेब की जीवनी उनके साथ दोहरा रहे हैं। जीवित जीवनी में ऐसा ही होता है। दूसरे की रुचि का भी ख्याल करना होता है। आत्माराम ने भी पुस्तकों के बारे में पूछताछ की है।"

दार्जिलिंग में वर्षा जोर से होती है। परन्तु 24 जून को पंडितजी वर्षा में भी बाहर निकले। वे सेठ जेठमल भोजराज के बारे में पुस्तक लिखना चाहते थे। सेठजी का बैंक उस समय दार्जिलिंग में भी था। अतः वे बैंक मैनेजर श्री देवीदयाल सुखाणी के पास मिलने गये, उन्होंने सेठजी की जीवनी में सहायता देने का आश्वासन दिया। अगले छः दिन (25-30 जून) पंडितजी वर्षा के कारण घूमने न जा सके। इन दिनों घर में ही रहकर वे 'दिवोदास' के अगले अध्यायों को लिखते रहे। अब उनके स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ था। यहाँ गरमी की परेशानी नहीं थी, इसलिए भी शरीर फुर्तिला रहता था उनका। मधुमेह के लिए इन दिनों इन्सुलिन इन्जेक्शन की जगह गोलियों का सेवन कर रहे थे। तीन महीने दार्जिलिंग में अपने घर में वे रहे, बच्चे साथ में थे, मैं उनके साथ थी। इसलिए पंडितजी को काम करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। पर बीच में फिर लंका का प्रश्न आ गया। उनको जाना ही था। जाने की तैयारी होने लगी।

# 9
# श्रीलंका के लिए पुनः प्रस्थान

## जुलाई 1961

पंडितजी अब पुनः सिंहल जाने की तैयारी कर रहे थे, इसलिए पुस्तकों के संशोधन का काम शीघ्रता से निबटा देना चाहते थे। घर में लोग उनसे मिलने आया करते थे। वे मित्रों के लिए भी समय देते, बच्चों के लिए भी। इस प्रकार तीन महीन गुजरते देर न लगी। कल 30 जून से ही मैं अस्वस्थ थी। आज 1 जुलाई को मेरा ज्वर कुछ कम हुआ। संतोष की साँस ली, दस्त भी कुछ ठीक हुआ। आज 'दिवोदास' का अंतिम अध्याय लिख डाला। कल उनको घर से प्रस्थान करना था लंका के लिए।

**कलकत्ता में–2 जुलाई, रविवार :** सुबह के जल-पान के बाद सात बजे पंडितजी एयर कैरियिंग कारपोरेशन (Air Carrying Corporation) कम्पनी के आफिस गये। वहाँ से कम्पनी की गाड़ी से आमबाड़ी विमान स्थल के लिए रवाना हुए। मैं उनको रास्ते तक विदा करने नहीं जा सकी, क्योंकि तबियत खराब हो जाने के कारण उन्होंने ही मुझे बिस्तर से उठने नहीं दिया। मुझे बुरा लग रहा था, पर क्या करती, लाचार होकर रोते हुए मैंने उनको विदा किया था। वे अकेले ही यात्रा में चल पड़े। सिलीगुड़ी में उनको घंटे-भर से अधिक रुकना पड़ा। फिर आमबाड़ी (जलपाइगुड़ी के पास) विमान स्थल पर गये। वहाँ से विमान 2 बजे उड़कर 4 बजे के करीब कलकत्ता पहुँचा। वे डाबर भवन में चले आये।

"आज संस्कृत सम्मेलन का प्रथम दिन था। साथ हो कोई, तभी जा सकते हैं। रात को नींद आ गई।"

कलकत्ता, 3 जुलाई–"राजेन्द्र बाबू से सबेरे 11.40 पर मिलने गये। स्वस्थ हैं। अब रहेंगे सदाकत आश्रम (पटना) में। आधा घंटा बात होती रही। वहीं डाक्टर सत्यनारायण सिन्हा भी मिल गये। चीन के खिलाफ लोहा ले रहे हैं, कांग्रेस एम. पी. हो जाने की उम्मीद है। वहाँ से Mahabodhi होते मित्रालय (बंगला प्रकाशक) के यहाँ गये पर मुलाकात नहीं हुई। महादेव भाई और पृथ्वीनाथ शास्त्री मिले। आज 'दिवोदास' देख डाला, कल भेज देंगे। टीके की जरूरत होगी, कल ले सकेंगे।"

4 जुलाई–"सेठ लक्ष्मीनारायण सुखाणी के यहाँ गये। सेठ जेठमल के बारे में जो उन्हें मालूम है, सब बतलायेंगे। उनके साथ कोई कागज नहीं है। लौट के आकर लिखेंगे, कह दिया।

'न्यू एज'(New Age) (कालेज स्क्वायर) चले आये। 'हिमाचल प्रदेश' को देखकर निश्चय करेगा। रायल्टी हमने, 20 प्रतिशत से कम नहीं होगी, कह दिया। इन्जेक्शन लगाया।" 5 जुलाई–"आज कहीं नहीं गये। कमरे के भीतर रहे। बड़े डाक्टर से दिखलाकर प्रस्थान करने का दिन निश्चित होगा। यही अशोक बाबू की राय है। मद्रास में एक-दो दिन रहना होगा, क्योंकि इन्जेक्शन के बाद पाँच दिन पूरे होने चाहिये। मद्रास में एक-दो दिन रहकर अम्बालालजी से भी बात कर लेंगे। लंका से लौटने पर मद्रास में रुपयों की जरूरत होगी।"

"कल तो कहीं घूमने जाना होगा। दिन काटना मुश्किल हो जाता है।"

6 जुलाई को वे लिखते हैं–"बुध को कोलम्बो जाने का टिकट ले लिया। कह दिया कि सोमवार को यहाँ से जायेंगे। अब तीन दिन बीच में काटने को रहे। जाने की भी शक्ति उतनी नहीं है। शाम को कुछ लोग आ गये जिनके साथ 3 घंटे कट गये।" 7 जुलाई–"कहीं-कहीं घूमने का मन करता है, पर साथी बिना जा नहीं सकता, मोटर पर भी। यदि मद्रास में परिचित नहीं मिले तो होटल में रह जायेंगे। अब रोग का परिणाम मालूम होता है। कमला को चिट्ठी लिखी। अम्बालालजी को भी। अब रहने का मन बिल्कुल नहीं करता। एकांतता गला घोंट रही है। बस यही अकेले यात्रा है, फिर मृत्यु तक अकेले नहीं जायेंगे। बहुत तकलीफ होती है।"

8 जुलाई को पंडितजी कलकत्ता ही रहे। बाहर घूमने भी नहीं जा सके। कल उनको यहाँ से मद्रास के लिए प्रस्थान करना था। दार्जिलिंग में थे तो लंका जाने के लिए व्यग्र रहते थे, मेरे मना कर देने पर वे नाराज होते और मुझको रुला भी देते थे। यद्यपि उनको दुःख होता था, पर हमारे सामने लंका प्रश्नचिह्न बनकर खड़ा हो जाता था। अब जब वे परिवार से दूर जा रहे थे, तो उनको हमारी बहुत याद आती थी, बेचैनी होती थी। इसलिए जैसे वे हम लोगों से बात करने के लिए व्याकुल रहते, इसी व्याकुलता को शान्त करने के लिए वे मुझे बराबर पत्र लिखते थे। कलकत्ता में रहकर उनकी दिनचर्या कैसी रही, किससे मिले, कहाँ-कहाँ गये, उनकी शारीरिक और मानसिक अवस्था कैसी रही, इन सबका विवरण उन्होंने मुझे लिख भेजा। इन पत्रों से उनकी उन दिनों की मनःस्थिति पर प्रकाश पड़ता है। अतः उन पत्रों को मैं पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ–

कलकत्ता से लिखे हुए पत्र–

[1]

*कलकत्ता*
***3-7-61***

*प्यारी,*

*कल 4 बजे के करीब कलकत्ता ठीक से पहुँच गया। कल दो सम्मेलन में नहीं गया। आज इस वक्त चिट्ठी पौने दो बजे दिन को लिख रहा हूँ। सम्मेलन में जाऊँगा, यदि राकेशजी आ गये।*

*आज राष्ट्रपति से पौने बारह बजे मिले। अच्छी तरह बात हुई। कल पटना जायेंगे, वहाँ फिर तुम्हारे बारे में कहेंगे।*

*हमें आज Vaccination आदि ले लेना चाहिए।*

*प्रकाशक कल मिलने आयेंगे। तिब्बती कोश दिखलाने के लिए लाये। उसकी मूल कापी के लिए भी सीलोन जाना जरूरी है।*

*मजबूरियों के साथ जा रहा हूँ। एक ही दिन में विमान से कोलम्बो पहुँच जाऊँगा, इसलिए कोई दिक्कत नहीं। डाक्टर आज जाँच करेंगे।*

*किताबों का पार्सल स्टेशन से मँगाकर देखना। उसमें नेपाल के फार्म हैं या नहीं। उसकी सूचना मुझे देना।*

*जया-जेता को प्यार। उन्हें गलती करने पर भी प्यार से समझाना। अंग्रेजी और गणित देती रहना।*

*मैं इसीलिए जा रहा हूँ कि जल्दी आकर बराबर के लिए तुम्हारे साथ रहूँगा। मुझे बड़ा दुःख होता है, जब देखता हूँ कि तुम्हें कष्ट देने का काम भी कर बैठता हूँ।*

*'दिवोदास' दुहरा रहा हूँ। आशा है कल किताब महल भेज सकूँगा। आज राजभवन और **Mahabodhi** होते यहाँ आया। खाना खाया। **Restinon** की गोली खाई। आज भी नींद अच्छी आई।*

*तुम्हें और वच्चों को देखनेवाले भी तुम्हारे बारे में पूछते हैं। 'लड़की बड़े अच्छे बर्ताव की है' कहते हैं। सालिंगन सचुम्बन,*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

[2]

कलकत्ता
3-7-61

प्यारी,

सबेरे चिट्ठी लिख चुका हूँ। अब आगे की सुनो। 11-40 बजे सबेरे राजेन्द्र बाबू से मिलने गये। स्वास्थ्य आदि के बारे में पूछा। कल पटना जा रहे हैं। राष्ट्रपति-पद से अवकाश प्राप्त करने पर वहीं रहेंगे। तुम्हारे बारे में पूछा और कहा—मैं वहाँ कहूँगा।

डाक्टर ने रक्तचाप देखा, बिल्कुल नॉर्मल। और तरह से भी देखकर कहा—यात्रा करने में कोई हर्ज नहीं। विमान या रेल से ? चाहे जिससे। सर्टिफिकेट में Typhoide की मियाद है पर कालरा की नहीं। आज टाइफाइड, पराटाइफाइड और कालरा की इन्जेक्शन आ गया, कल सबेरे आठ बजे दे देंगे। कार्पोरेशन आफिस से मुहर भी कल ही लग जायेगी। परसों हम यहाँ से जा सकते हैं। Checkup के बाद कुछ दिन और रोका है। इसलिए मद्रास जायेंगे, यदि दिन और कुछ रहेगा तो वहीं बितायेंगे।

'दिवोदस' आज देख लिया, दो शब्द भी लिख दिये। कल डाक से प्रयाग भेज देंगे। कल ही Press वाले आयेंगे। मैं चाहूँगा, कम से कम एक हजार अग्रिम पुस्तकों पर मिल जाये। 'नेपाल' का नहीं। देखें कल !

अग्रिम मिला तो तुम्हारे नाम से चेक करवा देंगे।

कल ही 8 बजे सबेरे जेठमल भोजराज के मालिक लक्ष्मीनारायण से भी मिलना निश्चित हुआ है।

शरीर बिल्कुल ठीक है, मन में फुर्ती है। आज महादेव भाई आये। रेल पर भी हरि और हमारे आने की प्रतीक्षा में गये थे। संस्कृत सम्मेलन कोई साथी न मिलने से नहीं जा सके।

जया को प्यार, जेता को प्यार। तुम्हें गाढ़ालिंगन और चुम्बन।

कल और आगे की बात लिखूँगा। कोई चिन्ता न करना। मैं लंका जा शीघ्रातिशीघ्र लौटूँगा। पृथ्वीनाथ शास्त्री जी से मालूम हुआ, शायद साहित्य सम्मेलन के विश्वकोश के लिए अनुदान मिल गया है।

तुम्हारा,
राहुल

[3]

कलकत्ता
5-7-61

प्यारी,

कल सूई लगवा ली। पाँच दिन बाद यहाँ से विमान से चल सकते हैं। 7,8 जुलाई को जाना होगा।

आशा है, तुमने 'श्वेत यहूदी' लेख हिन्दुस्तान साप्ताहिक में और 'लाल साहब की जीवनी' राजपाल को भेज दी होगी। हर वक्त तुम्हारा और बच्चों का ख्याल आता रहता है। अच्छा, यही अकेले रहने की वेला है। अब तो कहीं जाने पर साथ ही जायेंगे।

मेरे दोनों प्यारे बच्चों को टा-टा, बहुत-बहुत प्यार।

प्यारी को आलिंगन और चुम्बन।

आज तो जान पड़ता है सारा समय इसी कमरे में बीतेगा।

तुम्हारा,
राहुल

[4]

कलकत्ता
6-7-61

प्यारी,

आज पाँचवा दिन है। सूई लग चुकी है, टिकट लेना बाकी है। अशोकबाबू की ढिलाई से टिकट नहीं आ सका। मैं कोशिश करूँगा, परसों चला जाऊँ। यहाँ से मद्रास होते कोलम्बो।

हिमाचल के साइज को देखकर डर गया। आत्माराम को दिल्ली आज चिट्ठी लिखी है।

दिल नहीं लगता। मित्र आते रहते हैं।

जया-जेता को प्यार। प्यारी, तुम्हें गाढ़ालिंगन और चुम्बन बार-बार पहुँचे।

तुम्हारा,
राहुल

[5]

कलकत्ता
7-7-61

प्यारी,

दिन काटना मुश्किल हो रहा है। आज कह दिया, मद्रास जाने का हवाई टिकट रविवार के लिए मँगवा दीजिए। कहा तो मँगवा देंगे। देखें, यदि रविवार को जा सका तो मद्रास में सोम-मंगल भी रहना होगा। बुधवार को कोलम्बो का विमान पकड़ेंगे। तुम्हारे और बच्चों के बिना दिन काटना दुस्सह हो रहा है। अब के तो मजबूरी थी, फिर कभी नहीं आऊँगा-जाऊँगा।

राकेशजी और दूसरे मित्र आते रहते हैं, तो भी एकान्त अनुभव करता हूँ। पुस्तकें (पाण्डुलिपियाँ) यहीं छोड़कर जा रहा हूँ। आशा है, तुमने वहाँ से भेजनवाली चीजें यथास्थान भेज दी होंगी।

पंखे की बदौलत गरमी का कष्ट नहीं है। नींद भी इतनी कहाँ से आयेगी। ज्यादातर लेटा रहता हूँ।

सुनीति बाबू से मिल लेना है। उनको मालूम हो गया है, वह भी मिलना चाहते हैं।

जया प्यारी, अपने भैया को मारती है ? उसे प्यार करना नहीं सीखेगी ? जेता को भी कब अकल आयेगी मैंने उनके लिए लंका से जो पत्र लिखा था, उसे दुहरा टाइप करवा दो। प्रकाशक छाप देंगे। तुम अपनी कहानियो की भी प्रेस-कापी तैयार करा दो। वह भी छपवा देनी हैं।

बहुत समय लेटे-बैठते बीतता है। डर लगता है, इसलिए कमरे में ही घूम लेता हूँ। तुम्हारी कोई चिट्ठी नहीं मिली। शायद कल आ जाये तो मिले, नहीं तो लंका में ही मिलेगी।

ठंडे पानी से नहाने में मजा आता है। रोज सबेरे दाँतुवन करके नहा लेता हूँ। पैर फिसलकर गिरने का डर लगता है।

बच्चे स्कूल से आयें तो उनको कुछ पढ़ा देना चाहिये। गणित भी दे दिया करो। अम्मा अभी हैं कि चली गईं कालिम्पोंग ? कोई महत्वपूर्ण चिट्ठी हो तो लंका भेज देना। नहीं तो उसका मतलब लिख भेजना।

जया-जेता को प्यार। प्यारी, तुम्हें आलिंगन और चुम्बन पहुँचे।

तुम्हारा,
राहुल

[6]

कलकत्ता
8-7-61

प्यारी,

आज तुम्हारी पहिली चिट्ठी मिली। यह सुनकर संतोष हुआ कि 'तिब्बती कोश' पहुँच गया। यहाँ भी मैंने पाण्डुलिपि श्री कुलकर्णी के पास देख ली, उनके पास पाण्डुलिपि है। मैंने भूमिका भी दे दी। कागज मिलने में दिक्कत हुई और छापने में दिक्कत। अब कागज मिल गया है।

कल रविवार को (8 जुलाई) आठ दिन बाद यहाँ से मद्रास के लिए 10 बजे उड़ रहा हूँ। मद्रास में रवि, सोम, मंगल रहना होगा। वहाँ से विमान कोलम्बो ले जायेगा। Injection लगाने पर पाँच दिन रुकना पड़ता है। यहाँ अच्छा है। आज अशोक बाबू ने आग्रह करके खून-पेशाब की जाँच करवाई। डाक्टर कहते हैं—लंका से लौटने पर वह खूब जाँच करेंगे। फिर दवाई इन्जेक्शन बतलायेंगे। मैंने कहा—अच्छा। यहाँ राकेशजी बराबर मिलते रहे। सुनीति बाबू से टेलीफोन पर बात हुई। आज शाम को यहाँ आयेंगे मिलने।

ज्यादा पढ़ भी नहीं सकता। आँखें कमजोर हैं, दिन काटना मुश्किल हो जाता है।

ऊपर से तुम्हारा और बच्चों का ख्याल आ जाता है। जया को इन्फ्लुएंजा होगा। अच्छी हो जायेगी दो-तीन दिन में। बस यही दीर्घ विछोह है, आगे अब नहीं देर तक अलग रहूँगा।

जया-जेता को प्यार। प्यारी को चुम्बन-आलिंगन।

तुम्हारा,
राहुल

[7]

मद्रास
10-7-61

प्यारी,

कल दस बजे कलकत्ता से विमान से उड़े। यहाँ साढ़े तीन घंटे में पहुँच गये। अशोक बाबू ने अपने आदमी को तार दे दिया था, वह अड्डे पर ही मिल गये। अम्बालाल पटेल यहाँ नहीं हैं। उनके गुजराती भाई के घर ठहरे। 560 रुपये यहाँ रख जाने थे, सीलोन रुपये ले नहीं जा सकते थे। रुपये रख दिये। यहाँ से बुध को विमान से लंका जाऊँगा। उसी दिन विद्यालंकार पहुँच जाऊँगा। अशोक बाबू बहुत आगा-पीछा कर रहे थे। डाक्टर से दिखला लिया था, तो भी कहते थे कमलाजी को साथ ले जाते। मैंने उसे इस समय असम्भव बतलाया। खैर, अब तक की यात्रा खैरियत से गुजरी। बुधवार की भी खैरियत से गुजर जायेगी। लौटते समय आनन्दजी रहेंगे। इतनी चिन्ता नहीं रहेगी।

यह जगह मद्रास शहर से सात मील बाहर है, अडयार का भाग है। जाने-आने के लिए 16 मील का चक्कर काटना होगा।

आज सोम, कल मंगल की रात काटनी है। बुध को तो चले ही जायेंगे। तुम चिन्ता मत करना। जब तक यह चिट्ठी तुम्हारे पास पहुँचेगी, तब तक मैं लंका पहुँच जाऊँगा। मैं लिख चुका हूँ, अब कभी तुम्हारे बिना लम्बी यात्रा नहीं करूँगा।

जया-जेता को प्यार, प्यारी को चुम्बन, आलिंगन। शरीर ठीक है, बस घूमने का मन नहीं करता।

आशा है, डाक तुमने भेज दी होगी। यह जानकर संतोष हुआ कि तिब्बती कोश (बड़ा) वहाँ पहुँच गया। वैसे तिब्बती कोश की पाण्डुलिपि प्रेस में जा चुकी है। तीनों पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ सुधाजी के पास रख आया हूँ।

तुम्हारा,
राहुल

मद्रास में 8 जुलाई की डायरी में वे लिखते हैं—"9 जुलाई को सबेरे हवाई अड्डे तक अशोक बाबू आये। उड़कर कोई 12.30 बजे मद्रास पहुँच गये। के. एस. नाथ (डाबर एजेन्ट) मिले। अम्बालाल भाई का नौकर यतिराज भी एरोड्रोम में मिला। आर. बी. पटेल के यहाँ ठहरे। पत्नी और लड़की ने बहुत अच्छी तरह रखा।"

10 जुलाई—"आज यहीं अडियार में ही रहे। अडियार नदी समुद्र में गिरती है। पास में छोटा बाजार है। थियोसोफिकल सोसाइटी का हेडक्वाटर यहीं है। शाम को 1 रुपये में रिक्शा करके घर आये।" 11 जुलाई—"आज भी अडियार में ही दिन बीता, सोते-लेटे बीता।"

## पुनः श्रीलंका में

**विद्यालंकार, आवास कोलुपेटिया में :** 12 जुलाई (1961) को मद्रास में राहुलजी ने 550 रुपये का ट्रेवलिंग चेक ले लिया। दोपहर 1 बजे के बाद उनका हवाई जहाज कोलम्बो के लिए उड़ान भरनेवाला था। 2 बजे के बाद वे कोलम्बो पहुँचे। विमान-स्थल पर कापड़ियाजी (मगन भाई) तथा भदन्त आनन्दजी मौजूद थे। इस बार पंडितजी को ठहराने की व्यवस्था कोलुपेटिया में कापड़ियाजी के यहाँ की गई थी। यह प्रबन्ध आनन्दजी ने किया था, क्योंकि विद्यालंकार का भोजन पंडितजी के अनुकूल नहीं था। आज ही शाम को पंडितजी विद्यालंकार विश्वविद्यालय भी हो आये। डाक्टर ने उनकी जाँच करके देखा, रक्तचाप ज्यादा है। विद्यालंकार में नायकपादजी से वे मिले। डाक्टर ने उनके स्वास्थ्य के बारे में डरा दिया था। पर वे कहते हैं, "मुझे तो कोई उतना दिखाई नहीं पड़ता। नशा-सा बना रहता है। रक्तचाप का ही दोष है।"

पंडितजी को मालूम था कि उनके स्वास्थ्य के लिए मैं बहुत चिन्तित हूँ इसलिए वे मुझे बराबर पत्र द्वारा स्वास्थ्य के बारे में सूचनाएँ देते रहे। कोलम्बो पहुँचकर भी उन्होंने लिखा :

*कोलम्बो*
*13-7-61*

*प्यारी,*

*कल तीन बजे विमान से यहाँ पहुँच गये। श्री कापड़ियाजी और आनन्दजी एरोड्रोम पर पहुँचे थे। कोई तकलीफ नहीं हुई। पर डाक्टर ने कल भी और आज भी देखा। थोड़ा-सा रक्तचाप ज्यादा है। दवा खा रहा हूँ। कल युनिवर्सिटी जाकर मिल आया। 23 जुलाई तक मेरी छुट्टी है। 15 या 16 अगस्त को युनिवर्सिटी की छुट्टी होगी। उसी वक्त लौटना होगा। आनन्दजी मद्रास तक साथ जायेंगे। वहाँ रेल पर बैठाकर लौट आयेंगे। 30-32 दिन हैं, तुम्हें भी ज्यादा मालूम होगा, मुझे भी मालूम होगा। मैं कैसे ही काट लूँगा, तुम भी चिन्ता न करना। मैं अपने स्वास्थ्य का बराबर ध्यान रख रहा हूँ। कापड़ियाजी का पारिवारिक डाक्टर रोज देखने आ रहा है।*

*550 रुपये मद्रास में रख आया हूँ ट्रेवलर चेक के रूप में। जाते ही भुना लूँगा, इसलिए उसकी दिक्कत न होगी। मद्रास के डाबर के एजेन्ट ने बतलाया—10 दिन पहिले सूचित करें, नहीं तो जल्दी रिजर्वेशन नहीं मिलता।*

*जया का बुखार अच्छा हो गया होगा। वह पढ़ने जा रही होगी। भैया भी मन लगाकर पढ़ रहा होगा।*

*मद्रास से कलकत्ता फर्स्ट क्लास में आऊँगा या एयर कन्डिशन्ड में। आनन्दजी मद्रास से आगे नहीं जा सकेंगे क्योंकि सीलोन से खर्च नहीं मिलेगा। मद्रास तक रेल का आने-जाने का टिकट मिल जायेगा।*

*यहाँ वर्षा नहीं है। आज तो डाक्टर ने कहीं जाने को मना कर दिया है। कल विश्वविद्यालय जायेंगे। कल ही कोरन्टीन में भी जाना है। कापड़ियाजी ने अपने घर में रखा है। सारी व्यवस्था डाक्टर के कहे अनुसार हो रही है। मैं भी कहता हूँ, एक मास है, संयम से रहूँ, जिसमें 20-22 अगस्त तक दार्जिलिंग लौट आऊँ।*

*जया वेटी को पापा का प्यार। भैया को प्यार। खूब मन लगाकर पढ़ना, जिसमें दोनों क्लास में फर्स्ट आना। अम्मा-पापा को वहुत खुशी होगी। पापा चाहते हैं जया के लिए एक अच्छी गुड़िया और भैया के लिए एक रेल लायें।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

इस बार पंडितजी कोलम्बो के निकट ही कापड़ियाजी के घर में रहे, इसलिए उनको शहर घूमने में कठिनाई नहीं हुई। 13 जुलाई को वे गॉलफेस (समुद्र-तट) की तरफ घूमने गये। 14 जुलाई को वे विद्यालंकार में पढ़ाने गये। उन्होंने नायकपाद को कह दिया कि सप्ताह में तीन दिन क्लास रख लें। उनके अनुवादक प्रज्ञाकीर्तिजी भी रुग्ण और रक्तचापवाले हैं। पंडितजी के नये शिष्य अमरकीर्ति कुछ दिनों बाद वहाँ पढ़ाने लग जायेंगे, यह पंडितजी को भरोसा था। युनिवर्सिटीवाले पंडितजी के स्वास्थ्य को देखकर सप्ताह में दो ही दिन क्लास रखना चाहते थे, अतः उन लोगों ने पंडितजी को कह भी दिया।

15 जुलाई को वे डेरे पर (कापड़ियाजी के घर) ही रहे। उनसे मिलने श्री माणिकलाल पटेल सपत्नीक आये। अभी एक मास यहाँ प्रतीक्षा करनी है। चार दिन बाद वे मद्रास में होंगे। तीन दिन बाद कलकत्ता में। "कलकत्ता से किसी को साथ ले जायेंगे, यदि तबियत ठीक न रही तो।" पंडितजी को बीमारी के कारण अब अपने शरीर पर उतना भरोसा नहीं रहा, अकेले चलने में अब उन्हें कष्ट होने लगा था। 16 जुलाई को भी वे गॉलफेस में घूमने गये। उनके साथ अमरकीर्ति और कापड़िया दम्पती भी थे। लौटते समय वे श्री देवीदास शास्त्री के यहाँ गये। "वह ज्योतिषी और पुरोहित बन गये हैं। लड़के दो वकील हैं, एक एयरवेज़ के हैं, एक सरकारी नौकर। खूब दोस्ती रहती है। गवर्नमेंट का बहुत सुधार तो नहीं हुआ है। इस सप्ताह काटना है फिर जाने का नाम लेना है।" 17 जुलाई को वे लिखते हैं—"आज अमरकीर्ति आये। श्रीवास्तव-दम्पती दूतावास से आये। कल विद्यालंकार जायेंगे। बीतेगा दिन दर्द में ही।" उस दिन भी उन्होंने घर पत्र लिखा, जो इस प्रकार है :

*कोलम्बो*
*17-7-61*

*प्यारी,*

*बड़े धीरे-धीरे दिन बीत रहे हैं। चार दिन ही हुए, 29 दिन और बाकी हैं। मन नहीं लगता। कापड़ियाजी के यहाँ ठहरा हूँ। डाक्टर रोज देख लेता है। 16 अगस्त को प्रस्थान करने की सोच रहा हूँ। आनन्दजी मद्रास तक मेरे साथ आयेंगे। कोई तकलीफ न हो इसका सभी ध्यान रखते हैं। कल भी, परसों भी गॉलफेस मैदान में टहलने गये थे। वहाँ जाने पर याद आया बच्चों का आइसक्रीम का आग्रह। कल पुराने मित्र दास महाशय के घर में गये। मिलनेवाले आते रहते हैं। बात में मन लग जाता है। लगा रहता है। अनिद्रांतक वटी बहुत नींद लाती थी। आज कहा, मत लीजिए। इन्सोलिन भी डाक्टर ने बन्द कर दिया। वैसे ऐसे ही चल रहा है।*

*प्यारी, हर वक्त तुम्हारा ख्याल आता है। इस सप्ताह बाद यहाँ से भारत के लिए प्रस्थान, एक सप्ताह बाद मद्रास से कलकत्ता। चार दिन तक कलकत्ता। फिर तुम्हारे पास 22-23 अगस्त तक आ जाऊँगा। यहाँ कुछ पढ़ने का मन नहीं करता, न देखने का। कल से प्रति सप्ताह तीन बार विद्यालंकार जाया करूँगा।*

*राजेन्द्र बाबू को चिट्ठी लिखने को कहा था, आज चिट्ठी लिख रहा हूँ। जया-जेता मेरे प्यारे बेट्टों को प्यार। मेरी प्यारी को आलिंगन-चुम्बन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

18 जुलाई को उन्होंने लिखा—"कभी देवीदास, कभी आनन्दजी, कभी अमरकीर्ति और कभी जगन्नाथ शर्मा आ जाते हैं मिलने।"

19 जुलाई को पंडितजी यहीं कापड़ियाजी के घर के अहाते में घूमते रहे। वे कल ही विद्यालंकार से अपना सामान ले आये थे। 20 जुलाई, यहीं थोड़ा घूमते रहे, दिन काटना मुश्किल है। अभी वे कोई विशेष काम या लिखना-पढ़ना भी नहीं कर सकते थे।

21 जुलाई को वे विद्यालंकार गये और कक्षा में पढ़ाया। उनके साथ अमरकीर्ति भी गये थे। उन्होंने

लिखा—"अमरकीर्ति की प्रतिभा और अध्यवसाय पर मैं प्रभावित हूँ।" 22 जुलाई को वे कहीं नहीं गये। श्रीवास्तव-दम्पती (दूतावास से) और जगन्नाथ शर्मा उनसे मिलने आये। लोगों का आना उनको बहुत अच्छा लगता था। 23 जुलाई को भी वे कोलम्बो में ही रहे, घूमने भी कहीं नहीं गये। भदन्त आनन्दजी उनसे मिलने आये। अब मंगल को ही वे विद्यालंकार जाया करेंगे। सेनाविरत्न के साथ शाम को पंडितजी गॉलफेस घूमने गये। उनसे बातें हुईं। सेनाविरत्न की सहायता से वे सिंहल-लोककथाओं को नागरी में लिखेंगे। 24 जुलाई को भी वे शाम 7 बजे गॉलफेस घूमने गये और 8 बजे लौट आये। आज उनको कमला का 20-7 का लिखा पत्र मिला। "पहिला पत्र यहाँ आया मिला। शाम को अमरकीर्ति आये। परसों सेनाविरत्न और श्रीवास्तव आयेंगे।"

25 जुलाई, मंगलवार को वे खाने के बाद विद्यालंकार गये। नायकपाद प्रज्ञारामजी से वहाँ अमरकीर्ति के बारे में उन्होंने सिफारिश की। उन्होंने लिखकर पक्का कर लेने के लिए कहा। फिर अमरकीर्ति के साथ वे कोलम्बो लौटे। 19 अगस्त को जाना (भारत) निश्चित हो गया है। 26 जुलाई को उन्होंने दर्जन के करीब चिट्ठियाँ लिखीं। 20 जुलाई को वे लिखते हैं—"दो पाइलट फोन्टेनपेन लीं, बरसाती और दूसरे कपड़े भी लिये। दिन काटना मुश्किल हो रहा है। । अभी 23 दिन बाकी हैं, बीते हैं 16 दिन ही। लिखने का काम भी नहीं है, पढ़ने का भी नहीं है। हिरदारामानी के कपड़े के दो बहुत बड़ी दूकानें हैं। लड़की ने सिंहल वर को चुना है।" 28 और 29 जुलाई को वे कहीं नहीं गये। अमरकीर्ति आ गये थे, वर्ना पंडितजी के लिए दिन काटना मुश्किल हो गया था। 30 जुलाई को उन्होंने लिखा—"आज आनन्दजी सबेरे आये, कई घंटे रहे। अमरकीर्ति भी खाना खाकर आ गये। सेनाविरत्न मध्याह्न भोजनान्तर आ गये, शाम तक रहे। बातें होती रहीं। घूमने नहीं गये। कल-भर इस महीने का और है।" 31 जुलाई को भी वे घर पर ही रहे।

30 जुलाई के पत्र में उन्होंने लिखा था—"अब इस महीने का एक दिन और अगले महीने का 18 दिन और रह गया है। 19 अगस्त को चल दूँगा आनन्दजी के साथ, यह लिख चुका हूँ। दिन काटना मुश्किल हो जाता है, विशेषकर जब मित्र लोग नहीं आते। आज रविवार को आनन्दजी एक और सिंहल ऑफिसर मित्र और अमरकीर्ति प्रायः दिन-भर रहे। दिन अच्छी तरह कट गया। परसों अगस्त मास आरम्भ हो रहा है, जिसमें तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। पर 19 अगस्त को प्रस्थान करना दुस्सह मालूम होता है। आनन्दजी को 19 अगस्त को छुट्टी मिलेगी। परीक्षा हो जायेगी…।"

पहली अगस्त को पंडितजी विद्यालंकार गये और प्रज्ञाकीर्तिजी को अस्पताल में जाकर देखा। 2 अगस्त को वे लिखते हैं—"अमरकीर्ति ने निबंध के कुछ अंश को पढ़कर सुनाया। रोज सुनाया करें, यह कह दिया। देवीदासजी पहिले दो-तीन घंटा साथ रहे। बाद में बिजनौरी शर्माजी आये। फिर 8 बजे शाम को समुद्रतट (गॉलफेस) में रहे।" श्री अम्बालाल पटेल का पत्र आया, लिख दिया कि 19 अगस्त को चलकर 21 को हम दोनों (वे और आनन्दजी) मद्रास पहुँच जायेंगे। 3 अगस्त को वे टहलने गये। कोलम्बो बाजार भी चीजें लेने गये। 25 रुपये की टाइम पीस घड़ी ले ली थी, पर किसी ने उड़ा लिया। फिर दूसरी खरीद ली। इसे अपनी पाकिट में रखा। 10 कदम पर टैक्सी पकड़ी। उसी वक्त किसी ने बड़ी सफाई के साथ हाथ साफ कर दिया। बेचारे अमरकीर्ति के रुपये को भी हाथ से निकाल लिया था। उनको उपदेश दे रहे थे। हमको मालूम ही नहीं, हुआ। रुपया नहीं, टाइम पीस घड़ी समझकर जाकेट के बाहरी थैले जेब में रखा था। कोई देखता रहा होगा। दूसरी जेब में 170 रुपये थे, उस पर हाथ साफ नहीं किया। यहाँ के पाकेटमार बहुत चतुर होते हैं। यह मानना पड़ेगा। 3 अगस्त को वे टहलने नहीं गये, विशेष काम भी नहीं किया। अमरकीर्ति आये, उनके साथ निबंध के बारे में बातें कीं।

पंडितजी अस्वस्थ होते हुए भी कुछ और लिखने की योजना बना रहे थे। अपने लिए और दूसरों के लिए भी। किन्तु जो योजनाएँ उनके दिमाग में बन रही थीं, उनको पूरा करने के लिए अब जीवन अपर्याप्त हो रहा था। सिंहल में उनके निर्दर्शन में शोधकार्य करने के लिए शोधकर्ता उनके पास पहुँचे हुए थे। उनसे अपनी योजनाओं के बारे में वे चर्चा भी करते थे। 5 अगस्त को उन्होंने दैनन्दिनी में लिखा—"आज गॉलफेस (समुद्र-तट) में टहलने गये। दिन में ली महाशय से मिलने गॉलफेस होटल गये। शाम को जगन्नाथ शर्मा (उज्जयिनी)

आये। 'प्राकृत काव्यधारा' के काम को उन्होंने स्वीकार किया। कुछ कवियों के नाम हमने बतलाये। अश्वघोष, हाल से आरम्भ होगी।

अमरकीर्ति से निबंध के बारे में बात हुई। अभी उसे लिखना नहीं शुरू किया। कुछ लिख डालेंगे 19 अगस्त तक। मुझे 'सेठ सार्थवाह' पुस्तक लिखनी है, जिसमें सेठ जेठमल, कापड़िया, चंदलाल और दूसरे दो-तीन रहेंगे। छोटी-सी पुस्तक होगी।"

पंडितजी 'हिन्दी काव्यधारा' (अपभ्रंश) और 'संस्कृत काव्यधारा' ये दो विशाल ग्रंथ पहले ही लिख चुके थे। इसी क्रम में वे 'पालि काव्यधारा' भी तैयार कर चुके थे सिंहल में रहते ही, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी, अब 'प्राकृत काव्यधारा' तथा 'फारसी काव्यधारा' की भी योजनाएँ बना रहे थे, जो उनके जीवन में कार्यरूप में परिणत नहीं हो सका। सार्थवाह पुस्तक के लिए सिर्फ दो व्यक्तियों के बारे में लेख-भर ही लिख सके थे।

6 अगस्त को वे बाहर नहीं गये। आनन्दजी ने यहीं उनके साथ दोपहर का भोजन किया। शाम को अमरकीर्ति और जगन्नाथजी उनसे मिलने आये। सोच रहे थे वे, अब एक ही रविवार और आयेगा। उसके बाद के रविवार में तो वे भारत में होंगे। आज कापड़ियाजी के जीवन पर नोट लिखा। 7 अगस्त को उन्होंने कुछ नहीं लिखा। अमरकीर्ति भी आये। आज अशोक बाबू (कलकत्ता) और कमला का पत्र आया। 8 अगस्त को वे लिखते हैं–"पौन बजे के करीब गये विद्यालंकार। कल आनन्दजी टिकट लाये (रेल का)। माणिकलाल जी के पास गये। दो-तीन दिन में धरणीधर (माणिकलालजी का आदमी) आयेगा। शाम को शहर में हिन्दी सम्मेलन की बैठक में जाकर बोला। दूसरे लोग भी गये थे। बहुत जल्दी भूल जाता हूँ।" आज चाभी-ताला भूल गये, दरवाजा खुला रखकर ही चले गये।

9 अगस्त को भी पंडितजी 'गॉलफेस' टहलने गये। कोलम्बो में रहने की यही सुविधा थी। आनन्द जी आज फर्स्ट क्लास का टिकट लाये। मद्रास तक रिजर्वेशन के 90 रुपये लगे। देवेन्द्र ने लिखा एक दिन मदुरा में रहने को। किताबों के बक्स यदि लगेज में रख दें तो रह सकते। 20 को, 21 को मद्रास के लिए रवाना होंगे।

"पर मद्रास का रिजर्वेशन ले लिया है, नहीं उतरना होगा। मद्रास में मिलेंगे सौराष्ट्र बन्धुओं से। किताब का आज्ञापत्र परसों मिलेगा। छपी किताबों को ले जाने में इतनी दिक्कत। अब 9 रातें और कोलंबो में रहना है। यदि कस्टम करवालों ने घंटों खड़ा रखा तो बड़ी दिक्कत होगी, बुरी हालत होगी और बिना विशेष पत्र के वह होगा ही।"

10 अगस्त, "घूमने नहीं गये। 4 बक्स किताबों के बनाने होंगे। कल कापड़ियाजी के यहाँ मँगवाना है। चावला से बातचीत हुई। उनके ज्यादा सम्बन्धी अति गोरे हैं। दिन पर दिन कम-कम होता गया यह परिवार तो है। अमरकीर्ति आये, कुछ सुनाया। अपने ही निबंध लिखना होगा। 15 अगस्त को अंतिम बार विद्यालंकार जायेंगे। तरद्दुद होगा ही, जब तक गाड़ी रामेश्वरम् से आगे नहीं चली जाती। मदुरा उतरने का वचन नहीं दिया। यदि धनुषकोडी से लगेज का संतोषजनक प्रबन्ध हो गया तो शायद मदुरा उतर जायें।"

11 अगस्त, शुक्रवार–"आज भोजन भी श्रीवास्तवजी के यहाँ हुआ। बस्ती जिले के भोजपुरी हैं। सपरिवार हैं, भार आयोजन ऑफिस के अफसर हैं। अमरकीर्ति आये। शाम को बिनौरी भी दो घंटे रहे। अभी किताबों का अनुज्ञापत्र नहीं मिला। मुद्रित पुस्तकों में भी इतनी दिक्कत। यात्रा अब दिक्कत की हो गई है। चलो अब यहाँ आना नहीं है, यही संतोष की बात है। श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयजी की उर्दू शायरी की दो पुस्तकें आ गईं–'नग्म-ए-हरम' और 'लो कहानी सुनो'। अब उर्दू काव्यधारा पर कमर कसनी होगी। कहते हैं 40 उर्दू कवियों की सूची कालानुसार भेजें। अमरकीर्ति किताबों के बक्स कापड़ियाजी की दूकान पर रख आये।"

12 अगस्त, शनिवार–"बहुत चित्त खिन्न रहा। शाम को सेनाविरत्न के यहाँ चाय पीने गये। चेक में अपने से ही अधिक पैसा लिख दिया। बैंक से लौटा दिया, ख्याल आने लगा शायद हिसाब ही हटा दें। यही चिन्ता दुःखी करती रही।" 13 अगस्त, "आज गॉलफेस टहलने गये। श्री सेनाविरत्न भी साथ थे पत्नी सहित।

उन्हें भारतीय सम्पर्क का बहुत अभिमान है। हिन्दी के प्रेम के कारण शिक्षामंत्री के सचिव के स्थान से दूसरी जगह आ गये। धरणीधर आज आ गये बिलायत से।"

14 अगस्त, "किताबों की अनुज्ञा मिल गई। यहीं के भारतीय उच्चायुक्त के प्रथम सचिव ने तलेमन्नार और धनुषकोडी में अपने आदमी के पास मेरे लिए चिट्ठी लिख दी। धीरे-धीरे काम ठीक हो रहा है। धनुषकोडी से मद्रास तक 20 तारीख की सीट रिजर्व करवाई थामस कूक से। नहीं होगा तो मदुरा से ट्रेन छोड़कर दूसरी ट्रेन से रिजर्व कराके चौबीस घंटे बाद जायेंगे। आज से नाविरत्न के पास गये। वह भी शाम को आये। कह रहे थे—'राजपूत काल में चौहान चंदेल, गूजर यहाँ आये थे।' हो सकता है। खदिरगम (स्थान) के दर्शनार्थ भी आते रहे हैं उत्तर भारतीय। अब एक ही बात की चिन्ता रह गई है, उसे भी कल करा सकें तो अच्छा। कल धरणीधर आयेंगे। चीजें मँगवा लेंगे। अमरकीर्ति ने बक्से (किताबों के) ठीक कर दिये।"

15 अगस्त को पंडितजी विद्यालंकार गये। यक्कडु प्रज्ञाराम स्थविर और नायकपाद प्रज्ञासार, प्रज्ञाकीर्ति आदि से मिल आये। "अब नहीं जाना है। कमला की चिट्ठी मिली, प्रतीक्षा बच्चों सहित कर रही हैं।"

16 अगस्त, "आज बैंक से 2400 रुपया लाये। अधिक का चेक लिख दिया गया, उसके बारे में कुछ नहीं पूछा। माणिकलाल पटेल के यहाँ भोजन किया। शायद कस्टम निरीक्षण तलैमन्नार में ही होगा। गॉलफेस घूमने गये शाम को। चार बक्सों में किताबें रख दी गईं। सभी चीजें दार्जिलिंग तक कैसे पहुँचेंगी ? अब 17-18 दो दिन हैं, 19 को तो चले ही जायेंगे।"

17 अगस्त, बृहस्पतिवार, "आज गॉलफेस घूमने गये। अब एक दिन और रहा। कस्टम तलैमन्नार में देखेगा। जेता के खिलौनेवाली रेल की बात है। मदुरा के सौराष्ट्र बन्धु बहुत चाहते हैं। आज देवेन्द्रन का तार भी आया है। श्रीवास्तव और जगन्नाथ शर्मा और अमरकीर्ति के साथ फोटो लिया।"

18 अगस्त, "भोजन माणिकलालजी के यहाँ हुआ, आनन्दजी भी आये। चार बक्से बुक करने का चन्द्रकान्त ने जिम्मा ले लिया। 31 रुपये में स्टोव लिया और टैक्स के डर से अमरकीर्ति को दे दिया। देवीदास के बेटे बख्शी आये। स्त्री बंगालन, गोरी, पति काला है। श्रीवास्तव दम्पती और माथुर दम्पती भी मिल गये। अब एक दिन रहा। देखें 20 तारीख को क्या होता है ? खिलौनेवाली रेल रखवा लेंगे तो अफसोस नहीं होगा। कलकत्ता की कमाई चपरछाछ में गँवाई।"

कुछ महानुभावों ने यह प्रचार किया है कि पंडितजी सीलोन से दार्जिलिंग आना ही नहीं चाहते थे। वे तो कमला और बच्चों को सदा के लिए छोड़कर सीलोन चले गये थे। वे वहाँ अपने परम मित्र भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी के साथ ही जीवन बिताना चाहते थे। किन्तु ऐसे भ्रामक प्रचार से राहुलजी के जिज्ञासु पाठकों को बरगलाने की जो कोशिश की जा रही है, उन्हीं पाठकों की जिज्ञासा के समाधान के लिए यहाँ उनके कुछ पत्रों को उद्धृत कर रही हूँ जो उन्होंने सीलोन प्रस्थान करते समय अपनी पत्नी को लिखे थे। इन पत्रों से उनके मन की स्थिति तथा पत्नी और बच्चों के बीच लौटने की उनकी बेचैनी की झलक मिलती है। पत्र इस प्रकार हैं :

## अगस्त में लिखे पत्र

*कोलम्बो*
*1-8-61*

*प्यारी,*

*अभी (11 बजे सबेरे) आनन्दजी का फोन मिला। तुम्हारा घबराहट भरा पत्र आया है। मेरा पत्र तुम्हें नहीं मिला है। पर जिस दिन तुम्हारा पत्र मेरे पास आता है उसी दिन मैं लिख देता हूँ। तुम्हारे चार पत्र मिल चुके हैं। यह तो लिख ही चुका हूँ कि 19 अगस्त को आनन्दजी के साथ मैं मद्रास की ट्रेन पर बैठ रहा हूँ। आशा है, 25-8 तक कलकत्ता पहुँच जाऊँगा। वहाँ तक आनन्दजी भी साथ आ रहे हैं। शायद आगे भी आयें। कलकत्ता से रेल से आऊँगा। नहीं तो दो-तीन मन बोझा साथ में रहेगा। किराया ज्यादा लगेगा। इन्सोलिन रोज क़ापड़ियाजी*

*लगा देते हैं। डाक्टर भी देख लेते हैं। कोई चिन्ता की बात नहीं है। रक्तचाप प्रायः नार्मल-सा रहता है। चिन्ता यही है, एक-एक दिन गिनकर काटना पड़ता है। यहाँ आये 19 दिन बीत गये। 17 दिन और काटने हैं। कट ही जायेंगे। लेने की चीजें ले ली हैं। जेता की रेल भी ले ली है।...*

*तुम्हारी दो साड़ियाँ ले ली हैं। हो सका तो एक मदुरा से भी ले लूँगा। जया के लिए फर का कम्बल ला रहा हूँ। मेरी बेटी अम्मा को दिक नहीं करती होगी। मैंने कापड़ियाजी के यहाँ रहना स्वीकार किया, क्योंकि यहाँ पथ्य, भोजन और दवा का सुबिस्ता था। विद्यालंकार तो हफ्ते में एक दिन जाना पड़ता है। लड़के पढ़ाई की तैयारी कर रहे हैं। प्रज्ञाकीर्तिजी का सफल ऑपरेशन हुआ है। अस्पताल में हैं। प्रश्नपत्र मैंने बना के दे दिये। मौके पर आ गया था। कोशिश कर रहा हूँ कि प्रज्ञाकीर्तिजी के सहायक अमरकीर्ति हो जायें। सुबोध हैं, संस्कृत का भी ज्ञान अच्छा है।*

*कल शाम को गॉलफेस घूमने गया था। प्रायः रोज ही जाता हूँ। वजन बढ़ने न पाये, इसका बहुत ध्यान रखता हूँ।*

*धरणीधर (माणिकलाल के पुत्र) युरोप घूमने गये थे, 11-8 को लौट आयेंगे।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

*कोलम्बो*
*6-8-61*

*प्यारी,*

*आज चिट्ठी तुम्हारी न आने पर भी लिख रहा हूँ। मिल जायेगी।*

*अब एक ही रविवार यहाँ आयेगा। उसके बाद का रविवार (20) मद्रास में आयेगा। 24 के आसपास वहाँ से कलकत्ता के लिए रवाना हो जाऊँगा। आनन्दजी और उनके दो विद्यार्थी भी साथ में रहेंगे। मद्रास से भी फर्स्ट क्लास का टिकट लेंगे। आज आनन्दजी ने जेता के लिए 154 रुपये में खरीदी रेलगाड़ी देखी। देखें (कस्टमवाले) जाने देते हैं या नहीं। तुम भी दिन गिन रही होगी, मैं भी तारीख बतानेवाली घड़ी पर तारीख गिन रहा हूँ। 10 तारीख तक तो दिन बड़े ही बड़े होंगे, फिर शायद छोटे हो जायें। 8 अगस्त को हम टिकट खरीदकर सीट रिजर्व करा लेंगे।*

*कस्टम को यहीं चीजें दिखला देंगे, जिसको नहीं ले जाने देगा, यहीं दे डालेंगे। दो मन से कुछ ही कम किताबें हैं, और भी दो बक्स हैं।*

*स्वास्थ्य मेरा ठीक है। सुई ले लेता हूँ। रास्ते में शायद गोलियाँ लेनी होंगी। दोनों टाइपराइटरों को भी साथ ला रहा हूँ।*

*खाने और दवाई का पूरा संयम श्री कापड़ियाजी के आतिथ्य के कारण हुआ। बड़े सज्जन हैं, पत्नी भी।*

*दिन में मित्रों के साथ बीत जाता है। मैं मंगल को सिटी (कोलम्बो) जाता हूँ। अब 8, 15 और 18 को जाऊँगा।*

*यही मन करता है कि 19 कल ही आ जाता।*

*जया-जेता को प्यार। प्यारी को चुम्बन-आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

कोलम्बो
7-8-61

प्यारी,

आज चिट्ठी भेज रहा हूँ। तुम्हारा 31-7 का पत्र मिला। इसलिए उत्तर दिया। यही जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरे कई पत्र तुम्हें मिल गये। मैंने टाइमपीस 25 रुपये की ली। उसे पाकेटमार ले गये, फिर दूसरी ले ली। रेल भी ले ली है। 19-8 को देखा जायेगा, देखें किसको जाने देते हैं। आज तो 7-8 की शाम है। अब बारह दिन और हैं। मद्रास, कलकत्ता सभी जगह प्रस्थान की तारीख लिख दी है। आशा है मेरी प्रत्येक चिट्ठी का जवाब तुम भेजती रहोगी। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। खाना कम खाता हूँ जिसमें वजन न बढ़ने पाये। बच्चे बहुत याद आते हैं।

चुम्बन, आलिंगन।

तुम्हारा,
राहुल

जेता-जया को प्यार। अच्छे लड़के बन जाओ। यही मैं चाहता हूँ। इसी महीने में आ जाऊँगा।

तुम्हारा,
पापा

कोलम्बो
9-8-61

प्यारी,

आज आनन्दजी कोलम्बो से मद्रास का टिकट ले आये। 19 अगस्त का चलना निश्चय, अभी किताबों की अनुज्ञा लेनी बाकी है, जो शायद आज ही हो जाये। खिलौना, घड़ी आदि के बारे में 19 को कस्टम निर्णय देगा। 19 अगस्त की शाम को ट्रेन यहाँ से चलेगी। तलैमन्नार-धनुषकोडी में दोनों ओर के कस्टमों की मार है, जो हवाई यात्रा की भाँति आसान नहीं है, घंटों लगते हैं। खड़ा-खड़ा बीतेगा। अब बाहरी देश की अकेली यात्रा यह अंतिम है, यह कहकर समझा लेते हैं।

भंडारनायके लेख आजकल में छप गया। शायद तुम्हारे पास कापी गई होगी। श्रीनिवास को कह दिया, सिंहल के वीर पुरुष को प्रेस में दे दें। मेरे आने तक प्रूफ आ जाना चाहिए। स्वास्थ्य ठीक है, डर लगता है कहीं वजन बढ़ न जाये। खाने में तो बहुत संयम रखता हूँ और कापड़िया-पत्नी बिल्कुल डाक्टर की बतलाई खाने की चीज ही देती हैं।

यहाँ रहते अमरकीर्ति की थेसिस का कुछ काम हुआ है। प्रज्ञाकीर्तिजी दो-दो ऑपरेशन करा अस्पताल में पड़े हैं। परीक्षा पत्र मैंने ही बना दिया।

मेरे चुन्नू-मुन्नू (जेता-जया) तुम को कितना दिक करते होंगे। प्रयाग में कमेटी के सेक्रेटरी डाक्टर उदयनारायण तिवारी हैं। मालूम नहीं प्रयाग में हैं या सागर में। दोनों जगह मैंने चिट्ठी लिख दी हैं। दार्जिलिंग से दिसम्बर में ही (प्रयाग) जाने की बात लिखी।

जया-जेता को प्यार। तुम्हें चुम्बन, आलिंगन।

तुम्हारा,
राहुल

*कोलम्बो*
*16-8-61*

*प्यारी,*

*कल तुम्हारा पत्र मिला। आज रात को सवा नौ बजे पत्र लिख रहा हूँ। 17 और 18 के दो दिन और बाकी हैं। 19 को शाम के 8 बजे के करीब आनन्दजी और दो भिक्षुओं के साथ हम चल देंगे। कस्टम की देखभाल तलैमन्नार की खाड़ी में होगी। चार काठ के बक्स किताबों के हैं जिनका वजन चार मन से अधिक होगा। दो सूटकेस और एक होलडाल है। खिलौना रेल ले चल रहा हूँ। पर मालूम नहीं तलैमन्नार में जाने दें। टैक्स देने पर भी इंकार कर सकता है। जया की गुड़िया कलकत्ता या मद्रास में ले लूँगा। यहाँ सामान बहुत हो गया है। तुम साथ होतीं तो जनानी ले जा सकती थीं। महीने के दिन साल जैसे बीते हैं। खैर, अब तो दो दिन बाकी हैं। 19-8 को भी एक चिट्ठी लिखूँगा। आशा है 24 अगस्त को हम मद्रास से कलकत्ता के लिए रवाना हो सकें। 1 सितम्बर को दार्जिलिंग के लिए चलेंगे। और नहीं होगा तो अशोक बाबू से उनके कोई आदमी माँग लूँगा जो सामान सँभाल सिलीगोड़ी तक आ जायेगा। किताबों के बक्सों को तो कलकत्ता से तुम्हारे पास पार्सल कर दूँगा। सिलीगोड़ी से टैक्सी ले लूँगा, आने के दिन की सूचना शायद कलकत्ता से दे सकूँ।*

*यहाँ तो रोज इन्सोलिन कापड़ियाजी देते रहे। आगे तो गोलियों पर भरोसा रखूँगा। इन्सोलिन लेने में दिक्कत होगी। तुम्हें जितनी जल्दी है उतनी ही जल्दी मुझे भी पड़ रही है। पर क्या करूँ, दिन ही नहीं कटते। 21 अगस्त को मद्रास पहुँचूँगा, 26 अगस्त को कलकत्ता। वहाँ पाँच दिन रहना होगा। 2 या 3 सितम्बर को तुम्हारे पास पहुँचूँगा। याने पूरे दो महीने बाद दार्जिलिंग पहुँच सकूँगा। तब तक जया-जेता तुम्हें कितना दिक करते होंगे। कुछ नये फूल तो बाग में होंगे।*

*जया-जेता को प्यार। खूब पढ़कर और भी पापा का प्यार लो। मेरी प्यारी को चुम्बन और आलिंगन।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

## कोलम्बो से प्रस्थान

**शनिवार 19 अगस्त, 1961 :** पंडितजी लिखते हैं–शाम को गये (स्टेशन) माणिकलालजी, उनकी पत्नी कमला, मगनभाई, कुबेरदास दम्पती और भी लोग आये। अब तो सीलोन की अंतिम यात्रा है। सीलोन में बहुत से मित्र मिले। 8 बजे रात को गाड़ी चली। रात-भर चलती रही। गर्मी बहुत अधिक। फर्स्ट क्लास में भी गरमी से परेशानी। अच्छा हुआ कि इस यात्रा में उनके साथ आनन्दजी भी थे।

**तलैमन्नार-मद्रास मार्ग :** 20 अगस्त को 5 बजे के करीब तलैमन्नार आया। पारबसा (कस्टम) की शंका हो गई, लेकिन शंका निर्मूल साबित हुई। पीले वस्त्रवाले भिक्षुओं का प्रभाव पड़ा। जेता का खिलौना रेल और नकली सुम्री कम्बल, कैमरा निकल गया। धनुषकोडी में बहुत देर लगी, एक ट्रेन छूट गई। पर वहाँ भी कोई दिक्कत नहीं हुई। 5 बजे मद्रास की ट्रेन मिली, सीट रिजर्व थी। अभी तो आराम की जिन्दगी गुजर रही है। निश्चित यात्रा है भारत की।

तलैमन्नार से उन्होंने एक पोस्टकार्ड मेरे पास भेजा जिसमें लिखा था :

*तलैमन्नार*
*20-8-61*

*प्यारी,*

*तलैमन्नार में जहाज पर चढ़कर गये। कल मद्रास पहुँचेंगे।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

रामेश्वरम् से मद्रास के रास्ते पर जब वे ट्रेन में यात्रा कर रहे थे, मेरे नाम उन्होंने एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार है–

*रामेश्वरम् मार्ग*
*(ट्रेन से) 20-8-61*

*प्यारी,*

*तलैमन्नार में लंका के कस्टम से पाला पड़ा। फिर धनुषकोडी में भारतीय कस्टम से। दोनों ने पार कर दिया। जेता की गाड़ी आ रही है। जया का फर का (नाइलोन का) कम्बल भी आ रहा है। तुम्हारी टाइमपीस भी आ रही है। किताबों के चार बक्स भी आ रहे हैं। बक्सों को कलकत्ता से बुक कर दूँगा। तब भी दो बक्स और एक कम्बल रहेगा ही। जेठमल की जीवनी के नोट लिखकर चल दूँगा रेल से ही। अशोक बाबू से किसी आदमी को ले लूँगा।*

*जया के लिए नया नाइलोन कम्बल ले आ रहा हूँ। हो सका तो जया के लिए कलकत्ता से एक गुड़िया लाऊँगा। तुम्हारी दो साड़ियाँ तो लंका से आ रही हैं। हो सका तो एक-दो और लेता आऊँगा।*

*स्वास्थ्य अच्छा रहा। आनन्दजी कलकत्ता तक मेरे साथ आयेंगे।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

**मद्रास, 21 अगस्त :** पंडितजी और सहयात्री 4 बजे के बाद मद्रास एग्मोर स्टेशन पहुँचे। फिर दो घोड़ागाड़ियों पर सामान लदवाकर महाबोधि सभा के मकान पर पहुँचे। मकान बहुत अच्छा था, सामने बड़ा-सा बाग था। भिक्षुओं के लिए आवास दो मंजिला है। यह जगह बहुत पसंद आई पंडितजी को। उनके सहयात्री भिक्षु यहीं ठहर गये। वहाँ से जल्दी ही टैक्सी लेकर भदन्त आनन्दजी के साथ पंडितजी अडियार गये। यहाँ उनको पटेलजी के घर में ठहरना था। पटेल-दम्पती के लिए पंडितजी सीलोन से थर्मस ले आये थे। उन लोगों ने दाम का रुपया देने का खूब आग्रह किया ,पर पंडितजी को दाम याद नहीं था। रात को वे अम्बालाल भाई के पास सोये, जहाँ पंखे की भी सुविधा थी। आनन्दजी दूसरे भिक्षुओं के साथ महाबोधि में रहे। सौराष्ट्र के भाई 8 बजे रात को मिलने आनेवाले थे।

मद्रास पहुँचने की सूचना देते हुए उन्होंने पत्र लिखा था, जो इस प्रकार है :

*मद्रास*
*22-8-61*

*प्यारी,*

*कल शाम को सकुशल आनन्दजी के साथ यहाँ पहुँच गये। अभी आगे का टिकट नहीं लिया। आज बंक से 550 रुपया लायेंगे, तब टिकट खरीदेंगे। सब ठीक है, सब चीजें यहाँ पहुँच गईं।*

*बच्चों को प्यार। तुम्हें चुम्बन-आलिंगन।*

*तुम्हारा*
*राहुल*

22 अगस्त, मद्रास (अडयार)। आज सबेरे हवाई अड्डे से 550 भारतीय रुपये ले आये वे, जिससे अब रुपयों की निश्चिन्तता हो गई उनको। दोपहर का खाना खाकर वे हावड़ा तक के दो टिकट ले आये फर्स्ट क्लास के। प्रति टिकट 92 रुपयों से कुछ अधिक लगा। सीट रिजर्व वाल्टेयर (आंध्र) तक मिली। पंडितजी अब सोच रहे थे, पुस्तकों के बक्से चले जायेंगे। कल हो सके तो तिरुमिशी जायेंगे।

**तिरुमिशी, 23 अगस्त :** पंडितजी लिखते हैं–आज 40 वर्ष के बाद तिरुमिशी गये। 15 मील की सड़क अच्छी है। पहिले के बेंकटाचार्य मर गये। उत्तराधी मठ में 2-3 साधु हैं। यहाँ के महंत पठित हैं और मेरे नाम से परिचित थे। वह संस्कृत जानते हैं और स्थान को भी सँभाल लिया है। लौटकर 1 बजे गाँधीनगर पहुँच गये। परन्तु पहिले का एक भी परिचित जीवित नहीं है।

**मद्रास-कलकत्ता मार्ग**–24 अगस्त–"आज भोजन बच्ची बहिन के यहाँ हुआ। उन्होंने पाथेय भी बाँध दिया। शाम को 8.30 बजे गाड़ी कलकत्ता मेल चली। सीट रिजर्व के साथ किराया 92 रुपये के करीब लगा। दो सीट का किराया देना पड़ा। रात-भर गाड़ी चलती रही और मन में आर्थिक चिन्ता बनी रही।"

**कलकत्ता 26 अगस्त**–"दिन-भर ओड़िसा में चलते रहे। कटक पहुँचते रात हो गई। 11.30 बजे रात को हावड़ा आये। डाबर हंाउस की गाड़ी आई थी, उसी में चले आये और लगेज के चारों बक्सों को छोड़ आये। 50 रुपया माँग रहे थे। आर्थिक चिंता है। आनन्दजी को 50 रुपया और दे देंगे। फिर अपने लिए भी दिक्कत होगी। मंगल को दार्जिलिंग चल देना है। हवाई जहाज में 60-65 रुपया लगेज के और किराया 70 रुपया लगेगा। 30 रुपए में नहीं हो सकेगा।"

**27 अगस्त**–"आज सबेरे श्री बी. के. सरकार के यहाँ गये। उनका मकान (दार्जिलिंग का) शायद बिक गया। वहाँ से फिर आनन्दजी के पास महाबोधि में गये। वे पीछे आयेंगे दार्जिलिंग, हमें अकेले ही चलना है। रेल में दूसरा आदमी लेना होगा, खटराग भी बहुत होगा। विमान में 50-60 रुपया सामान का लगेगा, देना होगा। शाम को श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय दूसरे प्रोफेसरों के साथ डाबर भवन में आये। कुछ देर बातें करते रहे। श्री एल. पी. शाह विकास के डिप्टी मंत्री यहीं ठहरे हैं। वे बसरा के पास के जथरिया हैं। सीलोन के बारे में बातें हुईं।"

28 अगस्त को वे दार्जिलिंग के लिए आमबाड़ी एयर सर्विस के विमान का टिकट ले आये। अब कल वे यहाँ से अपने घर के लिए प्रस्थान करनेवाले थे।

कलकत्ता का पत्र :

*कलकत्ता*
*26-8-61*

*प्यारी,*

*आज यहाँ पहुँच गया। जल्दी से जल्दी आना चाहता हूँ। सारी चीजें साथ हैं। शायद आनन्दजी भी दार्जिलिंग तक आयें। उनसे बड़ी सहायता मिली।*

*तुम्हारा,*
*राहुल*

प्रस्थान करने से पहले कलकत्ता से लिखा हुआ पत्र :

*कलकत्ता, डाबर हाउस*
*27-8-61*

*प्यारी,*

*कल यहाँ पहुँचकर पोस्टकार्ड लिख चुका हूँ। मंगल को यहाँ से रेल द्वारा आवेंगे। सभी चीजें अभी सुरक्षित हैं। यहाँ से किताबें रेल में आगे भेज देंगे। हम लोग रेल से आ जायेंगे। प्लेन का किराया बहुत होगा, इसलिए रेल से।*

*चुम्बन। बच्चों को प्यार।*

*तुम्हारा,*
*राहुल**

* मेरे नाम लिखा हुआ राहुलजी का यही अन्तिम पत्र है।

## दार्जिलिंग लौटे

29 अगस्त को वे लिखते हैं–"10 बजे के बाद दमदम से विमान चला। उसमें कोई गड़बड़ी थी, परीक्षा करके चला। पहिले तो मालूम हुआ दोनों सूटकेस और होल्डाल गायब हैं। पर आमबारी में सामान मिल गये। दार्जिलिंग की गाड़ी मिल गई। दिमाग बिखरा रहता है। तीन कुली ले सारा सामान लेकर शाम को घर पहुँचे। सभी चीजें घर तक पहुँचीं। खिलौने की रेल को चलाया। डाक्टर उदयनारायण की चिट्ठी आई। काम होनेवाला है। लाल साहेब ने गाड़ी चलाई।"

**दार्जिलिंग, अगस्त 30**–पंडितजी अब अपने घर ग्रीन रीजेस (अब राहुल निवास) में आ गये थे, जहाँ उनको पत्नी और बच्चों का साथ मिल रहा था। उन्हें प्रसन्न रहना चाहिए था, पर भविष्य की चिन्ता में वे निमग्न रहने लगे। परिवार के लोग उन्हें प्रसन्न रखने का हर सम्भव प्रयास करते थे, पर वे उदास ही रहने लगे। 30 अगस्त को उन्होंने अपनी डायरी में लिखा–घूमने गये शाम को। भैयाजी (स्वामी हरिशरणानन्दजी) की चिट्ठी आई, शायद वे यहाँ आयें। डाक्टर उदयनारायण तिवारी ने लिखा है, कोश के काम का प्रबन्ध कर रहे हैं। अनिश्चितावस्था ठीक नहीं। कमला ने लंका में रहना स्वीकार किया होता, तो निश्चिंत हो जाते, बच्चों को पढ़ाने का भी प्रबन्ध हो जाता, इनको भी काम मिल जाता। निश्चिंत रहने का उपाय लंकावास था। यहाँ यदि काम मिल गया तो भी कमला को भी काम मिलना चाहिए जिसका कोई निश्चय मालूम नहीं होता। 31 अगस्त को भी वे शाम को टहलने गये, पर उनके मन में चिन्ता के कांटे भी चुभते ही रहे।

1 सितम्बर को वे लिखते हैं–"घूमने गये। आज जन्माष्टमी देखने बच्चे गये। किसी काम का मन नहीं करता। पढ़ने का भी मन नहीं होता।" एक समय के कर्मठ महापुरुष अब जीवन की संध्या में पहुँचकर यों निष्क्रियता का अनुभव कर रहे थे। हम क्या कर सकते थे ? वे किसी तरह भी प्रसन्न नहीं रहते।

दार्जिलिंग के घर में आकर अब उनको मेरी शिकायत करने के अलावा और कुछ सूझता ही नहीं था। अतः 2 सितम्बर को उन्होंने लिखा–"आज कहीं नहीं गये। दिन-भर मन में चिन्ता का आवेग आता रहा। लंका का प्रत्याख्यान करना कमला ने अच्छा नहीं किया। पीछे बहुत पछतायेगी, रोयेगी। वहाँ काम भी मिल जाता। हम जितने दिन (जीवित) रहते, कमा जाते, लोग भी सहृदय थे। यहाँ चारों ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती है।" 3 सितम्बर को वे लिखते हैं–"कहीं घूमने नहीं गये। यही ठीक मालूम होता है कि यदि प्रयाग के काम में जरा भी संदेह हो तो हम लंका चले जायें। जीवन-भर 750 रुपया तो भेजते रहेंगे, अपने सामने बच्चों को बिलखते न देखेंगे। कमला यहाँ रहना चाहें तो रहें। इनको काम मिलेगा, इसमें तो सन्देह है।" 4 सितम्बर–शाम को घूमने गये, कुछ भीग गये। भविष्य की चिन्ता आज भी होती रही। "प्रयाग का काम संदिग्ध हो जाने पर लंका जाना होगा। लंका से दो वर्ष की छुट्टी लेंगे। क्या जाने प्रयाग में कैसा बने। कमला जरूर अपने मन का करेंगी, पीछे पछतायेंगी, जैसे यहाँ का मकान लेकर हुआ। देहरादून में काम मिल गया होता। हिन्दी प्रान्त है, वहाँ प्रभाव है। यहाँ कुछ भी नहीं।"

दार्जिलिंग आने के बारे में यहाँ कुछ स्पष्ट कर देना आवश्यक है। पंडितजी ने हमें दार्जिलिंग में रखने का निर्णय उस समय ही किया था, जब वे पेकिंग में हृदयरोग से आक्रान्त होकर अस्पताल में पड़े थे। वे सोचते थे, दार्जिलिंग ही कमला और बच्चों के लिए सुरक्षित स्थान है, उनके न रहने पर यहाँ ये लोग शांति से रह सकेंगे। अन्यत्र रहकर उन्होंने देख लिया था कि लोग जिस तरह से उनके साथ व्यवहार कर रहे थे, उनके परिवार के साथ तो न जाने क्या-क्या करेंगे। वे अपने भतीजों से भी डरते थे कि उनके संसार से उठ जाने पर सम्पत्ति आदि को लेकर कमला के साथ वे लोग टकरायेंगे। इसीलिए परिवार को इन सब लोगों से दूर रख देने में ही सुरक्षा है। उन्होंने बहुत दूर तक का सोचा था। उनके तथाकथित मित्र लोग भी राहुल-परिवार के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखते हैं, यह भी उन्होंने देख लिया था। ऐसे लोगों के बीच में परिवार को छोड़ देना वह बिल्कुल नहीं चाहते थे। मैं महापंडितजी को खींचकर दार्जिलिंग नहीं लायी थी। दार्जिलिंग तो क्या, मैं तो कलिम्पोंग में भी स्थायी रूप से रहना नहीं चाहती थी, इसीलिए जब मसूरी का घर बेचकर पंडितजी

ने वहाँ के सामान को कलिम्पोंग के लिए रेल से पार्सल द्वारा भेज दिया तो मैंने बहुत विरोध करके सामान को लखनऊ से देहरादून वापस मँगवाया था। मुझे तो वहीं रहना था जहाँ वे शांति के साथ रह सकते थे। पर पंडितजी ने 1958 में हमारे बारे में जो सोचा था, वह उसे 1961 तक भूल चुके थे, क्योंकि अब उनकी स्मरणशक्ति कमजोर हो गयी थी। पंडितजी को अपने जीवन का फैसला करने के लिए किसी ऐरे-गैरे तथाकथित मित्र से पूछने की जरूरत नहीं थी। वे स्वयं ही हमें दार्जिलिंग लाये थे। घर के लिए भी वे पहले ही मेरे जीजाजी वकील राधामोहन बाबू को लिख चुके थे। मैंने दार्जिलिंग बस जाने के लिए कोई जोर नहीं दिया था, जैसाकि उनके परमप्रिय तथाकथित मित्र मिस्टर नागार्जुन लिखते हैं। मैं यहाँ आई, क्योंकि मेरे कुनबे के लोग यहाँ रहते हैं, जो अत्यन्त दरिद्र हैं, जिनका खर्चा-पानी राहुल जी देते हैं, इसीलिए मेरे कुनबे के लोग जो काफी तादाद में यहाँ रहते हैं, राहुलजी के पैसे पर ही जीवित हैं। यह बातें मिस्टर नागार्जुन की कलम से लिखी और छापी गयी हैं। मिस्टर नागार्जुन यहाँ पधारकर देखते तो पाते कि यहाँ के लोग ऐसे भी हैं जो उन जैसे क्षुद्र विचार रखनेवाले लोगों की ऐसी-तैसी भी कर सकते थे। दार्जिलिंग नोटीफाइड एरिया कभी नहीं रहा। दुनिया-भर के लोग यहाँ आते रहते हैं, कोई रोक-टोक नहीं है। किसी पासपोर्ट की भारतीयों को जरूरत नहीं है। सिर्फ गोरखालैण्ड के आन्दोलन के समय, हड़तालों के समय में लोगों का आना-जाना बन्द कर दिया गया था। पर यह तो 1986 के बाद की बात है और उस समय तो राहुलजी को संसार से विदा लिये भी 26 वर्ष हो चुके थे। सबसे प्रमुख बात तो यह थी कि राहुलजी को गरमी सहन नहीं होती थी। वे जिद करके सिंहल में रहने गये, और मधुमेह और रक्तचाप में वृद्धि वहीं रहकर हुई, गरमी के कारण उनका माथा भिन्नाया रहता था। अवकाश ग्रहण कर वे इसी पहाड़ी नगर में परिवार के साथ रहेंगे, ऐसा विचार उन्होंने मुझे लिखे कई पत्रों में व्यक्त किया था। नागार्जुन राहुलजी का बाप भी नहीं, न भाई, न बेटा, हमारे प्रति जो कड़वे विष इन महाशय ने उगले हैं, सारे हिन्दी जगत में इस आदमी ने कमला और उसके बच्चों के प्रति जो घिनौना प्रचार किया है और स्वयं को राहुल के रूसी परिवार का अत्यन्त निकट बन्धु और हित-चिन्तक बताया है, उससे हम लोग छोटे नहीं पड़े, बल्कि हमने उसके क्षुद्र विचारों को जीवन में एक चुनौती के रूप में लिया। वैसे भी नेपाली लोग किसी के सामने हारनेवाले नहीं होते, वह समय आने पर कुछ करके दिखाते हैं। नागार्जुन के इस प्रकार राहुल के भारतीय परिवार के खिलाफ जहर फैलाने का दुष्परिणाम नहीं हुआ, बल्कि सुपरिणाम ही हुआ, क्योंकि हम लोग किसी पर आश्रित नहीं रहे, स्वयं अपने पाँवों पर खड़े होकर प्रतिष्ठित जीवन जी रहे हैं।

कभी-कभी मुझे यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि राहुलजी ने ऐसे क्षुद्र लोगों को अपना हितैषी क्यों समझा ? क्यों ऐसे लोगों पर उन्होंने विश्वास किया ?

हाँ, तो दार्जिलिंग हमारा मायका होने से भी हम यहाँ के लोगों की नजर में बहन-बेटी के रूप में रहे। किसी प्रकार की मुसीबत में यहीं के लोग काम आये। इन्हीं लोगों ने हमारी मदद की। परन्तु दुनिया में कुछ ऐसे सफेदपोश ठग-डाकू भी होते हैं जो हमारे समाज को, नेपाली समाज को गया-गुजरा समझते हैं।

आज मैं सोचती हूँ कि उस समय तो मैंने दार्जिलिंग आने का विरोध किया था, पर आज यही जगह हमें बहुत सुरक्षित लगती है। कम से कम सफेदपोश ठगों को यहाँ आने में दस बार सोचना पड़ता है।

मैं 1961 में यहाँ नौकरी की तलाश में थी। दो कॉलेजों में आवेदनपत्र भी दे रखा था, पर उस समय मुझे काम नहीं मिला, इसलिए पंडितजी को यह जगह बुरी लगने लगी। तभी वे यहाँ उद्विग्न रहने लगे। 5 सितम्बर को वे टहलने गये। उनको डर हो गया कि टहलने न जाने से उनके पैर कमजोर हो जायेंगे।

6 सितम्बर को वे मेरे साथ 'माडर्न गर्ल' फिल्म देखने गये, पर उन्हें फिल्म अच्छी नहीं लगी। बाकी समय वे घर पर ही रहे। 7 और 8 सितम्बर को भी वे परिवार के साथ शाम को चौरस्ते की ओर घूमने गये। वे प्रायः चिन्तित रहने लगे थे। उन्हें भविष्य अनिश्चित दिखाई देने लगा। 9 सितम्बर के दिन भी उनकी यही मानसिक अवस्था रही। लिखते हैं–"आज कहीं नहीं गये। सारी जागृत अवस्था चिन्ता में बीतती है। मेरे बाद बच्चों का क्या होगा ? वहाँ लंका का काम 7 वर्ष का हो तो भी स्वीकार कर लेंगे, 1,00,000 रुपया यहाँ के लिए कमा लेंगे, उसी से गुजारा हो जायेगा। वकील साहब बाबू राधामोहन प्रसाद भी मेरा लंका रहना

पसन्द करते हैं।" 10 सितम्बर–"आज भैया साहब (स्वामी हरिशरणानन्दजी) अमृतसर से यहाँ आये दो दिन के लिए ही। उनकी पत्नी अलग दिल्ली में रहती हैं, उन्हें 300 रुपया मासिक देते हैं, मकान भी रहने के लिए है। शाम को घूमने गये। रविवार के कारण आज डाक नहीं आई।"

दो दिन उनका समय अच्छी तरह से कटा, क्योंकि उन्हें भैयाजी का सामीप्य मिला था। 11 सितम्बर को वे लिखते हैं–"आज भैया जी रहे। उनका बुढ़ापा शोकमय है, पत्नी का कोई सुख नहीं मिला। उनके तो कोई सन्तान नहीं, इसलिए उधर से वे बेफिक्र हैं। हम बच्चों के लिए चिन्तित हैं। यदि प्रयाग का काम हो जाये तो चिन्ता दूर हो जायेगी, नहीं तो कमला का लंका न जाने का आग्रह भविष्य को अन्धकारमय बना देगा। आज 'भंडारनायके' की कटिंग आई दिल्ली से। पर पुस्तक छापने की कोई बात नहीं है। चिन्तामय बुढ़ापा देखते मुझे पिता की याद आती है। उनका भी बुढ़ापा ऐसा ही बीता।"

12 सितम्बर–"आज भैयाजी सबेरे गये। कलकत्ता तक विमान से, फिर रेल से जायेंगे। दिन पहाड़ मालूम होता है। कमला को मकान का बहुत मोह है, पर मकान तो बच्चों की परवरिश नहीं कर सकता। केवल 110 रुपया मासिक किराये से क्या बनेगा ? यदि प्रयाग का काम नहीं ठीक होता तो मुझे तो लंका जाना ही होगा। नहीं तो आँखों के सामने बच्चों को भूखे कैसे देख सकूँगा ? आश्चर्य होता है, कमला इस दिक्कत को क्यों नहीं समझती है ? सीलोन जाने पर जीवन-भर 750 रुपया मासिक तो भेजता रहूँगा। वहाँ खाना प्रतिकूल होगा, स्वास्थ्य बेहतर नहीं होगा, पर बच्चों की परवरिश की चिन्ता दूर हो जायेगी।" 13 और 14 सितम्बर को भी पंडितजी की मानसिक स्थिति वैसी ही रही। "मन की अवस्था वैसी है। चिन्ता में कुछ काम करने का मन नहीं करता।" उनका शाम को टहलना भी नियमित नहीं हो रहा था। 15 और 16 सितम्बर को वे घूमने भी नहीं गये। उनका मन चिंताकुल रहा, शरीर से फुर्ती और मन की शक्ति का अभाव वे महसूस कर रहे थे।

17 सितम्बर को वे घूमने दूर तक गये। साथ में कभी बच्चों को ले जाते, कभी पूरे परिवार को ले जाते और कभी मित्रों के साथ जाते। हम लोग उन्हें अकेले बाहर नहीं भेजते थे। आज भी उनके चित्त की स्थिति खिन्न रही, तो भी बच्चों को छोड़कर लंका जाने का मन नहीं करता। पर यदि यहाँ कोई सहारा न मिला तो ?

आज उन्होंने दोनों थीसिस पंजाब विश्वविद्यालय के पास और एक लेख 'श्रीभंडारनायके' को सरस्वती के पास भेज दिया।

18 सितम्बर को दिल्ली से उनके पास आत्माराम एण्ड सन्स की चिट्ठी आई। वह 15 प्रतिशत रायल्टी और 500 रुपया प्रतिमास अग्रिम पर 'जीवन-यात्रा' और 'हिमाचल प्रदेश' लेने का तैयार थे। पंडितजी ने आज ही स्वीकृति भेज दी। अभी भी उनको सिंहल जाने पर विश्वास था, अतः लिखते हैं–"नेपाल पुस्तक को देखने के लिए सिंहल ले जायेंगे।" 23 सितम्बर को वे बाहर घूमने नहीं गये, उनका चिंतारोग यथापूर्व रहा। वे डॉ. उदयनारायण तिवारीजी की चिट्ठी की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर आज भी नहीं आई। 24 को भी वे घूमने नहीं गये, यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं, पर शाम को बादल थे। 25 और 26 सितम्बर को भी वे घूमने नहीं गये। उनकी चिन्ता की स्थिति ज्यों की त्यों रही।

हिन्दी समिति, लखनऊ, की चिट्ठी 25 सितम्बर को मिली जिसमें लिखा था–पालि साहित्य का इतिहास की पाण्डुलिपि पढ़ी नहीं जाती। उन्होंने लिख दिया–भेज दो, टाइप करके भिजवा देंगे। 26 सितम्बर को भी वे घर से बाहर नहीं गये। 27, 28, 29 सितम्बर को उन्होंने डायरी में एक अक्षर भी नहीं लिखा। 28 सितम्बर, शनिवार को तुलसी-भानुभक्त जयन्ती समारोह दार्जिलिंग डिग्री कालेज की ओर से आयोजित था। उस समारोह में भाग लेने पंडितजी को भी आमंत्रित किया गया था। वे लिखते हैं–"तुलसी-भानु जयंती में डिग्री कॉलेज में मुख्य अतिथि कमला हुईं। उन्होंने भाषण भी दिया। पहिले-पहिल हिचकिचाहट होती ही है, पर अच्छा बोलीं।"

गुरुजी की ओर से यह पहला प्रमाणपत्र मुझे मिल गया।

1 अक्तूबर से वह 'हिमाचल प्रदेश' की पाण्डुलिपि को दुहराने लगे। आत्माराम एण्ड सन्स इसकी दो कापी चाहते थे। 2 अक्तूबर को वे टहलने भी गये और पाण्डुलिपि को दुहराने का काम भी करते रहे। 3 अक्तूबर

को भी वे चौरस्ता घूमने गये। डायरी में लिखा–"कमला ने डिग्री कॉलेज में हिन्दी अध्यापक के लिए दर्खास्त दे दी। मैंने भी राजेन्द्रबाबू को लिख दिया। उनका भी पत्र आया है।

राहुलजी का राजेंद्र बाबू को लिखा गया पत्र इस प्रकार है :

*दार्जिलिंग*
*3-10-61*

*श्रद्धेय राजेन्द्र बाबू,*

*यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई, आपका स्वास्थ्य सुधर रहा है।*

*मेरा स्वास्थ्य पूर्ववत् ही है। मैं 29 अगस्त को लंका से यहाँ लौटा। तब से यही हूँ। इधर कल ज्ञात हुआ कि गवर्नमेंट डिग्री कालेज दार्जिलिंग में हिन्दी लेक्चरर की जगह सात माह से खाली है। मेरी पत्नी डॉ. कमला सांकृत्यायन ने उसके लिए डी. पी. आई. (प. बंगाल) की सेवा में आवेदन दे दिया। वह इसके योग्य हैं, क्योंकि उन्होंने साहित्यरत्न हिन्दी साहित्य सम्मेलन, एम. ए. (हिन्दी) तथा पी-एच. डी. दोनों आगरा विश्वविद्यालय से पास किया। यदि उचित समझें तो श्री विधानचन्द्र राय को दो पंक्तियाँ लिखने का कष्ट करें, तो यह काम जरूर मिल जायेगा। इससे मुझे निश्चिंतता हो जायेगी, और मुझे लंका जाने से छुट्टी मिल जायेगी।*

*आपका अनुगृहीत,*
*राहुल सांकृत्यायन*

4 अक्तूबर को घूमने न जाकर वे 'हिमाचल' को दोहरते रहे, अगले दो दिन 5 और 6 को भी वे बाहर घूमने नहीं गये, सुबह से शाम तक हिमाचल प्रदेश की पाण्डुलिपि को दोहराते रहे। पंडितजी को प्रयाग के काम की भी उम्मीद थी, इसलिए वहाँ से चिट्ठी-पत्री की प्रतीक्षा करते रहते थे। 7 अक्तूबर को उन्हें डॉ. उदयनारायण तिवारी का पत्र मिला, जिससे पता चला कि प्रयाग के काम में अभी कुछ देर है, पर आशा है।

8 अक्तूबर को भी वे दिन-भर 'हिमाचल प्रदेश' को दोहराने का काम करते रहे। इस पाण्डुलिपि को पढ़ने का काम उन्होंने इस मनोयोग से किया कि अपने स्वास्थ्य की गिरावट को भी वे भूल गये। मेरे मना करने पर भी काम में लगे ही रहे। परिणामस्वरूप 9 अक्तूबर को पैरों की कमजोरी के कारण वे घर की फर्श पर गिर पड़े। गनीमत थी कि घर के भीतर ही गिरे थे। फिर 10 अक्तूबर को वे लिखते हैं–"आज 'हिमाचल प्रदेश' पर काम करके भीतर गये। वहाँ बेहोश होकर गिर गये। थोड़ी देर में होश आया।" 11 अक्तूबर को लिखा–"आज रामकृष्ण मिशन स्कूल में गये। कमला ने वहाँ पारितोषिक वितरण किया, हमने कुछ भाषण दिया। आज जाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। कल तो अकस्मात् बेहोश होकर गिर गये थे और परसों अंगों पर नियंत्रण न रख सकने के कारण गिर गये थे। डाक्टर पेम्बा ने नर्सिंग होम में देखा, रक्तचाप ज्यादा है। दो दिन के लिए अस्पताल जाना होगा।"

**12 अक्तूबर**–"कहीं बाहर नहीं गये। शाम को बादल रहा। इससे दस्त रोज एक बार भी नहीं होता।" 13 को उन्होंने लिखा–"कहीं बाहर नहीं गये। 'हिमाचल प्रदेश' के लिए राष्ट्रभाषा परिषद् पटना को नहीं लिख रहे हैं। कहीं आत्माराम की भी माँग न आ जाये।" 14 अक्तूबर को लिखते हैं–"बाहर नहीं गये। पानी बराबर बरसता ही जा रहा है। अब मृत्यु आदि की बातें कमला से नहीं कहनी हैं, दुःख होता है बेकार का।"

हाँ, यह सच है कि वे अब प्रायः मृत्यु की बातें किया करते थे। यह भी सच है कि हम भी जानते थे कि उनकी आयु अब खत्म होती जा रही है, पर मुँह से बार-बार मृत्यु का नाम लेना हमें दुःखी बना देता था, इसीलिए हम उनको ऐसी बातें कहने के लिए मना करते थे।

इस बीच पंडितजी अपने स्वास्थ्य का डाक्टरी चेकअप कराने प्लान्टर्स अस्पताल गये थे मेरे साथ। डाक्टर ने उनको विटामिन के टेबलेट सेवन करने के लिए दिया। पर डाक्टर ने जो गोलियाँ दी थीं, वह उनकी डायबेटीज़ पर कुछ भी असर न कर सकीं। 15 अक्तूबर को वे 'हिमाचल प्रदेश' की कार्बन कापी को ठीक करते रहे।

''कल यदि आत्माराम का जवाब नहीं आया तो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् को लिख देंगे।''

लेखकों को अपनी कृतियों को प्रकाशित कराने में कितनी कठिनाइयाँ होती हैं, इनका अनुभव पंडितजी ने भी किया था। उनके जीवन के समय में भी 'हिमाचल प्रदेश' पुस्तक के लिए प्रकाशक नहीं मिला था। उनकी लाख कोशिश करने पर भी कई प्रकाशकों ने इसे लेकर फिर लौटा दिया। अब देखें, इस ग्रन्थ का उद्धार करने में कौन-सा प्रकाशक आगे आयेगा? 16 अक्तूबर को पंडितजी लिखते हैं–'हिमाचल प्रदेश' की पाण्डुलिपि को देखते रहे। यदि आत्माराम की चिट्ठी आई तो भेज देंगे। 17, 18, 19 अक्तूबर को भी वे घूमने न जाकर 'हिमाचल प्रदेश' की पाण्डुलिपि को ही सुबह से शाम तक ठीक करते रहे। इसके लिए प्रकाशक की बड़ी दिक्कत है, वे स्वयं भी महसूस कर रहे थे। अब आत्माराम की ओर उनकी आशा लगी थी। बड़ी प्रतीक्षा के बाद आत्माराम की चिट्ठी 19 अक्तूबर को पहुँची, जिसमें 'हिमाचल प्रदेश' और 'जीवन-यात्रा' छापने की इच्छा प्रकट की गई थी।

20 अक्तूबर को पंडितजी लिखते हैं–''कहीं बाहर नहीं गये। बच्चे ज़ू (Zoo) देखने गये जमुनाजी (श्रीमती राधामोहन) के साथ। शाम को बादल रहा।'' पंडितजी आज भी टहलने नहीं जा सके। 21 अक्तूबर को वे अपने घर के अहाते में ही घंटा-भर टहलते रहे जिससे उनका पेट भी (दस्त) साफ हो गया। इसी तरह 22 अक्तूबर को वे आँगन में ही टहलते रहे। वे अपने मित्र सरकार महाशय की भी प्रतीक्षा कर रहे थे, जो अभी दार्जिलिंग नहीं आये थे। 23 को उन्होंने लिखा–''यहीं अहाते में घूमते रहे सबेरे। अब यहाँ घूमना और चौरस्ता तक जाना तो मौसम और बच्चों पर निर्भर है।'' वे अकेले कहीं जाना नहीं चाहते थे। 24 अक्तूबर को उन्होंने लिखा–''यहीं घर के हाते में घूमते रहे। 'पालि साहित्य' की टाइप कापी को देखते रहे। माचवेजी को लिख दिया, 'पालि काव्यधारा' किसी को नहीं देखना है। उसका एक प्रूफ हमें देखना है।'' उन्होंने (माचवेजी ने) 'तिब्बती कोश' को जल्दी करने के लिए कुलकर्णी को लिख दिया। माचवेजी उस समय साहित्य अकादमी के सचिव थे।

25 को वे यहीं घूमे। ''आधा घंटा ही घूम सके, थक जाते हैं।'' 26 अक्तूबर को यहीं घूमते रहे। फिर 'पालि साहित्य' के इतिहास की टाइप कापी को देखते रहे। 27 अक्तूबर को भी पंडितजी घर के अहाते में ही घूमते रहे। शाम को चौरस्ता जाया करते थे, पर अब तो वह भी कई दिनों से छूट गया था। अभी भी प्रयाग से पत्र नहीं आया, जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी। '' 'पालि साहित्य के इतिहास' को हरि (कमला के भाई) टाइप कर रहे हैं। आज कई पृष्ठ तक हो गया। आज हरि ने 21 पृष्ठ टाइप किया।'' 28 अक्तूबर को वे घर पर ही रहे और किताबें देखते रहे। 29 और 30 को भी वे 'हिमाचल' और 'पालि साहित्य के इतिहास' की पाण्डुलिपियों को देखते रहे। वह इन पाण्डुलिपियों को प्रकाशकों के पास भेजकर छुट्टी लेना चाहते थे। 31 अक्तूबर को पंडितजी घर के आँगन में ही टहलते रहे, फिर किताबों का काम करते रहे।

## नवम्बर 1961

1 नवम्बर को माचवेजी का पत्र आया। 'पालि काव्यधारा' की पाण्डुलिपि को वह भिजवा रहे थे। हाथ का लिखा हुआ था, ''अब टाइप कराकर भिजवाना पड़ेगा,'' पंडितजी यही सोच रहे थे। 2 नवम्बर को फिर वे चिंतित रहे। लिखते हैं–''पैसों की निश्चिंतता लंका जाने पर ही मालूम होती है। वैसे यदि कमला को कॉलेज में जगह मिल गई और हमारा प्रयाग का काम हो गया तो नहीं जाऊँगा। दो-चार वर्ष और आयु है, इसलिए अलग नहीं जाना चाहता।'' 3 नवम्बर–'हिमाचल प्रदेश और 'पालि काव्यधारा' छपवानी है। काम कर लिया है।''

4 नवम्बर को वे बाहर घूमने नहीं गये। सब ठीक हो गया, पर जब तक कलकत्ता से पुस्तकें नहीं आ जातीं, तब तक कैसे जायें? 4 नवम्बर को वे 'पालि काव्यधारा' ठीक करते रहे। ''जब पहिले के ग्रंथ के पार्सल की पहुँच आ जाये, तब दूसरे को भेज देंगे।'' 6 और 7 नवम्बर को भी वे 'पालि साहित्य का इतिहास' को ठीक करते रहे। घूमना घर के हाते में ही हो सका।

8 नवम्बर को उन्हें पं. किशोरीदास वाजपेयी जी का पत्र मिला, जिसमें राहुलजी को कलकत्ता के समारोह में आने के लिए लिखा था। पंडितजी सोचते हैं–"यदि वाजपेयीजी यहाँ (दार्जिलिंग) आ जायें तो उनके साथ जा सकते हैं।" 9 नवम्बर को वे लिखते हैं–"घर के बाहर आधा घंटा घूम लेते हैं। देखे स्थानों को और पुराने परिचितों को फिर देखने को मन करता है। बनारस या प्रयाग में भी एक मकान ले लें और एक यहाँ किराये पर देने के लिए, तो अच्छा है।"

फिर बेचैनी, फिर छटपटाहट, चिन्ता, अनन्त चिन्ता। अब वे अपने मन को शांत नहीं रख पाते। बच्चों के भविष्य की चिन्ता उन्हें भीतर ही भीतर खाये जा रही है। 10 नवम्बर, शुक्रवार को वे लिखते हैं–"आज भी कोई रजिस्ट्री डाक नहीं आई, 'पालि काव्यधारा' भी नहीं, पार्सलों के पहुँचने की सूचना भी नहीं।" सोच रहे हैं–"प्रयाग की आशा दुराशामात्र है। सिंहल ही जाना होगा। बच्चों का भविष्य निश्चित तो हो जायेगा। बुढ़ापे में मेरा स्वभाव भी ऐसा नहीं कि अपनों को सुख ही सुख दे सकूँ।"

सिंहल जाने की चर्चा उठने पर मैं मना कर देती तो उनको बुरा लगता था। अपने स्वास्थ्य की गिरावट पर कोई ख्याल ही नहीं। मैं नौकरी के लिए हाथ-पाँव मार रही थी, पर उस समय यहाँ काम नहीं मिल रहा था। राँची महिला डिग्री कॉलेज से बुलावा आया था काम करने के लिए, तो पंडितजी ने हमें जाने नहीं दिया, बोले–"हमको कौन देखेगा ?" अब वे बार-बार 'सीलोन, सीलोन' ही करने लगे। चुपके से आनन्दजी को भी पत्र लिख दिया कि मैं आ रहा हूँ। सीलोन ही उनके लिए ठीक है। ऐसी मनःस्थिति रहने लगी थी उनकी, जिसकी वजह से घरवालों को बहुत परेशानी हो रही थी।

11 नवम्बर को उन्होंने लिखा–"आज कलकत्ता आने के लिए वाजपेयीजी को लिख दिया। आनन्दजी को भी लिख दिया कि प्रयाग न जाने पर सिंहल आ रहा हूँ। बच्चों का सुख इसी में है। माचवेजी 'पालि काव्यधारा' को लौटा दें तो उसका काम हो जाय। न होगा तो हरि यहाँ टाइप करके हमारे पास (सीलोन) भेज देंगे।"

यहाँ यह बतला देना अनिवार्य है कि पंडितजी जब अगस्त में लंका से चले थे, तब उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र नहीं दिया था, केवल 6 महीने की बिना वेतन की छुट्टी मिली थी। कुछ जीवनी-लेखकों ने यह भ्रम फैलाया है कि उनको छः महीने की सवेतन छुट्टी मिली थी।*

*VIDYALANKARA UNIVERSITY OF CEYLON,*
*KELANIYA,*
*22nd November, 1961.*

*Prof. Rahula Sankrityayana,*
*21, Kutchery Road,*
*Darjeeling,*
*India.*

*Dear Prof. Rahula Sankrityayana,*

*I am writing to inform you that the University Council has decided to grant you a further period of leave without pay for 6 months from 1st Novemer, 1961.*

*Yours faithfully,*
*Sd/-*
*Registrar.*

* देखें, विद्यालंकार विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार का पत्र।

12-13-14-15 नवम्बर को वे चिंतित रहे। 'चिंता मत कीजिए' कहने पर कहते–'सीलोन चलो हमारे साथ'। मैं अकेले होती तो शायद चली भी जाती, पर स्कूल में पढ़ रहे बच्चों को स्कूल से निकालकर उस गरम स्थान में ले जाना, जहाँ स्कूल में दाखिला आसानी से नहीं मिलता, न स्कूल ही आवास के पास है, मुझे नहीं जँचता था। यह बात तो वे खुद कहते थे, अब खुद ही भूल गये। उनके शरीर की शक्ति क्षीण हो रही है, अब उनकी स्मरण-शक्ति भी जवाब दे रही है, ऐसी हालत में वे विद्यालंकार में कैसे पढ़ा सकते थे ? अपनी अवस्था के बारे में उनको खुद पता न हो, तो भदन्त आनन्दजी को तो पता था। इसीलिए तो पिछली जुलाई-अगस्त के सीलोन-निवास में उन्होंने ही पंडितजी को कापड़ियाजी के घर में रख दिया था, क्योंकि वे अब पहले जैसा काम करने लायक नहीं रह गये थे, उन्हें आराम की जरूरत थी। अपनी जिद के कारण घरवालों को परेशान कर रहे हैं, शायद इस सम्बन्ध में वे नहीं सोच पा रहे थे। इसलिए मेरी शिकायत करते हुए उन्होंने आनन्दजी को कई पोस्टकार्ड लिखे थे। इन पोस्टकार्डों का इस्तेमाल आज तथाकथित राहुल-विशेषज्ञ आचार्य लोग कर रहे हैं और कह रहे हैं कि "राहुलजी को तो सीलोन पसन्द था, वह अपना भस्मांत वहीं होने देना चाहते थे। कमला को छोड़कर किसी अर्धवृद्धा का सहारा लेना चाहते थे।" पर क्या भदन्त आनन्दजी उनको ऐसा पागलपन करने देते ? उन्होंने ऐसे पत्रों का कोई जवाब नहीं दिया था, यदि जवाब दिया होता तो वे पत्र हमारे घर में ही होते। लोग बातें बनाना जानते हैं पर दूसरों की परिस्थितियाँ, उन पर आई विपदाओं के बारे में वे जान-बूझकर आँखें मूँद लेते हैं, जैसाकि राहुलजी के कुछ अतिप्रिय तथाकथित मित्रों ने किया।

राहुलजी ही कहा करते थे कि "खाली दिमाग खुराफातों की जड़ है।" इस समय वे रोगी थे। पहले जैसा पढ़ने-लिखने का काम नहीं कर पाते थे। किताबें भी अभी सारी यहाँ पहुँची नहीं थीं। कलकत्तावाली पुस्तकें भी अभी आई नहीं थीं। खाली रहने के कारण ही उनका चित्त घबराने लगा था। डायरी में भी बच्चों के लिए 'चिन्ता', 'चिन्ता ही चिन्ता' ऐसे शब्द अंकित किये। 16 नवम्बर (बृहस्पतिवार) को लिखा–"मन की शक्ति निर्बल हो गई। अब बनारस या प्रयाग जाना है। बच्चों की छुट्टी की प्रतीक्षा है।" 17 नवम्बर को भी उनकी मानसिक स्थिति ऐसी ही रही। 18 नवम्बर को उन्होंने लिखा–"आज भी सबेरे ही टहले। अब काम नहीं होता, स्मृति क्षीण हो रही है। कमला ने कॉलेज में काम के लिए बी. सी. राय (बंगाल के मुख्यमंत्री) को दर्खास्त दे दी।"

मैंने कॉलेज में काम के लिए पश्चिम बंगाल के शिक्षा विभाग को कितने ही आवेदनपत्र दिए थे, किंतु सरकार की चुप्पी के कारण पंडितजी बहुत क्षुब्ध हुए थे। नवम्बर 1961 में भेजे गए कमला के दो आवेदन-पत्र इस प्रकार थे :

[1]

*To,*
*The Director of Public Instructions,*
*West Bengal*
*Writers' Building*
*Calcutta.*

*'Green Ridges'*
*21, Kutchery Road*
*Darjeeling*
*4th November, 1961*

***Subject :** Reminder of my application, Dated 2nd October, 1961, for the Post of Hindi Lecturer, through the Principal, Darjeeling Governement College, Darjeeling.*

*Dear Sir,*

*Understanding from some like sources, I had already sent my application addressed to you for the post of Hindi lecturer, in the Hindi Department of Darjeeling Government College,*

*Darjeeling through the principal of the same college on the above mentioned date. I do hope that it might have reached to you in time.*

*In that very application form, I have already mentioned all of my requisite qualifications as required for the post which you might have gone through it. As for other particulars, Dr.Rajendra Prasad, the President of India had already been written to Dr. B. C. Roy, the Chief Minister of West Bengal, mentioning him about me for securing that post. But that time, there was no vacancy at all. Even, Dr. Suniti Kumar Chatterjee has taken kind interest about this matter and has already recommended me for that post.*

*Therefore, I am in great hope that you would kindly consider and finalise the matter and would inform me before hand so that I should get rid off from the disappointment.*

*Thanking you in anticipation and for your early compliance.*

*Yours faithfully,*
*Sd/-*
*(Kamala Sankrityayan)*

[2]

*`Green Ridges'*
*21, Kutchery Road,*
*Darjeeling*
*Dated, 18th November, 1961*

*To,*
*The Chief Minister of West Bengal*
*Wellindon Street*
*Calcutta.*

*Most Respected Sir,*

*I beg to draw your kind attention that understanding from some like sources that the post of Hindi-Lecturer in the Hindi Department of the Government Degree College, Darjeeling is fallen vacant, I had already sent an application through the Principal of that College as a candidate of that post, to the Director of Public Instructions on the 2nd October, 1961. But I could not be able to get any kind reply from him. Again on the 4th November, I had sent him a reminder, but till now there is no news.*

*As regards my qualifications, I have obtained my Master and Doctorate of Philosophy's degree from the University of Agra in Hindi, and also the highest degree of `Sahitya Ratna' from All India Hindi Sahitya Sammelan, Allahabad.*

*Perhaps you remember that last year Dr. Rajendra Prasad, the President of India had written to you mentioning about me and you had kindly given me some hope. But that time there was no vacancy.*

*My birthplace is Kalimpong. After marriage I had gone to U.P. and studied as a private*

*student. In 1959, as soon as I obtained my doctorate degree, I came here and settled down permanently. My husband is an old man and severe diabetic. He is also suffering from heart desease. That is the cause why I came to stay here near my relatives who are staying in Kalimpong. I have two small school-going children whose future is in danger. There is nobody to help me, because I am from very poor family. For the last six days, my husband is suffering from high blood pressure and his brain is not in working order. We are helpless, Sir, I can not go to the other provinces because of my ailing old husband.*

*Therefore, I humbly pray you, Respected Sir, please do help me. I am an educated woman of thirty-one years old. I cannot even beg door to door. I want a suitable job for childern's sake and for my ailing husband. You are very kind-hearted person, Sir, I pray you, please do recommend me for the above-mentioned post and oblige me. For your great kindness, I shall be grateful to you for ever.*

*Please do arrange for the early reply.*

*Yours faithfully,*
*Sd/-*
*(Mrs. Kamala Sankrityayan)*

**19 नवम्बर**–आज की उनकी पंक्तियाँ इस प्रकार थीं–"आवश्यक पुस्तकों के पार्सल की रसीद कापियाँ नहीं पहुँचीं, बहुत चिन्ता है। 1. 'पालि काव्यधारा' (साहित्य अकादमी), 2. पालि साहित्य (उ. प्र. हिन्दी समिति), 3. 'हिमाचल प्रदेश', 4. हिस्ट्री आफ सीलोन' (सिंहल के वीर पुरुष), 5. तिब्बती-हिन्दी कोश।"

इनमें से कुछ पुस्तकें उन्होंने सिंहल निवास के समय लिखी थीं जो अब प्रेस में भेज दी गयी थीं, जिनकी पहुँच की खबर न आने से वे चिन्तित हो गये थे। यहीं घंटा-भर घूम लेते हैं, इससे पेट भी साफ रहता है।

**20 नवम्बर**–"यहीं घंटे-भर घूमते रहे। महत्वपूर्ण पुस्तकें नहीं प्राप्त हुईं, चिन्ता है।"

**21 नवम्बर**–"यहीं घंटा-भर टहल रहे हैं।" 22-23-24-25 नवम्बर को वे कहीं बाहर नहीं गये। घर के अहाते में ही रोज टहलने का क्रम रखा। डायरी में भी उन्होंने कोई खास बातें नहीं लिखीं।

फिर 26 नवम्बर को उन्होंने लिखा–"यहीं घूमते रहे घंटा-भर। आज रविवार को कोई डाक नहीं। देखें, कल क्या खबरें आती हैं। 1. यू. पी. हिन्दी समिति के लिखे पालि साहित्य का पत्र नहीं आया। 2. पालि काव्यधारा के लिए साहित्य अकादमी का पत्र भी नहीं आया। 3. हिमाचल प्रदेश की पहुँच नहीं आई। 4. मेरी जीवन-यात्रा (3) की भी पहुँच नहीं आई।

चाहता हूँ, छपरा, सारनाथ, वाराणसी, प्रयाग, आगरा, दिल्ली होते अमृतसर जाऊँ। हर जगह तीन-तीन दिन रहने पर अठारहवें दिन अमृतसर पहुँचेंगे। फिर तीन-तीन दिन लगेंगे। देहरादून, मसूरी, लखनऊ, सिलीगोड़ी।"

इस प्रकार पंडितजी शीतकाल की छुट्टियों के लिए बच्चों के साथ कार्यक्रम बना रहे थे। उन्होंने इस प्रकार परिवार को भी अपने साथ घुमाने का निश्चय किया था। पर वे भूल जाते थे कि उनका स्वास्थ्य अब पहले जैसा नहीं रहा। उनके शरीर की, मन की शक्ति क्षीण होती जा रही थी, इसलिए इतनी लम्बी यात्राएँ करने की अब उनमें क्षमता नहीं रह गई थी। मेरे वास्तविकता बतला देने पर उनको बुरा लगता था। डाक्टर आकर उनकी बीच-बीच में जाँच कर लेते थे।

27 नवम्बर को भी वे घर के आँगन में ही घंटा-भर टहले। इससे उनका पेट साफ रहता था। पर काश, मूत्र में चीनी बन्द हो जाती। डायबिटीज़ उनके शरीर को भीतर से खोखला बना दे रही थी। इसीलिए उनके पैरों की शक्ति भी कम होती जा रही थी। 28-29-30 नवम्बर को भी वे घर से दूर नहीं गये। अहाते में ही प्रतिदिन नियमित टहलते रहे। लोग कभी-कभी उनसे मिलने आते ही थे। घर के लोग भी उनको प्रसन्नचित्त रखने की कोशिश करते थे। बच्चे जया-जेता तो छुट्टी के समय अपने पिता से ही चिपके रहते थे।

इस बार कलकत्ता स्थित वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के स्वामी एवं पुत्रों की ओर से पंडित किशोरीदास वाजपेयी का अभिनन्दन करने का आयोजन था। इस समारोह के प्रमुख अतिथि के रूप में राहुलजी को आमंत्रित किया गया था। मार्ग-व्यय भी वे ही लोग देनेवाले थे। किन्तु वे अकेले यात्रा नहीं कर सकते थे। उनके साथ किसी को जाना चाहिए। घर में मेरे अतिरिक्त दो बच्चे छोटे-छोटे थे। अतः पंडितजी ने सपरिवार कलकत्ता जाने का निश्चय किया। इस सिलसिले में 3 दिसम्बर की डायरी में वे लिखते हैं–"यहीं टहलते रहे। कलकत्ता जाना निश्चय है। यहाँ से चारों मूर्त्तियाँ (पंडितजी, कमला, जया, जेता) विमान पर जायेंगे, और कलकत्ता से बनारस, प्रयाग, दिल्ली होते अमृतसर भी जायेंगे।"

**2 दिसम्बर (शनिवार)**–"यहीं टहलते रहे। कलकत्ता से मार्ग व्यय आयेगा जाने के लिए। 8-12 के दो-एक दिन पहले जायेंगे।"

**3 दिसम्बर**–"आज कलकत्ता से पत्र आया। कल मार्ग व्यय आ जायेगा। यहीं टहलते रहे।"

**4 दिसम्बर**–"यहीं टहलते रहे। लाइसेंस हथियार का 8-12 को ही मिलेगा। उधर 12 को हवाई जहाज से जाना होगा।"

5 दिसम्बर को डायरी में कुछ नहीं लिखा।

**6 दिसम्बर (बुधवार)**–"सबेरे घंटे-भर टहलते रहे। आज हथियार का लाइसेंस मिल गया। कलकत्ता के हवाई जहाज का टिकट भी लाये। अब सब साफ है।"

**7 दिसम्बर**–"यहीं घंटे-भर टहले। हिचकी नहीं रुक रही है। आज भी कुछ पेट-दर्द है। शिक्षा-विभाग को बार-बार कहने पर भी कमला के पिटीशन का जवाब नहीं दिया, शायद न दें तो काम के लिए कमला को उत्तरप्रदेश जाना होगा। दार्जिलिंग छोड़ देना होगा।"

(उस समय पश्चिम बंगाल में भी कांग्रेसी शासन था, विधानचंद्र राय मुख्यमंत्री थे। मेरे काम का आग्रह करते हुए राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादजी ने भी मुख्यमंत्री को लिखा था। पर कोई सुनवाई नहीं हुई। उस समय मुझे कॉलेज में नौकरी मिल गयी होती तो पंडितजी को इतना चिन्तित नहीं रहना पड़ता। किन्तु राहुलजी की पत्नी को नौकरी देने में तत्कालीन कांग्रेसी सरकार ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। इसका आघात राहुलजी के मन में बुरी तरह लगा था।

**8 दिसम्बर**–"आज पाँच बजे सबेरे घर से जा रहे हैं। दोपहर तक विमान के अड्डे पर होंगे। डायरी यहीं छोड़ रहा हूँ।"

पंडितजी के होशो-हवास में लिखी गई ये ही अंतिम पंक्तियाँ हैं।

# 10

# दुखद अध्याय का आरम्भ

## (कमला सांकृत्यायन की डायरी)

### दार्जिलिंग से कलकत्ता के लिए प्रस्थान

**8 दिसम्बर 1961 :** घर से हम लोग 5 बजे सुबह ही चल पड़े। इंडियन एयरलाइंस के आफिस से होते टैक्सी से हम लोग चले, और 10 बजे के करीब बागडोगरा एयरपोर्ट पहुँचे। कलकत्ता दोपहर दो बजे पहुँच गये। हमारे ठहरने का प्रबन्ध ताराचन्ददत्त स्ट्रीट में डाबर के मकान के तीसरे तल्ले पर था। यहाँ खाने-पीने की तकलीफ थी। इसके अलावा हृदयरोग से आक्रांत पंडितजी को सीढ़ियाँ चढ़कर तीसरे तल्ले तक पहुँचना बड़ा ही कष्टदायक था। उस रात तो हम लोगों ने वहीं रहना तय किया, किन्तु ऐसी जगह में पंडितजी को रखना खतरनाक था, कल दूसरी जगह जाना तय किया। चाय और भोजन के लिए हम सीढ़ियों से नीचे उतरे, पास के होटल में भोजन किया, फिर किसी तरह से मैंने धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ते पंडितजी को तीसरे तल्ले पर पहुँचाया। वे बहुत थक गये थे, और बच्चे भी। तीसरी मंजिलवाली उस कोठरी के बारे में स्वयं वाजपेयीजी ने लिखा था जो 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुआ था, उससे कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं :

"कमलाजी ने (राहुलजी के कहने पर) अभिनन्दन समिति को खर्च के लिए लिखा था। समिति ने पूरे परिवार का हवाई जहाज का भाड़ा भेज दिया।

"राहुलजी सदा डाबरवालों के यहाँ ठहरते हैं। अभिनन्दन समिति को सूचना भी न दी और सीधे डाबरवालों के यहाँ चले गये। मैंने जोशीजी से फोन करके पता लगाने को कहा। पता लगने पर जोशीजी, वैद्य रामनारायण और मैं तीनों गये। देखा, कई मंजिल ऊपर एक-दो कमरे में दरी फर्श पर बिछाये दोनों बैठे हैं। बच्चे सो रहे थे। वहाँ न कोई नौकर न कोई आदमी। हम लोग देखकर स्तब्ध रहे गये। शौच तक की समुचित व्यवस्था न थी। जोशीजी ने कहा—आपको यहाँ असुविधा है, 'जनवाणी' चल सकते हैं। कमलाजी खुश हो गयीं और तुरन्त 'अच्छी बात है' कहा। (कमलाजी को पंडितजी को कष्ट में देखकर बहुत दुःख हो रहा था, इसीलिए उस तीसरी मंजिल से पंडितजी को दूसरे स्थान में ले जाने के लिए तैयार हुई थीं।)

"फिर गाड़ी लेकर राहुलजी को 'जनवाणी' हम लोगों ने बुला लिया। वहाँ स्थिति एक दिन ठीक रही, फिर बिगड़ी। जनवाणी प्रेस वैद्यनाथवालों का है। खूब सेवा की। वैद्यनाथवालों से राहुलजी का पहले कोई परिचय नहीं था। अस्पताल में भर्ती कराने के लिए उन्हें कई दिन दौड़-धूप करनी पड़ी। बच्चे उन्हीं के परिवार में रहे। उन लोगों ने खर्च भी खूब किया।"

8 दिसम्बर की रात को ही हम लोग 'जनवाणी' प्रेस के भवन में रहने चले गये। वहाँ रहने का कमरा अच्छा मिला और सीढ़ियाँ चढ़ने की जरूरत नहीं थी। पंडितजी थके-थके सुस्त-से थे। वैद्यनाथवालों ने उनकी

डाक्टरी जाँच करा दी। उस दिन उनका ब्लड-प्रेशर 225/120 पहुँच गया था। दूसरे दिन-भर उन्हें आराम करने को कहा गया।

**वाजपेयी अभिनन्दन समारोह :** 10 दिसम्बर को पंडित किशोरीदास वाजपेयीजी का अभिनन्दन-समारोह हुआ। इसमें भाग लेने के लिए वाजपेयीजी का परिवार भी आया हुआ था। साथ ही देहरादून से पंडित गयाप्रसाद शुक्ल, कानपुर के श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी तथा शम्भुरत्न त्रिपाठी एवं दिनकरजी आये हुए थे। इन सब लोगों से मिलकर पंडितजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। पर आज भी उनकी शारीरिक स्थिति पूर्ववत् थी। समारोह में उनको मुख्य अतिथि बनाया गया था, किन्तु वे अधिक बोल न सके। मेरी नजर बराबर उन पर लगी हुई थी, वे बहुत बीमार लग रहे थे। समारोह में भीड़ भी बहुत अधिक थी। वाजपेयीजी के अभिनन्दन-स्वरूप थैली भी भेंट की गयी थी। कार्यक्रम समाप्त हो जाने के बाद हम सब 'जनवाणी' में चले आये। उनसे मिलने के लिए लोग दो दिन पहले से ही बराबर आ रहे थे। श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा और हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के श्री बेरीजी भी आये थे। आज उनकी अवस्था को देखकर मेरा मन आशंकित था।

अभी तक पंडितजी को आशा थी कि कमला को दार्जिलिंग गवर्नमेंट कॉलेज में नौकरी मिल जायेगी। मैंने एक से अधिक आवेदनपत्र भी दे दिये थे, परन्तु अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला था। ये चिन्ताएँ उनको व्यथित कर रही थीं। ऊपर से कलकत्ता में ज्यादा मिलनेवाले लोगों से बातें करते-करते वे क्लान्त हो गये थे।

11 दिसम्बर को 'जनवाणी भवन' में प्रेस कान्फ्रेन्स था। परन्तु पंडितजी बोल नहीं सके। दूसरे-दूसरे लोग ही बोले। पत्रकार सम्मेलन समाप्त हो जाने पर पंडितजी रहने के कमरे में आये। वहाँ पर भी लोग उन्हें घेरे हुए थे। कोई शोध प्रबन्ध की रूपरेखा के बारे में पूछ रहे हैं तो कोई दूसरे-दूसरे सवाल पूछ रहे हैं। बातों-बातों में पंडितजी ने कमला के दार्जिलिंग गवर्नमेंट कालेज में हिन्दी अध्यापक पद के लिए आवेदनपत्र देने की चर्चा की तो वहाँ बैठे हुए दो व्यक्तियों में से एक ने कहा कि दार्जिलिंग के सरकारी कॉलेज में तो हिन्दी अध्यापक की नियुक्ति हो गई है। श्री सदानन्द सिंह जी अब मार्च से वहाँ पढ़ाने लगेंगे। यह समाचार सुनकर पंडितजी को बहुत ही निराशा हुई। मन विचलित हो गया। भविष्य की चिन्ता उन्हें सताने लगी। उनको मालूम था कि कांग्रेस सरकार उनकी पत्नी के लिए एक छोटी-सी नौकरी का भी प्रबन्ध नहीं कर सकती। क्या पता कम्युनिस्ट राहुल से इसी प्रकार बदला लेना चाहती हो तत्कालीन कांग्रेसी सरकार। पर यह बहुत ही बुरा हुआ, पंडितजी के मन-मस्तिष्क पर इसका बहुत ही आघात लगा। रात के 9 बजे तक लोग बैठे हुए थे। मैंने सबको वहाँ से विदा कर दिया। रात्रि भोजन के बाद मैंने उनको बिस्तर पर लिटा दिया। वे हम तीनों से बातचीत करते रहे थे। अच्छी बातें कीं उन्होंने। मैंने उनको लिटाते हुए कहा—"आपको कुछ नहीं हुआ है, बस थोड़ा रक्तचाप बढ़ा है। आप स्वस्थ हो जायेंगे। अब आप आराम के साथ सो जायें।" वे बोले, "अब तुम लोग भी सो जाओ, मैं भी सो जाता हूँ।" 10 बजे तक वे बिस्तर पर लेट चुके थे।

(संज्ञा रहते समय तक का अंतिम वाक्य यही था।)

**मस्तिष्क में स्ट्रोक :** रात के 12 के करीब कुछ आहट-सी हुई, मैं तुरन्त जाग गई। देखा, तो पंडितजी बिस्तर पर नहीं हैं। घबराहट हुई मुझे और रोशनी जलाकर देखा—वे बाथरूम के पास खड़े हैं, आँखें खुली हैं, पर उनको दिखाई नहीं दे रहा है, दरवाजा टटोल रहे हैं। मैं पूछती हूँ—"कहाँ जा रहे हैं आप ? बाथरूम जाना है ?" पर वे जो बोले—एक भी शब्द समझ में नहीं आया। रात को लोगों को जगाऊँ भी तो कैसे ? किसी तरह उनको सहारा देकर बिस्तर पर ले आई और धीरे से लिटा दिया। कम्बल उन पर ओढ़ा दिया। फिर हमें लगा कि उन्हें नींद आ गई है। पर वास्तव में वे संज्ञाहीन हो गये थे।

12 दिसम्बर का सबेरा हुआ। घर के लोगों को बुलाया, घबराहट के मारे हमारी हालत खराब हो रही थी। वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मालिक ने डॉक्टर को तुरन्त बुलवाया, उन्होंने पंडितजी की जाँच की। उन्हें होश नहीं आ रहा था। डॉक्टर ने बतलाया कि उनको रात को ही स्ट्रोक हो गया है। वे ऐसे संज्ञाहीन हो गये थे कि उन्हें पेशाब आदि तक का भी होश नहीं रहा।

12 दिसम्बर को भी पूरे दिन वे संज्ञाहीन रहे। करनानी मेमोरियल अस्पताल (पुराना पी. जी. अस्पताल) के डॉक्टर प्रोफेसर जे. सी. गुप्त ने घर में आकर उनकी जाँच की और पाया कि पंडितजी का रक्तचाप बहुत अधिक है। डॉ. गुप्ता के प्रयत्न से ही उनको करनानी मेमोरियल हस्पताल में ले जाने का इन्तिजाम किया गया। 11 दिसम्बर की रात से 22 दिसम्बर तक वे संज्ञाहीन रहे। डाक्टरी चिकित्सा चलती रही। कभी रक्तचाप पर नियंत्रण होता तो मूत्र में चीनी की वृद्धि हो जाती। दिन में उन्हें कई-कई इंजेक्शन लग रहे थे। 23 दिसम्बर को उनकी E. C. G. रिपोर्ट में लिखा था–E.C.G. shows mild generalized abnormality with some focal changes over left promoter region.

हम (जया, जेता और मैं) वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मालिक श्री बनवारीलाल शर्मा के घर गुप्ता लेन, (जोड़ासांकू) में चले आये थे। अब हमारी स्थिति डाँवाडोल थी। परदेश में थे, ऊपर से हमारे मालिक ही अस्वस्थ हो गये, संज्ञाहीन हो गये। हमारे ऊपर क्या बीत रही थी, यह हम ही लोग जानते थे। हमारी इस पीड़ा और घबराहट में वैद्यनाथवालों ने बहुत सांत्वना दी, हम लोगों का बहुत ख्याल रखा। जोड़ासाकू (चितपुर) से करनानी मेमोरियल अस्पताल बहुत दूर पड़ता था। अस्पताल आने के लिए गाड़ी की दिक्कत थी। किसी प्रकार हम अस्पताल प्रतिदिन जा रहे थे। 19 दिसम्बर को मैंने भारत के राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी को पंडितजी की बीमारी के बारे में लिखा। डाबर कम्पनी के श्री अशोक बाबू रास्ते में मिल गये थे, पर कुछ खास बातें नहीं हुई।

पंडितजी की संज्ञाहीन अवस्था को देखकर मैं बहुत-बहुत घबरा रही थी। 23 दिसम्बर को उनको होश आया, परन्तु वे सब कुछ भूल चुके थे। अस्पतालवाले जटिल रोगी के पास छोटे बच्चों को आने नहीं देते थे। पर डॉक्टर जे. सी. गुप्त ने कल से बच्चों को ले आने की इजाजत दे दी। वे देखना चाहते थे कि पंडितजी बच्चों को पहचान सकेंगे या नहीं। वे धीरे-धीरे हम तीनों को पहचानने लगे, पर हम तीनों का नाम वह भूल चुके थे। मेरे एक चचेरे बड़े भाई भवानीपुर मुहल्ले में रहते थे। मैं सुबह बच्चों को लेकर अस्पताल आती, 12 बजे तक रहकर भवानीपुर चली जाती पैदल ही। हम दिन का खाना वहीं खा लेते। फिर शाम को विजिटिंग आवर में अस्पताल चले जाते। रात को वैद्यनाथ की गाड़ी आती, उसी से हम लोग करीब 8 बजे डेरे पर लौट जाते।

25 दिसम्बर को, मैंने अपनी डायरी में लिखा : "सबेरे अस्पताल गये। पंडितजी दुर्बल हो गये हैं। बैठने में उनको बहुत कष्ट हो रहा था। शाम को जया-भैया (जेता) को लेकर फिर उनको देखने गई। कमजोर लग रहे थे। नर्स-बेयरा सब गायब। दवा-दारू कुछ नहीं। मन खीझ उठा। इतना रुपया खर्च हो रहा है, पर देखभाल कुछ नहीं। उनकी स्मृति न लौटने से और भी चिन्ता हो रही है।"

26-27 दिसम्बर को भी उनकी अवस्था पूर्ववत् रही। रक्तचाप घटता-बढ़ता रहता। 28 को ज्यादा रक्तचाप रहने से वे खामोश थे। 29 को रक्तचाप कुछ कम हुआ। पर वे बहुत अधिक बोले, अंटसंट। चुप कराने पर भी चुप नहीं हुए। उनकी बीमारी की खबर अखबारों में छप गई थी, इसलिए लोग चिन्तित होकर पत्र लिखने लगे। कुछ-कुछ लोग दिन में भी आते। पर पंडितजी के केबिन के बाहर नोटिस टँग गया था–Visitors not allowed. पार्टी आफिस से डाक्टर महादेव साहा को अस्पताल में भेजा गया था। इसलिए जब हम लोग सुबह की विजिट के बाद दोपहर को घर चले जाते तब डाक्टर साहा आकर पंडितजी के पास बैठते। दिन और रात के लिए दो नर्सें रखी गयी थीं। दो बेयरे भी थे। हम लोग (जया-जेता-मैं) कभी दोपहर को भवानीपुर में अपने भाई के यहाँ जाते, कभी खाना खा लेते अस्पताल के कैन्टिन में। कभी-कभी चना-चबेना खाकर दिन-भर अस्पताल ही में रहते। हमारी तो दुनिया ही सूनी हो गई। परदेश में किसी के घर में मेहमान बनना, हमें बहुत संकोच होता था, पर और कोई उपाय भी नहीं था।

**30 दिसम्बर को मैंने लिखा :** "आज पंडितजी बिल्कुल खामोश रहे। रक्तचाप फिर अधिक हो गया। कब ठीक होंगे, नहीं कहा जा सकता। बड़ी चिन्ता हो रही है। आज हम लोगों ने खाना भवानीपुर में खाया। पंडितजी

को कल से पूरा खाना दिया जा रहा है। **31 दिसम्बर :** "आज वे बहुत अधिक बोले। बीच-बीच में कहते–'मुझे क्या हो गया ? मैं कुछ नहीं समझता।' फिर रोने लग जाते। उनको देखकर हमें बहुत दुःख होता है। मित्रों को देखकर भी वे रोने लग जाते हैं। बहुत ज्यादा बोलते हैं, पर बोली स्पष्ट नहीं है।'

इस प्रकार 1961 का वर्ष हम लोगों के लिए दुःख ही दुःख में बीत गया। अब तो उनको ऐसी बीमारी लग गई थी कि ठीक होने की आशा ही क्षीण हो गई। आर्थिक अवस्था पहले से ही डगमगा रही थी, पर अब उनको चिकित्सा के लिए बड़ी रकम की आवश्यकता पड़ गई। अस्पताल में हम परदेशियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव तो नहीं हो रहा था, पर मरता क्या न करता। पंडितजी का इलाज तो करवाना ही था। डॉक्टरों ने देखा कि शायद हम अस्पताल का भारी बिल चुका न सकेंगे, अतः मुझे डॉक्टर जे. सी. गुप्ता ने कहा–"यहाँ इलाज कराने पर खर्च बहुत ज्यादा पड़ेगा। प्राइवेट केबिन में तो और भी ज्यादा लगेगा, क्योंकि वहाँ दिन-रात के लिए दो नर्सें, दो बेयरे, स्वीपर आदि रखना अनिवार्य है। अगर आप चाहें तो हम उनको जेनरल वार्ड में कुछ दिन रख लेंगे।" मैं जेनरल वार्ड को देखने गई, जहाँ रोगियों की भीड़ खचाखच भरी हुई थी। मैंने अस्वीकार कर दिया। केबिन में नर्स, केबिन का किराया, बेयरा, दवाई आदि मिलाकर प्रति दिन 80 रुपये का खर्च पड रहा था। जेनरल वार्ड में 60-70 रोगियों के लिए एक ही नर्स रहती है। मैंने डाक्टर को यही कहा कि पंडितजी केबिन में ही रहेंगे। मैं दार्जिलिंग का घर बेचकर अस्पताल के बिल का भुगतान कर दूँगी। वैद्यनाथवालों ने भी डॉक्टर को समझाया। तब पंडितजी केबिन में चार महीने तक रह सके। इस बीच बहुत-से हमारे हितैषियों ने हमारी आर्थिक सहायता की थी।

## वर्ष 1962 : रोगशैया पर राहुलजी

**कलकत्ता : सेठ करनानी मेमोरियल अस्पताल में नये वर्ष का प्रथम दिन :** "हमारे लिए कोई हर्ष नहीं। 1961 का वर्ष कष्ट और चिन्ताओं में बीता। वे (पंडितजी) बराबर बीमार रहे। आज के दिन भी वे यहाँ अस्पताल में हैं। घर का मालिक जब अस्वस्थ हो तो उसके आसरे में रहनेवाले लोगों को खुशी कहाँ से होगी। कहाँ तो हम दो दिन के लिए यहाँ कलकत्ता आये थे, और कहाँ अब एक महीना हो रहा है। आज अस्पताल जाने में देर हो गई गाड़ी न मिलने के कारण। पहुँची, आशंका थी कि शायद उनका प्रेशर बढ़ गया हो, किन्तु वे ठीक थे, धाराप्रवाह बोल रहे थे। बेचारे सब कुछ भुल चुके हैं, कुछ याद नहीं कर सकते। 12 बजे डेरे पर लौट आई। 4 बजे शाम को फिर अस्पताल गई, वे मुझे देखकर रो पड़े। उनका रोना मुझसे देखा नहीं जाता। वैसे उनकी हालत पहले से कुछ सुधर रही है। आज उन्होंने 100 तक की गिनती भी की। कब ठीक होंगे, कहा नहीं जा सकता। लोगों की चिट्ठियाँ उनकी बीमारी के बारे में जानने के लिए बराबर आती रहती हैं। अभी बच्चों की पढ़ाई भी बन्द हो गई है।"

**2 जनवरी :** "सबेरे 9 बजे हम तीनों अस्पताल गये। विद्यालंकार विश्वविद्यालय के लाइब्रेरियन रेवरेण्ड प्रज्ञाश्री (जो इस समय विश्वभारती में हैं) अपने एक भिक्षु साथी के संग पंडितजी को देखने आये। पंडितजी आज भी खूब बोल रहे थे, वही अकबक। कोई सेन्स की बात नहीं करते। मित्रों को देखकर रोने लगते हैं। हम लोग शाम को 4 बजे फिर अस्पताल गये। वे उसी तरह बोल रहे थे। थोड़ी देर बाद श्री देवप्रिय बलिसिंह (महाबोधि सोसायटी) आये। उनको देखकर भी पंडितजी रोने लगे। उन्हें बीच-बीच में महसूस होता है कि वे बीमार हैं और सब कुछ भूल गये हैं। लिखने-पढ़ने की बातें करते हैं। बेचारे, उनकी हालत देखकर बड़ा दुःख होता है।

"पश्चिम बंगाल सरकार की ओर से पत्र मिला है। 10 रुपया प्रतिदिन के हिसाब से वह अस्पताल का खर्च देंगे। इससे क्या बनेगा, जबकि रोज का खर्च 80 रुपया है। रुपयों की चिन्ता है, कहाँ से लायें। चिट्ठियाँ बहुत-सी आ रही हैं, सबको जवाब देती जा रही हूँ।"

**3 जनवरी :** "सबेरे अस्पताल गयी, बच्चे भी साथ गये। पंडितजी की अवस्था वैसी ही है। आज मालूम हुआ कि उनका ब्लड सुगर फिर अधिक हो गया है, अब खाना कम करवा रहे हैं। बहुत कमजोर हो गये

हैं, तब भी बोलते रहते हैं। बार-बार पूछते हैं–‘‘कितना साल ? कौन संवत ? कौन दिन हो गया ?’ लिखने-पढ़ने की बातें करते रहते हैं।

‘‘सहारनपुरवाले श्री विश्वनाथ मिश्र आये थे शाम को। सबेरे श्रीमती रमादेवी जैन की ओर से श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन आये थे। मेरे लिए फरिश्ता आ गये। बातचीत के दौरान ही वे मेरी मुश्किलों को ताड़ गये और 500 रुपया लाकर मुझे दिया। कृतज्ञ हूँ। दूसरे लोग डींग हाँकते हैं और जब मदद माँगू तो राष्ट्रपति और भारत सरकार का रास्ता बतला देते हैं। ऐसे लोगों के सामने अपना दुखड़ा रोना व्यर्थ है।’’

**4 जनवरी :** ‘‘अस्पताल गये सुबह-शाम। वे उसी तरह से हैं। पहिले से बहुत अधिक बोलते हैं, जबकि अधिक बोलना मना है। खाना अब अपने ही हाथ से खाते हैं। अभी डॉक्टर टी. के. घोष आये नहीं। जब तक वह नहीं देख लेते, तब तक कुछ कह पाना कठिन है। पत्र कई जगहों से आते रहते हैं। जया-जेता मुझे बहुत परेशान करते हैं। पढ़ने-लिखने की ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। यहाँ से मन ऊब गया है, कहाँ जायें ?’’

**5 जनवरी :** ‘‘अस्पताल सबेरे-शाम गये। वे खूब बोलते रहते हैं। वही बहकी-बहकी बातें करते रहते हैं। आज डॉक्टर घोष नहीं आये, कल आने की बात है। डॉक्टर भौमिक (हाउस सर्जन) से कह रखा है। जया-जेता ने नाक में दम कर रखा है, पढ़ते-लिखते नहीं।’’

**6 जनवरी :** ‘‘सभी कुछ वैसा ही चल रहा है, उनका। बोलना कम करते नहीं, इसलिए शाम को प्रेशर बढ़ जाता है। आज डॉ. घोष उनको देख गये हैं। एक बार और ई. सी. जी. होगा तब बतलायेंगे। यहाँ से हम ऊब गये हैं, पर रहना जरूरी है। अब हमारी जिन्दगी में विकट समस्या आ गई है। कैसे जया-जेता का पालन-पोषण करूँगी, समझ में नहीं आता।’’

**7 जनवरी :** ‘‘सबेरे 10 बजे अस्पताल गये। गाड़ी मिलने में दिक्कत हुई। यहाँ (डेरे पर) मेहमान बहुत आये हुए हैं। घर में लड़का जो हुआ है। वे (पंडितजी) आज सोये रहे, अच्छा है, शाम को भी अधिक नहीं बोले। अब कल उनके खोपड़ी का एक्स-रे होगा, तब मालूम होगा। ऑपरेशन करना हुआ तो बड़ी दिक्कत की बात है। और न जाने कितने दिन उन्हें अस्पताल में रखना होगा।

‘‘पैसे खत्म हो रहे हैं, अब और परेशानी है। यहाँ की गृहस्वामिनी मेटरनिटी होम में गई हैं, इसलिए नौकर लोग तो हम लोगों की उतनी परवाह नहीं करते। फिर भी बेशरम होकर भी रहना ही पड़ रहा है, और कहाँ जायें ? अशोक बाबू (डाबर) आज श्री बी. एल. शर्मा से मिलने आये थे। थोड़ी-सी बात हुई। और कुछ नहीं कहा।’’

**8 जनवरी :** ‘‘दोनों समय अस्पताल गये। आज उनका एक्स-रे नहीं हुआ। पैसे की चिन्ता फिर पड़ गई है। कैसे कहाँ से आयेगा ? बड़ी दिक्कत है।’’

**9 जनवरी :** ‘‘उनकी हालत आज ज्यादा अच्छी रही। ब्लड-सुगर 100 एम. सी. और प्रेशर 145 रहा। होश की बातें बहुत कर रहे थे। यह शुभ लक्षण है। एक्स-रे हुआ। कल कार्डियोग्राम होगा। कब तक यहाँ रहना होगा, कहना मुश्किल है। आज वे घर चलने को कह रहे थे। पैसा समाप्त हो रहा है।’’

**10 जनवरी :** ‘‘अस्पताल गये। आज भी वे घर जाने के लिए जिद करने लगे। समझाना कठिन हो गया। उनका ब्लड प्रेशर अभी तक नार्मल नहीं हुआ। हद से ज्यादा बोलने के कारण उनका प्रेशर बढ़ जाता है। उन्हें चुप कराने के लिए कठिन प्रयत्न करते हैं, तब भी चुप नहीं होते, जिससे उनका नुकसान हो रहा है। ब्लड-सुगर अभी नार्मल हो गया है, इसलिए भूख-भूख करने लगे हैं। कुछ दिन और शांति से रहते तो प्रेशर डाउन हो जाता। पर वे समझ नहीं सकते। स्मरणशक्ति तो समाप्त हो गई है। पता नहीं कब ठीक होंगे। उन्हें ट्यूमर नहीं है, ऐसा सुना गया।

‘‘आज के ‘हिन्दुस्तान’ में उनके बारे में छपा है, दान माँगा गया है मेरे पते पर भेजने के लिए। मैंने तो जिसको अपना समझकर लिखा (स्वामी हरिशरणानन्दजी को) उसने टका-सा जवाब दिया। और किसी से माँगने की हिम्मत नहीं होती। अब पास के रुपये खत्म हो चले हैं। कोई पूछता तक नहीं शिष्टाचार के लिए

भी। लोग डरते हैं।"

**11 जनवरी :** "सबरे गये अस्पताल। वे सो रहे थे। 11 बजे जगे। ब्लड प्रेशर 130/84 था, पर दिमागी हालत वही। एक्स-रे का फोटा आया, पर किसी ने उसके बारे में ठीक से नहीं बतलाया। घर आये, खाना खाकर डेढ़ बजे के बाद फिर सीधे अस्पताल गये। बच्चे तो रोज ही मेरे साथ जाते हैं। मालूम हुआ कि मेरे पीछे श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन आये थे। 100 रुपया छोड़ गये हमारे लिए। कल मिलने के लिए कहा है। पैसा तो चाहिए ही मुझे। पैसे की ही पूछ है सब जगह। बम्बई से श्री पदमकुमार जैन भी आये उन्हें देखने के लिए। बच्चों को मिठाई वगैरह खिलाया।"

**12 जनवरी :** "आज दोनों समय अस्पताल गये। बहुत अधिक बोलने से उनका ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है, पर वे चुप नहीं होते। दोस्त लोग उनके सामने आकर बैठ जाते हैं और उनको देखते ही पंडितजी फौरन बोलने लग जाते हैं। लोगों में जरा भी समझ नहीं है, यह देखकर हैरानी होती है। सबेरे श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन आकर रुपये दे गये। उनसे कुल 1000 रुपये मिले। कर्ज है या सहायता, कुछ नहीं कहा। यहाँ से मन ऊब गया है पर क्या करें, मजबूरी है।"

**13 जनवरी :** "दोनों समय अस्पताल गये। उनके लिए एक जोड़ी चप्पलें खरीदीं। जया भैया श्री पदमकुमार जैन के संग पिक्चर देखने गये। आज ही पंडितजी के भतीजे उदयनारायण पाण्डे और भाई श्री श्यामलाल जी आये। पंडितजी की बीमारी के प्रोग्रेस को देखकर शायद उतनी तसल्ली न हुई होगी, पर हम करें क्या, हमारे हाथ में तो है नहीं। डॉक्टर घोष ने आज विज़िट नहीं किया, जानकर बहुत निराशा हुई। अब तो गरमी मालूम होने लगी है। यहाँ के घर में अतिथियों की भीड़ जमा हो गई है, बड़ा संकोच होता है हमें।"

**14 जनवरी :** "दोनों समय अस्पताल गये। वे उसी तरह बातें करते रहते हैं। 'चाय पिलाओ', 'खाना खिलाओ' अपने होश रहते वे इसी प्रकार मित्रों का सत्कार करते थे। अभी तक उनकी स्मृति नहीं लौटी। आज इतवार होने से यहाँ खूब भीड़ रही। सबेरे भवानीपुरवाले हमारे भाई सपरिवार आये। उदयनारायण बाप-बेटे दोनों आज ही चले गये। बतलाया कि श्रीमती रामदुलारी देवी (राहुलजी की पहली पत्नी) यहाँ आना चाहती हैं। आकर क्या करेंगी ? रोयेंगी, और क्या ? और मैं उनको कहाँ ठहराऊँगी ? श्रीमती कल्पना जोशी भी आई थीं, वृद्धा हो गयी हैं। आज के अखबार में पढ़ा कि कल रात्रि को हृदयरोग के दौरे के कारण कामरेड अजय घोष की मृत्यु हो गई। कैसा घातक रोग है यह। हमारे पंडितजी को इसकी उतनी शिकायत नहीं है, जितनी स्मृतिहीनता की। श्री पदमकुमार जैन भी आये।"

**15 जनवरी :** "दोनों समय अस्पताल गये। 11 बजे श्री पदमकुमार जैन के संग डॉक्टर टी. के. घोष से मिलने गई। बात हुई, डॉक्टर ने बतलाया–पंडितजी के दिमाग के बायें हिस्से में कुछ एबनारमेलिटी (Abnormality) है, जिसे शल्यक्रिया से ठीक किया जा सकता है। परन्तु वे कमजोर हैं, साथ ही उम्र भी अधिक है, इसलिए डॉक्टर ऑपरेशन नहीं करना चाहते। अब उन्हें प्रसन्न रखकर–किसी प्रकार का बोझ दिमाग पर न रखकर ही उनको ठीक किया जा सकता है। हर हालत में उनको चिन्ताओं से मुक्त रखना होगा। पर यह कैसे सम्भव होगा ? बेचारे इस उम्र में अपने छोटे बच्चों के भविष्य का ख्याल कर चिन्तित होते रहते हैं। बात भी सच है, आर्थिक कठिनाइयाँ बनी रहती हैं। इस उम्र में आकर उन्हें इतनी चिंताएँ सहनी पड़ रही हैं। उनकी हालत देखकर, अपनी स्थिति को देखकर आज मुझे बड़ा रोना आया है। कैसे मैं उन्हें चिन्तामुक्त रखूँ ? समझ में नहीं आता।

"श्री पदमकुमार जैन ही पंडितजी के एकमात्र ऐसे मित्र मिले जो सुख में ही नहीं, दुःख में भी मित्रता रखते हैं, सहायता करते हैं। मेरी परेशानियों को भाँपकर उन्होंने मुझे 1000 रुपया अपने आप दिया और जो अपने को राहुलजी का हितैषी मित्र समझते हैं और जो सम्पन्न हैं, वे कौड़ी को भी नहीं पूछते।"

**16 जनवरी :** "अस्पताल दोनों समय गये। शाम को घर की मोटर नहीं मिली, टैक्सी से गये। वैसी ही अवस्था है उनकी। स्मृति समाप्त हो जाने से उनकी अवस्था करुणाजनक हो गई है। डॉक्टर कहते हैं कि उनकी अवस्था अपने आप ही ठीक हो जायेगी, किंतु मुझे आशा नहीं होती। डॉक्टर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री (मेरठ)

के सुपुत्र 100 रुपया दे गये। अखबार में मय पते के खबर छप जाने से चंदे के पैसे आ रहे हैं। पर मैंने तो किसी को चंदा उठाने को नहीं कहा था। बाद में जब उन्हें स्थिति मालूम हो जायेगी तो कितना दुःख होगा। लोग बड़े नासमझ हैं।

"यहाँ से हमारा मन ऊब गया है। चले जाने की इच्छा होती है। पर कैसे जायें ? कहाँ जायें ? अब जिन्दगी बड़ी समस्यापूर्ण हो गई है। न कोई काम न धन्धा, दो बच्चों की परवरिश भी करनी है, कैसे समस्या हल होगी, समझ में नहीं आता।"

**17 जनवरी :** "आज भी सुबह-शाम दोनों समय अस्पताल गये। शाम को हमें गाड़ी की प्रतीक्षा करते हुए ड्राइवर ने देखा, बड़बड़ाने लगा। मन में तीर की तरह चुभ गया, कोई उपाय भी नहीं। रोज टैक्सी को देने के लिए पैसे कहाँ से आयेंगे ? हम जैसे साधारण-स्थिति के लोगों के लिए कितना कठिन है यह। नजदीक में कोई जगह भी नहीं है रहने की, क्या करें। मामला उलझता ही जा रहा है।

"उनकी स्थिति वैसी ही है। आज घर जाने की जिद कर रहे थे। पर अभी तो एक महीना और रहना है उनको। अपना नाम भी उन्हें नहीं मालूम, बताने पर भी वे उच्चारण नहीं कर सकते। अपनी अवस्था का ज्ञान होते ही वे कातर होकर रोने लगते हैं। ठीक होंगे कि नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता।

अब हमारे ऊपर असली विपत्ति आ गई है। मुझे अभी नौकरी नहीं मिली। दार्जिलिंग छोड़कर अब कहाँ रहूँ। बच्चे वहीं पढ़ रहे हैं, उन्हें कहाँ ले जायें अब ? आमदनी का जरिया कुछ भी नहीं है। किताब महल से रुपये मँगाये, पर उसने जवाब तक नहीं दिया। हृदयहीन हैं लोग।"

रोज-रोज और दोनों समय अस्पताल न जाने पर हमें घबराहट होती थी। न जाने उनकी कैसी हालत होगी, क्या कर रहे होंगे ? दवा का सेवन ठीक से कर रहे हैं या नहीं ? और उधर वे भी हमारे लिए रास्ता देखते रहते थे। औरों को तो वे ठीक से पहिचान नहीं पाते, पर हम तीन व्यक्ति–जया, जेता और मुझ को ही वे पहिचानते थे। इसलिए भी प्रतिदिन दोनों समय हमें उनके पास रहने के लिए अस्पताल जाना पड़ता था। अस्पताल और जोड़ासांकू की दूरी बहुत लम्बी, पैदल तो जा ही नहीं सकते। कितनी ही बार गाड़ी या ट्राम से और पैदल भी हम तीनों उनके पास जाते रहे थे। पैदल चलते छोटे बच्चों को बड़ी तकलीफ होती थी, पर और कोई चारा नहीं था परदेश में।

**18 जनवरी :** "दोनों समय अस्पताल गये। सबेरे टैक्सी से जाना पड़ा। शरीर अस्वस्थ था हमारा, ऐसे समय इधर-उधर जाने में तकलीफ होती थी। पर क्या करें ? जब हम पहुँचे वे सो रहे थे। उनकी अवस्था वैसी ही है। बेचारे सोचते रहते हैं, अपना नाम भी भूल गये हैं। जीवन के शेष क्षणों में उन्हें ऐसी यातनाएँ सहनी पड़ रही हैं। उनको देखकर अपना कलेजा फटता है। बीमारी में भी हम तीनों की चिन्ता करते रहते हैं। काश, उनकी स्मरण-शक्ति पुनः लौट आती। अपनी दयनीय अवस्था का अनुभव करके वे रो देते हैं।

"श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन आये। अस्पताल और दवाओं के खर्च का हिसाब माँग रहे थे, हमने दे दिया। यहाँ से मन ऊब गया है, गरमी भी लगती है, पर अभी चार सप्ताह और रहना है। क्या सोचकर आये थे और क्या हो गया ?"

**19 जनवरी, शुक्रवार :** "दोनों वक्त अस्पताल गये। वे वैसे ही हैं। अपनी स्मरणशक्ति के लिए बहुत झुँझलाते हैं। घर जाने की बात करते हैं। गुस्सा भी बहुत करने लगे हैं। प्रतीत होता है हमें परेशानियों से कभी छुट्टी नहीं मिलेगी। बच्चे भी अलग परेशान करते हैं। परदेश में मेरे साथ बच्चे भी कष्ट भोग रहे हैं। बच्चों का दिल लगाना भी जरूरी। दोपहर बाद ट्राम से एसप्लेनेड गये, फिर वहाँ से न्यू मार्केट तक पैदल ही गये। उधर से पार्क सर्कस होते अस्पताल गये। दिन का समय बिताना बहुत मुश्किल मालूम होता है। अस्पताल के अन्दर बैठे रहने की अनुमति नहीं है। जया-जेता के साथ पैदल चलते-चलते मैं भी बहुत थक गई। अस्पताल में विज़िटिंग आवर में ही बाहरी लोगों को जाने देते हैं, इसी कारण हम लोग शाम को ही आ सकते थे। दोपहर के खाने के समय जोड़ासांकू जाना हम लोगों के लिए कठिन हो गया, गाड़ी की समस्या। इसलिए दोपहर का समय हम लोग इसी तरह अस्पताल के आसपास घूमते या बैठे रहते।"

उधर उनका रक्तचाप फिर ज्यादा रहने लगा। ऐसे में उनका पारा गरम रहता, बहुत गुस्सैल हो जाते थे। उनको शांत करना सबके लिए टेढ़ी खीर थी। 20 और 21 जनवरी को भी वे उसी तरह बेचैन और गुस्सैल हो गये। "मूड़ बिगड़ा हुआ था उनका। घर जाना चाहते हैं, पर अभी कैसे ले जायें। अस्पताल से छुट्टी मिले तभी तो ले जा सकते हैं। स्मरणशक्ति ठीक नहीं हो रही। वह चाहते हैं कि मैं 24 घंटे उनके पास बैठी रहूँ। मैं भी यही चाहती हूँ, पर डॉक्टर लोग इजाजत दें तभी न। अस्पताल का नियम हम लोग तोड़ नहीं सकते। अफसोस कि राहुलजी यह सब समझ नहीं पाते। नर्स से पता चला कि उनका मूड बिगड़ा हुआ है। दिन में चारपाई से उठकर भाग गये थे, गुस्सा हुए नर्स पर। समझने की शक्ति भी खतम हो गयी है उनकी।"

हम लोगों को भी सर्दी-जुकाम और बुखार ने परेशान कर रखा था, फिर भी हम लोग नियमित रूप से पंडितजी के पास जाते रहे। इन्फ्लुएंजा ने हम तीनों को बीमार बना दिया, पर आराम कहाँ !

**सोमवार, जनवरी 22 :** "अस्पताल गये। वे गुस्से में थे, हम से बोले ही नहीं। आधे पागल को क्या कहकर समझाया जाये। बात तो अब उनकी समझ में ही नहीं आती। साढ़े 12 बजे मिसेज सेनगुप्त नाम की कोई अपरिचित ऊँचे कदवाली महिला हमें अपनी कार से घर छोड़ गयीं। बड़ी दयालु महिला थीं। फिर दोपहर को तीन बजे हम लोग ट्राम से आये। आज ट्राम में उतनी भीड़ नहीं थी, आराम से आये। शाम को उनके केबिन में कुछ दोस्त जमा हो गये। वे खूब बोलने लग गये, पर वही अस्पष्ट वाणी।"

**मंगलवार, 23 जनवरी :** "गये दोनों समय अस्पताल। उनका मूड खराब रहने लगा है। इस तरह तो वे ठीक न हो पायेंगे। प्रेशर फिर बढ़ा है, हरदम मरने की बात करते हैं।

"दोपहर में हम लोग भवानीपुर में पैदल ही थोड़ा घूमे। गरमी के मारे पैदल चलना भी मुश्किल। मेरे साथ जया-जेता भी कष्ट पा रहे हैं। फिर आये अस्पताल। 3 बजे पंडितजी को ह्वील चेयर पर बिठलाकर घुमाने ले गये। टेम्पर बिगड़ा हुआ है उनका। खैर, राम-राम करके शाम को छुट्टी मिली।"

**बुधवार, 24 जनवरी :** "सबेरे 9 बजे अस्पताल गये। केबिन के भीतर जाकर देखा—उनका मुँह तमतमाया हुआ था। गुस्से से मुँह फेर लिया, खाया भी नहीं। देखा प्रेशर 160 पहुँच गया था। हमसे विशेष नाराज थे, क्योंकि मैं उन्हें घर नहीं ले गई। उनका गुस्सा देखकर हम सब बाहर निकल आये। इस तरह टेम्पर लूज करेंगे तो कैसे स्वस्थ हो पायेंगे !

"उसी समय उत्तर प्रदेश शासन की हिन्दी समिति के सचिव श्री लीलाधर शर्मा आये। 'पालि साहित्य का इतिहास' का पारिश्रमिक 1000 रुपया दे गये। श्री नन्ददुलारे वाजपेयीजी ने 50 रुपया भेजा था। 12 बजते-बजते वे नार्मल हो गये। हम लोग खाना खाने घर नहीं जा सके। होटल में बिल्कुल ही रद्दी खाना मिला, जिससे हम तीनों के पेट में दर्द हुआ। 2 बजे फिर हम लोग अस्पताल गये। 3 बजे पंडितजी को ह्वील चेयर पर बिठलाकर नीचे ले आये। कुछ मूड उनका ठीक मालूम हुआ। अस्पताल के कम्पाउण्ड में घुमाया। शाम को हमारे लौटने के समय तक वे अच्छे मूड में थे। बच्चों को खूब प्यार किया।"

**बृहस्पतिवार, 25 जनवरी :** "दोनों समय हम लोग अस्पताल गये। सबेरे वे कुछ गुस्से में थे, फिर कुछ ठीक हुए। टेबलेट और कई दवाएँ दे रहे हैं। 'जीवन-यात्रा' प्रथम भाग को पढ़कर सुना देती थी। आज शाम को अपने बचपन की बातें सुनकर रो पड़े। अपना पुराना नाम उन्हें याद है। इसी तरह धीरे-धीरे कुछ याद करते रहें तो अच्छा है। प्रेशर आज नार्मल के आसपास रहा, सुगर बढ़ा है, पर उतना अधिक नहीं। केवल उनकी स्मरणशक्ति लौट आती तो ठीक होता। उन्हें क्रोध से बचाना होगा, नहीं तो स्वस्थ नहीं हो पायेंगे।

"कई चिट्ठियाँ पंडितजी की बीमारी के सम्बन्ध में आईं। जेता का अभी तक दार्जिलिंग में एडनिशन नहीं हुआ है। नये स्कूल में जाना है। बड़ी चिन्ता हो रही है। पढ़ाई का क्या होगा ? यदि मैं वहाँ (दार्जिलिंग) जाऊँ तो यहाँ अस्पताल में कौन रहेगा ? बड़ी परेशानी है। उनके पास तो रोज ही किसी को रहना चाहिए, नहीं तो वे बड़े दुःखी हो जायेंगे। क्या किया जाय ?

"जेता को अब नये स्कूल में दाखिला लेना था। स्कूल फरवरी के अन्त में खुल जाता था, पर अभी तक उसका एडमिशन नहीं हो पाया था।"

**शुक्रवार, 26 जनवरी :** ''सबेरे कॉलेज स्ट्रीट होते अस्पताल गये। वे गहरी नींद में सो रहे थे। सेडेटिव के कारण उन्हें गहरी नींद आई थी और पेशाब का भी ख्याल न रहा। अपनी स्थिति का अनुभव करके वे बड़े दुःखी होते हैं। कमजोरी के कारण उनके पैरों में ताकत नहीं है, आँखें भी कमजोर हो रही हैं, पास की चीजें उनको नहीं दिखाई देतीं। अनेक रोग हैं उनके शरीर को, स्मृति भी वैसी ही है।

''शाम को फिर गये। 26 जनवरी रिपब्लिक डे के कारण बड़ी भीड़ थी। 5 बजे पहुँचे। कुछ लोग उनके पास बैठे हुए थे, वे जगे हुए थे। मूड अच्छा ही था। डॉक्टर मिश्रा से भी मालूम हुआ और श्री बनवारी बाबू (वैद्यनाथ) ने भी बतलाया कि आज डॉक्टर घोष यहाँ आये थे और रोगी के बारे में बतलाया कि उनकी स्थिति साधारणतः ठीक है। स्मृति के लिए अभी बहुत समय धैर्य से रहना होगा, यह इंजेक्शन या दवा से ठीक न हो सकेगी, अपने आप ही धीरे-धीरे ठीक होगी। अस्पताल से अभी जल्दी छुट्टी नहीं मिलेगी, क्योंकि अभी उनका रक्तचाप चढ़ता-उतरता रहता है। आँखों की फिर जाँच होगी।

''बच्चे बेचारे हमारे साथ-साथ भुगत रहे हैं, आखिर क्या किया जाय ?''

**शनिवार, 27 जनवरी :** ''आज दोनों समय अस्पताल गये। आज सबेरे तो वे गहरी नींद में थे। शाम को गये तो देखा, वे बैठे हुए थे। बातें कर रहे थे। बेचारे घर जाने को इच्छुक हैं, शब्द ठीक से प्रकट नहीं कर पाते। खाना भूख से कम मिलने के कारण बहुत भूखा रहते हैं। 'इतना कम खाना मिलता है, मेरा पेट नहीं भरता। मैं भाग जाऊँगा', कह रहे थे। क्या करें ! डॉक्टरों ने उन्हें कम खाने को ही बतलाया है, ज्यादा नहीं दे सकते। आज उनका प्रेशर 160/90 था जो काफी अधिक है। मालूम नहीं क्यों अधिक हो रहा है। उनकी हालत को देखकर बहुत दुःख होता है। काश, उनकी स्मृति लौट आती। बहुत-सी बातें उनसे सीखनी-सुननी थीं, अब कौन हमें बतायेगा ?

''आज मौसम खराब रहा। सबेरे से वर्षा हो रही है, सब तरफ कीचड़ ही कीचड़ हो गया है। राजपाल एण्ड सन्स ने 660 रुपया रायल्टी का चेक से भेजा। सभी रुपये भेज रहे हैं, पर आगे की समस्या का हल कैसे होगा ? नौकरी नहीं है, न मिलने की आशा है। कैसे गुजारा होगा, कुछ समझ में नहीं आता।''

**रविवार, 28 जनवरी :** ''सुबह भी, शाम भी अस्पताल गये। सबेरे के समय वे सो रहे थे। गहरी नींद में होने के कारण उनको जगाना उचित नहीं लगा। डेरे पर हम जाने ही वाले थे कि भवानीपुर के हमारे भाई आये और हमें अपने घर खाना खिलाने ले गये। उधर बनवारी बाबू की माताजी हमसे नाराज हो गईं। आज पुत्र-जन्मोत्सव पर वहाँ बड़ा पूजा-पाठ और भोज था। बहुत-से लोग जमा हो गये थे।

''शाम को साढ़े 4 बजे अस्पताल गये। वे बैठे हुए थे। खाना कम खाने के कारण वे बहुत दुबले हो गये हैं। आज उनकी हजामत भी नहीं बन पायी। पूछते रहते हैं कि घर कब जाना होगा ? डॉक्टर गुप्ता तो आते हैं उन्हें देखने, पर डॉक्टर घोष तो कभी नहीं आते। इतनी उपेक्षा तो नहीं होनी चाहिए। रोग असाध्य हो, तब भी कभी-कभी आकर देख जाते, तो कितना संतोष होता !''

''रात को जोड़ासांकू से गाड़ी बड़ी देर से आई। हम तो घबरा गये थे। दिनवाली नर्स रीटा भी बैठी थी, उसे घर जाने में देर हो रही थी। टैक्सी से जाने के लिए जब दूसरे फाटक पर हम लोग आ रहे थे, तब गाड़ी को आते देखा, हमारी जान में जान आई। देर से आने के कारण घर के सभी लोग शिकायत कर रहे थे। भवानीपुर न गये होते तो इधर ही आना था। श्री रामदयाल जोशी भी पूछ रहे थे। हमारे लिए गाड़ी की समस्या, विशेषकर शाम के लिए ऐसी थी कि कलकता जैसे बड़े शहर में दो छोटे बच्चों को लेकर मुझे बिना किसी साथी के पी. जी. अस्पताल (भवानीपुर के निकट) से जोड़ासांकू तक टैक्सी में जाने में बहुत भय लगता था। इसीलिए घर के लोग हमारे लिए चिन्तित हुए थे।''

**सोमवार, 29 जनवरी :** ''दोनों समय हम अस्पताल गये। आज उनकी हालत कुछ अच्छी जान पड़ी। कम बोल रहे थे। बस, भूख की शिकायत करते हैं। उनका खाना तो कम कर दिया गया है। इसीलिए ऊपर से और खाना नहीं दिया जा सकता–बातचीत में कुछ भूलने की शिकायत है। जब अपना नाम लेने लग जायँ तो कुछ आशा बँधेगी। नाम का उच्चारण भी नहीं कर सकते। इससे चिन्ता होती है। आज जब नर्स ने उन्हें

चप्पल पहनायी तो उन्होंने 'धन्यवाद' कहा।

"दिन में जेता के लिए कपड़े और किताबें खरीदने धर्मतल्ला और वेलेस्ली स्ट्रीट गये। 80 रुपये से ऊपर का कपड़ा खरीदा, परसों उसका जन्मदिन है। भाई हरि की चिट्ठी से मालूम हुआ कि जेता का एडमिशन माउंट हरमन स्कूल (दार्जिलिंग) में हो जायेगा। हो जाये तो ठीक है। स्कूल घर से दूर तो है ही। पर क्या करें।"

**मंगलवार, 30 जनवरी :** "आज भी हम लोग दोनों समय अस्पताल गये। दिन-भर वे करीब-करीब सोये ही रहे। बातचीत अच्छी तरह से कर रहे थे। स्मरणशक्ति की गड़बड़ी के कारण ही बड़ा दुःख होता है। घर जाने के लिए बहुत उतावले रहते हैं। रोगी से भी ज्यादा रोगी को देखनें आनेवाले आदमी ज्यादा बोलते हैं, डिस्कस करते हैं। बेचारे रोगी सुनते रहें।

"कल जेता का जन्म-दिवस है। बेचारा अपने घर से बाहर है। दोनों ही बच्चे बड़े अभागे हैं। जिन्दगी में ये हँसी-खुशी कर नहीं पाते। अब तो स्कूल के लिए भी समस्या हो गई है। भविष्य में कहाँ रहना होगा, क्या करना होगा, यह भी चिन्ता का विषय है।

"शाम को जया-जेता नर्स के संग जाकर केक खरीद ले आये।"

**बुधवार, 31 जनवरी :** "आज जेता की सातवीं वर्षगाँठ। बेचारा, अपने घर में होते तो जन्मदिन अच्छे ढंग से मना देते। यहाँ परेदश में क्या करते ? सबेरे हम अस्पताल गये। वे सो रहे थे। गहरी नींद में होने के कारण उन्हें नहीं जगाया गया। केक लेकर हम भवानीपुर में भाई के यहाँ गये। भैया जेता ने केक काटा। हम सबने खाना भी वहीं खाया और शाम को अस्पताल चले आये। श्री बलभद्र मिश्र लखनऊ से आये थे, पंडितजी से बात करने लगे। मिश्रजी को देखकर वे रोये। अपनी स्मृति के लिए वे बहुत दुखी हैं। याद न पड़ने के कारण उन्हें बड़ा कष्ट होता है। श्री बलभद्र मिश्र जी हिन्दी समिति की ओर से पंडितजी के इलाज के लिए 1500 रुपये का ड्राफ्ट लाये थे, उन्होंने मेरे हाथ में सौंप दिया। वे लोग उत्तर प्रदेश में पंडितजी को शिफ्ट करना चाहते हैं ताकि यहाँ ज्यादा खर्च के लिए मुझ पर भार न पड़े। किन्तु यहाँ बैठे एक व्यक्ति बिना समझे-बूझे ही अपनी टाँग अड़ा रहे थे। अब हम लोग कहाँ रहें, यह समस्या हो गई। बच्चों का स्कूल खुलनेवाला है, कैसे रहेंगे ?

"स्वामी हरिशणानन्दजी ने 300 रुपये का चेक भेजा और यह भी लिखा है कि पंडितजी अब ठीक नहीं होंगे।"

## फरवरी 1962

**बृहस्पतिवार, 1 फरवरी :** "सबेरे गये अस्पताल। वे बैठे हुए थे। हम सबको देखते ही रोने लगे। कहने लगे—'तुम हमें घर नहीं ले जाती।' किसी तरह समझाया, क्या करें। अभी कहाँ रहना है, कोई निश्चित नहीं। इनको दार्जिलिंग ले जाना होगा कि नहीं, यह भी अभी तय नहीं हो पाया है। लखनऊ के श्री बलभद्र मिश्रजी फिर आये। वह डॉक्टर जे. सी. घोष से बात करने गये, पर घोष महोदय ने कुछ ठीक से नहीं बताया। कैसे डॉक्टर हैं ? रुपये चाहते हैं तो मैं चुका ही देती। यही चाहते हैं तो क्यों चुप रहते हैं ? समझ में नहीं आता।

"डेढ़ बजे बैंक आफ इंडिया गये। मैनेजर बड़े सौजन्यवाले निकले। बिना हीले-हवाले के चेक का पेमेंट कर दिया। स्टैट बैंकवाला ड्राफ्ट भी वहीं भुना लिया। मुसीबत की मारी है, यह उन लोगों ने भाँप लिया। तीन हजार रुपये आ गये मेरे पास, उनके दवा तथा अन्य खर्चा के लिए कुछ दिन चल जायेगा। स्वामी जी ने 300 का ड्राफ्ट भेजा है। तीन सौ रुपये से क्या करना ? नर्स को देने के लिए भी कम है।

"शाम को हम तीनों (बच्चे और मैं) ट्राम से अस्पताल गये। ट्राम से उतरकर पैदल ही मैदान पार कर लेने के बाद अस्पताल की इमारत आती है। सो रोज ही ट्राम और पैदल चलना बराबर रहा। आधे रास्ते से टैक्सी ली। केबिन में पहुँचकर देखा, वे बैठे हुए थे। घर जाने की ही बात करते हैं हमेशा। अभी कैसे ले जायें ? कहीं कुछ हो जाये तो क्या करेंगे ? पर उन्हें समझाना बहुत कठिन है। बातें वे अपने जानते ठीक

ही करते हैं, पर हमारे लिए समझना बहुत कठिन है। कई बातें तो मैं अंदाज से ही समझ लेती हूँ। डॉक्टर छुट्टी दे देते तो इन्हें शीघ्र ही अस्पताल से घर ले जाती। क्या करूँ, बड़े संकट में फँस गई हूँ।

"शम को ट्राम से गये। दो जगह ट्राम बदलनी पड़ती है। एल्गिन रोड से बहुत दूर तक पैदल जाना पड़ता है—दोपहर के बाद धूप में चला भी नहीं जाता। मालूम हुआ सेठ सीताराम सेक्सरिया या कोई वृद्ध पुरुष अस्पताल में आये थे। डॉक्टर गुप्ता से उनकी बातें भी हुईं। मालूम नहीं कौन था ?"

**शुक्रवार, 2 फरवरी :** "पंडितजी सुबह से ही बहुत अधिक बोल रहे थे, इसलिए आज प्रेशर अधिक बढ़ गया। आज उनकी आँखों की जाँच हुई। कुछ खराबी है, यह बतलाया। शायद फिर जाँच करेंगे। घर जाने के लिए वे बहुत उतावले हो रहे हैं। पर अभी छुट्टी नहीं मिली है, कैसे ले जायें ?

"समस्याएँ उलझती जा रही हैं। बच्चों को स्कूल भेजना है। आगे स्थायी तौर से कहाँ रहना होगा, अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। दार्जिलिंग स्थान तो अच्छा है, पर वहाँ कोई पोजिशन नहीं है। हमारा दिमाग बेकार-सा होने लगा है। दुनिया-भर की परेशानियों से कभी छुट्टी मिलेगी, इसमें संदेह है। खास करके बच्चों के बारे में बड़ी चिन्ता होती है।"

**रविवार, 4 फरवरी :** "अस्पताल गये दोनों समय। दिन का भोजन भवानीपुर में भाई के यहाँ किया। जाने की तो इच्छा नहीं हो रही थी। गरमी बहुत लगी, इसलिए जल्दी ही चले आये।

"आज उनकी आँखों की जाँच की रिपोर्ट मिली। उनको 'सेरीब्रल हैमरेज' हुआ है, शायद उसे ठीक करना मुश्किल है। डॉक्टर साफ-साफ नहीं कहते। डॉक्टर लोग उन्हें देखने ही नहीं आते, उपेक्षा करते हैं। क्या किया जाय ? वे घर जाना चाहते हैं। आज, कल करके उन्हें रोककर रखा गया है। वे अब ठीक होंगे, इसमें सन्देह है। अब हमारी जीविका की समस्या आ गई है। कैसे बच्चों का पालन-पोषण होगा ? यू. पी. में ही रहे होते तो कुछ काम मिल गया होता अब तक। बंगाल में आकर तकलीफें उठानी पड़ रही हैं। कहीं भी दिल नहीं लगता, कहाँ चले जायँ ? कुछ भी सोच नहीं पा रही हूँ। बड़ी परेशानी हो रही है। गरम जगह में रह भी नहीं सकते।

"अष्टग्रह का कुछ भी प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। लोग खामखा डरे हुए हैं।"

**सोमवार, 5 फरवरी :** "सबेरे गये अस्पताल दूसरे आदमी की गाड़ी से। वे बैठे हुए थे। बेचारे घर जाना चाहते हैं। 'कब ले जायेगी ?' पूछते रहते हैं। उन पर बड़ी दया आती है। और रोग तो थे ही, अब आँखें भी कमजोर पड़ रही हैं। बड़ा दुःख होता है। वे भी कातर हो जाते हैं। पता नहीं क्यों उनकी ऐसी दशा हो गई ? सभी की भलाई ही तो की थी उन्होंने।

"दोपहर को बच्चों को लेकर रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के दफ्तर में गई। नेहरूजी के भेजे 1000 रुपये के चेक को भुनाना था। गवाह की जरूरत थी, पर वहाँ कौन गवाह होता ? बैंक ऑफ इंडिया के एजेन्ट ने आइडेंटीफिकेशन के लिए हस्ताक्षर कर दिया, तब जाकर रुपये मिले। पूरे एक घंटा खड़ा रहना पड़ा। गाड़ी के लिए ढाई बजे तक बैठी रही, पर नहीं आई। टैक्सी से घर आई। तीन बज गये थे।

"शाम को ट्राम से गये। न्यू मार्केट से कुछ खाने की चीजें खरीदीं। भूख जोर की लग रही थी। अस्पताल में बैठकर सबने खाया। उनका प्रेशर 150/80 है, पर स्मृति की दशा वैसी ही है। मुझको कुछ भी प्रगति मालूम नहीं होती।"

**मंगलवार, 6 फरवरी :** "दोनों समय हम अस्पताल गये। वे हम लोगों की प्रतीक्षा करते रहते हैं—'घर कब ले जायेगी।' आज-कल करते टालती जा रही हूँ। डॉक्टर से मालूम हुआ कि अब दो सप्ताह बाद छुट्टी मिल जायेगी। उनकी स्मृति लौटेगी, इसमें संदेह होता है। आँखों में भी रोग लग गया, ठीक से दिखाई नहीं पड़ता। अब तो ठीक होने की कोई सम्भावना नहीं है।

"आज एक लेख में पढ़ा—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को भी यही रोग हुआ था। चार साल तक रोग से लड़ते-लड़ते मर गये। क्या वही हाल इनका भी होगा ? ऐसा भय लग रहा है। अब खास करके आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। दार्जिलिंग में रहने की इच्छा नहीं होती। उनके लिए यह स्थान बिल्कुल

ही ठीक नहीं। जलवायु अनुकूल है, पर रहने के लिए पैसे भी बहुत चाहिए।

"यहाँ कलकत्ता में गरमी शुरू हो गई है। दिन के समय बहुत गरमी लगती है।"

**बुधवार, 7 फरवरी :** "(पंडितजी के घनिष्ट मित्र) श्री धूपनाथजी आज सबेरे आ गये। उनके संग हम लोग अस्पताल गये। वे बैठे हुए थे। धूपनाथजी को देखकर वे खुश हो गये। उनका नाम तो नहीं ले सके। बहुत सिखाने पर भी उच्चारण नहीं कर सके। इतने बड़े विश्वविख्यात विद्वान की ऐसी अवस्था देखकर सभी का मन खिन्नता से भर जाता है। कभी इतिहास की सही तारीख और आँकड़े बतानेवाला दिमाग आज अपना नाम भी भूल गया है। कैसे वे इस महारोग के शिकार हो गये, बड़ा आश्चर्य होता है। 'घर कब ले जायेगी ?' यही पूछते रहते हैं। अपने पिता के मरने पर भी जिन्होंने कभी एक बूँद आँसू नहीं गिराया, वे ही आज अपनी अवस्था के दुःख से कातर हो रोया करते हैं।

"शाम को ट्राम से गये, इसलिए 5 बजे पहुँचे। वे बैठे हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी यह हालत देखकर बहुत दुःख होता है।"

**बृहस्पतिवार, 8 फरवरी :** "गये अस्पताल दोनों समय। धूपनाथजी भी शाम को गये थे। पंडितजी का मूड साधारणतः ठीक रहता है। प्रगति नहीं मालूम होती। भूलना-भालना तो है ही।

"दैनिक अखबार 'विश्वमित्र' में राहुलजी के नाम चंदा शीर्षक से एक समाचार छपवा दिया था मैंने। हरिहर पाण्डे (पंडितजी का कोई तथाकथित रिश्तेदार) दौड़ा-दौड़ा आ रहा था। अच्छा है। दर-दर भटककर 10-5 रुपया जमा करना कोई अच्छी बात नहीं है। प्रतिष्ठा चली जाती है इससे।

"शाम को कोई बरुआ आये। बताया कि कल बिड़लाजी के घर से कोई आनेवाले हैं। ठीक है।"

**शुक्रवार, 9 फरवरी :** "आज वसंत पंचमी। सब लोग पीला वस्त्र पहिनकर घूम रहे थे। हमें तो कोई खुशी है नहीं। दोनों समय अस्पताल गये। वे घर जाने को तैयार बैठे हैं। बहुत जिद कर रहे हैं। उठ-उठकर बाहर निकल आते हैं। धूपनाथजी को याद कर लेते हैं, पर नाम नहीं कहते।

"दोपहर को ट्राम से आये। कोई झुनझुनवाला नामक लड़का आकर मुझे रुपया दे रहा था। मैंने लेने से इन्कार कर दिया। चंदा लेकर क्या करना ? कमलधारीसिंह 'कमलेश' नाम के एक सज्जन भी उनको देखने आये। फिर श्री कृष्णकुमार बिड़ला की ओर से एक सज्जन श्री जाजु आये, 1 हजार रुपया हमें दिया। अखबार में समाचार पढ़कर आये थे। कितने उदार लोग हैं।"

**शनिवार, 10 फरवरी :** "दोनों समय अस्पताल गये। सबेरे डॉ. हरिवंशराय 'बच्चनजी' पंडितजी को देखने आये थे। थोड़ी देर बैठकर गये। धूपनाथजी आये। वे घर जाने के लिए तैयार बैठे थे। शाम पर टालकर हम घर में आये। फिर तुरंत ही ट्राम से गये। वे फिर घर जाने की रट लगाने लगे। मैंने जब कहा कि छुट्टी मिलने पर ले चलेंगे तो इतने जोर से डाँटा कि मेरा होश गायब हो गया। मैं रोने को हो गई। 'मैं मर जाऊँगा और क्या तुम्हारी मर्जी।' कहकर बड़बड़ाते रहे। एबनार्मल रोगी के साथ किस तरह पेश आयें ? न तो गुस्सा कर सकते हैं, न ही सांत्वना दे सकते हैं। राहुलजी को सिर्फ घर की याद आती थी और वे इतना-भर जानते थे कि अभी वे जहाँ हैं वह अपना घर नहीं है। बाकी सब भूल गये थे। डाँट सुनने के बाद मैं बाहर बैठी रही। वे धूपनाथजी को खोज रहे थे, पर वह भी नहीं आये।

"अपने जीवन की निरर्थकता के लिए मुझे बड़ा अफसोस हो रहा है। एक दिन के लिए भी मुझे खुशी नहीं मिली, परेशानियों से छुट्टी नहीं। आत्महत्या करूँ भी तो दो छोटे बच्चे हैं, उनका क्या होगा। सोचते-सोचते दिमाग फटा जा रहा है। विवाहित जीवन से तो काम करते हुए अकेले जीवन बिताना अच्छा था। जहाँ मर्जी हो वहाँ जा सकते हैं। अब तो अपना जीवन भार-सा मालूम होने लगा है।"

**रविवार, 11 फरवरी :** "अस्पताल गये दोनों समय। दोपहर को धूपनाथ जी के साथ खिदिरपुर गये पैदल ही। खाना वहीं खाया। फिर ट्राम से चौरंगी आये। थोड़ा घूमघाम कर लौटे। धूपनाथजी जैसे बूढ़े आदमी को साथ लेकर चलने में बड़ी कठिनाई होती है। उनको पैदल चलने में तकलीफ हो रही थी। धूप से परेशान भी हो गये। वे (पंडितजी) बैठे हुए थे। घर जाने को जिद करते हैं। पर अभी छुट्टी ही नहीं मिली, कैसे ले जायें।

अब तो यहाँ से मन ऊब गया है, गरमी से अलग परेशानी।"

**सोमवार, 12 फरवरी :** "प्रतिदिन की तरह आज भी दो बार अस्पताल गये। दोपहर को न्यू मार्केट गये। भूख और गरमी से बहुत थक गये। दो बजे डेरे पर आकर खाना खाया। फिर तुरन्त ट्राम से चल पड़े। थोड़ा भी विश्राम नहीं। क्या किया जाय ? वे बिगड़ रहे थे कि 'घर क्यों नहीं ले चलती ?' एबनार्मल आदमी को कैसे समझायें। धूपनाथजी आज चले गये। परदेश में मैं उनकी कोई खातिरदारी भी नहीं कर सकी। गरमी से हम लोग घबड़ा रहे हैं।

"पंडितजी को इतना मालूम था कि वे अपने घर में नहीं हैं, कहीं और जगह हैं। इसलिए रात-दिन 'घर-घर' की रट लगाये हुए थे। हमारे लिए आफत हो गई, क्योंकि हमें देखते ही वे 'घर ले चलो', 'घर ले चलो' कहने लग जाते, परन्तु हम कैसे ले जायें।"

13 फरवरी को भी हम दोनों वक्त अस्पताल गये। 'वे घर जाने के लिए सुबह से ही तैयार बैठे हुए थे। सबेरे चलने को कहा तो मैंने कह दिया शाम को चलेंगे। जब शाम को हम लोग गये तो वे बिल्कुल तैयार थे जाने के लिए। जब वे खाना खा रहे थे, तभी हम लोग वहाँ से खिसक गये। उसके बाद उन्होंने उधम मचाया। वायोलेन्ट हो गये। डॉक्टर को तीन बार धक्का दिया। बेयरा को डाँट दिया। गुस्से से बदन बिल्कुल लाल, चेहरा तमतमाया हुआ। आँखें भी अंगारे बरसाने लगीं। पलंग छोड़कर कुर्सी पर बैठ गये। इंजेक्शन देकर उन्हें सुलाया गया।

"झूठ बोलते हुए कलेजा फटता है मेरा और सच कहती हूँ तो वे गुस्सा हो जाते हैं। आखिर मैं क्या करूँ ? छुट्टी दिये बगैर घर कैसे ले जा सकती हूँ ? आज डॉक्टर घोष ने स्वयं न आकर हाउस सर्जन को भेजा। भेंट-पूजा चाहते होंगे। यदि चाहिये तो मैं देने को तैयार हूँ। पर रोगी को देखने के लिए आते ही नहीं। आज मेरा मन बहुत दुःखी है। कोई मेरी तरफ से बोलनेवाला नहीं। कैसा अभागा मेरा जीवन है।"

**बुधवार, 14 फरवरी :** "दिन-भर हम लोग अस्पताल में ही रहे। खाना पास के होटल में खाया। वे नींद की दवा लेकर सो रहे थे। ढाई बजे उठकर उन्होंने दोपहर का खाना खाया। आज उनको डॉक्टर टी. के. घोष और डॉ. गुप्ता दोनों ने देखा है। पता नहीं क्या राय है उनकी। डॉ. खांडा (हाउस सर्जन) से पूछने पर बताया कि पहिले से उनमें काफी प्रगति हुई है। अब कब छुट्टी देंगे, मालूम नहीं। बच्चों के स्कूल के खुलने का समय भी हो गया है, पता नहीं कब यहाँ से जाने को मिलेगा ?

"आज डॉ. भगवतशरण उपाध्यायजी पंडितजी को देखने आये। सभी लीडरों को पत्र लिखूँगा, कह रहे थे। विदेश में न सही, दिल्ली में ही रहने का इन्तिजाम कर देते तो भी अच्छा होता। कम से कम उन पर सभी का ध्यान बना रहता। यहाँ तो परदेश है। उदयनारायण पाण्डे 16 तारीख को आनेवाले हैं।"

**बृहस्पतिवार, 15 फरवरी :** "दोनों समय अस्पताल गये। वे सबेरे से सो रहे थे। 10 बजे के बाद जगे। और सब बातें भूल जाते हैं, किंतु घर जाने की बात नहीं भूलते। झूठ बोल-बोलकर टालती आ रही हूँ। सच कहने पर भी वे खाने को दौड़ते हैं। क्या करूँ ? बड़ी मुसीबत आ गई मुझ पर। कोई उपाय सूझता नहीं। आर्थिक अवस्था डावाँडोल है, नौकरी नहीं। आखिर कैसे काम चले ? दिल घबड़ा जाता है।

"उनका गुस्सा देखकर कमरे में जाने में भी डर लगता है। न जाऊँ तो भी वे खोजते हैं। जाने पर भी खैरियत नहीं। गरमी अत्यधिक पड़ने लगी है। मन यहाँ से ऊब गया है। बच्चे बेचारे अलग से परेशान हैं। अब ये दोनों भी घर जाने की बात करने लगे हैं। छुट्टी दे देते तो मैं पंडितजी को भी ले चलती।

"मन बड़ा उदास है। रो-रोकर दिन बीत रहे हैं। मेरे भाग्य में कभी भी खुशी नहीं लिखी है।"

**शुक्रवार, 16 फरवरी :** "दोनों समय अस्पताल गये। वे घर जाने के लिए तैयार बैठे हुए थे। सच कहने पर आग हो जाते हैं, समझने के लिए भी तैयार नहीं होते। उनका दिमाग ही काम नहीं करता। पागलों की जैसी हरकत करते हैं। पर झूठ भी कितना बोलें। शाम को फिर बिगड़ने लगे। मैं उनके सिर पर हाथ फेर रही थी। नाराज होकर बोले—'मर जाने दो मुझे, मुझे घर नहीं ले जाती, तू चली जा।' फिर फूट-फूटकर रोने लगे। बिल्कुल नार्मल की तरह कहने लगे—'मुझे बच्चों के संग रहकर मरने दो, रानी, मेरा मन नहीं लगता यहाँ,

जल्दी ले जा मुझे।' क्या करूँ ? मेरा मन बड़ा कचोटने लगता है, कोई उपाय भी नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि उन्हें घर ले जाऊँ तो शायद वातावरण से वे कुछ प्रसन्न रहने लग जायें। पर डॉक्टरों की राय नहीं है। एक तरफ गरमी से भी वे परेशान रहते हैं। मेरा तो सोचते-सोचते दिमाग ही खराब हो रहा है। परदेश में पड़े हुए हैं, समस्या का हल मालूम नहीं होता। आज उदयनारायण पाण्डे के आने की बात थी, पर नहीं आये। पंडितजी अब तो बिल्कुल समझने की हालत में नहीं हैं, बहुत ही ज्यादा गुस्सा करने लगे हैं।"

**शनिवार, 17 फरवरी :** "हम लोग दोनों वक्त अस्पताल गये। सबेरे भिक्षु महानामजी (राहुलजी के गुरुभाई) भी आये। पंडितजी बैठे हुए थे। हमें देखते ही वे बिगड़ने लगे। 'अभी ले चलो, अभी ले चलो' कहते चिल्लाने लगे। नर्स को भी बहुत जोर से डाँटा। मैं फिर केबिन के भीतर नहीं गई।

"साढ़े 12 बजे मैंने बड़े डॉक्टर गुप्ता से छुट्टी के लिए बात की। उन्होंने कहा–'वे (राहुलजी) अभी घर जाने लायक नहीं हैं, उनको सम्हालना मुश्किल हो जायेगा। अभी कुछ दिनों तक उनको अस्पताल में ही रखना चाहिए।'

"अब मेरे लिए मुसीबत हो गई। बच्चे भी स्कूल के लिए जाना चाहते हैं। पंडितजी को कहाँ रखें, कहाँ इंतिजाम करें। बच्चों को घर छोड़ने के लिए मुझे दार्जिलिंग जाना होगा। बच्चों को न देखकर वे पागल हो जायेंगे। आज मेरा सारा दिन रोते-रोते बीता। उनकी हालत देखकर दुःख होता है। आज तो मालूम हुआ कि वे आत्महत्या करने के लिए तैयार हो गये, अपना सिर फोड़ना चाहते थे।"

**रविवार, 18 फरवरी :** "अस्पताल गये। वे गुस्से से लाल हुए बैठे थे। फिर वही घर ले जाने की रट। पर छुट्टी मिले तब न ले जाऊँ। दोपहर को वहीं बाजार में खाया। जया की तबियत ठीक नहीं थी। शाम को उसे 100 डिग्री तक बुखार आ गया। उधर हम जब शाम को चलने लगे तो पंडितजी गुस्से से लाल हो गये। किसी तरह उनको समझाकर हम लोग डेरे पर आये। गुस्से के कारण ही उनका रक्तचाप बढ़ जाता है।"

**सोमवार, 19 फरवरी :** "जया को बुखार था, इसलिए उसे वैद्यनाथ भवन में छोड़कर मैं जेता को लेकर अस्पताल गई। पंडितजी नाश्ता कर रहे थे। हमें देखते ही उबल पड़े। गुस्से के मारे पागल हो रहे थे। मेरी भीतर केबिन में जाने की हिम्मत न हुई। दोपहर को जल्दी ही जया के पास आ गई। जया को पेट की गड़बड़ी के कारण बुखार आया था। वैद्यजी ने आकर उसको देखा। फिर शाम को जल्दी ही हम अस्पताल गये। वे बैठे हुए थे। हम को देखकर अपने पास बुलाया और रोने लगे। बड़ी मुश्किल से समझाया उनको, पर वे समझने को तैयार नहीं। उनकी 'जीवन-यात्रा' में से पढ़कर सुनाया उनको, तो भी बहुत गुस्से होने लगे। नींद की गोली देकर उनको सुलाया गया। उनको देखकर मैं सोच रही थी–क्या पाप किया था उन्होंने जो इतना कष्ट भुगत रहे हैं। डॉक्टर जे. सी. गुप्ता उनको देखने गये। अगर वे छुट्टी दे देते तो मैं पंडितजी को घर ले जाती। मरीज इसी के लिए तत्पर हैं तो क्या करें ? बड़ी मुसीबत में पड़ गई हूँ मैं।"

**मंगलवार, 20 फरवरी :** "आज सबेरे भी जया को कुछ बुखार था, इसलिए उसे साथ नहीं ले गये। सबेरे जेता को लेकर अस्पताल गयी। वे चारपाई पर बैठे हुए थे। मैंने अखबार पढ़कर सुना दिया। बीच-बीच में वे पूछते भी रहे कि 'कब मुझे घर ले जायेगी।' 12 बजे तक तो वे ठीक ही रहे। मन में डर बना रहा कि कहीं फिर गुस्से न हो जायें।

"डेरे पर आकर खाना खाया और जया को भी साथ लेकर हम फिर अस्पताल चले आये। वे प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। मालूम हुआ कि वे दिन में सोये थे। शाम को उन्हें इन्वैलिड चेयर पर बिठाकर बाहर आँगन में घुमाने ले गयी। परन्तु शाम को 6 बजे के करीब वे फिर बिगड़ने लगे, फिर नाराज हो गये। पर मैं बाहर न जाकर उन्हें समझाती रही। वे रोते रहे। उनको रोते देखकर मुझे बहुत कष्ट होता है। डॉक्टर घोष महोदय नहीं आये, न डॉक्टर गुप्ता आये। ये लोग मरीज के साथ उपेक्षा बरतते हैं, यह देखकर हमें बहुत दुःख होता है। क्या करूँ, कहाँ ले जाऊँ उन्हें ? ज्यादा गुस्सा करने के कारण उनको रक्तचाप बहुत अधिक हो गया है। रोगी पर इस प्रकार पागलपन का दौरा पड़ता है कि वे वायोलेन्ट हो जाते हैं, यह हमें कभी मालूम नहीं हुआ

था। उनको देखकर ही ऐसे रोग के बारे में धीरे-धीरे पता चलने लगा।

**बुधवार, 21 फरवरी :** "मरीज को अस्पताल में छोड़कर आने से भी हमारा ध्यान उधर ही लगा रहता है। रात-भर मन घबराता रहा, ठीक से नींद न आई। सबेरे गये अस्पताल। देखा, उनका चेहरा बिल्कुल लाल हो गया था और बहुत रो रहे थे। उन्हें प्यार और सहानुभूति चाहिए। उसे दर्शानेवाला वहाँ कौन है ? काश, मुझे यहीं अस्पताल में उनके साथ रहने की इजाजत दे देते। उनको कातर देखकर मुझे भी रोना आ गया। धीरे-धीरे, समझाते-समझाते वे ठीक हुए। बहुत कहते रहे कि 'मुझे जाने दो, हाथ जोड़ता हूँ, मुझे जाने दो।' बेचारे अस्पताल की नीरसता से बिल्कुल ऊब गये हैं।

"डेढ़ बजे शर्माजी के डेरे पर (जोड़ासांखू) आये। यद्यपि मेरा मन बहुत घबड़ा रहा था तो भी बच्चों को खिलाने-पिलाने के लिए आना ही पड़ा। तीन बजे शाम को हम लोग फिर अस्पताल पहुँच गये। सुना कि वे खाना खाकर कम्बल ले चल पड़े थे। गुस्सेवाले आदमी के संग यदि डाँट-फटकार करें तो उसके मन में और आग धधकती है। यहाँ के (अस्पताल के) पैसे के लालची लोग इस बात को नहीं जानते। डाँटते-फटकारते उनको कमरे में लाये। वह एंग्लो-इंडियन काली-कलूटी नर्स मजे से हवा खा रही थी। पंडितजी को इन्जेक्शन की जरूरत है, पर वह काली-कलूटी नर्स कहाँ समझनेवाली थी। 4 बजे हम उनको इन्वेलिड चेयर पर बिठाकर घुमाने ले गये, फिर थोड़ा पढ़कर सुना दिया। तब डॉक्टर महादेव साहा आये। थोड़ी-थोड़ी बातचीत करते-करते पंडितजी कुछ शांत हुए। इस हालत में भी वे हमारी और बच्चों की बहुत फिक्र करते हैं।

"भागलपुर युनिवर्सिटी से उन्हें पी-एच. डी. की मानद उपाधि 3 मार्च को मिलनेवाली है। उपाधि देने में बहुत देर कर दी। अब तो वे भागलपुर जाने योग्य नहीं हैं।"

**बृहस्पतिवार, 22 फरवरी :** "आज जब सबेरे हम लोग अस्पताल पहुँचे, हमें देखकर वे खुश भी हुए और रोने भी लगे। बिल्कुल बच्चों की तरह रोते हैं। उनका रक्तचाप कुछ बढ़ गया है। जब हम वापस जा रहे थे, तब रास्ते में देखा—उदयनारायण पाण्डे (राहुलजी के भतीजे) और रामधारी पाण्डे (राहुलजी के छोटे भाई) आ रहे थे। दोपहर के समय अस्पताल के लोग मरीज को किसी से मिलने नहीं देते, इसलिए मैं उन दोनों को घुमाने ले गयी। फिर शाम को पंडितजी के पास उन लोगों को पहुँचा दिया। इन दोनों को देखकर पंडितजी बहुत खुश हुए। गाँव तथा घर के बारे में बहुत पूछ रहे थे, पर उनकी वाणी अस्पष्ट थी।

"इतने बड़े महापंडित को आज इस अवस्था में देखकर घर-परिवारवालों को जरूर ही अफसोस होता है। यदि विदेश में इनके इलाज का प्रबन्ध हो जाता तो बहुत ही अच्छा होता। देखें, कोशिश तो करेंगे ही। वैसे पहले से उनकी हालत में बहुत सुधार हुआ है। पहले कितने दिनों तक वे बेहोशी की हालत में थे, अब थोड़ा-बहुत बोलने योग्य तो हो गये।

"बच्चों को स्कूल के लिए कपड़े ले दिये। अब उनको स्कूल पहुँचा देना है।"

**शुक्रवार, 23 फरवरी :** "आज दोनों समय हम अस्पताल गये। हमें देखते ही वे फिर रोने लगे। बार-बार घर जाने के लिए ही कहते। क्या करें ? डॉक्टरों ने छुट्टी देने की बात कहने पर मना कर दिया। मुझे तो उनको अपने साथ ही दार्जिलिंग ले जाने की इच्छा है। पर कैसे जायें ? बच्चों की अनुपस्थिति में न जाने उनकी क्या हालत होगी। सोच-सोचकर दिल घबड़ाने लगता है। बच्चों का स्कूल जाना भी तो बन्द नहीं कर सकते। यहाँ परदेश में हमारा रहने का कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। इसलिए दार्जिलिंग गये बगैर और कोई चारा नहीं दीखता।

"मुझे जल्दी दार्जिलिंग पहुँचकर फिर शीघ्र ही यहाँ लौट आना है। इसलिए आज 26 फरवरी के लिए हवाई जहाज के दो टिकट कटा लिये, जिसमें 120 रुपये लगे। मुझे जाने की तो इच्छा नहीं थी पंडितजी को छोड़कर। पर कोई दूसरा आदमी भी नहीं जो बच्चों की देखभाल करे। मेरा विश्वास भी किसी पर नहीं होता।"

"उन्हें शाम को थोड़ा घुमाने ले गये अस्पताल के बाहर। बहुत खुश हुए। उन्हें लगता होगा कि मैं सचमुच ही उनको घर ले जा रही हूँ। 'कल-कल' कहते हुए टालती आ रही हूँ, एक दिन फिर बरस पड़ेंगे वे। गरमी काफी हो गई है, जिसकी वजह से हम सबको बड़ी तकलीफ होती है। जया-जेता भी बहुत दुबले हो गये हैं,

पढ़ाई में भी उनका दिल नहीं लगता। उदयनारायण और रामधारी पाण्डे शाम को आये।"

**शनिवार, 24 फरवरी :** "नियमानुसार सबेरे ही अस्पताल चले आये। हमें देखते ही वे रोने लगे। घर जाना चाहते हैं। इतने रोज से अस्पताल की एक ही कोठरी में पड़े हुए हैं। बेचारे ऊब भी तो गये हैं, इसलिए बार-बार घर ले जाने की जिद करते हैं। डॉक्टर लोग छुट्टी भी नहीं देते, और डॉक्टरों की सलाह के अनुसार ही हमें चलना है, किंतु पंडितजी घर जाने के लिए बहुत तड़प रहे हैं।

"दोपहर को हम लोग वैद्यनाथ भवन में आये। बच्चों को भोजन कराने के बाद भवन की गाड़ी में अस्पताल भेज दिया। ये लोग मेरे साथ-साथ बहुत कष्ट भोग रहे हैं। मैं ट्राम से आई। उदयनारायणजी बैठे हुए थे राहुलजी के साथ, और उस एंग्लो-इंडियन नर्स का पता ही नहीं। पैसे से अब वह भी मोटी हो गई है।

"हमें परसों जाना है दार्जिलिंग। मेरा जाने का मन तो नहीं करता पंडितजी को छोड़कर, परन्तु बच्चों के पढ़ने का सवाल है। रात को देर तक बच्चों के सामान की तैयारी करती रही। मेरा मन बहुत चिन्तित है रोगी के लिए और आर्थिक अनिश्चितता के कारण भी। चारों तरफ निराशा ही निराशा दिखाई देती है।"

**रविवार, 25 फरवरी :** "सुबह-शाम दोनों समय अस्पताल गये। दोपहर का भोजन भवानीपुर में भाई के यहाँ किया। इस तरह आज दिन-भर बाहर ही बाहर रहना पड़ा।

"कल जाना है हमें। पंडितजी को छोड़कर जा रही हूँ, पता नहीं क्या हालत होगी उनकी। वैसे तो उनके कान में डाल रही हूँ कि बच्चे अब स्कूल जा रहे हैं, दार्जिलिंग जाना होगा। पर वे नार्मल तो हैं नहीं, बात उनकी समझ में आती नहीं, क्या करें। छोड़कर जाने में मुझे बड़ा दुःख लग रहा है, परन्तु और कोई चारा भी नहीं। मेरी अनुपस्थिति में उदयनारायणजी को अपने चाचाजी की देखभाल करने के लिए राजी किया। डॉ. महादेव साहा भी आते रहेंगे। रात को गरमी और मच्छड़ों के मारे परेशान। कल सुबह चल देना है, इसलिए सामान ठीक-ठाक किया।"

## दार्जिलिंग को

**सोमवार, 26 फरवरी :** "सबेरे साढ़े 7 बजे दमदम पहुँचे। प्लेन साढ़े 8 बजे आया, चलते-चलते 9 बज गये। 9 बजे के बाद विमान उड़ा और 11 बजे आमबाड़ी और साढ़े 12 बजे सिलीगुड़ी पहुँचे। मेरा छोटा भाई हरि वहीं मिल गया। 14 रुपये में लैण्डरोवर तय करके 2 बजे चले और साढ़े 4 बजे ग्रीन रीजेस (राहुल निवास) पहुँच गये। रास्ते में कई घुमावों के कारण मेरा सिर चकराने लगा। दार्जिलिंग में काफी सर्दी थी। अपना घर बन्द पड़ा था, पड़ोसी के घर में खाना खाकर हम ठंडे बिस्तरों पर सो गये। किन्तु मेरा मन तो कलकत्ता के अस्पताल में पड़े हुए मेरे स्वामी की ओर ही लगा हुआ था। इसलिए घर में बड़ा सूना-सूना लगा, वे बहुत याद आते रहे। पता नहीं इस समय अस्पताल में वे कैसे होंगे।"

**मंगलवार, 27 फरवरी :** "बच्चों को स्कूल के लिए आवश्यक सामान खरीद दिये। घर में पंडितजी की बीमारी के सम्बन्ध में बहुत-सी चिट्ठियाँ आई थीं, सबका जवाब लिख दिया। यहाँ यंत्रचालित-सी काम करती रही, पर मेरा मन-प्राण बराबर अस्पताल में पड़े हुए स्वामी की ओर ही लगा रहा।"

**बुधवार 28 फरवरी :** "इस बार जेता को दूसरे स्कूल में ले जाना था। माउंट हरमन स्कूल में दाखिला मिल गया था। आज मेरे एक सम्बन्धी के साथ जेता को स्कूल भेज दिया, बहुत दूर है, जिसके लिए स्कूल बस का प्रबन्ध करना पड़ा। जेता शाम को स्कूल से बहुत खुश-खुश लौट आया।"

## मार्च 1962

**बृहस्पतिवार, 1 मार्च :** "कलकत्ता से उदयनारायणजी तथा साहाजी के पत्र मिले। पत्रों से मालूम हुआ कि राहुलजी को बुखार रहा दो दिन तक। बच्चों की खोज रहे हैं। शाम को पोस्ट आफिस में जाकर मैंने कलकत्ता ट्रंक कॉल किया। मालूम हुआ कि वे अब ठीक हैं।

"घर सूना-सूना लग रहा है। बच्चे भी उदास। भैया जेता स्कूल गया पर बहुत देर से लौटा, शायद पैदल

ही। छोटा बच्चा, भूख के मारे उसकी आँखें गड्ढे में धँस रही हैं, दुबला दिखाई दे रहा था। स्कूल दूर होने के कारण तकलीफ हो गई बेचारे को। यहाँ घर में रखने के लिए मैंने मँझली बहन माइली (जो अब इस दुनिया में नहीं है) को बुला भेजा, क्योंकि मुझे तो जल्दी ही फिर कलकत्ता लौट जाना है।"

उदयनारायणजी का पत्र नीचे दिया जा रहा है :

*कलकत्ता*
*27-2-62*

*पूज्य चाचीजी,*

*सादर चरणस्पर्श।*

*आशा है आप सकुशल पहुँच गई होंगी और जया तथा भइया की चिंता में लगी होंगी। पूज्य चाचाजी कल आप लोगों को बहुत याद करते थे। कहते थे अब तक तो आ जाना चाहिए। बार-बार दरवाजे की ओर ताकते रहे। आज तो चाचीजी, वे कहने लगे–तुम्हारी जगह कौन 'नाथ' तो मैंने कहा सारनाथ ! कहने लगे 'हाँ हाँ'। फिर कहने लगे–'अनुराध' तो मैंने कहा–'अनुराधपुर'। कहने लगे–वहाँ बहुत से भिक्षु रहते हैं। ''500 कि 600''। इससे मालूम होगा कि अब नित्य प्रति सुधार होता जा रहा है। ईश्वर ने चाहा तो शीघ्र अच्छे हो जाएँगे। आप इस समय कोई विशेष चिंता मत कीजिएगा। आप जिस काम के लिए गई हैं, उसी की उचित व्यवस्था कर दीजिए। तत्पश्चात् शीघ्र आने की कोशिश कीजिए, परंतु काम पूरा करके ही। क्योंकि यह भी आप लोगों के विना घबड़ाते हैं। अभी मैं उन्हीं के पास बैठा पत्र लिख रहा हूँ। कह रहे हैं–''थोड़ा लिखो–ज्यादा नहीं।''*

*जया भइया को प्यार।*

आपका,
*उदयनारायण*
*C/o Mahabodhi Society*
*4-A, Bankim Chatterji St., Calcutta*

**शुक्रवार, 2 मार्च :** "जेता सवेरे स्कूल गया और शाम को साढ़े 4 बजे लौट आया। दोपहर बाद मेरी दोनों बहनें गंगा और माइली आ गयीं, माइली अब यहीं रहेंगी, बच्चों की देखभाल वे ही करेंगी। जेता जनम से ही कमजोर है, ऊपर से दायीं बाँह भी कमजोर है। उसकी बहुत चिंता होती है। जया का स्कूल लोरेटो कान्वेन्ट तो घर के पास ही है, इसलिए उसके लिए सब ठीक है।

"आज कलकत्ता से महादेवजी की चिट्ठी आई। लिखा है–पंडितजी की हालत अभी नार्मल है। बच्चों के बारे में बहुत पूछते हैं। बेचारे को न जाने कैसा रोग लग गया। इधर मैं भी परेशान हूँ। अब बच्चों को न जाने कितने समय के लिए यहीं छोड़कर मुझ को जाना पड़ेगा।"

**शनिवार, 3 मार्च :** "सबेरे भैया स्कूल गया और 2 बजे लौट आया भूखा-प्यासा। उसे देखकर बहुत दुःख हुआ, क्या करें। स्कूल की गाड़ी खराब हो गई रास्ते में, इसलिए आधी दूर पैदल ही चलकर आया था। दार्जिलिंग का मौसम बहुत खराब है। हम तीनों को सर्दी-खाँसी-जुकाम ने परेशान कर रखा है। मुझे फिर कलकत्ता लौटना है। आज शाम को जाकर विमान का टिकट ले आई, इसलिए कि मुझको बहुत जल्दी पहुँचना है। बच्चे मेरे बिना उदास हो जायेंगे, घर में उनकी पढ़ाई को देखनेवाला भी कोई नहीं है। मैं अकेले कहाँ-कहाँ दौड़ूँ, क्या-क्या करूँ ? कोई मददगार भी नहीं। परेशानी ही परेशानी। बाजार जाकर बच्चों के लिए खाने-पीने का सामान, राशन आदि खरीदकर लायी। कोयले की दिक्कत है, उसका भी प्रबन्ध कर दिया।"

**रविवार, 4 मार्च :** "आज तिथि के अनुसार महाशिवरात्रि का दिन। पूजापाठ से विरत रहने पर भी साफ-सफाई तो राहुलजी और मैं हमेशा करते रहे। इसलिए आज बच्चों को नहला-धुला दिया। जया का स्कूल कल से लगेगा। मेरी छोटी बहन गंगा आज कलिम्पोंग लौट गई। वह यहाँ रहती तो मेरे बच्चों की पढ़ाई भी देख

लेती, अच्छा रहता। पर वह तो कलिम्पोंग में स्कूल की अध्यापिका है। रात को नींद नहीं आती। अपनी तबियत भी खराब है। उधर कलकत्ते के अस्पताल में पड़े हुए स्वामी की चिन्ता अलग से। जिन्दगी में कभी भी परेशानियाँ कम न होंगी, यह मान लिया है मैंने।"

**सोमवार, 5 मार्च :** "आज दिन-भर वर्षा होती रही। जेता के स्कूल में फीस जमा करने जाना पड़ा। कुल 75 रुपया दे आई। स्कूल बहुत दूर है। गाड़ी का इन्तिजाम अभी ठीक नहीं हुआ, बाद में ठीक कर देने का आश्वासन दिया। खाने-पीने का बहुत कष्ट हो गया है जेता को। शाम को घर आया तो दोपहर की टिफिन वापस ले आया। बेचारा भूख से बेहाल, उसे देखकर बहुत दुःख हुआ मुझे। आज से ही जया का स्कूल आरम्भ हो गया। बरसते पानी में मैं उसके लिए कापी, किताबें तथा अन्य वस्तुएँ खरीदने बाजार गई। घर में नौकर के न होने से बड़ी दिक्कत हो गई है। आज उदयनारायण पाण्डे की चिट्ठी मिली, शिकायतों से भरी हुई। जल्द ही जल्द मुझे कलकत्ता पहुँच जाने की ताकीद की है। दो दिन रोगी को देखना पड़ा, इतने में ही उनको भारी पड़ गया। बातें करना आसान है, पर रोगी की सेवा करना, वह भी एक अर्धपागल रोगी की, उतना आसान नहीं है। वह तो भुक्तभोगी ही जान सकता है। खैर, कल तो मुझे कलकत्ता वापस जाना ही है।"

उदय का पत्र इस प्रकार है :

*कलकत्ता*
*1-3-62*

*पूज्य चाचीजी,*

*सादर चरणस्पर्श।*

*आशा है आपको मेरा पत्र मिला होगा। Sister ने भी साथ ही पत्र भेजा था, वह भी मिल गया होगा। पत्र लिखने के थोड़ी ही देर बाद बच्चों को बहुत ही याद करने लगे। उस दिन बुखार भी हो गया। परंतु फिर कल शाम से ठीक हैं। बुखार नहीं है। कल तो एक सज्जन Mr. Sarkar आए तो उन्हें पहचान गए। पूछा, "कब आए सरकार।" अब टहलने के लिए जिद कर रहे हैं। आज थोड़ा टहलाया। कहने लगे, "कुछ और चक्कर करूँगा। टहलने से पैरों में ताकत आएगी। मेरे पैर कमजोर पड़ रहे हैं।" इत्यादि।*

*इस प्रकार सुधर रहे हैं। बहुत। बार-बार पूछते हैं। अतएव जल्द आने की कोशिश कीजिएगा।*

*आपका,*
*उदय*

**मंगलवार, 6 मार्च :** "सुबह साढ़े 5 बजे घर से चली। जया-जेता जगे हुए थे। रोने लगे। उन्हें छोड़कर जाते समय मुझे भी बहुत दुःख हो रहा था। अभागे बच्चे। यदि माता-पिता धनवान होते तो उन्हें हर प्रकार का सुख देते। परन्तु गरीब घर में पैदा हुए हैं। मन को काबू में करके ही मैं घर से बाहर निकल आई। 6 बजे आमबाड़ी सर्विस के आफिस से चलकर 9 बजे आमबाड़ी (जलपाईगुड़ी के पास) पहुँची। साढ़े 9 बजे विमान उड़ा और 12 बजे दमदम पहुँची और एक बजे हरिसन रोड के आमबाड़ी सर्विस के आफिस में आई। वहाँ से रिक्शा करके गुप्ता लेन में वैद्यनाथ भवन पहुँच गई। जल्दी-जल्दी नहा-धो, खाना खाकर अस्पताल गई। मन बहुत चिन्तित था। अस्पताल में पंडितजी के केबिन में जैसे ही पहुँची, वे मुझे देखकर रो पड़े। घर जाना चाहते हैं। उनका ऊब जाना स्वाभाविक ही था। सब लोग उस काली-कलूटी नर्स की शिकायत कर रहे थे। उदयनारायण जी आज सारनाथ चले गये। रात को श्री बी. एल. शर्माजी से बातें हुईं, पंडितजी को शायद वेल्लोर ले जाना पड़े। शर्माजी इसके लिए प्रबन्ध कर देंगे।"

**बुधवार, 7 मार्च :** "सबेरे 9 बजे मैं अस्पताल गई। मुझे देखते ही पंडितजी रोने लगे। वे अकेलेपन से घबरा गये हैं, यहाँ रहते तंग भी आ चुके हैं। वे रोते हैं तो अपना मन भी काबू में नहीं रहता। मेरे वश में नहीं है उन्हें ले जाना, मैं क्या करूँ ? डॉक्टर लोग उनको छुट्टी नहीं देते, कब अस्पताल से ले जाने को कहेंगे, कुछ मालूम नहीं। छुट्टी दे देते तो अच्छा होता।

"दोपहर को फिर 3 बजे ट्राम से चली और 4 बजे अस्पताल पहुँची। आज वे बहुत रोये हैं। यह रोना कुछ अस्वाभाविक भी है, कुछ स्वाभाविक भी। शाम को किताब महल के मालिक की पत्नी अन्य लोगों के साथ पंडितजी को देखने आईं। देखकर गई हैं। काश, पंडितजी के साथ प्रकाशकों ने ठीक तरह से व्यवहार किया होता, विशेषकर किताब महल ने। रायल्टी की सही भुगतान की होती तो आज उनकी यह दशा न होती। मालकिन को देखकर मैं यही सोच रही थी कि उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी। पर मैं नहीं जान सकी। उदयनारायण की बातें सुनकर मेरा दिल जल गया। मेरी ढेर सारी शिकायत की थी। हम हवाई जहाज से यात्रा करते हैं, इससे उदयजी को कष्ट होता है। हम तो सिर्फ समय बचाने के ख्याल से जाते हैं। वह भी पंडितजी की बीमारी के समय में मुझे विवश होकर 4-5 दिन के लिए दार्जिलिंग जाना पड़ा। उसके बाद तो मैं बराबर उन्हीं के साथ रही। लोग दूसरों के दुःख और कष्ट के बारे में नहीं सोचते।"

**बृहस्पतिवार, 8 मार्च :** "दोनों समय अस्पताल गई। वे उसी तरह हैं, कोई फर्क मालूम नहीं होता। अब अस्पताल से भी छुट्टी हो रही है। कल घर (श्री बी. एल. शर्मा के घर) ले जायेंगे। अब तो डॉक्टरों का भी पता नहीं रहता। उस काली-कलूटी नर्स को तो हवा खाने से ही फुरसत नहीं। रोगी के प्रति इतनी उपेक्षा बरतते हैं ये लोग। पानी की तरह पैसा बहाने पर भी यह हाल है।

"गरमी से बड़ी परेशानी हो रही है। जया-जेता की भी बहुत याद आती है। बेचारे सर्दी में क्या कर रहे होंगे ? इस समय जब उन्हें आराम चाहिए, कष्ट ही भोग रहे हैं। उनको घर में पढ़ाने के लिए कोई मास्टरनी मिली या नहीं, इसका पता नहीं।"

**शुक्रवार, 9 मार्च :** "सबेरे ही अस्पताल पहुँच गई। आज राहुलजी को घर ले आना है। सबेरे से ही वे तैयार बैठे हुए हैं जाने के लिए। 12 बजे के करीब मालूम हुआ कि उन्हें Risk Bond पर डिस्चार्ज किया जा रहा है। यह सुनकर मन को बड़ा धक्का लगा। डॉक्टर मिश्र से पूछा तो उन्होंने कहा–We are discharging him on request (हम उनको आग्रह किये जाने पर छुट्टी दे रहे हैं) परन्तु Request किसने किया ? यदि कोई और तकलीफ हो गई तो कौन जिम्मेवार होगा ? थोड़ी देर बार डॉ. जे. सी. गुप्ता से मैंने पूछा–आप अपने रोगी को क्या करेंगे ? तो उन्होंने उत्तर दिया–"हम उन्हें इसलिए रिलीव कर रहे हैं कि वे पागलपन दिखाते हैं। नर्स-डाक्टर सबको गाली बकते हैं। घर जाने लायक तो अब वह हो गये हैं।" इसका मतलब यह है कि ये सब रोगी से ऊब गये हैं। कलूटी नर्स तो सबेरे से ही तैयार बैठी थी, उसने रोगी की दवाइयाँ, साबुन, यूडिकोलोन आदि सब पहले ही चुरा लिये थे। शाम को बनवारी बाबू अपनी गाड़ी लेकर आये, फिर राहुलजी को अपने घर ले गये। यहाँ घर में आकर भी वे खुश नहीं हैं, क्योंकि जया-जेता उनके पास नहीं है।"

## वैद्यनाथ भवन : गुप्ता लेन

**शनिवार, 10 मार्च :** "रात को सोने का मौका ही नहीं मिला। वे चिल्लाते रहे। पेशाब-पाखाने का भी उन्हें होश नहीं रहा। उनको सँभालना मुश्किल हो गया। दिन के समय तो वे और परेशान रहे, रोते भी रहे। 'ले चलो, ले चलो' कहते रहे। मुझे तो उनमें कुछ भी प्रगति मालूम नहीं हो रही है। शायद पिण्ड छुड़ाने के लिए उनको अस्पताल से डिस्चार्ज कर दिया गया। उनके लिए कमोड, यूडिकोलोन आदि मँगा लिया।

"आज केन्द्र सरकार की चिट्ठी लेकर श्री बी. बी. केशवन (नेशनल लाइब्रेरी) आये थे। उनसे पता चला कि सरकार राहुलजी का उचित इलाज कराना चाहती है। केशवन ने जब हमारे आगामी प्रोग्राम के बारे में पूछा तो मैंने कहा–इस बारे में श्री बी. एल. शर्माजी बतायेंगे।

"बच्चों की याद आती है। राहुलजी तो और भी बच्चों को याद करते हैं। उनकी हालत थोड़ी भी सुधरी होती, तो मैं उन्हें दार्जिलिंग ले जाती। आज ही दिल्ली से श्री सच्चिदानन्द शर्मा (अब दिवंगत) परिवार सहित आये। रूस भेजने के लिए सी. पी. आई. इंतिजाम कर रही है, यह पता चला उनसे। पर पंडितजी तो अभी हवाई सफर नहीं कर सकते।"

**रविवार, 11 मार्च :** "उन्हें पेशाब-पाखाने का होश नहीं रहा। नींद की गोली के कारण उन्हें गहरी नींद

आती है। कुछ खबर ही नहीं रहती। मैं रात-भर उनके कपड़े ही धोती रही। दिन में भी वे बचैन रहे। 'ले चल, ले चल' कहते रहे। पर कहाँ ले जाऊँ ? अब तो वे बिल्कुल होश-हवास खो बैठे लगते हैं। एक भी ढंग की बात नहीं करते। जो कुछ पहले सुधार हुआ था, वह भी खत्म हो गया। अब उनकी बात समझने में कठिनाई होती है, न वे हमारी बात समझते हैं। दोपहर के बाद तो उनकी हालत और भी खराब हो गई, शायद गरमी के कारण होगा। आगे उनका कहाँ इलाज होगा, यह अभी तक ठीक नहीं हो पाया है। आज उनका रक्तचाप 160/90 रहा।

**सोमवार, 12 मार्च :** "उनको बीमार पड़े आज पूरे तीन महीने हो गये। हालत वैसी ही है। प्रलाप करते रहते हैं, पेशाब-पाखाना भी बिस्तर पर ही। दोपहर से शाम को 4 बजे तक उनको Air Conditioned Room में रखा गया। पर वे शांत नहीं रहते, उठते रहते हैं, रोते हैं। क्या-क्या कहते हैं, समझ में नहीं आता। गरमी बढ़ती जा रही है। अब तो पंडितजी के स्वस्थ होने की संभावना कम ही दिखाई दे रही है।"

**मंगलवार, 13 मार्च :** "आज सबेरे पी. जी. हास्पिटल के न्यूरो सर्जन डॉक्टर पी. चटर्जी तथा डॉ. बी. एल. दास ने आकर पंडितजी को देखा। उन दोनों ने कहा–'यह वेल्लोर ले जानेवाला केस नहीं है, इसलिए अभी उनको वेल्लोर नहीं ले जाना। गरमी के कारण उनके दिमाग में जोर पड़ता है, इसलिए अब उनको ठंडी जगह में ही ले जाना चाहिए। वेल्लोर तो सिर्फ ठण्डे मौसम में ही ले जाया जा सकता है।' उन लोगों ने कुछ नई दवाइयाँ लिख दीं और इनका क्या प्रभाव पड़ता है, यह वे लोग एक सप्ताह बाद आकर देखेंगे। यदि कुछ फायदा हुआ तो वे ही दवाइयाँ चलेंगी, नहीं तो और दूसरी देंगे। और थोड़े दिनों के बाद वह दार्जिलिंग जा सकते हैं। उनका ब्लड प्रेशर डेंजर पोइंट से बहुत कम है। ब्लड शुगर तो अभी देखा नहीं।

"बच्चों की कोई खबर नहीं आ रही है, यह अलग चिन्ता है। इतनी छोटी उम्र से ही बेचारों को अपने माँ-बाप से अलग रहना पड़ रहा है। रोते होंगे बेचारे।"

**बुधवार, 14 मार्च :** "आज से नई दवाइयाँ चालू की हैं। कल उनको इंजेक्शन दिया जायेगा। उनको कुछ भी लाभ होता तो मैं धन्य समझती। पेशाब-पाखाना तक भी करने लायक हो जाते तो यही बहुत था। कपड़े धोते-धोते तो जान निकल रही है। परदेश में दूसरों के घर पड़े हुए हैं, क्या करें। वे गरमी से वैसे भी परेशान रहते हैं। खाने के बाद उनको Air Conditioned Room में ले गये। पर आज वे चुप नहीं रहे, कुछ न कुछ बोलते ही रहे। रोना भी आज बहुत हुआ। चेहरे से दुर्बल मालूम होते हैं। क्या किया जाये ? इतनी दवाओं और सेवा के बावजूद वे ठीक नहीं हो रहे हैं। बड़ी चिन्ता होती है।"

**बृहस्पतिवार, 15 मार्च :** "सबेरे डॉक्टर दास आये। पंडितजी की जाँच की। दवाइयाँ वही सब चलेंगी। आज नया इंजेक्शन दे दिया। उसके परिणाम का पता एक सप्ताह के बाद लगेगा। आज तो पंडितजी सीधी तरह बोले ही नहीं। न जाने कौन-कौन-सी भाषाएँ बोलते हैं। टट्टी-पेशाब के लिए भी नहीं कहते। इतना ही कहने लायक हो जाते तो कितना अच्छा होता। अस्पताल में तो बहुत सुधार हो गया था, अब पता नहीं फिर क्या हो गया है उनको। दोपहर के बाद गरमी से परेशान रहते हैं। आँखें पूरी तरह खोलते ही नहीं। ठंडे कमरे में ले जाने पर थोड़ा शांत रहते हैं। आज कम रोये, पर प्रलाप बहुत करते रहे।"

**शुक्रवार, 16 मार्च :** "दार्जिलिंग से लौटने के बाद मुझे बच्चों की कोई खबर नहीं मिली, चिन्ता और बढ़ गई। इसलिए आज यहाँ से दार्जिलिंग ट्रंक कॉल किया अपने एक सम्बन्धी को। उन्होंने बतलाया कि जया-जेता ठीक-ठाक हैं। मैंने अपनी पड़ोसी श्रीमती लाल को पत्र लिख दिया, जिसमें उनसे जया-जेता का ध्यान रखने का अनुरोध किया।

"आज पंडितजी की हालत वैसी ही रही। पेशाब-पाखाने के लिए कोई भी संकेत नहीं करते। बड़ी परेशानी है। रोज सोचती हूँ कि वे ठीक हो जायेंगे, पर कुछ फर्क मालूम नहीं पड़ता। यहाँ गरमी में हम लोग सड़ रहे हैं। मध्याह्न के समय बड़ी बेचैनी होती है।"

**शनिवार, 17 मार्च :** "उनकी हालत आज भी वैसी ही रही। आँख बन्द करके पड़े रहते हैं। बहुत कम बोलते हैं। रोज आशा होती है कि कुछ सुधार होगा, पर रोज देखती हूँ कोई फर्क पहीं पड़ता। कुछ अच्छे

हो जाते तो उन्हें शीघ्र ही दार्जिलिंग ले जाती। वहाँ के ठण्डे मौसम से उनको शांति मिलती। पर उनकी हालत देखकर बड़ी निराशा होती है। दूसरों के घर में इतने दिनों से पड़े हुए हैं, इन लोगों को कितनी तकलीफ दे रहे हैं हम। बहुत ही संकोच होता है। यहाँ गरमी से प्राण निकल रहे हैं। दिन-भर पसीने से तर-ब-तर रहते हैं। कोई भी काम करने को जी नहीं करता। इतनी गरमी में रहने की आदत नहीं।"

**रविवार, 18 मार्च :** "आज वे शांत रहे। आँखें बन्द किये पड़े रहते हैं। कभी पेशाब-पाखाने के लिए कहते नहीं। दिन में आठ घंटे से भी ज्यादा सोते हैं। गरमी से बेचारे परेशान हैं, पर कह नहीं सकते।

"डॉक्टर चटर्जी आज वेल्लोर जानेवाले हैं। बनवारी बाबू ने उनको फोन किया है पंडितजी के लिए वहाँ प्रबन्ध करने के लिए। मुझे तो बड़ी आशा थी कि वे कुछ अधिक ठीक हो जाते तो अभी दार्जिलिंग चले जाते, फिर थोड़ी गरमी कम होने पर वेल्लोर चले जाते। पर उनके ठीक होने के आसार नजर नहीं आते। उधर बच्चे भी अकेले हैं, उनके लिए भी बड़ी चिन्ता होती है। हर समय मुझ पर दुखों का पहाड़ ही टूटता है। इनके इस तरह मानसिक तौर से अस्वस्थ हो जाने की कभी कल्पना भी नहीं की थी। पर हुआ ऐसा ही। मेरा मन बड़ा उदास रहता है।"

**सोमवार, 19 मार्च :** "रात बच्चों की याद के कारण नींद बहुत कम आई। हम लोग गरमी से भी परेशान हैं। रहने के कमरे में बिजली का पंखा नहीं है। पंडितजी सुबह 8 बजे जगे। पेशाब में डूबे हुए थे। कल भी उनको स्नान करा दिया और आज भी। अब रोज स्नान करा देना होगा। गरमी है, स्नान से जरा आराम तो पायेंगे। पाखाना आज बाथरूम में किया। जैनेन्द्रजी सबेरे उनको देखने आये थे। आज हद से ज्यादा गरमी है, इससे बड़ी परेशानी होती है। वे आज पैरों से थोड़ा चले, पर उनकी बोली साफ नहीं है। प्रलाप ही करते रहते हैं। शाम को पेशाब बाथरूम में किया। गरमी के कारण उनकी बीमारी कम नहीं हो रही है।"

**मंगलवार, 20 मार्च :** "हम कब दार्जिलिंग जायेंगे, कुछ पता नहीं। यहाँ गरमी से बेहाल हैं। यदि पंडितजी के वेल्लोर ले जाने की बात न होती तो अब तक हम दार्जिलिंग पहुँच गये होते। यहाँ दूसरों के घर में मेहमान बनकर पड़े हुए हैं, हमें बहुत संकोच होता है। किसी के यहाँ इतने दिनों तक मेहमान बनकर रहना, शर्म से सिर झुक जाता है। वेल्लोर की बात ने हमें अपने घर जाने से रोक दिया। वे आज कुछ बेहतर रहे। पर अभी पेशाब पर कन्ट्रोल नहीं है। कहते ही नहीं। यहाँ उनके खाने का उतना अच्छा इन्तिजाम नहीं हो सकता, क्योंकि मांस-मछली यहाँ नहीं दे सकते। घर चले जाते तो कितना अच्छा होता। गरमी ने और परेशान कर रखा है।"

**बुधवार, 21 मार्च :** "आज होली का दिन। यहाँ घर के लोग खूब रंग-अबीर-गुलाल से खेल रहे हैं। मुझे जया-जेता की याद आ रही है। पता नहीं क्या हाल होगा उनका। इधर पंडितजी बीच-बीच में गुस्से भी हो रहे थे। गरमी के कारण भी होगा। शाम को पेशाब के लिए इशारा किया। आजकल मैं रोज उनको स्नान करा देती हूँ। आँखें पूरी तरह से खोलते नहीं। कब उनको होश आयेगा, कब स्वस्थ होंगे ? अब यहाँ से एकदम से जी उचट गया है।"

**बृहस्पतिवार, 22 मार्च :** "आज उन्होंने फिर गड़बड़ी की। पेशाब पर नियंत्रण ही नहीं। बड़ी दिक्कत है। दोपहर-भर ठण्डे कमरे के भीतर रखने पर ही वे शांत रहते हैं। थोड़ी-थोड़ी बात करते हैं। अभी बच्चों के बारे में नहीं पूछते। आज श्री नेहरूजी के यहाँ से एक हजार रुपये का चेक आया। बड़े दयालु हैं वे। अब अपने काम के बारे में भी उनको ही लिखना होगा। किसी तरह से यहाँ से दार्जिलिंग जाने को मिलता तो अच्छा होता। वे जरा भी ठीक नहीं हो पा रहे हैं। अस्पताल से आने के बाद से उनका प्रोग्रेस रुक गया है।"

**शुक्रवार, 23 मार्च :** "आज वे दिन-भर काफी शांत रहे। थोड़ी बातें कीं। दुर्बलता है, बोलने की इच्छा नहीं करते। दिन में पेशाब के लिए बोले—एक बार 'चश्मा' और दूसरी बार 'पेशाब' कहा। 100 तक की गिनती की। जया-जेता को भी याद कर रहे थे। रात के समय 'याता' कह रहे थे भैया (जेता) के लिए। सबेरे दवा थूक दी उन्होंने, पर मैंने जबरदस्ती खिला दी। खाना ठीक से खाते हैं। नहलाना भी रोज कर देती हूँ। शाम को उन्हें कमरे में ले आई। गरमी सताती थी। वे फिर गुस्से हो गये। 'ले चल, ले चल' कहने लगे।

फिर उनको नींद आ गई। क्या जाने नयी दवा कुछ लाभ करे। गरमी के कारण उनका चेहरा उतरा रहता है।"

**शनिवार, 24 मार्च :** "गरमी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। दोपहर से रात तक बड़ी तकलीफ होती है। नींद ठीक से आती नहीं, उन्हें दिन के समय तापशीत-नियंत्रित कमरे में रख देते हैं। तब कुछ शांत रहते हैं। शाम को परेशान कर देते हैं। गरमी लगती होगी, पर कह नहीं सकते। कल सबेरे डॉक्टर चटर्जी आयेंगे उनको देखने–ऐसा बनवारी बाबू ने बतलाया। आकर यदि दार्जिलिंग ले जाने की सलाह दे देते तो अच्छा होता। वैसे उन्होंने फोन पर बतलाया कि पंडितजी को वेल्लोर ले जाने की आवश्यकता नहीं है।"

**रविवार, 25 मार्च :** "सबेरे डॉ. चटर्जी और डॉ. दास आये। बीमारी के प्रोग्रेस को देखकर बहुत खुश हुए और बहुत संतोष प्रकट किया। वेल्लोर ले जाने की सलाह नहीं दी। एक तो गरमी का कारण है, दूसरा वहाँ ले जानेवाला केस भी नहीं है। डॉक्टरों का कहना है–खामखा वहाँ ले जायँ और वहाँ डाक्टर लोग इनको एडमिट करना मुनासिब न समझें तो लौटना पड़ेगा, तकलीफ ही होगी। वेल्लोर के डॉक्टर को यहाँ बुलाने पर 2500 रुपया देना होगा। पैसा बर्बाद हो जायेगा। इसलिए रोगी को दार्जिलिंग ले जाने की सलाह दी। ठण्डी जलवायु में उनके स्वास्थ्य में कुछ सुधार अवश्य होगा। वे हवाई जहाज से यात्रा कर सकते हैं। ब्लड प्रेशर न ज्यादा है, न कम। खतरा नहीं है। मई के अन्त में डॉक्टर दार्जिलिंग आकर रोगी को देख लेंगे।

"सलाह ठीक जँची। अब एक सप्ताह के बाद दार्जिलिंग चल देना होगा।"

**सोमवार, 26 मार्च :** "गरमी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। परेशानी रहती है। उनकी हालत थोड़ी-थोड़ी सुधर रही है, आज उन्होंने बच्चों का नाम भी लिया। बहुत शान्त रहे। शाम से गरमी से छटपटा रहे हैं। और 'चलो, चलो' करते रहते हैं। क्या जाने दार्जिलिंग जाने पर ठीक हो जायें। बच्चों के साथ भी रहेंगे। दवा उन्हें बहुत लाभ पहुँचा रही है। इन्हें अकेला छोड़ नहीं सकते, मेरे जरा भी इधर-उधर जाने पर खोजने-चिल्लाने लगते हैं। अब पेशाब के लिए बोल देते हैं।"

**मंगलवार, 27 मार्च :** "बला की गरमी पड़ रही है। पंखे से भी गरम हवा आती है। वे बहुत छटपटाते हैं। आज भी जया भैया का नाम ले रहे थे। स्वास्थ्य में सुधार मालूम हो रहा है। अब कल इंजेक्शन देना होगा। आजकल उन्हें नींद कम आती है। दिन में तो जरा भी नहीं सोते। बैठे-बैठे शायद ऊब गये होंगे। केन्द्र सरकार से पत्र आया। हजार रुपये की स्वीकृति दी है।"

**बुधवार, 28 मार्च :** "वे सबेरे तक शांत रहे। एक इंजेक्शन सुबह लगा दिया। दिन में उन्हें ठण्डे कमरे में ले गये। बार-बार उठते और खड़े होते रहते हैं। अब शायद उनका मन नहीं लगता होगा। कहते थे–'ले चलो, ले चलो।' शाम को तो और भी परेशान हो जाते हैं। जब तक रात को नींद नहीं आ जाती, तब तक वे बहुत बेचैन रहते हैं। कहाँ ले जायें ? गरमी से अपनी भी हालत खराब हो रही है। शाम के समय साहाजी आये। उनको पंडितजी के पास रखकर मैं थोड़ी देर के लिए हरिसन रोड तक गई, कुछ सामान लेना था।

"बच्चों ने पत्र नहीं लिखा, शायद हमारे आने का रास्ता देख रहे होंगे।"

**बृहस्पतिवार, 29 मार्च :** "सबेरे उनको नहला-धुलाकर इंजेक्शन लगा दिया। आज वे कुछ ढंग से बात कर रहे थे। अब सिर्फ घर चलने की बात करते हैं। बच्चों का नाम भूल गये हैं, पर 'ज' कहने पर 'जया' 'जे' कहने पर 'जेता' बोल देते हैं। पेशाब-पाखाने के लिए भी बोल देते हैं। गरमी के कारण बेचारे परेशान हो जाते हैं। और दिनों की अपेक्षा आज वे काफी अच्छी हालत में रहे।

"दोपहर को साहाजी आये। खाना खाकर साहाजी को पंडितजी के पास रख मैं 'वैद्यनाथ' के एक आदमी को साथ ले रिजर्व बैंक गई। नेहरूजीवाला चेक भुना लिया। वहाँ से एकाउंटेंट जेनरल के आफिस में गई। सेन्ट्रल गवर्नमेंटवाला चेक बनवाने में काफी समय लगा। एक सरकारी आफिसर के हस्ताक्षर की जरूरत थी, आई. टी. ओ. ने हस्ताक्षर कर दिया। समय बीत चुका था तो भी आफिसर भले थे,। आज ही सब काम निबटा लिया। बड़ी धूप थी। साढ़े 4 बजे लौटकर आये।"

**शुक्रवार, 30 मार्च :** "गरमी अत्यधिक। उनको बड़ी परेशानी होती है। दिन में जब ठण्डे कमरे में रहते

हैं तब उन्हें अच्छा लगता है। शाम को फिर पसीना छूटने लगता है। वे आज कुछ ठीक रहे। पर एक जगह बैठते नहीं, न दिन में सोते हैं। उठ-उठकर चल देते हैं, बहुत ही परेशान कर दिया। रात को भी ऐसा ही किया। रात दो बजे के बाद उन्हें नींद आई। गरमी के कारण ही उनकी ऐसी हालत हो रही थी। साहाजी आज भी पंडितजी को देखने आये थे।''

**शनिवार, 31 मार्च :** ''आज वे कुछ अच्छे रहे। केवल गरमी के कारण उनको कष्ट हो रहा है। अब दार्जिलिंग लौटने का समय आ रहा है। इसलिए साहाजी के एक दोस्त लखेड़ाजी को साथ लेकर दोपहर को धर्मतल्ला और न्यू मार्केट तक गई। बच्चों के लिए कुछ खाने-पीने का सामान तथा पंडितजी के लिए आवश्यक सामान खरीदे। गरमी से हमारा बुरा हाल हुआ। शाम को पता चला कि कल के लिए हवाई जहाज के टिकट मिल गये हैं। अब कल यहाँ से जाना है, इसलिए लगेज को बाँध-बूँधकर ठीक कर लिया। गरमी से छुट्टी मिलेगी, यही अच्छा है।''

## अप्रैल 1962 : दार्जिलिंग के लिए प्रस्थान

**रविवार, 1 अप्रैल :** ''आज खाना उनको सबेरे ही खिला दिया। साढ़े 10 बजे बनवारी बाबू और साहाजी के संग हम दोनों दमदम विमान अड्डे पर गये। विमान की उड़ान में अभी देर थी। पंडितजी को विमानस्थल तक पहुँचाने के लिए गाड़ी की व्यवस्था कर दी। बनवारी बाबू लौट आये। सामान आदि का हिसाब-किताब उनके आदमी ने कर दिया, कुल 29 रुपये लगे। विमान पौने 12 बजे उड़ा। बहुत-से विदेशी मुसाफिर उसमें थे। बड़ा सुन्दर साफ-सुथरा हवाई जहाज था। सवा घंटे में, ठीक 1 बजे बागडोगरा पहुँचे। पंडितजी के लिए इन्वैलिड चेयर मँगा दिया गया। दार्जिलिंग जानेवाली कार वहीं पर खड़ी थी, पर कमीने ड्राइवर ने हमें ले जाने से इन्कार कर दिया। पंडितजी को धूप और गरमी लगने लगी। सिलीगुड़ी तक जीप में आकर वहाँ से दार्जिलिंग जाने के लिए 30 रुपये में एक लैंडरोवर ठीक किया। पर यहाँ भी एक हरामी ड्राइवर से पाला पड़ा। वह रास्ते में पैसेंजर उठाता गया, जिसके फलस्वरूप हम शाम के साढ़े 7 बजे दार्जिलिंग पहुँच सके। अँधेरा हो चुका था। एलिस विला से 6 रुपये में रिक्शा[1] करके बड़ी मुश्किल से पंडितजी को अपने घर ले आई। आज की जैसी तकलीफ हमने पहले कभी नहीं उठाई थी। खैर, पापा को देखकर बच्चे बहुत खुश हुए, और पापा भी बच्चों को देखकर प्रसन्न हुए।''

## दार्जिलिंग के घर में

**सोमवार, 2 अप्रैल :** ''आज से फिर वे बहकी-बहकी बातें करने लगे हैं। शायद रक्तचाप फिर अधिक हो गया है। सबेरे मिस्टर लाल (कप्तान लाल) आये। उनके साथ भी पंडितजी बहुत बोले। बोलना किसी तरह भी बन्द नहीं करते, बस बोले ही जा रहे हैं। चिन्ता हुई और अपने एक सम्बन्धी को अस्पताल भेजकर डॉक्टर भौमिक को बुलवाया। डॉ. भौमिक और डॉ. खाँड़ा कलकत्ता के पी. जी. अस्पताल में उस समय हाउस सर्जन थे जब वहाँ पंडितजी का इलाज हो रहा था। ये दोनों ही डॉक्टर जे. सी. गुप्ता के शिष्य थे। डॉ. खाँड़ा को तो पंडितजी ने गुस्से में उठाकर पटक दिया था, जब वह उनका प्रेशर देख रहे थे। डॉ. भौमिक भी राहुलजी को पी. जी. में देख चुके थे। अब वह यहाँ सदर अस्पताल में नियुक्त थे। वर्षों बाद डॉ. खाँड़ा भी इसी अस्पताल में नियुक्त होकर आये और आज वह चीफ मेडिकल आफिसर के पद पर हैं। इन्हीं डॉ. पी. भौमिक को हमने घर बुलाया था। वह कल आयेंगे। इतनी मुश्किल से पंडितजी थोड़ा ठीक हो गये थे, फिर यहाँ आकर हालत खराब हो गई। बैठते भी नहीं, लेटते भी नहीं, उठकर चल देते हैं। गुस्सैल भी हो गये हैं। उन्हें सँभालना मुश्किल है। दोनों बच्चे दिन में स्कूल जाते हैं, जेता को लौटने में देर हो जाती है। उसको दिन में खाने की बहुत तकलीफ हो रही है।''

---

1. उन दिनों हाथवाला रिक्शा चलता था।

**मंगलवार, 3 अप्रैल :** "आज भी पंडितजी उसी तरह रहे। किसी प्रकार भी चुप नहीं हुए। बोलते ही चले गये, पर बोली का कोई क्रम नहीं। बीच में बहुत जोर से नाराज हुए और बाहर जाकर बैठ गये। किसी तरह समझाकर मैं उनको सोने के कमरे में ले आई। यहाँ भी वही हाल, बस चिल्लाते रहे। शाम को डॉक्टर भौमिक आये और पंडितजी की जाँच की। रक्तचाप 210/110 था, इसका मतलब बहुत अधिक था। दवाइयाँ वे ही चलेंगी जो कलकत्ता से लाये थे। उनके अच्छे होने का कोई संकेत नहीं मिल रहा है। उनको सँभालना अकेले मेरे लिए मुश्किल हो गई है। अपने पिता की बीमारी के कारण घर की व्यवस्था जो बिखर गई है, उसका बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ा है। परिणाम यही है कि वे पढ़ाई में मन नहीं लगाते।"

**शुक्रवार, 6 अप्रैल :** "मौसम सुबह ठीक था, पर शाम को बड़े-बड़े ओले गिरे, जिससे ठण्ड बढ़ गई। वे आज कुछ शांत रहे। बोले कम, पर उठ-उठकर चल देते हैं। आराम से बिस्तर पर लेटे रहते, तब रक्तचाप कुछ कम हो जाता। वे सुनते ही नहीं। उनके ब्लड-टेस्ट की रिपोर्ट आ गई है। देखें क्या-क्या कमियाँ हैं। वे खाना तो ठीक से खाते हैं, खिला देना पड़ता है। सोते हैं थोड़ा ही। पानी बहुत कम पी रहे हैं, जिससे पेशाब भी कम हुई। रोने लग जाते हैं।"

**शनिवार, 7 अप्रैल :** "वे आज फिर उद्विग्न रहे। गुस्सा भी करते रहे। सबेरे बाहर लॉन में धूप में बिठाया उनको! दोपहर को भी बिठा दिया। मि. लाल उनको देखने आये, पर पंडितजी ने उनको पहचाना ही नहीं। आज वे बोले भी बहुत अधिक। कमरे में जरा देर भी नहीं ठहरते, उठकर चल देते हैं। मेरे समझाने पर भी नहीं सुनते, झुँझलाहट होती है मुझे। पर एक एबनार्मल रोगी के साथ गुस्सा तो हो नहीं सकती। मैं यदि गुस्सा हो जाऊँ तो वे कातर होकर रोने लगते हैं। आज शाम को भी रो रहे थे। उनकी चेतना कब लौटेगी, यह कहना मुश्किल है। उनका रक्तचाप कम हो जाता तो कितना अच्छा होता। शाम को डॉ. भौमिक के पास राहुलजी की ब्लड-टेस्ट की रिपोर्ट दिखाने के लिए अपने सम्बन्धी को भेजा। पंडितजी का ब्लड शुगर बहुत बढ़ गया है। खाने में कन्ट्रोल करना होगा। मोलर लेक्टेट के छः इंजेक्शन लगेंगे। मैं खुद तो यह इंजेक्शन नहीं लगा सकती। इनको कितनी तकलीफ भुगतनी पड़ रही है।"

**रविवार, 8 अप्रैल :** "आज तो भयंकर गुस्सा दिखाया उन्होंने। बाप रे, इतने वाइलेन्ट हो गये, हम लोग उनको सँभाल भी न सके। कलकत्ते के डॉक्टरों ने इसीलिए तो अस्पताल से जल्दी छुट्टी दे दी थी। रक्तचाप उतरने का नाम नहीं लेता, बल्कि और बढ़ गया है। दवाइयाँ बराबर चल रही हैं। आज मोलर लेक्टेट का इंजेक्शन लगा दिया। 6 इंजेक्शन लगेंगे। इतनी सेवा के बावजूद उनका यह हाल है। लेटे नहीं रहते, बाहर-भीतर चलते रहते हैं। ऐसे तो वे ठीक न हो सकेंगे।"

**सोमवार, 9 अप्रैल :** "सबेरे धूप रही, पर दोपहर बाद मौसम खराब हो गया और 3 बजे से चार घंटे तक घनघोर वर्षा हुई। बच्चे उसी वर्षा में भीगते हुए स्कूल से लौट आये। जेता को स्कूल दूर होने के कारण बड़ी तकलीफ उठानी पड़ रही है।

"आज राहुलजी का जन्मदिवस। आज वे 69 वर्ष के हो गये। बीमारी के कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। अब कमजोर लगते हैं, तो भी 69 से कम के ही दीखते हैं। पिछले साल-भर से वे बीमार ही बीमार चल रहे हैं। कब स्वस्थ होंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। आज वे शांत रहे। रक्तचाप तो अभी कम नहीं हुआ—ऐसा लगता है। वे अभी तक नार्मल हालत में नहीं आये। पता नहीं उनका दिमाग सही होगा या नहीं। उनकी ऐसी अवस्था को देखकर मिलने आनेवाले लोग भी दुःखी हो जाते हैं।

"लोरेटो कॉलेज में मैंने नौकरी के लिए आवेदनपत्र दिया था, उसका भी कोई जवाब नहीं आया। निराशा ही निराशा है, भविष्य अंधकारमय लगता है।"

**मंगलवार, 10 अप्रैल :** "पंडितजी की बीमारी के लिए पूछताछ की कई चिट्ठियाँ आईं। राष्ट्रपति की ओर से 400 रुपये का चेक आया। आज राहुलजी दिन-भर तो शांत रहे, किन्तु रात के बीच में जगकर फिर गुस्सा करने लगे। ऐसा बोलते हैं कि बात ही समझ में नहीं आती, पता नहीं क्या-क्या कहते हैं। उनके वाइलेन्ट होने का बड़ा डर लगता है। मोलर लेक्टेट के इंजेक्शन लग रहे हैं। इसके लेने के बाद से वे कुछ शांत हुए

से दिखाई देते हैं। दिल्ली के 'न्यू एज' में आज उनके बारे में एक लेख छपा है। आज उन्होंने उतनी तकलीफ नहीं दी।"

**बुधवार, 11 अप्रैल :** "वे फिर आज कुछ उद्विग्न से रहे। उठते-बैठते रहे। बाहर धूप में बिठाया तो उठकर टहलने लग गये। कभी-कभी बात ठीक से कर लेते हैं, पर फिर उनका मूड बिगड़ जाता है। हम लोग सेवा तो बहुत कर रहे हैं। डॉक्टरी-चिकित्सा भी हो रही है, पर उनके स्वस्थ होने की सम्भावना कम ही दिखाई दे रही है। बड़ी चिन्ता होती है।"

**गुरुवार, 12 अप्रैल :** "उनका स्वास्थ्य पूर्ववत् रहा। मोलर लेक्टेट का इंजेक्शन दिया, इससे उनको बहुत दर्द होता है। रक्तचाप कम नहीं हुआ है। उनके स्वास्थ्य के बारे में जिज्ञासा के रूप में बहुत-सी चिट्ठियाँ आईं, सब का मैंने उत्तर लिखा दिया।"

**शुक्रवार, 13 अप्रैल :** "धूप रही दिन-भर। पंडितजी आज कुछ शान्त रहे, पर बहुत टहलते रहना चाहते हैं। रक्तचाप ज्यों का त्यों है। वह आज बहुत रोते रहे, यद्यपि यह रोना अस्वाभाविक है। छोटे बच्चे की जैसी स्थिति हो गई है उनकी। रात को 8 बजे ही सो गये, किन्तु आधी रात को पागलों की तरह चिल्लाने लगे। मुझे रात को सोने को ही नहीं मिला। अकेले उनको सँभालना मेरे लिए बहुत कठिन हो गया है। कोर्स का आखिरी इंजेक्शन आज लगा। कल डॉ. भौमिक आकर उनको देखेंगे। एक बंगाली दम्पती पंडितजी को देखने आये। पत्नी दमदम से बागडोगरा तक हमारे साथ ही आयी थीं।"

**शनिवार, 14 अप्रैल :** "वे आज-दिन भर कुछ बेचैन रहे। रोते भी रहे। सबेरे ही जग गये थे। बाहर के बड़े कमरे में (लाइब्रेरी कक्ष में, जहाँ वे लिखते-पढ़ते थे) उनको दिन-भर बिठाया। वहाँ से बाहर के रास्ते से स्कूल जाते हुए दूसरे बच्चों को देखते रहे। भोजन उबला हुआ ठीक से खाया। आज बात भी कुछ सेन्स की ही कर रहे थे। शाम को डॉक्टर भौमिक आये। उनका रक्तचाप देखा–210/100 था जो अभी भी कुछ अधिक है। वे आराम करते तो रक्तचाप अवश्य कम हो जाता, किन्तु वे तो मानते ही नहीं। दिमागी हालत ही उनकी क्षीण हो गई है।

"लोरेटो कॉलेज के प्रोफेसर उनको देखने आये थे। पता चला कि अभी तो कालेज में वेकेन्सी ही नहीं है। मुझे यहीं कहीं कोई काम मिल जाता राहुलजी के रहते ही तो उनको शायद खुशी होती। चिन्ता ने ही उनको इस हालत पर पहुँचा दिया।"

**रविवार, 15 अप्रैल :** "वे सबेरे ही जग गये। आज उन्होंने पाखाना दो बार और पेशाब चार बार किये। चेहरा बहुत उतरा हुआ रहा, शायद रक्तचाप और बढ़ गया होगा। आज से उनको Adelphane टेबलेट देना शुरू किया, डॉक्टर से पूछकर। रात को वे 8 बजे ही सो जाते हैं। गहरी नींद आती है उन्हें। पर आधी रात को ही जगकर हल्ला करने लगते हैं। आज ज्यादातर मरने की ही बात करते रहे। मेरी थीसिस ले के पढ़ने के लिए बैठ गये, पर एक अक्षर भी नहीं पढ़ सके, सब कुछ तो भूल चुके हैं। निराश हो जाते हैं बेचारे।

"दिन यों ही बीत रहे हैं और मैं कुछ नहीं कर पा रही हूँ। उनको इस हालत में एक क्षण भी छोड़ नहीं सकती। भविष्य के लिए मैं कम चिन्तित नहीं हूँ, पर कोई उपाय भी नहीं सूझता। वे स्वस्थ होंगे, अब इसकी आशा कम ही दिखाई देती है। मुझे कोई काम मिल जाता उन्हीं के सामने, तो उनको संतोष होता। पर मेरा दुर्भाग्य मेरे साथ ही है।"

**सोमवार, 16 अप्रैल :** "आज वे कुछ उत्तेजित रहे। ज्यादा बोलते ही रहे। इससे उनका चेहरा तमतमा रहा था। शाम को ऐसा लगा कि उनका रक्तचाप बहुत बढ़ गया है। आज शाम को एक स्थानीय व्यक्ति जड़ी-बूटी देकर गये, रोगी की बाँह में बाँध देने को कहा। जब दवाइयों से ठीक नहीं हो सके तो और चीजों का क्या भरोसा ? दिन-भर वे बहुत परेशान रहे। इसलिए नींद की गोली देकर उनको सुलाना पड़ा। फिर गहरी नींद सो गये। मेरा मन बहुत चिन्तित है, अनिष्ट की आशंका होती है।"

**मंगलवार, 17 अप्रैल :** "पंडितजी की अवस्था पूर्ववत् रही। आज उनको जबर्दस्ती से आराम करवाया,

बोलने कम दिया। लोग दिन-भर उनसे मिलने और उनको देखने आते रहे। सरकार की ओर से भी उनकी हालत के बारे में पुछवाया है। स्टेट्समैन (अंग्रेजी दैनिक) के रिपोर्टर भी आये थे, कुछ बातें नोट करके ले गये। घर में आनेवालों को पंडितजी चाय पिलाने को बार-बार कहते हैं। (होश में भी वे अतिथि-सत्कार पर पूरा ध्यान देते थे) आज ही कर्सियांग से एक मारवाड़ी सेठ भी उनको देखने आये। स्थानीय कचहरी के बहुत से लोग भी आये। शाम को मजिस्ट्रेट श्री इन्द्रसुन्दर दासजी ने पत्र द्वारा पंडितजी के स्वास्थ्य के बारे में पुछवाया था। कल डॉक्टर आकर राहुलजी का रक्तचाप देखेंगे।"

**बुधवार, 18 अप्रैल :** "मौसम ठण्डा रहने से पंडितजी आज शांत रहे। पर लोग उनको देखने बराबर आते रहे, इससे उनके आराम में बाधा पहुँचती है। वे बैठते ही नहीं। सबेरे स्थानीय डॉक्टर चटर्जी (प्रसाद फार्मेसी) को बुलाया। तब पंडितजी का रक्तचाप 165/85 था। शाम को डॉक्टर भौमिक अपने आप ही आये, वह घबराये हुए-से थे। उन्होंने पंडितजी का रक्तचाप देखा तो 190/90 था, जो थोड़ा तो कम था। उन्होंने एडोल्फेन के चार टैबलेट रोगी को देने को कहा है। वे चुपचाप पड़े रहते तो रक्तचाप जरूर कम हो जाता, पर वे सुनने को तैयार नहीं, एबनार्मल जो हो गये हैं।"

**गुरुवार, 19 अप्रैल :** "पंडितजी को आज दिन-भर बाहर के बड़े कमरे में लाकर रखा। वहाँ से वे घर से बाहर की हरियाली को देख सकते हैं। बच्चों की आज छुट्टी थी, इसलिए दोनों आज पापा के साथ ही रहे। आज फिर डॉक्टर भौमिक चीफ मेडिकल आफिसर के साथ आये। राहुलजी को इडन नर्सिंग होम में ले जाने की बात है। वहाँ कुछ दिन रहने पर रक्तचाप की जाँच ठीक से कर सकेंगे। एक-डेढ़ सप्ताह रहना होगा। ठीक है, रह लेंगे।"

**शक्रुवार, 20 अप्रैल :** "आज मौसम ठीक न रहने से उनको घर के भीतर ही रखा। वे दिन भर शांत रहे। बच्चों के साथ वे बड़े प्रसन्न रहते हैं। मैं भी घर के काम, रोगी की सेवा तथा पत्रोत्तर लिखने में सारे दिन व्यस्त रही।"

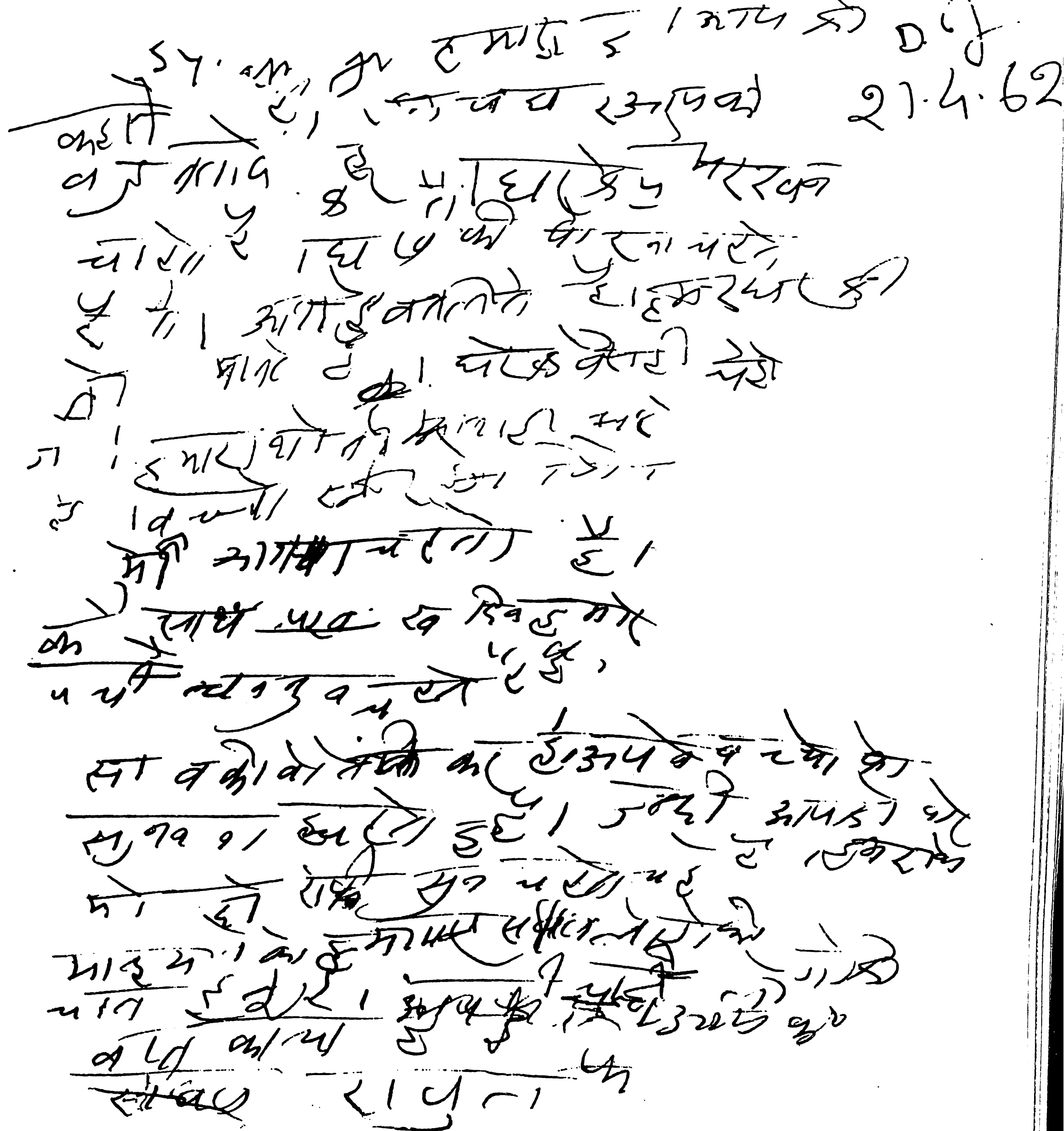
**शनिवार, 21 अप्रैल :** "मौसम अच्छा रहने से वे भी बहुत शांत रहे दिन-भर। निश्चय ही रक्तचाप उतर गया होगा। बच्चों को पढ़ने के लिए कहते रहते हैं। बच्चों ने उन्हें कुछ पढ़कर सुनाया भी।"

**रविवार, 22 अप्रैल :** "आज डॉ. महादेव साहा कलकत्ता से आ गये। उनको पार्टी से पंडितजी को देखने के लिए भेजा गया था। पंडितजी आज शांत रहे। साहाजी को उन्होंने पहचान लिया और वे प्रसन्न भी हुए। पर दोपहर बाद उनका पारा गरम हो गया। रक्तचाप आज कितना है, पता नहीं चला।"

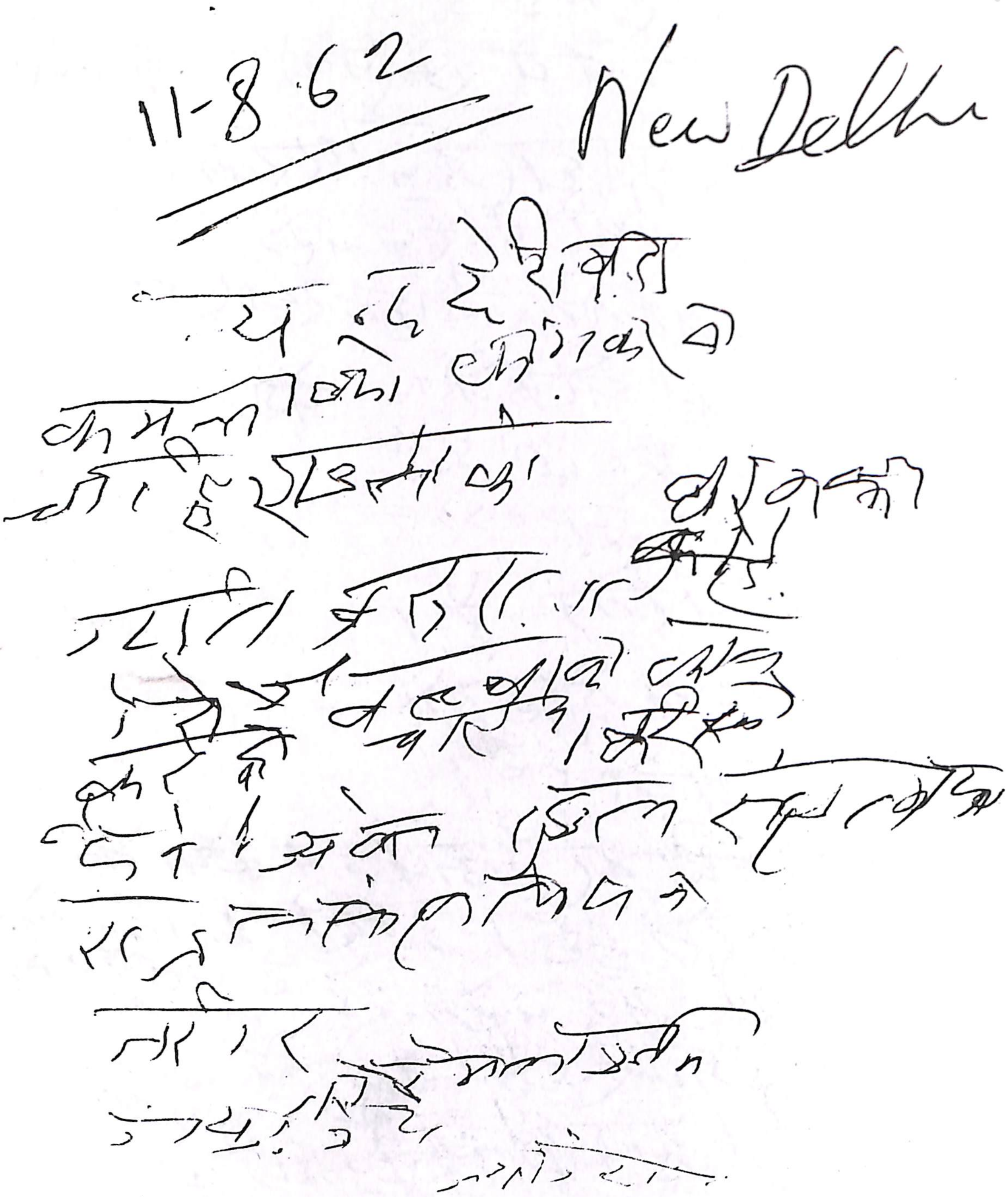
**सोमवार, 23 अप्रैल :** "पंडितजी आज बाहर जाना चाहते थे, हम लोगों ने उन्हें मना किया तो वे क्रुद्ध हो गये। नार्मल तो वे हैं नहीं, अर्धविक्षिप्त की हालत है उनकी। पर हम इतने बीमार आदमी को बाहर कैसे ले जा सकते थे। वे बहुत ही नाराज रहे, उन्हें शांत कराने में बड़ी कठिनाई हुई। रोते रहे—बोलते रहे। बात बहुत ज्यादा करते हैं।"

**मंगलवार, 24 अप्रैल :** "आज दोपहर बाद वे कुछ उग्र हुए, गरमी के कारण भी होगा। शाम को डॉक्टर भौमिक ने आकर उनके रक्तचाप की जाँच की, जो 210/100 था। फिर से बहुत ज्यादा हो गया है। दो-चार दिन के अन्दर उनको नर्सिंग होम ले जाना होगा। रक्तचाप किसी प्रकार कम हो जाता तो अच्छा होता, मालूम नहीं कम क्यों नहीं होता। साहाजी बहुत अधिक बोलते हैं, जिससे रोगी को भी कष्ट होता है।"

**बुधवार, 25 अप्रैल :** "पंडितजी बात-बात पर रोते हैं, साहाजी को देखकर और रोते हैं। पर मेरे साथ उतना नहीं करते। रक्तचाप आज भी ज्यादा रहा होगा, तभी तो उनकी यह अवस्था हो जाती है। वे सारे दिन कुछ न कुछ बोलते ही रहे, बच्चों की प्रतीक्षा भी कर रहे थे। आज उनके रक्त की जाँच हुई, चीनी की मात्रा 88-0 एम. एल. है जो कुछ कम है। काश, उनका रक्तचाप घट जाता। अमृतसर से पंडितजी के मित्र स्वामी हरिशरणानन्दजी ने उनके लिए कुछ दवाइयाँ भेजी हैं। देने को तो दे दूँ, पर अभी दूसरी दवाइयाँ चल रही हैं। कभी-कभी बच्चे मुझे तंग करते हैं, पर अपने पापा की बात सुन लेते हैं।"


21.4.62

बीमारी के दौरान राहुलजी की हस्तलिपि


11-8 62 New Delhi

बीमारी के दौरान राहुलजी की हस्तलिपि

**गुरुवार-शुक्रवार, 26-27 अप्रैल :** "पंडितजी का रक्तचाप अभी नार्मल से अधिक है, रक्त में चीनी अभी शून्य है। वोलते रहे, बीच-बीच में अस्वाभाविक रोते भी रहे। किन्तु रात को 6-7 घंटे गहरी नींद सो लेते हैं। उनकी चिकित्सा के लिए उनके भक्त लोग सहायता भेज रहे हैं।"

**शनिवार, 28 अप्रैल :** "उन्हें अस्पताल ले जाने की बात चल रही है। उदयनारायण पाण्डे की चिट्ठी साहाजी के नाम की मिली। मेरे खिलाफ बहुत-सी बातें लिखी हैं। लिखा है–'राहुलजी की बीमारी का लाभ उठाकर मैं पैसे बटोर रही हूँ।' यदि राहुलजी के भक्त, उनके साहित्य के प्रेमी लोग उनकी चिकित्सा के लिए आर्थिक सहायता भेजते हैं तो मैं क्या करूँ। रुपये बटोरने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। बीमार के इलाज में पैसा पानी की तरह बहाया भी तो जा रहा है। मैंने चन्दे के खिलाफ पत्र लिखकर हिन्दी दैनिकों में छपवा दिये।"

चन्दा संग्रह न करने के लिए अनुरोध करते हुए मैंने जो शब्द लिखे थे, इस प्रकार हैं :

## महापंडित राहुल सांकृत्यायन तथा चन्दा

*आदरणीय सम्पादक महोदय,*

*आपके विशिष्ट पत्र के द्वारा मैं लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहती हूँ–*

*विभिन्न स्थानों से आदरणीय राहुलजी के भक्तों के पत्र आते रहते हैं, जिनमें लिखा रहता है कि उनकी बीमारी को लेकर लोग अत्यन्त चिन्तित हैं तथा उनकी दयनीय अवस्था का वर्णन करके चंदे एकत्रित किये जा रहे हैं। हम लोग वहुत दूर रहते हैं और वे सब समाचार पत्र हमारे पास नहीं पहुँचते जिनमें राहुलजी के बारे में कुछ समाचार छपे हों। समाचारों में क्या लिखे जाते हैं, यह भी पता नहीं रहता। इधर सुनने में आया है कि स्थान-स्थान पर नई-नई कमेटियाँ वन रही हैं और चंदे एकत्रित किये जा रहे हैं। हो सकता है कि वे सभी सज्जन अपने प्रिय साहित्यकार की जीवन-रक्षा के लिए यह सब कर रहे हैं। किन्तु मैं सब लोगों से विनम्र निवेदन करती हूँ कि इस तरह की किसी कमिटी की स्थापना न करें और श्री राहुलजी की चिकित्सा के लिए चंदा एकत्र करने का कष्ट भी न करें। हमें तो उन सभी सज्जनों की शुभ-कामनाएँ ही पर्याप्त हैं। उनकी उतनी बुरी हालत नहीं है, जैसा कि लोग समझते हैं।*

*श्री राहुलजी का रोग असाध्य है। इस समय तो पैसे से भी बढ़कर उचित चिकित्सा की व्यवस्था करने की आवश्यकता है। कहाँ किस स्थान पर या किस विशेषज्ञ डॉक्टर से उनके रोग का समुचित इलाज हो, हमें इसकी ओर अधिक ध्यान देना है। कमेटियाँ बनाकर चंदे एकत्रित करके भी उसका कोई सदुपयोग न होगा, जब तक कि चिकित्सा की उचित व्यवस्था न हो।*

*श्री राहुलजी कलकत्ते के अस्पताल में तीन महीने रहे और वहाँ उन्हें उच्चतम चिकित्सा सुलभ थी। तब भी काफी रुपये खर्च किये जा चुके हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा केन्द्रीय सरकार से उनकी चिकित्सा के लिए सहयोग मिला है। इधर इन सरकारों का ध्यान राहुलजी की अस्वस्थता पर विशेष तौर से गया है, और उचित चिकित्सा की व्यवस्था हो जाने पर सरकार शायद और भी सहयोग दे। यों भी श्री राहुलजी के भक्तगण अपने प्रिय साहित्यकार की जीवन-रक्षा के लिए भेंट, सहानुभूति, सद्भावना तथा शुभकामनाएँ एवं प्रार्थनाएँ भेजते रहते हैं। उनके प्रति प्रेम दर्शाने में लोग पीछे नहीं रहे हैं। फिर राहुलजी की अवस्था एकदम दयनीय होने का सवाल ही नहीं उठता। उनके सम्मान की रक्षा करते हुए इस तरह की कमेटियों की स्थापना बन्द होनी चाहिए। जिन सुहृद जनों ने उनकी चिकित्सा के लिए सहयोग दिया है, उन सबके प्रति मेरा हार्दिक धन्यवाद।*

*भवदीया*

*कमला सांकृत्यायन*

*राहुल निवास,*
*दार्जिलिंग।*

**रविवार, 29 अप्रैल :** "घनघोर वर्षा हुई, पर शाम को मौसम खुल गया। जया-भैया पुष्प प्रदर्शनी देखने

जिमखाना क्लब में गये। मैं तो पंडितजी को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। जाने की इच्छा भी नहीं होती। वे आजकल शांत रहने लगे हैं। रक्तचाप तो कम नहीं हुआ होगा, पर उतना नहीं बोलते। रात को अच्छी तरह से सो लेते हैं।"

**सोमवार, 30 अप्रैल :** "यहाँ बहुत जल्दी बारिश शुरू हो गई है। मौसम खराब रहने पर मन भी उदास हो जाता है। पंडितजी आज दिन-भर शांत रहे, किन्तु अभी रोना बन्द नहीं हुआ है। ऐसी हालत में भी वे पैसों की बहुत चिन्ता करते हैं। आज बार-बार पूछते रहे–'तेरे पास पैसा है ? रुपया कहाँ से आता है ? खर्च कैसे चलता है ?' मैंने कहा–'मेरे पास बहुत पैसे हैं, कोई चिन्ता की बात नहीं, आपने ही तो मुझे दिया था।' फिर भूल गये और यही प्रश्न दुहराते रहे। बेचारे, हमारे भविष्य की चिन्ता करते-करते ही वे इस असाध्य मानसिक रोग के शिकार हो गये। कल उन्हें अस्पताल ले जाना है।"

## मई 1962 : दार्जिलिंग के अस्पताल में

**मंगलवार, 1 मई :** "आज सुबह से ही बारिश हो रही थी। पर शाम को अचानक मौसम साफ हो गया। उन्हें एम्बुलेन्स गाड़ी पर लिटाकर अस्पताल (इडेन सेनिटोरियम) ले गये। उन्हें स्ट्रेचर पर लिटाकर ले जाते समय मेरा हृदय रो रहा था। बहुत ही दुःख हुआ। इडेन नर्सिंग होम के केबिन नम्बर 6 में उनको रखा गया है। कमरा स्वच्छ और खुली जगह है। साहाजी उनके साथ में रहेंगे। खाना तथा नाश्ता आदि घर से ले जाना होगा। शाम की चाय भी घर से ही। चार बार अस्पताल और घर पैदल आने-जाने में मुझे बड़ी दिक्कत होगी, पर और कोई उपाय भी नहीं है।"

**बुधवार, 2 मई :** "आज तीन बार अस्पताल गई। पहाड़ की चढ़ाई-उतराई में इतना चलना पड़ा, कचूमर निकल गई मेरी तो। आज राहुलजी का रक्तचाप 190/90 रहा। वे फिर घर ले चलने के लिए कह रहे थे। इसका मतलब इस एबनार्मलिटी की अवस्था में भी वे घर और अस्पताल के भेद को महसूस करते रहे हैं। इतनी चेतना तो उनमें है, पर कुछ दिन तो उनको इसी नर्सिंग होम में रहना होगा। बच्चे स्कूल से आकर शाम को पापा से मिलने गये। यहाँ की नर्सें बहुत अच्छी हैं। रोगी के प्रति बड़ी सहानुभूति रखती हैं। रात को घर लौटते में बहुत ही थक गई।"

**गुरुवार, 3 मई :** "आज भी तीन समय मैं अस्पताल गई। पंडितजी के लिए पथ्य और साहाजी के लिए नाश्ता और भोजन पहुँचाना था। आज डी. एम. ओ. (डिस्ट्रिक्ट मेडिकल आफिसर) ने भी उनकी डॉक्टरी जाँच की। रक्तचाप सुबह और शाम को 180/90 रहा। अस्पताल में तो उनको चुप रहना पड़ता है, हल्ला नहीं कर सकते। टहलने पर जोर देते हैं। वे खाना ठीक से खा लेते हैं। खुद नहीं खा सकते, खिला देना पड़ता है। पेशाब-पाखाना भी ठीक है। आज कई जगहों से मनीआर्डर आये। चन्दा तो मैंने माँगा नहीं, बल्कि मना कर दिया था, परन्तु भेजनेवाले भेजते जा रहे हैं, कैसे रोकूँ उन लोगों को।"

**शुक्रवार, 4 मई :** "आज चार बार अस्पताल जाना पड़ा–नाश्ता–भोजन-चाय-भोजन लेकर। उन्होंने खाना ठीक से खाया। मुझे देखकर रोते हैं। आज मेरी छोटी बहन गंगा कलिम्पोंग से आई थी उनको देखने के लिए। उन्होंने गंगा को पहिचान लिया।

"अस्पताल और घर करते-करते मैं बहुत थक जाती हूँ। पत्र बहुत से आ रहे हैं, परन्तु पत्रोत्तर लिखने का समय ही नहीं मिलता। आज शाम को राहुलजी का रक्तचाप 180 के आसपास रहा। शाम को अपसेट हो जाने से यह कुछ अधिक हो जाता है।"

**शनिवार, 5 मई :** "आज तीन बार अस्पताल जाना हुआ। चलते-चलते मेरा बुरा हाल हो रहा है। उनका रक्तचाप सबेरे कम रहता है और शाम को चढ़ जाता है। आज वे गुस्से हो गये, टहलने पर अधिक जोर देते हैं, रोते भी रहते हैं। शाम को प्रेशर 200/100 तक चला गया था। शांत रहना चाहिए उन्हें, बोलने में तो गड़बड़ी करते ही हैं।"

**रविवार, 6 मई :** "चारों टाइम अस्पताल जाना पड़ा। आज उनका रक्तचाप थोड़ा कम हुआ है। खाना

ठीक से खाते हैं, 'भूख भूख' करते रहे हैं, पर डायबेटिज़ के कारण मात्रा से अधिक भोजन नहीं दे सकते। बच्चों की बहुत ज्यादा याद करते रहते हैं।"

**सोमवार, 7 मई :** "चार बार नर्सिंग होम गई। आज रक्तचाप कुछ कम हुआ था उनका।

"नागार्जुन ने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में मेरे खिलाफ लेख लिखा–'जब से कमला सांकृत्यायन राहुलजी को दार्जिलिंग ले गईं, तभी से वे बहुत बीमार रहते हैं। उनकी आमदनी में से एक हिस्सा उनके 24 वर्षीय बेटे इ़गोर को मिलना चाहिए। राहुलजी जवान पुत्र को देखने के लिए हमेशा ही तरसते रहे हैं। राहुल-सहायता समिति नाम की कमिटी बननी चाहिए। उसमें भिन्न-भिन्न स्थानों के 9 सदस्य हों। राहुलजी के लिए आयी धनराशि कमिटी में चली जायेगी।' "

राहुलजी को गम्भीर रूप से बीमार पड़े 6 महीने हो गये, पर आज तक मिस्टर नागार्जुन उनको देखने नहीं पधारे। इसके लिए बहाना बनाते हुए उन्होंने उस लेख में यह भी लिखा था–"दार्जिलिंग भारत-चीन का सीमान्त क्षेत्र है। बिना पासपोर्ट के वहाँ नहीं जाया जा सकता। इसलिए राहुल के मित्र राहुल को देखने दार्जिलिंग नहीं पहुँच सकते। उनको प्रयाग-आजमगढ़-दिल्ली-शिमला ऐसे ही एक स्थान में रखना होगा।"

नागार्जुन नामक उस व्यक्ति ने कमला के साथ हमेशा 'सौतिया डाह' रखी (उस द्वेषपूर्ण लेख का जवाब बाद में भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी ने अलग लेख के रूप में दिया था, जो बिहार-बंगाल के हिन्दी दैनिकों में प्रकाशित हुआ था)।

सौतिया डाह रखनेवाले स्वार्थी व्यक्ति से और हो ही क्या सकता था। मेरे राहुलजी के पास आने से पहिले ऐसे स्वार्थी व्यक्ति ने राहुलजी के धन और नाम पर खूब ऐश किया था और मेरे आने से वह सब बन्द हो गया था, इसलिए नागार्जुन जैसे स्वार्थी व्यक्ति ने मेरी उस विपत्ति की घड़ी में मेरे खिलाफ इसी तरह जहर उगला था और आज भी उगल रहा है। परन्तु उस समय मैंने किसी की परवाह नहीं की और न आज करती हूँ। मेरा कर्तव्य तो राहुलजी की सेवा करना था सो मैं करती ही आ रही थी। उन्होंने मेरा हाथ थामा भी इसीलिए था कि बुढ़ापे में मैं ही उनकी देखभाल और सेवा कर सकती हूँ। परन्तु उस समय मिस्टर नागार्जुन का लेख पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ था। मैं दौड़ती हुई अस्पताल गई। साहाजी जो राहुलजी के साथ अस्पताल में ही रहे थे उनको यह बात बतला दी, पंडितजी को भी सुना दिया। उन्होंने समझा या नहीं समझा, किन्तु वे रो रहे थे बेचारे। काश, आज वे बोल सकने की हालत में होते तो गैर लोगों को ऐसी नीच बातें कहने की हिम्मत न होती।

कम्युनिस्ट पार्टी की नेशनल कमिटी की बैठक में राहुलजी की बीमारी के प्रति शोक प्रकट किया गया था।

**मंगलवार, 8 मई :** "आज मैं तीन बार अस्पताल गई। चलते-चलते मेरा मरण हो जाता है। राहुलजी का रक्तचाप आज उतरा है–150/90 के आसपास है। किन्तु उनका एबनार्मल रोना कम नहीं हुआ है। बच्चों की याद करते हैं, भैया (जेता) को खोजते हैं। उनकी बीमारी के सम्बन्ध में पूछताछ के बहुत-से पत्र आ रहे हैं।"

**बुधवार, 9 मई :** "चार बार नर्सिंग होम जाना पड़ा। अभी उनको छुट्टी नहीं मिली है। शायद कल मिले।' दिल्ली से पत्र आया है–राहुलजी को इलाज के लिए सोवियत यूनियन ले जाया जायेगा। किन्तु मैं वहाँ नहीं जा सकती, क्योंकि राहुलजी की पहली पत्नी रूस में है, मैं वहाँ जाकर झगड़ा करूँगी, भारत की नाक नीची हो जायेगी। यदि लोग ऐसा सोचते हैं तो मैं क्यों जाऊँ ? मेरे जाने के खर्च के लिए उतना रुपया कहाँ से आयेगा ?

"कल राजभवन में मुझको बुलाया है, शायद मेरे काम के बारे में बात होगी। मुझे नौकरी की तलाश है, यहाँ से दूर राँची में Women's College में मुझको नौकरी मिल रही थी, पर राहुलजी ने जाने नहीं दिया था, कहा था–तुम जाओगी तो हमें कौन देखेगा ?"

**गुरुवार, 10 मई :** "आज सुबह अस्पताल जाकर पंडितजी को देख आई। फिर 10 बजे राजभवन गई। यहाँ पश्चिम बंगाल के शिक्षा सचिव डी. पी. आई. डॉ. धीरेन्द्रमोहन सेन से मिली। सभी बातें पूछीं उन्होंने–मेरी

शिक्षा के बारे में, राहुलजी के बारे में भी। एक एप्लिकेशन लिखकर लाने को कहा है। मुझे आश्चर्य हुआ जब सेन महाशय ने यह पूछा कि–'राहुलजी तो सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य रहे थे, क्या आपको पता है ?' मुझे उस बारे में कुछ मालूम नहीं था। मैं तो उनको कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य के रूप में ही जानती थी। यह सब पूछने की क्या जरूरत थी ? पश्चिम बंगाल की कांग्रेसी सरकार मुझे नौकरी देगी, इसकी आशा मुझे नहीं थी।

"आज शाम को 4 बजे पंडितजी को अस्पताल से घर ले आई। आज उनका रक्तचाप 155/85 था। डॉक्टर से भेंट न हो सकी। अब सप्ताह में दो बार डॉक्टर को घर में बुलाना होगा। उनके रक्तचाप की जाँच होती रहनी चाहिए।"

**शुक्रवार, 11 मई :** "दिन सामान्य ढंग से बीता। पंडितजी आज दिन-भर रोते रहने के मूड में थे, अतः रोते ही रहे। पर यह रोना अस्वाभाविक है। खूब भूख लगती है उनको, बार-बार खाना माँगते रहते हैं। मछली खिला देती हूँ। आज नौकरी के लिए एप्लिकेशन नहीं लिख पाई, समय ही नहीं मिला।"

**शनिवार, 12 मई :** " दिन पूर्ववत् ही बीता। आज एप्लिकेशन लिखकर राजभवन भिजवा दिया। साहाजी को गवर्नर पद्मजा नायडू ने 15 तारीख को राजभवन बुलाया है। यदि मुझको लोरेटो कॉलेज में काम मिल जाता तो समस्या हल हो जाती। क्या करें, कहीं भी मन टिकता नहीं। पंडितजी आज शांत रहे।"

**रविवार, 13 मई :** "वे आज भी शांत रहे। रोना कम हुआ। उनकी स्मरणशक्ति में सुधार मालूम नहीं हो रहा। आज उनका रक्तचाप कितना रहा, यह भी पता नहीं लगा। 'हाँ-हूँ' करते रहे दिन-भर, रात-भर भी। रात को खूब गहरी नींद सोते हैं, करीब-करीब 12 घंटा तो सो ही लेते हैं। उनको बहुत भूख लगती रहती है, पर भोजन की मात्रा बढ़ाने में डर लगता है।"

**सोमवार, 14 मई :** "उदयनारायण पाण्डे का पत्र आया, मुझको खूब डाँटकर लिखा है। वे लोग राहुलजी को आजमगढ़ में रखकर इलाज कराना चाहते हैं, परन्तु मैं ले जाने नहीं देती। इसी तरह की बातें लिखी हैं। पंडितजी आज शांत ही रहे, बोले भी बहुत कम।"

**मंगलवार, 15 मई :** "साहाजी राजभवन गये। गवर्नर कुमारी पद्मजा नायडू से उनकी बात हुई। राहुलजी के बारे में विभिन्न पत्रों में उनकी सहायता के लिए जो अपीलें छप रही हैं, इससे गवर्नर बहुत नाराज हैं। पर अपीलें छपने के बाद ही न सरकार के कान में जूँ रेंगी है। अपीलें बन्द करवाने को कहा है उन्होंने (अपीलें मैंने नहीं छपवाई थीं)। मेरे लिए लोरेटो में काम दिलवाने की व्यवस्था कर रही हैं। कलकत्ता के पी. जी. अस्पताल में राहुलजी की अवस्था श्रद्धेय बच्चनजी स्वयं देखकर गये थे। उन्होंने ही अपनी ओर से 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में एक अपील छपवा दी थी। उस समय हर कोई राहुलजी के स्वास्थ्य के प्रति चिन्तित था।"

**बुधवार, 16 मई :** "शाम को वर्षा हुई। वे शांत रहे आज। शाम को डॉक्टर भौमिक आये। राहुलजी का रक्तचाप आज 180/90 था। वे टहलने पर जोर देते हैं, पर अब टहलना बिल्कुल बन्द करना है। वे उत्तेजित भी रहा करते हैं। जब रूस जाने की बात मैंने उनको बता दी तो कहने लगे–'चलो, चलो'। रात को उन्हें अच्छी नींद आती है। मेरे मन में तरह-तरह की चिन्ताएँ हैं, भविष्य की चिन्ता, बच्चों की चिन्ता आदि-आदि। कैसे इन चिन्ताओं का समाधान होगा ?"

**गुरुवार, 17 मई :** "दिन सामान्य बीता। वे शांत रहे। पर आज वे अधिकतर गड़बड़ ही बोलते रहे। निराशा हो आती है। इतनी चिकित्सा और दवाओं के बावजूद वे स्वस्थ होने में नहीं आ रहे हैं। समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ ?"

**शुक्रवार, 18 मई :** "कल मेरे जीजाजी राधामोहन बाबू पंडितजी को देखने कलिम्पोंग से आये थे। आज भी वे घर पर आये और देर तक पंडितजी के साथ बैठे रहे। वे आज बहुत शांत रहे, बीच-बीच में रूस जाने के बारे में भी पूछते रहे।"

**शनिवार, 19 मई :** "दिन साधारण बीता। वे आज 10 बजे तक सोते रहे। बड़ी घबड़ाहट हुई, उनको जगाना पड़ा। दिन में भी वे कम ही बोले। शाम को डॉक्टर आये। उनका रक्तचाप 195/85 था। शांत रहना

चाहिए उनको–ऐसा डॉक्टर ने कहा।

“श्री विष्णु प्रभाकरजी के पत्र से मालूम हुआ कि राहुलजी के नाम पर चंदे जमा करने के लिए कई कमेटियाँ बनाई गई हैं। रोक देना चाहिए। मैं लेख लिखकर भेज रही हूँ। (बाद में मैंने विभिन्न पत्रों में सूचना छपवा दी, चंदा जमा करने की रोक लगाते हुए) शाम को सेंट जोसेफ, सेंट पाल तथा गवर्नमेंट डिग्री कॉलेज के तीन हिन्दी प्रोफेसर पंडितजी को देखने के लिए आये।”

**रविवार, 20 मई :** “वे दिन-भर शांत और चुपचाप रहे। मेरा मन खिन्न रहता है। वे बीमार हैं, स्वस्थ नहीं हो रहे, दुनिया-भर की चिन्ताएँ मुझे घेरे रहती हैं।”

**सोमवार, 21 मई :** “आज राहुलजी के कुछ फोटो लिये, लोग माँगते हैं। शांत रहे वे, ज्यादा बोले भी नहीं। साहाजी राधामोहन बाबू के साथ कलिम्पोंग गये थे, आज भी वे नहीं लौटे। मैं तो पंडितजी को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती।”

**मंगलवार, 22 मई :** “आज वे टहलने के लिए बहुत जोर देते रहे। गानते नहीं, उठ-उठकर चल देते हैं। दिल्ली से 'हिन्दी टाइम्स' का अंक आया। इसमें भी नागार्जुन ने मेरे खिलाफ लिखते हुए यह लिखा है–मुझे इगोर और लोलादेवी को भारत बुलाना चाहिए। उनके आने से राहुलजी अवश्य ठीक हो जायेंगे। पर यह नहीं लिखा कि उन दोनों के आने के लिए खर्च की व्यवस्था मैं कैसे करूँगी ?”

**बुधवार, 23 मई :** “आज डाक्टर बहुत देर करके आये। तब वे भोजन कर रहे थे। भोजन के बाद रक्तचाप नापने पर 220/105 था। इतना अधिक तो नहीं होना चाहिए था। आज वे सोये भी बहुत अधिक। दिन में कई बार टहलने की कोशिश करते रहे। एकदफे दरवाजा खोलकर चुपचाप बाहर निकल गये। जब मैं बुलाने गई तो वे गिर पड़े। ताकत ही नहीं। पैर की एक उँगली में चोट आई। उनको उठाना भी मुश्किल को जाता है। घुमक्कड़राज को बीमारी में भी टहलने का बड़ा शौक है, क्या करें। उनको देखने के लिए काफी लोग-बाग आये।”

**गुरुवार, 24 मई :** “आज कुछ वर्षा हुई। शाम को डॉक्टर भौमिक अपने आप ही आये। राहुलजी की जाँच की। कह रहे थे आज प्रेशर कम है। क्यों न कम होता। आज वे बहुत शांत रहे, बाहर जाने के लिए एक बार भी जिद नहीं की। पूरे 13 घंटे सोये थे।

“डॉक्टर भौमिक बता रहे थे–यहाँ के डिप्टी कमिश्नरं के पास खबर आई है कि केन्द्रीय सरकार ने राहुलजी को वेल्लोर ले जाने का खर्चा सैंक्शन किया है। पर अब तो वे वेल्लोर क्या जायेंगे। डॉक्टर के बताये बिना उनका कहीं आना-जाना बहुत मुश्किल है। सोवियत संघ जाने की बात चल रही है, कहीं उधर ही जाना पड़ जाय। उनके स्वास्थ्य में कोई विशेष परिवर्तन मालूम नहीं होता।”

**शुक्रवार, 25 मई :** “दिल्ली से श्री सच्चिदानन्द शर्मा का पत्र आया, लिखा है–राहुलजी को सोवियत संघ ले जाने की बात तै सी हो गयी है। शायद 10-15 दिन में वहाँ से बुलावा आ जाये। मेरे पासपोर्ट के बारे में पूछा है। सोचा था कि न जाना पड़े। मेरे जाने में मेरे दुश्मनों को आपत्ति होगी। पर अब जाने की सम्भावना दिखाई दे रही है। इधर बच्चे और घर की चिन्ता है, उधर इतनी लम्बी यात्रा एक एबनार्मल बीमार आदमी को लेकर कैसे करूँगी ? यह सोचने की बात है।

“उत्तर प्रदेश सरकार ने फिर 1500 रुपया सैंक्शन किया है और जून महीने से प्रतिमाह 150 रुपया के हिसाब से एक वर्ष के लिए राहुलजी को एलाउन्स दिया जायेगा। मुझे तो चारों ओर की चिन्ताएँ घेरे रहती हैं। इन सबसे मुक्ति कैसे मिलेगी ?”

**शनिवार, 26 मई :** “आज उनकी तबियत पहले से ज्यादा खराब रही। बेहोशी-सी आई थी उनको। करीब-करीब 18 घंटे सोये, मधुमेह में पेशाब में या ब्लड में चीनी अधिक बढ़ जाने से भी नींद आती है रोगी को। बेहोशी में बिस्तर भिगो देते हैं, यही मेरे लिए मुश्किल है। आज डॉक्टर भी नहीं आये। बहुत-सी चिट्ठियाँ आईं आज भी।”

## पुनः नर्सिंग होम में दाखिल

**रविवार, 27 मई :** "तीन दिन से वे बहुत अधिक सो रहे थे। आज तो खड़े भी न हो सके। आँखें खोल ही नहीं रहे थे। अतः शाम को डॉक्टर भौमिक को बुलाया। उन्होंने इनको अस्पताल ले जाने की सलाह दी। शाम को फिर उन्हें इडेन सेनिटोरियम ले गये। रात को भी वे सोये रहे। आँखें खोलने का प्रयत्न करते थे, किन्तु पलकें बोझिल थीं। उनकी हालत देखकर घबराहट होती है। शायद सेडेटिव का असर हो। नयी दवा दे रहे हैं, उसी की वजह से ऐसा हुआ है। डॉक्टर भौमिक ने कलकत्ता से स्पेशलिस्ट को बुलाने को कहा है। आज रात को पंडितजी ने खाना भी ठीक से नहीं खाया।"

**सोमवार, 28 मई :** "मैं चारों समय अस्पताल गई। उनके ब्लड की रिपोर्ट आई। सुगर की मात्रा अधिक हो गई है। पर वह तो खाने के बाद टेस्ट किया गया था, कुछ कम भी हो सकता है। डॉक्टर भौमिक को राहुलजी की किडनी खराब हो जाने की आशंका है। परन्तु पेशाब तो वे बहुत करते हैं। हो भी सकता है, खतरनाक बीमारी है यह। बड़ी घबड़ाहट होती है, क्या करें। सुबह चाय-नाश्ता लेकर गई तो वे सो रहे थे, पर दोपहर बाद कुछ बोल रहे थे।

"आज पी. जी. हास्पिटल, कलकत्ता के डॉक्टर जे. सी. गुप्ता को ट्रंक-काल किया है। वह परसों आ जायेंगे। वह आकर एक बार राहुलजी को अच्छी तरह देख लें तो हमें सन्तोष होता। दवाएँ कलकत्ता से ही मँगानी पड़ेंगी। आज उनका रक्तचाप 150/80 रहा। गवर्नर पद्मजा नायडू ने अपने पी. ए. श्री अशोक बसु को हमारे घर भेजा था।"

**मंगलवार, 29 मई :** "अस्पताल चारों समय गई। बहुत थक जाती हूँ। जया-जेता के लिए टोपी बरसाती खरीदने के लिए भी जाना पड़ा। आज सबेरे तो पंडितजी सो रहे थे, पर शाम को आँखें खोलकर बैठे हुए थे। घर ले जाने के लिए जिद कर रहे थे, रो भी रहे थे। उन्हें पेशाब बहुत हो रही है।"

**बुधवार, 30 मई :** "आज शाम को कलकत्ता से डॉक्टर जे. सी. गुप्ता यहाँ अस्पताल पहुँच गये। उन्होंने राहुलजी को अच्छी तरह से देखा। बतलाया–'उनका ब्लड शुगर, यूरिया, एन. पी. एन. बढ़ गया है।' ब्लड प्रेशर की दवा बन्द कर दी। अन्य दवाइयाँ दी जाने लगीं हैं। राहुलजी आज दोपहर तक सो रहे थे, आँखें बन्द-बन्द हुई जा रही थीं। रात को डॉक्टर जे. सी. गुप्ता ने मुझे अस्पताल बुला भेजा। अब रोगी को शीघ्र कलकत्ता ले जाने के लिए कह रहे थे। जब कहते हैं तो ले ही जाना चाहिए।

"मुझे बच्चों की चिन्ता होती है। उनकी देखभाल करनेवाला भी कोई नहीं है। परेशानियों के कारण मुझे ठीक से नींद भी नहीं आती।"

**गुरुवार, 31 मई :** "शाम को डॉक्टर जे. सी. गुप्ता के आने की बात थी, पर नहीं आये। आज ही कलकत्ता वापस चले गये। उनका चार्ज प्रतिदिनि 1000 रुपया है। यहाँ आने की चार्ज आदि कुल मिलाकर कुल 2200/- रुपये का हिसाब चुकता कर दिया। सबेरे पंडितजी को एक बार देखा था। ब्लड प्रेशर अधिक नहीं है, तो भी वे बहुत सो रहे हैं। 12 बजे दिन तक तो वे सोते ही रहते हैं, यह सोना नार्मल नहीं है। रात को पेशाब पर भी कन्ट्रोल नहीं कर पाते। आज मुझे बहुत अधिक चलना पड़ा, जिससे बड़ी थकान हो गई। पंडितजी की दवाइयों के लिए कलकत्ता में टेलीग्राम दे दिया, यहाँ तो कहीं भी नहीं मिलती, बड़ी मुश्किल है।"

## जून 1962

**शुक्रवार, 1 जून :** "अस्पताल चार बार गई। उनका सोना अभी तक कम नहीं हुआ है। ब्लड शुगर कुछ बढ़ गया है। भोजन में मछली और दाल को बन्द कर दिया है। एकदम सादा खाना खा रहे हैं। बच्चों की याद करते हैं। कलकत्ता जाना भी हो तो 15 जून से पहले तो मुश्किल ही दीखता है।"

**शनिवार, 2 जून :** "चारों समय अस्पताल दौड़ना पड़ा मुझ को। दोपहर बाद श्री रतनलाल ब्राह्मण राहुलजी को देखने अस्पताल आये। दवाइयाँ यहाँ मिलती नहीं, बड़ी मुश्किल है। अभी कलकत्ता से दवाइयाँ नहीं आईं।

कर्सियांग में भी कहला भेजा है। उनका सोना आज थोड़ा कम हुआ।"

**रविवार, 3 जून :** "रोज की तरह आज भी चारों समय अस्पताल दौड़ी। घर में भी रँगाई-पुताई हो रही है, बहुत ज्यादा काम रहता है मुझे। फुरसत जरा भी नहीं मिलती, बहुत थक जाती हूँ। वे थोड़े अच्छे हुए हैं। अब जया-जेता का नाम ले लेते हैं। बच्चों के कपड़े आदि कल खरीद देना है।"

**सोमवार, 4 जून :** "राहुलजी अभी अस्पताल में ही हैं। उनको देखने, भोजन आदि पहुँचाने में चार बार गई। आज वे थोड़े ठीक थे।"

**मंगलवार, 5 जून :** "चारों समय अस्पताल जाना पड़ा। कलकत्ता से दवाइयाँ आ गईं। वे कल से पेशाब बहुत कम कर रहे हैं, आज तो और भी कम। ब्लड प्रेशर 180/80 है। खाने में बहुत कन्ट्रोल रखा गया है।"

**बुधवार, 6 जून :** "जेता कई दस्त आने के कारण बहुत कमजोर हो गया है। बेचारा, दिन में खाना भी अच्छा नहीं मिलता, ठण्डा खाना खाना पड़ता है। उसे बड़ी तकलीफ होती है।

"सुबह-दोपहर-शाम और रात को चारों समय मुझे अस्पताल जाना पड़ा। वे आज कुछ अच्छी हालत में हैं। रक्तचाप 180/90 है, पर वे अधिक बोलते हैं। अस्पताल में साहाजी उनके साथ रहते हैं। दिल्ली से पत्र आया है, सोवियत संघ जाने में कुछ समय लगेगा।"

**गुरुवार, 7 जून :** "आज तीन बार अस्पताल गई। वे बहुत अधिक बोलते हैं, पर बातों में कोई क्रम नहीं है। शाम को उनका रक्तचाप 205/105 था। दवाएँ मिलती भी नहीं, क्या करें। जेता की तबियत आज थोड़ी सुधरी है।"

**शुक्रवार, 8 जून :** "नियमानुसार चार बार अस्पताल गई। वे कुछ ठीक दिखाई दिये, ठीक से सोये भी।"

**शनिवार, 9 जून :** "चारों समय अस्पताल गई। बरसात के कारण काफी भीगना पड़ा। रात को जब लौट कर आई तो देखा जेता को तेज बुखार था। बेचारा रो-रोकर सोया। दिन में स्कूल से पानी में भीगकर आया था। घर में भी पानी में खेलते रहे, किसी की सुनते नहीं। मुझे भाग-दौड़ से ही फुरसत नहीं। लगता है कि परेशानियाँ कभी खत्म न होंगी।"

**रविवार, 10 जून :** "चार बार अस्पताल जाना पड़ा। घर में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो मेरी मदद कर सके। दोपहर को घर में जब मैं जेता के पास बैठी थी, उसी समय भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी आये। वे राहुलजी को देखने आये थे, इसलिए उनको इडेन अस्पताल ही भेज दिया। जेता (भैया) को दिन-भर बुखार रहा, शाम को वह 104° डिग्री तक पहुँच गया। बहुत डर लगा। डॉक्टर भौमिक को बुलाना पड़ा। उन्होंने कुछ दवाइयाँ लिख दीं। पर रात को यहाँ दवाइयाँ मिलें तब न।

"अस्पताल में पंडितजी आज शांत रहे। घर जाने के लिए बीच-बीच में मचल भी रहे थे। भदन्त आनन्दजी को उन्होंने पहिचान लिया। राहुलजी को इस हालत में देखकर भदन्तजी ने अपने मनोभाव को एक सुन्दर लेख में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने कमलाजी पर आई विपत्तियों तथा भागदौड़ एवं जेता की बीमारी आदि का भी उल्लेख किया है। वह इस समय श्रीलंका से इतनी दूर दार्जिलिंग आये थे राहुलजी को देखने। उनको तो दार्जिलिंग आने में पासपोर्ट की जरूरत नहीं पड़ी थी। अपने पुराने मित्र को अपने पास पाकर राहुलजी को प्रसन्नता हुई। मैंने तथा साहाजी ने पंडितजी की बीमारी का सारा ब्यौरा उनको बतला दिया। आज मेरी माँ भी पंडितजी को देखने कलिम्पोंग से आईं।"

**सोमवार, 11 जून :** "जेता का बुखार आज कुछ कम हुआ। मैं तीन बार अस्पताल गई। भदन्त आनन्दजी राहुलजी के साथ बराबर अस्पताल में ही रहे। वे काफी अच्छी तरह से बोलते हैं।"

**मंगलवार, 12 जून :** "नियमित रूप से मुझे चार बार अस्पताल का चक्कर लगाना पड़ा। वे शांत रहे आज। भैया आज भी स्कूल नहीं जा सका। उसे अब बुखार नहीं है, पर वह बहुत कमजोर हो गया है।"

**बुधवार, 13 जून :** "आज बहुत बारिश हुई। चारों समय मैं अस्पताल गई। वे आजकल शांत रहते हैं। रक्तचाप 160/80 है। एक दिन 205/105 हो गया था। खाना ठीक से खा रहे हैं। गहरी नींद सोते हैं! अभी दिल्ली से कोई खबर नहीं आई है। भदन्त आनन्दजी आज वापस चले गये। उनके आने से पंडितजी को बहुत

शांति मिली।"

**गुरुवार, 14 जून :** "तीन बार अस्पताल का चक्कर लगाया। वे कुछ ठीक लग रहे हैं। बातचीत भी ढंग से कर रहे हैं। उनको अच्छे हो जाने की आशा बँधी है। कल उनको घर ले जाना होगा। भैया आज से स्कूल जाने लगा। यहाँ के अस्पताल की नर्सें बहुत ही अच्छी हैं। रोगी का बहुत ध्यान रखती हैं। आज तीन नर्सें हमारे घर भी आई थीं।

## अस्पताल से घर

**शुक्रवार, 15 जून :** "आज दिन में खूब बारिश हुई, परन्तु शाम को मौसम खुल गया। अस्पताल से राहुलजी को पाँच बजे घर ले आये। अस्पताल पहुँचाने और घर ले आने में एम्बुलेन्स और स्ट्रेचर का सहारा लेना पड़ता है, वे तो एक कदम भी नहीं चल सकते। घर पहुँचने पर फिर वे अपने घर की पहिचान नहीं कर सके। उनको सँभालना मुश्किल हो गया। अच्छे होंगे कि नहीं, कहना मुश्किल है।"

**शनिवार, 16 जून :** "घर ही में रहे, कहीं जाना तो अब नहीं हो सकता। बड़ी उदासी और चिन्ता से दिन कट रहे हैं। काम न मिलने से मन और दुःखी हो जाता है। पंडितजी की हालत देखती हूँ तो निराशा उमड़ आती है। आखिर जायें तो किस तरह ?"

**रविवार, 17 जून :** "घर ही में रहे, कहीं जाना तो अब नहीं हो सकता। वे दिन-भर शांत रहे। अब पेशाब-पाखाने के लिए बोल देते हैं। रात में भी कह देते हैं। आज उनको देखने के लिए बहुत-से लोग आये।"

**सोमवार, 18 जून :** "पंडितजी आज बेहतर हालत में रहे। उनको देखने के लिए शाम को तीन नर्सें आईं। कप्तान लाल बहुत दिनों के बाद हमारे घर आये। इस प्रकार लोगों का आना पंडितजी को बहुत अच्छा लगता है।

**मंगलवार, 19 जून :** "मौसम साफ रहा, धूप निकल आई। शाम को डॉक्टर भौमिक आये। राहुलजी का ब्लड प्रेशर 170/85 है। कलकत्ता ले जाने के बारे में डॉक्टर पूछ रहे थे। अभी तो निश्चय हुआ ही नहीं।

"लोरेटो कान्वेन्ट में हिन्दी पढ़ाने के लिए मदर सुपिरियर ने मुझे बुला भेजा। स्कूल में पढ़ाना तो मैं नहीं चाहती, फिर काम करने जाऊँ तो पंडितजी की तीमारदारी कौन करेगा ? बच्चे भी छोटे हैं। मैंने इन्कार कर दिया।"

**बुधवार, 20 जून :** "दिन अच्छा रहा, शाम को वर्षा हुई। वे आज दिन-भर किताबों के पन्ने उलटते रहे। बेचारे, पढ़ तो नहीं सकते, यह कैसी विडम्बना है ? वे कुछ अच्छे मालूम हो रहे हैं।"

**गुरुवार, 21 जून :** "दिन-भर पानी बरसता रहा। बाहर भी निकल नहीं सके। पंडितजी अच्छे मूड में रहे। पुस्तकों को देखते, पन्ने उलटते रहते हैं। पढ़ने में अपनी असमर्थता के लिए रो पड़ते हैं। मुझ को बहुत दुःख होता है।

"कल से जया की अर्द्धवार्षिक परीक्षा शुरू होगी। पढ़ाई में दोनों बच्चे मन नहीं लगाते। पता नहीं कैसा करेगी वह।"

**शुक्रवार, 22 जून :** "वे आज बहुत अच्छे मूड में थे, किताबें पढ़ने की चेष्टा करते रहे, पर अक्षर तो भूल चुके हैं। बेचारे कातर हो जाते हैं। अपनी लिखी हुई पुस्तकों को पहिचान लेते हैं, परन्तु उनका नाम नहीं बतला सकते। नाम के प्रथम अक्षर को जब मैं बोलती हूँ तब वे पूरा नाम बोल देते हैं। जैसे मैं पूछती हूँ–'पंडितजी, यह कौन-सी पुस्तक है ?' वे कह देते हैं–'यह तो मेरी पुस्तक है।' मैं कहती हूँ–'नाम तो बताइए।' वे असमर्थता व्यक्त करते हैं। मैं कहती हूँ–यह तो आपकी 'जी' है, तब वे 'जीवन-यात्रा' बोल पड़ते हैं। अपना नाम भी वे उच्चारित नहीं कर सकते, नाम ही भूल गये हैं। जब मैं पूछती हूँ–'पंडितजी, आप का नाम क्या है ?' वे कहते हैं–'मैं तो भूल गया हूँ।' मैं कहती हूँ–आपका नाम तो 'रा' है। तब वे 'राहुल सांकृत्यायन' पूरा नाम बोल देते हैं। काश कि उनकी स्मरणशक्ति 50 प्रतिशत भी लौट आती। उनकी स्मरणशक्ति शून्य हो गई है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि याद दिलाने पर उन्हें याद आ जाती है। परिवार के सदस्यों तथा एक-दो

पुराने मित्रों को वे पहिचान लेते हैं। घर में मेरा काम है उनको उन्हीं की पुस्तक पढ़कर सुना देना। उन्हें इसमें
बड़ा आनन्द आता है। मूड अच्छा रहे तो वे गाना सुनना भी पसन्द करते हैं।"

**शनिवार, 23 जून :** "दिन सामान्य ढंग से बीता। बरसात जोर से हो रही है। गवर्नर कुमारी पद्मजा
नायडू आज सदल-बल कलकत्ता लौट गईं। जया की परीक्षाएं चल रही हैं। आज वह दिन-भर स्कूल में रही।
पंडितजी बच्चों के स्कूल से आने की प्रतीक्षा करते रहते हैं।"

**रविवार, 24 जून :** "पंडितजी पुस्तकों में खोये रहते हैं। इतने बड़े विद्वान्, महापंडित, किंतु आज वे अपनी
पुस्तकों के नाम भी नहीं पढ़ सकते, देखकर मन विचलित हो जाता है। वे भी कातर हो जाते हैं। आजकल
उनका मूड अच्छा रहने लगा है। कलकत्ता जाने की बात चल रही है। न जाना पड़ता तो अच्छा होता। बच्चों
को छोड़कर जाने का मन नहीं करता। बेचारे उदास हो जायेंगे। पंडितजी को दिन-भर प्रसन्न रखना पड़ता
है, कभी पुस्तकें पढ़कर, कभी रेडियो के गाने सुनाकर। मन में यही भावनाएँ उठती हैं–काश, वे एक बार
पहले की तरह प्रकृतिस्थ हो जाते।"

**सोमवार, 25 जून :** "दिन-भर लगातार बारिश होती रही। भैया शाम को बहुत देर से आया। बस में
पेट्रोल खत्म हो जाने से वह आधे रास्ते पैदल चलकर आया था। सबेरे 7 बजे का गया लड़का शाम को इतनी
देर से आता है। स्वास्थ्य भी उसका अच्छा नहीं है। आज वे अच्छे मूड में रहे। कल डॉक्टर उनको देखने
आयेंगे। कलकत्ता जाना अभी तक तै नहीं हुआ है। उनको देखने के लिए कई नर्सें आईं। राधामोहन बाबू
भी आये।"

**मंगलवार, 26 जून :** "बरसात का मौसम है। पानी दिन-भर बरसता रहा। डॉक्टर भौमिक आये। पंडितजी
का रक्तचाप आज 170/85 रहा। ब्लड टेस्ट करवाने की जरूरत नहीं। पेशाब में चीनी अभी 'निल' है। डॉक्टर
कलकत्ता जाने के लिए जोर दे रहे हैं।
"मेरे काम का सिलसिला नहीं बन रहा है, इससे चिन्ता होती है।"

**बुधवार, 27 जून :** "वे अच्छे मूड में रहे। किताबों में खोये रहते हैं, बेचारे पढ़ नहीं पाते। मैं ही उनको
बीच-बीच में पढ़कर सुना देती हूँ। अपनी किताबों को वे अच्छी तरह पहिचान लेते हैं। नाम बताकर पूछने
पर कहते हैं–'हाँ, यह तो मेरी लिखी हुई किताब है।' "

**गुरुवार, 28 जून :** "जया की परीक्षाएँ आज समाप्त हुईं। पंडितजी को मालूम है कि उनकी बेटी परीक्षा
दे रही है। पूछते हैं–'कैसा किया तुमने ? अच्छा किया न ?' इतना तो होश है उनको। भैया को बरसात में
स्कूल में जाने में बड़ी तकलीफ होती है। पास में कोई दूसरा स्कूल नहीं है। वह अपनी इच्छा से स्कूल नहीं
जाता, जबर्दस्ती भेजना पड़ता है। मैं पूरी तरह बच्चों पर ध्यान नहीं दे पाती। ज्यादा समय मुझे पंडितजी
के लिए देना पड़ता है। मुझे वे थोड़ी देर के लिए भी आँखों से ओझल होने नहीं देते, घबड़ाने लगते हैं।"

**शुक्रवार, 29 जून :** "कभी-कभी मन उदास हो जाता है। पंडितजी का स्वास्थ्य सँभलता नहीं, अपनी नौकरी
नहीं। बाहर काम ढूँढ़ने जाऊँ भी तो इनको छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। बच्चों की देखभाल भी करनी है।
क्या करूँ ? आज जेता बहुत देर करके आया स्कूल से। बरसाती की टोपी उसने खो दी है, लड़के उसको
मारते हैं, खूब रो रहा था बेचारा। थोड़ा बड़ा होता तो वह अपने को सँभाल लेता। स्कूल बहुत दूर होने के
कारण ही यह सब परेशानियाँ हैं। पिता को यह सब बातें हम बतला नहीं सकते, क्योंकि वे अब किसी की
मदद करने की अवस्था में नहीं हैं।"

**शनिवार, 30 जून :** "पंडितजी की अवस्था पूर्ववत् रही। उनको देखने के लिए लोग बराबर आते रहते
हैं। उनको भी लोगों का आना अच्छा लगता है।"

## जुलाई 1962

**रविवार, 1 जुलाई :** "आज रेडियो से दुखद समाचार सुनने को मिले। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री डॉक्टर विधानचन्द्र
राय तथा प्रयाग के राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनजी का निधन हो गया। पंडितजी ने भी यह समाचार सुना, दुःखी

मालूम हुए। आखिर कुछ समझते तो हैं ही, बोल भले ही न सकें। वे कुछ रोये भी। पर यह रोना अपनी विवशता के लिए है। मन की भावनाएँ आँसुओं में व्यक्त करते रहे हैं वे इतने महीनों से।"

**सोमवार, 2 जुलाई :** "अब लोग ज्यादा आने लगे हैं। आज लोगों ने पंडितजी को बहुत डिस्टर्ब किया। इनको पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है, पर लोग समझते ही नहीं। आज पंडितजी बड़े उदास दिखाई दे रहे थे। निश्चय ही उनका प्रेशर चढ़ गया होगा। वे चुपचाप ही पड़े रहे। सोवियत संघ से निमंत्रण आ चुका है पंडितजी के लिए। कामरेड श्री भूपेश गुप्ताजी की चिट्ठी आई है दिल्ली से। देखें, कब जाना होता है।"

**मंगलवार, 3 जुलाई :** "उन्हें आज भी लोगों ने बहुत डिस्टर्ब किया। साहाजी भी इस बात का ख्याल नहीं रखते कि बीमार के सामने इतना नहीं बोलना चाहिए। आनेवाले लोगों को लेक्चर देने लग जाते हैं, इस तरह सब का समय बरबाद करते हैं। इससे पंडितजी को बहुत तकलीफ होती है। शाम को डॉक्टर भौमिक ने आकर पंडितजी की जाँच की। रक्तचाप 190/95 हो गया, अर्थात् फिर बढ़ गया है। दवाइयाँ भी नहीं हैं। अब क्या करें। लाचार होकर मैंने साहाजी को कह दिया कि बीमार के सामने ज्यादा न बोला करें। उनकी तबियत फिर बिगड़ जाती है।"

**बुधवार, 4 जुलाई :** "वे आज बहुत सोते रहे। उन्हें बाहर के कमरे में भी नहीं ले जा सकी। साहाजी को अपनी गलती मालूम हो गई। रूस के निमंत्रण से मालूम होता है कि एक ही आदमी को बुलाया है, हमारा कहीं जिक्र नहीं है। पैसेज रिजर्व बैंक के द्वारा बुक कराना होता है जो मेरे लिए टेढ़ी खीर है। हमारे तो पासपोर्ट की मियाद भी खत्म हो गई है, अब क्या करना होगा ? वे अकेले कैसे जायेंगे, समझ में नहीं आता। बेचारे अपने से कुछ भी नहीं कह सकते, न ही उनका मस्तिष्क सही है। मेरे लिए अब और परेशानी हो गई है। श्री भूपेश गुप्त भी दिल्ली में नहीं हैं।

"बम्बई से Medical Aid Society से भी पंडितजी की निःशुक्ल चिकित्सा करने का आफर आया है। उनका Vaccination हो गया, कल उनको टी. ए. वी. सी. का इंजेक्शन भी लगेगा। आज उनका ब्लड टैस्ट हुआ होगा, कल उसकी रिपोर्ट मिलेगी।

**गुरुवार, 5 जुलाई :** "भैया जेता बरसात में भीगते हुए शाम को घर आया। पिताजी को दुःख लगा। लोग-बाग भी आते रहते हैं, समय काफी बर्बाद कर देते हैं। हमारा काम ही रुक जाता है। पंडितजी तो अपनी ओर से बात नहीं कर पाते। वे आज बार-बार पूछ रहे थे–'कब चलना है, कब ले चलोगी ?' अभी तो प्रोग्राम में ही गड़बड़ी दीख रही है। वे इस हालत में कैसे अकेले जायेंगे ? चौबीस घंटे उनके साथ किसी को रहना पड़ता है। लोगों ने इतना भी नहीं सोचा कि वे किस तरह से यात्रा करेंगे ? उनका रक्तचाप ही स्थिर नहीं रहता, इससे बड़ी आशंका होती है।"

**शुक्रवार, 6 जुलाई :** "आज का दिन सामान्य ढंग से बीता। पंडितजी की अवस्था पूर्ववत् रही। घर के वातावरण में यदि शान्ति नहीं हो तो बच्चे भी प्रभावित हो जाते हैं। जया-जेता का यही हाल है। आपस में लड़ने लगते हैं। मैं किस-किस को सँभालूँ ?"

**शनिवार, 7 जुलाई :** "डॉक्टर भौमिक ने घर में आकर पंडितजी के रक्तचाप की जाँच की जो आज 170/85 है। नयी दवा आ गई है, वही दे रहे हैं। अब रोगी का मिजाज ठीक हो रहा है। यहाँ से 15 जुलाई तक चल देना तै कर लिया है। साहाजी पहिले ही चले जायेंगे। इतने दिनों तक उनको रोक लिया, बड़ी मदद की उन्होंने। अब ज्यादा दिन तक रोकना उचित भी नहीं है।"

**रविवार, 8 जुलाई :** "आज पंडितजी का ब्लड टेस्ट हुआ। यूरिया बढ़ा है 40 युनिट तक। डॉक्टर ने 'मोलर लेक्टेट' का इंजेक्शन लिख दिया है। पंडितजी का मिजाज आज भी ठीक रहा है, उनके नाराज होने का डर लगा रहता है, क्योंकि नाराज होने पर वाइलेन्ट हो जाते हैं।"

**सोमवार, 9 जुलाई :** "आज के लिए 'मोलर लेक्टेट' का इंजेक्शन था, कम्पाउंडर ने आकर उनको इंजेक्शन लगा दिया। एक ही इंजेक्शन से बहुत लाभ हुआ है। उनका सोना आज कुछ कम हुआ। बार-बार पूछते रहते हैं–'कब ले जायेगी ? कब ले जायेगी ?' इतनी समझ तो है उनमें, यही क्या कम है ?"

**मंगलवार, 10 जुलाई :** "आज दवा नहीं थी इसलिए कम्पाउंडर भी नहीं आया। दवा के लिए कलकत्ता में वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन को टेलीग्राम दे दिया। यहाँ तो कहीं भी नहीं मिली, कर्सियांग और सिलीगुड़ी में भी नहीं मिली। राहुलजी का मिजाज आज भी ठीक रहा। 15 जुलाई को यहाँ से जाना निश्चित हुआ है। वे अकेले कैसे सोवियत संघ की यात्रा करेंगे, यह सोचने की बात है।"

**बुधवार, 11 जुलाई :** "डॉक्टर भौमिक ने आकर उनको देखा—ब्लड प्रेशर 175/95 है। बेचैन तो वे रहते ही हैं। आज वे बहुत सोये। अब उनको नयी दवाइयाँ दी जाने लगी हैं। दो दिन 'मोलर लेक्टेट' के इंजेक्शन देने से उनको बहुत आराम हो गया, पर अब वह दवा ही नहीं है। इसके बदले ग्लुकोज के इंजेक्शन देने होंगे।"

**गुरुवार, 12 जुलाई :** "वे आज ठीक ही रहे। पूरे 13 घंटे सोये। पेशाब पर नियंत्रण नहीं रहा। ग्लुकोज के इंजेक्शन लग रहे हैं, विटामिन 'सी' के भी। 'मोलर लेक्टेट' नहीं आया।"

**शुक्रवार, 13 जुलाई :** "मौसम अच्छा रहा। साहाजी आज चले गये। उस समय पंडितजी सो रहे थे। मैं थोड़ी देर के लिए बैंक गई, रास्ते के खर्च, पंडितजी के इलाज आदि के लिए पैसा चाहिए। एक घंटे के भीतर ही लौट आई, वे तब तक भी सो रहे थे। रात को कुछ देर तक सामान ठीक किया। दोनों समय उनके ग्लुकोज के इंजेक्शन लगे। दूसरी दवा अभी तक नहीं पहुँची, अब आने से भी क्या ? वे कमजोर तो हो ही गये हैं। आज उनके रक्त की परीक्षा की गई। ब्लड शुगर 60/100 सी. सी. और यूरिया 32/100 सी. सी. है, थोड़ा नार्मल हुआ है, डॉक्टर ने बतलाया। आज डॉक्टर भौमिक के संग चीफ मेडिकल आफिसर भी आकर पंडितजी को देख गये। उन्होंने बतलाया कि पंडितजी हवाई यात्रा कर सकते हैं। दिल्ली से अभी पत्र नहीं आया है।"

**शनिवार, 14 जुलाई :** "आज मिलने आनेवालों की भीड़ रही। सबेरे उनको मैंने नहला दिया। बहुत गुस्से हो गये। खैर, ले जाकर बिस्तर पर सुला दिया। यह सारा काम मुझको अकेले करना पड़ता है। बाद में वे शांत हो गये।

"पंडितजी चिकित्सा के लिए रूस जा रहे हैं, यह समाचार सुनकर आज उनसे मिलने और उनको देखने के लिए बहुत-से लोग आये। घर में बड़ी भीड़ रही। पास-पड़ोस के लोग और कलिम्पोंग से भी कुछ लोग पंडितजी को शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की शुभकामनाएँ देने आये थे। मैं दिन-भर व्यस्त रही। रात को देर तक सामान तथा हिसाब-किताब ठीक-ठाक करती रही। बच्चों के लिए घर में पढ़ाने को एक मास्टरनी का बन्दोबस्त हो गया। दिल्ली से सच्चिदानन्द शर्माजी का पत्र आया, जिसमें लिखा था कि मेरे जाने का भी बन्दोबस्त हो जायेगा। देखें क्या होता है।"

## कलकत्ता के लिए प्रस्थान (15 जुलाई, 1962)

**रविवार, 15 जुलाई :** "मैं सुबह साढ़े 3 बजे ही जग गई। ले जाने का सामान सब ठीक किया। राहुलजी को जगाकर कपड़ा पहिनाया। कहीं गुस्से न हो जायँ, यह भी डर लग रहा था। खैर, वे तैयार रहे। सबेरे सवा 5 बजे अस्पताल से एम्बुलेन्स आया, स्ट्रेचर पर पंडितजी को लिटाकर एम्बुलेन्स के भीतर चढ़ा दिया गया। कुछ लोग हमें विदा देने सुबह ही आ गये थे। बच्चे भी जग गये। भैया जेता चारपाई से ही विदा दे रहा था, पर जयारानी ऊपर तक आई, बेचारी रोने-रोने को हो रही थी। पता नहीं बच्चों से अब कब भेंट होगी।

"ठीक पौने 9 बजे हम लोग बागडोगरा एयरपोर्ट पहुँच गये। पैसेंजर की तो नहीं, पर लोगों की भीड़ थी। उन्हें इन्वैलिड चेयर पर बिठाकर ले गये। एयर होस्टेस अच्छी थी, हमें पीछे की सीट दे दी। गरमी बहुत लग रही थी। पौने 10 बजे प्लेन उड़ा। रिफ्रेशमेन्ट में कॉफी, सैंडविच, पैस्ट्री और केले थे। खाने के लिए पंडितजी का जी मचल रहा था, पर थोड़ा ही देकर उनको रोकना पड़ा। 11 बजे हम दमदम पहुँचे। वहाँ कोई पंडितजी को लेने नहीं आया था, शायद टेलीग्राम नहीं मिला होगा। अतः इंडियन एयरलाइन्स की बस से हम लोग शहर आ गये, वहाँ के आफिस से बनवारी बाबू को टेलीफोन करके गाड़ी मँगवा ली। साहाजी भी वहीं आ गये। तब करीब डेढ़ बजे हम लोग वैद्यनाथ भवन, गुप्ता लेन आ गये। शर्माजी (बनवारी बाबू) बाहर गये हुए हैं, वैद्यजी मिले। सब कुछ ठीक था। कमरे में कूलर लगा देने से पंडितजी को बड़ा आराम हुआ है।"

**सोमवार, 16 जुलाई :** "दिन-भर कमरे में ही बैठे रहे। आज पानी बरसने से दिन ठण्डा रहा। वे चुपचाप पड़े रहे। उन्हें खाना कम दिया जाता है डायबेटिज़ के कारण। इससे वे बहुत कमजोर हो गये हैं। एक दफे तो उन्होंने डरा भी दिया, शायद भूख लगने के कारण होगा।"

"नागार्जुन का आगमन हुआ, मुझे बोलने की भी इच्छा नहीं हुई। पंडितजी पर बड़ा प्रेम जताया जा रहा था। यदि पंडितजी की टट्टी-पेशाब को धोना पड़ता तो हजरत को पता चलता। मैंने उसके लेख का कोई जिक्र नहीं किया। साहाजी पार्टी आफिस की तरफ से राहुलजी की सेवा करने आये। ठण्डे कमरे में रख देने से पंडितजी को आराम मिल रहा है। शाम को साहाजी से मालूम हुआ कि मैं सोवियत संघ नहीं जा सकती, क्योंकि वहाँ दूसरी मिसेज राहुल मौजूद हैं। उसके रहते मैं नहीं जा सकती। (मुझे मालूम नहीं था कि यहाँ स्वयं साहाजी को पंडितजी के साथ रूस जाने की इच्छा थी, यह भी नहीं मालूम था कि लोला भाभी के साथ वे बरसों से पत्रव्यवहार कर रहे थे और यहाँ की एक-एक रिपोर्ट वहाँ भेजते रहे थे। मैं उन लोगों की इन हरकतों से बिल्कुल ही अनजान थी। मेरा सीधा-सादा हृदय सिर्फ राहुलजी की सेवा के लिए अर्पित था। वे किसी तरह ठीक हो जायें, यही मेरी प्रार्थना थी। यदि रूस में अपने परिवार से मिलकर, उनके साथ रहकर ठीक हो जायें तो मुझे तो खुशी ही होती।) यदि मुझे जाने की इजाजत नहीं मिलेगी, तो ठीक है। पंडितजी यदि अकेले ही जा सकें तो ठीक है, मैं अपने बच्चों के पास लौट जाती हूँ।"

**मंगलवार, 17 जुलाई :** "आज पी. जी. हास्पिटल के हृदयरोग विशेषज्ञ डॉक्टर जे. सी. गुप्ता पंडितजी को देखने आये। उनका कार्डियोग्राम लिया और ठीक से जाँच करने के बाद कह रहे थे–वे पहले से काफी अच्छे हो गये हैं, दार्जिलिंग में जैसा देखा था उससे अच्छे हैं। रूस में जाकर बाकी भी ठीक हो जायेगा। प्रेशर आज 150 के आसपास था। ई. सी. जी भी करवाना होगा। इसके लिए उनको पी. जी. हास्पिटल ले जाना पड़ेगा। डॉक्टर ने उन्हें 5-6 दिन यहीं रुकने को कहा। 22 जुलाई तक शायद हम लोग दिल्ली पहुँच जायेंगे। टिकट आदि के प्रबन्ध का जो भी काम हो, वहीं पार्टीवाले करेंगे। रूस में चिकित्सा के साथ-साथ पंडितजी को उनके रूसी परिवार से मिला देने की योजना भी पार्टीवाले कर रहे हैं, यह भी पता चला।[1] बम्बई से Medical Aid Society का फिर पत्र आया–पंडितजी की निःशुल्क चिकित्सा कराने का आग्रह किया है। पर अब तो उनको रूस भेज रहे हैं। जया-जेता स्कूल जा रहे हैं, पढ़ाई ठीक से चल रही है, यह सूचना मेरे छोटे भाई ने पत्र द्वारा दी है।"

**बुधवार, 18 जुलाई :** "गरमी के कारण बाहर जाना कठिन है। फिर पंडितजी को अकेले छोड़कर जा भी नहीं सकती। दोपहर को मिस्टर नागार्जुन और साहाजी आये। पंडितजी के तथाकथित पुराने मित्र नागार्जुन

---

1. सच्चिदाजी की एक चिट्ठी में मुझे पासपोर्ट बनाने के लिए लिखा था। चिट्ठी की नकल इस प्रकार है :

*PEOPLE'S PUBLISHING HOUSE (P) LTD.*
*Phone : 54645 Cable : Qaumikitab*
*Rani Jhansi Road, New Delhi-1 (India)*
*दिनांक : 18 जुलाई, 1962*

*प्रिय कमलाजी*

*सादर नमस्कार।*

*आपका कार्ड मिला। पता नहीं कलकत्ता पहुँचते ही आपको कौन-सी नयी बात मालूम हुई जिसका आभास आपको मैंने पहले नहीं दिया था। आपको किसी बात से उदास नहीं होना चाहिए और न धीरज ही खोना चाहिए। मेरा निजी विचार अभी भी यही है कि आपको अपना पासपोर्ट बनवा लेना चाहिए–चाहे आप इस समय राहुलजी के साथ जायें या नहीं। कारण स्पष्ट है–राहुलजी के चिन्ताजनक स्वास्थ्य को देखते हुए किसी भी समय आपको वहाँ जाने की आवश्यकता हो सकती है। यदि हमारी ओर से किसी अधिकारी व्यक्ति ने आपको पासपोर्ट लेने से साफ-साफ मना नहीं किया है तो आपको अपना पासपोर्ट अवश्य बनवा लेना चाहिए। आशा है, आप मेरा आशय समझ गयी होंगी। शेष मिलने पर। आप लोगों के दिल्ली पहुँचने की बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।*

*आपका,*
*सच्चिदानन्द*

को पंडितजी के अलावा और किसी से मतलब नहीं था, इसलिए आज भी मैं ज्यादा बोली नहीं। साहाजी को तो बोलने की बीमारी है। पंडितजी 'भूख-भूख' चिल्लाते रहे। दूसरों के घर में हजार तकलीफें होती हैं। अगर ज्यादा खिला भी दूँ तो रोगी को नुकसान पहुँचने का डर। बड़ी मुश्किल है। यहाँ तो शाम की चाय भी नहीं मिलती। उन लोगों ने हमें कितना सहारा दिया है, आश्रय दिया है, यही हमारे लिए बहुत बड़ी बात है।

अमृतसर से स्वामी हरिशणानन्दजी का पत्र आया। वह राहुलजी को देखने दिल्ली आयेंगे। बच्चों के बारे में पूछा है। दिल्ली के लिए टिकट का इन्तजाम हो गया। अब 21 जुलाई को यहाँ से प्रस्थान करना है।"

**गुरुवार, 19 जुलाई :** "आज गरमी कुछ अधिक थी। पसीने से तर रहना पड़ता है। पहाड़ की ठण्डी हवा याद आ रही है। अब परसों सबेरे दिल्ली जाना तै हुआ है। नागार्जुन, साहा और अन्य लोग आये, पंडितजी को घेरकर बैठे रहे। लोग हम पर हुकूमत चलाना चाहते हैं, पर मैं क्यों उन लोगों के दबाव में आती। मैं तो पंडितजी की सेवा करने आई हूँ और मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है ? लोग अपनी शान बघारते हैं, विद्वत्ता का प्रदर्शन करते हैं। पर मुझे किसी से कोई लेना-देना नहीं है। अपना दुःख बाँटनेवाला तो कोई है नहीं। बच्चों की याद आती है, पता नहीं वे लोग कैसे होंगे। आज भी दिल्ली से सच्चिदाजी का पत्र आया, पूछा है–मैं U.S.S.R. जाना चाहती हूँ या नहीं। मालूम नहीं, इस तरह का प्रश्न पूछने का क्या मतलब है। रूस में जब राहुलजी की पत्नी उनकी सेवा के लिए मौजूद हैं ही तो मुझ से इस तरह का प्रश्न क्यों पूछा जा रहा है, क्या मैं मजाक का विषय बन गई हूँ चंद लोगों के लिए ?"

**शुक्रवार, 20 जुलाई :** "कल के लिए टिकट आ गया। सबेरे पाँच बजे ही यहाँ से चलना होगा, 10 बजे तक दिल्ली पहुँच जायेंगे। पंडितजी के ब्लड टेस्ट की रिपोर्ट आ गई–118 एम. जी. प्रत्येक 100 सी. सी. पर, शुगर और यूरिया 29 एम. जी. प्रत्येक 100 सी. सी. पर। सबेरे पी. जी. हास्पिटल के डॉक्टर रमेश चटर्जी भी आये थे। पंडितजी को देखकर बोले–पंडितजी पहिले से ठीक हैं। डॉक्टर लोग तो बीमार को हमेशा ठीक ही कहते हैं। आज भी नागार्जुन महाशय और साहाजी का आगमन हुआ। मैं इन दोनों के साथ कम ही बोलती हूँ, क्योंकि इन्हें सिर्फ पंडितजी से मतलब है। जया-जेता पास में नहीं हैं, बड़ा सूना-सूना लगता है। पता नहीं कब उनसे मिलना हो सकेगा !"

# 11
# दिल्ली के लिए प्रस्थान

दिल्ली के वे यातना-भरे दिन

**शनिवार, 21 जुलाई :** "मैं आज भी सबेरे साढ़े 3 बजे ही जगी। उनको चार बजे जगाया। 5 बजे वैद्य वेणीशंकर शर्मा जी, साहा, नागार्जुन तथा कलिम्पोंग के रामाशंकर प्रसाद, एम. एल. ए. के साथ हम लोग दमदम गये। हम जल्दी ही चले गये थे, प्लेन तो 7 बजे उड़ा। प्लेन में सबेरे चाय और बिस्कुट मिले, पंडितजी वे सब खा-पी गये। थोड़ी देर बाद ब्रेकफास्ट दिया जिसमें चाय, कोल्डड्रिंक, आलू के चाप और गरिष्ठ चीजें थीं, जिन्हें खाना उनके लिए वर्जित था। पर वे माने नहीं, खाते ही गये। मना किया तो गुस्से हो गये। बड़ी मुश्किल कर दी। 10 बजकर 10 मिनट पर हम पालम एयरपोर्ट पर पहुँचे। वहाँ राहुलजी का स्वागत करने के लिए श्री पी. सी. जोशी, कामरेड फारुकी, श्री वाई डी. शर्मा तथा पी. पी. एच. के बहुत-से प्रतिनिधि आये हुए थे। नई दिल्ली में 20 नम्बर, डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद रोड पर किसी संसद-सदस्य के क्वार्टर में हमारे ठहरने का प्रबन्ध किया गया है। स्थान बहुत अच्छा है।

"राहुलजी के दिल्ली आने की खबर की सनसनी फैल गई। इसलिए उसी दिन शाम तक मिलनेवाले बहुत लोग आये, जिनमें थे—श्री तथा श्रीमती प्रभाकर माचवे एवं उनके दो बच्चे, श्री गोपालप्रसाद व्यास, श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्री भैरवप्रसाद गुप्त, ओमप्रकाशजी (राजकमलवाले) तथा कई अन्य लोग जिनको मैं नहीं जानती। इनमें से कई लोग राहुलजी को उनके पुराने परिवारों की याद दिलाते रहे, पर राहुलजी दिन-भर 'दो बच्चे, दो बच्चे' (जया-जेता) की रट लगाते रहे। बहुत अधिक बोलते रहे। नार्मल तो वे हैं नहीं। शाम को उनका रक्तचाप 190/110 था। वे जल्दी सो गये, यही गनीमत है। बिस्तर सब गीला कर दिया।"

**रविवार, 22 जुलाई :** "गरमी बहुत जोर की पड़ी। वे गरमी से परेशान रहे। आज उनसे मिलनेवाले दिन-भर में करीब 25 लोग आये। कल से आज उनका मूड कुछ अच्छा रहा। परन्तु आज 9 बजे के बाद से उन्हें पेशाब ही नहीं हुई। बार-बार पेशाब करने के लिए कहने पर भी नहीं माने। रात के 9 बजे जाकर पेशाब की और रात को बिस्तर ही गीला कर दिया। खैर, पेशाब होने से तसल्ली तो हुई। आज सबेरे से वे बच्चों के बारे में ज्यादा बोले भी नहीं, परन्तु शाम को रट लगाने लगे। 'अभी लाओ, अभी लाओ' कहने लगे। संध्या समय सच्चिदाजी तथा मुन्शीजी के बच्चों ने आकर उनका मनोरंजन किया, कविताएँ सुनाईं-गाने सुनाये। पंडितजी 'वाह-वाह', 'खूब गाया' कहते रहे। रस लेते रहे। आज दिन-भर वे बोलते रहे। संध्या को ही श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार जी सपरिवार आये। आज का दिन इसी प्रकार बीता। मुझे जया-जेता बराबर याद आते रहे। चलते समय मैं उनका ठीक से प्रबन्ध नहीं कर पाई। अपनी मझली बहन को उनके साथ रखकर आई हूँ। पंडितजी के साथ मेरा रूस जाने या न जाने का पता कल चल जायेगा।"

**सोमवार, 23 जुलाई :** "पता चला कि मेरे पासपोर्ट के लिए दौड़धूप हो रही है। कल तक मिल जाने की आशा है। आजकल दिल्ली के चीफ कमिश्नर श्री भगवान सहायजी हैं जो राहुलजी के परम भक्त हैं। उन्हीं की सहायता से पासपोर्ट जल्दी मिलने की आशा है। आज मिलनेवाले बहुत लोग आये और रोगी के साथ बातें करके उनको रुलाते भी रहे। शाम को डॉ. बच्चनजी, दिनकरजी तथा अन्य मित्रगण आये। ये लोग तो रोगी के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, सब जानते हैं! पंजाब के गवर्नर ने राहुलजी के नाम 50 रुपये का मनीआर्डर भेजा था। पंडितजी ने अपना हस्ताक्षर कर दिया, खुशी हुई हमें। रात को वे ठीक तरह से सोये, पर दिन-भर 'बच्चे-बच्चे' करते रहे। अमृतसर के स्वामीजी आज उनको देखने के लिए आये।"

**मंगलवार, 24 जुलाई :** "आज गरमी बहुत ज्यादा लगी। पसीने से तर रहे। आज भी बहुत अधिक लोग पंडित से मिलने आये। उनके सम्मान में शाम को दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से एक मिलन गोष्ठी हुई। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदीजी ने इसका सभापतित्व किया। मिलनेवाले सभी आकर उनको रुलाते रहे। इससे उनके दिमाग पर जोर पड़ गया। कोई-कोई तो पढ़े-लिखे होकर भी उनको इतना तंग कर रहे थे कि क्या कहें। डॉक्टरों की हिदायत थी कि रोगी को प्रसन्न रखा जाय, उनके दिमाग पर किसी प्रकार का जोर नहीं डालना चाहिए। परन्तु हमारे अधिकांश लोग इस बात को नहीं समझते, इसका प्रमाण मुझे दिल्ली आकर ही मिला। राहुलजी बार-बार 'मेरे दो बच्चे, मेरे दो बच्चे' कहकर रोने लगते, पर डॉ. प्रभाकर माचवे जी कहते हैं–'राहुलजी आपके तो तीन बच्चे हैं। आप इगोर और लोला के पास जा रहे हैं। इगोर आप का बेटा है।' इस प्रकार माचवेजी इगोर की याद दिलाकर राहुलजी की खोयी स्मृति-शक्ति को लौटाने के लिए कमर कसे हुए थे। उनकी पत्नी भी यही सब कर रही थीं। किन्तु राहुलजी के सबकान्शियस माइंड (उपचेतन मन) में वे 'दो बच्चे' ही बस गये थे, जिनके लिए वे बार बार रोते और जिनको देखने के लिए बेचैन रहते। लोग उनकी इस समय की मानसिक स्थिति को समझने की कोशिश नहीं करते, उलटे उन पर जोर डालकर हालत खराब कर देने पर तुले हुए हैं।

"वे आज दिन-भर, शाम-भर रोते ही रहे। परिणाम–रात को एकदम वाइलेन्ट (आक्रामक) से हो गये। मुझे अकेले उनको सँभालना मुश्किल हो गया। कोठी में एक गढ़वाली नौकर था, वह भी बाहर ही खड़ा रहा। अपनी विवशता पर मुझे रोना आया और मैं फूट-फूटकर जोर-जोर से रोने लगी। कुछ देर बाद फिर वे अपने आप ही उठकर मुझे चुप कराने आये। चलो, इतना तो होश उनमें था। अपने बच्चों की मुझे बहुत याद आई। नारकीय जीवन हो गया मेरा, कहीं से भी मन को शांति नहीं मिलती। यही सोचकर मैं बहुत देर तक रोती रही। रात को 11 बजे के बाद वे सोये। आज दिन-भर की भीड़ ने उनका भेजा खराब किया है। उनको अलग घर में न रखकर यहां के अस्पताल में रख देना चाहिए था, जहाँ लोगों को आने पर रोक लगा दी जाती। आज के आनेवाले लोगों में से कई लोग यही प्रयत्न करते रहे कि राहुलजी केवल इगोर बेटे का नाम लेते रहें। जब मैंने लोगों का यह रवैया देखा तो पंडितजी के सामने रखे जया-जेता के फोटो वहाँ से हटा दिये।"

**बुधवार, 25 जुलाई :** "मिलनेवाले आज भी बहुत आये। लोगों का ताँता लगा रहा। फोटोग्राफर लोग भी आये थे। पंडितजी के छोटे भाई स्वर्गीय श्रीनाथ पाण्डे की पत्नी अपनी बेटी और बेटे के संग आईं। बेचारी अब बहुत बूढ़ी हो गयी थीं। उनकी बेटी बहुत ज्यादा बातूनी मालूम देती थी। भतीजे ओमप्रकाश तो पंडितजी को देखने दोनों समय आते हैं।

"अभी तक मेरे लिए रूस से निमंत्रण नहीं आया। जब तक निमंत्रण नहीं आता, तब तक हमें रिजर्व बैंक से सर्टीफिकेट भी नहीं मिलेगा। इसलिए हमारा जाना अभी अनिश्चित-सा लगता है। शाम को कामरेड डांगे, कामरेड घाटे आये थे। उन्होंने दोनों साथियों को पहिचान लिया। मिलकर खुश हुए। गरमी तो दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। पंडितजी को बहुत कष्ट होता है।"

**गुरुवार, 26 जुलाई :** "लोग आज भी बहुत आये। सबेरे डॉक्टर ने राहुलजी का ब्लड प्रेशर देखा जो 175/95 था, जो बहुत अधिक है। वे दिन-भर रोते रहे, चिल्लाते रहे। आज डॉक्टर ने उनको किसी से

मिलना-बोलना मना कर दिया, पर वे सुनते नहीं। बोलना, नाराज होना, रोना, चिल्लाना चलता ही रहता है। गरमी से और ज्यादा परेशान हैं।

"मालूम हुआ कि पंडितजी का कल रूस के लिए प्रस्थान करना स्थगित हुआ। पंडितजी के लिए सब कुछ तैयार है, कोई दिक्कत नहीं। लेकिन मेरे लिए निमंत्रण न होने के कारण रिजर्व बैंक से सर्टीफिकेट नहीं मिल सकता। पार्टीवाले अपने तीन कामरेडों के साथ राहुलजी को 31 जुलाई को मास्को भेज देना चाहते हैं। तब मैं अलग से जाकर क्या करूँगी ? मेरे बिना उनकी क्या अवस्था होगी ? इतने दिनों तक मुझे उनका समाचार भी नहीं मिलेगा। अभी से बहुत चिन्ता हो रही है।

"शाम को सच्चिदा जी और मुंशीजी अपने-अपने परिवार के साथ आये। मुंशीजी ने जया-जेता के बारे में 'हिन्दी टाइम्स' में लिखा है, बड़ा अच्छा लिखा है। उनके फोटो भी छप गये हैं।"

**शुक्रवार, 27 जुलाई :** "पंडितजी का आज जाना नहीं हो सका। (औरों ने तो नहीं, पर कामरेड श्री भूपेश गुप्ता समझ गये थे कि राहुलजी को कमलाजी के बिना मास्को भेजा नहीं जा सकता, इसलिए मेरे लिए भी निमंत्रण प्राप्त करवाने के लिए वे प्रयत्न कर रहे थे।) लोगों ने समझा होगा कि हम लोग चले गये हैं, इसलिए आज मिलनेवाले नहीं आये। और दिनों की अपेक्षा आज पंडितजी का मूड अच्छा रहा, ठीक-ठीक बातें कर रहे थे। बच्चों के बारे में आज कम ही बोले। यदि भीड़ न हो, शांत रहें तो वे बहुत जल्दी स्वस्थ हो जायेंगे, मुझे ऐसी उम्मीद है। पर किसी की आवाज सुनते ही वे बोलने लग जाते हैं। रात को होश नहीं रहता, बिस्तर गीला कर देते हैं। शाम को उनकी 'जीवन-यात्रा' के अंश को पढ़कर सुनाये जा रही थी। एक जगह जिक्र आया कि साधु बनते समय गरम लोहे से बाँहों में दाग दिया था। वे अपनी बाँहों में पड़े उस निशान को दिखा रहे थे। 'जीवन-यात्रा' पढ़वाकर सुनने में उनको बड़ा आनन्द आ रहा है। इसीलिए पढ़ देनेवाले को वे अपने पास ही रखना चाहते हैं।

"दिन में बिजली चली गई। तीन घंटे तक बिना पंखे के रहे। उन्हें बड़ी तकलीफ हुई। जब नहला दिया, तब शांत हुए। शाम को उनसे मिलने लखनऊ के साथी रमेश सिन्हा और बिहार के एक कामरेड आये। इन्दौर के कामरेड शिवनारायण श्रीवास्तव भी आये। कुछ देर रौनक रही। मिसेज सुनयना शर्मा भी आईं, बड़ी बातूनी हैं। जया-जेता की खबर नहीं मिल रही है, पता नहीं क्या कर रहे होंगे।"

**शनिवार, 28 जुलाई :** "गरमी बहुत अधिक रही। दिन में पाँच घंटे तक बिजली नहीं थी। पंखा चलना बंद। बड़ी तकलीफ रही। पंडितजी तो गरमी के मारे तड़पते रहे। मुझे दोपहर का खाना खाने मिसेज माचवे के यहाँ जाना पड़ा। राहुलजी के साथ एक मित्र को रख दिया। पर मैं तुरंत ही लौट आई। लोगों का व्यवहार बदला-बदला-सा लगा। दुःख में किसी का कोई नहीं होता है।

"वे दिन-भर किताब पढ़वाकर सुनते रहे, छोड़ना नहीं चाहते। पढ़ देनेवाले की मुसीबत है। यहाँ आने के बाद ही वे 'इगोर, इगोर' करने लगे हैं, पहले ऐसा नहीं करते थे, आज तो वे पहली घरवाली का भी नाम ले रहे थे। इसका मतलब, उनकी स्मरणशक्ति पूरी तरह लुप्त नहीं हुई है। बीच-बीच में यादें उमड़ आती होंगी।

"मेरा उनके संग जाना तो अनिश्चित-सा है। मेरे कारण उनको जाने से रोका नहीं जा सकता। 31 जुलाई को ही उन्हें मास्को भेज देना होगा। मैं अपने घर लौट जाऊँगी। बेकार में अखबार में छपवा दिया कि मैं भी जा रही हूँ। मुझे तो विश्वास नहीं था, हुआ भी ऐसा ही। उनके कुछ तथाकथित मित्र चाहते हैं कि राहुलजी अकेले ही रूस जायें तो वे वहाँ ज्यादा खुश रहेंगे। मैं भी तो यही चाहती हूँ कि वे खुश रहें, स्वस्थ रहें, चाहे कैसे भी हो। रूस के परिवार से मिलकर उनकी स्मरण-शक्ति लौट आये तो यह एक चमत्कार ही होगा। पर राहुलजी को तो रह-रहकर अपने दो छोटे बच्चों की याद आती रहती है। याद करते ही उनका गला रुँध जाता है, रोने लगते हैं। आज तो मैं भी उनके साथ रो पड़ी। अपने मन को नहीं रोक सकी। उन्हें इन बच्चों की इतनी याद क्यों आती है ? क्यों उनको याद करके ये रो पड़ते हैं ? इसका भी कोई मनोवैज्ञानिक कारण अवश्य होगा। हमारे लोग काश कि इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न करते, बनिस्बत उनको रुलाने के। आज उनके पुराने घुमक्कड़ शिष्य शिवशर्माजी उनको देखने आये।"

**रविवार, 29 जुलाई :** "बड़ी उदासी से दिन बीता। गरमी भी बड़ी तेज है। बीच में पंखा बन्द। उन्हें गरमी से बड़ी परेशानी होती है। अभी मेरे जाने का कोई संकेत नहीं दिखाई देता। बीमार को भी परेशानी हो रही है। उनको ही अकेले किसी सहयात्री के साथ भेज देते तो अच्छा होता। यहाँ गरमी में उनको बड़ी तकलीफ हो रही है। मैंने तो स्वयं जाने की जिद नहीं की है। न तो जाने की ही इच्छा प्रकट की है। राहुलजी के सुखी जीवन में मैं कबाब में हड्डी बनना नहीं चाहती। लोगों को मुझसे भय लगा होगा कि कमला जायेगी साथ तो वहाँ लोला के साथ बुरा व्यवहार करेगी, राहुलजी से उसको मिलने नहीं देगी। एक दिग्गज साहित्यकार ने तो यहाँ तक लिखा है कि कमलाजी के डर से राहुलजी अपने बड़े बेटे का नाम नहीं लेते। कमला के साथ सबको डर लगता है। बातें बनाने में कौन किसको रोक सकता है। अब राहुलजी की वास्तविक अवस्था को देखकर सब यार-मित्र हिचक रहे हैं। पहले से ही मेरे लिए भी निमंत्रण मँगवा दिया होता, तो अब तक मिल गया होता। साथी लोग व्यर्थ ही वाद-विवाद में पड़े रहे कमला को लेकर। अब यहाँ गरमी में हम लोग मर रहे हैं और कोई इंतिजाम नहीं होता। आज मेरा मन बड़ा दुःखी है।

"शाम को सच्चिदाजी के साथ बहुत-से लोग आये। ओमप्रकाश पाण्डे की बहन आकर डट जाती है। रोगी के पास बैठकर वह उन्हें रुलाती रहती है, कनैला में पड़ी हुई राहुलजी की पहली पत्नी की बार-बार याद दिलाती रहती है। आकर जम जाती है तो उठने का नाम नहीं लेती, रोगी को कितनी तकलीफ हो रही है, वह यह नहीं समझती। वे सामान्य मस्तिष्कवाले रोगी तो हैं नहीं। पंडितजी आज काफी रो-धो रहे थे। गरमी से भी उनको तकलीफ हो रही है। मेरा यहाँ अपना कोई नहीं है, अकेली पड़ गई हूँ, इसलिए लोगों को इतना साहस हो रहा है। हर व्यक्ति मनोचिकित्सक बनकर राहुलजी की खोई स्मरणशक्ति को वापस लाने का ठेका ले रहा है। यहाँ से मेरा मन ऊब गया है। इससे तो हर हालत में दार्जिलिंग ही अच्छा था, जहाँ हम चारों प्राणी अपने घर में इकट्ठे रहते थे। वे भी खुश, बच्चे भी खुश और मुझे संतोष मिलता था। अब ब्रच्चे भी पीछे छूट गये और वे 'बच्चे, मेरे दो बच्चे' करते रहते हैं, उनकी याद करके आँसू बहाने लगते हैं। मेरा मन कातर हो उठता है।"

**सोमवार, 30 जुलाई :** "मन उदास है। पंखा पाँच घंटे के लिए बन्द, बड़ी तकलीफ हुई। पंडितजी और मैं प्रायः दिन-भर अकेले ही बैठे रहे। शाम को मिसेज माचवे आईं। जिस मिशन को लेकर आती हैं, वही करती हैं। ये भी राहुलजी को लोला और इगोर की याद दिलाने के लिए कमर कसकर आती हैं। आज बार-बार ये ही दो नाम वह रटती रहीं और राहुलजी को रुलाती रहीं। देखें, ये लोग राहुलजी की अर्द्धलुप्त स्मृति को लौटाने में कितना सफल हो जाते हैं। इन लोगों के सामने कमला-जया-जेता का कोई अस्तित्व ही नहीं है। अब मुझे ऐसे लोगों से बड़ी चिढ़ हो गयी है। मुझे अब महसूस हो रहा है कि राहुलजी के तथाकथित मित्र तथा मित्राएँ मुझ से ईर्ष्या करती हैं। सारा हिन्दी जगत मेरे प्रति सौतिया डाह रखता है। अगर ऐसा नहीं होता तो बीमार, अवस्थ राहुलजी के मन को पलटने की इतनी कोशिश क्यों कर रहे हैं ? ऐसा करने के लिए क्या यही मौका था ? जब राहुलजी स्वस्थ-प्रसन्न थे, उस समय भी तो इन लोगों ने ये ही हरकतें की थीं, पर राहुलजी अपने सिद्धान्त के पक्के रहे। जिसका हाथ अपने बुढ़ापे में थामा था, उसको धोखा देने की उनकी नीयत नहीं थी। अब तो मुझे ऐसा लग रहा है कि इस तरह के स्वार्थी लोग बीमार राहुलजी के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, उनको रुला-रुला कर खतमकर देंगे। मेरे हृदय पर ये लोग फावड़े का प्रहार कर रहे हैं अपनी कमीनी हरकतों से।

"आज भी सोवियत संघ से निमंत्रण नहीं आया, बड़ी मुश्किल हो गयी है। पार्टी के लोग राहुलजी को अकेले भेजना नहीं चाहते। उनको साहाजी और नागार्जुन के साथ ही भेज देते तो अच्छा होता। अब यहाँ गरमी में उनकी बीमारी के बढ़ने की आशंका हो गयी है। अनिष्ट की चिंता सताती है। वे बेचारे रोते-कलपते रहते हैं, बच्चे दार्जिलिंग में अकेले, उनकी याद से पिता और भी परेशान, क्या करूँ, कैसे उनको शांत करूँ ? कहाँ जाऊँ ?

"शाम को शिवशर्माजी, श्री खेमसिंह नाहर, मुंशी, सच्चिदाजी, हिमांशु जोशी और तीन-चार अन्य साथी-बन्धु

पधारे। कुछ देर तक कविता-पाठ होता रहा। वे भी कुछ रस लेकर सुन रहे थे। वस्तुतः यह साहित्यिक वातावरण ही उनके लिए अच्छा है, कम से कम इस समय वे रोते तो नहीं। शाम को बिजली बन्द, फिर उनको बाहर लॉन में रखा गया। अब कल इस क्वार्टर के मालिक आ रहे हैं, हमें यह घर छोड़ना होगा। अभी तक तै नहीं हुआ है कि कहाँ रहना है। पंडितजी को डॉक्टर सेन के नर्सिंग होम में ले जाने की बात भी चल रही है। यही ठीक रहेगा उनके लिए।"

**मंगलवार, 31 जुलाई :** "आज पहले की अपेक्षा बहुत ही अधिक गरमी रही। 10 बजे से दो बजे तक दिन में बिजली गुल रही। वे गरमी से परेशान रहे। सबेरे से ही उनका मूड बहुत खराब रहा। मुँह फाड़कर रोना, 'खाना-खाना' करना, दिन में बक-बक करना, यही सब करते रहे। आँखें भी लाल-लाल, गुस्सा भी वैसा ही। रात को और वाइलेन्ट (Violent) हो गये। बक-बक करते रहे। पहली बीवियों को खूब याद कर रहे थे। काश कि इस समय वे दोनों बूढ़ी बीवियाँ उनकी सेवा करने आ जातीं, पेशाब-पाखाना साफ करतीं, तो मुझे मुक्ति मिलती।

"अभी तक मास्को से निमंत्रण नहीं मिला है और मिलने की सम्भावना भी नहीं है। मुझको बतलाया जा रहा है कि वहाँ बीवी मौजूद है, इसलिए यहाँ से दूसरी नहीं जा सकती, यह वहाँ की सरकार की नीति है। इससे भले ही रोगी की जान खतरे में हो। उन्हें क्या परवाह। वे लोग तो अपनी नीति में अटल रहेंगे। यहाँ हम लोग गरमी में सड़ रहे हैं और राहुलजी की बीमारी के बढ़ जाने की सम्भावना दीख रही है। पार्टी के लोग उनको अकेले या किसी अन्य मित्र के साथ भेजने को भी तैयार नहीं। पंडितजी की हालत और गम्भीर होती जा रही है। वे यहाँ से तो दार्जिलिंग में ही भले थे, कम से कम मानसिक तौर से तो वे स्वस्थ हो ही रहे थे, बच्चों के साथ रहने से रोना-धोना भी करीब-करीब छोड़ चुके थे। अब फिर वे पुरानी स्थिति में ही आ गये हैं। लोग उनकी अवस्था को देखकर भी उनको परेशान करते हैं, शांति से सोने तक नहीं देते। एक-एक आदमी यहाँ डॉक्टर है, जैसे बीमारी न हुई एक मजाक है। किस तरह के लोग हैं यहाँ के ?"

## अगस्त 1962

**बुधवार, 1 अगस्त :** "कल से आज गरमी कुछ कम रही। दिन-भर कोई नहीं आया, हम ही दो जने रहे। वे दिन में दो घंटे सोये। शाम को कुछ लोग इकट्ठे हो गये, उनमें श्री वियोगी हरिजी भी थे। पंडितजी का भोजन सादा होता है–चपाती, उबली हुई कम नमकवाली सब्जियाँ, सूप, उबले मांस, कभी-कभी फल आदि। खाना संतुलित दिया जाता है और वे ठीक से ही खाते हैं।

"यहाँ से अब मन एकदम ही उचट गया है। अभी तक प्रोग्राम तै नहीं हुआ कि हम कब जा रहे हैं। मेरा जाना तो हो ही नहीं सकता। लोग बतला रहे हैं कि रूसी पत्नी के रहते मेरा मास्को जाना वहाँ की सरकार उचित नहीं समझती, इसीलिए तो मेरे लिए निमंत्रण नहीं आया है। लोग दौड़-धूप तो कर रहे हैं। डांगे साहब ने लिखा भी पर अभी तक कोई जवाब नहीं आया है। यहाँ आये भी आज 12 दिन हो गये। बिल्कुल ही मन नहीं लगता। बच्चे उधर छूट गये हैं, उनकी बहुत याद आती है। जब मेरे जाने की सम्भावना नहीं तो हमें लोगों ने खामखा रोक रखा है। अपने खर्चे से तो मैं जाने से रही। नौकरी नहीं, आमदनी का जरिया नहीं। चिन्ताएँ तो लगी ही हैं, ऊपर से और कई दिक्कतें पैदा हो रही हैं। पंडितजी के ठीक होने की आशा कम होती जा रही है। गरमी से सब चौपट हो गया।··· कल शायद यहाँ से शिफ्ट करना पड़ेगा।"

**गुरुवार, 2 अगस्त :** "गरमी आज बहुत अधिक रही। बीच-बीच में बिजली फेल हो जाती है। पंखे के न चलने से बहुत ही तकलीफ हुई। आज दिन-भर 20, राजेन्द्रप्रसाद रोड पर रहे। शाम को यहाँ से शिफ्ट करके 21 कान्सटीट्यूशन हाउस में आ गये। इसमें एक कमरा, बाथरूम और किचन है। खैर, खाना तो यहाँ रेस्तराँ से आता रहा है। गरमी से बुरा हाल रहा, यहाँ भी पंखा बन्द रहने से राहुलजी छटपटाने लगे। इसीलिए उनको बाहर घुमाने ले जाना तै हुआ। ए. आई. टी. यू. सी. की गाड़ी आई। मुंशीजी और राहुलजी के साथ मैं भी राष्ट्रपति भवन होते हुए नेहरू-निवास तथा चाणक्यपुरी गयी। अमेरिकन, ब्रिटिश, पाकिस्तान, चाइनीज़

और सोवियत एम्बेसी होते हुए काफी देर तक घूम आये। परन्तु पंडितजी सारे रास्ते 'बच्चे, बच्चे' ही करते रहे।

"यहाँ दिल्ली में आकर मैं देख रही हूँ–उन्हें पूर्व परिवार की भी बहुत याद आती है, खासकर के दूसरे लोगों के सामने ऐसा ही करते हैं। इसका मतलब है कि उनकी स्मरणशक्ति बीच-बीच में काम करने लगती है। यदि इसी तरह उनकी स्मृत्रि-शक्ति काम करने लग जाये तो हमें बड़ा संतोष होगा।"

**शुक्रवार, 3 अगस्त :** "आज भी गरमी अत्यधिक रही। दिन में 12 से 3 बजे और 4 से 6 बजे तक पंखा नहीं, शाम को 8 बजे भी पंखा बन्द। गरमी से आज पंडितजी का बुरा हाल हुआ। दिन-भर रोते रहना, बेसिर-पैर की बातें करना, यही सब वे करते रहे। बहुत उत्तेजित भी रहे, आज भी वे पूर्व परिवार के बारे में बातें करते रहे।

"शाम को सच्चिदाजी सपत्नीक आये। उनसे मालूम हुआ कि पंडितजी को अकेले ही मास्को भेजने की तैयारी हो रही है, 7 अगस्त को यहाँ से उनका प्रस्थान कर दिया जायेगा। कैसे जायेंगे वे ? मान लो वे चले गये, पर हमारा मन कैसे मानेगा ? वे हर वक्त मुझे खोजते रहते हैं। उनके चले जाने के बाद वह प्रिय आवाज फिर मुझे कहाँ सुनने को मिलेगी ? एक बार चले जाने के बाद फिर कहाँ भेंट होगी ? जीवन का क्या भरोसा ? यही सब सोचकर मैं रात-भर रोती रही। जया-जेता की बहुत-बहुत याद आई।

"शाम को उन्हें गाड़ी में मथुरा रोड की तरफ घुमाने ले गये। बाहर निकलने से वे प्रसन्न हो जाते हैं।"

**शनिवार, 4 अगस्त :** "गरमी बहुत ज्यादा। 12 से 3 तक बिजली बन्द रहती है, वे गरमी से छटपटाते रहते हैं। इससे उनका मिजाज भी गरम रहा। सबेरे शिवशर्माजी को डाँट दिया। 'खाना, खाना' की जिद करते रहते हैं। फिर दोपहर को मेरे साथ नाराज हो गये। यह सब असह्य गरमी के कारण हुआ है। उन्हें बड़ी मुश्किल से चुप कराकर सुला दिया।

"शाम को डॉक्टर ने आकर उनके रक्तचाप की परीक्षा की, आज 160/85 है, कोई खास कम नहीं है। वे अब मानसिक तौर से अशांत हो रहे हैं। डाक्टर ने लिब्रियम (Librium) दवा लिख दी। दोपहर बाद तो वे जया-जेता के फोटो भी नहीं पहिचान रहे थे। मुझ से पूछ रहे थे–'तेरे भी कोई बच्चा है ?' हद हो गई ! फिर जैसे स्मरणशक्ति फूट निकली हो, वे रोने-कलपने लगे–'हाय, मैं तो भूल गया, मुझे क्या हो गया था ? मेरे तो दो बच्चे हैं।' फिर दार्जिलिंग के अपने घर तथा जया-जेता के बारे में पूछने लगे, घर चलने की जिद भी करने लगे। हर दिन, हर समय उनका मूड बदलता रहता है, बेचारे वे अपने वश में नहीं हैं। शाम को उन्हें गाड़ी में बिठाकर लालकिले की तरफ घुमाने ले गयी। मिलनेवाले तो भी आते रहे।"

**रविवार, 5 अगस्त :** "आज भी गरमी बहुत अधिक रही, परन्तु 24 घंटे बिजली के रहने से बड़ी राहत मिली। वे अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ शांत रहे दिन में। अगर कोई नहीं हो तो वे चुपचाप पड़े रहते हैं, वर्ना चिल्लाते रहते हैं। अब तो वे पूरी तरह से विक्षिप्त-से मालूम होते हैं। होश की एक भी बात नहीं करते, अकबक बोलते रहते हैं। दोपहर के तीन बजे तक तो बड़ी शांति थी। उनको स्नान करा दिया, भोजन खिलाया। 'भूख, भूख' कर रहे थे।

"परन्तु साढ़े 3 बजे से ओमप्रकाश पाण्डे की बातूनी बहन आकर जम गई। उसके बाद सच्चिदा और मुंशीजी सपरिवार आये। फिर जब 9 बजे के बाद भीड़ कम हुई तो उन्हें गाड़ी में बिठाकर घुमाने ले गये। भतीजे-भतीजी लोग दोपहर से रात तक यहीं बैठे रहे। उन लोगों के खाने-पीने की व्यवस्था नहीं हो सकती, यहाँ कोई प्रबन्ध भी नहीं है। पंडितजी को शांति की जरूरत है। लोग यह बात नहीं समझते। यहीं अधिक दिन रखने से वे पूरी तरह से पागल हो जायेंगे।

"7 अगस्त को वे अकेले ही मास्को प्रस्थान करेंगे। हमारा उनसे 14 वर्ष का साथ छूट रहा है, आगे मुलाकात होगी या नहीं, यह कौन जानता है।"

**सोमवार, 6 अगस्त :** "गरमी के मारे परेशान रहे। यहाँ तो बारिश भी नहीं होती। दिन में 11 से 1 बजे तक और शाम को 7 से 8 बजे तक बिजली बंद। बड़ी परेशानी हुई गरमी के कारण। उनका मिजाज सबेरे

से ही गरम। लिब्रियम की गोली देने पर भी वे शांत नहीं हुए। सोने की कोशिश करें भी तो कोई न कोई आ जाता है, फिर तो वे बोलते ही जाते हैं। दिन में थोड़ा सुलाने की कोशिश की, पर वे नहीं सोये। उनके पास शिवजी को रखकर मैं कुछ अति आवश्यक सामान ख़रीदने चाँदनी चौक तक गई, पर तुरंत लौट भी आई। आते ही उनको नहलाया-धुलाया। फिर वे वाइलेन्ट हो गये। मुझे जोर-जोर से डाँटते रहे, बोली समझ में ही नहीं आती। शिवजी के साथ भी उसी तरह गुस्से से बोले। जैसे हमें नहीं पहिचानते हों। पागल आदमी के साथ हम कर भी क्या सकते थे। रात को सो ही नहीं रहे थे, पर बड़ी मुश्किल से उनको बिस्तर पर लिटा दिया। यह सब इस दिल्ली की गरमी का प्रताप है।

"रात होते-होते श्री विष्णु प्रभाकरजी, श्री जगदीशचन्द्र माथुर, यशपालजी आदि सज्जन पंडितजी को देखने आये। आज पंडितजी की जो शारीरिक-मानसिक स्थिति रही है, उसे देखते हुए कल 7 अगस्त को उनका जाना स्थगित हो गया।"

**मंगलवार, 7 अगस्त :** "आज भी बिजली का हाल कल की तरह ही रहा। गरमी के कारण पंडितजी पूरी तरह से विक्षिप्त हो गये हैं। पागलपन सवार होने पर वे किसी को पहिचानते नहीं, वाइलेन्ट हो जाते हैं। बीच-बीच में रूस की याद आ जाती है उनको। चलने के लिए बेताब। हम क्या करें। ऐसे पागल आदमी के साथ 24 घंटे रहना मेरे लिए मुश्किल है। ऐसे समय वे चाटुकार मित्र क्यों नहीं उनको देखने आते ? मास्को में यदि उनका रूसी परिवार इनका जिम्मा ले ले तो मैं इस नारकीय जीवन से मुक्त हो जाती।

"शाम को गाड़ी से उनको घुमाने ले गये।"

**बुधवार, 8 अगस्त :** "आज भी उनकी हालत कल जैसी रही। उन पर पूरी तरह पागलपन सवार हो गया है। गरमी से भी परेशान, पसीने से शरीर लथपथ। यहाँ एक-एक पल बिताना कठिन हो गया है। बच्चों के बिना हमारा मन नहीं लगता। जिसकी सेवा करने आई, वे ही विक्षिप्त हो गये हैं। इस समय उनके दिमाग में सिर्फ रूस की याद आ रही है। जाने के लिए उतावले हैं। पर एक एबनार्मल आदमी की हरकतों पर हम क्या बोल सकते हैं। अब तो लग रहा है मैं एकदम नरक में आ फँसी हूँ। विक्षिप्त के साथ निभाना बहुत कठिन लग रहा है।"

**गुरुवार, 9 अगस्त :** "अपने लिए निमंत्रण आने की आशा छोड़ चुकी हूँ। अब ट्रेड युनियन डेलीगेशन के साथ पंडितजी को भी मास्को भेज देने का प्रोग्राम बना रहे हैं। 11 अगस्त को जाने की बात है, पर फैसला अभी नहीं कर पाये ये लोग। गरमी से राहुलजी का बुरा हाल है, बाकी कसर यहाँ मिलने आनेवाले पूरी कर दे रहे हैं, पुरानी बातें याद दिला-दिलाकर, रुला-रुलाकर। फिर वे पागल न हो जायँ तो क्या हों ? अब पूछ रहे हैं–'कब चलेंगे, कब चलेंगे ?' एक बार बोले–'घर चलो, बच्चे कहाँ हैं ?'

"कैसे दिन काटें, मन बहुत अशांत रहता है।"

**शुक्रवार, 10 अगस्त :** "पंडितजी का हाल कल जैसा। गरमी से परेशान हैं। गुस्सैल बहुत हो गये हैं, डाँट-फटकार करते रहे। हम चुपचाप सहन करते रहे। मास्को जाने का अता-पता नहीं। लोग पूछते रहते हैं–कब जा रहे हैं। मैं क्या जवाब दूँ, जब खुद को पता नहीं।

"शाम को कई लोग उनको देखने आये जिनमें श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार जी भी थे। आज मुझे बिटिया जयारानी की लिखी चिट्ठी मिली।"

**शनिवार, 11 अगस्त :** "पिछले पाँच दिन मैंने भयंकर संकट में बिताये। पंडितजी पूरी तरह से विक्षिप्त हो गये। गुस्सैल और वायलेन्ट हो गये। आज गुस्सा थोड़ा कम हुआ है। सच्चिदाजी से पता चला कि यदि कमलाजी के लिए निमंत्रण नहीं आया तो राहुलजी को भी अकेले नहीं भेजा जायेगा। अच्छा है। मैं तो उनको फिर दार्जिलिंग अपने घर में ले जाऊँगी। आज ओमप्रकाश की बातूनी बहन सुदामादेवी जी भी आईं पंडितजी को रुलाने।"

**रविवार, 12 अगस्त :** "बला की गरमी पड़ रही है। हम दोनों को ही बड़ी तकलीफ होती है। दिन काटना मुश्किल हो रहा है। कैसी मनहूस घड़ी में हमने घर छोड़ा था, जो यहाँ आकर इतना कष्ट पा रहे हैं। यहाँ

आते ही उनको अस्पताल में रख दिया होता तो उन्हें कुछ तो आराम मिलता। परदेश में पड़े हैं, अपना कोई नहीं है, सबको अपनी-अपनी पड़ी हुई है। हमारा तो बिल्कुल ही जी नहीं लगता, वे भी बहुत ऊब गये हैं। घर में किताबें थीं, उनको पढ़कर सुना दिया करती थी, यहाँ वह भी नहीं। संगीत पसन्द करते हैं, पर उसके लिए भी कोई साधन नहीं है। दोनों एक-दूसरे का चेहरा देखते बैठे रहते हैं।

"आज लोग ज्यादा नहीं आये। शाम को पड़ोसी एम. पी. की गाड़ी लेकर पंडितजी को सैर कराने ले गये, क्योंकि आज वे दिन-भर घर जाने के मूड में रहे।"

**सोमवार, 13 अगस्त :** "पानी थोड़ा बरसा, तो भी गरमी काफी रही। 9-30 से 12 बजे तक बिजली नहीं थी। गरमी से यों भी कुछ काम करने की इच्छा नहीं होती। वे सबेरे से ही घर चलने की बात करते रहे, रोये भी, गुर्राये भी। 'घर चलो, घर चलो' कहकर रोते रहे। बेचारे गरमी के कारण मछली की तरह छटपटाते रहे। उनको रोते-कलपते देखकर अपना भी मन खराब होता है। हमारे सामनेवाले कमरे में जया बिटिया की तरह की एक लड़की रहती है। उसको देखते ही हमें दोनों प्रिय बच्चों की याद आती है, मन और व्याकुल होने लगता है। बच्चों से अलग हुए आज पूरे 30 दिन हो गये हैं। पता नहीं क्या हाल है उनका। बड़े लोग पत्र ही नहीं लिखते उनके बारे में।

"मास्को जाने का अभी तक तै नहीं हुआ। अब तो इस बारे में बात भी नहीं करते। क्या इंतिजाम कर रहे हैं, कुछ पता नहीं। गरमी से झुलस रहे हैं। यहाँ आकर पंडितजी और विक्षिप्त से हो गये हैं। मैं तो बस कमरे की चहारदीवारी में बन्द हूँ, लगता है कब भाग जायँ यहाँ से। इतनी कम उम्र में मुझको कितनी मुसीबतें सहनी पड़ रही हैं। कोई भी मेरी इन कठिनाइयों को नहीं समझता।"

**मंगलवार, 14 अगस्त :** "आज धूप तेज रही, गरमी भी बहुत। कुछ काम नहीं हो पाता। उन्हें दोपहर बाद 100-2° डिग्री ज्वर रहा। उनका चेहरा तमतमा रहा था। घर जाने के लिए बहुत जिद करते रहे। उनके लिए घर का मतलब है 'दो बच्चे'। उनके तन-मन में बच्चों की याद बसी हुई है, इसीलिए वे उन दोनों के लिए व्याकुल रहते हैं। इस समय दोनों उनसे दूर हैं। सच्चिदाजी शाम को आये, पर उनसे कोई नयी खबर नहीं मिली। उन्होंने सिर्फ यही बतलाया कि अभी मास्को से कोई सूचना नहीं मिली है। मुश्किल है। हम लोगों को यहाँ रोककर रखा है। गरमी न होती तो कोई बात नहीं थी, पर पंडितजी के लिए बड़ी तकलीफ हो रही है। उनकी अवस्था को देखकर मेरा मन और खिन्न हो जाता है। लेटे रहना, कमरे के भीतर पड़े रहना, बच्चों से दूर, आखिर उनका मन लगे भी तो कैसे ? पढ़-लिख नहीं सकते, यह उनके लिए और भी असह्य है। अब कब इस कारागृह से मुक्ति मिलेगी ?"

**बुधवार, 15 अगस्त :** "ओमप्रकाश पाण्डे अपनी माँ के साथ दोपहर 1 बजे आये। ओमप्रकाश की माँ को देखते ही पंडितजी को अपनी कनैलावाली पत्नी की याद आने लगी और उसके वियोग में वे विलाप करने लगे। जाना चाहते हैं वहाँ। बाप रे, क्या-क्या कहकर विलाप कर रहे थे, बोली समझ में नहीं आ रही थी। वे लोग आकर रोगी के पास ऐसे जम जाते हैं कि उठकर जाने का नाम ही नहीं लेते। रोगी की एबनार्मल अवस्था पर उन लोगों का ध्यान ही नहीं। पुरानी बातें याद दिला-दिलाकर उनको रुलाते रहते हैं। मेरा तो कोई ईश्वर भी नहीं जिससे प्रार्थना करती कि हे भगवान्, हमें यहाँ से शीघ्र मुक्ति दिला दो, ऐसे लोगों से हमें बचाओ। पंडितजी दिन-भर रोते, विलाप करते रहे। मैं विवश। बीमार आदमी के पास ऐसे लोगों को नहीं बैठना चाहिए।

"शाम को गाड़ी आई और उन्हें घुमाने ले गये। पंडितजी यहाँ अधिक दिन रहेंगे तो उनकी तबियत और ज्यादा खराब हो जाने का डर है।"

**गुरुवार, 16 अगस्त :** "गरमी बहुत रही, धूप भी तेज। आज उनकी तबियत ज्यादा खराब रही। रक्तचाप 200 से अधिक रहा। पलकें सूजी हुई थीं, रोना बहुत अधिक करते रहे। क्या करें ? दर्शनार्थी उन्हें तंग करते हैं, आकर बैठ जाते हैं, रुलाते रहते हैं। एक भिक्षु महेन्द्र (भोगलवाले) आये और कनैलावाली पत्नी की याद दिलाकर पंडितजी की स्मरणशक्ति को लौटाने के लिए भारी प्रयत्नशील रहे। पंडितजी रोते ही रहे। अब वे

स्वस्थ होंगे भी तो कैसे ? यहाँ तो एक-एक व्यक्ति उच्च श्रेणी का डॉक्टर है, पंडितजी की मानसिक चिकित्सा (साइकोथेरापी) करने के लिए कमर कसे हुए हैं।

"आजकल वे अपनी कनैलावाली स्त्री की खूब याद कर रहे हैं। दिमाग पता नहीं कहाँ-कहाँ उलझा रहता है उनका। कभी किसी की, कभी किसी की याद करते हैं। अब बुढ़िया की याद सता रही है और आज तो उसे चूमने और उससे मिलने की इच्छा प्रकट कर रहे थे। अजीब बात है। अभी तक उनके मास्को जाने की तिथि ठीक नहीं हुई है। यहाँ जितने दिन रहेंगे उतना ही उनका पागलपन बढ़ता जायेगा।"

**शुक्रवार 17 अगस्त :** "गरमी कसकर पड़ी, हम पसीने से लथपथ रहे। सबेरे डॉक्टर सुब्बाराव आये, पंडितजी की बी. पी. देखी–155/80 है। दवाइयाँ पहले की ही चलेंगी. शांति और आराम चाहिए उन्हें। इसलिए आज वे दिन-भर चुपचाप ही लेटे रहे। दिन में कई बार 'मेरी पुरानी आची (स्त्री)' कहकर रोते रहे, उससे मिलने की इच्छा प्रकट कर रहे थे। रूस की 'आची' भी याद आ रही थी। पर हमने रोने नहीं दिया। उनको कुछ पढ़कर सुनाया। शाम को शंकर गाड नामक के एक व्यक्ति पधारे। क्या-क्या ऊटपटाँग प्रश्न पूछ रहे थे। मैं तो बहुत तंग आ गई हूँ। कैसे-कैसे लोग होते हैं दुनिया में। आज मिलनेवालों की भीड़ रही। शाम को गाड़ी आई, इसलिए पंडितजी को घुमाने ले गये। आज के 'इलस्ट्रेटेड वीकली' में पंडितजी के फोटो छपे हैं। अखबारों में राहुलजी की बीमारी के बारे में समाचार छपे हैं।"

**शनिवार, 18 अगस्त :** "आज प्रायः दिन-भर हल्की-हल्की वर्षा होती रही। मौसम अच्छा रहा। गरमी से थोड़ी राहत मिली है। सच्चिदाजी शाम को आये, प्रोग्राम के बारे में कुछ भी नहीं बताया। बस इतना कह रहे थे–'राहुलजी यदि तीनों बच्चों को एक साथ देखते तो अच्छे हो जाते।' मैंने कहा–यह असम्भव बात है। मेरे बच्चे वहाँ नहीं जायेंगे। 'यदि पार्टीवाले रूसी परिवार को यहीं पंडितजी के पास बुलवा देते तो मैं अपने बच्चों के पास लौट जाती।' उन लोगों ने ऐसा क्यों नहीं सोचा है ? या सोच भी रहे हों तो हमें क्यों बतलायेंगे ? मेरे बच्चों को रूस ले जाने का खर्चा कौन उठायेगा ? यह भी तो सोचने की बात है। पंडित महाशय भी तो गिरगिट की तरह रंग बदलते रहते हैं। मेरे सामने कहते हैं–'घर चलो, घर चलो।' औरों के सामने कहते हैं–'मैं पहलीवाली के पास जाऊँगा।' क्या पता उनकी स्मरणशक्ति काम कर ही रही हो !

"आज दिन-भर वे 'घर ले चलने' की बात मुझसे करते रहे। और दिनों की अपेक्षा आज वे शांत रहे। दिन में कोई नहीं आया, अच्छा हुआ। ऐसे ही शांति से दिन बीत गया। बच्चों के बिना बिल्कुल मन नहीं लगता, उन दोनों को देखने के लिए मन तड़पता है ! पता नहीं उन्हें कब देख पाऊँगी। कितनी ही गयी-गुजरी गृहस्थी क्यों न हो, अपने घर में ही स्वर्गिक सुख मिलता है। मन भी प्रसन्न रहता है। कैसे लोग हैं यहाँ के ? हमें रोक रखा है, फैसला भी नहीं करते। यहाँ पंडितजी चिड़ियाखाने के किसी विचित्र प्राणी की तरह सबके लिए 'तमाशा' बने हुए हैं। हर कोई आकर उनके दिमाग को बरगलाने की कोशिश करता है। रोज इतने सारे लोग आते हैं उनसे मिलने, पर मुंशी परिवार को छोड़ और किसी ने भी 'जया-जेता' के बारे में पूछने की तकलीफ नहीं की है। जब-जब पंडितजी 'मेरे दो बच्चे' कहकर बिलखते हैं तब झट से कोई कह देता है–'राहुलजी, आप तो रूस जा रहे हैं, वहाँ तो आपका बेटा है, लोलाजी हैं। अब जल्दी ही आप उनसे मिलनेवाले हैं।' मैं चुप रहकर लोगों की बातें सुनती हूँ।"

**रविवार, 19 अगस्त :** "आज भी आधे दिन तक वर्षा होती रही। पंखे की जरूरत नहीं पड़ी। गरमी कुछ कम हो गयी है। आज वे प्रायः दिन-भर रोते ही रहे। 'घर चलेंगे, घर चलेंगे, कब चलेंगे' कहते रहे। बच्चों को देखने के लिए बेचैन हैं, रोते रहते हैं, एक बार गुर्राए भी।

"सबेरे डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री (मेरठवाले) तथा बैरिस्टर मुकुन्दीलाल उनको देखने आये। दोनों मित्रों को उन्होंने चेहरे से पहिचान लिया। अमरकीर्ति भी कहाँ से टपककर पंडितजी को बोर करने लगा, बड़ा बोगस आदमी है। पंडितजी के सामने उनकी ऐसी मानसिक स्थिति में वह अपना पाण्डित्य बघारता रहा। रोगी को कष्ट हो रहा है, डिस्टर्ब हो रहा है, इसका उसे कोई ख्याल नहीं है।

"शाम को सच्चिदाजी पत्नी के साथ आये। गाड़ी में पंडितजी उन लोगों के साथ चाणक्यपुरी, कनाट

प्लेस आदि जगहों की सैर करके आये। रात को डॉ. श्रीमती सुशीला गिल अपने पति के साथ आईं। फिर थोड़ी देर बाद मुंशीजी सपत्नीक आये। रात को पंडितजी का मूड कुछ अच्छा रहा। अभी तक उनके मास्को जाने का फैसला नहीं हुआ है। मुझे तो किसी तरह घर लौटने की छुट्टी मिल जाती तो अच्छा होता।''

**सोमवार, 20 अगस्त :** ''तेज धूप के कारण बहुत गरमी रही। पंडितजी 'घर, घर' रटते रहे। 'घर ले चलो, घर ले चलो' कहते हैं। शायद वे यहाँ से ऊब गये होंगे। उनकी बोली में शब्द सीमित हो गये हैं। यहाँवाले कान में तेल डालकर बैठे हैं। जितने दिन प्रतीक्षा करनी है, तब तक के लिए राहुलजी को यहाँ के अस्पताल में रख दिया होता तो उन्हें बहुत आराम मिलता, डॉक्टर-नर्स लोग उनकी देखभाल करते। यहाँ लाकर पटक दिया। उनकी बीमारी कोई ज्वर-बुखार या मियादी बुखार जैसी तो है नहीं। उनको तो रक्तचाप, हृदयरोग, डायबेटिज़ के साथ-साथ मस्तिष्क में हैमरेज भी हो गया है। वे कोई साधारण रोगी तो नहीं हैं। उनकी देखभाल तो उसी तरह से होनी चाहिए थी जिस प्रकार उनकी बीमारी नाजुक है। यहाँ 'तमाशा' बनाकर रख दिया है। उनकी बीमारी में जितना भी सुधार हो गया था, वह सब यहाँ रहकर खतम हो गया। अब उनमें पागलपन का माद्दा बढ़ता जा रहा है। एबनार्मलिटी के कारण ही वे कभी क्या कहते हैं, कभी क्या कहते हैं और कहने के बाद तुरंत भूल जाते हैं। फिर वही बात दुहराने लगते हैं। बच्चों से दूर हो जाना भी उनके लिए दुःख का कारण बन गया है।

''आज वे दिन में थोड़ा सोये। डॉक्टर नहीं है यहाँ, इसलिए पंडितजी के रक्तचाप का पता ही नहीं चलता। पेशाब बहुत करते हैं। रोना-धोना तो खैर चलता ही है। अमरकीर्ति आकर शेखी बघार रहा था। ऐसे बेमौके आ जाता है कि हमको थोड़ी देर भी विश्राम करने को नहीं मिलता। क्या किया जाय ? शाम को गाड़ी आई। पंडितजी को डेढ़ घंटे तक सैर कराकर ले आये। नहीं तो दिन-भर कठघरे में बन्द रहना पड़ता है उनको। आज मिलनेवाले कम आये, अच्छा ही हुआ।''

**मंगलवार, 21 अगस्त :** '' आज बहुत गरमी पड़ी। धूप भी खूब तेज। वे आज बकवास करते रहे। फेमिली प्लानिंग के बारे में सबको लेक्चर देते रहे। एकदम चुप नहीं रहे, रात को साढ़े 10 बजे तक बोलते ही रहे। मेरे साथ कहते हैं, 'घर ले चलो, घर जाऊँगा।' और दूसरों के साथ कहते हैं–'मैं रूस जाऊँगा। मेरी पहले की स्त्री है, बच्चा है।' दूसरों के सामने वह इस तरह से बोलते रहे। जो लोग राहुलजी को रूसी परिवार की याद दिलाने की चेष्टा कर रहे हैं, लगता है उनको सफलता मिल रही है। चलो, बीच-बीच में उनकी स्मरणशक्ति लौट आती है, चाहे वे जिसकी भी याद करें। हम तो उनकी खोई हुई याददाश्त के लिए ही चिन्तित हैं।

''जाने का कोई फैसला नहीं हुआ। कब तक यहाँ रहना होगा, पता नहीं। बिल्कुल ऊब गये हैं। अपने घर में जो शांति है वह यहाँ कहाँ। यहाँ देख रही हूँ मुंशीजी तथा उनकी पत्नी के अतिरिक्त मेरे और मेरे बच्चों के प्रति किसी की भी सहानुभूति नहीं है। वे लोग जी-जान से चाहते हैं कि राहुलजी हम से दूर हो जायें। मेरा जीवन तो बर्बाद हो ही गया। और क्या आशा करूँ ? आज शिवशर्माजी, जो पंडितजी की सेवा में मेरा हाथ बँटा रहे थे, पटियाला चले गये। शाम को सच्चिदाजी सपरिवार आये, और भी कई लोग आये। यहाँ मन लगाने के लिए कोई पुस्तक भी नहीं है। इसलिए बच्चों की बहुत याद आती है। मेरे तो ये दोनों बच्चे जया-जेता ही सब कुछ हैं।''

**बुधवार, 22 अगस्त :** ''गरमी असह्य। उनका गुर्राना भी सबेरे से ही आरम्भ हो गया। 'कब चलोगी, घर ले चलो, घर जाऊँगा' की रट लगाये रहे। परेशान कर रखा है। समझते भी तो नहीं। यहाँ उनको इतने दिनों तक रोके रखने का क्या मतलब है ? यह समझ में नहीं आ रहा है। कलकत्ता में तो वे डॉक्टरों के हाथों में सुरक्षित थे। बनवारी बाबू तथा वैद्य वेणीशंकर जैसे हितैषी लोगों की सुरक्षा उनको मिली थी। यहाँ वह सब कहाँ ? यहाँ मेरे लिए मुसीबत है। ऐसे पागल जैसे रोगी को मुझे अकेले सँभालना पड़ रहा है। सब लोग कान में तेल डाले बैठे हुए हैं।

''डॉ. सत्यनारायण सिन्हा तीन बार आये। एक बार अकेले, फिर शाम को कुछ जर्मन लोगों के साथ और रात को श्री पृथ्वीराज कपूर के साथ आये। पृथ्वीराज कपूर साहब थोड़ी देर तक बैठे, क्योंकि उस समय

राहुलजी भोजन करने बैठे हुए थे। कपूर साहब उस समय संसद सदस्य थे और उनका क्वार्टर हमारे सामने ही था। उन्होंने राहुलजी से कहा–'आप को अच्छा होना पड़ेगा और आप अच्छे हो जायेंगे। आपकी किताबें पढ़कर सब लोग आगे बढ़ रहे हैं।' इतना कह उन्होंने राहुलजी का दाहिना हाथ लेकर अपने ललाट से स्पर्श कराया, फिर कहा–'मैं तो आपके सामने ही ठहरा हूँ, फिर मिलने आऊँगा।'

"नागार्जुन का आगमन हुआ, भीड़ को साथ लेकर। बैरिस्टर मुकुन्दीलाल भी आये। कुछ और लोग भी आये, जिनमें से थोड़े को ही मैं पहिचान सकती थी। कुछ लोग तो अच्छे होते हैं, रोगी के कष्टों का ख्याल करते हैं, लेकिन कुछ तो उन्हें पागल बनाने आते हैं।

"बच्चों की चिट्ठी नहीं आती। आज उनके लिए कुछ हिन्दी की पुस्तकें खरीदकर दार्जिलिंग भेज दीं।"

**गुरुवार, 23 अगस्त :** "आज तो गरमी असह्य रही। सबेरे से ही पसीना छूटने लगा। रात तक वैसी ही गरमी है। पंखा दिन-भर चलता रहा।

"वे सबेरे उठते ही पूछने लगे–'कब चलना है ?' मैंने कहा–अभी चलना है। फिर वे गुर्राने लगे भयंकर रूप से। उठकर चल देना भी चाहते थे। चाहे जितनी सेवा करो, ये गुर्राना नहीं छोड़ते। मेरी तो जान मुसीबत में फँस गयी है। उनके गुस्सा होते समय मैं ही अकेली यहाँ होती हूँ, कोई साक्षी भी नहीं। वे ऐसा करते हैं, सुनकर किसी को विश्वास भी नहीं होता। आज मेरा मन बड़ा दुःखी हो गया, अपने भाग्य पर दिन-भर रोती रही। लिब्रियम दो बार देकर उनको सुलाना चाहा, पर ऐन वक्त पर भतीजे महाशय (उदयनारायण पाण्डे) पधारे। फिर तो वे क्या सो सकते थे ? भतीजे जी 'इगोर-लोला' प्रसंग ले बैठे। लोग उनकी इस एबनार्मल अवस्था का खूब लाभ उठा रहे हैं। नतीजा–पंडितजी उत्तेजित हो गये। पहले परिवार के यहाँ जाने के लिए उतावले हो गये। आखिर लोग क्यों उनके दिमाग को इस तरह भ्रमित किए दे रहे हैं ? लोगों को इससे क्या मिलता है ? मैंने कब मना किया है कि राहुलजी अपनी प्रियतमा लोला से न मिलें, पुत्र से न मिलें ? मैं तो रूस भेजने के लिए ही उनको यहाँ दिल्ली ले आई हूँ अपने मासूम बच्चों को दार्जिलिंग में छोड़कर। राहुलजी यदि लोलादेवी और पुत्र के पास रहकर स्वास्थ्य-लाभ कर सकें, उनकी लम्बी आयु हो जाये, तो इसमें क्या मुझे खुशी नहीं होगी ? लोग क्यों मुझसे इस कदर दुश्मनी का भाव रखते हैं ? क्या वे सब लोग राहुलजी के गार्जियन हैं ? मेरे हृदय की पीड़ा को तो कोई संवेदनशील नारी ही समझ सकती है, जिस पर इस प्रकार बज्र टूट पड़ा हो। राहुलजी के तथाकथित हितैषी और मित्र लोग मेरी व्यथा को क्या समझें ?

"आज मेरा मन बहुत ही बोझिल रहा चिन्ताओं से।"

**शुक्रवार, 24 अगस्त :** "आज अधिक गरमी के कारण दिन-भर बड़ी परेशानी रही। वे सबेरे से ही 'घर चलो' कहना शुरू कर देते हैं। 12 बजे के बाद उनका मिजाज बहुत गरम रहता है, फिर अकबक बोलने लगते हैं। आज उनको बड़ी 'आची' की याद आ रही थी। बहुत बोलने लगे। बहुत लाल-पीले होने लगे। पर क्या करें, आज भी डॉक्टर नहीं आये।

"सच्चिदाजी आये थे। उनको मैंने कहा–इन्तिजाम नहीं होता हो तो हमें घर लौटने दें। पर अभी वे लोग और रुकने को कहते हैं। यहाँ गरमी के मारे जान निकल रही है। गरमी के कारण ही वे इतने बेचैन रहते हैं, बहुत ही परेशान हो जाते हैं बेचारे। शाम को कुछ लोग मिलने आये थे, जिनमें से बहुतों को मैं नहीं पहिचानती। लोग अपनी ओर से बोलने लगते हैं और पंडितजी को बहुत कष्ट होता है, फिर रक्तचाप बढ़ जाता है।

"आज मेरी बहन गंगा और कप्तान लाल की चिट्ठी दार्जिलिंग से आई। कप्तान लाल ने लिखा है–दोनों बच्चे (जया-जेता) अच्छी तरह हैं। ट्यूटर से पढ़ते हैं और प्रसन्न हैं। इलेस्ट्रेटेड वीकली में छपे हम लोगों के चित्र जया-जेता ने देख लिये हैं।"

**शनिवार, 25 अगस्त :** "आज सबेरे काफी धूप थी, पर थोड़ी देर बाद बादल घिर आये और वर्षा हुई। इससे गरमी थोड़ी कम हुई। वे सबेरे 9 बजे तक सोये। डॉक्टर जैन उनको देखने आये थे। रक्तचाप आज 180/90 है जो कुछ ज्यादा है। नई दवा लिख दी है। पेशाब में 1/4 सी. सी. चीनी है, यह अच्छा नहीं है।

पेशाब में चीनी बिल्कुल शून्य रहना चाहिए। वे सबेरे से ही घर चलने के बारे में पूछते रहे—'कब चलेगी ?' मालूम होता है उनको बच्चों की याद आती है, उन लोगों को याद करते ही वे रोने लगते हैं। उनको रोते देख मुझे बहुत दुःख होता है। सच्चिदाजी सबेरे से दोपहर 1 बजे तक रहे। वे लोग राहुलजी को मास्को भेज कर ही रहेंगे। पर कब ? पता नहीं।

"सबेरे भाई चन्द्रसिंह गढ़वाली राहुलजी को देखने आये। दोपहर बाद 'सोवियत भूमि' के नेपाली विभाग के सम्पादक आये और रात को मुंशी-परिवार। श्री पृथ्वीराज कपूरजी आज भी राहुलजी के बारे में पूछ रहे थे। वे हमारेवाले कमरे के सामने रहते हैं। कहने लगे—'मैं आना चाहता हूँ, पर डर लगता है कि कहीं डिस्टर्ब न हों। मैं रामायण का पाठ करके पंडितजी को सुनाना चाहता हूँ।' बड़े सौम्य पुरुष हैं, बहुत अच्छी प्रवृत्ति के। अच्छा हुआ, उनसे जान-पहिचान हो गई।"

**रविवार, 26 अगस्त :** "आज वर्षा के कारण गर्मी कुछ कम रही। पर मेरे लिए आज का दिन बहुत बुरा बीता। महापंडितजी बहुत उन्मत्त हो गये। सुबह के 10 बजे तक तो वे गहरी नींद में रहे थे। पर थोड़ी देर बाद से उन्होंने जो पागलपन दिखाया, वह देखते ही बनता था। बाप रे, इतना भयंकर गुस्सा उनको कैसे आता है ? ठण्डी जमीन पर लेट गये, चारपाई से भी गिरना चाहते थे, मैंने पकड़ लिया। फिर खड़े-खड़े ही जमीन पर लेट गये। चोट लगने का डर, साथ में कोई नहीं, बड़ी मुश्किल हो गई। परेशानी और घबड़ाहट के मारे अपना भी बुरा हाल हो गया। गुस्सा भी आ रहा था, पर लाचार। रोग बढ़ जाने के कारण ही उनको इतनी तकलीफ हो रही है।,

"फिर तो दिन-भर वे चुप नहीं रहे। 'दो बच्चे, जया-जेता' करते रहे। शाम को माचवे-दम्पती आये। उनके साथ भी 'जया-जेता' करते रहे। श्रीमती माचवे बार-बार इगोर की याद दिला रही थीं उनको, पर उन्होंने नहीं सुना। वे लोग जब भी आते, इगोर का नाम लेकर राहुलजी की स्मृति पर जोर डालते, जबकि राहुलजी 'मेरे दो बच्चे' करते रहते। मैंने इसीलिए राहुलजी के सामने से जया-जेता के फोटो हटा दिये।' 'सोवियत संघ' नामक पत्रिका से पूरे पेज का फोटो 9-10 वर्ष के रूसी लड़के को फाड़कर पंडितजी के सामने रख दिया और कह दिया—'यह आपका बेटा इगोर है।' यह चित्र और माचवेजी और श्रीमती माचवे ने भी देख लिया था। अच्छा हुआ, माचवेजी की समझ में बात आ गई। राहुलजी नार्मल स्थिति में नहीं हैं, उनको जबर्दस्ती किसी की याद दिलाने से कोई फायदा नहीं। वे स्वयं याद करें, वही अच्छा होगा। शाम को नागार्जुन, सच्चिदाजी, राजीव सक्सेना आदि कई लोग आये। अब पंडितजी साढ़े 9 बजे के बाद बड़ी मुश्किल से सोये थे।"

**सोमवार, 27 अगस्त :** " आज पानी तो नहीं बरसा, पर गरमी कुछ कम रही। वे रात ढाई बजे से जगे और फिर बोलते ही गये। फिर जमीन पर सोने के लिए जिद करने लगे, पर मैंने रोका नहीं। सुनते ही नहीं। जमीन पर लेट गये कई बार। बुरा तो बहुत लगा, पर क्या करती मैं ? बोलते ही गये, बोलते ही गये। आज सुबह ही उनका ब्लड टेस्ट करने ले गये। शाम को रिपोर्ट मिली। शुगर तो पहले से कम है, पर यूरिया आदि में वृद्धि हुई है। यह सब कम होना चाहिए। इसी वजह से वे बेचैन रहे सारे दिन। 'घर चलो, घर चलो, बच्चों के पास चलो' कहते रहे। रोना भी साथ-साथ रहा। अपना भी मन खराब रहा।

"दिन में 11 बजे के करीब कामरेड रजा अली साहब ने बताया कि मेरे लिए भी मास्को से निमंत्रण आ गया है। अब शुक्रवार को जाना निश्चित हो गया। कल हमारे लिए बीजा और दूसरे कागजात भी मिल जायेंगे और पंडितजी की मेडिकल जाँच भी की जायेगी। .एक तरफ तो मुझे विदेश जाने की उत्सुकता होती है, पर दूसरी तरफ अपने बच्चों से बिछुड़ रही हूँ, यह सोचते ही मन विचलित होने लगता है। पता नहीं उन आँखों के तारों को मैं कब देख सकूँगी। उनके बिना जीवन सूना-सूना लगता है।"

**मंगलवार, 28 अगस्त :** "सबेरे से खूब बारिश हुई, इसलिए दिन का तापमान थोड़ा गिर गया है। सबेरे राहुलजी साढ़े 8 बजे जगे। नहला-धुलाकर उनको ब्रेकफास्ट खिला दिया। डॉक्टर ने आकर उनकी जाँच की। रक्तचाप थोड़ा भी कम नहीं हुआ है। दवा के लिए लिब्रियम लिख दिया, यह नींद लाने के लिए है। पहले एक टेबलेट दे दी गई, पर वे पचा गये, जरा भी नहीं सोये। हाँ, बोलना थोड़ा कम हो गया, तन्द्रिल अवस्था

में रहे दिन-भर।

"सच्चिदाजी आये और 2 बजे तक रहे, पर पंडितजी उनसे भी अधिक नहीं बोले। दोपहर बाद नागार्जुन के साथ कुछ अन्य लोगों का आगमन हुआ। राहुलजी सोना चाहते थे, पर लोग विघ्न डालने में कोई कसर नहीं छोड़ते। चाहे कुछ भी सोचें ये लोग, मुझे पंडितजी को चुप रखने के लिए ड्यूटी देनी पड़ती है। ज्यादा बोलना उनके लिए ठीक नहीं है।

"शाम को शिवशर्माजी को पंडितजी के पास बिठाकर मैं सच्चिदाजी के साथ कुछ किताबें खरीदने गई। बच्चों के लिए विज्ञान की अच्छी-अच्छी पुस्तकें मिलीं, अपने लिए भी साहित्य सम्बन्धी दो-तीन पुस्तकें और एक नोटबुक ले ली। उधर से ही हम कामरेड भूपेश गुप्तजी के पास गये। उनको मैंने पहले कभी देखा नहीं था, गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति हैं। श्री महेन्द्र आचार्य के यहाँ चाय पीते हुए हम साढ़े 7 बजे डेरे पर लौट आये। देखा, पंडितजी जमीन पर लेटे हुए हैं। गरमी और बेचैनी के कारण ये ऐसा करते हैं। रात में देर तक नहीं सो रहे थे, तब लिब्रियम की एक गोली देकर उनको सुलाया।

"आज भी श्री पृथ्वीराज कपूर मिले। कह रहे थे–'अब वीजा भी मिल गया। अब आप हमारे पंडितजी को हँसी-खुशी के साथ वापस ले आइए।' कितना मधुर व्यक्तित्व। स्वयं नमस्ते कहते खड़े हो गये।"

**बुधवार, 29 अगस्त :** "आज दिन का तापमान बहुत अधिक रहा। रात को 1 बजे पंडितजी की तबीयत बहुत खराब हो गई। उन्हें कै हुई और बड़े सुस्त हो गये। उसके बाद वे बिल्कुल ही नहीं सो सके। मुझे कल से ही उनकी हालत खराब होती महसूस हो रही थी और मन में अनिष्ट की आशंका भी। इसलिए शिवशर्मा और अमरकीर्ति को आज यहीं रोक लिया था। वह लोग रात बरामदे में सो रहे थे, आहट पाकर तुरन्त जग गये। पंडितजी के सिरहाने मैं बैठी और उनके सिर को सहलाया, ललाट और चेहरे को सहलाया। शिवशर्मा ने पंडितजी के हाथ-पाँव को सहलाया। नींद गायब हो चुकी थी। वे बेचैनी महसूस कर रहे थे, किन्तु सबेरा हो जाने पर उनको थोड़ी देर के लिए नींद आ गई। डॉक्टर आये और उनके रक्तचाप की जाँच की। रक्तचाप कम करने की औषधि दी। इससे रक्तचाप तो कम हो गया, किन्तु शाम को जब मैं उन्हें बिठाकर चाय-नाश्ता दे रही थी कि उनकी आँखें उलट गईं और हाथ-पाँव ठण्डे हो गये। मैं बहुत घबड़ा गई और उन्हें धीरे से बिस्तर पर लिटा दिया (दरअसल उनको फिर से स्ट्रोक हो गया था)। काफी देर बाद उनकी संज्ञा लौट आई। हमने डॉक्टर को फोन किया था, वह आ गये। नई दवा के कारण ऐसा हुआ, घबड़ाने की बात नहीं। यह डॉक्टर ने कहा। रक्तचाप कल 220/110 था और आज 130/80 रहा। अचानक रक्तचाप इतना कम हुआ, तभी उन्हें इतनी कमजोरी आ गई थी। डॉक्टर ने उनको लिटाये रखने को कहा। रात को उनको भोजन खिला दिया और वे समय पर सो गये। उन्हें थोड़ी देर के लिए भी अकेला छोड़ नहीं सकते।

"अब हमें मास्को जाने की तैयारी करनी है। बच्चों की बहुत याद आती है।"

**गुरुवार, 30 अगस्त :** "आज राहुलजी दिन-भर सुस्त रहे, उनसे बोला ही नहीं जा रहा था। दिन-भर बिस्तर पर खामोश पड़े रहे।

"कल हम लोगों का जाना तय हो गया। यात्रा के लिए सभी कागजात प्राप्त हो गये, अच्छा हुआ। तैयारी अभी पूरी नहीं हुई है। आज दिन के समय काम नहीं हो सका, शाम को भी नहीं। पंडितजी से मिलनेवाले बहुत आये। उनमें कामरेड भूपेश गुप्त, कामरेड सज्जाद जहीर, कामरेड पी. सी. जोशी तथा बड़े भाई चन्द्रसिंह गढ़वाली भी थे। बहुत भीड़ रही, पर आज वे किसी से नहीं बोले, बोल सकने की अवस्था नहीं थी उनकी। आज तो सुबह से उनकी आवाज ही नहीं निकल रही है। मुझे बहुत आशंका होती है, अनिष्ट होने का भय बना रहता है। विधाता मेरे, मुझे कहीं अकेली छोड़ न जाना।

"एक बजे रात को डायरी लिखने बैठी। बच्चों ने फिर पत्र नहीं भेजा, पता नहीं वे दोनों किस हाल में हैं। अब तो हमें उन लोगों से बहुत दूर जाना है, न जाने मैं उन दोनों को कब देख पाऊँगी। मन बहुत उदास है मेरा।

"पंडितजी शीघ्र ही सो गये। कल सुबह साढ़े 10 बजे की फ्लाइट से जाना है, सबेरे जल्दी जगना होगा।"

## मास्को में राहुलजी की चिकित्सा : दिल्ली से प्रस्थान

**शुक्रवार, 31 अगस्त :** "बहुत सबेरे ही उठकर हमने यात्रा की सब तैयारी कर ली। राहुलजी करीब-करीब कोमा में थे, उनकी आँखें ही खुल नहीं रही थीं। पेशाब पर नियंत्रण न होने से उनके सारे कपड़े गीले हो गये थे, अतः उनको हल्के हाथों से धीरे-धीरे नहला दिया। पर नहलाते समय भी उनकी आँखें नहीं खुल रही थीं। दवा का भी असर होगा, हमने ऐसा महसूस किया।

"सुबह कांस्टिट्यूशन हाउस में बहुत-से लोग उनको विदाई देने आये थे। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार सपत्नीक, माचवे-दम्पती, बच्चन-दम्पती, हिमांशु जोशी, सच्चिदाजी, मुंशीजी, विष्णु प्रभारकरजी, तथा अन्य बहुत-से लोग थे, कितने ही लोगों से तो मैं मिल ही नहीं पाई। राहुलजी की अवस्था को देखकर आज सब चिन्तित थे, इतने लाचार और कमजोर वे कभी नहीं हुए थे। वे खड़े भी नहीं हो सकते थे। लोगों ने उनको करीब-करीब गोदी में उठाकर मोटर पर चढ़ाया था।

"सुबह के ठीक 9 बजे हम लोग कांस्टिट्यूशन हाउस से रवाना हुए। पालम एयरपोर्ट पर सब कागजी कार्यवाही कर ली गई। बक्से को खोलकर नहीं देखा। समय पर एयर इंडिया इन्टरनेशनल का जेट विमान आ गया। पालम विमान अड्डे पर बहुत तेज गरमी थी। पंडितजी को इन्वैलिड चेयर पर बिठाये रखना पड़ा। उनकी हालत बहुत खराब हो गई थी, डर लग रहा था कि अभी कुछ न हो जाय। 11 बजे हवाई जहाज के अन्दर गये। पंडितजी को चार-पाँच आदमियों ने ह्वील चेयर पर उठाकर विमान के भीतर पहुँचाया। उनकी आँखें उलट गई थीं। उन्हें इस हालत में देखकर मेरे तो होश उड़ गये, बहुत विचलित हो गई मैं। हवाई जहाज के भीतर का वातावरण एयर कन्डिशन्ड रहने से कुछ देर बाद उन्होंने आँखें खोलीं। साढ़े 11 बजे विमान उड़ा। एक बार उनको पेशाब पाजामे में ही हो गई। एयर होस्टेस ने उन्हें कम्बल में लपेटकर लिटा दिया। फिर तो छः घंटे की इस हवाई यात्रा में उन्होंने आठ बार पेशाब की, बार-बार उठने लगते। यदि विमान के बाथरूम में न ले जाती तो सीट पर ही पेशाब होने की आशंका और यात्रियों के सामने लज्जा। वे बार-बार उठकर चलने की कोशिश करते। लम्बे डील-डौलवाले पंडितजी को मुश्किल से सँभालते-सँभालते मुझे बहुत परेशानी हो रही थी, मुझे थोड़ी देर के लिए भी अपनी सीट पर आराम से बैठने नहीं दिया। उनको पता ही नहीं था कि वे जमीन से 25 हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ान कर रहे हैं। उनको सँभालते हुए मैं खाना तक ठीक से नहीं खा सकी, भूख बहुत जोर से लग रही थी।

"हवाई जहाज में हम लोग प्रथम श्रेणी में बैठे हुए थे। पंडितजी को बार-बार उठते और बाथरूम ले जाते हुए तीसरी श्रेणी की एक एयर होस्टेस देख रही थीं। मुझ को बहुत परेशान देखकर वह मेरे पास आई और कहा–'लाइए, मैं भी आपकी मदद करूँगी।' तब एक तरफ से मैंने और दूसरी तरफ से उसने पकड़कर पंडितजी को बाथरूम पहुँचाया और फिर वापस लाकर उनकी सीट पर लिटा दिया। पंडितजी जब से बीमार पड़े तब से ही वे अपने आप कपड़े नहीं पहन सकते थे। उनको कपड़े पहनाना, उतारना, यहाँ तक कि उनका पाजामा खोलना या पहनाना सब काम मैं ही करती आ रही थी, हवाई जहाज में भी मैं अपनी ड्यूटी कर रही थी। वे तो इस समय बिल्कुल छोटे बच्चे की अवस्था और मानसिकता में जी रहे थे। बाथरूम पहुँचाना, फिर उनकी सीट पर लाकर बिठाना, यह क्रम चलता ही रहा। इस एयर होस्टेस ने हमारा काफी ध्यान रखा। बाद में उसने पूछा–'आपने मुझे पहचाना ?' मैंने कहा–'नहीं तो।'

तब वह बोली–'मैं मसूरी की रहनेवाली हूँ। मेरे पिताजी भारत के विभाजन के बाद सियालकोट से आकर मसूरी में बस गये थे। मसूरी के लोग उनको सियालकोटी शर्माजी कहते थे। मैं उनकी बड़ी बेटी राज हूँ। हम लोग मसूरी में राहुलजी से मिलने आया करते थे। मैं अब एयर होस्टेस बन गई हूँ और कई सालों से विदेश जाती रही हूँ, मैं तो दुनिया घूम चुकी हूँ।'

"मैं 'राज' नाम की इस तरुणी को देखकर याद करने लगी–काले घुँघराले बालोंवाली सुन्दर गुड़िया-सी लड़की। हमारे मसूरी रहते समय 9-10 वीं कक्षा में कान्वेन्ट में पड़ती थी और अपने पिताजी के साथ कभी-कभी

हमारे घर 'हर्न-क्लिफ' में भी आती थी। उससे अक्सर 'चार्लविल होटल' के पास भेंट होती थी, पर वह उस समय बड़ी शर्मीली थी। उनका घर चार्लविले के आसपास ही कहीं पर था। सियालकोटी शर्माजी राहुलजी का बहुत आदर करते थे। वर्षों बाद आज उनकी बेटी राज से भेंट हुई भी तो जमीन से 25 हजार फुट की ऊँचाई पर और ऐसी विकट स्थिति में। पंडितजी तो उसको नहीं पहचान सके। एयर होस्टेस राज ने मुझसे पूछा–'राहुलजी को क्या हो गया है ? कब से वे बीमार हैं ?' मैंने उसको सब कुछ बतला दिया। वह फिर बोली–'आप निश्चिन्त रहें। मास्को तक मैं जा ही रही हूँ, आप लोगों को वहाँ पहुँचाकर ही मैं विदा लूँगी। आज की इस विचित्र भेंट के बारे में मैं अपने पिताजी को जरूर लिखूँगी।'

"सचमुच ही जब तक हमारा विमान मास्को नहीं पहुँचा, तब तक राज ने मेरी और पंडितजी की बड़ी सहायता की। दुनिया में इतने सुन्दर हृदयवाले व्यक्ति भी होते हैं, तब मैंने अनुभव किया था।

"विमान के रास्ते में लाहौर, करॉंची, ताशकन्द, काला सागर देखते हुए हम भारतीय समय के अनुसार 6-30 (और मास्को के शाम 4 बजे) पर मास्को एयरपोर्ट पर पहुँचे। वहाँ एक लेडी डॉक्टर, एक इंटरप्रेटर (दुभाषिया), अस्पताल के दो कर्मचारी स्ट्रेचर और एम्बुलेन्स गाड़ी लेकर हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे। एम्बुलेन्स गाड़ी जब चलने लगी, तभी वह दयालु एयरहोस्टेस हमसे विदा हुई। राहुलजी को लेनिनग्राद मार्ग, गोर्की स्क्वायर होते हुए मास्को शहर से दूर के अस्पताल ले आये। मैं उनके साथ ही थी। हमें कुछ दिनों के लिए क्वारेन्टिन में रहना होगा और यह छूत के रोगों का अस्पताल है। इसका नाम ज़ागोरोदनाया बोलनित्सा (Zagorodnaya Bolmitsa) है। डॉक्टरों ने तुरन्त राहुलजी का मेडिकल चेकअप किया और बतलाया–उनको दिल्ली में ही फिर से स्ट्रोक हो गया था। उन्होंने छः घंटे की इतनी लम्बी विमान-यात्रा कैसे की, इस पर डॉक्टर लोग आश्चर्य प्रकट कर रहे थे।"

## मास्को के अस्पताल में (31 अगस्त से)

**शनिवार, 1 सितम्बर :** "मास्को अस्पताल में आज हमारा प्रथम दिन। पंडितजी तो पहले भी रूस में रह चुके थे, किन्तु मैं पहली बार आई हूँ। कल रात थकावट के कारण बड़ी मीठी नींद आई, पंडितजी भी गहरी नींद में सोये। आज यहाँ वर्षा प्रायः दिन-भर होती रही।

"मुझे भी ज़ागोरोदनाया बोलनित्सा में एक रोगी की तरह रखा गया है। नर्सें सभी बहुत अच्छी हैं। उन लोगों की बातें मुझे समझ में नहीं आतीं, तो भी इशारे से काम चल जाता है। आज 10 बजे तक सारा मेडिकल चेकअप हो गया हम दोनों का। पहले तो गले, नाक और कान के रोगों की विशेषज्ञ डॉक्टर आईं। पंडितजी और मेरा निरीक्षण किया। फिर हृदयरोग विशेषज्ञा आईं और दोनों का चेकअप किया। इसके बाद न्यूरोलोजी के स्पेशलिस्ट (स्नायुरोग-विशेषज्ञ) आये और पंडितजी की अच्छी तरह से जाँच की। बहुत-से प्रश्न भी पूछे। अंग्रेजी के दुभाषिये के माध्यम से मैंने सभी प्रश्नों के उत्तर दिये। यदि मैं पंडितजी के साथ न आती तो यह सब कौन बतलाता ? फिर टेस्ट करने के लिए पंडितजी का ब्लड ले गये। यूरिन-स्टूल आदि की भी जाँच हो गई।

"यहाँ के डॉक्टर-नर्स सभी रोगी की बड़ी अच्छी तरह से देखभाल करते हैं। नर्सिंग स्टाफ भी बहुत हँसमुख हैं, डॉक्टर भी। डॉक्टर अधिकतर महिलाएँ हैं। ठीक 10 बजे हम लोगों को ब्रेकफास्ट दिया गया, जिसमें रूसी पोरिज (दलिया) सासेज़, पाव रोटी और आलू का नमकीन हलवा था। बहुत स्वादिष्ट। पंडितजी को भी पूरा खाना दिया जा रहा है। भारत में तो डॉक्टर लोग उन्हें खाने में बहुत परहेज करवा रहे थे। यहाँ तो उनको मांस-मछली भी दी जा रही है। दवाइयाँ और इन्जेक्शन भी साथ ही चल रहे हैं। दोपहर का भोजन ठीक ढाई बजे दिया गया, जिसमें सूप, कटलेट, उबली सब्जी और एक जेली-सा मीठा पदार्थ भी था, अच्छा ही लगा। पंडितजी के लिए भी यही भोजन दिया गया।

"आज उनको बहुत पेशाब हुई, हर 15 मिनट के बाद पेशाब आती रही। उनको उठने और बैठने नहीं दिया जाता, लिटाये रखा है। बच्चे बहुत याद आते हैं। अब तो हम उनसे प्रायः 5 हजार मील दूर आ गये

हैं। पता नहीं अब कब उनसे मिल सकेंगे।"

**रविवार, 2 सितम्बर :** "राहुलजी रात को अच्छी तरह सोये, उन्हें काफी गहरी नींद आई। मैं भी ठीक से ही सोई यद्यपि नींद में भी जया-जेता याद आते रहे।

"सबेरे एक लेडी डॉक्टर आकर पंडितजी का ब्लड प्रेशर देख गईं, 190/90 के आसपास ही है। वे आज एक शब्द भी साफ नहीं बोले, पर 'भैया-भैया' करते रहे। जीभ लटपटाती है। कुछ अस्पष्ट शब्द भी बोल रहे थे जो मेरी समझ में नहीं आया। गुस्से भी हो रहे थे, यह चिडचिड़ापन शायद कमजोरी के कारण होगा। आज दिन में कल की अपेक्षा कम पेशाब हुई, दस्त भी एक बार थोड़ा-सा। दोपहर को मैं जरा सो गई थी, और वे कह रहे थे–'मैं तेरे पास आऊँगा।' अभी उनको होश नहीं कि वे सोवियत संघ, मास्को में हैं। बच्चों की याद करके रो रहे थे। अपने को भी रोना आ गया। बेचारे जया-जेता इस समय क्या कर रहे होंगे, उन्हें देखने को जी तरसता है। आज दार्जिलिंग में पत्र भेज दिया।

"पंडितजी को कई प्रकार की दवाइयाँ दी जाती हैं, सोने के लिए भी। अभी खा-पीकर 8 बजे ही वे गहरी निद्रा में सो गये। आज शाम को श्री भीष्म साहनीजी मिलने आये। बड़े मधुर-भाषी सज्जन हैं। दिल्ली से लाये सभी पत्र मैंने उन्हीं को दे दिये। बक्सा भी है जो वे बाद में ले जायेंगे। पंडितजी को देखने अब शायद दूसरे लोग भी आने लगें। यहाँ गम्भीर रोगी के पास विजिटर्स को आने नहीं देते। गार्गल (कुल्ला) करने के लिए यहाँ मशीन है। मुझ को भी पंडितजी के साथ ही रखा गया है। पढ़ने की कुछ किताबें साथ लायी हूँ। आज फुर्सत के समय में सामरसेट माम का **On Human Bondage** पढ़ती रही। कहानी अच्छी लगी।"

**सोमवार, 3 सितम्बर :** "आज मौसम अच्छा है। धूप निकल आई, इसलिए ठंडक कुछ कम है। रात को एक ही कम्बल ओढ़कर सोई, पैरों में ठंड लगी, घुटनों के नीचे गठिया का-सा दर्द होने लगा। मुझे पेचिश की भी शिकायत है। दिल्ली में मिर्च-मसालेयुक्त भोजन मिलता था, उसी का यह परिणाम है।

"पंडितजी की हालत आज खराब रही। बोले भी नहीं। 'भैया-भैया' एक-दो बार कहा, परन्तु इतना बोलने में भी उन्हें कठिनाई हुई। दुभाषिये आये, उनके साथ दो बड़े-बड़े डॉक्टर तथा तीन लेडी डॉक्टर भी आईं। पंडितजी के चुप रहने का कारण वह मुझसे पूछ रहे थे, पर मैं क्या बताऊँ ? एक भी बात का जवाब वे ठीक से नहीं दे रहे। बच्चों के फोटो दिखाये, पर उनकी ओर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। वे बहुत ही कमजोर और सुस्त हो गये हैं, जैसे उनकी चेतना ही काम नहीं कर रही हो। स्वस्थ हो जायेंगे, इसमें सन्देह है। अपने देश से इतनी दूर उनको ले आई, अब यहाँ भी अच्छे नहीं हो सकेंगे, तो यह मेरा ही दुर्भाग्य होगा। वैसे यहाँ के डॉक्टर लोग परिश्रम तो कर रहे हैं। चिकित्सा-प्रणाली यहाँ की अलग तरह की है। रोगी को नमक, मांस-मछली सब दे रहे हैं। उनका रक्तचाप, शरीर का ताप सब नार्मल है। रक्त की जाँच प्रतिदिन होती है। होश न रहने के कारण आज वे पाखाना-पेशाब पर नियंत्रण नहीं कर सके। पता नहीं क्यों उनको होश नहीं रहता ? यह कैसी बीमारी उनको लग गई है ? कुछ समझ में नहीं आता। संध्या समय उनकी छाती के बाएँ हिस्से पर जोंक की तरह के कीड़े गोल फूल की तरह चिपका दिये गये। जब खून चूस-चूसकर दो घंटे बाद मोटे हो गये, तब कीड़ों को निकाल दिया गया। उनकी छाती से खून निकला है, यह भी यहाँ के इलाज का एक अंग है, पर हमारे लिए तो यह बड़ा विचित्र था। रात-भर नर्स-डाक्टर बराबर उनको देखने आते रहे। मुझको पंडितजी की हालत देखकर बिल्कुल ही नींद नहीं आई। आज शाम को ही कामरेड मिर्ज़ा और उनके छोटे भाई सपत्नीक आये थे, पत्नी रूसी महिला हैं।"

**मंगलवार, 4 सितम्बर :** "दिन बहुत अच्छा रहा। बाहर दिन-भर अच्छी-खासी धूप रही। बाहर तो सर्दी रही होगी, पर कमरे के अन्दर सेन्ट्रल हीटिंग की व्यवस्था के कारण पता नहीं चलता। पंडितजी आज करीब-करीब दिन-भर सोते रहे। सबेरे ही डॉक्टर आकर उनको देख गयीं। ब्लड प्रेशर देखा, पता नहीं कितना है। कल की घायल छाती पर से आज भी दिन-भर थोड़ा-थोड़ा खून टपकता रहा। इंटरप्रेटर आज आये। एक महिला डॉक्टर ने पंडितजी और मेरे बचपन, माता-पिता के रोग आदि के बारे में पूछा। राहुलजी के रूसी पुत्र का भी जिक्र आया। मुझे तो डर लग रहा था, कहीं स्थान के बारे में भी पूछें तो ? यदि वे लोग जान जायें कि

लोला यही हैं, तो डॉक्टरों का व्यवहार हमारे प्रति अवश्य बदल जायेगा और पता नहीं पंडितजी की चिकित्सा भी ठीक से होगी या नहीं। एक दिन तो यह रहस्य अवश्य खुल जायेगा। मेरे दिमाग में इस प्रकार के अपराध-बोध और आतंक बैठाने में राहुलजी के तथाकथित दो-तीन मित्रों का हाथ था। वे कतई नहीं चाहते थे कि मैं राहुलजी के साथ रूस जाऊँ। मेरे साथ जाने से राहुलजी लोला और इगोर से नहीं मिल सकेंगे, मैं बाधा डालूँगी। यह आशंका लोला भाभी के तथाकथित 'देवरों' के मन में थी, इसलिए इन लोगों ने मुझे इस कदर डरपोक और आतंकित बना दिया था। इनमें से दो महानुभाव आज भी जीवित हैं।

"खाना खाने के बाद पंडितजी अक्सर हल्ला करते हैं, जोर-जोर से चीखते-चिल्लाते हैं, बात एक भी समझ में नहीं आती। मुझे भी रोगी के साथ अस्पताल में रहना पड़ रहा है। मेरे गले की जाँच होती है, रोज गार्गल करने के लिए मशीन दे रखी है। यहाँ मशीन के द्वारा हर चीज बड़ी सफाई से होती है। आज उनको कुल पाँच इन्जेक्शन लगे। बच्चे बहुत याद आते हैं। रात को पंडितजी के कारण कई घंटे जगना पड़ा, बिल्कुल ही नींद नहीं आई। बच्चों के बिना कहीं भी जी नहीं लगता। लिफाफे और कागज की कमी है, वर्ना मैं रोज-रोज जया-जेता को पत्र लिख भेजती।"

**बुधवार, 5 सितम्बर :** "आज धूप नहीं निकली, कुछ ठण्ड-सी मालूम होती है। यहाँ गरम पानी से नहाने का प्रबन्ध है, अच्छा लगता है।

"पंडितजी रात को ठीक से सोये, पर सबेरे ही 'पाखाना, भैया' करते चिल्लाने लगे। चलो इतना तो होश आया। वे हल्ला तो खूब करते हैं। सबेरे तीन महिला डॉक्टर आकर उनको देख गयीं। खाने के समय फिर तीन अन्य डॉक्टरों ने आकर उनकी जाँच की। बतलाया कि पंडितजी के शरीर के बायें हिस्से में कुछ लकवे का असर मालूम होता है। कब अच्छे होंगे, मालूम नहीं। वैसे उनको इन्जेक्शन और कई प्रकार की दवाइयाँ दी जाती हैं। डॉक्टरों ने हमें आश्वासन भी दिया कि वे अच्छे हो जायेंगे। वे लोग मरीज का खूब अच्छी तरह से चेक-अप करते हैं। पंडितजी को देखने आनेवाले डाक्टरों में अधिकांश महिलाएँ हैं जो अपने विषय की विशेषज्ञ हैं। यह अस्पताल (ज़ागोरोदनाया) भी बहुत बड़ा और साफ-सुथरा है। यहाँ सबसे बड़ी दिक्कत भाषा की है। बहुत कम लोगों को ही अंग्रेजी आती है। रूसी सीखने में तो समय लगेगा।

"आज शाम को वे पागल जैसे हो गये, जोर-जोर से रोना-चिल्लाना करते रहे। जमीन पर लेटने के लिए जोर देते हैं। आवाज भी जोर-जोर की निकलती है, शब्द क्या बोलते हैं कुछ भी समझ में नहीं आता। आज भी उनको पाँच इंजेक्शन लगे। कई तो बहुत ही तकलीफदेह। पर क्या करें, उनके शरीर को ठीक करने के लिए ही ऐसी दवाइयाँ और इंजेक्शन दिये जा रहे हैं। हम लोग तो कुछ नहीं कह सकते चिकित्सा के बारे में।"

**गुरुवार, 6 सितम्बर :** "हमारे कमरे में सबेरे से ही धूप आती है। शाम को थोड़ी वर्षा हुई, पर कमरे के भीतर बैठे पता ही नहीं चला। आज वे अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ सचेतन रहे, पर उनका रोना सबेरे से ही चालू हो गया। जया-जेता की याद करके रोने लगे। क्या पता, अब तक उनके साथ रहे होते तो कुछ अच्छे हो गये होते। पर बीमारी एक नहीं, कई-कई हैं। ब्लड प्रेशर, डायबेटिज़, हृदय-रोग तीनों ही जानलेवा बीमारियाँ हैं। आज पंडितजी दिन-भर हल्ला करते रहे। शाम को तो उन पर और पागलपन सवार हो गया। 'भैया-भैया' की ही रट लगाते रहे। उठकर चल देना चाहते हैं, सोना भी पहले से कम हो गया है। रात को वे देर तक जगे ही रहे।

"बच्चों की याद से मेरा मन भी विचलित हो जाता है। यहाँ मन ही नहीं लगता, दिन कैसे कटेंगे ? घूमना-फिरना भी नहीं। मन को दूसरी तरफ लगाने की कोशिश करती हूँ तो भी जया-जेता की याद आने लगती है, कैसे होंगे दोनों, लड़ते होंगे आपस में, गुस्सा दिखाते होंगे, लोग उनके साथ कैसा बर्ताव करते होंगे, यही चिन्ता खाये जाती है। मन को सांत्वना देने के लिए आज उन दोनों को लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ लिखीं। चिट्ठी तो रोज लिख सकती हूँ, पर क्या करूँ, लिफाफे मेरे पास नहीं हैं। कहानियाँ लिखना चाहती हूँ, पर डॉक्टर-नर्सें बराबर आती रहती हैं। जब अकेले रहते हैं तो राहुलजी हल्ला करने लग जाते हैं, फिर लिखना-पढ़ना

कैसे हो ?

"अब यहाँ से मन उचटने लगा है। मैंने अभी तक बाहर का कुछ देखा ही नहीं। जब से आये हैं, अस्पताल के भीतर ही घुस बैठे हैं। आज कमरे के बाहर निकलकर देखा। अस्पताल का अहाता बड़ा साफ और सुन्दर फूल-पत्तों से ढँका हुआ है। इसकी इमारत भी सादगी लिये हुए बड़ी खूबसूरत है। बहुत पसन्द आयी मुझे। नर्सें बहुत ही अच्छी हैं, डॉक्टर लोग भी।"

**शुक्रवार, 7 सितम्बर :** "आज दिन बड़ा अच्छा रहा। शाम तक धूप बनी रही। बाहर तो हवा चलती रहती है, इससे सर्दी बढ़ जाती है, पर कमरे के अन्दर पता नहीं चलता। मुझको पेचिश हो गई है, इसलिए जाँच करने के लिए डॉक्टर के कमरे में ले गये। यह कमरा अस्पताल के दूसरे छोर पर है। दिल्ली में डेढ़ महीने तक मुझको होटल का बना मिर्च-मसालेदार खाना मिलता रहा, उसी का परिणाम है यह पेचिश।

"आज अस्पताल को बाहर से देखने का मौका मिला, बहुत बड़ी इमारत है, खूब साफ-सुथरा और हरा-भरा वातावरण। इमारत की पीछे की तरफ तरह-तरह के फूलों का बगीचा है। अस्पताल की इमारत न होकर एक महल जैसा मालूम होता है। यहाँ एक-एक मरीज के लिए अलग-अलग कमरे की व्यवस्था है। डॉक्टरों में भी अधिकांश महिलाएँ दिखाई देती हैं। काश कि हम लोग भी ऐसे देश में जन्मे होते। प्रतिभा के रहते भी गरीबी की मार तथा पिछड़ेपन के कारण अपना सारा जीवन मिट्टी में मिल गया। अब बच्चों का भविष्य भी डाँवाडोल-सा है। तो भी उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए मैं कोई कोर-कसर उठा न रखूँगी।

"आज महापंडितजी की नींद सबेरे 4 बजे ही खुल गई। तभी से वे हल्ला करने लग गये। दिन-भर गुस्सा होना, लगातार रोना बिना आँसू के और 'भैया-भैया' कहकर गरजना। दिन-भर परेशान कर दिया। थोड़ी झपकी लेने भी न पाई। न जाने बीच-बीच में उनको ऐसा क्यों हो जाता है ? बिल्कुल पागलों की-सी हरकत करने लगते हैं।

"यहाँ से मन उचट रहा है। देखने-सुनने को कुछ नहीं है, समय काटे नहीं कटता। सामरसेट माम की दूसरी पुस्तक The Magician पढ़ रही हूँ। लिफाफे न होने के कारण किसी को भी पत्र नहीं लिख सकी।"

**शनिवार, 8 सितम्बर :** "आज सर्दी कुछ अधिक मालूम हो रही थी। बाहर हवा भी खूब चल रही थी। बाहर काफी ठण्डक होगी, पर कमरे के भीतर कम ही सर्दी महसूस होती है। अब मालूम हो रहा है कि सर्द जगहों में रहने के कारण ही यूरोपीय लोग मद्यपान करते हैं। उनके यहाँ शराब पीना बुरा नहीं माना जाता।

"आज और दिनों की अपेक्षा पंडितजी कुछ शांत रहे। कल रात सोने के लिए इन्जेक्शन दिया गया था, इसलिए सबेरे 9 बजे तक सोये। फिर उतना तंग नहीं किया। पर रोना तो बराबर रहा। अभी शाम को भी इन्जेक्शन लगा है। प्रतिदिन पाँच इन्जेक्शन तो लगते ही हैं, कितना दुखता होगा उन्हें। रोज सुबह रक्त-परीक्षण के लिए उनका रक्त लेने आते हैं। पंच करते हुए उनको काफी दर्द होता है। आज मेरा भी रक्त लिया।

"सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की सेन्ट्रल कमिटी की ओर से एक रूसी सज्जन आये दुभाषिये के साथ। उन्होंने पूछा—'क्या यहाँ राहुलजी की हालत में कुछ सुधार हो रहा है ? आप पहले भी उनके साथ अस्पताल में रहती थीं, यहाँ वे खुश हैं कि नहीं ?' मैंने भी ठीक-ठीक उत्तर दिया। उन सज्जन से मालूम हुआ कि यहाँ एक सप्ताह रखकर फिर राहुलजी को न्यूरोलोजी विभाग में रखा जायेगा। अभी उनका रक्तचाप कम है, डायबेटिज़ भी कन्ट्रोल में आ गया है, कमजोरी है थोड़ी। कुछ दिनों के बाद उनको टहलाने के लिए इन्वैलिड चेयर पर ले जायेंगे। मुझको भी बाहर ले जायेंगे। आज मेरा मन बड़ा उदास रहा। पढ़ने की भी इच्छा नहीं होती। जब बच्चे याद आते हैं तो मन उद्विग्न होने लगता है।"

**रविवार, 9 सितम्बर :** "शरद ऋतु का आगमन। दिन बहुत बढ़िया रहा, मौसम सुहावना है, दिन-भर धूप रही और आकाश निर्मल। फिर भी ऐसे सुन्दर दिन में मन में उदासी रहती ही है, क्योंकि पंडितजी अस्वस्थ हैं।

"डॉक्टर ने मुझे भी सबेरे टहलने के लिए कहा। पंडितजी की देखभाल के लिए नर्स सुबह ही आ जाती है। ब्रेकफास्ट के बाद थोड़ी देर के लिए बाहर निकली और अस्पताल के पिछले अहाते में कुछ दूर तक टहल

आई। पर रोज-रोज तो मैं घूमने नहीं जा सकती। पंडितजी के पास मुझे बैठे रहना पड़ता है, क्योंकि नर्स उनकी बात समझ नहीं पाती। उनके दिमाग में कल से कुछ पागलपन सवार हो गया है, जमीन पर सोना चाहते हैं। कल रात को 11 बजे तक ऐसे ही किया। नींद की गोली देकर सुलाया। आज सबेरे ही जग गये, फिर दिन-भर मुँह फाड़-फाड़कर रोते रहे। यह रोना उनकी एबनार्मिलिटी की निशानी है। जरा भी चुप नहीं बैठे। दिन में मैं जरा बाथरूम गई थी, तब तक वे जमीन पर लेट गये थे। उठाने पर वे नाराज हो जाते हैं। अभी शाम को भी वे ऐसा ही कर रहे हैं। पता नहीं उनको क्या हो गया है। क्या उनको उन्माद-रोग हो गया है ? उनके पागलपन के मारे मेरा बुरा हाल है। यहाँ की भाषा मैं बोल नहीं सकती, डॉक्टर को समझाऊँ तो कैसे ? दुभाषिये भी रोज नहीं आते। दिन में थोड़ा भी पढ़-लिख नहीं सकती, रात को भी वे 11 बजे से पहले सोते नहीं, बैठे रोते रहते हैं। आखिर मैं कितना बर्दाश्त करूँ ? मेरा जीवन तो निरर्थक हो गया है।

"शाम को कामरेड मिर्ज़ा आये और कुछ लिफाफे दे गये। कल कुछ चिट्ठियाँ लिख भेजनी हैं।"

**सोमवार, 10 सितम्बर :** "दिन आज भी अच्छा रहा, धूप सारे दिन रही। शाम को थोड़ी-थोड़ी वर्षा हुई। आज थोड़ा टहल आई, अच्छा लगता है, पर ज्यादा देर तक बाहर रह नहीं सकती।

"सबेरे जिमनास्टिक सिखानेवाली नर्स ने आकर मुझे 10 मिनट तक कसरत करवाई। मैं तो कसरत करना चाहती ही हूँ, वर्ना बैठे-बैठे शरीर फूल जायेगा। आज भोजन में भारतीय ढंग का पुलाव और टमाटर की मीठी चटनी मिली थी।

"पंडितजी का हाल आज भी पहले जैसा ही रहा। सबेरे ब्रेकफास्ट से पहले तक तो वे कुछ सोते ही रहे, पर शाम को फिर वही पागलपन सवार हो गया। जमीन पर तीन बार उतरकर लेट गये। चारपाई पर चढ़ाना मुश्किल, मेरे अकेले के बस में नहीं। ऐसे पागल आदमी के साथ मैं क्या करूँ ? बात तो वे समझते ही नहीं। मालूम नहीं क्यों जमीन पर लेटने की जिद करते हैं। दिल्ली में भी ऐसा ही किया था। रात को कुछ शांत लग रहे हैं, देखें सोते हैं या नहीं।

"बच्चों की याद बहुत आती है। वे भी उन दोनों की याद करके रोते हैं। अभी तक वे बच्चों के साथ रहे होते तो क्या पता वे कुछ ठीक हो गये होते। इसमें शंका होती है कि वे अब बच्चों को देख पायेंगे या नहीं। इसी सोच के कारण मेरा पढ़ने में मन नहीं लगता। मुश्किल हो गई है। कैसे सभालूँ इनको ? कब ठीक होंगे ये ? चाहे चारपाई पर ही पड़े रहते, पर थोड़ा होश में आ जाते तो कितना संतोष होता मुझको।"

**मंगलवार, 11 सितम्बर :** "मास्को की शरद ऋतु। दिन बड़ा सुहावना, आकाश निर्मल, चाँदनी रात, तारे चमक रहे हैं। धूप शाम तक रही। दार्जिलिंग में भी ऐसा ही प्राकृतिक दृश्य होगा।

"आज पंडितजी की तबीयत ज्यादा खराब रही। रात बिना सोये चिल्लाते ही बिताई। बहुत हल्ला करते रहे, मुझको भी सोने नहीं दिया। शाम को थोड़ा बुखार भी रहा, ठण्ड के कारण है या इंजेक्शन के कारण, पता नहीं। अभी (8 बजे रात को) सोये हैं, पर थोड़ी ही देर में जग जायेंगे। आज उनका रक्तचाप भी 190/100 था जो बहुत ज्यादा है। उनका रोना-चिल्लाना चलता ही रहा, कार्डियोग्राम लिया गया।"

**बुधवार, 12 सितम्बर :** "पंडितजी की तबीयत और खराब हो गई है। नींद की गोली कल रात को दी गई थी। वे पूरे 20 घंटे सोये, करीब-करीब दिन-भर ही सोये। यह स्वाभाविक नींद नहीं थी, कोमा जैसी स्थिति थी उनकी। डॉक्टर लोग भी घबरा गये। कहने लगे–'आज राहुल की दशा खराब है।' रक्तचाप 190/80 था। मैं तो विचलित हो गई, पर हिम्मत नहीं हारी। नींद ही में खाये, नींद ही में पीये। कुछ ज्वर भी था। रात को पेनिसिलीन इंजेक्शन दिया गया। दिन में कई-कई तो इंजेक्शन लगते हैं, शायद उसी से ज्वर हुआ हो। शाम को उन्होंने आँखें खोलीं, उसके बाद रात को सोये ही नहीं, सबेरे 3 बजे तक जगे रहे। कल शायद उनको स्नायुरोग विभाग में ले जायेंगे।

"मुझको भी डिसेन्ट्री है। ठंडी चीजें खाने से और तकलीफ होती है, पेट दुखता है। इलाज चल रहा है। बच्चों की बहुत याद आती है। उनसे बिछुड़े भी आज 60 दिन हो गये। बेचारे क्या करते होंगे। कोसते भी होंगे हमें।"

**गुरुवार, 13 सितम्बर :** "पानी बरसने से आज बहुत ठण्ड हो गई।

"वे सबेरे 3 बजे के बाद सोये और 7 बजे तक सोये रहे। तब से जगे हुए हैं। दिन-भर अस्वाभाविक रोना रोते रहे, बोलते रहे, बच्चों के पास ले जाने के लिए जिद करते रहे। किन्तु कल की तुलना में आज उनकी हालत थोड़ी बेहतर है। अचरज होता है कि उन्हें नींद क्यों नहीं आती ? नींद की गोलियाँ हर समय देना भी तो खतरा है। अभी रात 8-30 बजे सोने को कह रही हूँ, पर लगता है कि आज रात भी वे जागते रहेंगे। आखिर कब अच्छे होंगे ? पागलपन की मात्रा भी बढ़ गई है। यहाँ लाकर भी मुझे तो कोई फायदा हुआ जैसा नहीं लगता। कोई भी बात उनकी समझ में नहीं आती। पागल की तरह चिल्लाते हैं।"

**शुक्रवार, 14 सितम्बर :** "मौसम सुबह खराब था, पर रात में आकाश निर्मल है और चाँद निकल आया है।

"आज पंडितजी की तबीयत वैसी ही रही। रात को बहुत कम सोते हैं। सबेरे उन्हें थोड़ी नींद आती है, पर नर्स आकर उनको जगा देती है। इंजेक्शन आदि शुरू हो जाने पर फिर सो नहीं पाते। दिन में तो जरा देर के लिए भी आँखें बन्द नहीं करते। सबेरे उठते ही जो रोना शुरू किया तो शाम तक रोते ही रहे, चुप ही नहीं हुए। इनका रोना स्वाभाविक नहीं है। समझाने पर समझते ही नहीं। रक्तचाप आज नार्मल के आसपास है और सब ठीक है, पर उनकी मानसिक अवस्था खराब हो गई है। पता नहीं, यहाँ ठीक होंगे कि नहीं। बच्चे पास में होते तो कुछ आशा होती।

"आज राहुलजी के रूसी पुत्र इगोर को एक पत्र लिखकर लेनिनग्राद भेज दिया, जिसमें मैंने उनसे अपने पिता को देखने के लिए आने का अनुरोध किया है। उनका पता ठीक से मालूम नहीं, चिट्ठी पहुँचेगी या नहीं। जो भी हो, मैं सामना कर लूँगी, डरने से तो काम नहीं बनता।

"कल शायद उनको न्यूरोलोजिकल वार्ड में ले जायेंगे। सुना है, वहाँ टेलिविजन सेट भी है, इससे उनका मन लग जायेगा। आज मैंने बच्चों को पत्र भेज दिया। जयारानी के जन्म-दिन पर मैं अब की बार अनुपस्थित हूँ। बेचारी बच्ची उदास हो जायेगी। जेता-भैया भी क्या सोचते होंगे।"

**शनिवार, 15 सितम्बर :** "धूप आज नहीं दिखाई दी। सर्दी में यहाँ अच्छा नहीं लगता।

"रात को पंडितजी जरा भी नहीं सोये। उनका स्वास्थ्य और बिगड़ता जा रहा है। उस दिन की तरह शाम को उनके कान के पास दो-दो कीड़े जोंकों की तरह के रखे गये। रात 2 बजे के बाद निकालकर फेंक दिया और घायल जगह पर पट्टी बाँध दी। खून बह रहा है। पर वे बैंडेज खोलकर फेंक देते थे। उन्हें जोर का गुस्सा आ रहा था। मना करने पर उन्होंने मुझे एक थप्पड़ लगाया। यह मेरे लिए विचित्र था, क्योंकि उन्होंने कभी भी मुझ पर हाथ नहीं उठाया था। क्या हो गया है उनको आजकल ? मुझे बहुत ही दुःख लगा। ऐसा क्यों करते हैं ? ढाई बजे रात तक ठण्ड में कुर्सी पर उन्हीं के पास बैठकर रोती रही, फिर सो गई। वे 5 बजे सबेरे तक सोये नहीं। दिन में नाश्ते के बाद 11 से 12 बजे तक सोये। फिर जगकर रोना शुरू कर दिया, जिसके कारण रक्तचाप बढ़ गया और थोड़ा बुखार भी आ गया। आज उन्होंने एक भी ठिकाने की बात नहीं की। पेशाब भी कम हुई। Neurological Ward में कब ले जायेंगे, मालूम नहीं। जल्दी ले जाना चाहिए।

"पढ़ाई-लिखाई कुछ भी नहीं कर पाती। दिन-रात उन्हीं की सेवा में लगी रहती हूँ। फिर कैसे स्थिर मन से पढ़ सकती। बच्चों की चिट्ठी नहीं आई इधर।"

**रविवार, 16 सितम्बर :** "आज बहुत सुहावना शारदीय दिवस रहा। सबेरे से ही तेज धूप, मन प्रसन्न हुआ।

"रात को आज भी वे नहीं सोये। सबेरे साढ़े 3 से जगे हुए थे। नींद बीच-बीच में आती है, पर वे इधर-उधर पैर फैला-खींच क्या-क्या करके भगा देते हैं। न तो वे सोते हैं, न मैं सो पाती हूँ। कई-कई रात से जागरण चल रहा है। दिन में भी वे नहीं सोते। छः रातों से वे नहीं सो रहे हैं, इससे बहुत चिन्ता होती है। आज सबेरे रक्तचाप 190/80 था, सो लेते तो और कम हो जाता। मालूम नहीं यहाँ आकर इनकी नींद कहाँ उड़ गई। आज वैसे दिन-भर खामोश ही रहे, पेशाब भी आज बहुत हुई। आजवाली नर्स उतना ख्याल

नहीं रखती, बोलती भी कम है।

"श्री गोपेन्द्र चक्रवर्ती शाम को आये। प्रौढ़ हैं, तीन साल से यहाँ रहते हैं, मास्को रेडियो में बंगला प्रोग्राम के संचालक हैं। उनके आने से अच्छा ही लगा।

"हमारे पढ़ने के लिए कोई चीज नहीं है। लिखने के लिए सोचना जरूरी है, पर सोचने में बाधा पड़ती है। समय काटना मुश्किल हो रहा है। बच्चों के संग कितनी जल्दी समय बीत जाता था। यहाँ तो सूना ही सूना है। पता नहीं, यहाँ से कब चले जाना होगा। नौकरी भी ढूँढ़नी है। उम्र बीत जाने पर काम मिलना मुश्किल हो जायेगा। हमारा भविष्य अनिश्चित हो गया है। बेचारे बच्चों को कष्ट होगा।"

**सोमवार, 17 सितम्बर :** "मौसम अच्छा रहा। सबेरे धूप निकल आई थी। कमरे को सेन्ट्रल हीटिंग से गरम करवाने लगे हैं, जिससे कभी-कभी गरमी लगती है, रात को दम घुटने-सा लगता है अभ्यास न होने के कारण।

"कल रात को पंडितजी को नींद की दवा दे दी गई, तो भी रात को 1 बजे तक वे नहीं सोये। फिर दूसरी दवा दी गई, तब पता नहीं कब सोये। बार-बार कम्बल फेंक देते। सोने को कहने पर गुस्से होकर पागल बन गये। सुबह चाय पीने के बाद थोड़ा सोये। आज उनका रक्तचाप सबेरे 140/80 था। शाम को जरूर बढ़ गया होगा, क्योंकि दिन-भर रोना और बोलना चलता रहा। दिन तो किसी तरह कट जाता है, रात बड़ी मुश्किल से बीतती है। नींद नहीं आती। कब उन्हें न्यूरोलोजिकल वार्ड में ले जायंगे, पता नहीं। वहाँ मुझे दूसरे कमरे में रहने को मिले तो ज्यादा अच्छा होगा।

"आज वे भी बच्चों को बहुत याद करते रहे थे, रो रहे थे। अपना तो मन बहुत कचोटने लगता है। उन आँखों के तारों को न देखने से मन सूना-सूना-सा हो गया है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मेरे प्यारे बच्चो, मैं कब तुम लोगों को देख पाऊँगी, मन रोता है, मेरे बच्चो !"

# 12

# मास्को के न्यूरोलोजी अस्पताल में

सेन्ट्रालनाया क्लिनिचेस्काया वोलनित्सा (कुन्छेवो)

**मंगलवार, 18 सितम्बर :** "रात को राहुलजी नहीं सोये। सबेरे 4 बजे तक वे अकबक बोलते रहे, चिल्लाते रहे। छाती और गले में दर्द है, खाँसी के कारण। बलगम नहीं निकलता, थोड़ा ज्वर भी है। डॉक्टर ने देखा, सोने की दवा दी, किन्तु वे सोये नहीं और सबेरा हो गया। आठ रात से वे सोये नहीं हैं। यहाँ मुझको भी कसरत करवाते हैं, टहलना पड़ता है। कमरे में गरमी लगती है, बाहर अच्छा लगता है।

"12 बजे के करीब खबर मिली कि आज पंडितजी को स्नायुरोग अस्पताल (न्यूरोलाजिकल वार्ड) में ले जायेंगे। इसलिए जल्दी-जल्दी तैयार हुए। उनको स्ट्रेचर पर लिटाकर एम्बुलेन्स में रखा गया। डॉक्टर और नर्सें भी साथ थीं। स्ट्रेचर उठाने में भी महिलाएँ ही आगे बढ़ती हैं, पुरुषों की कमी है। सामान भी गाड़ी पर रखा। यदि पहिले मालूम होता कि मुझे भी अस्पताल में रहना पड़ेगा तो इतना बड़ा सूटकेस साथ में न लाती। कपड़े जो लायी थी वह वैसे ही पड़े हैं, यहाँ जरूरत नहीं है। यह अस्पताल ज़ागोरोदनाया बोलनित्सा के नजदीक ही छः मंजिली इमारत है, जिसमें एक हजार कमरे हैं। हमें 388 नम्बर का एक छोटा-सा किन्तु साफ-सुथरा कमरा मिला, जो चौथी मंजिल पर है। अस्पताल का नामोच्चारण मालूम नहीं, पर रूसी में नाम लिखा हुआ है। अब हम ऊपर टँग गये। अब टहलना भी मुश्किल। रात को खिड़की से दूर मास्को शहर की रोशनी दिखाई देती है, पर दिन में तो बस जंगल ही जंगल नजर आता है। पहिलेवाला अस्पताल ज्यादा अच्छा लग रहा था, वहाँ घूमने-फिरने की सुविधा थी, यहाँ कैसे जायें ?

"रात को उनकी तबीयत फिर खराब हो गई। न्यूमोनिया हो गया है उनको, ज्वर भी तेज है। सन्निपाती (डिलेरियस) हो गये वे। रात को अंग्रेजी जाननेवाली एक डॉक्टर आई। पंडितजी को कफ की उल्टी कराई गई, सोने की दवा दी। तब 11 बजे रात को वे सोये। रात को कई बार उन्होंने उल्टियाँ कीं। यहाँ आकर तो मेरा मन और भी खराब हो गया है। पढ़ने की चीजें नहीं, लिखने का मन नहीं करता, बच्चों की याद से मन और विचलित होने लगता है। यहाँ आकर रोना आता है। मालूम नहीं वे कब स्वस्थ होंगे और कब घर जाने को मिलेगा। इगोर को पत्र भेजा है। मिला कि नहीं, मालूम नहीं। इगोर और उसकी माँ आकर इनको देख जाते तो अच्छा होता।"

**बुधवार, 19 सितम्बर :** "दिन अच्छा रहा। शाम के 3 बजे तक कमरे में धूप रहने से काफी गरमी रहती है, पसीना छूटने लगता है, लेकिन अब शाम को सर्दी हो गई।

"पंडितजी कल रात में 11 बजे सोये, नींद की गोली देनी पड़ी। कफ के लिए भी दवा दी गई। रात को उन्हें कई बार उल्टी हुई थी। सबेरे नाश्ते के बाद भी उल्टी। दिन-भर गहरी नींद में रहे, जरा देर के लिए

भी नहीं जगे। नींद की गोली के कारण या बीमारी के कारण उनको इतनी नींद आती है, कहना मुश्किल। कभी-कभी तो वे कोमा में होंगे, ऐसा लगता है। बहुत अधिक सोना भी तो अच्छा नहीं है। अब (रात साढ़े 8 बजे) भी गहरी नींद में हैं। पूरी सात रातों तक सोये नहीं थे। आज उनको ज्वर नहीं है। सबेरे प्रोफेसर डॉक्टर पोपोवा (वृद्ध महिला) आईं और पंडितजी को देखा। हाथ-पाँव तो हिलते हैं, क्या रोग है उनको ? उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने कहा—मानसिक रोग है, पढ़-लिख नहीं सकते। अब आगे क्या करेंगे, पता नहीं। डॉक्टर तो आज कुल चार बार आकर देख गये हैं।

"मैं बीमार न होते भी रोगिणी बन गयी हूँ। अस्पताल के कमरे में बन्द, न कहीं आना न जाना। लिखने के लिए मन एकाग्र नहीं होता। कहानी लिखने के लिए खाका तैयार नहीं हो रहा है। पत्र लिखूँ तो लिफाफे का सवाल, पढ़ने के लिए किताबें नहीं। समय बीतता नहीं। भाषा की बड़ी दिक्कत है।

"कल मेरी बेटी जयारानी का जन्मदिन। 9 वर्ष की हो जायेगी, पर अभी अपनी नज़र में छोटी ही लगती है। पहली बार उसके जन्मदिन में मैं नहीं हूँ, उदास होती होगी। जुग-जुग जियें मेरे बच्चे, प्यारे बच्चे।"

**गुरुवार, 20 सितम्बर :** "कमरे के भीतर काफी गरमी है, खिड़की खोलने की मनाही है। उनको ब्रान्काइटिस की शिकायत है। आज उनको कितने ही डॉक्टर देखने आये। उनमें से अधिकतर महिलाएँ थीं। डॉक्टर अन्तानिना पेत्रोव्ना को भी आज पहली बार देखा। बड़ी अच्छी डॉक्टर हैं वे, मरीजों के साथ बहुत प्यार और स्नेह का बर्ताव करती हैं। यहाँ डॉक्टरों की, नर्सों की, दवाइयों की कमी नहीं है। नर्सें दो हैं, 12-12 घंटे के हिसाब से ड्यूटी में रहती हैं। वे बराबर रोगी के पास बनी रहती हैं, बड़ी सेवा-भावना है उनमें।

"पंडितजी आज थोड़ी बेहतर हालत में रहे, परन्तु सोये बहुत कम। उनका ब्लड प्रेशर कम, टेम्परेचर नार्मल, पेशाब-पाखाना नार्मल है, पर उन्होंने सोना-खाना-हँसना बंद कर दिया है। तब कैसे स्वस्थ होंगे ? उनकी पीठ की हड्डियों में दर्द हो रहा था। दो बार एक्स-रे लिया गया, पर दोनों बार उन्होंने साँस नहीं रोकी। इन्जेक्शन तो दिन में 7-8 बार लगते हैं, पर वे खाना नहीं खाते।

"शाम को अपना भी पेट दुखने लगा। खाने में पता नहीं क्या-क्या देते हैं। आज तो खाते ही जी मिचलाने लगा, उल्टियाँ हुईं, दस्त हुए। केवल सूप अच्छा लगता है। हो सकता है पंडितजी को भी भोजन सुस्वादु न लगता हो, इसलिए नहीं खाते। यहाँ आकर मैं तो छोटे कमरे में कैद हो गई हूँ।

"आज हमारी प्यारी बेटी जयारानी ने अपना जन्मदिन मनाया होगा। बड़ी याद आ रही है उसकी, जेता भैया का वह भोला चेहरा भी बार-बार याद आता है।"

**शुक्रवार, 21 सितम्बर :** "आज हमारे दुभाषिए के साथ यहाँ की सबसे बड़ी डॉक्टर प्रोफेसर नीना पोपोवा तथा अन्य तीन डॉक्टर राहुलजी को देखने आये। डॉ. अन्तानिना पेत्रोव्ना भी थीं जिन्होंने उनकी पहलेवाले अस्पताल में चिकित्सा की थी। मालूम होता है अभी तक बीमारी उन लोगों की समझ में नहीं आई है। मैंने तो मानसिक रोग कहकर जोर दिया। आज भी उन लोगों ने बीमारी का पूरा ब्यौरा (केस हिस्ट्री) पूछा, मैंने सब बतला दिया। एक बार ई. सी. जी. कराते तो अच्छा होता। मुझे ऐसा महसूस होता है कि वे अभी तक दार्जिलिंग में रहे होते तो काफी अच्छे हो गये होते। यहाँ आने पर कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है, बल्कि कुछ गड़बड़ी-सी दिखाई देती है। आज तो उनका उच्चारण भी स्पष्ट नहीं है, बोलते भी बहुत कम, रोना बहुत अधिक करते हैं, खाना मुँह में डालते ही थूकने लगते हैं। बहुत कमजोर हो गये हैं। खाना-सोना छोड़ दिया है उन्होंने, इससे हमें बड़ी चिन्ता होती है। उनके हाथ-पाँव सूखे और पतले-से दीखते हैं, शरीर में जरा भी ताकत नहीं है।

"आजवाली सिस्टर बहुत अच्छी थी। हम लोगों का उसने बहुत ख्याल रखा। वे रात को समय पर ही सोये।"

**शनिवार, 22 सितम्बर :** "कमरा गरम है हीटिंग के कारण। पंडितजी रात को ठीक से सोये थे, इसलिए आज तबीयत कुछ अच्छी मालूम हो रही है। सबेरे नाश्ता भी ठीक से किया। यहाँ सुबह बेड-टी के स्थान पर दही दिया जाता है। दही खाना रोगियों के लिए अनिवार्य है। उन्होंने दोपहर और रात के खाने में बहुत

हल्ला किया। गले से नीचे उतारना ही नहीं चाहते। इस तरह तो वे बहुत कमजोर हो जायेंगे। वैसे भी कमजोर तो हो ही गये हैं, दोनों पाँव सूख-से गये हैं। आज उनको खड़े करवाया पर वे खड़े नहीं हो सके, पाँवों में ताकत ही नहीं है। डॉक्टर ने उनके पाँवों की मालिश करने का सुझाव दिया है। उनका उच्चारण स्पष्ट नहीं है। हँसते नहीं, रोते रहते हैं, बच्चों की याद करते रहते हैं। दिन में सोते नहीं, सिर्फ 'हँ हँ' करते रहते हैं। दर्द कहाँ होता है, यह बताते भी नहीं, बड़ी परेशानी है।

"दिन के समय उनको उन्हीं की पुस्तक 'मेरी जीवन-यात्रा' भाग : 1 से कुछ अध्याय पढ़कर सुना दिया, उनको बहुत अच्छा लग रहा था, बड़ी दिलचस्पी से सुन रहे थे। आज कुछ लिफाफे मिल गये हैं, अब जया-जेता को पत्र लिख सकती हूँ। प्यारे बच्चों का समाचार बहुत दिनों से नहीं मिला है।"

**रविवार, 23 सितम्बर :** "आज उनकी हालत खास अच्छी नहीं रही, तो भी वे शांत रहे। कलवाली सिस्टर आ गई। वह रोगी की सेवा करना अच्छी तरह से जानती है, खिलाती-पिलाती भी ठीक से है। उनको रोने नहीं देना चाहती। बेचारी खिड़की ठीक कर रही थी। ऊपर से रोशनदान का कपाट दरवाजे से टकराया और शीशे टूटकर टुकड़े उसके ऊपर गिरने लगे, बाँह में दो-तीन जगह कट गये। बेचारी को कितना दुखा होगा। मुझे शीशे का टूटना अपशकुन-सा लगा, इससे दिन-भर मेरा मन घबड़ाता रहा। बच्चों का समाचार न मिलने से भी मन उदास हो गया है।"

**सोमवार, 24 सितम्बर :** "सबेरे बाहर देखा, पानी बरस रहा था। शाम के 3 बजे तक काफी सर्दी रही, उसके बाद धूप निकल आई, तो भी बाहर सर्दी मालूम हो रही थी।

"आज रात को पंडितजी अच्छी नींद सोये थे, इसलिए सबेरे प्रसन्न-मुख रहे। रोये कम, बोले भी कम, हँसने की चेष्टा कर रहे थे। फिर शाम होते-होते ही उनको हल्का ज्वर आ गया। इसके बाद वे कुछ अधिक ही रोने लगे। उनकी बोली स्पष्ट नहीं है, समझने में कठिनाई होती है। शरीर में कहीं दर्द होता होगा, वे बतला नहीं सकते, पर 'हँ हँ' करते रहते हैं। सो जाते तो उनको थोड़ा आराम मिलता। कमजोर हो गये हैं, खाना भी ठीक से नहीं खाते। एक तरह से हरदम जबर्दस्ती खिलाना पड़ता है, खाते समय रोने-चिल्लाने लगते हैं। कमजोरी के कारण वे बैठ भी तो नहीं सकते। हाथ-पाँव सूखे-से लगते हैं।

"आज बेटी जयारानी और अपनी छोटी बहन गंगा को पत्र लिखकर भेज दिया।"

**मंगलवार, 25 सितम्बर :** "आज फिर उनकी नींद गायब रही। रात-भर जगे रहने से तबीयत खराब होती है। अब उनका रोना बहुत बढ़ गया है। बात समझ में नहीं आती, साफ नहीं बोलते। आज तो उनकी तबीयत ज्यादा खराब मालूम होती है, उनका दिमाग भी काम नहीं करता। एक भी होश की बात नहीं करते, अकबक बोलते रहते हैं। कब अच्छे होंगे और कब घर जाने को मिलेगा ? मन उकता गया है। अब तो उनके स्वस्थ होने की आशा नहीं रही।"

**बुधवार, 26 सितम्बर :** "मौसम साफ नहीं रहा। बाहर जरूर सर्दी होगी, पर कमरे के अन्दर पता नहीं चलता।

"राहुलजी रात को ठीक से ही सोये और सबेरे 7 बजे जगे। 6 घंटे तो वे सोये ही होंगे, इसलिए आज वे कुछ शांत रहे, तो भी बीच-बीच में पागलपन तो दिखाते ही हैं—चिल्लाते हैं। वाणी स्पष्ट न होने से उनकी बात समझने में कठिनाई होती है। कभी-कभी 'बाँ बाँ' 'आउआ', 'आउआ' करते रहे। एकदम छोटे शिशु जैसे हो गये हैं। डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना ने आकर उनकी जाँच की। बतलाया—ई. सी. जी. एक सप्ताह बाद होगा। कल उनको कुर्सी पर बिठायेंगे। कमजोर काफी हो गये हैं। आज खाना खाते समय उतना हल्ला नहीं मचाया, चुपचाप खा लिया उन्होंने। भोजन में सूप और उबले मांस-आलू और सब्जियाँ मिलती हैं। मीठे का परहेज रखा है। पर नमक दे देते हैं। वे आज बच्चों के बारे में बराबर पूछते रहे।

"कामरेड मिर्ज़ा आये थे। मेरे लिए रूसी-अंग्रेजी और अंग्रेजी-रूसी डिक्शनरी भी ले आये। एक किताब अंग्रेजी की Russian Language Lessons ले आये हैं। उनको फोन से समाचार नहीं मिला, इसलिए स्वयं आये थे।

"मैं आज टहलने नहीं गई। दूसरी नर्स आई है जो पंडितजी को नहीं सँभाल सकती।"

**शुक्रवार, 27 सितम्बर :** "आज जाड़े का दिन, धूप नहीं निकली। हवा तेज चल रही है, सर्दी मालूम होती है। मुझे एक घंटा बाहर टहलना था, डॉक्टर की हिदायत है। पर ठण्ड के कारण जल्दी लौट आई।

"रात को नींद की गोली देने पर राहुलजी अच्छी तरह सोये और सबेरे 8 बजे जगे। उन्हें स्वाभाविक नींद आती तो अच्छा रहता। आज मास्को शहर से डॉ. शान्ति राय पंडितजी को देखने आये। उन्होंने पंडितजी की प्रधान चिकित्सक डॉ. मारगरिता पावलोव्ना से बात की। सारांश में यह मालूम हुआ कि राहुलजी का हार्ट भी खराब है, इसलिए मालिश और कसरत नहीं करवा सकते। दिल्ली में उनको दूसरा स्ट्रोक हुआ है, इसलिए उनकी हालत ऐसी हो गई है। दूसरी बात दिमागी बीमारी का कोई और बड़ा कारण हो सकता है जिससे उनमें एबनार्मलिटी आ गई है। साधारण हालत अच्छी है, इसलिए उनके अच्छे हो जाने की उम्मीद है। अभी तो उनको आब्जर्वेशन में रखा है। अच्छी तरह से परीक्षण करने के बाद डॉक्टरों की कमीशन बैठेगी, तब बाकायदा उनका इलाज होगा। जब तक रोग का कारण अच्छी तरह से जान न लें, तब तक एकदम से इलाज नहीं हो सकता। पहले उनको खड़ा करने की कोशिश करेंगे, तब अच्छा रहेगा।"

"मानसिक अस्वस्थता के कारण अस्पताल में जब राहुलजी के जीवन तथा बीमारी का इतिहास पूछा गया, तब तक कलकत्ता-अस्पताल के डॉ. जे. सी. गुप्त के दिये केस-हिस्ट्री को यहाँ के डॉक्टर अध्ययन कर चुके थे। अब पंडितजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं के बारे में मुझसे पूछा। 'जीवन-यात्रा' के प्रथम भाग में उल्लेख आता है कि किशोर तथा यौवन अवस्था में राहुलजी कई बार घर छोड़कर भागे थे। उनके पिताजी उनकी खोज में भटकते रहे। अंतिम बार जब वे अपने पुत्र को घर नहीं लौटा सके, तो पुत्र-वियोग में चार साल तक वे विक्षिप्त-जैसी स्थिति में रहे और उसी से उनकी मृत्यु हुई थी।

"दूसरा कारण—किसान आन्दोलन के सक्रिय नेता थे राहुलजी। 1939 में जब बिहार के अमवारी स्थान में सत्याग्रह करने गये, जमींदार के लठैत ने उनके सिर पर लाठी दे मारी, उनका सर फूट गया था, उनके सिर से खून गिरा था।

"रूसी डॉक्टरों ने बतलाया कि एक पैतृक कारण से और दूसरे चोट के कारण से राहुलजी को यह उन्माद-जैसा रोग हुआ है। इसीलिए वे एबनार्मल हो गये हैं।"

"आज प्रायः गुमसुम रहे वे, बोलते ही नहीं। शाम के वक्त घर चलने के लिए रोये। कार्डियामिन इन्जेक्शन से उनको बहुत दर्द हुआ, बेचारे रोये। रात को मैंने उनके प्रिय श्लोक पढ़कर सुनाये।[1] (श्लोक के शुरू के शब्द बोल देने पर वे सारे श्लोक को दुहरा देते थे।) 'जीवन-यात्रा' प्रथम भाग से उनको स्वरचित कविताएँ भी पढ़कर सुनायीं। करुण हो रो उठते हैं बेचारे। इतने महान लेखक, विचारक, विद्वान और परिव्राजक आज किस अवस्था में पड़े हैं, यह देखकर मेरा मन रो उठता है। बच्चों की याद और पागल बना देती है। विधाता, मुझ पर ही इतनी विपत्ति क्यों ?"

**शनिवार, 29 सितम्बर :** "जाड़ा बढ़ता जा रहा है, अब दिसम्बर का महीना जैसा लगता है। धूप बहुत ही हल्की रहती है। सबेरे एक घंटे तक अस्पताल के अहाते में टहलती रही, यह डॉक्टर का कड़ा आदेश है।

---

1. राहुलजी के प्रिय श्लोक :

श्लोक–1. का चिन्ता मम जीवने हरिर्विश्वम्भरौगीयते।

श्लोक–2. न यांचे गजालिं न वा वाजिराजि, न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदापि।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तहस्ता लवंगी कुरंगीदृगंगीकरो तु।।

श्लोक–3. बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति की पंक्ति–
वेद प्रामाण्यं कंस्यचित् कर्तृवादः
स्नानेधर्मेच्छा जातिवादावलेपः
संतापारम्भ, पापहानाय चेति
ध्वस्त प्रज्ञानां पंचलिंगानी जाड्ये।।

जोर की हवा चल रही थी, बहुत ठण्ड लगी और ठण्ड के मारे पेट में दर्द होने लगा। डॉक्टर ने मुझको कहा–कुछ ज्यादा खाना चाहिए। पर कितना खायें, खा-खाकर मोटे होने की इच्छा नहीं, चर्बी बढ़ाने से क्या लाभ ? अस्पताल की लाइब्रेरी से कुछ पुस्तकें ले आई। समय काटने और राहुलजी का मनोरंजन करने के लिए एक रेडियोसेट कमरे के अन्दर रख दिया है, पर यह रेडियो सबेरे और दोपहर का भारतीय प्रसारण नहीं पकड़ता। केवल शाम को रेडियो सीलोन का प्रोग्राम सुन सकते हैं, वह भी बीच में घर्र-घर्र करने लगता है।

"आज पंडितजी कुछ अच्छे मालूम हो रहे थे। सबेरे अपने आप बैठकर दातून किया। दिन में बीच-बीच में उठते रहे। शाम को उन्हें ड्रेसिंग गाउन पहनाकर कुर्सी पर बिठाया, हल्की कसरत बैठे-बैठे की, पाँवों की, हाथ की हल्की मालिश हुई। पर वे खड़े नहीं हो सकते, पैरों में मांस फूलता है। रोना भी साथ-साथ चल रहा है। बेचारे अपने बच्चों की याद भी करते हैं। वे पूछते हैं–'हम कहाँ हैं ? घर क्यों नहीं ले चलती।' यहाँ उदासी महसूस करते हैं वे।

"दोनों बच्चों को पत्र लिखकर भेज दिये। इगोर का अभी तक कोई जवाब नहीं आया। आज उनको यहाँ आने का अनुरोध करते हुए फिर पत्र लिखा।"

**रविवार, 30 सितम्बर :** "सुबह एक राउण्ड टहलकर आई। डॉक्टर की आज्ञा का पालन करना पड़ता है, वर्ना इस ठण्ड में कौन बाहर जाता। यहाँ पर मरीज के साथ-साथ अन्य लोगों को भी सबेरे कसरत करना अनिवार्य है।

"पंडितजी को अब नींद की गोली देनी पड़ती है। सबेरे उनको कुर्सी पर बिठाकर उनके हाथ-मुँह धोया गया, फिर बिस्तर पर लिटा दिया। दोपहर के खाने के समय फिर उनको कुर्सी पर बिठाया। उनके पाँव लड़खड़ाते हैं, कमजोर हो गये हैं, खड़े नहीं हो सकते। आज फिर उनकी जबान साफ नहीं है। कमला की जगह पमला कह रहे थे। नर्स ने जोर दिया तब थोड़ा साफ बोले। डॉक्टर का नाम बोलना सिखाया। मारगरिता, लिदा (नर्स) तो बोल रहे थे। खाना उनको जबर्दस्ती खिलाना पड़ता है। रोते-चिल्लाते हैं खाते समय, इसलिए खाँसी आती है उनको। डॉक्टर मारगरिता आईं उनको देखने, कल और क्या करवायेंगी, पता नहीं।

"आज शाम को श्री भीष्म साहनीजी आये। वह यहाँ मास्को पब्लिकेशन में काम करते हैं। मेरे लिए हिन्दी में छपी एक सोवियत पुस्तक और कुछ पत्रिकाएँ भी ले आये थे। वे देर तक बैठे रहे। कह रहे थे–राहुलजी के चेहरे पर रौनक है और पहले से कुछ अच्छे दिखाई दे रहे हैं। उन्होंने कई बार फोन किया था, पर मुझे तो खबर नहीं मिली।

"अब अपना खाली समय मैं पढ़ने में लगा रही हूँ। जरा देर भी खाली बैठने से ध्यान बच्चों की तरफ चला जाता है, फिर हृदय में पीड़ा होने लगती है। मेरे प्यारे बच्चो, कितनी निष्ठुर है तुम्हारी माँ, अकेले छोड़ दिया तुम्हें। तुम दोनों को देखने के लिए माता-पिता तरसते हैं।"

## अक्तूबर 1962

**सोमवार, 1 अक्तूबर :** "आधे दिन तक वर्षा होती रही, दोपहर में मौसम साफ हो गया। अस्पताल के अहाते में एक घंटा टहलती रही।

"पंडितजी को आज खड़ा किया गया, उनके पैर काँपते हैं। सबेरे डॉक्टर मारगरिता ने आकर उनको देखा। कहा–रक्तचाप आज ज्यादा है। इंजेक्शन दिया गया। आज फिर उनकी वाणी लड़खड़ा रही है। रोना-धोना भी चालू हो गया। यह सब रक्तचाप से सम्बन्धित है शायद। रोज आशा होती है कि कुछ अच्छे हो जायेंगे, पर हालत खराब ही दीखती है। दार्जिलिंग में जितना बोलते थे. जितने होश में थे, वह यहाँ नदारद। उन्माद की मात्रा अधिक बढ़ गई है। ठीक होने की उम्मीद कम दीखती है। यहाँ आये आज 32 दिन हो गये, तो भी उनके कुछ अच्छे होने का संकेत नहीं मिला है। कितने दिन और रहना होगा, मालूम नहीं। उनको बोलने की प्रैक्टिस कराने के लिए एक सिस्टर आईं। हिन्दी के शब्द तो बोले भी, मैंने बोलना सिखाया। पर वे जीभ की कसरत कैसे करेंगे। उनका दिमाग तो काम ही नहीं करता। जल्दी प्रोग्रेस होता तो हमें कितनी खुशी होती।

"एक महीने से भी ज्यादा हो गया, बच्चों की कोई खबर नहीं मिली, मन बहुत उदास हो जाता है।"

**मंगलवार, 2 अक्तूबर :** "आज राहुलजी की स्थिति में कुछ गड़बड़ी दिखाई दे रही है। रक्तचाप भी ज्यादा हो गया है। शायद हार्ट में भी खराबी है। बोलना तो वही अनाप-शनाप है। सिस्टर ने उनकी जीभ की कसरत कराने के लिए उनको जीभ हिलाने, बाहर निकालने और ऊपर-नीचे करने को कहा, पर उनको बात समझ में नहीं आती। मैं सोचती हूँ–'सब से पहले इनके मस्तिष्क का इलाज करते तो अच्छा होता। कुछ बात समझने लगते तो फिर अपनी तकलीफ के बारे में खुद ही बतलाते।' यहाँ आये आज 33 दिन हो गये हैं, पर सुधार के लक्षण नहीं दिखाई देते। अपने घर में रहते वे बोलने लगे थे, चलते-फिरते थे, रोना कम था। पर यहाँ तो वे पागलपन दिखाते हैं। मैं जरा टहलने गई तो नर्स कमरे में नहीं थी। वे उठकर चिल्ला रहे थे, मौके पर ही मैं आ गई, वर्ना गिर जाते। बड़ी निराशा होती है, बेकार यहाँ विदेश में फँस गये। अच्छा होना ही नहीं है, तो जीवन के शेष दिन अपने घर ही पर बिताने चाहिए। मन में भयंकर तूफान चल रहा है, बिल्कुल मन नहीं लगता यहाँ।

"आज अमरीकी उपन्यासकार थियोडोर ड्रेज़र का उपन्यास 'सिस्टर कैरी' को पढ़ डाला।"

**बुधवार, 3 अक्तूबर :** "आज सचमुच ही शारदीय दिवस प्रतीत होता है। सबेरे से ही आकाश निर्मल, खूब धूप रही। दिन में तो काफी गरमी मालूम हो रही थी। रात को आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। आज सुबह नई जगह घूमने गई, बहुत दूर तक तो नहीं पर 45 मिनट तक लगातार चलती रही। अस्पताल के फाटक से बाहर जाना वर्जित है। 15 मिनट धूप में बैठी। चलते समय जया-जेता की याद आने के कारण रोती हुई चल रही थी, हृदय में पीड़ा होती थी। इस समय जब इन पंक्तियों को लिख रही हूँ, मेरी आँखें बरस रही हैं। मेरे फूल-से बच्चे पता नहीं क्या कर रहे होंगे, कैसे होंगे, किस हाल में होंगे, कैसे रहते होंगे। डेढ़ महीने से भी ज्यादा हो गया, उन लोगों का समाचार नहीं मिला। जब बच्चों की याद करके उनके पिता रोते हैं तो फिर मेरे दिल पर क्या बीतती होगी, यह एक भुक्तभोगिनी माँ ही समझ सकती है।

"आज पंडितजी कुछ कम रोये, पर उनकी वाणी स्पष्ट नहीं है। जीभ लटपटाती है, बात समझने में दिक्कत होती है। यहाँ के चिकित्सक सबसे पहले उनके मस्तिष्क की चिकित्सा करते तो अच्छा होता, तब वे अपना दुःख-कष्ट स्वयं बतला सकते थे। डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना आईं। आज हमारे इंटरप्रेटर मिस्टर ब्लादीमिरोव भी आये। बतला रहे थे–डाक्टर लोग आशा करते हैं कि राहुलजी अच्छे हो जायेंगे, पर बहुत समय लगेगा क्योंकि उनकी बीमारी जटिल हो गई है, तो भी वे लोग प्रयत्न कर रहे हैं।

"यहाँ कितने दिन रहना पड़ेगा, पता नहीं। सोचा था कि दो महीने में कुछ फर्क मालूम पड़े, पर यहाँ तो हालत उलटी दिखाई दे रही है। दूसरा स्ट्रोक जरूर हुआ, जैसा लगता है। शाम को पंडितजी की जीवनी का कुछ अंश पढ़कर सुनाया, वे रस ले रहे थे। बिठाने में वे जल्दी ही थक जाते हैं। इस समय (रात 8-40 पर) वे सो गये हैं। रात को जगते हैं।"

**गुरुवार, 4 अक्तूबर :** "मन में गहरी उदासी छायी हुई है, चित्त व्याकुल है। बच्चों की बहुत-बहुत याद आती है, एक क्षण को भी भूल नहीं पाती। क्या करते होंगे, कोई समाचार नहीं मिलता। यह भी नहीं मालूम उन्हें मेरी चिट्ठियाँ मिलीं या नहीं। कोई खबर देनेवाला नहीं। परेशानी ही परेशानी है। यहाँ से मन बिल्कुल उचट गया है। रात को ठीक से नींद नहीं आती। बच्चों को छोड़े आज 82 दिन हो गये। कैसे हैं, स्वास्थ्य कैसा है, रुपये-पैसे का क्या हाल है, कुछ भी पता नहीं। यह कैसी बेबसी है ?

"आज राहुलजी का चेहरा कुछ म्लान रहा। कम रोये, पर खड़े नहीं हो सकते। दुबारा स्ट्रोक न हुआ होता तो अब तक कुछ ठीक हो गये होते। अब फिर शुरू से इलाज हो रहा है। उनका हार्ट ठीक नहीं है, यह भी खतरनाक है। बुद्धि में जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ है। बात तो समझ लेते हैं, पर बोलने में उनकी वाणी लड़खड़ाती है। यूँ बोलते भी नहीं। सिखाने पर शब्द दोहरा देते हैं। शाम को मदाम तात्याना पेत्रोव्ना आईं। राहुलजी को बोलने का अभ्यास कराया, पर वे अपनी ओर से कुछ भी नहीं बोलते। खड़े नहीं हो सकते, पैर लुंज न हो जायें कहीं, यही डर लगता है। रक्तचाप कम नहीं हुआ है। न जाने कब वे घर

जाने लायक हो पायेंगे। बड़ी मुसीबत हो गई मेरे लिए। उधर बच्चों की पढ़ाई का भी ख्याल। अगले महीने उन लोगों की वार्षिक परीक्षाएँ होंगी। क्या करूँ ? बड़ी उलझन है। पंडितजी यदि थोड़े भी स्वस्थ हो जाते तो मैं घर लौट जाती। कुछ रास्ता सूझता नहीं, कोई पूछनेवाला भी नहीं। पंडितजी के भारत के चंद मित्रों को मेरे खिलाफ लेख छपवाने की फुरसत नहीं। इस समय मुझ पर आयी विपत्तियों की कल्पना करते तो उनका क्या बिगड़ता ?"

**शुक्रवार, 5 अक्तूबर :** "मौसम अच्छा रहा, टहलने गई, कसरत भी करनी पड़ी।

"पंडितजी की अवस्था पूर्ववत् है। बोलते नहीं, वाणी अस्पष्ट है। उनके दोनों पाँव सूखते नजर आ रहे हैं, खड़े नहीं हो सकते। पाँव हिलाते जरूर हैं। पाँवों की मालिश और कसरत बराबर चल रही है। ब्लड प्रेशर आज 190/80 है, जो कुछ अधिक ही है। इंजेक्शन लग रहे हैं। नींद की गोली अब भी दी जाती है। इस समय (रात साढ़े 9 बजे) वे सो भी गये। दिन में भी उनको थोड़ी-थोड़ी नींद आती है। अच्छा है, उनके मस्तिष्क को आराम मिलेगा। अकल की बात एक भी नहीं करते। श्री जायसवालजी की भी मृत्यु के समय स्मरणशक्ति लुप्त हो गई थी, राहुलजी की जीवन-यात्रा पढ़ने से मालूम हुआ। हमारे पंडितजी का जीवन भी बहुत कर्मठ रहा, साहसिक यात्राएँ कीं, कैसे-कैसे अनूठे काम किये। अब बेचारे इस हालत में साल-भर से बिस्तर पर पड़े हुए हैं। आयु के सामने मनुष्य का कोई वश नहीं चलता।

"आज 19 सितम्बर की लिखी साहाजी की चिट्ठी कलकत्ते से आई। बड़ा सन्तोष हुआ। जया-जेता के बारे में भी लिखा है–जया और मेरे छोटे भाई हरि ने उनको पत्र लिखा है। इतना समाचार भी मेरे लिए बहुत महत्व रखता है। 16 दिन पर साहाजी का पत्र यहाँ पहुँचा। कल साहाजी, कप्तान लाल तथा श्री बनवारीलाल शर्मा जी को पंडितजी की स्थिति के बारे में पत्र लिखना है। आज मेरा मन थोड़ा हल्का हुआ, पर चिन्ता तो है ही।"

**शनिवार, 6 अक्तूबर :** "डॉ. महादेव साहा तथा श्री मुंशी को पत्र लिखकर सबेरे ही भेज दिया। दार्जिलिंग में मिसेज लाल के लिए पत्र लिखकर पोस्ट करने को रखा था कि आज ही शाम को कप्तान लाल (हमारे पड़ोसी) का 27 सितम्बर का पत्र मिल गया। उन्होंने लिखा है–

Jaya and Jeta are keeping very well and attending their school regularly. I, very often, have a chat with Jeta, in the morning when he goes to meet his bus and sometimes with Jaya. You need not have any worry or anxiety about them as they are being well looked after by your sister. Hari comes to stay when he passes through…'

"पत्र पढ़कर बहुत खुशी हुई, मन को संतोष मिला। अब पत्र आने लगे हैं। जया-जेता के हाथ के लिखे पत्र भी मिल जायें तो मुझे बड़ा सन्तोष होगा।

"राहुलजी अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अच्छे लग रहे थे। कुछ बोल भी रहे हैं, वाणी स्पष्ट नहीं है तो भी कल से आज कुछ साफ बोले। आज डॉ. मारगरिता पावलोव्ना से मेरी भेंट नहीं हुई। डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना आज नहीं आईं। पंडितजी खाना खाते ही नहीं। अच्छी तरह से खाते तो जल्दी चलने-फिरने लायक हो जाते। आज उनका चेहरा उजाला मालूम होता था। उनकी 'जीवन-यात्रा' (2) से लोला के बारे में पढ़कर सुनाया, पर वे मिलने के लिए आतुर नहीं दीखते। हाँ, जया-जेता के लिए जरूर रोते हैं। कप्तान लाल का पत्र पढ़कर सुनाया तो कहने लगे, 'चलो, कब चलना है ?' उनको मालूम है कि यह अपना घर नहीं है। आज मुझे भी बड़ा प्यार कर रहे थे। इसी तरह धीरे-धीरे उनकी चेतना लौटती तो मुझे कितनी खुशी होती। दो महीने में कुछ अच्छे हो जायेंगे, यही उम्मीद रखती हूँ।"

**रविवार, 7 अक्तूबर :** "दिन अच्छा रहा। अब सर्दी बढ़ती जा रही है। टहलने गई पर बहुत ठण्ड लगी। अपनी तबीयत भी कुछ सुस्त मालूम होती है। आँखें ज्यादा खराब हो जाने से दूर देखने में सिरदर्द होता है। पढ़ते समय सिर दुखने लगता है। यहाँ अपने कपड़े पहिनने नहीं देते, अस्पताल के कपड़ों में कभी-कभी बड़ी तकलीफ हो जाती है।

"पंडितजी उसी तरह से हैं। आज बहुत ही कम बोले। जीभ लड़खड़ाती है। नींद की गोली अब भी दी जाती है। दिन में भी थोड़ा सो लेते हैं। रक्तचाप अभी नार्मल नहीं हुआ है। इंजेक्शन बराबर लग रहे हैं। उनके हार्ट की अवस्था भी उतनी अच्छी नहीं है, इसलिए मेरे मन में डर बना रहता है। कुछ देर के लिए उन्हें कुर्सी पर बिठा देते हैं। खाने के बारे में अरुचि प्रकट करते हैं, खाना देखते ही रोने-चिल्लाने लगते हैं। स्वाद भी तो अच्छा न लगता होगा। फल खाते वक्त भी ऐसा ही करते हैं। और दिनों की अपेक्षा कल से उनकी बोली कुछ स्पष्ट हो रही है। आज मैंने उनकी पुस्तकों के नाम दोहराये। नाम के पहले अक्षर को मैं बोलती गई, शेषांश वे स्वयं बोलते गये। इस तरह धीरे-धीरे उनकी स्मृति ठीक हो जाती, तो कितना अच्छा होता। रोना-धोना तो खैर चलता रहता है। मैं उनकी जीवन-यात्रा के दूसरे भाग को पढ़कर सुना रही हूँ।"

**सोमवार, 8 अक्तूबर :** "आज वे दो-चार कदम चले। ह्वील चेयर पर बिठाकर 10 मिनट कोरीडोर में घुमाया, डॉक्टर ने आदेश दिया है। आज वैसे ज्यादा बोले नहीं, पर पंडितजी आज अच्छे मालूम हो रहे थे। खाते समय हल्ला मचाते रहे। दो बार करके जबर्दस्ती सेब खिलाये, कुछ तो ताकत आ जाये। मस्तिष्क तो धीरे-धीरे ही ठीक होगा। डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना आईं, राहुलजी को बोलना सिखाया। वे लिख नहीं पाते, जीभ बाहर निकालते ही नहीं। एक बार होश में आकर ठीक से उच्चारण कर देते तो कितनी खुशी होती। जीवन के शेष दिन पूरी संज्ञा के साथ बिता सकते तो कितना संतोष होता। उनकी लोलादेवी और पुत्र इगोर अभी तक उनको देखने नहीं आये। भारतीय दूतावास से उन लोगों को राहुलजी का समाचार जरूर मिला होगा। मैंने भी इगोर को दो पत्र लिखे, पर अभी तक जवाब नहीं आया।"

**मंगलवार, 9 अक्तूबर :** "पंडितजी सबेरे तक गहरी नींद सो रहे थे। रात को 'सेडेटिव' दी जाती है। वैसे भी आजकल दिन में थोड़ा सो लेते हैं, यह शुभ लक्षण है। इधर रोना कुछ कम हुआ है। आज डॉक्टर मारगरिता नहीं आईं। डॉक्टर तात्याना से मेरी भेंट नहीं हुई। पर सिस्टर मारिया बता रही थीं—आज पंडितजी ने जीभ बाहर निकाली थी और कुछ उच्चारण भी किये, पर लिख नहीं सके। वह शायद धीरे-धीरे ही होगा। चलने-फिरने लग जायेंगे तो शायद वह भी ठीक हो जायेगा। अपने से बातचीत नहीं करते। मेरे बोलने पर रोने लगते हैं। अपनी किताबों के नाम का पिछला अंश, कुछ दूर तक अस्पष्ट ही सही, बतला देते हैं। आज उन्होंने सौ तक की गिनती की, मैं भी साथ बोलती गई। वर्णमाला का उच्चारण करना सिखाया। लोला के बारे में कहने पर रोते हैं, कहते हैं—'तू मेरी है। मेरे दो बच्चे हैं।' लेनिनग्राद चलने की बात कहने पर इन्कार करते हैं। काश कि एक बार वे स्वस्थ मस्तिष्क से बात कर सकते, काश कि एक बार उनकी स्मृति लौट आती। कितनी ही बातें उनसे पूछनी हैं, पर जवाब देने लायक अभी वे नहीं हैं। लिखना-पढ़ना भले ही न कर सकें, सिर्फ स्मरणशक्ति फिर लौट आती तो कितनी खुशी होती। जब तक जीना है स्वस्थ मस्तिष्क रहना चाहिए। मुझे वे 'रानी' सम्बोधन करते थे। आज मैं उनकी 'मैया' हो गई हूँ। रानी कहना सिखाती हूँ तो कभी बोल भी देते हैं, कभी बोल न सकने पर रोने लगते हैं, चुम्बन लेने लगते हैं। उनको भी अपनी असमर्थता की अनुभूति होती होगी, पर व्यक्त नहीं कर सकते, इसलिए आँसू बहाने लगते हैं।"

**बुधवार, 10 अक्तूबर :** "पंडितजी की अवस्था पूर्ववत् है। बहुत कम बोलते हैं, वह भी अस्पष्ट वाणी में। सिखाने पर थोड़ा बोल लेते हैं। गिनती सौ तक की, बीच में गड़बड़ा जाते हैं। बैठने की इच्छा प्रकट की इसलिए थोड़ी देर कुर्सी पर बिठाया, परन्तु जल्दी थक गये। रोते रहते हैं। लोलादेवी की याद दिलाने पर भी वे उत्सुक नहीं हुए। वे लोग मिलने भी तो नहीं आये। डॉ. मारगरिता कहती हैं—अभी तो राहुलजी का ई. सी. जी. भी नहीं किया। पाँव सूख गये हैं, खड़े नहीं हो सकते। लकवे का भय होता है।"

**गुरुवार, 11 अक्तूबर :** "सुबह टहलने गई थी, लौटकर आई तो देखा राहुलजी को ई. सी. जी. के लिए ले गये थे। कैसे किया, क्या रिपोर्ट मिलेगी, मालूम नहीं। मस्तिष्क की कमजोरी यहाँ आकर और बढ़ गई है। आज ही उनकी आँखों की जाँच करने ले गये। डॉक्टर के कहे अनुसार वे ठीक से देखते ही नहीं, इसलिए उनकी आँखों में खराबी का पता लगाना कठिन ही है।

"भारत से कामरेड दामोदरन आये हैं। उनके साथ राहुलजी को देखने डॉ. शान्ति राय तथा कामरेड चन्द्रन

आये। डॉक्टर मारगरिता से उन लोगों की बात हुई। बतला रहे थे–'डॉक्टर होपफुल हैं कि वे अच्छे हो जायेंगे, पर समय बहुत लगेगा।' यह बात तो भारत के डॉक्टरों ने भी कही थी। आज पंडितजी बैठकर मेरे साथ कुछ बातचीत कर रहे थे। पूछ रहे थे–'यह कौन-सी जगह है ? हमारा घर नहीं है ? बच्चे कहाँ गये ? कब आयेंगे ?' मैंने उतर दिया–'पंडितजी, आपके बच्चे पढ़ने गये हैं, आप मास्को में हैं, हमारा घर दार्जिलिंग में है।' फिर कहने लगे–'मेरी तो तू है, तू अच्छी है।' इतना कहते वह मेरा चुम्बन ले रहे थे। लोला और इगोर की बात करने पर उन्होंने कहा–'वह लोग तो पहिले के हैं, अब तू मेरी है, मेरे दो बच्चे हैं।' कुछ साफ ही बोल रहे थे। सौ तक की गिनती की और वर्णमाला को भी दोहराया। कई दिनों बाद आज उन्होंने बैठकर बातें की, इसलिए मुझे बड़ी खुशी हुई। मेरी आशा बँध गई कि उनकी स्मृति पूरी तरह लुप्त नहीं हुई है, कभी-कभी उन्हें याद आ जाती है। हाँ, उनकी मर्जी के खिलाफ कोई बात नहीं होनी चाहिए, वे गुस्से हो जाते हैं।

"कामरेड दामोदरन के हाथ सच्चिदाजी ने पत्र भेजा था। वे लोग सभी लोला और इगोर के बारे में जानने को उत्सुक हैं। डॉ. भगवतशरण उपाध्यायजी लेनिनग्राद में उन लोगों से मिलकर गये थे। मैंने तो राहुलजी की हालत की सूचना देते हुए उन दोनों को मास्को आकर उन्हें देखने का आग्रह किया था, दो पत्र भी भेजे थे, पर अभी तक उनका जवाब नहीं मिला।"

**शुक्रवार, 12 अक्तूबर :** "आज सबेरे खूब वर्षा हुई, हवा भी जोर-जोर से चल रही थी। टहलने नहीं गई, क्योंकि बाहर बहुत ठण्ड थी।

"और दिनों की अपेक्षा आज राहुलजी कुछ अच्छी हालत में रहे। संज्ञा की बातें कर रहे थे। वैसे दिन-भर में बहुत रोये। दोनों बच्चों की खूब याद कर रहे थे। शाम को तो वे और विचलित हो गये। बच्चे भी यहीं होते तो वे कितने खुश रहते। 'बच्चे, मेरे दो बच्चे' रटते रहते हैं। आज मुझे भी उन्होंने ज्यादातर अपने पास ही बिठाये रखा। बार-बार प्यार करते रहे, बार-बार आलिंगन करते रहे। काश कि वे पूरी तरह होश में आ जाते। फिर तो अपना दुख-दर्द स्वयं ही बतला सकते। कल से कुछ आशा हो रही है, अच्छे होने की सम्भावना दीख रही है। अब डेढ़ महीने में स्वस्थ हो जाते तो कितना अच्छा होता। फिर हम घर जा सकते थे।

"उनको कार्डियामिन डिबाज़ोल (Cardiamin Dibazol) के इन्जेक्शन दो-दो बार लगते हैं। इन्सुलिन के तीन बार। खाना जबर्दस्ती खिलाना पड़ता है। शायद स्वाद न लगने के कारण खाना नहीं चाहते। पेशाब-शौच नार्मल है। आज भी उन्होंने सौ तक की गिनती की। संस्कृत के श्लोक मेरे साथ दोहराये। 'भूल गया' भी कह रहे थे। लिख नहीं सकते, इसका अफसोस कर रहे थे। डॉ. मारगरिता और डॉ. तात्याना दोनों उनको देखने आईं।

"बच्चों के पत्र मिले नहीं हैं, मन उदास हो जाता है।"

**शनिवार, 13 अक्तूबर :** "आज भी पंडितजी कुछ अच्छे मालूम हो रहे थे। कई बार स्वयं उठकर चारपाई पर बैठे। सबेरे कुर्सी पर काफी देर तक बैठे रहे। नेवी ब्लू रंग के नाइट सूट में वे बहुत सुन्दर लग रहे थे। अपनी ओर से अभी साफ नहीं बोलते, तो भी पूछने पर कुछ जवाब दे देते थे। पाजामा उतारना नहीं चाहते थे। एक बार अपने आप ही चारपाई पर बैठ गये, फुर्तीले मालूम हो रहे थे। मुझे बार-बार खोज भी रहे थे। आज खाना खाने में उतना हल्ला नहीं मचाया। शाम को 'जीवन-यात्रा' (2) से कुछ पढ़कर सुनाया, बड़े प्रेम से सुन रहे थे। आज उनका ब्लडप्रेशर ठीक है, इसलिए डिबाज़ोल का इन्जेक्शन नहीं दिया गया। अभी पाँव कमजोर हैं। खड़े होकर चलने लायक हो जायें तो डॉक्टर से उन्हें टहलने की इजाजत मिलेगी। दिन में वे थोड़ा सो लेते हैं, पर रात को अभी भी सेडेटिव लेकर ही सोते हैं। खैर, किसी तरह पूरी नींद सो लें तो उनके स्वास्थ्य में सुधार होगा। लगता है कि डॉक्टर को अभी पंडितजी की स्मरणशक्ति के बारे में मालूम नहीं है।"

**रविवार, 14 अक्तूबर :** "राहुलजी की हालत आज और बेहतर मालूम हो रही है। सबेरे से कई बार अपने ही उठकर बैठ गये। बातें भी करते रहे। पूछते थे–'हमारा मकान है ? बच्चे कहाँ हैं ? किसके पास हैं ? क्या-क्या पढ़ते हैं ? कितने बड़े हैं ?' आदि आदि। बार-बार घर चलने को भी कह रहे थे। यहाँ आने का

अभी तक उनको ज्ञान नहीं है। इसी को घर समझते हैं, सोचते हैं—बच्चे आसपास में है। बेचारे ! एक बार कह रहे-थे—'तुम मुझे अपने पास रहने दोगी ? अब तो मैं कोई काम नहीं कर सकता।' सुनकर बड़ी करुणा उमड़ आई। बहुत रो रहे थे। उनकी जीवनी के कुछ अंश को पढ़कर सुनाया, खूब रस ले रहे थे। बीच-बीच में प्रेम-प्रकरण आने पर हँस भी रहे थे। लोला का प्रसंग सुना देने पर कह रहे थे—'पहिले हुआ था, अब नहीं।' अपने को अशक्त भी बता रहे थे। लोला के पास जाने के इच्छुक नहीं हैं। अपनी ओर से तो उन लोगों के बारे में पूछते भी नहीं। सबेरे खिड़की के पास ले जाकर उनको बाहर का दृश्य दिखाया। इसी तरह धीरे-धीरे स्मृति लौट आती तो कितना अच्छा होता।

"इधर कई दिनों से मैंने कहानी लिखनी शुरू की है। लिखने के बाद उनको पढ़कर सुना भी देती हूँ। इससे उनका मनोरंजन हो जाता है। लिखने की मेज उनके चारपाई के पास रखी है। वे चारपाई पर लेटे हुए मुझको लिखते हुए देखते रहते हैं।"

**सोमवार, 15 अक्तूबर :** "वे आज भी अच्छे मूड में रहे। रोते बहुत हैं, यही बुरा है। उन्हें हरदम अपने 'दो बच्चों' की याद आती है। बार-बार पूछते रहते हैं—'बच्चे कहाँ हैं ? बच्चे नहीं आये ? बच्चे कहाँ गये ?' आज भी बार-बार घर चलने की बात करते थे। उनका दिमाग थोड़ा-थोड़ा सुधर रहा है, मुझे ऐसा महसूस हुआ। अब बच्चों के न दिखाई देने से उनको दुःख होता है। उन दो बच्चों से उन्हें कितना प्रेम है, यह मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ। डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना आकर उनको देख गईं। उनका रक्तचाप नार्मल है। पर वे लोग अभी यहीं नहीं समझते कि राहुलजी की स्मरणशक्ति लुप्त हो गई है। वे लोग तो समझते हैं—हाथ कमजोर है इसलिए नहीं लिख सकते, आँखें कमजोर हैं इसलिए पढ़ नहीं सकते, जीभ पैरालाइज़्ड है, इसलिए बोल नहीं सकते। स्मृति के बारे में कहते हैं—'खराशो' (अच्छा है)। मुझे असंतोष हुआ, इसलिए डिक्शनरी में देखकर कुछ शब्द लिखकर डॉक्टर को दे दिया। पंडितजी की स्मरणशक्ति के लिए ही तो हम लोग चिन्तित हैं। उसी ओर अगर इन लोगों ने ध्यान नहीं दिया तो यहाँ आने का क्या लाभ ? इससे तो घर ही में अच्छे थे। बोलना कुछ सांफ है, पर रोते हैं तो बहुत दुःख होता है। आज उनको कमरे के भीतर ही थोड़ा टहलाया, पर जल्दी थक गये।"

**मंगलवार, 16 अक्तूबर :** "12 बजे तक बर्फ गिरती रही, जमीन सफेद हो गई। कई सालों के बाद आज बर्फ देखने को मिली। पंडितजी की अवस्था पूर्ववत् रही। उनकी वाणी साफ नहीं है। सिखाने पर भी साफ नहीं बोल सकते। घर और बाहर का उन्हें ज्ञान नहीं है। बच्चों की बहुत याद करते हैं, रोते रहे। यही पूछते हैं—'मेरे बच्चे कहाँ चले गये ?' जया-जेता के फोटो को देखकर वे रो पड़ते हैं। अपना भी मन दुःखी हो जाता है। डॉक्टर मारगरिता ने आकर देखा और कहा—अभी उनका हार्ट ठीक है, उन्हें थोड़ा टहलना चाहिए, कसरत करनी चाहिए। हैदराबाद से आयी और इसी अस्पताल में इलाज करवा रही कामरेड सत्यवती (जो उस समय हमसे मिलने आई थी) ने डॉ. मारगरिता से पूछा—वे (राहुलजी) बच्चों की बहुत याद करते हैं, क्या उनको यहाँ नहीं बुला सकते ? पर डॉक्टर चुप रहीं। खैर, जब तक वे लोग बच्चों की उपस्थिति को जरूरी नहीं समझते, तब तक कुछ कहना मुश्किल है। यदि बच्चे यहाँ होते तो पंडितजी शायद कुछ तो ठीक हो जाते।

"थोड़ी देर बाद डॉक्टर तात्याना आईं। उन्होंने राहुलजी से कुछ तस्वीरों को दिखाकर नाम पूछे। पर वे एक का जवाब भी ठीक से नहीं दे पाये। उच्चारण तो बहुत ही गड़बड़ करते हैं। फोटो दिखाये—अपने और हमारे फोटे को पहिचानते थे, बच्चों के फोटो देखकर रोंने लगे। रात को नींद अच्छी आती है। हाँ, टैबलेट लेते हैं।

"बच्चों से अलग हुए आज 94 दिन हो गये।"

**बुधवार, 17 अक्तूबर :** "पंडितजी सबेरे 5 बजे से ही से जग गये, तब से सोये नहीं। रोना सबेरे से ही शुरू कर दिया। दिन-भर 'बच्चे-बच्चे' करते रहे। खाना खाते समय भी पूछ रहे थे, 'बच्चों ने खाना खा लिया ?' मुझे बड़ा दुख हुआ। काश, बच्चे भी पास में होते। पिता पर बच्चों का अच्छा असर पड़ता, अच्छे होने की उम्मीद थी। 'बच्चे कहाँ गये ? बच्चे कब आयेंगे ? बच्चे क्या पढ़ते हैं ?' यही सवाल दिन-भर पूछते

रहे। पूछते हैं, फिर भूल जाते हैं, फिर पूछने लगते हैं। उन्हें ख्याल ही नहीं कि वे अस्पताल में हैं। लिखना सिखाया जाता है, पर वे बिल्कुल ही नहीं लिख सकते। न पढ़ सकते हैं। बोली भी बहुत साफ नहीं है। कभी-कभी साफ भी बोल देते हैं। पर सिखलाने पर उलटा बोलते हैं। यह तो जीभ का ही दोष हो सकता है। डॉ. तात्यना पेत्रोव्ना आईं। कुछ शब्द सिखाये, पर कल तो वे भूल ही जायेंगे। डॉ. मारगरिता नहीं आईं। आज राहुलजी को थोड़ा चलाया गया। मालिश और कसरत भी चल रही है। अब खाते समय हल्ला नहीं करते। रोना बहुत करते हैं, यही दुःख लगता है। काश कि डॉक्टर लोग जया-जेता को यहाँ बुलाने का इन्तिजाम कर देते।"

**गुरुवार, 18 अक्तूबर :** "पंडितजी सबेरे तीन बार पेशाब करके फिर सो गये। आज उनको कुछ ज्यादा चलाया गया। पाँव कमजोर हो गये हैं। गिरने का डर रहता है, थक भी जाते हैं। बोली बहुत अस्पष्ट है। बात समझ में ही नहीं आती। सिखाने पर ठीक से नहीं बोल सकते। लिखना-पढ़ना तो वे बिल्कुल ही भूल गये हैं। 1-2-3-4 के अंक को एक बार तो लिख दिया, फिर नहीं लिख सके। गिनती सौ तक की करते हैं, वर्णमाला भी कह देते हैं, पर उच्चारण ठीक से नहीं करते। उनको देखने के लिए दोनों डॉक्टर आईं। रक्तचाप ज्यादा ही होगा, पर वे बताती नहीं हैं। आज पंडितजी बच्चों की खूब याद करते रहे हैं। 'दो बच्चे, मेरे दो बच्चे' करते हैं। बेचारे बच्चे भी अपने पिता के साथ ज्यादा दिन नहीं रह सके। अब तो आशा कम ही है कि वे ठीक होकर अपने बच्चों को सिखायेंगे-पढ़ायेंगे।"

**शुक्रवार, 19 अक्तूबर :** "उनकी स्थिति पूर्ववत् है। हिन्दी में कुछ साफ बोल लेते हैं। आज प्रायः दिन भर 'मेरी जीवन-यात्रा' (भाग-1) के अध्याय पढ़कर सुनाये। सुनना पसन्द करते हैं। प्रसंग के बीच में आये नामों के बारे में भी पूछते हैं। उनका जीवन-मंत्र 'सैर कर दुनिया की गाफिल…' उन्हें याद है। एक संस्कृत का पद 'न यांचे गजालिं…' अस्पष्ट ही सही, मेरे साथ कह देते हैं। जीभ बहुत लटपटाती है। आज डॉक्टर के सामने बहुत कहने पर उन्होंने जीभ बाहर निकाली। डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना उनको स्पष्ट उच्चारण करना और लिखना सिखाती हैं। उच्चारण तो कर लेंगे, पर लिखेंगे इसमें सन्देह है। वैसे पहले से बातें कुछ ज्यादा समझ लेते हैं। आज भी दो बच्चों के बारे में बहुत कहते रहे। सबेरे आँखें खुलते ही पूछने लगे—'वह दोनों नहीं आये ?' बच्चों की याद आते ही उनका गला रुँध जाता है। डॉ. मारगरिता और डॉ. तात्याना दोनों ही आईं। 'राहुलजी बच्चों की याद करते हैं' कहने पर डॉ. मारगरिता बोलीं—'पहिले उनकी जबान ठीक हो जानी चाहिए, बाद में देखेंगे। ठीक है।'

"कल सत्यवती देवी भारत लौट जायेंगी। मैंने राहुलजी की बीमारी के बारे में बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखकर उनको दे दीं।"

**शनिवार, 20 अक्तूबर :** "आज श्रीमती सत्यवती देवी चली गईं। उनके रहने से हमारा थोड़ा मन लग जाता था। मेरा ख्याल है हम लोगों को कम-से-कम दो महीने तो और यहाँ रहना होगा।

"बहुत दिनों के बाद आज सबेरे हमारे इन्टरप्रेटर मिस्टर ब्लादीमिरोव आये। हमारे लिए चश्मा ले आये हैं। बच्चों की चिट्ठी न आने से मन उदास रहता है। इसलिए घर में तार या किसी तरह बच्चों को खबर देने या खबर मँगाने के लिए उनको कह दिया। पंडितजी आज अच्छे ही रहे। शाम को रेडियो सुनने में भी दिलचस्पी ले रहे थे। डॉ. मारगरिता उनको सबेरे ही देखने आईं। उनका रक्तचाप आज नार्मल है। कम चलाने को कहा है डॉक्टर ने। पंडितजी आज काफी देर तक कुर्सी पर बैठे रहे। दिन-भर और रात को भी 'बच्चे बच्चे' कर रहे हैं। बच्चों के बारे में ही दिन-भर सोचते होंगे शायद। दार्जिलिंग यहाँ से दूर है, यह उनको पता नहीं है। आज भी उनको किताब पढ़कर सुना दिया, सुनने में दिलचस्पी लेते हैं। पहले से अधिक समझ भी ले लेते हैं। डॉ. तात्याना आज नहीं आईं, छुट्टी के कारण।

"आज रेडियो से समाचार सुना—चीन ने नेफा और लद्दाख की सीमा पर हमला कर दिया और पूरी तैयारी के साथ हमला किया है। सुनकर चिंता हो रही है। हम लोग तो बिल्कुल बोर्डर पर रहते हैं। आतंक फैल गया होगा, बच्चे भी घबराते होंगे। किसी तरह महीने-भर बाद यहाँ बुलाने का इन्तिजाम कर देते तो कितना

अच्छा होता ? हम निश्चिंत हो जाते।"

**रविवार, 21 अक्तूबर :** "पंडितजी उसी अवस्था में हैं। रोज-रोज का फर्क तो मालूम नहीं हो सकता। रोना जारी ही है। पर आज बच्चों के बारे में बहुत नहीं पूछा। आज ज्यादा पढ़कर भी नहीं सुना पाई। दिन-भर मौका ही नहीं मिला। उनको बच्चे याद आते हैं। नर्स से भी बच्चों के बारे में ही पूछते हैं। वे कहाँ गये, यह भी पूछ रहे थे। इतवार होने से आज डॉक्टर नहीं आईं। आज की सिस्टर मारिया बता रही थीं—शायद हमें और दो महीना यहाँ रहना होगा। दो महीने में हो सकता है राहुलजी के स्वास्थ्य में कुछ सुधार हो जाये।"

**सोमवार, 22 अक्तूबर :** "पंडितजी की हालत आज अच्छी मालूम नहीं हो रही है। आज उन्होंने ढंग से बात नहीं की, हँसते भी नहीं, उनका चेहरा परेशान है। जरूर रक्तचाप बढ़ गया होगा उनका, ऐसा लग रहा है। ज्यादा बैठे भी नहीं, चलना तो बन्द ही है। पढ़कर सुनाया, पर आज वे उतनी रुचि नहीं ले रहे थे। आज पाखाने पर भी नियंत्रण नहीं रहा। दिमाग तो उनका चार महीने के बच्चे का जैसा हो गया है। बच्चों के बारे में बार-बार पूछते हैं, फिर भूल जाते हैं। आज रोये भी बहुत। अच्छे होने की कम ही आशा होती है। थोड़ा-सा सुधार होता है, फिर उनकी तबीयत गड़बड़ा जाती है। यहाँ आये भी प्रायः दो महीने हो रहे हैं, पर उनके स्वास्थ्य में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता, उनके बोलने के शब्द भी स्पष्ट नहीं होते। डॉ. तात्याना शाम को आईं। वे पंडितजी को उच्चारण करना सिखाती हैं। हिन्दी में तो वे कुछ बोलते भी हैं, पर अंग्रेजी या रूसी में नहीं बोल सकते। उनकी स्मरणशक्ति लौट आती तो बोलना भी आ जाता। लिखना बिल्कुल ही भूल गये हैं। हम सोच भी नहीं सकते कि इतने बड़े पंडित की यह दुर्दशा क्यों हुई है ? क्या ऐसा भी कोई असाध्य रोग होता है ?"

**मंगलवार, 23 अक्तूबर :** "आज पंडितजी कुछ सुस्त दिखाई दे रहे हैं। हँसते भी नहीं, हर वक्त रोते रहते हैं। पुस्तक पढ़कर सुना देने पर भी आज उनका मन नहीं लगा। लिखना तो ऊँगली पकड़कर जबर्दस्ती करवाया गया। डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना के साथ बात करने में भी वे सुस्त ही रहे। कहीं कोई गड़बड़ी जरूर है। रक्तचाप भी कम तो नहीं है, पर डॉक्टर लोग कुछ बताते नहीं। उनको आज थोड़ा पैरों से चलवाया, पर बहुत जल्दी ही थक गये। जहाँ तक उनकी स्मरण-शक्ति का प्रश्न है, उसमें कोई सुधार नहीं हुआ है। उन्हें केवल जया-जेता की याद आती है, पर उनका नाम भी भूल चुके हैं, मेरे याद दिलाने पर बोल देते हैं। आज उनका चेहरा उदास, थका हुआ-सा दिखाई दे रहा है। बच्चे यहाँ होते तो शायद उनमें थोड़ी स्फूर्ति आती। पर क्या करें, हर वक्त रोते ही रहते हैं, उनको देखकर मन बहुत विचलित हो जाता है।

"डॉक्टर अन्तानिना पेत्रोव्ना दो बार देख गईं उनको। वैसे यहाँ की सभी डॉक्टर बड़ी अच्छी हैं, पर डॉ. अन्तानिना तो मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। मेरे साथ वे बच्चों जैसा व्यवहार करती हैं और बड़े ही स्नेह से बातचीत करती हैं।

"चीनी फौजें मैकमोहन लाइन से और इधर नेफा की ओर बढ़ रही हैं।"

**बुधवार, 24 अक्तूबर :** "कल की तुलना में आज पंडितजी का चेहरा उजाला रहा। रोना तो हर पाँच मिनट में चलता है, अस्वाभाविक रोना है यह। हँसना-मुस्कुराना उन्होंने छोड़ दिया है। हर वक्त दो बच्चों के बारे में पूछते हैं और रोते हैं। उन्हें बार-बार समझाना पड़ता है कि इस समय वे मास्को के अस्पताल में हैं। आज पूछ रहे थे—हमारा घर कितनी दूर पर है ? काश कि डॉक्टर मारगरिता कह देतीं कि बच्चों को यहाँ बुलाना जरूरी है, तो अभी से तैयारी शुरू कर देते। डॉ. शान्ति राय भी नहीं आये, उनसे कहलवाती बच्चों के बारे में। शायद जया-जेता को देखकर पंडितजी प्रसन्न हो जायँ। बच्चे भी छुट्टी यहाँ बिता देते। पर अपने चाहने से तो होता नहीं। रात-दिन वे बच्चे-बच्चे चिल्लाते रहते हैं, उन्हीं के लिए हर वक्त रोते रहते हैं। डॉ. मारगरिता उनको देख गईं। डॉ. तात्याना भी पंडितजी को उच्चारण सिखाने आईं। उच्चारण तो वे कर लेंगे, पर अभी पढ़ने-लिखने की बात करना फिजूल है जबकि उनका मस्तिष्क ही नहीं चलता, फिर कुछ कहना भी ठीक नहीं।"

**गुरुवार, 25 अक्तूबर :** "राहुलजी आज फिर सुस्त रहे दिन-भर। रात को 12 बजे के बाद सोये थे, सबेरे

गहरी नींद में होते हैं, परन्तु कपड़े बदलने के लिए उन्हें जगा दिया जाता है, इसीलिए शायद दिन-भर सुस्त रहे। आज उन्होंने जरा भी बात नहीं की। पड़े हुए हैं बिस्तर पर और रोते रहते हैं। सबेरे डॉक्टर नीना पोपोवा आई थीं, मैं बाहर अहाते में टहलने गई थी, दो नर्सें मुझे बुलाने के लिए दौड़ती हुई आईं। मैं तो एकदम घबरा गई, भागी-भागी अस्पताल के कक्ष में गई। मालूम हुआ, प्रोफेसर डॉक्टर पोपोवा से बात करने के लिए मुझे बुलाया था। मैं टूटी-फूटी रूसी में बोली। डॉ. अन्तानिना भी थीं जो कि यहाँ कि सबसे प्रिय डॉक्टर हैं। उन्होंने बातचीत में मदद की। अब तो यहाँ के लोग जान गये हैं कि राहुलजी के मस्तिष्क में विकार हैं, वे भूल गये हैं, याद नहीं पड़ता। परन्तु इसका उपचार नहीं कर रहे हैं। डॉक्टर मारगरिता अभी नहीं आई हैं। शाम को डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना आईं, पर आज पंडितजी कल की तरह बोले नहीं। बहुत ही सुस्त रहे, पेशाब भी आज बहुत कम हुई।

"बच्चों से बिछुड़े आज 103 दिन हो गये, समाचार भी नहीं मिलते।"

**शुक्रवार, 26 अक्तूबर :** "पंडितजी आज भी बहुत सुस्त रहे, बोले भी नहीं, हँसे भी नहीं। आज ज्यादा बैठे भी नहीं। डॉ. अन्तानिना सबेरे उनको देखने आईं। रक्तचाप आज 180/80 है। एक प्रोफेसर हार्ट स्पेशलिस्ट (Heart Specialist) भी उनको देखने आईं। उन्होंने बताया—राहुलजी का हार्ट और ब्लड प्रेशर ठीक है, मस्तिष्क में विकार है। या और भी कुछ कारण होगा सुस्त रहने का। मैं डाक्टर की पूरी बात तो समझ नहीं सकती, क्योंकि वह सिर्फ रूसी बोलते हैं। रोगी को कोई नया इन्जेक्शन दिया गया। वे हर बात में रोते हैं, ऐसा बोलते हैं जो समझ में नहीं आता। जया-जेता को पूछते हैं और रोते हैं। डॉ. तात्याना से तो ठीक ही बोल रहे थे। काश कि इनके मस्तिष्क का भी कोई इलाज कर देते।"

**शनिवार, 27 अक्तूबर :** "पंडितजी की हालत में कोई सुधार नहीं दिखाई देता। यहाँ उनको विशेषकर के मस्तिष्क के इलाज के लिए लाये और वही नहीं हो रहा है। स्मरण-शक्ति में कोई भी सुधार मालूम नहीं पड़ता। उनमें उन्माद की मात्रा ज्यादा है। दिन-भर रोते रहते हैं, रात-भर पेशाब में नियंत्रण नहीं रहता, न हँसना न बोलना। दिन पर दिन उनके दिमाग की हालत और बिगड़ती जा रही है। डॉक्टर लोग या तो बीमारी नहीं समझ पाये हैं या बात नहीं समझते। यहाँ आये दो महीने हो गये। भारत में हल्ला हो रहा होगा कि राहुलजी स्वस्थ हो रहे हैं, पर यहाँ और हालत खराब होती जा रही है। आज दिन-भर वे प्रायः सोते ही रहे और जब-जब जगे, सिर्फ रोते रहे। उनकी एक भी बात समझ में नहीं आती। सबेरे जया-जेता की याद करने लगे।"

**रविवार, 28 अक्तूबर :** "जहाँ तक राहुलजी के स्वास्थ्य का प्रश्न है, उसमें अभी तक कोई सुधार दिखाई नहीं देता। उसी तरह रोना-धोना कर रहे हैं, बात भी समझ में नहीं आती। दिन-भर सोते रहना, हर बात पर रोना। मरने की बात करते रहते हैं। बच्चों की याद भी करते हैं। 'दो बच्चे कहाँ गये ?' पूछते हैं। बच्चे यहाँ होते तो शायद वे खुश रहते, परन्तु वे लोग यहाँ नहीं हैं। सिस्टर मारिया स्वयं बच्चोंवाली हैं, कह रही थीं—'बच्चों के लिए डॉक्टर मारगरिता से कहो।' सिस्टर भी बच्चों की उपस्थिति को आवश्यक समझती हैं। डॉ. अन्तानिना से शायद सिस्टर जोया ने कहा है, पर अभी सब चुप हैं। आज पता नहीं कौन डॉक्टर पंडितजी को देखने आईं, छुट्टी का दिन है, डॉ. मारगरिता अभी नहीं आईं।"

**सोमवार, 29 अक्तूबर :** "पंडितजी कल की अपेक्षा आज कम रोये। घर और बच्चे उन्हें बार-बार याद आते हैं। डॉ. अन्तानिना पेत्रोव्ना उनको देखने आईं। कैसे हैं कुछ बताया नहीं। कल शायद डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आयेंगी। किसी तरह भी जया-जेता राहुलजी के पास रहते तो उनको अच्छा लगता, पर डॉक्टर लोग इस बात में चुप हैं। मैं तो कैसे कहूँ, कोई तीसरा आदमी कह दे तब न ? यह कैसी विडम्बना है कि पंडितजी रात-दिन जिन दो बच्चों को खोजते रहते हैं, जब से बीमार पड़े हैं, उन्हीं बच्चों से इनको अलग कर दिया गया है। फिर वे क्यों न रोयें ? वे आज ज्यादा बोले नहीं। रात को (8 बजे) भी रो रहे हैं। पागलपन तो है ही। खाना आजकल ठीक से खा लेते हैं। आज उनको पाँवों से थोड़ा चलाया और कुर्सी पर भी बिठाया। डॉ. तात्याना आकर उनको कुछ बोलना सिखा गईं। थोड़ा समझने लगे हैं, वह बतला रही थीं।"

**मंगलवार, 30 अक्तूबर :** "शरीर को स्पन्ज करके उनको कपड़े पहनाये, बाल काढ़ दिये। शाम को जब

वे कुर्सी पर बैठे थे तो बड़े ही सुन्दर लग रहे थे। यहाँ के डॉक्टर लोग तो उनको 'मोलोदाय चेलोवेक' (तरुण पुरुष) कहती हैं। आज उनको कमरे में कुछ देर चलाया भी। पर वे जल्दी थक जाते हैं, शायद कमजोरी के कारण होगा। आज डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आईं। उनके सामने पंडितजी रोने लगे। रक्तचाप आज नार्मल है, तभी तो वे इतने अच्छे-सुन्दर मालूम होते हैं। खाना भी ठीक से खाया। सूप पीते समय उन्हें जोर की खाँसी आने लगती है। बीच-बीच में रोना भी नहीं भूलते। विटामिन और न जाने और किसके इंजेक्शन भी लग रहे हैं। मालूम नहीं कब चलने-फिरने लायक होंगे। स्मरणशक्ति ठीक होने की आशा तो कम है।"

**बुधवार, 31 अक्तूबर :** "रात को नींद न आने से परेशानी होती है, बच्चे याद आते हैं। पंडितजी रोते हैं, घर चलने की बात करते हैं। मेरा भी दिन-रात ध्यान उनमें और बच्चों में लगा रहता है। डॉक्टर लोगों को मालूम नहीं कि हमारी समस्या क्या है। आज डॉ. मारगरिता कोई जवाब देंगी, मैं आस लगाये बैठी रही, पर वह कुछ भी नहीं बोलीं। खैर, एक महीना यहाँ किसी तरह बिताकर अगले महीने घर जाने की तैयारी करनी होगी। लोला और इगोर आये होते तो पंडितजी शायद खुश रहते, पर वे लोग अभी तक नहीं आये।

"आज प्रोफेसर डॉक्टर नीना एलेक्सेव्ना पोपोवा अन्य छः डाक्टरों के साथ आईं। डॉ. मारगरिता और डा. अन्तानिना भी थीं। उनमें सिर्फ एक पुरुष डॉक्टर थे। डॉक्टर पोपोवा बहुत दिनों के बाद आईं थीं, इसलिए उनको अपने रोगी की अवस्था में अन्तर अवश्य मालूम हुआ होगा। वे कह रही थीं, थोड़ा-बहुत उन्हें चलना भी चाहिए। पेशाब में चीनी नहीं है, ब्लड में पता नहीं। हार्ट स्पेशलिस्ट भी सबेरे राहुलजी को देख गईं। कहा—अच्छा है। परन्तु वे तो बोलते नहीं, केवल रोते हैं। खैर, रोना तो उनके मस्तिष्क से सम्बन्ध रखता है। आज उनको थोड़ा-सा चलवाया, कुछ देर तक कुर्सी पर बिठाया भी। पर एक भी तो अकल की बात नहीं करते। केवल 'बच्चे बच्चे' करते रहते हैं बेचारे। वे अपने बच्चों को भूल नहीं पाते। डॉ. तात्याना के सामने भी बच्चों के लिए रो रहे थे। इनकी इस पीड़ा को तो कोई अच्छा मनश्चिकित्सक ही समझ सकता है जो अपनी भाषा जानता हो।"

## नवम्बर 1962

**गुरुवार, 1 नवम्बर :** "एक तरफ पंडितजी इतने रुग्ण हैं, जीवन की आशा अब कम रह गई है, दूसरी ओर बच्चों के समाचार न मिलने से बहुत परेशानी हो रही है। भावुक हृदय होने के कारण आँसू भी नहीं थमते। आखिर मेरा मन इतना कमजोर क्यों हो जाता है कभी-कभी ? जीवन में सुख और सन्तोष नहीं, विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ घेरे हुए हैं, सोच-सोचकर मन बहुत घबड़ाने लगता है। आज डॉ. अन्तानिना पेत्रोव्ना मुझे देखने आईं। मेरा रक्तचाप देखा, ठीक है। 7 नवम्बर को मास्को शहर जाने के बारे में पूछ रही थीं। हमे मास्को आये दो महीने हो गये, पर अभी तक अस्पताल से बाहर नहीं जा सके हैं। जब डॉक्टर मुझसे सवाल कर रही थीं, मुझे जाने क्या हो गया कि मैं फूट-फूट कर रो पड़ी। मन को थाम न सकी। वह मेरे पास बैठकर समझाती रहीं। काश कि मेरे दुःख और मेरी परेशानियों को सब कोई समझ सकते। डॉक्टर अन्तानिना कह रही थीं—"निनाद प्लाकित कमला, निनाद' (मत रोओ कमला, मत रोओ)। छोटे बच्चों की तरह वह मुझे दुलार रही थीं। मेरे प्रति उनका व्यवहार कितना आत्मीयतापूर्ण था, एक विदेशिनी के मन में मेरे प्रति इतनी सहानुभूति देखी। अपने देश में तो मेरी इस कठिन घड़ी में कोई भी माई का लाल सामने नहीं आया जो मेरे दुख को समझता हो। महिलाओं में भी दार्जिलिंग अस्पताल की एक नेपाली नर्स के अलावा और कोई ऐसी संवेदनशील नहीं मिली।

"मुझे अफसोस हो रहा था कि मैं डॉ. अन्तानिना की भाषा को ज्यादा बोल नहीं पाती थी। यदि भाषा का व्यवधान न होता तो मैं अपने मन के सारे दुःख और पीड़ा उनके सामने रख देती। वह पंडितजी की नर्स इरा से कह रही थीं—'मैं तो राहुल को नहीं देखती, मेरी पेशेन्ट तो कमला है।' हरदम मुस्कराकर बात करती हैं। इतनी अच्छी महिला आज तक मैंने नहीं देखी थी।

"डॉ. मारगरिता पंडितजी को देखने आईं। उनका रक्तचाप आज 150/80 के आसपास रहा। डॉक्टर बता रही थीं कि राहुलजी का हार्ट इस समय ठीक है, इसलिए अब वे थोड़ा टहल सकते हैं। पर वे तो चलना

पसन्द नहीं करते। शायद उनको चक्कर भी आता है। और दिनों की अपेक्षा आज वे कुछ अच्छे और शांत रहे। 'जीवन-यात्रा' को पढ़कर सुना दिया, एकाध स्थल पर हँसे भी। दो बच्चों की बहुत याद करते हैं। शायद उन्हें अब सिर्फ दो बच्चे ही याद रह गये हैं। डॉ. मारगरिता भी बच्चों के बारे में कुछ कह रही थीं, पर मुझे उनकी बात ज्यादा समझ में ही नहीं आई। हो सकता है हमारे बच्चों के बारे में डॉक्टर मारगरिता से सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की सेन्ट्रल कमिटी के सेक्रेटरी ने कुछ कहा हो।"

**शुक्रवार, 2 नवम्बर :** "आज बाहर निकलने का मौका ही नहीं मिला। नई सिस्टर आने लगी है, मुझे राहुलजी के पास बैठे रहना पड़ता है। पुरानी सिस्टर आती तो दिक्कत नहीं थी। पुरानियों के संग तो हम हिलमिल गये हैं।

"सुबह से ही मन बहुत उदास था। रात को भी नींद नहीं आई। बच्चों की याद करके रो रही थी, तभी मेरी छोटी बहन गंगा की 15 अक्तूबर की लिखी चिट्ठी मिल गई। चिट्ठी से मालूम हुआ–जया और जेता दशहरा मनाने के लिए कलिम्पोंग गये थे, बहुत खुश रहे वहाँ, कलिम्पोंग में रहना पसन्द करते हैं। 14 अक्तूबर को दोनों दार्जिलिंग लौट गये हैं। पता लिखने में शायद मैंने ही गलती की थी, इसलिए चिट्ठी घूमते-घामते सेन्ट्रल कमिटी के दफ्तर में पहुँची और वहाँ से यहाँ भेज दी। बच्चों की खबर मिल जाने से थोड़ा सन्तोष तो हुआ, किन्तु यह 19 दिन पहले की खबर है, इधर का मालूम नहीं।

"डॉ. अन्तानिना सुबह आईं और पंडितजी का चेकअप किया, फिर मेरा भी किया। वह पूछती थीं–नींद आई कि नहीं, दर्द है कि नहीं ? पर मैं कुछ भी जवाब न दे सकी। वह फिर कहने लगीं–आज कमला कुछ बोल भी नहीं रही है, क्यों इतनी उदास रहती है ? और भी कुछ कह रही थीं पर मेरी समझ में नहीं आया। उसी तरह मुस्कुराते हुए बातें कर रही थीं।

"हमारे दुभाषिये मिस्टर यूरी ब्लादीमिर आये। पंडितजी और मेरे लिए सामान लाये थे। पंडितजी के लिए फर की टोपी और फर का अस्तरवाला कोट तथा जूते, मेरे लिए ऊनी कोट, स्कार्फ और जूते। सभी चीजें अच्छी और उपयोगी। 7 नवम्बर को मास्को शहर के रेड स्क्वेयर (लाल मैदान) में जाने के लिए मिस्टर यूरी ब्लादीमिर ने डॉ. अन्तानिना से पूछा तो डॉक्टर से अनुमति मिल गई। 7 नवम्बर को सबेरे 8 बजे अस्पताल के नीचेवाले बड़े हॉल में मुझे बैठना है। मि. यूरी ब्लादीमिर आकर मुझे ले जायेंगे। आज शाम को डॉ. अन्तानिना मिलीं तो मुझसे पूछ रही थीं–कमला, रेड स्क्वेयर जाओगी न ? खूब अच्छा लगेगा तुमको। शाम को ड्यूटी खतम करके घर जाते समय भी वे मुझसे 'दसबिदानिया, कमला' कहते गईं। मुझे कोई तो बोलनेवाला साथी मिल गया इस उदासी की घड़ी में।

"पंडितजी आज कम रोये, पर बहुत अधिक सोये, शायद दवा के कारण होगा। बच्चों को हरदम याद करते रहते हैं बेचारे। आज उनको दोनों डॉक्टर देखने आईं। उनको Wheel chair पर बिठाकर बाहर कोरीडोर में थोड़ी देर टहलाते रहे। शायद उनको चक्कर आ गया, आँखें भी तो कमजोर हैं। कई दिनों के बाद आज बाहर निकले हैं। अब उनके पैरों में थोड़ी ताकत आ रही है। दिमाग में भी आज कुछ प्रगति मालूम हो रही है। रक्तचाप नार्मल रहने पर तो वे कुछ अच्छे और शांत लगते हैं।"

**शनिवार, 3 नवम्बर :** "आज रात को खाँसी आने के कारण पंडितजी सो नहीं सके, दिन में सोये थे। रोते बहुत हैं। वही बार-बार बच्चों के लिए पूछते रहते हैं। 'कौन जगह है यह ? बच्चे कहाँ हैं ?' यही प्रश्न दिन में कई-कई बार पूछते हैं। भूल जाते हैं, फिर पूछते हैं। बेचारे बच्चे तो यहाँ से 5 हजार मील की दूरी पर हैं। क्या करें ? सबेरे Invalid Chair पर बिठाकर उनको शीशेवाले बरामदे में घुमाया। डॉ. मारगरिता सबेरे ही आ गई थीं। खाँसी की बात कही तो शाम को नर्स ने आकर स्पंज से पंडितजी को सेंक दिया। हार्ट स्पेशलिस्ट डॉक्टर भी सबेरे आईं। कितनी अच्छी हैं यहाँ की सभी डॉक्टर जो रोगी से आलिंगन करके मिलती हैं। डॉ. तात्याना भी आईं। सबसे अच्छी और सुन्दर तो डॉक्टर अन्तानिना हैं जो बड़ी हँसमुख भी हैं। रोगी के साथ उनका बड़ा स्नेहपूर्ण व्यवहार रहता है, इसलिए सभी रोगी उनको पसन्द करते हैं।"

**रविवार, 4 नवम्बर :** "राष्ट्रीय दिवस की तैयारी हो रही है। हवाई जहाज उड़ानें भर रहे हैं, सड़कों की

धुलाई हो रही है। शहर में तो और भी ज्यादा तैयारियाँ हो रही होंगी। स्कूल 5 दिन के लिए बंद रहेंगे। अस्पताल में तीन दिन की छुट्टी रहेगी। डॉ. मारगरिता बतला रही थीं।

"सुबह नियमानुसार डॉ. मारगरिता पंडितजी का चेकअप करने आईं। उनकी डायबेटिज़ और हार्ट की अवस्था इस समय ठीक है। इसलिए बाहर कोरीडोर में उनको थोड़ी देर पैरों से चलवाया। वे तो रोये ही जा रहे थे, सबेरे से ही रो रहे थे। तभी कामरेड चन्द्रन के साथ दिल्ली के कामरेड महेन्द्र आचार्य भी आये। हंगेरी-चेकोस्लोवाकिया होते हुए वह मास्को आये थे। 10 तारीख तक भारत लौट जायेंगे। उनसे मिलकर तो पंडितजी और रोये, उनको हाथ जोड़कर नमस्ते भी कर रहे थे। डॉ. मारगरिता भी थीं। वह बतला रही थीं कि इनका रोना अस्वाभाविक भी है, पर स्वाभाविक तब रोते हैं जब उन्हें बच्चों की याद आती है। पंडितजी कुछ और भी कहना चाहते थे, पर प्रकट नहीं कर सकने पर फिर रोने लग गये। अब पहले से ज्यादा बात समझने लगे हैं। खाना-पीना ठीक से कर लेते हैं। रात को पेशाब पर नियंत्रण नहीं रख सकते, इसलिए उनकी नींद में बाधा पड़ती है। आज दिन में वे कुर्सी पर भी देर तक बैठे रहे।

"फुरसत के समय थोड़ी-थोड़ी रूसी भाषा पढ़ने-लिखने और बोलने का अभ्यास कर रही हूँ। मेरी गुरु हैं दिन और रात की दो सिस्टर नर्सें तथा डॉ. अन्तानिना। रोज-रोज तो दुभाषिये नहीं आते, इसलिए भी भाषा सीखना अनिवार्य हो गया है।"

**सोमवार, 5 नवम्बर :** "सोचा था, आज अस्पताल में छुट्टी होगी, पर छुट्टी नहीं थी। सभी लोग आये थे और अपनी-अपनी ड्यूटी में व्यस्त थे। डॉक्टर महिलाएँ और पुरुष सभी इधर-उधर आने-जाने में व्यस्त थे। यहाँ सब काम ठीक-ठीक समय पर होता है, सभी लोग अपनी-अपनी ड्यूटी में पक्के हैं।

"आज सभी लोग महोत्सव की तैयारी में हैं। हमारे कमरे को भी धो-पोंछ कर साफ किया गया। सफाई का निरीक्षण डॉक्टर लोग ही कर रही थीं। हमारे कमरे की सफाई को डॉ. अन्तानिना देख रही थीं। 11-30 पर डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आईं और पंडितजी का चेकअप किया। आज उनका रक्तचाप 170/80 के आसपास रहा। वे चारपाई पर बैठे थे, डॉक्टर और मैं उनके दोनों तरफ बैठ गईं। वे प्रसन्न थे। तभी हमारे इंटरप्रेटर मि. यूरी ब्लादीमिर डॉ. अन्तानिना के साथ आये। डॉक्टर ने बाल घुँघराले किये थे और बहुत अच्छी लग रही थीं। अपने राष्ट्रीय त्यौहार के प्रति इन लोगों का सम्मान और उत्साह देखते ही बनता था। मिस्टर यूरी राहुलजी और मेरे लिए क्रान्ति-दिवस के उपलक्ष्य में कुछ तोहफे लाये थे, राहुलजी के लिए लेनिन और अन्तरिक्षयात्री तितोव की छवि अंकित गोल फ्रेम और प्लेट लाये थे। मेरे लिए सेंट तथा पेपर मेशी का सिंगारदान लाये। मि. यूरी और डॉक्टर थोड़ी देर तक राहुलजी के पास बैठे रहे, कितना अच्छा लगा। वे बेचारे छोटे बच्चे की तरह रोये जा रहे थे। उनको लगता होगा कि वे बीमार हैं, बोलने में असमर्थ हो गये हैं, अपनी बात प्रकट न कर पाने के लिए विवश होकर रोने लगते हैं। मि. यूरी ने हमें विश किया, हमने उनको धन्यवाद दिया। क्रांति-दिवस के उपलक्ष्य में यहाँ सभी मरीजों को उपहार देने का चलन है।

"पंडितजी आज कम ही रोये। बातें पहले से ज्यादा समझते हैं। 'स्पाशिवा' (धन्यवाद) और 'दसबिदानिया' (फिर मिलेंगे) शब्द पर वे मुस्करा देते हैं।"

**मंगलवार, 6 नवम्बर :** "आज महापंडितजी को देखकर मेरे मन में टीस हो आई। यहाँ के सभी रोगी चलने-फिरने लायक हैं, बेचारे वे ही बिस्तर पर पड़े हुए हैं। उनको कोरीडोर में दो बार चलाया, पर उनको चक्कर आ गया, थक भी गये। अब निस्पृह भाव से चुपचाप पड़े हुए हैं। क्या हो रहा है, कहाँ हैं, कुछ भी पता नहीं उनको। हरदम 'बच्चे कहाँ हैं ? बच्चे कहाँ गये ?' पूछते रहे। रोते भी थे, पर कम। कुछ साफ बोलते हैं आजकल। वे अच्छे और स्वस्थ होते तो इस समय हम कहाँ होते। आजकल बात ज्यादा समझते हैं।

"प्रोफेसर डॉक्टर नीना एलेक्सेव्ना पोपोवा आज उनको देखने आईं। इतने बड़े सोशलिस्ट देश की श्रेष्ठ चिकित्सक होकर भी वे हम लोगों के साथ बड़े प्रेम से मिलती हैं। आज उन्होंने अस्पताल के सारे रोगियों के कमरे में राउण्ड लगाया।

"बच्चों की याद से अपना मन उदास रहता है।"

**बुधवार, 7 नवम्बर :** "सबेरे बहुत जल्दी नींद खुल गई। 8 बजे तैयार होकर नीचे हॉल में चली आई। पंडितजी की सेवा के लिए दो नर्सें आ गई थीं। मिस्टर यूरी ब्लादीमिर ठीक समय पर आ गये। हमारे ग्रुप में एक ग्रीक, एक सोमाली, एक जोर्दानी और एक लेबनानी महिलाएँ थीं। कुल 6 व्यक्ति हो गये। पहले लेनिन हिल से थोड़ा नीचे उतरकर बाहर का दृश्य देखा। सबेरे के समय बड़ी सर्दी थी। लेनिन स्टेडियम, लोमोनोसोव युनीवर्सिटी भी देखी। शहर से होते रेड स्क्वेयर (लाल मैदान) गये, लोगों की बड़ी भीड़ थी। क्रेमलिन भी वहीं है। हमें ऊपर बैठने की जगह पर जाने के लिए अपना पासपोर्ट दिखाना पड़ा। तत्कालीन राष्ट्रपति खुश्चेव का केवल सिर ही दिखाई दिया। 10 बजे लाल मैदान में मार्च पास्ट और परेड हुआ और जिमनास्टिक प्रदर्शन के बाद यहाँ की बनी नई-नई मशीनें तथा राकेट का प्रदर्शन हुआ। एक राकेट को अन्तरिक्ष में छोड़ा गया। फिर जनसमूह हाथ में फूल के गुच्छे और झण्डे लेकर लाल मैदान से गुजरा। लेनिन-समाधि के लिए दर्शनार्थियों का ताँता खतम ही नहीं हो रहा था। हम अतिथियों के लिए विशेष सुविधा दी गई थी। हम लोगों ने जाकर समाधि पर श्रद्धापूर्वक फूल चढ़ाये। लोगों में अपार उत्साह देखा। काश कि हम भी ऐसे ही देश में पैदा हुए होते, उस समय मैं यही सोच रही थी। मास्को सचमुच ही बहुत सुन्दर स्थान है। सर्दी बहुत लगी, जिसके कारण सिर में बहुत दर्द होने लगा। ठीक 12 बजे अस्पताल वापस पहुँचे। नर्स लोगों ने मेरी भारतीय पोशाक को देखा, बहुत पसन्द किया। सभी नर्सें एक-एक कपड़े को खूब ध्यान से देख रही थीं। डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना मिलीं और उन्होंने बड़े प्यार से मुझे गले लगाया।

"सबेरे पंडितजी को सोते हुए छोड़ गई थी, लौटकर देखा—वे वैसे ही सोये पड़े हैं, निस्पृह भाव सें। उनकी दिमागी हालत में कोई फर्क नहीं आ रहा है, पेशाब पर कन्ट्रोल नहीं। आज वे कुछ बेचैन भी दिखाई दे रहे हैं। रात को सो नहीं रहे हैं।

"पहले राहुलजी लेनिनग्राद में थे, तब नवम्बर 7 के इस क्रान्ति-दिवस में कितने उत्साह से भाग लिया होगा उन्होंने। भारत में 7 नवम्बर के दिन रेडियो से रूसी भाषा का समाचार वे अवश्य सुनते थे, सोवियत देश से उनको कितना प्रेम था। पर आज सोवियत भूमि में रहकर भी इस महान उत्सव में वे स्वयं भाग न ले सके, यह सोचकर मुझे बहुत दुःख हो रहा है। यहाँ आये इतने दिन हो गये, पर बुलाने पर भी लोला और इगोर उनको देखने नहीं आये हैं। ज्यों-ज्यों दिन बीतता जाता है, मुझे आशंका होने लगती है, यदि वे लोग मेरे कारण नहीं आ रहे हों तो मुझे क्या करना चाहिए ? पंडितजी को भी तो उनका आना अच्छा ही लगता। पर क्या करूँ, विवश हूँ।"

**गुरुवार, 8 नवम्बर :** "छुट्टी होने से अस्पताल में बड़ा सूना-सूना लग रहा था। सबेरे तो एक भी डॉक्टर नहीं था, शाम को डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आईं। आज राहुलजी कुछ बेचैन रहे, रोना-प्रलाप करना बराबर चला। सुबह भी जल्दी उठ गये, क्या पता आज रक्तचाप अधिक हो गया हो। उनकी मानसिक स्थिति में जरा भी सुधार मालूम नहीं होता। नार्मल नहीं हो रहे हैं। अब तो मुझे आशा नहीं है कि वे स्वस्थ हो जायेंगे, ऐसा लगता है कि इसी उन्माद की अवस्था में वे दुनिया से चले जायेंगे। बड़ी निराशा होती है। दिन में थोड़ा सोये, रात को भी जल्दी सोये। पेशाब पर नियंत्रण नहीं कर पाते। बस थोड़ा-थोड़ा पैरों से चलने लगे हैं। पता नहीं और कितने दिन यहाँ रहना होगा। यदि हमारे बच्चे भी यहीं होते तो और तीन महीने यहाँ रह सकते थे।"

**शुक्रवार, 9 नवम्बर :** "पंडितजी की हालत में कोई सुधार दिखाई नहीं देता, मस्तिष्क में विकार ज्यों का त्यों है। 'बच्चे-बच्चे' करते रहते हैं, पर बच्चों को यहाँ बुलाने के बारे में कोई भी नहीं बोलता। बड़ा दुःख होता है। पंडितजी स्वस्थ न हुए तो शीघ्र ही भारत लौट जाना होगा। अब जब तक उनको जीना है, बच्चों के साथ रहें तो अच्छा है। आज तो उनकी दशा को देखकर मैं और निराश हो गई हूँ। डॉ. मारगरिता ने आकर उनका परीक्षण किया। आज डॉक्टर ने मुझे रोते हुए देखा। पूछ रही थीं—क्यों रोती हो ? पर मैं अपने ध्मन की पीड़ा उन्हें कैसे बताऊँ ? यहाँ और अधिक समय रहने से लगता है कि हमारा भी दिमाग काम करना

छोड़ देगा। रात को दूसरी नईवाली डॉक्टर आई।

"आज सबेरे 22 अक्तूबर का लिखा लाल साहब (कप्तान लाल) का पत्र आया। हमारे घर में नौकरानी नहीं है। जया बेचारी सबेरे भैया (जेता) को बस पर चढ़ाने जाती है। यह पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ। मेरे बच्चे, तुम लोगों को कितनी तकलीफ उठानी पड़ रही है। माता-पिता के होते भी तुम लोग अनाथ हो गये हो। यह सोचकर मेरा मन विचलित होने लगता है। अब हमारा यहाँ से मन ऊब गया है।"

**शनिवार, 10 नवम्बर :** "आज सबेरे से ही मन बहुत उदास था। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। बार-बार रोना आता अपनी किस्मत पर। महापंडितजी को चिकित्सा के लिए इतनी दूर ले आई, पर उनके स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं। घर लौटना चाहते हैं। पर यहाँ से जाना कठिन है। आखिर विदेश है यह, डॉक्टर की इजाजत के बिना हम यहाँ से हिल भी नहीं सकते। पंडितजी को बच्चों के लिए तड़पते मुझसे देखा नहीं जाता। अपनी विवशता पर मुझे रोना आता है, क्या करूँ ?

"डॉ. मारगरिता और डॉ. अन्तानिना दोनों एक साथ पंडितजी को देखने आईं। दोनों डॉक्टरों को गम्भीर देखकर मुझे अनिष्ट की आशंका होने लगी। दोनों कुछ देर कमरे में बैठीं। डॉक्टर मारगरिता बार-बार मुझसे पूछ रही थीं—क्या बात है कमला, क्यों उदास हो ? पर मैं कुछ भी नहीं बोल सकी। रूसी में मैंने कुछ शब्द लिख रखे थे, दोनों ने पढ़ लिया। डॉ. मारगरिता कह रही थीं, जब राहुल अच्छे हो जायें तब जाना। जब बच्चों के बारे में पूछा तो वे बता रही थीं—कि उन्होंने पार्टी के केन्द्रीय कमिटी के सेक्रेटरी से बात की थी, पर उनकी ओर से कुछ खास जवाब न मिला। इसका मतलब है, बच्चे यहाँ नहीं आ सकते।

"राहुलजी को थोड़ी देर कोरीडोर में चलाया। आज वे कुछ अच्छी बातें कर रहे थे। बेचारे बार-बार बच्चों के बारे में पूछ रहे थे। आज तो 'उनको देखना चाहता हूँ' भी कह रहे थे। पर बच्चे तो हमसे कितनी दूर हैं। यह कैसी विपत्ति मुझ पर आ पड़ी है, सोच-सोचकर मन दुःखी होने लगता है। यहाँ बिल्कुल ही मन नहीं गलता। सिर्फ डॉक्टरों का व्यवहार हम लोगों के प्रति स्नेहपूर्ण होने के कारण हम यहाँ अटके हुए हैं, वर्ना विदेश तो विदेश ही होता है।"

**रविवार, 11 नवम्बर :** "राहुलजी आज कुछ अच्छी हालत में रहे। कम रोये पर बार-बार बच्चों के बारे में ही पूछते रहे। अब बात बहुत समझने लगे हैं। उनको कोरीडोर में थोड़ा टहलाया। सबसे हाथ मिला रहे थे, नमस्ते कर रहे थे। थोड़ा पागलपन तो है ही, पर आज औरों के सामने नहीं रोये। अभी उतना चल नहीं पाते, बोली भी उतनी साफ नहीं है। खाते वक्त खाँसी आती है उनको, परन्तु अब खाना खाते समय पहिले की तरह हल्ला नहीं करते। आज तो कोई भी परिचित डॉक्टर उनको देखने नहीं आई। एक नई डॉक्टर एलेना निकोलायेव्ना की ड्यूटी है आज।

"सबेरे कामरेड चन्द्रन को फोन किया था। मालूम हुआ, बच्चों के बारे में उन्होंने सेक्रेटरी से बातचीत की थी, दिल्ली के पार्टी आफिस में भी कुछ लिखा है। जवाब के आने में दो सप्ताह लगेंगे, कामरेड महेन्द्र आचार्य के हाथ भी पत्र भेजे हैं। देखें क्या होता है। जया-जेता यहाँ आ जाते तो उनके पिता को प्रसन्नता होती। यहाँ का इलाज और बच्चों का साथ यदि उनको मिलता तो वे मानसिक तौर से कुछ तो स्वस्थ हो जाते। पर यह हमारे भाग्य में कहाँ ?

"भारत-तिब्बत सीमा पर चीनियों के आक्रमण के कारण जोरदार लड़ाई चल रही है और मेरे बच्चे दार्जिलिंग जैसे सीमान्त इलाके में रहते हैं। चिन्ता होती है।"

**सोमवार, 12 नवम्बर :** "बड़ी उदासी से दिन कट रहे हैं, यहाँ बिल्कुल ही मन नहीं लगता। कब लौटना होगा यह भी अनिश्चित है। यहाँ मुझसे बात करनेवाला कोई साथी भी नहीं है, भाषा की कठिनाई है। गप्प करने लायक रूसी अभी मुझे नहीं आती और यहाँ के अधिकांश लोग इंगलिश नहीं समझते। आखिर बोलें भी तो कैसे ? डॉक्टर और नर्सों से रूसी में ही बोलने की चेष्टा करती हूँ, पढ़ना-लिखना भी साथ-साथ कर रही हूँ। इससे इतने दिनों में मुझको कुछ रूसी बोलना तो आ गया, पर फिर भी अभी सीखना बहुत है। अस्पताल की लाइब्रेरी से अंग्रेजी भाषा की पुस्तकें लाकर पढ़ती रहती हूँ। पर बीच-बीच में मन उड़कर दार्जिलिंग में

बच्चों के पास पहुँच जाता है। क्या करें ?"

"पंडितजी का पागलपन ज्यों का त्यों है। पेशाब-पाखाने का होश ही नहीं रहता उनको। पाखाना साफ करना बड़ी मुश्किल है। उनको उठाया भी नहीं जा सकता, कपड़े भी पर्याप्त नहीं हैं। उनको इस हालत में कोई नर्स न देख ले, मुझे इसका भी ध्यान रखना पड़ता है। आज सुबह-सुबह ही उन्होंने बिस्तर खराब कर दिया। देखकर हैरानी होती है। डॉ. नीना एलेक्सेव्ना पोपोवा और डॉ. मारगरिता पावलोव्ना उनको देखने आईं। 'लुत्शे' (अच्छे हैं) कहती हैं, पर रोगी के दिमाग में तो कोई फर्क नहीं आता। उनको कोरीडोर में थोड़ा टहलाया, कमरे में चुपचाप बैठे। डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना भी उनको देख गईं।"

**मंगलवार, 13 नवम्बर :** "पंडितजी को आज खूब अच्छी तरह से नहलाया। दो महीने से केवल स्पन्ज कर दिया जाता था, पूरी तौर से नहाये नहीं थे। उसके बाद उनको कोरीडोर में टहलाने ले गये। अस्पताल के बाहर तो बर्फ ही बर्फ है, ठण्ड भी बहुत है। पंडितजी बच्चों के बारे में पूछते भी रहे। डॉ. मारगरिता, डॉ. तात्याना अपने राउण्ड पर आईं। पंडितजी उन लोगों की बातें कुछ-कुछ समझने लगे हैं, पर वे हिन्दी में ही जवाब देते हैं। वैसे भी बहुत कम बोलते हैं। इगोर अभी तक नहीं आये।"

**बुधवार, 14 नवम्बर :** "राहुलजी आज कुछ अच्छे रहे। कोरीडोर में दो बार टहलाया, सोफे पर भी कुछ देर बैठे थे। सबेरे मिस्टर यूरी ब्लादीमिर आये थे। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना ने उन्हें बुलवाया था। उन्होंने शिकायत कर दी–'कमला रोती रहती है, खाना नहीं खाती।' मुझ से पूछा तो कह दिया–'मैं बच्चों के लिए रो रही हूँ।' यूरी कह रहे थे–'राहुल अब पहले से अच्छे हैं। यदि आप भारत लौटने की इच्छुक हों तो हम प्रबन्ध कर देंगे।' पर राहुलजी का मस्तिष्क तो स्वस्थ नहीं हुआ है। मैं छोड़कर जाऊँ तो उनकी क्या हालत होगी। मैं भी तो परेशान रहूँगी। बच्चों को यहाँ बुलाने की बात कही तो यूरी ने कहा–यह तो हमारे हाथ में नहीं है। सेन्ट्रल कमिटी के सेक्रेटरी और दिल्ली के पार्टी लीडर आपस में बात करें तो हो सकता है। खैर, मैंने दिल्ली में लिखा है। दो महीने के लिए अगर जया-जेता आ जाते तो कितना अच्छा रहता, हम साथ ही भारत लौटते। पर उन दोनों के यहाँ आने की सम्भावना कम ही दिखाई देती है।

"बच्चों को न देखे पूरे चार महीने हो गये।"

**गुरुवार, 15 नवम्बर :** "आज अस्पताल सूना है। दो ही डॉक्टर दिखाई दीं। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना सबेरे ही आईं। कह रही थीं–अब राहुल पहले से अच्छे हैं। उनका कार्डियोग्राम लिया गया। ब्लड टेस्ट हुआ है। उनको कोरीडोर में काफी देर टहलाया। पर वे थक जाते हैं। पहिले से कुछ चलने लगे हैं। पर जहाँ तक उनके दिमाग का सवाल है, वह ज्यों का त्यों है। बेकार में रोते रहते हैं, कभी-कभी तो झुँझलाहट भी होती है। पहले से कुछ बातें समझने लगे हैं वे, पर हर समय बच्चों के बारे में ही पूछते रहते हैं।"

**शुक्रवार, 16 नवम्बर :** "अब यहाँ से मन बिल्कुल उचाट हो गया है। सर्दी भी बढ़ गई है। दिसम्बर के अन्त तक यहाँ से चले जाना चाहिए। यहाँ अस्पताल में मनोरंजन का कोई साधन नहीं है। ज्यादा गप्पें करने की आदत नहीं, पढ़ें भी तो कितना। लिखने के लिए मन की शांति नहीं। यह शांति तो पंडितजी की बीमारी के साथ ही समाप्त हो गई है। आखिर मन लगायें भी तो कैसे ?

"राहुलजी की दशा में कोई अन्तर नहीं। दिमाग का विकार ज्यों का त्यों है। उनका पढ़ना-लिखना तो खतम हो ही गया है। बोलना भी। ज्यादातर ऊटपटाँग ही बोलते हैं। हर बात पर रोना। आखिर उनके इस रोने का कारण क्या हो सकता है ? क्या वह मानसिक बीमारी है या याददाश्त के खो जाने से रोना है, पता नहीं चलता। यहाँ के डॉक्टर लोग भी कुछ बताते नहीं। क्या मस्तिष्क पर स्ट्रोक, याने सेरिब्रल हैमरेज इसी को कहते हैं ? इसमें आदमी का अपने दिमाग पर काबू नहीं रह सकता, यह मैं खुद ही देख रही हूँ। पंडितजी का शरीर विशेष दुर्बल नहीं हुआ है। यहाँ आने के बाद उनका चेहरा और भी खूबसूरत हो गया है। डॉक्टरों के लिए वे 'मोलोदाय चेलोवेक' (तरुण पुरुष) हैं। पर उनके दिमाग को क्या कहें ?"

**शनिवार, 17 नवम्बर :** "राहुलजी की अवस्था पूर्ववत् रही। आज वे कम रोये। तीन बार उनको कोरीडोर में टहलाया। मस्तिष्क में कोई खास सुधार नहीं हो रहा है, तो भी पहले से बात ज्यादा समझने लगे हैं। कार्डियामिन

इंजेक्शन बन्द कर दिया है। इन्सुलिन दो बार दिया जाता है। उनको दाँत के लिए शाम को डेन्टिस्ट के पास ले गये। बड़ा अच्छा और खूबसूरत चेम्बर था सातवें तल्ले पर।

"चीन भारत की लड़ाई जोरों पर है।"

**रविवार, 18 नवम्बर :** "आज सोवियत संघ में भारत के माननीय राजदूत श्री टी. एन. कौल तथा भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव श्री नरेन्द्र जैन राहुलजी को देखने आये। श्री कौल इनसे पहले से परिचित हैं। बतला रहे थे–1947 में वे इनसे लेनिनग्राद में मिले थे। मसूरी में भी हमारे घर आये थे। बड़े सज्जन पुरुष हैं। भारत के प्रधानमंत्री श्री नेहरूजी ने उन्हें मास्को आते समय राहुजी को भी देखने के लिए कहा था। कौल साहब कह रहे थे–ये मेरे बड़े भाई हैं। कोई बात हो निस्संकोच कहें। बच्चों के बारे में कहने पर उन्होंने कहा–बच्चों को हम बुलायेंगे और हमारे पास ही रहेंगे। पासपोर्ट आदि के लिए वे उनके फोटो और जन्मतिथि आदि नोट करके ले गये हैं। कल शायद फार्म भरने होंगे। उनकी बातों से मालूम होता है कि अगले महीने जया-जेता जरूर यहाँ आयेंगे। वे यहाँ दो महीने रह जायें तो पंडितजी की स्थिति में अवश्य सुधार होगा।

"आज पंडितजी कुछ अच्छी हालत में रहे। पत्रिकाओं को देखते रहे। रोना कुछ कम हुआ है, पर बच्चों के बारे में हरदम पूछते रहते हैं, उन्हीं के लिए रोते हैं। कार्डियामिन का इंजेक्शन अब एक दिन छोड़कर दिया जायेगा। टहलने गये तीन बार, थोड़ा-थोड़ा चलने लगे हैं। सबेरे बाथरूम भी गये। रोना खतम हो जाता तो कुछ साफ बोलने लगते। बात अब पहिले से ज्यादा समझते हैं। आज डॉ. मारगरिता पावलोव्ना की ड्यूटी रही दिन-भर। रात को पता नहीं कौन रहा।"

**सोमवार, 19 नवम्बर :** "ऐसा महसूस हो रहा है कि पंडितजी की अवस्था कुछ अच्छी हो रही है। अब वे कुछ बातचीत भी करने लगे हैं। बातें ज्यादा समझते हैं। पत्रिकाएँ उलटते-पलटते रहते हैं। बच्चों के बारे में दिन-भर पूछते रहे हैं। चिट्ठी-पत्री को भी पहिचान लेते हैं। डॉ. मारगरिता शाम को देखने आईं। रोगी की प्रगति को देखकर वे खुश हैं। उनको दाँत के डॉक्टर के पास ले गये। डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना आईं।

"जया बेटी और सच्चिदाजी को पत्र भेज दिये। दिल्ली से श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की चिट्ठी आई। राहुलजी के बारे में लेख और फोटो माँगे हैं। लेख भेज दूँगी। भारतीय दूतावास के मिस्टर अरोड़ा भी आये। बच्चों के पासपोर्ट के लिए फार्म भरकर ले गये हैं। Financial Supporter में माता-पिता (Parents) के नाम दिए। बाद में देख लेंगे। बच्चे किसी तरह यहाँ पहुँच तो जायें।"

**मंगलवार, 20 नवम्बर :** "पंडितजी आज काफी अच्छे मूड में थे। अब रोना धीरे-धीरे कम हो रहा है। टहलना पसन्द करते हैं और काफी टहलते हैं, मैं उनकी बाँह पकड़कर चलाती हूँ, गिरने का डर रहता है। आजकल खाना ठीक से खा लेते हैं। पढ़ना-लिखना तो ठप्प है ही, पर यदि दिमाग अच्छा हो जाये तो शायद पढ़ने-लिखने भी लग जायँ। उनको पता है कि बच्चे आनेवाले हैं, इसलिए बार-बार पूछते रहते हैं–'बच्चे कितने दिन में आयेंगे ?' अब उनके चेहरे पर कान्ति दिखाई देने लगी है। आज उनको देखने के लिए डॉ. मारगरिता के बदले डॉ. अन्तानिना आईं। ये भी हार्ट स्पेशलिस्ट हैं।

"भारतीय दूतावास से फोन आया। बच्चों के गार्जियन के बारे में पूछा। मैंने लाल साहब (हमारे पड़ोसी कप्तान लाल) का पता दे दिया है। बच्चे आ जायें तो हमें शांति मिलेगी।

"भारत और चीन के बीच के युद्ध की बुरी खबरें आ रही हैं। आसाम के क्षेत्र में चीनी फौजें घुस आईं हैं। वहाँ की युनिवर्सिटी को अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया गया है।"

**बुधवार, 21 नवम्बर :** "पंडितजी अब रोते कम हैं, पर टेबलेट के बिना सोते नहीं। इस समय (रात के साढ़े 11 बजे) भी वे जगे हुए हैं। उनमें चेतना भी आ रही है। पढ़-लिख नहीं सकते, पर बातें काफी समझ लेते हैं। टहलने का शौक रखते हैं, कोरीडोरी में देर तक टहलते हैं, मुझे भी उनके साथ चलना पड़ता है, क्योंकि उनके गिर पड़ने का डर रहता है। आज उनकी जाँच करने डॉ. अन्तानिना आईं। पंडितजी बिस्तर पर बैठे हुए थे, डॉक्टर ने उनसे हाथ मिलाया और उनके पास बैठ गईं। मुझसे वह बोलीं–'कमला, अब तुम को इंटरप्रेटर की जरूरत नहीं है। तुम तो रूसी भाषा बोलने लगी हो, हिन्दी और अंग्रेजी तो जानती ही हो।' आज डॉक्टर

कुछ देर तक हमारे कमरे में बैठीं, फिर पंडितजी की बाँह पकड़कर बाहर टहलने ले गईं, दूसरी तरफ मैंने पकड़ा। थोड़ी देर तक पंडितजी को पैरों से चलवाकर फिर कमरे के अन्दर सोफे पर बिठाकर हँसने लगीं। पंडितजी भी डाक्टर के व्यवहार से खुश थे।

"यहाँ के डॉक्टर लोग मरीज के साथ व्यवहार करना जानते हैं। कोई अहंकार नहीं, कोई दिखावा नहीं। ये लोग अपने मरीजों के साथ स्नेह और सहानुभूति का बर्ताव करते हैं, उनमें संवेदनशीलता होती है जो अपने देश में देखने को नहीं मिलती।"

**गुरुवार, 22 नवम्बर :** "आज सबेरे ही पंडितजी को कोरीडोर में टहलाने ले गई। डॉक्टर मारगरिता आज नहीं आईं। उनके बदले डॉ. अन्तानिना रोगियों को देख रही थीं। सुबह पंडितजी को डेन्टिस्ट के पास भी ले जाना पड़ा और वहाँ आधा घंटा बैठना पड़ा।

"दिन के डेढ़ बजे के बाद डॉक्टर फिर पंडितजी को देखने आईं। वह उनसे कुछ प्रश्न पूछ रही थीं, पर उत्तर में पंडितजी रोने लगे। शायद बोल न पाने की अनुभूति से ऐसा करते हों। रात को उन्हें कम नींद आई, रोते भी रहे बीच-बीच में। लगता है फिर उनका रक्तचाप अधिक हो गया है।"

**शुक्रवार, 23 नवम्बर :** "आजकल के लिए पंडितजी पर एक लेख लिखा और सादे कागज पर उतार लिया। मैं अपने लेखन में इतनी एकाग्र हो गई कि डॉक्टर विजिट करने आईं और पंडितजी की बाँह थामे कोरीडोर में टहला रही थीं, यह भी पता नहीं चला। उन्होंने मेरे बारे में भी नर्स से पूछा था, पर मैं तो अपने काम में खो गई थी, डॉक्टर ने मुझे डिस्टर्ब नहीं किया।

"कुछ देर के बाद डॉक्टर फिर आईं। उन्होंने राहुलजी को ज्यादा टहलने के लिए मना किया। अधिक टहलने से हार्ट के खराब होने का डर रहता है। आज उनकी हालत अच्छी रही, कुछ सुस्त भी थे। उनकी मालिश और कसरत हुई। डॉ. मारगरिता की जगह डॉ. अन्तानिना शाम को भी उन्हें देखने आईं। डॉ. तात्याना भी आईं। पर पंडितजी चुपचाप रहते हैं, बोलना सिखाने पर भी चुप ही रहे। अभी उनका दिमाग स्थिर नहीं हुआ है। आज वे रेडियो सुन रहे थे।

"बड़ी प्रतीक्षा के बाद आज इगोर की चिट्ठी आई। माँ और बेटे को डॉक्टर ने आने की इजाजत नहीं दी है। इगोर ही चले आते तो भी अच्छा रहता।"

इगोर का पत्र यहाँ प्रस्तुत है :

*Dear Madam,*

*At your request we telephoned to Doctor Margarita Pavlovna on the 12th of November. She did not give us the permission to visit my father neither today nor in the near future : he is still very ill, weak and nervous.*

*Wouldn't you be so kind as to inform me about my father's health in future ? I shall be very much obliged to you. I don't lose hope that his candition will improve and we will be able to see him.*

*Please give him my love.*

*Yours truly*
*Igor.*

**शनिवार, 24 नवम्बर :** "आज राहुलजी बहुत सुस्त रहे। नाड़ी की गति भी तेज रही। फिर दिन-भर सोते ही रहे। थोड़ा टहलाया भी। चेहरा देखने से तो वे कतई बीमार मालूम नहीं होते। पुस्तक पढ़कर सुना दिया, सुनने की रुचि रखते हैं। पत्रिकाएँ पलटते रहे, लिख नहीं सकते, रोना कुछ कम हुआ। भोजन ठीक से करते हैं। बातें भी कुछ ज्यादा समझ रहे हैं। 'बच्चे कब आयेंगे ?' यही पूछते रहते हैं। इगोर बेचारे को आने की अनुमति नहीं मिली, कितना दुःख हुआ होगा।"

**०१रविवार, 25 नवम्बर :** "सबेरे भारत के राजूदत श्री कौल, प्रथम सचिव तथा उनकी पत्नी आईं। माननीय राजदूत ने बताया कि जया-जेता के पासपोर्ट के लिए दिल्ली में लिखा है। यह भी पूछ रहे थे–'उन दोनों के

लिए हवाई जहाज का टिकट खरीद देनेवाला कोई है ?' मैंने कहा–'ऐसा आदमी तो कोई भी नहीं।' उन्होंने कहा कि वे इस विषय में श्रीमती इन्दिरा गाँधी को लिखेंगे। रहने की जगह के बारे में पूछ रहे थे। मैं क्या बता सकती हूँ, खुद तो अस्पताल में हूँ।

"पंडितजी आज कुछ अच्छे रहे। 12 बजे तक तो गहरी नींद सो रहे थे। आज डॉ. अन्तानिना की ड्यूटी थी। शायद भारतीय राजदूत के यहाँ से फिर फोन आया था, इसलिए डॉक्टर फिर 5 बजे शाम को पंडितजी को देखने आईं। वह भी हमारे बच्चों के बारे में पूछ रही थीं। राहुलजी को कोरीडोर में कुछ देर टहलाया। अभी कम रो रहे हैं, काश कि जल्दी अच्छे हो जाते! उन्हें कुछ पढ़कर सुनाया। उनकी बोली अभी भी उतनी साफ नहीं हुई, पर पहिले से कुछ ठीक बोलते हैं।"

**सोमवार, 26 नवम्बर :** "रात पंडितजी को बार-बार पेशाब लगी, पानी भी बार-बार पिलाना पड़ा। आज दिन में शांत रहे। बेमतलब का रोना अब भी चलता है, परन्तु पहले से कम रोते हैं। आधे दिन तक तो वे पत्रिकाएँ देखते-पलटते रहे। फिर डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना उनको देखने आईं। कह रही थीं, पहले से अच्छे हैं। बाहर घुमाने ले जाने को कहा। पंडितजी को कपड़ा पहनाया, कोट अस्पताल से दिया। ह्वील चेयर (Wheel Chair) पर बिठाकर साढ़े 3 बजे बाहर ले गये, परन्तु तब तक सर्दी काफी हो गई थी, अतः जल्दी लौटाकर ले आये। डॉ. तात्याना आईं, उनको कुछ लिखना सिखा गईं। पंडितजी के रंग-ढंग को देखकर कभी-कभी तो वह निराश हो जाती हैं। डॉ. अन्तानिना भी राउण्ड लगाकर गईं।"

**मंगलवार, 27 नवम्बर :** "पंडितजी आज कम रोये। किसी को देखकर रो पड़ना, खैर, यह तो अभी जारी है। मेगजीन देख रहे थे, रेडियो से खबर भी सुन रहे थे। कोरीडोर में कुछ देर टहलाया उनको। कुर्सी पर भी काफी देर तक बैठे रहे। लकड़ी के बने अंग्रेजी के अल्फाबेट के कुछ अक्षर दिखाये। जिस अक्षर को मैंने माँगा, उन्होंने उठाकर दे दिया। इसका मतलब है वे अक्षरों को कुछ-कुछ पहिचानने लगे हैं, परन्तु लिखना अभी नहीं कर सकते। तो भी आज कुछ चमत्कार तो उन्होंने दिखाया, बड़ी खुशी हुई। आज दिन में उन्होंने पेशाब बहुत कम की।"

**बुधवार, 28 नवम्बर :** "पंडितजी ने आज फिर गड़बड़ कर दी। पेशाब-पाखाने का कोई होश नहीं। कभी तो छोटे बच्चे से भी गये-बीते हो जाते हैं। डॉ. तात्याना भी अब उनको सिखाने से ऊब गईं हैं। वे कुछ भी पढ़ना या लिखना नहीं सीख सके। इसलिए डॉ. तात्याना का उकता जाना स्वाभाविक ही है। इतने दिनों से सब लोग उनकी सेवा कर रहे हैं, पर उनका स्वास्थ्य थोड़ा भी नहीं सुधरता, ऊपर से पेशाब-पाखाने के लिए भी नहीं बोलते, बड़ी मुश्किल हो गई है। आज डॉ. मारगरिता उनको देखने आई थीं।"

**गुरुवार, 29 नवम्बर :** "बच्चों का यहाँ आना संदिग्ध है। आज पंडितजी फिर दिन-भर अच्छी हालत में रहे। आज बातें भी काफी कीं। कुछ लिखा, पर उसमें अभी कोरे हैं, बातचीत ही अधिक करते हैं। मुझे कुछ लिखते हुए देखकर पूछ रहे थे–'क्या लिख रही हो ? हमें भी सुनाओ। बच्चों को चिट्ठी लिखी ?' यही सब पूछते रहे। भूल जाते हैं, फिर पूछने लगते हैं। अब रोना कुछ कम हुआ है। बोली आज कुछ साफ मालूम हुई, पर पेशाब पर नियंत्रण नहीं रख सकते। आज भी वे देर तक सोफे पर बैठे रहे, कोरीडोर में भी टहलाया। चेहरे पर रौनक आ गई है। डॉ. अन्तानिना और डॉ. तात्याना भी उनको देखने आईं। तात्याना बेचारी बड़ी लगन से उनको पढ़ना-लिखना सिखा रही हैं, पर खास सफलता नहीं मिली है।"

**शुक्रवार, 30 नवम्बर :** "दार्जिलिंग से भेजा जया बिटिया और मेरी मझली बहन का लिखा 12 नवम्बर का पत्र आज मिला। चीन-भारत-युद्ध का असर उधर सीमान्त क्षेत्र पर भी पड़ा है। अबकी बार वहाँ सिर्फ जेता के स्कूल माउंट हरमन की ही वार्षिक परीक्षा हुई, शेष स्कूल नवम्बर 7 को ही बन्द कर दिये गये। परीक्षा अगले वर्ष में होगी। हमारे पड़ोसी कप्तान लाल भी सपरिवार नीचे पूर्णिया जा रहे हैं। उन्होंने जया-जेता और मेरी बहन को भी कलिम्पोंग जाने के लिए कह दिया। पत्र से लगता है कि इस समय बच्चे लोग कलिम्पोंग चले गये होंगे।

"कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि पंडितजी की हालत सुधर रही है। पढ़ना-लिखना तो वे कर नहीं

सकते, सब भूल चुके हैं, पर बातें समझ लेते हैं। आज उनका थोड़ा टहलना हुआ। उनको टेलीविजन प्रोग्राम भी दिखाया, बड़े गौर से देख रहे थे। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना शाम को आईं, कुछ देर तक पंडितजी के पास बैठी रहीं। पंडितजी को बच्चों की बड़ी फिक्र है, पर उनके यहाँ आने की उम्मीद कम ही दीख रही है।"

## दिसम्बर 1962

**शनिवार, 1 दिसम्बर :** "रात-भर बर्फ पड़ने से चारों तरफ सफेद ही सफेद दृश्य दिखाई देता है। सुबह टहलने गई थी, पर बर्फ में पैर फिसल जाने से लौट आई। स्केटिंग करना हमें नहीं आता। पंडितजी की हालत पूर्ववत् रही। दिन में नींद पूरी कर लेते हैं वे, रात को 2 बजे के बाद सोये। पेशाब हर 15 मिनट पर करते रहे। उनको बीमार पड़े भी अब एक वर्ष हो रहा है। सुधार के लक्षण नहीं दिखाई देते। कभी-कभी तो पागलपन दिखा ही देते हैं। उनको ऐसा क्यों होता है, कुछ समझ में नहीं आता।"

**रविवार, 2 दिसम्बर :** "बाहर बर्फ गिरती रही। अब बाहर टहलना शायद नहीं होगा। आज सबेरे कामरेड चन्द्रशेखरन, डा. शांति राय और एक सरदारजी आये। थोड़ी ही देर बाद महामहिम राजदूत, पंडित सुन्दरलाल जी और इलाहाबाद के श्री विश्वम्भर पाण्डेजी आये। राजदूत के सेक्रेटरी ने सबेरे ही फोन से सूचित किया कि जया-जेता के यहाँ आने का प्रबन्ध न हो सका। पासपोर्ट भी बन गया था, पर यहाँ की सरकार ने पैसेज देने से इन्कार कर दिया। पैसेज का भी भारत सरकार की ओर से इन्तिजाम हो गया था, लेकिन यहाँ वे लोग ठहरेंगे कहाँ ? बच्चों के अस्पताल के डॉक्टर ने भी अनुमति नहीं दी, यह कहकर टाल दिया कि अब राहुल अच्छे हो रहे हैं। 4-5 हफ्ते में वे यहाँ से चले जायेंगे। इसलिए बच्चों को यहाँ नहीं बुलाना चाहिए।

"इसलिए अब बच्चे नहीं आवें तो अच्छा है। दिसम्बर के अन्त में या जनवरी के शुरू में हमें यहाँ से चले जाना होगा। अब मन ऊब गया है। यहाँ से जल्दी से जल्दी चले जाने में ही कल्याण है। जनवरी का महीना और फरवरी का आधा महीना दिल्ली और कलकत्ता में बिताना होगा। आगे और क्या-क्या मुसीबतें आयेंगी, कैसी-कैसी चोटें लगेंगी मन पर, यह कौन जानता है ? बेचारे बच्चों को व्यर्थ में ही आशा दिखाई। कितना बुरा हुआ। अब किसी की भी बात पर आशा और विश्वास हमारे मन से उठ गया है।

"पंडितजी अच्छे मूड में रहे। आज मित्रों को देखकर बेचारे बहुत रोये, अपनी बात प्रकट नहीं कर सकते, इससे उनको बहुत दुःख हो रहा था। पढ़ना-लिखना तो अब आयेगा नहीं, पर अब उनका दिमाग भी ठिकाने में आयेगा, इसमें सन्देह है। तो भी यदि उनका रक्तचाप और मधुमेह नियंत्रण में रहे, तो उनका दिमाग भी काबू में रहेगा, बच्चों के लिए तड़पते हैं, उन्हीं के साथ रहें तो अच्छा।"

**सोमवार, 3 दिसम्बर :** "राहुलजी आज खामोश रहे। उन्हें पढ़ना-लिखना कुछ भी नहीं आ रहा। डॉ. तात्याना अब हार गई हैं। याददाश्त के लिए ही उनको यहाँ चिकित्सा के लिए लाया गया, उस पर ही यहाँ वालों ने ध्यान नहीं दिया। जैसे विक्षिप्त लायी थी, वैसे ही भारत लौटाकर ले जाना होगा। खैर, अब उनके स्वस्थ होकर पहिले की तरह बन जाने की तो बिल्कुल आशा नहीं है। जितने दिन भी जीयेंगे, उन्हें बच्चों के संग रखना ही ठीक है। यहाँ पर न उनका मन लगता है न मेरा। एक-एक दिन बड़ी मुश्किल से बीत रहा है। अपना देश अपना ही होता है। अपने देश में भाषा की सुविधा है, जिससे सारी बातें, समस्याएँ डाक्टरों को समझा सकते हैं। पर यह तो विदेश है।"

**मंगलवार, 4 दिसम्बर :** "आज मुन्नू बेटे जेता की चिट्ठी मिली, जो 12 नवम्बर की लिखी गई थी। पता लिखनेवाले ने भूल लिख दिया था। भैया लिखते हैं, 'I could not write to you before because I had no time.' पढ़कर बड़ी हँसी आई। आखिर वे कौन से काम में इतने Busy रहते थे। दोनों बच्चों को आज पत्र भेज दिया।

"सच्चिदाजी की 13 नवम्बर की चिट्ठी मिली। उन्होंने जया-जेता को दिल्ली ले आने की बात लिखी है।

"पंडितजी की दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। पढ़ना-लिखना तो है ही नहीं। साधारण बातें भी

ठीक से नहीं करते। पेशाब रोज बिस्तर पर कर देते हैं। दिन-भर सो लेते हैं, रात को जागे रहते हैं। रोना अभी तक बन्द नहीं हुआ है। उनको कुछ पढ़कर सुनाया, कोरीडोर में टहलाने ले गई। तात्याना पेत्रोव्ना आईं। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना और प्रोफेसर पोपोवा भी आईं। डॉ. मारगरिता पालोव्ना तो पंडितजी की दिमागी खराबी की ओर जरा भी ध्यान नहीं देतीं। केवल हाथ-पाँवों को देखकर 'स्यो बुलित, खरासो' (अच्छे हो रहे हैं) कह देती हैं। हाथ-पाँव तो पहले भी चलते ही थे। यहाँ तो उनको दिमागी इलाज के लिए लायी थी, पर उसी ओर इन लोगों ने ध्यान दिलाने पर भी ध्यान नहीं दिया। खैर, अब कहने से क्या फायदा ? भारत लौटने पर देखेंगे। अब इन पागल रोगी को मैं कहाँ ले जाकर रखूँ ? यही सोचने की बात है। अब समस्या और भी जटिल होती जा रही है। बड़े शहर में रखूँ तो गरमी से इनका दिमाग खराब हो जाता है, छोटे नगर (दार्जिलिंग) में रखूँ तो डॉक्टर और दवा का अभाव। क्या करें, रात-भर सोचती रही।"

**बुधवार, 5 दिसम्बर :** "थोड़ी धूप निकली, पर सर्दी बहुत अधिक रहती है। सबेरे पंडितजी को इन्वैलिड चेयर पर बिठाकर बाहर घुमाने ले गये। बेचारे, सर्दी से तकलीफ होती है। कोरीडोर में भी काफी टहले। आज कोई भी डॉक्टर उनको देखने नहीं आया, शायद जरूरत न समझते हों। यूँ तो वे अच्छे ही लगते हैं, सुन्दर लगते हैं, पर उनकी दिमागी हालत में कोई फर्क नहीं आ रहा है। याददाश्त तो समाप्त ही है। वैसे कोशिश जारी रहनी चाहिए। आज वे कुछ अच्छे मालूम हो रहे हैं। घर जाने की चर्चा बार-बार करते हैं। 'बच्चे कब आयेंगे ?' यह पूछना उन्होंने छोड़ दिया है। 'अब घर कब चलेंगे ?' यही पूछते रहते हैं। बातें बहुत समझते हैं। मेरे लिखने को बड़े ध्यान से देखते हैं, पूछते हैं–क्या लिख रही हो ? सारा ध्यान उनका बच्चों पर ही केन्द्रित है। कल रात को 'गोवर्धन पाण्डे मेरे पिता का नाम है' कह रहे थे। बस उनको याद दिलाते रहने की जरूरत है। उनमें भुलक्कड़पन तो है ही। चेहरे पर रौनक दिखाई देती है।"

**गुरुवार, 6 दिसम्बर :** "महापंडितजी की हालत में कुछ सुधार तो हुआ है, पर उनकी स्मृति का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह बच्चों तक ही सीमित है। अब तो नार्मल होने की आशा ही नहीं है। घर जाने के लिए बार-बार कहते रहते हैं। उनका चेहरा सुन्दर दिखाई देता है। बरामदे और कोरीडोर में टहलाया उनको। पढ़ना-लिखना ठप्प, मेरे लिखने को ध्यान से देखते रहते हैं। खैर, पागलपन न रहे, यही बहुत है।

"भदन्त आनन्दजी का 20 नवम्बर का पत्र आज ही मिला। राहुलजी के मित्रों में से यही एकमात्र ऐसे रहे जो राहुलजी की बीमारी के साथ-साथ मेरी समस्याओं के बारे में भी सोचते हैं।"

**शुक्रवार, 7 दिसम्बर :** "राहुलजी की अवस्था आज पूर्ववत् रही। चीजों को पहिचानने लगे हैं, पर नाम एक का भी अपने आप बतला नहीं सकते। जीभ साफ नहीं है। आज वे अखबार के पन्ने पलटते रहे थे। खाना अपने हाथ से खाने लगे हैं, परन्तु पढ़ने-लिखने के मामले में अभी कोरे हैं। अब शेष जीवन में उनको पढ़ना-लिखना शायद ही आये। कहाँ गया उनका वह विलक्षण मस्तिष्क, जिसकी उपज इतने सारे ग्रन्थ थे। कहाँ गई उनकी स्मरणशक्ति, जो सैकड़ों वर्षों का इतिहास उन्हें याद था। आज उनकी यह दशा देखकर मेरा मन बहुत ही दुःखी हो रहा है। मानव का शरीर पता नहीं किस यंत्र से बना हुआ है, जिस पर उम्र ढलते जाने पर उसका नियंत्रण नहीं रहता। आज राहुलजी कितने असहाय हो गये हैं। उनको एक पल के लिए भी अकेला नहीं छोड़ सकते, मुझे सामने न देखने पर व्याकुल होने लगते हैं। विधाता, यह आपको क्या हो गया है ? मैं कैसे आपको स्वस्थ बनाऊँ ? मस्तिष्क की अवस्था कुछ सामान्य हो जाती तो शायद कुछ आशा दिखाई देती, किन्तु साल-भर की चिकित्सा के बावजूद भी उनके मस्तिष्क की दशा में कोई सुधार नहीं हो रहा है। इसलिए अब उनके स्वस्थ होने की आशा नहीं दिखाई दे रही है। वे घर जाने के लिए हठ करते हैं। खैर, एक दिन तो जाना ही है।"

**शनिवार, 8 दिसम्बर :** "पंडितजी को यह भी याद नहीं कि हम इस समय किस जगह बैठे हैं। बच्चों के नाम भी भूल गये हैं, याद दिलाने पर ही कह देते हैं। बार-बार पूछते हैं–हम कौन जगह बैठे हैं। बतला देने पर थोड़ी ही देर बाद भूल जाते हैं और फिर पूछने लगते हैं। डॉ. मारगरिता और डॉ. तात्याना आईं। डॉ. मारगरिता तो उनके हाथ-पाँव के चलने को ही देखती हैं। यहाँ आने का मुख्य उद्देश्य तो यही था कि

किसी प्रकार उनके मस्तिष्क की दशा में सुधार आ जाये, पर उसकी ओर तो यहाँ ध्यान नहीं दिया। अभी नहीं मालूम हमें यहाँ और कितने दिनों तक रहना होगा। अब हमारा बिल्कुल ही मन नहीं लगता।"

**रविवार, 9 दिसम्बर :** "आज सुबह डॉ. अन्तानिना उनको देखने आईं। इन डॉक्टर की आज नाइट ड्यूटी थी। वे पंडितजी को बाँह पकड़कर कोरीडोर में टहलाने ले गईं। रोगी के प्रति इनका व्यवहार कितना अच्छा है, काश कि हमारे देश के डॉक्टर भी ऐसा ही करते। टहलकर आने के बाद पंडितजी 12 बजे तक सोये ही रहे। रोना छोड़ते नहीं, बात साफ नहीं बोलते, पढ़ने-लिखने में उनको दिलचस्पी नहीं। बेचारी तात्याना इनको रोज पढ़ाती-लिखाती हैं पर इन्होंने कुछ भी नहीं सीखा। वे तो एबनार्मल बन चुके हैं। आज वे बस मैगजीन देखते रहे। मैं जैसे ही बोलूँ, बस वे रोना शुरू कर देते हैं। दिन-भर पेशाब कम करते हैं, रात को घड़ी-घड़ी उनको पेशाब लगती है, हमें जागे ही रहना पड़ता है क्योंकि आजकल रातवाली नर्स बहुत दिनों से नहीं आती।

"आज कोई मिलने नहीं आया, दूतावास से भी नहीं। एक कलम की जरूरत थी, लेकिन नहीं मिली। मेरी कलम पता नहीं यहाँ किसको पसन्द आ गई। दूसरे की कलम से लिखना पड़ रहा है।"

**सोमवार, 10 दिसम्बर :** "पंडितजी की मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। अब घूमना-फिरना नहीं चाहते, सुस्त रहते हैं। पर डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना उनको घुमाने के लिए कहती हैं जब कि जरा-सा चलने से ही उनकी नाड़ी की गति तेज हो जाती है, थक जाते हैं। उनके मस्तिष्क के विकार की ओर इन लोगों ने ध्यान ही नहीं दिया, बड़ा दुःख होता है। रोना बन्द नहीं करते। जब बच्चों के नाम ही याद नहीं तो और क्या आशा हो सकती है ?"

**मंगलवार, 11 दिसम्बर :** "पंडितजी पिछले साल आज की रात तक ठीक थे, लोगों से मिले थे, मेरे लिए खाने पर इन्तजार कर रहे थे। कल की बात मालूम होती है, पर आज पूरे 12 महीने हो गये उन्हें बीमार पड़े। अब पहले की तरह घूम-फिर सकेंगे, लोगों से प्रसन्न होकर बातें करेंगे, इसकी आशा नहीं है। छोटे बच्चों की-सी जिन्दगी हो गई उनकी, कुछ याद नहीं, न पढ़ सकते हैं, न सोच सकते हैं। दिमाग ही सुन्न हो गया है उनका, जैसे कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम का हो गया था। अब कुछ अच्छे होंगे, इसकी उम्मीद भी जाती रही। रूस में हम उनकी मानसिक चिकित्सा के ख्याल से ही आये थे, पर उसकी ओर डॉक्टरों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। अब भारत लौटकर भी उनको कहाँ रखना होगा, यही बड़ी समस्या है। हमारा जीवन बिल्कुल अव्यवस्थित हो गया है।"

**बुधवार, 12 दिसम्बर :** "पंडितजी के अच्छे होने की आशा अब नहीं रही। एक भी तुक की बात नहीं करते। मुँह फाड़कर रोना अभी जारी है, उन्हें कुछ भी याद नहीं रहता। आज उनको मस्तिष्क के पक्षाघात के शिकार हुए पूरा एक साल हो गया। पिछले वर्ष आज के ही दिन वे संज्ञाहीन हो गये थे, तब से होश में आये ही नहीं। आधे पागल की जैसी अवस्था हो गई है। तात्याना पेत्रोव्ना भी निराश हो गई हैं। बेचारी तीन महीने से उनको बोलना-पढ़ना-लिखना सिखा रही हैं, पर उन्होंने कुछ भी नहीं सीखा। पढ़ने-लिखने से इन्कार करते हैं। शाम को उनका रक्तचाप 190 तक पहुँच गया था, बाद में नार्मल हो गया। अब मेरी भी सारी आशाएँ समाप्त हो गई हैं।"

**गुरुवार, 13 दिसम्बर :** "आज फिर पंडितजी के दिमाग का संतुलन बिगड़ गया है। रात को हर 15 मिनट पर पेशाब कर रहे थे, हम को रात-भर जगे रहना पड़ा। उनका टेम्पर भी सातवें आसमान पर था। इस तरह बीच-बीच में उनका दिमाग क्यों असन्तुलित हो जाता है ? इसके पीछे क्या कारण है ? यह कोई नहीं बतलाता। सिर्फ रक्तचाप का बढ़ जाना ही इसका कारण नहीं हो सकता। क्या यह पैतृक रोग है ? अब मेरी निराशा चरम सीमा पर पहुँच गई है। उनकी दिमागी हालत इस तरह बिगड़ती जा रही है कि मैं कैसे अकेले उनको सँभालूँ। अब यहाँ से घर चले ही जाना चाहिए। कैसा अभागा जीवन है मेरा। अर्धविक्षिप्त आदमी की सेवा में ही मेरा सारा समय चला जा रहा है, फिर भी उनको कोई लाभ नहीं हो रहा। बच्चों का भविष्य अनिश्चित है। क्या करूँ ? कैसे समस्या का समाधान होगा ?"

**शुक्रवार, 14 दिसम्बर :** "दो बजे रात तक राहुलजी जगे ही रहे, उनके मस्तिष्क की अवस्था में कोई सुधार

नहीं। डॉक्टर लोग साफ-साफ भी नहीं कहते। हमें यहाँ अटकाकर रखा है, पता नहीं क्यों ? वे दिन-भर सोते हैं, रात-भर जागते हैं। बोलना कम, रोना ज्यादा। दिन-भर पेशाब नहीं, रात-भर पेशाब ही पेशाब। आज इनको देखने डॉ. अन्तानिना आईं। पहले भी वह आई थीं, पर मैं नहीं थी। पंडितजी का रक्तचाप आज 160/90 रहा।"

**शनिवार, 15 दिसम्बर :** "आज नर्स ड्यूटी पर नहीं आई, इसलिए पंडितजी को खिलाना-पिलाना हमने किया। कमरे से बाहर जाना नहीं हुआ। ऊब गया है मेरा मन यहाँ से, बिल्कुल बोर हो गये हैं। जल्दी बच्चों के पास जाने का मन करता है। अन्तानिना जैसी महिला डॉक्टर यहाँ न होतीं तो हमारे लिए समय बिताना भारी लगता। वह आकर मेरा भी हालचाल पूछती हैं, सांत्वना देती हैं। अन्य डॉक्टर सिर्फ राहुलजी को देखकर चली जाती हैं, पर अन्तानिना हमारा भी ख्याल रखती हैं। मेरे ऊपर-विपत्तियाँ आई हैं, यह वे खूब अच्छी तरह से समझती हैं। स्नेही महिला हैं, आज वे कई बार हमें दिखाई दीं, हर समय मुस्कुराते हुए मिलीं। काश कि मैं उनकी भाषा ठीक तरह से बोल सकती।

"पंडितजी की अवस्था पूर्ववत् है। आज रोना थोड़ा कम हुआ, बातें भी कम कीं। मैं भी ज्यादा बोलती नहीं, बोलकर भी क्या करें, वे तो क्षण-भर में ही भूल जाते हैं। आजकल उनको टहलना अच्छा नहीं लग रहा है। पत्रिकाएँ देखते रहे, पन्ने पलटते रहे, पढ़ नहीं सकते। आज कुछ ठीक बोल रहे थे। उनका रोना तो जया-जेता को देखकर ही बन्द होगा। अब उनका स्वास्थ्य ठीक हो जायेगा, इसकी आशा कम है।

"बच्चों से बिछड़े आज ठीक पाँच महीने हो गये।"

**रविवार, 16 दिसम्बर :** "पंडितजी की हालत में कोई खास सुधार नहीं दिखाई देता। उनका रोना-धोना आज भी चलता रहा। बच्चों को देखने के लिए तड़पते हैं। काश कि वे अभी तक उनके पास रहे होते तो मानसिक अवस्था में कुछ तो सुधार अवश्य हो गया होता। परन्तु बीमारियाँ भी अनेक हैं, रक्तचाप, मधुमेह और हृदय रोग जैसे रोगों से भी सावधान रहना है। घर में इन रोगों की देखभाल कैसे होगी ? टहलना पसन्द नहीं करते। रात को 3 बजे तक सोये नहीं। दिन-भर में नींद पूरी कर लेते हैं।"

**सोमवार, 17 दिसम्बर :** "भारतीय दूतावास से एक सज्जन हमें कुछ पत्रिकाएँ दे गये। पंडितजी को रात 15-15 मिनट पर पेशाब लगती है। पेशाब पर वह नियंत्रण नहीं कर पाते, होश ही नहीं रहता। दिन में डॉ. अन्तानिना आकर उनको देख गईं। रक्तचाप कितना है, उन्होंने कुछ नहीं बताया। दिमागी बीमारी का तो कोई इलाज ही नहीं हुआ, या हो सकता है इस दिमागी बीमारी का उनके पास भी कोई इलाज न हो। आज इंजेक्शन भी नहीं लगा। वे बार-बार बच्चों को खोजते रहे। जल्दी से यहाँ से जाने को मिलता तो अच्छा होता। पंडितजी को सर्दियों में घर ले जाना भी मुश्किल है, लेकिन यहाँ से मुक्ति तो मिल जाती।"

**मंगलवार, 18 दिसम्बर :** "पंडितजी बहुत रोते हैं। दिमागी हालत में कोई अन्तर नहीं आया। पत्र-पत्रिकाओं को देखते रहते हैं। लिखना-पढ़ना करेंगे अब इसकी उम्मीद नहीं है। गुस्से भी हो जाया करते हैं। डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना भी अब निराश हो गयी हैं। इतने दिनों से वह पंडितजी को लिखना-पढ़ना सिखा रही हैं। पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। दिमाग ही जब एबनार्मल है, तब सिखाने से क्या होगा। डॉ. अन्तानिना आईं सबेरे ही। पंडितजी का रक्तचाप देखा–160/80 है। वह कह रही थीं–हमें जल्दी ही भारत जाने को मिलेगा। इसका मतलब है अब छुट्टी मिलनेवाली है।

"बहुत दिनों से भारत में किसी को पत्र नहीं लिखा। पंडितजी के पागलपन के बारे में क्या लिखना।"

**बुधवार, 19 दिसम्बर :** "सबेरे डॉ. अन्तानिना पेत्रोव्ना कह गईं कि आज प्रोफ़ेसर पोपोवा आनेवाली हैं। राहुल को घुमाने नहीं ले जाना। सो प्रतीक्षा की। 11 बजे प्रोफेसर डॉक्टर नीना इलेक्सवना पोपोवा डॉ. अन्तानिना के साथ आईं। पंडितजी को देखा, उनके चलने-फिरने-खाने आदि के बारे में पूछा। मैंने कहा–यह सब तो ठीक है पर वे पढ़ते-लिखते नहीं। उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई खास बात नहीं कही। पंडितजी के दिमागी इलाज के बारे में वे चुप हैं। शायद यह रोग यहाँ भी असाध्य ही है। पंडितजी दिन-भर पेशाब नहीं करते, लेकिन रात को हर 20 मिनट में करते हैं, मुझे हर बार उठना पड़ता है क्योंकि रात को नर्स की ड्यूटी नहीं रहती।

आज सबेरे बिस्तर नहीं भिगोया। नहला दिया उनको।"

**गुरुवार, 20 दिसम्बर :** "पंडितजी सोते-बैठते रहे। दिन-भर पेशाब नहीं की, पर रात को बार-बार पेशाब कर देते हैं। किताबें देखते रहे। पढ़ना-लिखना तो वे पूरी तरह से भूल ही गये हैं। अब उनकी अक्ल एक छोटे बच्चे की-सी हो गई है। हर समय छोटे बच्चे की तरह रोते हैं। डॉ. अन्तानिना सबेरे ही आकर उनको देख गईं। वे पूछ रही थीं—तुम अकेले टहलने क्यों नहीं जाती हो ? पर यहाँ पंडितजी को एक क्षण के लिए भी छोड़ नहीं सकते, बहुत खोजते हैं मुझे। डॉ. तात्याना आज नहीं आईं। इतने दिनों तक एक एबनार्मल आदमी के साथ माथापच्ची कर रही थीं बेचारी, अब निराश हो गई हैं।"

**शुक्रवार, 21 दिसम्बर :** "आज पंडितजी के लिए मोजे-अंडरवियर आदि बहुत-सी चीजें आ गईं। हमारे लिए भी आवश्यक कपड़े भेजे हैं।

"आज उनकी आँखें जँचवाने के लिए ले गये। आँख के डॉक्टर ने कहा—उनकी आँखें तो ठीक हैं पर दिमाग खराब है। खैर, उसका क्या इलाज है ? थोड़ी देर बाद डॉ. अन्तानिना राउण्ड लगाते हुए पंडितजी को देखने आईं। उन्होंने कहा—इनको बाहर टहलाने ले जाओ। मैंने और डॉक्टर ने पंडितजी की दोनों बाँहों को पकड़कर खड़ा किया और बाहर कोरीडोर में टहलाने ले गये। वे जब पैरों से चलने लगते हैं तो डॉक्टर को बड़ी प्रसन्नता होती है। आखिर वे लोग भी तो चाहते हैं कि रोगी जल्दी से जल्दी ठीक हो जाये। पंडितजी आज फिर कुछ समझ की बातें कर रहे थे। रात को 3 बजे के बाद सोये।"

**शनिवार, 22 दिसम्बर :** "अब लगता है कि यहाँ से जल्दी छुट्टी मिलनेवाली है। सारी तैयारी हो रही है, कपड़े और आवश्यक सामान भी हमें दे गये हैं। इगोर अभी तक मिलने नहीं आये, एक बार उनको देखने की हमारी इच्छा है। पंडितजी आधे सोते और आधे जागते रहे, पत्रिकाएँ देखते रहे और कोई खास तरक्की नहीं। शायद बच्चों को देखकर कुछ प्रसन्न रहें, कुछ पहिचानने लगें, पढ़ना-लिखना अब बिल्कुल खतम हो गया। हार्ट ठीक है। दायें हाथ में दर्द होने की शिकायत करते हैं। पेशाब रात को अधिक होती है। यहाँ के चिकित्सकों ने अपनी ओर से कोशिश तो बहुत की है, पर जब रोग ही असाध्य है तो वे लोग भी क्या कर सकते हैं। इन लोगों का रोगी के साथ स्नेहमय व्यवहार ही सबसे मूल्यवान है।

"पंडितजी को लेनिनग्राद ले जाने की इच्छा है, पर सम्भावना कम है। एबनार्मल आदमी के साथ इधर-उधर जाने में कष्ट ही होगा। वे एक भी बात ढंग से नहीं करते। यदि एबनार्मलिटी न होती तो इनका भुलक्कड़पन उतना न अखरता।"

**रविवार, 23 दिसम्बर :** "पंडितजी आधे दिन तक सोते ही रहे, फिर चुपचाप बैठे रहे, चित्र देखे। उनकी स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं। उल्टी-उल्टी बातें बोलते हैं, बातें ज्यादा समझते हैं। काम अपने आप कुछ भी नहीं करते, उनका सब काम मुझको ही करना पड़ता है। पेशाब पर नियंत्रण नहीं कर सकते, इसलिए भारत में किसी के घर या होटल में रखना खतरा ही है। रोगी को या तो अपने घर में या अस्पताल में रखना ही ठीक रहता है। आज इतवार होने से अस्पताल सूना-सूना है, कोई भी डॉक्टर नहीं आया। कमरे से केवल एक ही बार बाहर निकलना हुआ है।"

**सोमवार, 24 दिसम्बर :** "ग्वालियर से आये किसी व्यक्ति ने रात को फोन किया था, जो पास के छूत रोग अस्पताल में हैं। हमसे मिलना चाहते हैं। पंडितजी का हाल ज्यों का त्यों है। डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना छुट्टी पर हैं। दूसरी डॉक्टर आकर रोगी को देख गईं।

"डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना आईं कई दिनों के बाद। अब वह निराश हो गई हैं। उनकी सहानुभूति हम पर है। कोशिश तो बहुत ही की बेचारी ने, लेकिन कोई लाभ न हुआ। खैर, क्या करें ? उनको रोग ही ऐसा लग गया है।

"आज तीन पत्र लिखे—जया तथा भदन्त आनन्दजी एवं इगोर को। इगोर अभी तक पिता को देखने नहीं आये। बहुत उत्सुक होते तो आने के लिए कोई न कोई रास्ता निकल ही आता। मेरे पत्र लिखने से क्या होगा ? अभी न आये तो फिर इस जीवन में बाप-बेटे की भेंट होने की सम्भावना कम है।"

मेरा पत्र इगोर के नाम :

*Moscow*
*23.12.62*

*Dear Mr. Igor,*

*Perhaps this might be my last letter from Moscow. We shall be leaving the hospital very soon, may be at the end of this month. I have no idea of the exact date but the arrangement of our departure has been done.*

*Your father has made an improvement in his physical health, but his mental conditon is just the same. Now it is well-known that he has got that kind of desease in his brain which is not be cured although he remembers you and has a desire to see you.*

*Won't you see him once ? Perhaps it might be the last meeting between father and son, as his condition is not better and he is already seventy. Who knows what will happen in the near future.*

*If you are coming, please contact with Com. Chandra Shekhara, he might help you. This time there is no hope for your father visiting Leningrad. Why should the authority allow an abnormal person to do that ? Being treated in Moscow I had hoped that he would restore at least half of his lost.memory, but it could not be.*

*Please convey my greetings to your mother. Wish you a very happy Christmas and the prosperous New Year.*

*Your sincerely,*
*Kamla Sankrityayana*

**मंगलवार, 25 दिसम्बर :** "आजकल नर्स बराबर के लिए नहीं रहती। पंडितजी का सारा काम मुझको ही करना पड़ता है, इसलिए फुरसत नहीं मिलती। अर्धपागल रोगी के साथ रहना पड़ता है। मेरी मुश्किलों को भारत में बैठे हुए पंडितजी के तथाकथित हितैषी मित्र और आत्मीय लोग क्या कल्पना भी कर सकते हैं ? दूसरों के सुख से अपना फायदा उठानेवाले बहुत-से लोग होते हैं, पर दुःख में साथ देनेवाला कोई नहीं होता।

"मालूम होता है आज पंडितजी का रक्तचाप बहुत बढ़ गया है, तभी उनको दूसरी दवा भी मिली है। कुछ दूर तक उनको टहलाया। आधे दिन तक तो उनकी नींद ही न खुली। अब वे कुछ ही दिनों के मेहमान लगते हैं, यह सोचकर बहुत बुरा लगता है। सँभल ही नहीं पा रहे हैं वे। सबेरे कुछ पत्रिका लाकर उनको थमा दिया, वे देखने लगे। और मैं कल रात को फोन करनेवाले भारतीय सज्जन से मिलने नीचे के हॉल में चली गई। वहाँ करीब आधा घंटा रहना पड़ा। लौटकर आई तो देखा–वे अपने आप बिस्तर पर लेट गये थे, कपड़ा भी नहीं ओढ़े हुए थे। उनको देखकर तरस आया। कितने असहाय हो गये हैं बेचारे। अब उनको थोड़ी देर के लिए भी अकेला छोड़कर कहीं जाना सम्भव नहीं है। डॉ. अन्तानिना आकर उनको देख गईं और रोगी के साथ हँसते हुए चली गईं। रक्तचाप कितना था, यह उन्होंने नहीं बताया।"

**बुधवार, 26 दिसम्बर :** "सर्दी बहुत अधिक हो गई है, इसलिए हमने बाहर जाना बन्द कर दिया है। पढ़ने के लिए अंग्रेजी की पुस्तकें हस्पताल की लाइब्रेरी से मिल जाती हैं। क्लासिक पुस्तकें हैं, बहुत अच्छी हैं। 'उमरावजान अदा' का अंग्रेजी-रूसी अनुवाद भी यहाँ पढ़ने को मिला।

पंडितजी की दशा में कोई अन्तर नहीं, बातचीत ज्यादा नहीं करते। आज कुछ अच्छी तरह से बोल रहे थे। दोनों डॉक्टर आकर उनको देख गईं, वे लोग रोगी के प्रति सहानुभूति रखती हैं।"

**गुरुवार, 27 दिसम्बर :** "पंडितजी आज करीब-करीब दिन-भर सोते रहे। एक बार जरा-सा टहलाया, और

बस। डॉ. अन्तानिना आकर उनका निरीक्षण कर गईं। आज हमारे इन्टरप्रेटर मि. यूरी ब्लादीमिरोव भी आये। खबर दी कि अब हमें शीघ्र ही भारत लौटना है। पंडितजी का दिमाग ठीक होगा, इसकी कोई गारन्टी नहीं है। धीरे-धीरे ठीक होगा, इसमें भी सन्देह है। उन्हें और भी जानलेवा रोग जो ठीक होने की कतई उम्मीद नहीं। आदमी का जीवन ही जब समाप्त होने जा रहा है तो बहुत कुछ की आशा करना भी व्यर्थ है। अब जाने की तैयारी करनी है, जैसे ही कहें चल देना है।"

**शुक्रवार, 28 दिसम्बर :** "वे आज दिन-भर सोते रहे। दवा के कारण है या अन्य कारण से, लेकिन शाम के सात बजे तक लगातार सोते ही रहे। इतने इलाज के बावजूद भी उनके स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हुआ। अभी भी उनको खाना खिलाना, टट्टी-पेशाब कराना, पेशाब से भीगे कपड़े धोना, साफ-सफाई सभी कुछ तो हमें करना पड़ता है। सबेरे नहा लेने के लिए बाथरूम ले जाने लगी तो बस गुर्राने लगे। यह कैसी बीमारी उन्हें लगी है कि पेशाब के लिए भी कह नहीं सकते, कोई नियंत्रण नहीं, अतः नहलाये बिना भी गुजारा नहीं। पिछले 13 महीनों से बिस्तर पर पड़े हैं, पर हालत ज्यों-की-त्यों है, कोई सुधार नहीं।"

**शनिवार, 29 दिसम्बर :** "आज दिन-भर मैं कमरे से बाहर नहीं निकली। इतना मन बिगड़ा हुआ है कि क्या कहें। रात को भी पूरी नींद नहीं सो सकती। मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था कि जिसका फल मुझको इस तरह भोगना पड़ रहा है। मन को शांति नहीं। पंडितजी के पागलपन के मारे नाक में दम है। हर बार पेशाब-पाखाना मुझको करवाना पड़ता है, वे होश में नहीं रहते। खाना तक भी मैं ही खिला देती हूँ। 13 महीने से बिस्तर पर पड़े हैं, आगे भी यही हाल रहेगा। भयंकर तौर से मेरा मन बिगड़ा हुआ है आज। यहाँ से जल्दी ही चले जाने की इच्छा होती है। जब उनका दिमाग जरा भी ठीक नहीं होता तो यहाँ रहकर क्या करेंगे ? अब वे अधिक दिनों के मेहमान नहीं दिखाई देते। इसलिए जीवन के अन्तिम समय में उनको घर में बच्चों के साथ ही रखना ठीक होगा। अंतिम दिनों में बच्चे उनके साथ रहें तो पिता को अच्छा लगेगा, साथ ही बच्चे भी प्रसन्न रहेंगे। मैं तो टट्टी-पेशाब साफ करते-करते तंग आ गई। यहाँ रहने की बिल्कुल इच्छा नहीं होती, एकदम भाग जाने का मन करता है।"

**रविवार, 30 दिसम्बर :** "बर्फ गिरती रही। बाहर सुहावना दृश्य है। पर मेरा तो घूमना-फिरना ही बन्द है। मन उदास रहता है। अपने को पुस्तकें पढ़ने में उलझाये रखती हूँ।

"आज छुट्टी का दिन है। सबेरे ही डॉ. अन्तानिना के साथ अन्य चार डॉक्टर आये। हम दोनों को नववर्ष की शुभकामनाएँ रूसी भाषा में दीं, हाथ मिलाये। डॉ. अन्तानिना ने गाल पर चुम्बन किया। इतना स्नेह मुझे कभी किसी से नहीं मिला था। तीन-चार दिनों की छुट्टी है, इसके बाद ही वे लोग ड्यूटी पर आयेंगी। पंडितजी आज शाम को सोते रहे। इतना सोना भी अच्छा नहीं है उनके लिए। घूमना-फिरना या बैठना ही नहीं चाहते। आज गुर्रा भी रहे थे। पेशाब रात को बहुत करते हैं।"

**सोमवार, 31 दिसम्बर :** "आज 1962 का अन्तिम दिवस। यह साल अपने लिए बहुत दुःखमय बीता। पंडितजी तब से बिस्तर पर हैं, अच्छे होने की कोई सम्भावना नहीं है। साढ़े पाँच महीने हो गये हमें बच्चों से अलग हुए। इससे अधिक दुःखद हमारे लिए और क्या हो सकता है, पूरे वर्ष बच्चे उपेक्षित-से रहे। मुझे चिन्ताओं से घिरे रहना पड़ा। आगे सुख-शांति के दिन आयेंगे, इसकी तो कोई आशा ही नहीं है। अब तो सारा जीवन काँटों में बिताना है।

पंडितजी आज भी करीब दिन-भर ही सोये। आँखें थकी-सी हैं, जिनमें कोई चैतन्य नहीं है। घर जाने का समय आ गया है। यदि उनको फिर कुछ हो गया तो मैं कैसे उनको ले जाऊँगी ? आज जैसी उनकी हालत है, इससे आशंका हो रही है कि कहीं फिर उनको स्ट्रोक न हो गया हो।

"रात को सेन्ट्रल कमिटी की ओर से नये वर्ष के लिए बहुत सुन्दर उपहार मिले। मेरे लिए छोटा 'क्रिसमस ट्री', एक रूसी रेकार्ड और एक फाउन्टेन पेन भी जिसकी मुझे बड़ी जरूरत थी। पंडितजी के लिए भी एक सुन्दर 'क्रिसमस ट्री' और एक प्लेट आये। यहाँ नववर्ष को धूमधाम से मनाते हैं।

"यह दुःखद वर्ष अब समाप्त हो रहा है थोड़ी देर के बाद।"

# चरम परिणति : जनवरी 1963

**मंगलवार, 1 जनवरी :** "वर्ष 1963 का आज प्रथम दिवस। 1962 का साल तो परेशानियों में ही बीता, किसी एक दिन भी चिन्ता से मुक्ति नहीं मिली। काम भी न मिला, न ही कोशिश करने का मौका मिला। अब नया साल शुरू हो गया है। यह साल भी चिन्ताओं में ही बीतेगा, यही आशा है। आज दुनिया में सबसे अभागा व्यक्ति मेरे सिवा और कौन होगा ?

"राहुलजी की चाल फिर गड़बड़ा रही है। अधिक सोना, बिस्तर भिगोना, यह सब फिर शुरू हो गया है। उनका दायाँ पाँव लँगड़ाता है, बैठना पसन्द नहीं करते, पत्रिकाएँ नहीं देखते, न ही बातचीत करते हैं। बोली भी साफ नहीं है। क्या फिर उनको स्ट्रोक हो गया ? आजकल तो डॉक्टर भी उतने तत्पर नहीं रहते। इनकी जाँच ठीक से कर देते तो संतोष होता। अब घर लौटने का समय हो रहा है, फिर से उनकी हालत ढीली पड़ रही है। कहीं फिर लौटना स्थगित हो जाये तो··· बच्चों की कोई खबर नहीं मिलती, इससे भी चित्त उदास रहता है।"

**बुधवार, 2 जनवरी :** "बाहर बहुत सर्दी है। बर्फ बहुत ज्यादा गिरती है यहाँ। हमारा बाहर टहलना बन्द हो गया है। रूसी उपन्यासों के अंग्रेजी अनुवाद पढने में अपने को व्यस्त रखती हूँ। पंडितजी के पास ही बैठी रहती हूँ।

"पंडितजी फिर बहुत अधिक सो रहे हैं, कहीं यह कोमा की स्थिति तो नहीं है ? इतना ज्यादा सोना उनके लिए खतरा है। दो रोज से उनका पेट भी साफ नहीं हुआ। सबेरे डॉ. अन्तानिना पेत्रोव्ना आईं। कह रही थीं–'राहुलजी का रक्तचाप तो ज्यादा नहीं है, हार्ट की स्थिति भी ठीक है। क्या कारण है सोने का ?' क्या पता ब्लड सुगर फिर बढ़ गया हो। पिछली बार भी ऐसा हुआ था। उनके अच्छे होने की तो सम्भावना नहीं दिखाई दे रही है। उन्हें गुस्सा भी बहुत जल्दी आ जाता है। केवल लेटना और सोना, बैठे-बैठे भी सोना। इस तरह का सोना अस्वाभाविक है। घूमना-फिरना, खड़े होना भी नहीं चाहते। पेशाब पर नियंत्रण नहीं, यह सब क्यों हो रहा है ? डॉक्टर भी तो कुछ बतलाते नहीं। ऐसी कोमा की स्थिति में उनको कहीं ले जाना भी खतरे से खाली नहीं है।"

**गुरुवार, 3 जनवरी :** "आज भी वे सोये ही जा रहे हैं। पेशाब पर नियंत्रण नहीं रहा। बोलते भी नहीं, उठते-बैठते भी सोये ही रहते हैं। मालूम नहीं फिर क्या हो गया है उनको ? मन बहुत आशंकित हो रहा है। डॉ. अन्तानिना ड्यूटी पर हैं, उन्होंने आकर रोगी को देखा। दूसरी एक प्रोफेसर डॉक्टर भी आईं। राहुलजी को दो रोज से पाखाना नहीं हुआ है। ऐसी कब्जियत तो उन्हें पहले कभी नहीं हुई थी। वे बराबर गहरी नींद में सोते जा रहे हैं। बड़ा खतरा मालूम होता है। अब तो हमारे जल्दी घर लौट जाने की उम्मीद नहीं है। डॉक्टर अन्तानिना तीन बार उनको देख गईं। जरा-सा टहलाने ले गईं, पर वे चल ही नहीं पाये, घसीटकर ले जाना पड़ा। मैं अकेले उनको थाम भी नहीं सकती।"

**शुक्रवार, 4 जनवरी :** "राहुलजी की हालत और बिगड़ती जा रही है। बहुत सो रहे हैं आज भी, दिन-भर सोते ही रहे। आज प्रोफेसर डॉक्टर पोपोवा भी उनको देखने आईं। वे बातचीत नहीं करते, किताबें नहीं देखते, आँखें नहीं खोलते, केवल सोते ही रहते हैं। चलना-फिरना बंद हो गया, पैर लड़खड़ाते हैं। मालूम नहीं क्या हो गया है उनको। कहीं यह बेहोशी तो नहीं है ? अच्छे हो रहे थे, अब कोमा में हैं। हमारा दुर्भाग्य ही है। अब तो आशा ही नहीं कि हम बच्चों से जल्दी मिल पायेंगे।

"आज सबेरे साहाजी का पत्र मिला। 16 दिसम्बर का लिखा पत्र है। मालूम हुआ कि 9 दिसम्बर को मेरे छोटे भाई और हरि जया और जेता को लेकर कलकत्ता आये थे और 15 दिसम्बर को बच्चों को पासपोर्ट मिला। हाय, कितना बड़ा धोखा हुआ है मेरे बच्चों के साथ। कितनी आशाएँ लेकर चले होंगे वे लोग कि दोनों मास्को में अपने पापा और अम्मा से मिलेंगे। अब यह जानकर हताश हो गये होंगे कि वे लोग मास्को नहीं जा रहे हैं। बेचारे जया-जेता, मेरे पिछले पत्र के आधार पर ही चल पड़े होंगे, मेरा दूसरा पत्र तब तक

उन लोगों को नहीं मिला होगा। उन भोले बच्चों के करुण उदास चेहरे मेरी आँखों के सामने खड़े हैं। भयंकर दुःख हुआ, भयंकर मानसिक पीड़ा पहुँची। साहाजी ने और लिखा है कि दोनों बच्चे हाजरा रोड पर हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के मालिक ओमप्रकाश बेरीजी के यहाँ ठहरे हैं। दूसरे के घरों में बिना माँ के उन दोनों को रहने की आदत नहीं है, कैसे रहे होंगे। अब पता नहीं दोनों कहाँ होंगे। मेरे बच्चों के साथ यह कितना बड़ा मजाक हुआ।”

**शनिवार, 5 जनवरी :** “उनकी हालत आज और खराब रही। आज तो और दिनों की अपेक्षा ज्यादा सोये। डॉक्टर का कहना है–वे इस समय कोमा में हैं। बातचीत भी नहीं करते, साफ बोलते भी नहीं। आज भी पाखाना नहीं हुआ। उनको ऐनिमा देना पड़ा। मालूम नहीं अचानक यह क्या हो गया उनको। फिर दूसरा स्ट्रोक हुआ है, ऐसा महसूस हो रहा है। हाथ-पाँव सुन हो गये हैं, चल नहीं सकते। आज से फिर नर्स की ड्यूटी लगा दी है। पंडितजी को इंजेक्शन लगे। कई दिनों तक उनको उठने नहीं दिया जायेगा। भारत में तो डॉक्टर लोग इनके खाने में भी परहेज करवाते थे, यहाँ तो जरा भी परहेज नहीं है।

“हमारा मन बहुत पीड़ित है। इस समय हमें बच्चों की भी चिन्ता हो रही है। न जाने वे लोग किस स्थिति में होंगे। 6-6 महीनों से हम उनसे अलग हैं, न जाने क्या बीत रही होगी उन पर।”

**रविवार, 6 जनवरी :** “राहुलजी की हालत वैसी ही है। दिन-भर आँखें नहीं खोलीं उन्होंने। पेशाब के लिए कम ही बोलते हैं। अब उनको प्रतिदिन कई-कई इंजेक्शन लग रहे हैं। खाने में परहेज नहीं कराते। नर्स अब बराबर रहने लगी है। पंडितजी कोमा में हैं। पिछले सात दिन से उनकी यही अवस्था रही है। बड़ी चिन्ता हो रही है, अब घर कैसे जा सकेंगे, मालूम नहीं।

दार्जिलिंग के हिन्दी हाई स्कूल के अध्यापक श्री सुबोधचन्द्र सक्सेना का पत्र आया जो 20 दिसम्बर का लिखा हुआ है। पत्र से मालूम हुआ कि हमारा बेटा जेता अपनी कक्षा में प्रथम आया है। बड़ी प्रसन्नता हुई। जिनको और अधिक प्रसन्नता होती, वे पिता तो अभी बेहोशी में पड़े हुए हैं।”

**सोमवार, 7 जनवरी :** “पंडितजी कल की अपेक्षा आज कम सोये। उनकी बात समझ में नहीं आती। पेशाब के लिए नहीं बोलते, बल्कि वे कुछ भी नहीं बोलते। आज डॉ. मारगरिता पावलोव्ना बहुत दिनों के बाद आईं। सबेरे उन्होंने ही रक्त-परीक्षण के लिए राहुलजी की बाँह से रक्त निकाला। आज वे दो बार राहुलजी को देखने आईं। उनके साथ डॉ. अन्तानिना भी आईं। दोनों डॉक्टर अपने रोगी का बहुत ख्याल रखती हैं। डॉ. मारगरिता ने मुझे बैठने को कहा तो डॉ. अन्तानिना कह रही थीं–कमला मेरे सामने कभी नहीं बैठती। शाम को डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना भी आईं, उन्होंने पंडितजी को देखा। यह भी मेरे प्रति बड़ी सहानुभूति रखती हैं। पूछ रही थीं–बच्चों का पत्र आया या नहीं ? घर में पैसे-रुपये हैं या नहीं ? कितनी चिन्ता करती हैं, कितनी अच्छी महिला हैं यह भी। पंडितजी को दिन में 6 इंजेक्शन लग रहे हैं। उनको उठने नहीं दिया जाता। थोड़ी देर कुर्सी पर बिठाया उनको। आज कुछ अच्छे मालूम हो रहे थे।”

**मंगलवार, 8 जनवरी :** “आज कप्ताल लाल की चिट्ठी मिली। पत्र से मालूम हुआ कि मेरे बच्चों ने अपने पासपोर्ट के लिए फोटो भी खिंचवा लिया था। फोटो पर अपने-अपने स्कूल के प्रिंसिपल के हस्ताक्षर करवाकर चल पड़े थे। बेचारों के साथ बहुत धोखा हुआ, मालूम नहीं इस समय वह कहाँ होंगे।

“सी. पी. एस. यू. के सेन्ट्रल कमिटी के सेक्रेटरी महोदय हस्पताल आये। पता चला–दिल्ली से श्री भूपेश गुप्तजी ने उनको समाचार भेजा है कि जया-जेता बहुत परेशान हैं, इसलिए हम लोग भारत कब लौट रहे हैं ? बच्चे दिल्ली में मित्रों की देखरेख में हैं। सेक्रेटरी महोदय ने यह भी कहा कि यहाँ के डॉक्टरों ने उनको सूचित किया है कि राहुलजी को जल्दी से जल्दी स्वदेश भेज दिया जाय। अब उनके अच्छे होने की आशा नहीं है, साथ ही यहाँ का मौसम उनके अनुकूल नहीं है। इस मानसिक स्थिति में उनको अपने बच्चों के साथ ही रखना चाहिए। इसलिए हमारे जाने का प्रबन्ध हो गया है। 16 जनवरी को यहाँ से प्रस्थान करना है।

“यह सुनकर मुझे थोड़ी खुशी हुई कि उनको जल्दी से बच्चों के पास पहुँचा दे सकूँगी। यहाँ यदि कोई

अनिष्ट हो गया तो बड़ी मुश्किल होगी। जो कुछ भी घटित होना है भारत में ही हो। कम से कम वे अपने बच्चों के निकट रहेंगे या बच्चे अपने पिता के अंतिम समय में उनके निकट रहेंगे।

"वे आज करीब-करीब कोमा में ही रहे। पेशाब के लिए होश नहीं रहता। वाणी फिर लड़खड़ा रही है। खड़े नहीं हो सकते, बातें नहीं करते, रोते हैं, एकदम एबनार्मल तो मालूम नहीं होते। आज डाक्टर मारगरिता पावलोव्ना उनको देखने आईं। उनको थोड़ा चलवाने की कोशिश की, पर वे तो खड़े ही नहीं हो सकते। कितने अच्छे हो गये थे, चलने-फिरने और बोलने लग गये थे। अब मालूम नहीं फिर क्या हो गया है उनको। कई-कई इंजेक्शन लग रहे हैं। देखें 16 तारीख तक कुछ चलने लायक हो जाते हैं या नहीं। यदि उनका सोना कुछ कम हो जाय तो हमारी आशा बँधेगी। खाना तो ठीक से ही खाते हैं, पर खिला देना पड़ता है। भारत लौटने पर खाने में परहेज करवाना पड़ेगा।"

## रूसी परिवार से मिलन

**बुधवार, 9 जनवरी :** "शाम को कामरेड चन्द्रन और श्री लायलपुरीजी आये। वे लोग हमें बाहर घुमाने के लिए प्रोग्राम बनायेंगे। मैं तो नवम्बर 7 के दिन तीन घंटे के लिए अस्पताल से बाहर निकली थी, पंडितजी तो कमरे में ही हैं। का. चन्द्रन से मालूम हुआ कि इगोर अपने पिता से मिलने आ रहे हैं। शायद इस इतवार को आयें। उनकी माँ के आने के बारे में कुछ नहीं बतलाया। मैंने पूछा भी नहीं, पता नहीं यहाँ का कानून कैसा है। खैर, इगोर आ जायँ तो अच्छा होगा, उनके लिए लाये हुए कपड़े आदि भी दे दूँगी। नर्स तमारा बहुत अच्छी हैं, दूसरी नर्स भी अच्छी है। अब रात और दिन के लिए दो-दो नर्सें आने लगी हैं।

"राहुलजी की हालत वैसी ही है। आज दवा देने के कारण कुछ कम सोये, लेकिन जरा भी खड़े नहीं हो सकते। डॉक्टर के कहने से उनको दोनों तरफ बाँह थामकर कोरीडोर में ले गये तो वे एकदम बेहोश-से हो गये। बहुत ही दुःख हुआ। कितने अच्छे हो गये थे, टहलते थे। अब फिर वे बिस्तर पर पड़ गये। अब स्वदेश जाने के समय में उनकी ऐसी हालत हो गई। उनको ले जाने की भी समस्या है। कुछ चलने लायक हो जाते तो कितना अच्छा होता।

"आज इगोर को फिर पत्र भेज दिया।

"मेरे बच्चों के साथ धोखा हुआ, बेचारे। इस समय दोनों किसके पास होंगे, क्या सोच रहे होंगे। परेशानियों का कोई अन्त नहीं दिखाई देता।"

**गुरुवार, 10 जनवरी :** "पंडितजी आज फिर दिन-भर सोये रहे। बोलते नहीं। दाहिने हाथ में दर्द है। जरा-सा छूने में ही रोने लगते हैं। कुछ सूज भी गया है। दवाइयाँ खा रहे हैं, सुइयाँ लग रही हैं। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना उनको देखने आईं। उनका रक्तचाप 190/90 के आसपास है। नमक बन्द करने से कम हो जाता। उनको थोड़ा-सा चलवाया, किन्तु वे खड़े नहीं हो सकते। बड़ी मुश्किल हो गई है। पाँव बेकार-से हो रहे हैं। आज दिन-भर रोते रहे हैं, कितनी तकलीफ हो रही है उन्हें, पर वे बता नहीं सकते। शाम को थोड़ी देर उनको कुर्सी पर बिठाया। खैर, अब भारत में जाकर देखें, कैसा स्वास्थ्य रहेगा उनका। यह मालूम हुआ कि डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना भी हमारे साथ ताशकन्द तक जायेंगी, दवाई और ऑक्सीजन का प्रबन्ध भी वे कर देंगी। सुनकर बहुत संतोष हुआ। ताशकंद से दिल्ली की केवल दो घंटे की यात्रा है।

"भारतीय दूतावास के श्री मोतीराम शर्मा ने बच्चों के लिए चाकलेट का पैकेट दिया है।"

**शुक्रवार, 11 जनवरी :** "राहुलजी की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। वे आज भी बहुत सोये। यह नींद बेहोशी की है। पाखाने का भी उन्हें होश नहीं रहा। पेशाब बहुत ज्यादा करते हैं। पानी भी बहुत पीते हैं। उनकी अवस्था चिन्ताजनक है, इसीलिए तो आज प्रोफेसर डॉक्टर नीना एलेक्सेव्ना पोपोवा, डॉ. मारगरिता पावलोव्ना तथा मि. यूरी ब्लादीमिर एक साथ आये। पंडितजी को देखा, चलवाकर भी देखा। हालत काफी खराब मालूम होती है। उन लोगों ने हमारा भारत लौटना स्थगित कर दिया। मालूम नहीं अब कब जाना होगा। ये लोग राहुलजी को इस हालत में भारत भेज देना नहीं चाहते। उनकी हालत ऐसी है, बच्चे उधर कहाँ भटक

रहे हैं। सोच-सोचकर मेरी दशा भी पागलों की जैसी हो रही है।"

**शनिवार, 12 जनवरी :** "वे रात को कुछ देर तक जगे रहे। पेशाब बहुत बार की, आज पानी ज्यादा नहीं पीया उन्होंने। पेट ठीक नहीं है, इसलिए पाखाना पर भी नियंत्रण नहीं रख सके। आज कुछ ढंग की बातें कर रहे थे। रात की ड्यूटी के लिए सिस्टर जोया आईं, यह बड़ी अच्छी महिला हैं। दिन में डॉ. मारगरिता पंडितजी को देखने आईं। मालिश करने के लिए नर्स को भेजा। पंडितजी के पाँवों में ताकत आ जाये तो वे खड़े हो सकते हैं, पर अभी समय लग सकता है।

"अब यहाँ से बिल्कुल ही मन ऊब गया है, कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

## इगोर और लोला का आगमन

**रविवार, 13 जनवरी :** "आज सबेरे ही फोन से सूचना मिली कि इगोर और उनकी माता मास्को आ गये हैं। वे लोग यहाँ 11 बजे मिलने आयेंगे। ठीक समय पर कामरेड चन्द्रन के साथ इगोर आये और पिता से मिले। किन्तु पिता कुछ बोल नहीं सके, मैंने उनको बतला दिया कि आपके पुत्र इगोर आये हैं, पर उन्हें पहचानने में दिक्कत हो रही थी। वे रोते ही रहे, कुछ बोल नहीं सके। 15 वर्ष के बाद पिता-पुत्र का मिलन हुआ। इगोर यहाँ थोड़ी देर के लिए ही रह सके, और कुछ अधिक समय रहे होते तो अच्छा होता, पर रूसी लोग हस्पताल के नियम-कानून का पूर्ण रूप से पालन करते हैं। इगोर देखने में सुन्दर हैं, रंग रूसी है पर चेहरा भारतीय। पिता से मिलता चेहरा है। उन्होंने बतलाया कि उनकी माता लोला को यहाँ (हस्पताल) आने में डॉक्टरों ने बिल्कुल मना कर दिया। बेचारी को बहुत बुरा लगा होगा। बीमार पति को देखने के लिए वह इतनी दूर लेनिनग्राद से आईं, पर यहाँ मास्को में आकर भी न देख सकीं। मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की थी उन्होंने। इसलिए श्री लायलपुरी, कामरेड चन्द्रन और इगोर के साथ मैं मास्को शहर गई, लेकिन लोला होटल से बाहर कहीं गई हुई थीं उस समय। इसलिए उनसे भेंट न हो सकी। होटल 'मास्को' में हम सबने भोजन किया। बहुत विशाल होटल, जहाँ फोरनर्स बहुत थे। क्यूबा के लोगों को भी देखा। मास्को शहर भी सुन्दर है। फिर लेनिन हिल, और लोमोनोसोव युनिवर्सिटी से होते हम अपने अस्पताल में आ गये।

"लोला से मिलने की मेरी आशा आज पूरी नहीं हुई। उन्होंने शाम को मुझे फोन किया—मुझसे न मिल पाने के लिए अफसोस प्रकट किया। यह भी बताया कि वह राहुलजी को देखना चाहती हैं, पर डॉ. मारगरिता पावलोव्ना ने उनको आने की इजाजत नहीं दी। मैं डॉक्टर से कहकर अनुमति दिलवा दूँ—यह अनुरोध कर रही थीं। कोशिश करके देखूँगी।

"पंडितजी को बहुत तकलीफ है, उनको बेडसोर हो गया है। इतने दिनों से बिस्तर पर पड़े हैं, एक और तकलीफ उनको बढ़ गई है। बैठने की जगह पर भी घाव हो गया है। डायबेटिज़ के कारण घाव पक रहे हैं, यह उनके लिए और खतरनाक है। उनको बहुत दर्द होता है। बातें कुछ समझते हैं। बेटे के आने की बात वे तुरन्त भूल गये। पिता की हालत देखकर इगोर को कितना अफसोस हुआ होगा। उन्होंने पंडितजी को अपनी और माँ की तस्वीर दी। मैंने भी जया और जेता तथा पंडितजी के एक-एक फोटो उनको दे दिये। पिताजी इगोर के सामने ही 'मेरे दो बच्चे, मेरे दो बच्चे' कहकर याद कर रहे थे।"

**सोमवार, 14 जनवरी :** "सबेरे लोला ने फोन किया था। मैंने डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना से बात की कि लोला को हस्पताल आने की अनुमति दें, ये लोग दूर लेनिनग्राद से आये हैं और राहुलजी से 15 साल बाद मिल रहे हैं। इस बार भेंट न होगी तो आगे भेंट होने की आशा नहीं है। बड़ी हिचकिचाहट के बाद डॉक्टर ने लोला को आने की इजाजत दे दी। कुछ देर बाद डॉक्टर को लोला ने भी फोन किया। डॉक्टर मारगरिता ने आकर मुझको सूचना दी कि लोला और इगोर आज शाम को आ रहे हैं। मैं प्रतीक्षा करती रही। कल मैंने भारतीय पोशाक पहिनी थी, आज भी मैंने साड़ी पहन ली।

"शाम को ठीक साढ़े 4 बजे माँ-बेटे आ गये। लोला फोटो में जितनी बूढ़ी लगती थीं, उतनी बूढ़ी नहीं लगीं। वह पंडितजी से 6 साल छोटी थीं याने इस समय वह 63 साल की थीं। 6 फुट कदवाली महिला हैं।

मैंने सोचा था खूब घमण्डी होंगी, लेकिन वह मुझसे अच्छी तरह से सभ्यता से मिलीं। वह बार-बार कह रही थीं कि राहुल को लेनिनग्राद आना बहुत पसन्द था, पर नहीं आ सके। मैंने भी 'हाँ' कह दिया, हालाँकि मुझे स्वयं पंडितजी ने बतलाया था कि दोनों के सम्बन्धों में शिथिलता लेनिनग्राद में रहते ही आ गई थी। इसलिए वे हमेशा के लिए भारत चले आये थे और भारत में कमला से विवाह किया। पर इस समय ये सब बातें सोचने या कहने का अवसर नहीं है। मुझे देखते ही लोला ने कहा–'कमला, तुम तो बहुत यंग (तरुणी) हो।' (मेरी उम्र उस समय 32 साल थी) वह जया-जेता का नाम जानती थीं। कुल मिलाकर वह मुझसे बहुत अच्छी तरह से मिलीं। 15 वर्ष के बाद पति और पिता से लोला और इगोर मिले, परन्तु इस अवस्था में जबकि उनसे राहुलजी बोले ही नहीं, पहचान लिया हो यह भी कहना कठिन है[1], क्योंकि वे बोल सकने की अवस्था में ही नहीं हैं। इस समय उनकी तबीयत बहुत खराब है। वे और दिन की तरह रोते रहे। लोला को भी कितना दुःख लगा होगा, वह भी रो रही थीं। वस्तुतः यह एक करुणापूर्ण दृश्य था। बेचारे इगोर 'पापा, पापा' कहकर उनका मस्तक चूमते रहे। पर पापा उनसे कुछ भी नहीं बोल सके। लोला बार-बार जया-जेता के बारे में ही पूछती रहीं। वह मुझसे अंग्रेजी और रूसी में बोलीं, इगोर सिर्फ रूसी में। तब तक मैं रूसी भाषा भी काफी बोलने लगी थी।

"लोला से यह भी मालूम हुआ कि उदयनारायण पाण्डे ने हाल ही में पत्र लिखा था और इच्छा प्रकट की थी कि राहुलजी को वह कनैला गाँव (आजमगढ़) ले जाना चाहते हैं और वहाँ रखकर उनका इलाज करना चाहते हैं। डॉ. महादेव साहा के बारे में भी उन्होंने बतलाया कि वह लोला भाभी को वर्षों से बराबर पत्र लिखते रहे और इधर राहुलजी की बीमारी की रिपोर्ट भी बराबर भेजते रहे थे। लोला ने पूछा–'डॉक्टर महादेव साहा क्यों नहीं आये ? उन्होंने तो लिखा था कि राहुलजी के साथ वह मास्को आ रहे हैं। हम तो उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।'

"मैंने कह दिया–'मुझको मालूम नहीं कि वह क्यों नहीं आये।'

"अब मुझे समझ में आया कि राहुलजी के तथाकथित कुछ मित्र क्यों मुझ से कह रहे थे कि "सोवियत सरकार एक बीवी के रहते दूसरी बीवी का वहाँ जाना पसन्द नहीं करती।' यह कहकर क्यों वे लोग मेरे मन में अपराध-बोध और दहशत की भावना भर दे रहे थे ? यदि उन लोगों ने खुद सोवियत संघ (मास्को) जाना तय किया था तो पहले से ही मुझको क्यों न बतलाया ? लोगों का यह नारदमुनि-रूप भी उसी समय मेरे सामने प्रकट हो गया। यही एक जबर्दस्त वजह रही कि राहुलजी के उन तथाकथित मित्रों और लोला भाभी के प्यारे देवरों पर से मेरा विश्वास सदा के लिए उठ गया।

"लोला खुद ही देख रही थीं कि राहुलजी इस समय अकेले मास्को नहीं आ सकते थे और यह भी देख रही थीं कि उनको मेरी कितनी जरूरत थी। उन्होंने मेरी कोई शिकायत नहीं की, न ही इगोर ने की। लोला मुझसे बहुत-सी बातें पूछ रही थीं कि मैं कैसे राहुलजी के पास आई। मेरे बच्चों के बारे में, राहुलजी की बीमारी तथा इलाज आदि के बारे में पूछती रहीं। आखिर वह भी एक नारी हैं, दूसरी नारी के मन की स्थिति को वह भली-भाँति समझती थीं, बल्कि वह मेरे ऊपर पूरी सहानुभूति रखती थीं, तभी तो वह सौहार्द से मिलीं। मुझे वह दिन भी याद आया जब 1948 में पंडितजी के साथ मैं कनैला गाँव गई थी, बल्कि वे ही मुझे ले गये थे। मैं उनकी पहली पत्नी के प्रति श्रद्धा लेकर गई थी। पर वह देवीजी मुझसे एक शब्द भी नहीं बोलीं। न मेरी तरफ, न मेरे बच्चों की तरफ देखा। राहुलजी ने जब उसको छोड़ा था (1909 में), तब तो मेरी माँ का भी जन्म नहीं हुआ था। पर सौत का रूप कैसा होता है, देवीजी ने मुझे स्मरण दिला दिया, अपने रूखे व्यवहार से। आज यहाँ लोला से मिलकर मुझे दूसरा ही अनुभव हो रहा था।

"मैंने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' के अंक तथा दूसरे अखबार, जिनमें राहुलजी के

1. एक हिन्दी दैनिक में लोला के बारे में लिखा एक लेख पढ़ा था। उसमें लोला के मुँह से लेखक ने सुनकर लिखा था, कि जब लोला ने हस्पताल में प्रवेश किया, तब राहुलजी ने 'लोला-लोला' कहा था। ये सब बातें झूठी हैं, क्योंकि मैं वहाँ साक्षी थी।

बारे में समाचार छपे थे, सब उनको दे दिये। 'मेरी जीवन-यात्रा' के दोनों भाग भी दे दिये। लोला को देखकर मुझे घोर कष्ट हुआ। एक पत्नी और बच्चे के रहते भी राहुलजी ने मेरे साथ विवाह किया। किन्तु इसमें मेरा कोई दोष नहीं था, यह संयोग की और उनके जीवन की अनिवार्यता के लिए घटी हुई घटना थी। आज लोला ढाई घंटे तक यहाँ रहीं। राहुलजी के साथ तो क्या बात करतीं, वे तो बोल भी नहीं सकते थे, पर वह मेरे द्वारा उनके बारे में जानकारी लेती रहीं। वह कल भी यहाँ आना चाहती हैं, इगोर तो आयेंगे ही, आयें तो बहुत अच्छा रहेगा, अब यही तो पिता-पुत्र का अंतिम मिलन होगा।"

**मंगलवार, 15 जनवरी :** "लोला और इगोर 12 बजे दिन में आये और शाम को 4 बजे गये! खाना यहीं खाया, अस्पताल का खाना कोई खास नहीं था। खैर, इगोर बेचारे कितने अरमान लेकर पापा से मिलने आये थे, पर पापा तो कुछ बोलने की हालत में ही नहीं हैं। पूछते हैं–'तुम कौन हो ?' बतला देते हैं कि वह इगोर है, फिर वे तुरन्त भूल जाते हैं। इगोर के उनके सामने बैठने पर भी पंडितजी 'मेरे दो बच्चे' कहकर जया-जेता की याद करते रहे। इगोर अपने पापा को बहुत प्यार करते हैं। वह बेचारे पिता के प्रति अपने प्यार को हर वक्त ललाट पर चुम्बन के द्वारा प्रकट करते हैं। उनके चेहरे पर शालीनता है। उनको देखकर मेरे हृदय में करुणा उमड़ आई। यदि वे पुत्र भारत में होते तो ऐसी शालीनता कहाँ होती। वहाँ तो इनके दिमाग को तथाकथित हितैषी लोग खराब ही कर देते। यदि आज पापा थोड़ा भी बोलने की हालत में होते, तो इगोर को कितनी खुशी होती। अब तो पिता-पुत्र में पुनः भेंट होने की आशा भी क्षीण होती जा रही है। अस्पताल में आना भी मुश्किल है। आज के लिए तो डाक्टर मारगरिता पावलोव्ना ने इजाजत दे दी थी। लोला कल भी आना चाहती हैं। देखें, इजाजत मिल जाये तो बहुत अच्छा होगा। मुझे लोला से भी ज्यादा इगोर से सहानुभूति हुई है। लोला मेरे लिए सेंट की शीशी लायी हैं। कह रही थीं–बच्चों के लिए भी कुछ देना चाहती हूँ, पर मैंने तकलीफ न करने को कहा। इगोर का चेहरा अपने पिता से मिलता-जुलता है।"

**बुधवार 16 जनवरी :** "आज सबेरे ही लोला ने मुझे फोन किया। मैं प्रतीक्षा करती रही। माँ-बेटे दोनों दो बजे के बाद आये। मैं खासकर बेटे के लिए ही प्रतीक्षा कर रही थी। वह अपने पिता के अनन्य भक्त और सुपुत्र हैं। अपने पिता से उनको बहुत प्यार है, बहुत शालीन और मधुर स्वभाववाले पुत्र हैं। जया-जेता के लिए उन्होंने खिलौने भेंट किये। इसका मतलब है कि उन दोनों के प्रति भी इनकी सहानुभूति है। भैया जेता के लिए अलग खिलौने लाये थे और जया के लिए लोला तीन सुन्दर रूसी गुड़िया लायीं। मैंने उन दोनों को धन्यवाद दिया।

"आज पंडितजी पुत्र और पत्नी से बातचीत करने की हालत में नहीं थे। कल से ही पीठ के घावों के कारण उनको बुखार आ गया, दिन-भर सोये रहे बुखार में। घाव फैलता जा रहा है। डायबेटिज़वालों का घाव जल्दी अच्छा नहीं होता। वे बहुत ही कमजोर लग रहे हैं, बोली भी समझ में नहीं आ रही थी। बेचारे इगोर उनसे बात करना चाहते थे, किन्तु पिता बोल ही नहीं रहे थे। वह बार-बार पिता को चूमते और प्यार करते रहे। शाम को 5 बजे दोनों चले गये। अब लोला से तो शायद ही भेंट होगी, इगोर फिर आयेंगे। उनका आना अच्छा रहेगा, पिता भी बेटे से मिलकर खुश हो जायेंगे। मुझे उन्होंने पत्र लिखने के लिए कहा है। पत्र लिखकर पंडितजी की हालत की सूचना देना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ।

"इगोर और लोला राहुलजी के साथ अकेले रहें, यह सोचकर मैं कल और आज थोड़ी-थोड़ी देर के लिए कमरे से बाहर चली गई थी। ऐसा करने के लिए मैं अपने मन से ही प्रेरित हो गई थी। यह तो पता ही था कि राहुलजी अब बोल नहीं सकते, न पहिचान सकते, पर वे लोग उनके प्रति अपने स्नेह, प्रेम की वर्षा तो कर सकते हैं।"

## संकट की घड़ी

**बृहस्पतिवार, 17 जनवरी :** "डॉ. मारगरिता पावलोव्ना सारकिना राहुलजी की प्रधान चिकित्सक थीं। रोगी के कष्टों को वह भली-भाँति समझती थीं। ऐसे असाध्य रोगियों के साथ बहुत ही सर्तकता का व्यवहार करना पड़ता

है, यह वे जानती थीं। इसलिए राहुलजी को देखने के लिए विजिटर्स (Visitors) का आना उन्होंने सख्त मना कर रखा था। दूतावास के या अन्य साथी लोग भी रोगी की स्थिति कुछ सामान्य होने पर ही उनको देखने आते थे। लोला और इगोर के आने से कोई चमत्कार नहीं होनेवाला, यह डॉक्टर समझती थीं। यही कारण था कि चेष्टा करने पर भी उन लोगों को यहाँ आने की अनुमति नहीं दी थी। परन्तु अब राहुलजी तो ज्यादा दिन मास्को में नहीं रहेंगे, इसलिए पुत्र और पत्नी को उनसे मिलने देना चाहिए, यह बात डॉक्टर समझ गई थीं। राहुलजी के तथाकथित भारतीय परमहितैषी मित्र भी यही समझ रहे थे कि इगोर और लोला से मिलने पर राहुलजी की स्मरणशक्ति लौट आयेगी, कोई बड़ा भारी चमत्कार हो जायेगा।

"परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। राहुलजी ने उन लोगों को अपने से पहिचान लिया हो, ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि वे उस हालत में अब नहीं थे। लम्बी बीमारी ने उनके दिमाग और शरीर को जर्जर बना दिया था। आज दिन-भर वे बुखार में पड़े रहे। बुखार 38.5° रहा। ज्यादा बोल नहीं सके, पर दिन-भर 'भैया, भैया' करते रहे।। 'भैया' कहकर वे मुझे ही खोजते रहते थे। दिन-भर वे आँख मूँदे सोये या पड़े रहे, लेकिन रात को बहुत कम सोये। बुखार थोड़ा भी कम नहीं हो रहा। आज उनको सोफे पर बिठाया था, पर वे नीचे गिर गये। उनको उठा पाना मेरे अकेले के बस की बात नहीं। डॉक्टर लोग घबड़ाते हुए चली आईं। उनका एक्स-रे हुआ, बुखाार कम नहीं। रात को भी वे 'भैया-भैया' करते रहे। कुछ अकबक भी बोल रहे थे, पर उनकी बात समझ में ही नहीं आती।

"हमारी चिंता और घबड़ाहट बढ़ती जा रही है।"

**शुक्रवार, 18 जनवरी :** "मन बहुत आशंकित है। आज पंडितजी की तबीयत बहुत खराब रही। बुखार बराबर 38 डिग्री रहा। दो प्रोफेसर डॉक्टर उनको देखने आईं। पंडितजी का हार्ट बहुत खराब है। उन्हें आज इंजेक्शन लगे, वे दिन-भर बेहोश पड़े रहे, पानी भी नहीं पी रहे हैं। डॉक्टरों के चेहरे गम्भीर हैं। हमारा मन बहुत घबड़ा रहा है, अनिष्ट की आशंका से मन विचलित है।

"दिल्ली से सच्चिदानन्द शर्मा जी का 29 दिसम्बर का पत्र आज मिला। जया-जेता 22 दिसम्बर को अपने मामा हरि के साथ दिल्ली आ गये थे। हरि उनको छोड़कर लौट गये। बच्चे सच्चिदाजी के घर में हैं, हमारे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह पत्र 20 दिन के बाद मिला। बेचारे जया-जेता कितनी उत्सुकता से हमारे आने की बाट जोह रहे होंगे, और यहाँ उनके पापा की हालत और बिगड़ती जा रही है। हमारे भारत जल्दी लौटने की अब सम्भावना टल गई है।

"सच्चिदाजी को जया-जेता को अपने पास ही कुछ दिनों तक रखने का अनुरोध करते हुए पत्र लिखा और पंडितजी की वर्तमान शारीरिक स्थिति का भी विवरण लिख दिया।"

**शनिवार, 19 जनवरी :** "आज राहुलजी की हालत और भी चिन्ताजनक रही। 24 घंटे से वे संज्ञाहीन पड़े हुए हैं। सबेरे वे पानी भी नहीं निगल रहे थे। बुखार सबेरे 37.00° था और रात को 38.00° हो गया। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना बहुत घबराई हुई हैं, वह कई बार हमारे कमरे में आईं। पंडितजी को इंजेक्शन पर इंजेक्शन लगे। मालूम होता है कि उनकी किडनी खराब हो गई है। डॉक्टर लोग मुझको बतलाना नहीं चाहते, पर सिस्टर ने बतला दिया। पंडितजी की बोली भी आज सुनाई न दी, आज दिन-भर उनको पेशाब ही नहीं हुई। इन्सुलिन लेने के बाद उन्होंने खाना नहीं खाया। शाम को बड़ी मुश्किल से उनको थोड़ा-सा सूप पिलाया। ग्लुकोज़ के इंजेक्शन लगे, बहुत कमजोर हो गये हैं। तीन बार उनके खून की जाँच हुई। सब लोग घबराये हुए हैं।

"डॉ. मारमरिता पावलोव्ना तथा एक और प्रोफेसर डॉक्टर ने मुझसे कहा—'कमला, तुम दूसरे कमरे में रहो, वहाँ टेलीविजन सेट भी है, तुमको वहाँ अच्छा लगेगा। यहाँ रोगी के साथ रहने में तुमको तकलीफ होगी।' मैं समझ गई कि वे मुझको यहाँ से क्यों हटाना चाहती हैं। अतः रोते हुए मैंने कहा—'नहीं डाक्टर, मैं यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगी, मुझे यहाँ से न हटाएँ। क्योंकि जो कुछ भी होना है, वह मेरे सामने ही होगा, वे मुझको छोड़कर जानेवाले हैं, इस अंतिम घड़ी में मुझको उन्हीं के पास रहने दीजिए।'

"डॉ. मारगरिता पावलोव्ना मेरे दुःख को समझ गईं और मेरे अनुरोध को भी मान गईं।

"आज मुझे अपने बच्चों का ख्याल आ रहा है। इगोर तो यहीं है, वह कभी भी आ सकते हैं। किन्तु जया-जेता क्या अपने पिता को जीवित अवस्था में अब नहीं देख सकेंगे ? इतने महीनों से वे लोग अपने पापा की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं और यहाँ पिता इस अवस्था में हैं। उनके हार्ट की स्थिति बिगड़ जाने के कारण अब यह खतरा पैदा हो गया। दिसम्बर में ही घर चले गये होते तो अच्छा रहता। दिन-भर में उनको कितने-कितने इंजेक्शन लग रहे हैं, कितना दर्द होता है उनको। बेहोशी में भी आज वे 'भैया-भैया' बहुत कर रहे हैं। कमजोरी के कारण वे बोल भी नहीं पाते।

"मेरा मन बहुत आशंकित रहा। क्या अब वे स्वस्थ नहीं होंगे ?"

**रविवार, 20 जनवरी :** "पंडितजी रात-भर संज्ञाहीन रहे। डॉक्टर और नर्स बराबर उनके पास बैठी रहीं। ऑक्सीजन और कार्डियामिन इंजेक्शन दिया गया। ब्लड प्रेशर भी कई बार देखा। कलकत्ता के पी. जी. हस्पताल में इतना कहाँ ध्यान रखते थे ? उनका बुखार बराबर 38.00°-37.00° बना रहा। नाड़ी की गति दिन में 90 थी, पर रात को 100 हो गयी। बुखार उतर ही नहीं रहा है। दिन में उनको थोड़ा-सा खाना खिलाया गया। सुबह फिर मारगरिता पावलोव्ना उनको देखने आईं, बहुत चिंतित हैं वह। मुझको ढाँढ़स बँधा रही थीं। आजवाली नर्स भी बहुत अच्छी हैं, सभी राहुलजी के प्रति स्नेह और सहानुभूति रखती हैं। दिन के समय उनकी बेहोशी टूटी, कुछ बोलने भी लगे। कई बार बच्चों के बारे में पूछा–'बच्चे कहाँ हैं ? बच्चे नहीं आये ?' थोड़ी आशा बँध गई हमारी।

"वकील साहब (राधामोहन बाबू) का पत्र आया। बच्चों के बारे में अफसोस प्रकट किया है कि वे लोग यहाँ नहीं आ पाये।"

**सोमवार, 21 जनवरी :** " पंडितजी आज रात कम सो पाये। रात को उनकी तकलीफ बढ़ जाती है। इंजेक्शन भी लगते रहे कई तरह के। डॉक्टर लोग कई बार उनको देखने आये। वे सबेरे गहरी नींद सोये थे, खाना मुश्किल से खाया। नाड़ी के गति तेजी है, बुखार आज 37.8° रहा। चुपचाप पड़े हुए हैं। साँस लेने में उनको कठिनाई होती है। पाखाना आज भी साफ हुआ पर बुखार कम नहीं हो रहा है। ग्लूकोज़ के इंजेक्शन लग रहे हैं, बातचीत कुछ नहीं करते, केवल बीच-बीच में 'बच्चे-बच्चे' कहते हैं। रात का खाना थूक दिया। अभी भी वे खतरे से बाहर नहीं हैं। जब तक बुखार नहीं उतरता,तब तक खतरा बना ही रहेगा। डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना दिन में कई बार आईं, वह रोगी का बहुत ख्याल रखती हैं। उनका बुखार कम न होने से चिन्ताएँ बढ़ती जा रही हैं। मालूम नहीं, अब क्या होनेवाला है।

"आज पंडितजी की चिन्ताजनक स्थिति का ब्यौरा देते हुए मैंने इगोर को पत्र लिख दिया।"

**मंगलवार, 22 जनवरी :** "राहुलजी की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। ज्वर आज भी 38 से 38.6° तक रहा। आज वे बोले भी नहीं, केवल दो बार 'भैया-भैया' कहकर रो पड़े। ज्वर न उतरने से चिन्ता बढ़ रही है। नाड़ी की गति सबेरे 100 थी और शाम को 106 से अधिक रही। उन्हें प्रतिदिन प्रायः 15 इंजेक्शन लगते हैं। सबेरे डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आईं। पूछने पर उन्होंने बतलाया कि पंडितजी का हार्ट अब थोड़ा अच्छा है, अच्छे हो रहे हैं और धीरे-धीरे अच्छा होने की आशा है। किन्तु हमारी चिन्ता तो बढ़ती ही जा रही है। आज उनको बुखार आये आठ दिन हो गये और आज सबसे अधिक है। अब उनको ऑक्सीजन बराबर देना पड़ता है, खाना भी वे थूकने लगते हैं। क्या होगा ? बहुत आशंकित हूँ। बच्चों को देखने के लिए वे तरसते हैं, लेकिन यहाँ के लोग बच्चों के प्रति सहानुभूति नहीं रखते। यदि रोगी का जीवन संकट में है तो उनकी अंतिम इच्छा क्यों नहीं पूरी कर दी जाती ? बड़े ही हृदयहीन हैं ये लोग इस मामले में। पंडितजी की अवस्था बिगड़ जाने के कारण बहुत-सी समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। वे जरा भी चलने की हालत में होते तो भारत लौट जाते।"

**बुधवार, 23 जनवरी :** "पंडितजी की स्थिति में उतना परिवर्तन नहीं आया है। रात को वे अच्छी तरह से सोये। ज्वर सबेरे 37.4° था, पर रात को 38.1° हो गया। सबेरे थोड़ी-थोड़ी बातें करते रहे। अधिकतर

चुपचाप ही रहते हैं। रोते हैं, बच्चों के बारे में पूछते हैं। नाड़ी की गति आज भी 100 से अधिक रही। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना कई बार आईं। कहती हैं–वे अच्छे हो रहे हैं। पर हमें विश्वास नहीं होता। हार्ट स्पेशलिस्ट भी आकर उनको देख गईं। बुखार उतरता नहीं, खाना निगलते नहीं। पतली चीज तो खा लेते हैं, पर सूखी चीजें नहीं खाते, उगल देते हैं, ऑक्सीजन बराबर मिलता रहा है। पीठ के घाव भर रहे हैं। जब तक वे कुछ अच्छे नहीं होंगे, तब तक हम लोगों को भारत लौटने नहीं दिया जायेगा।

"जया बिटिया बड़ी भावुक है, कितना दुःख लगता होगा उसको। दोनों बहन, भाई दूसरों के घर में पड़े हुए हैं, भूख-प्यास लगने पर भी वे माँगकर नहीं खाते।"

**बृहस्पतिवार, 24 जनवरी :** "राहुलजी की हालत में आज थोड़ा-सा सुधार हुआ-सा लगता है। ज्वर दिन भर 36.4° से 36.5° तक था। शाम को 37.2° हो गया। हर दिन शाम को ही बुखार बढ़ जाता है। कमजोर बहुत हो गये हैं। नाड़ी की गति आज 100 से ऊपर नहीं गई। दिन के 12 बजे तक वे सोते ही रहे। खाने के बाद भी सोते ही रहे। थोड़ा बोले भी, आज जीभ साफ है। पाखाना किया, रोये कम, इधर-उधर देखते रहे। मृत्यु के मुँह से वे बच गये हैं। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना प्रोफेसर डॉक्टरों के साथ आईं। डॉ. मारगरिता तो कई बार आती रहती हैं। रोगी में सुधार होते देख उनको बड़ी प्रसन्नता हो रही है। पंडितजी के घाव सूख रहे हैं, पर दाहिनी बाँह का दर्द बना हुआ है, छूने से बहुत दुखता है उनको। कल की तुलना में आज उनके चेहरे पर कुछ शान्ति आ गई है। जल्दी अच्छे हो जायें तो हम भारत लौट जाते। घर में रहना भी खतरे से खाली नहीं है, पर बच्चे तो उनके साथ रह सकते थे।

"बच्चों के करुणापूर्ण चेहरों की याद आती है।"

**शुक्रवार, 25 जनवरी :** "पंडितजी की अवस्था आज कुछ अच्छी रही। सबेरे ज्वर 36.5° याने सामान्य रहा, पर शाम को 37.1° तक चला गया। ज्वर बिल्कुल सामान्य हो जाता तो वे कुछ सँभल जाते। आज नाड़ी की गति भी पहले से सुधरी है। मेरे साथ काफी बोले भी, उच्चारण स्पष्ट है, पर बातें उन्हें याद नहीं आतीं। बहुत कमजोर हो गये हैं, रोते हैं। आज उनको थोड़ी देर सोफे पर बिठाया, पेशाब-पाखाने के लिए भी बोले। दिन में वे बहुत सोते हैं, संज्ञाहीन-से हो जाते हैं। आज उन्होंने खाना थोड़ा-सा खाया। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना न जाने कितनी बार उनको देखने आईं। वह अपने मरीज का बहुत ध्यान रखती हैं।"

**शनिवार, 26 जनवरी :** "आज पंडितजी की अवस्था थोड़ी सुधरी रही, एबनार्मल तो खैर वे हैं ही। एक आँख बन्द करके देखते हैं। Physio Therapist आकर उनको देख गईं। 'पहले से उनके हृदय की स्थिति सुधरी है', यह उन्होंने बतलाया। सबेरे इनका ज्वर 36.5° याने सामान्य था। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आज भी कई बार मरीज को देखने आईं। पंडितजी का रक्तचाप आज 190/90 रहा। डॉक्टर ने रोगी को सोफे पर 20 मिनट तक बिठाने का आदेश दिया। पर वे तो बैठना ही नहीं चाहते। आज उनका रोना दिन-भर चला, शायद शरीर में दर्द होता होगा। इतने सारे तो इंजेक्शन लगते हैं रोज-रोज। और दिनों की अपेक्षा आज दिन में कम सोये। बातें ज्यादा समझने लगे हैं। खाना खाना ही नहीं चाहते, जबर्दस्ती खिलाना पड़ता है। कई दिनों के ज्वर के कारण वे बहुत कमजोर हो गये हैं। पता नहीं कब खड़े होने लायक होंगे और हमें भारत लौटने को मिलेगा। दिन-भर ज्वर प्रायः नार्मल रहा पर शाम होते ही 37.4° हो गया। बुखार आना बन्द हो जाता तो वे कुछ ठीक हो जाते। बुखार के कारण उनकी नाड़ी भी तेज चलती है। दिन में पेशाब-पाखाने के लिए बोले। शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते तो कितना संतोष होता।"

**रविवार, 27 जनवरी :** "पंडितजी आज भी कल की तरह ही रहे। रात को उन्हें ज्वर हो गया जो 37.5° था। रात-भर वे 'हँ हँ' करते रहे। साँस लेने में तकलीफ हो रही थी, सबेरे सोये। इतने दिनों के ज्वर के कारण वे बहुत दुर्बल हो गये हैं। आज ज्वर 37.1° से 37.0° के बीच रहा। दिन-भर लेटे ही रहे। उनके दोनों पाँव कमजोर हो गये हैं। खाना खिलाते समय हल्ला करते हैं, खाना ही नहीं चाहते। बेचारे रोकर कहते हैं, 'बच्चे कहाँ गये ?' बच्चों को बहुत याद करते हैं। अब वे शायद ही उठ-बैठ सकें। किसी तरह अपने देश में इनको ले जाऊँ तो यही ठीक होगा। उनका भी यहाँ से जी उचट गया है। जब से यहाँ आये, हस्पताल

से बाहर नहीं जा सके।

"आसपास के कमरों में कई महिलाएँ हैं जो अपना इलाज कराने आई हैं। वे सब हमारे साथ बहुत अच्छा व्यवहार करती हैं, मिठाई-चाकलेट देती हैं। बड़ी सहानुभूति रखती हैं, पंडितजी के बारे में पूछती रहती हैं। आज कई दिनों के बाद डॉक्टर अन्तानिना पेत्रोव्ना भी पंडितजी को देखने आईं।"

**सोमवार, 28 जनवरी :** "राहुलजी रात को कम सोये। सबेरे चाय पीने के बाद फिर सो गये। दिन में ज्वर नार्मल याने 36.5° रहा, किंतु रात को फिर 37.5° पहुँच गया। नाड़ी की गति 108 तक, जो बहुत ज्यादा है। डॉक्टर ने आज उनको देखा ही नहीं। वे आज बहुत उदास लग रहे थे, बोलते तो हैं पर बात बिल्कुल समझ में नहीं आती। उनकी दाईं बाँह में सूजन है, दर्द बहुत होता है। रात को भी वे बहुत बेचैन रहे, हल्ला काफी कर रहे हैं, अब घर चलने को कह रहे हैं। 'भैया-भैया' करते रहते हैं। उनकी ऐसी कारुणिक अवस्था को देखकर सोच रही हूँ, शायद ही वे जीवित अवस्था में भारत पहुँचेंगे। मेरा बस चलता तो कल ही उनको लेकर भारत लौट जाती। जब वे स्वस्थ नहीं हो रहे हैं, तो यहाँ रखने और अपने आत्मीयों से दूर रखने में क्या लाभ ? दिन मुश्किल से कट रहे हैं।"

**मंगलवार, 29 जनवरी :** बाहर बर्फ गिरती रही, बहुत सर्दी हो गई है।

"पंडितजी रात को बिल्कुल ही नहीं सोये, ज्वर 37.5° रहने के कारण नाड़ी की गति बहुत तेज (108) थी। रात-भर वे बहुत परेशान रहे। सबेरे के वक्त सोये और दिन-भर सोते ही रहे। गहरी नींद है या बेहोशी है, कुछ कहना कठिन है। खाना अनिच्छा से खाया। उनकी दाहिनी बाँह में दर्द अभी तक है। आज डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना नहीं आई थीं, इसलिए डॉ. अन्तानिना ने रोगी को देखा। दिन में पंडितजी का टेम्परेचर नार्मल रहता है, पर शाम होते ही बढ़ जाता है। ज्वर के कारण भी उनको खाना अच्छा नहीं लगता, बहुत कमजोरी आ गई है उनमें। किसी तरह घर जाने की हालत में आ जाते तो यहाँ से चल देते। रोते हैं बेचारे, बच्चों को याद करके रोते हैं। चेहरा उनका दुर्बल और करुण हो गया है।"

**बुधवार, 30 जनवरी :** "पंडितजी का ज्वर आज नार्मल रहा, पर वे दिन-भर सोते रहे। खाना खिलाने में जबर्दस्ती करनी पड़ती है, खाने से इन्कार करते हैं, शायद जीभ में स्वाद नहीं है। बहुत कमजोर हो गये हैं। सोफे पर थोड़ी देर के लिए बिठाया तो उनको चक्कर आ गया। आज उन्होंने बातचीत अधिक नहीं की, चुपचाप सुस्त पड़े रहे। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना सबेरे आकर उनको देख गईं।

"बच्चों की बहुत याद आती है। मन बहुत उदास रहता है। उन लोगों की याद आते ही मुझे रोना आता है।"

## इगोर का पुनः आगमन

**गुरुवार, 31 जनवरी :** "आज रात पंडितजी सोये ही नहीं। 'भैया, भैया, चलो' करते रहे। गुस्से भी हो गये। पेशाब करने की बोतल को जमीन पर फेंक दिया। दो बजे रात को डॉक्टर को बुलाना पड़ा। नींद की गोली दी गई, तब जाकर सोये वे। इतने परेशान पहले भी हुआ ही करते थे, बेचैनी बहुत रही। सबेरे अच्छी तरह सोये। दिन में कम सोये, पर खाना बिल्कुल खाना नहीं चाहते, रोते हैं। शाम को फिर उनके दिमाग में गरमी आग गई, Violent हो गये। सिस्टर और हमको जोर से डाँट रहे थे। डॉ. मारगरिता आईं, फिजियोथेरापिस्ट भी आकर देख गईं। कहती हैं, पहले से हालत अच्छी है। पर कहाँ ? ज्वर आज नार्मल है। रक्त में शर्करा अधिक हो जाने के कारण दिमाग में बेचैनी है। हो सकता है यही बात हो।

"सबेरे इगोर ने फोन किया। वह कल मास्को आ गये हैं। आज दोपहर 4 बजे वह अस्पताल आये। बातचीत तो क्या हो सकती थी, क्योंकि वह अंग्रेजी नहीं जानते और मैं रूसी में उतनी पक्की नहीं हूँ। डिक्शनरी की सहायता से बातें हुईं। बेचारे वह अपने पिता को चूमते रहे। अस्पताल की चाय और खाना खिला दिया उनको। कल फिर आयेंगे।"

## फरवरी 1963

**शुक्रवार, 1 फरवरी :** "रात को पंडितजी विक्षिप्त हो गये, बहुत गुर्रा रहे थे। दवा देने के बाद 3 बजे सबेरे सोये। नाड़ी की गति 104 रही। आज वे 24 घंटे पूरे सोये। डॉ. मारगरिता घबड़ा गईं। घबड़ाने की तो बात ही थी। खाना भी उनका नींद में हुआ। खाने के बाद तो उन्होंने जरा भी आँखें नहीं खोलीं।

"रोगी की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक है, अतः इगोर को आज अस्पताल आने नहीं दिया गया। हमारे इंटरप्रेटर मि. यूरी ब्लादीमिर आये। बच्चों के बारे में बातचीत हुई। वे लोग यहाँ आ सकेंगे–इसकी कोई आशा नहीं है। मन खराब होता जा रहा है।"

**शनिवार, 2 फरवरी :** "पंडितजी आज दिन में शांत रहे। सोने की कोशिश करते रहे, बीच-बीच में झपकी भी लेते रहे, लेकिन उनको सोने नहीं दिया गया। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना तीन बार उनको देख गईं, वह भी पंडितजी के लिए चिन्तित हैं। बहुत दिनों के बाद आज डॉ. तात्याना पेत्रोव्ना भी आईं। पंडितजी उनसे ठीक-ठीक बोले। किन्तु रात को फिर उनके दिमाग में गरमी चढ़ गई, Violent हो गये।

"सबेरे कामरेड चन्द्रन आये। उन्होंने बतलाया कि पंडितजी को न्यूमोनिया हो गया था। तभी इतने बीमार रहे। हमारी बेचैनी, घबड़ाहट का क्या पूछना।

"इगोर ने फोन किया था, वह कल आयेंगे। इस बार पता नहीं क्यों उनकी माता नहीं आईं।"

**रविवार, 3 फरवरी :** "पंडितजी रात-भर नहीं सोये। आज फिर Violent हो गये। एक मिनट के लिए भी उन्होंने आँखें बन्द नहीं की। बोलते और गुर्राते रहे। रात-भर न सोने के कारण कमजोर हो गये हैं। खाना भी जबर्दस्ती खिलाना पड़ा। रक्तचाप बढ़ जाने के कारण ही उनकी ऐसी हालत हो गई है। आज रक्तचाप नार्मल करने के लिए उनको लिबातोल (Libatol) औषधि का इंजेक्शन दिया गया। इंजेक्शन लेने के बाद उनके दिमाग में थोड़ी शांति आई, अब सो रहे हैं। रात-भर भी सोते रहे। खाना खाने से भी इन्कार कर रहे थे।

"इगोर सबेरे 11.30 बजे आये और साढ़े 3 बजे लौट गये। मास्को में वह और दो दिन के लिए हैं। उनसे आज काफी बातचीत हुई। वह इस वर्ष भारत आना चाहते हैं। मैंने कहा–यदि आना चाहते हैं तो पासपोर्ट और वीसा बनवा लें। खर्च मैं दे दूँगी। खुश हो गये वह। कमीजों की उनको जरूरत थी। मैंने जूते और कमीज के नाप ले लिये हैं। बाद में दिल्ली जाकर भेज दूँगी। लड़के बहुत अच्छे और सुशील हैं। आज उन्होंने मेरे साथ काफी बातें कीं।"

**सोमवार, 4 फरवरी :** "पंडितजी रात-भर सोये, दिन-भर भी सोते रहे। पेशाब दिन-भर नहीं हुई। भोर को एक बार और शाम को एक बार हुई। खाते समय उनको कुर्सी पर बिठाया। तबीयत सुस्त है, पर शांत रहे। इस समय रात को उनको जल्दी नींद नहीं आ रही है।

"आज इगोर को यहाँ आने की अनुमति नहीं मिली।"

## पिता-पुत्र का अंतिम मिलन

**मंगलवार, 5 फरवरी :** "दिन अच्छा रहा। पंडितजी सबेरे काफी अच्छे रहे। उनको कुर्सी पर बिठलाया, थोड़ी कसरत हुई, शांत रहे। खाना खाकर सो गये। बातचीत नहीं कर सकते थे, केवल रोते रहे, सिर में दर्द भी हो गया होगा। इगोर शाम को आये। पंडितजी कुछ बोल नहीं पा रहे थे। इगोर बार-बार उन्हें लोला और लेनिनग्राद की याद दिलाते रहे। वह नहीं समझते कि इस समय उनके पिता एबनार्मल हो गये हैं। पिता बार-बार पूछते–'तुम कौन हो ? क्या करते हो ? कितना पढ़े हो ? कहाँ रहते हो ?' इगोर से वे हिन्दी में बोलते थे। इतना पूछने के बाद भूल गये, फिर पूछने लगे। बस, इससे ज्यादा वे बोल नहीं पाये। इगोर उनसे कह रहे थे–'आप ज़ल्दी ठीक हो जाइए, फिर मैं आपको लेनिनग्राद में माँ के पास ले चलूँगा।' पिता ने समझा या नहीं, कहना मुश्किल। क्योंकि वे तो हिन्दी के अलावा अन्य सभी भाषाएँ भूल चुके थे।

"इगोर बेचारे पिता की बोली भी तो नहीं समझ रहे थे। मैंने पापा के साथ उनके चार फोटो चोरी-चोरी उतारे, क्योंकि अस्पताल के भीतर रोगी का फोटो लेना वर्जित था। इगोर 4 बजे शाम से रात 8 बजे तक

रहे। पिता कहते–'अब तुम जाओ, मैं सोना चाहता हूँ।' पर पुत्र को आज जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। अब जाने के बाद पिता से भेंट होने की सम्भावना कम है, इसलिए उनका दुःखी हो जाना स्वाभाविक ही था। इस कारुणिक स्थिति को देखकर मेरा मन भी दुःखी था। वह जया-जेता के बारे में दिलचस्पी से पूछते रहे। भारत जाने की उनकी बड़ी इच्छा है। वार्तालाप में थोड़ी दिक्कत तो रही, लेकिन कुछ बातचीत जरूर हुई। अब मैं भी कुछ रूसी बोलने लगी हूँ, फिर डिक्शनरी भी साथ में है। वह कल लेनिनग्राद लौट रहे हैं।

"उन्होंने मुझसे कई व्यक्तिगत प्रश्न भी पूछे, जैसे–'उनके पापा के साथ मेरी मुलाकात कब, कहाँ और कैसे हुई ? लोला-इगोर के अस्तित्व के बारे में मुझे कब मालूम हुआ ? क्या पापा ने यह बात छिपाई थी ?' बात तो सच ही थी। पंडितजी ने मुझे नहीं बतलाया था। उनके पास आये सात महीने बीत जाने पर ही मुझे पंडितजी के पूर्व परिवार के बारे में पता चला और वह भी दूसरे माध्यम से। जो कुछ मैं जानती थी, वह इगोर को बतला दिया। वह यह भी कह रहे थे–जब उनके पिता चीन आये थे तो वह सोवियत संघ में हमेशा के लिए आना चाहते थे। इसीलिए वे चीन आये थे। मैंने कहा–यह बात तो सच नहीं है, पर हो सकता है सच भी हो। (मेरे पास एक ऐसा प्रमाण है जिससे मुझे लोला और राहुलजी के आपसी सम्बन्धों के कड़वे तथ्यों के बारे में पता चला था। इस बारे में फिर कभी लिखा जायेगा।) खैर, पंडितजी अभी लेनिनग्राद में बैठे होते तो जीवन के अन्त में उनकी क्या हालत होती, क्योंकि उनको अपनी मातृभूमि से बहुत प्रेम रहा। इस भीषण अस्वस्थता के समय उन्होंने बेहोशी में भी कभी लोला का नाम नहीं लिया। पिता का चुम्बन लेकर इगोर भारी मन से विदा हो गये। इस करुणापूर्ण दृश्य की साक्षी केवल मैं ही थी। मेरा मन भी दुखी था। उनको छोड़ने मैं अस्पताल के नीचे मूल दरवाजे तक गई। जाते-जाते कहने लगे–'आप मेरे पापा की सेवा कर रही हैं, उनकी देखभाल कर रही हैं, आप इनके साथ बराबर रहती हैं, इससे मैं और मेरी माँ संतुष्ट हैं। उनके स्वास्थ्य का समाचार देती रहें।' इतना कहकर इगोर अस्पताल के मूल दरवाजे से बाहर हो चले गये। अब वे मास्को नहीं आ सकेंगे।

"पंडितजी पर फिर उन्माद सवार हो गया। बहुत Violent हो गये। सोये ही नहीं। नर्स को भी मारने के लिए हाथ उठाया। बड़ी मुश्किल कर दी। सबेरे के समय वे सोये।"

**बुधवार, 6 फरवरी :** "पंडितजी सबेरे सोते रहे। चाय पीने के बाद उनकी नींद टूटी। कुर्सी पर काफी देर तक बैठे। उनके पाँव गरम पानी से धो दिये गये, तब वे बिस्तर पर सोये। डॉक्टर मारगरिता तीन बार उनको देखने आईं। आज उनका रक्तचाप नार्मल रहा, इसलिए शांत रहे। खाने के बाद फिर सो गये। शाम को जगने के बाद फिर हल्ला करने लगे, गुस्से होने लगे, बाद में रोने लगे। फिर अपने ही शांत हो गये। तब काफी बातचीत भी की। खाना ठीक से खाया। पुत्र मिलकर गये, यह बात वे भूल गये। रात को 10 बजे के बाद दवा लेकर सो गये।"

**गुरुवार, 7 फरवरी :** "रात पंडितजी शांति से सोये। कपड़ा बदलते समय गुर्रा रहे थे, पर फिर शांत हो गये। सोये नहीं। दिन में कुर्सी पर उनको कोई बार बिठाया। पैर भी चला रहे थे। थोड़ा खड़े भी हुए। खाते समय हल्ला तो करते ही रहते हैं। रात को फिर उनका वही रवैया शुरू हो गया। बार-बार पेशाब करते रहते हैं, सोये नहीं, बोतल रखने नहीं देते।

"मन उखड़ गया है यहाँ से।"

**शुक्रवार, 8 फरवरी :** "कल रात पंडितजी 1 बजे के बाद सोये, फिर आज दिन-भर सोते रहे। थोड़ी देर कुर्सी पर बिठलाया, पर सोते ही रहे, बैठे-बैठे भी। बड़ी गहरी नींद में कुल 20 घंटे सोये। वह स्वाभाविक नींद नहीं है। पेशाब सिर्फ एक बार हुई। पेशाब कम होना उनके लिए बुरा है। अभी तो शान्त हैं, लेकिन फिर Violent हो गये तो खतरा है। दिमाग थोड़ा भी काम नहीं करता उनका। बल्कि पहिले से भी ज्यादा खराब हो गया है। आगे क्या होगा, कुछ पता नहीं।

"बच्चों के बिना यहाँ बिल्कुल मन नहीं लगता। किसी काम में जी नहीं लगता। पंडितजी भी बच्चों के लिए तड़पते हैं, वे दोनों पास में होते तो पिता इतने Violent न होते। जैसे ही उनकी चेतना लौटती है,

वे 'बच्चे, दो बच्चे' करने लगते हैं।"

**शनिवार, 9 फरवरी :** "पंडितजी रात 3 बजे के बाद सोये और सबेरे तक सोये ही रहे। चाय-पान के बाद भी सोते ही रहे। कुर्सी पर बिठलाया, हजामत बनवा दी, बाल काढ़ दिये। इस प्रकार वे काफी देर तक बैठे रहे। कुछ बातें भी करते रहे, पर खड़े नहीं हो सकते।

"रात को फिर वही पागलपन, जगे रहना, बार-बार पेशाब करना, गुर्राना—यह सब चलता रहा। रात के समय थोड़ा सो लेते तो उनको आराम मिलता।"

**रविवार, 10 फरवरी :** "मौसम साफ है। शाम तक धूप रही। अब यहाँ 6 बजे अँधेरा हो जाता है। इच्छा हो रही थी मास्को शहर जायें, लेनिनग्राद जायें, लेकिन कहाँ जा पायेंगे। पंडितजी तो खड़े भी नहीं हो सकते, उनका दिमाग सही नहीं रहता, फिर कहीं जाने का सोच भी नहीं सकते। वे आज रात भी सोये नहीं, चीखते-चिल्लाते रहे। आज दिन में भी नहीं सोये। उनका दिमाग थोड़ा भी काम नहीं करता। पेशाब पर नियंत्रण नहीं करते। आज ज्वर फिर 37.8° तक है। बस अस्वाभाविक रोना ही रोते रहे आज। बच्चों से अलग हुए हमें सात महीने हो गये।"

**सोमवार, 11 फरवरी :** "रात को पंडितजी ठीक से सोये, नींद की गोली दे दी गई थी। इसीलिए आज दिन-भर वे शांत रहे और अच्छे रहे। 7 महीनों के बाद आज वह मुस्कुरा रहे थे, बातें भी कर रहे थे। बच्चों की याद करके रोये भी। आज दिन-भर वे बहुत-बहुत प्रसन्न रहे। रात को इस समय (10 बजे) भी शान्त रहे। खड़े नहीं हो पाते। जल्दी चलने-फिरने लग जाते तो जल्दी घर भी चले चलते। बच्चे बहुत याद आते हैं, यहाँ मन नहीं लगता।"

**मंगलवार, 12 फरवरी :** "पंडितजी रात को कम सोये। पेशाब कई बार करते रहे। सबेरे के समय थोड़ा सोये। दिन-भर शांत रहे। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना उनका देखने आईं। कसरत करवायी उनसे। कुर्सी पर भी काफी देर तक बैठे रहे। शाम को ह्वील चेयर पर बिठाकर उनको टहलाया। रोना तो खैर चलता ही रहता है, तो भी और दिनों की अपेक्षा आज उनकी हालत कुछ बेहतर मालूम होती है। इधर वे बच्चों के बारे में ज्यादा पूछते रहते हैं।"

**बुधवार, 13 फरवरी :** "रात को राहुलजी आराम से सोये। पेशाब नहीं की। सबेरे समय पर जगे। आजकल उतनी गहरी नींद नहीं सोते। प्रोफेसर नीना एलेक्सेवृना पोपोवा तथा डॉ. मारगरिता पावलोव्ना उन्हें देखने आईं। रोगी की प्रगति को देखकर दोनों ही प्रसन्न हुईं। वे आज दिन में कई बार कमरे के भीतर चले, कुर्सी पर भी बैठे रहे। शाम को ह्वील चेयर पर बिठाकर टहलाया। सोना, रोना नार्मल होता तो वे कुछ अच्छे हो जाते। कभी हालत सुधरती भी मालूम होती है, कभी निराशा होती है।

"बगल के कमरे में रहनेवाली महिलाओं के साथ हमारी अच्छी जान-पहिचान हो गई है। वह पंडितजी को भी देखने आती हैं। मेरा इन लोगों के साथ रूसी बोलने का अच्छा अभ्यास हो जाता है। आज रात की ड्यूटी डॉ. अन्तानिना पेत्रोव्ना की थी, वे कई बार राउण्ड लगाकर गईं। डॉक्टरों के मामले में पंडितजी भाग्यशाली रहे। सभी लोग उनसे बहुत स्नेहपूर्ण व्यवहार करती हैं। भारत में ऐसा व्यवहार कहाँ मिलता है ? यहाँ की नर्सें भी बहुत अच्छी और कर्तव्यपरायण हैं।"

**गुरुवार, 14 फरवरी :** "दिन अच्छा रहा। पंडितजी रात को शांति से सोयें। मुझे भी नींद आ गई। आज दिन-भर वे शांत रहे। बातचीत भी करते रहे, रोते भी रहें। थोड़ा चलवाया कमरे के भीतर। खड़े नहीं हो सकते, न चलना ही पसन्द करते हैं। यह तो मुश्किल है। कब खड़े होंगे और कब घर जाने को मिलेगा ? अब यहाँ पर मन नहीं लगता। यहाँ आये भी पाँच महीने हो गये और घर छोड़े भी सात महीने से ज्यादा।

"पंडितजी को शाम के समय ह्वील चेयर पर बिठाकर कोरीडोर में टहलाया। चेहरे से तो वे बीमार नहीं लगते। यहाँ आने के बाद तो उनका चेहरा और भी सुन्दर दिखाई देता है।"

"आज देहरादून से श्री सदानन्द मेहताजी का पत्र आया। मालूम हुआ कि गणतंत्र दिवस के अवसर पर पंडितजी को भी राष्ट्रीय उपाधि से सम्मानित किया गया है। यह सुनकर अच्छा लगा। उन्हें यह समाचार सुनाया

तो हँस रहे थे। इस समय तो क्या पद्मभूषण, क्या डाक्टरेट, उन्हें कुछ भी याद नहीं, न ही इतना समझ सकते हैं। यही क्या कम है कि बीमार पड़ने के बाद उनको दो उपाधियाँ डी. लिट्. (भागलपुर वि. वि.) और पद्मभूषण तो मिली।

"बच्चों की बहुत याद आती है। वे किस हालत में होंगे, कोई सूचना भी नहीं मिलती। उनके लिए मन छटपटा रहा है। कब राहुलजी चलने लगेंगे, कब हम यहाँ से जा सकेंगे।"

**शुक्रवार, 15 फरवरी :** "वे रात को शांति से सोये, दिन-भर भी अच्छे रहे। बातचीत अब काफी करते हैं, पर रोना बन्द नहीं हुआ है, खड़े हो नहीं पाते। बच्चों को बहुत याद करते हैं। आज उनको कुर्सी पकड़वाकर खड़ा करने की कोशिश की। पाखाना बाथरूम में किया। कुर्सी पर भी काफी देर तक बैठे रहे। कुछ कदम चलवाया भी। शाम को हाथगाड़ी पर बिठाकर कोरीडोर में टहलाने ले गये। कसरत भी कुछ करवाई। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आकर उनको देख गईं।

"बच्चों की याद से मन चिंतित रहता है। किसी तरह इस महीने के भीतर ही घर जाने को मिलता तो कितना अच्छा होता। परन्तु पंडितजी का चलना-फिरना ही बन्द हो गया है, जायेंगे कैसे ?"

**शनिवार, 16 फरवरी :** "राहुलजी की हालत में कोई फर्क नहीं आया। खड़े नहीं होते, यही दुःख की बात है। फरवरी में ही स्वदेश लौट सकेंगे, इसमें संदेह है। बच्चों के स्कूल का समय हो गया है और हम यहाँ हैं। चिन्ता के मारे हमारा बुरा हाल है।"

**रविवार, 17 फरवरी :** "रात राहुलजी को खाँसी थी। दवा लेने के बाद आराम से सोये। सुबह वे सो रहे थे, इसलिए मैं पड़ोसी महिलाओं से थोड़ी देर बातचीत करने के लिए गई। लौटकर देखा तो उनको तेज बुखार आ गया है। नाड़ी की गति भी असाधारण तेज थी। वे एकदम अशांत हो गये। डॉ. अन्तानिना पेत्रोव्ना ने आकर देखा। दो बार अनेमा (डूश) दिया गया, तब उनका पेट साफ हो गया। दो बार कै भी की। रात-भर भी ज्वर रहा, कमजोर हो गये। आज मौसम उतना साफ नहीं रहा, इसीलिए उनकी तबीयत खराब हो गई।

"लोला का पत्र मिला। पंडितजी के बारे में पूछा है। वह आना चाहती हैं, पर अभी उनको छुट्टी नहीं मिल सकती। इसलिए मुझे पंडितजी के स्वास्थ्य के बारे में लिखने और सूचनाएँ देने के लिए लिखा है।

"भारत सरकार की ओर से पंडितजी को बधाई-पत्र मिला है।"

**सोमवार, 18 फरवरी :** "आज सबेरे प्रोफेसर (अकादमिशियन) डॉक्टर आये। उनके साथ 8 अन्य डॉक्टर भी आये। पंडितजी कल रात को 12 बजे के बाद सोये थे, इसलिए आज सबेरे भी सो रहे थे। प्रोफेसर ने उनको देखा, खड़े करवाकर भी देखा, बिठाकर भी देखा। बाद में डॉक्टर मारगरिता पावलोव्ना ने आकर बतलाया कि डॉक्टर लोग कह रहे हैं कि राहुलजी ठीक हो रहे हैं। कैसे ठीक हो रहे हैं, मालूम नहीं। अभी खड़े भी नहीं हो पाते, कब चलने लगेंगे, कब घर लौटने को मिलेगा। आज उनको ज्वर सामान्य रहा। दिन-भर सोते रहे। बिठाने पर भी सोते रहे। पेट साफ हुआ पर पेशाब कम कर रहे हैं। शांत रहे। लेकिन खड़े नहीं होते, बड़ी मुश्किल है। अभी जल्दी घर लौटने की आशा तो दिखाई नहीं देती।"

**मंगलवार, 19 फरवरी :** "पंडितजी आज कुछ अच्छे मालूम हो रहे थे। रात को ठीक से सोये। उनका टेम्परेचर नार्मल है। खाना भी ठीक से खाया। सोफे पर काफी देर तक बैठे रहे। बातें तो ज्यादा नहीं करते, पर रोते खूब हैं। पाँव दुर्बल हैं। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना ने बताया, अभी तो जल्दी घर लौटने की बात ही नहीं है। इनके पाँवों की मालिश और कसरत होगी, तब वे उठने, खड़े होने और चलने लायक हो जाने के बाद घर जा सकते हैं। और कोई नयी बात नहीं कही। कार्डियामिन के इंजेक्शन पाँच दिन लगेंगे, विटामिन के अभी कुछ दिन ठहरकर दिये जायेंगे।

"एक-एक मिनट बिताना कठिन हो रहा है। पता नहीं और समय यहाँ कैसे बिता सकेंगे ? शाम को कामरेड चन्द्रन आये। बताया, कोई कामरेड भारत लौट रहे हैं। मुझे पत्र लिखने के लिए कहा है।"

**बुधवार, 20 फरवरी :** "पंडितजी आज दिन-भर कुछ अच्छे रहे। सोफे पर बैठे रहे। कुछ सचित्र पत्रिकाएँ

उनके सामने रख दीं, वे स्वाभाविक रूप से उनके पन्ने उलटते और चित्र देखते रहे। हँसना तो वे भूल ही गये हैं। सुबह के नाश्ते, दिन और रात के खाने में वे हंगामा मचा रहे थे। खाना तो उनको पौष्टिक दिया जाता है। आकर डॉक्टर लोग उनसे थोड़ा चलवाते भी हैं। उन्हें शीघ्र खड़े करने की कोशिश की जा रही है। उनके पैरों की मालिश कल से होने लगी है। आज शाम को उन्हें स्नान करवा दिया गया। चुपचाप बैठे रहे, लेकिन बाद में फिर बक-बक करने लगे। Aetaxin Tablet देने के बाद वे सो गये।

"आज सबेरे भारतीय दूतावास से प्रथम सचिव ने फोन पर बात की—महांपडित को 'पद्मभूषण' उपाधि प्राप्त करने के लिए बधाई दी। मालूम हुआ, चार चिट्ठियाँ मेरे नाम की दूतावास में आई हुई हैं। हो सकता है बधाई-पत्र हो। थोड़ी देर भारतीय राजदूत महोदय ने भी फोन पर बात की, कहा—महापंडितजी को बधाई देने के लिए वे स्वयं रविवार को अस्पताल पधार रहे हैं। अपने दूतावास में आने के लिए भी हमको निमंत्रण दे रहे थे। जाना तो मुश्किल है।

"संध्या समय अस्पताल के रिक्रिएशन हॉल में एक समारोह में मुझको भी जर्बदस्ती ले गये। वहाँ स्कूली बच्चों ने संगीत तथा नृत्य का सुन्दर प्रदर्शन किया। सभी जया-जेता की उम्र के बच्चे थे। उनको देखकर मुझे अपने प्यारे बच्चों की याद आई। वे दो करुण चेहरे, माँ-बाप की प्रतीक्षा में दूसरों के घरों में भटक रहे चेहरे, मेरी नजर के सामने आये, और मैं अपने आँसू नहीं थाम सकी, दिल को न रोक सकी, हॉल के भीतर ही मैं बुक्का फाड़कर रो पड़ी। मेरी बच्ची जया की उम्र की लड़की ने 'आवारा' फिल्म के एक गीत की धुन पर भारतीय नृत्य प्रस्तुत किया, तब तो मैं वहाँ रुक ही नहीं सकी। पंडितजी की एक नर्स मेरे साथ गई थी, वह मेरी बाँह पकड़कर मुझे कमरे में वापस ले आई। बच्चों के प्रति माँ की ममता क्या होती है, यह उसी का प्रमाण था। आज पिता भी होश में होते तो उनका भी यही हाल होता।"

**गुरुवार, 21 फरवरी :** "मौसम साफ है। कमरा बन्द करके रखने पर गरमी होती है और रोशनदान खोल देने पर सर्दी होती है। पंडितजी आज भी ठीक से सोये। रात को पेशाब के लिए संकेत किया। किन्तु आज दिन-भर ही सोते रहे। दो बार कमरे के भीतर उनको पैरों से चलवाया, पाखाना बाथरूम में किया। कुछ देर तक वे सोफे पर बैठकर पत्रिकाएँ देखते रहे। शाम को रेडियो से भारत का समाचार सुना दिया, वे सुनते रहे। वे हँसे ही नहीं, चेहरे पर उदासी छायी रहती है। बातचीत करते नहीं, बच्चों के बारे में भी आज कम ही पूछा। खाना आज ठीक से खाया, जरा भी विरोध नहीं किया। सबेरे डॉ. मारगरिता पावलोव्ना उन्हें देख गईं, तब तो वे बैठे हुए थे। बाद में भी वह आईं और उन्हें ऑक्सीजन देने को कहा। हमने भी देखा है, जब मौसम खराब रहता है, तो वे भी परेशान और सुस्त रहते हैं, अस्वाभाविक रोना रोते हैं। आज मौसम ठीक है तो वे भी संतुलित लग रहे हैं।"

**शुक्रवार, 22 फरवरी :** "पंडितजी आज-दिन भर अशांत रहे, अस्वाभाविक रोना चलता ही रहा। आज बाहर बर्फ ज्यादा गिरी, जिससे मौसम खराब रहा। मौसम का प्रभाव पंडितजी के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। कुर्सी पर वे काफी देर तक बैठे रहे, परन्तु प्रसन्न नहीं रहे। कमरे के भीतर थोड़ा चलवाया, अब कमर सीधी करके खड़ा होते हैं। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना कई बार उनको देखने आईं। कहा, सब ठीक है। उनको मालिश और कसरत भी करवाई।

"आज अपनी तबीयत भी खराब रही। डॉक्टर ने देखा और दवा दी, लेटे रहने को कहा। भारत भेजने के लिए पत्र लिखे—सच्चिदाजी, मुंशीजी, चंद्रगुप्त विद्यालंकारजी, हरि भाई, राधामोहन बाबू तथा अमृतसर के स्वामीजी के लिए। शाम को कामरेड चन्द्रन आये। उन्होंने मुझे सच्चिदाजी की 13 फरवरी की लिखी चिट्ठी दी। उससे मालूम हुआ कि जया-जेता 15 फरवरी को स्वामीजी के साथ अमृतसर जानेवाले हैं। वहाँ 10-12 दिन रहकर दार्जिलिंग लौट जायेंगे। पर दिल्ली से वे लोग कहीं भी जाना नहीं चाहते, अम्मा-पापा के लिए रुके हुए हैं, बेचारे !

"पत्र पढ़कर मेरा मन उद्विग्न हो गया, यह कैसी विपत्ति आ पड़ी है, अपने हृदय के टुकड़ों से हमें अलग रहना पड़ रहा है—इतने दिन हो गये। कब उन्हें देख सकेंगे, यह भी अनिश्चित है। बच्चों के लिए बड़ी चिन्ता

हो रही है, कैसी बीत रही होगी उन पर। दिन तो मेरा किसी तरह कट जाता है, पर रात आँखों में ही कटती है।

"ऐसा प्रतीत होता है, महापंडितजी जब तक जीयेंगे एबनार्मल ही रहेंगे।"

**शनिवार, 23 फरवरी :** "आज मौसम अच्छा रहा। आशा थी कि मौसम के साथ-साथ पंडितजी भी अच्छे मूड में रहेंगे, किन्तु ऐसा सोचना गलत ही निकला। वे तो आज बिल्कुल ही मरे हुए मन से बैठे रहे, न हँसना, न बोलना, किसी भी चीज में दिलचस्पी नहीं। एबनार्मल ऐसे कि अपने कष्टों के बारे में भी कह नहीं सकते, यह कैसी विवशता है ? दिन-भर वे आँखें मूँदे ही पड़े रहे। पाँव भी काँपते हैं उनके। दो-तीन बार कमरे में चलवाया, पर पाँव बहुत लड़खड़ाते हैं। बाथरूम तक गये, बुखार हल्का-सा रहता है, नाड़ी तेज चलती है। आज खाना भी ठीक से नहीं खाया। यह कैसी विपदा आ पड़ी है। कब वे ठीक होंगे और कब घर जाने को मिलेगा। स्वदेश लौटकर उनको कहाँ रखना होगा, इसके बारे में भी सोचना है।"

**रविवार, 24 फरवरी :** "मौसम अच्छा है, पर हवा भी खूब चल रही है। बाहर निकल ही नहीं सकते, बहुत ठंड लगती है। रात को पंडितजी हल्ला करते रहे। उनकी चैतन्यहीनता में कोई सुधाार नहीं, बल्कि पहले से अधिक एबनार्मल हो गये हैं। बातचीत भी ढंग से नहीं करते। सबेरे नाश्ता करते समय हम लोगों पर गुर्रा रहे थे। दिन में कुछ देर सोने से उनका टेम्पर थोड़ा-सा ठंडा हो गया। सोफे पर काफी देर तक बैठे रहे। तीन-चार बार कमरे के भीतर चलवाया। पाखाना साफ हुआ। कमरे से बाहर भी घुमाने ले गये, पर वहाँ भी उनका मन नहीं लगा। रोना-धोना जारी है। बच्चों की याद करते हैं। आज भी डॉ. मारगरिता पावलोव्ना कई बार उनको देखने आईं। घर जल्दी लौटने की बात अभी नहीं करने को कहती हैं।

"अब तो दुगनी परेशानी है, एक तो पंडितजी की बीमारी ओर दूसरी और बच्चों के लिए चिन्ता–क्या करें ? कैसे ये परेशानियाँ कम हों ?"

**सोमवार, 25 फरवरी :** "मौसम ठंडा है, पर कमरे में सेंट्रल हिटिंग के कारण गरमी है। चमत्कार है–पंडितजी रात को बहुत अच्छी तरह सोये। दिन-भर भी शांत रहे। और दिनों की अपेक्षा आज वे अच्छी तरह से चले। एक बार अपने आप कुछ देर तक खड़े भी रहे। बातें काफी समझते हैं। घर जाने के लिए उनको भी बेचैनी होती है, बार-बार पूछते रहते हैं।

"अपनी तबीयत भी ढीली-ढाली है। डॉक्टर ने परीक्षण किया, दवाइयाँ दीं। पर यह तो मन का रोग है, दवा से क्या होगा ?"

**मंगलवार, 26 फरवरी :** "मौसम ठीक है। पंडितजी आज भी कल की तरह अच्छे रहे। दिन में चार-पाँच बार कमरे के भीतर चले। बाथरूम सबेरे ही गये। आज रोये तो सही पर बहुत ही शांत रहे। चेहरे पर बहुत रौनक रही। हँसते नहीं, बोले भी कम। रात को 10 बजे सो गये, खाना भी ठीक से खाया। ज्वर नार्मल है। आज हर तरह से अच्छे मालूम हो रहे हैं। केवल उनके पाँवों में ताकत नहीं। डॉक्टर लोग उनको चलाने में जोर दे रहे हैं, किंतु वे थक जाते हैं। एक बार कुछ देर तक अकेले खड़े रहे। चेहरे से तो स्वस्थ मालूम होते हैं, पर शरीर भीतर ही भीतर जर्जर हो चुका है।

"भारत के पत्र-पत्रिकाओं के लिए पंडितजी के बारे में लिखती रही।"

**बुधवार, 27 फरवरी :** "मौसम बहुत अच्छा है, केवल रात को सर्दी होती है। बाहर तो बर्फ ही बर्फ है।

"महापंडितजी आज बहुत ही अच्छी तरह से रहे, बहुत ही अच्छी तरह से बातचीत की। रोये भी कई बार। बच्चों के बारे में आज कई बार पूछा उन्होंने। घर जाने के लिए बहुत ही जिद कर रहे हैं। 'बच्चे, मेरे दो बच्चे" कहते रहते हैं। क्या पता जया-जेता को देखकर पंडितजी और भी प्रसन्न हो जायँ! प्रोफेसर डॉक्टर पोपोवा उनको देख गईं, पर कुछ भी नहीं बताया।"

**गुरुवार, 28 फरवरी :** "पंडितजी रात सानन्द सोये। अब उनको नींद ठीक से आ रही है। आज दिन के समय वे कुछ सोये भी, पर पहले की तरह बेहोश-से नहीं रहे। सबेरे एक बार गुर्रा भी रहे थे, किन्तु दिन-भर शांति से रहे, थोड़ी बातचीत की। कमरे में कई बार उनको चलाया गया, कोरीडोर में भी ले गये, पर

जल्दी थक जाते हैं। उनके पाँवों में धीरे-धीरे ताकत आ रही है। मालिश से फायदा पहुँच रहा है। खाने में रुचि नहीं लेते, इसलिए जबर्दस्ती खिलाना पड़ता है। बच्चों के बारे में हर वक्त पूछते रहते हैं। लगता है उनके मस्तिष्क में बच्चों की ही याद रह गई है।

"डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आईं। पंडितजी की प्रगति को देखकर खुश हो रही थीं। बता रही थीं कि प्रोफेसर पोपोवा ने सेन्ट्रल कमिटी तथा विदेश विभाग को फोन कर दिया है। अब जल्दी ही भारत लौटना है। मास्को से सीधे दिल्ली जानेवाले विमान से सुविधा रहेगी। मैंने कहा—हम तो 6 मार्च को ही जाना चाहते हैं। उन्होंने कहा—यह तो प्रोफेसर लोग ही बतलायेंगे। मालूम नहीं कब भेजने की सलाह है। इस समय पंडितजी के स्वास्थ्य में थोड़ा सुधार हुआ है, जाने का यही समय ठीक होगा। बाद में फिर कोई बाधा आ जाये तो बड़ी मुश्किल होगी। अब उनका भी यहाँ मन नहीं लगता।"

## भारत के लिए प्रस्थान से पहले

**शुक्रवार, 1 मार्च :** "आज रेडियो से बहुत ही दुःखद समाचार सुनना पड़ा। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी का कल रात देहान्त हो गया। आज पटना में उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया। राजेन्द्रबाबू से राहुलजी का बहुत पुराना सम्बन्ध था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में किये गये असहयोग-आंदोलन में दोनों ने एक साथ काम किया था। जब राहुलजी पहली बार तिब्बत गये थे, उस समय भी राजेन्द्रबाबू ने ल्हासा में पंडितजी को पत्र भेजे थे, उनकी कुछ आर्थिक सहायता भी की थी। बाद में वे जब भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने तब भी राहुलजी के प्रति उनका वही पुराना स्नेह-सम्बन्ध रहा। इधर पंडितजी जब श्रीलंका में रहते बीमार पड़े थे, तब भी राष्ट्रपतिजी ने कई पत्र उनको लिखे थे। राहुल-संग्रहालय में उनके लिखे सारे पत्र सुरक्षित हैं। भारत के राज पुरुषों में सिर्फ राजेन्द्रबाबू के प्रति ही राहुलजी की श्रद्धा रही थी।

"यह दुःखद समाचार सुनकर राहुलजी विह्वल हो गये। पुराने मित्रों को वे भूले नहीं थे। भावों को प्रकट करने के लिए उनके पास शब्द नहीं थे, पर वे रोते हुए बार-बार कह रहे थे—'हमारे··· हमारे वो तो···।" उनकी शोकपूर्ण मुद्रा को देखकर ही लगता था कि अपनी इस अवस्था में भी उनको बहुत दुःख लग रहा है।

"आज पंडितजी दिन-भर उदास रहे। वे अपने जीवन से निराश हैं। आज तो मरने की भी बात कर रहे थे।

"डॉ. मारगरिता पावलोव्ना ने बतलाया कि कल (रविवार) या सोमवार को मि. यूरी ब्लादीमिर या दूसरे इन्टरप्रेटर मि. निकोलाई आकर हम लोगों के भारत जाने के बारे में तय करेंगे। यदि इसी बुध को जाने का प्रोग्राम बन जाता तो अच्छा होता। मुझे बच्चों के लिए चिन्ता हो रही है। वे लोग घर (दार्जिलिंग) पहुँच गये हैं या नहीं, सूचना नहीं मिली है।"

**शनिवार, 2 मार्च :** "पंडितजी आज शांत रहे, चिल्लाये भी नहीं और गुस्से भी नहीं हुए। खाना-पीना-सोना सब नार्मल रहा। थोड़ी बातचीत की, रोते रहे दोपहर तक। बच्चों को बराबर याद करते रहे। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना आईं। उन्होंने बतलाया, अभी हम लोगों के जाने की तिथि निश्चित नहीं हुई है। मालूम नहीं कब जाना होगा। पंडितजी तो 'घर जल्दी चलो' कहते रहते हैं। और यहाँ एक-एक पल बिताना भारी पड़ रहा है।"

**रविवार, 3 मार्च :** "पंडितजी रात शांति से सोये, रात को उन्हें बहुत ज्यादा पेशाब लगती है, उस समय नियंत्रण नहीं कर पाते। दिन के समय में भी वे शांत रहे। कोरीडोर में थोड़ी देर उनको टहलाया। कमरे के भीतर भी टहलाया। अब चुपचाप पड़े हुए हैं, पता नहीं पड़े-पड़े क्या सोचते होंगे। उनको यह तो मालूम है कि वे अपने घर में नहीं हैं, इसलिए बच्चे यहाँ नहीं मिले। एकाध शब्द बोले भी तो सिर्फ 'बच्चे-बच्चे' ही करते हैं।"

**सोमवार, 4 मार्च :** "मौसम अच्छा है, पर बाहर बड़ी सर्दी है, इसलिए हम लोग कमरे में ही रहते हैं। पंडितजी सोफे पर बैठे रहे, यद्यपि बैठना उनको प्रिय नहीं है। लेटे रहना ही वे ज्यादा पसन्द करते हैं। आज

तो टहलना भी नहीं चाह रहे थे। कमरे में कुछ देर चलाया, पैरों की मालिश भी हुई। वे उदास रहते हैं, किसी तरह भी हँसते नहीं। ललाट पर सिकुड़न हरदम पड़ी रहती है। घर जाने के लिए कहते हैं। बच्चों को याद करते हैं, उनको भूले नहीं हैं। अपना नाम उनको याद है, पहला अक्षर याद दिलाने पर वे नाम बोल भी देते हैं। रोना बंद नहीं हुआ है। खाना आज ठीक से खाया। कुछ भूखे ही मालूम देते हैं। सबेरे आकर डॉ. मारगरिता ने उनका चेकअप किया।

"आज हमारे इंटरप्रेटर मि. यूरी ब्लादीमिर आये थे। हमारे भारत लौटने के बारे में चर्चा हुई। एक हवाई जहाज मास्को से दिल्ली सोमवार को डाइरेक्ट जाता है, दूसरा ताशकन्द होकर बुध को जाता है। वे लोग राहुलजी को ताशकन्दवाले से भेजना चाहते हैं, ताकि डॉक्टर भी उनके साथ ताशकन्द तक जा सकें। मुझे तो सोमवार को जानेवाला हवाई जहाज पसन्द है जो दो दिन पहले ही दिल्ली पहुँचा देगा। अभी इसका फैसला नहीं हुआ। मि. यूरी डॉक्टरों से सलाह लेकर ही परसों खबर देंगे।

"अमृतसर से 18 फरवरी को लिखी स्वामी हरिशरणानन्दजी की चिट्ठी मिली। पता चला कि जया-जेता 17 फरवरी को दिल्ली से अमृतसर पहुँच गये। उनको स्कूल भेजने की बात लिखी है। यदि मेरा पत्र उनको मिला हो तो अब तक बच्चों को दार्जिलिंग पहुँचा दिया होगा। स्कूल में तो वे अमृतसर में नहीं पढ़ेंगे। हमारे घर से बाहर रहने से बेचारे जया-जेता भी अनाथ बच्चों की तरह इधर-उधर भटक रहे हैं, यह सोचकर हमारा मन परेशान हो जाता है। पंडितजी अपने बच्चों के लिए व्याकुल रहते हैं, उनके लिए भी समय काटना दूभर हो रहा है। मैं तो पढ़ती रहती हूँ, वे बेचारे तो पढ़ भी नहीं सकते, छटपटाते रहते हैं।"

**मंगलवार, 5 मार्च :** "मौसम अच्छा है। अब सर्दी कुछ कम हुई है। सबेरे डॉ. मारगरिता पावलोव्ना ने बताया कि हमारा जाना 12 मार्च का पक्का हो गया है। याने अभी भी सात दिन बाकी हैं। खैर, मालूम हुआ कि डॉ. मारगरिता पावलोव्ना भी मास्को तक जायेंगी। यह जानकर बहुत संतोष हुआ।

"पंडितजी दिन-पर-दिन कुछ अच्छे होते जा रहे हैं। बातचीत भी कुछ अच्छी तरह से करते हैं। बच्चों के बारे में भी पूछते रहे थे। मेरे साथ देर तक बातचीत करते रहे। चेहरे पर रौनक है। आज दिन के समय भी देर-देर तक बैठे रहे, कुछ प्रसन्न भी लग रहे थे। उनको देखकर डॉ. मारगरिता तो खुश हैं ही। अनेमा देकर आज उनका पेट साफ कराया गया। आज उन्होंने खाना-पीना भी ढंग से किया। शाम को कोरीडोर में घुमाया। पहले से अब चलने में भी उन्होंने प्रगति की है। प्रेम की बातें भी समझने लगे हैं, पुरानी बातें याद दिलाने पर हँस भी रहे थे।

"आज शाम को अस्पताल के हॉल में कन्सर्ट दिखाने मुझे ले गये। तरुण नर्सें अच्छी-अच्छी पोशाक पहनकर नृत्य कर रही थीं। नर्सों को दिन-भर एकरसता से काम करना पड़ता है और कन्सर्ट के माध्यम से उनके मनोरंजन का भी प्रबन्ध रहता है। लौटकर मैंने पंडितजी को इस कार्यक्रम के बारे में सुनाया तो वे खुश हुए।

**बुधवार, 6 मार्च :** "मौसम खराब, मन खराब, सब खराब। परन्तु पंडितजी आज भी शांत रहे। चले-फिरे, खाये भी ठीक से। दिन-भर नार्मल रहे। डॉक्टर उनको देख गईं। आज उनका रक्तचाप नार्मल है, ज्वर भी नहीं है। सिर्फ दिमाग असंतुलित है।

"हमारे इंटरप्रेटर मि. यूरी ब्लादीमिरोव आये। 12 तारीखवाले विमान से जाने का निश्चय किया है। राहुलजी के साथ डॉ. मारगरिता पावलोव्ना सारकिना और मि. यूरी ब्लादीमिरोविच मेरिनोव तथा नर्स तमारा ताशकन्द तक जायेंगे। ताशकन्द से हम दोनों अकेले ही दिल्ली जा सकेंगे।

"घर जाने की बात पंडितजी को बतला दी गई। वे पूछ रहे थे–'कब ले चलोगी ? कब ले चलोगी ?' आज उनकी हालत पहले जैसी रही। अब समझने लगे हैं कि हम लोग घर जा रहे हैं।"

**गुरुवार, 7 मार्च :** "पंडितजी दिन-भर ठीक रहे, पर रात होते ही उनको गुस्सा चढ़ने लगता है। रात को पेशाब के लिए बोलते नहीं, बोतल रख देने पर बिगड़ते हैं, रात बिस्तर ही भीग गया। कपड़े बदलते समय भयंकर रूप से गुस्से हो गये। क्या किया जाय, आधे पागल आदमी को क्या कह सकते हैं ?

"शाम को कामरेड चन्द्रशेखर आये। हमारे लिए पुस्तकें और फिल्म लाये थे, 'वोशेम मार्त'। 8 मार्च को

महिला दिवस के उपलक्ष्य में उपहार देने के लिए चाकलेट भी लाये थे। यहाँ 8 मार्च का बहुत महत्व है।"

**शुक्रवार, 8 मार्च :** "पंडितजी कुछ ठीक रहे, पर दिमाग की हालत तो वैसी ही है। चलना-फिरना पसन्द नहीं करते, दिन-भर लेटे ही रहना चाहते हैं, तो भी कारीडोर में थोड़ी देर टहलाया।

"कल रात हमारी पड़ोसिनों ने, जो अब घर चली गई हैं–मदाम झेना पावलोवना तथा यूली कुजमिनिस्का–फोन पर बात करके पंडितजी का हाल पूछा और यह भी पूछा कि हम कब भारत जा रहे हैं। बड़ी अच्छी महिलाएँ हैं जो हम लोगों का इतना ख्याल रखती हैं।

"आज अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस है। यहाँ आज का दिन बड़े ही उत्साह के साथ मनाया जाता है। पति अपनी पत्नी को उपहार देते हैं, भाई अपनी बहन को, बेटा माँ को, बहन बहन को, दोस्त महिला दोस्त को उपहार देते हैं। कितना अच्छा और भावनात्मक त्यौहार है यह। क्रान्ति के बाद से ही यहाँ यह उत्सव मनाया जाने लगा है। आज रेडियो और टेलीविजन पर भी 'वोस्मोई मार्त झेस्की प्राजविकम' (8 मार्च का महिला दिवस) के ही कार्यक्रम आये। हमारे अस्पताल में भी काफी उत्साह रहा। सिस्टर लीदा ने मुझे पुस्तकें भेंट कीं, और स्वास्थ्य विभाग के सेक्रेटरी की ओर से उपहार में मुझे सेंट की शीशी मिली, जिसे डॉ. मारगरिता ने अपने हाथ से मुझको भेंट किया।

"अभी तक टिकट खरीदने का समाचार नहीं आया है, कहीं मंगल को भी जाना टल जाय तो ? फिकर होने लगी है।"

**शनिवार, 9 मार्च :** "मौसम खराब है। बाहर बर्फ काफी गिरी है। मौसम खराब तो मन भी खराब। घर लौटने के लिए हम छपटपटा रहे हैं। बच्चों की याद आ रही है। आठ-आठ महीनों से उनको देखा नहीं, कहाँ हैं, कैसे हैं, चिन्ता हो रही है। पर आज भी टिकट लेने की बात नहीं बताई गई। मालूम होता है मंगल के जाने की बात टल गई। कैसे यहाँ दिन बितायें, न रात को नींद, न दिन को चैन।

"पंडितजी शांत रहे, सोना-खाना सभी नार्मल है। बेचारे अकेले चुपचाप पड़े रहते हैं। और कुछ भी नहीं कर सकते। 'बच्चे-बच्चे' कहकर रो पड़ते हैं। डॉक्टर ने आकर उनको देखा। कह रही थी, अभी एक सप्ताह और रहना होगा। बड़ी मुश्किल हो गई।"

**रविवार, 10 मार्च :** "मौसम आज बहुत अच्छा है। फाल्गुन की पूर्णमासी है, पूर्णमासी का चन्द्रमा आकाश में चमक रहा है। बाहर बहुत ही सुन्दर और सुहावना दृश्य दिखाई दे रहा है। कवियों के लिए यह समय अत्यन्त अनुकूल है। भारत में आज होली मनाई जा रही है, यहाँ तो रेडियो समाचार से पता चला। हमारे बच्चे भी कहीं होली मना रहे होंगे या रो रहे होंगे। कुछ पता नहीं। मंगल को जाना टल गया है; ऐसा लग रहा है, कोई सूचना नहीं मिली।

"पंडितजी शांत रहे। दो बार कोरीडोर में टहलाया। टहलना पसन्द नहीं करते। अभी तो उनको घसीटकर ले जाना पड़ता है। किसी तरह भी उनको थोड़ा टहलाना जरूरी है, यह डॉक्टर का आदेश है। आज वे कुर्सी पर भी बैठे रहे। यूँ रात को उन पर पागलपन सवार हो जाता है, पर दिमाग कुछ सुधरा-सा मालूम होता है।"

**सोमवार, 11 मार्च :** "आज भी मौसम सुहावना रहा और दिन-भर धूप रही। सबेरे डॉ. मारगरिता पावलोव्ना ने बतलाया कि कल हम लोगों का भारत जाना पक्का हो गया है, इसलिए मुझे आज मास्को शहर जाना है। 11 बजे एक महिला के साथ मैं मास्को शहर गई। वहाँ म्युजियम को देखा, क्रेमलिन की परिक्रमा की और लाल मैदान होते हुए आये, फिर 'गुम' में शापिंग की। उसके बाद 'जेत्स्की मीर' (Kid's Store) गये। यहाँ बच्चों के लिए ही चीजें थीं। जहाँ कहीं भी देखा, भीड़ ही भीड़ थी। सभी लोग स्वस्थ चेहरे, हँसमुख कांति लेकर घूम रहे थे। कितना उत्साह भरा जीवन है यहाँ का। घूमते-घामते 3 बजे अस्पताल लौट आई। पंडितजी को देखा, वे चुपचाप सो रहे थे। भोजन और चाय के बाद फिर शाम साढ़े 4 बजे उन्हीं महिला के साथ पुनः मास्को शहर गई। बोल्शोई थियेटर में 'बकाचो' देखा, रियलिस्टिक आर्ट था। अभिनेता और अभिनेत्री बहुत ही मँजे हुए थे। सजावट और पृष्ठभूमि, सभी में यथार्थता झलक रही थी। बैले नर्तकी का नृत्य भी देखा।

रात साढ़े 10 बजे अस्पताल लौट आये।

''पंडितजी थोड़ा भी स्वस्थ हुए होते तो आज वे भी मास्को शहर घूमने गये होते। यहाँ आये साढ़े सात महीने हो गये, बेचारे एक दिन के लिए भी अस्पताल से बाहर नहीं जा सके। आज वे सारे दिन एक नर्स की देख-रेख में रहे। शांत ही रहे, हम को खोज रहे थे, यह नर्स ने बतलाया।

''इगोर ने 8 मार्च के लिए मुझे बधाई का तार भेजा था, वह आज मिला। लोला ने फोन पर बात की। बताया कि हम लोगों से मिलने दोनों माँ-बेटे मास्को आना चाहते थे, पर आ नहीं सके, इसलिए अफसोस प्रकट किया। मुझे भी अफसोस हुआ। उन्होंने काफी अच्छी तरह से बात की। मेरा पत्र इगोर को मिल गया था। बच्चों के बारे में भी लोला पूछ रही थीं।''

## भारत के लिए प्रस्थान : मास्को में अंतिम दिन

**मंगलवार, 12 मार्च :** ''सबेरे उठकर सामान ठीक-ठाक किया। आज मौसम उतना अच्छा नहीं रहा। चाय पीकर नीचे हॉल में 10 बजे उतरी। स्वास्थ्य विभाग की गाड़ी लेकर ड्राइवर प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके साथ मास्को शहर गई। हेल्थ मिनिस्टर के आफिस से तवारीश (साथी) तमारा को साथ लिया। शहर के बीच से होते हुए हम दोनों 'क्रासनाया पोल्याना' में लेनिन माउजेलियम देखने गये। वहाँ श्रद्धालु दर्शनार्थियों की लम्बी क्यू लगी हुई थी। सुना कि सोमवार को छोड़ अन्य दिन तीन घंटे के लिए लेनिन-समाधि के दर्शन कर सकते हैं, इसलिए प्रतिदिन ऐसी ही भीड़ लगी रहती है। का. तमारा हम को बहुत आगे ले गईं और हम धीरे-धीरे अन्य लोगों के संग समाधि-कक्षा के भीतर पहुँच गये। समाधि-कक्षा काले पत्थर की बनी हुई थी जो खूब चमक रही थी। अन्दर सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। कमरे के मध्य में शीशे के शोकेस में उस महापुरुष, महामानव लेनिन का शरीर सोया पड़ा हुआ था, जिसने गरीब मजदूरों को धनियों के शोषण से मुक्त करवाया। उस महापुरुष की सोयी हुई आँखों, और लाल चेहरे को देखकर दर्शनार्थियों की आँखें भावुकता एवं श्रद्धा के कारण आर्द्र हो जाती हैं। पुरुष अपनी टोपी उतारकर श्रद्धा प्रकट करते हैं। मेरे अपने जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा आज पूरी हो गई। गरीबों के मुक्तिदाता तवारिश लेनिन के शव को मैं देख सकी। महापंडितजी के मुँह से ही मैंने महान लेनिन के बारे में सुना था। उनकी लिखी पुस्तक 'लेनिन' को पढ़ा था। यह पुस्तक हिन्दी के पाठकों में बहुत चर्चित रही है। आज का दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय बन गया है।

''वहाँ से हम शहर का चक्कर लगाने लगे। लेनिन प्रास्पेक्ट देखने गये। नयी-नयी इमारतें बन रही हैं। मेट्रो (भूमिगत रेल) देखने गये। बिजली की सीढ़ी से भूगर्भ पर उतरने में बड़ा आश्चर्य हो रहा था। जमीन के अन्दर छोटी ट्रेन थी जिसमें बड़ी भीड़ थी। लोग चढ़ते उतरते जा रहे थे। स्टेशन भी साफ और सुन्दर। फिर हम लोग शहर में चले आये। 'वाल आफ बोरोदिन' (Wall of Borodin) का पेनोरमा देखा। दीवार पर बने सजीव चित्रों को देखकर मेरे तो थोड़ी देर के लिए होश गुम हो गए। स्वाभाविक स्पर्श देने के लिए मिट्टी के कच्चे मकान आदि बना दिये गये हैं। कितना रियल आर्ट है, देखने लायक चीज है।

''इसके बाद हम दुकानदारी के लिए गये। 'युनिवर्सल मेगाजिन' में गये सामान लेने के लिए, किन्तु दोपहर के खाने के समय यह बन्द हो जाता है। फिर शहर में तमारा को छोड़कर हम अस्पताल लौट आये।

''पंडितजी प्रसन्न मुद्रा में थे। हमने सामान सब ठीक कर लिये। शाम को अस्पताल के लोगों से मेल-मुलाकात की। हमारे जाने का उन सब लोगों को अफसोस हो रहा था। इतने दिनों तक यहाँ थे हम लोग, सबका भरपूर प्यार और स्नेह मिला, तभी तो हम यहाँ रह पाये थे। दूतावास के मित्रों को फोन से सूचना दी। रात को मि. यूरी गरोनोव आये, हमारे सामान-सूटकेस बगैरह बाँध दिये। पंडितजी घर जाने की तैयारी में सोये ही नहीं। इतने दिनों की उनकी इच्छा पूरी हो रही थी। अब घर जाने को मिल रहा था। बेचारे जाने की खुशी में बैठे ही रहे। रात को कपड़े भी उनको पहना दिये, कोट-पैंट-कमीज आदि। सिस्टर तमारा, नाद्या, ओल्या, जेनी वगैरह विदाई देने के लिए बैठी रहीं।

''रात के ठीक 12 बजे हम सब लोग अस्पताल के नीचे हॉल में उतर आये। सिस्टर तमारा हमारे साथ

एयरपोर्ट तक जानेवाली थीं। सामान वगैरह लेकर मि. यूरी चल दिये। बड़े एम्बुलेंस में डॉ. मारगरिता पावलोव्ना, सिस्टर तमारा, राहुलजी और मैं चले। सर्दी बाहर कड़ाके की थी। रात के दो बजे रूसी हवाई जहाज एरोफ्लोट उड़नेवाला था। सामान सब चढ़ा दिये गये। आँखों में आँसू भरकर सिस्टर तमारा ने हमें विदा दी।"

## मास्को से ताशकन्द तक

**बुधवार, 13 मार्च :** "रात के 2 बजे हमारा विमान उड़ चला। इंडोनेशिया जानेवाले कुछ यात्री भी उसमें थे। सीट छोटी थी, पर बैठने के लिए काफी जगह थी। डॉ. मारगरिता पावलोव्ना बिल्कुल नहीं सोयीं। पंडितजी को सम्हालने का जिम्मा उन्होंने लिया। पंडितजी को पेशाब के लिए होश नहीं रहा। लेकिन क्या करते। उनको तकलीफ तो थी ही। वे रात-भर सोये ही नहीं, सबेरे भी नहीं सोये। सबेरे साढ़े 6 बजे हम सब ताशकंद पहुँच गये, तब तक सबेरा हो चुका था। एयरपोर्ट पर सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से प्रतिनिधि उपस्थित थे। वे हम सब को ब्रेकफास्ट के लिए ले गये। डॉ. मारगरिता पंडितजी को दवाई और इंजेक्शन देने लगीं। मैंने लौटकर पंडितजी को खाना खिलाया। खाना तीन समय के लिए मास्को से ही दे दिया था। अब विदा का समय आ गया। डॉ. मारगरिता मुझसे गले मिलीं, गाल का चुम्बन लिया। महापंडितजी से उन्होंने हाथ मिलाया। 'दसविदानिया, कमला' कहते हुए उन्होंने विदा ली, उनकी आँखें भरी हुई थीं। मि. यूरी ने भी हम से हाथ मिलाया। मेरा मन इस करुण दृश्य से भर आया, एक शब्द भी नहीं बोल सकी। वे दोनों चले गये।

**दिल्ली में :** डेढ़ घंटा ताशकंद में रुकने के बाद पार्टी के प्रतिनिधि ने हमें विदाई दी। हमारा विमान एरोफ्लोट फिर उड़ चला और काकेशिया के बर्फ से घिरे सफेद पहाड़ों तथा गोबी की मरुभूमि, फिर काराकोरम, आमू दर्रा आदि होते हुए हिमालय श्रेणी के बीच से उड़ता हुआ मास्को की घड़ी के अनुसार 12 बजे (भारतीय समय 2-30 बजे) पालम एयरपोर्ट पर उतरा। राहुलजी के स्वागत के लिए उनके बहुत-से मित्र विमान-स्थल पर उपस्थित थे। उनमें श्री सच्चिदाजी, मुंशीजी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकारजी, मन्मथनाथ गुप्त आदि थे। कार में बिठाकर पंडितजी और मुझको ले गये। कस्टम में छोटे रिकार्ड प्लेयर (जो उपहार में मिला था) के लिए 100 रुपया टैक्स ले लिया। फिर हम लोग सही-सलामत कस्टम से बाहर निकले। रेडियोवाले, प्रेस रिपोर्टर वहाँ मौजूद थे। पंडितजी तो बोल नहीं सकते थे। उनके स्वास्थ्य तथा मास्को में चिकित्सा के बारे में रेडियो के लिए मुझको थोड़ा बोलना पड़ा। इसके बाद हम लोग चले। अशोक होटल के पास डिप्लोमेटिक इन्क्लेव में कामरेड पी. सी. जोशी के निवासस्थान पर हमें ठहराया गया। ठहरने की यह जगह सुन्दर है। अब पंडितजी कुछ दिनों तक यहीं आराम करेंगे।"

## अंतिम दिल्ली-निवास

**गुरुवार, 14 मार्च :** "आज सूखी हवा चलती रही। हवा के कारण गरमी का उतना पता नहीं चला। किंतु पंडितजी परेशान दिखाई दे रहे हैं। रोना बराबर जारी रहा। 'दो बच्चों' के बारे में ही पूछते रहे। दूर से किसी बच्चे के रोने की आवाज आ रही थी। उनको लगा कि उन्हीं के बच्चे रो रहे हैं। बोले–'देखो तो, दो बच्चे रो रहे हैं।' अपने बच्चों के प्रति यह मोह भी उनको जीवित रखे हुए है। वे अपने घर जाने के लिए याने बच्चों से मिलने के लिए छटपटा रहे हैं। लेकिन अभी तो तुरन्त ले जाने में भी खतरा है। कैसे ले जायें, बड़ी विपत्ति होगी। कार्डियामिन इंजेक्शन दे दिया, इन्सुलिन का भी लगा दिया। खाना भी पूरा समय पर दे रहे हैं। सोना अब नार्मल है, दिन में नहीं सोये।

"पंडितजी के घुमक्कड़ शिष्य शिवशर्माजी के आने से मुझको बड़ी मदद मिल रही है। वह पंडितजी का ध्यान रखते हैं। शाम को सच्चिदाजी, मुंशीजी आये। श्री भुपेश गुप्तजी भी पंडितजी को देखने आये। मुझसे बातचीत की। पंडितजी की अवस्था तथा मास्को की चिकित्सा के बारे में पूछा।

"आज पंडितजी की तबीयत सुस्त रही है।"

**शुक्रवार, 15 मार्च :** "दिन में गरमी पड़ती है, पर सुबह-शाम का मौसम अच्छा रहता है।

"पंडितजी आज कुछ घबराये हुए-से रहे। नाड़ी की गति भी तेज रही। सबेरे कमरे से बाहर कुछ देर टहलाया। पाखाना भी बाथरूम में किया। हाथ-पाँवों की मालिश कर दी, कसरत थोड़ी करवा दी। उनकी दाँयीं बाँह में दर्द बना हुआ है। बिस्तर पर उनको कुछ देर बिठाया भी, खाना ठीक से ही खाया। शाम को तबीयत कुछ बेचैन रही, पर रात को वे सो गये।

"आज सबेरे श्री हिमांशु जोशी इनको देखने आये थे। शाम को सच्चिदाजी आये। हमारे बच्चों के बारे में उन्होंने बतलाया। राहुलजी से भी उन्होंने बातें कीं, पर वे ज्यादा बोल नहीं सके।"

**शनिवार, 16 मार्च :** "राहुलजी कल की अपेक्षा आज कुछ अच्छे रहे। सबेरे श्रीमती शरद माचवे अपनी बेटी के साथ आईं। वे लोला और इगोर के बारे में बहुत पूछ रही थीं, उन्हीं में ज्यादा दिलचस्पी ले रही थीं। हमारे जया-जेता कैसे रहे, कहाँ रहे, इसके बारे में कुछ भी नहीं पूछा। खैर।

"राहुलजी दिल्ली आ गये हैं, यह सूचना अखबारों में छपी है। इसलिए आज सुबह से ही उनको देखने के लिए लोग आने लगे। सबेरे श्री पुरुषोत्तमजी (जो चीन में मिले थे), ओमप्रकाश पालीवाल, नरेन्द्र शर्मा, भूपेश गुप्त तथा सच्चिदाजी सपरिवार आये। श्री डांगे, श्री घाटे भी आये। सभी मित्र राहुलजी के वर्तमान स्वास्थ्य के बारे में पूछते रहे। सब लोगों को यही आशा थी कि राहुलजी मास्को में चिकित्सा करवाने के बाद अब ठीक हो गये होंगे, उनकी स्मरण-शक्ति भी लौट आई होगी। पर वैसा कुछ हुआ न देखकर सब चिन्ता कर रहे थे। शाम के समय इसकस (Indo Soviet Cultural Society) के श्री आनन्द गुप्ता भी मिलने आये। आज दिन-भर लोगों का मेला-सा लगा रहा। कामरेड पी. सी. जोशीजी तो थे ही, कुछ साथियों ने मिलकर भोजन तैयार किया और रात का भोजन सभी ने यहीं किया। पंडितजी उन मित्रों की बातें सुन रहे थे, स्वयं बोल नहीं पाते थे। चुपचाप आँखें मूँदकर लेटे रहे, सोते और रोते रहे। कभी ऐसा भी दिन था जबकि वे मित्रों के बीच रहना पसन्द करते थे, बातें करते थे पर आज उनकी हालत कैसी हो गयी है। रोग ने उनको अशक्त बना दिया है।

"पार्टी के साथी लोग कह रहे थे–राहुलजी बुध से पहले दिल्ली से नहीं जा सकते। अच्छा ही है, क्योंकि वे अभी लम्बी हवाई यात्रा करने लायक नहीं हैं। यहाँ फिर उनकी तबीयत गड़बड़ा रही है।"

**रविवार 17 मार्च :** "आज धूप तेज रही।

"पंडितजी आज खूब शांत रहे। सबेरे का नाश्ता तथा दिन का भोजन उन्होंने ठीक से किया। कुछ देर के लिए उनको धूप में बिठा दिया, कुर्सी पर बैठकर किताबें देखते रहे। 12 बजे दिन में उनको भोजन कराकर मैं और शिवशर्माजी उनके पास बैठे। कुछ देर बाद श्रीमती माचवे आयीं और मुझे अपने घर ले गयीं। खान मार्केट के पास रवीन्द्रनगर में उनका घर था। श्रीमती माचवे आज भी लोला और इगोर के बारे में ही पूछती रहीं। क्या उन दो व्यक्तियों के अलावा राहुलजी का और कोई नहीं था ?

"मैं तीन बजे लौट आई। पंडितजी शांत रहे। आज उनके चेहरे पर भी उजाला रहा। मिलनेवाले कम आये। हिमांशु जोशी आये थे। सच्चिदाजी ने फोन पर बतलाया कि हम लोगों का यहाँ से जाना बुध से पहले नहीं हो सकेगा।"

**सोमवार, 18 मार्च :** "मौसम अच्छा है। आज कहीं जाना नहीं हुआ। सबेरे श्रीमती माचवे आई थीं। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। नागार्जुन का कोई और लेख 'सरिता' में छपा था, इसके बारे में उन्होंने बतलाया। मैंने कहा–'इस समय मेरा मन बहुत दुःखी है, इतने महीनों से हम अपने बच्चों से दूर हैं, राहुलजी की ऐसी अवस्था है, हमने क्या-क्या तकलीफें झेली हैं, अपना दुःख अपने ही साथ है, मुझे और फालतू बातें सुनने की इच्छा नहीं है।'

"दिन के समय और कोई नहीं आया। शाम को मुंशीजी का परिवार तथा दो पंजाबी लड़कियाँ आईं राहुलजी को देखने। मुंशीजी के बच्चे जया-जेता के बारे में खूब बता रहे थे। पंडितजी भी सुन रहे थे।

"पंडितजी आज दिन-भर ही शांत रहे। प्रायः सोते रहे। रोये भी कम। बच्चों के बारे में भी कम ही पूछा। शाम को कुछ अशांत रहे, लेकिन रोशनी बुझा देने पर सो गये। रात उनको कई बार पेशाब लगी, वह

रोक नहीं पाते थे। इंजेक्शन देना पड़ा।

"हमारे जाने के लिए अभी तक बुकिंग नहीं हुई है। अब राहुलजी को बच्चों के पास पहुँचा देने में देर नहीं करनी चाहिए, कुछ अनिष्ट होने की आंशका रहती है। बच्चों को न देख पाने के कारण वे बेचैन रहते हैं।"

**मंगलवार, 19 मार्च :** "गरमी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। पंडितजी पेशाब बहुत अधिक कर रहे थे। सफाई करके कपड़े पहनाकर उनको नाश्ता खिला दिया। दोपहर को सच्चिदा के साथ कनाट प्लेस जाकर बच्चों के लिए थोड़े सामान खरीद लायी। पी. पी. एच. गये और कुछ रूसी पुस्तकें भी ले लीं। लिंक हाउस जाकर श्रीमती अरुणा आसफअली, श्री ओमप्रकाश संगल, ओमप्रकाशजी (राजकमलवाले) से भेंट की। चार बजे डेरे पर लौटी।

"पंडितजी वैसे तो शांत हैं, पर आँखें चढ़ी हुई हैं। भय लगता है, फिर कहीं पागलपन का दौरा न पड़ जाये। रात को सोये भी नहीं।

"शाम को पंडितजी नर्मदेश्वर चतुर्वेदी (प्रयाग) आये राहुलजी को देखने। सच्चिदाजी ने पैसे के हिसाब में कुछ गड़बड़ी की। खैर, उनके उपकार भी बहुत हैं।

**बुधवार, 20 मार्च :** "आज गरमी ज्यादा रही। शिवशर्माजी आज कलकत्ता रवाना हो रहे हैं, पार्टी के लोग उनको वहाँ भेज रहे हैं। वह कलकत्ता में हम से मिलेंगे, उनको दार्जिलिंग भी जाना है। शिवजी के चले जाने से मैं अकेले ही पंडितजी को सँभालती रही। उन्होंने रात को बिस्तर ही गन्दा कर दिया था। दिन-भर उनकी आँखें चढ़ी हुई थीं। 11 बजे श्री विष्णु प्रभाकर, यशपाल जैन तथा एक अन्य सज्जन आये। उसी समय पंडितजी को दस्त लग गया, बाथरूम ले जाते-जाते ही रास्ते में हो गया। यहाँ के भोजन से उनका पेट खराब हो गया धोन-पोंछना भी भारी मुश्किल, उनके नाराज होने, गुर्राने का डर। और फिर उनकी आँखों की दृष्टि स्वाभाविक नहीं है। पता नहीं फिर उनको क्या-क्या तकलीफें बढ़ती जा रही हैं। मैं किस तरह उनको दार्जिलिंग पहुँचाऊँ, यह सोचने की बात है। उधर बच्चे भी पापा की प्रतीक्षा कर रहे हैं, रुपया-पैसा भी उन लोगों के पास है या नहीं।"

**बृहस्पविार, 21 मार्च :** "गरमी बढ़ती जा रही है। आज कुछ हवा चलने से मौसम शीतल रहा। पंडितजी आज अन्य दिनों की अपेक्षा शांत रहे। आधे दिन तक तो सोये ही रहे। बाद में जब लोग मिलने आये तो उनसे बातें करते रहे, पर वही उखड़ी-उखड़ी बातें। मास्को अस्पताल में उनके लिए जिस प्रकार के पथ्य का प्रबन्ध था, वह तो इस परदेश में नहीं हो सकता। कल के भोजन में हरे साग की मात्रा ज्यादा होने के कारण उनका पेट खराब हो गया था। पाखाना रोक नहीं पा रहे थे। रात को कुछ अकबक भी बोलते रहे। लेकिन अँधेरा कर देने पर चुपचाप सो गये।

"आज के मिलनेवालों में जैनेन्द्रजी के पुत्र, हिमांशु जोशी, ओमप्रकाश पाण्डे, उनके जीजा और सच्चिदा जी रहे। कल यहाँ से जाना है।"

## दिल्ली से विदाई : कलकत्ता के लिए प्रस्थान

**शुक्रवार, 22 मार्च :** "दिल्ली में आज बहुत ज्यादा गरमी लगी, विशेषकर राहुलजी को। वे बहुत परेशान रहे, रात को कम सोये, बिस्तर गीला नहीं किया। सबेरे कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से डॉक्टर के. पी. जैन उनको देखने आये। बताया—पंडितजी का रक्तचाप अधिक है। कुछ दवाइयाँ लिख दीं। 'डेकासरपिन' से उन्हें कुछ आराम रहा। पंडितजी से मिलनेवाले आज भी बहुत लोग आये। उनमें से थे—श्री रमेश सिन्हा तथा उनके बहनोई, श्री नरोत्तम नागरजी, मुंशीजी, सच्चिदाजी, श्री नरेन्द्र शर्मा तथा कुछ अन्य लोग। पंडितजी यों भी आज सुस्त थे, गरमी से और परेशान हो गये और हम पर गुर्राने लगे। फिर पागलपन उन पर सवार हो गया, उनको शांत करना मुश्किल हो गया।

"शाम को छः बजे हम लोग श्री पी. सी. जोशी के डेरे से निकलकर पालम एयरपोर्ट पर आये। साथियों

ने हमारे जाने का अच्छा प्रबन्ध कर रक्खा था। पंडितजी को मोटर से ही एयरफील्ड तक पहुँचाया गया। सब कुछ व्यवस्थित रहा। विमान में पैसेन्जर पूरे थे। विमान पालम से 7 बजे शाम को उड़ा। आसमान से नीचे रात का दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई दे रहा था। पंडितजी शांत रहे, कुछ बातें करते रहे, क्या-क्या पूछते रहे। एक बार पेशाब की और दूसरी बार पाखाना। उनको उठाकर विमान के बाथरूम तक ले जाना भी कठिन हो गया। इसलिए बाथरूम पहुँचने तक वे नियंत्रण न कर सके। कपड़े खराब हो गये। साफ करने में बड़ी दिक्कत हुई। आज उन्होंने खाने में लालच नहीं दिखाया, खाना बढ़िया दिया गया था, तब भी। विमान ठीक 2 घंटे 50 मिनट तक उड़ा और 9.40 (रात) को वह दमदम (कलकत्ता) विमान स्थल पर उतरा। विमान स्थल पर एम्बुलेन्स गाड़ी के साथ डॉ. महादेव साहा तथा शिवशर्माजी प्रतीक्षा करते हुए मिले।

"ठहरने की जगह दमदम से दूर अलीपुर में थी। कलकत्ता हाईकोर्ट के बैरिस्टर तथा पुराने मैमनसिंह स्टेट के महाराजकुमार श्री स्नेहांशुकांत आचार्य के घर पर राहुलजी को ठहराने का प्रबन्ध किया गया था। आचार्यजी राहुलजी के पुराने परिचित, प्रशंसक रहे थे, बड़े भले सज्जन। उन्होंने तथा उनकी पत्नी ने हम लोगों का बहुत ध्यान रखा। आचार्यजी हिन्दी बहुत अच्छी बोलते हैं। उनकी पत्नी भी भद्र बंगाली महिला हैं।"

**शनिवार, 23 मार्च (कलकत्ता में) :** "यहाँ दिल्ली से कहीं अधिक गरमी है। पंडितजी को सबेरे ही नहला-धुला दिया। साहाजी सुबह ही आ गये। शिवशर्माजी तो यहीं हैं। डॉ. अमिय बोस राहुलजी को देखने आये। वे पी. जी. हास्पिटल के डॉक्टर जे. सी. गुप्त के सीनियर रहे हैं। महापंडितजी को भी वे पहले से ही जानते थे। उन्होंने पंडितजी के रक्तचाप की जाँच की, जो उस समय नार्मल निकला। कुछ दवाएँ उन्होंने लिख दीं। साहाजी को राहुलजी के पास रखकर शिवशर्माजी के साथ दवाइयाँ लेने चौरंगी तक गई। तेज धूप के मारे परेशान हो गयी। यहाँ पंडितजी की आवाज को रिकार्ड करवाने की इच्छा थी, टेपरिकार्डर की खोज की, पर नहीं मिली। चार बजे डेरे पर लौट आये। दार्जिलिंग में बच्चों को ट्रंककाल कर दिया, टेलीग्राम भी दे दिया कि हम लोग कल की फ्लाइट से घर आ रहे हैं।

"शाम को श्री गोपाल हालदार, श्री चड्ढाजी तथा कुछ अन्य लोग पंडितजी से मिलने आये। पंडितजी रात को कम सोये। यहाँ की गरमी का पूरा असर उनके दिमाग पर पड़ रहा था। गुस्से से भरे बैठे रहे, आँखें चढ़ी हुई थीं, पर खाना ठीक से खाया। श्री आचार्यजी कई बार कमरे में आकर पंडितजी की खबर लेते रहे। बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं। पंडितजी को कोई कष्ट न हो, इसका उन्होंने पूरा-पूरा ध्यान रखा।

"कल दिन में 11 बजे की फ्लाइट से राहुलजी अपने घर जा रहे हैं। शिवशर्माजी को दार्जिलिंग मेल से दार्जिलिंग के लिए रवाना कर दिया।"

## कलकत्ता से दार्जिलिंग

**रविवार, 24 मार्च :** "सुबह ही उठकर पंडितजी को पेशाब-पाखाना करा दिया। साहाजी आ गये। श्री आचार्यजी ने हम लोगों के दार्जिलिंग जाने का प्रबन्ध अपनी ओर से कर दिया। 9 बजे पूर्वाह्न में एम्बुलेन्स आया। सामान आदि लदवाकर पंडिजी को लेकर हम चल पड़े। साढ़े 10 बजे दमदम विमान स्थल पर पहुँचे। खूब धूप और गरमी थी। सामान वगैरह को तौला गया। एक्सेस लगेज के लिए 23 रुपये लगे। विमान के द्वार तक पंडितजी को एम्बुलेन्स गाड़ी में ले गये। विमान के भीतर उनको ठीक से चढ़ा दिया गया। इंडियन एयरलाइन्स के इस हवाईजहाज में पैसेन्जर बहुत कम थे। 12 बजे मध्याह्न में विमान उड़ा और सवा घंटे में वह बागडोगरा पहुँच गया। विमान के भीतर पंडितजी बहुत शांत रहे, लेकिन बागडोगरा में उतरने के बाद वे बहुत हल्ला करने लगे। गरमी और धूप से परेशान हो गये। 5-6 आदमियों ने उनको विमान से उतारा और Invalid Chair पर बिठाकर उनको बाहर ले आये। दार्जिलिंग के सदर अस्पताल से एम्बुलेन्स गाड़ी बागडोगरा भेजने के लिए खबर दे दी थी, पर अभी वह बागडोगरा नहीं पहुँची थी। पंडितजी छटपटा रहे थे। गरमी और धूप के कारण वे परेशान हो रहे थे। आधे घंटे तक एम्बुलेन्स की प्रतीक्षा में बैठे रहे। मेरे एक सम्बन्धी दार्जिलिंग अस्पताल के तीन-चार व्यक्तियों और एम्बुलेन्स सहित जब पहुँच गये तब हमारी जान में जान आई।

"पंडितजी को स्ट्रेचर पर लिटाकर एम्बुलेन्स के भीतर रखा गया। 9 किलोमीटर दूर सिलीगुड़ी पहुँचकर हमने चाय पी। एम्बुलेन्स गाड़ी बड़ी धीमी गति से चलने लगी, क्योंकि पंडितजी को धक्के से बचाना था। घर पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। अँधेरे में ही पंडितजी को अपने घर 'ग्रीन रीजेस' पहुँचाया गया। पता चला दोनों बच्चे जया और जेता 'पापा-अम्मा' के आने की 3 बजे से ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। दरवाजे पर उन्होंने WELCOME HOME का बोर्ड लगा रखा था। 9 महीने के दीर्घ बिछोह के पश्चात् अपने पापा-अम्मा को देखकर दोनों ही प्रसन्न हुएँ। पंडितजी को जब बतलाया कि हम अपने घर आ गये, तब वे बोले–'आ गये ? घर आ गये ? दो बच्चे कहाँ हैं, दो बच्चों को बुलाओ।' बच्चों को देखकर वे बहुत खुश हुए। दोनों के सिर पर हाथ फेरा, मुस्कुराये। दोनों बच्चों को अपने पास बिठाया। महीनों से वे बच्चों को देखने के लिए तड़पते रहे। आज वे ही 'दो बच्चे' उनके पास थे, अतः उनको खुशी हुई। बच्चे दुबले और लम्बे हो गये हैं। पंडितजी रात को अच्छी तरह से सोये। लम्बी यात्रा से वे थक गये थे।

"इतने महीनों से बीमार राहुलजी जिस घर में जाने के लिए व्याकुल रहे, जिन दो बच्चों को देखने के लिए छटपटाते रहे थे, अब वे उसी घर में उन्हीं दो बच्चों के पास आ गये। हम लोग यही आशा करते थे कि अब पंडितजी कुछ दिनों तक बच्चों के साथ प्रसन्न रहेंगे, परन्तु उनको तो ऐसा रोग लग गया था जो उनके प्राणों को लेकर ही जानेवाला था। इसमें मनुष्य का, दवाइयों का, डॉक्टरों का क्या वश चलता। जब पंछी ही उड़ चलने के लिए तत्पर है तो वह क्या किसी के रोकने से रुक जाता।"

## दार्जिलिंग में अंतिम निवास

**सोमवार, 25 मार्च :** "घर में नौकर नहीं था। सारा काम मेरी मँझली बहन करती थीं, इन्हीं के साथ हम जया-जेता को छोड़कर गये थे। आज मैंने घर को ठीक-ठाक किया। पंडितजी बच्चों को अपने निकट देखकर प्रसन्न रहे। बच्चे सुबह स्कूल चले गये। तब पंडितजी आधे दिन तक सोते रहे। 12 बजे दिन में शिवशर्माजी भी यहाँ पहुँच गये। पंडितजी की सेवा के लिए इनको दिल्ली से पार्टी की ओर से भेजा गया था। इनके आ जाने से हमको बहुत सहायता मिली है।

"बच्चे बहुत कमजोर हो गये हैं, खासकर जेता भैया। उसका रंग भी काला पड़ गया है। उसकी दाईं बाँह कमजोर हो गई है, बहुत चिन्ता होती है। जया हर बात पर रो पड़ती है। बेचारे बच्चे, इतने दिनों से इन दोनों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। हमारे यहाँ पहुँचने से पहले ही उन लोगों के स्कूल खुल गये थे ! अतः उन लोगों के लिए कापियाँ-किताबें आदि मेरे भाई और बहन ने खरीद दिये थे।

"आज इगोर को लेनिनग्राद पत्र भेज दिया। पंडितजी के स्वास्थ्य तथा मास्को से दार्जिलिंग तक की यात्रा का विवरण लिख दिया है।"

**मंगलवार, 26 मार्च :** "हमारी अनुपस्थिति में घर में बहुत सारे पत्र आये हुए थे। आज सबका उत्तर लिखकर भेज दिया। महापंडितजी अब कुछ शांत हो गये हैं। बच्चे सुबह स्कूल चले जाते हैं, तब पिता उनके आने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। शाम को जब वे दोनों घर आ जाते हैं तो उनको बड़ी खुशी होती है। उनको खाना खिला देने को कहते हैं, फिर दोनों को अपने पास बिठा लेते हैं, उनसे पढ़कर सुनाने को कहते हैं। पंडितजी बच्चों के लिए महीनों से रोते रहे थे, आज उनके चेहरे पर मुस्कुरहाट और खुशी झलक रही है। आज उन्होंने खाना भी ठीक से खाया। दिल्ली से ही उनको पेट की गड़बड़ी की शिकायत हो गयी थी। यहाँ भी अभी ठीक नहीं हुआ है। बार-बार उन्हें बाथरूम ले जाना पड़ रहा है। मास्को अस्पताल में उनको जैसा पथ्य दिया जाता था, वैसा ही देने का हम प्रबन्ध कर रहे हैं। मांस-मछली का भी प्रबन्ध कर रहे हैं।

"जया-जेता अपने 'पापा' के साथ बहुत प्रसन्न हैं। दोनों पापा को खुश रखने का प्रयत्न करते हैं।"

**बुधवार, 27 मार्च :** "आज दिन खूब अच्छा रहा। धूप निकल आई। महापंडितजी रात को आराम से सोये। दिन के समय भी वे बहुत शांत रहे। यहाँ आकर उनका वह अस्वाभाविक रोना कम हुआ है। बस, शाम के समय उन्हें पागलपन का दौरा पड़ता है। बच्चों को देखकर आज वे बड़े प्रसन्न हैं। उनके चेहरे पर भी बहुत

उजाला दिखाई दे रहा है। ज्यादा बोलते नहीं। हाँ, समय-समय पर एबनार्मलिटी भी दिखाने लगते हैं।

"आज हमारे पड़ोसी कप्तान लाल अपने पुत्र सहित आये। राहुलजी को देखा और उनसे कुछ बातें कीं। पता चला कि चीनी आक्रमण के कारण कई एक्स-सर्विस मैन फिर से आर्मी में पहुँच गये हैं। लाल साहेब होमगार्ड में हैं। मित्रों से मिलकर पंडितजी को बड़ी खुशी हुई।"

**गुरुवार, 28 मार्च :** "दिन अच्छा रहा। पंडितजी रात को शांति से सोये। बिस्तर नहीं भिगोया, पेट भी साफ हो गया। नाश्ता-चाय आदि के बाद उनको गरम कपड़े और ड्रेसिंग गाउन पहनाकर कुछ देर तक घर के बाहर लॉन में बिठा दिया। कलकत्ता से मैं 'गार्डन अम्ब्रेला' ले आई थी, उसे भी लॉन में लगा दिया। पंडितजी को अच्छा लग रहा था। बच्चे सबेरे ही उनसे मिलकर पढ़ने चले गये। दोपहर का भोजन उन्होंने ठीक से किया।

"कम्युनिस्ट पार्टी के पुराने साथी श्री लालसिंह सुन्दास पंडितजी से मिलने आये। साढ़े चार महीने के बाद वह कल ही दार्जिलिंग डिस्ट्रिक्ट जेल से छूटे थे। पंडितजी उनकी बातें सुन रहे थे, पता नहीं कितनी उनकी समझ में आई होंगी। अभी के माहौल में यहाँ जरा भी सरकार-विरोधी बात नहीं कर सकते। C. I. D. के लोग पीछे लगे रहते हैं। राहुलजी के पीछे तो भारत स्वाधीन होने के पहले से ही खुफिया पुलिस का पहरा रहता रहा। अब भी सरकार को उनसे डर लगता होगा, किंतु राहुलजी अब जीवन की संध्या में पहुँच चुके हैं, उनसे अब सरकार को क्या खतरा है ?

"मिस्टर लाल सबेरे ही पंडितजी से मिलने आये। गवर्नमेंट कॉलेज के हिन्दी के प्रोफेसर भी उनसे मिलने आये। अब पंडितजी के रूस से लौट आने का लोगों को पता चल गया है। दिन-भर पंडितजी जया-जेता के स्कूल से आने का रास्ता देखते रहते हैं। बच्चों के आ जाने पर उनको संतोष होता है। अब कम ही रोते हैं वे।"

**शुक्रवार, 29 मार्च :** "आज दिन अच्छा रहा। पंडितजी को ड्रेसिंग गाउन पहनाकर सबेरे कुछ देर तक धूप में बिठाया। वे चुपचाप बैठे रहे। दिल्ली से अभी तक उनकी डॉक्टरी रिपोर्ट नहीं भेजी है। यहाँ के डॉक्टरों को दिखाने के लिए रिपोर्ट की जरूरत है। आज वे दिन-भर शांत रहे, पर बीच-बीच में रोये भी। कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने आये, वे रोने लग जाते हैं, शायद अपनी असमर्थता पर रोते होंगे।

"स्थानीय नेपाली साहित्यकार तथा दूसरे लोग भी पंडितजी को देखने के लिए आते रहे। शाम को मिसेज लाल भी आईं। आज का दिन शांति के साथ बीता।"

**शनिवार, 30 मार्च :** "मौसम अच्छा रहा। महापंडितजी को धूप में बिठाया, पर उनका पारा गरम हो गया। वे हम लोगों पर गुर्राने लगे। जैसे फिर पागलपन का दौरा पड़ गया हो। खाना खाने से भी इन्कार कर दिया। दवाइयाँ दे दीं। डॉक्टर भी आकर उनको देख गये। आज मिलनेवालों की भीड़ रही, इससे उन्हें काफी डिस्टर्ब हो गया। शांत नहीं रह पाये। उन पर पागलपन सवार होने का डर बराबर रहता है।

"कलिम्पोंग से वकील साहब (राधामोहन बाबू) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ आये। इनके अतिरिक्त कुछ स्थानीय लोग भी पंडितजी को देखने आये। वे चुपचाप पड़े रहे, बीच-बीच में 'हाँ-हुँ' कर देते थे। ज्यादा बोल नहीं सकते थे। आनेवाले सबको चाय पिलाने को हमसे कह रहे थे। लोगों का आना उनको अच्छा ही लगता है। पर उनको इस तरह सुस्त, उदास और चुप देखकर सोचती हूँ, वे यहाँ भी खुश क्यों नहीं हैं ? फिर उनके लिए चिन्ता होने लगती है। आज बच्चों की छुट्टी थी, इसलिए दोनों अपने पापा के पास ही बने रहे।"

**रविवार, 31 मार्च :** "मौसम अच्छा रहा। राहुलजी रात को देर तक जगे रहे, पर सबेरे के समय गहरी नींद में सोते रहे। बातचीत करते नहीं, चुपचाप पड़े हुए रोते रहते हैं। सिर्फ जया-जेता के साथ ही थोड़ा-थोड़ा बोलते हैं। आज उनको बाहर धूप में नहीं रखा, बस अपने कमरे में ही लेटे रहे। पेशाब सामान्य है, पर पेट साफ नहीं हुआ। उनको प्रसन्न रखने के लिए मैंने उनके पसन्द के लोकगीत के रेकार्ड बजाकर सुना दिये। वे चुपचाप गीत सुनते रहे। आज मिलनेवाले कम ही आये, अच्छा ही हुआ। कम से कम महापंडितजी को

आराम तो मिला। शिवशर्माजी भी उनकी खूब सेवा कर रहे हैं। बच्चे भी 'पापा' को खुश रखने के लिए अपनी ओर से प्रयत्न कर रहे हैं।

"अपने घर में आकर भी पंडितजी बेचैन-से रहते हैं। शरीर उनका बाहर से स्वस्थ दिखाई देता है, पर भीतर से जर्जर हो चुका है। उनके हृदय की स्थिति भी ठीक नहीं है। डॉक्टर से बराबर सम्पर्क बनाये रखा है, पर मास्को का जैसा इलाज तो अब कहाँ मिलेगा। यहाँ भी पंडितजी को हर सम्भव सुविधा देने का प्रयत्न किया जा रहा है, पर उनको उदास देखकर अपना मन भी दुःखी हो जाता है। अब हम उनको और कहाँ ले जायें ? बड़ी चिन्ताजनक समस्या खड़ी हो गई है, इसे कैसे सुलझायें ?"

# 13

# अप्रैल 1963 : महाप्रस्थान की ओर

**सोमवार, 1 अप्रैल :** "आज हवा चलने के कारण ठंड कुछ बढ़ गई है। राहुलजी आज बहुत खामोश रहे, अधिकतर रोते ही रहे, सोये भी अधिक। कोई बात नहीं करते। तकलीफ है उनको, पर बता नहीं सकते। सोचा था बच्चों को देखकर प्रसन्न रहेंगे, पर बच्चों के साथ भी उतनी बातें नहीं करते। हरदम उदास और खीझे हुए रहते हैं।

"आज मिलनेवाले कोई नहीं आये। डॉक्टर भी अब पता नहीं किसको बुलायें। मास्को के बड़े से बड़े डॉक्टर भी उनकी बीमारी को ठीक नहीं कर सके तो यहाँ के डॉक्टरों से क्या आशा हो सकती है ? हमारी चिन्ताओं का अन्त नहीं। यह स्थान भी सब तरह से कटा हुआ है, समय पर सहायता भी नहीं मिलती। बस, संतोष इसी बात का है कि राहुलजी अब अपने देश में, अपने घर में आ गये हैं।

"आज मुझे जया बेटी के साथ बड़े पोस्ट आफिस जाना पड़ा। बाजार में बहुत-से लोग राहुलजी के स्वास्थ्य के बारे में पूछ रहे थे।"

**मंगलवार, 2 अप्रैल :** "आज ठंड कुछ अधिक लग रही थी, इसलिए सभी लोग कमरे के अन्दर ही रहे। रात को पंडितजी ठीक से नहीं सोये, बराबर हल्ला करते रहे। उनको शांत रखने की हम सब ने बहुत कोशिश की। सबेरे कुछ देर तक उनको गहरी नींद आ गई। आज दिन-भर वे शांत रहे। शाम को बैठकर जया-जेता और मेरे साथ कुछ बातें करते रहे। दिन के समय वे सो नहीं पाये, क्योंकि मिलनेवाले बराबर आते रहे। वे लोग जब मरीज के सामने ही बैठकर बातें करते हैं तो मरीज कैसे सो पाते। रोज शाम के समय पंडितजी अशांत हो जाते हैं। पता नहीं फिर क्या हो गया है उनको ? आज लाल साहेब को डॉक्टर को बुलाने भेजा है। पता नहीं किसको ले आयेंगे। पुराने डॉक्टर भौमिक अब यहाँ नहीं हैं, बदली होकर वह अन्यत्र चले गये हैं।"

**बुधवार, 3 अप्रैल :** "आज महापंडितजी कुछ अधिक ही सुस्त रहे। उनका टहलना-चलना-फिरना सब बन्द है, वे खड़े ही नहीं होते। अब थोड़ी-थोड़ी बातचीत करने लगे हैं।

"कल लाल साहेब से कहा था, इसलिए आज सबेरे डॉक्टर चक्रवर्ती आये और पंडितजी का चेकअप किया। उनका रक्तचाप 180/100 है, जो नार्मल से कुछ ज्यादा है। इसीलिए वे इतने गुस्से में रहते हैं। पेशाब और खून की भी जाँच करवानी है। उनमें चिड़चिड़ापन बहुत अधिक है, फिर भी यहाँ आने के बाद से उनकी मानसिक अवस्था में बहुत अन्तर आया है। देखें, अपना भाग्य तो खोटा ही मालूम होता है। उनको स्वस्थ बनाने के लिए हर तरह से कोशिश की जा रही है।

राहुलजी स्वदेश आ गये हैं, यह लोगों को मालूम हो गया है, इसलिए चिट्ठियाँ बहुत आ रही हैं। साथ ही उनको देखने के लिए लोग भी बड़ी संख्या में आने लगे हैं।"

**बृहस्पतिवार, 4 अप्रैल :** "हमारे पड़ोस के घर में एक शादी है। दिन-भर बाजा बजता रहा, लेकिन बहुत जोर से नहीं। संगीत तो पंडितजी को अच्छा लगता है।

"वे रात को कम सोये थे, इसलिए सबेरे उनको गहरी नींद आ गई। सदर अस्पताल के डॉक्टर भट्टाचार्य उनके रक्त को परीक्षण के लिए ले गये है। देखें, क्या नतीजा निकलता है। लगता है, कुछ न कुछ गड़बड़ी तो हो ही गई है, तभी तो वे अधिक सोते रहते हैं। बच्चों के संग हँसते-मुस्कुराते भी नहीं। जया-जेता भी पिता को प्रसन्न रखने के लिए हर तरह से कोशिश कर रहे हैं। देखें, पिता का साथ उनको अब कितने समय तक मिलेगा ? यह सोचकर ही बहुत दुःख होता है।"

**शुक्रवार, 5 अप्रैल :** "महापंडितजी आज शांत रहे। ज्यादातर सोते ही रहे। पेशाब-पाखाना अभी तो नार्मल है। खाना भी ठीक से खा रहे हैं। यहाँ आकर उनका पथ्य बिल्कुल बदल गया है, सादा और बिना नमक का खाना खाते हैं। बच्चों के संग बातें कर लेते हैं, और समय चुपचाप ही पड़े रहते हैं। शिवजी और मैं उनकी पुस्तक को बारी-बारी से पढ़कर सुना देते हैं। उनको बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति का श्लोक 'वेद प्रामाण्यं…' सारा याद है। हमारे शुरू कर देने पर वे पूरा श्लोक बोल देते हैं।

"पंडितजी के स्वास्थ्य की जिज्ञासा लेकर बहुत-से पत्र आ रहे हैं। आज मैंने उन सबके उत्तर लिख दिये। इलाहाबाद की डॉ. सत्या गुप्ता यहाँ आना चाहती हैं पंडितजी को देखने। डॉ. प्रभाकर माचवेजी का भी पत्र आया। कुछ मित्रगण महापंडितजी की आर्थिक सहायता भी करना चाहते हैं। पं. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी जी का इसी आशय का पत्र आया है। मैंने इस बारे में मना करके पत्र लिख दिया है।

"शाम को कप्तान लाल आये थे। पंडितजी को अपनी बातों से खूब हँसाकर चले गये।"

**शनिवार, 6 अप्रैल :** "राहुलजी के गुरुभाई भिक्षु महानाभजी कलकत्ता से यहाँ पहुँच गये। वे पंडितजी को ही देखने के लिए विशेष तौर से यहाँ आये हैं। जया बेटी और शिवशर्माजी जाकर भिक्षुजी को मोटर स्टैण्ड से घर ले आये।

"पंडितजी को सबेरे डॉक्टर चक्रवर्ती देखने के लिए आये। बतलाया कि राहुलजी का रक्तचाप आज 190/100 है, ब्लड सुगर Per C. C. 250 M. G. है, जो बहुत अधिक है और खतरनाक भी। पिछली बार भी यही दोनों हाई ब्लड प्रेशर और ब्लड शुगर के कारण उनका मस्तिष्क खराब हो गया था। रक्त में चीनी की मात्रा अधिक होते ही पंडितजी में उन्माद की मात्रा भी बढ़ जाती है। इतना परहेज करने के बावजूद भी शुगर की मात्रा कैसे बढ़ जाती है ? आश्चर्य होता है।

"जया-जेता अपने पापा के पास बैठे रहते हैं। इगोर को आज पत्र और कुछ फोटो भेज दिये। उनको पिता के साथ भारत आने की कितनी इच्छा रही, पर वहाँ की सरकार किसी को इतनी आसानी से कहीं जाने की अनुमति नहीं देती।"

**रविवार, 7 अप्रैल :** "महापंडितजी आज शांत रहे। वे चलना-फिरना थोड़ा भी नहीं चाहते। लगता है अब उनका शरीर जवाब देता जा रहा है। फिर उनके पाँव कमजोर पड़ते जा रहे हैं। परीक्षण करने के लिए आज उनके मूत्र का नमूना सदर अस्पताल पहुँचा दिया। सबेरे जेता भैया भिक्षु महानाभजी को बाजार घुमाने ले गया। अब दोनों ही बच्चे समझदार हो गये हैं। पर इनका भाग्य कैसा है ? पिता का साथ अब इन लोगों को ज्यादा न मिले शायद। पंडितजी के अच्छे होने की अब आशा नहीं है।"

**सोमवार, 8 अप्रैल :** "राहुलजी आज अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अच्छे रहे। दो-तीन बार उनको बाहरवाले बड़े कमरे (पुस्तकालय) में लाकर बिठा दिया। टेबल के पास कुर्सी पर दो घंटे बैठे रहे। किताबें देखते रहे, बाहर सड़क पर चलनेवालों को भी बुलाकर चाय पिलाने को कह रहे थे। बिल्कुल मसूरी का दृश्य मालूम हो रहा था। मैं उनके पास खड़ी थी, वे मेरे सिर पर हाथ फेरते रहे, हँसते भी रहे। आज उनके चेहरे पर उजाला रहा, बहुत ही हँसमुख और सुन्दर दिखाई दे रहे थे। शाम के समय हम उनको भीतर सोने के कमरे में ले गये। जया-जेता स्कूल से आकर उनके पास बैठ गये, उन्होंने बच्चों के साथ बातें कीं, पढ़ाई के बारे में भी कुछ पूछा। दिन का और रात का खाना उन्होंने ठीक तरह से खाया और चुप लेट गये। हम लोग उनके पास

बैठ गये। मुझसे उन्होंने देर तक बातें कीं। अधिकतर बच्चों के बारे में ही पूछते रहे। इस महारोग के शिकार होने से पहले जब वे श्रीलंका में थे, सिर्फ अपने बच्चों के भविष्य की ही चिन्ता किया करते थे। हमारी आर्थिक अवस्था सुदृढ़ हो जाय, तभी बच्चों को उच्चशिक्षा मिल सकेगी। यही सोचकर वे श्रीलंका गये थे, और हर महीने कुछ रुपये हमारे पास भिजवाने की उन्होंने व्यवस्था की थी! बच्चों की चिन्ता ही उनके मन में बस गई और इस अवस्था में भी वे बच्चों के लिए ही मानो सोचते रहते थे। इसीलिए आज वे मुझसे पूछ रहे थे–'तेरे पास पैसे हैं ? कितने पैसे हैं ? बच्चे क्या पढ़ते हैं ? कहाँ पढ़ते हैं ?' मैंने उत्तर दिया–'मेरे पास आपके दिये हुए बहुत पैसे हैं, बच्चे अच्छे स्कूल में पढ़ रहे हैं। पढ़ाई में दोनों तेज हैं।' वे भूल जाते और फिर वे ही प्रश्न दोहराने लगते। फिर कहा–'अब तू सो जा, मैं भी सोऊँगा।'

"रात को वे शांति से सोये। बीच-बीच में जगे भी। सबेरे के समय वे पेशाब पर नियंत्रण नहीं कर सके। बाकी सभी कुछ नार्मल रहा, बहुत ही अच्छी तरह से रहे। समय-समय पर वे मुस्कुरा भी रहे थे। हम सोच रहे थे, काश कि वे इसी तरह मुस्कुराते रहते।

"किन्तु यह एक भ्रम था। दीपक भी निर्वाण से पहले कुछ अधिक प्रकाश देता है। पंडितजी की यही स्थिति थी।

## अंतिम जन्मदिन-उत्सव

**मंगलवार, 9 अप्रैल :** "आज महापंडितजी की सत्तरवीं (70 वीं) वर्षगाँठ। उनकी तबीयत सबेरे से ही खराब हो गई। बहुत अधिक बोले जा रहे थे, चुप ही नहीं होते थे। मैंने उनका स्पंज किया तो गुस्सा होने लगे। बिजली के शेवर से हजामत बना देते समय भी वे नाराज हो गये। आज उनका चेहरा भी बहुत उतरा हुआ था। बच्चों से भी वे अधिक नहीं बोले। खाना खिलाते समय उनको बाहर के कमरे में धीरे-धीरे ले गये। वे खाना ही नहीं चाहते थे, पर बहुत जोर लगाने पर थोड़ा-सा खाया। आज वे किसी से भी बात नहीं कर रहे थे। अंदर कमरे में लाकर उनको बिस्तर पर लिटा दिया। कमरे में वे कुछ बेचैनी महसूस करने लगे तो फिर उनको बाहर के कमरे में लाकर वहाँ बिछे बिस्तर पर लिटा दिया। तब भी वे 'भैया, भैया' कहकर बोले ही जा रहे थे। मुझको अपनी नजर से क्षण-भर के लिए भी ओझल होने नहीं दे रहे थे। पेशाब की, पाखाना भी किया। सब कुछ नार्मल हो रहा था। 'हिन्दी टाइम्स' में उनके बारे में लेख छपा था। इसे पढ़कर सुनाते समय भी उनका मन नहीं लगा। उनको बड़ी बेचैनी हो रही थी।

"शाम के समय स्थानीय बी. टी. कॉलेज के कुछ हिन्दीभाषी छात्र आये। पंडितजी को जन्मदिन के अवसर पर फूलों की माला पहनाई और दीर्घायु की शुभकामनाएँ दीं। सुनकर वे थोड़ा हँसे भी। फोटो भी लिये गये। उनके गुरुभाई भिक्षु महानाभजी उनके पास बैठे थे। बाद में उनको सोने के कमरे में ले आये। आज उनकी अवस्था को देखकर मुझे लगा कि वे अब अधिक समय के लिए नहीं हैं, दीपक का निर्वाण होने जा रहा है। इसलिए बाहर के फोटोग्राफर को बुलवाया। जेता उस दिन स्कूल में कोई कार्यक्रम होने के कारण 6 बजे शाम को पैदल ही आया था, इसलिए फोटोग्राफर को रोके रखा। उसने पंडितजी तथा बच्चों के साथ, उनके अकेले का तथा पूरे परिवार के साथ तीन पोज में फोटो लिये। पंडितजी बैठना नहीं चाहते थे, बड़ी मुश्किल से ये तीन फोटो जल्दी-जल्दी लिये गये।"

"रात को खा-पीकर पंडितजी ठीक से सो गये, किन्तु साढ़े 9 बजे के बाद उनकी अवस्था बिगड़ने लगी। उनको हृदय का जबर्दस्त दौरा पड़ गया। यह चौथा अटैक था। उनका शरीर अकड़ने लगा, हाथ-पाँव बुरी तरह से पटकने लगे, बहुत ही बेचैन थे। आँखें भी उलट गईं। आदमी भेजकर डॉक्टर चक्रवर्ती को बुलाया, उन्हें कार्डियामिन का इंजेक्शन दिया गया। कोई लाभ नहीं हुआ। 2 बजे रात को पंडितजी मूर्च्छित हो गये। उनकी नाड़ी डूबने लगी। डॉ. चक्रवर्ती, भिक्षुमहानाभ, मैं, शिवजी और मेरे एक रिश्तेदार रात-भर उनके पास बैठे रहे। सब लोगों ने रात आँखों में काटी। जया-जेता भी बेचारे उदास होकर रात-भर जगे ही रहे।"

## इडेन अस्पताल में

**बुधवार, 10 अप्रैल :** "पंडितजी रात को ही मूर्च्छित हो गये तो वह मूर्च्छा अंत तक टूटी नहीं। उनकी आँखें खुली ही नहीं। उनका मुँह भी बायीं तरफ से कुछ टेढ़ा हो गया। सबेरे डॉक्टर चक्रवर्ती के साथ C. M. O. (चीफ मेडिकल आफिसर) राहुलजी को देखने आये। उस समय राज्यपाल कुमारी पद्मजा नायडू भी दार्जिलिंग में थीं। राज्यपाल, C. M. O. तथा डॉक्टर चक्रवर्ती ने आपस में बात कर ली। पंडितजी को अस्पताल ले जाना तय हुआ। 10 बजे अस्पताल से एम्बुलेस गाड़ी आई और मूर्च्छित अवस्था में पड़े पंडितजी को इडेन सेनेटोरियम अस्पताल में ले जाया गया। स्ट्रेचर पर उनको लिटाते देखकर मैं बिलख उठी। ठंड थी। पंडितजी को बुखार भी था। उनको अस्पताल के 3 नम्बर के केबिन में रखा गया। मूर्च्छा बिल्कुल ही नहीं टूटी। नाड़ी की गति 130 हो गई, एक बार तो नाड़ी डूबने लगी थी। उनकी अवस्था बड़ी चिन्ताजनक है। अस्पताल पहुँचाने के बाद भी उनकी स्थिति ज्यों की त्यों है। उनके रक्त-मूत्र की परीक्षा करने ले गये। रात को उनके पास शिवजी, मेरे रिश्ते के जीजा लमजेलजी और मैं रही। आज रात हमने जागकर ही बितायी। पंडितजी को होश नहीं आया। नाड़ी की गति कम न हुई। बुखार भी नहीं उतरा। पेशाब तीन बार की 16 औंस के करीब।"

**बृहस्पतिवार, 11 अप्रैल :** "रात की तरह आज दिन-भर पंडितजी की अवस्था अत्यंत चिन्ताजनक रही। उनकी आँखें नहीं खुलीं। पानी भी उनके गले से नीचे नहीं उतरा, इसलिए Nassal Tube (नाक) के द्वारा उनको सूप और वार्ली का पानी पिलाया गया। पानी पीने के बाद ही उन्होंने पेशाब की। दिन में तो कुछ आशा हो रही थी उनके जीने की, किन्तु रात को उनकी अवस्था और अधिक बिगड़ने लगी। आँखें तो उलटती गयी थीं, अब बायाँ गाल भी फड़कने लगा। शरीर के बाएँ भाग में लकवा मार गया। जल्दी-जल्दी दौरा पड़ने लगा। यह करुण दृश्य तो देखा ही नहीं जाता था, रात-भर उनकी यही हालत रही। हमारे तो हाथ-पाँव ही ठंडे होने लगे।"

**शुक्रवार, 12 अप्रैल :** "आज दिन-भर भी पंडितजी की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया, उसी तरह संज्ञाहीन पड़े हुए हैं। आज सबेरे 5 औंस पेशाब के बाद फिर उनको पेशाब नहीं हुई। इंजेक्शन देने के बाद पेशाब हुई 8 औंस के करीब। उनका मुँह और गाल उसी तरह फड़कता रहा, बाईं बाँह उठती-गिरती रही। हमसे यह करुणापूर्ण दृश्य नहीं देखा जाता, उनको बहुत ही कष्ट हो रहा है। हमें नर्सों ने बाहर बिठा दिया। बेचारे जया-जेता सुबह 5 बजे ही हस्पताल आ गये। भन्ते महानाभजी ने आज कुछ नहीं खाया।

"सबेरे पश्चिम बंगाल की राज्यपाल कुमारी पद्मजा नायडू अन्य आफिसरों के साथ इडेन अस्पताल पधारीं। राहुलजी की बीमारी के बारे में मुझसे पूछ रही थीं, आर्थिक सहायता आदि के बारे में भी पूछा। मैंने लेनिनग्राद ट्रंककाल से या टेलिग्राफिक खबर भेज देने के लिए अनुरोध किया। कनैला तथा सारनाथ में उदयनारायण पाण्डे को भी वायरलेस से खबर देने को कहा। गवर्नर महोदया ने डॉक्टर के जरिये कई बार पुछवाया कि मुझे आर्थिक चिन्ता हो तो मदद मिल जायेगी। पर मैंने इन्कार कर दिया।

"आज मुमूर्षू महापंडितजी के दर्शन के लिए मानो सारा दार्जिलिंग ही उमड़ आया। नेपाली, बिहारी, बंगाली, तिब्बती सभी तरह के स्त्री-पुरुष आये थे। कमरे में एक-एक करके आते और पंडितजी की तरफ प्रणाम करके चले जाते। कलिम्पोंग से हमारे सभी बुजुर्ग रिश्तेदार भी अस्पताल आ पहुँचे। कलिम्पोंग से ही वकील साहब सपरिवार आ गये। जया-जेता आज उन्हीं के साथ रहे। बी. टी. कॉलेज के प्रिंसिपल (जो राहुलजी से पहले मिलने आया करते थे) भी उनके अंतिम दर्शन करने आये। उदयनारायण पाण्डे शायद कल पहुँच जायें। महापंडितजी के सभी घनिष्ठ मित्रों को तार भेज दिया गया।"

**शनिवार, 13 अप्रैल :** "रात एक बजे के बाद पंडितजी को दौरे पड़ने लगे, यद्यपि यह कुछ देर के अन्तराल के बाद हो रहा था तो भी कितनी ही बार पड़े। यह दौरा पड़ना जानलेवा है। उनके कष्ट को देखा नहीं जाता। वे अंतिम ऊर्ध्वश्वास ले रहे हैं। सुबह 6 बजे के बाद फिर दौरा नहीं पड़ा, बस एक बार हल्का-सा। डॉक्टर विशेषज्ञ बराबर आते रहे। अपनी ओर से वे लोग हर सम्भव प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु हमारा दुर्भाग्य, उनकी मूर्च्छा नहीं टूटी। सन्तरे का जूस, वार्ली का पानी तथा दूध ट्यूब के द्वारा दिया जा रहा है। अल्पक्षण के लिए

भी वे चैतन्य नहीं हुए। उनको बहुत अधिक कष्ट हो रहा है। साँस लेने में भी उन्हें कठिनाई हो रही है।

"महापंडितजी के अंतिम दर्शनों के लिए लोग आ रहे हैं, एक-एक करके उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके चले जाते हैं। डॉ. भट्टाचार्य आकर देख गये। अब प्रतीत होता है कि पंडितजी को डॉक्टरों की आवश्यकता नहीं, अब कुछ लाभ होनेवाला नहीं। हम लोग कल रात-भर, आज दिन-भर, फिर रात-भर उनके पास बैठे रहे। बच्चों के साथ हम सब रोते रहे। अब उनके बचने की आशा नहीं है।

"पंडितजी के भाई श्री श्यामलालजी कनैला से कल तक यहाँ पहुँचनेवाले हैं। वायरलेस से खबर मिली।"

## महाप्रस्थान : 'सब्बे संखारा अनिच्चा'

**रविवार, 14 अप्रैल :** "रात 12 बजे के बाद पंडितजी को बराबर दौरे पड़ते रहे। उनका बायाँ अंग फड़क रहा है। अब वे उस महायात्रा पर जाने की तैयारी में हैं जहाँ से कभी लौटा नहीं जा सकता। रात किसी तरह से बीती।

"परन्तु सुबह से ही उनकी हालत डूबने लगी। साँस लेने में उन्हें कठिनाई होने लगी। उन्हें सुई पर सुई लगती रही। पर सुबह 5 बजे के समय उनकी हालत बहुत ही खराब हो गई। जया-जेता को पास में बुलाया। 10 बजे के बाद उनकी अवस्था और बिगड़ गई। 11 बजे से उनकी साँस उखड़ने लगी। वे बहुत ही अधिक कष्ट पा रहे थे। अब क्षण-भर में ही सब कुछ समाप्त होनेवाला था। क्या किया जाय ? हम लोग रो ही रहे थे। मुझको महसूस हुआ कि अब वे कुछ ही पल में हम लोगों को बिलखता छोड़ हमेशा के लिए चले जायेंगे। मैंने उनके पास जाकर उनके पाँव छुए, प्रणाम किया, उनके ललाट को चूमा, सिर पर हाथ रखा और कान के पास मुँह ले जाकर बुलाया–'पंडितजी ! मैं आपकी कमला हूँ।' जया-जेता ने भी रोते हुए उनके (पापा के) पाँव छुए और प्रणाम किया। फिर पिता के कान के पास मुँह ले जाकर बुलाया–'पापा, पापा, हम आपके बच्चे हैं।' उन्होंने आँखें गोल घुमायीं, फिर वे निश्चेष्ट हो गये। उनके प्राण जीवन के अंत में भी अपने बच्चों में ही अटके थे। तभी तो प्राण छोड़ने में उनको इतनी कठिनाई हुई। श्रद्धेय महापंडित राहुल सांकृत्यायनजी ने दिन के ठीक 11 बजकर 15 मिनट पर इस असार संसार से चिर विदा ले महाप्रस्थान किया।"

एम्बुलेन्स गाड़ी में महापंडितजी के पार्थिव शरीर को रखकर 12 बजे तक 'राहुल निवास' (ग्रीन रीजेस) में ले आये और उन्हें उनके प्रिय कक्ष 'पुस्तकालय' में रखा गया। खबर सुनते ही स्थानीय लोग उनके अंतिम दर्शन के लिए आने लगे। उनके निधन का दुःखद समाचार टेलिफोन, टेलिग्राम तथा वायरलेस द्वारा राज्यपाल महोदया और हमारे लोगों ने सब तरफ दे दिया।

अंतिम दर्शन के लिए उनके पार्थिव शरीर को 'राहुल निवास' के पुस्तकालय कक्ष में ही रखा गया। लोग अश्रुपूरित नेत्रों से अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जाने लगे। जब तक स्वर्गीय पंडितजी के सम्बन्धी लोग नहीं आते, शव की अन्त्येष्टि न करें, यह मेरा अनुरोध था। रात के 10 बजे पंडितजी के भाई श्यामलाल जी अपने दूसरे पुत्र रामविलास के साथ 'राहुल निवास' आ पहुँचे। वे लोग पंडितजी को मृत अवस्था में ही देख सके। उदयनारायण पाण्डे नहीं आये। इसी समय लग रहा था कि हमारे पंडितजी को लोग कितना प्यार करते थे।

## अंतिम संस्कार

**सोमवार, 15 अप्रैल :** "घर में भीड़ थी, रात-भर जया-जेता और मैंने महापंडितजी के पार्थिव शरीर के पास बैठकर बिताया। लोग आ-आकर स्वर्गीय महान विद्वान् के प्रति अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे। फूल, मालाएँ, खदाएँ (तिब्बती माला) तथा धूप-दीप-चंदन के माध्यम से शोकाकुल हितैषी एवं बन्धगुण उन दिवंगत महापुरुष पर अपनी असीम श्रद्धा अर्पित कर रहे थे।

"खबर मिलते ही श्री स्नेहांशुकान्त आचार्य (बैरिस्टर) तथा डॉ. महादेव साहा कलकत्ता से यहाँ पहुँच गये। 'राहुल निवास' के प्रांगण में उनके लिए अर्थी सज रही थी। हमारे बगीचे में ढेर सारे फूल खिले थे, इसलिए पुष्पों की कमी नहीं थी। दोपहर ठीक 1 बजे उनके शरीर को नहलाया गया, उनकी प्रिय पोशाक सफेद सिल्क का कुर्ता और सफेद धोती पहनायी गयी। मैंने उनकी मृतदेह के अंतिम दर्शन किये। वे इस समय 40 वर्ष के सुन्दर पुरुष लग रहे थे जो गहरी स्वाभाविक नींद में सो रहा हो। उनके शरीर और चेहरे में कोई खराबी या दुर्बलता नहीं थी। उनके दाँत पूरे के पूरे थे, बाल अभी-अभी सफेद होने लगे थे। रंग बिल्कुल गोरा। अपना मोहक सौन्दर्य लिये हुए महापंडितजी चिर-निद्रा में लीन थे, सिर्फ उनका शरीर बर्फ की तरह ठण्डा था।

"शव को बाँस की अर्थी पर रखा गया। हमारे कुटुम्बी जन तथा जया-जेता के साथ मैंने अर्थी की तीन बार परिक्रमा की। 2 बजे हमारे प्रिय महापंडितजी की अर्थी उठी और वे कभी न लौटने के लिए अपने घर, अपने परिवार से चिर-विदा लेकर महायात्रा पर चल पड़े। अपार भीड़ के साथ शव-यात्रा शुरू हुई। उसमें दार्जिलिंग तथा बाहर से आये नर-नारी सभी थे। आगे-आगे पुलिस बैंड विदाई की धुन बजाते चल रहा था, वादक लोग 'स्लो मार्च पास्ट' कर रहे थे। विक्टोरिया पार्क के पास पश्चिम बंगाल की राज्यपाल महोदया ने पंडितजी के शव पर फूल-मालाएँ अर्पित कीं। शव-यात्रा दार्जिलिंग के चौरस्ता, नेहरू रोड, राबर्ट्सन रोड, एम. पी. रोड होते नीचे चौक बाजार पहुँची। उस समय थोड़ी वर्षा भी हो रही थी, और आकाश में सूर्य के चारों ओर गोल आकार का सतरंगी इन्द्रधनुष निकल आया था। मैं और जया-जेता ने यहीं पर अपने दिवंगत महापंडित के पावन चरणों को अंतिम प्रणाम किया और अन्य कुछ महिलाओं के साथ घर लौट आये।

"तीन बजे शव-यात्रा श्मशान भूमि पहुँची। अंतिम संस्कार के समय यह प्रश्न उठाया गया कि उनका अंतिम संस्कार किस रीति से किया जाय ? श्यामलालजी ने कहा कि हम हिन्दू रीति से अंतिम संस्कार करेंगे। पर महापंडित राहुलजी के गुरुभाई भिक्षु महानाभजी ने कहा—'राहुलजी अपने जीवन के अंत में बौद्ध हो गये थे, इसलिए बौद्ध रीति से सद्गति होनी चाहिए।' फैसला हुआ—दोनों रीतियों से अंतिम संस्कार किया जाय। बौद्ध तथा हिन्दू मंत्र पढ़े गये। राहुलजी के आठ वर्षीय पुत्र जेता ने पिता को मुखाग्नि दी। चिता प्रज्ज्वलित हो उठी और क्षण-भर में ही वह कंचन काया राख में परिणत हो गई। हिमालय के अनन्य प्रेमी, अथक यात्री, महान घुमक्कड़, महापंडित राहुलजी कंचनजंघा हिमालय की गोद में सदा के लिए विलीन हो गये।"

"दार्जिलिंग की श्मशान भूमि शहर से दूर तथा हजार फुट नीचे है। शाम के 7 बजे तक शव-यात्री महाप्राण महापंडित के शव का दाह-संस्कार करके लौट आये। सूने 'राहुल-निवास' में लोग जमा हो गये। सबने राहुलजी के परिवार के प्रति शोकोद्गार प्रकट किये।

"बेचारे जया-जेता के लिए यह दुःखद घटना नितान्त अप्रत्याशित थी। जेता भैया बता रहा था—'पापा को चिता पर सुला दिया, पूजा हुई, संस्कृत और पालि में मंत्र-पाठ हुए। फिर मैंने पापा के मुख पर अग्नि दी, फिर उनके पाँवों की ओर भी अग्नि दी। और पापा जलकर राख हो गये।'

"जया बेटी यह सब सुन रही थी—'पापा को जला दिया ?' कहकर वह जोर-जोर से रोने लगी, उसको चुप कराना मुश्किल हो गया। बेचारे भोले बच्चे ! ऐसी दुःखद घटना होगी, उनको कुछ भी पता नहीं था। भयंकर मानसिक चोट लगी बच्चों को, रोते-तड़पते रहे। पिताश्री के बिना ये दोनों अबोध बच्चे अनाथ हो गये।

"रात रेडियो से शोक-समाचार सुनाया गया। बहुत-से साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञों ने दिवंगत महापंडितजी के प्रति शोकोद्गार प्रकट किये। अनेक तार आये, अगणित शोकपत्र आये।"

## महाप्रस्थान के बाद

**मंगलवार, 16 अप्रैल :** "स्व. पंडितजी के भाई श्यामलाल पाण्डेजी से बातें हुईं। वे हमें कनैला गाँव चलने के लिए कह रहे थे। खैर, अभी तो जाना असम्भव है। बड़ी भाभी (राहुलजी की पहली पत्नी) के बारे में वह महिमा गा रहे थे। लेकिन अब क्या करें ? वह भाभी तो राहुलजी को बाँधकर नहीं रख सकीं। कुछ साल

वे भारत में बँधे रहे, वह भी मेरे कारण ही, वर्ना इस समय वे कहाँ होते।"

**बुधवार, 17 अप्रैल :** "आज श्यामलालजी से काफी देर बातें होती रहीं। शिलांग से उनके एक लड़के भी आज आ गये।"

**गुरुवार, 18 अप्रैल :** "आज सवेरे श्यामलालजी से बातें हुईं। उन्होंने पंडितजी की पुस्तकों के बारे में कहा, हिसाब-किताब के बारे में भी पूछ रहे थे वे। सवेरे जलपान के बाद श्यामलालजी और रामविलास स्वर्गीय पंडितजी के अस्थि-अवशेष को लेकर निकले। भन्ते महानाभ तथा शिवशर्माजी उन दोनों को सिलीगुड़ी तक पहुँचाने गये। अस्थि-विसर्जन काशी (गंगा) में होगा। अस्थि-विसर्जन बौद्ध तथा हिन्दू दोनों रीतियों के अनुसार होगा।"

(बाद में पत्र से पता चला–पंडितजी का अस्थि-विसर्जन दोनों रीतियों से हुआ। *कनैला गाँव में श्राद्ध* का आयोजन हुआ, जिसमें गाँव के सभी लोगों को भोजन कराया गया।)

**शुक्रवार, 19 अप्रैल :** "महापंडितजी के परम मित्र श्री धूपनाथजी भी आज यहाँ पहुँचे गये। उनको अपने मित्र के दुःखद निधन पर बहुत ही दुःख हुआ है। बोल भी नहीं सके वे। भारत के कोने-कोने से शोक प्रकट करते हुए तार और पत्र भारी संख्या में आ रहे हैं।"

**सोमवार, 22 अप्रैल :** "आज भी बहुत-से शोकपत्र और तार आये। रूस में भारतीय राजदूत श्री टी. एन. कौल राज्यपाल कुमारी पद्मजा नायडू के सेक्रेटरी के साथ 'राहुल निवास' में पधारे। उन्होंने अपना शोक प्रकट किया। मास्को अस्पताल में वे राहुलजी को दो बार देखने आये थे।"

**वृहस्पविार, 25 अप्रैल :** "स्वर्गीय महापंडितजी के श्राद्ध-कर्म के बारे में आज विचार-विमर्श हुआ। सलाहकारों में भन्ते महानाभ जी, डॉ. महादेव साहा, शिवरामजी, राधामोहन प्रसादजी रहे। सबकी राय हुई, श्राद्ध बौद्ध पद्धति से हो। इसमें बहुत-से लोगों के आने की आशा है।"

**शुक्रवार, 26 अप्रैल :** "आज दिवंगत महापंडितजी का श्राद्ध बौद्ध-रीति से सम्पन्न हुआ। सबेरे से ही आयोजन आरम्भ हुआ। पूजा-अनुष्ठान के लिए पूरी तैयारी थी। भन्ते महानाभ तथा भन्ते रूपसुमन (जयवर्द्धन) के पौरोहित्य में 10 बजे से ही पूजानुष्ठान आरम्भ हुआ। भगवान बुद्ध के वचन पालि में पढ़े गये। मैंने और जया-जेता ने दुहराये। मेरे लिए आँसू थामना कठिन हो रहा था। 'सब्बे संखारा अनिच्चा' तथा अन्य सूत्रों का पालि में पाठ हुआ। राज्यपाल के प्राइवेट सेक्रेटरी भी वेदी के पास बैठे थे। पूजा के बाद भिक्षुओं को भोजन कराया गया, अन्य वस्तुओं का दान किया गया।

12 बजे के बाद से अन्य लोगों का आना शुरू हो गया। 600 के करीब लोग आये, चाय-पान रात 9 बजे तक चलता रहा। कलकत्ता से बैरिस्टर स्नेहांशुकांत आचार्यजी ने श्राद्ध के लिए कलकत्ता से मिठाइयाँ विमान द्वारा भेज दी थीं। हमें लगता ही नहीं कि हमारे प्रिय आदरणीय महांपडितजी अब नहीं हैं।

**मंगलवार, 28 मई :** "स्वर्गीय महापंडित राहुलजी के तैंतालीसवें दिन की तिथि। कलिम्पोंग से भिक्षु संघ-रत्न आये। 108 दीपक जलाकर दिवंगत स्वामी की स्मृति में महायान बौद्ध सूत्रों का पाठ किया गया। बड़ी पूजा थी। आज भी बहुत-से लोग आये। जलपान का आयोजन भी था। अब महापंडितजी की यशःकाया ही शेष रह गई है।

"जब भिक्षु लोग मंत्र-पाठ कर रहे थे, उसी समय दार्जिलिंग कचहरी से डिप्टी कमिश्नर श्री भट्टाचार्य जी हमारे घर आये। महापंडितजी को पद्मभूषण की उपाधि मिली थी। उपाधि-वितरणोत्सव में वे दिल्ली में उपस्थित नहीं हो सके थे, इसीलिए डिप्टी कमिश्नर आज पद्मभूषण का प्रमाणपत्र तथा सोने का अलंकरण उन्हें समर्पित करने आये थे। किन्तु जिनके लिए ये सब थे, वे तो 43 दिन पहले ही इस संसार से विदा ले चुके थे।"

■■

"खबर मिलते ही श्री स्नेहांशुकान्त आचार्य (बैरिस्टर) तथा डॉ. महादेव साहा कलकत्ता से यहाँ पहुँच गये। 'राहुल निवास' के प्रांगण में उनके लिए अर्थी सज रही थी। हमारे बगीचे में ढेर सारे फूल खिले थे, इसलिए पुष्पों की कमी नहीं थी। दोपहर ठीक 1 बजे उनके शरीर को नहलाया गया, उनकी प्रिय पोशाक सफेद सिल्क का कुर्ता और सफेद धोती पहनायी गयी। मैंने उनकी मृतदेह के अंतिम दर्शन किये। वे इस समय 40 वर्ष के सुन्दर पुरुष लग रहे थे जो गहरी स्वाभाविक नींद में सो रहा हो। उनके शरीर और चेहरे में कोई खराबी या दुर्बलता नहीं थी। उनके दाँत पूरे के पूरे थे, बाल अभी-अभी सफेद होने लगे थे। रंग बिल्कुल गोरा। अपना मोहक सौन्दर्य लिये हुए महापंडितजी चिर-निद्रा में लीन थे, सिर्फ उनका शरीर बर्फ की तरह ठण्डा था।

"शव को बाँस की अर्थी पर रखा गया। हमारे कुटुम्बी जन तथा जया-जेता के साथ मैंने अर्थी की तीन बार परिक्रमा की। 2 बजे हमारे प्रिय महापंडितजी की अर्थी उठी और वे कभी न लौटने के लिए अपने घर, अपने परिवार से चिर-विदा लेकर महायात्रा पर चल पड़े। अपार भीड़ के साथ शव-यात्रा शुरू हुई। उसमें दार्जिलिंग तथा बाहर से आये नर-नारी सभी थे। आगे-आगे पुलिस बैंड विदाई की धुन बजाते चल रहा था, वादक लोग 'स्लो मार्च पास्ट' कर रहे थे। विक्टोरिया पार्क के पास पश्चिम बंगाल की राज्यपाल महोदया ने पंडितजी के शव पर फूल-मालाएँ अर्पित कीं। शव-यात्रा दार्जिलिंग के चौरस्ता, नेहरू रोड, राबर्ट्सन रोड, एम. पी. रोड होते नीचे चौक बाजार पहुँची। उस समय थोड़ी वर्षा भी हो रही थी, और आकाश में सूर्य के चारों ओर गोल आकार का सतरंगी इन्द्रधनुष निकल आया था। मैं और जया-जेता ने यहीं पर अपने दिवंगत महापंडित के पावन चरणों को अंतिम प्रणाम किया और अन्य कुछ महिलाओं के साथ घर लौट आये।

"तीन बजे शव-यात्रा श्मशान भूमि पहुँची। अंतिम संस्कार के समय यह प्रश्न उठाया गया कि उनका अंतिम संस्कार किस रीति से किया जाय ? श्यामलालजी ने कहा कि हम हिन्दू रीति से अंतिम संस्कार करेंगे। पर महापंडित राहुलजी के गुरुभाई भिक्षु महानाभजी ने कहा—'राहुलजी अपने जीवन के अंत में बौद्ध हो गये थे, इसलिए बौद्ध रीति से सद्गति होनी चाहिए।' फैसला हुआ—दोनों रीतियों से अंतिम संस्कार किया जाय। बौद्ध तथा हिन्दू मंत्र पढ़े गये। राहुलजी के आठ वर्षीय पुत्र जेता ने पिता को मुखाग्नि दी। चिता प्रज्ज्वलित हो उठी और क्षण-भर में ही वह कंचन काया राख में परिणत हो गई। हिमालय के अनन्य प्रेमी, अथक यात्री, महान घुमक्कड़, महापंडित राहुलजी कंचनजंघा हिमालय की गोद में सदा के लिए विलीन हो गये।"

"दार्जिलिंग की श्मशान भूमि शहर से दूर तथा हजार फुट नीचे है। शाम के 7 बजे तक शव-यात्री महाप्राण महापंडित के शव का दाह-संस्कार करके लौट आये। सूने 'राहुल-निवास' में लोग जमा हो गये। सबने राहुलजी के परिवार के प्रति शोकोद्गार प्रकट किये।

"बेचारे जया-जेता के लिए यह दुःखद घटना नितान्त अप्रत्याशित थी। जेता भैया बता रहा था—'पापा को चिता पर सुला दिया, पूजा हुई, संस्कृत और पालि में मंत्र-पाठ हुए। फिर मैंने पापा के मुख पर अग्नि दी, फिर उनके पाँवों की ओर भी अग्नि दी। और पापा जलकर राख हो गये।'

"जया बेटी यह सब सुन रही थी—'पापा को जला दिया ?' कहकर वह जोर-जोर से रोने लगी, उसको चुप कराना मुश्किल हो गया। बेचारे भोले बच्चे ! ऐसी दुःखद घटना होगी, उनको कुछ भी पता नहीं था। भयंकर मानसिक चोट लगी बच्चों को, रोते-तड़पते रहे। पिताश्री के बिना ये दोनों अबोध बच्चे अनाथ हो गये।

"रात रेडियो से शोक-समाचार सुनाया गया। बहुत-से साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञों ने दिवंगत महापंडितजी के प्रति शोकोद्गार प्रकट किये। अनेक तार आये, अगणित शोकपत्र आये।"

### महाप्रस्थान के बाद

**मंगलवार, 16 अप्रैल :** "स्व. पंडितजी के भाई श्यामलाल पाण्डेजी से बातें हुईं। वे हमें कनैला गाँव चलने के लिए कह रहे थे। खैर, अभी तो जाना असम्भव है। बड़ी भाभी (राहुलजी की पहली पत्नी) के बारे में वह महिमा गा रहे थे। लेकिन अब क्या करें ? वह भाभी तो राहुलजी को बाँधकर नहीं रख सकीं। कुछ साल

वे भारत में बँधे रहे, वह भी मेरे कारण ही, वर्ना इस समय वे कहाँ होते।"

**बुधवार, 17 अप्रैल :** "आज श्यामलालजी से काफी देर बातें होती रहीं। शिलांग से उनके एक लड़के भी आज आ गये।"

**गुरुवार, 18 अप्रैल :** "आज सवेरे श्यामलालजी से बातें हुईं। उन्होंने पंडितजी की पुस्तकों के बारे में कहा, हिसाब-किताब के बारे में भी पूछ रहे थे वे। सवेरे जलपान के बाद श्यामलालजी और रामविलास स्वर्गीय पंडितजी के अस्थि-अवशेष को लेकर निकले। भन्ते महानाभ तथा शिवशर्माजी उन दोनों को सिलीगुड़ी तक पहुँचाने गये। अस्थि-विसर्जन काशी (गंगा) में होगा। अस्थि-विसर्जन बौद्ध तथा हिन्दू दोनों रीतियों के अनुसार होगा।"

(बाद में पत्र से पता चला—पंडितजी का अस्थि-विसर्जन दोनों रीतियों से हुआ। कनैला गाँव में श्राद्ध का आयोजन हुआ, जिसमें गाँव के सभी लोगों को भोजन कराया गया।)

**शुक्रवार, 19 अप्रैल :** "महापंडितजी के परम मित्र श्री धूपनाथजी भी आज यहाँ पहुँचे गये। उनको अपने मित्र के दुःखद निधन पर बहुत ही दुःख हुआ है। बोल भी नहीं सके वे। भारत के कोने-कोने से शोक प्रकट करते हुए तार और पत्र भारी संख्या में आ रहे हैं।"

**सोमवार, 22 अप्रैल :** "आज भी बहुत-से शोकपत्र और तार आये। रूस में भारतीय राजदूत श्री टी. एन. कौल राज्यपाल कुमारी पद्‌मजा नायडू के सेक्रेटरी के साथ 'राहुल निवास' में पधारे। उन्होंने अपना शोक प्रकट किया। मास्को अस्पताल में वे राहुलजी को दो बार देखने आये थे।"

**वृहस्पविार, 25 अप्रैल :** "स्वर्गीय महापंडितजी के श्राद्ध-कर्म के बारे में आज विचार-विमर्श हुआ। सलाहकारों में भन्ते महानाभ जी, डॉ. महादेव साहा, शिवरामजी, राधामोहन प्रसादजी रहे। सबकी राय हुई, श्राद्ध बौद्ध पद्धति से हो। इसमें बहुत-से लोगों के आने की आशा है।"

**शुक्रवार, 26 अप्रैल :** "आज दिवंगत महापंडितजी का श्राद्ध बौद्ध-रीति से सम्पन्न हुआ। सबेरे से ही आयोजन आरम्भ हुआ। पूजा-अनुष्ठान के लिए पूरी तैयारी थी। भन्ते महानाभ तथा भन्ते रूपसुमन (जयवर्द्धन) के पौरोहित्य में 10 बजे से ही पूजानुष्ठान आरम्भ हुआ। भगवान बुद्ध के वचन पालि में पढ़े गये। मैंने और जया-जेता ने दुहराये। मेरे लिए आँसू थामना कठिन हो रहा था। 'सब्बे संखारा अनिच्चा' तथा अन्य सूत्रों का पालि में पाठ हुआ। राज्यपाल के प्राइवेट सेक्रेटरी भी वेदी के पास बैठे थे। पूजा के बाद भिक्षुओं को भोजन कराया गया, अन्य वस्तुओं का दान किया गया।

12 बजे के बाद से अन्य लोगों का आना शुरू हो गया। 600 के करीब लोग आये, चाय-पान रात 9 बजे तक चलता रहा। कलकत्ता से बैरिस्टर स्नेहांशुकांत आचार्यजी ने श्राद्ध के लिए कलकत्ता से मिठाइयाँ विमान द्वारा भेज दी थीं। हमें लगता ही नहीं कि हमारे प्रिय आदरणीय महांपडितजी अब नहीं हैं।

**मंगलवार, 28 मई :** "स्वर्गीय महापंडित राहुलजी के तैंतालीसवें दिन की तिथि। कलिम्पोंग से भिक्षु संघ-रत्न आये। 108 दीपक जलाकर दिवंगत स्वामी की स्मृति में महायान बौद्ध सूत्रों का पाठ किया गया। बड़ी पूजा थी। आज भी बहुत-से लोग आये। जलपान का आयोजन भी था। अब महापंडितजी की यशःकाया ही शेष रह गई है।

"जब भिक्षु लोग मंत्र-पाठ कर रहे थे, उसी समय दार्जिलिंग कचहरी से डिप्टी कमिश्नर श्री भट्टाचार्य जी हमारे घर आये। महापंडितजी को पद्‌मभूषण की उपाधि मिली थी। उपाधि-वितरणोत्सव में वे दिल्ली में उपस्थित नहीं हो सके थे, इसीलिए डिप्टी कमिश्नर आज पद्‌मभूषण का प्रमाणपत्र तथा सोने का अलंकरण उन्हें समर्पित करने आये थे। किन्तु जिनके लिए ये सब थे, वे तो 43 दिन पहले ही इस संसार से विदा ले चुके थे।"

■■